यूनानी द्रव्यगुणादर्श

उद्भिज्ज औषधाहार द्रव्य—अद्विया
व अग्जिया नबातिया—विज्ञानीय

(द्वितीय खण्ड)

लेखक
आयुर्वेदीय विश्वकोशकार वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह
आयुर्वेद बृहस्पति (D Sc, A) भिषङ्मणि आदि

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तरप्रदेश
ल ख न ऊ

प्रकाशक
आयुर्वेदिक-तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश,
लखनऊ

लेखक—
वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह,
श्रीचुनार आयुर्वेदीय-यूनानी औषधालय,
चुनार, जिला मीरजापुर (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण
१९७४

मूल्य : पचास रुपये

मुद्रक
जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०
गोलघर, वाराणसी–१

प्रस्तावना

आयुर्वेद-जगत्‌मे अनेक वर्षोसे उपयुक्त ग्रन्थो, विशेषकर पाठ्य-पुस्तकोका अभाव अनुभव किया जा रहा है। प्राचीन सहिताएँ तथा उनकी व्याख्याएँ और टीकाएँ भी अप्राप्य होती जा रही है। साथ ही आयुर्वेदिक एव यूनानी साहित्यको समृद्ध करनेके लिये प्राचीन उपयोगी पाडुलिपियोको भी प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। आयुर्वेद एव यूनानीका उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकोका अभाव विशेषरूपसे तबसे खटकने लगा जबसे कि विभिन्न प्रदेशोमे आयुर्वेद और यूनानीके महाविद्यालय स्थापित किये गये और उनमे विषयानुसार पाठ्यक्रमका निर्धारण किया गया। प्राचीन उपलब्ध सहिताओमें विभिन्न विषयोकी सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई है और उसको सकलित कर उसके आधारपर उपयुक्त पाठ्यपुस्तकोके निर्माणकी अत्यन्त आवश्यकता है। आयुर्वेद एव यूनानीके विकासकेलिए उपर्युक्त कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अत उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक एव यूनानी पुन सगठन समिति (१९४७) की सस्तुतिको ध्यानमें रखते हुए उत्तर प्रदेशीय शासनने वर्ष १९४९–५० के वित्तीय वर्षमें शासनादेश सख्या ५७१८ बी०।बी-२। आर० सी०। १९४९ दिनाक २८-२-१९५० के द्वारा आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेशकी स्थापना निम्न उद्देश्योकी पूर्तिके लिए की—

(१) प्राचीन आयुर्वेदिक एव यूनानी साहित्यका सकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन।

(२) प्राचीन आयुर्वेदिक एव यूनानी पुस्तको तथा उपादेय चिकित्सा-सम्बन्धी साहित्यका विदेशी भाषाओसे अनुवाद कराना और उसे प्रकाशित करना।

(३) आयुर्वेद एव यूनानी तिब्बके विद्यार्थियोके लिए उपयुक्त स्तरकी पाठ्यपुस्तकोका हिन्दीमें निर्माण।

यह भी निश्चय किया गया कि अकादमी एक परामर्शदात्री समितिके रूपमे कार्य करेगी तथा उपयुक्त विद्वानोको पाठ्यपुस्तकोके लेखन तथा प्राचीन एव आधुनिक पुस्तकोको हिन्दीमे अनुवाद करनेके लिए आमन्त्रित करेगी और उपयुक्त अधिकारी विद्वानो द्वारा उनका परीक्षण कराकर यदि वे निर्धारित स्तरकी हुई तो शासनकी स्वीकृति लेकर लेखको और सम्बन्धित विद्वानोको उपयुक्त पुरस्कार भी प्रदान करेगी। अकादमीका एक पृथक् पुस्तकालय भी स्थापित करनेकी स्वीकृति शासन द्वारा दी गयी।

किन्तु उपर्युक्त कार्यके लिए प्रारम्भ में जो कर्मचारी-वर्ग तथा अनुदान शासन द्वारा स्वीकृति किया गया वह इतना पर्याप्त नही था कि उपयुक्त पाठ्यपुस्तकोको लिखाकर या अनुवाद कराकर इनके प्रकाशनका कार्य भी अकादमी आरम्भ कर सके। इसलिए प्रारम्भमें कई वर्षो तक अकादमी केवल प्रत्येक वर्ष प्रकाशित पुस्तकोपर ही लेखकोको प्रोत्साहनार्थ कुछ धन-राशि पुरस्कारके रूपमें प्रदान करती रही।

वर्ष १९६८–६९ मे शासनने शासनादेश सख्या ५१४९ग।५–३७९।६६ दिनाक ७–३–१९६८ के अन्तर्गत उपयुक्त पुस्तकोके प्रणयन और उनके प्रकाशनके लिए अतिरिक्त अनुदानका प्राविधान किया तथा एक सम्पादक, एक अनुसंधान सहायक एव एक पुस्तकाध्यक्षके पदोका सृजन किया। अत अकादमीने अब अधिकारी विद्वानोसे उपयुक्त ग्रथ लिखाकर तथा अनुवाद कराकर उन्हे प्रकाशित करानेका कार्य भी अपने हाथमें लिया है जिसके

फलस्वरूप यूनानी तिबसे सम्बन्धित यह ग्रन्थ पाठकोकी सेवामें प्रस्तुत है। अकादमीका यह चतुर्थ प्रकाशन है। इसके पूर्व आचार्य निरजन देव द्वारा लिखित "प्राकृत दोष विज्ञान," वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह द्वारा लिखित "यूनानी द्रव्य गुणादर्श" प्रथम खण्ड और डा० के० एन० उडुप, निदेशक, इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा लिखित "आधुनिक शल्य चिकित्सा सिद्धान्त" नामक ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।
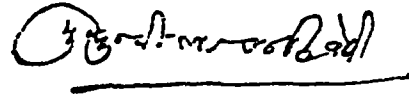
यह बात सर्वविदित है कि अतीतमें यूनान (आधुनिक ग्रीस), मिस्र, सीरिया, ईरान आदि देशोके साथ भारत के घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध स्थापित थे और पारस्परिक सम्पर्कसे भारतीय ज्ञान-विज्ञानका आलोक इन देशोमें फैला था। सिकन्दर महानके समयमें भी आयुर्वेद एक अत्यन्त विकसित और समुन्नत चिकित्सा-शास्त्र माना जाता था और उसका प्रभाव यूनानी और उसकी चिकित्सा-पद्धति पर भी पडा था। यूनानके प्रभावसे अरब देशोमें जो चिकित्सा-पद्धति विकसित हुई वह यूनानी तिब के नामसे प्रसिद्ध हुई। इस्लामके अभ्युदयकालमें (आठवी तथा नवी शताब्दीमें) विद्याप्रेमी बगदादके विद्वान खलीफाओ द्वारा भारतसे आयुर्वेदके अनेक प्रतिष्ठित चिकित्सकोको सम्मान-पूर्वक आमन्त्रित किया गया और उनकी सहायतासे भारतके चिकित्सा-शास्त्रके अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थोको अरबी भाषामे रूपान्तरित कराया गया जिससे यूनानी चिकित्सा-पद्धतिके विकासमे पर्याप्त योगदान मिला। इस प्रकार यूनानी चिकित्सा-पद्धतिपर भारतीय आयुर्वेद शास्त्रका पर्याप्त प्रभाव रहा है। इस्लामके साथ-साथ यूनानी चिकित्सा-पद्धतिका भी इस देशमें आगमन हुआ और मुस्लिम शासको विशेषकर मुगल शासकोके कालमें उसका भारतीय चिकित्सा-पद्धतिके सहयोगसे और भी अधिक विकास और प्रसार हुआ। इस प्रकार यूनानी तिब भी इस देशकी ही चिकित्सा-पद्धति बन गयी और अब भारतीय उपमहाद्वीपके अतिरिक्त सम्भवतः अन्यत्र इस पद्धतिका प्रसार नही रहा है।

यूनानी तिबके अधिकाश ग्रन्थ अरबी, फारसी या उर्दूमे ही उपलब्ध हैं। देशके अधिकाश भागमें अब राष्ट्रभाषा हिन्दी शनै शनै शिक्षाका माध्यम होती जा रही है। अत यह आवश्यक है कि यूनानी तिबके ग्रन्थोका भी हिन्दीमे प्रकाशन किया जाय जिससे कि उसका और अधिक प्रचार और प्रसार हो। आयुर्वेद और यूनानी तिबमे भाषा तथा देशकालकी स्थितिके अनुसार भले ही भिन्नता प्रतिभासित हो, वास्तवमे इन दोनो चिकित्सा-पद्धतियोमें बहुत कुछ समानता है और उन्होने एक-दूसरेके विकासमें पर्याप्त योगदान दिया है। यदि यूनानी तिबके ग्रन्थ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओमे सुलभ हो तो आयुर्वेद और यूनानी तिबका तुलनात्मक अध्ययन और उनका समन्वय सुगम हो सकता है और ये दोनो पद्धतियाँ एक-दूसरेके और भी निकट आ सकती है और एक-दूसरेकी पूरक बन सकती है।

उपर्युक्त तथ्यको ध्यानमे रखकर वैद्यराज हकीम दलजीत सिंहने आयुर्वेद तथा यूनानी तिब दोनोका ही गम्भीर अध्ययन किया है और अपनी साधनाके फलस्वरूप उन्होने आयुर्वेद और यूनानी तिबके अनेक ग्रन्थोकी रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उनकी विद्वत्ता, गम्भीर चिन्तन और साधनाका ही फल है। इसका प्रथम खण्ड अकादमी द्वारा पूर्वमें प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थमे यूनानी तिबके औषधाहार द्रव्योके गुणकर्म एव उपयोग-का विवेचन सरल एव सुबोध शैलीमे किया गया है। प्रत्येक यूनानी तिबके द्रव्यके यूनानी, अरबी, फारसी, उर्दू, हिन्दी, सस्कृत और वैज्ञानिक पर्याय नाम देनेसे ग्रन्थकी उपयोगितामे वृद्धि हुई है। ग्रन्थके परिशिष्टमें रोगानुसारिणी द्रव्य-कल्प योग सूची देनेसे छात्र, विद्वान, एव यूनानी तिबमें अभिरुचि रखनेवालोको समान रूपसे इसकी उपयोगिता बढ गयी है। अपने कथन और तर्ककी पुष्टिमे लेखकने आवश्यकतानुसार सस्कृत, अरबी, फारसी तथा उर्दू ग्रन्थोमे प्रतिपादित विभिन्न आचार्योके मतोके भी प्रचुर उदाहरण और प्रमाण दिये है, जिससे ग्रन्थकी उपादेयता और प्रामा-णिकता बढ जाती है।

अतः इस ग्रन्थके द्वितीय खण्डको प्रकाशित करते हुए हमारा यह विश्वास है कि इस प्रकारके प्रकाशनका हिन्दी-जगतमें यथेष्ठ स्वागत होगा और इसके अध्ययनसे आयुर्वेद तथा यूनानी तिबके चिकित्सको, छात्रो तथा अनुरागियोको लाभ पहुँचेगा । ऐसे उपयोगी ग्रन्थके लेखनके लिए हकीम दलजीत सिंह बधाईके पात्र हैं ।

प्रस्तुत पुस्तकके मुद्रण तथा उसके कलेवरको सुन्दर एव आकर्षक बनानेमे श्री तरुण भाई, सचालक, जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०, वाराणसीने हमें पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है । अत मै उनका भी धन्यवाद करता हूँ ।

लखनऊ
दिनाक २५ फरवरी, १९७४ ई०

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश
लखनऊ—४

लेखक के दो शब्द

यूनानी द्रव्यगुणादर्शका यह उद्भिज्ज-औषधाहारद्रव्य विज्ञानीय द्वितीय खण्ड है। प्रस्तुत ग्रन्थ किसी एक अरबी, फारसी या उर्दू में लिखे यूनानी ग्रन्थका अनुवाद नहीं, अपितु इस विषय के अनेक ग्रन्थो का साराश रूप है जो लेखक के अध्ययन एवं अन्वेषणका परिणाम है। इसमें यूनानी चिकित्सा में प्रयुक्त, वर्तमान समय मे प्रसिद्ध एव प्राप्य समस्त द्रव्यो के गुणकर्म तथा उपयोग आदिका सकलन नातिसक्षेपविस्तरेण सरल, सुबोध एव परिष्कृत हिन्दी में किया गया है। इससे प्रत्येक द्रव्यका निर्णय (व्यक्ति विनिश्चय-Identification) कर निश्चित एव सही वैज्ञानिक तथा अन्य भाषाके नाम और वर्णनादि देनेका यथाशक्य प्रयास किया गया है। प्रयत्न यह किया गया है कि इस ग्रन्थ में एक शब्द भी फालतू न आने पायें और न ही पुनरुक्तिदोष हो पाये। इसमे प्रत्येक द्रव्य के विभिन्न भाषाके निश्चित पर्याय नाम, उसका कुल (Family), उत्पत्तिस्थान, नामो की आवश्यकीय निर्णायक टिप्पणी, आवश्यक वानस्पतिक विवरण (वर्णन), औषधमें उपयुक्त अग, रासायनिक सगठन, उस अगसे बननेवाले आयुर्वेदीय-यूनानी एव आवश्यक पाश्चात्य वैद्यकीय विविध कल्प एव योग, द्रव्यकी प्रकृति (वीर्य), गुण-कर्म-उपयोग, अहितकर, निवारण, प्रधानकर्म और प्रचलित प्रामाणिक दवाखानोके अनुसार सेवनीय मात्रा आदि सहित गागर मे सागर भरने की भांति विशद वर्णन किया गया है। इसमें लगभग प्रत्येक औषध द्रव्यके शुद्ध एव सही अरबी, फारसी, उर्दू, सस्कृत, हिन्दी आदि पर्याय नाम तथा अन्य भाषा के स्थानीय एव प्रान्तीय नाम और निर्णीत वैज्ञानिक (लेटिन) नाम भी दिये है, जिससे प्रत्येक के लिये उक्त द्रव्य का पहिचानना सुकर हो गया है।

पर्याय नामोमें सर्वप्रथम प्रचलित एव प्रसिद्ध नाम चाहे वे किसी भाषाके हो दिये गये है। शीर्षक मे भी वे ही नाम दिये गये है। इसके पश्चात् यूनानी (Greek), फिर क्रमश अरबी, फारसी एव सस्कृत आदि नाम दिये गये है।

पर्याय नाम देने के बाद सज्ञानिर्णायक टिप्पणी (वक्तव्य) और उक्त औषधिका वेदकालसे तथा यूनानी कालसे लेकर अवतकका इतिहास सक्षेप में दिया है। पुन उपयुक्त अग, रासायनिक सगठन तथा कल्पयोग और यूनानी मत से गुण-कर्म तथा प्रयोग दिया गया है। तत्पश्चात् आयुर्वेद तथा नव्यमत गुण-कर्म से प्रयोग दिया गया है। इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर लगभग एक सहस्र आवश्यक प्रचलित, वहुप्रयुक्त एव कृत प्रयोग उपयोगी प्रसिद्ध द्रव्यो (औषधियों)का वर्णन नातिसक्षेपविस्तरेण सुदररीत्या हो पाया है।

यह ध्यान रहे कि यूनानी द्रव्यगुणविषयक हमारे ग्रथागार मे यद्यपि स्वतन्त्र द्रव्यो पर लिखे गये अनेक अरबी, फारसी, उर्दू ग्रन्थ विद्यमान है, तथापि उनमे से अधुना अधिकतम मखजनुल्अद्विया, मुहीत आजम तथा खजाइनुल्-अद्विया ही अध्ययन में रहते है और यथासमय इन्ही से काम लिया जाता है। उपर्युक्त ग्रन्थ फारसी तथा उर्दू भाषा में होने के अतिरिक्त इतने विस्तृत है कि हकीमो और वैद्यो का सस्कृत एव हिन्दी पठित समाज बिल्कुल लाभान्वित नही हो सकता तथा कतिपय लोग विशेषकर विद्यार्थी एव नौसिखुए तो परस्पर विरोधी मतो (वर्णनो) के चक्कर में पडकर रह जाते है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त अन्य सक्षिप्त यूनानी निघटुविषयक ग्रन्थ भी है, किन्तु उनमें प्राचीन ग्रन्थो का अनुसरण करके कतिपय द्रव्योके ऐसे गुणकर्म लिखे है जो कालान्तर से लिपि प्रतिलिपि होते आ रहे है और अधुना इन द्रव्यो के गुण-कर्म तो दूर रहे, इनके अस्तित्व का ही पता नही है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी दोषो का परिहार किया गया है।

इस ग्रन्थ के लिखने में कतिपय द्रव्यो के गुण-कर्म तथा उपयोग आदि लिखनेमे यूनानी (ग्रीक, अरबी, फारसी तथा उर्दू), आर्य (सस्कृत) एवं पाश्चात्य वैद्यकीय तथा अन्यान्य भाषाके ग्रन्थोसे भी सहायता ली गयी है और यथास्थान प्रमाण सहित उनके मतोको उधृत किया गया है।

कतिपय द्रव्यो का उपयोग ऐसे रोगो मे लिखा गया है जिसका उल्लेख यद्यपि यूनानी निघटुओ मे नही है तथापि वह सामान्यतया प्रयुक्त एव हितकारी है ।

सक्षेपमे यदि यह कहे कि उपर्युक्त सभी दृष्टियोसे लिखा हुआ इस प्रकारका यूनानी निघटुविपयक यह ग्रन्थ हिन्दी या अन्य किसी प्रान्तीय भाषामे तो क्या स्वयं यूनानी (अरबी, फारसी, उर्दू) मे नही है तथा यह कि राष्ट्र भाषा हिन्दीमे लिखी हुई यह अपने विपय की प्रथम कृति है, तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही है ।

राष्ट्रभापा हिन्दी के ग्रन्यागारमे इस विपयके वैज्ञानिक ग्रन्थका जो अत्यन्ताभाव रहा है, उसकी सम्यक् पूर्ति इस ग्रन्थके प्रकाशनसे हो सकेगी, ऐसी आशा है ।

जैसा मैने पहले कहा है कि इसमे यथास्थान आयुर्वेदीय (एव नव्य) मत इस प्रयोजन मे प्रमाणसहित दिये गये है जिसमे यूनानीसे आयुर्वेदीय गुणादिवर्णनाके साथ तुलना करनेमे सुगमता हो और यह जानना सहज हो कि यूनानी द्रव्यगुणमे आयुर्वेदका कितना अश है तथा आयुर्वेदसे इसमें कौन-कौन गुण कर्म एव उपयोग अधिक है और किनका अभाव है तथा आयुर्वेदसे इसमें समानता कितनी है । इससे एक लाभ यह भी होना सभव है कि हकीम लोग आयुर्वेद से और वैद्य लोग यूनानीसे लाभ उठा सकेंगे । इस प्रकार दोनो एक-दूसरेके दृष्टिकोणको समझकर एक-दूसरेके सन्निकट आ सकेगें। इस प्रकार दोनो के बीच पडी हुई खाई भी पट सकेगी, ऐसी आशा ही नही पूर्ण विश्वास है । इसी हेतु यह आयुर्वेद-यूनानी समन्वय में भी परम सहायक हो सकता है ।

महाभूतादिके सम्बन्धमे यूनानी सिद्धान्त आयुर्वेदके सिद्धान्तोके साथ बहुत कुछ मिलते-जुलते है तथा अधिक-सख्य आयुर्वेदकी औपधियाँ यूनानीमे व्यवहृत होती हैं, इसलिए अध्ययन-अध्यापन एव कर्माभ्यास की दृष्टि से यह ग्रन्थ यूनानी के विद्यार्थियो और वैद्यो हकीमो के समान आयुर्वेद के विद्यार्थियो और वैद्यो के लिए भी परमोपयोगी है। अतएव इसे आयुर्वेद यूनानी विद्यालयोके पाठ्यक्रममें रखा जा सकता है, तथा सन्दर्भग्रन्थके रूपमे इसका उपयोग किया जा सकता है ।

यह ग्रन्थ परिष्कृत सरल, एव सुबोध हिन्दी भाषामे लिखा गया है तथा आयुर्वेद की भाँति यूनानी के कल्प एव योग भी ऐसे ही होते है जिनका ज्ञान होनेपर यूनानी हकीमो के अतिरिक्त आर्य वैद्य तथा जनसाधारण भी उससे पूरा पूरा लाभ उठा सकते है । अत उपयोगिता की दृष्टि से यह ग्रन्थ वैद्य-हकीमो के अतिरिक्त जनसाधारणके भी उपयोगकी वस्तु हो सकता है ।

भापा, लेखन शैली और विपय-प्रतिपादनकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ अति सुन्दर है तथा उपयोगितामे भी किसी प्रकार कम नही है । यही कारण है कि इसे प्रकाशनार्थ जब आयुर्वेद—यूनानी अकादमी, उत्तर प्रदेशके सदस्योके समक्ष उपस्थित किया गया तब सभी सदस्य महानुभावो ने एक स्वरसे इसे सरकार द्वारा प्रकाशित किये जाने की अभ्यर्थना की । इसकी उपयोगिताके प्रमाणकेलिए यही क्या कम हे ?

इस ग्रन्थमे देनेके लिए सदिग्ध एव आवश्यक वनस्पतियोके उत्तम रगीन एव रेखाचित्र बनवाये गये थे। परन्तु एक तो यूँ ही ग्रथके प्रकाशन में अप्रत्याशित विलम्ब हुआ है, दूसरे इनके ब्लाक बनवाने और छपवाने मे और भी अनावश्यक विलम्ब होता, अतएव उनका इस खण्ड मे देना स्थगित कर दिया गया। इन्हे आगामी तृतीय खण्ड में जान्तव-चित्रोके साथ एकत्र दिया जायगा।

प्रस्तुत ग्रन्थको प्रकाशनार्थ स्वीकृत कराने तथा इतने उत्तम रूपमें प्रकाशित करानेका बहुत कुछ श्रेय माननीय श्री मुकुन्दी लालजी द्विवेदी, निदेशक, आयुर्वेद-यूनानी सेवाओ को है । इसके लिए वे मेरे बहुत ही धन्यवाद के पात्र है । अस्तु, मै उनका बहुत ही आभारी हूँ ।

प्रस्तुत ग्रन्थकी सपूर्ण पाण्डुलिपिको टकणित कराने, उद्भिज्ज द्रव्यो की लेटिन सज्ञाओके उच्चारणके आधुनिकीकरण तथा संपूर्ण ग्रन्थके आद्योपान्त प्रूफ-सशोधन आदिका तथा रगीन एव रेखाचित्रोके प्रवन्धका जो मह-

त्तम कार्यभार मेरे अनुज आयुर्वेदाचार्य डॉ० रामसुशील सिह, प्रोफेसर, द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्व-विद्यालयने अपने कधोपर लेकर उसे सम्पन्न किया है, उसके लिये वे मेरे बहुत-बहुत धन्यवादके पात्र हैं तथा उन्हे मेरा शुभाशीर्वाद समर्पित है । साथही मेरे सुपुत्र डा० भृगुनाथ सिंह B A ,M M S , D Ay M ,Ph D ने भी कई प्रकार से इस ग्रन्थके सम्पूर्ण करानेमे मेरी सहायता की है उसके लिये वे भी मेरे शुभाशीर्वाद के पात्र हैं ।

अन्तमें मै अनेक भाषाके एतद्विषयक उन ग्रन्थोके लेखकोको जिनकी सूची आगे दे दी गई है तथा जिनसे मुझे कुछ भी सहायता मिली है, धन्यवाद दिये बिना नही रह सकता । उनका मै हृदयसे आभार मानता हू ।

इसके अतिरिक्त जीवन शिक्षा मुद्रणालय(प्रा०) लि० के सञ्चालक माननीय श्रीतरुण भाईका भी आभार मानता हूँ, जिन्होने इस ग्रन्थको इतना शीघ्र एव उत्तम रीतिसे मुद्रण करा इसे पाठकोके समक्ष उपस्थित करनेमें मेरी सहायता की है ।

सर्वांतमें पाठकोसे यह विनयपूर्वक प्रार्थना कर देना उचित समझता हू कि यदि मुद्रण-सम्बन्धी या लेखक द्वारा इसमें कही भी हुई कोई त्रुटि दृष्टिमें आवे तो उसकी सूचना लेखक को अवश्य दे जिससे आगामी संस्करणमे उनका परिहार किया जा सके ।

—हकीम दलजीत सिह

बीरबल साहनी विशेष पुरस्कार-स्वरूप एक सहस्र मुद्रा प्राप्त
प्रथम खण्ड पर अब तक प्राप्त स्वतन्त्र सम्मतियों
में से कतिपय निम्नलिखित है

PANDIT SHIV SHARMA
Ayurveda Chakravarti, Ratna
CCIM/181 18th January, 1973

My dear Dwivedi Ji,

Kindly refer to your letter No 1962 dated the 5th December 1972 which I received along with a copy of "Unani Dravyagunadarsha" by Hakim Daljit Singh.

I have read through large portions of this book with great interest I have been impressed by the chapter on the historical background of Unani which exhibits a wide study of the subject by the author His treatment of the fundamental principles of Unani is excellent and his presentation of the rest of the corpus of Unani, such as materia medica, pharmacology, pharmacy, therapeutics various apparatuses, etc is clear and comprehensive I congratulate Hakim Sahib on his excellent work and the academy for making this useful treatise available to the profession and the public

With kind regards,

Yours sincerely,
Sd/-Shiv Sharma

Shri Mukundi Lal Dwivedi,
Chairman
Ayurvedic and Tibbi Academy, of U P
Tulsidas Marg,
Lucknow, U P.

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उ० प्र०
तुलसीदास मार्ग, लखनऊ–४

प्रिय महोदय,

आपके पत्र सं० १९९५ दिनाक ५ १२-७२ के साथ प्रेपित यूनानी द्रव्यगुणादर्शकी एक प्रति प्राप्त हुई। धन्यवाद। यूनानी द्रव्यगुणके सम्बन्धमें अभीतक ऐसी प्रामाणिक जानकारीका अभाव था, जिसकी पूर्ति इस ग्रन्थद्वारा हुई है। इसके लेखक वैद्यराज हकीम दलजीत सिंहजी इस विपयके अधिकारी विद्वान है जो अपनी विभिन्न रचनाओ द्वारा आयुर्वेद एव यूनानी जगतको समृद्ध करते रहे है। आयुर्वेद एव तिब्बी अकादमीके द्वारा ऐसे प्रकाशन वाड्मयकी अभिवृद्धिके लिये अत्यन्त प्रेरक सिद्ध होगे। इस उत्कृष्ट रचना एव प्रकाशनके लिये लेखक एव प्रकाशक दोनो बधाईके पात्र है। आपके निर्देशनमे उत्तमोत्तम ग्रन्थोका प्रकाशन भविष्य मे होता रहे ऐसी मेरी कामना है।

भवदीय
ह० प्रियव्रत शर्मा
अध्यक्ष
द्रव्यगुण विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
वाराणसी-५

लेखक–हकीम दलजीत सिंह
प्रकाशक–आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी
उत्तर प्रदेश ।

प्रस्तुत ग्रन्थकी निम्न विशेषताओमे मे नितान्त पभावित हुआ ।

१–आयुर्वेद एव यूनानीकी निकटता प्रकट करनेमें यह ग्रन्थ सफल हुआ है । दोनोमे सामञ्जस्य तथा समन्वयका क्षेत्र कितना अधिक हैं यह इससे प्रकाशमे आता है ।

२–देह एव द्रव्योके मूल घटक, गुणो तथा कर्मोका विवेचन, द्रव्योके क्रमानुसार गण, औषध-द्रव्योकी कल्पनाएँ तथा इन सबकी परिभाषाओमे केवल भाषाभेदको छोडकर शेष बातोमे अत्यधिक एकरूपता दिखती है । जिनमे दोनोकी विशिष्टता है इसका भी यथार्थ दिग्दर्शन कराया है ।

३–ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका अध्याय नितान्त विद्वत्तापूर्ण एव समृद्ध जानकारी देनेवाला अध्याय है ।

४–पादटिप्पणियोमें आयुर्वेदके साहित्यमे उद्धरण देकर साम्य अथवा विशेषताका निर्देश करना लेखककी तटस्थता तथा बहुश्रुतता एव उदार समन्वयात्मक दृष्टिकोणका सूचक है ।

५–शिष्ट किन्तु सरल हिन्दी भाषामे उभय शास्त्रके सिद्धान्तोका विवेचन करके राष्ट्रभाषाकी तथा शिक्षाप्रसारके उद्देश्यकी बहुमूल्य सेवा की है ।

६–रोगानुसार प्रयुक्त औषधद्रव्योका निर्देश करके यूनानी द्रव्योके जिज्ञासु और चिकित्सामें लाभ उठानेके इच्छुक वैद्य बन्धुओके लिये उपकार किया है ।

७–हिन्दी–अंग्रेजीके शब्दोकी सूची देकर ग्रन्थकी उपयोगिता तथा पाठकोकी सुविधा बढाई है ।

८–मुद्रण भी बहुत सुन्दर एव आकर्षक है–तथा कागज भी ऊँची किस्मके है ।

इस प्रकारके उच्चकोटिका यह ग्रन्थ आलोच्य ग्रन्थ रेफरन्स बुक्सकी श्रेणीमे स्थान पाने योग्य है । इस ग्रन्थ द्वारा अवश्य ही हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यकी श्रीवृद्धि हुई है । गम्भीर, अध्ययनपूर्ण एव तटस्थ विवेचनयुक्त इस ग्रंथके लेखक हकीम श्री दलजीत सिंहजीका वास्तविक वैज्ञानिक दृष्टिकोण एव विद्वत्ताकी गरिमा स्वय सिद्ध हो जाते है । वे हमारी हार्दिक बधाईके अधिकारी है ।

आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी तथा उत्तर प्रदेश शासन भी धन्य है जिन्होने कानूनी तथा आवश्यक धनराशिका प्रबन्ध करके विद्वानोको निमन्त्रित करके नये ग्रन्थोके प्रणयनका न केवल मार्ग प्रशस्त किया अपितु प्रादेशिक तथा राष्ट्रभाषामे ग्रन्थोके निर्माणके कार्यको प्रोत्साहन देनेके लिए अन्य राज्यो को अनुकरणीय दृष्टान्त पेश किया है ।

ह० वि० ज० ठाकर
कुलपति (प्रभारी)
गुजरात आयुर्वेद यूनिवर्सिटी

—+—

KAVIRAJ ASHUTOSH MAJUMDAR
Hony. Physician to the President of India,
Hony. Director M M L Centre for Rheumatic Diseases,
Chairman, Central Council of Indian Medicine

Phones 47366
Off . 261527
90/8, Connaught Circus,
New Delhi—1
20-3-73

समीक्ष्यग्रन्थ-यूनानी द्रव्यगुणादर्श (प्रथम खण्ड), पृष्ठ संख्या ४०७, लेखक-वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह, प्रकाशक-आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ। मूल्य-२५ रुपये

समीक्षा

प्राचीनकालमे आर्ष पद्धति द्वारा चिकित्सा करनेवाले सद्वैद्योकी कीर्ति-पताका भारत वसुन्धरासे परे भी फहराने लगी थी, ऐसे सफल चिकित्सकोके निर्देशक हैं आचार्यप्रवर भेलके उत्तराधिकारी श्री सायि महोदय जिन्होने बगदादके हारुन-अल्-रशीदके भतीजे इब्राहिमको तत्रत्य चिकित्सको द्वारा निष्प्राणवता दिये जानेपर भी, जीवित कर दिया था। ऐसे पीयूषपाणि भिषगाचार्यके शास्त्रीय एव क्रियात्मक ज्ञानसे कौन न प्रभावित होता ? ऐसे प्रभावके वशीभूत होकर ही यवन (यूनान) देशीय चिकित्सकोने भारतीय भैषज्यके कतिपय अशोको अपनी पद्धतिमे सम्मिलित कर लिया था, इधर आर्य चिकित्सक भी उदारचित्त थे। चरकके "तदेव युक्त भैषज्य यदारोग्याय-कल्पते" में निहित सिद्धान्तको हृदयङ्गम करके उन्होने सभी स्रोतोसे अपनी विचारकी वृद्धि कर ली थी, विदेशी चिकित्सकोसे भी उन्होंने अनेक सग्रहणीय तत्व ले लिये थे। मनुने उचित ही कहा है कि "श्रद्दधान शुभा विद्यामददीतावरादपि।" इस प्रकार समय पाकर उभयदेशीय चिकित्सा पद्धतियोमे स्पृहणीय परिबृहण होते रहनेपर भी बहुत कुछ सामञ्जस्य बना रहा, जो आशिक वैषम्य दृग्गोचर होता है, वह तो देश-काल-वैविध्य सापेक्ष होनेसे उचित ही है। इन दोनो पद्धतियोके तुलनात्मक अध्ययनसे दोनोमे समन्वय स्थापित किये जानेकी सम्भावनासे प्रेरित होकर वैद्यराज हकीम श्री दलजीतसिंहजीने सौसे भी अधिक प्रामाणिक ग्रन्थो तथा पत्र-पत्रिकाओके गम्भीर अध्ययनपर आधारित करके प्रस्तुत ग्रन्थरत्नकी रचना की है।

इसमे सात अध्याय है जिनमेंसे पहलेमें द्रव्यगुणविज्ञानकी, दूसरेमे द्रव्य-कर्म-विज्ञानकी, तीसरेमें शरीराङ्ग प्रत्यङ्गीण-द्रव्य-कर्म-विज्ञानकी, चौथेमे गुण-कर्मानुसारिणी द्रव्यसूचीकी, पाँचवेमे औषधप्रतिनिधि-विज्ञानकी, छठेमे अहितकर विज्ञान की और सातवे योगौषध-विज्ञानकी सप्रमाणचर्चा की गयी है। जिस अध्यायमें वक्तव्य अधिक हैं, उसको अनेक प्रकरणोमे विभाजित कर विषयको सुगम बनानेका प्रयत्न स्तुत्य है।

इसके अनन्तर परिभाषा और भेषजकल्पनाका निरूपण किया गया है। इसमे छ अध्याय हैं, जिनमे क्रमश कल्प-नामरूप-विज्ञान, भेषज-प्रयोगविधि-विज्ञान, भेषज सग्रहण-सरक्षण विज्ञान, भेषज कल्पना-विज्ञान सहायक भेषजकल्पनाविज्ञान और भेषज-कल्पना विषयक-परिभाषा-विज्ञानपर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। इन अध्यायोमे भी आवश्यकतानुसार प्रकरणोका समावेश किया गया है।

अन्तिम परिशिष्ट भी बहुत उपादेय है, क्योकि इसमे सिरसे लेकर पैरतक होनेवाले रोगोके अनुसार द्रव्य-करण-सूची भी दी गयी है।

सभी पद्धतियोके चिकित्सकोके लिए श्री दलजीतसिंहजीकी यह रचना सग्रहणीय है। तुलनात्मक अध्ययनमे इसका विशेष उपयोग होगा। विश्वमे मानवजाति एक-सी है, देशभेदसे होनेवाले पार्थक्यको मिटाकर देखा जाय तो अधिकाशमे साम्य मिलेगा। पाणिनीको यवन देश और यवनलिपि आदिका ज्ञान था, ऐसा उनके सूत्रसे विदित होता है, कालीदासने रघुवशमे "यवनीमुख-पद्मानां सेहे मधुमद न स" कहकर यवन सौन्दर्यकी प्रशसा की है। इसी प्रकार चिकित्सा क्षेत्रमें भी यवन-विशेषताओकी प्रशसा होनी ही चाहिए।

इस अभिनव कृतिके लिए वैद्यराज जी समस्त वैद्य-समाजके साधुवादके पात्र है। मुझे दृढ विश्वास है कि आयुर्वेद-जगत्में इस रचनाका सम्मानपूर्वक हार्दिक स्वागत होगा।

—+—

ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार

पत्र स० ४०२६ दि० ३-४-१९७३

उपरोक्त ग्रन्थके लेखक आयुर्वेद एव यूनानी चिकित्सा पद्धतिके ख्यातनामा विद्वान है। ग्रन्थको पढते समय, प्रत्येक प्रसंगमे लगभग सर्वत्र ही इनके उभय विषयक गम्भीर पाण्डित्यका परिचय प्राप्त होता है। दोनो पद्धतियोके अनेको स्थलोपर की गयी विचारपूर्ण तुलना भी इसकी वोधक है। इस दृष्टिसे इस ग्रन्थके रसप्रकरण प्राकृत-देहोष्मा, द्रव्यकर्म विज्ञानीय आदि स्थलोका अध्ययन विशेप महत्वका है। आयुर्वेद, यूनानी और ऐलोपैथी इन तीनो प्रचलित प्रमुख पद्धतियोपर लेखकका अधिकार होनेसे ही यह सव सम्भव हो पाया कि अक्काल (क्षार) जैसे शब्दोकी व्युत्पत्ति और उसका क्षार Corrosive जैसे शब्दोसे सामजस्य स्थापित किया जा सका है।

यूनानी विषयके समर्थनमे टिप्पणीमे दिये गये आयुर्वेदिक ग्रन्थोके उद्धरणोसे यह ग्रन्थ आयुर्वेदज्ञोके लिए भी उपादेय हो गया है तथा विषयवोध सरल बन गया है। वैसे भी यूनानी चिकित्सा पद्धतिकी आयुर्वेदसे भिन्न अपनी उपयोगी विशेपताएँ है जिनका समझना तथा उपयोगमें लाना इस ग्रन्थ निर्माणसे आसान हो गया है। मुकई (वामक), मुगज्जा (जीवनीय) आदि परिभाषाओके ज्ञानके अतिरिक्त द्रव्य सयोग, विरुद्धद्रव्य, द्रव्यो को परस्पर मिलाना या उनकी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ आदिके सम्वन्धमे वडा गवेपणापूर्ण सुवोध वर्णन दिया हुआ है।

वर्क, मुरव्वे, अर्क, रूह, शर्वत, सिकजवीन, गुलकन्द, आदि यूनानी चिकित्सा पद्धतिकी अपनी विशेषताएँ समझना एव उनका चिकित्सामे प्रयोग करना भी इस पुस्तक निर्माणमे सुगम हो गया है। शास्त्रीय अभिरुचि रखनेवाले विद्वानोके लिए भी इसमें महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है।

अन्तमें परिशिष्टके रूपमे, आशिर'पाद रोगानुसारिणी द्रव्यकल्प-योग सूची देकर पुस्तककी उपयोगिता कई गुना बढा दी गई है।

इतने उपयोगी ग्रन्थके निर्माणके लिए अकादमी और लेखक दोनो ही हार्दिक धन्यवादके पात्र है। कागज और अशुद्धि रहित छपाई भी पुस्तकके विशेष आकर्षण है।

ह० रतनप्रकाश गुप्त
प्रधानाचार्य
ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज
हरिद्वार

आयुर्वेदभवन-वृन्दावन (मथुरा)

दिनाक १३-८-७३

प्रिय वन्धु श्री दलजीत सिंह जी,

सादर हरिस्मरणम्

यूनानी द्रव्यगुणादर्श मिला। पढकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ, आपका ज्ञान और परिश्रम आयुर्वेद यूनानीकी श्रीवृद्धिमें वास्तविक लाभकारी है। भगवान आपको स्वस्थ और दीर्घायु करे।

आपका
रामनारायण वैद्य

Phones : Residence 524035 | Dispensary 445306 | Kings Circle Clinic 472397

Ayurveda-Acharya

Dr. M K. Shastri, B A V.V (Ph), M. M. S. (Retd)
M A. M S (Cal), D SC (A.)

१२ फरवरी १९७३

प्रिय महोदय,

आपका भेजा 'यूनानी द्रव्यगुणादर्श' (श्री आदरणीय हकीम दलजीत सिंहजी द्वारा लिखित) प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। ग्रन्थका आकार-प्रकार स्वरूप (गेट-अप) छपाई, तथा विशेषकर प्रिन्टर्स डेविल्स (प्रूफ सम्बन्धी) का अभाव देखकर प्रसन्नता होती है। हिन्दीमें ऐसा प्रकाशन 'स्टैन्डर्ड' समझा जाना चाहिए। एतदर्थ सम्पादक, प्रकाशक, प्रेस और प्रूफ रीडर सभी बधाईके पात्र हैं।

आदरणीय हकीमजी तो भारतीय चिकित्सा जगतकी उन पुरानी विभूतियोंमेंसे हैं, जिन्होंने अपना जीवन उसके उत्थानमें लगा दिया। उनका द्रव्यगुण विषयक स्वाध्याय समुद्रवत् गम्भीर है। उनके सभी ग्रन्थ अत्यन्त रोचक, सारगर्भित तथा अमूल्य ज्ञानदाता सिद्ध हुए हैं। उनकी ग्रन्थ मणिमालामें यह 'यूनानी द्रव्यगुणादर्श' इस मालिकामें मेरुमणिके समान सुशोभित है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि द्वारा यूनानीके वास्तविक स्वरूपका दिग्दर्शन आल्हादकर है। यूनानी चिकित्सा विज्ञानके इस आकर ग्रन्थका सर्वत्र आदर होना चाहिए। ऐसे सुन्दर तथा सारगर्भित ग्रन्थ प्रकाशनार्थ आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश तथा उसके अध्यक्ष-श्री मुकुन्दी लालजी द्विवेदी, सचालक-आयुर्वेद विभाग, उत्तर प्रदेश, दोनो ही भारतीय चिकित्सा प्रेमियोके धन्यवादके पात्र हैं।

ऐसे सुन्दर ग्रन्थमें आयुर्वेदोक्त उद्धरणोंका सदर्भ-स्थल सर्वत्र न देना कुछ खटकता है। आशा है भविष्यमें इस साधारण सी त्रुटिका अभाव हो जाएगा।

HAKIM ABDUL HAMEED
Mutawalli
Hamdard (Wakf) Laboratories
Delhi (India)

Feb 8, 1973

Mr M. L Dwivedi,

My dear Divediji,

I am extremely grateful for the book 'Unani Dravya Gunadarsh' sent by you with so much affection Admittedly Tibbe Unani & Ayurveda have worked hand in hand in the past and they can serve the country by working with that zeal of cooperation which is the hall-mark of all arts and sciences The Ayurvedic and Tibbi Academy, Uttar Pradesh-is to be congratulated for bringing out a voluminous work on Unani in Hindi language The feature of the book which impressed me mort is that the terminology of Unani Tib has been adopted as the basis This is surer way of bringing the two systems—Tibbe Unani and Ayurveda, closer to each other Such works in Hindi shall enable the Hindi knowing physicians to acquaint themselves with the broader principles and methods of treament of Unani Tib.

I have sent the book to the Principal, Jamia Tibbia (Unani Medeal College), Delhi, for a closer study so that the students and teachers may also benefit from it

Once again I thank you

Yours sincerly
Sd/-Hakim Abdul Hameed

KAVIRAJ PURUSHOTTAM DEV,
Deputy Director (Ayurveda),

Indian Medicines and Homoeopathy
Department

Indian Medicine Pharmacy Buildings,
Charminar, Hyderabad - 2
Seal.
Andhra Pradesh

D O L No 247/IMP/A/73 dated 22 3 1973

Dear Shri Dwivedi ji,

I have to thank you for sending me a copy of 'Unani Dravyagunadarsh'.

The book is printed nicely The subject matter is of very high order The distinguished author has made a honest and earnest attempt to compare Unani terminology with Ayurvedic terminology It seems to be a standard book on Unani Materia Medica in Hindi I am sure it will be very useful to Ayurvedic Practitioners, Research scholars and students of Ayurveda and Unani

Ayurvedic and Tibbi Academy, U P , under your dyanamic Presidentship deserves the gratitute of Ayurvedic world for taking up the work of publication of standard books on Ayurvedic and Unani systems of Medicine and encouraging the authors of good books on these subjects

I am sure in the years to come we will have good number of such publications

With kindest regards

Yours sincerely

Sd/-Purushottam Deva

आधारभूत प्रधान ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ और उनका संक्षिप्त परिचय एवं सकेत-चिह्न आदि

अरबी-यूनानी

(अरबी, फारसी, उर्दू)

(१) फिरदौसुल् हिकमत فردوس الحکمت (Heaven of Wisdom)—सन् ८५० ई० में इब्न-रब्बन-अल्-तबरी द्वारा लिखित यूनानी चिकित्साविषयक अरबी ग्रथ है जिसमें भारतीय चिकित्सा अर्थात् आयुर्वेदीय चिकित्साका भी कई प्रकरणोमें विवरण दिया गया है। (फि० हि०, अल्तबरी)।

(२) मुफ्रदात अल्कानून (مفردات القانون)—लगभग सन् १००० ई० मे शैखुर्रईस बू-अलीसीना (जीवनकाल सन् ९८०–१०२७ ई०) लिखित अल्कानून नामक प्रसिद्ध विशाल अरबी ग्रथका द्रव्यविज्ञानीय विभाग, जो द्रव्यगुण विषयक एक वरिष्ठ एव प्रामाणिक ग्रथ है। (शैख, कानून Canon)।

(३) अल्हावी (الحاوی)—अबू-बक्र मुहम्मद बिन-जकरिया राजी (जीवनकाल सन् ८५०–९३२ ई०) लिखित प्रसिद्ध महान् अरबी ग्रथ। (राजी, अल् राजी, अर्राजी)।

(४) मुफ्रदात इब्नुल् बैतार (مفردات ابن البيطار)—असंसृष्ट द्रव्यो पर अरबीमें लिखित सन् १२९१ हिजरीमे प्रकाशित एवं अत्यत उपयोगी एव प्रामाणिक और सर्वागपूर्ण ग्रथ है। इसमे लगभग दो सहस्र असंसृष्ट द्रव्योका विशद वर्णन किया गया है। इसके लेखक—इब्नुल्बैतारका जीवनकाल सन् ११९७–१२४८ ई० है। यह यूनानी (Greek) भाषाके भी अच्छे ज्ञाता थे। अपने ग्रथमे इन्होने प्राय प्रत्येक ओषधिके विषय में यूनानी हकीम दीसकूरीदूस (Dioscorides) के ग्रथसे सचिका एव अध्यायके सदर्भसहित उद्धरण दिये हैं। प्राय असंसृष्ट द्रव्यगुण-विषयक आगेके ग्रथोमें इसका उल्लेख मिलता है। (अल्जामेअ—इ० बै०)।

(५) तज्किरतुश्शैख दाऊद अज्जरीरुल् अताकी (تذكرة الشيخ داود الضرير الانطاكى)—अरबीमें लिखित अपने ढग का एक अत्युत्तम यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है। इसके आधारभूत ग्रथ हकीम इब्नुल्बैतारकी किताबुल्-जामेअ (अल्जामेअ) और हकीम यूसुफ बगदादीकी किताब मालायसअ है। (तजकिरा, अताकी)।

(६) नफीसी फने सानी इल्मुल् अद्विया (نفیسی فن ثانی علم الادویه)—लगभग ८२७ हिजरी तदनुसार पद्रहवी शतीके मध्यमे मुल्ला नफीस द्वारा लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक अरबी ग्रथ तथा विद्वद्वर मुहम्मद कबीरुद्दीन महोदय लिखित इसकी उर्दू टीका (सन् १९२९ ई०)। तर्जुमा नफीसी। (नफीसी)।

(७) अद्विया सदीदी (ادويه سديدى)—

(८) किताबुल् मलिकी (كتاب الملكى)—अली-बिन-अब्बास मजूसी लिखित कामिलुस्सेनाअत (अल्मलिकी) ग्रथ। साहबे कामिल।

(९) मेअह मसीही (مئه مسيحى)– अबु सहल-मसीही लिखित अरबी चिकित्सा ग्रथ है। यह अत्युच्च-कोटिकी अभूतपूर्व रचना है। (मे० म०)।

(१०) तोह्फतुल् मोमिनीन (تحفة المومنين)—सन् १६६९ ई० में हकीम मोहम्मद मोमिनीन द्वारा फारसीमें लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक सरतुल्य एव प्रख्यात ग्रथ। (तोह्फा)।

(११) इख्तियारात बदीई (اختيارات بديعى)—सन् १३६८ ई० मे हाजी जीनुल्अत्तार लिखित द्रव्यगुणविषयक प्रामाणिक फारसी ग्रथ। (इ० ब०)।

(१२) मख्जनुल् अदविया (مخزن الادویہ)—हकीम सय्यद मुहम्मद हुसेन साहब उलवी द्वारा सन् १७७० ई० में लिखित और सन् १२४८ हिजरी तदनुसार सन् १८४८ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक विशाल फारसी ग्रंथ। इसमे यूनानी, भारतीय, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशीय असंसृष्ट द्रव्योके परिचय एवं गुण-कर्म आदिका अकारादि क्रमसे ८५३ पृष्ठोमे विस्तृत वर्णन किया गया है। ग्रंथके अतमें आये सभी यूनानी, सुरयानी, अरवी, फारसी, इवरानी, रूमी, फिरंगी, तुर्की व हिंदी, वगला तथा अन्य भापाके पर्याय नामोका अकारादि वर्णक्रमानुसार फारसी लिपिमें अर्थसहित ८५४ से ९७३ तकके पृष्ठोका एक कोश—मख्जनुल्अद्‌विया कोश भी दिया है।

यह अपने समयका एक अत्युत्तम ग्रंथ है। इसको लिखे प्राय. डेढ सौ वर्षसे ऊपर हो रहे हैं, तथा इस ग्रथमें बहुश' यूनानी आदि नाम विगडकर कुछके कुछ हो गये हैं। अतएव इस ग्रंथके सशोधनकी अपेक्षा है।

इसका उर्दू भाषातर हकीम और मौलवी नूर करीमुल् अजीमने किया है, जो मुशी नवलकिशोर लखनऊ छापाखानेमें छपकर प्रसिद्ध हुआ है। (म० अ०, मख्जन) या मुफ्रदात हिंदी।

(१३) तालीफशरीफी (تالیف شریفی)—सन् १८०२ ई० में लाहौर स्थित मुद्रणालय मोहम्मदीमें मुद्रित हुआ। हकीम मुहम्मद शरीफ खाँ द्वारा भारतीय ओषधियोके सबधमें फारसी अकारादि वर्णक्रमानुसार लिखित भारतीय द्रव्यगुणविषयक एक उत्तम ग्रथ है। (ता० श०)।

श्रीमान् जॉर्ज प्लेफेयर (George Playfair Esqr) महोदयने इसका अग्रेजी भापातर किया जो वैप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्तामें सन् १८८३ ई० में प्रथमत प्रकाशित हुआ।

(१४) मुफ्रदातनासिरीमैतक्मिला मुफ्रदात नासिरी (مفردات ناصری معہ تکملہ مفردات ناصری)—हकीम मुहम्मद नासिर अली द्वारा फारसी मे लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है। यह सन् १२९९ हिजरी तदनुसार सन् १८८२ ई० में सदर महवस प्रेस लखनऊमें मुद्रित एव प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुआ। (मु० ना०)।

(१५) मुफ्रदात अजीजी (مفردات عزیزی)—

(१६) नासिरुल् मोआलजीन (ناصر المعالجین)—मौलवी हकीम मुहम्मद नासिर अली गियासपुरी द्वारा फारसीमें लिखा यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ, जो छठवी वार हिजरी सन् १३०३ तदनुसार ई० सन् १८८६ में उलवी मुहम्मद अलीबख्श खाँके छापाखानामे मुद्रित होकर प्रसिद्ध हुआ। (ना० मो०)।

(१७) मुहीत आजम (محیط اعظم)—लेखक हकीम मुहम्मद आजम खाँ अल्मुखातिब व नाजिम जहाँ, मुद्रक—मतवा निजामी कानपुरमे हिजरी सद् १३०३ तदनुसार सन् १९०३ ई० में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। इनके दो भागो और वृहद् सचिकाओ (जिल्दो)में फारसीमे अकारादि वर्णक्रमानुसार प्राय सभी प्रचलित यूनानी, हिंदी, अग्रेजी व अन्य देशीय अससृष्ट औषध द्रव्योका परिचय एवं गुण-कर्म प्रकृति आदि सहित विस्तृत विवरण दिया गया। यह अपने समयका एक अत्युत्तम ग्रथ है। मख्जनुल् अदवियाके वाद उसकी अपेक्षा अधिक द्रव्योका समावेश करते हुये विस्तारपूर्वक विवरण सहित यह यूनानी द्रव्यगुणविषयक फारसी ग्रथ है। वक्तव्य—अत्यंत दु खके साथ लिखना पडता है कि इसमें जो कतिपय अग्रेजी ओषधियोका वर्णन किया गया है, उसमेसे कुछके नाम, उनके गुणकर्म एव मात्रा आदि ठीक नही लिखे गये हैं। मख्जनुल् अदवियाकी तरह प्राय ओषधियोके यूनानी नाम इसमे गलत लिखे गये है। अस्तु, यह भी सशोधनापेक्षी है।

(१८) उम्दतुल् मोहताज (عمدۃ المحتاج)—सन् १८८३ ई० में विस्तृत चार खडोमें मिस्रमे प्रकाशित, सैय्यद अहमद आफन्दीउरंशीदी द्वारा अरवीमें लिखित आधुनिक द्रव्यगुणशास्त्र (मेटीरिया मेडिका) विषयक विस्तृत ग्रथ है। मू० ८० ०० रु० मात्र। (उ० मो०)।

(१९) पिजिश्की नामा (پزشکی نامہ)—ईरानके राजाधिराज श्रीमान् हुमायूँके पूर्व चिकित्सक श्री मीरजा अली अकबर खाँ हकीम वाशी द्वारा फारसीमे लिखित, तेहरानमे प्रकाशित आधुनिक द्रव्यगुण (मेटीरिया मेडिका) एवं चिकित्सा विषयक एक परमोत्कृष्ट विस्तृत ग्रथ है। (पि० ना०)।

(२०) गंजबादावर्द (گنج بادآورد)—खानेजमा फीरोज जंग द्वारा फारसीमे लिखित यूनानी द्रव्यगुण-विषयक उत्तम ग्रथ है। (गं० बा०)।

(२१) बुस्तानुल् मुफ्रदात (بستان المفردات)—लेखक हकीम मुहम्मद अब्दुलहकीम साहब, प्रकाशित सन् १३१८ हिजरी तदनुसार सन् १९०१ ई० मे द्वितीय बार मुज्तबाई लखनवी प्रेसमें मुद्रित। यह यूनानी द्रव्य-गुणविषयक उर्दू ग्रंथ है। (बु० मु०)।

(२२) मख्जन मुफ्रदात व मुरक्कबात अर्थात् खवासुल् अदविया (مخزن مفردات و مرکبات یعنی خواص الادویہ)—२ भाग, मुंशी गुलाम नबी साहब द्वारा उर्दूमें लिखित सन् १९०५ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्य-गुणविषयक उत्कृष्ट ग्रंथ है। (म० मु० व मुरक्क०)।

(२३) मख्जन मुफ्रदात (مخزن مفردات) (जामेउल् अदविया)—मौलवी हकीम मुहम्मद फजलुल्ला साहब द्वारा उर्दूमें लिखित, रॉयल प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊमें मुद्रित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है। (म० मु०)।

(२४) जडी-बूटी मै खवास (جڑی بوٹی مع خواص)—हकीम मौलवी मुहम्मद अब्दुल् अजीज साहब कामिल लाहौरी द्वारा उर्दूमें सकलित, सन् १९१३ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है, जिसे कामिल बुक एजेंसी लाहौरने नवलकिशोर गैस प्रिंटिंग वर्क्समे छपवाकर प्रसिद्ध किया। (ज० बू० मै० ख०)।

(२५) मख्जनुल अद्विया डॉक्टरी (مخزن الادویہ ڈاکٹری)—हकीम व डॉक्टर गुलाम जीलानी साहब द्वारा उर्दूमें लिखित-सकलित आधुनिक पाश्चात्य द्रव्यगुण (मेटीरिया मेडिका) विषयक उत्कृष्ट ग्रथ है, जो सन् १९१५ ई० में प्रथमत और पांचवी बार सन् १९४६ ई० में तिब्बी कुतुबखाना आली जनाब शम्सुल् अतिब्बा, लाहौर द्वारा प्रकाशित। अब तकके प्रकाशित एतद्विषयक सभी ग्रन्थोमेसे एक श्रेष्ठ रचना है। (म० अ० डॉ०)।

(२६) मुफ्रदात बिक्रमी (مفردات بکرمی)—हकीम मदनलाल लिखित आयुर्वेदीय निघण्टु ग्रंथका फारसी उल्था, उल्थाकार हकीम मुहम्मद अलाउद्दीन लाहौरी, गुलजार मुहम्मदी लाहौरी प्रेसमे सन् १३०७ हिजरी तद-नुसार ई० सन् १८८८ (वि० सन् १९४९)में मुद्रित भारतीय द्रव्यगुणविषयक फारसी ग्रथ है। (मु० बि०)।

(२७) खजाइनुल अदविया (خزائن الادویہ)—अल्लामा ऊमराँ मौलवी हकीम मुहम्मद नज्मुल् गनी खॉ साहब रामपुरी द्वारा वृहत् आठ भागोमें उर्दूमें लिखित, सन् १९२६ ई० में कारखाना पैसा अखबार लाहौरके खादिमुत्ता'लीम वर्की प्रेसमें मुद्रित, यूनानी द्रव्यगुणविषयक विशाल ग्रथ है। इसके ६ जिल्दो (सचिकाओ)मे तो समस्त यूनानी, हिंदी (भारतीय), अँगरेजी तथा अन्यान्य देशीय असंसृष्ट ओषधियोका निश्चयात्मक वर्णन उनके परिचय, गुणकर्म तथा प्रकृति आदि सहित विस्तारसे किया गया है। इसके अतिम दो सचिकाओंमें इस ग्रथमें आये सभी पर्यायनामोका अर्थ सहित अकरादिवर्ण क्रमानुसार एक कोष दिया है। यह एक अत्युत्तम ग्रंथ है, जिसमे इससे पूर्वके प्राय सभी उपलब्ध ग्रथोंका अतिम निष्कर्षपर पहुँचनेका प्रयास करते हुए समीक्षात्मक विवरण किया गया है। (ख० अ०)।

(२८) उसूले इल्मुल् अदविया (اصول علم الادویہ)—हकीम मु० अब्दुल् हलीम साहब लिखित उर्दू ग्रन्थ है।

(२९) किताबुल् अद्विया (کتاب الادویہ) —विद्वद्वर हकीम मु० कबीरुद्दीन साहब द्वारा यूनानी विद्यालयोके पाठ्यक्रमानुसार उर्दूमे लिखित, दफ्तर अल्मसीह दिल्लीसे प्रथम सन् १९२९ ई० मे, और तृतीय बार सन् १९४४ ई० मे प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थ है। यद्यपि इसमे कतिपय द्रव्योके निर्णयमें भूलें की गयी है और गलत नाम भी दिये गये है, तथापि यह एक अत्युत्तम एव सग्रहणीय ग्रन्थ है। (कि० अ०)।

(३०) मुफ्रदात अजीजी (مفردات عزیزی)—

(३१) मुअल्लिमुल् अद्‌विया (معلم الادویہ)—हकीम मुहम्मद मसीहुज्जमाँ नदवी साहब, प्रधानाचार्य तक्मीलुत्तिब कॉलेज झवाई टोला लखनऊ द्वारा उर्दूमें लिखित, यूनाइटेड इंडिया प्रेस लखनऊ द्वारा सन् १९५० ई० मे प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक संक्षिप्त, परन्तु एक उत्तम ग्रन्थ है। (मु० अ०)।

(३२) यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान—आयुर्वेदीय विश्वकोशकार, वैद्यराज हकीम दा० दलजीतसिंह आयुर्वेद बृहस्पति (D Sc , A) द्वारा यूनानी विद्यालयोंके पाठ्यक्रमानुसार स्वतन्त्ररूपसे हिंदीमें लिखित और सन् १९४१ ई० में निर्णयसागर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक अब तकके प्रकाशित किसी इतर भाषाके ग्रंथसे उत्कृष्टर, अभूतपूर्व एवं संग्रहणीय ग्रन्थरत्न है, जिसका संपादन एवं भूमिकालेखन कार्य स्वर्गवासी श्री यादव जी विक्रमजी आचार्य महोदयने स्वयं किया है। झाँसी आयुर्वेद विश्वविद्यालयने अपने तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थको थिसिस मानकर लेखकको आयुर्वेद बृहस्पतिकी सम्मानित उपाधि (D Sc., A) और स्वर्णपदक तत्कालीन माननीया स्वास्थ्यमंत्रिणी श्रीमती अमृतकौरके करकमलों द्वारा प्रदान किया।

(३३) मादनुल् अक्सीर (معدن الاکسیر)—अर्थात् कुश्ताजात फीरोजी—ले० हकीम मौलवी मु० फीरोजुद्दीन साहब, स्टीम प्रेस लाहौर मे सन् १९०९ ई० मे प्रकाशित, उर्दूमे लिखा यूनानी रसग्रंथ है।

(३४) रिसाला कुश्ताजात (رسالہ کشتہ جات)—ले० शेख रहीम बख्श—हाफिज आबारी प्रेस लाहौरमे सन् १९०३ ई० मे प्रकाशित।

(३५) मिफ्ताहुल खजाइन (مفتاح الخزائن)—ले० जनाब हकीम करीम बख्श व हकीम मु० शरीफ खाँ साहब, सन् १९३० ई० मे रफोक आम प्रेस लाहौरमें प्रकाशित—यह उर्दूमें लिखित एक उत्कृष्ट एवं अनुभवपूत यूनानी रसग्रन्थ है।

(३६) जामेउल् हिकमत (جامع الحکمت)—दो भागोमें उर्दूमे लिखित चिकित्साग्रन्थ।

(३७) इलाजुल अमराज (علاج الامراض)—हकीम मुहम्मद शरीफ तथा हजरत मसीहुल् मुल्क हकीम अजमल खाँ साहबके अनुभवपूत यूनानी योगोंका फारसीमें उत्तम संग्रह, जिसका उर्दू अनुवाद हकीम कबीरुद्दीन साहबके आदेशसे मैनेजर जनाब हकीम मुहम्मद वाहिद साहबने किया। दफ्तर अल्मसीह् करोलबाग देहलीके प्रबंधमे सन् १९२७ ई० मे २ भागोमें प्रकाशित हुआ और इसे ज्य्यदवर्की प्रेस बिल्लीमारान देहलीमे छपाया गया।

यूनानी योगसंग्रह ग्रंथ

(करावादीनात)

(१) करावादीन शैख। (२) करावादीन कबीर (मज्मउज्जव.मेअ)। (३) रुमूज आजम—आजमखाँ लिखित। (४) अक्सीर आजम—आज़म खाँ लिखित। (५) करावादीन शिफाई। (६) करावादीन जकाई। (७) करावादीन कादरी। (८) मतब हकीम उलवी खाँ। (९) मुरक्कबात अजीजी—खानदान अज़ीजी लखनऊके सिद्धयोग। (१०) बयाज मसीहा—खानदान शरीफी, देहलीके सिद्धयोग। (११) बयाज कबीर (प्रथम भाग)—देहलीका मतब फारसी व उर्दू—हकीम कबीरुद्दीन साहब लिखित सप्तम सस्करण सन् १९४४ ई०। प्रकाशक—दफ्तर अल्मसीह दिल्ली। (१२) बयाज कबीर (द्वितीय भाग)—देहलीके मुरक्कबात। हकीम मुहम्मद कबीरुद्दीन साहब लिखित व सम्पादित—इसलामी प्रेस, हैदराबाद, दकन—प्रकाशक एव प्रवधक—दफ्तर अल्मसीह, बिल्लीमारान, देहली–६। आठवाँ सस्करण—सन् १९५१ ई०। (१३) अल्करावादीन, (१४) तिब्ब कीमिया, (१५) तिब्बी फार्माकोपिया (१-२ भाग), (१६) यूनानी सिद्धयोग सग्रह—वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह लिखित हिंदी ग्रन्थ। (१७) आयुर्वेदिक फार्माकोपिया—श्री के० जगन्नाथप्रसाद वैद्य वाचस्पति लिखित (उर्दू) तथा उनके लिखित अन्य ग्रन्थ—(१८) रिसाला छोटी चदन। (१९) रिसाला सिलाजीत, (२०) भारतीय जडी-बूटियाँ इत्यादि।

यूनानी वैद्यकीय उर्दू मासिक पत्र-पत्रिकाएँ

अलूहकीम, मशीरुल् अतिब्बा, हामिउस्सेहत, अल्मोआलिम, अल्तबीब, अश्शिफाऽ, हमदर्द सेहत, प्रभृति प्रसिद्ध यूनानी उर्दू माहाना (मासिक पत्र)।

आयुर्वेदीय

संस्कृत तथा भाषाग्रंथ

१	चरक सहिता	(च०)
२	सुश्रुत सहिता	(सु०)
३	अष्टाङ्गसग्रह	(अ० स०)
४	अष्टाग हृदय	(अ० हृ०)
५	काश्यप-सहिता	(का० स०)
६	चक्रदत्त	(च० द०)
७	भावप्रकाश	(भा० प्र०–सन् १५६० ई०—१६वी शताब्दी)
८	शार्ङ्गधर सहिता	(शा० स० या शार्ङ्ग०)
९	वङ्गसेन	(व० से०)
१०	कैयदेव निघण्टु	(कै० नि०) या पथ्यापथ्यविबोधक ग्रन्थ—कैयदेवकृत १२वी या १३वी शती।
११	धन्वन्तरि निघण्टु	(ध० नि०) ११वी शतीका उत्तरार्ध

१२ राजनिघण्टु	(रा० नि०) ११वी-१३वी शताब्दी मध्य
१३. राजवल्लभ निघण्टु	(राज०)
१४. वैद्यमनोरमा	(वै० म०)
१५. मदनपाल निघण्टु	(म० पा० नि०) १२वी शती
१६ बृहन्निघण्टुरत्नाकर	(बृ० नि० र०) सन् १८९६ ई०
१७ वैद्यजीवन	(लोलिम्बराज—वै० जी०) सन् १६०८ ई०
१८. निघण्टुसग्रह	(नि० स०)
१९. निघण्टुरत्नाकर	(नि० र०) सन् १८६७ ई०
२०. द्रव्यगुण सग्रह	(द्र० गु० स०) चक्रपाणिदत्त कृत सन् १०६० ई०
२१ द्रव्यगुण सग्रह	(द्र० गु० स०) राजवल्लभ कृत सन् १७६० ई०
२२ मदन विनोद निघण्टु	(म० वि० नि०) मदनपाल। सन् १३७५ ई०, मतातरसे १०९८ ११०९ ई० तक धन्वन्तरि निघण्टुका समकालीन
२३. शिवदत्त निघण्टु	(शि० द० नि०) गुजराती वैद्य
२४ शोढल निघण्टु	(शो० नि०) सोढलकृत—१२वी शतीके मध्यमें
२५. सन्दिग्धनिर्णय वनौषधिशास्त्र	(स० नि० व० शा०)
२६ द्रव्यगुण विज्ञानम्	श्री यादवजी कृत (द्र० गु०)
२७ यूनानी द्रव्यगुण-विज्ञान	(यू० द्र० गु०)
२८. पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान	(पा० द्र० गु०) २ भाग—श्री डॉ० रामसुशील सिंह शास्त्री एफ० आर० ए० एस० (लन्दन) लिखित
२९ विहारकी वनस्पतियाँ	(वि० व०) ठा० बलवन्त सिंह जी
३० वनौषधि दर्शिका	(व० द०) ,,
३१. वनौषधि निर्दर्शिका	आयुर्वेदीय फार्माकोपिया डॉ० रा० सु० सिंह (व० नि०)-हिंदी समिति सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित।
३२ जन्तु जगत	(ज० ज०) हिंदुस्तानी एकेडेमी—प्रयाग द्वारा प्रकाशित
३३ शालिग्राम निघण्टु	(शा० नि०) सन् १८९६ ई०
३४ योगरत्नाकर	(यो० र०) सन् १६७६ ई०
३५. भैषज्य रत्नावली	(भै० र०, भैप०)
३६ आयुर्वेद प्रकाश	(आ० प्र०) माधव उपाध्याय, सन् १७३० ई०
३७ गदनिग्रह	(ग० नि०)
३८ क्षेमकुतूहल	(क्षे० कु०) क्षेमशर्मा कश्मीर निवासी कृत सन् १५४८ ई० सं० १६०५ वि०
३९. रासकामधेनु	(र० का० धे०)
४०. रसेन्द्र चूणामणि	
४१. रसेन्द्रसार संग्रह	
४२ रसार्णव	
४३ रसतङ्गिणी	(र० त०)
४४. रसामृत	

४५. भस्मविज्ञान २ भाग (भ० वि०)
४६. रसरत्नाकर (रसायन खण्ड)
४७ आयुर्वेदीय क्रियाशरीर (आ० क्रि० शा०) वैद्य रणजीत राय कृत
४८ आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान (आ० प० वि०)
४९ सचित्र वनस्पति गुणादर्श वैद्य हिरामण मोतीराम जगलेकृत

तथा

आयुर्वेद, आयुर्वेद विज्ञान, आयुर्वेद गौरव, यूनानी चिकित्साक धन्वन्तरि, वैद्य-महासम्मेलन पत्रिका, प्राणाचार्य, सचित्र आयुर्वेद तथा उसका आयुर्वेद यूनानी समन्वयाक, आयुर्वेद विकास प्रभृति गुजराती, मराठी, हिंदी, बगला आदि आयुर्वेदिक मासिक पत्र-पत्रिकाएँ ।

अन्यान्य भाषाओंके निघण्टु (उद्भिज्ज-प्राणिज-खनिज विज्ञान) विषयक ग्रन्थ

बंगला

१. वनौषधिदर्पण — कविराज श्री विरजाचरण गुप्त काव्यतीर्थ कृत, २ भाग, कलकत्ता १९१९ । इसमें औषध द्रव्यके परिचय, गुण-प्रयोग वर्णनके लिए संस्कृत (आयुर्वेद)के उद्धरण दिये गये है । रासायनिक सगठन एव गुणकर्म खोरी मेटीरिया मेडिका तथा डीमक के उद्धरण बंगला अनुवाद सहित दिये गये हैं ।
२ भारतीय वनौषधि — डॉ० श्री कालीपद विश्वासकृत २ भाग,
३ भारतीय भैषज्य तत्त्व — डॉ० कार्तिकचन्द वसुकृत ।
४. मेटीरिया मेडिका — स्व० डॉ० राधागोविन्दकर L. R C P कृत ।

मराठी

१. वनौषधि गुणादर्श — श्री शकरदा शास्त्री पदेकृत, ८ भाग
२. औषधिसग्रह — श्री डॉ० वामन गणेश देशाईकृत
३. भारतीय रसशास्त्र — " " "
४. उद्भिज्जशास्त्र — वै० गगाधर शास्त्री जोशीकृत
५. वनौषधि प्रकाश — (१८८२)

गुजराती

१ निघण्टु आदर्श — श्री बापालाल गडबडशाह कृत
२ वनस्पतिशास्त्र — (स्व० वा० जयकृष्ण इद्रजी ठक्करकृत) पोरबदर निवासी प्रथम और सभवत सूक्ष्म वानस्पतिक वर्णन तथा उनके औषधीय प्रयोगकी प्रातीय भाषाओमेसे केवल पुस्तक है ।
३ निघटसग्रह — वैद्य रघुनाथजी इद्रजी उर्फ कत्तभट्ट कृत सस्कृत पुस्तक है।

इस ग्रंथमें आये संकेताक्षरोंका विवरण

अ०	अँगरेजी (आग्ल)	तो०	तोला
अ०	अरबी	द०	दक्षिणी
अफ०	अफगानी	ध० नि०	धन्वन्तरी निघण्टु
आ०	आसामी (असमिया)	नि० र०	निघण्टुरत्नाकर
इ० बै०	इब्न बैतार (मुफ्रदात)	ने०	नेपाली
इ०	इब्रानी (Hebrew)	प०	पजाबी
इरा०	इरानी	पहा०	पहाडी
उडि०	उडिया	पला०	पलामू
उ० प०	उत्तर प्रदेश	फा०	फारसी
उ०	उर्दू	फि० हि०	फिरदौसुल् हिमकत
कच्छ०	कच्छी	फ्रा०	फ्रासीसी
कना०	कनाडी (कन्नड)	ब०	बंगला
कर्ना०	कर्नाटक	बम्ब०	बम्बई
क० अ०	कल्पस्थान अध्याय	बि०	बिहार
क०	कश्मिरी	भा० प्र०	भावप्रकाश
काठि०	काठियावाड	भा० वा०	भारतीय वानजार
कानून	अल्कानून (शैखुर्रईस बू-अलीसीना)	मद०	मदरासी
कु०	कुमाऊँ	भोटि०	भोटिया
कुरा०	कुरान	मणि०	मणिपुर
कै० नि०	कैयदेवनिघटु	म०	मराठी
को०	कोकण (णी)	मल०	मलयाली
को०	कोल	मार०	मारवाडी
खर०	खरवार	मा०	माशा
खासि०	खासिया		
ग०	गढवाली	मि० ग्रा०	मिलीग्राम
गु०	गुजराती	मि० मि०	मिलीमीटर
गो०	गोवा	मी०	मिरजापुर
ग्रा०	ग्राम	मुगे०	मुगेर
च०	चरक		
चि०	चिकित्सास्थान	यू०	यूनानी
जर्म०	जर्मन		
ता०	तामिल (तमिल)	र०	रत्ती
तुर्क०	तुर्की	रा० नि०	राजनिघटु
तु०	तुलु	रा०	राजपुताना
ते०	तेलुगु	ले०	लेटिन

लेप०	लेपचा
सथा०	सथाली
स०	सस्कृत
सिध	सिंधी
सिं०	सिंहली (सिलोनी)
सुर०	सुरयानी (Syrian) सीरिया (श्याम) की भाषा
सु०	सुश्रुत
सू०	सूत्र स्थान
से० मी०	सेंटीमीटर
हिं०	हिंदी
D.	Dioscorides (दीसकूरीदूस)
Fam.	Family
Gr	Greek
Syn.	Synonym

इस ग्रंथमे आये यूनानी, रूमी (लेटिन) और आयुर्वेदीय (संस्कृत) आदि ग्रंथों एवं चिकित्सकों (तज्ज्ञों)के नामोंके मूलस्वरूप और उनके अरबी रूपान्तर

मूलरूप	अरबी रूपांतरण
आयुर्वेदीय—	
सुश्रुत (स०)	सुस्रुद या सस्रद
चरक	शरक
अष्टाङ्गसंग्रह या अष्टाङ्ग हृदय	अस्तागर, अस्ताकर
निदान (माधवकृत)	निदान, वदान ?
शालिहोत्र	सलोतरी
यूनानी—	
अस्कलीपिओस (Asclepios) यू० } अस्क्लेपिउस (Aesclapius) लें० }	अस्कलीवियूस
अन्ड्रोमाखुस (Andromachus) यू०	अंदरूमाखुस
प्लेटो (Plato) यू० (४२७-३४७ ई० पू०)	अफलातून, फलातून
अरिस्टॉटल (Aristtotle) यू०	अरस्तू, अरस्तातालीस
सॉक्रेटीज (Socrates) यू० (४६९ ई० पू०)	सुकरात
हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) यू०	अबुक्रात, बुकरात, हिब्बुकरात
पीथागोरस	फीसागोरस
थिओफ्रास्टुस Theophrastus) ई० पू० ४०० या ३०० या ३५०	सावफरिस्तुस
गालीनूस Galinus } गॅलेनस Galenus } ईसवी पूर्व गॅलेन Galen } १३१-२००	जालीनूस
डीओसकोरीडीस (Dioscorides)	द (दि) यासकूरीदि (-दु, -दू) स दैसकूरीदूस
टोलेमी (Ptolemy) (ई० सन् १२७ १५१)	बतलीमूस
रूमी—	
सल्सस, केल्सस (Celsus)	कल्सूस
प्लाइनी, प्लीनी (Pliny) सन् २३-७९ ई०	प्लाइनी, प्लीनी

अँगरेजी संदर्भ ग्रंथ

1. *Materia Indica* by W Ainslie 2 Vols 1826 (is the first attempt to collect the information regarding the medicinal uses of Indian plants being mostly from Tamil and Telgu people and books)
2. *Materia Medica of Hindustan* by Ainslie (1813).
3. *Pharmacographia Indica* by Col. Dymock, Hooper and Warden 3 parts.
4. *Pharmacographia* by Fluckigery and Hanbury 2nd edition (1879).
   Is noe of the standard works giving the uses and historical information of the drugs
5. *Materia Medica* of *Western India* by W Dymock 1883—contains a collection of information about the history, use, chemistry and physiology of different drugs especially to be found in (the erstwhile) Bombay Presidency
6. *Supplement to the Pharmacopoeia of India* by Moheedin Sheriff
7. *Materia Medica* of Madras by Dr Moheedin Sheriff 1869 (suggests drugs which were found efficacious by the author with their uses etc The author is well-known for his intimate knowledge of Indian drugs and especially those of Madras)
8. *Waring's Bazar Medicines* of *India* by Sir Pardy Lukis, 6th Edition 1907 useful book giving uses of the then easily available bazar drugs
9. *Dictionary* of *Economic Products* of *India* by George Watts (1889-1896)
   This work includes all the plants of economic use known up to 1894 with authentic information from various sources
10. *Indian Medicinal Plants* 4 Vols Kirtikar, K R, Basu, B D, 2nd Edition L M. Basu, Allahabad, 1933
11. *Glossary* of *Indian Medicinal Plants* by R N. Chopra, S N Nayar, I C Chopra,(1956)
12. *Supplement to Glossary* of *India Medicinal plants* by R N Chopra etc.
13. *Indian Matera Medica* by K M Nadkarni, 3rd Edition, Vols I and II
14. *Vegetable gums and resins* by F N Howes, D Sc
15. *Potter's New-Cyclopaedia* of *Botanical Drugs and preparations* by R C. Wren, F. L S, Published 1907, 1915, 7th edition 1957
16. *A text-book* of *Pharmacognosy* by Henry G Greenish D Sc
17. *Indian Pharmacopoeia* (I P)
18. *Indian Pharmacopoeial Codex* (I P C)
19. *Indigenous Drugs* of *India* by R N Chopra (1933)

20 *Wild flowers* of *Kashmir*

21 *Blatter, Flora Arabica* (1919)

22 *Forsk, Flora Aeg Arabica* (1775)

23 *Delile Flora Aegyptic* (1812)

24 *Drugs* of *Hindoostan*, Dr S. C Ghose

25 *Studies in Arabic and Persian Medical Literature* by Prof Muhammad Zubary Siddiqi H A, M A, B. L, Ph D (Cambridge), F. A S. B. Calcutta University (1959).

26 *Dioscorides*, (German Translation by I Berendes, Stuttgart, 1902) Consulted for Greek equivalents.

27 *Terminologic Medico-Pharmaceutique* by Shimmer (Tehran, 1874) Consulted for Lation and English equivalents

28, *Blatter E Beautiful Flowers* of *Kashmir*, Vol. 1-2, Jhon Bale, Sons and Danielssons Ltd, London, 1929

59 *Dey, K, L Indigenous drugs of India* Thacker Spink and Co, Calcutta, 1896

30 *Duthie, G F, Flora* of *Upper Gangetic Plain*, Vols 1-2, Botanical Survey of India Calcutta, reprint, 1960

31. *Dutt, U. C, The Materia Medica* of the *Hindus*, M C Das, 146, Lower Chitpore Road, Calcutta1, 1922.

32 *Ghosh, R, Materia Medica* and *Therapeutics*, 18th edn, Hilton and Co., Calcutta, 1949

33 *Haines*, H H, *Botany* of *Bihar* and *Orissa*, Botanical Survey of India, Calcutta, reprint, 1961

34 *Hooker, J D, Flora* of *British India* Vols 1—7, L Reeve and Co, London, 1877—1897

35 *Kanjilal*, U N, Kanjilal, P C, Dass, A, *Flora* of *Assam*, Vols 1—5, Government of Assam, 1935.

36 Mooss, N S, *Ayurvedic Flora Medica*, No 1, Vaidya sarathy, Kottayam. 1953.

37 Prain, D, *Bengal Plants*, Botanical Survey of India, Calcutta, reprint ireprint 1963

38. Uphof, J C Th, *Dictionary* of *Economic Plants*, Hafner Publishing Co, New York, 1959,

●

यूनानी द्रव्यगुणादर्शके खण्ड २ की विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावनास्वरूप उद्भिज्ज औषध-आहार द्रव्योपयोग विषयक विमर्श

उद्भिज्ज औषध-आहारद्रव्य सूची (वर्णानुक्रमणिका)

उद्भिज्ज द्रव्योपयोगविषयक विमर्श

इसके पूर्व कि मैं यूनानी निघण्टुओमें दिये उद्भिज्ज द्रव्योका विशद विवरण करूँ, यह उचित जान पडता है कि उनके उपयोगविषयक हेतुओपर कुछ प्रकाश डाल दूँ। अस्तु, यद्यपि पशु-पक्षी आदि प्राणी मानवप्रकृतिसे अधिक सान्निध्य एव सादृश्य रखनेके कारण मानवीय आहार एव औषधके लिए अधिक उपयुक्त है, तथापि सद्य मासादिके लिए प्रथम तो जीवित प्राणी—पशु-पक्षी आदिकी हत्या करनी पडती है जिससे हिंसा होती है, द्वितीय ससारके सभी मनुष्योके सेवनके लिए जितने पशु-पक्षी आदि प्राणियोकी अपेक्षा हो सकती है, उतनेकी प्राप्ति दुष्कर है। इतना ही नही, अपितु मनुष्य यदि इन्हीका भोजन करने लगा तो एक दिन ऐसा हो सकता है कि इनका समूल-वशोच्छेद होकर ससारसे इनका लोप हो जाय। पुन इसका जो दुष्परिणाम हो सकता है उसकी कल्पना नही की जा सकती। यही कारण है कि मानवने सृष्टिके आदिसे ही आहार एव औषधमे अधिकतया उद्भिज्जोका ही ग्रहण किया।

सुतरा मानव आहार एव औषधमें प्राय उद्भिज्ज द्रव्यो (नबातात)की प्रचुरता और खाद्य एव औषधमे इनका ही अधिकाधिक व्यवहार होनेके कारण ये मानव-शरीरको अधिक सात्म्य, उपादेय एवं प्रिय होते है। यही कारण है कि जाङ्गम (हैवानात) और (खाद्यके लिए उतना उपयोगी न होने पर भी) पार्थिव (मा'दनियात) द्रव्योकी अपेक्षया चिकित्सामे औषधतया इन्हीका अधिकाधिक उपयोग किया जाता है। सुतरा साधारण उद्भिज्जोके गुणकर्म-प्रभाव तथा उपयोगका वर्णन चिकित्साविषयक ज्ञान-विज्ञानका अभिवर्धक होता है। इतना ही नही, यदि गभीर विचारणा एव ऊहापोह किया जाय तो यह स्पष्ट हुए बिना नही रहेगा कि चिकित्साविज्ञान अधिकतया उद्भिज्जोपर ही आधारित है।

इसका एक कारण यह भी है कि उद्भिज्ज अपरिसख्येय (इनकी गणना नही की जा सकती) है! प्रत्येक ऋतु एव देशके प्रत्येक भागमे विविध प्रकारकी अनोखी एवं चमत्कारी ओषधियाँ विद्यमान होती है। इनमे आश्चर्य-चकित करनेवाले गुण-प्रभाव निहित होते है। चिकित्सा (औषध) एव प्राणी और मानव आहार-औषधके अतिरिक्त ऐसी रसायन ओषधियाँ भी इस धरातलपर विद्यमान है जो औषध एव रसायनके काम आती है। इनके सेवनमे मानवशरीरका रोगनिवारण एव कायाकल्प हो जाता है तथा जरा और व्याधि यौवन एव स्वास्थ्यमें परिवर्तित हो जाता है—'यज्जराव्याधिविध्वंसि तद्रसायनम्।' यदि इस जगतमे अमृत विद्यमान है तो वह इन्ही उद्भिज्जोके वेषमे पाया जाता है अर्थात् यही अमृत है।

भारतीय ऋषिगणने 'सोमलता' नामकी एक ऐसी महौषधिका पता लगाया था जो वास्तवमे शरीरका कायाकल्प करनेवाली महान रसायन थी। इसके उपयोगसे वृद्ध युवा बन जाता है, उसे नये दाँत निकल आते हैं, पुरानी त्वचा उतरकर नवीन त्वङ्मास उत्पन्न हो जाते है, श्वेतबाल (पलित) के स्थानमें श्यामवर्णके बाल निकल आते है और अपने समस्त लक्षणो सहित वृद्धावस्थाका लोप होकर यौवनका आगम होता है।

इसी प्रकार अनेकानेक अन्यान्य महौषधियो एव रसायन औषधियोका पता महर्षियोने लगाया था। तात्पर्य यह कि इन ओषधियोकी सख्या तथा सम्यक् गुणधर्मवर्णना मानवसामर्थ्य एव शक्तिके बाहर है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञानसामर्थ्यके अनुसार उनका वर्णन करता है। उसीके अनुसार मैने भी जो यहाँ वर्णन किया है वह महोदधिमें बिन्दुके समान है और अधिकाशमें अपने पूर्वके दिग्गजोका उच्छिष्ट मात्र है। मैंने तो केवल उनका सकलन एव सग्रह इस ग्रन्थमे अपनी विचारशैलीके अनुसार किया है।

यहाँ पर यह बतला देना उचित समझता हूँ कि प्राचीन यूनानी वैद्य-हकीम वत्सनाभ, कुचला और अन्यान्य बहुसख्य द्रव्योका चिकित्सार्थ औषधरूपेण आभ्यन्तर उपयोग नही, केवल बाह्य उपयोग करते थे और उनको प्राणसहारक विष—खालिस जहर (सम्म मुतलक) समझते थे। इसके विपरीत आयुर्वेद—आर्य वैद्यकमे इन विषो-का, यहाँतक कि सर्पविष तकका उपयोग औषधमें अतिप्राचीन कालसे होता आ रहा है। अस्तु, प्राचीनसे प्राचीन आयुर्वेदके ग्रन्थोमें जागम और स्थावर (प्राणिज,वानस्पतिक और खनिज) सभी प्रकारके विषोपविषोका शोधनोपरात औषधरूपेण बाह्याभ्यन्तर उपयोग और तज्जन्य विषप्रभावकी चिकित्साका सविस्तर वर्णन देखनेमे आता है। कारण उनका यह मत था कि तीव्रतम प्राणहारक विष, यहाँ तक कि सर्पविष भी योग्य मात्रामे और रोग एव रोगो-के बलाबल तथा देश, ऋतु, काल आदिका सूक्ष्म विचार करके देनें अर्थात् युक्तिपूर्वक सेवन करनेपर अमृतके समान (रसायनवत्) गुण (कार्य) करता है और अमृतसमान दूध भी ठीक योजना न करनेपर विषतुल्य हो जाता है। कहा है—'योगादपि विष तीक्ष्णमुत्तम भेषज भवेत्। भेषजं चापि दुर्युक्त तीक्ष्णं सपद्यते विषम्'। (चरक), तथा—'अन्नं हि प्राणिनां प्राणस्तदयुक्तया निहन्त्यसून्। विष प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम्॥ यथा विष यथा शस्त्र यथाऽग्निरशनिर्यथा। तथौषधम् विज्ञातं विज्ञातममृतोपमम्॥ औषध, चापि दुर्युक्तं तीक्ष्ण संपद्यते विषम्। विषं च विधिना युक्त भेषजायोपकल्पयेत्॥' (काश्यप सहिता)। 'यान्यपि स्वभावादेव विषमन्दकादीन्यपथ्यानि, तान्यप्युपाययुक्तानि क्वचित् पथ्यानि भवन्ति, यथा उदरेतिलं दद्यात् विषस्य तु।' (च० चि० अ० १३)। सर्पविषका औषधरूपेण प्रयोग भी आयुर्वेदमें आजका नही, अपितु अतिप्राचीन है—'पानभोजनसयुक्त विषमस्मै प्रदापयेत्। यस्मिन् वा कुपित सर्पो विसृजेद्धिफले विषम्॥' (च० चि०अ० १८)। इसके अतिरिक्त सूचिकामरण, विसूचिकाविध्वसन तथा अन्यान्य बहुश योगोमें सर्पविष पडता है।

तात्पर्य यह कि आयुर्वेदमनसे ससारमें कोई द्रव्य अनौषध नही है—'जगत्येवमनौषधम्। न किञ्चिद्विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयो॥ (वाग्भट)। 'नास्तिमूलमनौषधम्। × × × योजकस्तत्र दुर्लभः॥ (सुभाषित)। क्योकि प्रकृतिकी यह असीम कृपाकटाक्षका ही फल है कि एक ओर जहाँ उसने विषद्रव्य उत्पन्न किये है, वही दूसरी ओर उसमे विषके साथ अमृत भी उत्पन्न कर दिया है। जब किसी प्रकार हमारे ज्ञानकी सीमामे अमृतवत् गुण आ जाते है, तब उन्हे हम औषधरूपेण उपयोग करने लग जाते हैं, जैसा कि उपर्युक्त विषोके सम्बन्धमे हुआ।

इन आर्यवैद्योकी देखा-देखी अब बहुतसे यूनानी हकीम भी इन विषोपविषोका उपयोग करने लगे है। यही नही, अपितु रसायनकलाविद् तो इन उद्भिज्जोमेसे केवल विषोपविषोका ही अधिकाधिक व्यवहार करते है। विषौषधियाँ आशुप्रभावकर तथा मात्रालाघव होनेके कारण मानवशरीरमें शीघ्र परिवर्तन उत्पन्न करके अपना प्रभाव प्रकट करती हैं।

सृष्टिकर्त्ताने प्रत्येक विषैलीसे विषैली ओषधिमें जिस प्रकार प्रकटरूपमे विषैला प्रभाव निहित किया है उसी प्रकार उसके भीतर अप्रकटत रसायनगुणधर्म अन्तर्भूत किया है। विष जितना ही तीक्ष्ण एव प्राणघातक होगा, उसमें निहित गुप्त रसायन गुणधर्म भी उतनाही आशुप्रभावकारी एव जीवनदाता होगा। रसायनविद् विविध प्रकारसे विषौषधियोका शोधनकर उनके विषप्रभावको दूरकर देते हैं, जिससे उन ओषधियोका हितकर रसायनप्रभाव सहजमें भली-भाँति प्रगट हो जाता है।

यही कारण है कि अधुना पाश्चात्य वैद्यकके अनुयायी डॉक्टर महोदय विषौषधियोके विषप्रभावको स्वीकार करते हुए भी उनकी ही भाँति रोगकी चिकित्सामें विष औषधियोका उपयोग मुक्तहस्तसे करने लगे है। भेद केवल यह है कि डॉक्टर लोग विष औषधियोके कार्मुक अश, रसक्रिया या सत्व (क्षारसमोद आदि प्रभावाश)के रूपमे पृथक् करके उक्त विष औषधियोको अत्यधिक तीव्र एव आशुप्रभावकारी बना लेते है और अत्यल्प प्रमाणमें उपयोग करते है। विपरीत इसके रसायनविद् वैद्य व हकीमगण इन विष ओषधियोको शुद्ध या अन्य निवारण द्रव्योके

साथ योग करके उनके विषमय गुण-प्रभावको इतना अल्पवीर्य कर लेते है कि शोधनोपरान्त मानो उनमें विषप्रभाव शेष ही नही रह जाता तथा अन्य निर्विषैले ओषधियोके समान हानिरहित, किन्तु उनसे अधिक आशुप्रभावकारी हो जाती है। उक्त अवस्थामें रसायनविद् वैद्य-हकीमोकी विधिको हानिरहित होनेके कारण, आधुनिक पाश्चात्यवैद्यककी विधिसे विशेषत विषैली ओषधियोकी शोधनविधिमें एक विशेष महत्व प्राप्त है जिसका ज्ञान भूयोदर्शन एव प्रयोग द्वारा हो सकता है।

विषैले उद्भिज्जोके सिवाय अन्य प्रकारके उद्भिज्ज भी जो अपने-गुणप्रभावमें रसायनके गुण रखते हैं, उनका प्रयोग भी रसायनविद् नानाप्रकारसे करते है। वैद्यकके शर्बत, अवलेह और अर्कोके विरुद्ध वे उक्त ओषधियोको सत्व, तेल या किसी ऐसे रूपमे कल्पित करते है, जिसके अल्पमात्रामे प्रयोग करनेसे कल्पनाकी विधिविशेषके कारण वैद्यकके अधिक मात्रासे होनेवाला लाभ अधिक शीघ्र, तीव्र एव चिरस्थायी होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें यूनानी मतके साथ मैने इसके अतिरिक्त आयुर्वेद और पाश्चात्य वैद्यक (एलोपैथी) अर्थात् इन तीनो प्रत्यनीक चिकित्सापद्धतियोके मतोका समन्वयात्मक विवरण देनेका प्रयत्न किया है। इतने सक्षिप्त वक्तव्यके उपरान्त आगे अब उपयोगी, कृतप्रयोग एव बहुप्रयुक्त प्रसिद्ध आवश्यक उद्भिज्जोका आकारादिवर्णक्रमानुसार 'नातिसक्षेप विस्तरेण' विवरण दिया जा रहा है।

(१) अंगूर ।

फ़ैमिली : वीटासे (Family : Vitaceae).

नाम । (लता)—(अ०) कर्म, (फा०) ताक, रज; (लै०) वीटिस वानिफेरा (**Vitis vinifera** Linn); (अ०) वाइन् (Vine) । (पका ताजा फल—अगूर)—(हि०, प०) अंगूर, दाख, (अ०) इनब, (फा०) अगूर, रज, वाग, (सं०) द्राक्षा, मृद्वीका, गोस्तनी, (क०) दच्छ; (म०) द्राक्ष, (गु०) दाघराख; (सिंध) ड्राख, (मा०) दाख, मिनका, (अ०) ग्रेप (Grape) । (कच्चा अगूर)—(अ) हिस्रम, (फा०) गोर ।

उत्पत्तिस्थान—यह पजाव, कश्मीर, कावुल, वलूचिस्तान, अफगानिस्तान, कधार, फारस तथा यूरुपके मध्यसागरीय देशोमे वहुत लगाया जाता है। हिमालयके पश्चिमी भागोमे यह आप-से-आपभी होता है। अव भारतवर्षमे विशेषत उत्तरीपश्चिमी भाग (पजाव, हरयाना, हिमाचल प्रदेश) तथा दक्षिणभारत (मैसूर स्टेट)मे भी कही-कही काफी परिमाणमे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक वहुवर्षायु सुदीर्घ लताका प्रसिद्ध फल है, जो गुच्छोमे लगता है। इसके मुख्य दो भेद होते है —(१) दार्खा या वडा (लवोतरा वा गोल) न्यूनाधिक बीजयुक्त । इसके पके सूखे फल **'मुनक्का'** वा 'दाख' कहलाते है। काले अगूरको अरवीमे "अह्दाकुल् वकर" कहते है। (२) किशमिशा—यह उसकी अपेक्षया क्षुद्र (लवोतरा वा गोल), वीजरहित (निर्वीज वा वेदाना) होता है। किशमिशी अगूरको अरबीमे "राजकी" कहते हैं। इसके पके सूखे फल **'किशमिश'** कहलाते है। जगली, पहाडी और वागी आदि भेदसे, गोल, लम्वा और छोटा-वडा आदि आकार भेदसे तथा सफेद, लाल और काला आदि रगभेदसे (इनमें पूर्व-पूर्व अधिक श्रेष्ठ होता है) अगूर नाना प्रकारके होते हैं। इनमे सर्वोत्तम अगूर वह है, जो गरमीकी ऋतुका हो और जिसका दाना वडा एव परिपुष्ट, छिलका पतला और वीज छोटा हो।

उपयुक्त अग—पचाग, पत्र-कोपल, पुष्प, निर्यास, काटी हुई टहनियोमेसे रिसा हुआ मद और ताजे या सुखाये हुए फल।

रासायनिक सगठन—फलमें ग्लूकोज, निर्यास, टैनिन (Tannin), टार्टरिक एसिड (Tartaric acid), सिट्रिक एसिड (Citric acid), रैसीमिक एसिड (Racemic acid) और मैलिक एसिड (Malic acid), आक्सेलिक अम्ल (Oxalic acid) तथा विविध क्षारद्रव्य, यथा-क्लोराइड्स ऑफ पोटैसियम् एव सोडियम्, सल्फेट ऑफ पोटाश आदि तथा लोह एव कुछ ऐल्व्युमिन आदि पदार्थ होते है। टार्टरिक एसिड अगूरोमे पाया जाने-वाला विशेष अम्ल है। सूखे फल (Raisins)मे निर्यास एव शर्कराके अतिरिक्त सात्म्यीकरणोपयुक्त कैल्सियम्, मैग्नीसियम्, पोटैसियम्, फॉस्फोरस तथा लोह होता है। वीजमें एक घन स्थिरतैल या वसा और ५ प्रतिशत टैनिक एसिड होता है। छिलकामें टैनिन, कोपल और लतामे टकणाम्ल (वोरिक एसिड) होता है।

कल्प तथा योग—स्वरस (उसारा) तथा रससे आसव, सिरका और मद्य बनाते है, शीरा वा रुव्व (मैफुस्तज), दोशाव (दिव्स), मुसल्लस, शर्वत अगूर तुर्श व शीरी, वरूद हिसरम, दवाए मुदिर्र, लकडीकी राख आदि।

प्रकृति—पका अगूर पहली कक्षामे उष्ण एव स्निग्ध (तर), आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (च०, सु०) और कच्चा (गोर) पहली कक्षामें शीत एव रूक्ष है। अगूरका छिलका और पुष्प पहली और अगूरकी बेल दूसरी कक्षामें शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म—पका अंगूर दोषपाचन, सर, वल्य, शुद्धरक्तानुकारि, मूत्रल और शीघ्रपाकी आहार है। कच्चा अंगूर संग्राही है।

उपयोग—पका मीठा अंगूर मेवाकी भाँति अत्यधिक खाया जाता है। यह बहुत शीघ्र पच जाता, शरीरको पर्याप्त पुष्टि (आहार) प्रदान करता, शुद्ध रक्त उत्पन्न करता, शरीरको बलवान्, पुष्ट एवं परिबृंहित करता और कब्जको दूर करता है। इसके ऊपरका छिलका संग्राही (काबिज) है, इसलिए उसे दूर करके खाना चाहिए। मीठा अंगूर वक्षके लिए भी लाभकारी है। कच्चा अंगूर संग्राही होनेसे अतीसारमें लाभ पहुँचाता है। यह रक्त और पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता, यकृत्को शक्ति देता और प्यास बुझाता है। इसके रससे शबत बनाते हैं, जो सौमनस्यजनन एवं बलवर्धनके लिए उपयोग किया जाता है। अंगूरके पत्तोंकी हरी कोंपल (पत्रमुकुल) पीसकर पीनेसे मस्तिष्ककी ओर बाष्प नहीं चढ़ पाते। उसके लेपसे गरमीका सिर-दर्द, नेत्रकी सूजन एवं दाह मिटता है। जौके आटेके साथ इसका लेप करनेसे आमाशयगत दाह मिटता है। अंगूरके पत्तोंका स्वरस (पीनेसे) आमाशयको शक्ति प्रदान करता है, सादा वा रक्तवमन बंद करता और अतीसारघ्न है। उसके कोंपलोंके स्वरसमें शार्कर (शर्बत) बनाकर पीनेसे पित्तज हृत्स्पंदन, मद (खुमार) और मिचली दूर होती है, तथा भूख लगती है। प्लीहशोथ और वस्त्यश्मरीमें इसका गोंद मद्यके साथ उपयोग करनेसे लाभ होता है। इसका लेप दाद और खाजको दूर करता है। सिरका और गुलरोगनके साथ यह अर्शमें लाभकारी है। इसका फल सुगंधित, हृदयबलदायक, हिक्कानाशक और वमिहर है। ९ माशा फूल पीसकर खानेसे रक्तनिष्ठीवन आराम होता है। यह आमाशयबलदायक (दीपन), अतिसारघ्न और मूत्रल (मुदिर्र) है। इसका अर्क पुष्पकी अपेक्षया सूक्ष्मतर और बलवत्तर है। इसकी लकड़ीकी भस्म अश्मरीघ्न है तथा शिरोरुक् विशेष (बैजा, खौजा व शकीका)में लाभकारी है। इसके पीने और लगानेमें अर्शमें उपकार होता है। इसकी काटी हुई टहनियोंमेंसे एक प्रकारका मद निकलता है, जो त्वचाके रोगोंकी चिकित्सामें काम आता है और दुखती हुई आँखोंमें भी लगाया जाता है। अहितकर—आनाहकारक। निवारण—वातानुलोमन द्रव्य। प्रतिनिधि—गुठली निकाला हुआ मुनक्का। मात्रा—पाचनानुसार सेवन करें।

आयुर्वेदीय मत—पकी हुई मीठी दाख मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, रुचिकारक, संतर्पण तथा तृषा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित, उर क्षत, क्षय, वात, पित्त, उदावर्त, स्वरभेद, मदात्यय, मुँहका कडुआपन, मुँह सूखना, खाँसी और मूत्रदोषको दूर करनेवाली है। (च०, सु०, रा० नि०)।

नव्यमत—ताजी पकी हुई दाख पाचन, स्रंसन, वल्य, रक्तपित्तप्रशमन और रक्तशोधक है। सूखी हुई दाख शीतल, स्नेहन, कफशामक और स्रंसन है।

मुनक्का—

नाम—(हिं०) मुनक्का, दाख, (अ०) जबीब, (फा०) मवीज, अंगूरे खुश्क, (ले०) युवी (Uvae), (अं०) रेजिन्स (Raisins)।

वर्णन—यह पककर सूखा हुआ अंगूर है। इसके विविध भेद किये जाते हैं। बड़ा, मोटा, मीठा, कम बीज-वाला और जो बहुत सूखा न हो, ऐसा मुनक्का उत्तम है। किशमिश इसका क्षुद्र भेद है। सूखी और बीज निकाली दाखको अरबीमें मवीज मुनक्का कहते हैं। अंगूरको चूना और सज्जीखारके साथ गरम पानीमें डुबाकर आबजोश बनाते हैं।

कल्प तथा योग—माजून जबीब (मुनक्का), शर्बत मवीज।

प्रकृति—पहली कक्षामें उष्ण एवं तर, बीज पहली कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—यह अधिक रक्त उत्पन्न करनेवाला अर्थात् जीवनीय (कसीरुल्गिजा), सान्द्रदोषपाचन, प्रमाथी, कोष्ठमृदुकर (मुलय्यिन शिकम), दोषादि विलयन (मुहल्लिल), अंत्रामाशयलेखनीय (जाली), यकृद्बलदायक, हृदय-बलदायक, वाजीकर, कामोत्तेजक और बृंहणीय है। बीज संग्राही है।

उपयोग—जिन रोगियोको साधारण आहार (अन्नाहार)से परहेज कराया जाता है, उनको उसके स्थानमे केवल मुनक्का खिलाया जाता है। गुठली निकाले हुए मुनक्काको साद्रदोपोके पाचनार्थ शीतल कफज एव सौदावी रोगोमे दोषपाचन द्रव्योके साथ उपयोग किया जाता है। मार्दवकरण हेतु केवल गुठलियोमे साफ किया हुआ मुनक्का खिलाया जाता है अथवा अन्य औपधद्रव्योके साथ फाँट वा क्वाथ कल्पना करके पिलाया जाता है। रेचन द्रव्योके साथ योग करनेसे यह उनके कर्ममें सहायक होता है। व्रणशोथके पाचन और विलयनके लिए इसका लेप लगाया जाता है। यह व्रणलेखन भी है, इसलिए दुष्टव्रण आदिमे इसका पतला लेप लगाते है। इसे भूनकर गरम-गरम खानेसे कफज कास आराम होता है। बीज सग्राही होनेसे अतीसारघ्न है, तथा स्निग्ध अन्त्रामाशयको बल प्रदान करता है। अहितकर—वृक्कके लिए। निवारण—सिकजबीन और पोस्ताके दाने (खशखाश)। प्रतिनिधि—किशमिस। मात्रा—९ दानेसे ११ दाने तक।

किसमिस—

नाम—(हिं०, म०, गु०, ते०) किसमिस, (अ) मवीज वेदाना, (फा०) किशमिश, अगूर वेदाना, (अरबीकृत) किश्मिश; (अ०) रेजिन्स (Raisins), सुल्टानाज (Sultanas)।

वर्णन—यह पककर सूखा हुआ बीजरहित क्षुद्र अगूर है। रगके विचारसे यह कई प्रकारका होता है, उनमे सर्वश्रेष्ट हरा किसमिस है। यही औपधमे काम आता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल किशमिशी।

प्रकृति—समस्निग्धोष्णता लिए हुए उष्ण एव स्निग्ध। मतातरसे दूसरे दर्जेमे उष्ण और पहले दर्जेमे रूक्ष।

गुण-कर्म—जीवनीय (कसीरुल्‌गिजा), सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, ग्रथिविलयन, लेखनीय, वाजीकर, उर सशोधनकर्त्ता, मार्दवकर तथा मस्तिष्कबलदायक (मेध्य) और यकृद्‌बलदायक।

उपयोग—किसमिस पुष्टिकर आहारद्रव्यकी भाँति प्रचुर उपयोगमे आता है। यह अत्यत पुष्टिकर और बृहणीय है, फिर भी मृदुसारक है। सौमनस्यजनन और हृद्य होनेके कारण हृदयदौर्बल्य तथा दिलकी धडकनमे प्रयुक्त किया जाता है। इसके लिए ४० दाने हरे किसमिस गुलाबपुष्पार्कमे रातको भिगो दे और प्रात काल किसमिस खाकर ऊपरमे अर्कगुलाब पी जावे। व्रणदारण और ग्रथिविलयनके लिए इसको केसर, अडेकी जर्दी और कुसुमके साथ पीसकर लेप करते है। लेखनीय होनेके कारण इसको एलुआके साथ पीसकर शिरोगत गजपर लगाते है। उरोविशोधक होनेके कारण स्वरशुद्धि और कासके लिए इसका उपयोग करते है। अहितकर—उष्ण प्रकृति और वृक्कको। निवारण—सिकजबीन, खशखाश, उन्नाव और सौफ। प्रतिनिधि—मुनक्का (बीजरहित)। मात्रा—(आहारार्थ) जितना पच सके, (औषधार्थ) १ तोला तक।

(२) रीछदाख (इनबुद्दुब)।

फैमिली : एरीकासे (Family Ericaceae).

नाम—(हिं०) रीछ दाख, (अ०) इनबुद्दुब, (फा०) अगूरे खिरस, (स०) आर्क्ष (ऋक्ष) द्राक्षा, (ले०) आर्क्टोस्टेफिलॉस ऊवी ऊर्सी (**Arctostaphylos uvae ursi** Spreng), (अ०) ऊवा अर्सी (Uva ursi), बियर्ज ग्रेप (Bear's Grape), बियर बेरी (Bear Berry)।

वक्तव्य—इसकी लेटिन सज्ञा इसके वृक्षकी है जिसे अरबीमें "आविस" कहते हैं। आक्टोंस्टेफिलॉम यूनानी शब्दका अर्थ (अक्टोंस = रीछ, स्टेफिला = अंगूरका गुच्छा) 'रीछदाख' है और यही अर्थ क्रमश इसकी लेटिन और अग्रेजी संज्ञा 'ऊवा ऊर्सी (ऊवा = अगूर, ऊर्सी = रीछ)' तथा अग्रेजी 'बियर बेरी' या 'बियर्स ग्रेप' और अन्य अरबी इनबुद्दुब (इनब = अंगूर, दुब = रीछ) तथा फारसी एव सस्कृत आदि सज्ञाओके है।

जालीनूसने इस उद्भिदका उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है, कि अतिप्राचीनकालसे यूनानी चिकित्सकोको इस औषधिका ज्ञान था।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमरीका, मध्य और उत्तर यूरोप और एशिया।

वर्णन—एक सदाहरित क्षुप जो यूनानी निघटुग्रथोके मतसे नर एवं मादा भेदसे दो प्रकारका होता है। पत्र चर्मवत्, हरापन लिए पीले, अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत् (Obovate or oblanceolate) सिरेकी ओर गोल, ऊपरी पृष्ठ गहरा हरा, स्वच्छ एव चमकीला और धँसी हुई सिराओके छोटे-छोटे चतुर्भुजोसे निर्मित, अध पृष्ठ पाडुर अर्थात् हलके रगका, किंतु उस पर गहरे रंगकी छोटी-छोटी शिराओका जाल बना होता है। पत्रप्रात अखड और पीछेकी ओर मुडा हुआ, लगभग ३/४ इ० लंबा और १/४ - ३/८ इ० चौडा, स्वाद कषाय, गध—मद, चायवत् होती है। सनायकी पत्तियाँ कुछ-कुछ इससे सादृश्य रखती हैं।

उपयुक्त अग—फल और मूल, आधुनिक पाश्चात्य वैद्यकमे पत्र।

रासायनिक सगठन—पत्रमे आइसोक्वर्सिटिन (Iso-quercitin) जिसका १ १००,००० का घोल प्रबल मूत्रल हे, एर्ब्युटिन (Arbutin) ७ ५-१० ७ प्रतिशत और मीथिल-एर्ब्युटिन होता हैं।

प्रकृति—तर, पहले दर्जेके अतमें शीतल एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नरका फल खानेसे रक्तष्ठीवन वद होता हे। इसको सुखा-पीसकर फाँकनेसे चिरज अतिसार आराम हो जाता है। इसकी जड बहुत रूक्षता उत्पन्न करती हे, दोषोका शोषण (माद्देको जज्ज) करती और सूजन उतारती है। पशुचिकित्सक (सलोतरी) इसे पशुओकी सूजनके ऊपर लगाते हैं, जिससे वे पककर फूट जाते और फिर अच्छे हो जाते है।

नव्य मत—

कल्प—हिम वा फाण्ट १ पाइट (लगभग १॥ पाव) उवलते पानीमे २॥ तो० पत्र। मात्रा—२ तो० दिनमें ३-४ बार, तरलसार . मात्रा, १/२ - १ ड्राम।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पिच्छिल, कषाय और मूत्रल तथा कोथप्रतिबधक। मूत्रावयवोपर इसका अचूक प्रभाव होता है और बस्तिवृक्काश्मरि, बस्तिवृक्कस्थव्रण, प्रसेक, जीर्ण सूजाक (Gleet), श्वेत प्रदर (श्लेष्मलायोनि) और अतिरज (रक्तप्रदर) इन अवस्थाओमे विशेषरूपसे गुणकारी है। मूत्रावयवोकी श्लेष्मलकलापर इसका सग्राही और कोथप्रतिबधक प्रभाव होता है तथा इसका उक्त प्रभाव इसमें पाये जानेवाले एर्ब्युटीन नामक कार्मुक वीर्यपर निर्भर करता है जो कि वृक्कपथसे उत्सर्गित होते समय हाइड्रोक्वीनोनमे, जो एक प्रबल कोथप्रतिबधक द्रव्य है, परिणत हो जाता है। एर्ब्युटीन स्वयमेव एक वीर्यवान् मूत्रल औषधि है। इसके प्रयोगसे गभीर हरियाली लिए भूरे रगका मूत्र आने लगता है अर्थात् वैसाही जैसा कि कार्बोलिकाम्लजनित विषमें भी मूत्रमे हाइड्रोक्वीनोन पाई जाती है। एर्ब्युटीन का प्रमाण इतना अल्प होता है, कि इससे किंचित् लाभकी आशा नही हो सकती और यदि इसके फाण्टको तीव्र बनाया जाय तो इसमे उन वीर्योकी राशि जो माजूफलमे होते है, अधिक हो जाती है जिससे पाचन बिगडने की सभावना होती है, क्योकि ये उभय वीर्य इसमें ३३ प्रतिशत होते हैं। अस्तु, रीछदाखके पत्रकी अपेक्षया केवल अर्ब्युटीनका उपयोग उत्कृष्टतर है। सुतरा इसको २॥ से ५ रत्तीकी मात्रामे चूर्ण रूपमे या पानीमें घोलकर दिन-रातमे दो-तीन बार देवे।

(३) अंजबार।

फैमिली : पॉलीगोनासे (Family Polygonaceae)

नाम—(अ०) अजवार, अजि(-जु)व्वार, (लॅ०) पालीगोनुम् बीस्टॉर्टा (**Polygonum bistorta** Linn), (अं०) एल्पाइन नॉट-वीड (Alpine Knot-weed), विस्टोर्ट (Bistort), इग्लिश सर्पेण्टरी (English Serpentary), ड्रैगनवर्ट (Dragon Wort), स्नेक-वीड (Snake-weed)।

उत्पत्तिस्थान—यह तवरिस्तान और श्यामदेशमे नहरो और नदियोके किनारे तथा झीलोमें उत्पन्न होता।

वर्णन - एक क्षुद्र वनस्पति, दो गज ऊँची, शाखाएँ पतली और ललाई लिए, फूलभी लाल, फूल झड-जानेके उपरात छोटी-छोटी फलियाँ प्रगट होती है, जिनमे सूक्ष्मवीज भरे होते है। इसकी जड गहराईमे होती है। यह लगभग ५ सें० मी० (२ इच) लवी, १ ५ से० मी० (३/५ इच) चौडी, अँगरेजी एस् (S) अक्षरकी भाँति दोवार मुडी हुई, लाल-भूरी, ऊपरी घरातल पर दवी हुई या नालीदार और आडे रुख धारीदार, उन्नतोदर और नीचे दवे हुए मूलक्षतचिह्नयुक्त, खड छोटा, ललाई लिए हल्का भूरा या कालाई लिए लाल, छाल मोटी, काष्ठीय-वेजवलय (Ring of woody wedges) छोटा, छालके इतने मोटे मज्जा (Pith) को आवेष्टित किए होता है। उक्त जड स्वादमे कसैली होती है, किंतु इसमें कोई विशिष्ट गध नही पायी जाती। इसीकी एक निकटतम जाति पॉलीगोनुम् विविपारुम् (**Polygonum viviparum** Linn) पजावमे इसके प्रतिनिधिस्वरूपमें व्यवहृत होती है, जिसे वहाँ मस्लून, बिल्लौरी और मामेख आदि नामोसे पुकारते है। इसके लिए भी वही अरवी नाम व्यवहृत होते है, जो अजवारके लिए है। वाजारू अंजुबारे रूम का आयात यहाँ फारससे होता है।

उपयुक्त अग—जड, जडकी छाल, पोस्त वेखअजवार और जडके रेशे (रेशे बेखअजवार–लहाएवेख अजवार)।

वक्तव्य—मासरोहिणीकी छाल, अजवारकी जडकी छालका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य (Substitute) है।

रासायनिक सगठन—पॉलीगोनिक एसिड (Polygonic acid), टैनिक एसिड (Tannic acid), गैलिक एसिड (Gallic acid), स्टार्च और कैल्सियम् आक्जेलेट।

कल्प तथा योग—शर्वत अजवार (सादा व मुरक्कव), लऊक अजवार और कुर्स अजवार।

प्रकृति—प्रथम (लखनऊके हकीमोके मतसे तृतीय) कक्षामें शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—शीतसग्राही, रक्तस्तभन, अन्त्रामाशयवलप्रद, पित्त और रक्तप्रकोपसशमन।

उपयोग—शीतसंग्राही होनेके कारण चिरज अतिसारो (चाहे रक्तज हो या न हो)के लिए परम गुणकारी है। इसका सग्रहण (कब्ज) कर्म किसी प्रकार अहितकर नही है। शीतसग्राही होनेके साथ ही यह रक्तस्तभन भी है, इसलिए रक्तस्राव वद करनेके लिए यह बहुत प्रयुक्त होती है। रक्त प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तमूत्र और पूयमेहमें इसका पुष्कल उपयोग होता है। यह उर क्षतके लिए भी लाभकारी है। सग्राही होनेके कारण कडरावितान (मोच), पेशियोके कुचल जाने और उनके छेद-भेदमें इसका प्रलेप लाभकारी है। पित्तसशमन होनेके कारण यह वमन और मिचलीकोभी रोकती है। क्षतोपर इसका महीन चूर्ण वुरकनेसे उनसे रक्त वहना वद हो जाता है और घाव शुद्ध हो जाता है। रक्तातिसार और रक्तप्रवाहिकामे यह विशेष गुणकारी है। अहितकर—शीतप्रकृतिके लोगोको। निवारण—सोठ और शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—हव्वुलआस। मात्रा—३ माशासे ५ माशा तक।

नव्यमत—जोसेफ मिलर मूत्रातीत रोगमें इसकी जड-सेवनकी अभ्यर्थना करते है। जिरार्डके मतसे नासार्श में इसका स्वरस नाकमें डालनेसे उपकार होता है। कुल्पेपर कहते है कि इसकी जड थोडे प्रमाणमें अकरकरा और फिटकिरीके लावाके साथ पीसकर कल्क वना और थोड़ा शहद मिलाकर इसमेंसे थोड़ा लेकर दाँतके कोटरमें और

कोटर न रहने पर दाँतोके बीचमें रखनेसे मुखसे लार टपकना और दाँतोका दर्द आराम होता है तथा शिर शुद्धिमें इससे सहायता मिलती है। (पा० न्यू-सा० पृ० ३८)।

●

(४) अंजरूत।

फैमिली : लेगूमिनोसे (Family Leguminosae).

नाम—(अ०, फा०) अजरूत (इ० बै०), (हिं०) लाइ, लाही, (अ०) कोहल फारसी (पारस्याजन), कोहल किरमानी (किरमाण्यजन), (बम्ब०) गूजर (फारसी "गूजद" का अपभ्रंश), (ले०) आस्ट्रागलुस सार्कोकोला (**Astragalus sarcocola** Dymock).

उत्पत्तिस्थान—फारस और तुर्किस्तान।

वर्णन—यह शाइका नामक कँटीले वृक्षका गोद है। इसके सहतिभूत दाने होते है जो सहजमे ही खडित एव चूर-चूर हो जाते है। यह अपारदर्शक, अर्धस्वच्छ, निर्गंघ और मिठास लिए अत्यन्त तिक्त होता है तथा गहरे लालसे पिलाई लिए सफेद अथवा भूरे रगमे बदलता रहता है। गरम करनेसे यह फूलता है और जलते समय इसमें-से जली चीनीकी गध आती है। बम्बईमे इसका आयात बुशहरके पारस्य बदरगाहसे होता है। यह भारतवर्षमें आयात द्वारा प्राप्त औषधद्रव्योमेंसे सर्वाधिक प्रमुख द्रव्य है, क्योकि यह उस लेपका[1] एक प्रधान उपादान है, जिसका उपयोग रूईके साथ पारसी अस्थिस्थापनकर्त्ता (Bone-setters) अस्थिभग वा कडरावितान (मोच) तथा निर्बल सधियोपर भी उनको सहारादेनेके लिये करते है। कतीरा इसीके एक अन्य जातीय वृक्षका गोद है।

उपयुक्त अग—गोद (अजरूत)।

रासायनिक सगठन—सार्कोकोलीन ६५ ३०, निर्यास ४ ६०, सरेशी पदार्थ ३ ३० और काष्ठमय द्रव्य आदि २६ ८०। सार्कोकोलीन ४० भाग शीतल जल और २५ भाग उबलते हुए जलमे विलेय होता है। सुरासारमे हर अनुपातमें विलेय है।

प्रकृति—(लखनऊके हकीमोके मतसे दूसरी कक्षामे) उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—कफरेचन, वातानुलोमन, पिच्छिल (मुगर्री), व्रणलेखन-रोपण और श्वयथुविलयन (मुहल्लिल)।

उपयोग—अजरूतको व्रणोपशोषण (व्रणको सुखानेवाले) मरहमोमें डालते है। यह व्रणोके दूषित द्रवोको सुखाकर उन्हे शीघ्र अच्छा कर देता है। मधुसे लत की हुई कपडे वा सूतकी बत्तीपर इसका चूर्ण बुरककर कान-के भीतर रखनेसे कर्णगत व्रण अच्छा होता है। इसे प्याजके भीतर रखकर पकालेनेके बाद उस प्याजका रस निचोडकर कानमे डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। नेत्राभिष्यद, नेत्रकण्डू, पक्ष्मशात और नेत्रशुक्ल (फूली) प्रभृति नेत्ररोगोमे इसका विविध-प्रकारसे उपयोग करते है। सधिशूल (आमवात) और गृध्रसीमे कफको रेचन द्वारा निकालनेके लिए इसका आभ्यतर उपयोग करते है। लखनऊवाले मसूढोको शक्ति देने तथा उनके द्रवशोषण के लिए भी इसका उपयोग करते है। अहितकर—अन्त्रको। निवारण-कतीरा और बादामका तेल। मात्रा—½ से १ ग्राम (½ माशासे १ माशा) तक।

●

---

१. लेपका साधारण योग यह है अंजरूत ९ भाग, जदवार १ भाग, एलुआ १६ भाग, फिटकिरी ८ भाग, मैदालकडी ४ भाग, गूगल ४ भाग, लोबान ७ भाग, आँबाहलदी ७ भाग, और उसारेरेवद १२ भाग—इनको कूट-छानकर महीन चूर्ण बनायें। फिर सिल-बट्टापर जलके साथ पीसकर लेप प्रस्तुत करे। (डीमक भा० १ पृ० ४७६)।

(५) अंजीर ।

फैमिली . मोरासे (Family : Moraceae).

नाम—(फा०, हि०) अंजीर, (फा०) अंजीर वलायती, (अ०) तीन; (सं०) फल्गु (च०; सु०), (ले०) फीकुस कारिका (Ficus carica Linn); (अं०) फिग (Fig) । लेटिन नाम वृक्ष का है ।

उत्पत्तिस्थान—इसका आदि उत्पत्तिस्थान सीरिया (एशियामाइनर), फारस और फिलस्तीन है । अब यह यूरपमें बस गया है और भारतवर्षके कश्मीर तथा बलूचिस्तान और अफगानिस्तान आदि देशोंमे प्रचुरतासे पाया जाता है ।

वर्णन—यह गूलरजातीय एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है । स्वरूपमें यह गूलरके समान, मीठा और अत्यत स्वादिष्ट होता है । मालामें गुथे हुए इसके पके-सुखाये हुए फल अफगानिस्तान आदिसे हिंदुस्तानमे बहुत आते हैं । यह हिंदुस्तानी अंजीरो (जगली अंजीर या अंजीरी—Ficus palmata Forsk)से उत्तम होते हैं । विलायती और हिन्दी, बागी, जगली और पहाड़ी आदि स्थानभेदसे, सफेद, लाल (तीने अहमर) और काला आदि रगभेदसे अंजीर नाना प्रकारका होता है । इनमें सफेद और लाल खानेके लिए और काला औषधके लिए ग्रहण करना चाहिए । इनमें मधुर और परिपुष्ट फल सर्वोत्तम होता है । इसका एक भेद शाह अंजीर है जो बहुत गुदार एव मधुरस्वरससे परिपूर्ण होता है ।

उपयुक्त अंग—गुदार, मधुर, गोल कर्णिका या पुष्पाधार जिसे प्राय फल समझा जाता है ।

रासायनिक संगठन—ताजा फलमें द्राक्षशर्करा ६२ प्रतिशत, निर्यास, वसा और लवण होता है । शुष्कफलमे शर्करा, वसा, पेक्टोज, निर्यास, ॲल्ब्युमिन और लवण होता है ।

कल्प तथा योग—शर्बत अंजीर ।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीयमे तर (लखनऊवालोंके मतसे पहले दर्जेमें गर्म व तर), आयुर्वेद-मतसे शीतवीर्य (च०; सु०) है ।

गुण-कर्म—दोषमार्दवकर, कोष्ठमृदुकर (मुलय्यिन तिबअ), दोषपाचन, स्वेदन, कफोत्सारि और मूत्रल ।

उपयोग—अजीरको मेवेकी तरह खाया जाता है और औषधकी भांति भी उपयोग किया जाता है । अजीर अत्यंत पुष्टिकर जीवनीय मेवा है । इसलिए यह शरीरको परिवृंहित करता और रगको निखारता है । शारीरिक दोषोंके पाचन एव कब्जनिवारणके लिए तथा श्वास-कासमें कफोत्सर्गके लिए इसका उपयोग करते हैं । यह स्वेदन है और शारीरिक मलोको बाहरकी ओर उत्सर्गित करता है, इसलिए मसूरिकारोगमे इसका उपयोग होता है । यह दोषोको बहिरोन्मुखो करके तीव्र संताप और व्यग्रताको घटाता है । यकृत्प्लीहाके अवरोधोद्घाटनार्थ एव प्लीहाकी सूजन उतारनेके लिए भी इसका पुष्कल उपयोग करते हैं । व्रणशोथपाचनके लिए इसका लेप लगाते हैं । अखरोटके साथ खानेसे यह उत्तम वाजीकरण प्रभाव करता है । मोतीझरा (आन्त्रिक सन्निपात ज्वर) और मसूरिका आदिमे दानोको प्रकट करनेके लिए इसका उपयोग कराते हैं । अहितकर—आमाशय और यकृत् को । निवारण—सिकजबीन । प्रतिनिधि-गुठलीरहित मुनक्का । मात्रा—दो-तीन दाना ।

आयुर्वेदीय मत—मधुर, गुरु, तर्पण, बृंहण और विष्टंभि है (च०, सु०) ।

नव्यमत—अजीर स्नेहन और स्रंसन है । सूखे अजीर स्नेहन, कफघ्न और आनुलोमिक है । आनाह और मधुमेहमें सूखे अजीर खानेको देते हैं ।

●

(६) अंजीर जंगली ।

फैमिली : मोरासे (Family . Moraceae)

नाम—(हिं) कठगूलर, कठूमर (री), जगली अजीर, (अ०) तीन वर्री, (फा०) अंजीर दश्ती; (स०) काकोदुम्बरिका, मलपू, (व०) काकडुमुर, (म०) भुई उम्बरा, वोरवाडा, (गु०) ढेइ उम्बरी, (ले०) फीकुस हिस्पीडा (**Ficus hispida** Linn f) । (पर्याय-*F oppositifolia* Willd) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें यह चनाव नदीसे पूरवकी ओर तथा वगाल, मध्यभारत, दक्षिण भारत, उत्तर-प्रदेश और राजपुताना आदिमे होता है ।

वर्णन—इसका वृक्ष ६० फुट तक ऊँचा या झाडी जैसा होता है । इसके पत्र खर तथा अंजीरके पत्रके समान, किंतु उनसे छोटे होते हैं । इसके फलभी अजीरके समान, किंतु उनसे छोटे एव फीके होते हैं ।

रासायनिक सगठन—इसमें एक साबुन जैसा पदार्थ है जिससे वमन होता है ।

उपयुक्त अग—वृक्षकी जडकी छाल, फल और दूध ।

मात्रा—फल ½ से १ नग, छाल २०—३० रत्ती ।

प्रकृति—अजीरसे अधिक उष्ण एव रूक्ष । आयुर्वेदमतसे मलपू शीतवीर्य (भा० प्र०) है ।

गुण-कर्म—रक्तशोधक, तीव्र रेचन, लेखनीय और आग्नेय ।

उपयोग—रक्तशोधक एव तीव्र विरेचन होनेके कारण इसकी जडकी छाल पीसकर खिलाने और लगानेसे किलास आराम हो जाता है । इसीलिए दवाएबर्स एव जिमादेबर्स का एक उपादान यह भी है । इसका दूध दद्रु, तिल और मस्सो पर लगानेसे व्रण उत्पन्न करके उनको अच्छा कर देता है । शिरोव्रणमे कच्चे जंगलीअंजीरका चूर्ण अवचूर्णन करते और सिरकाके साथ उसका लेप लगाते है । पके जगली अजीरका लेप लगानेसे कठमाला आराम हो जाती है । मात्रा—छाल २ माशासे ५ माशा तक ।

आयुर्वेदीय मत—सुश्रुत (चि० अ० ९)मे लिखा है कि श्वित्रवालेको गूलर और कठगूलरके मूलका सुखोष्ण काढा पिलाकर धूपमे बैठानेसे श्वित्रमे विस्फोट (छाले) उठेगे । उनको फोडकर उसपर चीते या हाथीका जलाया हुआ चमडा तेलमे मिलाकर लेप करे । इससे श्वित्र अच्छा होता है ।

नव्यमत—फल वामक और विरेचक है । छाल नियतकालिकज्वरप्रतिबधक और स्तम्भन । अल्पमात्रामे पौष्टिक और बडी मात्रामें वामक और विरेचक हैं । मात्रा—फल ½ से १ नग, छाल २०-३० रत्ती ।

•

(७) अंजुरा ।

फैमिली : ऊर्टिकासे (Family . Urticaceae).

नाम—(यू०) अकालूफी Akaluphe (D.4 92), (अ०, फा०) अजु(ज)र. (इ० बै०), (अ०) करीज (स), करीजुल् कल्ब, मुजरिबुल् कलाब, नबातुन्नार, (ले०) ऊर्टिका पिलूलिफेरा (**Urtica pilulifera** Linn), ऊर्टिका प्रीमा (U prima Math), (अ०) दी रोमन नेट्ल (The Roman Nettle)

उत्पत्तिस्थान एव वर्णन—एक उद्भिज्ज जो प्रतिवर्ष जाडोमे फूटता है और रबीमे खूब जोर पकडता है । यह ९० से० मी० (एक गज) ऊँचा होता है । इसके यह दो भेद है—उद्यानज (बुस्तानी) और वन्य (सहराई) ।

इनमे उद्यानज (वागी)का कांड चौकोर एव पोला होता है। पत्ते पर रोआँ और नन्हे नन्हे काँटे होते हैं। कांडपर भी काँटे होते है, किंतु वे तेज और उभरे होते हैं। शरीरसे स्पर्श होनेपर यह दाह, सुर्खी और खुजली उत्पन्नकर देता है। फूल पीला, बीज चौडे और चपटे मसूरके दानोकी तरह मसृण तथा चमकीले और श्यामता लिए (भूरे) होते हैं। अन्य मतसे इसके वीज तिलके दानोसे वडे और अलसीके वीजोकी तरह होते हैं। भारी और स्याही मायल (भूरे) वीज प्रशस्ततर होते हैं। स्वरूपमे जगली भेद भी इसीके समान होता है, किंतु उसके पत्ते इसकी अपेक्षया अधिक चौडे होते हैं। एक तीसरा भेद और भी है, जिमका काड कालाई लिए लाल होता है। इनमें दूसरे भेदके केवल वीज औपधके काममे लिए जाते हैं।

उपयुक्त अग—वीज और पत्र।

प्रकृति—द्वितीय कक्षामें उष्ण एव रूक्ष। बीजोत्थ तेल प्रथम कक्षामे उष्ण और द्वितीय कक्षामे तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—विप, रेचन, अत्यत आकर्षणकारी (जाजिव), व्रणजनन, आग्नेय, प्रवल ग्रंथिविलयन, आर्तव-जनन, स्तन्यजनन, मूत्रजनन और यकृत्प्लीहाके अवरोधोका उद्घाटनकर्ता है।

उपयोग—अजुराके पत्ते शरीरमे लगानेसे जलन, खुजली और ललाई उत्पन्न हो जाती है। सिरकेमे इसकी राख मिलाकर लगानेसे ग्रथि और कठमाला विलीन होती और कर्कटार्वुद (सरतान–केसर)भी आराम होता है। इसके बीज पीसकर मधुके साथ चाटनेसे श्वासरोगमे वहुत उपकार होता है। यह अश्मरीनाशक हे। इसके बीजोकी गिरी पीसकर फाँकनेसे हलका रेचन होता है। किंतु इसके ऊपर थोडासा गुलरोगनभी पीना चाहिए, जिसमे कठमे दाह उत्पन्न न हो। बीजोको पीसकर मधुमे मिलाकर गुदामे इसकी वर्ति धारण करनेसे मलोत्सर्ग हो जाता है। १०॥ माशासे अधिक इसका सेवन घातक है। इससे काँदाके समान विपलक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। वीजोत्थ तेल सभी गुणकर्मोमे बीजोसे वलवत्तर है, विशेषत परम वाजीकरण है और रेचनभी बीजोसे अधिक है। अहितकर—अन्त्र, आमाशय, गुदा, वृक्क एव यकृत् को। अधिक खानेसे खाँसी पैदा करता है। निवारण—यकृत्, वृक्क तथा अन्त्रामाशयके लिए ववूलका गोद और कतीरा जैसा लआवदार द्रव्य, गुदाके लिए उन्नाव, खाँसी के लिए शर्वत वनफशा। प्रतिनिधि—गदना, हालो, कालादाना, कड। मात्रा—१॥ ग्रामसे २। ग्राम (१२ रतीसे २। माशा) तक गरम पानी और मधुसे।

•

(८) अकरकरा।

फैमिली : काम्पोजिटी (Family Compositae).

नाम—(हि०) अकरकरा, करकरा, (यू०) पुरेथ्रोन Purethron (D 3 178), (अ०) आकर्कर्हा (इ० वै०), ऊदुल्कर्ह, (फा०) वेखतर्खूनकोही, (स०) आकारकरभ, आकल्लक, (म०) अक्कलकरा, (गु०) अक्कलकरो, (ले०) पीरेथ्रुम् रैडिक्स (Pyrethrum radix), (अ०) पेलिटरी ऑफ स्पेन (Pellitory of Spain), पेलिटरी रूट (Pellitory Root)

वक्तव्य—उपर्युक्त सभी नाम उपयुक्त अगके है। "आकरकर्हा" अरवी अक्र (=काटना) और तक़र्रोह (=जख्म डालना)से व्युत्पन्न है। "ऊदुल्कर्ह" का अर्थ "व्रणकारक काष्ठ" है। "पीरेथ्रुम्" यूनानी पायरोस् (Pyros =अग्नि)से व्युत्पन्न है। अकरकराका स्वाद दाहकारक होता है, इसलिए इसको उक्तनामसे अभिहित किया गया है। मालायमुश्शिफा ग्रथके रचयिता विद्वद्वर "जरजानी" के मतसे यह नव्ती सजा है। परन्तु कतिपय अन्य ग्रथकर्ताओंके

विचारसे यह अरबी सज्ञा है और "अक्र" व "तकरीह"से व्युत्पन्न है तथा इसके गुणकर्मभी इसकी पुष्टि करते है। इसलिए इसको "ऊदुल्कर्ह" भी कहते है।

इतिहास—यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने "पाइरेथ्रोन"के नामसे, जिससे 'पीरेथ्रुम्' शब्द व्युत्पन्न है (तथा जिसको मुहीतआजममे "फोरियून" लिखा है) इस ओपधिका उल्लेख किया है। परन्तु मख्जनुल् अद्वियाके लेखक हकीम मुहम्मद हुसेनके कथनानुसार इसको अरबीमे "ऊदुल्कर्ह जबली" कहते है और यह श्यामदेशमे पुष्कल उत्पन्न होता है और आकारकर्हाका स्थानापन्न है। परतु हकीम अताकीके अनुसार आकारकर्हा दो प्रकारका होता है—(१) एक दीसकूरीदूस द्वारा उल्लिखित श्यामदेशीय और (२) पश्चिमीय, जो पश्चिमी देशो तथा अफरीकामे पैदा होता है। इस उद्भिज्जकी आकृति एव पत्र, शाखा और पुष्प (अर्थात् सर्वांग) श्वेतपुष्पीय बावूनाकबीरके समान होते है। परतु इसके फूल पीले रगके होते है। इसीकी जडको "अक़रकर्हा मगरबी" कहते है जो वस्तुत स्पेन देशीय बावूनाकी जड है, जिसका वैज्ञानिक नाम आन्थेमिस पीरेथ्रुम् (**Anthemis pyrethium**) अर्थात् बावूनज नारी या स्पैनिश कैमोमाइल (Spanish Chamomile) अर्थात् स्पेनीय बावूना है। प्राचीन भारतीय चिकित्सकोने इस औषधिका उल्लेख नही किया है। कदाचित् अतिम मध्यकालीन आयुर्वेद विशारदो, यथा—शार्ङ्गधर, भावमिश्र आदिने इस्लामी वैद्योके आधारपरही अपनी रचनाओमें इसका वर्णन किया है।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय देश, उत्तरी अफरीका, अलजीरिया और लीवाट तथा अरब, भारतीय उद्यान और बगदेश।

वर्णन—यह बावूनाजातीय एक क्षुद्र वनस्पतिकी जड है, जिसको वैज्ञानिक परिभाषामे अनासीक्लुम पीरेथ्रुम् (**Anacyclus pyrethrum D C**) वा आन्थेमिस पीरेथ्रुम् (*Anthemis pyrethrum* Linn) और अँगरेजीमें स्पैनिश कैमोमाइल (Spanish Chamomile) कहते है। उपर्युक्त समस्त नाम इसीकी जडके है। यह जड ही औषधके काममे आती है और बाजारमे मिलती है। यह सीधी, ततु (उपमूल)रहित, ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० (३-४ इच) लबी, १ २५ सें० मी० से १ ८७ सें० मी० (आधसे पौन इच) मोटी, बेलनाकार गोल होती है। इसके ऊपरके किनारे पर प्राय रगरहित रोमोकी एक चोटी-सी होती है। इसका बाहरी भाग मटियाले रगका एव झुर्रीदार होता है। इसको जहाँसे तोडे वहीसे टूट जाती है। गध विशेष प्रकारकी होती है। इसे खानेसे गरमी मालूम होती है। यह चरपरी लगती है और इससे जीभ जलने लगती है। यही इसकी मुख्य पहिचान है। इसको चबानेसे मुँहमें लालास्राव होने लगता है और सपूर्ण मुख एव कठमे चुनचुनाहट एव कांटेसे चुभते मालूम होते है। यह वजनी (भारी) और तोडने पर भीतरसे सफेद होती है। इसमें शीघ्र कीडे लग जाया करते है। सर्वोत्तम अकरकरा वह है जो कडा, अत्यत चरपरा, तोडने पर भीतरसे सफेद और उँगलीके बराबर मोटा हो। सात वर्ष तक इसमे औपधीय वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—इसमे पायरेथ्रीन (Pyrethrine–आकरकर्मीन) नामक एक स्फटिकीय ऐल्केलॉइड, राल (Resin), दो स्थिर तेल (Fixed oils) और पीले रग का उत्पत् तेल—ये सत्व होते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—मस्तिष्कको मलोसे शुद्ध करनेवाला, कफछेदनीय, क्वचित् स्वापजनन, प्रमाथी (अवरोधोद्घाटक), कफ-सशोधन, दोपोको उत्तप्त करनेवाला, वाजीकर (भक्षण करने वा पतला लेप लगानेसे), लालाप्रसेकजनन और आर्तवजनन है।

उपयोग—मस्तिष्कको मलोसे शुद्ध करनेवाला, कफसशोधन और उष्णताजनन होनेके कारण अकरकरा अर्दित, पक्षवध, अगघात, कपवात, अपतानक (कुजाज) और मृगी प्रभृति शीतल कफजव्याधियोमें उपयोग किया जाता है, वाजीकर माजूनों तथा गोलियोमें डाला जाता है तथा अकेला भी मधुके साथ खिलाया जाता है। वाजीकर तिलाओ (पतले लेपो)मे यह अकेला वा समिश्ररूप (योगो)में प्रयुक्त होता है। यह कामोद्दीपन करता है और उद्रीको पुष्ट एव दृढ बनाता है। स्वापजनन होनेके कारण वीर्यस्तभन भी करता है। लालाप्रसेकजनन और किंचित्स्वापजनन

होनेके कारण [illegible] (ट्रिटिकम एस्टिवम) और [illegible] (ग्लूटन)में मद्यसारके रूपमें इसका उपयोग [illegible]। इसके बाद [illegible] है। [illegible] पकाते हैं। [illegible] [illegible] भीतर भरते हैं। इससे [illegible] [illegible] कड़ुवा [illegible] पहुँचानेके लिए इसको [illegible] पीसकर [illegible] मिलाकर [illegible] है।

[illegible] और [illegible] इसका [illegible] (१ [illegible])।

आयुर्वेदीय [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible]।

(९) अकासबेल।

फ़ैमिली: कान्वॉल्वुलासी (Family Convolvulaceae).

नाम—(हि०) अकासबेल, अमरबेल, (फा०) अफ़्तीमून हिन्दी; (सं०) आकाशवल्ली, (लै०) कुस्कुटा रिफ्लेक्सा (Cuscuta reflexa Roxb.), (अं०) डॉडर (Dodder)।

वक्तव्य—उपर्युक्त सभी नाम सार्थक हैं। हिंदी नाम "अकासबेल" संस्कृत संज्ञा 'आकाशवल्ली' पर आधारित है। वास्तवमें यह बेल प्रारम्भमें भूमिसे उगती अवश्य है, किन्तु पोषणादिके लिए भूमिपर निर्भर नहीं होती। बल्कि किसी वृक्ष या उसकी शाखाओंपर फैलकर तथा उन्हींसे पोषण प्राप्तकर बढ़ती एवं फैलती है। लक्षणा द्वारा इसी भावका द्योतक इसका संस्कृत नाम "आकाशवल्ली" प्रयुक्त होता है। चूँकि यह लता पत्रहीन एवं प्रायः डोरेकी भाँति होती है, इसलिए हिन्दीमें कहीं-कहीं इसको "आकाशबँवर" भी कहते हैं। लैटिन नाम "कुस्कुटा" अरबी "कुसूस"से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। यूनानी चिकित्सामें इसीकी विदेशी प्रजातिका प्रयोग होता है, जिसे "अफ़्तीमून" कहते हैं। इसे अफ़्तीमूनका देशीभेद कह सकते हैं। इसी विशेषण या विभेदकी अभिव्यक्तिके लिए फारसी नाममें "हिन्दी" विशेषण लगाया गया प्रतीत होता है। "हिन्दी"का अर्थ "हिन्द या हिन्दुस्तानमें होनेवाला एवं तद्वत् व्यवहृत होनेवाला है।"

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष (८,००० फीटकी ऊँचाई तक)।

वर्णन—यह पत्ररहित पराश्रयी (परोपजीवी) लता होती है, जो हरियाली लिए पीले या लाल रंगके डोरेसी कीकर, बेर, अडूसा आदि वृक्षोंपर जालकी तरह फैली हुई होती है। फूल छोटे, घटाकृति और सफेद रंगके होते हैं। फल छोटे-छोटे मटरके आकारके गोल होते हैं। पञ्चांगका स्वाद तिक्त होता है। यूनानी हकीम जिस द्रव्यको औषधके काममें लेते हैं, वह 'अफ़्तीमून' नामसे फारस आदि देशोंसे यहाँ आता है। यह आकाशबेलसे भिन्न, किन्तु इसी जातिका अन्यतम विदेशी भेद है। विशेष देखो "अफ़्तीमून"।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक सगठन—इसमें क्वरसेटिन (Quercetin), राल एव कुस्कूटेलिन तथा कुस्कूटिन (Cuscutin) नामक तत्व पाये जाते हैं। भेपजगुणकर्मकी दृष्टिसे इनमे कुस्कूटेलिन (Cuscutalin) विशेष महत्त्वका होता है। बीजोमे अमरबेलिन (Amarbelin) नामक रजक, कुस्कूटिन, वैक्स एव एक अर्ध-घन तेल पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, व्रणशोथपाचन, वेदनाहर और उदरकृमिनाशक।

उपयोग—इसको पकाकर और कुचलकर फोडे-फुसियोपर बाँधते हैं। इसके काढेसे वफारा देने और उसकी सीठीको कोष्ण तेलमे तलकर या बिना तले बाँधनेसे कई प्रकारके दर्द आराम होते हैं। इसका काढा पिलानेसे उदरज कृमि मर जाते और उत्सर्गित हो जाते हैं। कोई-कोई हकीम इसका उन समस्त रोगोमे उपयोग करते है जिनमे अफ्तीमून विलायती प्रयुक्त होती हैं।

मात्रा—३ ग्रामसे ७ ग्राम तक (३ माशा से ७ माशा तक)।

आयुर्वेदीय मत—यह मधुर, तिक्त, कटु, पिच्छिल, शुक्रवर्धक, अग्निवर्धक, हृद्य, वल्य, रसायन, कफ-पित्तनाशक एव नेत्ररोगनाशक है (रा०नि०, भा०प्र०)।

●

(१०) अखरोट।

फ़ैमिली : जुग्लांडासे (Family : Juglandaceae).

नाम—(हि०, ब०) अखरोट, (अ०) अल्जौज (इ०बै०), जौज, (फ़ा०) गौज, चारमग्ज, गिर्दगाँ, (स०) अक्षोट (-क), (बम्ब०, म०) अकरोड, (ता०, ते०) अकरोटु, (ले०) जुग्लास रेगिआ (**Juglans regia** Linn), (अ०) वॉलनट (Walnut)।

वक्तव्य—लेटिन नाम अखरोटके वृक्ष का है। हिन्दी एव भारतवर्षके अन्य प्रदेशीय नाम इसके सस्कृत नाम "अक्षोट" पर आधारित प्रतीत होते है तथा वृक्ष एव विशेषत फल तथा मग्ज (मज्जा) दोनोके लिए सामान्यत व्यवहृत है। अरबी-फारसी तथा भारतीय नामोको देखनेसे प्रतीत होता है, कि दोनो ही परम्पराओमे इस द्रव्यका ज्ञान एव व्यवहार अपनी-अपनी परम्पराओमे स्वतन्त्र रूपसे होता आ रहा है।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवत फारसका आदिवासी है। हिमालय पर भूटानसे लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है। इसके जगली एव लगाये हुए दोनो ही प्रकार के वृक्ष मिलते हैं।

वर्णन—एक बहुत बडे और ऊँचे वृक्षका फल जिसको तोडने पर सफेद और मस्तिष्ककी रूपरेखा का टेढा-मेढा २ ५ सें० मी० से ४ से० मी० लम्बा मग्ज (मज्जा) निकलता है। यह स्वादमें मीठा, चिकना और स्वादिष्ट होता है। यह मग्जही अधिकतया औषधार्थ व्यवहृत होता है।

उपयुक्त अग—फलका मग्ज (मज्जा-गिरी), फूल और पत्र।

रासायनिक सगठन—फलमें आक्जैलिक एसिड होता है।

कल्प तथा योग—हल्वुल् जौज।

प्रकृति—मग्ज प्रथम कक्षामे उष्ण और द्वितीयमे रूक्ष, मतातरसे द्वितीय कक्षामे उष्ण और तृतीयमें तर है। लखनऊवालोके मत से दूसरे दर्जेमे गर्म और पहलेमे खुश्क है। यह ताजे वादामसे अधिक गरम है। फूल और पत्र रूक्ष है और इनमे मोतदिल हरारत (उष्णता) होती है।

गुण-कर्म—यह (मग्ज) उत्तमांगोंको विशेषकर मस्तिष्कको बल प्रदान करता है तथा बुद्धि एवं मन आदि अन्तरिन्द्रियोंको भी पुष्ट करता एवं वाजीकर, मृदुसारक, विलयन और लेखन है। इसके शेष समस्त अंग-प्रत्यंग ग्राही हैं।

उपयोग—अखरोटको अधिकतया वाजीकरण योगोंमें सम्मिलित करके उपयोग करते हैं। मुनक्का और अंजीरके साथ इसका खाना विशेषरूपसे मस्तिष्क बलदायक (मेध्य) है, तथा कोष्ठको मृदु करता है। भुना हुआ शीतकालमें कासमें लाभकारी बतलाया जाता है। इसे निहारमुँह चबाकर दादपर लगानेसे उसको नष्ट करता है। इसे चाबकर प्रक्षोभजन्य शोथ (वरम मानूसाया) एवं नौशादी शोथपर लगानेसे उपकार होता है। ताजी गिरी (अखरोट)को पीसकर लेप करनेसे व्रणचिह्न मिट जाता है। अर्दित, पक्षवध और आमवातमें इसके बाह्याभ्यंतरिक प्रयोगसे उपकार होता है। अखरोटकी गिरीको पीसकर मुँहपर मलनेसे मुखाक्षेप दूर होता है। १०॥ माशा अखरोटकी गिरी समभाग मिश्रीके चूर्णके साथ लगातार फांक खानेसे गुर्देका दर्द (वजउल्वरिक) आराम हो जाता है। उपयोगमें सदैव ताजी गिरी उसके ऊपरका महीन छिलका उतारकर लेना चाहिए। अखरोटका तैल बादामके तेलकी भाँति उत्तम उष्ण एवं शोथविलयनकर (मुहल्लिल) है। शीतप्रकृति और शीतल व्याधियों एवं तज्जन्य वेदनाओंमें इसका उपयोग परम गुणकारक होता है। अखरोटका छिलका जलाकर खाना अर्शके रक्त रोकनेको उत्तम औषध बतलाया जाता है। अखरोटके छिलकेको पीसकर उष्ण एवं दूषित व्रणोंपर अवचूर्णन करनेसे उपकार होता है। व्रणशोधन-रोपण मरहमोंमें भी इसे डालते हैं। प्रारम्भमें या मुँह करनेके बाद इसे लगानेसे नेत्रगत नाडीव्रण आराम होता है। (मग्ज)अहितकर—उष्णप्रकृतिको। निवारण—सेब और सिकंजबीन। प्रतिनिधि-समभाग खोपरा, हब्बतुल्खजरा और फिस्तक। मात्रा—(मग्ज) १ तोलेसे २ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत—मधुर, स्निग्ध, गुरु, शीतल, उष्णवीर्य, बल्य, विरेचन, वात-पित्त और रक्तविकारनाशक एवं कफप्रकोपक है (रा० नि० भा०)।

o

(११) अगर।

फेमिली . थीमेलासे (Family Thymelaceae).

नाम—(हिं०, म०, गु०) अगर, (यू०) Agaceukhon (D 1 21), (अ०) ऊद, ऊदुल् हिंदी (इ० बै०), (स०) अगुरु, (व०), (लै०) आक्वीलारिआ आगालोका (**Aquilaria agallocha Roxb**), (अं०) एलोवुड् (Aloe Wood), ईगल् वुड् (Eagle Wood)।

वक्तव्य—लैटिन नाम वृक्षका है। अगुरुका उल्लेख आयुर्वेदके प्राचीनतम संहिताओ (च०, सु० आदि मे भी मिलता है। सुगंधिद्रव्य एव औषधीय द्रव्यके रूपमे इसका ज्ञान एव व्यवहार अतिप्राचीन कालसे होता आ रहा है। अरबी नाम 'ऊदुल् हिंदी' इसके भारतवर्षका आदिवासी होनेकी ओर सकेत करता है। भारतमे प्रचलित इसके अन्य प्रांतीय नाम संस्कृत "अगुरु" से व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं। लैटिनके अतिरिक्त अन्य भाषीय नाम वृक्ष एव उपयुक्त अग दोनोके लिए सामान्यरूपमे समझना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—आसाम, बंगाल, पूर्वी-पश्चिमी हिमालयपर्वत, खसिया पर्वत, भूटान, सिलहट, टिपेरा पहाडी, मर्तवान पहाडी, मलावार, मलयाचल और मणिपुर इत्यादि तथा दक्षिण प्रायद्वीप, मलक्का और मलाया द्वीप। इनमें सिलहटका अगर सर्वोत्तम होता है।

वर्णन—एक वडे वृक्षका काष्ठ, जो जलनेसे सुगध देता है। अगरके वेडौल टुकडे होते हैं, जो तत्स्थ रालके प्रमाणानुसार भूरे वा गहरे भूरे प्रभृति विविध रगोके होते है। हलके और गहरे दोनो रगोके टुकडे लवाईके रुख गहरे रगकी नसोसे चित्रित होते है। ये जलमे डालनेसे डूब जाते है, चवानेसे ये दाँतोमे चिपट जाते है तथा मृदु प्रतीत होते है। स्वाद तिक्त एव सुगधयुक्त तेलिया और किंचित् कषाय होता है। जलानेसे इसमेसे मनोहर गध आती है। मंदली, हिंदी (वा पहाडी), समदूरी, कमारी, चीनी (कश्मूर) इसके प्रसिद्ध भेद है। इनमे सर्वोत्तम वह है जो काला, भारी, चिकना (तेलिया) और सुगधित होता है और जलमे डूव जाता है। इसको गर्की (डूवनेवाला) कहते है। जो अर्धजलमग्न होता है नीमगर्की (आधा डूवनेवाला) या समलए आला और जो तैरता रहता है वह समल कहलाता है। केवल 'ऊद" शब्दसे भारतीय ऊद (अगर) विवक्षित होता है। व्यवहारमें कच्चा अगर (ऊद हिंदी खाम) लिया जाता है। 'चूरा अगर" नामसे अगरके टुकडे भारतीय व्यापारिक द्रव्य है। इनमे चदन, तगर और एक सुगधित काष्ठके टुकडे मिला दिये जाते है। गजवादावर्द नामक फारसी ग्रथमे शुद्ध अगरके लक्षण यह लिखे है—यह भारी और काला होता है। कोयलोकी आँचपर रखनेसे जोश पैदा होकर तेल टपकता है। नकली इसके विपरीत होता है।

उपयुक्त अग—काष्ठ और इसका बुरादा। बुरादा धूप एव दशांग आदिमे पडता है। ववईमें जलानेके लिए इसकी अगरवत्ती वहुत बनती है। सिलहटमे अगरका इत्र बहुत बनता है। चोआ नामक सुगधद्रव्य भी इसीसे बनता है।

रासायनिक सगठन—एक उत्पत् तेल जो ईथरविलेय होता है। दूसरा राल जो सुरासारमे विलेय एव ईथरमे अविलेय होता है।

कल्प तथा योग—जवारिश ऊदतुर्श (शीरी व मुलय्यिन)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०)।

गुण-कर्म—उत्तमागोको बलप्रद, दीपन, दोषतारल्यजनक, प्रमाथी, मुखको सुवासित करनेवाला और वातानुलोमन हैं।

उपयोग—आमाशय एव उत्तमागोको वल प्रदान करनेके लिए अगरका पुष्कल उपयोग करते है। जुवारिश ऊद इसका सुप्रसिद्ध योग है, जो अग्निसाद (जोफेमेदा) एव अरोचक के लिए प्रयुक्त होता है। इसे वाजीकरण योगोमे भी सम्मिलित करते है। मुखकी दुर्गन्ध दूर करनेके लिए इसे मुँहमे रखकर चबाते हैं। वस्तिकी निर्बलता (जोफेमसाना) दूर करने और गर्भकी रक्षाके लिए भी इसका उपयोग करते है।

अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण- कपूर एव गुलावपुष्पार्क।

प्रतिनिधि—दालचीनी, लौग, केसर आदि। मात्रा—३ ग्राम से ४ ग्राम (३ माशासे ४ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—अगर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, पित्तकर, श्वासहर, शीतप्रशमन, शिरोविरेचन, कफप्रशमन, त्वच्य तथा कर्णरोग, नेत्ररोग, शीत, वात और कफका नाश करनेवाला है। (च०, सु०, भा० प्र०)। अगरके काष्ठका तेल (इत्र) तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४५)। दमामे इस तेलको १-२ वूँद पानपर लगाकर खानेसे लाभ होता है।

●

(१२, १३) अजमोद व करफ़्स।

फैमिली : ऊम्बेल्लिफेरे (Family Umbelliferae).

नाम। अजमोद—(हिं०, गु०, स०) अजमोदा, (फा०) करफ्से हिंदी, (व०) राणधानी, वनजोयान, (म०) रानधणे (जगली धनियाँ), अजमोदा, (गु०) अजमोद, वोडी अजमोदो, (मा०) अजमोदो, (सिंध) वनजाण, (ले०)

ट्राकीस्पेर्मुम् रॉक्सबुर्घिआनुम् **Trachyspermum roxburghianum** Craib (पर्याय-*Carum roxburghianum* Benth & Hook f) ।

करफ्स—(हिं०) अजमोद, (यू०) Selinon (D 3 67), (अ०, भारतीय बाजार) करफ्स, (अ०) बज्रुल्करफ्स, (उर्दू) वलायती अजमोद, (ले०) आपिउम् ग्रावेओलेंस (**Apium graveolens** Linn), (अ०) सेलरी (Celary), स्मालेज (Smallage) ।

वक्तव्य—अरवी 'करफस' फारसी 'करफ्श' या 'कर्शफ' का अरवी रूपातर है। परतु वह द्रव्य जो ईरानसे ववईमे आकर करफस नामसे विकता ह, जिसको वहाँ 'वोडी अजमूद' कहते है, भारतीय अजमोदके दानेसे वहुत छोटा होता है। अजमोदका दाना करफसके दानेसे लगभग दुगुना होता है। रगमे भी इन दोनोमे स्पष्ट अतर होता है। सभव है यह अतर स्थान एव जलवायुके भेदके कारण हो। भारतवर्षमे होनेवाले अजमोदको 'करफसे हिंदी' कहना अधिक सगत प्रतीत होता है। नीचे करफसका वर्णन दिया जा रहा है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालयाचल, पजावकी वाह्य पहाडी, पश्चिम भारतवर्ष और ईरान।

वर्णन—यह अजमोदेकी जातिकाही एक विदेशी भेद है। इसका फल उसकी अपेक्षया अत्यत क्षुद्र होता है। दो फलोको मिलानेपर वहुधा यह गोल होता है। स्वरूप अनीसूनके समान होता है। उक्त फल (जिनको व्यवहारमे बीज कह दिया जाता है) वहुत छोटे (१ मि० मि० लवे), लट्वाकार (Ovate), समतल-उत्तल (Plano-convex), भूरे, पाँच पाडुर उभरी हुई रेखाओसे युक्त होते है। स्वाद पहले अनीसूनकी भाँति किंतु तत्पश्चात् कडवा, गंध भी अनीसूनके समान, किंतु मद होती है। जड काली होती है और उसमे वारीक ततु लगे होते है। भेद–(१) उद्यानज (वुस्तानी) अर्थात् खेती किया जानेवाला भेद, जिसका यहाँ वर्णन हो रहा है। मात्र करफ्स सज्ञासे यही विवक्षित होता है। (२) पार्वती (कोही) इसको 'सखरी' या 'मकदूनी' भी कहते है। यूनानीमें इसको 'फितरासालियून' कहते है। (३) नवती, (४) जलज (माई या नहरी) और (५) वन्य (वर्री)। इब्नुल्वैतारने सात प्रकारके करफ्सका वर्णन किया ह, जिनमे निम्न भेदोका भी समावेश होता है—करफ्सजवली, जिसे यूनानीमे 'ओरासालियून' (Gk Oreoselinon, D 3 69) और करफ्स सखरी जिसे 'वितरासालियून' (Gk Petroselinon, D 3 70) भी कहते है।

उपयुक्त अग—फल (तुख्मकरफ्स) और जड (वेख करफ्स)। इनमे जड अधिक वीर्यवान् है। इसमे ३ वर्ष तक और फलो (वीजो)मे २ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—गधक, एक उत्पत् तेल, ऐल्व्युमिन, लवाव और लवण। इसमे पहाडी करफ्समे पाया जानेवाला एपिओल (Apiol) नामक एक प्रकारका कपूर पाया जाता है।

प्रकृति—गीलानीके अनुसार यह द्वितीय कक्षामे उष्ण एव रूक्ष, मतातरसे प्रथम कक्षामे उष्ण और द्वितीय कक्षामें रूक्ष है। लखनऊवालोंका भी ऐसा ही मत है। आयुर्वेदके मतसे अजमोदा उष्णवीर्य (ध०, रा० नि०) है।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, स्वेदन, वातानुलोमन, क्षुधाजनन, अश्मरीनाशन, मूत्रल एव आर्तवजनन।

उपयोग—करफ्सको कासमें, कफज्वर, पार्श्वशूल, गृध्रसी, वातरक्त, पृष्ठशूल और प्राय कफजरोगोमे प्रयुक्त करते है। यकृदवरोधोद्घाटन, क्षुधाजनन और वातविलयनके लिए इसका उपयोग करते (खिलाते) है। जलोदरमे तथा मूत्र एव आर्तवके अवरोधोको दूर करने और वृक्क एव वस्तिगत अश्मरीके उत्सर्गके लिए इसका पुष्कल उपयोग करते है। यह समस्त कफज एव शीतजन्य व्याधियोमे परम गुणकारी ह। जड इन रोगोके अतिरिक्त शिरके शीतल रोगो मे प्रयुक्त होती है। अहितकर—सगर्भास्त्री, उष्णप्रकृति और मृगीके रोगियोके लिए। निवारण—अनीसून और मस्तगी। प्रतिनिधि—अजवायन। मात्रा—बीज (तुख्म करफ्स) ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा), जड ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशा से ७ माशा) तक।

आयुर्वेदमे अजमोदाके गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष, रोचक, दीपन, शूल-

प्रशमन तथा कफ, वायु, हिचकी, आध्मान, कृमि, अरुचि और उदरके रोगो को दूर करनेवाली है। (च०, सु०; ध० नि०, रा० नि०)।

नव्यमत—अजमोद सुगधि, उत्तेजक और गर्भाशयोत्तेजक है। इसका उपयोग अजवायनकी तरह होता है। उलटी, कुपचन और मूत्राशयकी पीडामे इसे देते है।

●

(१४) अजवायन (देशी)।

फैमिली ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae).

नाम—(हि०) अजवायन, अजवाइन, जवाइन, (यू०) अम्मो, वासलीकून कमूनी, (अ०) कमूनुल् मुलूकी (कम्मून-एल्-मुलूकी), (फा०) नान्ख्वाह् (इ० वै० ४।१७३), जिनियान, (स०) यवानी, (प०) जवैण, (म०) ओवा, (गु०) अजमा, (व०) अजोवान, जोयान्, (क०) जार्विद, (लै०) ट्राक्स्पेर्मुम् आम्मी **Trachyspermum ammi** (L.) Sprague (पर्याय—*Carum copticum* Benth.), (अ०) किग्स क्युमिन (*King's Cumin*)।

वक्तव्य—(१) इसकी फारसी सज्ञा 'नानख्वाह' गुणज्ञापक सज्ञा है, जिसका अर्थ रोटी चाहनेवाली (नान = रोटी, ख्वाह = चाहनेवाली) है। क्षुधावर्धक होनेसे इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया। प्राचीनकालमे ईरानी लोग 'जिन्यान'को जो वस्तुत नानख्वाह ही थी, तनूरी रोटियो पर लगाया करते थे। इसका हिंदी और उर्दू नाम अजवाइन जो वस्तुत 'अज्नजोइन' है, वह भी मानो नानख्वाहहीका पर्याय है। सस्कृत 'यवानी' सज्ञा इस वनस्पतिके यवनदेशीय आदिवासी होने अथवा इसके फलोके यवनोको प्रिय अथवा उनके व्यवहारमे अधिक प्रचलित होनेके आधारकी ओर सकेत करती है। (२) यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने जिस अफरीकी द्रव्य 'अम्मी (अफीलूस)'-का उल्लेख किया है, वह वास्तवमे यही द्रव्य है। सुतरा हकीम जालीनूस 'अम्मी' और 'कमूनमुलूकी'को एक ही द्रव्य मानता है, और हाजीज जुलूअत्तार भी नानख्वाहको अम्मीका समानार्थी जानता है। इसी प्रकार तोहफतुल्-मोमिनीनके रचयिता तथा द्रव्यगुणके लेखक अन्य मुसलमान चिकित्सक भी 'अम्मी' या 'वासलीकूनकमूनी'को अजवायनका पर्याय मानते है। (३) अजवायनका सत यद्यपि हिंदुस्तानमें भी बनाया जाता है, तथापि यह अधिकतया यूरुपसे आता है। यूनानी हकीम बहुत कालसे इसका योगनिर्माणकर उपयोग करते है और इसे अत्यत गुणदायक एव आशुप्रभावकर पाते है। इसके भीतर अजवायनके समस्त गुणकर्म अधिक वीर्यके साथ पाये जाते है। इसकी मात्रा १२० मि० ग्रा० से ० ६ ग्राम (१/२ से ३ रत्ती) है।

उत्पत्तिस्थान—यह सारे भारतवर्षमे लगाई जाती है तथा अफगानिस्तान, ईरान और मिश्रमे भी होती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध वीज (वास्तवमे फल) जो सौफके समान, किंतु उससे बहुत छोटे पिलाई लिये भूरे, गध और स्वादमे तीक्ष्ण और किसी भाँति तिक्त होते है। इसका पौधा सोयेके पौधेके समान, किंतु उससे अधिक महीन और सफेदी लिए होता है। पुष्पव्यूह सोएके समान छत्रकोमे होता है। इसके सपूर्ण प्रत्यगसे तीक्ष्ण गध आती है।

उपयुक्त अग—बीज (वास्तवमे फल) और पत्र, तेल, सत्व और अर्क। पूर्णतया सुरक्षित रखनेपर इसमें चार वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकारका उडनशील तेल होता है। इससे आसुत अर्कके ऊपरी धरातल पर एक प्रकारका क्रिस्टलीय द्रव्य (Stearoptin) इकट्ठा होता है, जिसे अजवायनका फूल या सत अजवायन (थाइमोल Thymol) कहते हैं। यह जंगली पुदीना (**Thymus vulgarils Linn**)से प्राप्त थाइमोल नामक सतके समान होता है।

वक्तव्य—(१) थाइमोल (Thymol) को भारतमें अजवायनका फूल और (पंजाबमें) अजवायनका सत कहते हैं। मध्यभारतमें कतिपय स्थानोंमें उसे बनाते हैं। आजकल थाइमोलका निर्माण रासायनिक संश्लेषण पद्धतियों द्वारा कृत्रिमरूपसे किया जाता है। (२) पहाडी पुदीना जिसको अरबीमें 'हाशा' एवं 'सातर' और यूनानीमें 'थायमस (Thymus)' कहते हैं, जिसका उच्चारण प्राचीन अरबोंने सूमस (जैसा कि यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें उल्लिखित है) किया है, इसके सत्व या जौहरको अंग्रेजीमें थायमोल (Thymol) कहते हैं। परन्तु यह सत्व जैसा उल्लेख किया गया है, अजवायनसे भी निकलता है।

कल्प तथा योग—अर्क अजवायन (२॥-५ तो०), माजून नानख्वाह, माजून नानखाह हकीम अली गीलानी।

प्रकृति—तृतीय कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे भी यह उष्णवीर्य (ध०नि०) है।

गुण-कर्म—आमाशयस्थ द्रवशोषणकर्त्ता, वातानुलोमन, उष्णताजनन, विलयन, संशमन (मुसक्किन), रूक्षण (मुजफ्फिफ), अवरोधोद्घाटक, लेखन (जाली), क्षुधाजनन (मुश्तही), प्रवर्त्तक (मुदिर्र), कृमि तथा ग्रन्थाकार-कृमिनाशन एवं निस्सारक, आक्षेपहर (विकाशी), विषप्रशमन और कोथप्रशमन।

उपयोग—उष्णताजनन (मुसख्खिन), विलयन और अवरोधोद्घाटक होनेसे यह जीर्णज्वरोंमें विपुल प्रयोगमें आती है। (अस्तु) "अष्टप्रहरी" अजवायनके नाममें आठपहरमें इसका फाट प्रस्तुत करके जीर्णज्वर रोगियोंको पिलाते हैं। इन्हीं गुण-कर्मोंके कारण शीतप्रकृतिके लोगोंके आमाशय और यकृतको उष्णता प्रदान करती और यकृत्प्लीहाके काठिन्यको नष्ट करती है। लेखन होनेके कारण यह प्रायः त्वग्रोगोंमें प्रयुक्त की जाती है। अस्तु, व्यंग (वहक), किलास, युवानपिडका (मुँहासे) और त्वगध रक्तसंचयजन्य नीलिमाको दूर करनेके लिए इसका पतला लेप लगाते हैं। दीपन एवं वातानुलोमन होनेके कारण आमाशयिक रोगोंमें प्रयुक्त औषधोंमें यह प्रचुरताके साथ सम्मिलित की जाती है, तथा उदरशूल, अरोचक, हृदयोत्क्लेश और आटोप तथा वातिकोद्वेष्टनको नष्ट करती है। इन कर्मोंसे तथा रूक्षण (शोषण), उष्णताजनन और प्रमाथी होनेके कारण यह आर्द्र वा स्निग्ध आमाशय एवं जलोदरमें प्रयुक्त की जाती है। रूक्षण (मुजफ्फिफ) होनेके कारण स्तन्य (दूध) और वीर्यको कम करती है। अवसादक और श्वयथुविलयन होनेके कारण इसका पतला लेप करनेमें वेदना शमन होती और सूजन उतर जाती है। प्रवर्तनकारी होनेके कारण यह मूत्र एवं आर्तवप्रवर्तनके लिए उपयोग की जाती है। इसीलिए यह वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी और मूत्रकृच्छ्रमें गुणकारी है। गोल और ग्रन्थाकारकृमि (कद्दूदाना)को मारने और बाहर निकालनेके लिए यह उत्तम भेषज है। विकाशी होनेके कारण आक्षेपयुक्त रोगों, जैसे—कूकरखाँसी आदिमें इसका उपयोग करते हैं। विषप्रशमन होनेसे बिच्छू और भिडके दंशपर इसका पतला लेप लगानेसे उपकार होता है। यह वेदना शमन करती है। विषघ्न और कोथप्रतिबंधक होनेसे मरकव्याधियोंमें इसका उपयोग करते हैं। इससे अफीमकी आदत छूट जाती है, और अफीम-सेवनसे होनेवाले विकार दूर होते हैं। सत अजवायन आशुफलदायिनी औषधि है। अहितकर—शिरःशूलकारक तथा शुक्र एवं स्तन्यापनयन। निवारण—धनिया, तुर्मुस और उन्नाव। प्रतिनिधि-कलौंजी और कालाजीरा। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक। सतकी मात्रा १२० मि० ग्रा० (१/२ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—अजवायन कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, पाचन, दीपन, रोचक, हृद्य, पित्तकर तथा वायु, कफ, दाँतके रोग, गुल्म, उदर, शूल, प्लीहाकी वृद्धि और कृमिका नाश करनेवाली है (च०, ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—थाइमोल (सत अजवायन) ३ बूँदकी मात्रामे प्रबल वातानुलोमन है। द्वादशागुल नामक अन्त्रमे पाये जानेवाले केचुओपर इसका प्रबल कृमिघ्न प्रभाव होता है। उक्त प्रयोजनके लिए एक फ्लुइड ड्रामसे अधिक देनेकी आवश्यकता होती है, जो इसके प्रवाहीरूपमे सात्मीकृत होनेके कारण सभवतः विषैला होगा। आभ्यतरीय रूपसे अजवायनका अर्क उदराध्मान एव उदरशूलमे लाभदायक है। अजवायनके बीज और उत्पत् तेल उदराध्मान, उदरशूल, अतिसार, विसूचिका, अपतन्त्रक और आन्त्राक्षेपमे उपकारक है। इससे ऊष्मा एव आह्लादकी वृद्धि होती है, और आन्त्रविकारके साथ होनेवाली उदासीनता एव निर्बलता दूर होती है। इसके तेलको १ से ३ बूँदकी मात्रामें किंचित् शर्करापर डालकर अथवा गोदके लवाब और जलके साथ इसका इमल्शन बनाकर उपयोग करना चाहिए। वात एव आमवातमे होनेवाली वेदना शमन करनेके लिए इसका बाह्य प्रयोग होता है। विसूचिकाकी प्रथमावस्थामे वमन और विरेक बदकरने तथा शरीरको उत्तेजित करनेके लिए अजवायनके तेल और इसके बीजो द्वारा परिस्रुत जल (अजवायनके अर्क)को १ से २ आउस (२॥ तोलासे १ छटाँक तक) की मात्रामे उपयोग करनेसे लाभ होता है। इसे अन्य सुगन्धित औषधियो, जैसे—युकेलिप्टस, पिपरमिंट और गॉलथीरिया आदिके साथ मिलानेसे यह गुणकारी वायुनिस्सारक औषधि हो जाती है। अजवायनका तेल तथा इसका फूल (सत) दोनोको सोडाके साथ देनेसे अम्लपित्त, अजीर्ण और आध्मान आराम होते है। पैत्तिक वमन और शीत लगना आदिमे अजवायनके बीज तथा गुड मिलाकर खाया जाता है। प्रतिश्याय और उन्माद आदिमे इसके बीजके चूर्णको बारीक कपडेमें बाँधकर थोडी-थोडी देरमे सूँघना चाहिए अथवा उक्त चूर्णका सिगरेट बनाकर पिलाना चाहिए।

●

(१५) अजवाय(इ)न खु(खो)रासानी

फ़ैमिली : सोलानासे (Family Solanaceae)

नाम—(हि०) खु(खो)रासानी अजवाय(इ)न, (अ०) बज, सीकरान, खदाउर्रजाल, (फा०) बंग, बक, बगदीवाना, (स०) पारसीकयवानी, यावनी, तुरुष्का, मदकारिणी, (प०) खुरासानी अजवेन, (म०) खुरासानी ओवा, (ग०) खुरासाणी अजमा, (ले०) हिओस्सिआमुस आल्बुस (**Hyoscyamus albus** Linn), (अ०) हेनबेन (Henbane), हॉगबीन (Hog-bean)। (बीज)-(अ०) बज्रुल्बज, (फा०) तुख्म बग, (अ०) हेनबेनसीड्स (Henbane Seeds).

वक्तव्य—(१) "बज" फारसी "बग"का अरबी रूपान्तर है। "हिओस्सिआमुस" यूनानी 'हुऑस कुआमोस (Huos-kuamos)'-का लेटिन रूपान्तर है, जिसका अर्थ (हुऑस = शूकर, कुआमॉस = बाकला, लोबिया) "शूकर-लोबिया" है। इसके पत्र लोबियापत्रके सदृश होने एव सूअरोको रूचिकर भक्ष्य होनेसे यूनानियोने इसका उक्त नाम रखा। इसके बीज (तुख्मबग सफेद, बज्रुल्बज अब्यज) हिन्दुस्तानमे, अधिकतया खुरासान (इरान)से आते है तथा बीज कुछ यवानीबीजोके अनुरूप होने (यद्यपि गुणकर्मकी दृष्टिसे इनका कोई सादृश्य नही है तथा अजवाइनमे औषधि अभिज्ञानकी दृष्टिसे तीव्र विशिष्ट सुगन्धि आदि विभेदक लक्षण भी होते है)-से भारतीय वैद्योने इसका नाम 'पारसीक यमानी' या 'खुरासानी यवानी' रख दिया है, जो अब उर्दूभाषामे तथा व्यवहारकी प्रचलित बोलचालकी भाषामे "अजवायन खुरासानी" नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि गुणकर्म तथा वानस्पतिक

फैमिली आदिकी दृष्टिसे यह अजवायनसे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। अतएव व्यावहारिक दृष्टिसे इसे कदापि अजवायनका भेद नही समझना चाहिए। यह सोलानासे फैमिलीकी वनस्पति है, जिसमे बेलाडोना एवं धतूर आदि विषैली औषधियाँ सम्मिलित है। इस वनस्पतिके नामकरणमे उद्भवस्थल ज्ञापक विशेषण "पारसीक" एव "खुरासानी" इस बातके ज्ञापक है, कि यह एक विदेशी औषधि है, और स्वभावत इसके व्यवहारका प्रचार भी बाह्यागत व्यक्तियो द्वारा हुआ हो। इस तथ्यकी पुष्टि इस बातसे भी होती है, कि यद्यपि 'हिओस्सिआमुस' की कतिपय प्रजातियाँ उत्तरपश्चिम भारतवर्ष एव हिमालयमे पायी जाती है, किन्तु प्राचीन आयुर्वेदीय सहिताओमे इस औषधिका उल्लेख नही मिलता।

(२) मख्जनुल् अद्विया और मुहीत आजममे जो इसका यूनानी नाम "अफीकून" लिखा है, वह वास्तवमे "अफ्यून" है। क्योकि कतिपय पुराकालीन मुसलमान चिकित्सक इसको यूनानियोका अफ्यून (अफीम) जानते है, सुतरा इसके विवरणमे लिखा है कि कभी इसके पत्र एव शाखाओकी रसक्रिया अफीमके प्रतिनिधिस्वरूप प्रयुक्त की जाती है। "अफ्यून" शब्द भी यूनानी सज्ञा है, जिसका अर्थ "निद्रल औषधि" है।

(३) पुरातन यूनानी वैद्योने श्वेत, रक्त एव कृष्ण- (काला) भेदसे तीनो प्रकारके अजवायन खुरासानी (बज)-का उल्लेख किया है। परन्तु वे इसके सफेद भेदका औषधरूपमे प्रयोग करते थे। अस्तु, दीसकूरीदूसने भी इसकी सस्तुति की, और इसीके प्रयोगकी अभ्यर्थना की है। मुसलमान चिकित्सक भी इस विषयमे अद्यावधि प्राचीन यूनानी चिकित्सकोके अनुयायी है।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप, साइबेरिया, एशियामाइनर, खुरासान, उत्तर भारतवर्ष (कश्मीर-गढवाल), हिमालय पर्वतमालामे ८,००० से ११,००० फीटकी ऊँचाई पर यह स्वयजात भी होती है।

वर्णन—इसका क्षुप अजवायनके क्षुपसे ऊँचाईमें कुछ बडा होता है। काड मोटा और रोईदार, पत्र गुलदाउदी या बिल्लीलोटनके समान बहुत मोटे, चौडे, लबोतरसे, पत्र-प्रांत कटे हुए कगूरेदार (नियमित रूपसे ददानेदार) होते है। रगमे कालाई लिए हरे और रोईदार होते है। पुष्प सफेद अनारकी कलियोके समान, परतु पखडियोके कगूरे और मध्य एव मूल भाग ललाई लिए होते है। इनके पकनेपर मूल भागमे फलकोष लगता है, जिसमें खुरासानी अजवायनके बीज होते है। ये अजवायनके बीज जितने बडे और कभी उसमे दूने बडे, वृक्काकृति और भूरे (खाकी) होते है। इनका पार्श्व भाग दबा हुआ और बाह्य त्वचा भली भाँति चिपकी हुई होती है। ऐल्व्युमीन स्नेहमय होता और वृक्षगर्भ इस प्रकार वक्र होता है, जिसका पुच्छ अकुर बनता है। स्वाद स्नेहमय, तिक्त और चरपरा होता है।

भेद—फलोके रगके विचारसे इसके यह तीन भेद होते है—

(१) सफेद (**Hyoscyamus albus** Linn)–जिसका ऊपर विवरण दिया गया है। यूनानी वैद्य प्राय इसीका उपयोग करते है। (२) लाल—सफेदके बाद इसका उपयोग किया जाता है, और (३) काला—(**Hyoscyamus niger** Linn)—अधिक विषैला एव साधातिक होनेके कारण इसका उपयोग वर्जित है। किसी-किसीने इनके अतिरिक्त इसका एक पीला भेद भी वर्णन किया है।

उपयुक्त अग—प्राय बीज। एक वर्ष तक इसमे वीर्य रहता है। इसके उपरात वह निर्बल हो जाता है। पाश्चात्य वैद्यकमें पत्रका भी उपयोग होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे हायोसायमीन (Hyoscyamine) नामक एक सत्व पाया जाता है, जिसकी रासायनिक रचना धतूरीन (ऐट्रोपीन)के समान होती है। यह विभिन्न प्रकारके खुरासानी अजवायनके बीज एव पत्रस्वरसमें हायोसीन (Hyoscine) या विकृताकार हायोसायमीनके साथ पाया जाता है। इसके सूचिकाकार या

त्रिपार्श्वाकार रवे होते हैं। यह धतूरीनकी अपेक्षया जल एवं हलके सुरासारमें अधिकतया विलेय होता है। धतूरीनके समान यह नेत्रकनीनिका-विस्फारक है।

कल्प तथा योग—बरशाशा।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। राजनिघंटुमें रूक्ष लिखा है।

गुण-कर्म—अवसादक, स्वापजनन, स्वप्नजनन, रक्तस्तंभन (हाबिस) और दोष (मवाद्) विलोमकर्ता है।

उपयोग—अवसादक (मुखद्दिर) और स्वापजनन होनेके कारण यह कफज कासमें गुणकारी है। इन्ही कर्मोके कारण हर प्रकारकी वेदनाओं (दर्दो)में इसका बहि प्रयोग किया जाता है। आमवात, गृध्रसी और वातरक्त जैसे सपूर्ण प्रकारके शूलोमें यह दर्दको शमन करती है। अग्निपर डालकर धूनी (बखुर) करनेसे दतशूल आराम हो जाता है। इसे तिलके तेलमें पकाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। स्वप्नजनन होनेके कारण यह उन्माद, प्रलाप और अनिद्रामें उपकारक है। रक्तस्तभन होनेसे यह शरीरके हर एक प्रत्यगसे रक्तस्रावको बद करती है, और नेत्रकी ओर पानी आने (सैलान रतूबात ब नजलात) को रोकती है। विलोमकर्ता होनेके कारण शोथके प्रारभमें इसका लेप करनेसे उस ओर दोष (मवाद्)का आगम रुक जाता है।

विष लक्षण—इसका अत्यधिक प्रमाणमें उपयोग करने अथवा अधिक काल तक निरतर सेवन करते रहनेसे भ्रम (सदर व दवार), कठशोथ (खुनाक), उन्माद, सन्यास (सुबात), बुद्धिविभ्रम और ऊँचा सुनना (सुकल समा)—ये उपद्रव प्रगट होते हैं। अग-प्रत्यग शिथिल हो जाते हैं। शरीर शीतल और उसका रग पीला हो जाता है। रोगी भाषण (बोलने)में असमर्थ होता है। यदि शीघ्र उपाय न किया जाय, तो थोडे समयमें वह मर जाता है। उपचार—ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर उसे उष्ण जल या घी-दूध पिलाकर बारबार वमन कराये। जब आमाशय विषसे सम्यक् शुद्ध हो जाय, तब गाय या बकरीका ताजा दूध पिलाये।

अहितकर—मस्तिष्कको। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—अफीम और पोस्तेका दाना।

मात्रा—० ५ ग्राम से १ ग्राम (१।२ माशा से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—पारसीक यवानी कटु, रूक्ष, ग्राही और मादक है (रा० नि०)।

नव्यमत—खुरासानी अजवायन वेदनास्थापन, स्वापजनन, सकोच-विकास-प्रतिबधक, अवसादक और मूत्रजनन है। अल्पप्रमाणमें हृदयावसादक और बल्य है, परतु बडी मात्रामें हृदयके लिए अहितकर है। इसकी अवसादक (शामक) क्रिया मस्तिष्क, जनन-मूत्रेन्द्रिय और आँतो पर होती है। यह निश्चित स्वापजनन है। इससे घटो तक गाढ निद्रा आती है। ऐसा निद्रा लानेवाला और वेदनास्थापन औषध अफीम है। परतु जहाँ अफीम नही दे सकते, वहाँ इसे दे सकते है। अफीमसे कब्ज होता है, परतु इससे दस्त साफ होता है। मस्तिष्कके सतापप्रधानरोग, जैसे—नूतन उन्माद, मस्तिष्कधराकलाशोथ आदि रोगोमें खुरासानी अजवायन देनेसे गाढी निद्रा आती है। किसी भी कारणसे उत्पन्न मानसिक अवस्थता और निद्राभगमें यह उत्तम औषध है। मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मलत्वचापर इसका प्रत्यक्ष अवसादक क्रिया होती है। बार-बार थोडा-थोडा पेशाब होना, वस्तिशोथ और अश्मरीसे उत्पन्न वस्तिदाहमें इससे उत्तम लाभ होता है। जननेन्द्रिय पर इसको उत्तम अवसादक क्रिया होती है। पीडितार्तव, अत्यार्तव और अनियमितार्तवमें भी इससे अच्छा लाभ होता है। शीघ्रशुक्रस्खलन, स्वप्नदोष और अतिकामवासनामें तथा सूखी खाँसी, कफके साथ रक्तआना और दमा—इनमें भी इससे लाभ होता है। उदरशूलमें तथा किसी औषधिसे मरोड होनेलगे उसमें यह उपयुक्त औषधि है। शोथ और पीडामें इसको मधुमें पीसकर लेप करते है। स्तनशोथ, अडशोथ, सिरदर्द, अर्श, दुष्टव्रण, ग्रन्थि और आमवातमें इस लेपसे लाभ होता है।

(१६) अडूसा

फैमिली : अकान्थासे (Family · Acanthaceae)

नाम—(हिं०) अडूसा, बाँसा, वसौटा, (अ०) हशीशतुस्सुआल (खाँसीकी बूटी, कासतृण), (फा०) बाँस, खाजा, (स०) अटरूपक, वासक, वासा, (प०) बाँसा, बहेकड, बौकड, (कु०) बैंसिंग, (म०) अडुलसा, (गु०) अरडुसो (-सी), (लै०) आढ टोडा वासिका (**Adhatoda vasica** Nees), (अ०) एढाटोडा (Adhatoda)।

वक्तव्य—लैटिन तथा अन्य भारतीय नाम भी पौधेके हैं। भारतीय चिकित्सामे अडूसेका व्यवहार अति-प्राचीनकालसे होता आ रहा है। आयुर्वेदीय साहित्यमे इसका प्रचुर उल्लेख मिलता है, तथा इसके स्वरूप एव गुणज्ञापक अनेक पर्याय दिए हुए हैं। इसके लैटिन नामके दोनो अश अर्थात् प्रजातिक नाम (Generic name) एव जातीय नाम (Specific name) भारतीय नाम पर आधारित है। जेनरिक नाम 'आढाटोडा' इसके तामिल नाम "आडाटोडै"के आधार पर तथा जातीय नाम स्वय सस्कृत नाम "वासक"के आधार पर रखा गया है। हिन्दी एव अन्य भारतीय नाम इसके सस्कृत नाम "अटरूपक" या "आटरूपक" तथा 'वासक' या "वासा"से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—अडूसेके पौधे सर्वत्र भारतवर्षमे तथा हिमालयाचलमे ४,००० फुटकी ऊँचाई तक स्वयजात पाये जाते है। यह प्राय कडी, ककरीली पथरीली भूमिमे होता है। शहरो एव गाँवोमे घरोके खण्डहरोमें, वाग-वगीचोमें तथा रेलवे लाइनके किनारोकी भूमिमे समूहवद्ध उगा हुआ मिलता है।

वर्णन—बाँसा (अडूसा) सदाहरित क्षुपजातीय वहुवर्षायु वनस्पति है। पर कही-कही इसके बहुत ऊँचे पौधे भी मिलते हैं। काण्ड सीधा, पत्र आमने-सामने १२ ५ सें० मी० से १५ सें० मी० (५-६ इच) लम्बा, ४ ७५ सें० मी० (१॥ इच) चौडा, रूपरेखामे प्रासवत् (Lanceolate) तथा नुकीले-अग्रयुक्त होता है। आधारकी ओर भी चौडाई उत्तरोत्तर कम होकर अग्रवत् नुकीला होता है। पत्रके उभयपृष्ठ मसृण होते हैं। पत्रवृन्त—२ ५ सें० मी० से ४ ७५ सें० मी० लम्बा, पुष्पावलिवृन्त छोटा तथा पुष्पसहपत्रो (Bracts)से ढँका होता है (जो ० ७ से ० २ इ० होते है)। पुष्प-सम्मुखवर्ती, वडे और श्वेत, जिनके भीतरी भाग पर ललाई लिए धब्बे होते हैं। पुष्पके उभय ओष्ठ सिंहमुखाकृतिके (सिंहानन) होते है, और उनके भीतरी पृष्ठोपर बैंगनीरगकी धारियाँ पडी होती है, वाह्यदलपुज (कैलिक्स) ० ७५ सें० मी० से १ २५ सें० मी० लम्बा, ५ खण्डोवाला, खण्ड गहरे, कोरोला-टयूब ० ७५ सें० मी० से १ २५ सें० मी० चौडा, सफेद, जिसका अधोभाग छोटा तथा पीपाकृतिका होता है। पुष्पागम शरदृऋतुमे होता है।

उपयुक्त अग—पचाग, पत्र, पुष्प, मूलत्वक्।

रासायनिक सगठन—एक सुगधित उत्पत् सत्व, वसा, राल, एक तिक्त क्षारीय सत्व-वैसिमीन (Vasicine) जिसे (सस्कृतमे वासीन वा वासकीन कह सकते है), कहते है, एक सैन्द्रियक अम्ल वासाम्ल (ऐढाटोडिक एसिड), शर्करा, निर्यास, रजक पदार्थ और लवण। वासकीनका अधिक परिमाण अडूसेकी मूलत्वचा और पत्रमे प्राप्त होता है। इसके स्वच्छ सफेद रवे होते है, जो सुरासारमें सुविलेय होते है। ये जलविलेय भी है। खनिजोके साथ यह स्फटिकीय लवण बनाता है। इसमे किसी अशमें अँमोनिया भी विद्यमान होती है।

कल्प तथा योग—पत्रस्वरस, पत्र वा मूलत्वक्‌का क्वाथ, पुष्पका शर्वत वा गुलकन्द (गुलकंद अडूसा) और पचागक्षार।

प्रकृति—प्रथम कक्षामे उष्ण एव रूक्ष है। कोई उष्ण एव तर और कोई शीत एव तर कहते है। फूल को शीत बतलाया जाता है। आयुर्वेदमतेन शीतवीर्य (च०, रा० नि०) है।

गुणकर्म—श्लेष्मनिस्सारक, विकाशी, जीवाणुनाशक (कातिल जरासियम्), कृमिघ्न, रक्तशोधक, रक्तस्तंभन और ज्वरघ्न।

उपयोग—श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण यह कृच्छ्रश्वास और कासमें उपकारक है। इसी कारण यह स्वर-शोधक (मुसफ्फी आवाज) भी है, क्योकि कण्ठनलिकाको कफमे शुद्ध करके उसके खरत्वको निवारण करता है। श्लेष्मनिस्सारक, जीवाणुनाशक और विकाशी होनेके कारण बालकोकी कुकुरखाँसीको दूर करनेके लिए इसकी जड-की छालका काढा उपयोग किया जाता है। इन्ही गुणोके कारण यह राजयक्ष्मा और उर क्षतकी उत्कृष्ट औषधि मानी जाती है। उक्त रोगोमे इसके पत्र या जडकी छालका काढा अकेले या अन्य द्रव्योके साथ प्रयुक्त होता है, तथा उनमे इसके फूलोका शर्बत (शार्कर) या गुलकन्द (पुष्पखण्ड) कल्पना करके खिलाया जाता है। यह आर्तवजनन भी है। कृमिघ्न होनेसे उदरज और ब्रघ्नाकार कृमियो (कद्दूदानो)को नष्ट करनेके लिए प्रयुक्त होता है। इसी कारण ऊनी कपडोमे इसके पत्र रखनेसे उनमे कीडे नही लगते। ज्वरघ्न होनेसे, ज्वरो विशेषकर कासयुक्त ज्वरोमें जिसमें दूषित एव दुर्गन्धित कफ निकलता है, इसका काढा देते है। रक्तशोधक होनेसे कुष्ठ एव शुष्क और तर खाजमें उपयोग किया जाता है। रक्तस्तंभन होनेके कारण नकसीर और रक्तनिष्ठीवनमे गुणदायक है। इसके लिए इसके ताजे पत्रके स्वरसमे मधु मिलाकर पिलाते है, अथवा सूखे पत्रका चूर्ण मधु मिलाकर चटाते है, या फूलोका गुलकद खिलाते है। इसके पचागका क्षार (वासकक्षार) श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण श्वास और कासमे गुणदायक है। अहितकर-शीत प्रकृतिको। निवारण-कालीमिर्च और मधु। मात्रा-पत्र और जड चूर्णमे २-३ ग्राम (२-३ माशा), और क्वाथ एव फाटमें ५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशासे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अडूसा, तिक्त, कटु, शीतवीर्य तथा श्वास, रक्तपित्त, कामला, कफ, पित्त, रक्तविकार, ज्वर, श्वास और क्षयका नाश करनेवाला है। अडूसेके फूल तिक्त, शीतवीर्य, कटुविपाकी तथा कफ पित्त, क्षय और खाँसी का नाश करनेवाला है। (च०, सु०, रा० नि०)।

नव्यमत—अडूसा उत्तम उत्तेजक कफनिस्सारक और सकोचविकासप्रतिबधक है। इसकी क्रिया इपिका-कुआनाके समान होती है। फूल तिक्त, कटु, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, रक्तकी उष्णता कम करनेवाले और सकोचविकास-प्रतिबधक है। मूल ज्वरघ्न, मूत्रजनन, श्लेष्मनि.सारक, नियतकालिक ज्वर-प्रतिबधक, कृमिघ्न और कोथ-प्रतिबधक है। पत्र और मूलकी अपेक्षया फूलोंमे सकोचविकास प्रतिबधक धर्म अधिक है। पत्रकी अपेक्षया मूलमे कफनिस्सारक कर्म अधिक है। पत्रमे स्वेदजनन धर्म भी है। अडूसाका स्वेदजनन और ज्वरघ्न धर्म अल्पप्रमाणमें है। कफको पतला करना और कासका वेग कम करना अडूसाके प्रधान कर्म है। मात्रा पुटपाक-विधिसे निकाला हुआ स्वरस १–१॥ तोला थोडी सैंधव, पिप्पली चूर्ण और शहद मिलाकर देते है। फूल ५ से १३ ग्राम (५-१० रत्ती) शहदके साथ अथवा फाट करके देते है। मूलत्वक्चूर्ण २-५ रत्ती शहदके साथ देते है। अडूसासे छोटी रक्तवाहिनियो का सकोचन होकर रक्तस्राव बन्द होता है। इसलिए रक्तपित्तऔर क्षयमे फुफ्फुससे रक्तस्राव होना, रक्तमिश्रित आँव,रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श और रक्तप्रदरमे अडूसेका स्वरस पिलाते है। सद्योव्रण और शोथ पर पत्तियों का लेप करते है। नेत्राभिष्यदमे आँखकी ललाई दूरकरनेके लिए ताजे फूल आँखपर बाँधते है। कफकास (श्वासनलिका शोथ)में अडूसा देनेमे कफ पतला होकर तुरन्त गिरने लगता है, और खाँसी, दमा, ज्वर और मूत्रदाह कम होता है। अडूसाकी सूखी पत्तियोके मोटे चूर्णमें थोडा धतूरेकी पत्तीका चूर्ण मिलाकर धूमपान करानेसे दमाका वेग शान्त होता है।

(१७) अतीस

फैमिली : रानुनकुलासे (Family · Ranunculaceae)

नाम—(हि॰) अतीस, (म॰) अतिविषा, (स॰) अतिविष (रा); (गु॰) अतिविष, अतवखनी, कली, (ब॰) आतइच, (प॰) पतीस, बतास, (ता॰)अतिविदयम्, (क॰) पतीस, पत्रीस, (ले॰) आकोनीटुम् हेटेरोफील्लुम् (Aconitum heterophyllum Wall) ।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयके सिन्धु नदीसे कुमाऊँ तकके प्रदेशमें ६,००० से १५,००० फुटकी ऊँचाई पर होती है ।

वर्णन—अतीसका ६० से १२० सें॰ मी॰ (२ से ४ फुट) ऊँचा क्षुप होता है । मूल द्विवर्षायु, लवगोल जटवार जैसे शक्वाकार होते हैं । यह ऊपर से भूरे (खाकी) रगके, तोडनेमें भीतर श्वेत, पिष्टमय पदार्थयुक्त और मध्यमें ४-५ बिन्दुओं (छिद्रोवाले) होते हैं । लम्बाई २ ५ से ३ ७५ सें॰ मी॰ (१ से १॥ इच), क्वचित् ५ सें॰ मी॰ (दो इच) होती है । स्वाद अतितिक्त (कडुआ) कोई खास गध नही होती । औषधके लिए जो मूल नये, ऊपरसे कुछ भूरे, अदर स श्वेत, मध्यमें ४-५ बिन्दुवाले और भगुर हो वे ही लेने चाहिए ।

उपयुक्त अग—मूल या कन्द (अतीस) ।

रासायनिक सगठन—वत्सनाग (विष)के वगकी होनेपर भी यह विष नही है । इसमें अतीसीन (Atisine) नामक एक स्वादरहित अत्यन्त तिक्त क्षारसत्व (निर्विषैला) और ऐकोनिटिक एसिड (Aconitic acid) प्रभृति अल्प-प्रमाणमें होते हैं ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एव खुश्क (रूक्ष) । आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (कै॰ नि॰) ।

गुण-कर्म—वाजीकर, पाचन, दीपन, ज्वर (नियतकालिक)को रोकनेवाली, ग्राही, रक्तस्तभन, कोष्ठवातहर और कफहर ।

उपयोग—सग्राही एव रक्तस्तभन होनेके कारण अतिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, जलोदर, वमन और अति-रजमें अतीसका उपयोग करते हैं । समभाग अतीस और गुल्नारका चूर्ण बच्चोंके दस्त बद करनेको देते हैं । नियत-कालिक ज्वरोंको रोकनेके लिए अकेला या अन्य औषधद्रव्योंके साथ इसका चूर्ण या काढा पुष्कल उपयोग कराया जाता है । अतीस जलोदर और वमनको भी दूर करती है । लखनऊ निवासी स्वगवासी हकीम अब्दुल मजीद साहब राजयक्ष्मा एव आन्त्रक्षयमें इसका उपयोग कराते थे, जिससे यथेष्ट लाभ होता था ।

मात्रा—१ ग्राम (१ माशा) । क्वाथमें ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशा स ५ माशा) तक ।

आयुर्वेदीय मत—अतीस रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, लेखन, पाचन, दीपन, सग्राहक, सर्व-दोषहर, स्तन्यशोधन, आमपाचन, दोषपाचन तथा अतिसार, ग्रहणीरोग, विष (अन्नाजीर्णोत्थ विष), कास, वमन (अन्नाजीर्णजन्य), अर्श, ज्वर, कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, शूल और आमातिसारका नाश करती है । (च॰ सू॰ अ॰ ४, २५, सु॰ सू॰ अ॰ ३९, कै॰ नि॰, वगसेन (बालरोगाधिकार) ।

नव्यमत—अतीस उत्तम कटुपौष्टिक, विषमज्वरनाशक और ग्राही है । किसी भी कारणसे शरीरमें दुर्बलता आई हो और शरीर फीका पड गया हो, इसके सेवनसे भूख लगती है, अन्न पचता है और शरीरकी सब विनियम-क्रियायें सुधरती हैं । कटुपौष्टिक और ग्राही होनेसे अतिसार और ग्रहणीमें इससे उत्तम लाभ होता है । बच्चोंके जुकाम, उलटी और ज्वरमें अतीस उत्तम औषध है । बच्चों और प्रसूता स्त्रियोंके अतिसारमें अतीस और सावर-शृंगभस्म मिलाकर देना चाहिए । अतीस, शुद्ध भाँग और बचका चूर्ण अतिसारमें लाभ करता है । सुगन्धि-द्रव्योंके

साथ मिलाकर देनेसे अतीस शीघ्र लाभ करता है। विषमज्वरको रोकनेके लिए अतीस बडी (३ माशेकी) मात्रामें देनी चाहिए। अतीस बच्चोको विशेष अनुकूल होता है। ज्वरातिसारमें १५ गुजा और १५ गुजा रसौत थोडे पानीमे मिलाकर देते हैं।

•

(१८) अनन्नास

फ़ैमिली : ब्रोमेलिआसे (Family · Bromeliaceae)

नाम—(हिं०) अनन्नास, अनानास, कटहल सफरी, (यू०, फा०; पुर्त०, अम०) अनानास (Ananas), (अ०) ऐनुन्नास, (व०) अनानाश, अनारम, (गु०) अनन्नास, (म०) अन्नास, (मल०) परुगि चक्क (यूरुपीय फणस), (लें०) आनानास कोमोसस् **Anans comosus** Merr (पर्य्याय-अनानास साटीवुस *Ananas sativus* Schult f), (अ०) पाइन एपल (Pine Apple)।

वक्तव्य—इसकी बहुश देशी-विदेशी सज्ञाएँ अमरीकन "अनासी" तथा "नानस" सज्ञासे व्युत्पन्न हुई हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह अमरीका (ब्रैजील)का आदिवासी है। अधुना समस्त भारतवर्षमे विशेषकर बगाल, रूहेलखण्ड, चेरापूँजी आदि पूर्वी भारतमे यह लगाया जाता है।

वर्णन—यह केवडे या रामबाँसकी तरहके एक ३० से ६० सें० मी० (दो फुट) ऊँचे द्विवर्षायु क्षुपका प्रसिद्ध फल है, जो मेवेके तौर पर खाया जाता है। क्षुपके मध्य भागसे निकले हुए लघु प्रकाडपर छिलकेदार गोपुच्छाकार बालियाँ लगती है जिस पर फल उत्पन्न होते हैं। इसके ऊपर बहुतसे छोटे-छोटे कँटीले पत्र होते है जिनको *'ताज'* कहते है। उन गोपुच्छाकार बालियोमे बहुसख्य क्षुद्र नीलेरगके पुष्प आते हैं। फूलकी कटोरी (पुष्प वाह्यकोष) त्रिभागयुक्त और पुष्पाभ्यतर कोष (पुष्पदल) तीन पँखडीयुक्त होता है। पुष्पित होनेके बाद ये क्रमश मोटे और लम्बे होते जाते और रससे भरे होते हैं। कच्चा फल ऊपरसे हरा और पकनेपर लाल हो जाता है। अदरसे यह पीला होता है। फलके ऊपर खाने-खाने होते हैं। उन खानोके आस-पास थोडा छिलका पतला होता है। प्रत्येक खानेमे छिलकाके समीप छोटे-छोटे पीले और काले बीज होते हैं। फल सुगधित (बिहीगधी) और लबगोला होता है। मख्जनुल् अद्वियाके लेखकके अनुसार यह दो प्रकारका होता है—(१) छोटा, करने नीबूके बराबर अदरसे मधुर, सुगधित और अत्यत स्वादिष्ठ, (२) बडा (साधारण) जो खटमिट्ठा और कच्चा या थोडा पका हुआ खट्टा होता है। यह प्रथमसे अधिक रसपूर्ण होता है। फलके दोनो सिरो पर छोटे-छोटे पत्र होते हैं।

उपयुक्त अग—पक्व फल। मख्जन आदि यूनानी निघंटुग्रन्थोंमे इसके अपक्व फल और पत्रका उपयोग देखनेमे नही आया। भारतवर्षमे सर्वप्रथम अबुल्फजलने आइने अकबरीमे इसका उल्लेख किया है।

रासायनिक सगठन—अनन्नासके स्वरसमे प्रोटीन, पाचक अभिषव (एन्जाइम) और एक प्रकारका दधिप्रवर्तक अभिषव होता हैं। भस्ममे स्फुरिकाम्ल, गधकाम्ल, चूना, मैग्नीसियम, सिलिका, लोह, पाशुहरिद और सैंधहरिद इत्यादि द्रव्य होते है। ब्युटिरेट ऑफ एथिल (Butyrate of Ethyl)को ८वाँ १०वाँ भाग स्पिरिट ऑफ वाइनके साथ योजित करनेसे अनन्नासका एसेस प्रस्तुत होता है।

कल्प तथा योग— अर्क अनन्नास, शर्बत अनन्नास और मुरब्बा अनन्नास।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत और तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, हृद्य, पित्तसशमन, मूत्रल, आर्तवजनन और ऋतुनियामक।

उपयोग—इसका गूदा अम्लता लिए मधुर होता है। इसे छीलकर दूसरे मेवोकी भाँति खाते हैं। यह उष्ण खफकान (दिलकी धडकन)के लिए परम गुणकारी है। वृक्क और बस्तिगत अश्मरी एव सिकताके उत्सर्ग हेतु इसका उपयोग करते हैं। इसका शार्कर (शर्वत) और मुरब्बा हृदयको शक्ति एव आह्लाद (तफरीह) प्रदान करने, आर्तव-जनन और सिकता एवं अश्मरीनाशनके लिए उपयोग किये जाते है।

अहितकर—कठको। निवारण—सादे वा नमकके पानीसे धोना, नीबूका रस और शर्करा पिलाना। (प्रतिनिधि—विही और सेव। मात्रा—२ तोलासे ५ तोला तक।

●

(१९) अनार।

फैमिली : पूनिकासे (Family . Punicaceae)

नाम—(वृक्ष)—(हिं०) अनारका पेड; (अ०) शज्रतुर्रुम्मान, (फा०) दरख्ते नार, (स०) दाडिम, दाडिम्ब, (द०) अनारका झाड; (व०) दाडिम गाछ, (म०) डालिंव झाड, (गु०) दाडम-नु-झाड, (ले०) पूनिका ग्रानाटुम् (**Punica granatum** Linn), (अ०) पॉमेग्रेनेट ट्री (Pomegranate Tree),

फल—(हिं०) अनार; (अ०) रुम्मान्; (फा०) अनार, नार, (स०) दाडिम फल, (म०, वम्व०) डालिंव, (अ०) पॉमेग्रेनेट फ्रूट (Pomegranate fruit)।

उत्पत्तिस्थान—यह सम्पूर्ण भारतवर्षमें लगाया जाता है। कावुल और कधहारका अनार सव देशोके अनारोसे उत्तम होता है। इसके वाद पटनेके अनारका नम्वर है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है, जो स्वाद के विचारसे तीन प्रकार का होता है—(१) मीठा, (२) खट्टा और (३) खटमिट्ठा। खट्टे अनारके वृक्षमें खट्टे और मीठेमे मीठे अनार लगते है। असाढसे भादो तक फल पकते हैं, परन्तु यह नियम सव देशोके लिए एक-सा लागू नही है। खट्टा अनार मीठेसे गुणमे वलवत्तर है। इसके अतिरिक्त अनारके ये दो भेद और है—(१) गुलनार और (२) जगली अनार। आगे इनमेंसे प्रत्येकका विवरण दिया गया है। दाडिमके सुखाये हुए वीजोको 'अनारदाना' या दाडिमसार कहते है।

उपयुक्त अग—पक्वापक्व फल, फलत्वक् (नासपाल), वृक्षकाडत्वक्, वृक्षमूलत्वक्, बीज (अनारदाना), पुष्प, कलिका और पत्र। यद्यपि इसका हर एक प्रत्यग गुणमे समान है, फिर भी उनके वीर्यमे कुछ न्यूनाधिकता अवश्य है। जैसे—गुदामें पत्तोकी अपेक्षया अधिक वीर्य है। इससे अधिक वीर्य नसपाल (फलत्वक्)मे है। फूलमे कलीसे कम वीर्य और जडकी छालमे (विशेषकर रक्त एव श्वेत पुष्पीय अनारकी) सवसे अधिक वीर्य होता है।

वक्तव्य—वुकरात ने पोआसाइड नामसे अनारका और दीसकूरीदूसने प्राइपोआस नामसे अनारकी जडकी छालका उल्लेख किया है, जिसको वह कद्दूदानाके मारने एव निकालनेके लिए अतीव गुणकारी जानता था। भारतीय एव मुसलमान चिकित्सकोने भी अनारके वृक्ष, उसके फूल, फल और छाल आदि सवका औषधोपयोग लिखा है।

रासायनिक संगठन—वृक्ष और फलके छिलकेमें २२ प्रतिशतसे २५ प्रतिशत टैनिन (Tannin) होता है। वृक्षकी जडकी छालमे २० प्रतिशतसे २५ प्रतिशत प्यूनिको टैनिक एसिड (Punico-tannic acid) और पेलीटिएरीन (Pellitierine) या प्युनीसीन (Punicine) नामक एक वीर्यवान् तरल क्षारसत्व होता है।

मीठा अनार :—

नाम—(अ०) रुम्मान हुलुव्व, (फा०) अनारशीरी।

वर्णन—मीठे अनारके फलके दाने लाल नोकदार और किसी-किसीके सफेद होते हैं। किसीके दाने गुठलीयुक्त और किसीके गुठलीरहित होते हैं। इनमे बडे दानेका गुठलीरहित (बेदाना) काबुली अनार सर्वोत्तम होता है। इसका रस मीठा होता है।

कल्प तथा योग—शर्वतअनारशीरी, रुव्व अनार और जवारिश अनारशीरी।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव तर (स्निग्ध)। लखनऊवालोके मतसे अनुष्णाशीत (मोतदिल)।

गुण-कर्म—यकृत् और हृदयबलदायक, उर कठमार्दवकर, सताप एव दाहप्रशमन, किंचित् मूत्रल, लेखन (जिलाऽ), अवरोधोद्घाटन, बलवर्धन, सशोधन और सशमन इसके विशिष्ट कर्म हैं।

उपयोग—मेवेकी भाँति अनारका पुष्कल उपयोग किया जाता हैं। यद्यपि इससे अत्यल्प पुष्टि (गिजा-इय्यत) प्राप्त होती है, तथापि इससे जितनी पुष्टि प्राप्त होती है, उससे उत्तम (लतीफ) रक्त उत्पन्न होता है। उष्ण प्रकृतिको इसका उपयोग अतीव गुणकारी है। यह उनके यकृत और हृदयको शक्ति प्रदान करता, तथा वक्ष एव कठकी कर्कशता और कासको तथा कामला एव हृत्स्पदनको लाभ पहुँचाता है। अनारका रस एक लघु (लतीफ) पथ्याहार है। मीठे अनारके रसको इतना पकायें कि वह गाढा हो जाय। इसे नेत्रमे लगानेसे दृष्टि बलवान् होती है। इसका शर्वत यकृत् और हृदयको बलप्रदान करने और सतापनिवारणके लिए प्रयुक्त होता है। मात्रा—औषधार्थ अनारका रस २ तोलासे ५ तोला तक।

खट्टा अनार :—

नाम—(अ०) रुम्मान हामिज, (फा०) अनार तुर्श। इसका रस खट्टा होता है।

कल्प तथा योग—शर्वत अनारतुर्शसादा, शर्वत अनार तुर्श मुरक्कब, चूक, जुवारिश अनारन आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (च०)।

गुण-कर्म—ग्राही, यकृत् और हृदयबलदायक, दीपन, रक्त एव पित्तप्रकोपसशमन और किंचित् मूत्रल है।

उपयोग—पित्तज अतिसारको रोकने, आमाशय, यकृत् और हृदयको शक्ति देने और उनके सताप निवारण करने, प्यास बुझाने और वमन तथा मिचली बद करने के लिए खट्टे अनारका पुष्कल उपयोग करते हैं। इसे दीपन-पाचन चूर्णौषधो मे भी सम्मिलित करते हैं। इसका रस आँखमें लगानेसे अर्म (नाख़ूना) और नेत्रगत सिराजालक (सबल) आराम होता है। इसके रससे शार्कर (शर्वत) और रसक्रिया (रुव्व) कल्पना करते है, जो दस्तोको बद करने, हृदय, और उष्ण आमाशय तथा यकृत्को शक्ति देनेके लिए प्रयुक्त होता हैं। मात्रा—औषधार्थ खट्टे अनारका रस २ तोला से ५ तोला तक।

वक्तव्य—पहाडी खट्टे अनार (दाडमी)के दानोको निचोडनेसे जो रस प्राप्त होता है, उसे मदाग्निपर पकाकर गाढा (रुव्व) कर लेते है। यही 'चूक' है जो काले रगका एव अत्यत खट्टा होता है। कोई-कोई इसे नीबूके रससे भी बनाते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे शीत एव पहले दर्जेमे खुश्क (रूक्ष) है। वैद्य गरम बतलाते है।

आयुर्वेदीय मत—दाडिम सामान्यत अम्ल-कषाय और मधुर रसवाला, स्निग्ध, उष्णवीर्य, छर्दिनिग्रहण, हृद्य, वातघ्न, ग्राही, दीपन तथा कफ और पित्तका न बढानेवाला है। कषाय और अम्लरसवाला दाडिम पित्त और वायुका प्रकोप करनेवाला है। मधुर दाडिम पित्तको दूर करनेवाला और दाडिमोमे उत्तम है (च० सू० अ० ४ २७)। दाडिम कषायानुरस, किंचित् पित्तकर, दीपन, रुचिकर, हृद्य और मलको बाँधनेवाला है। दाडिम मीठा और खट्टा दो प्रकारका होता है। मीठा दाडिम त्रिदोषनाशक, और खट्टा वात और पित्तका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ३८, ४६)। मीठा दाडिम त्रिदोषहर, कषायानुरस, ग्राही, स्निग्ध, लघु, शुक्रल, मेधा और बल देनेवाला तथा

तृष्णा, दाह, ज्वर और हृदय, कठ तथा मुखके रोगोका नाश करनेवाला है। खटमिट्ठा दाडिम दीपन, रुचिकर, लघु और कुछ पित्त करनेवाला है। खट्टा दाडिम पित्तकर तथा आम, वात, और कफका नाश करनेवाला है। (भा०प्र०)।

नव्यमत—फलका रस रोचक, रक्तप्रसादन और मृदुस्तम्भन है। दाडिमका फल अतिसार, सग्रहणी, आँव, आँतोकी शिथिलता और आँतोसे जलमिश्रित रक्त आना—इनमें छालसहित फलका पुटपाक-विधिसे रस निकालकर दिया जाता है। मूलकी छाल तीव्र कृमिघ्न है। १-२ तोले छालका काढा खाली पेट देवे। उस दिन खाना नही खिलावे। अगले दिन सबेरे विरेचन देवे। इससे चपटे कृमि (Tape worm) मरकर निकल जाते है।

खटमिट्ठा (स्वाद्वम्ल) अनार—

नाम—(अ०) रुम्मान मुज्ज, (फा०) अनार मैंखोश, अनार चाशनीदार। इसका रस खटमिट्ठा होता है।

प्रकृति—समप्रकृतिके समीप शीत एव तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—यकृत् और हृदयबलदायक, पित्तरक्तप्रकोपसशमन और हलका मूत्रल है।

उपयोग—खटमिट्ठा अनार पित्तल प्रकृतिवालोके लिए परम गुणकारी है। यह पित्त ज्वर, कामला, उष्ण हृत्स्पदन (खफकान) और आमाशय तथा यकृत्का सताप निवारण करनेके लिए उपयोग किया जाता है। प्यास बुझाने और वमन तथा मिचलीके नष्ट करनेके लिए भी इसका उपयोग करते है। उक्त रोगोमे इसका शाकर (शर्बत) और रसक्रिया (रुब्ब) व्यवहारमे ली जाती है। अनारका रस परम लघु आहार है। अनारके रुब्बको पकाकर गाढा होनेपर दृष्टिदौर्बल्य, नेत्रकच्छू (जरब), पक्ष्मशात और पपोटोके जख्ममे लगाते है। मात्रा—औषधार्थ अनारका रस ४ तोलासे ५ तोला तक।

अनारका छिलका (दाडिमफलत्वक्)—

नाम—(हि०) न(ना) सपाल, (अ०) कश्रुर्रुम्मान, (फा०) पोस्त अनार, (अं०) पॉमेग्रेनेट पील या रिंड (Pomegranate peel or rind)।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष (खुश्क)।

गुणकर्म—रूक्ष, ग्राही, उष्णकण्ठशोफविलयन और रक्तस्तभन।

उपयोग—उपशोषण एव ग्राही होनेके कारण शीताद (इस्तिरखाऽलिस्सा), दाँत हिलना-चलदत (तहर्रुक दर्दा) और मुखपाकमे इसका गण्डूष, मजन और अवचूर्णनकी भाँति उपयोग करते है। इसके क ढेसे गडूप करनेसे उष्ण कठशोथ आराम होता है। चिरज अतिसार और प्रवाहिकामें इसका चूर्ण या काढा पिलाया जाता है। गुद-भ्रशमे इसका अवचूर्णन करते और इसके काढेमे रोगीको बिठाते है। उपशोषण और रक्तस्तभन होनेसे योनिसे विविध प्रकारके द्रव स्रवित होने (सैलानुर्रिह्म), अत्यत रज स्राव होने और रक्तार्शको रोकनेके लिए भी इसके काढे-से कटिस्नान (आबजन) कराया जाता और आतरिकरूपसे इसका चूर्ण खिलाया जाता है। हस्तिमेह (सलसुलबौल)में भी इसके काढेसे कटिस्नान (आवजन) कराते है। वच्चोको कालीखाँसीमे अजवायन और कालानमकके साथ इसका काढा बनाकर पिलाया जाता है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। निवारण—अदरक। प्रतिनिधि—गुलावपुष्पकेसर (जरैवर्द)। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक।

अनारकी जड़की छाल (दाड़िम मूलत्वक्)—

नाम—(फा०) पोस्त बेखअनार।

वक्तव्य—अनारके वृक्षकी छाल भी यद्यपि गुणमे इसके समान है, तथापि यह उससे अधिक वीर्यवान् है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—उदरकृमिनाशन (Taenifuge), कठशोथ एव शूलहर। अधिक प्रमाणमें सेवन करनेसे विरेचनीय है।

उपयोग—रात्रिमे रोगीको ११.५ ग्राम (१ तोला) एरडतेल पिलाये। प्रातःकाल अनारकी जडकी छालका काढा ५-५ तोलेकी मात्रामे १-१ घटा वाद चार-बार पिलायें। अतिम मात्रा देनेसे दो घटा बाद २॥-३ तोला रेंडीका तेल पिलाये। इससे उदरकृमि विशेषत स्कन्धाकारकृमि (कद्दूदाना) मरकर निकल जाता है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५—७ माशा)।

अनारदाना (दाडिम बीज)—

नाम—(हिं०) अनारके बीज, दाडमी, (अ०) हब्बुर्रुम्मान, (फा०) अनारदाना, तुख्मअनार।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—दीपन, पाचन, ग्राही, रोचक, क्षुधाजनक, पित्तसंशमन और हृद्य है।

उपयोग—आमाशयको शक्ति देने (दीपन-पाचन)के लिए खट्टे अनारके दाने समभाग मुनक्का और आधा भाग कालाजीरा इनको एकत्र पीसकर खानाके साथ खाना चाहिए। यह पैत्तिक दोषोको आमाशयादिपर नही गिरने देता और पित्तज वमन तथा मिचलीको रोकता है। पहाडी अनारका दाना पित्तज विकारोमे लाभकारी है, पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता, हृदयको शक्ति देता और रेचनौषधोके दोषपरिहारके लिए उपयोग किया जाता है। अहितकर—शीतप्रकृतिको। निवारण—जीरा। प्रतिनिधि—सुमाक। मात्रा—६ ग्राम से ९ ग्राम (६ माशा से ९ माशा) तक।

अनारका फूल (दाडिमपुष्प)

नाम—(फा०) गुलअनार। (अ०) वर्दुर्रुम्मान। यह गुलनारसे भिन्न है।

वक्तव्य—फलनेवाले अनारकी कलीको अरबीमें अक्मारुर्रुम्मान, जुवज या जुवजुर्रुम्मान कहते है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—सग्राही, रक्तस्तभन और उपशोषण है।

उपयोग—रक्तस्तभन होनेसे यदि दाँतकी जडोसे रक्त वह रहा हो तो इसके फूलोको पीसकर मलनेसे वह बद हो जाता है। सग्राही और उपशोषण होनेसे यह (निकलते ही हवाके झकोलेसे गिरी हुई कलियाँ) क्षतोमें हितकारी है, विशेषकर जलाई हुई, क्योकि जलानेसे इनका उपशोषण गुण बढ जाता है। शिशुके वयानुसार अनारकी तीनसे सात कलियाँ बबूलके हरे पत्र और थोडा जीरा मिलाकर जलमे पीस-छानकर पत्थर गरम करके उसमे बुझाकर स्तन्यपायी या उससे बडे बालकको पिला दे। तीन या सात दिन तक इसी तरह पिलाते रहे, तो कैसे ही पुराने दस्त हो वह बन्द हो जाते है, चाहे वे दाँत निकलनेसे हो अथवा किसी अन्य कारणसे।

गुलनार—

नाम—(फा०) गुलनार, गुल अनार, अनारगली। वक्तव्य—'जुलनार' इसका अरबी रूपान्तर है। (यू०) Balaustion (D I 154)।

वर्णन—यह साधारण अनारके पेडका फूल नही, अपितु उसके नर वृक्षका फूल है जिसमे फल नही लगता। फूलके रगके विचारसे यह तीन प्रकारका होता है—(१) लाल, (२) सफेद, और (३) काला। बागी अर्थात् उद्यानज (बुस्तानी) और वन्य (जगली) भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसमें बागीकी अपेक्षया जगली अधिक वीर्यवान् होता है। मात्र गुलनार शब्दसे इसीका फूल विवक्षित होता है। सबमे उत्कृष्टतर फारसी या मिश्री है।

कल्प तथा योग—कुर्स गुलनार।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमे रूक्ष है। लखनऊवालोके मतसे दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—दोषविलोमकर्ता, ग्राही, रूक्षण और रक्तस्तम्भन।

उपयोग—दोषविलोमकर्ता होनेसे सूजन उत्पन्न होते ही उसपर इसका लेप करते है। यदि दाँत हिलते हो अथवा उनसे रक्तस्राव होता हो, तो शीतसग्राही एव रक्तस्तभन होनेके कारण अकेले या अन्य द्रव्योके साथ इसका

चूर्ण बनाकर मजन कराते हैं। रक्तनिष्ठीवन, पित्त एव रक्तातिसार और अतिरजमें इसका चूर्ण सेवन कराते हैं और इसके काढेमें रोगीको विठाते (कटिस्नान कराते) हैं। गुदभ्रशमे इसके चूर्णका अवचूर्णन करते और इसके काढेसे गुद-प्रक्षालन कराते हैं। यदि योनिसे विविध प्रकारका द्रव स्रावित होता (सैलानुर्रिहम) है, अर्थात् विविध प्रकारके प्रदरमें संग्राही एव रूक्ष होनेसे इसको खिलाते और इसकी वर्ति बनाकर योनिमें स्थापन करते (रखते) हैं। उप-शोपण होनेसे मुखपाक और व्रणो (जख्म)पर इसका अवचूर्णन करते हैं। अहितकर—शिर शूलकारक और विवधकारक (या अभिष्यदी)। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—अनारकी कली या छाल और जुफ्तवलूत। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

•

(२०) अनीसून।

फैमिली . ऊम्बेल्लीफेरे (Family Umbelliferae)

नाम—(यू०) Anison (D. 3 58), (अ०) अनीसूँ, अनीसून, वज्रराजियानज रूमी (शामी), हब्बुल् हुलुव्व, कमूनुल् हुलुव्व, (फा०) वादियान रूमी (शामी), जीरे रूमी, (वम्व) एर्वादोप, (ले०) **एनिसाई फ्रुक्टुस** (Anisi-Fructus), (अ०) एनिस (Anise), एनि-सीड (Ani-seed), एनिस-फ्रूट (Anise Fruit)।

वक्तव्य—(१) यहाँ दिये गए नाम सौंफजातीय एक क्षुद्र वनस्पतिके बीजके हैं। उक्त वनस्पतिको वैज्ञानिक परिभाषामे पिम्पिनेला एनिसुम् (**Pimpinella anisum** Linn) कहते हैं। परन्तु डॉक्टर **मोहीउद्दीनशरीफके** अनुसार अनीसूँ इस वनस्पतिके बीज न होकर इसी जातिके एक अन्य भेदके (वनस्पतिके) बीज हैं, जिसको वैज्ञानिक परिभाषामे मभवत पिम्पिनेला इन्वाल्युक्रेटा (*Pimpinella involucrata*) कहते हैं।[1] 'एर्वादोष' पुर्तगाली हर्बा डोस' (Herba doce)का अपभ्रश है। अनीसूँ, यूनानी अनीसोन (Anison)का अरबी रूपान्तर मात्र है।

(२) अनीसून अति प्राचीन औषधियोमेसे है। सुतरा यूनानी हकीम **'सावफरिस्तुस'** और **'दीसकूरीदूस'** ने तथा रूमी और इदरीसी हकीम 'प्लानी' ने भी इसका उल्लेख किया है। परन्तु प्राचीन भारतीयोको उक्त औषधि अज्ञात थी। यही कारण है, कि वैद्यकीय सस्कृत ग्रन्थोमें उक्त ओपधिका उल्लेख नही किया गया मिलता और न इसका कोई सस्कृत नाम है।

उत्पत्तिस्थान—मूल उत्पत्तिस्थान अफरीका, मिश्र और लीवाट है, यूरूप और फारसमे भी होता है। फारससे वम्बईमे इसका आयात होता है। अब उत्तरी भारतवर्षमे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह सौफकी ही जातिकी एक क्षुद्र वनस्पतिके बीज (फल) हैं जो सौफके दानेसे छोटे होते हैं। ये उसमे अधिक हरे सफेदी और पिलाई लिए अथवा कालाई लिए पीले लट्वाकार (Ovate) लगभग ५ मि०मी० ($\frac{२}{१०}$ इ०) लवे, १० दतुर पर्शुकायुक्त प्राय डडीयुक्त होते हैं। स्वाद कुछ-कुछ तिक्त और तेज तथा गध मनोरम होती है (मतातरसे स्वाद मधुर, गध विशिष्ट)।

उपयुक्त अग—अधिकतया इसके बीज (फल-अनीसूँ) औषधके काममे लिए जाते हैं। गुणकर्ममे यह सौफके समान है।

रासायनिक सगठन—फल (बीज)में २ से ३ प्रतिशत एक उत्पत् तेल होता है, जिसको अनीसूँका तेल

---

१ देखो Supplement to the Pharmacopoeia of India पृ० १९९।

(Oil of Anise or Ani-seed) कहते है। इसमे अनीसूँ सत्व (ऐनीथोल Anethol) या एक प्रकारका कपूर (एनिस कैम्फर) ८० प्रतिशत, एनिस ऐल्डीहाइड एव मीथिल चविकोल आदि होते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष। लखनऊवालोके मतमे रूक्ष तीसरे दर्जेमे। दिल्लीवालोके मतसे पहलेमे गर्म और दूसरेमे खुश्क है।

गुण-कर्म—प्रमाथी, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, श्लेष्मनिस्सारक, मूत्र एव आर्तवजनन और स्तन्यजनन। उदरशूल एव वातिक वृक्कशूल जैसे रोगोमे वायुके उत्सर्गके लिए इसका पुष्कल उपयोग करते है, तथा श्वासकासमे कफोत्सर्गके लिए इसका उपयोग होता है। मूत्र, आर्तव और स्तन्यके प्रवर्तनके लिए इसको खिलाते है। मरोड उत्पन्न करनेवाली विरेचनीय औपधियोके साथ उक्त दोपोके निवारणके लिए इसको सम्मिलित करते है। प्रवर्तनकारी (मुदिर्र) होनेके कारण वृक्क, वस्ति, गर्भाशय, यकृत् और प्लीहाके अवरोधोके उद्घाटनके लिए इसका उपयोग कराया जाता है। गुलरोगनमे पकाकर कानमे डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। अहितकर—शिर शूलजनक है। निवारण—सिकजबीन। प्रतिनिधि—सौफ और सोआ। मात्रा—२ ग्रामसे ५ ग्राम (२ माशासे ५ माशा) तक।

कल्प या योग—क्वाथ, अर्क, तेल, घनसत्व (रुब्ब), माजून, शर्वत, चूर्ण, अनुलेपन, योनिवर्ति (हमूल) और धूपन (धूनी) आदि।

नव्यमत—अनीसूनके फल एव तेलकी सुगन्धि तथा दीपन, पाचन और वायुनिस्सारक प्रभावका बडा आदर किया जाता है। अनीसून अजीर्ण रोगकी एक विश्वस्त औपध है। अन्य समस्त उत्पत् तेलोके समान इसका तेल उत्तेजक एव कण्ठ्य है। आध्मानजनित उदरशूलमे उदर तथा शिर शूलकी अवस्थामे सिरमे इसका स्थानीय प्रयोग होता है। इसके बीज सुपारीके साथ चबाये जाते है। इसकी चटनी भोजनके साथ खाई जाती है। अन्न विकार एव वायु-प्रणालीय प्रतिश्यायमे भी, विशेषकर वालकोमे जबकि उग्रावस्था बीत चुकी हो, उस समय यह उपयोगी होता है। अनीसूनके बीज १।२ ड्राम, चीनी तथा हड प्रत्येक १-१ ड्राम-इनका चूर्ण उत्तम मृदुरेचन है। अनीसूनके बीज और कराविया (Caraway) को समप्रमाणमें लेकर और भूनकर चायकी चम्मच भरकी मात्रामे भोजनोपरान्त सेवन करे। यह उत्तम पाचक है। मात्रा—चूर्ण किये हुए बीज ५-१५ रत्ती, फाट और अर्क (८० में १) १।२ से १ छटाक, तेल ४ से २० बूँद चीनीके ऊपर डालकर।

•

(२१) अफ्तीमून।

फैमिली : कान्वॉल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(लता) (हिं०) विलायती अकासवेल, विलायती अमरवेल, (यू०) Epithumon (D 4 176), (अ०) अफतीमून, सबुअस्शार, (फा) अफतीमूने विलायती, (ले०) कुस्कुटा एउरोपेआ (Cuscuta europea Linn)। (बीज) (हिं०) विलायती अकासवेलके बीज, (अ०) कुशूम, कसू (—शू) स, वज्रुल् कुशूस, (फा०) तुख्मे कसूम (कुशूस), विर्श, (सुर०) दीनार।

वक्तव्य—अफतीमून यूनानी 'एपिथिमून Epithymon' सज्ञाका अरवी रूपान्तर है। प्राचीन यूनानियोका एपिथिमून कुस्कूटा एपिथिमुम (*Cuscuta epithymum* Linn Murr.) वा लेसर डॉडर (Lesser Dodder) अथवा डेविल्स गट (Devil's Gut) था। परन्तु भारतीय औपधिमें प्रयुक्त अफ्तीमून, जिसका आयात यहाँ फारसमे

होता है, उसकी वडी जाति प्रतीत होती ह। उसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। 'कुशूस' अरबीमे अकासवँवर (Dodders)को कहते हैं। इसीसे यूनानी कस्सूथा (*Kassutha*) और लैटिन कुस्कुटा (*Cuscuta*) सज्ञाएँ व्युत्पन्न हुई है। परन्तु भारतीय बाजारोमे उक्त सज्ञाका व्यवहार अकासवँवर (Cuscuta) जातीय एक वेलके फलके अर्थमें होता है, जिसका आयात यहाँ फारससे होता है। इसे 'तुख्मे कुसूस' भी कहते है। मख्जनुल् अदवियाके लेखक मीरमुहम्मद हुसैन इसे अकाशवेल (भारतीय) समझते हैं। परन्तु उसका फल फारससे आये हुए फलकी अपेक्षया वडा होता है। इससे ज्ञात होता है कि यह भारतीय अकाशवेलका फल नही, अपितु उसीकी कोई अन्य विदेशीय जाति जैसे कुस्कुटा हायलिना (C **hyalina** Roth) या कु० चायनेन्सिस (C **chinensis** Lam) अथवा कु० प्लेनिफ्लोरा (C planiflora Tenore)मेसे किसी एकके अथवा सभवत सभीके मिले हुए फल है। अस्तु, लेखकने भी इसीके साथ उसका भी यही वर्णन दे दिया है।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप, पश्चिम तथा मध्य एशिया और फारस।

वर्णन—(अफ्तीमून) यह अकासवेलकी तरह, किन्तु उससे अधिक पतला धागेके समान लाल व पिलाई लिए लाल रग का होता है। कहते हैं कि इसमे पत्र, पुष्प और बीज भी होते हैं। पत्र अत्यन्त क्षुद्र, बीज राईके दानोसे भी वारीक, पिलाई लिए लाल रगके होते हैं। फूलकी पखुडियाँ बहुत बारीक बालकी तरह कालाई लिए लालरगकी होती हैं। यह जितना ही वारीक और लाल हो, उतना ही उत्तम है। यह अकासवेलकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् और निर्गध होती है। स्वाद नमकीन और किंचित् कटु।

कुशूस—यह अकासवेलकी तरहकी पत्रमूलरहित एक विदेशी लता है, जिसकी शाखाएँ डोरेकी तरह बारीक पिलाई या कालाई लिए होती है। अन्यान्य पेडो और झाडियोपर इसकी शाखाएँ फैल जाती है और नीचे-ऊपर उलझी होती है। स्वादमे यह कडुई और फीकी (विकसा) होती है। इसमे तिक्त वीर्य प्रधान होता है। इसमे (तथा बीजोमे) तीन वर्षतक वीर्य रहता ह। इसके गुण अफतीमूनके सदृश वर्णन किये गये है। इसके सभी प्रत्यगसे वीज अधिक वीर्यवान् है। (तुख्म कुशूस—फारससे प्राप्त बीजमें उस पौधेके क्षुद्र एव आयताकर पत्र और काँटे मिले होते हैं, जिसपर इसकी वेल फैली होती है, तथा उसके काडके कुछ अश और पुष्प भी मिले-जुले पाये जाते है। प्रत्येक फलकोपमे चार बीज होते है जो हलके भूरे, एक ओर उन्नतोदर और दूसरे ओर नतोदर, लगभग मूलीके बीजके आकारके और लगभग गोलाकार एक फलकोपके भीतर बद होते है। स्वादमे ये तिक्त होते है।

उपयुक्त अग—पचाग और बीज (तुख्म कुसूस)।

रासायनिक सगठन—पचागमें क्वरसेटिन (Quercetin), राल, एक क्षारीय सत्व और कुस्कुटीन (Cuscutine), बीजमें क्वरसेटिनके अतिरिक्त ग्लूकोसाइडल राल, एक क्षारसत्व, एक कपाय पदार्थ, मोम और तेल होते हैं।

कल्प तथा योग—जोसाँदा वा मत्वूख अफ्तीमून, अतरीफल अफ्तीमून, शर्वत दीनार (जदीद) और हब्ब अफ्तीमून।

अफ्तीमून

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण और दूसरे (मतातरसे तीसरे) दर्जेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म—तारल्यजनन (मुलत्तिफ) विलयन, प्रमाथी, वातानुलोमन, सौदा एव श्लेष्माका रेचनकर्ता और उदरकृमिनाशन है।

उपयोग—उन्माद, मद (मालिनखोलिया), मृगी और भयानक स्वप्न (कावूस) जैसे सौदावी रोगोंमे इसका पुष्कल उपयोग करते है। कोई-कोई हकीम मदाग्नि (जोफमेदा), यकृत्प्लीहदौर्बल्य, कामला और जीर्णज्वरमें भी इसका उपयोग करते है। इसका विशेष उपयोग सौदावी दोषोके उत्सर्गके लिए किया जाता है। इसको पोटलीमें बाँधकर जोशाँदा, खेसाँदामे डालते है। अहितकर—फुफ्फुसको। निवारण—कासनी और शुक्तमधु (सिकजवीन)। प्रतिनिधि—अफसतीन। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा तक।

कुशूस –

प्रकृति—पहले दजमे उष्ण और दूसरेमे रूक्ष।

गुणकर्म—तारल्यजनन (मुलत्तिफ), प्रमाथी, आशय (अह्शा), आमाशय एव यकृत्को बल देनेवाला, सर (प्रकृतिमार्दवकर), श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, जीर्णज्वरनाशक, मूत्रल और आर्तवजनन। उपयोग—यकृदामाशयशोथ, कामला और जीर्णकफज्वरोंमे तुख्मकसूसका पुष्कल उपयोग कराया जाता है। यह सूजन उतारता और कब्ज एवं जीर्णज्वरोको दूर करता है। इसके दोपतारल्यजनन (मुलत्तिफ) और प्रमाथी कर्म उक्त रोगोके निवारणमे सहायक होते है। इनका शार्कर (शर्बत दीनार) बनाकर भी उपयोग किया जाता है। यह यकृदामाशयको शक्ति प्रदान करता और जीर्णदोषसयुक्त ज्वरोमे लाभ पहुँचाता है। आर्तवजनन होनेके कारण यह आर्तवशोणित-प्रवर्तनकारी योगोमे सम्मिलित किया जाता है। कुशूस (विलायती अकाशवेल)को जलमे क्वाथकरके उससे सूजनपर सेक (बफारा) करते और उसीको हाथो से कुचलकर बाँध देते है। इससे सूजन और कडाई मिट जाती है और दर्द शान्त हो जाता है। अहितकर—फुफ्फुसको और आकुलताकारक है। निवारण—कतीरा और कासनी। प्रतिनिधि—अफसतीन। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

•

(२२) अफसंतीन।

फैमिली : काम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हि०, द०) विलायती अफसतीन, (अ०) अफसंतीन, खत्रक, (फा०) मरवा, मूयबखुशा, (रू०) अवस्तियून, (प०) मस्तियारा, (कु०) तीतपाती, (क०) टिटवीन, टिट्ठवन, (लै०) आर्टेमीसिआ आब्सिन्थिडम (**Artemisia absinthium** Linn), (अ०) दी एब्सिन्थ (The Absinth), वर्म वुड (Worm-wood), मगवर्ट (Mug-wort)।

वक्तव्य—'अफसतीन' यूनानी '**अप्सिन्थिओन (Apsinthion)**' या लेटिन '**आब्सिन्थिडम**' का अरबी रूपान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अफरीका, दक्षिण अमरीका, यूरोपके कतिपय पहाडी प्रदेश, एशियामे साइबेरिया, मगोलिया, खुरासान (फारस), भारतवर्पके कतिपय पहाडो प्रदेश, कश्मीर, सीमाप्रात, नैपाल, कुल्लू, गढ़वाल आदि। अफसतीन हिन्दी (**Artemisia indica** Willd) इसका भारतीय भेद है।

वर्णन—यह 'चौहार' और 'दौना' की जातिकी एक क्षुद्र वनस्पति है। काड तृणकाडवत् सरल एव शाखामय २-२॥ फुट ऊँचा, शाखा सफेद रोईसे व्याप्त असख्य पत्रयुक्त, पत्र लगभग ५ से०मी०से ७ ५ सें०मी० (दो-तीन इच) लम्बे और ३ ७५ से० मी० (१॥ इच) चौडे लगभग तीन पक्षाकार-खडयुक्त, पत्रवृत तटपर किंचित् पक्षयुक्त, खण्ड रेखाकार और कुण्ठिताग्र, सातरके पत्रके समान, कोमल रेशमी सफेद रोइयोसे व्याप्त होनेके कारण रजतवर्णके प्रतीत होते है, पुष्प बाबूनाके फूलके समान उससे छोटे पिलाई लिए सफेद होते है और उसके मध्यमे एक प्रकारका पीलापन होता है। इसमे छोटे-छोटे दाने (फल) लगते है, जिनके भीतर इसपदके समान सूक्ष्म बीज भरे होते है। गध अतितीक्ष्ण एव अप्रिय और स्वाद अत्यत तिक्त होता है। नब्ती, रूमी और खुरासानी इत्यादि इसके अनेक भेद होते है।

उपयुक्त अग—पत्र और पुष्पयुक्त कोमल शाखा।

रासायनिक सगठन—इसमे एब्सिन्थिन (Absinthin) नामक एक अत्यत कटु, सफेदी या पिलाई लिए भूरे रंगका स्फटिकीय सत्व (ग्लूकोसाइड) होता है, जो सुरासार वा क्लोरोफॉर्ममे अत्यत विलेय, किन्तु ईथर या जलमे अल्प-विलेय है। अफसतीनके शीतकषायको टॅनिन द्वारा अध क्षेपित करनेसे एब्सिन्थिन प्राप्त होता है।

कल्प तथा योग—अर्क अफसतीन, मत्बूख अफसतीन, शर्बत अफसतीन, रुब्ब अफसतीन, हब्ब अफसंतीन आदि।

प्रकृति—प्रथम कक्षामे उष्ण और द्वितीय (मतातरमे तृतीय) कक्षामे रूक्ष।

गुण-कर्म—विलयन, प्रमाथी, मूत्रल, आर्तवजनन, उदरकृमिनाशन, वेदनास्थापन, दीपन, यकृद्बलदायक, मेध्य (मुकव्वी दिमाग) और ज्वरघ्न।

उपयोग—यकृत्प्लीहाके रोगो जैसे—यकृच्छोथ, प्लीहाशोथ, जलोदर और जीर्णज्वरोमे अफसतीन विपुल प्रयोगमे आता है। नियतकालिक (नौबती) ज्वरोमे वेग (बारी) रोकनेके लिए भी इसे देते है। मदाग्नि (जोफमेदा), कुपचन (जोफहज्म) और उदरज कृमि, विशेषत चुरु (चुरने) और गण्डूपदकृमि (केंचवे) को नष्ट करनेके लिए इसे पिलाते है। अनार्तव और कृच्छ्रार्तवमे इसका काढा उपयोग करते है। मस्तिष्कदौर्बल्य, मृगी, शिर शूल, कम्पवात, पक्षवध, अगघात अर्दित इत्यादि जैसे मस्तिष्क एव वातरोगोमे इसका उपयोग करते है। यह अर्शमे भी प्रयुक्त होती है। इसके काढेका वफारा देनेसे कर्णशूल आराम होता है। यकृच्छोथ और प्लीहाशोथमे मुनासिब औषधद्रव्योके साथ इसका लेप लगाते है। दोषयुक्त (मुरक्किब) और कफज्वरोमे इसका विशेष उपयोग होता है। अहितकर—शिर -शूलजनक। निवारण—अनारका शर्बत और अनीसूँ। मात्रा—२ ग्राम से ५ ग्राम (२ माशा से ५ माशा) तक।

नव्यमत—अफसतीनको गरम सिरकामे डुबोकर मोचग्राये हुए अथवा कुचले हुए स्थानके चारो ओर बाँधते है। आक्षेपनिवारणके लिए भी इस पौधेको कुचलकर निकाले हुए रसको सिरमे लगाते है। शिरोवेदनामें सिरको तथा सधिवात और आमवातमे सधियोको पूर्वोक्त विधि द्वारा सेकते भी है। एब्सिन्थियम् तिक्त आमाशयवलप्रद है। यह क्षुधाकी वृद्धि करता और पाचनशक्तिको बढाता है। अतएव अजीर्णरोगमे इसका उपयोग करते है। अपतन्त्रक, आक्षेप, अपस्मार, वातनाडीगत क्षोभ और वातनाडीदौर्बल्य (वातदौर्बल्य)मे तथा मानसिक श्रातिमे इसका व्यवहार होता है। कृमिघ्न प्रभावके लिए इसके शीतकषायकी वस्ति देते है। कृमिनि मारकरूपसे इस पौधेका तीक्ष्णक्वाथ प्रयुक्त होता है। बालकोकी शीतलामे इसका मदक्वाथ देते है। त्वग्रोगो एव दुष्टव्रणोमे टकोरकी भाँति इसका बाह्य प्रयोग होता है।

सिकोनाकी दर्यापतसे पूर्व, विषमज्वरोमे इसका अत्यधिक उपयोग होता था। वातसस्थानपर इसका प्रवल प्रभाव होता है। शिर शूल और इसके अन्य वातविकारोको उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तिसे कश्मीर तथा लद्दाखके यात्री भली-भाँति परिचित है। क्योकि जब वे देशके उस विस्तृत भूभागसे, जो इस पौधेसे आच्छादित है, यात्रा करते है, तब उनको यह महान् कष्ट सहन करना पडता है।

●

(२३) अमड़ा।

फैमिली : आनाकार्डिआसे (Family Anacardiaceae)

नाम—(हि०) अ(आ)मडा (सथा०), (फा०) दरख्ते मरियम्, (स०) आम्रात(क), (व०, वम्व०) आमडा, (द०) जगली आम, मरयमका फल, (गु०) जगली आंबो, अमेडा, (म०) आंबाडे, (प०) अबाडा, (था०) अमर, (लै०) **स्पॉडिआस मागिफेरा Spondias magifera** Willd. (पर्याय-स्पॉडिआस पीन्नाटा S **pinnata** Kurz), (अं०) हॉग प्लम् (Hog Plum)।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष समस्त भारतवर्षमे जगली पाये जाते, या लगाये जाते है ।

वर्णन—अमडा नामके वृक्षका प्रसिद्ध फल है । यह छोटे आमके समान और गोपुच्छाकृतिका होता है । कच्चेपर हरा और खट्टा, तथा पकने पर पोला और खटमिट्ठा हो जाता है । देशी, विदेशी भेदसे यह दो प्रकारका होता है ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे खुश्क और दूसरेमे सर्द । आयुर्वेदके मतसे कच्चा उष्णवीर्य और पका शीतवीर्य है । गुणकर्म—सग्राही (काबिज) और पित्तशामक । उपयोग—कच्चे अमडेका अचार डालते और पकाकर सालन आदिकी भाँति काममे लेते हैं । उष्ण (पित्त) प्रकृति और पैत्तिक रोगोमें लाभकारी हैं, तथा पित्तज अतिसारोको वद करता है । अहितकर—शीतप्रकृतिवालोको । निवारण—कालीमिर्च । मात्रा—जितना पच सके ।

आयुर्वेदीय मत—अमडेका फल कसैला, मीठा, शीतवीर्य, किंचित् वायुकारक, भारी, वृष्य, पित्तकारक और अग्निदीपक है (ध० नि०) । कच्चा अमडा कसैला, खट्टा, हृदय तथा कठको हर्षकारक है । और पका खट-मिट्ठा, चिकना और कफपित्तनाशक है (रा० नि०) । कच्चा अमडा खट्टा, वातनाशक, भारी, उष्णवीर्य, रुचिकर और रेचक है । पक्का अमडा रसमे कसैला, पाकमे मधुर, शीतल, तृप्तिजनक, कफजनक, स्निग्ध, वृष्य, वृहण, विष्टम्भी, भारी और वल्य है तथा वायु, पित्त, क्षत, दाह, क्षय एव रक्तदोपनाशक है (भा० प्र०) ।

नव्यमत—कच्चे फलका चूर्ण आमाशयवलप्रद (दीपन-पाचन) और आमाशयकी निर्वलता (अग्निमान्द्य)मे हुए अजीर्णकी सामान्य दशाओमे उपयोगी है, और उन सभी रोगोमे जिनमे जेन्शन और कलवा प्रयुक्त होते है, इसका वल्यरूपसे उपयोग होता है ।

●

(२४) अमरूद ।

फैमिली : मीर्टासे (Family . Myrtaceae)

नाम—(हिं०) अमरूद (-त), सफरी, सफरी आम, (फा०) अमरूद हिन्दी (तिब्बगुर्बा), (म०) पेरू, (गु०) जामफल, (व०) पियारा, (लें०) प्सीडिडम् गुआजावा (**Psidium guajava** Linn), (अ०) दी ग्वावा (The Guava), पीयर या एप्ल ग्वावा (Pear or Apple Guava) । वक्तव्य—फारसीमे अमरूद "नासपाती"को कहते है । अमरूद भी एक विदेशागत (Exotic) वनस्पति है, जो अब भारतवर्पमे सर्वत्र व्यापक हो गयी है । इसीलिए प्राचीन आयुर्वेद-यूनानी साहित्य मे इसका उल्लेख नही है ।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिका । यह प्राय सम्पूर्ण भारतवर्ष में लगाया जाता है और खूब होता है ।

वर्णन और भेद—यह एक मधुर, स्वादिष्ट एव प्रसिद्ध फल है जो दो प्रकार का होता है—(१) सफेद (P **Pyriferum** Linn) और (२) लाल (P. **Pomiferum** Linn) ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और तर ।

गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, हृद्य, भोजनसे पूर्व ग्राही (काबिज) और भोजनोत्तर सर (मुलय्यिन) । उपयोग—अमरूद खानेसे मन प्रसाद और हृदयको शक्ति प्राप्त होती है । यह जीवनीय (पुष्टिकर) भी है । अधिक प्रयोगसे यह आटोप (कराकिर) उत्पन्न करता है । कोई-कोई इसे कासमे लाभदायक वतलाते हैं । अहितकर—आनाहकारक और शूलजनक । निवारण—सोठ, कालीमिर्च और सेधानमक इत्यादि । प्रतिनिधि—सौमनस्यजनन-कर्ममे नासपाती और सेव । मात्रा—जितना पच सके ।

आयुर्वेदीय मत—अमरूद कसैला, मधुर, तथा खट्टा है । पका अमरूद स्वादिष्ट होता है । यह वीर्यदायक, वात-पित्तघ्न, भारी, शीतल तथा कफका स्थान है, और भ्रम, दाह और मूर्च्छाको नष्ट करनेवाला है (अभि० नि० ख० १) ।

नव्यमत—छाल सग्राही, ज्वरघ्न और आक्षेपहर तथा पत्र सग्राही और फल कोष्ठमृदुकर हैं। इसका फल-त्वक्युक्त खाना चाहिए। बीज हानिकर हैं। फलकी जेली हृदयबलदायक और मलावरोध-निवारक है। अपक्व फल अतिसारमे प्रयुक्त है। गैरड (Gairod) ने रक्तवातमे इसकी बडी प्रशसा की है। वह जल जिसमे इसके फल तर किए गये हो, बहुमूत्रजनित तृषाके लिए उत्तम हैं। विसूचिकाजन्य छर्दि और अतिसार बद करनेके लिए इसकी जड-की छालका काढा देते हैं। शीताद (स्कर्वी) और दूषित व्रणमे तथा सूजे हुए मूसढोमे मुखधावनरूपसे इसके काढे-का लाभदायक प्रयोग होता है।

●

(२५) अमलतास।

फैमिली : लेगूमिनोसे (Family Leguminoseae)

नाम—(हिं०) अमलतास, सियरलठिया, सिगटलउरिया, (अ०) खियारशबर (इ० बै०), फलूस, किसाऽ-हिंदी, खर्नूब हिंदी, (फा०) खियारचंबर (म०) आरग्वध, (ब०) सोदाल, (म०) बाहवा, (गु०) गरमालो, (मा०) किरमाल, गिरमालो, (प०) गिर्वनली (मिश्र) छिमकणी, (ता०) कोड्डे, (ते०) आरग्वध, (मल०) कणिकोन्ना, (क०) फलूस (लै०) कास्सिओ फीस्टुला (Cassia fistula Linn), (अ०) ड्रमस्टिक (Drum Stick), पुडिंग स्टिक (Pudding Stick), पर्जिंग कास्सिया (Purging Cassia)। फलत्वक्–(अ०) कश्र खियारशबर, (फा०) पोस्त अमलतास। फलमज्जा—(अ०) मग्ज फलूस खियारशबर, (लै०) कास्सिई पल्पा (Cassiac Pulpa), (अ०) केशिया पल्पा (Cassia pulpa)।

वक्तव्य—अमलतासके वृक्षका मूल उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। अतएव प्राचीन भारतीयोको इसका ज्ञान था। परन्तु प्राचीन यूनानियोको इसका ज्ञान नही था। कदाचित् उत्तरकालीन यूनानियोको अरबोके द्वारा और अरबोको भारतीयोके द्वारा इसका ज्ञान हुआ, जिसके प्रमाण किसाऽहिन्दा एव खर्नूब हिन्दा आदि सज्ञाएँ है।

उत्पत्तिस्थान—प्राय समस्त भारतवर्ष। पश्चिम और पूर्वी भारतीय द्वीपसमूह, लका, मलाया, चीन और बर्मा इत्यादि तथा ब्राजील, मिश्र, अफरीकाके उष्ण प्रदेश।

वर्णन – यह एक बडे वृक्ष की प्रसिद्ध फली है, जो एक हाथ या उससे भी अधिक लबी, मजबूत, काष्ठीय, सवृत, नोकदार और लगभग २५ से० मी० (१ इच) व्यासकी होती है। पकने पर यह काली हो जाती है। इसके भीतर थोडी-थोडी दूरी पर आडेरुख पैसेके बराबर परत (फलूस) होते है, जिनपर अफीमके समान एक काले रगका पदार्थ (अस्ले खियारशबर) लगा होता है। यह परत मग्ज अमलतास या मग्ज फलूस खियारशबर के नामसे प्रसिद्ध है। यह चिपचिपा, मधुर एव दुर्गंधयुक्त होता है। ज्यूँही फल पकता है, गूदा सिकुडता है और हिलाने पर बीजका शब्द सुनाई देता है। फलका ऊपरी भाग अर्थात् छिलका (पोस्त अमलतास) मसृण, पकने पर गभीर धूसरवर्णका और कडा होता है। फूल पीले, सुगधित एव लबे, अवनत, अशाख पुष्पदण्डपर स्थित होते हैं।

उपयुक्त अग—फलमज्जा, फलत्वक्, मूल, पत्र और पुष्प।

रासायनिक सगठन—फलमज्जामे शर्करा ६० प्रतिशत, र्‌हीइन (Rhein), लबाब, सग्राही द्रव्य, ग्लूटीन (सरेश), रजक द्रव्य, पेक्टिन, कैल्सियम आक्जेलेट, भस्म, निर्यास और जल होता है।

कल्प तथा योग—गुलकद खियारशबर और लऊक खियारशबर।

फलमज्जा—

प्रकृति—पहले दर्जेमे उष्ण एव तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (च०) है।

गुण-कर्म—उर मार्दवकर (सारक), रेचन और श्वयथु-विलयन।

उपयोग—अन्य योग्य औषधद्रव्योंके साथ यह प्रत्येक दोष (दोषत्रय)का मरोड़रहित विरेचक है। इसका वय एवं प्रत्येक दशामें यहाँतक कि गर्भवती स्त्रियोंका भी इसका सेवन करा सकते हैं। कास, श्वास और वक्षःस्थल (सीना)की कर्कशता (खुश्की) दूर करनेके लिए इसका अवलेह बनाकर उपयोग करते हैं। सूजन उतारने(श्वयथु-विलयन)के लिए तथा आमवात एवं वातरक्तमें भी इसका लेप लगाते हैं। यह कामला, यकृदवरोध, यकृच्छोथ और उष्ण (पित्तज)ज्वरोंमें उपयोग किया जाता है। कण्ठशोथ, उदाहरणतः खुनाक आदिमें काकमाची (मकोय)के स्वरस या गोदुग्धके साथ इसका काढा बनाकर गंडूष किया जाता है। कुछ लोग अमलतासके फूलोंका गुलकंद (पुष्पखंड) और कच्ची फलीका मुरब्बा (फलखंड) कास और मलावरोध (कब्ज)में प्रयुक्त करते हैं। कहते हैं कि, क्वाथ करने(पकाने)से इसका वीर्य (प्रभाव) कम हो जाता है, अतएव क्वाथको आगपरसे नीचे उतारकर पीछे इसमें अमलतासका गूदा मिलाते हैं। अमलतासका गूदा देरतक आँतोंमें चिपका रहता है। इसलिए इसको थोड़ा बादामका तेल लगाकर उपयोगमें लेना चाहिए। अहितकर—मरोड़ और प्रवाहण(कुंथन)जनक। निवारण—मस्तगी, अनीसूँ और स्नेह। प्रतिनिधि—निशोथ और यवासशर्करा रेचनके लिए। मात्रा—२ तोलासे ४ तोला तक।

फलत्वक् (पोस्त अमलतास)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म—अमलतासके छिलकाको अनार्तव एवं कृच्छ्रार्तवमें अकेला या यथोचित औषधद्रव्योंके साथ काढा करके देते हैं। गर्भ और अपरा-निस्सारण (आविजनन) तथा प्रसवसौकर्यके लिए भी इसका क्वाथ करके पिलाते हैं। अहितकर—गर्भपातन। मात्रा—६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अमलतास मधुर, तिक्त, मृदु, शीतवीर्य, गुरु, मृदुरेचन रुचिकारक तथा कुष्ठ, कण्डू, ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त, उदावर्त तथा कफका नाश करनेवाला और ज्वरमें कोष्ठशुद्धिके लिए उत्तम है। यह मृदु और अनपायि (किसी प्रकारकी हानि न करनेवाला) होनेसे बालक, वृद्ध और क्षतक्षीण और सुकुमारोंके विरेचनके लिए प्रशस्त है (च०सू०अ० २,४,२५, वि०अ० ८, क०अ० ८, सु०सू० अ० ३८, ३९ भा०प्र०)।

नव्यमत—अमलतास आनुलोमिक, दाहशामक और वेदनास्थापन है। रक्तमें उष्णता बढी हो और शरीरमें मलसंचय होकर वातरक्त, आमवात आदि रोग हुए हो, तब अमलतास विरेचनके लिए देते हैं। पित्तकी प्रधानता हो तो इसके साथ इमली देते हैं। शीतकी प्रधानता हो तो इसके साथ निसोथ देते हैं। यकृत्की क्रिया ठीक न होती हो, तब उसे मकोयके साथ देते हैं। व्रणशोथ, वातरक्त और आमवातके शोथमें गूदा (और पत्ती)का लेप करते हैं। गले की ग्रंथि सूजकर पानी गलेमें न उतरता हो तब १ तोला इसकी छालका काढा करके थोड़ा-थोड़ा मुँहमें डालते हैं। इससे ग्रन्थिशोथ शीघ्र उतरता है।

●

(२६) अमलबेद।

फैमिली · गुट्टीफेरी (Family · Guttiferae)

नाम—(हिं०) अमलबेद(–त), (बं०) थैकल, (म०) अम्लवेतस, (नें०) चुकवो, (लें०) गार्सीनिया पेडुकुलाटा (**Garcinia pedunculata** Roxb.)।

वक्तव्य—बंगीय वैद्योंका यह अमलवेत सम्भवतः यूनानी निघंटुओंका "अमलबेद" है। परन्तु आयुर्वेदोक्त "अम्लवेतस"से बाजारमें मिलनेवाला गुच्छाकृति पदार्थ (चोटीसी गुथी हुई वस्तु)का ग्रहण होता है। यह रेवदचीनी-की मुरझाई हुई शाखायें होती है, ऐसा कतिपय विशेषज्ञोंका मत है। सम्भवतः खट्टी और वेतकी आकृतिकी होनेसे

इसे "अम्लवेत" समझा जाने लगा। किंतु यहाँ ध्यानमे रखना चाहिए कि "वेतस" मे "वेत"का भ्रम नही होना चाहिए। वेतस वृक्ष जातीय वनस्पति है, जबकि वेत ग्रामीने फैमिलीका तृणजातीय वनस्पति होता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषत पूर्वोत्तर बगाल, शाहजहाँनाबाद, सिलहट कोचविहार आदि।

वर्णन—कोकम वा बडे नीबूकी जातिका एक रुचिदायक खट्टा फल जो गोल नासपातीके आकारका, किंतु उसकी अपेक्षया दुगुना या तिगुना बडा, कच्चेपर हरा और पकनेपर पीला और चिकना होता है। छिलका पतला होता है। इसके गूदेका रस अत्यत तीक्ष्ण एव खट्टा होता है। इसमे सूई गल जाती है। आयुर्वेदीय निघटुओमें भी अम्लेवतसके इस प्रकारके गुणका ("लोहसूची द्रवत्वकृत्") उल्लेख मिलता है।

उपयुक्त अग—फल (शुष्कफल = अमलवेद)।

रासायनिक सगठन—फलमे मॅलिक एसिड (Malic acid) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुणकर्म—दीपन, पाचन एव पित्तरक्तसशमन। उपयोग—इसका रस अधिकतया दीपन-पाचन चूर्णमे मिलाकर खिलाते है। नीबूके रसकी भाँति इसके रसके शर्वतमे पित्त और रक्तके उद्वेग (प्रकोप)का शमन होता है। मात्रा—स्वरस ६ ग्राममे १२ ग्राम (६ मासासे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अमलवेत अत्यत खट्टा, लघु, रूक्ष, भेदन, दीपन, अनुलोमन, वातकफहर, पित्तवर्धक, लोमहर्षण तथा हृद्रोग, शूल, गुल्म, विण्मूत्रदोष, प्लीहा, उदावर्त, हिचकी, आनाह, अरुचि, श्वास, खाँसी और अजीर्णका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ८, २५, भा० प्र०)।

•

(२७) अरडखरबूजा।

फैमिली कारीकासे (Family Caricaceae)

नाम—(हि०) अ(ए)रडखरबूजा (-ककडी), रेडखरबूजा, पपीता, पपैया, विलायती रेड, (अ०) शज्रतुल् वित्तीख, (फा०) दरख्त खुरपजा (खर्बुजा), (स०) एरडकर्कटी, मधुकर्कटी (नवीन), (ब०) पेपे, (म०) पपाया, (गु०) पोपैयु, झाडचीमडु, (सिंध) काठगिदरो, (ते०) बोप्पयी, (ता०) पप्पलि, पचलै, (मल०) पप्पायम्, कप्पलम, (लै०) कारिका पापाया (**Carica papaya** Linn), (अ०) पपाव (पपाया) ट्री (Papaw (Papaya) Tree।

वक्तव्य—स्पेनकी भाषामे 'पपीता' शब्दका प्रयोग कुचिला (स्ट्रिक्नोस) प्रजातिकी एक अन्य विषैली ओषधिके अर्थमे होता है। उसका विवरण आगे 'पपीता'के शीर्षकमे किया गया है। यह दो भिन्न द्रव्यो का सयोग वशात् नामसमरूपिताका उदाहरण है। मुहीतआजममे पपय्य और मख्जनुल् अद्वियामे 'पफैया'के नामसे इसका उल्लेख किया गया है। गीलानी ने शरहमुफरदातकानूनमें 'वित्तीख'के वर्णनमे इसका उल्लेख किया है। कतिपय ग्रन्थोमे इसका अरबी, फारसी नाम "अब-हिंदी" लिखा है। परतु प्रामाणिक यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमे यह नाम नही मिला। पपीता एक बाह्यागत नवीन वनस्पति है। पहले यह अग्रेजोके बगलोमे लगाया हुआ मिलता था और धार्मिक भावनाओके भारतीय इसको अपवित्रमानते थे। किंतु इसके गुणोके कारण अब यह सर्वत्र भारतवर्षमे प्रसिद्ध एव प्रचुरतासे व्यवहृत किया जाता है। अब इसकी व्यावसायिक दृष्टिसे खेती भी की जाती है। बाह्यागत नवीन वनस्पति होनेके कारण पपीताका उल्लेख प्राचीन आयुर्वेदीय साहित्यमे नही मिलता। अतएव यहाँ जो सस्कृत नाम दिये गये है, वह आधुनिक है, इस बातको ध्यानमे रखना चाहिए। हिंदी नाम 'एरडखरबूजा' एव फारसी नाम

"दरख्त खुरब्जा" सस्कृत नामकी भाँति है, तथा शेप हिंदी नाम और अन्य भारतीय भापाओंके नाम 'पपाया'से व्युत्पन्न है।

इतिहास—ब्राजीलनिवासी इसको प्राचीनकालमे जानते थे, किंतु इसके दूधियारसके कृमिघ्नगुणका ज्ञान ईसवी सन् की सत्रहवी शतीमे हुआ। पश्चिमीय भारतीय द्वीपसमूहमें इसका मासपाचक प्रभाव प्राचीनकालसे ज्ञात है। परतु ज्ञात होता है कि पुर्तगालवासी जब इसे भारतवर्षमे लाये, तो उनसे भारतवासियोको भी इसके मासपाचक गुणका ज्ञान हुआ। भारतवर्षमे भी अनेक वर्षोसे मासको पकानेके लिए कच्चे पपीताका रस उसपर मलते है अथवा उसको पपीताकी पत्तीमें लपेट देते है। अस्तु, "मख्ज़नुल् अद्विया" और मुहीत आजम प्रभृति ग्रथोमे भी कच्चे पपीताके दूधका गुण-धर्म लिखा है, कि वह मासको पकाता और दूधको जमा देता है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम भारतीय द्वीप, मेक्सिकोकी खाडीके कूल और कदाचित् ब्राजीलका आदिवासी है। अब भारतवर्षमे भी सर्वत्र, विशेपत पश्चिमी भारतवर्षमे लगाया जाता है।

वर्णन—पपीतेके छोटे वृक्ष ६ से ९ मीटर या २०-३० फुट ऊँचे केवल लगाये हुए मिलते है। पत्र लबे टठल ९० सें० मी० या १ गज लबे युक्त, रेडके पत्रके समान पजाकार होते है, जिनसे वृक्षके सिरेपर छतरी-सी बन जाती है। इसमे स्त्री एव पु-पुष्प अलग-अलग गुच्छोमे आते है। पु-पुष्प श्वेत और स्त्री पुष्प पिलाई लिए होता है। किसी-किसी वृक्षमे केवल पुष्प आते तथा फल नही लगते। फल लबगोल, धारीधार, छोटे खरबूजाकी आकृतिका, कच्चा बाहरसे हरा अदरसे सफेद और पका पिलाई लिए हरा या ललाई लिए होता है। पकाफल स्वादमे मधुर होता है। इनमे भूरे या काले मरिचके दानोकी तरह गोल चिपचिपे बीज भरे होते है। उत्तमजातिके फलोमे अपेक्षाकृत बीज कम सख्यामे होते है। बीजोसे चमुरकीसी गध आती है। कच्चाफल एक प्रकारके गाढे दूधसे भरा होता है। पत्र और काण्डमे भी दूध होता है।

उपयुक्त अग—फल (कच्चा और पका), बीज, पत्र और दुधिया रस।

रासायनिक सगठन—इसके दुधिया रसमे एक प्रकारका ऐल्ब्युमिनीय पाचक किण्व होता है, जो दूधको जमा देता है। यह एक भाग २४० गुने मासको गलाकर नरम कर देता है। इसको पेपेन (**Papain**) या पपायो-टिन (**Papyotin**) कहते है। यह प्राणिज पेप्सिन (Pepsin) नामक पाचक द्रव्यके समान, प्रत्युत अनेक विषयोमे उससे भी उत्तम है। इसकी **प्रासिकी** विधि—वृक्षपर परिपूर्ण हुए कच्चे फलमे सीधे चीरे लगानेसे जो दूध जैसा निर्यास निकलता है, उसको इकट्ठाकर, धूपमे सुखा, शीशीमे भर, भलीभाँति डाट लगाकर रख लेवे और समयपर काममे लेवे। ताजे फलमे शर्करा, पेक्टिन, निम्ब्वम्ल या सिट्रिक एसिड (Citric acid), टार्टरिक एसिड, (Tartaric acid), मैलिक एसिड (Malic acid) और द्राक्षशर्करा प्रभृति पदार्थ पाये जाते है। फल विटामिनका उत्तम आश्रय है। बीजोमे एक प्रकारका कुस्वाद अप्रियगधी तेल होता है, जिसे पपैयाका तेल कहते है।

प्रकृति—पक्व पपीता उष्ण एव तर और अपक्व उष्ण एव रूक्ष।

उपयोग—पपीताके खानेसे आमाशय बलवान् होता है, खूब भूख लगती और अपान वायु खुलती है। यह खूब मूत्रका प्रवर्तन करता और अश्मरीका छेदन करता है। इसके उपयोगसे उदरज कृमि विशेपकर केचुये और कद्दूदाने मरकर निकल जाते है। मख्ज़नुलअद्विया और मुहीत आजममे लिखा है कि इसका दूध मासको कोमल करता और उसे गला देता (गुदाज करता) और दूधको जमा देता है। कच्चे पपीतासे जो दूध निकलता है, उसे तीन-चार बार लगानेसे दद्रु या पामा (जिसमे अत्यत खाज उठती हो और जिससे अधिक द्रवस्रवता हो) नष्ट होती है। इसमे कपडा भिगोकर योनिमे स्थापन करनेसे आर्तव जारी होता और गर्भपात हो जाता है। सर्वसाधारण लोग मासको शीघ्र गलानेके लिए पपीताका उपयोग करते है। इसका विशेप कर्म आहारपाचन है। अहितकर—उष्ण (पित्त) प्रकृतिमे तीक्ष्णताकी वृद्धि करता है। गर्भवती स्त्रियोको इसका उपयोग वर्जित है। मात्रा—५-६ तोला या जितना प्रकृतिक्षम हो।

नव्यमत—फलके दूधकी क्रिया आमाशय और आँतो, दोनोमे बराबर होती है। यह उत्तम पाचक, कृमिघ्न, वेदनास्थापन, स्तन्यजनन, कुष्ठघ्न और उदररोगहर है। इसकी क्रिया पेप्सीनसे उच्च कक्षाकी है। इसके पत्तोकी क्रिया हृदय पर डिजिटेलिसके समान होती है। इससे नाडीकी गति कम होती है, हृदयका स्पन्दन ठीक होता है, हृदयका आरामकाल बढता है, पसीना आता और मूत्रकी राशि बढती है। पत्ते हृदयबल्य और ज्वरघ्न है। इनमे थोडा पाचक गुण भी है। पचननलिकाके रोगोमे इसके दूधका अत्युत्तम उपयोग होता है। जिनको मास और शिम्बी-धान्य न पचते हो, उनको इसमे विशेष लाभ होता है। आमाशयका जीर्ण शोथ—व्रण और अर्बुद, अम्लपित्त तथा कुपचनरोगमे इसका दूध देते है। इससे आमाशयका गाढा कफ द्रवीभूत होता है, और अन्य उत्तमरीतिमे पचकर शीघ्र रक्त मे परिणत होता है। गोल उदरकृमिको मारनेके लिए इसका दूध १ तोला, मधु १ तोला और गरम जल २ तोला मिला, ठढा होनेपर इसे देते है और दो घटेके बाद एरडतैल देते है। इसमे कभी उदरमे मरोड हो तो नीबूके रसमें मिश्री मिलाकर देना चाहिए। यकृत् और प्लीहा बढकर कठिन हुए हो तो १ तोला ताजे दूधमे ३ माशा चीनी मिलाकर देते है। हृद्रोगमे पत्तियोका फाँट बनाकर देते है। ज्वरमे हृदय अशक्त होकर नाडीकी गति त्वरित हो, तो इस फाँटमे नाडी शात होती है, ज्वरका वेग कम होता है और मूत्र छूटता है। इस रोगमे पत्तियोके साथ मूत्रजनन, स्वेदजनन और सारक औषध देते है।

●

(२८) अरवी।

फेमिली : आरासे (Family Araceae)

नाम—(हिं०) अरवी, अरुई, घुइयाँ, (अ०) कलकास, (स०) आलुकी (भा० प्र०), (व०) काचू, (बम्ब०) कचुआलू, (लैं०) कोलोकासिआ एस्कूलेंटा **Colocasia esculenta**(L)Schott (पर्याय—*C antiquorum* Schott var *esculenta Schott*, *C esculenta* var *antiquorum* Hubb & Rehd)

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें कुछ नम भागोमे यह जगली होती है। शाकके लिए प्राय इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—एक उद्भिज्जकी प्रसिद्ध जड (कदमूल) है। कचालू इसीका एक भेद है। अधिकतया इसका उपयोग तरकारीकी भाँति किया जाता है। रासायनिक सगठन—कदमें सैपोटॉक्सिन (Sapotoxin) होता है। पत्र और पत्रवृत प्रोविटामिन 'A' और विटामिन 'C' के उत्तम प्रश्रय है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमे तर, वस्तुत यह सर्द एव तर है।

गुण-कर्म—शुक्रजनन, शुक्रसान्द्रकर, बृहणीय और लेसदार वा चिपकानेवाली (मुगरी) है।

उपयोग—इसको अधिकतया तरकारीकी भाँति अकेला या मासके साथ पकाकर खाते है। यह आध्मान-कारक (विष्टभी) एव दीर्घपाकी होती है। किन्तु इसके समप्रमाणमे सेवन करते रहनेसे शुक्रकी वृद्धि एव पुष्टि होती है तथा शरीर परिबृहित (स्थूल) होता है, पुन चाहे इसका शाक बनाकर खाया जाय अथवा इसका चूर्ण बनाकर औषधिकी भाँति सेवन किया जाय। चिकनाहट और लेसके कारण यह खाँसी और (सहज्ज अम्आऽ)मे लाभ पहुँचाती है। शुक्रजनन और शुक्रसान्द्रकरण इसके प्रधान गुणकर्म है। अहितकर—आध्मानकारक, दीर्घपाकी, अभिष्यदी और वायुकारक एव कफजनक है। निवारण—दालचीनी और लौंग। प्रतिनिधि—भिंडी। मात्रा—औषधरूपमे ५ से ७ ग्राम (५-७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—आलुकी (अरुई) वलकारक, स्निग्ध, गुरु, कफनाशक, विष्टम्भजनक और तेलमे तली हुई अरुई अत्यत रुचिकारक होती है (भा० प्र०)।

•

(२९) अरहर।

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) अरहर, रहर, तुवर, (अ०) शाज, (फा०) शाखु(ख़ू)ल, (स०) आढकी, तुवरी, (व०, म०) अडहर, (बम्ब०) तुवेर, (लै०) काजानुस काजान **Cajanus cajan** (L) Hith (पर्याय—*Cajanus indicus* Spr) (अ०) पिजेन पी (Pigeon Pea)।

उत्पत्तिस्थान—दालके लिए समस्त भारतवर्षमे इसकी सुविस्तृत खेती होती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध खाद्यान्न, जिसकी दाल पकाकर खाई जाती हैं। इसके एक भेदका नाम तूर वा तूअर है, जिसका दाना अरहरके दानेसे छोटा होता है।

रासायनिक सगठन—बीजमे दो ग्लोब्युलिन—कैजैनीन और कॉनकैजैनीन ये तत्त्व पाये जाते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम (मतातरमे सर्द) और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—आध्मानकारक, आनाहकारक (काबिज) और वाष्पोत्पादक या वायुकारक (मुबख्खिर)।

उपयोग—अरहर अधिकतया आहारकी भाँति प्रयुक्त होती है। इससे पोषणाश कम प्राप्त होता है। यह देरमे पचती है, और वायु एव अफारा उत्पन्न करती है। कोई-कोई हकीम अरहरकी पत्तियोका निचोड चेचकके फूलेपर लगाते है तथा अफीमका विष दूर करनेके लिए पिलाते है। कोई-कोई अरहरकी दालको पानीमे पीसकर दिनमे दो-बार वालखोरा (इन्द्रलुप्त)के ऊपर लेप करते है। दूसरे दिन उसे खुजलाकर सरसोका तेल लगाकर धूपमे वैठते है। इस प्रकार दो-तीन वारके प्रयोगसे वालखोरा दूर हो जाता है, और बाल निकल आते है। अरहरकी पत्तीको नीमकी पत्तीके साथ पीस-छानकर पीनेसे ववासीरमे आराम हो जाता है। सूजनको पकाकर फोडनेके लिए अरहरकी पत्तीको पीसकर उसके ऊपर लेप करते है। स्तनोमे दूधकी उत्पत्ति कम करनेके लिए बीज और पत्तियोको पीसकर और गरमकर उनके ऊपर लेप करते है। **अहितकर**—दीर्घपाकी और वायुकारक (मुबख्खिर)। **निवारण**—घी तथा खट्टे पदार्थ। **प्रतिनिधि**—प्राय गुणो, जैसे श्वयथुविलयन आदि में मसूर।

आयुर्वेदीय मत—आढकी कुछ-कुछ वायुको कुपित करनेवाली, कसैली, स्वादु, सग्राही, पाकमे कटु, शीतल तथा हलकी है, और मेद, कफ तथा रक्तपित्तमे इसका लेप एव सेक उपकारक है (ध० नि०)। राजनिघण्टुमे इन गुणोके अतिरिक्त यह मधुर, कफपित्तनाशक, रुचिकारक और भावप्रकाशके अनुसार रूक्ष, वर्णकारक, पित्त, कफ और रुधिरविकारशामक है।

नव्यमत—दाल पोषक और शीघ्रपाकी है। इसलिए रोगियोको पथ्य है। इससे कब्ज पैदा होता है। इस-लिये यह गरम और रूक्ष मानी जाती है। यह आढकी-यूप बनानेमे बहुत काम आती है और इसे लोग बहुत पसद करते है। पत्तियाँ मुखरोगमे काम आती है। मसूढोके पिलपिला होने और मुखपाकमे (मुँह आनेपर) लोग इसकी कोमल पत्तियाँ चवाते है। इसे पीसकर फोडे-फुसियोपर भी लगाते है। अरहरकी दाल और पत्तीको पीसकर कल्क वना, गरमकर स्तनपर प्रलेप करते है। इससे स्तनमे दूध बनना वद हो जाता है। पत्तियोको कुचलकर निकाले हुए स्वरसमे थोडा नमक डालकर कामला रोगमे रोगीको देते है। इसकी दालोकी वनाई पुल्टिस (उपनाह) सूजनको उतारती है।

•

अहितकर—मदाग्निकारक (मुज्इफ हज्म)। निवारण—धनिया और सिकंजबीन। प्रतिनिधि—मेथीके बीज। मात्रा—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशा से १ तोला) तक।

तैल—

प्रकृति—उष्ण एवं तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (सु०)।

गुणकर्म—श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, लेखन और व्रणघ्न है।

उपयोग—श्वयथुविलयन और वेदनाहर होनेके कारण प्रायः वेदनाओंमें इसका अभ्यंग करते हैं। लेखन होनेके कारण व्यंग (कल्फ) और दद्रु प्रभृति त्वग्रोगोंमें इसका मर्दन (तिला) की जाती है। अन्त्रव्रण और मलान्त्र या पक्वाशय (कोलन)के निम्न भागके अन्दर अवरोध (सुद्दा) उत्पन्न हो जानेकी दशामें अलसीके तेलकी वस्ति लाभकारी होती है। विपुल मलहरोंमें यह प्रधान उपादानकी भाँति सम्मिलित की जाती है। समभाग अलसीका तैल और सुधाजल (चूनेका पानी) मिलाकर मलहर बनाया जाता है। इसे अग्निदग्ध-स्थल पर लगानेसे तुरत दाह एवं जलन शांत हो जाती और घाव सूख जाता है।

आयुर्वेदीय मत—अलसी मधुर, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, स्निग्ध, वातनाशक, पित्तप्रकोपक तथा दृष्टि और वीर्यको हानिकर है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)। अलसीका तैल (क्षौमतैल) मधुर, अम्ल, कटु-विपाक, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, वातविकारमें हितकर तथा पित्त और रक्तका प्रकोप करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—अलसीके बीज स्नेहन, मार्दवकर, बल्य, वेदनास्थापन, मूत्रजनन और कासहर हैं। तैल विरेचन और व्रणरोपण है। अलसीको गरम किये विना ही निकाला हुआ तैल ४ से ८ ग्राम (४-८ माशे)की मात्रामें पिलानेसे दस्त साफ होता है। मलकी गाँठें (सुद्दे) निकलती हैं। आँतोंकी कमजोरीसे उत्पन्न कब्ज और अर्शमें तैल लाभ करता है। अलसीका तैल और चूनेके निथरे हुए जलको खूब मिलानेसे दूध जैसा मिश्रण (दुधिया घोल) तैयार होता है, उसको आगसे जले हुए भागपर लगाते हैं। कूटी हुई अलसीको पानीके साथ हलवे जैसा पकाकर व्रणशोथपर उप-नाह (पुलटिस) बाँधनेसे सूजन और पीडा कम होती है। प्रारम्भमें ही बाँधनेसे सूजन बढती नहीं और देरीसे बाँधने से शोथ शीघ्र पककर फूट जाता है। अलसीका उपनाह सर्वोत्तम माना जाता है। अलसीका फाण्ट खाँसीमें देनेसे गले और श्वासनलियोंके भीतरका कफ पककर शीघ्र निकलता है। अलसीके फाण्टसे मूत्रका प्रमाण बढता है, परन्तु उसमें वेदनास्थापन गुण कम है।

●

(३२) असगंध।

फैमिली : सोलानासे (Family · Solanaceae)

नाम—(हि०) असगंध, अकसन, आकसन, (फा०) बहमनेबर्री, (सं०) अश्वगंधा, (म०) ढोर(डोर)गुंज, आस्कंद (आसंध), (गु०) आसंध, घोडा आकुन, घोडाआहन, (लै०) वीदानिआ सोम्नीफेरा (**Withania somnifera** Dunal), (अं०) विंटर चेरी (Winter Cherry.)

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षमें होता है। साधारणतया उजाड खंडहरोंमें और कबरिस्तानोंमें समूहबद्ध उगा हुआ मिलता है।

वर्णन—इसका क्षुप १ से १.२५ मीटर (२–२॥ हाथ) ऊँचा, शाखाबहुल होता है। पत्र—युग्म, अंडाकार, अखंड, ५ से १० सें० मी० (२ से ४ इंच) लम्बे, लोमश, पर्णवृन्त, ह्रस्व, पुष्प—क्षुद्र, ह्रस्ववृन्त, कक्षान्तरीय (पत्रवृतमूलसे होकर निकले), शाखाग्रस्थित, प्रायः ५ पुष्प एक साथ छत्रकाकार ससीमाक्षपुष्पव्यूहक्रममें, बाह्यदल-

पुज (कैलिक्स) घटाकार, घनतारकाकार, रोमिल, अग्रपर ५-६ दाँतोमे खण्डित, फलोके साथ वढकर कुछ गोलाकार हो जाता है, दलपुज (कोरोला) भी घटाकार ० ७५ सें० मी० लम्बा तथा खण्ड ३-६, फल सरस (Berry), छोटे, लाल, मसृण, मटराकार, व्यासमे ० ६२५ से० मी० (० २५ इच), झिल्लीदारवाह्यदलपुज आवरणसे ढके हुए और शिखर पर खुले हुए (काकनजके समान), वीज—असख्य, अतिक्षुद्र, पिलाई लिए सफेद और वृक्काकार। सम्पूर्णपौधा सूक्ष्मरोयेदार होता है। मूल—मूलीकी भाँति शक्वाकार किन्तु अपेक्षाकृत पतला, कडा, मजवूत, दीर्घ, उपमूलयुक्त, ऊपरसे हल्का भूरा, किन्तु तोडनेपर भीतरसे सफेद होता है। ताजी जड तथा समस्त क्षुप घोडीके मूत्रकी भाँति तीक्ष्ण अप्रियगधयुक्त होते है। इसीसे इसको **अश्वगधा** कहते है। सूखे मूलमे उक्त गध नही होती और वह अपेक्षाकृत मृदु होता है। स्वाद तिक्त होता है।

वक्तव्य—असगध स्वयजात (जगली) और खेती किया हुआ (कृषिजन्य) दो प्रकारका होता है। मध्यप्रदेशके मालवा, सागर आदि क्षेत्रोमे कही-कही इसकी खेती भी की जाती है। कर्षित पौधेका मूल नागौरी असगधके नामसे वाजारोमे मिलता है। लगाये हुए पौधोके मूलमे जगली पौधोकी अपेक्षया स्टार्च अधिक पाया जाता है। दोनोके स्टार्च एक ही प्रकारके होते है। वाजीकर, वल्य एव वृहण गुणोके लिए खानेके असगधके जो योग वनते है, वे **नागौरी** (वाजारी) असगधसे वनते है। लेप आदि वाह्य प्रयोग और तैलादिमे जगली असगधके मूल लिए जाते है।

रासायनिक सगठन—इसमे सॉम्निफेरिन (Somniferin) नामक एक ऐल्केलॉइड पाया जाया है, जो स्वप्नजनन है।

उपयुक्त अग—जड, वीज और पत्र।

कल्प तथा योग—**हब्ब असगध**।

प्रकृति—मलभूतद्रवोके साथ तीसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष। लखनऊके हकीमोके मतमे पहले दर्जेमे गर्म व खुश्क। आयुर्वेद मतानुसार उष्णवीर्य (कै० नि०) है।

गुण-कर्म—**वाजीकरण, वल्य**, गर्भाशय-सशोधक एव गर्भाशयवलदायक, **श्वयथुविलयन, शुक्रल**, वीर्यपुष्टिकर, स्तन्यजनन और काठिन्यजनक (मुसल्लिव)।

उपयोग—वाजीकर एव वल्य होनेसे यह वाजीकरणके लिए प्रयुक्त होता है। शुक्रल और वीर्यपुष्टिकर होनेसे शुक्रतारल्य एव शुक्रप्रमेहमे वातनाडियोके शीतके कारण होनेवाले शुक्रप्रमेहमे यह विशेष लाभकारी होनेसे प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय सशोधक तथा वलदायक होनेसे प्रसवोत्तर उपयोग कराया जाता है। श्वयथुविलयन होनेसे इसको पीसकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती है। अस्तु, आमवातमे इसका वहिराभ्यतरिक उपयोग किया जाता है। इस गुणमें यह सूरजानका प्रतिनिधि समझा जाता है। आमवात तथा अन्य प्रकारकी सूजनपर ताजे पत्तेको गरम करके वाँधते है। इससे सूजन उतर जाती है। काठिन्यजनन होनेके कारण इन्द्रीको दृढ करनेके लिए इसे शिश्नोपयोगी तिलाओ (पतले लेप वा अभ्यग)मे डाला जाता है, और ढलके हुए स्तनोके लिए इसे स्त्रीके दूधमे पीसकर लेप किया जाता है। स्त्री-पुरुषरोगोकी प्रधान औषधि माना गया है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। **निवारण**—कतीरा और घी। **प्रतिनिधि**—सफेद बहमन। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—अश्वगन्धा मधुरकपाय, तिक्त, उष्णवीर्य, वृहण, वल्य, रसायन, वाजीकर तथा वात, कफ, शोथ, श्वित्र, क्षय, खाँसी, व्रण, कुष्ठ, कृमि और श्वासको दूर करनेवाली है (च० वि० अ० ८, भा० प्र०, कै० नि०)।

नव्यमत—वाजारी असगंध और विदारीकदके गुण समान है। यह उत्तम पौष्टिक है। ६ से १२ ग्राम (१/२—१ तोला) असगध चूर्णको गायके घीमे सेंककर उसमें पावभर दूध और यथारुचि मिश्री मिला, गरम करके देना चाहिए। छोटे वच्चोके लिए यह उत्तम औषधि है। इससे वच्चोका सूखना वद होता है। स्त्रियोका कमरका दर्द और श्वेतप्रदर इससे अच्छा होता है। जगली **असगधके** मूल अवसादक, स्वापजनन और मूत्रजनन है। वात-

नाडीपर इसकी अवसादक क्रिया होती है, परंतु हृदयपर अवसादक क्रिया नहीं होती। इनका स्वापजनन धर्म प्रसिद्ध है। बीज स्वापजनन और मूत्रजनन तथा बडी मात्रामें विष है। व्रद, ग्रंथि आदिपर मूलका लेप करते है।

●

(३३) असगंध देशी।

फैमिली : सोलानासे (Family · Solanaceae)

नाम—(हिं०) पनीर, पपोटन, देशी असगंध, देशी काकनज, अकरी· (अ० फा०) काकनजे हिंदी, (सं०) ह्रस्व अश्वगन्धा (नवीन), (लैं०) विदानिआ कोआगुलान्स, **Withania coagulans** Dunal (पर्याय–पुनीरिया कोआगुलान्स *Puneeria coagulans* Stocks) (अं०) वेजीटेबल् रेनेट (Vegetable Rennet)। फल या बीज—(हिं०) पनीरके बीज, (अ०) हब्बुल्काकनजे हिंदी (फा०) तुख्म काकनजे हिंदी (सं०) दधिकर फल ह्रस्व अश्वगन्धा बीज–नवीन, (पं०) खमजरिया, खामजुर (सिंध) पनीरबंद, पनीरजा फोटा (म०) पनीरबंद, पनीर मोटा, (पश्तो) खमजोर।

उत्पत्तिस्थान—पंजाब, सिंध, सतलजकी घाटी अफगानिस्तान और बलूचिस्तान अर्थात् पश्चिमात्य भारतीय उद्यान वन पर्वत तथा खेतोंकी वाडोंपर यह बूटी सामान्यरूपसे होती है।

वर्णन—असगंधकी जातिके एक क्षुपका प्रसिद्ध फल जो अति छोटे बेर, घुंघची या काकनजके समान, गोल, मकोयके दानाके बराबर, प्रारंभमें हरा, पकनेपर लाल रंगका और सूखनेपर कुछ-कुछ पीला एवं छिलकावत् हो जाता है। उसके भीतर चिपटे वृक्काकार बीजोंका एक समूह होता है, जो चिपचिपे धूसर मज्जासे संश्लिष्ट होता है। यह काकनजसे भिन्न द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें विदेनिन (Withanin) नामक एक प्रभावकारी सत्त्व—एन्जाइम या अभिषव (फर्मेन्ट) होता है जो जंगम रेनेट (Animal rennet)से बहुत कुछ सादृश्य रखता है, और उसका एक उत्तम प्रतिनिधि है।

उपयुक्त अंग—फल, बीज, पत्र और मूल।

कल्प तथा योग—घृत एवं तेल आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम व खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पत्ते गरम करके बाँधनेसे सूजन उतर जाती है। इसकी जड पानीसे पीसकर नासूरके भीतर भरनेसे अथवा उसमें बत्ती लतकर भीतर पहुँचानेसे थोडे ही दिनमें नासूर और व्रण आराम हो जाते हैं। पका फल वामक, वेदनाहर, शामक, मूत्रल एवं रसायन है तथा चिरज यकृद्रोगोंमें उपकारक है। सूखा फल आध्मान, शूल, अजीर्ण एवं अन्यान्य अन्त्रविकारोंमें तथा दूध जमानेके लिए प्रयोग किया जाता है।

●

(३४) असारून।

फैमिली : आरिस्टोलोकिआसे (Family : Aristolochiaceae)

नाम—(हिं० गु०) तगर गंठौडा, (यू०) Asaron (D. 1.9) (अ०· मु०) असारून (इ० बै०), (फा०) मुवुले वर्री, नारदीन वर्री· (सं०) पारसीक तगर (नवीन), (लैं०) आसारुम एउरोपेउम (**Asarum europaeum** Linn) (अं०) वाइल्ड नार्ड (Wild Nard)· हैजेलवर्ट (Hazel Wort) असरबक्का (Asarabacca)।

वक्तव्य—'असारून' सुरयानी (Syrian) भाषाका शब्द है। इसका शुद्ध रूप 'आसारून' (आसा = आस या विलायती मेंहदी, रून = गुण अर्थात् विलायती मेंहदीके समान गुणदायक) है।

उत्पत्तिस्थान—फ्रास, रोम, अफरीका, श्याम देश, हमदान पर्वत, फारस और अफगानिस्तान इत्यादि तथा हिन्दुस्तानके हिमालय और कश्मीर आदि ठडे प्रदेशोमे होता है। भारतवर्षमे इसका आयात अफगानिस्तानसे होता है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु क्षुद्र वनस्पति है। पत्र वृक्काकार, अखण्ड, आमने-सामने, लोमश और हरेरगके होते है। पत्रवृत तीन इच लम्बा होता है। जड चौकोनी बेडौल, ततुल, ग्रन्थिल, कुछ लम्बी और टेढी-मेढी, पीली, सुगधित एव तीक्ष्णगधी होती है। चबानेपर कुछ-कुछ कडवी होती है। यह अन्य सब भेदोसे उत्तम है। इसके उत्तम होनेकी पहचान यह है, कि तेज और सुगधित हो, जिह्वाको काटे नही। अन्य भेदोमेसे किसीका रग पिलाई लिये और किसीका भूरा होता है। यह जड ही औषधके काममें आती है। इसके भारतीय भेदको तुग्गुर या असारूने हिंदी (आसारुम ईडिकुम Asarum indicum) कहते है। यह असारूनका प्रतिनिधि है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक उष्ण उत्पत् तैल, एक पीला पदार्थ और तिक्त दाहजनक पदार्थ होता है।

उपयुक्त अग—मूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, मेध्य (मस्तिष्कबलदायक), वातनाडीबलदायक, आर्तवजनन और मूत्रजनन। उपयोग—अपस्मार, अर्दित, पक्षवध, अगघात, स्वाप और विस्मृति प्रभृति जैसे मस्तिष्क एव वात-रोगोमे असारूनका पुष्कल उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह यकृत् और आमाशयके रोगोमे भी प्रयुक्त होता है। अवरोधजन्य कामला, जलोदर, यकृच्छोथ, प्लीहाकाठिन्य, आमवात, पार्श्वशूल, गृध्रसी, वातरक्त और कूल्हेके दर्द (वज्उल्वरिक)मे इसका उपयोग करते है। अनार्तव, मूत्रावरोध और नपुसकतामे भी इसे खिलाते है। पक्षवध और अर्दित जैसे शीतजन्य रोगोमे इसका विशेष उपयोग होता है। अहितकर—फुप्फुसको। निवारण—गुठली निकाला हुआ मुनक्का। प्रतिनिधि—सोठ। मात्रा—२ ग्रामसे ५ ग्राम (२ माशासे ५ माशा)तक।

(३५) आँबाहलदी।

फैमिली : जिंजीबेरासे (Family Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) आवा (बी) हलदी, कपूरहलदी, वन हलदी, (फा०) दारचोबा, (म०) वन (अरण्य) हरिद्रा, कर्पूरहरिद्रा, (म०) आवेहलदी, (गु०) आवाहलदर, (लं०) कुर्कुमा आरोमाटिका (**Curcuma aromatica,** Salisb) (अ०) वाइल्ड टर्मेरिक (Wild Turmeric), मैंगोटर्मेरिक (Mango Turmeric)।

वक्तव्य—यद्यपि आवाहलदीका फारसी नाम 'दारचोबा' भी है, तथापि यह वास्तविक दारचोबा अर्थात् दारुहलदी नही है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे यह जगली होती या लगाई जाती है। अलवर, कोचीन और वैनाद प्रातमे यह पुष्कल होती है। कोचीन और बम्बईसे विदेशोमे इसका निर्यात होता है। यह आमाहलदी (**Mango Ginger**)से भिन्न है।

वर्णन—यह हलदीकी जातिके एक गुल्मका प्रसिद्ध कद है। इसके कोमल पत्रका मध्य भाग बैगनी होता है, परन्तु पूर्णायुके पत्रसे यह रग जाता रहता है। वर्षासे ठीक पूर्व इसके पुराने गुल्ममें नये पत्र और पुष्प आते है। कही-कही यह आधी बरसात बीतनेपर फूलती है। इसका केन्द्रीय (मूल) पाताली कद (Rhizome) लवगोल या शखाकार प्राय दो इचसे अधिक व्यासका, बाहरी पृष्ठ गहरा भूरा जिसपर वृत्ताकार छल्लेका चिह्न और पुष्कल

मोटे उपमूल होते है। इनमेसे किसी-किसीके छोरोंपर नारगीरगके पीले कद (Tubers) होते हैं, जो स्वरूप और आकारमे छिलका युक्त बादामकी तरह होते है। पार्श्विक पाताली धड प्राय उँगली इतने मोटे और कुछ गुदार उपमूलोसे युक्त होते है। केन्द्रीय और पार्श्वीय उभय प्रकारके पाताली धट भीतरसे हलदी सरीखे गाढे नारगीरगके होते है। गध हलदीकी अपेक्षया तीक्ष्ण कपूरमिश्रित सोठकी तरह होती है। स्वाद तिक्त और तीक्ष्ण कर्पूरवत्। यह हलदीसे बडी होती है। कर्पूरवत् गधके कारण ही इसे 'कर्पूरहरिद्रा' कहते है। उपयुक्त वातावरणमे रखनेसे इसका केन्द्रीय मूल छोटे शलगमके आकारका हो जाता है।

रासायनिक सगठन—कदमे एक प्रकारका उत्पत् तेल, राल, श्वेतसार, लवण, शर्करा, निर्यास, ऐल्व्युमिनाइड्स और कर्कुमिन (Curcumin) नामक एक पीतरजक द्रव्य आदि होते है।

उपयुक्त अग—पातालीधड वा कद।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, रक्तप्रसादन और सशमन (मुसक्किन)।

उपयोग—अधिकतया आघात-प्रत्याघात (जरबा व सकता-चोट-चपेट) और फोडे-फुसियोंके लिए लेप और मालिश (अभ्यग) इत्यादिके रूपमे आवाहलदीका बाह्य उपयोग होता है। कुछ हकीम कास, ज्वर और रक्तविकारमे इसका आभ्यतरिक उपयोग भी करते है। प्रतिनिधि—हलदी। मात्रा—२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशा से ३ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—आवाहलदी (अरण्यरजनीकद) कुष्ठ, वातरक्त, सर्वदोष, विष, हिक्का, श्वास और कासको दूर करनेवाली है (कै० नि०)।

नव्यमत—इसके गुण-कर्म हलदीके समान है। कण्डू, भार, चोट, सूजन आदिमे इसका लेप करते है।

•

(३६) आक।

फैमिली : आस्क्लेपिआडासे (Family Asclepiadaceae)

नाम—(हि०) आक, आख, मदार, अकौआ, (अ०) उपर, उष्पर, उपार, (फा०) खरक, दरख्ते जहरनाक, जहूक, (स०) अर्क, मन्दार, (क०, सि०, प०) अक, (कु०) आक, (व०) आकद, (म०) रुई, (गु०) आकडो, (ले०) **कालोट्रॉपिस जीगाटेआ (Calotropis gigantea (L) R Br)**। अर्कशर्करा (हिं०, उर्दू) आककी शकर, आकका गोद, शकरमदार, आककी मिश्री, (अ०) सुक्करुल् उपर, समगे उषर, (फा०) शकरक, शकरकोही, शकर उपर।

वक्तव्य—बुर्हानकातेअ नामक प्रसिद्ध कोषके अवलोकनसे यह ज्ञात होता है कि "उपर" फारसीका शब्द है और यह आर्य भाषा सभवत सस्कृत 'उष (जलाना)'से व्युत्पन्न है। अधिकाश भारतीय भाषाओके नाम इसके सस्कृत नाम "अर्क" एव "मन्दार"से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष, लका द्वीप और अफगानिस्तान तथा ईरानसे लेकर अफरीका तक।

वर्णन—यह एक बहुवर्षीय प्रसिद्ध क्षुप है, जो प्राय १ २० मीटर (चार फुट)से अधिक ऊँचा नही होता। इसके जिस भागको तोडा जाय, उससे सफेद गाढा दूध टपकना शुरू हो जाता है। जडकी अपेक्षया शाखाओमे अधिक दूध निकलता है। फूल कटोरीनुमा गुच्छोमे लगते है। यह बाहरसे सफेद और अदरसे ललाई लिए बैगनी होते है। पुष्पका आभ्यन्तरकोश सफेद होता है, परन्तु सीधे ऊपरकी ओर उठे हुए दल-खण्डोके ऊपर जामुनी रगके दाग होते है। फूलके मध्य भागमे लौगके सिरके समान एक वस्तु होती है, जिसे **करन्फुल मदार (आककी लौग)** कहते है। **फल (आकका डोडा)** साधारणत लबोतरा, बीचमे वल खाया हुआ होता है। सूखनेपर जब यह फटता है, तब उसके

योग किया जाता है। बिना राख किया हुआ खिलानेसे कै लाकर भी कृच्छ्रश्वासको लाभ पहुँचाता है। जडकी छाल (पोस्तबेख) सशमन (मुअद्दिल) और छेदनीय होनेसे गठिया, द्वितीय कक्षाका फिरग और प्रारम्भिक कुष्ठमे लाभकारी है, तथा छेदनीय, मूर्छाकारक और छर्दनीय होनेसे इसका हैजेमे भी उपयोग किया जाता है। विकृतदोषोको छाँट-कर यह वमनके द्वारा निकाल देती है। जडका क्वाथ उपयोग करनेसे शीतपूर्व ज्वरो (तपे लरजा)मे भी उपकार होता है। स्वेदन होनेसे फिरग रोगमे इसकी धूनी (बखुर) दी जाती है। पुष्प दीपन और कफछेदनीय होनेके कारण आमाशयोपयोगी औषधोमे सम्मिलित किया जाता है। कफछेदनीय होनेसे श्वासकृच्छ्रता एव कासमे उपयोग किया जाता है। श्वयथुविलयन और अवसादक होनेसे कई एक औषधद्रव्योके साथ तेल प्रस्तुत करके मर्दन करनेसे आम-वात और कटिशूल इत्यादि आराम हो जाते है। अहितकर—त्वचा और श्लैष्मिक कलामे व्रण उत्पन्न करता है। **निवारण**—घी, दूध, स्नेहद्रव्य और वमन करना। प्रतिनिधि—व्रणजनन हेतु जयपाल। मात्रा—दूध १-२ रत्ती। अधिक कदापि उपयोग न करना चाहिए, क्योकि अधिक मात्रामे उपयोग करनेसे आमाशय और अन्त्रमे यह खराश (सहज्ज) उत्पन्न करके उनमे जख्म डाल देता है, जिससे रोगी यमलोक सिधारता है। सूखे पत्रका चूर्ण २ रत्तीसे १ माशा तक, जड़की छालका चूर्ण २ रत्तीसे ५ रत्ती तक और फूल १ रत्तीसे ३ रत्ती तक उपयोग कराना चाहिए। क्वाथमें पत्र या छालको ६ माशा तक उपयोग कर सकते है। आकके वृक्ष (पचाग)को जलाकर विशेष विधिसे उसका **नमक (क्षार)** निकाला जाता है। यह छेदनीय एव कफोत्सारि होनेसे कृच्छ्रश्वास (दमा) और कासमें प्रयुक्त होता है। आककी **रुई** आतशीमीगीके लिए श्रेष्ठतम वस्तु है। यदि क्षतसे रक्त बहता हो, तो इस रुईके बाँधनेसे वह बद हो जाता है। आकका **गोंद** या **अर्कशर्करा** कम मिलती है। इसको सर (प्रकृतिमार्दवकर) और श्वासोच्छ्वास-यत्र-मार्दवकर बतलाया जाता है। इसकी मात्रा १ ग्राम (१ माशा) है।

आकका टिड्डा (मलखमदार-मदारकाँडा)—यह एक प्रकारका विचित्र रगका वेपरका मनोहर कीडा है, जो ग्रीष्मऋतुमे प्राय मदारपर देखनेमे आता है। इसको एक शीशीमे बद करके रखें। जब वह सूख जाय, तब समभाग वा १।२ भाग कालीमिर्चके साथ कूट-छानकर हुलास बनाये। आवश्यकता होनेपर रोगीके नथुनोमे थोडा फूँके। यह नस्य मृगीके रोगीके लिए लाभदायक एव परीक्षित है। (अल्मसीह अगस्त सन् १९२२ ई०)।

आयुर्वेदीय मत—आक तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, शोधन, भेदन, स्वेदोपग, वमनोपग, दीपन तथा कण्डू, व्रण, वात, शोथ, कुष्ठ, कृमि, प्लीहारोग, गुल्म, अर्श, कफ और उदररोगका नाश करनेवाला है। अर्कके फूल वृष्य, लघु, दीपन, पाचन तथा अरुचि, प्रतिश्याय, खाँसी और श्वासका नाश करनेवाला है। आकका क्षीर तिक्त, किंचित् लवण, उष्णवीर्य, स्निग्ध, वमन और विरेचन करनेवाला तथा कुष्ठ, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४, १, सु० सू० अ० ३, ३९, ध० नि०, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—मूलकी छाल कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, पित्तस्रावी, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक, सकोच-विकासप्रतिवधक, जीवनविनिमयक्रिया-रसग्रन्थि और त्वचाके लिए उत्तेजक, बल्य और रसायन है। छाल अल्पमात्रामें आमाशयका प्रत्यक्ष उत्तेजक है। इससे आमरस ठीक बहने लगता है। बडी मात्रासे आमाशयमे दाह होता है, तथा उससे वमन होता है। छालमे रहा उपयुक्त द्रव्य शीघ्र रक्तमे मिल जाता है। त्वचामे निकलते समय यह त्वचापर प्रत्यक्ष उत्तेजक क्रिया करता है, और त्वचाकी सूक्ष्मरक्त-वाहिकाओका विकास होता है। यह उपयुक्त द्रव्य (वीर्य) रक्तमें बहता हुआ श्वासोच्छ्वास और वमनके केन्द्रपर प्रत्यक्ष क्रिया करता है। इस केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे वमन होता है। आकका वामक कार्य प्रत्यक्ष आमाशय द्वारा, और परपरया वामक केन्द्र द्वारा होता है। इसका स्वेदजनन-धर्म उत्तम है। इससे प्रचुर स्वेद होता है। इसका सकोचविकासप्रतिवधक धर्म साधारण है, और वह श्वासनलि-काओपर विशेष स्पष्ट मालूम होता है। इसका रसायन धर्म पारदके समान उत्तम है। इसके भीतर स्थित वीर्यका शरीरमे सचार होते समय यकृत्की क्रिया सुधरती है, और पित्तका उत्तम स्राव होता है। शरीरान्तर्गत विभिन्न ग्रन्थियोको उत्तेजना मिलनेसे उनके रस भली-भाँति तैयार होते है, और जीवनविनिमयक्रियाको उत्तेजना मिलती है। इसलिए शरीरकी पुष्टि और बल बढता है। इन धर्मोके कारण आकको "उत्तेजक बल्य" कहा गया है। अन्तस्त्वचा,

बाह्य त्वचा और त्वचाके नीचेका ढीला स्तर इनके रोगोमे मूलकी छाल देते है और उससे लाभ होता है। सादे रक्तदोपके कारण हुए या उपदंशसे हुए सभी प्रकारके व्रण और श्लीपदमे आकर्की जडकी छालके साथ रससिन्दूर, सुरमा (स्रोतोजन-ऐन्टिमनी सल्फाइड) और साभरसीगभस्म देते है। वद और गण्डमालामें मूलकी छाल खानेको देते है, और दूध लगाते है। सभी प्रकारके जीर्णत्वचाके रोगोमे छालका चूर्ण निमौलीके तेलमें मिलाकर लगाते है। यकृत तथा प्लीहाकी वृद्धि और उससे उत्पन्न उदररोगोमे मूलकी छालसे लाभ होता है। जीर्ण और नूतन आंवमे मूलकी छाल सुगंधिद्रव्यो (सौंफ, गुलाबपुष्प, दालचीनी आदि)के साथ देते है। जीर्णज्वर और शीतज्वरमे मूलकी छाल नागरपानके साथ देते है। अर्कपुष्प दीपन, कफघ्न और सकोचविकासप्रतिबधक है। खाँसी, दमा, क्षुधानाश और कुपचनरोगमें फूलोंसे उत्तम लाभ होता है। अर्कपत्र वातहर, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और आनुलोमिक है। पत्रचूर्ण व्रणपर छिडकनेसे व्रणका शीघ्र रोपण होता है। पत्तोपर रेडीका तेल लगा, उनको गरम करके सूजनपर बांधनेसे पीडा कम होकर सूजन उतरती है।

०

(३७) आचीन।

फेमिली · आपोसीनासे (Family Apocynaceae)

नाम—(हिं०) आचीन, गुलचीन, गुलाचीन, (फा०) गुले आचीन, (स०) क्षीरचपक (नवीन); (लैं०) **प्लुमेरिआ आक्यूटीफोलिआ (Plumeria acutifolia, Poir)**, (अं०) जैस्मिन ट्री (Jasmine Tree)।

उत्पत्तिस्थान—अनिश्चित। ऐसा मालूम होता है कि पुर्तगाल निवासी इसे ब्राजीलसे यहाँ ले आये। अधुना यह समस्त भारतवर्षमे विशेषकर बागोमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक बडा वृक्ष है। पत्र लबे आमके पत्रकी तरह, किन्तु उससे बडे, कम चौडे, दलदार और हरे रगके होते है। इसके सर्वागमे दूध निकलता है। वसतऋतुमे इसके पत्ते झडकर फूल आते है। फूल नीलूफरके फूलकी तरह पाँच पखडीयुक्त, ऊपरसे सफेद जिसपर कुछ लाल झाइयाँ भी होती है (किसी-किसीमे नही), भीतरसे सुन्दर पीला, किन्तु खूब खिल जानेपर यह पखडियोकी जडमे आधी दूर तक रह जाती है, पखडियाँ गुलशब्बोकी तरह दलदार, जडकी तरफसे पतली ऊपरसे चौडी होती है। इसमें सुगन्ध कम होती है। नाकसे मिलाकर सूँघनेपर हलकी मीठी-मीठी सुगन्ध मालूम होती है। इसकी छाल मटियाला लिये भूरी होती है। पीला, सफेद और लाल तीनो प्रकारके फूलो की जातियाँ पृथक्-पृथक् होती है।

उपयुक्त अग—वृक्ष (वा जड)की छाल, दूध, पत्र और पुष्प।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—शोथविलयन और विरेचन। बाहरी तौरपर प्रलेप करनेसे यह कठिन व्रणशोथको विलीन करता और पाचन करता (शोथविलयन, पाचन) है। यह आतरिक उपयोगसे विरेक लाता और रक्तको शुद्ध करता है।

उपयोग—गुलाचीनके पत्रको पीसकर कठिन व्रणशोथको विलीन करने और पकानेके लिए लेप करते है। रक्तविकारजन्य रोगो, फिरगादिमे आचीन वृक्षकी छालको जलमे उबाल (क्वाथ)कर पिलाते है। **मखजनुल् अद्वियाके** लेखकके अनुसार जडकी छाल (वा वृक्षकी छाल ११.५ ग्राम या १ तोला) तीव्र रेचन है। यह सूजाक और मैथुनीय अगोके व्रणोमें भी लाभकारी औषध है। यदि इसके पीनेसे अधिक विरेक आये और गरमी मालूम हो, तो छाछ पिलाना चाहिए। ९ ग्राम (९ माशा) इसके फूल पानीमे पीसकर पीने या चूर्ण बनाकर फाँकनेसे फिरगरोग आराम हो जाता है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। निवारण—छाछ और मक्खन। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

नव्यमत—यह तीव्र औषधि है। बडी मात्राओमे इससे विषैला एव घातक प्रभाव होता है। छाल तीव्ररेचन, मूत्रल, शोथघ्न, कडूघ्न, वातहर, ज्वरघ्न एव नियतकालिकज्वरनिरोधक होती है। दूधमे तीव्रभेदन गुण होता है। सूजाकमे यह उपयोगी बतलाया जाता है।

●

(३८) आडू।

फैमिली : रोजासे (Family Rosaceae)

नाम—आडू (हिं०), (प०) आडू, (अ०) खौख (इ० बै०), दराकन, (फा०) शफ्तालू, (सं०) आरुक, (गु०) पीच, (क०) चुनुन, (प०, का०) अरु, (ले०) प्रूनुस पेर्सिका (**Prunus persica** (L) Batsch), (अ०) पीच (Peach)। सताल्—(हिं०) सतालू, (फा०) श(स)फ्तालू।

उत्पत्तिस्थान—यह सम्भवत चीनका आदिनिवासी है। अब साधारणतया पश्चिमी एशिया, यूरूप तथा बेलूचिस्तान एव भारतवर्षमें हिमालय एव कुनावरमे १०,००० फीटकी ऊँचाई तथा नीलगिरीमे ५,०००–७,००० फीटकी ऊँचाई तक और उत्तर भारतके मैदानी क्षेत्रोमे भी लगाया जाता है। मणिपुरमे भी इसके वृक्ष लगाये जाते है।

वर्णन—मझोले कदके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो स्वादमे खटमिट्ठा होता है। फूल गुलाबी होता है। इसके मुख्य यह दो भेद है—(१) चकइया और (२) लम्बा गोल गोपुच्छाकार। इनमे चकइयाको ही शफ्तालू कहते है। यह आडूका ही एक भेद है, जिसे हिन्दीमे 'सतालू' कहते है। इसका फल आडूसे बडा और मीठा होता है। आडू कुछ खट्टापन लिये और गुरु एव चिरणकी होता है। बीज कठोर आवरण तथा गहरी नालियोसे युक्त होता है। इसकी गुठली (बीज)की मीगसे कडवे बादामके तेलकी तरह एक प्रकारका तेल निकलता है, और उसीकी जगह काममे भी आता है।

वक्तव्य—धन्वन्तरि निघण्टुकारने आरुककी चार जातियाँ मानी है—'विद्याज्जाति विशेषेण तच्चतुर्विधमारुकम्'। सम्भव है कि उनकी मानी हुई चार जातियोमे आडू, आलुबोखारा, आलूबालू और आलूचा इन चारोका समावेश होता हो।

उपयुक्त अग—फल, पत्र, बीजमज्जा और उससे निकला हुआ तैल।

रासायनिक सगठन—पकेफलमे पुष्कल राशिमे शर्करा एव निर्यास होता है।

प्रकृति—फल दूसरे दर्जेमे शीत एव तर (स्निग्ध) है। पत्र और शाखा उष्ण, बीजोत्थ तेल उष्ण एव तीक्ष्ण (हाद्द) है। आयुर्वेदके मतसे पका फल किंचित् उष्णवीर्य (च०) है।

गुण-कर्म—फल पित्त एव रक्तोद्वेगसशमन, पत्रस्वरस बाह्यातर उभय प्रकार उदरकृमिनाशन, बीजकी गिरी कर्णशूल एव अर्शोवेदनाहर है। उपयोग—आडूको अधिकतया फलोके समान खाद्याहाररूपमें खाते है। यद्यपि यह पुष्टिदायक खाद्य है, तथापि इससे जो पुष्टि (गिजा) प्राप्त होती है, वह रद्दी (अप्रकृत) होती है। इसके खानेसे प्यास बुझती है, और रक्त एव पित्तका उद्वेग (प्रकोप) कम होता है। इससे उष्ण (पित्तल) प्रकृतिवालोकी भूख बढ जाती है। इसका प्रधान कर्म सतापहरण (दाहप्रशमन) है। उदरकृमिनाशनार्थ इसका पत्र-स्वरस पिलाते और उदरपर लेप करते है। चुरुकृमिनाशनके लिए इसे शिशुओकी गुदामे लगाते है। बीजकी गिरी अर्श, कर्णशूल और वाजिकर्यकी औषधियोमे प्रयुक्त होती है। अहितकर—वातनाडीको। निवारण—मधु और अदरक। मात्रा—३ से ५ दाना तक।

आयुर्वेदीय मत—पका हुआ आड़ू (आरुक) प्राय मधुर, स्वादिष्ट, गुरु, किंचित् उष्णवीर्य, बृंहण, हृद्य, शीघ्र पचनेवाला और किंचित् दोपकर तथा प्रमेह, अर्श, गुल्म और रक्तविकारका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २७, ध० नि०, रा० नि०)।

नव्यमत—फल स्निग्ध, स्कर्वीहर और दीपन है। पजाबनिवासी इसके फलको उदरकृमि एव केंचुओमे उपयोगी वतलाते है (वेलफोर)। फूल विरेचक है। पका फल सुस्वादु, कोष्ठमृदुकर (सारक) और सुपच है। पत्तियोंका काढा, सारक, उदरकृमिनाशक और अवसादक है। इसके फलसे चुआई हुए शरावको आड़ूका शराब (Peach brandy) कहते हैं (इ० मे० प्ला०)। आड़ू दीपन, स्नेहन और रक्तपित्तप्रशमन है। पुष्प भेदन है। तेल बालोमे लगाया जाता है।

•

(३९) आतरीलाल।

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family Umbelliferae)

नाम—(यू०) आतिरीलाल(-न), आतरीलाल, (फा०) तुख्म खिलालेखलील, (लै०) आन्थ्रिस्कुस सेरेफोलिउम् (**Anthriscus cerefolium**, Hoffm), (अ०) शर्विल (Chervil)।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप तथा मिश्र। यह अन्य देशोमें भी लगाया जाता है।

वर्णन—मसीसे भिन्न लगाई जानेवाली एक क्षुद्र वार्षिक वनस्पति, जो सोयेके समान होती है, किन्तु इसके फूल सफेद होते है और सोयेके पीले। बीज अनीसूँके समान कालाई या नीलाई लिए लाल, तिक्त एव तीक्ष्ण होते हैं। ये बीज ही औषधके काममें आते है।

आन्थ्रिस्कुस सेरेफोलिउमके बीजोका डीमकोक्त वर्णन—बीज (फल) भालाकार, प्राय बेलनाकार, पार्श्वमे दबे हुए, काले और मसृण होते हैं। इनका ऊपरी सिरा सूक्ष्म पचकोणीय तुडमें अन्त होता है, जिसके ऊपर दबा हुआ तरगायित पुष्पाधार होता है। स्वाद सुगन्धमय एव कटुत्वरहित होता है। (फा० इ० भा० २)। भारतीय बाजारोमे मुसलमान औषधविक्रेता आतरीलालके नामसे प्राय कालीजीरीके बीज देते हैं। वास्तविक द्रव्य बडी कठिनाईसे कभी-कभी मिलता है (फा० इ० भा० २ पृ० १३४)।

रासायनिक सगठन—इसमें अनुत्पत् तेल (Essential oil), ग्लूकोसाइड और एपिईन पाया जाता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षामे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—लेखन, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, दीपन, मूत्रल, अवरोधोद्घाटक हैं, और किलास एव झाई (वहक) दूर करनेमे विचित्रवीर्य वर्णन किया जाता है।

उपयोग—किलास और व्यग (वहक) दूर करनेके लिए आतरीलाल अत्यन्त प्रभावकर वतलाया जाता है। इस प्रयोजनके लिए इसका विविध प्रकारसे उपयोग करते है, जैसे—(१) आतरीलालके बीजोका चूर्ण मधमे मिलाकर प्रतिदिन ९ माशा कुनकुना पानीसे पन्द्रह दिन तक निरन्तर खाये। इससे किलास और व्यग (वहक) दूर होते हैं। (२) आतरीलालके बीज १ भाग, अकरकरा चौथाई भाग दोनोका चूर्ण मधुमे मिलाकर चाटे और सिरकामे पीसकर किलासपर उसका लेप करे और उस स्थानको खुला हुआ रखें। एक-दो घण्टे धूपमे बैठे, यहाँ तक कि पसीना आने लगे। इसके बाद प्रकृति ईश्वरीय आज्ञासे रोगोत्पादक दोपको शरीरके बाहरकी ओर उसी स्थानपर उत्सर्गित करेगी और वहाँ विस्फोट (आबला) या व्रण उत्पन्न हो जायगा और उससे पीला द्रव बहने लगेगा। उस समय औषधका सेवन बद कर दे, जिसमे जखम भर जाय और वहाँ की त्वचाको सवर्णता प्राप्त हो जाय। (३) आतरीलालके बीज ३ माशा, छिला और अदरकी हड्डी निकाला हुआ निसोय, सोठ और अकरकरा प्रत्येक १ माशा—इनको वारीक

पीसकर मधुमे मिलाकर शरीर शोधनोपरान्त खिलायें और पूर्वकी भाँति लेप लगाकर या विना लेप किये ही धूपमे बैठें। पहले दिनसे तीसरे दिन तक रोगस्थानपर विस्फोट (आवला) उत्पन्न हो जायगा और उससे पीला पानी वहनेके बाद रोग सम्यक् दूर हो जायगा। तात्पर्य यह कि किलास नष्ट करनेके लिए इसको ईश्वरका आशीर्वाद वतलाया जाता है। प्रतिनिधि—हकीम उलवीखांके अनुसार 'वकुची'। मात्रा—३ ग्रामसे ९ ग्राम (३ माशासे ९ माशा) तक।

●

(४०) आबनूस।

फ़ैमिली : एबेनासे (Family : Ebenaceae)

नाम—(अ०, फा०) **आबनूस**, आवेनूस, (यू०) एवेनोस (Ebenos), (इब०) हेवेनम् (लौह), (ले०) डिओस्पिरॉस एबेनुम् (**Diospyros ebenum**, Koenig), (अ०) एवोनी (Ebony)।

वक्तव्य—एवेनोसका अर्थ "पापाण" है। इसकी लकडी कडी और भारी होती है, इसलिए इसे आवनूस (पापाणवत् = वजनी और कडी) कहते है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, फारस, जजीबार और अफरीका।

वर्णन—यह तेंदूकी जातिका, पर उससे भिन्न एक बहुत बडा सदावहार पेड है। पत्र सनोबरके पत्रकी तरह, किन्तु उससे कुछ बडा होता है। फल अंगूरकी तरह पिलाई एव ललाई लिये, किंचिन्मधुर और बहुत कसैला होता है। यह पेड जब पुराना हो जाता है, तब इसके हीरकी लकडी बिल्कुल काली और मसृण होती है। यही काली लकडी **आबनूसके** नामसे बिकती है और बहुत वजनी होती है। यह स्वादमे कुछ तेजी लिये ईपत्तिक्त एव फीकी (बदमज़ा) होती है। यह जलनेपर सुगध देती, परन्तु विना जलाये कुगधी होती है। बहुत काली, चमकीली, मसृण, वजनी, कडी और समतल, जिसमें रगीन रेखायें न हो, जो स्वादमे प्रदाहक एव कपाय हो और जो पानीमे डालनेसे डूव जाय, ऐसी लकडी सर्वोत्तम समझी जाती है। **असली और नक़लीकी परीक्षा**–जो स्वादमे किंचित् प्रदाहक एव कपाय हो तथा जिसकी गीली ताजी लकडी जलानेसे सुगध आये, वह असली है। इससे भिन्न होनेपर नकली समझना चाहिए। भेद—इसके यह दो भेद है—(१) हवशी और (२) हिंदी। इनमें हवशीको जो हिंदीकी अपेक्षया अधिक काली, कडी, चिकनी और भारी होती है, यूनानी हकीम अधिक पसद करते है। इसके वाद हिंदीको।

उपयुक्त अग—सूखी लकड़ीकी हीर (आवनूस) और उसका बुरादा तथा फल इत्यादि।

प्रकृति—सग्राहीवीर्यसयुक्त दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष (ग़ैरु)। हकीम अताकी और इब्नेबैतारके अनुसार तीसरे दर्जेके आदिमें उष्ण और दूसरे दर्जेके अन्तमें रूक्ष है।

गुण कर्म—दोषतारल्यजनन (मुलत्तिफ), उपशोपण, श्वयथुविलयन, लेखन, सग्राही, रक्तस्तभन और रक्त शोधक। उपयोग—रक्तशोधनके लिए तथा तरखुजलीमें इसका बुरादा पुष्कल प्रयोगमे आता है। आवनूस उपशोषण एव लेखन है, इसलिए इसके बुरादाको बारीक करके दुष्टव्रणोपर छिडकते है। सग्राही एव रक्तस्तभन होनेसे चाकू, छुरी या तलवारके सद्योव्रण (क्षत)पर छिडकनेसे यह उनसे रक्तस्राव वद करता और क्षतका रोपण करता है। सुरमेकी भाँति इसका अजन चक्षुष्य है, और पक्ष्मशातमे गुणकारी है। आवनूसकी लकडीको पत्थरपर घिसकर नेत्रमें लगानेसे सिराजाल (जाला), नेत्रशुक्र (फूली), नेत्रस्राव, नेत्रव्रण, नेत्रकण्डू, नक्तान्ध्य और धुध (जुल्मते बसर)—ये नेत्ररोग आराम होते है। इसके सूखे फलोका चूर्ण अतिसार, श्वेतप्रदर और स्त्री-पुरुपके शिश्नमूलग्रन्थिरसमेह (वदी), प्रोस्टेटरसमेह (मजी) एव शुक्रप्रमेहकी उत्कृष्ट औपधि है। अहितकर—आमाशयको। निवारण—मधु। प्रतिनिधि—शीशमका बुरादा। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक।

●

(४१) आम ।

फैमिली : आनाकार्डिआसे (Family Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) आम, आव, (अ०) अवज, (फा०) अव, (स०) आम्र, (क०) अब, अभ, (ता०) मागामरम, (व०) आम, (प०) अव, (म०) आवा, (गु०) आवो, (सि०) अम्व, (लै०) मागीफेरा इंडिका (**Mangifera indica**, Linn), (अ०) मैन्गो (Mango)।

वक्तव्य—फारसी "अव", सस्कृत "आम्र"से व्युत्पन्न है। अरवी "अवज" फारसी "अव"का अरबी रुपान्तर है। लैटिन प्रजातिक (Generic) नाम एव अग्रेजी नाम तामिल "मागा"पर आधारित है। जातीय नाम "ईडिका" आमके भारतका आदिवासी होनेकी ओर सकेत करता है। लैटिन एव तामिल नाम वृक्षके है। अग्रेजी नाम फलका है। वृक्षके लिए "मैन्गो ट्री" कहते है। शेप नाम वृक्ष एव फल दोनोसे लिए सामान्य है।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह भारतवर्पका प्रसिद्ध फल है।

रासायनिक सगठन—पके फलके गूदेमे सिट्रिक एसिड, तथा अशत गैलिक एसिड होता है। बीजमज्जा (गिरी)मे गैलिक एसिड, टैनिन तथा वसा, शर्करा, निर्यास एव क्षार आदि पदार्थ होते है।

उपयुक्त अग—पका या कच्चा फल, गुठलीकी गिरी (मग्ज), त्वक् एव पत्र।

कल्प तथा योग—शर्वत केरी और मुरब्बा आम आदि।

प्रकृति—पका आम उष्ण एव तर (स्निग्ध) है। आमकी गुठलीकी गिरी (खस्ता आम) शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म—पका आम बल्य, सौमनस्यजनन, रक्तवर्धक, बृहण, सर (कोष्ठमार्दवकर) और बाजीकर, गुठलीकी गिरी सग्राही और दीपन है।

उपयोग—मीठा पका आम खानेसे पूर्वोक्त गुण-कर्म प्रकाशित होते है। उक्त गुणोके लिए अधपके आमका मुरब्बा (फलखण्ड) कल्पना करके भी उपयोग किया जाता है। कच्चा आम विपैले वायु (लू)के दोष-परिहारके लिए परमगुणकारी द्रव्य है। अस्तु, इसको छीलकर कतरा कतरा वनाकर पानीमे डाल देते है। जब पानीमे अम्लता आ जाती है, तव उसमे मिश्री घोलकर मीठा करके पिलाते है। अथवा कच्चे आमको गरम राखमे दवा देते है। जब वह पक जाता हे, तव उसको धो-निचोडकर उसमे अर्क वेदमुश्क (वेतस पुष्पार्क), अर्क केवडा (केतकार्क) और यथा-प्रमाण मिश्री मिलाकर विपप्रभावसे पीडित रोगीको पिलाते है। अधिकतया यह इसी उपायसे उपयोगमे आता है। कच्चा आम दाँतोके लिए अहितकर है। आमाशयको वल देने (दीपन)के लिए तथा मूत्रातीत (सलसुल्बोल) और अतिसारको वद करनेके लिए आमकी गिरी (वीज मज्जा) उपयोग की जाती है।

मात्रा—(आम) जितना पच सके, गिरी ३ माशा।

आयुर्वेदीय मत—आम हृद्य, छर्दिनिग्रहण (कोमल पत्ती), पुरीष-सग्रहणीय और मूत्रसग्रहणीय तथा अम्ल एव कपाय है (च० सू० अ० ४)। कच्चा-कोमल आम पित्त, वायु और रक्तपित्त करनेवाला है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)। जिसमे केशर (रसकोश) वने हो ऐसा आम पित्तको बढानेवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। पका हुआ कपायानुरस, मधुर, हृद्य, शरीरके वर्णको निखारनेवाला, रुचिकर, बृहण, गुरु, पित्तका अविरोधि, वातघ्न तथा रक्त-मास-बल और वीर्यको वढानेवाला है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)। आमके मूल, त्वचा और कोमल पत्ती कषाय, ग्राहि और कफ तथा पित्तको दूर करनेवाले है (ध० नि०, रा० नि०)। फूल रोचन तथा दीपन है (रा० नि०)।

नव्यमत—त्वचा उत्तम रक्तसग्राहक है। मज्जा कृमिघ्न और रक्त-सग्राहक है। इससे गोलकृमि मरते है। पके फलका रस पौष्टिक स्रसन और रक्तपित्तप्रशमन है। फुफ्फुस, आँतो और गर्भाशयसे रक्तस्राव होता हो, तो उसं

बंद करनेके लिए इसकी छालका काढा देते हैं। रक्तार्श और अत्यार्तवमे मग्ज १०–१५ रत्ती प्रमाणमे देते हैं। कच्चे फलका पानक लू लगनेपर पिलाते तथा कच्चे फलको भूनकर उसका गूदा समस्त शरीरपर लेप करते हैं। गुठलीके भीतरका मग्ज अतिसार और पेचिशमे देते हैं।

●

(४२) आमपीच।

फैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०) आमपीच, (लें०) क्लाउसेना लानसिउम् (**Clausena lancium** (Lour) Skeels) (पर्याय—*Clausena wampo* Blanco), (अ०) आमपीच (Ampeach), आंबपीच (Amba-peach)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—एक फलदार वृक्ष जो अंग्रेजो द्वारा भारतवर्षमे पहुँचा है, और कही-कही बागोमें लगाया हुआ मिलता है। ऊँचाईमे इसके वृक्ष नाशपातीके पेडके बराबर, किन्तु उसमे भी उच्चतर होते हैं। पत्र आमके पत्तेसे क्षुद्रतर, फल छोटे बेरके बराबर किसी भाँति दीर्घ एव नोकदार होता है। स्वादमे कोई मीठा, कोई खट्टा और कोई बेस्वाद होता है। बाहरसे इसका रग ललाई लिए होता है, जिसपर पोस्तेके दानेकी तरह सफेद बिंदु होते हैं। फलका छिलका पतला, गूदा सफेद जिसके भीतर घुँघचीके बराबर काले रगका बीज होता है। पुष्प आमके फूलके समान होता है।

प्रकृति—सर्द एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका फल खानेसे मधुमेहपिडका (कारबकल)मे अपूर्व लाभ होता है तथा यह रक्तोत्पादक है। टाकिंग (Tonking)मे बीजसहित इसके सूखे फल खाँसीमे प्रयुक्त होते हैं। अहितकर—वृक्कको। निवारण—मधु। प्रतिनिधि—दालचीनी तथा केसरके साथ पकाया हुआ अगूरका रस। मात्रा—शर्बत ५ दिरम (१ तोला ५॥ माशा)।

●

(४३) आमला

फैमिली : एउफार्बिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) आमला, आवला, अँवरा, (अ०) आ (अ) मलज (इ० बै०), (फा०) आमल, (स०) आमलकम्, आमलक, आमलकी, धात्री, (ब०) आमलकी, आमला, (म०, गु०) आँवला, (लैं०) एम्बलिका ओफ्फीसिनालिस (**Emblica officinalis** Gaertn) (पर्याय *Phyllanthus emblica* Linn), (अ०) एम्ब्लिक माइरोबेलन (Emblic Myrobalan)।

वक्तव्य—अरबी 'आमलज' एव फारसी 'आमल' तथा लैटिन 'एम्बलिका' ये सभी शब्द सस्कृत 'आमलक' से व्युत्पन्न हैं। लेटिन नाम वृक्षका है। अंग्रेजी नाम इसके फलका है। सस्कृतमे भाषाकी दृष्टिसे 'आमलकम्'का फलके लिए तथा 'आमलक' एव 'आमलकी'का वृक्षके लिए प्रयोग होता है। शेष नाम वृक्ष एव फल दोनोके लिए सामान्यरूपसे हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका आदि उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। भारतवर्षके प्राय समस्त उष्णप्रधान प्रदेश, हिमालयकी तराई, जबूमे दक्षिणकी ओर लका तक, विशेषत उत्तरप्रदेश, कश्मीर और बगप्रदेशमे आँवलेके पेड लगाये जाते हैं, एव जगली होते हैं।

वर्णन—एक मझोले वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो गोल कागजी नीबूके बराबर, मसृण, गूदार और खरबूजेकी तरह एक पतली रेखासे छः बराबर भागोंमें विभक्त, पिलाई लिए हरे रंगका होता है। इसके ऊपरका छिलका इतना पतला होता है, कि उसकी नसें दिखाई देती हैं। इसके भीतर एक कठोर गुठली होती है, जिसमें छः उभरी हुई फाँकें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसमें तीन कोष होते हैं। हर कोषमें दो त्रिकोणाकार बीज होते हैं। पुष्ट आंवलेका रस रंगमें पीला होता है। यह स्वादमें कसैलापन लिए हुए खट्टा होता है, किन्तु पीछेसे इसमें मधुर स्वाद आता है। सूखा आंवला जंगली बेरके बराबर या इससे कुछ बड़ा, कुछ-कुछ षट्कोण, झुर्रीदार, अपक्वावस्थामें संग्रह किया हुआ भूरा-स्याह, परन्तु पक जानेपर संग्रह किया हुआ पिलाई लिए भूरा होता है, और दबाव पड़नेपर छः भागोंमें विभक्त हो जाता है। इसमेंसे हर एक भागमें गूदा एवं गुठलीका एक अंश लगा होता है और उसमें एक तिकोना भूरे रंगका बीज होता है। भेद—उद्यानज और जंगली, कलमी और बीजू, छोटा-बड़ा आदि प्रकारसे आंवलेके अनेक भेद होते हैं। एक प्रकारका आंवला नारंगीके आकारका, गोल और बहुत चपटा होता है। बहुत कड़ुआ और कसैला नहीं होता, इसको शाह आमला (शाह आमला-अमलजुलमुलूक) कहते हैं। इनमें उत्तम वह है जो बड़ा, रेखारहित, पिलाई लिए और ताजा हो। आंवला काशीका प्रसिद्ध है। यहाँके कलम द्वारा उत्पन्न आंवले अमरूदके आकारके रेखारहित और गूदार होते हैं, तथा गुठली अत्यन्त छोटी होती है। विटामिन C की मात्राकी दृष्टिसे जंगली आंवला उत्कृष्टतर होता है।

वक्तव्य—आंवलेका सूखा, गुठली निकाला हुआ छिलका 'आमला-मुनक्का' नामसे यूनानी वैद्यकमें प्रयुक्त होता है। दो-तीन बार दूधमें भिगोनेके उपरान्त जलमें धोकर सुखाये हुए आंवलोंको 'शीरपरवर्दा' कहते हैं। माजूनोंमें प्रायः यही प्रयुक्त होता है। आंवलोंको एक दिन-रात दूधमें तर रखकर जलमें धोये। फिर जलमें इतना उबालें कि गल जाय। इसके उपरान्त तारोंकी चलनी (या कपड़े)से छान ले। इस प्रकार छना हुआ आंवलेका गूदा 'शीर आमला' कहलाता है। शीरपरवर्दाको भी कोई-कोई आमला (शीर आमलज इसका अरबी रूपान्तर है) कहते हैं। ताजे आमलोंको कूटकर कपड़ेमें रखकर रस निचोड़े। फिर इसे मिट्टीके बरतनमें डालकर अग्निपर रखकर किसी चीजसे चलाते रहे। जब वह गाढ़ा होने लगे तब इसे किसी बरतनमें रख छोड़े। इस रसको धूपमें सुखाकर रसक्रिया प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार कल्पना की हुई रसक्रियाको अरबीमें सुक्क (सत आमला या रुब्ब आमला) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें गैलिक एसिड (Gallic acid), कषायाम्ल या टैनिक एसिड (Tannic acid), निर्यास, शर्करा, ऐल्ब्युमेन, काष्ठोज (Cellulose) और खनिज द्रव्य होते हैं। हरे ताजे आंवलेमें संतरेसे बीस गुना अधिक जीवनिक्ति (विटामिन) 'C' है। आंवला हरा वा सूखा तथा मुरब्बामें भी 'C' विटामिन सुरक्षित रहता है। आंवलेको पकानेपर इसका यह विटामिन नष्ट हो जाता है। विटामिन 'सी' की कमीसे होनेवाले रोगोंमें आंवलेका उपयोग कर लाभ उठाया जा सकता है।

कल्प तथा योग—शर्बत आमला, मुरब्बा आमला, रोगन आमला, अतरीफल और अनोशदारू कल्प वा योग, नोशदारू सादा, नोशदारू लूलुई, जवारिश आमला (सादा, कर्ली, लूलुई, वनुस्खा खास)।

प्रकृति—पहले (मतान्तरसे दूसरे) दर्जेमें शीत और दूसरे (मतान्तरसे तीसरे) दर्जेमें रूक्ष (खुश्क)। दूधमें भिगोने (शीरपरवर्दा करने)से इसकी रूक्षता कम हो जाती है। आयुर्वेदके मतसे भी शीतवीर्य एवं रूक्षवीर्य (मु०) है।

गुण-कर्म—उत्तमांगोंको बलप्रद, दीपन, ग्राही, पित्तरक्तसंशमन, चक्षुष्य, बालोंकी जड मजबूत करनेवाला और उन्हें काला करनेवाला (मुकव्वी व मुसव्वद शार) है।

उपयोग—बुद्धि, स्मरणशक्ति और दृष्टिशक्तिको बल प्रदान करने तथा हृत्स्पदन (खफकान), हृदयदौर्बल्य और अग्निमांद्य (जोफ मेदा)को दूर करनेके लिए, आंवलाका पुष्कल उपयोग किया जाता है। पित्त एवं रक्तका उद्वेग शमन करने, प्यास बुझाने और अतिसार (दस्त) व घुमनी बंद करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। नेत्रको

शक्ति प्रदान करने (चक्षुष्य)के लिए इसकी रसक्रिया (उसारा) तैयार करके नेत्रमे लगाते है। वालोको शक्ति देने और उनका कालापन स्थिर रखने या उनको काला करनेके लिए इसके क्वाथसे वालोको धोते है या खिजावो (केशरजन औषधो)मे सम्मिलित करते है। इसके अतिरिक्त उपयोगसे भी उक्त लाभ होना बतलाया जाता है। शिर, आमाशय, यकृत्, त्वचा और रोमके रोगोमे इसका अधिक उपयोग होता है। आमलेका फलखण्ड (मुरब्बा) भी बनाया जाता है। इसका हृत्स्पदन (धडकन), मस्तिष्कदौर्वल्य और आमाशययकृद्दौर्वल्यको दूर करने, मस्तिष्कका शोधन करने और अतिसार रोकनेके लिए उपयोग करते है। जुवारिश आमला इसका एक प्रसिद्ध योग है, जिसका आमाशयको शक्ति देने, अतिसार रोकने, हृद्द्रव एव वाष्पारोहण दूर करनेके लिए उपयोग करते है। जब कब्ज अनपेक्षित हो, तब सादा आमलेकी जगह आमलकीफलखण्ड (आमलेका मुरब्बा) उपयोग करे। यह हृदय, मस्तिष्क और आमाशयको शक्ति देता है। वाह्य प्रयोगसे यह काले दाग (नमश) और काले विंदु (वरश)को दूर करता है। अहितकर—कब्ज और शूल (कुलज) उत्पन्न करता है। निवारण—मधु और वादामका तेल। प्रतिनिधि—दीपनार्थ कावुली हड। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—आँवलेमे लवणरसको छोडकर अन्य सभी रस विद्यमान है (च० सू० अ० २७)। आँवले अपने अम्लरससे वातको, मधुररस और शीतवीर्यसे पित्तको तथा कषायरस और रूक्षवीर्यसे कफको दूर करते हैं। (सु० सू० अ० ४६)। आँवला शीतवीर्य, विरेचनोपग, श्रेष्ठ वय स्थापन (च० सू० अ० ४), सर, चक्षुष्य, रसायन, वृष्य और सर्वदोषघ्न है। (सु० सू० अ० ४६)। आँवले दोषानुलोमन, लघु, दीपन, पाचन, आयुष्य, पौष्टिक तथा *कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोथ, पाण्डुरोग, मद, अर्श, ग्रहणीरोग, पुराना विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि,* कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहाके राग, नया उदररोग, प्रतिश्याय, वैवर्ण्य, स्वरभग, कामला, कृमि, शोथ, तमक श्वास, वमन, नपुसकता, हृदय और छातीका लेप तथा स्मृति और वुद्धिके प्रमोहका नाश करनेवाले है (च० चि० अ० ३)।

नव्यमत—ताजे पके आँवले दीपन, पाचन, पित्तशामक, आनुलोमिक, रोचन, वल्य, पौष्टिक, कान्तिवर्धक, त्वग्रोगनाशक और वाजीकर है। सूखे आँवले स्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितस्थापन और बडी मात्रामे पित्तस्रावक और स्रसन है।

●

(४४) आयापान।

फैमिली : काम्पोजीटे (Family Compositae)

नाम—(हिं०, ब०) आयापान, (स०) विशल्यकरणी, (म०) अयापान, अयापानम्, (गु०) अल्लाप (पा), (प०) अरकल, (ता०, ते०) अयापानी, अयपन्नै, (ले०) एउपाटोरिउम ट्रिप्लिनेर्वे **Eupatorium triplinerve** Vahl (पर्याय–*Eupatorium ayapana* Vent), (अ०) थारोवर्ट (Thorough Wort), वोन-सेट (Bone Set)।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिका, ब्राजील, मारीशस इसके मूल उत्पत्तिस्थान है। अब भारतवर्षमे बगाल, वम्बई, कोकण आदि प्रान्तोके आर्द्र स्थानो, झील एव नदीके तटोपर वहुतायतसे होता है। यह वगीचोमे भी लगाया जाता है। यह वगदेशमे अधिक होता है।

वर्णन—इसका फैलनेवाला छोटा क्षुप १५० से० मी० से १८० से० मी० (५-६ फुट) ऊँचा होता है। पत्ती २.५ से० मी० (१ इ०) लम्बी, तीन सिरायुक्त और मसृण होती हैं। मसलनेसे इसमे अच्छी सुगन्ध आती है। पत्र सम्मुखवर्ती युग्म, १० से० मी० से १२.५ से० मी० (४-५ इ०) लम्बे, १.७५ से० मी० (¾ इ०) चौडे, दलदार, मसृण, भालाकार, पत्रप्रात आरावत्, पत्रका ऊपरी पृष्ठ खुरदुरा, नीचे का पृष्ठ कुछ रुंहेसदार एव रोओसे

व्याप्त होता है। पत्रकी मध्यसिरा कुछ लाल या बैंगनी रगकी तथा मोटी होती है। पत्रवृन्त शाखा या टहनीके चारो ओर वेष्टित-सा होता है। पत्तोके मलनेपर उत्तम सुगध आती है। पुष्प तुर्रेदार, बैंगनी रगके छोटे-छोटे मद सुगधयुक्त होते है। स्वादमे सम्पूर्ण पौधा किंचित् चरपरा और विचित्र प्रकारका कसैला होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक रगरहित उत्पत् तैल, आयापानिन (Ayapanin) नामका एक दानेदार उदासीन सत्व (जिसके नुकीले दीर्घ क्रिस्टल्स) होते है। यह जलमे अविलेय परन्तु ईथर या ऐल्कोहॉलमें विलेय होता है। इसमे यथेष्ट प्रमाणमे कषायद्रव्य (टैनिन) होता है।

उपयुक्त अग—वैसे तो सम्पूर्ण पौधा—पत्र, पुष्पान्वित शाखाये, कलिकाये, कोपल आदि औषधकार्यमें आते है। परन्तु इसके ताजे या सुखाये पत्ते विशेषकर औषधिप्रयोगमे लाये जाते है। ताजे पत्तोकी अपेक्षया सूखे पत्तोमे औषधीय धर्मकी मात्रा कम रहती है। मात्रा—पत्रस्वरस, ३ माशेसे १ तोला तक, शुष्क पत्र—१० से ३० रत्ती तक, तरल सत्व, १-२ फ्लुइड ड्राम, घनसत्व—५-१२ रत्ती, शीत कषाय या फाट—½-२ फ्लुइड आउस (या आवश्यकतानुसार), युपेटोरान (घन)—½ से १½ रत्ती (६० मि० ग्रा० से १८ मि० ग्रा०)।

प्रकृति—

गुण-कर्म तथा उपयोग—

नव्यमत—अजीर्ण और अन्य रोगोमे उत्तेजक बलकरके रूपमे इसका प्रयोग होता है। रक्तकास, पित्तवमन, नकसीर फूटना, रक्तमूत्र, रक्तातिसार और अत्यार्तवमे यह अमोघ औषध है (डॉ० कार्तिक चन्द्र बसु)।

आयापान अल्पप्रमाणमें रोचक, उत्तेजक और चेतनाकारक, बडी मात्रामे गरम गरम फाट देनेसे स्वेदजनन और पुष्कल फाट एक साथ पीनेसे वामक है। फाट थोडा-थोडा देते रहनेसे शरीरमे उष्णता आती है, हृदयका स्पन्दन जोरसे और स्पष्ट होता है, नाडी जोरसे चलती है और थोडा पसीना आता है। इसका लेप उत्तम व्रणशोधन और व्रणरोपण है। शारीरिक अशक्तता और तरुण शोथप्रधान रोगोमें थकावट दूर करनेके लिए चायके बदले इसका फाट देते है। विषम ज्वरमें ठड लगनेके समय और प्रतिश्यायके प्रारम्भमे इसका गरम फाट देते है। फाट उत्तम उत्तेजक और बलकारक है। हैजेमें शरीरमें उष्णता लाने और रक्ताभिसरण सुधारनेके लिए फाट बहुत उपयोगी है। कुपचन रोगमें चाय बद करके इसका फाट देते है। रक्तपित्तमें स्वरस गुणकारी है। (डॉ० वामन गणेश देसाई)।

रक्तस्राव बद करनेके लिए यह एक अमोघ औषधि है। रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदिके कारण शरीरके किसी भी भागमे गिरनेवाले रक्तके लिए इसके पत्तोका रस पीनेसे बडा लाभ होता है। (क० श्री हरलालजी गुप्त)।

जिस मनुष्यको शस्त्रका गहरा घाव लगा हो उसे आयापानके पत्तोका रस पिलानेसे तथा इसी रसको घावके स्थानपर लगानेसे रक्तस्राव बद हो जाता है। इसी प्रकार इसका रस पीनेसे आमाशयमेसे गिरनेवाला खून भी बद हो जाता है। (क० श्री द्वारकानाथजी विद्यारत्न)।

●

(४५) आरिया।

फैमिली : कूकुरबिटासे (Family Cucurbitaceae).

वर्णन—खीराकी जातिका एक फल जो उससे बहुत समानता रखता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एव तर।

गुण-कर्म—वात एव कफकारक। इसके अतिसेवनसे दोषदुष्ट अर्थात् दूषितज्वर उत्पन्न हो जाता है।

उपयोग—इसको अधिकतया ककडी या खीरेकी तरह खाते है। दीर्घपाकी एव गुरु होता है तथा आध्मान एव वायु उत्पन्न करता है। अतिसेवनसे दोषोमे विकार उत्पन्न होता है और ज्वर आने लगता है। मात्रा—एक फल।

●

(४६) आलू ।

फ़ैमिली : सोलानासे (Family . Solanaceae).

नाम—(हिं०, ब०, प०) आलू, (अ०) तुफाहुल् अर्ज, (फ़ा०) आलूए फिरग, सैबेजमी, (स०) आलु, आलुक, आरु, आरुक, आलू अभिनव, (बम्ब०, गु०) बटाटा, (लैं०) सोलानुम् टूबेरोसुम (**Solanum tuberosum,** Linn.), (अं०) पोटेटो (Potato) ।

वक्तव्य—सस्कृत 'आलु' आदि शब्द पहले कई प्रकारके कदोके लिए, विशेषत 'अरुईके' अर्थमे व्यवहृत होते थे, जो आलूके ही भेद है। इनके अतिरिक्त कई अन्य पौधे जिनके मूल कद होते है, आलु शब्दसे सबोधित होते थे। किन्तु सम्प्रति आलु वा आलू शब्द एक प्रसिद्ध गोल कदशाकके अर्थमे रूढ हो गया है, जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है। फारसीमे कुछ गोल फलोके लिए भी आलू शब्दका व्यवहार होता है, जैसे—आलूबोखारा, शफ्तालू, आलूचा इत्यादि। मराठी और मारवाडी उसे 'बटाटा' कहते है जो अग्रेजी 'पोटेटो' शब्दका अपभ्रश जान पडता है। जिस आलूका वर्णन इस प्रसगमे किया जा रहा है, वह वास्तवमे विदेशागत वनस्पति है। अतएव यह ध्यानमे रखना चाहिए कि, यद्यपि आलू आदि नामोका व्यवहार इस प्रकारके कन्दोके लिए अतिप्राचीन कालसे होता आ रहा है, किन्तु सोलानुम् टूबेरोसुम् के लिए इन सज्ञाओका प्रयोग अभिनव सस्कृत नामोके रूपमे ही समझना चाहिए। इससे यह भ्रम नही होना चाहिए कि इस आलू विशेषका वर्णन या ज्ञान हमारे यहाँ भी अतिप्राचीन कालसे है। लैटिन नाम पौधेका है। शेष नाम (विशेषत) कन्द या पौधे दानोके लिए सामान्यरूपसे समझना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिका है। परन्तु अब भारतवर्षमे आलूकी खेती चारो ओर होने लगी है। पटना, नैनीताल और चेरापूँजी इसके लिए प्रसिद्ध स्थान है।

वर्णन—यह प्रसिद्ध कद शाक है। लाल-सफेद, देशी-पहाडी आदि इसके अनेक भेद होते है।

रासायनिक सगठन—इसके सर्वागमें ऐस्पेरागिन (Asparagin) नामक एक सत्व होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमे रूक्ष।

गुण-कर्म—सग्राही और दाहप्रशमन (मुबर्रिद)।

उपयोग—आलूको अधिकतया अकेला या मासके साथ पकाकर खाद्याहारकी भाँति उपयोग करते है। यद्यपि यह अत्यन्त पौष्टिक (मुगज्जी) है, तथापि गरिष्ठ (भारी) और ग्राही है। अग्निदग्धपर इसका रस लगानेसे या इसे पीसकर लेप करनेसे तत्काल लाभ होता है। इससे व्रण शीघ्र सूख जाता है। मात्रा—जितना पच सके।

●

(४७) आलूचा

फैमिली : रोजासे (Family Rosaceae)

नाम—(हिं०) आलूचा, जर्दालू, शनालू, भोटिया बादाम, (अ०) अद्रक, बर्कू (फूं)क, (फा०) आलू, आलूच, आलूचे सुलतानी, आलूए फराँसीसी (-दमिश्की), (प०) ओलची, (का०) गुर्दालु, (लैं०) प्रूनुस आलूचा (**Prunus aloocha** Roxb), (अ०) फ्रेंच प्लम् (French Plum), प्रूज (Prunes)।

वक्तव्य—मुहीतआजमके मतसे इसे ही कोई-कोई 'नैगूक' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—इसका वृक्ष पश्चिमी हिमालयपर गढवालसे कश्मीर तक होता है। यह फारस और अफगानिस्तानमे भी होता है। समतल भूमिकी अपेक्षया पर्वतीय प्रान्त ही इसकी वृद्धिके लिए अधिकाधिक उपयुक्त है।

वर्णन—यह आलूबोखारेकी जातिके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो आकारमे आँवलेके बराबर पिलाई लिए लाल और अम्लतायुक्त मधुरस्वाद होता है।

रासायनिक सगठन—फलके गूदेमे किंचित् मैलिक एसिड (Malic acid), शर्करा २५ प्रतिशत, पेक्टिन, ऐल्ब्युमिन और लवण होता है। बीजमें ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) नामक एक प्रकारका अनुत्पत् तेल और इमल्सीन होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमे तर (स्निग्ध) है।

गुण-कर्म—पित्तसशमन और तृट्प्रशमन।

उपयोग—उष्णप्रकृति विशेषत (पित्तल) प्रकृतिके लोगोके लिए आलूचा एक लाभकारी मेवा है। यह पित्तको शमन करता, वमन और मिचली (उत्क्लेश)को रोकता तथा प्यास बुझाता है। मात्रा—जितना पच सके।

•

(४८) आलूबालू।

फैमिली : रोजासे (Family Rosaceae)

नाम—(फा०, हि०) आलूबालू, (फा०) आलूबालूए शीरी, कैलास (मीठा), आलूबूअली (खट्टा), (यू०) केरासिया (Kerasia), (अ०, रू०, दश्मिक) करासिया, (प०) ओलची, गिलास, (का०) औल्प, (अलमोडा) भोटिया बादाम, लदाखी बादाम, (लैं०) प्रूनुस सरासुस (**Prunus Cerasus** Linn), (अं०) ड्वार्फ चेरी (Dwarf Cherry), कॉमन चेरी (Common Cherry)।

वक्तव्य—आलूबालू, आलीबाली और आलूबूली शब्द आलूबूअलाके अपभ्रंश हैं। अरबी वा रूमी 'करासिया' शब्द यूनानी केरासियाका रूपान्तर मात्र है। करासि(सि)या जिसे यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोमे रूमी भाषाका शब्द लिखा है, वस्तुत यूनानी भाषाका शब्द है। इसको यूनानी 'करासूस (Cerasus)' भी कहते हैं। फारसीमे इसको 'आलूबालू' या 'आलूबूअला' कहते है। कैलास आलूबालूका ही एक भेद है। इसका फल अपेक्षाकृत अधिक बडा होता है और पककर मीठा पड जाता है। इसीको चेरी कहते है। यह काली, लाल और पीली अत्युत्तम होती है। एक जातिका फल बहुत छोटा होता है जो पकनेके उपरान्त विकसा रहता है। मधुर भेदको कैलास और खट्टेको आलूबूअला कहते है। साधारण बोल-चालकी भाषामे इसे आलूबालू कहते है। कोई-कोई कहते हैं कि आलूबोखारेकी एक जातिके पौधेका दूसरे पौधेमें कलम लगानेसे यह प्राप्त होता है। इसलिए इसे 'आलूबालू' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—ऐसा विश्वास किया जाता है, कि यह पश्चिमी एशियाका मूल निवासी है। शीतोष्ण उत्तरपश्चिमहिमालय, पजाब और उत्तरप्रदेशमे इसके वृक्ष जगली होते या लगाये जात है। कश्मीरमें इसकी कई जातियोके वृक्ष लगाये जाते है।

वर्णन—आलूचेकी तरहका एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी शाखाये फैली हुई और ललाई लिए होती है। पत्र भी ललाई लिए और खूबानी (जर्दालू)के पत्रकी तरह होते है। फूल सफेद या गुलाबी लगते है। चैत-बैसाखमें इसमे फूल आते है और जेठमे फल लगते है। फल छोटे अगूरकी तरह और गोल, चिकने चमकीले तथा घेरेमे १ २५ से० मी० (१।२ इ०) तक होते है। प्रारम्भमें (कच्चेपर) ये हरे और कसैले, गदराये हुए लाल एव खट्टे और पके हुए काले और खटमिट्ठे होते है। इसमे थोडी कडुआहट भी होती है, किन्तु अप्रिय नही मालूम होती। पूर्ण परिपक्व होनेपर ये मुश्की हो जाते है। बीज चनेके बराबर, छिलका कडा जिसके भीतर सफेद गिरी होती है। स्वादके विचारसे यह चार प्रकारका होता है—(१) कसैला, (२) खट्टा, (३) मीठा और (४) खटमिट्ठा।

गजबादावर्दके अनुसार ताजा, पेडका पका हुआ, ललाई लिए काला, बटा, किंचिन्मधुरता लिए खट्टा फल उत्तम है। इससे एक प्रकार का गोद भी निकलता है।

रासायनिक सगठन—बीजकी गिरी कडुई एवं सुगंधित होती है। उसमे एक प्रकारका उत्पत् तैल और पद्मकाष्ठ तथा कडुये बादाममे पाया जानेवाला एक विष सत्व (हाईड्रोसायनिक अम्ल) होता है।

उपयुक्त अग—फल और गोद।

प्रकृति—मीठा उष्ण एव तर, खटमिट्ठा बहुधा अनुष्णाशीत (मोतदिल), खट्टा और कसैला शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म—मीठा आलूबालू उरोमार्दवकर, प्रकृतिमार्दवकर (सर), मूत्रजनन (मुदिर्र) और बस्तिवृक्काश्मरीनिस्सारक, खटमिट्ठा पित्तरक्तसशमन, आमाशय और उष्ण यकृद्बलदायक, खट्टा और कसैला सग्राही है।

गोद लेखनीय और बस्तिवृक्काश्मरीछेदन है। मीठा और ताजा आलूबालू उरोकठकी कर्कशता (खरत्व) और कासमे प्रयुक्त किया जाता है। यह कब्जको दूर करता और पेशाब भी लाता है। खट्टा आलूबालू पित्त और रक्तका उद्वेग (जोश) शमन करने तथा वमन और मिचली दूर करनेके लिए खिलाया जाता है। मीठा और सूखा आलूबालू आर्तवजनन एव बस्तिवृक्काश्मरीनाशनके लिए सौंफके साथ उपयोग किया जाता है। आलूबालूका गोंद कठनलिका (कस्बारिया)के खरत्व और वृक्कबस्त्यश्मरी तोडनेके लिए उपयोग किया जाता है। चेहरेका रग निखारनेके लिए इसका लेप (तिला) किया जाता है। आलूबालूका शर्बत मूत्रप्रवर्तन एव बस्तिवृक्काश्मरीके उत्सर्गके लिए गुणदायक है। मीठा और ताजा आलूबालू अजीर्ण एव मदाग्निजनक है। इसलिए भोजनोत्तर इसका खाना वर्जित है। इसका प्रधान कर्म अश्मरिनाशन और मूत्र एव आर्तवप्रवर्तन है। अहितकर—मीठा स्निग्ध (मरतूब) आमाशयके लिए। निवारण—पोदकीघटित शुक्तमधु (सिकजबीन नानाई), कालीमिर्च और सेंधानमक।

मात्रा—दो-तीन दाना तक, गोद १-२ ग्राम (१-२ माशा)।

•

(४९) आलूबोखारा।

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family Rosaeeae)।

नाम—(हि०, प०, म०, गु०) आलूबोखारा, (यू०) कोक्कुमेलिआ (Kokkumelia), (फा०) आलू, आलूबोखारा, (अ०) इज्जास, इजास, (स०) आरुक, आलुक, (क०) अअर, (मा०) आलुबुखारो, (लै०) प्रूनुस बोकारिएन्सिस **Prunus bokariensis** (पर्याय–प्रूनुस कॉम्म्युनिस *Prunus communis* Hudson, प्रूनुस डोमेस्टिका *P. domestica* Linn), (अ०) दी बोखारा प्लम् (The Bokhara plum), प्रून (Prune)।

वक्तव्य—आलूबोखारासे इसका काला और बडा भेद अभिप्रेत होता है। आलूसे बोखाराका पीला भेद (आलूए जर्द बोखाराई) अभिप्रेत होता है जो ताजगीकी दशा मे कहरुबाई पीला, उज्वल, खटमिट्ठा एव स्वादिष्ट होता है और सब जगहके आलूबोखारे (आलुओं)से उत्तम समझा जाता है।

उत्पत्तिस्थान—यह यूरोप और पश्चिमी एशिया (वा दमिश्क)का मूल निवासी है और मध्य एशिया, पश्चिमी शीतोष्ण हिमालयमे गढवालसे कश्मीर तक ५,००० से ७,००० फुटकी ऊँचाई पर जगली होता है या लगाया जाता है। परन्तु यह बोखारा एव समरकन्द प्रातका उत्तम समझा जाता है। हिन्दुस्तान मे आलूबोखारा अफगानिस्तान और बलख आदि से आता है।

वर्णन—आलूचेकी एक जातिके वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो आँवले वा वेरके बराबर आलूकी शकलका गोल या आयताकार और खटमिठ्ठा होता है। सूखा फल अडाकार लगभग ३ से० मी० (११ इच) लम्बा, काला और झुर्रीदार होता है, भीतरका गूदा कालाई लिए भूरा वा लाल होता है। यह निर्गंध एव खट्टा चाशनीदार होता है। भेद—आलूबोखारा उद्यानज और पार्वती (पहाड़ी) भेदसे दो प्रकारका होता है। उद्यानज कई प्रकारका होता है। उनमेसे एक प्रकार वडा और काला है। इसीको साधारणतया 'आलूबोखारा' कहते हैं। इसके गोदको 'फारसी गोद' कहते हैं। यह अरबी गोद (समग अरबी)का प्रतिनिधि है।

रासायनिक सगठन—फलमे मैलिक एसिड (Malic acid), निम्बम्ल या सिट्रिक एसिड (Citric acid), शर्करा आदि होते हैं।

उपयुक्त अग—फल (इसके सूखे फल वाजारमे सर्वत्र मिलते हैं)।

कल्प तथा योग—शर्वत आलूबोखारा।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर, मतातरसे पहले दर्जेमे सर्द और दूसरेमे तर है। *गुण-कर्म*—पित्त एव रक्तोद्वेगसशमन, दाहप्रशमन, पित्तरेचक और मृदुरेचक (मारक) है। उपयोग—गरमीके (पैत्तिक) सिरदर्द, पित्तज्वर, वमन, मिचली, प्यास रोकने तथा पित्तसशमनके लिए विशेषकर ज्वर एव अतिसारमे तथा कामला, दाह और पित्त-प्रधान रक्तविकारमे जलमे भिगोये हुए आलूबोखारेका ऊपर निथरा हुआ पानी (आबे जुलाल) उपयोग किया जाता है। तृषा एव हृल्लासमें फलको मुँहमें रखकर चुसाते है और इसका शर्वत बनाकर पिलाते है। यह हृदयकी उष्णता एव दाहमे लाभदायक है। मलकर पिलानेसे विरेचक द्वारा पित्तका उत्सर्ग करता है। मात्रा—३ दाना से ५ दाना तक। विरेचनार्थ पन्द्रह-बीस दाना तक।

नव्यमत—आलूबोखारा शीतल, पिपासाघ्न और मृदुरेचक है। पित्तज्वरमे इसका अच्छा उपयोग होता है। (औ० स०)। यह स्निग्ध एव पुष्टिकर है। (मे० मे० ऑफ इडिया–आर० एन्० खोरीकृत)। धनी-मानी व्यक्ति इसका नाना भाँतिकी चटनियाँ बनानेमे उपयोग करते है। यह यकृत्‌शैथिल्य और तज्जन्य वृद्धि तथा सूजाक एव अर्श-प्रभृतिमें लाभकारी है। इसकी भीगीका तेल खूबानीकी भीगीके तलके समान होता है और खाद्य है। जड धारक है।

●

(५०) आस।

फेमिली : मीर्टासे (Family Myrtaceae)।

नाम—(हि०, प०) विलायती मेंहदी, (यू०) Mursine (D I 155), (अ०) आस, (फा०) आस, दरख्ते हब्बुल आस, दरख्ते मूरद, (ले०) मिर्टुस काम्युनिस (**Myrtus communis** Linn), (अ०) मिर्टिल (Myrtle)। बीज—(बम्ब०) हब्बुल आस, (अ०) हब्बुल् आस, (फा०) तुख्मे मूरद, मूरददान, पिस्ते गालिय। पत्र—(अ०) वर्कुल् आस, (फा०) बर्गे मूरद।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरसे उत्तरपश्चिम हिमालय पर्वत। समस्त भारतीय उद्यानोमे यह लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक सदाहरित छोटी झाडी है। पत्र—लट्वाकार, चिकना, चमकीला मेंहदीकी तरह, सुगधित और गहरे हरे रगके होते हैं।

फूल—सफेद, सुगधित, स्वादमे किंचित् तिक्त ओर फीके होते है। पखडियाँ (दल) क्षुद्र होती तथा शीघ्र झड जाती है और उनसे सुगध आती है। फल छोटे कालीमिर्चसे कुछ वडे, जामुनी रगके और स्वादमे कुछ फीके होते है और उनके भीतर सात-आठ छोटे-छोटे चिकने बीज होते है। ये फल हब्बुल् आसके नामसे विकते है। आस उद्यानज और वन्य भेदसे दो प्रकारका होता है। यहाँ उद्यानज आसका वर्णन किया गया है। प्राचीन यूनानी

लेखकोका जंगली आप Oxymyrsine or Wild Myrtle (*Mursine agria D* 4 144) जिसको मुसलमान लेखको ने आसु-ल्-बर्री लिखा है, डोमक महोदयके अनुसार जगली आम नही, अपितु एक प्रकारका बूचर्स-ब्रूम (*Ruscus aculeatus*) है।

रासायनिक सगठन—पके फलमे एक प्रकारका उत्पत् तेल।

आस-तैल (Oil of Myrtle)मे राल, टैनिन एसिड, सिट्रिक एसिड, मैलिक एसिड (Malic acid) और शर्करा आदि पदार्थ पाये जाते है। पत्र, पुष्प और फलसे आसवन द्वारा एक प्रकारका उत्पत् तेल प्राप्त किया जाता है। यह पिलाई या हरापन लिए पीले रगका और जलसे हलका होता है।

उपयुक्त अग—फल और पत्र।

कल्प तथा योग—शर्बत हब्बुल् आस।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष ह। लखनऊके झवाईटोलाके हकीमो के मतसे शीतवीर्यकी प्रधानतायुक्त समिश्रवीर्य है।

गुणकर्म—हब्बुल्आस ग्राही (काबिज), रक्तस्तमन, स्वेदापनयन, दीपन, प्रभावत हृदयबल्दायक, और वर्गमूरद (पत्र) अवसादक (मुसक्किन), केशरजन (बाल काला करनेवाला) तथा बालोको दृढ करनेवाला (मुकव्वी शार) है। उपयोग—अतिसार और प्रत्येक अग-प्रत्यगसे रक्तस्राव बद करनेके लिए हब्बुल्आसका उपयोग करते है। पसीना रोकनेके लिए इसको बारीक पीसकर शरीर पर मलते है। हृदयदौर्बल्य और हृत्स्पदन (खफकान) दूर करनेके लिए इसका उपयोग करते है। अग्निदग्घ, उष्णशोथ और शिर शूलमे वेदनास्थापनार्थ इसके पत्तोको पीसकर लेप करते है। कक्ष (बगल) स्वेद रोकने और उसकी दुर्गन्धनिवारणके लिए इसे कक्ष (बगल)मे मलते है। बालोको मजबूत करने और उनको काला रखने या काला करनेके लिए इसे खिजाबो (केशरजन औषधो)मे डालते है। विलायती मेहदीघटित शार्कर (शर्बत हब्बुल् आस) इसका एक प्रसिद्ध योग है जो अतिसार एव रक्तस्राव बद करने और अत्र-आमाशय तथा हृदयको शक्ति देनेके लिए विशेषरूपसे प्रयुक्त होता है।

अहितकर—शिर शूलजनक और अनिद्राजनक। निवारण—रसवत और तूत की पत्ती। प्रतिनिधि—बेख अजवार। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक।

नव्यमत—पत्रकृत फाट या सुरासवकी वस्ति देनेसे श्वेतप्रदर और योनिभ्रश (Prolapse) मे उत्तम परिणाम होता है। ० ६ ग्राम से २ ग्राम (५-१५ रत्ती)की मात्रामे पत्तियोका चूर्ण सेवन करनेसे उर क्षतगत रात्रिस्वेद बद हो जाता है तथा फुफ्फुसविकारोमें उपकार होता है।

●

(५१) इंद्रायन।

फैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हि०) इद्रायन, इनारुन, फरफेंद, (यू०) कोलोकिंथिस (Kolokynthis), (अ०) हं(हि)जल, अल्कम, (फा०) खर्पुजएतल्ख (–रोबाह), हिदवाने अबुजहल (–तल्ख), कबिस्त, (स०) इद्रवारुणी, विशाला, (क०) हूनिहेन्द, जहरखागुन, (प०) कौडतुबा (–तुम्मा), (मा०) तूस, तूसण वेल, तूसरगड, तूबा, (म०) इद्रविण, (ब०) राखाल शशा, (सिध) ड्रूह, (ता०) पेतिकारि, (ते०) पापर बुडम्, (मल०) पेक्कुम्मट्टि, (गु०) इद्रावणा, (लै०) सीट्रूलुस कोलोसिथुस (**Citrullus Colocynthus** schrad), (अ०) बिटर एपुल (Bitter apple), बिटर गोर्ड, (Bitter gourd), कॉलोसिंथ (Colocynth)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः उत्तर-पश्चिम, मध्य और दक्षिण भारतवर्ष, पंजाब और सिंधके शुष्क प्रदेश, कारोमंडलके रेतीले भाग, लंका, ईरान, अरब, श्याम, मिस्र, यूनानके कतिपय द्वीप, उत्तरी अफरीकाके सहारा, भूमध्यसागरतट, स्पेन, पर्तगाल और जापान आदि स्थानोंमें इसकी बेल जंगली उपजती है।

वर्णन—यह तरबूज या टिंडेकी जातकी एक सुदीर्घ लताका फल है। पत्र बहुत कटा हुआ, अनेक खंडयुक्त अथवा छिन्न, नाड़ अधिक रोमोंवाला, पत्रोदर मसृण और लगभग समतल, पत्रपृष्ठ अनेक उभरी हुई रेखाओं एवं क्षुद्र रोमधारक अर्बुदोंसे युक्त होता है। पत्रपृष्ठ, पत्रवृंत एवं काण्डोपर रोम होते हैं। पत्रवृंतके सन्निहित स्थान (समीप)से सूत्र निकलते हैं। पुष्पवृंत नातिदीर्घ और पुष्प पीला होता है। फल लगभग गोल, नारंगीके बराबर, समतल, ताजा हरा और पीली रेखाओंसे रंजित तथा पकने पर चिकनाई लिये भूरा होता है और इसमें अल्पप्रमाणमें भूरापन लिए सफेद गूदा होता है जिसके भीतर असंख्य भूरे बीज होते हैं। सूखे फलका संपूर्ण भीतरी भाग सुषिरपूर्ण (स्पंजवत्) एवं स्वच्छ सफेद गूदेसे भरा होता है। भारतीय बाजारोंमें छिलका उतारा हुआ इन्द्रायन देखनेमें नहीं आता। इसका आयात यहाँ यूरोपसे होता है। बीज चपटे अंडाकार ०.६५ सें० मी० (३।१० इंच) लंबे और ०.५ सें० मी० (१।५ इंच) चौड़े होते हैं। बीजका छिलका मोटा और कड़ा होता है। जड़ शाखायुक्त, चपटी, गुदारी और पिंगलई लिए सफेद रंगकी होती है। पौधेके सभी अंग-प्रत्यंग अत्यंत तिक्त होते हैं। वर्षामें इसकी बेल उत्पन्न होती है, वसंतमें फल लगने और शरद ऋतुमें पकते हैं और इसी समय इसके सूखे हुए फल बाजारमें लाये जाते हैं। छिलकायुक्त इन्द्रायनके गूदेमें चार वर्ष तक और छिलका उतारे हुएमें केवल दो वर्ष तक वीर्य शेष रहता है, बल्कि एक वर्षके भीतर ही वीर्य नष्ट हो जाता है। इसलिए उचित यह है कि आवश्यकता पड़ने पर ही गूदा निकालें। गूदेको अरबीमें शहम-हंजल कहते हैं। [illegible] इसका फल विषाक्त होता है। वक्तव्य—इसकी लैटिन संज्ञा 'कालोसिंथिस' इसकी यूनानी संज्ञा 'कालोकिन्थिस'से निकली है। जिसको कतिपय यूनानीवैद्यकीय ग्रंथोंमें प्रमादवश 'कोलोक्विन्टीस' आदि लिखा है, अशुद्ध है। प्राचीन भारतीयों, यूनानियों, रूमियों और प्राचीन अरबवासियोंको इस औषधिका ज्ञान था।

रासायनिक संगठन—इसमें कालोसिन्थिन नामक एक क्षारीय या तिक्त सत्व होता है। यह कण या चूर्णरूपमें पाया जाता है और जल एवं मद्यसारमें सुविलेय होता है। यह २ प्रतिशतसे न्यून नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त इसमें कालोसिन्थेइन (Colocynthein) नामक एक राल और कालोसिन्थिटिन प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं। कालोसिन्थिटिन एक क्रिस्टली चूर्ण होता है, जो ईथरमें विलेय और जलमें अविलेय होता है। बीजमें एक प्रकारका स्थिर तेल १० प्रतिशत पाया जाता है।

कल्प तथा योग—हब्ब शहमहंजल, हब्ब इन्द्रायन, मतबूख हफ्तरोजा।

उपयुक्त अंग—फलका गूदा (शहम-हंजल), बीज, पत्र और मूल (बेख)।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे फलका गूदा तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरे दर्जेमें रूक्ष। लखनऊके हकीमोंके मतसे चौथे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—कफ और सौदाविरेचनीय, श्वयथुविलयन और गर्भशातक।

उपयोग—सदा बना रहनेवाला (दायमी) कब्ज (यकृज्जन्य), जलोदर, कृच्छ्रश्वास (दमा), आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, पक्षवध, अर्दित, महाकुष्ठ और श्लीपद जैसे रोगोंमें विरेचनकी भाँति इन्द्रायनके फलके गूदेका पुष्कल उपयोग किया जाता है। गर्भाशयके रोगोंमें यह भ्रूणहत्या, द्रवापकर्षण और श्वयथुविलयन करता है। गर्भ-पातके लिए फलवर्ति (फिर्जजा)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। इन्द्रायनका गूदा खिलानेसे अन्त्रमें मरोड होने लगती है। अतएव इसके बारीक चूर्णके साथ कतीरा और बादामका तेल सम्मिलित कर लिया जाता है। इन्द्रायनके गूदेका साधारणतः औषधद्रव्योंके साथ मिलाकर गोलियाँ बनाकर उपयोग करते हैं। प्रधानतः कफ और सौदाके

उत्सर्गके लिए इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—मरोड़ पैदा करना है। निवारण-कतीरा और बादामका तेल। प्रतिनिधि-एलुआ (सकोतरी) विरेचनार्थ। मात्रा १-ग्राम से २ ग्राम (१ माशासे २ माशा) तक।

प्रकृति—(पत्र) तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

उपयोग—इसका विरेचन देनेसे श्वासरोग आराम होता है। इसके सूखे पत्र ७ माशा, निशास्ता (गेहूँका सत) और बबूलके गोंदके साथ सेवन करनेसे सौदावी अतिसार बन्द हो जाता है। इसे अनीसूँ, अफ्तीमून और अयारिज फैकराके साथ उपयोग करनेसे मालिन्खोलिया (मद), मृगी, मालिय (दाउल्हय्य) और अन्य सौदावी रोगोंमें उपकार होता है। अहितकर-जिगरको।

(जड) उपयोग—इसकी जड सिरकेमें क्वाथकर कुल्ली करनेसे अन्त्रशूल और मसूढोंका दर्द आराम होता है। इसकी जडका क्वाथ जलोदर और श्लीपदके लिए गुणकारी है। यह गाढे रक्तको पतला करता है। ७ माशा इन्द्रायनकी जड पिलानेसे बिच्छूका विष उतर जाता है। बिच्छू और सर्पके विषमें इसे खाने और लगाने (उभय प्रकार)से उपकार होता है। इसकी धूनी आर्तवप्रवर्तक है। मात्रा-१ माशा से २ माशा तक।

वीज—मरजनुल् अदवियामें इसके बीजोंका प्रयोग भी दिया है।

मात्रा—१.५ ग्राम (१॥ माशा)। तीसरे दर्जेमें गर्म व खुश्क होते हैं, और वमन द्वारा श्लेष्मा एवं माद्र दोषोंको निकालते हैं।

आयुर्वेदीय मत—इन्द्रायन तिक्त, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, रेचन तथा कृमि, कफ, व्रण, उदररोग, कामला, पित्त, प्लीहोदर, श्वास, कास, कुष्ठ, गुल्म, ग्रन्थि, प्रमेह, मूढगर्भ, आमविकार और विषका नाश करनेवाली है।

नव्यमत—इन्द्रायन भेदन है। इससे पेटमें मरोड होकर पतले दस्त होते हैं। मात्रा अधिक दी जाय तो आंतोंमें शोथ होता है। बडी आंतो और यकृत्पर इसकी क्रिया एलुएके समान होती है। मूल रेचन और श्वयथुहर है। बीजोंमें रेचक गुण नही होता। कफप्रधान रोगोंमें इन्द्रायनको देते हैं। इससे स्रोतोंका अवरोध दूर होता है। आमवात, सन्धिशोथ, जलोदर, यकृद्दाल्युर, प्लीहोदर और मलावरोधमें मूलका चूर्ण सोंठ और गुडके साथ मिलाकर देते हैं। मूलको पानीमें घिसकर व्रणशोथके ऊपर लगाते हैं, प्रारम्भमें ही लेप किया जावे तो इससे लाभ होता है, परन्तु पकनेपर लगानेपर कोई लाभ नही होता। बीजोंका तैल लगाते रहनेसे बाल सफेद नही होते।

●

(५२) इक्लीलुल् जबल

फ़ैमिली : लाबिआटे (Family · Labiatae)।

नाम—(हि०) रोजमरी, (अ०) इक्लीलुल् जबल, उवैसरान, (फा०) गुलेसुर्ख बहरी, (लें०) रोजमेरिनुस (रोज़मारिनुस) आफ्फ़ीसिनालिस (**Rosmarinus officinalis L**), (अं०) रोजमेरी (Rosemary), रोजमेरो (Rosemaro)।

वक्तव्य—यह अधिकतया पहाडोंपर और कडे एवं अल्पजल सूखे जंगलोंमे होता है; इसलिए इक्लीलुल् जबल (इक्लील् = मुकुट या ताज + उल् + जबल् = पर्वत) कहलाता है। यद्यपि इसको रोजमेरी (गुलेसुर्ख बहरी—सामुद्र गुलाब) कहते हैं, तथापि यह न तो गुलाबका कोई भेद है और न इसका 'मेरी'से कोई सम्बन्ध है। यह लेटिन रोजमारिनुस् (Rosmarinus) अर्थात् सामुद्र अवश्याय (ओस)' से व्युत्पन्न है। जलप्रिय होनेसे इसका यह नाम पडा। उवैसरानके स्वरूपपरिचयके विषयमें कतिपय प्राचीन यूनानी चिकित्सा विशारदोंका मतभेद है। परन्तु कामूस अंग्रेजी व अरबी ल्यूहिना अब्कारियूनीमें उवैसरानको रोजमेरीका पर्याय लिखा है। किन्तु मुहीत आजम प्रभृति ग्रन्थोंमें इक्लीलुल्जबल और उवैसरान दोनोंका पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—यह दक्षिण यूरोप, एशिया माइनर और उत्तरी अफ्रीका का आदि निवासी है। अब भारतीय बगीचोंमें लगाया जाता है। यह स्पेन तथा मिस्रदेशमें भी उत्पन्न होता है और अधिकतया पहाड़ोंपर तथा कटे एवं जल्द सूखे जंगलोंमें तथा नदी आदिके तटोंपर भी उत्पन्न होता है। बहुत जगह इसको बागोंमें लगाते हैं। इसका पौधा रबीकी फसलमें होता है और ग्रीष्मके अंत तक रहता है। शिकारपुरवाले लोग इसकी खेती करते हैं।

वर्णन—यह एक छोटा सुगन्धि-क्षुप है। क्षुप एक गजसे भी अधिक ऊँचा हो जाता है। काण्ड कुछ-कुछ काष्ठीय (कठोर), वर्गाकार (चौकोर), पत्र लम्बा, बारीक (रेखाकार) कुण्ठिताग्र (obtuse), ऊपर गहरा हरा और नीचे सफेद, नग्न, तारकाकार रोमोंसे युक्त, समूहबद्ध और कान्तिरहित, पत्रप्रान्त अत्यन्त मुड़ा हुआ (Strongly revolute), शाखायें बड़ी, फूल सुगन्धित कुछ कुछ आसमानी और सफेद, पत्तियोंके बीचसे निकला हुआ, द्वि-ओष्ठीय, और केवल दो पुंकेसरों (Stamens)से युक्त होता है। स्वाद सुगन्धमय; गन्ध विशिष्ट, फल कड़ा और कुछ गोल होता है। इसके सूखनेपर बीज उससे झड़ जाता है। यह बीज राईके दानोंसे भी छोटा, तिक्त एवं तीक्ष्ण, कुछ-कुछ कसैला और सुगन्धित होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्र और पुष्पवान् शाखाओंसे वर्णरहित, हल्का और पिलाई लिए एक प्रकारका उत्पत् तेल प्राप्त होता है। इसकी गन्ध रोजमेरीकी तरह सुगंधित उष्ण और आपेक्षिक गुरुत्व ०·९०० से ०·९१५ तक होता है। यह तेल ब्रिटिश फार्माकोपियामें सम्मत है।

उपयुक्त अंग—पत्र (या क्षुप)।

प्रकृति—तीसरे दर्जे (अन्ताकीके अनुसार दूसरे दर्जे)में उष्ण एवं रूक्ष है। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गर्म व खुश्क है।

गुण-कर्म—वातानुलोमन, श्वयथुविलयन, अवरोधोद्घाटक, अश्मरीनाशन, मूत्रजनन (वा मूत्रमार्ग विशोधन), आर्तवजनन (वा गर्भाशयशोधक) और वफोत्सारि है। उपयोग—इसके सेवनसे वायुका अनुलोमन होता है। यह कृच्छ्र-श्वास (रबू) और आर्द्रकासमें गुणकारी है। इसके जीर्ण होनेपर यह फुफ्फुसका शोधन करता है। यह शीतल खफ-कान (हृत्स्पन्दन) और जलोदरमें जिसके साथ अधिक दाह (हरारत) और पिपासा न हो, गुणकारी है। दिल्लीके हकीम अर्धांगवात (फालिज) में इसका आभ्यन्तरिक उपयोग भी कराते हैं। लखनऊके हकीमोंके मतानुसार यह सूजन उतारता, अंगोंको शक्ति देता और गर्मी पहुँचाता है तथा यकृत्प्लीहा, आमाशय, गर्भाशय गुद और वृषण—इनके शोथ और दर्दको दूर करता है। यह यकृत्प्लीहाके अवरोधोंका उद्घाटन करता, यकृच्छूल, बस्ति-वृक्कअश्मरी और सौदावी कामलाको नष्ट करता, मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करता तथा मूत्रमार्ग एवं गर्भाशयका शोधन करता है। इसके लेपसे जीर्ण शोथ भी विलीन हो जाता है। नेत्रके चतुर्दिक् इसका लेप करनेसे शीतजनित नेत्रशूल तत्काल दूर हो नेत्र स्वाभाविक अवस्थामें आ जाता है।

अहितकर—उष्णप्रकृतिमें शिर शूलजनक है। निवारण-सिकञ्जबीन।

मात्रा—१०·५ ग्राम (१०॥ माशा)।

●

(५३) इक्लीलुल्मलिक

फैमिली - लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) नाखूना, अस्पुर्क, (यू०) Melilotos (D 3-417), (अ०) इक्लीलुल्मलिक, असाबउल्मलिक, (फा०) नाखून', गियाहकैसरी, शाहअफसर, (व०) बन पिरिंग, (लै०) ट्रीगोनेल्ला उंकाटा **Trigonella uncata** Boiss (पर्याय-मेलीलोटुस आफ्फीसिनालिस **Melilotus officinalis** Willd), (अं०) टान्किन बीन

(Tonkin bean), मेलिलॉट (Melilot), किंग्स क्राउन (King's Crown), किंग्स क्लेवर या चाफर (Kings Claver or Chafer) ।

वक्तव्य—यह नख (अज्फारुत्तीब-नाखून परियाँ)से भिन्न एक वानस्पतिक फली है। यह कटे हुए नाखून (तराशे नाखून)की तरह होती है, इसलिए इसे नाखूना कहते है। अरबी इक्लीलुल्मलिक शब्दका अर्थ (इक्लील = मुकुट या ताज, मलिक = राजा) राजमुकुट है। पूर्व कालमें इससे राजमुकुट बनाये जाते थे, इसलिए इसका उक्त नाम पड गया। यह यूनानियोका मेलिलोटोस (Melilotos) है, जिससे इसकी लेटिन और अँगरेजी संज्ञाये व्युत्पन्न हुई है। इस नामसे इसकी दो जातियोकी फलियाँ बिकती है। दोनोही के पत्र त्रिपत्र और फूल पीले होते है, किंतु मेलिलोटस आर्वेन्सिस (**Melilotus arvensis** Lamk)की फली छोटी, चिकनी, एकसे दो बीजयुक्त और मेलिलोटस आफ्फीसिनालिस (**M. Officinalis** Willd)की फली रोमावृत होती है। पत्र अभिहृद्वत् (Ob-cordate) प्रथमके पत्र दन्तुर (Serrate) और द्वितीयके खण्डितलट्वाकार (Ovato-truncate) होते है। स्वाद और गन्ध तृणवत् (Like hay) ।

उत्पत्तिस्थान—फारस। बम्बईमे इक्लीलुल्मलिकका आयात फारसकी खाडीसे होता है। ट्रीगोनेल्ला फारस और अफगानिस्तानमे होता है। भारतवर्षके नुब्रा और लदाखमें १०,००० से १३,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है।

वर्णन—मेथीकी जातिकी एक क्षुद्र वनस्पतिकी फली जो छोटी, कटे हुए नख (तराशे नाखून)के बराबर और उसीके समान अर्द्धचन्द्राकार (हिलाली) या हँसियाकी शकलकी, गोल, भूरापन लिए पीले रगकी और बाहरकी ओर कुछ झुकी हुई चचुयुक्त होती है। फलीके नीचेके आधारसे शीर्ष तकका माप १।२ इच और गोलाईका माप लगभग १ इच होता है। इसके दोनो पार्श्वपर लबाईके रुख गहरी परिखा (नाली) होती है और फली एक माध्यमिक पर्दा द्वारा दो कोषोमे विभक्त होती है। इनमेसे प्रत्येक कोषमें क्षुद्र भूरापन लिए पीले रगके अष्टपहल बीजोकी इकहरी पक्ति होती है, जिस (बीज)के एक पार्श्वपर गभीर दाँता (Notch) होता है। सूक्ष्मदर्शकयत्रके नीचे रखकर देखनेसे यह असख्य काले धब्बोसे चिह्नित दिखाई देता है। मुसलमान लेखकोका दूसरा भेद, जिसकी फली अत्यन्त क्षुद्र और स्वल्प वक्राकार होती है, बाजारमे उपलब्ध नही होता। कडी, पिलाई लिए सफेद और सुगधित फली जिसमें पीले बीज हो, औषधके लिए उत्तम समझी जाती है।

वक्तव्य—इक्लीलुल्मलिकके यह दो भेद—(१) सफेद फूलवाला (**Melilotus alba** Lam) और (२) पीले फूलवाला (M **parviflora** Desf) भारतवर्षमे भी होते है। इनमेसे प्रथम जातिकी गध यूरूपीय इक्लील (Melilot)कीसी होती है, और वहाँ इसका उसके प्रतिनिधि रूपमे व्यवहार होता है। मख्जनुल् अदवियामे इसके एक भारतीय भेदका भी उल्लेख मिलता है। उसकी फली बहुत छोटी होती है। इसको बगवासी पिरग कहते है। इसको वैज्ञानिक परिभाषामे ट्रागोनेल्ला कार्नीकुलाटा (**Trigonella corniculata** Linn) कहते है। शरदृतु मे कर्नाटक एव बगालमे शाकार्थ इसकी खेती करते हैं। बेलगाँवमे भी इसकी खेती होती है। वहाँ इसे तिरप (फा०—तिरीर; उ०—पिरग) कहते है। सस्कृत लेखकोका यह 'माल्य' है। भारतवर्षमे इसका माला बनाते है।

रासायनिक सगठन—इसके पौधे और फली (शुष्क पत्र और पुष्प)से एक प्रकारका कूमेरिन (Coumarin) नामक क्रिस्टली अति तीव्रगधी सत्त्व प्राप्त होता है। यह जलमे अविलेय, किन्तु सुरासार एव वसामे विलेय होता है।

उपयुक्त अग—फली।

प्रकृति—पहले दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, व्रणशोथपाचन, बल्य, वेदनास्थापन, मूत्रजनन और आर्तवजनन। सूजन उतारने और शरीरको बल एव उष्णता प्रदान करनेके लिए लेप और मालिश आदिकी भाँति इसका उपयोग करते है।

यकृत्, प्लीहा, आमाशय, गर्भाशय, गुदा और वृषण इनके शोथ एव दर्द तथा पक्षवध दूर करनेके लिए इसका बाह्य एव आतरिक प्रयोग करते है। इस हेतु इसका क्वाथ पिलाते और बाह्य उपयोग करते है। अन्त्रको शक्ति प्रदान करनेके लिए इसके काढे की वस्ति देते है। आशयशोथ (औराम अह्शाऽ)को दूर करनेके लिए लेपकी भाँति इसका विशेष उपयोग होता है। अहितकर—वृक्कोंको। निवारण—शुद्ध मधु और अजीर। प्रतिनिधि—बाबूना और फरासियून। मात्रा–२ ग्रामसे ४ ग्राम (२ माशासे ४ माशा) तक।

नव्यमत—कुलपेपर (Culpeper) के कथनानुसार क्षुप और इसके फूलोसे भभके द्वारा चुआए हुए अर्क या उससे बनाए हुए क्षारजल (Lye) से प्राय शिर धोनेसे उनको लाभ होता है जिनका अकस्मात् सज्ञानाश हो गया होता है। इससे स्मृति-शक्ति भी बलवान् होती है, शिर और मस्तिष्कको विश्राम मिलता है तथा दर्द एव सन्यास (Apoplexy)मे उनकी रक्षा होती है (पा० न्यू सा० पृ० २०४)।

●

(५४) इजखिर।

फैमिली . ग्रामीने (Family · Gramineae)।

नाम—(हिं०) लामजक, खवी, इन्द्रवगई (मीरजापुर जगल), (यू०) स्कोइनोस (Schoinos)। (अ०) अजखर (इ०बै०) इजख(खि)र, जौरजिया, खिलाल-एल्-माँमू (माँमूकी दतमार्जनी), तिव्न-एल्-मक्का (मक्कातृण), तीबुल अरब (अरबी सुगधद्रव्य), (फा०) काह मक्की (मक्कातृण), अलफ गोरखर (वन्य गर्दभतृण), गोर गियाह (वन्य गर्दभतृण), (स०) लामज्जक, (ब०) जराकुस, (प०) इभरकुश, लामजक, (म०) पिवला वाला; (गु०) अशखर, गधारू घास, (ले०) एण्ड्रोपोगोन लेनिगेर **(Andropogon laniger Desf** (पर्याय–सिम्पोपोगन ज्वारकुसा **Cimpopogon jwarancusa** Schult या C jwarancusa Jones), (अ०) स्क्विनैंच (Squinanch),

वक्तव्य—स्वर्गगवासी श्री यादवजी महाराजने इसे भूतृण और लामज्जक (लामजक)को उशीरका कोई भेद माना है (दे० द्रव्यगुण विज्ञानम्)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी भारतवर्ष (हिमालयकी तराईमे) तिब्बतपर्यन्त, पजाब, सिंध, अरब, फारस और उत्तरी अफरीका।

वर्णन—यह खसकी जातिका एक बहुवर्षायु सुगन्धि-तृण है जो देखनेमे सर्वथा खसके समान प्रतीत होता है। यह अपने साधारण पाताली जड, जडसे निकली हुई पत्तियोके क्षुद्र घने गुल्म और फूलकी सफेद लोमयुक्त तुरियो (Lanigerous calyx)के द्वारा पहिचाना जाता है। जड लबी और पतली होती है। वास गुलाबपुष्पके इत्रकी तरह सुगन्धित स्वाद सुगधि, तिक्त एव चरपरा (तीक्ष्ण) होता है। सुखाया हुआ पौधा (गुल्म) सफेद होता है। इसको इजखिर अरबी (या मक्की) कहते है।

उपयुक्त अग—जड (बेख़ इजखिर), पुष्प (शिगूफा इजख़िर—फुक्काहुल् इजखिर) और पंचाग। जड और पुष्पमे एक प्रकारकी हलकी तेज सुगध होती है। इनसे एक प्रकारका उत्पत् तेल (रोगन इजख़िर) निकाला जाता है जो अत्यन्त सुगन्धित होता है।

तेल (रोगन शिगूफा इजखिर) कल्पना विधि—आवश्यकतानुसार इजखिरके फूलोको लेकर इतने जैतूनके तेलमें भिगोये कि दुगुना तेल ऊपर रहे। इसे शीशीमे डालकर महीना भर धूपमे रखे। इसके बाद छान ले। इस छने हुए तेलमे दोबारा इजखिरके फूल डालकर उसी प्रकार धूपमे रखे। इसी तरह तीन बार करे। बस तेल (रोगन) तैयार है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष, मतान्तरसे दूसरे दर्जेमे उष्ण और पहलेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—सान्द्रदोषपाचन, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, आर्तवजनन, मूत्रल, दीपन और ग्राही। इन समस्त गुण-कर्मोमे फूल (शिगूफा इजखिर) अधिक वीर्यवान् है।

उपयोग—अगघात, पक्षवध, अर्दित, आक्षेप और विस्मृति जैसी शीतल कफज व्याधियो, शिर-आमाशय और यकृत्के कफज व्याधियो और कफज्वरमे इजखिरका पुष्कल उपयोग करते है। जलोदर, आमाशय-यकृत्प्लीहाशोथमें दोषपाचनार्थ, आर्तवमूत्रसग और वस्तिवृक्काश्मरीमे अकेला या अन्यान्य औषधद्रव्योके साथ इसका क्वाथ कल्पना करके पिलाते है। आमाशय, वृक्क और यकृत्के कठिन शोथोको विलीन करनेके लिए इसका लेप भी लगाते है। खाज (खारिश)को दूर करने और शरीरकी थकावट दूर करनेके लिए इसके फूलोका तेल शरीरपर मर्दन करते है। दाँतो और मसूढोको दृढ (मजबूत) करनेके लिए इजखिरकी जडके क्वाथसे गण्डूष (मजमजा) कराते है। इसके अतिरिक्त अग्निमाद्य (जोफ मेदा), उत्क्लेश (गसियान) और अतिसार बद करनेके लिए भी इसकी जडका उपयोग करते है। इसका शिगूफा जडसे अधिक बलवान् होता है। अहितकर–शिर शूलकारक। निवारण–सफेद चदन। प्रतिनिधि–अकरकरा और कालीमिर्च। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक।

आयुर्वेदमे लामज्जकके गुण-कर्मादि—यह शीतवीर्य, लघु, त्रिदोषहर तथा दाह, पित्त, रक्तविकार, मूत्र-कृच्छ्र, स्वेद एव त्वचाके रोगोको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० २५, कै० नि०)।

●

(५५) इमली।

फैमिली · लेगूमिनोसे (Family Leguminosae)।

नाम—(हि०) इमली, (अ०) तम्रेहिंदी, सुवार, हौश, हुमुर, हौमर; (फा०) तमरहिन्दी, खुर्माए हिंदी; (स०) अम्लिका, चिंचा, (व०) तेतुल, तेतुली, (खर०), तेतर, (म०) चिंच, (गु०) आवली, (ता०) आविलम्, शिजम्; (ते०) चिन्त (क०) तम्बर (मल०) कोलपुलि, (ले०) **टामारींडुस ईंडिकुम (Tamarindus indicus** Linn.) (अ०) टेमरिंड (Tamarind)।

वक्तव्य—अँगरेजी 'टेमरिंड' और लैटिन 'टामारीन्डुस' दोनो अरबी 'तम्रेहिंदी' शब्दसे, जिसका अर्थ हिंदी खजूर (खुर्माए हिंदी) है, व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष। यद्यपि कुछ विद्वानोके मतसे इसका मूल उत्पत्तिस्थान मिश्र (मध्य अफरीका) है जहाँसे भारतवर्ष एव पश्चिम भारतीय द्वीपसमूहमे लाकर यह लगाई गई है, तथापि सत्य यह है कि भारतवर्षके कुछ प्रदेश भी इसके मूल उत्पत्तिस्थान है। प्राचीन भारतीयोको तो इसका ज्ञान भली प्रकार था, किन्तु यूरूपमे यह मध्ययुगमे अरब निवासियोके द्वारा पहुँची।

इतिहास—यद्यपि कतिपय विचारकोके मतसे इसका मूल उत्पत्ति स्थान मिश्र (अफरीका) है और भारतवर्ष एव पूर्वी भारतीय द्वीपोमे लाकर लगाई गई है, इसके विपरीत सत्य यह है कि भारतवर्षके कतिपय स्थान भी इसके आदि उत्पत्तिस्थान है। प्राचीन भारतीयोको पूर्णतया इसका ज्ञान था। परन्तु यूरूपमें अरबो द्वारा इसका प्रवेश हुआ।

वर्णन—यह भारतवर्षके एक प्रसिद्ध विशाल वृक्षकी फलियाँ है, जो १०–११ से०मी० (आध बित्ता) या उससे न्यूनाधिक लबी और चपटी होती है। इन फलियोमे कालाई लिए लाल गूदा होता है। यह स्वादिष्ट खट्टापन लिए मीठा होता है। इन फलियोके भीतर बहुत कडे कालाई लिए लाल, चमकदार, चिकने, गोल और चपटे बीज होते है। इनको तोडनेपर अदरसे सफेद मग्ज निकलता है। यह मग्ज और फलीका गूदा औषधमे प्रयुक्त होते है।

रासायनिक संगठन—इमलीके गूदामें तिन्ताम्ल (टार्टरिक ऐसिड) ५ प्रतिशत, निम्बुकाम्ल या जम्बीराम्ल (सिट्रिक एसिड), सेबाम्ल (मैलिक एसिड), शुक्ताम्ल (एसीटिक एसिड), मद्यसार शिखर तिन्ताम्ल, (बाइटार्ट्रेट ऑफ पोटैशियम) ८ प्रतिशत, शर्करा २५ प्रतिशत से ४० प्रतिशत आदि पदार्थ होते हैं। बीजत्वक्में टैनिक ऐसिड, एक अनुत्पत् तैल तथा अन्य पदार्थ होते हैं। बीजमें ऐल्ब्युमिनाइड्स, वसा, कार्बोज ६३.२२ प्रतिशत, तन्तु और भस्म (जिसमें फास्फोरस एवं नाइट्रोजन होते हैं) आदि पदार्थ होते हैं।

इमलीका गूदा। प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। कतिपय हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है।

गुणकर्म—पित्तरेचन, पित्तजन्यदाहशमन, सौमनस्यजनन और पैत्तिकसंतापहर।

उपयोग—इमलीका पना (प्रपानक) या शर्बत बनाकर ग्रीष्मऋतुमें और पित्तज ज्वरोंमें पित्तोत्कर्ष, रक्तदोषोत्कर्ष तथा पिपासा, दाहशमन एवं हृद्रवतन और सौमनस्यजनन हेतु पिलाते हैं। वमन, दिलकी धड़कन और मितली बन्द करनेके लिए भी इसी प्रकार इसका पना एवं फुन्सियाँ फुंसी दूर करनेके लिए पिलाते हैं। आलूबुखारेके साथ इमलीके गूदेको जोशांदा बनाकर उपयोग करनेसे कण्डू, खर्जू एवं त्वग् रोगों (?)में भी उपकार होता है। जवारिशे तमरहिंदी (इमलीका माजून) और शर्बते तमरहिंदी या शर्बत इमली (इमलीका शार्बत) इसके प्रसिद्ध योग हैं।

वक्तव्य—इमलीका पना या शर्बत बनाते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि इसको जलमें भिगोनेके उपरान्त उसको न मला जाय, केवल भिगा हुआ पानी (आबे खुलासा) लेकर और शर्करा मिलाकर पिलायें, क्योंकि इस रीतिसे मसलनेसे इसका स्वाद खराब हो जाता है। प्रकृति इसको पीनेसे घृणा करती है और कभी-कभी वमन भी आ जाती है। अहितकर—कासजनक। निवारण—शर्करा और उन्नाब। प्रतिनिधि—तात्पर्य आलूबोखारा और ज़रिश्क।

मात्रा—२४ ग्रामसे ४८ ग्राम (२ तोलासे ४ तोला) तक।

इमलीके बीज (तुख्म इमली, चीआ या चिआँ)का मग़ज

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—मलग्राही, वाजीकर, वीर्यस्तंभन, वीर्यपुष्टिकर और वीर्यशोषणकर्ता।

उपयोग—इमलीके बीजको विशेषतः शुक्रमेह, स्वप्नदोष और शुक्रतारल्य निवारण करनेके लिए अकेला या अन्य उपयुक्त औषद्रव्योंके साथ चूर्ण या वटिकायें बनाकर उपयोग करते हैं। योनिसंकोचनके लिए इसके चूर्णकी फलवर्ति बनाकर योनिमें स्थापन कराते हैं। कतिपय शोथोंको पकाने और विलीन करनेके लिए इसका लेप करते हैं।

वक्तव्य—इमलीके बीजसे मग़ज निकालनेकी विधि यह है कि उसको कुछ दिन जलमें भिगोकर या भाड़में भुनवाकर छील लेते हैं। भुनवानेसे रूक्षता बढ़ जाती है। अहितकर-कब्ज उत्पन्न करता है। निवारण—शर्करा या यवागमक्रग। मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—इमलीका फल कोकमके फलसे कुछ न्यून गुणवाला है (च० सू० अ० २७)। इमलीका कच्चाफल अत्यन्त खट्टा, लघु और पित्तकर है। पका हुआ फल मधुर, अम्ल, भेदन तथा विष्टम्भ और वायुको दूर करनेवाला है, इमलीकी पत्तियोंका लेप शोथ, रक्तविकार और पीडाको शान्त करनेवाला है। इमलीके फलकी सूखी त्वचाका क्षार पेटका दर्द और मन्दाग्नि को दूर करनेवाला है (भा० प्र०)। एक तोले इमलीके बीजोको रातभर जलमें भिगो, प्रात उनके छिलके निकाल, दूधमें पीसकर दूधके अनुपानसे खानेसे अस्थिस्राव और सोमरोग नष्ट होता है (वै० म०)।

पत्र—इसके पत्तोका पानी उष्ण नेत्राभिष्यंदमें गुणकारी है। व्रणो एवं स्रावयुक्त फुसियोमें और रक्तशोधनार्थ इसके पत्र गुणदायक है।

नव्यमत—इमलीका गूदा पिपासाघ्न, रोचक, दाहशामक, आनुलोमिक और रक्तपित्तप्रशमन है। फलत्वचा की राख क्षारस्वभावी, मूत्रजनन और आनुलोमिक है। फूल शोथघ्न और रक्तसग्राहक है। पित्तविकारमे कब्ज और दाह दूर करनेके लिए इमलीका पानक देते हैं। इसके साथ अमलतासका गूदा मिलाया जाय तो उत्तम है। बीज प्रमेहवालोको देते है। नेत्राभिष्यन्दमे पुष्पकल्क आँखपर बाँधते है।

(५६) इलायची छोटी।

फैमिली : जिंजीबरासे (Family Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) **छोटी इलायची** (इलायची, लाची), गुजराती इलायची, सफेद इलायची, (यू०) कार्डेमोमोन (Cardamomon) (अ०) काकु(कि)लज (काकु(कि)ल) सिगार, शूशमीर, (फा०) हीलववा, हील, हीलउन्सा, हाल्ववा, ग़ैरववा, **इलायची खुर्द** (वा सफेद), (स०) एला, सूक्ष्मैला, क्षुद्रैला, द्राविडी, त्रुटि, (वम्व०) मलावारी इलाचयी, (व०) एलाइच, (म०) वेलची, वेलदोडे, (गु०) एलची, मलबारी या कागदी एलची, (प०) एलाची, (सिं०) एलाची, (लें०) **एलेट्टारिआ कार्डामोमुम Elettaria Cardamomum** (L), Maton (अ०) दी लेसर या मलावार कार्डेमोमम (The Lessei oi Malabar Cardamomum), कार्डेमम (Cardamom),।

उत्पत्तिस्थान और भेद—दक्षिण भारतवर्ष (दक्षिणमे कनाडाके उपजाऊ तर वनो, मैसूर, कुर्ग, ट्रावनकोर, कोचीन, मदुरा और मलावार इत्यादिके पहाडी तर जगलोमे यह आपसे आप होती है। यह दक्षिण भारतमे लगाई भी जाती है। ब्रह्म देशमे भी यह जगली पाई जाती है।

भेद—प्राचीन यूनानी वैद्योने दो प्रकार, परन्तु किसीने तीन प्रकारकी इलायचीका विवरण किया है—(१) **छोटी** (काकु(कि)लए सिगार) Cardamom, (२) **मध्यम** (काकु(कि)लए मुतवस्सित) या दरमियानी, और (३) वडी (काकु(कि)लए कुवार)। परन्तु उत्तरकालीन यूरूपीय डाक्टरोने अधोलिखित पाँच प्रकारकी इलायचीका उल्लेख किया है। यथा—(१) **सीलोन वाइल्ड** कार्डेमोम्ज अर्थात् लकाकी जगली इलायची जिससे **काकुलए** सिगार या छोटी इलायची विवक्षित है जिसके वीज (इलायची-दाना) डाक्टरीमे औपधतया व्यवहृत किए जाते है। (२) राउण्ड कार्डेमोम्स (Round Cardamoms) अर्थात् **काकुलए मुस्तदीर, हील गुराव, अल्खुन्जुलूयाविस**, या गोल इलायची जो जावा, श्याम या चीन आदिसे आती है। (३) **बंगाल** कार्डेमोम्ज अर्थात् वगीय इलायची, (४) नेपाल कार्डेमोम्ज अर्थात् नेपाली इलायची और (५) **विग्डनेवा कार्डेमोम्ज** अर्थात् पक्षयुक्त इलायची। नीचे इनमेंसे छोटी और वडी इन दो प्रकारकी इलाचियोका विवरण किया जा रहा है।

वर्णन—यह हलदी या अदरककी जातिके और सर्वथा उसके समान, चिरहरित, १२० से० मी० से २४० से० मी० (चार से आठ फुट) ऊँचे एक गुल्मका फल है जिसको "छोटी लाची" कहते है। यह १ से० मी० से २ से० मी० (२।५ से ४।५ इञ्च) लम्बी, अडाकार वा (लम्बगोल) कुछ-कुछ त्रिपार्श्व ऊपरकी ओर नोकदार और नीचेकी ओर गोल रहती है। छिलका कागजकी तरह, मोटा, वादामी रगका होता है, जिसके ऊपर लम्बाईके रुख धारियाँ पडी होती है। यह प्राय निर्गंध और स्वादरहित होता है। वीज चौथाई से०मी० (१।८ इञ्च) के करीव लम्वा, कुछ-कुछ त्रिकोणाकार (नोक तेज नही) और झुर्रीदार होता है। यह वाहरमे ललाई लिए काला और भीतर सफेद होता है। सुगन्ध मनोहारी, स्वाद कुछ-कुछ तिक्त चरपरा तथा सुरभिपूर्ण होता है। इसके खानेके वाद मुँहमें ठढक-सी प्रतीत होती है। इसके वीज वायुमे खुला रखनेसे विगड जाते है। अतएव विना जरूरतके उन्हे छिलकेमें से नही निकालना चाहिये। तीन वर्ष तक इसमे वीर्य रहता है। ताजी, मोटी और तीव्र सुगन्धियुक्त इलायची उत्तम समझी जाती है।

वर्णन—यह छोटी इलायचीकी ही जातिके एक गुल्मके प्रसिद्ध फल है। फल अंडाकार, त्रिपार्श्व (तीन खण्डोवाला) प्राय २ ५ सें० मी० (१ इञ्च या उँगलीके पोरके इतना) लम्बा और १ २५ सें० मी० (१।२ इञ्च) परिधिमें ललाई लिए भूरा होता है। इसके सूक्ष्मतर छोरपर ततुओका एक गुच्छा लगा होता है, जो प्राय कालान्तरसे झड जाता है। कोई-कोई फल इससे भी छोटे होते है। छिलका मोटा ललाई लिये भूरा होता और उस पर लम्बाईके रूख धारियाँ होती हैं। पकनेके उपरात किसीका छिलका स्वय फट जाता है। बीज छोटी इलायचीकी तरह पर उससे बडा लगभग गोल वा कोणयुक्त, भूरे, स्वाद और गधमे निर्बल सुगन्धित होते हैं। परन्तु इसकी गध कूँचनेपर ही प्रतीत होती है। ताजा होनेपर ये बीज बीजकोपमें एक प्रकारके मधुर चेपदार गूदे द्वारा परस्पर सलग्न होते हैं। सूखनेपर वह द्रव जाता रहता है। जबतक बीज छिलकोके भीतर रहता है, दो वर्ष तक बिगडता नही और उसका वीर्य स्थिर रहता है। छिलकारहित बीजोमे एक वर्ष तक वीर्य शेष रहता है।

रासायनिक सगठन—बीजोसे एक प्रकारका तेल प्राप्त होता है, जिसमें काफी सिनिओल **(Cineole)** वर्तमान होना है। यह औषधियोको रुचिकर बनानेके काम आता है, तथा मन प्रसादकर, उत्तेजक और पीले रगका होता है। इसकी गध और स्वाद बीजो की तरह होती है।

उपयुक्त-अग—फल और बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदमनसे उष्णवीर्य एव रूक्ष (कै० नि०)

गुण-कर्म—मुखका सुवासित करनेवाला, दीपन, पाचन, वातानुलोमन और मन प्रसादकर। उपयोग-बडी इलायची गरम मसालेका एक उपादान है। यह दाल, सालन, तरकारी आदि (नानखुरश) तथा नमकोन भोजनोके मसालोमें डालकर पुष्कल उपयोग की जाती है। कोई-कोई छोटी इलायचीकी जगह मुखको सुवासित करनेके लिए इसको चबाते है। मदाग्नि, कुपचन, आनाह और उदरशूलमे इसका उपयोग करते हैं। यह दीपन-पाचन माजूनो और चूर्णोमे डाली जाती हैं। इसका प्रधान कर्म अतिसारनाशन और उत्क्लेशनिवारण है। अहितकर-यूनानी द्रव्यगुण विपयक ग्रथोमें इसे अन्त्रके लिए अहितकर लिखा है, जो एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। निवारण—शर्करा (कद सफेद)। प्रतिनिधि—छोटी इलायची। मात्रा—० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—बडी इलायची रस और विपाकमें कटु, पित्त और अग्निवर्धन, लघु, रूक्ष, उष्णवीर्य तथा श्वास, खाँसी, वात, रक्तपित्त, हृल्लास, तृष्णा, कण्डू, शिरोरोग, मुखरोग और वमनको दूर करनेवाली है। (कै० नि०)।

(५८) इश्कपेचा।

फैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) चाँदवेल, अमरीकाकी चमेली, (अ०) अशक (मखजन), आशिकुश्शज्र, लबलाब सगीर, (फा०) इश्कपेच, (बम्ब०) कामलता; इश्कपेच, (ब०) तरुलता, (म०) सीतेचकेस, गणेशवेल, (क०) कामलते, (ले०) ईपोमेआ क्वामोक्लिट् **Ipomoea quamoclit** Linn (पर्याय-क्वामोक्लिट वुलगारिस Quamoclit vulgaris Chois), (अं०) क्युपिड्स फ्लावर (Cupid's flower), इन्डियन् फॉरगेट-मी-नॉट (Indian forget-me-not)।

वक्तव्य—यह लबलाबका छोटा भेद (लबलाब सगीर) है। इसके बडे भेद 'लबलाब कबीर' को हिन्दीमें चाँदनी वेल कहते है। मात्र लबलाबमे यही अभिप्रेत होती है (दे० "लबलाव")।

१०वी शताब्दीके पूर्वके (अरबी और फारसी) ग्रन्थोमें राजी और इब्नसीना नामक हकीमोने औषधरूपमें इसबगोलका निर्देश किया। भारतमें मुगलोके शासनकालमे इसका प्रारम्भिक प्रचार यूनानी हकीमोने इसे फारससे मँगाकर किया। इसबगोल आजकल एक बहुत उपयोगी द्रव्य पाया गया है और चिकित्सा व्यवहारमें इसका उपयोग तीनो चिकित्सा पद्धतियो (यूनानी, आयुर्वेद एव एलोपैथी) में किया जाता है।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान फारस है तथा पाश्चात्य देशोमें यह स्पेन तक होता है। अब उत्तर-पश्चिम भारतवर्षके स्थानोमें तथा पंजाब, सिंध और सतलजसे पश्चिम ओरकी नीची पहाडियोपर और भारतवर्षके अन्य विभिन्न प्रान्तोमें विशेषत गुजरातमें इसकी न्यूनाधिक खेती होती है।

वर्णन—यह एक छोटी वनस्पतिके छोटे बीज हैं। देखनेमें अर्ध अलसीके आकारके, नौकाकार, अर्धस्वच्छ और हलके गुलाबी रगके होते हैं। इसके उन्नतोदर पृष्ठपर एक हलकी भूरी धारी होती है और इसका नतोदर भाग एक पतली सफेद झिल्लीसे आच्छादित होता है। जलमे भिगोनेपर ये फूलकर गध एव स्वादरहित प्रचुर चिपचिपा लवाब (पिच्छा,से आवृत्त हो जाते है। इन बीजोको 'इसबगोल (अस्पगोल)' और इनके छिलके वा भूसीको 'सबूस अस्पगोल' कहते हैं। यूनानी वैद्यकमे इन दोनोका उपयोग औषधमें होता है। भेद—रगके विचारसे ये कई प्रकारके होते है। इनमे कोई भूरे और कोई हल्का गुलाबी लिये लगभग सफेद होते हैं। इनमें पिछले अधिक पसद किये जाते तथा उत्तम समझे जाते हैं। मख्जनुल् अद्विया और मुहीत आजम प्रभृति यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोमे इसे तीन प्रकारका लिखा है —(१) सफेद, (२) लाल और (३) काला। किसीने इसके सफेद और किसीने लाल भेदको उत्तम लिखा है। परन्तु कालेको सभीने निकृष्ट कहा है। इसबगोलकी ही एक जातिके पौधेके बीज जिसका वैज्ञानिक नाम प्लांटागो आम्प्लेक्सीकॉलिस **Plantago amplexicaulis Cav.** है, प्राय भारतीय बाजारोमें मिलते है। ये पजाब, मालवा और सिंधसे लेकर मिश्र, यूनान और दक्षिण यूरुप तक होते हैं। इसके बीज भी इसबगोलके बीजकी तरह नौकाकार, किंतु उनसे अधिक बडे एव भूरे होते है। इनकी औसत लबाई ४ १६ मि० मी० (१।६ इच) होती हैं। सभवत ये वास्तविक इसबगोल जैसे ही गुणकारक होते हैं।

रासायनिक सगठन—बीजमें एक वसामय तेल, ऐल्ब्युमिनीय पदार्थ और इतना अधिक प्रमाणमे लवाब होता है कि एक भाग बीज बीस भाग जलमें थोडे कालमे ही स्वादरहित जेली (फालूदा) रूपमें परिणत हो जाता हैं। यह केवल जलमे अशत विलेय होता हैं।

उपयुक्त अग—बीज (इसबगोल) और बीजके छिलके इसबगोलकी भूसी (सबूस इसबगोल)। फारससे बम्बईमे इसबगोलका आयात होता हैं। कल्प तथा योग—चूर्ण, पेया, शर्बत, क्षीरिका (खीर) वा लप्सी, पाक आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर (स्निग्ध)। मतातरसे तीसरे दर्जेमे शीत और दूसरेमे तर। गुणकर्म—उष्ण श्वयथुविलयन, सशमन, तृट्प्रशमन, तीव्रज्वरहर, सर और पिच्छिल, मुगर्री, भृष्ट इसबगोल सग्राही है। उपयोग—अधिकतया अतिसार एव प्रवाहिकामें इसबगोलका उपयोग करते है। अपनी पिच्छिलता (लजूजत) के कारण यह विबध (सुद्दा)को फिसलाकर निकालता है जो अन्त्रमें खराश (सक्षोभ) उत्पन्न हो जाती है उसको शमन करता है। इसे गुलरोगनमे भृष्ट करके या थोडासा गायका घी लगा, जरासा सेककर खानेसे अतिसार और प्रवाहिका आराम होती हैं। पिच्छिलताके ही कारण यह शुष्क कास एव जिह्वा तथा कठनलिका (कस्बारिया)के खरत्व वा रौक्ष्यको दूर करनेके लिए तथा मुखपाकमे प्रयुक्त किया जाता हैं। गरम (पित्तज) ज्वरोमे ज्वरकी तीव्रता वा दाहको कम करने और प्यास बुझानेके लिए इसबगोलका लबाब पिलाते हैं। शान्ति देने और मूत्रप्रवर्तनके लिए सूजाकमें इसका उपयोग करते हैं। अन्त्रकी रूक्षताके कारण यदि मलावरोध (कब्ज) उत्पन्न हुआ हो, तो इसबगोलके उपयोगसे वह दूर हो जाता है। विसर्प (हुम्रा), फुसी विशेष (नम्ला मकडी मूतना) और जलनदार फुन्सी विशेष (जम्रा या कालस्फोट-अन्थ्राक्स) प्रभृति जैसे उष्ण (पैत्तिक) शोथोको विलीन और शमन करने तथा गरम सिरदर्द नष्ट करनेके लिए लेप (लतूख व जिमाद)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसकी भूसी मूत्रदाह, मूत्रकृच्छ्र एव शुक्रमेहको

दूर करती है। कामेन्द्रियोंकी दबी हुई उकसाहट (नामर्दीगता-शिकायते हिस), वीर्यका पतलापन, स्वप्नदोष, स्तम्भनशक्तिका अभाव आदि वीर्यविकारोंमें तथा स्त्रियोंके श्वेतप्रदर, पुरानी कब्जियत और अतिसारमें इसबगोल और उसकी भूसीका प्रयोग सौम्य एवं निश्चित रूपेण लाभप्रद होता है।

अहितकर—नाडीदौर्बल्यकारक और क्षुधानाशक। निवारण—मधुशुक्त (सिकंजबीन असली)। प्रतिनिधि—शीतजनन और मृदुकरण (तलय्यिन)के लिए बिहीदाना। मात्रा—३ ग्राम से ९ ग्राम (३ से ९ माशा) तक। फाण्ट या हिमके लिए ६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १२ माशा) तक।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें यह लिखा मिलता है तथा हकीम लोग भी यह कहते हैं कि कूटे हुए इसबगोलके भीतरी प्रयोगसे विष प्रभाव प्रकट होते हैं। इसी विचारसे इसे कूटकर उपयोग नहीं किया जाता, यद्यपि यह विचार अयुक्तिक है।

नव्यमत—आज सर्वत्र आंतोंके नये और पुराने अतिसाररोगोंमें इसबगोलके साथ नागरमोथा या अन्य उपयुक्त औषधियोंका चूर्ण मिलाकर अनुपानरूपमें देनेसे पाश्चात्यदेशोंमें प्रयुक्त [illegible] नामक औषधिसे भी अधिक उत्तम होता है। यह आंतोंको बिना उत्तेजित किये उन्हें व्यवस्थित करके कब्जियतको दूर करता है। कब्जियतके साथ-साथ आंतोंकी खराबीसे होनेवाले अजीर्ण और इनसे उत्पन्न रोगोंमें भी यह आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। कब्जियतको दूर करने और आंतोंको स्निग्ध बनानेका जो कार्य लिक्विड पैरेफिन करता है वही कार्य इसबगोलके बीज भी करते हैं। परन्तु लिक्विड पैरेफिनमें जो अनेक अवगुण हैं, इसबगोल उन सबसे रहित है। इसलिए इसबगोलके बीज लिक्विड पैराफिनसे अनेक रूपोंमें श्रेष्ठ हैं। मात्रा—इसबगोलके बीजोंकी साधारण मात्रा १-२ तोले, भूसीकी मात्रा ७॥ माशे से १॥ तोले तक है। बीजोंको साफ पानीसे धोकर उनमें एक दो बड़े चम्मच भर शक्कर मिलाकर लेना चाहिये, और भूसीको पानीमें और शक्कर मिलाकर पश्चात् कुछ गरम दूध भी पीना लाभदायक है।

•

(६०) इसरौल।

फैमिली आरिस्टोलोकिआसे (Family Aristolochiaceae)।

नाम—(हि०) इसरमूल, इसरौल, (अ०, फा०) जरावन्दे हिन्दी, (सं०) ईश्वरी, ईश्वरमूल, नाकुली, सर्पगन्धा; (बं०) ईशो (-शे,-श, ईश)मूल, (बम्ब०, म०) सापसन(ण), सापसद, (संथाल) गद, (ता०) इसुरमूलि, (ते०) ईश्वर मूलि (मल०) ईश्वरमूलि, (ले०) आरिस्टोलोकिआ इंडिका **Aristolochia indica Linn.**, (अं०) इंडियन बर्थवर्ट (Indian birthwort)।

वक्तव्य—आधुनिक लेखकोंने धवलबरुआ (**Rauwolfia serpentina Benth.**)का संस्कृत नाम 'सर्पगन्धा' बतलाया है और इसी नामसे इसका सर्वत्र प्रचार भी है। परन्तु सर्पगन्धा या नाकुली वस्तुतः ईश्वरमूल या ईश्वरी अर्थात् इसरौलको मानना चाहिए। इसलिए सर्पगन्धाके लिए इसरौल लिखनेकी कुछ युक्तियुक्तता तो प्रतीत होती है, पर सर्पगन्धासे धवलबरुआ समझना ठीक नहीं प्रतीत होता। 'धवलबरुआ' और 'इसरौल' दोनो एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न औषधि हैं। देखो 'दवाएजुनून' और 'धवलबरुआ'।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक स्थान—उष्णप्रधान प्रदेशोंमें विशेषकर बंगाल, बिहारमें गया, मुङ्गेर, मानभूमि आदि तथा दक्षिणमें कोंकण, त्रिवांकुर और समुद्रके पश्चिमी तटपर इसकी लतायें मिलती हैं।

वर्णन—इसकी प्रायः काष्ठीय बहुवर्षायु लताएँ होती हैं। पत्तोंको मलने या यूँही सूँघनेसे उसमेंसे एक प्रकारकी विशेष तीव्र गंध आती है। क्वार कार्तिकमें एक विचित्र आकृतिके गुडचियाए हुए गहरे बैंगनी रंगके फूल आते हैं। फूलोंके झड जानेपर सतपुतियाकी तरहके, पर उससे कुछ छोटे लगभग गोल या चौडा आयताकार

पट्पहल फल लगते हैं, जो फटनेपर हवाई छतरीसदृश हो जाते हैं। बीज चिपटे त्रिकोण और सपक्ष होते हैं और सूखनेपर काले रगके हो जाते हैं। जड अशाखी, बहुत लबी, उँगलीसे लेकर अँगूठेसे भी अधिक मोटी, ऊपरसे देखनेमे बादामी रगकी, काटनेपर मोटाईके रुख उसमे चक्राकार मडळ पाये जाते हैं। इसका प्रत्येक अग विशेषकर बीज बहुत ही कडुआ एव झालदार होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, फल और जड (तथा पचाग)। मात्रा—३ ग्रामसे १२ ग्राम (३ माशेसे १ तोला) तक।

रासायनिक सगठन—इसका प्रधान उपादान एक उत्पत् तेल है, जिसपर इसकी विशेष गध एव स्वाद निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त इसकी जडमे **एरिस्टोलोकोन** (Aristolochine) नामक एल्केलॉइड (०—०५प्रति०) पाया जाता है।

कल्प व योग—क्वाथ, पत्रस्वरस, मूलचूर्ण आदि। प्रकृति—गरम। आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (भा०प्र०)। गुणकर्म (जड)—उत्तेजक, वल्य, कटुपौष्टिक, वातहर, ग्राही, आर्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक, वमन, अगद, ज्वरघ्न (नियतकालिकज्वर प्रतिवन्धक), स्वेदजनन, कृमिघ्न तथा किलासमे इसका चूर्ण शहदमे दिया जाता है। पत्रस्वरस सर्पविषमे प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—नाकुली कषाय, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य तथा सर्प–लूता–विच्छू–चूहा आदिका विप, ज्वर, कृमि और व्रणको दूर करनेवाला है। (भा०प्र०)।

नव्यमत—ईश्वरी कपूरके समान सुगधित और अति गर्भाशयोत्तेजक, सन्धिशोथघ्न, नाड्युत्तेजक, स्वेदजनन, नियतकालिकज्वरप्रतिवन्धक और विषहर है। ज्वरमे ईश्वरमूल देनेसे सिरका दर्द और पेशावकी जलन कम होती है और थकावट न आकर ज्वर उतरता है। सर्वप्रकारके ज्वरमे इसे दे सकते हैं, परन्तु विपमज्वर और सूतिका ज्वरमे यह विशेष गुणकारी है। त्रिदोष ज्वरमे इसको तगरके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है। तरुण और जीर्ण आमवात और सधिशोथमे ईश्वरमूल खिलाते हैं और सधिपर इसका लेप करते हैं। कफज्वरमे ईशरमूलसे खाँसनेकी शक्ति वढकर कफ निकलने लगता है। प्रसवकालमे स्त्रीको कष्ट होता हो तो पीपलामूलके साथ ईशरमूल देते हैं। इससे गर्भाशयका सकोचन होकर शीघ्र प्रसव होता है। प्रसूतिके अनन्तर ईशरमूल देनेसे दूषित रक्त गिर जाता है। अनार्तव और पीडितार्तवमे ईश्वरमूल देते हैं। ईशरमूलसे आमाशयकी पाचनशक्ति वढती है और आँतोकी शिथिलता कम होती है। बालकोको दन्तोद्गमके समयमें ज्वर उलटी और दस्त होते हो तो ईशरमूल देते हैं। इसरौलकी जडका चूर्ण १ तोला पानीमे पत्थरपर घोट-छानकर ५ तोला स्वरस बना, एक मात्रा तत्काल पिला देवें और आवश्यकता हो तो अवस्थानुसार आध घटे या एक-एक घटे बाद जवतक सर्पदशित पूर्णसज्ञा एव स्वथावस्थामें न आ जावे २–३ मात्रा और पिलाते हैं। दशित व्यक्ति अवश्य सर्पविषसे मुक्त हो जायगा। तात्पर्य यह कि इसरौलकी जड या पत्रका कालीमिर्च आदिके साथ पान-लेप नस्य-परिषेक आदिके रूपमे प्रयोग करनेसे सर्प-विच्छू-पागलकुत्ता आदिके विप तथा अफीमका विष दूर होता है। ३ माशे इसका स्वरस मूर्छितको पिला देवे या नासिका द्वारा उतार देवें तो रोगी शीघ्र ही मूर्छारहित हो जाता है।

(६१) उटंगन।

फैमिली : आकाथासे (Family Acanthaceae)

नाम—(हिं०) उट्टगन, उर्तजन, (म० वम्ब०) उटगन, (गु०) उटीगण, उटिगण, (व०) शुशनी, (प०, वम्ब०) उटगन, (ले०) ब्लेफारिस एडुलिस (**Blepharis edulis** Pers)।

उत्पत्तिस्थान—मिश्र, फारस, वलूचिस्तान, सिंध और पजाव।

वर्णन—बाजारसे मिलनेवाले उटगनके बीजोंके साथ कुछ समूचे फल और विभिन्न अनुपातमे फल (Capsule) के खण्डित टुकडे मिले होते है । फल पार्श्वोमे दो-चोटीवाली ऊँची टोपीकी आकृतिका (Mitre shaped) लगभग ०-९५ सें०मी० (३।१० इच) लम्बा और १ सें०मी० (२।१० इच) चौडा, सकुचिताग्र, पार्श्व गम्भीर रेखाङ्कित, पृष्ठतल चिकना और चमकदार तथा बादामी भूरे (Chestnut) रगका होता है । शिम्बी द्विकोषीय एव द्विबीजयुक्त और बीज हृदयाकार, चपटे, लम्बे और मोटे बालोंसे आच्छादित होते है । जलमे भिगोनेपर ये बाल जल सोखकर फूल जाते और प्रचुर चिपचिपा लबाब उत्पन्न करते है । अंजुरा इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है । वक्तव्य—ब्लेफारिस बोर्हेवीफोलिआ (B boerhaavifolia) उटगनकी ही एक जाति है, जो भारतवर्षमे सर्वत्र जगली होती है । इसके बीजोको भी कही-कही उटगनके बदले उपयोगमे लाया जाता है । अतः यह सभवत उटगनके समान गुणकारी है ।

रासायनिक सगठन—बीजोमे एक सफेद क्रिस्टलीसत्त्व और एक अन्य सफेद क्रिस्टलीसत्त्व जो तिक्त नही नहीं होता—यह दो सत्त्व पाये जाते है । बीजोके परन्तु प्रधानी रसक्रियामे बहुतसा लबाब और ऐल्ब्युमिन होता है । इसमे पेन्टोसन (?.१ प्रतिशत), १ २ प्रतिशत ब्लिफेरिन नामक तिक्त ग्लूकोसाइड, कैटेकोल, टैनिन, सैपोनिन तथा ग्लूकोज आदि तत्त्व होते है ।

उपयुक्त अग—बीज (उटगन) । बम्बईमें इसका आयात सिन्धसे होता है । सिन्ध और उत्तर भारतमें भी इसका सग्रह किया जाता है । उटगन एक परिचित एव बहुत प्रयुक्त देशी औषधद्रव्य है । इसलिए भारतवर्षमे सर्वत्र देशी औषधविक्रेताओंकी दुकानोमे यह मिल जाता है । भारतीय बाजारोमे, अंजुरा नामसे प्राय इसी उटगनके बीज मिलते है । परन्तु वास्तविक अंजुरा इससे भिन्न द्रव्य है । विशेष देखो 'अंजुरा' ।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमे (किन्तु लखनऊवालोके मतसे तीसरे दर्जेमे) उष्ण एव रूक्ष (मतान्तरसे मोतदिल) ।

गुणकर्म तथा उपयोग—वाजीकर, कामोद्दीपक, वीर्यस्तम्भन और वीर्यपुष्टिकर (गाढकर) । उटगनके बीज नपुसकता (जोफबाह), शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य और शुक्रमेहके लिए प्रयुक्त माजून और चूर्णादिकोंमें डाले जाते है । कोई-कोई इसे कटि और वृक्कको शक्ति देनेवाला भी बताते है । यह मूत्रल होता तथा पेशाबकी जलनको दूर करता है । मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक ।

●

(६२) उड़द ।

फॅमिली : लेगूमिनोसे (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) माष, उरि (-डि) द, उर्द उडद; (अ०, फा०) माषे स्याह, माषे हिंदी, (फा०) बनोमाष, (स०) माष, (ब०) माष कलाय, (गु०) उडद, (प०, बम्ब०) उडीद, (ले०) फासिओलुस मुंगो Phaseolus mungo Linn), (अ०) किडनी-बीन (Kidney bean) ।

वक्तव्य—अरबीमें 'माष' शब्दका प्रयोग मूगके अर्थमे होता है ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें सर्वत्र इसकी खेती होती है ।

वर्णन—यह, मूगकी ही जातिका एक भेद है । यह प्रसिद्ध खाद्य अन्न है जिसकी दाल पकाकर खायी जाती है । इसके मुख्य दो भेद होते है ।

रासायनिक सगठन—इसमे जल १० १, ऐल्ब्युमिनाइड्स २२ ७, श्वेतसार ५५ ८, तेल २ २, ततु ४ ८, भस्म ४ ४, फॉस्फोरिक एसिड १ १ प्रतिशत होता है ।

प्रकृति—मलमूत्र द्रवोके साथ उष्ण एव तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—उडदकी दाल आध्मानकारक (नफ्फाख), चिरपाकी और वायुकारक होती है। भली-भाँति पच जानेपर यह शुक्रल, वाजीकर, वीर्य एव शरीर पुष्टिकर तथा स्तन्यजनन है। इसके वहि प्रयोगसे सूजन उतरती त्वचा स्वच्छ होती और दर्द शमन होता है।

(भेद)(१) काला और (२) हरा। इसके जगलीभेद 'वनउडद' का आयुर्वेदमे माषपर्णी (**Teramnus labialis** Spreng) नामसे व्यवहार होता है। उनके मतसे यह शीतवर्य एव स्निग्ध है।

उपयोग—उडदकी दाल पकाकर सालनादि (नानखुरश) की भाँति बहुत खाई जाती है। यह उन लोगोके लिए जिनका मेदा बलवान् (अग्निदीप्त) हो, उत्तम है। यह शरीरको पुष्ट एव बलवान् बनाती और वाजीकरण करती है। औषधकी भाँति अकेले वा उपयुक्त अन्य औषधद्रव्योके साथ उडदका चूर्ण वा हलवा बनाकर नपुसकता, शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यमे प्रयुक्त करते है। दूध अधिक उत्पन्न करनेके लिये बच्चेवाली स्त्रीको समूचे उडदकी खीर पकाकर खिलाते है। नमक, हीग, सोयाके बीज और मैनफल इनको बारीक पीसकर उडदके आटेमे मिलाकर रोटी पकाते और एक तरफसे तवेपर पकाकर कच्चे तरफ एरडतेलसे चुपडकर आमाशयशूल, उदरशूल (कूलज) और वातिक वृक्कशूलमे विकारी स्थलपर सुहाता गरम वाँधते है। इसका प्रधान कर्म शिश्नोच्छ्रायकरण, शुक्रजनन और शरीर परिबृहण है। अहितकर–आध्मानकारक एव चिरपाकी। निवारण-कालीमिर्च और शर्करा। मात्रा–जितना पच सके। औषधकी भाँति १२ ग्राम (१ तोला)।

आयुर्वेदिक मत—उडद भारी, मधुर (पाकमे), स्निग्ध, उष्णवीर्य, वृष्य, बल्य, परम वायुनाशक, बहुमल-कारक, शीघ्र पुरुषत्वको देनेवाली (च० सू २७ अ०), मेदजनक, मासजनक, बृहण, अत्यन्त पुष्टिकर (ध० नि०), कफ-पित्त और मलको उत्पन्न करनेवाली, रेचक, वीर्यवर्धक, शुक्रनि सारक (वा० सू० ६ अ०), तत्काल रक्त एव पित्तको कुपित करनेवाली, रुचिकारक, खानेमे सुस्वादु, थके हुओको सुख देनेके लिए नित्य सेवनीय (श० नि० व० १६), सतर्पण तथा मूत्र-मल-स्तन्य-मेद-पित्त-कफकारक है और अर्श, अर्दित, श्वास, पक्तिशूल आदिको नष्ट करती है। (भा० पू० धान्य वर्ग)।

•

(६३) उन्नाब

फैमिली : र्‌हाम्नासे (Family Rhamnaceae)

नाम– (हिं०, प०, म०, गु०) उन्नाब, विलायती बेर, तितम बेर, (यू०) पाली ओरोस Paliouros (प्राचीन), पालीओरी Paliouri (अर्वाचीन), (अ०) उन्नाब, (फा०) सीलान (सिजद जीलानी), सिजद खोरासानी, (स०) राजबदर, राजकोल, सौवीर, (प०) सजीत, (लै०) जीजीफुस साटीवा **Zysyphus sativa** Gaertn (पर्याय–*Z. vulgaris Law*), (अं०) जुजुब (Jujube)

उत्पत्तिस्थान–इसके वृक्ष उत्तरभारतवर्ष, पजाब, पजाब हिमालय (६,५०० फुट की ऊचाई तक), कश्मीर, बलूचिस्तानमें होते है। यह अफगानिस्तान, फारस एव चीनसे भी आता है।

वर्णन–बेरकी जातीके एक काँटेदार वृक्षका फल है। इसका वृक्ष बेरके वृक्षके बराबर, किंतु पत्र उससे कुछ मोटे (जखीम) और लबे होते है और पत्रका एक पृष्ठ रोईंदार होता है। इस वृक्षकी छाल, लकडी और फल लाल रगके होते है। चीनसे आनेवाला इसका सूखा फल २५ से मी से ३७५ से मी (१ से १॥ इच) लबा और १ ८७५ से. मी (३।४ इच) चौडा बेरकी तरह और गोल, सूखे हुए बेरके समान, फलका छिलका

लाल अत्यंत झुर्रीदार, गूदा गुठलीसे चिपका हुआ, स्पजकी तरह हल्का और सुपिरपूर्ण, मीठा और पीला; गुठली ३ ६ मि मी से ? ५ मि मी (⅙ इंच से ⅒ इंच) लंबी, वहुत कडी और झुर्रीदार, शीर्ष तीक्ष्ण अनीदार सूक्ष्माग्र; गुठली का छिलका वहुत मोटा; वीज लवोतरा, चिपटा, वादामी रगका १ सें. मी (⅖ वां इंच) लवा और ⅜ सें मी (⅙ वां इंच) चौडा होता है। फारसकी खाडीसे आनेवाला फल इससे कुछ छोटा होता है। उन्नाव वेरकी जातियोमे सवसे उत्तम है।

वक्तव्य-भारतीय वाजारोमें उन्नावका आयात वहुत वडे परिमाणमें चीन और फारसकी खाडीसे होता है। इनमें चीनी उन्नाव अधिक उत्तम समझा जाता है, क्योकि यह फारसवाले की अपेक्षया वडा और मधुर होता है। नेपाल और रगूनकी ओरसे जो उन्नाव आता है वह अधिक मधुर और कम कसैला होता है। वगदादके जिलोमें भी उन्नाव होता है। यह वडा और उत्तम होता है। जुरजानी और खताई भी उत्तम होते है। सर्वोत्तम उन्नाव वह है जो वडा और खूव पका, लाल, गूदार तथा स्वादिष्ट हो और जिसमें विल्कुल कपाय न हो। माहवजवामान मोटा और लाल होनेके साथ पुराना होनेकी भी कैद लगाई है। इसमें दो वर्पतक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—फलमें लुआव (पिच्छिल द्रव्य) और शर्करा होती है। छाल और पत्तियोमे कषाय-द्रव्य होता है। कल्प तथा योग-अर्क उन्नाव, शर्वत उन्नाव।

प्रकृति—स्निग्धता लिये अनुष्णाशीत। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (रा० नि०)। गुणकर्म-यह साद्रदोषपाचन, प्रकृतिमार्दवकर (सारक), उरोमार्दवकर, कोष्ठको नरम करनेवाला और श्लेष्मनिस्सारक है। रक्तकी तीक्ष्णता और उद्वेग (जोश)को शमन करता, ठढक पहुँचाता, तृष्णा तथा ज्वरकी उष्णताको कम करनेवाला और रक्तप्रसादन है। उपयोग-प्रत्येक प्रतिश्याय, कास और वक्ष वा कठकी कर्कशता (खुशूनत सीना)को दूर करने तथा गाढे-दोषोंको पकाकर उत्सर्गयोग्य वनाने (नुजुज देने)के लिए उन्नावका पुष्कल उपयोग करते है। इसके अतिरिक्त रक्त विकारजनित व्याधियों, जैसे-फिरग (आतशक), कण्डू और फोडे-फुनियोकी ओपधियोके साथ भी इसका उपयोग करते है। रक्तज एव पित्तज ज्वरों और मसूरिका-ज्वरमें प्यास वुझाने और ज्वरकी उग्रता कम करनेके लिए इसका फाट वा अर्क (अर्क उन्नाव) पिलाया जाता है। रक्तका उद्वेग (जोश) और उसकी उष्णता नष्ट करनेके लिए इसका शर्वत (शर्वत उन्नाव) वनाकर दिया जाता है। यह कास और वक्षतोद (दर्दसीना) निवारणके लिए पिलाया या चटाया जाता है। यह शुष्क कासमें लाभ करता है। अहितकर-आमाशय और कामशक्तिको तथा आनाहकारक है। निवारण-शर्करा, अर्क गुलाव और मधु। प्रतिनिधि-लिसोढा (सपिस्ताँ) और वेर। मात्रा-५ दानासे ७ दाना तक।

आयुर्वेदीय मत—वडे वेर (वदर-उन्नाव) मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, भेदन, हृद्य, हिक्कानिग्रहण, श्रमप्रशमन, उदर्दप्रशमन, स्वेदोपग, विरेचनोपग, वाजीकर, वृहण तदा दाह, पित्त, वात, रक्तविकार, शोथ और तृष्णाको दूर करनेवाले है (च० सू० अ० ४, २७, रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—उन्नाव मधुर, स्नेहन और कफशामक है। छाल ग्राही, व्रणशोधन-रोपण है। पत्ती चवानेसे जीभकी स्वादग्रहण शक्ति नष्ट होती है। कुनैनका स्वाद मालूम नही होता है। छालके क्वाथसे व्रण धोते है। उन्नाव, कतीरा, शक्कर और गुलावपुष्पके घनकी गोलियाँ मुँहमें रखनेसे खाँसी कम होती है। उन्नावकी पत्तियोका चूर्ण ३-३ ग्राम (३-३ माशा) दिनमें दो वार जलके साथ देनेसे इक्षुमेहमे लाभ होता है।

•

(६४) उलटकंबल

फैमिली : स्टेर्क्यूलिआसे (Family Sterculiaceae)

नाम—(हिं०) उलटकवल, (स०) पिशाचकार्पास, पीवरी (रसमाधव), (व०) ओलोटकवल, (ले०) आब्रोमा आउगुस्टा **Abroma augusta Linn**, (अ०) डेविल्स कॉटन (Devil's Cotton)।

वक्तव्य—आयुर्वेद तथा यूनानी ग्रंथोमे इस औषधिका कही वर्णन नही है। इसकी खोज सर्वप्रथम सन् १८०१ ई० में डॉ० राक्सवर्गके द्वारा हुई और उन्होने इसे कष्टार्तवके लिए उपयोगी बतलाया। तबसे यह औषधि बराबर इस रोगमे प्रयुक्त की जाती है और तदनुसार फल भी मिलता है। इसके पश्चात् भुवनमोहन सरकारने इसकी रज प्रवर्तिनी शक्तिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया। इसके लिए उन्होने इसके ताजे रसकी मात्रा २ ग्राम (२ माशा) निर्धारित की।

वर्णन—इसका बडा क्षुप या छोटा वृक्ष होता है। पत्ता चौडा ८ ७५ सें० मी० (३॥ इञ्च) लम्बा ऊपर चिकना, नीचे रोमश, दतयुक्त, पत्रनालके पास कम चौडा और ३–७ शिरायुक्त स्थलकमलके पत्ते जैसा होता है। फूल गहरे बैंगनी रगके नीचेकी ओर झुके हुए, पखड़ियाँ ५, फल पांच स्पष्ट खण्डो अथवा कोनोवाला होता है और ऊपरकी ओर कमलके फलकी तरह खण्डित (Truncate) मालूम होता है। फलोके चारो ओर छोटे-छोटे पत्ते लगे रहते है। बीज मूलीके जैसे तथा काले रगके होते है। इसकी टहनी जमीनके अन्दर गाड देनेसे लग जाता है।

उपयुक्त अग—मूलकी छाल। मूलकी छालके छोटे-छोटे टुकडे बना-सुखाकर शीशीमे इस प्रकार बदकर रखे जिसमे भीतर हवा न जाने पावे। इनको रज स्राव होनेके ६–७ दिन या ४–५ दिन पहले खाना चाहिए।

कल्प तथा मात्रा—मूलकी छालका चूर्ण १०–१५ रत्ती, ताजा मूल ४–८ माशा, मूल स्वरस ३ माशा। तरलसारकी मात्रा ३ ५ ग्राम (३॥ माशे) जलसे। चक्रिकाएँ आदि।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और गर्भाशयकी पीडाको शान्त करनेवाला है। ऋतुस्राव अनियमित होता हो और आर्तवस्रावके समय पीडा होती हो तब मासिकके ३ दिन पूर्व स्रावके समयमे तथा दो दिन पीछे तक इसका प्रयोग करना चाहिये। इसकी ताजी जडका रस और सूखी जड, दोनोका ही रसायनशालामे परीक्षण हो चुका है। सुरासारके साथ मिलानेसे इसका असर नष्ट हो जाता है। इसलिये इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोगमे लेना चाहिए। डॉ० कार्तिकचन्द्र वसुके मतानुसार इसकी जडका छिलका गर्भाशयको ठीक तरहसे सकोचन एव पुष्टि प्रदान करके मासिक धर्मको नियमित कर देता है, तथा यह मासिक धर्मके समयकी पीडाको नष्ट करनेमें रामबाणका काम करता है। कलकत्तेके प्रसिद्ध कविराज द्वारिकानाथ विद्यारत्न इस औषधिके सबन्धमे लिखते है कि उलटकवलकी जडकी छालका चूर्ण ३ ५ ग्राम (३॥ माशे)की मात्रामे इक्कीस काली-मिर्चका चूर्ण मिलाकर मासिकधर्मके समय सात दिनतक सेवन करना चाहिए और भोजनमें केवल दूध, भात लेना चाहिए। पति समागमका सर्वथा त्यागकर पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार दो-चार महीने तक प्रत्येक मासिक धर्मके समय सात दिन तक यह योग सेवन करनेसे गर्भाशयके सब दोष मिट जाते है। प्रदर और वन्ध्यत्वकी यह सर्वोत्कृष्ट औषधि है।"

●

(६५) उशबा मगरबी

फैमिली : लीलीआसे (Family Liliaceae)

नाम—(हिं०) उस्बा, सालसा, (अ०) उश्ब उश्बए मगरबी, उश्बए मगरबिय्य, उश्बतुन्नार, (गु०,ब०) सालसा, (लै०) सारसी राडिक्स (Sarsae Radix), (अ०) सार्सापरिल्ला (Sarsaparilla), जमेइका सार्सापरिल्ला (Jamaica Sarsaparilla)।

वक्तव्य—सारसा परीला स्पेनकी भाषामे 'सार्सीलाल' और 'पारीलिय' = 'छोटे अगूरकी बेल'का यौगिक है। उश्बाकी जड अगूरकी बेलके समान और लाल रंगकी होती है, इसलिए इसका उक्त नाम पडा। तीक्ष्णताके कारण

इसको 'उश्बतुन्नार (आग्नेय उश्बा)' भी कहते हैं। प्राय यह 'उश्बा मगरबी' नामसे प्रसिद्ध है। क्योंकि सर्वप्रथम पाश्चात्य देशवासी (अफरीका निवासी) इनके गुणकर्मसे परिचित हुए थे। इसके उपरान्त अन्यान्य देशोंमें इसकी प्रसिद्धि हुई। इसको 'जमैका सारसापरिल्ला' इस कारण कहते हैं कि पूर्वकालमें जमैकाकी राह अन्य देशोमे इसका आयात होता था। उशबाके उपर्युक्त सभी नाम इसके औषध्यर्थ प्रयुक्त अग (मूल एव लताकाण्ड)के है।

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिण और मध्य अमेरिका।

वर्णन—यह चोबचीनी या 'रामदतुउनिया'की जातिकी एक बेलकी, जिनको लेटिनमें स्माइलेक्स ऑर्नाटा (Smilax arnata Hook f) या स्मीलॅक्स मेडिका (Smilax medica Sch) कहते है, लबी, पतली, गोल प्राय झुर्रीदार और लचीली शाखाएँ और जडें हैं। इसे पाँच इच चौडी और १८ इचके लगभग लबी गड्डियोंमें बाँधकर लाते है। यह १८ ०५ मि० मी० (¾ इच)के लगभग मोटी (६ २५ मि० मी० से १ २५ मि० मी० ½-⅕ इच व्यासमें) लबाई लिए भूरे (मटमैले भूरे) रगकी, निर्गन्ध होती है और इसके साथ बहुतसे मुडे हुए तन्तु (उपमूल) लगे होते है। अनुप्रस्थकाट गहरा नारगी सीमायुक्त, श्वेतवर्ण काटमें भूरा कठिन, नान-म्टार्ची (Non-mealy) और सच्छिद्र केन्द्रीय भाग दिखाई देता है। इसका स्वाद लिबलिबा, लसदार और चबानेपर बहुत हल्का तिक्त एव बहुत कम लसलसा मालूम होता है। उत्तम उशबाके लक्षण–जिसकी शाखायें न अधिक पतली न अधिक मोटी, कुछ लाल रगकी एव लबी हो, जब तोडे तब धूलसी निकले और अन्दरका गूदा सफेद हो, वह उत्तम है। इसमे बीस वर्ष तक वीर्य रहता है।

वक्तव्य—इसी फैमिलीका एक जाति स्माइलेक्स आफ्फीसिनालिस (S officinalis H B)की जडें भी हाण्डुरससे आती है, परन्तु व्यापारिक दृष्टिसे ये इससे हीन कोटिकी समझी जाती है। उशबाकी कई एक जातियाँ भारतवर्षमें भी होती हैं, जैसे–चोबजापु और मुगेरमें प्रसिद्ध रामदतुउनिया या रामदॅतुन (S macrophylla Roxb) आदि, और इनको जगली या देशी उशबाके नामसे उशबाके स्थानमे व्यवहार भी होता है। इसके अतिरिक्त अर्क या नारिवा-कुल की अनन्तमूल (Hemidesmus indicus R Br) नामकी वनस्पति भारतवर्षमें होती है। गुणकर्ममें सारसापरिल्लाके समान होनेसे ही इसको देशी व भारतीय सालसा (Indian or Country Sarsaparilla) कहते है। गुणकर्ममें यह उशबा मगरबी या विदेशी सालसासे किसी प्रकार हीन नही है। इसी कारण सन् १९६४ मे यह ब्रिटिश फार्माकोपियामें सम्मानपूर्वक ग्रहण की गई।

रासायनिक सगठन—इसमे स्माइलेसिन (Smilasin) नामक एक वीर्य जो सैपोनिन (सावुनिन)की तरह होता है, एक उत्पत् तेल, राल और पिष्ट आदि तत्त्व पाये जाते है।

परीक्षा—अनन्तमूलकी जड इसके समान होती है। परन्तु यह आडे रूप चटकी हुई होती है।

कल्प तथा योग—अर्क उशबा (जदीद), माजून उशबा आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें, (लखनऊ वालोंके मतमे दूसरे दर्जेमें) उष्णा एव रुक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, स्वेदन, मूत्रजनन और रक्तप्रसादन।

उपयोग—उपर्युक्त गुण-कर्मके कारण यह प्राय स्निग्ध शीतल व्याधियोमे प्रयोग किया जाता और लाभ पहुँचाता है। चोबचीनीकी भाँति इसका क्वाथ पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, जीर्णकास, कृच्छ्रश्वास, यकृदवरोध, जलोदर और आमवात आदि रोगोमे पिलाया जाता है तथा तेलमें मिलाकर मर्दन किया जाता है। पुराने आमवातमे इसका चूर्ण मिश्रीके साथ खिलाया जाता है और पक्षवध, आमवात तथा गृध्रसीमे अर्कगुलाबमे पीसकर लेप किया जाता है। उक्त गुणोके सिवाय रक्तप्रसादन होनेके कारण यह फिरग, महाकुष्ठ और दूषित व्रण जैसे सौदावी रोगोमे इसका काढा और रक्तप्रसादनके लिये शर्बत पिलाया जाता है। फिरग और कुष्ट जैसे सौदावी रोगोमे यह विशेष गुणकारी है। अहितकर–यह तीव्र ज्वरोमे अहितकर और उष्णा (पित्तल) प्रकृतिके लिए असात्म्य है। निवारण–बादामका तेल। मात्रा ५–७ ग्राम (५ माशा से ७ माशा) तक।

नव्यमत—फिरगरोग, सधिशूल चिरकारी त्वग्रोगोमे रसायन और रक्तप्रसादनरूपसे तथा फिरगकी तृतीय कक्षामे विशेपकर जब रोगी निर्बल हो, इसको पोटैसियम आयोडाइडके साथ मिलाकर प्रयुक्त करनेसे अवश्य लाभ होता है। भारतीय सारसापरिल्ला या अनन्तमूलका मूल्य सारसापरिल्ला या उशवामगरबीसे किसी प्रकार हीन नही है।

●

(६६) उश्नान

फ़ैमिली : केनोपोडिआसे (Family Chenopodiaceae)।

नाम—(हिं०) कटोल, लानाबूटी, सर्ज्जाबूटी, (अ०) गा (गु) सूल, हुर्ज, (फा०) गाजुरान, उश्नान, (स०) सर्जिका, स्वर्जिका, (अ०) सोडा प्लांट्स (Soda Plants), साल्ट वर्ट्स (Salt worts)।

उत्पत्तिस्थान—सिन्ध, मुलतान और पजाव आदि।

वर्णन—एक वर्षायु क्षारयुक्त क्षुप, जिसकी अनेक जातियाँ होती है। यथा—(१) इसमे पत्र नही होते। पत्रके स्थानमे पतली शाखायें होती हैं, जिनपर ग्रन्थिकी शक्लकी चीजे बन जाती है। इसका क्षुप सदावहार रसपूर्ण वडा होता है और तना गोल होता है। इसको जलानेसे दुर्गंध आती है। यह रेहटा या क्षारीय, उजाड और शुष्क प्रदेशोमे होता है। इसे जलाकर विशेप विधिसे सज्जी बनाते है। (२) इसका क्षुप १ ८ मीटर (दो गज) ऊँचा, काड और शाखायें कुल लाल रगकी, पत्र छोटे दलदार, एक ओर कुछ बैगनी और दूसरी ओर गहरे हरे रगके होते है। इसके क्षुपसे एक प्रकारका कालेरगका द्रव निकलता है। यह जिस वस्तु पर लगता है, उसे काला कर देता है। यह सिंध और मुलतानमें विपुल होता है। इन दोनो बूटियोका स्वाद अत्यन्त क्षारीय होता है। पजाबमे इनसे सज्जी बनायी जाती है, और इनको लानाबूटी कहते है। इनमेसे प्रथम सम्भवत सालसोला कली (**Salsola kali** Linn) जिसे पजावमे सर्ज्जाबूटी और अरबीमे 'अल्कली' कहते है अथवा सा० फेटिडा (**S foetida** Del) है, जिसे पजाबमे मोटीलाने और बम्बईमे लाना (लाणा) कहते है, अथवा सुएडा फ्रूटीकोसा (**Sueda fruticosa** Forst) है और द्वितीय केनोपोडियम आट्रिप्लिसिस (**Chenopodium atriplicis**) है। (३) यह हरा होता है। इसके रसमे लाख घोलकर उससे लिखते है और रोशनाई (मसी)के स्थानमे इसका उपयोग करते है। इसको गासूल फारसी और गासूल याबिस कहते है। (४) यह इसका सफेद भेद है। यह सर्वोत्तम है। इसके पत्र सफेद होते है। इसको खुरूल् असाफीर (चटक-विष्टा) कहते है। बुरहान कातेअ और फरहंग रशीदी आदिके अध्ययनसे यह ज्ञात होता है, कि उश्नानको जलाकर जज्जी (स्वर्जिकाक्षार) बनाते है (दे० "सज्जी")।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुणकर्म—लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और विरेचन। उपयोग–उश्नानको जलाकर बनाई हुई सज्जी प्राय व्याधियोमे प्रयुक्त होती है। मूत्र और आर्तवप्रवर्तन यहाँ तक कि गर्भशातनके लिए भी उश्नानका उपयोग करते है तथा मूत्रसग निवारणके लिए पिलाते है। मूत्रजनन एव विरेचन होनेसे यह जलोदरमे भी प्रयुक्त होता है। इसके रसको मधुमे मिलाकर नेत्रमे डालते है। दाँतोकी स्वच्छता (जिला)के लिए इसे मजनकी भाँति दाँतो पर मलते है।

अहितकर—वस्तिको और गर्भशातक है। निवारण–रोगन बनफशा और कद्दूके बीजकी गिरी। मात्रा १ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा तक)। वक्तव्य–३ तोले उश्नानको घातक विष लिखा है। सम्भवत यह अपनी तीक्ष्णता और छेदनीय कर्मके कारण अन्त्र और आमाशयका लेखन (छील) करके मृत्युका कारण होता है।

सज्जी—

नाम—(हि०; म०, गु०, को०) सज्जी, सज्जीखार; (अ०) कली, कलीउस्सवागीन; (फा०) खिखार, अस्ग्रार, (सं०) स्व (स)र्जिका क्षार, सर्जिक्षार, सुवर्चिका, (व०) सार्जिक्षार, साजीमाटी, (म०, गु०) साजीखार; (अं०) बरिल्ला (Barilla), सोडा (Soda), अल्कली (Alkali)।

वर्णन—यह एक क्षारद्रव्य है, जो दो प्रकारसे बनता है—(१) फूली हुई (रेहवाली जमीनकी) मिट्टीमेंसे निकाला जाता है। इसे अंग्रेजीमें वाशिंग सोडा (Washing Soda), या सोडियम् कार्बोनेट (Sodium Corbonate) कहते हैं। इसका विवरण इस ग्रन्थके खनिजद्रव्य विज्ञानीय विभाग ३ के क्षारप्रकरणमें किया गया है। (२) उस्नान जातीय 'खारा' आदि कई वनस्पतियोंकी राखसे बनाते हैं। इसे अंग्रेजीमें बरिल्ला कहते हैं। इसीका वर्णन यहाँ किया जा रहा है। इसका स्वाद क्षारीय और अत्यन्त तीक्ष्ण होता है। साफ, काली और चमकीली सज्जी उत्तम समझी जाती है, यह साबुनका प्रधान उपादान है। जो खाकस्तर स्याहकी तरह और छोटे-छोटे टुकडे के रूपमें हो, वह अधम है। गुलाबीरंगकी अच्छी जातिकी सज्जीको लोटन सज्जी या लोटा सज्जी कहते हैं। सज्जीसे एक चीज उडाई जाती है जिसे हिब्बे अल्कली और शिक्ष्मल् सामफर कहते हैं। यही सज्जीका नमक (शखार मयूरज) है। यह सज्जीसे बहुत उत्तम और तीक्ष्ण होती है। वक्तव्य—सम्प्रति भारतवर्षमें कगनखार और 'खानागोन' नामक बूटियोंसे सज्जी बनाई जाती है। मिश्रकी भाषामें सज्जीको नतरूम (Natrium) और यूनानी भाषामें नित्रून (Nitron) कहते हैं। सज्जी अशुद्ध 'कार्बोनेट ऑफ सोडियम' है।

सज्जी बनानेकी विधि—अधुना पंजाबके मालवा, कच्छ, फग और मिश्रके इलाकेमें हजारों मन सज्जी बनाई जाती है। वहाँ इसके बनानेकी विधि निम्न है—खाना नामक समुद्री पौधेको काटकर जंगलोंमें ही सूखनेके लिए छोड देते हैं। जब वह सूख जाता है तब उसे इकट्ठा करके एक गड्ढेमें भरकर आग लगा देते हैं। जैसे-जैसे वह जलता जाता है उसमें सूखा खाना छोडते जाते हैं। राखसे जब गड्ढा भर जाता है तब उसे मिट्टीसे बंद कर देते हैं। दस-पन्द्रह दिनमें जब वह राख ठंडी हो जाती है और जमीनकी नमीसे डलोंके रूपमें आ जाती है, तब उसे खोदकर निकाल लिया जाता है और उसी रूपमें इसे बाजारमें, बिकनेके लिए भेज दिया जाता है। यह कालेरंगकी होती है। इससे कपडे धोनेका काम लिया जाता है। यदि इस सज्जीको पानीमें घोलकर मिट्टी आदि दूर करके शेष बचे हुए साफ पानीको उष्णता पहुँचाकर शुष्क कर लिया जाय तो उत्तम सज्जीखार तैयार हो जाता है। इसका आंतरिक रूपसे उपयोग किया जा सकता है। पाश्चात्त्य वैद्यकमें सोडियम-बाई-कार्बोनेट (Sodium-bi-carbonate) या सोडा-बाई कार्ब० (Soda Bicarb) नामसे जिस द्रव्यका प्रयोग होता है वह विलायती सज्जीखार ही है। जनसाधारण इसे मीठा सोडा कहते हैं। यह उपर्युक्त खानाके पौधोंको जलाकर तैयार नहीं किया जाता, अपितु सोडियम क्लोराइड (खानेका नमक) और अमोनियम-बाई-कार्बोनेटके रासायनिक क्रिया-प्रतिक्रियासे प्रस्तुत किया जाता है। तात्पर्य यह कि विलायती जवाखारके समान ही यह विलायती सज्जीखार भी वानस्पतिक क्षार नहीं होता, अपितु खनिज क्षार होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कार्बोनेट्स ऑफ सोडा, सल्फेट ऑफ सोडा और कार्बनिक पदार्थ होते हैं। यह कुछ कुछ भूरापन लिये सफेद सुषिरपूर्ण डलीके रूपमें होती है।

प्रकृति—चौथे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष। गुणकर्म—यह तीव्र लेखनीय एवं क्षारद्रव्य है। अल्पमात्रामें दीपन, पाचन, क्षुधाजनक और कफोत्सारि है तथा प्लीहाके शोथको मिटाती है। अधिक मात्रामें आमाशयान्त्रमें दाहक प्रभाव करती है। अर्थात् अन्त्र एवं आमाशयमें क्षत (जख्म) डालकर मनुष्यको मार डालती है।

उपयोग—अर्शांकुरोंको गिरानेके लिये सज्जीका लेप करते हैं। किलास, व्यंग (वहक), तर खुजली (कच्छू) और तर गजपर इसे लगाते हैं। दीपन और आहारपाचनके लिये अकेला या चूर्णोंमें मिलाकर इसका उपयोग करते हैं। कास और श्वासमें कफोत्सर्ग एवं प्लीहाशोथ मिटानेके लिए इसे खिलाते हैं।

सज्जीके विषलक्षण—इसको अधिक मात्रामे खिलानेसे मुख और कठमें दाह एव उष्णता प्रतीत होती है। कठकी झिल्ली शोथयुक्त होकर लाल हो जाती है। इसके बाद आमाशयमे तीव्रशूल होता है। वमन और विरेक आने लगते है और अत्यत दौर्बल्यके कारण रोगी मर जाता है। उपचार—कोई वामक औषध या केवल उष्ण जल अधिक प्रमाणमे पिलाकर वमन करायें। तदुपरात अडेकी सफेदी जलमे फेटकर पिलाये। अहितकर—तीन माशासे अधिक मात्रामे इसका सेवन विषाक्त प्रभाव करनेवाला है। निवारण—घी, दूध और स्नेह द्रव्य।

मात्रा— ० २५ ग्राम से ० ४० ग्राम (२ रत्ती से ३ रत्ती) तक। ३ ग्राम (३ माशा) की मात्रामे मारक है। प्रतिनिधि—जवाखार।

आयुर्वेदीय मत—सज्जीखार तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, क्लेदन करनेवाला, पाचक, ग्रन्थि और व्रण-शोथका विदारण करनेवाला, दाह करनेवाला, दीपन, छेदन और अग्नितुल्य है। (चरक)। सज्जीखार और जवाखार उष्णवीर्य तथा कफ, विबन्ध, अर्श, गुल्म और प्लीहवृद्धिका नाश करनेवाला है (सुश्रुत)।

(६७) उष (श) क।

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family Umbelliferae)।

नाम- (अ०, फा०, हिं०, भा० बाजार) उपक, उपुक, (हि०) कॉंदर, (यू०) अमोनियाकोन Ammoniakon), (अ०) उश, उप (श) क, ऊपज, बुश्ज, लजाक-अल्-जहव, (फा०) उ (ऊ) प (श), (अफगानी) कदल, (लै०) डोरेमा आमोनिआकुम (**Dorema ammoniacum** G Don)।

वक्तव्य (१) अमन या ऐमन (Ammons) प्राचीन रोम-मिश्र-यूनानवासियोके एक देवता थे। मिश्र-देशके जिस प्रदेशमे इनका मदिर था, वहाँ उषकके क्षुप प्रचुरतासे पाये जाते थे, इसलिए दीसकूरीदूस नामी यूनानी हकीमने, जिसने सर्वप्रथम इस ओषधिका उल्लेख किया है, इसका उक्त देवताके नामपर 'अमोनियाकून' नाम रख दिया। इसका वर्तमान लेटिन नाम- 'आमोनिआकुम' इसी यूनानी सज्ञाका किंचित् परिवर्तित स्वरूप है। अरबी ऊपज या उशक, फारसी उप (श) या ऊप (श)के अरबी रूपान्तर मात्र है। सुश्रुतके ऊषकादि-गणमे लिखा हुआ ऊषक क्षार विशेष है। (२) उशकके लक्षण (माहिय्यत)के सबधमे ख्यातनामा प्राचीन यूनानी चिकित्साविदो, जैसे-शैखुर्रईस, इब्नबेतार, दाऊद अंताकी, मालकी और मालायसअ ग्रन्थके रचयिताओमे परस्पर मतभिन्नता है जिसका, विवरण यहाँ अपेक्षित नही। परन्तु इब्नसीनाने जिस उशकवृक्षको 'तर्सूस' लिखा है और जिसका खडन इब्नबैतारने किया है, वह वस्तुत ईरानी (फारसी) उशकवृक्ष है जिसे शीराजवासी 'बद्रानी' तथा कोई-कोई 'कमाह' और बोखारावासी 'कदल' कहते है।

यूनानी चिकित्साविशारदोने जिस प्रकारके उशकका उल्लेख किया है वह श्यामदेशके विभिन्न स्थानोसे जाती थी। परन्तु ईरानी या खुरासानी उशकसे (जोकि साम्प्रत यूरोपमे औषधरूपेण व्यवहृत है) उनको अभिन्नता नही थी।

उत्पत्तिस्थान—फारस, अफगानिस्तान और यूरूप।

वर्णन—उशक एक निर्यासोद्यास—रालदार गोद (गमरेजिन) है, जो पुष्प एव फलवान् उशकके क्षुपपर लगा हुआ मिलता है। इसके अश्रुवत् गोल दाने होते है या इन दानोकी परस्पर मिली हुई बडी-बडी डलियाँ होती है। इनका आकार धनियेके बीज या चनेसे लेकर जगली बेर तक होता है। देरतक पडा रहनेसे यह कालाई लिये हो जाता है, किन्तु भीतरसे यह अस्वच्छ दुग्धवत् श्वेत या हलका पिलाई लिये होता है। शीत होनेपर यह कडा हो

जाता है और सहजमें टूट जाता है तथा हलकी गरमीसे यह नरम हो जाता है। इसकी गन्ध हलकी और विशेप प्रकारकी होती है। स्वाद तिक्त, सक्षोभक एव हृल्लासकारक होता है। इसको जलमें घोलनेपर क्षीरवत् (दुधिया) घोल (धौत-इमलशन) वन जाता है। यूनानी हकीमोके मतसे जो सफेद, नरम, स्वच्छ एव शुद्ध हो और जलमे शीघ्र घुल जाय, जिसमें नीलेपनकी झलक हो जो ककड आदि मलोंसे शून्य एव स्वादमे तिक्त हो और जिसमेसे कुन्दुर या जुन्दवेदस्तर की-सी सुगन्ध आती हो वह उषक उत्तम है।

परीक्षा—उशक जवाशीर, लोवान और हीगके समान होता है। किन्तु इसकी गन्ध उक्त सभी द्रवोसे सर्वथा भिन्न होती है। अस्तु, अपनी विशेष गन्धसे इसको भली-भांति पहिचाना जा सकता है। इसमें सकवीनजके मिश्रणसे इसका रग पीला हो जाता है।

व्यापार—बम्बई इसके व्यापारकी वडी मण्डी है, जहाँपर यह फारससे आता है।

वक्तव्य—यूनानी हकीमोंने जिस प्रकारके उशकका उल्लेख किया है, वह श्यामदेशके विभिन्न प्रदेशोंसे आता था। अधुना यह निर्णीत हो चुका है कि वह फेरूला टिंजीटाना (**Ferula tingitana Linn**) नामक वृक्षका रालदार गोंद है जो मोरक्कोमें उत्पन्न होता है। सम्भवत प्राचीनकालमें यूरूपमें यही प्रसिद्ध था। यद्यपि यह नही वतलाया जा सकता कि फारसी उशकके उपयोगका सूत्रपात सर्वप्रथम कवसे हुआ, तथापि यह तो निश्चित है कि यूनानी और रूसी हकीमोंने इसका उल्लेख नही किया है। यद्यपि उशकके स्वरूप निर्णयके सम्बन्धमे पुराकालीन प्रमुख अरवी-यूनानी हकीमो, जैसे—शैखुर्रईस, वूअलासीना दाऊद अताकी, मालकी और मालायसअ प्रभृति विद्वानोंमें परस्पर मतभेद है, तथापि उनके मतोका पर्यालोचन करनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि वूअलीसीनाने जिस उषक वृक्षको 'तरसूस' लिखा है और इब्नवैतारने जिसका खडन किया है, वह नि.सदेह ईरानी (फारसी) उषक वृक्ष है जिसे शीराजवासी 'वदरान' और वोखारानिवासी 'कदल' कहते है। फारसी हकीम अवूमन्सूर मौवाजिक (१०-११वी शताब्दी) और अन्सारी (१४वी शताब्दीका मध्य)के मतोसे भी इस कथनकी पुष्टि होती है।

रासायनिक सगठन—इसमे निर्यास २० प्रतिशत, रेजिन (राल) ७० प्रतिशत, एक उत्पत् तेल ४ प्रतिशत और आर्द्रता एव भस्म प्रभृति द्रव्य पाये जाते है।

कल्प तथा योग—जिमाद उशक, मरहम उशक। प्रकृति–दिल्लीके हकीमोके मतसे दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें रूक्ष, लखनऊवालोके अनुसार पहले दर्जेमे उष्ण और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण कर्म—श्वयथुविलयन, प्रमाथी, कफोत्सारि, सारक, विरेचन, लेखन, आर्तवजनन, उदर क्रिमिनाशन और रोपण है।

उपयोग—कठमाला, सन्धिशोथ वा काठिन्य और वाघी (वद)को विलीन करनेके लिये उषकका लेप (जिमाद उषक) लगाते है। अर्शांकुरोके मुँह खोलनेके लिये इसे मस्सोपर लगाते है तथा दद्रु, नीलिका और व्यगपर इसे सिरकामें घोलकर लगाते है। मरहमोमें मिलाकर इसे (मरहम उशकको) जख्मोपर लगाते है। जीर्ण कास और दमामें इसे मधुमें मिलाकर चटाते है। यह कफकी दुर्गन्ध दूर करता और उसका उत्सर्ग करता है। कफज कण्ठ-प्रकोप (खुनाक वलगमी), प्लीहाकाठिन्य, मृगी, पक्षाघात, अर्दित, आक्षेप, कम्पवात, आमवात और वातरक्तमें उपयुक्त औपधियोके साथ इसे खिलाते हैं। (दिल्लीके हकीम)। नियत मात्रासे अधिक प्रमाणमें खिलानेसे यह विरेचनीय है। आर्तवजनन और जीवित या मृत भ्रूणके निर्हरणके लिए तथा उदर कृमिनाशनार्थ भी इसका उपयोग करते है। प्रधानतया कठिन सूजन उतारनेके लिये इसका उपयोग करते है। अहितकर–रक्तमूत्र उत्पन्न करता है। निवारण–अनीसून और सिरका। प्रतिनिधि–जवाशीर।

मात्रा—० ५ ग्रामसे १ ५ ग्राम (४ रत्तीसे १॥ माशा) तक।

नव्यमत—उशक श्वासनलिका, त्वचा और वृक्क द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और निकलते समय उन अवयवोको उत्तेजित करता है। उशक छेदन, श्लेष्मनिस्सारक, स्वेदजनन, मूत्रजनन और शोथ विलयन है।

इससे कफका चिकनापन कम होता है, कफ शीघ्र और विना कष्टके गिरता है, कफकी उत्पत्ति कम होती है, कफगत रोगजन्तुका नाश होता है और कफकी दुर्गन्ध कम होती है। बडी मात्रामे देनेसे दस्त साफ होता है। उशकका लेप श्वयथुविलयन है। जीर्ण सधि-शोथ, सधिमे जल संचित होना, गडमाला और बदपर इसके लेपसे लाभ होता है। मात्रा—० ४ ग्रामसे १ ग्राम (३-७ रत्ती) गोलीके रूपमें किंवा पानी मिलाकर देना चाहिए। कल्पमिश्रण—उशक ३ भाग। चीनीका शर्बत ६ भाग, गरम जल १०० भाग थोडा-थोडा जल मिला, घोटकर पिला देवें। मात्र ११२-१ औस मरहम—उशक १२ औस, पारा ३ औस, गन्धक ८ ग्रेन, निमोलीका तेल २ ड्राम—प्रथम एक पात्रमे गन्धक और तेल गरम करके मिलावे। पीछे पारा और गरम किया हुआ उशक मिलावें। पारेके कण न दिखें इतना मर्दन करके मलहम तैयार करे।

●

(६८) उसारे-रेवंद

फ़ैमिली: गुट्टीफेरे (Family Guttiferae)

नाम—(हिं०) लालरस, (अ०) फर्फीरान, गोतागवा, उसारे-रेवद, रुब्बरेवद, (द) उसारे-रेवन, (गु०) रेवचीनोशीरो, (ले०) गाम्बोजिआ (Gambojia), काम्बोगिआ (Cambogia), (अ०) गै(कै) बोज (G(C)ambose), गट्टा गम्बा (Gutta Gamba)।

वक्तव्य—यद्यपि यह द्रव्य उसारे-रेवदके नामसे प्रसिद्ध है तथापि रेवदका उसारा—'रेवतचीनीका सत' नही है, जैसा कि इसके नामसे विदित होता है। प्रत्युत फर्फ़ारान वृक्ष—विलायती तमाल या स्वर्णक्षीरी (**Garcinia henburyi** Hook)का राल्युक्त गोद है, जो उस वृक्षके काण्डमे चीरा देनेसे प्राप्त होता है (इसके वृक्ष श्याम देशमें उत्पन्न होते हैं)। इसका रग और गुण-कर्म रेवतचीनीके सतके समान होता है, इसलिए यह उसारे-रेवंदके नामसे प्रसिद्ध हो गया। यही कारण इसके गुजराती और दक्खिनी आदि नाम पडनेके हैं। श्यामदेशके कैंबोजि (डि)या नामक प्रदेशमे इसके वृक्ष प्रचुरतासे होते हैं, इसलिये इस वृक्षके निर्यासका नाम भी कैम्बोजिया रख दिया गया।

फ्रासीसी भाषामे इस रालदार गोदको 'गम्मी गोटी' कहते हैं। 'गोतागवा' इसीका अरवी रूपान्तर है। इसीकी अन्य जातिका एक वृक्ष भारतवर्षके अनेक प्रदेशोमे होता है, जिसे सस्कृतमे स्वर्णक्षीरी (तापिंज या तापिच्छ), लेटिनमें गार्सीनिआ मोरेल्ला (**Garcinia morella** Des), अग्रेजीमे इण्डियन गैंबोज (Indian Gamboge) कहते हैं। तालीफशरीफी और खुलासतुल् तजारुब आदि लिखित "हिरवी" नामकी पीले रगकी जहरीली जडी सभवत इसीकी (स्वर्णक्षीरीकी) जड है। कश्मीरमे इसे 'हिरवी' कहते भी है। भाव प्रकाशोक्त 'चोक' किसी-किसीके मतसे इसे ही कहना चाहिये (दे० "सत्यानासी")। इसके वृक्षसे भी एक प्रकारका उसारे-रेवद की तरहका रालदार गोद प्राप्त होता है जो स्वरूप एव गुण-कर्म आदिमे सर्वथा इसके समान होता है। इसको कोई-कोई आयुर्वेदस कंकुष्ठ मानते है। परन्तु वाजारमे केवल सामान्य नलिकाकार श्यामदेशीय उसारे-रेवद ही उपलब्ध होता है। इसीका वर्णन इस लेखका उद्देश्य है। उत्पत्तिस्थान—श्यामदेशके कैंबोजिया नामक प्रदेश तथा कोचीन चाइनामे इसके वृक्ष होते हैं और वहीसे इसका आयात भारतवर्षमे होता है।

वर्णन—१० सें०मी० से २० सें०मी० (४-८ इंच) लम्बे और २५ से ३ ७५ सें०मी० (१-१।। इंच) व्यासके रम्भाकर (गोल,) लवे, ठोस या खोखले भगुर टुकडो या वत्तियोके रूपमे इसका आयात होता है जिसके ऊपर बाँसके भीतरी धरातलके धारीदार चिह्न पडे होते है, जिसमे इसका सग्रह किया जाता है। यदि यह उत्तम हो तो इसका व्यत्यस्त काट साफ, चिकना, चमकदार, ललाई लिये पीला या गभीर नागरग भूरा और अपारदर्शक होता है।

इसका चूर्ण हरिद्रावर्णका और सर्वथा निर्गन्ध होता है। स्वाद तीव्र चरपरा होता है। इसे जलमें रगडनेसे पीला मिश्रण तैयार होता है। इसमें दस वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें जोहर फर्फीरान (गम्बोजिक एसिड Gambogic acid) नामका एक हल्दीके रंगका राल ([illegible]), जो इसका वीर्य है, ७५ प्रतिशत और एक गोंद १५ से २० प्रतिशत होता है।

कल्प तथा योग—हब्ब उसारेरेवन्द। प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमें स्वर्णक्षीरीको शीतवीर्य लिखा है (रा० नि०)।

गुण-कर्म—विरेचन, वामक, हलका मूत्रजनन, उदरकृमिनाशक और कृमिनिस्सारक।

उपयोग—बहुधा प्रत्येक दूषित दोषके निर्हरणके लिये उसारे-रेवन्दका उपयोग करते हैं। वमन, विरेक और मूत्र द्वारा यह दोषोंका निर्हरण करती और देरतक आमाशयमें नहीं रहती है। प्रायः शीतल एवं स्निग्ध मस्तिष्क और वातरोग, जैसे—पक्षाघात अर्दित, आक्षेप और अपस्मार आदि एवं कब्ज और जलोदर आदिमें तथा उदरजकृमिको मारने और निकालनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। इसे अधिक प्रमाणमें सेवन करनेसे पेचिश और मरोड हो जाती है। इसलिये वातानुलोमन द्रव्योंके साथ इसका उपयोग करना चाहिये। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालों और गर्भवती स्त्रियोंको इसका उपयोग वर्जित है। निवारण—गुलकन्द और शकर सुर्ख। मात्रा—०.०६ ग्रामसे ०.१३ ग्राम (½ रत्तीसे १ रत्ती) तक।

●

(६९) उस्कूर्दियून (जंगली लहसुन)

फेमिली : लेबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) जंगली लहसुन, (यू०) स्कोरडिओन (Skordion), (अ०) उस्कूर्दियून (यूनानी 'स्कोरडिओन' से अरबीकृत), शकर (कूर) दियून, शकूरियून, सूम सहराई (बर्री), हाफिजुल् अज्साद, हाफिजुल् मौता, (फा०) सीरदश्ती, (शीराजी) सूसीर (पहाडी लहसुन), (लै०) टेउक्रिअम् स्कोर्डिअम् (**Teucrium scordium Linn**) (अं०) वाटर जर्मेंडर (Water germander)।

वक्तव्य—सुमुलूहय्य इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है (इ०वै० १।१५३)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय और कश्मीर, फारस तथा यूरोप आदि।

वर्णन—काण्ड मखमली, पत्र आमने-सामने अवृन्त, अण्डाकार-आयताकार, १.८७५ सें० मी० (¾ इंच) लम्बा, ०.५ सें० मी० (⅕ इंच) चौडा, आधारपर सकुचित, पत्र-प्रान्त मोटा दन्तुर, उभयपृष्ठ लोमावृत, स्वाद कटु-तिक्त। ताजे पत्तोंको मलनेसे, यह चुभनेवाली लहसुनकीसी गंधसे युक्त प्रतीत होते हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप और पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अक्रिस्टलीय (Amorphous) तिक्त सत्त्व पाया जाता है।

कल्प—प्रवाहीसार (मात्रा—२ मि०लि० से ४ मि०लि०), फांट। यह तिरियाक फारूक और तिरियाक अदरूमासी नामक प्रसिद्ध विषघ्न यूनानी योगोंका एक उपादान है।

●

(७०) उस्तोखुद्दूस

फ़ैमिली : लेबिआटी (Family · Labiatae)

नाम—(हिं०) धारू, (भा०बा०) उस्त (स्तु-तो) -खुद्दू (दू)-स, उस्तूखु(खू)दूस (इ०बै०), (यू०) स्टोइ-खडोस (Stoikhados), (अ०) आनिसुल् अरवाह, मुम्सिकुल् अरवाह, हाफिजुल् अरवाह, (पुष्प), जरम, जह्रुल्जरम, (बम्ब०) अल्फाजन, (बं०) तुनतुना, (ले०) लावान्डुला स्टाकास (**Lavandula stoechas** Linn), (अं०) अरेबियन या फ्रेंच लैवेंडर (Arabian or French Lavender)।

वक्तव्य—यूनानी हकीम दीसकूरीदूसके मतसे स्टीकाडीस (Stoechades) नामी द्वीपसमूहमें उपजनेके कारण इसे स्टीकास (**Stoechas**) कहते हैं। उक्त स्टीकाडीस यूनानी सज्ञासे ही उस्तूखुदूस (—स्तोखदूस) शब्द व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ ओजोरक्षक (हाफिजुल् अरवाह) है। 'अल्फाजन' पुर्तगाली 'अल्फाजेमा (Alfazema)' का देशी अपभ्रश है। इब्नसीनाने 'उस्तादूस' और 'इस्तीकूस' नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप, कनारी, पुर्तगाल, एशिया माइनर, अरब तथा भारतवर्षके बिहार, बगाल और अजीमाबादमे भी उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह एक क्षुप जातिकी वनस्पतिके फूल है, जो रबीकी फसलमे जगलो और पहाडोपर तरभूमिमें होता है। काड एक हाथ ऊँचा और खुरदरा, पत्र गुच्छाकार, सातर (जंगली पुदीना)के पत्तोकी तरह, किन्तु उनसे कुछ लम्बे और पतले, फूल बैंगनी, क्षुद्रवृतकी बालियोमे प्रकट होते और लोमश, हृदयाकार सहपत्रो (Bracts)के कक्षमे स्थित होते है। ऊपरके पतनशील सहपत्र बालके शिखरपर एक प्रकारके बैंगनी स्तवकका निर्माण करते है। प्रत्येक पुष्पस्तवक (बाली)मे विपुल पुष्प वर्तमान होते है। ये स्तवक जौ की बालकी तरह किन्तु उसकी उपेक्षया क्षुद्रतर होते है। फूल सफेदी लिये नीले रगका और उसमें कुछ पिलाई और ललाईकी भी झाँई पाई जाती है। उनके ऊपर बारीक कोमल रोआँ होता है, जो छूनेसे नरम मालूम होता है। इसमे तीव्र कपूरकीसी गध होती है। इसके सूघनेसे छीके आती है। स्वाद किंचित् तीक्ष्ण एव तिक्त होता है। इससे एक प्रकारका ललाई लिए पीला तेल प्राप्त होता है, जिसकी गध रोजमेरी तेलका स्मरण दिलाती है। बीज कगनीकी तरह किन्तु उससे छोटा, महीन, किंचित् चपटा और कालाई लिये पीला होता है। इसके मलनेसे कपूरकी सुगन्ध आती है। इसका स्वाद भी तीक्ष्ण एव तिक्त होता है। हजाज, रोम, अरब तथा अन्य स्थानोका भारतमे होनेवालेकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् होता है। वह बीजयुक्त, तिक्त तथा कोमल होता और उसपर सफेद रोआँ जमा होता है। यह अजीमाबाद और बगाल आदि स्थानोमे भी होता है। परन्तु भूमिके कारण यहाँका उस्तूखूदूस विदेशीकी अपेक्षया अल्पवीर्य और खुरदरा, कोई-कई कालाई लिये पीला और कोई सफेद होता है। उसमे थोडा नीलापन भी होता है, परन्तु उसपर रोआँ नही होता। किसी-किसीमे बीज नही होता और किसीमे अत्यन्त सूक्ष्म पिलाई लिये सफेद रगके बीज होते है। किसी-किसीकी बालके फूल फैले हुए होते है।

वक्तव्य—इसके यह दो भेद भारतवर्षमे भी होते है —

(१) कश्मीरी—इसके क्षुप अनुष्णाशीत हिमालयमे कश्मीरसे लेकर भूटान तक ४,००० से ११०००फुटकी ऊँचाईपर होते है। फूल वनफशई बैंगनी होता है। इसका वैज्ञानिक नाम ब्रूनेल्ला वुल्गारिस **Brunella vulgaris** Linn और अग्रेजी नाम 'हील आल (Heal all)', 'सेल्फ हील (Self heal)' है। फूल नीला सफेद और अत्यन्त सुगधित होता है।

(२) जगली लवडर (बम्ब०), सरपनो छरो (गु०)—इसे पजाबमे 'औस्तखदूस' और बम्बईमे 'उस्तुखुदूस' और हिन्दीमें 'धारू' कहते है। दक्षिण-पश्चिम हिन्दुस्तानमें कोकणसे कुर्ग तक इसके क्षुप होते है। इसका वैज्ञानिक

तीक्ष्ण होता है। ऊटकटारा ककरीली और ऊसर जमीनमे होता है। ऊँटकटाराको ऊँट चावसे खाते है। इसी वातको दृष्टिमें रखकर इसके हिन्दी, अरवी, फारसी इत्यादि नामोकी कल्पना की गई है।

उपयुक्त अग–पचाग, जड और जडकी छाल। प्रकृति–दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—दीपन, मूत्रल, वल्य, वाजीकर और शीतल श्वयथुविलयन। दीपन, पाचन और रोचनके लिये इसका उपयोग करते है। कामला, चतुर्थक ज्वर और आमवातमे भी इसका उपयोग होता है। इसकी जड टुकडे-टुकडे कर चोआ की तरह टपकाकर रखे। इसे आधा या एक माशाकी मात्रामे पानके साथ खानेसे वाजीकरण और स्तभन होता है। हस्तमैथुनके रोगियो के लिये इन्द्रीके ऊपर इसका पतला लेप (तिला) परम गुणकारी है। इसकी जड दूधमे पकाकर सेवन करनेसे भी वाजीकरण होता है। जडको छायामे सुखाकर और पीस-छानकर एक सप्ताह तक मधुके साथ चाटनेसे वहुत पसीनाका होना वद हो जाता है। अहितकर–वृक्क एव मस्तिष्कको। निवारण–कच्चे अगूरका शर्वत। प्रतिनिधि–अजुदान (हिगुवीज)। मात्रा — ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—ऊँटकटारा (उष्ट्रकाण्डी) तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक और हृद्रोगनाशक है। वीज मधुर, शीतल, वृष्य और सतर्पक है (रा० नि० वर्ग १०)।

नव्यमत—पचाग दीपन, पौष्टिक, मूत्रल और रक्तशोधक है। शुक्र पतला होनेपर बीजोका प्रयोग होता है।

●

(७२, ७३) ऊदसलीब और फावानिया

फैमिली–रानुनकुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) ऊदसालप, ऊदसलीब, (अ०) ऊदुल्सलीब, फावानिया, (बम्ब०) ऊदेसालम, (लें०) पेओनिआ आफ्फीसिनालिस **Paeonia officinalis** Linn , (अं०) आफिसिनल पेओनी (Officinal Peony), पिओनी (Peony)।

वक्तव्य—ऊदसालम और ऊदेसालम दोनो ऊदुल्सलीब (स्वस्तिक काष्ठ–Wood of the Cross) के अपभ्रंश है। पेओनिआ यूनानी पैओनिअ, **'Paionia'** का लेटिन रूपान्तर है, और पेओन (Paeon) यूनानी पओन 'Paion' से व्युत्पन्न है। पेओन यूनानियोके देववैद्य थे। इन्होने सर्वप्रथम इस उदभिज्जका अन्वेषण और वर्णन किया, इसलिये उन्हीके नामपर इसका पेओनिया नाम रखा गया। अग्रेजी पेओनी, लेटिन पेओनिआसे व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप और पश्चिमी एशिया (कृपिकृत)।

वर्णन—ऊदसलीवके मूल जो बाजारमे मिलते है, उनका आयात यहाँ टर्कीसे होता है। मूल १ से २ इञ्च लम्बे, ½ से ¾ इञ्च मोटे (व्यासमें), मध्यमे मोटे और दोनो छोरोकी ओर गोपुच्छाकार होते है। वाहरी पृष्ठ गुलाबीभूरा होता है और उसपर लम्बाईके रूखमे गहरी रेखाये होती है। भीतरी भाग सफेद पिष्टमय और प्राय स्वादरहित होता है। काटनेपर छिलका कडा और कुछ-कुछ पीले रगका मालूम होता है। मूल प्राय निर्गन्ध होता है। ताजे काटे हुए मूलकी गध धीमी तीक्ष्ण होती है। स्वाद किंचित् चरपरा अथवा मीठा, वादको तिक्त होता है। इसे चबानेपर थोडी देर वाद तीक्ष्णता, चरपराहट और थोडी-सी कडुआहट मालूम हो और जिह्वापर खिंचावट पैदा हो, वह उत्तम समझा जाता है। इसमे सातवर्ष तक वीर्य रहता है। स्त्री-पुरुष भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसके पुंल्लिग जडको तोडनेसे उसके भीतर दो रेखाये एक दूसरेको काटती हुई गुजरती है जैसा कि सलीव (स्वस्तिक Cross)मे होता है। इसलिये इसे ऊदसलीब कहते है। औषधमे इसका उपयोग किया जाता है। फावानिया

इसका स्त्री भेद है, जिसमे स्वस्तिक (सलीबी) रेखायें नही होती। इसको ऊदुर्रीह भी कहते हैं। गिवर्टके अनुसार इसके लम्बे, गोल, छोटे कद होते हैं। जो एक दृढ तन्तु द्वारा पातली घडमे लगे रहते हैं। 'फावानिया' लेटिन पेओनियाका ही अरवी रूपान्तर है। इसे अंग्रेजीमें फीमेल पेओनी (Female Peony) कहते हैं। यही पेओनिया ऑफिसिनेलिस है जिसका विवरण इस लेखमे किया जा रहा है।

पेओनियाकी एक इमोडी जाति (पेओनिया एमोडी Paeonia emodi Wall) भारतवर्षमे भी हिमालय व कश्मीर और हजारासे कुमाऊँ तकके प्रदेशो मे ५ से १० हजार फुट तककी ऊँचाईपर होती है। इसकी जड सफेदी लिए लगभग उँगलीके बराबर मोटी और कुछ मिठास लिये कसैली होती है। यह विदेशी ऊदसलीवका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है और इन प्रदेशोमें उन्ही गुणोके लिये तथा उन्ही रोगोमे उसका उपयोग करते है, जिनमे कि ऊदसलीवका प्रयोग होता है। इसके अन्य नाम यह है—(प०) मामेख, (क०) मिद, महामेद, (अ०) हिमालयन पेओनी (Himalayan Peony) या पेओनी रोज (Peony rose)।

रासायनिक संगठन—इसके ताजे मूलमें पिष्टमय पदार्थ, शर्करा, वसा, मैलेट्स (Malates), आग्जेलेट्स (Oxalates) फॉस्फेट्स और किंचित् कषायिन या टैनिन (Tannin) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल।

कल्प तथा योग—चूर्ण, हब्ब ऊदसलीब।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुणकर्म—यह रूक्ष, स्रोतोविशोधक (मुफत्तेह सुद्दक), श्वयथुविलयन, दोषोको पतला करनेवाला, लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, वेदनास्थापन और नाडियो (ज्ञान तन्तुओं) को बल देनेवाला है।

उपयोग—प्रमाथी, श्वयथुविलयन और दोषतारल्यजनन होनेके कारण वहुधा मस्तिष्क (शिर) रोगो और वातव्याधियोमें ऊदसलीवका उपयोग करते है। अस्तु, अपस्मार, कम्पवात, अर्दित, पक्षाघात, उन्माद, वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास), मस्तिष्कशोथ, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) और वालापस्मारमें यह पुष्कल प्रयोगमें आता है। यकृदवरोध, कामला, आमाशयशूल तथा वस्ति एव वृक्कशूलमे भी इसका उपयोग करते हैं। आर्तवशोणित और प्रसवशोणितके उत्सर्ग (आविजनन)के लिये अन्यान्य उपयुक्त औषधद्रव्योके साथ इसे देते हैं। गर्भाशयके रोग, जलोदर, आक्षेपक, अश्मरी और पित्तावरोधमें भी यह प्रयुक्त होता है। वालकोको रक्तशोधनार्थ इसे देते है। अपस्मारी शिशुके गलेमें इसके लटकानेमे उपकार होता है। लेखन होनेके कारण चेहरेके दाग और व्यंग आदि दूर करनेके लिए उसका पतला लेप (तिलाऽ) करते है।

अहितकर—गर्भवती स्त्रियोको।

निवारण—गुलकंद, मुलेठी और मधुशर्कर (माउलअस्ल)।

मात्रा—१ से ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक। अधिक मात्रामे देनेसे सिरदर्द, कानमे आवाज, दृष्टिभ्रम और वमन होता है।

●

(७४) कंकोल

फैमिली : पीपेरासे (Family Piperaceae)

नाम—(हि०) ककोल, ककोल मिर्च, मिर्च ककोल, (स०) कङ्कोलक (रा०नि०, सु० सू० अ० ४६), कङ्कोल (रत्न), (ले०) कूबेबा जाति (Cubeba Sp.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—यह कबावचीनीकी जातिकी एक लताके फल है जो आकृतिमे कालीमिर्चके समान, किन्तु इससे बडे और कम काले होते हैं। स्वाद तिक्त और चरपरा होता है। इसके फलका छिलका शीतलचीनीसे मोटा होता है। जहाँ कबावचीनी या शीतलचीनी होती है, वही ककोल भी होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म—दीपन, वातानुलोमन, सग्राही और वाजीकर है। उपयोग-अग्निमान्द्य, क्षुधाकी कमी, आनाह और नपुसकतामे इसे खिलाया जाता है। अहितकर—उष्ण (पित्त) प्रकृतिको। निवारण-शीतल द्रव्य। प्रतिनिधि-पीपल और कालीमिर्च। मात्रा—० ५ से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—ककोल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, दीपन, पाचन, रुचिकर, वृष्य तथा कफ, वात, तृषा एव मुखकी जडता और दुर्गन्धका नाश करनेवाली है (सु० सू० अ० ४६, रा० नि०)। वि० दे० "कबाबचीनी"।

●

(७५) कगनी

फैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हि०) कँगनी, कगु, काकुन, टाँगुन, काँक, (अ०) दु (दि) ख्न, (फा०) अर्जन, (स०) कङ्गु (क), कङ्गुनिका, पीततण्डुल, कङ्गुनी, वातल, (ब०, बम्ब०, प०, हिं०) कँगनी, (क०) पिंगनी, (उडि०) टाँगुन, (म०) काग, (गु०) बाजरी, (को०) काउन, (सि०) कुरहन्, (कना०) कगुगिडा, (ते०) कोरलु, (ले०) सेटारिया ईटालिका **Setaria italica** Beauv पर्याय—पानिकुम् ईटालिकुम् (*Panicum italicum Linn*), (अ०) इटालियन मिलेट (Italian Milet)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे इसकी खेती होती है।

वर्णन—सावाँ और चेनाकी जातिका एक प्रसिद्ध अन्न जिसका दाना बाजरासे छोटा और पीले रगका होता है।

उपयुक्त अग—मूल और तण्डुल।

मात्रा—(मूल) ६ ग्राम से १२ ग्राम (१/२-१ तोला)।

रासायनिक सगठन—एक विषैला ग्लूकोसाइड, स्नेहमय क्षाराभ आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीतल, मतातरसे दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुणकर्म तथा प्रयोग—इससे धातुपोषणाश कम प्राप्त होता है तथा यह उदरस्तम्भक, मलबद्धताकारक, शोथ आदिको विलीन करनेवाली, बाजरेसे कम रूक्षताकारक और मूत्रजनन है तथा पित्तके दस्तोको बन्द करती है। विशेषकर इसका सत्तू घीके साथ वक्षको मृदु करता है। दूध और चीनीके साथ खानेसे कागुन वीर्य उत्पन्न करती है। वेदनास्थलपर इसे गरमकर सेकनेसे लाभ होता है। इसका चावल पकाकर दूध और घीके साथ खानेसे शुद्ध आहारकी प्राप्ति होती है। किसी-किसीके मतसे पकी हुई कँगनी वायुको विलीन करती, भूख बढाती, धातुको शक्ति देती और स्वरको साफ करती है। अहितकर—विबधकारक, अश्मरीजनक, प्लीहाको हानिप्रद और देरमे आमाशयसे नीचे उतरती है। निवारण–दूध, चीनी, घी और मधु। सत्तूके लिये बबूलका गोद और मस्तगी तथा प्लीहाके लिए मस्तगी।

नव्यमत—मूत्रजनन, ग्राही (कषाय), आमवातमे इसका बाह्य प्रयोग होता है। प्रसवोत्तर वेदनाशमनार्थ इसका घरेलू औषधिकी भाँति उपयोग होता है।

आयुर्वेदीय मत—कँगनी मधुर, कसैली, रुचिकारक, स्वादु, शीतल, बृहण, भारी, वायुजनक, पित्त एव दाहनाशक, रूखी, टूटी हड्डीको जोड़नेवाली और घोड़ोके लिए विशेप गुणकारी है।

(७६) कघी

फ़ैमिली : माल्वासे (Family Malvaceae)

नाम—क्षुप (हिं०) कघी, कगही, ककहिया, ककही, (अ०) मश्तुलगौल, (फा०) दरख्ते शान, (ब०) पेटारी, (स०) अतिबला, कङ्कतिका, (वि०) ककहिया, (म०) मुद्रा, (सिं०) पटतिर, (गु०) खपाट, डाबली कोसकी, (ले०) आबूटिलॉन ईडिकुम् (**Abutilon indicum** G Don) दूसरी जाति–आबूटिलॉन हीर्टुम (**Abutilon hirtum** G. Don), (अ०) कन्ट्री मैलो (Country Mallow) । पत्र–(अ०) वर्कुल् मश्तुल्गौल, (फा०) बर्गे दरख्ते शान ।

बीज—(बम्ब०) बलजीज, (अ०) वज्र् ुल् मश्तुल्गौल, (फा०) तुख्मे दरख्ते शान ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके उष्णप्रधान प्रदेश, शुष्क प्रदेश और लका । इसके क्षुप वर्षामे उत्पन्न होते हैं ।

वर्णन—यह १ ५ मीटरसे १ ८ मीटर (पाँच-छ फुट) ऊँचा एक मृदुलोमश क्षुप है। पत्र-पानके पत्रकी तरह, चौडे, पर अधिक नुकीले, शुभ्ररोमावृत्त, पत्रप्रान्त दन्तुर, पत्तियोका रग भूरापन लिये हलका हरा और पत्रवृत दीर्घ होता है। यह शरद्ऋतुमे फूलती है। फूल पीले और पाँच पखडीयुक्त होते हे। फूलोके झडजानेपर मुकुटक आकारके ढेंढ लगते हैं, जिनमे खडी-खडी कमरखी या कगनी होती है। फल पक जानेपर एक-एक फाँकके बीच कई कालेदाने निकलते हैं। ये छोटे और चपटे होते है और इनका सिरा बारीक होता है। इन बीजोमे से खतमीकी भाँति बहुत लबाब निकलता है। औषधीय व्यवहारानुसार भारतवर्षमे इनको वही स्थान प्राप्त है, जो खतमी और खुब्बाजीको यूरोप मे ।

रासायनिक सगठन—पत्रमे पुष्कल पिच्छिल द्रव्य (लबाब), किंचित् टैनिन, ऑर्गेनिक अम्ल और अशत ऐस्पैरेगीन (जडमे भी ऐस्पैरेगीन) पाई जाती है।

उपयुक्त अश—मूल, पत्र, छाल और बीज अर्थात् पचाग ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष ।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, सग्राही, रक्तस्तम्भन, मूत्रजनन, वेदनास्थापन और अर्शोघ्न । उपयोग–रक्तष्ठीवनमे कघीके पत्र और फलोका शीरा और दस्तोको वद करनेके लिये और सूजाक मे मूत्रजनन एव दाहशमन करनेके लिए इसे सफेद जीराके साथ पीस-छानकर पिलाते हैं। दतशूलमे इसके पत्रक्वाथसे कुल्ली कराते है। वातार्श और रक्तार्शमे इसके पत्तोको कालीमिर्चके कुछ दानोके साथ पीस-छानकर या उसका फाट बनाकर मिलाते है। श्वयथुविलयन (सूजन उतारने) के लिए इसके पत्र घीसे चुपडकर और गरम करके बाँधते हैं। कठशोथ (खुनाक) को विलीन करनेके लिए सूजनकी जगह कघीके पत्तोको गरम करके बाँधते हैं। इसके पत्तोके काढेसे गण्डूष कराते और तम्बाकू की जगह चिलममे रखकर धूम्रपान कराते है ।

अहितकर—दुर्बल व्यक्तियोको । निवारण–शुद्ध मधु और काली मिर्च ।

प्रतिनिधि—आलूबोखारेका शर्बत और आँवलेका मुरब्बा । मात्रा–कघीके पत्र ५-७ ग्राम (५-७ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—आयुर्वेदीय निघटुओमे इसके गुण बला (बरियरा)के समान लिखे है ।

नव्यमत—छाल मूत्रजनन, पत्र स्नेहन, बीज स्नेहन, वल्य और स्रसन,

मूल—मूत्रजनन और कासहर। सूजाक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र और वस्तिशोथमे पत्र या मूलका काढा देते हैं। नपुसकत्वमें बीज देते हैं।

●

(७७) कंतूरियून

फैमिली : कारिओफिल्लासे (Family : Caryophyllaceae)

नाम—(हि०, भा० बाजार, अ०, फा०) कतूरियून (इ० बै०), (यू०) Kentaurion (D 3, 6,7), (लै०) डिआन्थुस आनाटोलिकुस (**Dianthus anatolicus** Boiss) (अं०) सेंटारी (Centaury)।

वक्तव्य—कतूरियून रूमी 'जतूरिय' शब्द से अरबी बनाया गया है, जिसका संकेत रूमी हकीम 'जतूरीस' से है, जिसने सर्वप्रथम इस औषधिका पता लगाया था।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, पश्चिम तिब्बत और कश्मीरसे आर्मीनिया तक। पूर्वात्य निघण्टु-ग्रन्थोमे इसका समावेश बारीक चिरायता (**Erythraea centaurium** Pers.) के प्रतिनिधिरूपमें हुआ, जिससे उसका सादृश्य केवल इस बातमे है, कि इसका फूल भी उसके समान गुलाबी होता है।

वर्णन—एक क्षुद्र, शाखाबहुल, काष्ठमयडण्डीयुक्त घना गुल्म, काण्ड १५ से० मी० से २५ से०मी० (६-१० इंच) लम्बा, अतिकोमल, कडा, एक वा एकाधिक पुष्पयुक्त, पत्र कडा, महीन, बहुत मोटी मध्यशिरा एवं पत्र-प्रांतयुक्त, पुष्प गुलाबी होता है। भारतवर्षमे इसका आयात फारससे बम्बई होकर होता है। क्षुद्र एवं वृहद् भेदसे कतूरियून दो प्रकारका (१) कतूरियून सगीर (Common Centaury) और (२) कतूरियून कबीर (**Centaurium officinalis**) होता है। इनमेसे प्रथम पहाडी पुदीना जैसा २२–२३ से०मी० (एकबित्ता)के बराबर होता है। पत्र सुदाब पत्रवत्, पुष्प नीलापन लिए रक्तवर्णके होते हैं। द्वितीय के पत्र गाजरके पत्तेके समान और लम्बे एवं हरे रंगके होते है। पुष्प सुरमई रंगके और गोल होते हैं। यह जमीन पर फैलता है।

रासायनिक संगठन—इसमे किंचित् सैपोनिन (Saponin) होता है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कंतूरियून दकीक (सगीर) शोथक, विरेचक, दोषोका निर्हरण करनेवाला, व्रणशोथनाशक और लेखन है। कफजरोगो तथा संधिशूलमे और प्लीहा एवं यकृत्संशोधन करनेके लिए इसका उपयोग करते है। यह समस्त गुणोमे कंतूरियून कबीरसे श्रेष्ठतर है। इसकी धूनी या इसके काढेकी बस्ति गृध्रसी, पीठके दर्द और शूलरोगके लिए अनुपम है। यह तीनो दोषोका रेचन करती है। इसका लेप व्रणपूरक और भगंदर (बवासीर) तथा कठिन शोथको लाभकारक है। अहितकर-यकृत् तथा अन्त्रको। निवारण—अन्त्रके लिए बबूलका गोंद और कतीरा तथा यकृत्के लिए कासनी। प्रतिनिधि–हसराज, अफसंतीन, जरावंद मुदहरज, बाबूना, निशोथ आदि। मात्रा–३ ५ से ७ या १० ५ ग्राम (३॥ माशा से ७ या १०॥ माशे) तक। कतूरियून कबीर–यह आर्तवजनन, आशुप्रसवकारक, मस्तिष्कसंशोधक, अवरोधोद्घाटक और आमाशयगतकृमिनाशन है तथा श्वास, पार्श्वशूल, यकृत्प्लीहाके सुद्दो, कफज शूलरोग, जलोदर और कामलाके लिए गुणकारक हैं। इसका प्रलेप अर्श, अंगस्फुटन, गृध्रसी तथा पट्ठोके शूलको निवारण करता है। अहितकर–मस्तिष्कको। निवारण–मधु, शर्करा, मिश्री प्रभृति (मतांतरसे बबूलका गोंद और कतीरा)। प्रतिनिधि–कतूरियून सगीर, सूरंजान, रसवत और नागरमोथा। मात्रा–७ ग्राम से ९ ग्राम (७ या ९ माशे) तक।

●

(७८) कदूरी

फैमिली : कूकुरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) कुंदु(दं)रु, कुनरू, (प०, उ०) कदु(दू)री, (म०) बिम्बी (च०), तुण्डी, तुण्डिका (धन्वं०), तुण्डिकेरी, (बं०) तेला(ला)कुचा, (म०) तोण्डले, (गु०) टिंडोरा, घोला(ली), (उडि०) वन कुन्दरी, (लै०) कॉक्सीनिआ कॉर्डिफोलिआ **Coccinia cordifolia (L.) Cogn** (पर्याय-कॉक्सीनिआ इंडिका *Coccinia indica W. & Arn.*, सेफेलेन्ड्रा इंडिका *Cephalandra indica Naud.*)

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—कदूरीकी आरोही लताएँ विताना तन्तुओंसे युक्त होती हैं । काण्ड—पाँच-कोणोवाला और पत्तियाँ प्राय ३.७५ से ८.७५ से० मी० (१॥-३॥ इंच), हृद्वाकार या वृत्ताकार, ३-५ कोणों या खण्डोंवाली, चिकनी और दूर-दूर पर किञ्चित् दन्तुर होती हैं । पुष्प एकाकी लगभग ?-८ के गुच्छोंमें बड़े और सफेद होते हैं । फल चिकने, मासल और बेलनाकार, पकनेपर सुन्दर लाल रंगके और कच्चे रहनेपर हरे, परन्तु दस सफेद धारियोंसे युक्त होते हैं । यह जंगली (कड़वी) जिसे पल्लव तल्ला या महाराठ भी कहते हैं और लगाई हुई (मीठी) दो जातिकी होती है । 'कड़वा' औषधके लिए और 'मीठी' सागके लिए प्रयुक्त होती है ।

उपयुक्त अंग—चिकित्सामें फल या और शाकार्थ पञ्चांग का उपयोग होता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें एमाइलोलिटिक गुणविशिष्ट एक किण्व (एन्जाइम enzyme), एक अन्तःस्राव (हार्मोन hormone) और अज्ञात एक प्रकारका ऐल्केलॉइड होता है, जो गुणकर्म दृष्ट्या निष्क्रिय होता है । स्वरसमें एक एमाइलेज (Amylase) होता है ।

कल्प तथा योग—प्रकाण्ड और पत्रक्वाथ (१० में १), (मात्रा)—१५ ग्रामसे ३० ग्राम (१। से २॥ तोला), सूखी छालका चूर्ण (मात्रा) २ ग्राम (२ माशा), मूल-स्वरस, (मात्रा) ४ से ८ मि० ली० (१ से २ ड्राम), काण्ड और पत्र-स्वरस, (मात्रा) १। से २॥ तोला खाली पेट, मूल और पत्र-स्वरस, (मात्रा) १ से २ तोले ।

प्रकृति—पत्र सर्द और खुश्क, फल सर्द एवं तर ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फल वमनकारक, दोषसंशोधन, मेदनाशक, स्थौल्यहर, सग्राही, विवन्धकारक, आध्मानकारक, वातकारक, स्तम्भनकर्ता और भारी है, तथा पित्त, कफ, रुधिरविकार, दमा, ज्वर, खासी एव दाहको मिटाता है । कदूरी अपने प्रभावसे बुद्धिको मंद करती है । यह सर्द तरकारी है और पिपासाको शांत करती तथा रोगियोंके लिए उत्तम पथ्याहार है, विशेषकर उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए । फलके ऊपरका छिलका उतारकर सेवन करनेसे पेट कम फुलाती हैं । यह भूख बढाती, रुधिर उत्पन्न करती, स्तनोंमें दूध बढाती तथा अर्श और अमाशयातिसारको लाभकारी है । फूल-खुजली, पित्त और कामलाको दूर करते हैं । इसके पत्तोंका साग मधुर कषाय, तिक्त, कटुपाकी, लघुपाकी, शीतवीर्य, मलस्तम्भक, वातवर्धक और कफपित्तनाशक है । पत्तोंका खालिस रस पूयमेही को पिलाते हैं । जड—शीतल, तर, मृदुसारक, अग्निमान्द्यकर, कफनाशक, विषप्रभाव-नाशक, स्तम्भनकर्ता और वीर्यवर्धक है तथा प्रमेह, हाथोंकी गर्मी, सिरका दर्द और वमनका नाश करती हैं । बहुमूत्ररोगमें प्रयुक्त रसायनौषधोंको इसके शुद्ध रसमें भिगोते हैं और फिर इसीके रसमें घोटकर गोलियाँ बनाकर प्रातःकाल इसमेंसे एक गोली खिलाकर ऊपरसे इसका ताजा रस १ तोला पिला देते हैं । जडकी छालका २ मासे चूर्ण फकानेसे अच्छी तरह दस्त लगते है । जटका लाल गोंद अत्यन्त सग्राही है, परन्तु फलकी भाँति कडुआ नही होता । अहितकर—फल सग्राही, आध्मानकारक और अग्निमान्द्यकर है । मूलस्वरस उत्क्लेशकारक, वामक और

तीव्र विरेचक है तथा इससे अंगोंमें दाह होने लगता है। निवारण–फलके लिए उष्ण औषध और जडके लिए इसबगोल, बिहीदाना और खाकसीका लवाब (पिच्छा)। प्रतिनिधि–लौकी या परवल। मात्रा–फल आवश्यकतानुसार।

आयुर्वेदीय मत—कडवी कुन्दरूकी लता वमन करानेवाली तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, शोथ, पाण्डुरोग और ज्वरको दूर करनेवाली है। उसके फल, श्वास, खांसी, वात और कफको दूर करनेवाले तथा स्तन्य हैं। (च०;ध० नि०)।

नव्यमत—कुन्दरूकी क्रिया मूत्रेन्द्रियपर होती है। कुन्दरू स्नेहन, मूत्रसंग्रहण, व्रणरोपण और रक्तसंग्राहक है। मूलका स्वरस १ तोला अथवा मूलचूर्ण ३-६ माशा मधुमेहमें वंगेश्वर अथवा सोमनाथरसके साथ देनेसे बहुत लाभ होता है। मधुमेहमें इसका साग देते हैं। पेशाबमें सफेद स्निग्ध पदार्थ जाता हो तब मूलका क्वाथ देते हैं। बंगीय वैद्य इसकी लताके स्वरसका उपयोग मधुमेहमें वसन्तकुसुमाकर आदि रस योगोंके अनुपानार्थ करते हैं।

●

(७९) कँवला।

फेमिली : रूटासे (Family · Rutaceae)।

नाम—(हिं०) कँवला, कौला, कमला, शर्बती नारंगी; (अ०) नारज, (बं०) कमला नीबू, नारंगी, (बम्ब०) नारंगी, (ले०) सीट्रस रेटीकुलेटा Citrus reticulata Blanco. (पर्याय–Citrus aurantium proper), (अं०) दी स्वीट ऑरेंज (The Sweet Orange)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक भागोंमें इसे लगाया जाता है। सिलहटमें इसके जंगली वृक्ष बहुतायतसे मिलते हैं।

वर्णन—यह एक प्रकारकी बडी मीठी नारंगी है। इसका पेड़ देखनेमें नारंगीके पेडकी तरह, किन्तु उससे छोटा होता है। पत्र कोमल और कम हरे होते हैं। फूल अल्प सुगन्धी; कच्चा फल हरा और खट्टा, तथा पका फल खटमिट्ठा होता है। कोई फल अधिक मीठे, पुष्ट, सुगन्धिपूर्ण और स्वादिष्ट होते हैं। किसीका छिलका पतला एवं चिकना और किसीका मोटा, किन्तु नारंगीके छिलकेकी तरह कडा नही होता है। नारंगीके छिलकेकी अपेक्षया इसमें कडुआहट भी कम होती है। मोटे छिलकेवाले से पतले छिलकेवाला उत्तम होता है। सिलहटका कौंला (कँवला) अच्छा और अधिक मीठा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सौमनस्यजनन और हृदयबलदायक है तथा उष्ण हृत्स्पंदनको दूर करता है। पित्त और रक्तके जोशको शान्त करता, प्यास बुझाता और आमाशय तथा यकृत्के शोथ एवं दाहको लाभ पहुँचाता है। इसका छिलका दीपन और बिजौरेके छिलका (पोस्त तुरज)के समान गुणकारी है। चेहरेपर इसके लेप (उबटन) करनेसे चेहरेकी झाईंका नाश होता है। इसके फल (कँवला)का मुरब्बा स्वादिष्ट, मन प्रसादकर और हृद्य होता है। इसके बीज बिजौरे (तुरज)के बीजोंके समान अगदगुण विशिष्ट होते हैं। खूब पके हुए समूचे कमला नीबूको एक जगह रख दे। जब वह बिल्कुल सूख जाय तब उसे जलमें पीसकर चना प्रमाणकी गोलियाँ बना ले। विसूचिकामें जब अत्यन्त मिचली, वमन, और दस्त आते हों तब इसमेंसे ५-१० गोली खिलानेसे वे बन्द हो जाते हैं। अहितकर–शूलजनक है। निवारण–अनीसूँ। प्रतिनिधि–खट्टा सेब। मात्रा–आवश्यकतानुसार।

●

(८०) कुंदुर ।

फ़ैमिली : बर्सेरासे (Family : Burseraceae) ।

नाम—(हिं०; द०) कुंदुर, (यू) लिबानोस Libanos (D 1. 31), थूग्रोस, लिबानोटोस, ओलिब-नोस, (सुर०) लबूनिया, लिबानूस, (रू०) तु(यु)स; (अ०) अल्कुदुर, अल् लुबान (इ० वै०४१८३), कुदुर, वस्तज, लबान्,(फा०) कुंदुर; (मं०) कुंदुरु , (बं०) कुन्द्रो, (ले०) बॉसवेल्लिआ फ्लोरिबुंडा Boswellia floribunda), (अ०) ओलिबेनम् (Olibanum), फ्रैंकिन्सेंस (Frankincense) ।

वक्तव्य—लैटिन नाम वृक्षका है । 'मखजनुल् अद्विया' में इसके भारतीय भेदका भी उल्लेख मिलता है, जो सम्भवत आयुर्वेदीय निघण्टु कुन्दुरु (शल्लकीनिर्यास) है । दे० 'सलई' । किशार कुंदुर जिसे अरब निवासी 'कशफ़' और हिन्दी में 'धूप' कहते हैं एक भिन्न भेद माना जाता है ।

उत्पत्तिस्थान—अरब, सोकोतरा (Socotra), एबिसिनिया और अफरीका आदि पश्चिमी देशोंमें इसके वृक्ष होते हैं ।

वर्णन—यह एक १८ से २७ मीटर (२-३) गज ऊँचे कँटीले वृक्ष (अरबी शल्लकी)का गोद है, जो कुछ कडुआ एव कुस्वाद होता है । आकृति और रगभेदसे कुदुर ५ प्रकारका होता है (१) नर कुदुर (कुदुर जकर)–इसके दाने ललाई लिए गोल, छोटे और कडे होते हैं । मुहीउद्दीन के मतसे यह ललाई लिए पीले या ललाई लिये भूरे और डीमक के अनुसार गहरे पीले रगके होते हैं, (२) मादा कुदुर (कुदुर उन्सा)–इसके दाने उससे वडे, सफेद (या पाडुश्वेत अथवा पाडु पीत) और अर्धस्वच्छ होते हैं । इसे ऑवल या अव्वल कुदुर भी कहते हैं, (३) गोल कुदुर(कुंदुर मुदहरज)-यह कुदुरका ताजा निकला हुआ गोद है, जिसे थैलियोमें हिलाकर गोल अश्रुवत् बना लिया जाता है, (४) किशार कुदुर–यह आपसमें रगड खानेमें पृथक् हुई निर्यासकी पतली एव चौडी पपडी या पत्तर अथवा लुतनिर्यास द्वारा आच्छादित वल्कल है, (५) दुकाक कुदुर (कुदुरका चूरा)–यह शुद्ध नरम और पिसा हुआ उत्तम होता है । कुदुरके वे कण जो आपसमें रगडखानेसे अलग होकर कुदुरकी थैलियोंमें गिरते है, वम्बईके बाजार-में इसे 'धूप' कहते है । व्यापार–बम्बई 'कुदुर' के व्यापारकी प्रधान मण्डी है । मकुल्ल, अदन आदि समीपवर्ती बंदरगाहोंमे जहाजोमें लादकर यह बम्बई आता है । बाजारोमें आनेपर इसे छाँटकर विभिन्न श्रेणियोका बनाया जाता है । इनमें सर्वोत्तम वह है जिसके दाने औरोकी अपेक्षया वडे, स्वच्छ और अश्रुवत् होते है । अन्तमे बचा हुआ चूरा इसकी अन्तिम या निकृष्टतम श्रेणी होती है । प्रथम श्रेणीका कुदुर प्राय पुन विदेशोको चला जाता है । भारतीय बाजारोंमें निम्न कोटिक श्रेणियाँ ही प्रसारित की जाती है । सग्रह–अफरीका और दक्षिण अरबमे इसके वृक्ष होते है । अस्तु अफरीकामें मार्चसे सितम्बर तक और अरबमें मईसे दिसम्बर तक इसका सग्रह किया जाता है । इसके सग्रह-की साधारण रीति यह है—सर्वप्रथम वृक्षके फूले हुए भागके वल्कलमे साधारण चीरा लगा देते है । इससे एक प्रकारका चेंप स्रवता है, जिसके कड़ा हो जानेपर उसीका सग्रह कर लेते है । उत्तम कुदुरके लक्षण–ताजा, नरम, शुद्ध (अमिश्र), नर, जो ऊपरसे सफेद और भीतरसे लेसदार, सुनहला और टूटा न हो, ऐसा कुन्दुर उत्तम समझा जाता है । जो अग्निपर शीघ्र जल उठता है, वह शुद्ध समझा जाता है । असली कुन्दुरमे मस्तगीसी सुगन्ध आती है । इसके विपरीत ववूलके गोदसे बनाया हुआ नकली कुन्दुर जलता नही और सनोवर गोदमे बनाया हुआ धूआँ देता है । कुन्दुरमें २० वर्ष तक वीर्य रहता है ।

उपयुक्त अग—कुदुर (गोंद)के सभी भेद, विशेषकर किशार कुदुर जो मोटा, सुगधित, चरपरा, सफेद, चेपदार (पिच्छिल), ताजा और चिकना हो, वह उत्तम समझा जाता है । कज्जल[1] एव पचाग (विशेषत पत्र) ।

---

[1] इसकी कल्पनाविधि यूनानी द्रव्यगुणादर्श पूर्वार्ध भेषज कल्पनाखण्डमें देखें ।

वक्तव्य—ताजा कुदुर पिस नही सकता, उगलिए उगे सौफ या दारचीनी जैसे किसी अर्क या ऐल्कोहॉलमे घोलकर और मरहमोमे सिरकेमे भिगोकर डालना चाहिए।

रासायनिक सगठन—इसमें एक गोद (गम) और दूसरा राल (Resin) सगीरा एक द्रव्य होता है।

कल्प तथा योग—जुवारिश कुदुर और माजून कुदुर।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके आदिमे उष्ण एव रूक्ष। किशारकुदुर दूसरे दर्जेके आदिमें उष्ण और उसके अन्तमे रूक्ष, दुकाक कुदुर, कुदुरसे अधिक रूक्ष एव सूक्ष्म (लतीफ) है। कज्जल भी उष्ण एव रूक्ष है।

गुण-कर्म—यह वातानुलोमन, स्मृतिवर्धक, वाजीकर, चक्षुष्य, दीपन-पाचन, सग्राही, दोषपाचन, लेखन,हृद्य, रक्तस्तम्भन और विषघ्न हैं। उपयोग—वातानुलोमन, दीपन, पाचन और सग्राही होनेके कारण वमन, सग्रहणी, अतिसार और प्रवाहिकामे कुदुरका उपयोग करते हैं। रक्तस्तम्भन होनेसे गुदा, अर्शाकुर और गर्भाशय इनमेसे किसीसे रक्तस्राव होता हो तथा वाह्य अगोमें हो अथवा मस्तिष्कावरणजात रक्तस्राव तथा रक्तष्ठीवनमें इसके प्रयोगसे वडा उपकार होता है। हृद्य होनेसे दिलकी धडकन और स्मृतिवर्धक एव मेध्य होनेमे बुद्धिमान्द्य तथा विस्मृति रोगमें इसका उपयोग लाभकारी है। चक्षुष्य होनेसे इसे नेत्रमे अजनकरनेसे दृष्टि तीव्र होती है। लेखनीय होनेसे नेत्रव्रणका शोधन-रोपण होता है। आँखमे जमा हुआ रक्त और कनीनिकाके नीचे स्थित पूय विलीन होता है। नेत्रगत अर्म, कर्कट, नेत्रस्राव, पक्ष्मशात, नेत्रशुक्ल, सिराजालक, कुथूणक, नेत्रकण्डू, धुध और दृष्टिमान्द्य प्रभृति रोग आराम होते हैं, विशेपत मधुके साथ लगानेसे चिप्प (दाहस) रोगमे इसे शहदमे मिलाकर लेप करते हैं। वृष्य और वाजीकरण गुणके लिए अडेकी अर्धभृष्ट जर्दी या विशेषकर जायफल और जावित्रीके साथ इसका उपयोग कराते हैं। विषघ्न होनेसे जनपदोध्वसक रोगोमे इसकी धूनी देते हैं। वस्ति और गवीनीको वलप्रद होनेसे हस्तिमेह और वहुमूत्रमें इसका उपयोग करते हैं। यह रक्त और श्वेतप्रदरमे भी प्रयुक्त होता है। यह तर कास और श्वासमे लाभकारी है और फुप्फुस रोगोमे प्रयुक्त पेय औषधोमें पडता है। किशार कुन्दुर सभी गुणोमें कुन्दुरसे वढकर है। दुकाक कुन्दुर इनकी अपेक्षया निर्वलतर है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—सिकजवीन और शर्करा। प्रतिनिधि—मस्तगी। मात्रा १५ से ३ ग्राम (१॥ माशे से ३ माशे तक)।

●

(८१) कुंदुश

नाम—(अ०) कु (कु) दुस (श), ऊदुल्उतास, (फा०) वेख गाजुरान (रजक काष्ठ या मूल), कदग (श), (सुर०) अदरना, (शीराजी) चोबक उश्नान, (ले०) वेरार्लुम आल्बुम **Verarlum album**।

वक्तव्य—इब्नुल्बैतार के कथनानुसार न 'दीसकूरीदूस' और न 'जालीनूस' ने ही इस पौधेका वर्णन किया है। फिर भी 'हुनैन' और उसके अनुयायियोने प्रमादवश इसको दीसकूरीदूस (D 2 195) लिखित 'Stronthion' मान लिया है, जो एक सर्वथा भिन्न पौधा है। (इ० वै० सचि० ३ पृष्ठ १३, सचि० ४ पृष्ठ ८६)।

वर्णन—नकछिकनी से भिन्न यह एक अन्य बूटीकी जड है जो ऊपरसे काली और भीतरसे पीली या पिलाई लिए सफेद होती है। इसको वारीक पीसकर सूघनेसे अत्यत छीक आती है। ताजी और तीक्ष्णगधी जड उत्तम समझी जाती है। इसमे २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—तीव्र छिक्काजनन, मस्तिष्क सशोधन, कफसशोधन, मूत्रल, आर्तवजनन और लेखन।

उपयोग—कुदुशको अधिकतया मस्तिष्क (शिर) रोगो, उदाहरणत अपस्मार, सन्यास आदिमे, मस्तिष्क सशोधनके लिए उपयोग करते है। श्वासरोगमें वमन लानेके लिए इसका काढा पिलाते है। लेखन होनेके कारण कतिपय त्वग्रोगोमें इसे पीसकर लेप करते है। नासिकाके रोगोमे भी इसका उपयोग करते है। **अहितकर**—फुफ्फुसको तथा मूर्च्छा एव आकुलताकारक है। **निवारण**—कतीरा और ताजा दूध। **प्रतिनिधि**—समभाग मैनफल, तिहाई कालीमिर्चके साथ। मात्रा ० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

●

(८२) कौच, केवॉच

फैमिली लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) केवाँच, केवाच, कौंच (छ), खुजनी, (स०) कपिकच्छु, कच्छुरा, (व०) आलकुशी, (को०, सथा०) अलकुसी, (उ०) वाई-खुजली, (मा०) किवॉच, (म०) खाजकुहिली, (गु०) कौचा, कवच, (ले०) **मूकूना प्रूरीटा Mucuna prurita** Hook (पर्याय—*Mucuna pruriens* Bak), (अ०) काउ-इच (Cow-itch), काउहेज (Cowhedge)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, अफरीका और दक्षिण अमरीका।

वर्णन—इसकी (वल्लरी) लता अपने इर्द-गिर्दके वृक्षोपर चढ जाती है। पत्र गुरुचके पत्तेके समान (कोई-कोई समातर असमचतुर्भुजवत् (Rhomboid) होते है, जिनका ऊर्ध्वपृष्ठ अरोमिल, किन्तु अध पृष्ठ अधिलग्नसिल्की रोमिल (Adpressedly silky pubescent) होता है तथा पत्र सहसा तीक्ष्णाग्र (Mucronate) युक्त होता है। पुष्प नीलरक्त होते है। इसमे फलियाँ लगती है जिनपर लगभग ० २५ से०मी० (१।१०इच) लम्बे और तेज नोकदार लगभग ० ६ मि०मि० १।४० इच व्यासके कोपयुक्त रोये होते है। इनके स्पर्शमे वडी सावधानी वरतनी चाहिए, क्योंकि **इनके शरीरपर लगनेसे तीव्र कण्डू और दाह होता है**। यहाँ यह स्मरणीय है, कि केवाचके सस्कृत एव प्राय अन्य सभी भारतीय भाषाओ तथा अग्रेजी और इसके लेटिन वाइनोमियल नॉमन्क्लेचर मे जातीय नाम आदि इसी तथ्यके द्योतक है। बीज लोवियाके समान, किन्तु उससे वडे, चिकने और कालाई लिए होते है। यही बीज **तुख्म कौंचके** नामसे औषधिमें प्रयुक्त होते है। इनके भीतर सफेद गिरी (मग्ज) निकलती है। इससे मिलती-जुलती इसकी एक दूसरी जाति की लता (**M capitata** W & A) और है जो सहारनपुर, शिवालिकमे मिल जाती है। परन्तु इसका पुष्पव्यूह समशिख-सा और फली दुगुनी लम्बी तथा पतनशील रोमोसे ढँकी होती है। फारसीग्रन्थोक्त हब्बुलकुलै के गुण-धर्म इसके समान लिखे है। इसी भ्रमवश किसी-किसीने हब्बुलकुलै को कौच का बीज मान लिया है। किन्तु यह ठीक नही है। दोनो भिन्न द्रव्य है। इसी प्रकार पजावमे सफेद रगके कौंचके बीज पसारी वेचते है। यह किसी सेमकी जातिके बीज है न कि कौंचके बीज।

उपयुक्त अग—बीज, मूल और फली परके वाल (फलरोम)।

प्रकृति—सरदी लिये अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म—बीज वाजीकर, शुक्रल वीर्यपुष्टिकर और शुक्रस्तम्भन, **फली परके** वाल कृमिघ्न और रक्तिमाकर।

उपयोग—बीजकी गिरीको शुक्रतारल्य, शीघ्रस्खलन, शुक्रप्रमेह और नपुमकताके लिए माजून और चूर्णयोगोमे डालकर सेवन कराते है। **फली परके बालको** २-१ चायके चमचकी मात्रामे शहद और शर्वत आदिके साथ उपयोग करनेसे अन्त्रकृमियोको निकालता है। मलहररूपमें यह ठीक जयपाल तैल की भाँति कार्य करता है और इसमें कोई असुविधा भी नही होती। **अहितकर**—आकुलता एव हृल्लासजनक। **निवारण** रोगन मस्तगी और ववूलका गोद।

प्रतिनिधि—सेमलका मूसला। मात्रा–३ से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—केवाँच मधुर, तिक्त, गुरु, वातशमन, बृंहण, बल्य, वाजीकर तथा वात, पित्त और रुधिरविकारका नाश करनेवाली है (च०; सु०, भा०, प्र०)।

नव्यमत—मूल नाडियोके लिए उत्तेजक और मूत्रजनन है। गोलकृमि मारनेके लिए एक फलीके ऊपरके बाल गुडमे गोली बनाकर खिलाते है। दूसरे दिन विरेचन देते है। मूलके काढेसे मूत्रका प्रमाण बढता है। इसलिए वृक्क (गुर्दे)के रोगोमे देते है।

•

(८३) ककड़ी

फैमिली कूकूरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) ककडी, (अ०) किस्साऽ, (फा०) खियार्ज, खियार तवील (-दराज), (स०) कर्कटी, (व०, म०, गु०) काँकडी, (लें०) कूकूमिस मेलो प्र० ऊटीलिस्सिमुस **Cucumis melo** L var **utilissimus** Duthie & Fuller (पर्याय *C utilissimus Roxb*), (अ०) कुकुंवर (Cucumber)। (२) फूटककडी–(हिं०) ककडी, फूट, (अ०) किस्साऽ, (फा०) खियार्ज, गाजरूनी (-नीशापुरी, (स०) उर्वारु, चिर्भट', (लै०) कूकूमिस मोमोर्डिका (**Cucumis momordica L**), (अ०) कुकुवर मोमोर्डिका (Cucumber momordica)।

बीज—(अ०) बज्र ुल् किस्साऽ; (फा०) तुख्मे खियार्ज, तुख्मे खियारे दराज; (अ०) कुकुवर सीड्स (Cu-Cumber seeds)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर प्रदेश, सीमाप्रात, पजाब और बगालमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—खीरेकी जातिकी एक बेल है। फागुन-चैतमें बोई जाती है और वैशाख-जेठमे फलती है। इसीसे इसे 'जेठुई ककडी' भी कहते है। इसके फल गोल, एक हाथ या इससे अधिक लम्बे, कुछ मुडे हुए, पतले और उसपर लम्बाईके रुख ऊभरी हुई रेखाएँ होती है। रगमें यह हरी या कुछ पीलापन लिये सफेद होती है। ठढाई और यूनानी चिकित्सामें इसीके बीज काममे आते है। सफेद, भारी और पकी हुई ककडीमेंसे निकाले हुए ताजे बीज उत्तम होते है। इसके बीज खीरेके बीजसे उत्कृष्ट समझे जाते है। इसके बीज खरबूजेके बीजसे अधिक चौडे, अत्यन्त सफेद, लघु, मसृण और हीकदार होते है। ककडी और खीरे दोनोके बीजोको तुख्म खियारैन (बज्र ुल्-कसद वल्-खियार) कहते है। उपर्युक्त जेठुई ककडीके अतिरिक्त एक और ककडी होती है जिसे 'फूट ककड़ी' कहते है। इसके फल उससे बहुत मोटे होते है और पकनेपर फूट जाते है। इसकी दो फसलें होती होती है—बरसाती और जेठुई। साम्प्रत बाजारमे जेठुइ और फूट-ककडी दोनोके मिले हुए बीज ककडीके बीज (तुख्म खियार्ज.)के नामसे मिलते हैं।

उपयुक्त अग—फल और बीज।

कल्प तथा योग—आब खियार्ज।

फल—(ककडी)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एवं तर।

गुण-कर्म—प्रधान दोपमें शीघ्रपरिणतिशील, पित्तरक्तसंशमन, तृट्प्रशमन, मूत्रल और वस्तिवृक्काश्मरी निस्सारक है।

उपयोग—ककडी बहुधा कच्ची खाई जाती है। यह उष्ण प्रकृतिको अधिक सात्म्य है। यह पित्त और रक्तके प्रकोपको शात करती, प्यास बुझाती और खूब पेशाब लाती है। इसका छिलका रखने या इसको पीसकर

लेप करनेसे उष्ण सिर-दर्द आराम होता है। नेत्रके गरमशोथमे यह दोषविलोमकारी औषधका काम देता है। इसको नमक और कालीमिर्चके साथ खाना उत्तम है। **अहितकर**—चिरपाकी और ज्वरोत्पादक। **निवारण**—नमक और अजवायन। **प्रतिनिधि**—खीरा। **मात्रा**—आवश्यकतानुसार।

बीज (ककड़ीकेबीज)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर।

गुण-कर्म—सर, मूत्रल, पित्तरक्तसंशमन, तृट्प्रशमन, लेखन, स्रोतोविशोधक और मन प्रसादकर है।

उपयोग—मूत्रल और पित्तरक्तसशमन होनेके कारण पैत्तिक ज्वरोंमें, सूजाक और सदाहमूत्रमे इसका उपयोग करते हैं। आमाशय और यकृतकी उष्णता शमन करने तथा वस्तिवृक्काश्मरिको निकालनेके लिए इसे देते है। लेखनीय होनेके कारण मुखमडलको काति प्रदान करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—सुप्त एव शान्तदोष प्रकोपक। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—खीरेके बीज। **मात्रा**—५ से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—ककड़ी (कर्कारु, चिर्भिट)का साग अतिसारनाशक है (च० चि० १० अ०)। ककडी मधुर, कडवी, कफवातकारक, मलमूत्रकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाली, रक्तपित्तनाशक (सु० सू० अ० ४६) और पित्त-नाशक एव शीतल है तथा पकनेपर यह पित्तवर्धक एव गरम हो जाती है (वा० सू० अ० ६)।

कडवी ककड़ी—रस और पाकमे कटु, तिक्त, मूत्रकारक, वमनकारक तथा मूत्रकृच्छ्र और आध्मान एव अष्ठीलाको दूर करनेवाली है।

•

(८४) फूट ककड़ी

वक्तव्य—फूटककडीका विशेष विवरण 'ककडी' शब्दमे देखे। यहाँपर केवल इसकी प्रकृति तथा गुणकर्म और उपयोग आदि दिये गये है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एव तर है।

गुण-कर्म—**मूत्रल और सतापहर**। इसकी गंध सौमनस्यजनन है। **उपयोग**—मेवाकी भाँति फूट पुष्कल खाई जाती है। इसमें पोषणाश स्वल्प है। यह गुरु, विष्टभी और आनाहकारक तथा शीघ्र प्रकुथित हो जानेवाली वस्तु है। अस्तु, इसके प्रचुर उपयोगसे प्रकोथजन्य ज्वर उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि इसके सेवनसे पेशाब अधिक आता है, तथापि यह किसी रोगमे प्रयुक्त नही होती। **अहितकर**—आमाशयके लिए। **निवारण**—गुड और चीनी। **प्रतिनिधि**—खरबूजा।

आयुर्वेदीय मत—फूट ककडी (उर्वारु) अति तृप्ति-दायक एवं रुचिकारी तथा सताप, मूत्रके रोग और मूर्च्छाका नाश करती है और अत्यन्त सेवन करनेसे वायुको कुपित करती है। (ध० नि०, रा० नि०)।

खीरा-ककड़ीके बीज (तुख्म तियारैन)

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव स्निग्ध।

गुण-कर्म—दाहप्रशमन, पित्तरक्तसशमन और मूत्रल।

उपयोग—शीतजनन और पित्तरक्तसशमन होनेके कारण रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, उग्र पिपासा, आमाशय-शोथ, उष्ण कास और उष्ण ज्वरोमे इनका शीरा (जलमें पीसकर निकाला हुआ दुधिया रस) पिलाते हैं। यह

मूत्रल भी है, इसलिए यकृत्प्लीहाके उष्ण शोथों, सदाहमूत्र और सूजाक मे भी इसका उपयोग करते है। यह उत्कृष्ट मूत्रजनन औषध है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। निवारण—सौंफ और सोठा। प्रतिनिधि—दोनो एक दूसरेके लिए। मात्रा—५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मूत्रकृच्छ्र (पित्तज), शर्करा, गुल्म और अश्मरी (च० चि० २६ अ०) तथा मूत्ररोधज उदावर्त एव मूत्राघात (सु० उ० ५५, ५८ अ०)मे ककड़ीके बीज (एर्वारु बीज) देनेसे लाभ होता है। सुश्रुत (चि० ३१ अ०)के मतसे मूत्रसगमें इसके बीजोका तेल (कर्कारु स्नेह) गुणकारक है।

•

(८५) ककोडा, खेखसा।

फैमिली : कुकूरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हि०) ककोडा, खे(क)खसा, ककरोल (मरजन), (स०) कर्कोटक (की), (प०) ककोडा, (ब०) वन-करेला, काँकरोल, (म०) कर्टोले, (गु०) कटोला, ककोडा, (मा) काटोला; (लै०) मोमार्डिका डिओइका **Momordica dioica** Roxb।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें प्राय जगली होता है।

वर्णन—एक आरोही लताका प्रसिद्ध फल जो शाकके काममें आता है और वर्षाऋतुके प्रारम्भमें होता है। इसकी नर और नारी पुष्पोकी लताएँ भिन्न-भिन्न होती है। नरपुष्पोकी लताको 'बॉझ ककोड़ा (वन्ध्या कर्कोटकी)' और फल देनेवाली नारी पुष्पोकी लताओंको 'ककोडा (कर्कोटकी)' कहते है। फलके ऊपर मुलायम काँटे सदृश बाह्य वृद्धियाँ होती है। यह फल २ ५से०मी० से ७ ५से०मी० (१ से ३इच) लम्बा, दीर्घवृत्ताभ, और तीक्ष्णाग्र अथवा अडाकार होता है। जड बहुवर्षायु एव कन्दवत् होती है। पत्र हृद्वत्, अखण्ड अथवा त्रिखण्डित, प्राय· लहरदार, दतुरधारवाले लट्वाकार तथा व्यासमें २-४॥ इच होते है। उपयुक्त अग—पत्र और फलका शाकार्थ एव कद तथा पत्रादि चिकित्सार्थ व्यवहृत होते है।

रासायनिक सगठन—छिलकारहित बीजमे कुछ-कुछ हरे रगका तेल ४३ ७ प्र० श० और एक तिक्त ग्लूकोसाइड होता है। राखमें मैंगेनीज होता है।

प्रकृति—ककोडा अनुष्णाशीत, किंचित् तर या स्निग्ध (मरतब), आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य होता है। बाँझ ककोडा उष्ण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खाँसी, फेफडेका दर्द जीर्णज्वर, अर्श, वृक्कशूल और पार्श्वशूलमें इसका फल और जड दोनो गुणदायक है। इसे गायके घीमे तलनेके बाद उस घीको नाकमे टपकानेसे आधाशीशीका दर्द तुरन्त दूर हो जाता है। इसका रस नाकमे टपकानेसे नाकके कीडे मर जाते है। यह कानके दर्दके लिए भी गुणकारक है। ११ ५ ग्राम (१ तोला) इसकी जड पीसकर पीनेसे वृक्कगत पथरी दूर होती है और वह पुन उत्पन्न नही होने देती। बालपर इसकी जडका लेप करनेसे बालोकी जडे दृढ होती है और बालखोरेका रोग जाता रहता है। बाल बढते है। ककोडा विषोका अगद है। बॉझ ककोडा लघु, कफनाशक, पित्तनाशक, फोडा-फुन्सी निवारक, सूजन और क्षतका नाशकरनेवाला है। फल अम्ल और शीतल है। फलका रस हृद्य, क्षुधावर्धक और पित्तनाशक है। १॥ तोलेकी मात्रामें इसका कद पानीमे पीसकर पिलानेसे वमन होकर हर प्रकारका स्थावर और जगम विष नष्ट हो जाता है। अहितकर—दीर्घ पाकी और आध्मानकारक। निवारण—गरम मसाला और अदरक। प्रतिनिधि—करेला।

आयुर्वेदीय मत—देवकन्या तिक्त, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात और विष-को दूर करनेवाला है। (च०, सु०; रा० नि०)। श्वेत देवकन्या तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रसायन तथा कफ और विषका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्य मत—यह रेचक नहीं है, मात्रा अधिक हो तो इससे उल्टी होती है। इसमे थोडा रक्तमाग्राहिक गुण है। रक्तार्शमे भुने हुए कंदका चूर्ण देते हैं। मेह विशेषकर मधुमेहमें, कंदका चूर्ण वंग भस्मके साथ देते है। प्रलापयुक्त ऊँचे ज्वरमें इसको जलमे पीसकर शरीरपर लेप करते हैं। विष एवं सर्पदंशमे तथा कोथप्रतिबंधक रूपमे इसका उपयोग होता है। सूखे कंदका चूर्ण या काढ़ा नस्य प्रबल शिरोविरेचक प्रभाव करता है जिससे नाकसे प्रभूत द्रव निकलता है।

(८६) कचनाल

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family, Leguminosae)

नाम—(हि०) कचनार (न), (म०) काञ्चनार, कोविदार, (प०) कचनाल, कुलाड, (म०) कोरल, काञ्चन, (गु०) चपाकाटी, (द०) कानन, (ते०) देवकाञ्चनम, (ता०) मदारै, (मल०) शु(चु)वन्नमन्दारम्। भेद–(१) सफेद फूलवाला (श्वेत काञ्चनार)। (ले०) बॉहीनिया आकुमिनाटा (Bauhinia acuminata L), (२) लाल फूलवाला (रक्त काञ्चनार)। (ले०) बॉहीनिया वारिएगाटा (B variegata L) पुष्प बडे, श्वेत, गुलावी या बैंगनी, (३) कोविदार। (स०) कोविदार (मर०) कोउनार, (था०) कोईलार, (मिरजापुर) कोइला(ना)र, (ले०) बॉ० पर्पूरेआ (B purpurea Linn) पुष्प नीलारुण।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। बगीचोमे इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक १५-२० फुट ऊँचा मझोले कदका पेड है। पत्र गोल और सिरेपर अधिक-से-अधिक तिहाई दूरी तक कटा होता है। देखनेमें यह प्रतीत होता है, मानो दो पत्र पत्राधारकी ओरसे जुडकर सिरेकी ओर पृथक् हो गये हो। पत्रपर बारीक-बारीक नसें उठी होती हैं। यह ३ से ५ इंच तक लम्बे-चौडे होते है। माघ-फागुनमें इसका पतझड होता है और जेठ तक नये पत्ते आते हैं। कली लम्बी और हरी होती है। बाह्य पुटका संयुक्त भाग शेष भागके बराबर होता है। फूलमे पांच विषमाकार पखडियाँ, पाँच पुंकेसर और एक स्त्री-केसर होता हैं। इसमें भीनी-भीनी सुगंध होती है। पांच दलपत्रोमें प्राय ४सफेद और १लाल होता है जिसमे दृढ मध्यशिरा होती है और आधारमे लाल बैंगनी रंगकी शिराएँ निकली रहती हैं। इसके विपरीत निर्गन्ध पुष्प श्वेतकाञ्चनार और पीत काञ्चनमें केसरोकी संख्या १० होती है। फूलोके रंगके विचारसे इसके निम्न भेद होते हैं —(१) बैंगनी या गहरे गुलावी रंगका लाल कचनार, (२) सफेद और (३) पीले फूलका। फली एक बित्ता लम्बी और चपटी होती है। कोविदारकी पत्तियाँ सिरेपर आधी दूर तक कटी रहती हैं। बाह्यपुटका संयुक्त कलिकाकार भाग शेष भागमे छोटा होता है। पुष्प गहरे गुलावी रंगके होते हैं। पुष्पकलिकाओंका साग बनाया जाता है।

रासायनिक संगठन—छालमें एक प्रकारका टैनिक एसिड या टैनिन (Tannic acid or tannin), ग्लूकोज और एक भूरे रंगका गोद पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—कली, छाल, पत्र, पुष्प, बीज और गोद।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (भा०प्र०) है।

गुण-कर्म–सग्राही, अर्शोजात रक्तस्राव रोधक, अतीसारघ्न, रक्तस्तम्भन, रक्तोद्वेगसशमन और रक्तप्रसादन।

उपयोग—कचनारकी कलीकी तरकारी होती है और अचार पडता है। इसे सालनकी भाँति पकाकर खाते है। यह अतिसार, अर्शोजात रक्त, आर्तवशोणित और सरुधिरमूत्रताको रोकता है। यह सग्रहणीमें भी लाभकारी है। क्वाथ और चूर्णौषध रूपमे भी इसका उपयोग करते है। उपर्युक्त गुणोके लिए इसके वृक्षकी छाल प्रयुक्त होती है। रक्तप्रसादन और रक्तोद्वेगसशमन होनेके कारण मत्बूख हफ्तरोजा (सप्ताहोपयोगी क्वाथ) और आयुर्वेदीय 'काञ्चनार गुग्गुलका यह भी एक उपादान है। कण्ठ और मुखपाकमे इसके काढेसे गण्डूप (गरगरा वा मजमजा) कराया जाता है, विशेषकर जब पारदवा रसकपूरके सेवनसे मुँह आया हुआ हो तब इसके काढेसे गण्डूप करनेसे बहुत लाभ होता है। यह अन्त्रबलदायक है। अहितकर–गुरु, चिरपाकी, एव आनाहकारक है। निवारण–गरम मसाला और मास। प्रतिनिधि–बाकला। मात्रा–६ ग्राम (६ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—कोविदार (तथा कचनार) कपाय, शीतवीर्य, ग्राही, ऊर्ध्वभागहर तथा कफ, पित्त, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रश, गण्डमाला और व्रणका नाश करनेवाला है। कचनारके फूल मधुर, मधुरविपाक, रूक्ष, ग्राहि तथा रक्तपित्त, पित्त, रक्तविकार, प्रदर, क्षय और खाँसीका नाश करनेवाले है। (च० सू० अ० ४, २७, सु० सू० अ० ३९, भा०प्र०)।

नव्यमत—कचनारकी क्रिया त्वचा और रसग्रन्थियोपर होती है। कचनार ग्राही, व्रणशोधन और व्रण-रोपण है। बडी मात्रामे देनेसे वमन होता है। गण्डमाला और अपचीमे छालका क्वाथ गूगलके साथ देते है। इससे व्रण धोते है। रोग नया हो तो इससे लाभ होता है।

(८७) कचरी।

फैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) कचरी, पेहटुल, सेंध, (अ०) शम्माम, दर्दाव, (फा०) दस्तम्बूया, (ले०) कूकूमिस डूडाइन (**Cucumis dudain** Linn), (अ०) कुकुबर मैंडरास (Cucumber Madras)।

वक्तव्य—फारसी नाम दस्तम्बूया, कचरी एव बिजौरेकी जातिके एक प्रकारके छोटेसे और सुगन्धित नीबू इन उभय अर्थोमे प्रयुक्त होता है।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष विशेषत पजाब, उत्तर प्रदेश और जयपुर आदि।

वर्णन—ककडी या खीरेकी जातिकी, पर उससे अत्यन्त क्षुद्र, एक बेल जो चौमासे या खरीफकी फसलमे खेतोमे फैलती है। फूल पीले, फल छोटे ४-५ अगुल तकके और अडाकार लगते है। इसे ही कचरी कहते है। कच्ची कचरी हरे रगकी वा मिले हुए सफेद और हरे (चितकबरे)रगकी और अत्यन्त कडवी होती है। फल पकनेपर पीले पड जाते है। इनमेसे किसी-किसीके ऊपर लम्बाईके रुख हरी धारियाँ भी होती है। ये खटमिट्ठे या ईषदम्ल स्वाद-युक्त हो जाते है। बडा-छोटा, लम्बा-गोल और मीठा-कडवा इत्यादि भेदोसे कचरी अनेक प्रकारकी होती है। कचरी प्राय छोटी जातिके पेहटेसे बनती है। इसके कच्चे फलोको लोग काट-काटकर सुखाते है और भूनकर सोधाई वा तरकारी बनाते है। जयपुरकी कचरी खट्टी बहुत होती है और कडवी कम। पका पेंहटा अत्यन्त सुरम्य एव सुगन्धित होता है। लोग प्राय सुगन्ध हेतु इसे पास रखते है। सूँघनेके लिए हाथमे रखनेके कारण ही इसे फारसीमें 'दस्तम्बूया' कहते है।

उपयुक्त अग—फल ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी महक मस्तिष्क तथा हृदयबलदायक और अवरोधोद्घाटक है । पकी या कच्ची कचरी मूत्रल है । इसके कुछ दिन सेवनसे पथरी टूट-टूटकर निकल जाती है । यह मासको गलाती है तथा वाजीकर एवं मलावरोधकारिणी है । उष्ण, तारल्यजनन और मार्दवकरण होनेसे यह दोषोको सचालित करके, स्थानान्तरित या उनके उत्सर्गकी जगह खीच लाती (जाजिब) है । यह भोजनमें रुचि उत्पन्न करती है और आहार-को पचाती है तथा कफवात और काठिन्यका नाश करती है । इसे बीचमेंसे चीर-सुखाकर और घीमें भूनकर नमक छिडकर खाते है । यह खानेमें अत्यन्त रुचिकारी होती है । कचरी ताजी भी खाई जाती है । यह मास गलानेके लिए उसमें डाली जाती है । इससे उसमें सुगन्ध आ जाती है और वह सुपाच्य हो जाता है । प्राय पाचनार्थ एव वायुनाशनके लिए इसे दाल आदिमें डालते है । इसकी धूनी अर्शके लिए परम गुणकारी है । वायुजन्य उदरशूलमे उष्णजलके साथ इसका चूर्ण एक सिद्धभेषज है । इसका छिलका चिरपाकी है । इसका बीज वायुनाशक है । यह क्षुधावर्धक एव वाजीकर है तथा आमाशय (अहशाउ)को बल प्रदान करता है । इसलिये दीपन-पाचन चूर्णोंमें इसे प्राय डालते है । यह वाह्यद्रवोका शोषण करती तथा अर्श, अर्धाङ्गपक्षवध और अर्दित इत्यादि वात एव कफके रोगोको लाभ पहुँचाती है तथा वातनाडीगत काठिन्य को दूर करती है । अहितकर—उष्ण प्रकृतिको एव शिर शूलजनक है । निवारण—धनियाँ और दही आदि । प्रतिनिधि—अजीर और अञ्जरबूजा । मात्रा—४-५ ग्राम (साढे ४ माशे तक) ।

आयुर्वेदीय मत—कचरी मधुर, शीतल, रूखी, भारी, ग्राही, मलस्तम्भकारक तथा कफ, पित्त मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह, प्रमेह, वात और शोषका नाश-करनेवाली है । सभी प्रकारकी कचरी स्वादिष्ट, शीतल और वात कफकारक है । कच्ची कचरी—कटु, किंचित् अम्ल, पाकमे मधुर (शैत्य) और दीपन है (रा० नि०) । यह मीठी, गरम नही, शीतल, रूखी, भारी, ग्राही, अभिष्यन्दी, विष्टम्भकारक, वातप्रकोपक तथा कफ और पित्तका नाश करने-वाली है । (रा०नि०, भा०प्र०, नि०शि०) । सूखी कचरी—रूखी, दीपन, रुचिकर तथा वात, कफ अरुचि और जडताको नाश करनेवाली है । (रा०नि०) । पकी कचरी—उष्ण एव पित्तकारक है (भा०प्र०) ।

०

(८८) कटहल

फैमिली : आर्टोकार्पासे (Family Artocarpaceae) ।

नाम—(हिं०) कटहर (ल), (फा०) चक्की, (स०) पनस, कण्टक फल, (ब०, म०, गु०, बम्ब०) फणस, (लें०) आर्टोकार्पुस हेटेरोफिल्ला **Artocarpus heterophylla** Lam (पर्याय—आर्टोकार्पुस इंटेग्रा *Artocarpus integra* auct non Merr, आर्टो० ईन्टेग्रीफोलिआ *Artocarpus integrifolia* auct non L f (अ०) इडियन जैक-फ्रूट (Indian Jack-Fruit) ।

वक्तव्य—लेटिन नाम इसके वृक्षका है । अग्रेजी नाम फलका है । सस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि नाम इसके सस्कृत नामसे व्युत्पन्न है तथा फल एव वृक्षके लिए सामान्य है ।

उत्पत्तिस्थान—यह भारतवर्षके सब गरम भागोमें लगाया जाता है । पूर्वी एव पश्चिमी घाटकी पहाडियो-पर इसके स्वयजात वृक्ष बहुतायतसे पाये जाते है । यह वहाँका एक प्रधान खाद्य है ।

वर्णन—यह १२ से १५ मीटर (४०–५० फुट) ऊँचे सदावहार वृक्षका प्रसिद्ध फल है। यह गूलरकी भाँति नीचेसे ऊपर तक वृक्षकी शाखाओ, जड और काडसे निकलता है। फल १ वा १–१॥ हाथ लवा और उतना ही घेराका और कभी-कभी इससे भी वहुत वडा, वजनमें १ सेरसे लेकर १ मन तक वजनी हो जाता है, जिसमें एकसौ तक कोये होते है। फलके ऊपरका छिलका वहुत मोटा होता है और उसपर वहुतसे नुकीले कगूरे होते है। जिस कटहलके छिलकेपर ये कगूरे जितने अधिक कठिन और लवे हो उसके भीतर ये दाने उतनेही उत्तम और वडा निकलते है और मीठे भी होते है। फलके भीतर वीचमे गुठली होती है जिसके चारो ओर मोटे-मोटे रेशोकी कथरियोमें गुदार कोये रहते है। कोये पकनेपर वडे मीठे होते है। कोयेके भीतर वहुत पतली झिल्लियोमें लिपटे हुए वीज होते है ये वृक्काकार और तैलमय होते है। फल माघ-फागुनमे लगते है और जेठ-आपाढमे पकते है।

रासायनिक सगठन—इसकी सूखी लकडीमें मोरिन (Morin) एव सायनोमैक्लुरिन (Cyanomaclurin) नामक रञ्जकतत्व पाये जाते है। छालमे ३ ३ प्रतिशत टैनिन पाया जाता है। इसके दूध (Latex) मे आर्टोस्टेनोन (Artostenone) नामक स्टीरोकीटोन पाया जाता है।

उपयुक्त अग—फल (कच्चा वा पका) और वीज।

प्रकृति—मलभूत द्रवोके साथ दूसरे दर्जेमे उष्ण एव पहले दर्जेमें रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म—वाजीकरण, शुक्रल और वीर्यस्तम्भन।

उपयोग—कच्चे कटहलकी तरकारी होती और अचार पडता है। पके फलके कोये मेवाकी भाँति खाये जाते है। यह आनाहकारक और चिरपाकी है। परन्तु भलीभाँति पचजानेपर वाजीकर एव शुक्रल है। वाजीकरण हेतु इसका मुरब्बा और हलवा वनाकर भी खाया जाता है। वीजकी गिरी भूनकर खाई जाती है। अहितकर—सान्द्र और सौदामिश्र रक्त उत्पन्न करता है।

निवारण—नमक, कस्तूरी और केसर।

आयुर्वेदीय मत—कटहल कपाय रस एव विपाकमे मधुर, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, वल्य, बृहण, अत्यन्त पिच्छिल, हृद्य, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, ग्राही, दुर्जर तथा वातहर और पित्तहर एव श्रम, दाह और शोपनाशक है। (सु०सू०अ० ४६)। कटहलकी मज्जा शुक्रल (वृष्य) त्रिदोषनाशक तथा गुल्मरोगी और मन्दाग्निवालेको विशेषरूपसे अहितकर है। (रा० नि०)। कच्चा फल-कपाय, मधुर, स्वादिष्ट (मतातरसे नीरस), शीतवीर्य, गुरु, हृद्य, विष्टम्भी, मलस्तम्भक, वातकारक, कफ और मेदको वढानेवाला (मतातरसे घटानेवाला), त्रिदोषकारक, वलवर्धक और दाहकारक (मतातरसे पित्तनाशक)है। कोमल कटहर दाह और वातपित्तनाशक है। अधपका कटहल रुचिदायक है। पका कटहल मधुर, स्वादिष्ट,शीतवीर्य, स्निग्ध, भारी, दुर्जर (कठिनतासे पचनेवाला), विदाही, कफवर्धक, वलवीर्यवर्धक, मासवर्धक, वृंहण, तृप्तिकारक, धातुवर्धक, पुष्टिजनक, जन्तुजनक तथा वातपित्त, रक्तपित्त और क्षतजव्रण (क्षतक्षय)का नाश करनेवाला है। बीज कुछ-कुछ कपाय, मधुर, स्वादिष्ट, शीतवीर्य, भारी, वातकारक, वीर्यवर्धक, मलको बाँधनेवाले, मूत्रको निकालनेवाले और कफपित्तनाशक है। ये घृतके साथ स्निग्ध, हृद्य और बल्य है। फूल कडवे, भारी और मुँहको शुद्ध करनेवाले है। (रा० नि०, भा० प्र०, नि० र०)।

नव्यमत—यह अत्यन्त सुस्वादु एव सुप्रसिद्ध भारतीय फल है। इसे अधिक प्रमाणमे खानेसे दस्त आने लगते है। खाली पेट और विशेषत सवेरे इसका खाना सर्वोपरि है। इसका कच्चाफल साधारणतया तरकारी और अचार आदि बनानेके काममे आता है। पकानेपर इसकी कढी उत्तम बनती है। इसके पके फलके कोये खाये जाते है। अपक्व फल ग्राही और पका फल सारक होता है। अत्यन्त पौष्टिक होते हुए भी यह कुछ कठिनतासे पचता है। बीजमे जो मण्डवत् द्रव्य रहता है, वह इसको सुखाने और कूटने-पीटनेसे अलग हो सकता है। इसका भुना हुआ बीज उत्तम खाद्य है और यह अखरोटके तुल्य होता है। इसे पीसनेसे सिंघाडेके आटे जैसा निकलता है। वृक्षका दुधिया रस मासके शोथ, सन्धिशोथ और विस्फोटो पर केवल या सिरकेमे मिलाकर उनके विलीनीभवन एव सपूय-

मलकी वृद्धिके लिए लगाया जाता है। नवीन पत्र एव जड चर्मरोगामे और मूल अजीर्णपर चलता है। जडका काढा तथा जडसे स्रावित रस द्वारा बना हुआ साद्र पदार्थ–ये दोनो अतिसार रोगमें दिये जाते है। इसकी पत्तियॉ सर्प विष का अगद समझी जाती है।

●

(८९),(९०) कटाई छोटी व कटाई बड़ी।

फैमिली : सोलानासे (Famıly . Solanaccae)

छोटी कटाई—

नाम,—(हिं०) छोटी कटाई (कटेरी), कडियारी, भटकटाई, भटकइया, भुइंरिंगिणी, (अ०) वादजान वर्री (दश्ती), हदक, शौकतुल् अकरव, ईसिम्, (फा०) वादगान वर्री, कटाई खुर्द, (स०) कण्टकारी, क्षुद्रकण्टा, क्षुद्रा, (व०) कण्टिकारी, (प०) कडियारी, (सिं०) काडेरी, (म०) भुईरिंगणी, (मा०) पसरकटाई, (गु०) बेठी रिंगणी, भोरिंगणी, (ले०) सोलानुम् सूरात्तेसे **Solanum surattense** (पर्याय–*S cantho.a pum* Schrad), (अ)० वाइल्ड एग-प्लाट (Wıld egg-plant)।

बडी कटाई—

नाम—(हिं०) बनभटा, वनभटवा, वरहटा, (फा०) कटाई कर्ला, (स०) वृहती, स्थूल भण्टाकी, (व०) व्याकुड, (म०) डौरलै (ली), (गु०) उभी रिंगणी, (को०) अ (ह) ञ्जड, (ले०) सोलानुम इंडिकुम् **Solanum indicum** Lınn

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमे पजावसे आसाम और लका तक यह सर्वत्र तथा अरबमे भी होती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुप हैं जो छत्तेकी भाँति भूमिपर आच्छादित होता है। क्षुप काण्डरहित, जड न्यूनाधिक द्विवर्षायु, पत्र आकृतिमे वनगोभीके पत्रकी तरह प्राय युग्म, दीर्घायताकार, पक्षाकार (Pınnatıfid) वा भालाकार एव मसृण होता है, परन्तु इसके उभय पृष्टपर लबे, मजवूत, सीधे और पीले काँटे होते हैं। पत्रवृत, शाखा और पुष्पदड इन सबपर भी सर्वत्र तीक्ष्णाग्र विपुल कटक होते हैं। पत्रमध्यसे पुष्पस्तवक निकलते हैं। पुष्पदण्ड प्राय इतना लम्बा होता है कि उसपर ४-६ तक एकान्तरीय, सवृत, वृहत्, उज्ज्वल नीलवर्णके पुष्प आते हैं। पुष्पवहिरावरण (कटोरी) पर सीधे काटे होते हैं। पुष्पदल मिलित होता है और अशाख पुष्पदडपर स्थित होता है। दलोके अग्र पाँच भागोमे चीरित होते हैं। इसके मध्यमे पीले रगके पराग-केसर और स्थूल पीतवर्णका परागकोप होता है। फल वर्तुलाकार बडी रसभरीकी आकृतिका अतिमसृण और नीचेकी ओर झुका हुआ होता है। कच्चा फल हरा, सफेद, या चितले रगका होता है और उसके गात्रपर सफेद धारिया पडी होती हैं। पकनेपर यह पीला पड जाता है। वीज भटेके वीज की तरह होते हैं। इसकी बडी जातिको जगली वैगन (वनभंटा) कहते हैं। इसका क्षुप भूमिसे उठा हुआ और बैगनके क्षुपके समान होता है। औपधमे वहुधा छोटी कटाई प्रयुक्त होती हैं।

रासायनिक सगठन—फलमें वसाम्ल, (Fatty acıd), मोम और एक क्षारोद तथा सूखेपत्रमे एक क्षारोद और सैन्द्रियकाम्ल प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अग—पचाग, फूल, केसर, फल, वीज और मूल।

प्रकृति—तीसरे दर्जे मे उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेद के मत से उष्णवीर्य एव रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म—विरेचन, रक्तप्रसादन, उदर कृमिनाशन और कृमिदन्त नाशन है। इसका नस्य अपस्मारहर, अपतन्त्रकहर, श्लेष्मनि सारक ओर कफज्वरनाशक है।

उपयोग—विरेचन एव रक्तप्रसादन होने के कारण कुष्ठ तथा फिरग (आतशक) आदि रक्तविकार जनित व्याधियो मे इसको पिलाते है । आतशक और रक्तविकार जन्य रोगो मे प्रयुक्त मत्बूख हफ्तरोजा (साप्ताहिक क्वाथ) का एक उपादान छोटी कटाई का पचाग भी है । उदरकृमिनाशन होने से यह उदरज कृमियो को मारकर उत्सर्गित करती है । कृमिदत मे इसके फल को चिलम में तम्बाखूके स्थान मे रखकर पीने से कृमि मर जाते है और दर्द शान्त हो जाता है । मृगी और अपतन्त्रकके आवेगमे इसका शीरा नाकमे अवपीड करने से रोगी होश मे आ जाता है । श्लेष्मनि सारक होने से कास और कफज कृच्छ्रश्वास मे यह विविध प्रकार से उपयोग कराई जाती है । कफज्वर मे अन्य औषध-द्रव्यो के साथ इसकी जडका क्वाथ पिलाया जाता है । मात्रा ५ से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे तक) (क्वाथ मे) ।

आयुर्वेदीय मत—छोटी कटेरी तिक्त, कटु, लघु, रुक्ष, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, पाचन, कण्ठ्य, हिक्का-निग्रहण, कासहर, शोथहर, शीतप्रशमन, अगमर्दप्रशमन तथा खांसी, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्वशूल, कृमि और हृद्रोगका नाश करनेवाली है । कटेरीके फल तिक्त, कटु, विपाकमे कटु, शुक्रविरेचन, भेदन, पित्तकर, अग्निकर, लघु तथा कफ, वात, कड्, खाँसी, मेदोवृद्धि, कृमि और ज्वरको दूर करने वाले है । (च० सू० अ०४, सु०सू०अ० ३८, भा० प्र०) । बडी कटेरी–कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, हृद्य, ग्राही तथा वात, कफ, ज्वर, कुष्ठ, श्वास, कास, मुखका वैरस्य और मल, अरोचक तथा शूलका नाश करनेवाली है । (च०सू०अ०४, सु० सू० अ० ३८, कै० नि०)।

नव्यमत—छोटी कटेरी, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, मूत्रजनन और कफघ्न है । बीज वेदनास्थापन है । इससे गले और श्वासनलिकाका सूखापन कम होकर कफ छूटने लगता है । इसलिये गले और श्वासनलिकाके शोथकी प्रथमावस्था मे इसका प्रयोग करते है । स्वेदजनन और ज्वरघ्न होनेसे सर्दी-जुकाममे इसको देते है । दाँत सडकर होनेवाले दतशूलमे और बवासीर (अर्श) सूजकर होनेवाले दर्दमे छोटी कटेरीके बीजोकी धूनी देते है । बड़ी कटेरीकी जडका कफ रोगमे उपयोग करते है । इससे ज्वर कम होता और पेटके वायुका दर्द और मरोड कम होता हैं तथा पेशाब ठीक होता है ।

फलचूर्ण अग्निदीपक माना जाता है । शिर शूलमे फलको मस्तकपर लगाया जाता है और कासमे पचाग विशेषत वातिक कासमे यह बहुत उपयोगी पाया गया है ।

o

(९१) कतरान ।

फैमिली : पीनासे (Family Pinaceae)

नाम— (हिं०) कातरान, कील, (उ०) चुडैलका तेल, (यू०) (D 1.105), (अ०) क (कि) त्रान, कत्रान शजरी (चोबी, सनोबर), जिफ्त रतब, (फा०) कत्रान चोबी, (लै०) पिक्स लिक्विडा (Pix liquida), (अ०) टार (Tar), वुड-टार (Wood Tar), पाइन टार (Pine Tar), स्टाकहोम टार (Stockholm Tar) ।

वक्तव्य—(१) कॉतरान कतरान का अपभ्रश है । 'पिक्स लिक्वडा' का समीचीन अरबी पर्याय 'अज्जिफ्तुस्साइला या 'जिफ्त रतब' और टारका 'कत्रान' प्रतीत होता है । जिफ्त और कत्रानके अर्थमे यह भेद है 'जिफ्त' ऐसे द्रवको कहते है जो वृक्षके तनेमे से स्वय या चीरा देनेसे निकले । परन्तु जब उसे किसी विशेष विधिसे प्राप्त करते है तो उसे 'कत्रान' कहते है । पिक्स लिक्विडा अर्थात् टारको भी विशेष विधिसे निकालते है । अस्तु, इसका ठीक पर्याय कत्रान ही हो सकता है ।

(२) यूनानी वैद्यकमे 'जिफ्तेरतव' को 'कत्रान' भी कहते है (देखो मुहीत आजम में जिफ्त और कत्रानका विवरण)। ग्रन्थिकृत, क्वथित और घनीकृतको श्याम, स्पेन और बाबुलनिवासी जिफ्त व जिफ्त स्याह कहते है।

(३) बहरुल् जवाहिर मे कतरानका हिन्दी नाम (चुडैलका तेल) और मुहीत आजम मे 'कान्करान्' जो कत्रानका अपभ्रंश (विकृत रूप) है।

उत्पत्तिस्थान—फ़ास, पुर्तगाल और यूनान आदि।

वर्णन—यह एक प्रकारका कालापन लिये भूरे रगका गाढा या अर्धतरल अलकतरेकी तरहका पदार्थ है। इसकी गध विशेष प्रकारकी और सुगन्धयुक्त होती है। यह एक प्रकारके चीड (Pinus sylvestris), या सनोवर बर्री (शर्बीन) तथा अन्य प्रकारके देवदारु जातीय वृक्षकी लकडीके काण्ड एव मूलसे विघटक आसवन (Destructive distillation) की विधिसे[1] परिस्रावित किया जाता हैं। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १ ०२ से १ १५ हैं। जलमें डालकर हिलानेसे इसकी रगत हल्की भूरी और प्रतिक्रिया अम्लतायुक्त हो जाती है। इब्नबैतार के अनुसार उत्तम कत्रान वह है जिसकी गध अप्रिय हो और जिसे भूमिपर टपकानेसे उसके बिन्दु स्थिर रहे, फैले नही।

वक्तव्य एव भेद—हकीम दीसकूरीदूस यूनानीने दो प्रकारके कतरान–(१) कतरान सनोबर और कत्रान फर्आर का उल्लेख किया है। जैसा पहले कहा गया है कतरानको 'जिफ्त रतब' भी कहते है। अरबी यूनानी वैद्यकीय (तिबके) ग्रन्थोमे चतुर्विध जिफ्तका उल्लेख पाया जाता है। जैसे–(१) जिफ्त रतब, (२)जिफ्त याबिस, (३)जिफ्त जबली और (४) जिफ्त बहरी। इनमे जिफ्त रतब या कतरान तो वही है जिसका यहाँ वर्णन हो रहा है। भेद केवल यह है कि जब यह वृक्षके तनेमें चीरा लगानेसे या स्वयमेव निकलता है तब इसे जिफ्त रतब और जब विशेष विधिसे परिस्रावणकर निकालते है तब कत्रान कहते है। जब इसे धूप या आगपर उडा कर शुष्क कर लिया जाताहै, तब इसे 'जिफ्त याबिस' कहते है। जिफ्त जबली से कत्रान मादनी (खनिज कतरान या अलकतरा) विवक्षित होता है। जिफ्त बहरी भी वस्तुत जिफ्त जबली या कीरकी ही एक किस्म है या सभवत कतरान सनोवर बहरी हो।

मतभेद एव परिचय—वैद्यकीय ग्रन्थोमे कत्रानके स्वरूपपरिचयके विषयमे कतिपय प्राचीन अन्वेषकोकी केवल शाब्दिक मतभिन्नता है,वास्तविक या अन्वर्थक नही। क्योकि'अरअर' और 'तनूब'(जिसको मुहीत आजम आदिमे तबूत लिखा है) ये समस्त सनोवरके भेद है, यथा—(१) हकीम बोलस अरअरको कत्रान वृक्ष कहते है, (२) हकीम मुहम्मद बिन मुहम्मद भी अरअर को शर्बीन या कत्रान वृक्ष बतलाता है, (३) इब्न मासूया 'शर्बीन' को सनोवरका एक भेद लिखता है, (४) मिन्हाजुल् बयानका लेखक लिखता है कि कत्रान कत्रानवृक्षोत्थ स्नेह (तैल) है तथा उसको अरअर, अनम और तनूब आदिसे भी प्राप्त करते है। परन्तु जो अरअरसे निकलती है वह अत्युत्तम होती है और तनूबसे प्राप्त निकृष्ट, (५) किताब मालायस्अका लेखक लिखता है कि शर्बीन कत्रान वृक्ष है, सनोवरके भेदोके अतर्भूत है, इत्यादि। फलत उल्लिखित उपर्युक्त शाब्दिक मतभेदसे इसके स्वरूप-परिचय (माहियत)मे कोई अन्तर नही आता। प्रत्येक श्रेष्ठ हकीमका कथन स्वयमेव यथार्थ एव सत्य है।

विलेयता—एक भाग कत्रान १० भाग सुरासार (९० प्र०श०) मे और किसी कदर रोगन जैतून तथा रोगन तारपीन में विलीन हो जाता है।

---

१ ऊँची जमीन या टीलेपर गढा खोदकर उसके भीतर चतुदिक् पकी ईंट और चूनेकी दीवार खडीकर देते है। इस गढेके भीतर ऐसे काष्ठ (तने) वा जड़ोंको बन्द आँच देनेसे टार या कत्रान प्राप्त होता है। इस विधिको विघटक तिर्यक् परिश्रवण विधि कहते है। यह आयुर्वेदोक्त पातालयन्त्रका ही एक रूपान्तर है।

रासायनिक सगठन—इसका रासायनिक सगठन अत्यन्त जटिल है। इसमें क्रियोजोट (Creosoet-oil of Tar) या क्रेसोल, फेनोल, ऑइल ऑफ टर्पेन्टाइन (तारपीनका तेल), शुक्ताम्ल, पाइरोकैटकोल, टोलुएन, जाइलोल, एसीटोन, मीथिलिक एसिड, ग्वायकोल और राल (रेजिन) ये द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण और पहले दर्जेमे रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका वाह्य प्रयोग श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक और कोथप्रतिवन्धक है। इसे त्वचापर निरतर लगानेसे तीव्र जलन होने लगती है और फुसियाँ निकल आती है। आतरिक उपयोगसे यह फुफ्फुसोपर कोथप्रशमन और श्लेष्मनि सारक प्रभाव करता है। परन्तु अधिक मात्रामे उपयोग करनेसे पाचनकी शक्ति खराव हो जाती, वमन आता, उदर और शिरमे दर्द होने लगता है। ग्रन्थि विलयन, वाजीकरण और गर्भाशयसशोधन इसके प्रधान कर्म है।

उपयोग—वाहरी तौरपर लगानेसे यह रक्तको वाहर त्वचाकी ओर आकर्पित करता है, इसलिए इसको अकेला या अन्य औषधद्रव्यके साथ वाजीकरण एव शिश्नको स्थूल करनेवाली तिलाओमे मिलाते है। इसके अतिरिक्त मलहरोमे सम्मिलित करके कतिपय व्रणो और त्वग्रोगो, जैसे–किलास, चवल, विर्चचिका और दद्रुपर लगाते है। अगोकी कठिनता, विशेपकर गर्भाशयकाठिन्यमे उपयुक्त द्रव्योके साथ इसकी गोलियाँ वनाकर खिलाते है। कफघ्न और श्लेष्मनि सारक होनेके कारण श्वास और कासमे उपयुक्त औपधद्रव्योके साथ इसकी गोलियाँ खिलाते है। इससे कफकी उत्पत्ति कम हो जाती और उसका उत्सर्ग सुगम हो जाता है। अहितकर–फुफ्फुस और शिरोरोगो मे। निवारण–कतीरा, वनफ्शा और ववूलका गोद। प्रतिनिधि–कीर और जिफ्त रतव। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

(९२) कताद और कतीरा।

फैमिली लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—वृक्ष (अ०) कताद, शज्रतुल् कुद्स (पवित्र वृक्ष), मिस्वाकुल् अव्वास (अव्वासका दतधावन), मिस्वाकुल् मसीह (मसीहका दातून), (फा०) कुन, नवारिस, कवीह, (लै०) हेराती कतीरेका वृक्ष–आस्ट्रागालुस हेराटेन्सिस **Astragalus heratensis** Bunge, ईरानी कताद्-आस्ट्रागालुस स्ट्रोबिलीफेरा **Astragalus strobilifera** Royle

(२) निर्यास—(हि०) कतीरा, (फा०) कतीरा, (अ०) अल्कतीरा, हलूसिया (इ०वै० २/३०), कसीरा, (अं०) परसियन ट्रैगाकान्थ (Persian Tragacanth), गम ट्रागाकान्थ (Gum Tragacanth)।

वक्तव्य—(१) डीमक्ने हेराती कतादका फारसी नाम 'गविना' और इरानीका 'कोन' लिखा है। किसी-किसीके मतसे हेरातीका फारसी नाम 'कोन' और इरानीका 'कुम' या 'वालिशे आशिकाँ (मावश आशिकाँ)' और अरवी 'मिस्वाकुल् अव्वास' है। प्राय अरवी-फारसीके कोपोमे 'कतीरा' को फारसी भापाका शब्द लिखा है, जिससे कसीरा अरवी वनाया गया है। परन्तु उम्दतुल् मुह्ताज के सकलनकर्ता लिखते है कि कतिपय हकीम इसे यूनानी 'ट्रागाकथा' (Tragacantha–'तरागाकन्सा) शब्दका अरवी उल्था बतलाते है, जिससे अंग्रेजी ट्रैगाकन्थ व्युत्पन्न है। यह ट्रैगाकथके प्रतिनिधि द्रव्यकी भाँति काममे आता है। (२) यूनानी ट्रैगाकैन्था शब्दका धात्वर्थ (ट्रागोज = छाग,

बकरा, अकन्या = कन्टक) 'छागकण्टक' या छागशृंग' है। इस वृक्षके काँटे छागशृंगवत् लंबे और सीधे होते हैं, इस-लिये इसे उक्त नामसे अभिधानित किया गया। 'कतागाकन्था' यूनानी 'ट्रागाकँथा' शब्दका अरबी रूपान्तर है, जिसे मुहीत आजममें कतीराके विवरण में प्रमादवश 'तरागामस्या' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—फारस, एशिया माइनर, ।

वर्णन—यह एक दृढ़ एवं कंटकाकीर्ण वृक्ष है, जिसके काँटे अत्यन्त तीक्ष्ण और नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। प्रायः पत्रशून्य होना और देखनेमें घासकी तरह प्रतीत होता है। ऊँट इसे नहीं खाते, किंतु जब अनावृष्टिके कारण चारेका अभाव रहता है, तब वे इसे खानेके लिए बाध्य होते हैं। इसके चरनेसे पशु मोटे हो जाते हैं। इसका फूल पीले रंगका होता है और उसमें लाल टुकड़े होते हैं। फूलनेपर इसका फल निकलता है जिसका रंग छुहारेकी गुठलीकी तरह होता है। किताबोंमें इसके जो चित्र दिये हैं, उनसे ऐसा यह प्रतीत होता है, कि इसके काँटे सीधे, नुकीले और बहुत लम्बे होते हैं। कतीराके पेड़ ईरान और अफगानिस्तानमें प्रायः होते हैं। उक्त स्थानभेदसे ही कतादके भी दो भेद (हिरातो और ईरानी) यूनानी ग्रन्थोंमें स्वीकार किये गये हैं। इनमेंसे प्रथम भेद अर्थात् हेरातीको वैज्ञानिक भाषामें (Astragalus heratensis Bunge) अर्थात् पूरा या ... कतीरा वृक्ष और द्वितीय भेदको वैज्ञानिक भाषामें (Astragalus strobilifera) और अरबी एवं फारसीमें क्रमशः सिम्वा कुल् अव्याज और दरख्ते तुम वा जम्गि आशिकां कहते हैं। 'कताद' नामसे मख्जनुल् अद्वियः और मुहीत आजममें कतीरा वृक्षका वर्णन किया गया है। गीलानीके अनुसार इन वृक्षोंमें चीरा देनेसे गुल्निर्यासवत् एक प्रकारका गोंद निकलता है जिसे फारसी यूनानी कतीरा कहते हैं। कतीरा गुल्निर्यासकी तरहका एक गोंद है जिसके पिलाई लिये सफेद, फीके, स्वाद एवं गंधरहित विभिन्न आकार-प्रकारके फीतोंकी आकृतिके टुकड़े या पत्रक (Flakes) होते हैं। इसका चूर्ण बनाना सहज नहीं है। यह गुलनार और ईथरमें अविलेय और जलमें स्वल्प विलेय होते हैं। जलमें यह फूल जाते हैं। कुल् गोंदके पाण्डुपीत टुकड़े प्रायः कृमिकी आकृतिके होते हैं, जिनमें छालके टुकड़े मिले होते हैं। वक्तव्य—पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयुक्त "ट्रैगाकान्थ" भी कतादकी ही एक अन्य जातिके वृक्षका गोंद है जिसे लेटिनमें आस्ट्रागालुस गम्मीफेरा (Astragalus-gummifera Labill) कहते हैं। इसके वृक्ष एशिया माइनरमें होते हैं। उत्तर भारतवर्षके कश्मीर, पंजाब और अफगानिस्तान आदि प्रान्तोंमें भी कतादकी कतिपय जातियोंके वृक्ष (A tribuloides Del, A. multiceps Wall, A. Strobiliferus Royle) होते हैं। इनके अतिरिक्त भारतवर्षमें 'गुलू' या 'कुल्लो' (स्टेर्कूलिआ उरेंस Sterculia urens Roxb) और 'पीली कपास' या 'गल्गल' (कॉक्लोस्पेर्मुम रेलीजिओसुम Cochlospermum religiosum (L) Alston) नामक वृक्षोंसे भी बिल्कुल विदेशी कतीराकी तरहका ही गोंद प्राप्त होता है। यह अब प्रायः उसके स्थानमें और कतीरा नामसे ही प्रयुक्त होता है। देशी कतीरा, विदेशी कतीरेका उत्तम प्रतिनिधि पाया गया है। इसे 'कतीरा हिन्दी' कहना चाहिये, क्योंकि गुणतः समान होनेपर भी वानस्पतिक परिचयकी दृष्टिसे दोनोंके प्राप्तिसाधन वृक्ष भिन्न हैं। विदेशागत कतीराका आयात फारससे बम्बईमें होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी और इस्लामी वैद्योंको इस गोंदका भलीभाँति ज्ञान था। अस्तु, हकीम सावफ-रिस्तुस तथा हकीम दीसकूरीदूस यूनानी एवं मसीही व इब्नसीना और हाजी जीनुल्अत्तार प्रभृतिने इसका वर्णन किया है।

उपयुक्त अंग—मूल, पत्र और निर्यास (कतीरा)।

कल्प तथा योग—कैरूती कतीरावाली, सफूफ गोंद कतीरावाला।

प्रकृति—गरमी और सर्दीमें अनुष्णाशीत और पहले दर्जेमें तर है।

गुण-कर्म—रक्तस्तम्भक, पिच्छिल और मृदुसारक, दाह एवं संतापको शमन करता, बृंहण और उरोमा-र्दवकर है।

उपयोग—त्वचाको मृदु एव कोमल बनाने और उसका खरत्व दूर करनेके लिये उपयुक्त द्रव्योके साथ कतीरेका लेप किया जाता है और फटे हुए होठोपर लगाया जाता है। पिच्छिल होनेके कारण उपयुक्त द्रव्योके साथ इसकी वर्ति बनाकर नेत्रव्रण और नेत्राभिष्यदमें नेत्रके भीतर लगाते हैं। आतरिक रूपसे शारीरिक सताप एव दाहको शमन करनेके लिए इसको शर्बतोमे मिलाकर या इसका फालूदा बनाकर खिलाते है। विरेचन औषधोकी तीक्ष्णता और उष्णता निवारणके लिए भी इसे सम्मिलित करते है। रक्तष्ठीवन, गरम खॉसी, उरोकठके खरत्व, फुफ्फुसव्रण और स्वरभगमे इसे गदही या बकरीके ताजा दूधके साथ खिलाते या उपयुक्त औपधियोके साथ शर्बतादिमे मिलाकर चटाते हैं अथवा गोलियोमे योजित करके मुखमे रखकर चूसते है। शरीरको पुष्टिके लिए मीठे बादामकी गिरी, निशास्ता, शर्करा और कतीरा समप्रमाणका चूर्ण बनाकर दूधके साथ खिलाते हैं। अन्त्रव्रण, मूत्रावयवव्रण और वस्तिक्षोभमे शाति एव पैच्छिल्यजननके लिये इसका उपयोग करते है। अहितकर–निम्न भागके रोगोमे अहितकर है। निवारण–अनीसूँ। प्रतिनिधि—बबूलका गोद। मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१माशा से ३माशे) तक।

●

(९३,९४) कद्दू और तितलौकी।

फैमिली : कूकूरबिटासे (Family Cucurbitaceae)।

नाम। (१) मीठा कद्दू—(हिं०) कद्दू, लौआ, लौकी, घिया, (यू०) Kolokunthro (D 2 161), (अ०) अल्कर्अ (ई०बै०), कर्अ, कर्उल् हुलुव्व, (फा०) कदूए दराज, कदूए शीरी, खियार कदू, (स०) अलाबू, (लै०) कूकूरबिटा लाजेनारिया (**Cucrubita lagenaria** Linn), (अ०) स्वीट या ह्वाइट गोर्ड (Sweet or White Gourd)। बीज—(अ०) बज्र्उल्, कर्अ, हब्बुल् कर्अ, (फा०) तुख्म कद्दू, तुख्म कदूये दराज। इससे मीठी लौकीके बीज विवक्षित होते हैं।

(२) तिक्त कद्दू—(हिं०) तितलौकी, तुबी, तुबडी, (अ०), कर्उल् मुर्र, (फा०) कदूए तल्ख, (स०) कटुतुम्बा, तिक्तालाबू, (ब०) तितलाउ, (म०) कडुभोपला, (गु०) कडवी, (मा०) कडवी तुमडी (तूंबी), (लै०) लाजनारिआ सिसरारिआ **Lagenaria siceraria** (Mol.) Standl (पर्याय–*Lagenaria vulgaris* Ser, *L leucantha* Rusby, *Cucurbita siceraria* Mol, (अं०) दी बिटर या बाट्ल गोर्ड The Bitter or Bottle-Gourd)।

उत्पत्तिस्थान—सपूर्ण भारतवर्षमे इसकी बेल लगाई जाती है या जगली होती है।

वर्णन—कद्दू (लौकी) एक प्रसिद्ध फलशाक है। यह कूष्माडजातीय एक बेल है, जो बहुत विस्तृत होती और वृक्षादिके आश्रयसे या भूमिपर प्रतान-विस्तार करती है। इसमें सफेद फूल आते है। स्वाद एव आकृति भेदसे फल अनेक प्रकारके होते है। परतु सभी प्रकारके कद्दूके फलके ऊपरका छिलका बहुत कडा, मोटा और काष्ठीय होता है। फलका गूदा स्पजवत् और सफेद होता है। मीठा और कडआ भेदसे यह दो प्रकारका होता है। कडुए कद्दू या लौकीको तितलौकी कहते है। यह मीठे कद्दूमें मीठा और कडुयेमें अत्यत कडुआ होता है। बीज भूरे चपटे, अंडाकार, सिरेपर त्रिखडयुक्त होते हैं। बीजकी गिरी सफेद, स्नेहमय और मीठी होती है। परन्तु तितलौकीके बीजको गिरी तिक्त होती है।

यूनानी वैद्यककी पुस्तकोमें जहाँ कदूए शीरी या कर्उलहुलुव्व लिखा होता है, वहाँ कदूए दराज (लौकी) ही विवक्षित होता है। व्यवहारोपयोगी एवं उत्कृष्ट लौआ वह है, जो सफेद, कोमल, ताजा एव मधुर हो और जिसमें रेशे न हो, जो न बहुत बडा हो और न बहुत छोटा। जड पतली, लबी किंचिन्मधुर और मदकारी होती है।

उपयुक्त अंग—फल, बीज, बीजोत्थ तेल (रोगन मग्ज तुख्म कद्दू-दुहून हब्बुल कर्अ) और मूल। कद्दूका मुरब्बा (मबीर) भी बनाते हैं।

मीठा कद्दू (लौआ)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म—यह शीघ्रपाकी, लघु, अल्पपोषण (कलीलुल् गिजाऽ), मूत्रल, सर, शीतजनन, स्निग्ध तथा पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तके प्रकोपको शान्त करनेवाला है।

उपयोग—इसको अधिकतया अकेले या मांसके साथ पकाकर खाया जाता है। रक्त और पित्त प्रकृतिवालों के लिए यह सात्म्य आहार है। यह रक्तज और पित्तज ज्वरों, उष्ण कास, उर क्षत, राजयक्ष्मा तथा उन्माद और मद (मालिन्खोलिया) जैसे उष्ण (पित्तजन्य) रोगोंमें गुणकारी है। स्निग्ध और दाहप्रशमन होनेके कारण इसका गूदा या छिलका सन्निपात (सरसाम), गरम सिर-दर्द, उन्माद और मदमें मस्तक एवं मूर्धापर रखनेसे लाभ पहुंचाता है। पुटपाककृत कद्दू का रस,[1] (आबे कद्दू या माउल् कर्अ) राजयक्ष्मा और उर क्षतमें पिलाया जाता है। यह दाह और पिपासाको शांत करता है। अहितकर—गुरुत्व और शूलकारक है। निवारण—ऊद हिंदी और लौंग। प्रतिनिधि—पेठा, पालक और कुलफाका साग। मात्रा—कद्दूका रस (आबे कद्दू)-५८ ग्राम से ११६ग्राम (५ तोले से १० तोले) तक।

बीज—(प्रकृति) दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म—स्निग्ध, दाहप्रशमन, बृंहण, मेध्य, उरोमार्दवकर, पित्तरक्तसंशमन और मूत्रल है।

उपयोग—उपर्युक्त गुणकर्मके कारण कद्दूका बीज या कद्दूके बीजकी गिरी (मग्जतुख्मेकद्दू) शरीर एवं वृक्ककार्श्य, रक्तोद्वेग, पित्तोष्णता, पिपासा, आमाशयशोथ, उष्ण ज्वर, कंठनलिका एवं फुफ्फुसीय खरत्व, गरम खांसी, रक्तनिष्ठीवन और उष्णज्वरों में अधिकतया शीरा निकालकर पिलाई जाती है। यह शरीर को मोटा करती है। शीत एवं स्निग्ध होनेसे यह अनिद्रा एवं मस्तिष्कगत रूक्षतामें पान-लेप और नस्य रूपमें प्रयुक्त होती है। मूत्रजनन होनेसे सदाहमूत्र (सोजिश बौल), सूजाक और मूत्रकृच्छ्रमें इसका शीरा निकालकर पिलाया जाता है। बीजोत्थ तेल (रोगन मग्ज तुख्मकद्दू) अनिद्रा, रूक्षालेप एवं मस्तिष्ककी रूक्षतामें और शरीरको तरावट पहुँचानेके लिए नस्यरूपमें प्रयुक्त होता है। अहितकर—श्लेष्मप्रकृतिको। निवारण—शुद्ध मधु और मिश्री। मात्रा ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कद्दू और लौकी मधुर, शीतवीर्य, भारी, स्निग्ध (मतांतरसे रूक्ष), वातकारक, कफकारक (मतांतरसे कफनाशक), वृष्य, बल्य, रुचिकर, धातुवर्धक, पुष्टिकारक, हृद्य, संतर्पण (तृप्तिकारक), गर्भपोषक, भेदक (मतांतरसे मलस्तम्भक) और पित्तनाशक है। (भा० प्र०; रा० नि०, नि० र०)। इसकी बेलके कांड मधुर, शीतल, स्निग्ध, वातकारक, कफकारक तथा भेदक और पित्तनाशक है। (नि० र०)। वाग्भटके अनुसार इसके बीजोंका चूर्ण ७ दिन तक शहद मिला-चाटकर ऊपरसे भेडका दूध पीनेसे अश्मरीरोगका नाश होता है। भावमिश्र ने प्रदररोगमें कद्दूके गूदेको चूर्णकर मधु और चीनी मिला मोदक बनाकर सेवन करनेको लिखा है।

तितलौकी—(प्रकृति) तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमें शीतवीर्य (भा० प्र०) लिखा है।

---

1 आबे कद्दू या कद्दूका रस प्राप्त करनेकी विधि यह है—कद्दूके ऊपर कपड़मिट्टी करके भाड़ या तनूरमें रख देते हैं। जब मिट्टी लाल हो जाती है तब उसे निकालकर कपड़मिट्टी दूर करके कद्दूका रस निचोड़ लेते और मिश्री या शर्बत नीलूफरमें मीठा करके पिलाते हैं।

गुण-कर्म—तितलौकीका रस छर्दिजनन, कामलानाशक और द्रवनिस्सारक तथा मूल श्वयथुविलयन है।
उपयोग—वामक होनेके कारण हरी तितलौकी-रस निचोडकर या सूखी तितलौकीको जलमे पीस-छानकर जीर्णकफज कास और श्वास (दमा) के रोगी को पिलाते हैं। उक्त रोगोमे इससे बडा उपकार होता है। उक्त रसको अथवा इसके फूलोके रसको कामला और कफज मस्तिष्क रोगोमे नाकके अदर टपकाते हैं। इससे अत्यधिक प्रमाण-में नासिकासे द्रवोत्सर्ग होकर नेत्र और चेहरेका पीलिया (जर्दी) दूर हो जाती है तथा मस्तिष्कके कफज रोग, जैसे प्रसेकजन्य शिर शूल और अर्धावभेदक आदि दूर होते हैं। दन्तवेष्टप्रकोप और क्लेदजन्य दतशूलमे इसके रस-का गडूष कराते है। शिर शूलनिवारण और श्वयथुविलयनके लिए तितलौकी जड उपयोगकी जाती है। अहितकर-प्राय अगोके लिए। निवारण-स्नेहद्रव्य। प्रतिनिधि-कडवी तुरई। मात्रा-वमनके लिये हरी तितलौकी का रस ६ ग्राम से १८ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक या इससे अधिक रोगीके बलाबल के अनुसार।

आयुर्वेदीय मत—कटुतुबी तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य अहृद्य, वमन करानेवाली, शोधन तथा कास, विप, वमन, पित्तज्वर, शोथ, व्रण, शूल, वात और कफको दूर करनेवाली है। कटुतुम्बीका तेल तिक्त, कषाय, अधोभागदोषहर, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ०१,२, च० क० अ० ३, सु०सू० अ० ३९, ४०, ४६, रा० नि०, भा०प्र०)।

नव्यमत—कटुतुबीके गुण-कर्म इन्द्रायनके समान है। इसका गर्भमास बहुत कडुआ, तीव्र वामक और भेदन है। पत्ते और प्रतान वामन और थोडी मात्रामे श्लेष्मनि सारक है। इससे एक दम उलटी और जुलाब होते है। यहाँतक कि रोगीकी अवस्था हैजा होनेके जैसी हो जाती हे। अल्पमात्रामे देनेसे कफ छूटता है और दस्त साफ होता है। पत्तोके कल्कमे पकाया हुआ तेल गण्डमाला, बद आदि ग्रन्थिरोगो पर मलते है।

(९५) कनेर।

फैमिली : आपोसीनासे (Family Apocynaceae)।

नाम—(हिं०) कनेर (ल), कनइल, (यू०) Nerion (D 4 82), (अ०) अल्-दिफ्ला (इ० बै०), दिफ्ला, सम्मुल्हिमार, सम्मुल्मार, (फा०) खरजहरा, (स०) करवीर, हयमार, अश्वघ्न, (ब०) करवी, (म०) कण्हेर, (गु०) कणेर, करेण, (सिं०) जगीगुलु, (प०) कनेर, (कु०) कन्यूर, (क०) खरजहर, (लै०) (१) सफेद तथा लाल कनेर। नोरिउम इंडिकुम् **Nerium indicum** Mill (पर्याय-*Nerium odorum* Sol), (२) पीला कनेर-थेवेटिआ पेरूविआना **Thevetia peruviana** (Pers)Merr (पर्याय-*Thevetia nerifolia* Juss); (अं०) स्वीट सेंटेड ओलिएन्डर (Sweet-scented Oleander)।

वक्तव्य—अरबी 'सम्मुलहिमार' एव फारसी 'खरजहरा'का अर्थ 'गर्दभविष' तथा अरबी 'सम्मुलमार'का अर्थ 'सर्पविष' है। कनेर उक्त प्राणियोके लिए घातक विषतुल्य है। अतएव उक्त नाम अन्वर्थक है। भारतीय भाषाओं-के नाम प्राय इसके सस्कृत नामसे उत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—लाल एव सफेद कनेरके पेड भारतवर्षमे जगली होते है और फूलके लिए बगीचोमें एव मन्दिरोकी वाटिकाओमे लगाये जाते है। पीला कनेर पुष्पके लिए बगीचोमें तथा देवस्थानोमे लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—यह मझोले कदका एक प्रसिद्ध पुष्पवृक्ष है। फूलोके रगके विचारसे इसके निम्न भेद है—(१) सफेद कनेर, (२) लाल या गुलाबी कनेर और (३) पीला कनेर। इसके पत्र, छाल और फूल सभी विषैले होते है। इनमें मूलत्वक् सर्वाधिक विषैली होती है। इसलिए अधिक मात्रामें यह घातक विष है।

रासायनिक सगठन—सफेद या लाल कनेरकी जडमें नीरीओडोरिन (Neriodorin) जो जलमे अविलेय है तथा नीरीओडोरेम (Neriodorem) ये दो तिक्त सत्व पाये जाते है ।

कल्प तथा योग—दवाए दिफली (सफेद कनेर) ।

उपयुक्त-अग—जड (या जडकी छाल) और पत्र ।

प्रकृति—विषके साथ तीसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष । आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (ध० नि०) ।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, व्रणलेखन, रक्तप्रसादन और वाजीकर ।

उपयोग—सूजन, कच्छू, कण्डू, दद्रु, झाई (कलफ) आदि पर इसका लेप करते है । व्रणलेखन होनेसे इसके पत्रका चूर्ण व्रणोपर अवचूर्णन करते है तथा कतिपय मरहमोम मिलाते है । रक्तविकारजन्य रोगो तथा कुष्ठ और आतशक (फिरग) आदिके कतिपय रक्तप्रसादनीय योगोमें इसकी जड या पत्र मिलाते है । इसके मूलको दूधमें उबालकर और उस दूधसे यथाविधि मक्खन निकालकर यथोचित मात्रामे वाजीकरणके लिए खिलाते है और उसको प्राय ऐसे तिलाओमें सम्मिलित करते है जो इन्द्रियको शक्ति देनेके लिए प्रयुक्त होते है । यह विष है, इसलिए सावधानीपूर्वक इसका आन्तरिक उपयोग करना चाहिये । अहितकर–उरो-मस्तिष्कको । निवारण–तेल (रोगन) और ताजा पनीर । प्रतिनिधि–मैनफल । मात्रा–१ ग्राम (१ माशा) ।

आयुर्वेदीय मत—कनेर तिक्त, कटु, कषाय, उष्णवीर्य चक्षुष्य, ज्वरहर तथा इसका प्रलेप कुष्ठ, कण्डू, नेत्रप्रकोप और व्रणको दूर करनेवाला है । भक्षण करनेसे यह विषप्रभाव दिखलाता है । (च० सू० ४ अ०, वि० ८ अ०, सु० सू० ३८ एव ३९ अ०, ध० नि०, भा० प्र०) ।

नव्यमत—पीले कनेरका दूध दाहजनक तीक्ष्ण विष है। छाल तिक्त, भेदन, प्रबल ज्वरघ्न और पर्यायज्वरप्रतिबन्धक है । १५ रत्ती सिंकोनाकी छालमे जितना असर होता है उतना एक रत्ती पीले कनेरकी छालसे होता है । घन १।२ रत्ती ज्वर उतरनेके बाद देनेसे ज्वरकी पारी रुकती है । फाट ज्वर चढनेपर देते है । इसे भरेपेट देना चाहिए । खाली पेट कभी न देवे । इसकी क्रिया शारीरिक उष्णताके केन्द्रस्थान और त्वचापर होती है । इसके देनेपर खूब पसीना छूटता है और शरीर ठढा पडता है । यदि अधिक थकावट मालूम हो तो गरम दूध और शराब देना चाहिये । हृदयपर पीली कनेरकी क्रिया डिजिटेलिसके समान होती हैं । इसकी क्रिया साक्षात् हृदय, हृदयमें जानेवाली नाडियो और हृदयके केन्द्रपर होती है । इससे हृदयकी सकोचन क्रिया सुधरती है तथा सकोचन थोडे समयमे होनेसे हृदयको अधिक समय तक आराम मिलता है और आरामके समयमें हृदयका रक्ताभिसरण अच्छा होकर उसको पुष्टि मिलती हैं । हृदयके ठीक काम करने लगनेसे इतर इन्द्रियोका रक्तानुधावन भी ठीक होता है । वृक्को (गुर्दो)का रक्तानुधावन वढनेसे मूत्रका प्रमाण बढता है । इन सब क्रियाओका उपयोग हृदय और हृदयोदरमे होता है । हृदयमें शिथिलता आनेसे हृदयका स्पदन ठीक सुननेमे न आता हो, नाडी कमजोर होकर बहुत शीघ्र चलती हो, पेशाव अत्यल्प होता हो, जरा उठने-बैठनेपर साँस फूलता हो, बिछौनेपर सोया न जाता हो, पाँव सूजकर पेटमे पानी हो गया हो, तो उक्त अवस्थाओमें पीली कनेर अथवा उसके समान कार्य करनेवाले डिजिटेलिस, सफेद कनेर, जगली प्याज, कुटकी आदि द्रव्य देते है । इन द्रव्योको मिलाकर नही देना चाहिये, क्योकि ये द्रव्य स्वत प्रभावशाली हैं । इन द्रव्योके साथ स्वेदजनन, मूत्रजनन और विरेचन द्रव्य दे सकते है ।

सफेद और लाल कनेरका रासायनिक सगठन स्ट्रोफैन्थसके समान है । हृदयपर इसकी क्रिया डिजिटेलिसके समान जोरदार होती है । यह हृदयके लिए घातक, शोथघ्न, त्वग्दोषहर और सब प्राणिओके लिए विष है । अल्पमात्रामें जडकी छालकी क्रिया हृदयपर पीलीकनेरके समान होती है । पीलीकनेरसे यह अधिक तीव्र है । जडकी छालकी मात्रा ३०मि०ग्रा० से २५०मि०ग्रा० (३से एक गुजा) है । हृद्रोग और हृदयोदरमे कनेर देनेसे पेशाब होता

और उदर कम होता है। इसको सदैव भरे हुए पेटपर देना चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर शरीर शीत पडता है, नाडीका स्पद एकदम कम होता है, शरीर खिचता है और हृदय तथा श्वासोच्छासकी क्रिया एक साथ बन्द होती है। त्वग्रोग और व्रणशोथमे जडको गोमूत्रमें पीसकर लगाते हे।

●

(९६) कनौचा।

फैमिली : एउफ़ॉर्बीआसे (Family Euphorbiaceae)।

नाम—(हि०, प०) कनोचा, कनौचा, (फा०, इसफहान) मर्व, (गु०) कनोछा, (ले०) फिल्लान्थुस मद्रास-पाटेन्सिस (**Phyllanthus madraspatensis** Linn)। बीज-(अ०) बज्र ुल मर्व, (फा०) तुख्म मर्व। वक्तव्य-किसी-किसीके मतसे यह लेबिआटी फैमिलीकी साल्विया स्पीनोजा (**Salvia spinoso** Linn) नामक वनस्पतिके बीज है जो पजाबके बाजारोमें मिलते हे।

उत्पत्तिस्थान—पजाब, लकाके शुष्क भाग, अफरीकाके गरम भाग तथा जावा, चीन और आस्ट्रेलिया।

वर्णन—यह मर्वजातीय एक पौधेके बीज है, जिसकी शाखायें लम्बी, पत्र कुछ गोलाई लिए हरे एव सुगधित और फूल पीले वा काले रगके होते है। बीज अलसीकी तरह, भूरे, मसृण तिकोने और कोपावृत होते है। ये ऊपरसे जालीनुमा, कोमल, गहरे भूरे रगकी रेखाओसे चिन्हित २ ५ मि० मी० या ० २५ सें० मी० (१/१० इच) लम्बे उससे कुछ कम चौडे और एक ओर मेहराबनुमा होते हैं। इसका छिलका कडा और भगुर होता है। जलमे भिगोनेपर यह जलको सोखकर फूल जाते अर्थात् शीघ्र (अर्धस्वच्छ लवाब द्वारा घनावृत्त) हो जाते है। गिरी स्नेहमय और स्वादमे गिरिवत् (Nutty) एव मधुर होती हैं। उक्त लवाबके लिए ही तुख्म कनौचाका औषधमें उपयोग होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, व्रणशोथपाचन, पिच्छिल (मुगरी) और सशमन (मुसक्किन) है। अन्त्र और आमाशयपर दीपन, वातानुलोमन और किसी कदर सारक कर्म करते है। भृष्ट किये हुए बीज सग्राही हैं।।

उपयोग—स्त्रीके दूधमे कनौचाके बीजोका लवाब निकालकर कानमे टपकानेसे कर्णशूल आराम होता है। आतरिकरूपसे खिलानेसे यह आमाशय और अन्त्रको शक्ति देता और उनके दर्दको शान्त करता है। इसको भृष्ट करके अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ रक्तातिसार एव प्रवाहिकामे खिलाते है। फोडे-फुन्सियो और कठिन शोथोके पाचनके लिए लेप लगाते या पुल्टिस बाँधते। अहितकर–इसके सूँघनेने शिर शूल उत्पन्न होता है। निवारण–चुक्र बीज (तुख्म हुम्माज) और बादामका तेल। प्रतिनिधि–रैहाँके बीज। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

●

(९७) कपास।

फैमिली : माल्वासे (Family Malvaceae)।

नाम। (क्षुप)—(हिं०) कपास, मनवाँ, (अ०) नबातुल् कुत्न, शज्रतुल्कुत्न, (फा०) दरख्ते पब, (स०) कर्पास, कार्पासी, (क०) कपस, (प०) कपा, फुट्टी, (ब०) कापास, (म०) कापसी, (गु०) वीण, वोण, कपास, (ते०) व्त्तरि,

कर्पासम्, (ता०) रामुत्तिरदम्, कार्वाशम्, (मल०) परुत्ति; (ले०) गॉस्सीपिउम् हेर्बासिउम् (**Gossypium herbasium** Linn); (अ०) कॉटन प्लान्ट (Cotton Plant) । रूई—(हि०) रूई, (अ०) कुत्न, कुतुन (ब०), कुर्सुफ, कुर्फुस, (फा०) पव , पश्मपव, (स०) तूल, पिचु, (म०) कापूस, (गु०) रू, कापूस, (ले०) गॉस्सीपिउम् (Gossypium), (अ०) कॉटन (Cotton), कॉटनवूल (Cotton wool) । बीज—(हि०) विनौला, बेनउर, (अ०) हब्बुल, कुत्न; (फा०) पव दाना, (स०) कार्पासबीज, (म०) सरकी, (गु०) कपासिया, (मा०) काकडा, (अ०) कॉटन सीड्स (Cotton Seeds) । (जडकी छाल)–(फा०) पोस्त वेख पव, (स०) कर्पासमूलत्वक्, (ले०) गॉस्सीपिई रैडीसिस कॉर्टेक्स (Gossypi Radicic Cortex), (अ०) कॉटन रूटबार्क (Cotton Root-bark) । वक्तव्य–'कुर्फुस' सस्कृत कर्पास का अरबी रूपान्तर है । अग्रेजी 'कॉटन' अरबी कुत्न या कुतुनका रूपान्तर प्रतीत होता है । भारतीय भाषाओके नाम सस्कृत 'कपास' या 'कार्पासी'से व्युत्पन्न है ।

इतिहास—सर्वप्रथम भारतीयोको कपासवृक्षका ज्ञान हुआ और उन्होने ही प्रथमत इसका वैद्यकीय उपयोग किया । उत्तरकालीन यूनानियोने 'कस्बूस' नामसे कपासका उल्लेख किया है । परन्तु सावफरिस्तुस यूनानीने 'इरिओफोरा' और प्लाइनीने 'गॉसीपिओ' नामसे इसका वर्णन किया हे । इसलामी वैद्योने 'कुत्न' और 'कुर्फुस' नामसे इसका उल्लेख किया है ।

उत्पत्तिस्थान—यह सम्भवत भारतवर्ष, मिस्र, अरब और एशियामाइनरका मूलनिवासी है । अधुना सर्वत्र उष्ण देशोमें इसकी खेती की जाती है ।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध क्षुप है, जिसके ढेढ से रूई निकलती है । इसके अनेक भेद होते है । इनमे किसीके क्षुप ऊँचे और बडे होते है, किसीका झाड होता है, किसीका क्षुप छोटा होता है, कोई सदाबहार होता है और कितनेकी खेती प्रतिवर्ष की जाती है । इसके पत्र भी भिन्न-भिन्न आकार के होते है । फूल किसीका लाल किसीका पीला और किसीका सफेद होता है । फूलोके गिरनेपर उनमे ढेढ लगते है, जिनमें रूई होती है । ढेढोके आकार और रग भिन्न-भिन्न होते है । रूई अधिकतर सफेद होती है, पर किसी-किसीकी रूई कुछ लाल और मटमैली भी होती है, और किसी-किसीकी अन्य रगकी भी होती है । किसीकी रूई चिकनी और मुलायम तथा किसीकी खुरखुरी होती है । बीजोको 'विनौला' कहते है ।

रासायनिक सगठन—जडकी छालमे स्टार्च और द्राक्षशर्करा तथा बीजो (विनौले)मे एक प्रकारका पाडु-पीत या पीतवर्णका लगभग निर्गंध एव फीका तैल होता है ।

उपयुक्त अग—बीजोकी गिरी (मग़्ज पवःदाना), फूल, जड़की छाल और ढेढ (कपासका फल वा डोडा जो रूई निकालनेके उपरान्त बच रहता है) ।

प्रकृति—रूई (पव.) पहले दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष, और फूल पहले दर्जेमें उष्ण एव तर, ढेढ (डोडा) और जड़की छाल उष्ण एव रूक्ष ।

गुणकर्म—(रूई) उष्णताजनन और उपशोषण, (फूल) मन प्रसादकर तथा डोंडा और मूलत्वक् आर्तव-जनन, गर्भशातक, अपरानि सारक और सुखप्रसवकारक है ।

उपयोग—धुनी हुई रूईको सूजनपर गरमी पहुँचाने और व्रणोपर उनके रक्षार्थ बाँधते है । व्रणलेखन होनेसे यह व्रणोको सुखाता है । सौमनस्यजनन होनेके कारण कपासके फूलोका शर्वत उष्ण हृत्स्पदन (दिलकी धडकन), उन्माद और वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास)मे देते है । गर्भपात, अपरापातन और सुखप्रसवके लिए तथा रजोरोधमें कपासका डोडा और उसके मूलकी छालको अकेला या अन्य द्रव्योके साथ क्वाथ करके पिलाते है ।

मात्रा—कपासका डोडा और जडकी छाल ७ ग्रामसे लगभग १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक । विनौलेकी गिरी—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव तर।

गुण-कर्म—बृंहण, वाजीकर, शुक्रल, स्तन्यजनन, कफनिःसारि और लेखन तथा उर्ध्वमार्दवकर है।

उपयोग—शरीरबृंहण तथा बलवर्द्धन, वाजीकरण और शुक्र एव स्तन्यजननके लिए बिनौलेकी गिरीकी खीर पकाकर या अन्य औषधद्रव्योके साथ हरीरा बनाकर पिलाते है। श्लेष्मनिःसारक होनेसे खाँसीमें भी इसका उपयोग करते है। लेखनीय होनेके कारण मुखमडल (चेहरा)को कांति प्रदान करनेके लिए व्यंग आदि पर इसका लेप लगाते हैं। यह वाजीकर और पौष्टिक माजूनोमे सम्मिलितकी जाती है। यह कुस्वप्न (कावूस) और वातिक अन्यथा ज्ञान (वसवास) निवारणके लिए भी प्रयुक्त होती है। अहितकर—वृक्कोके लिए। निवारण—खमीरा बनफशा या शर्बत बनफशा। प्रतिनिधि—कीकरके बीज और कुसुम बीज (कुर्तुम)। मात्रा—३ ग्रामसे ७ ग्राम (३ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कार्पासी मधुर, लघु, शीतवीर्य, बृहणीय, बल्य, वातसशमन, स्तन्यजनन तथा तृषा दाह, श्रम, भ्रम और मूर्च्छाको दूर करनेवाली है। अरण्यकार्पासी शीतवीर्य, रुचिकर तथा व्रण और शस्त्रक्षतका नाश करनेवाली है। कपासके पत्ते वातनाशक, रक्त और मूत्रको बढानेवाले तथा कानकी आवाज, फुसी और पीपको दूर करनेवाले है। बिनौले स्तन्यवर्धक, वाजीकर, स्निग्ध, गुरु और कफकर है। (च० सू० ४ अ०, सु० सू० ३९ अ०, रा०नि०, भा०प्र०)।

नव्यमत—बिनौले स्तन्यजनन, स्नेहन, मूत्रजनन, स्रसन, श्लेष्मनिःसारक, बल्य और नाडीसस्थानके लिए पौष्टिक है। रूई उपशोषण और रक्षण है। पुष्प उत्तेजक और सौमनस्यजनन है। कोमल पत्र स्नेहन और मूत्रजनन है। मूलकी छाल गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और स्नेहन है। इससे गर्भाशयका उत्तम सकोच होकर रक्त-स्राव बद होता है। मूलकी छालकी क्रिया गर्भाशयपर अर्गटके समान होती है। कपासकी जडकी छालका काढा प्रसव होनेके बाद देते है। इससे गर्भाशयका भली-भाँति सकोचन होता है, रक्तस्राव नही होता और गर्भाशय शिथिल रहनेसे होनेवाले ज्वर, शूल आदि उपद्रव नही होते। आँवल (अपरा) गिरनेके बाद तुरत ही क्वाथ देना चाहिए। इसका पूरा असर होनेमे एक घटा लगता है। एक घटेमे गर्भाशय गेंदके समान सकुचित न हो और नाडी तेज चलती हो तो दूसरी बार क्वाथ देना चाहिए। कपासकी जडकी छाल बडे प्रमाणमे देनेसे गर्भपात होता है। पीडितार्तव और शीतसे उत्पन्न अनार्तवमे कपासकी जडकी छालके काढेसे लाभ होता है। प्रसूता स्त्रीको बिनौलेकी गिरीकी पेया देते है। इससे दूध बढता है। रूई जलाकर घाव (सद्योव्रण)मे भरते है। इससे रक्तस्राव बद होता है और घाव शीघ्र भर जाता है। कपासके फूलोका शर्बत उदासीनताप्रधान मानसिक रोगोमे देते है।

स्थानविशेषमे सर्दीसे बचाने, उष्णता पहुँचाने और व्रणमरक्षणार्थ रूईका उपयोग किया जाता है।

(९८) कपूर

फैमिली : लाउरासे (Family . Lauraceae)।

नाम—(हिं० म०, गु०) कपूर, (यू०) काफोरा, (अ०) काफूर, (फा०) कापूर; (म०) कर्पूर, (ले०) काम्फोरा (Camphora), (अ०) कैम्फर (Camphor)। वक्तव्य—अरबी 'काफूर' शब्द फारसी 'कापूर'से सस्कृत 'कर्पूर' द्वारा अरबी बनाया हुआ अथवा अरबी 'कफूर' धातुसे व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'छिपाना' है। कपूर-की गध समस्त सुगधद्रव्योकी गधको छिपा लेती है, अर्थात् उनको ढँक लेती है। इसलिए सम्भवत इसका उक्त नाम रखा गया। इसके लेटिन, अग्रेजी और यूनानी नाम अरबी 'काफूर'से व्युत्पन्न। कपूरके भारतीय भाषाओं-के नाम सस्कृत 'कर्पूर'से व्युत्पन्न है।

इतिहास—फार्माकोग्राफिया ग्रन्थके लेखक डॉ० फ्लर्कीजर महोदयके कथनानुसार प्राचीन यूनानी एवं लाखानी वैद्यगण कपूरसे अभिज्ञ नही थे। परन्तु अरवी चिकित्साविद् इससे पूर्णतया अभिज्ञ थे। अस्तु, उन्हीके द्वारा यूरूपवासियो तथा उत्तरकालीन यूनानी चिकित्सा विशारदोको इसका ज्ञान हुआ। इसीलिए इसका यूनानी नाम 'काफोरा' है, जो इसकी अरवी सज्ञा 'काफूर'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—चीन (फारमूसा), जापान, पूर्वीद्वीप समूह, सुमात्रा और वोर्नियो। भारतवर्षमे इसका आयात चीन और जापानसे होता है।

वक्तव्य—आजकल नैसर्गिक साधनोसे प्राप्त कर्पूर (Natural Camphor) के अतिरिक्त इसका निर्माण कृत्रिम संश्लेषण पद्धतिमे (Synthetic Camphor) भी किया जाता है। नैसर्गिक साधनोमे पहले यह मुख्यत सिन्नामोमुम् प्रजातिकी विभिन्न जाति (Species)के वृक्षोसे प्राप्त किया जाता था, जिनका आयात उपरोक्त देशोसे होता है। सिन्नामोमुम् प्रजातिके अतिरिक्त अव यह लेविआटी फैमिलीकी 'कर्पूरतुलसी' नामक क्षुद्र वनस्पति (**Ocimum kiliman-oscharicum**) मे भी प्राप्त किया जाता है। भारतवर्षके कतिपय स्थानोमे इसकी खेतीका भी प्रयास किया गया है।

वर्णन—कपूर एक प्रकारके उत्पत् तेल या गोदका सान्द्रभाग (Stearoptene) है, जिसे अधुना दारचीनी जातीय कतिपय वृक्षो, विशेषकर **सिन्नामोमुम् काम्फोरा (Cinnamomum camphora** Nees)से निकाला जाता है। यह मझोले कदका सदावहार पेड है, जो चीन, जापान, कोचीन और फारमूसामे होता है। अव इसके पेड हिंदुस्तानमे भी देहरादून, नीलगिरि, कलकत्ता और सहारनपुरके कपनी वागोमे लगाये गये है, यद्यपि इनमे कर्पूर प्राप्त नही किया जाता। इस वृक्षकी छालको गोदनेसे एक प्रकारका दूध निकलता है जिसमे कपूर प्रस्तुत किया जाता है। कपूर बनानेकी साधारण विधि—इसकी पतली-पतली चैलियाँ तथा डालियाँ और जडोके टुकडे वद वरतनमे जिसमे कुछ दूरतक पानी भरा रहता है, इस ढगसे रखे जाते है कि उनका लगाव पानीसे नही रहता। वरतनके नीचे अग्नि जलाई जाती है। आँच लगनेमे लकडियोमेंसे कपूर उडकर ऊपरके ढक्कनमें जम जाता है। उन्हे पृथक्कर पुन ऊर्ध्वपातनकी विधिसे साफ कर लेते है। यही उल्लिखित कपूर है। यह वेरग सफेद, अर्धस्वच्छ, क्रिस्टली, वेडौल डलियो या छोटी चौकोर टिकियो अथवा चूर्णरूपसे भी पाया जाता है, जिसे 'कपूरका फूल-गुले काफूर (फ्लावर्स आफ कैम्फर)' कहते है। गध तीक्ष्ण भेदनीय और स्वाद किंचित् तिक्त एव कटु (तेज) होता है, जिससे अतमे ठढक प्रतीत होती है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ०.९९५ है। जलानेसे यह तुरन्त जल जाता है। साधारण उत्तापपर यह धीरे-धीरे उडता रहता है। परन्तु तीव्र उत्ताप देनेसे सम्यक् ऊर्ध्वपातित हो जाता है। विलेयता—एक भाग कपूर ७०० भाग पानीमें, एक भाग सुरासार (९०प्र० श०), चार भाग जैतून तेल, डेढ भाग तारपीन तेल और चौथाई भाग क्लोरोफॉर्ममे विलीन हो जाता है। ईथरमे यह अत्यत विलेय, किंतु क्षारोमें अविलेय होता है। तीव्र शुक्ताम्लमे भी यह विलेय होता है। द्रावण—३ भाग कपूर, १ भाग कार्वोलिकाम्ल तथा ३भाग कपूर उतना ही क्लोरलहाइड्रेटके साथ मिलाकर रगडनेसे द्रवीभूत हो जाता है। कपूरको जव पिपरमिंट (मेथोल), सत अजवायन (थाइमोल), फेनोल, नेफ्थोल, सैलोल, ब्युटल-क्लोरल या सैलीसिलिक एसिडमेंसे किसीके साथ मिला दिया जाता है तब वह द्रवीभूत हो जाता है। अर्थात् दोनो मिलकर द्रव बन जाते है।

भेद—यूनानी द्रव्यगुणमे इसके यह तीन भेद स्वीकार किये गये है। (१) रियाही—यह वृक्षसे आपसे आप निकलता और ललाई लिये सफेद होता है। यह सर्वोत्तम माना गया है। आयुर्वेदमे इसे भीमसेनी कपूर (भीमसेन कर्पूर—(स०), (वम्बई) वरास कपूर और अग्रेजीमे वोर्नियो कैम्फर (Borneo Camphor) कहते है। (२) कैसूरी—यह फारमूसा द्वीपका कपूर है। यह अत्यत सफेद, स्वच्छ, उज्ज्वल और परतदार होता है, और वृक्षके भीतरसे निकलता है। यह भी उत्तम समझा जाता है। अग्रेजीमे इसे फारमूसा कैम्फर (Formosa Camphor) कहते हैं।

(३) काफ़ूर मोती—यह वृक्षके पचागको क्वथित करनेसे प्राप्त होता है। अग्रेजीमे इसे ब्लूमिया कैम्फर (Blumea Camphor) कहते है। यह मटियाले रगका होता है।

कल्प तथा योग—माउल्काफूर, वरूद काफूरी, कुर्स काफ़ूर (काफूरी), कुर्स काफूर लूलुई, जुवारिश काफूर, मरहम काफ़ूर (काफूरी), रोगन कपूर, हब्ब जवाहर काफूरी और हब्ब काफ़ूर मरवारीदी।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष (इसके भीतर एक विलीन करनेवाला उष्णवीर्य भी है)। आयुर्वेद-मतसे भी शीतवीर्य (ध० नि०, कै० नि०) मतातरसे उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म—बाह्यरूपसे कपूर कोथप्रशमन, स्वापजनन और वेदनास्थापन है। किसी स्थानपर लगाने या मर्दन करनेसे प्रारम्भमे उत्तेजक और शोणितोत्क्लेशक प्रभाव करता है; किन्तु अंतमे ठडक पहुँचाता और सवेदनाको कम करता है। आतरिक उपयोगसे यह सौमनस्यजनन और हृदयबलदायक है, ज्वरको दूर करता है, आमाशयको बलप्रदान करता (दीपन) है, और वायुका उत्सर्ग करता, अन्त्रमे कब्ज पैदा करता, फुफ्फुसोपर कफोत्सारि और वातानाडियोपर आक्षेपहर कर्म करता तथा पसीना लाता है। इसका अत्यधिक प्रमाण में उपयोग नपुसकता उत्पन्न करता है।

उपयोग—कपूरको विविध स्नेहोमे हल करके कटिशूल, आमवात, पार्श्वशूल और फुफ्फुसशोथ आदिमे मर्दन करते है। कतिपय त्वग्रोगोमे उनकी तीक्ष्णता एव दाह मिटानेके लिए इसे उपयुक्त द्रव्योके साथ लगाते हैं। दन्तशूल-निवारणके लिये इसे पीडित दाँतपर रखकर दवा लेते है। मुखदौर्गन्ध्य निवारणके लिए पानके साथ या किसी उपयुक्त औषधिके साथ इसे खिलाते हैं। नासादौर्गन्ध्य तथा नकसीरको बन्द करनेके लिए इसे हरे धनियाँके रसमे घोलकर नाकमे टपकाते है, और कर्णशूलमे इसी प्रकार कानमे टपकाते है। अक्षिपाकमें एव नेत्रको शीतला-रोगसे सुरक्षित रखनेके लिये इसे सुरमा (अजन)के साथ उक्त रसमें घोलकर आश्च्योतन करते हैं। मुखपाकमे उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ इसका अवचूर्णन करते है। आनाह, रक्तज और पित्तज अतिसार तथा हैजामे इसको नाना भाँतिसे खिलाते है। रक्तज और पित्तज ज्वरो एव राजयक्ष्मामे भी इसे देते है। प्रसेक और प्रतिश्यायमे इसे सुँघाते और पुरानी खाँसीमे कफोत्सर्गके लिये खिलाते हैं। सौमनस्यजनन एव हृद्य होनेसे इसे हृदयदौर्बल्यमें देते हैं। कामावसादकर होनेसे सहवासेच्छाकी अधिकताको रोकनेके लिए इसे खिलाते है। सद्यो व्रणसे रक्तस्रुति बन्द करने और उष्ण व्रणोके सताप एव दाहको शमन करनेके लिए इसे मरहमोमे मिलाकर व्रणोपर लगाते है। यह ओजोल्लासकारी (मुफर्रेह रूह) है। अहितकर—शीत प्रकृति और कामशक्तिको अहितकर तथा अश्मरीकारक है। निवारण—कस्तूरी, अम्बर जुदबेदस्तर, गुलकद, सौसन-नरगिस-बनफशाका तेल आदि। प्रतिनिधि—सफेद वशलोचन और चंदन। मात्रा—२५० मि० ग्रा०से ० ४ ग्राम (१ रत्तीसे ३ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—कपूर कटु, तिक्त, मधुर, लघु, शीतवीर्य, हृद्य, मेध्य, पाचन, सुगन्धी, चक्षुष्य, लेखन, वाजीकर, रुचिकर तथा कफ, तृषा, मेदोरोग दाह, कण्ठरोग, कृमि और मुखका वैरस्य—मल और दुर्गन्धको दूर करनेवाला है (वा० सू० अ० ५, ध० नि०, रा० नि०; कै०, नि०)।

नव्य मत—कपूर वातहर, दीपन, पूतिहर, रक्तगत श्वेतकणोकी वृद्धि करनेवाला, कफघ्न, कासहर, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, दाहशामक, वाजीकर (अल्पमात्रामे), कामावसादक (बडी मात्रामे), स्तन्यनाशन, नाड्युत्तेजक, सकोच-विकासप्रतिबन्धक, हृदयोत्तेजक, हृदयसरक्षक, रक्तवाहिनी सकोचक और श्वासहर है। कपूरकी क्रिया मात्राके न्यूनाधिक्यानुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। साधारण औषधीय मात्रामे कपूर प्रारम्भमे स्वेदजनन, सार्वांगिक उत्तेजन, नाड्युत्तेजक, रक्ताभिसरणोत्तेजक और श्वासोच्छ्वासोत्तेजन कार्य करता है। पीछे उसके अवसादन, वेदनास्थापन और सकोचविकासप्रतिबन्धक गुण देखनेमे आते है। औषधीय मात्रासे अधिक मात्रामे कपूर दाहजनक और मादक विष है। कपूर मुँहमे रखनेसे लालास्राव अधिक होता है, उष्णता उत्पन्न होती है और कुछ समयके बाद मुँहकी श्लेष्मल त्वचामे सुन्नता आती है। कपूरके आमाशयमे जानेपर वहाँ उष्णता उत्पन्न होती है, तथा आमाशयकी श्लेष्मल त्वचाका

रक्तानुधावन बढता, आमाशयरस अधिक उत्पन्न होता है तथा अन्नका सडांद (पूतिभाव) कम होता, पेटमें वायु नही भरता और पाचन बढता है। कपूरका कुछ अश शरीरमे ज्यो-का-त्यो रहता है और कुछ अश शरीरगत शर्करामें मिल जाता है। कपूरसे शरीरकी उष्णता कम होती है। कपूर त्वचाके मार्गसे बाहर आता है और बाहर आते समय रक्तवाहिनियोका विकासन होना है तथा स्वेदग्रन्थियाँ उत्तेजित होती है। इन दो कारणोसे पसीना आता है और त्वचामे कपूरका वास आता है तथा वह शीतल मालूम होती है। कुछ भी रूपान्तर हुए विना कपूर फुफ्फुसद्वारा उत्सर्जित होता है तथा कफको पतला एव ढीला करता है। श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थानपर इसकी प्रबल उत्तेजक क्रिया होती है तथा कफ सरलतासे गिरने लगता है। स्वय हृदय एव हृदयगत नाडीकेन्द्रपर कपूरकी उत्तेजक क्रिया होती है, इसलिए हृदय अपना कार्य ठीक करने लगता है। इसमे रक्तवाहिनियोका सकोचन होता है और धमनीगत रक्तका दवाव पडता है, इसलिये नाडी भरी हुई और तीव्रतासे चलती है। अति उष्णता अथवा कुछ अन्य कारणोसे हृदयमें कुछ विकृति होती है वह कपूर देते रहनेसे उत्पन्न नही होती, इसलिये इसको हृदयसरक्षक कहा गया है। मस्तिष्क, सुषुम्ना और नाडियोपर इसकी क्रिया मद्यके समान होती है। नाडीतन्त्रके सब स्थानोपर इसकी प्रारम्भमें उत्तेजक और पीछे अवसादक (शामक) क्रिया होती है।

मात्रा—२५० मि० ग्रा० से ० ४ ग्राम (१-३ रत्ती) गोलीके रूपमें देना चाहिये।

•

(९९) कपूरकचरी।

फैमिली : जिजीबेरासे (Family Zingiberaceae)।

नाम—(हिं०, भा० बाजार) कपूरकचरी, (स०) शटी, पलाशी, (ब०) कपूरकचरी, (म०,गु०) कपूरकाचरी, (बं०) शटी, गधशटी, (क०) गधशठी, (प०) कचूर कचु, शेदूरी; (ता०) शिमैकिचिलिकू, (लै०) हेडीकिउम् स्पीकाटुम (**Hedychium spicatum** Ham ex Smith)।

वक्तव्य—विद्वद्वर आजमखाँकी रचनाओमें यह औषधि सदिग्ध हो गई है। 'रमूज आजम' में, जो उनकी प्रथम रचना है, वमन चिकित्सामें एक सामान्य-सा प्रयोग लिखा है जिसकी शब्दावली इस प्रकार है, "जरवाद कोफ्ता वेल्ता बकदर मूँग दरगुलाव हब्ब साजद व दो हब्ब वदेहद व अगर किफायत नकुनद बाद साअन्ते दो-सेह हब्ब दीगर देहद।" तथा 'अक्सीर आजम'में जो रमूजके बादकी रचना है, जरवादके स्थानमे कपूरकचरी है और 'करावादीन आजम'में जो अक्सीरसे भी पीछे बनाई है, यही कपूरकचरी लिखी है एव मुहीत आजम मे जो अतिम कृति है, लिखा है "कि नरकचूर जरवादका एक भेद है जिसको कपूरकचरी भी कहते है।" सुतरा कपूरकचरीके विषयमे उनके कथनानुसार निम्न मत स्थिर होते है—(१) जरवाद और कपूरकचरी अभिन्न है, (२) जरवादका एक भेद है और (३) नरकचूर और कपूरकचरी अभिन्न है, यद्यपि इन दोनोमें बडा भेद है। नरकचूर हलदीके समान होता है तथा कपूरकचरीके टुकडे होते है। स्वाद और गधमे भी इन दोनोमें बहुत अन्तर है।

उत्पत्तिस्थान—अनुष्ण हिमालय प्रदेश विशेषत कुमाऊँ, नेपाल आदि ५,०००से ७,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा चीन। भारतवर्षमे इसका आयात चीनसे सिंगापुर होकर होता है। देशी कपूरकचरीमे (ताजी होनेसे) सुगधि अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। इसकी कन्दाकार जडोके गोल-गोल कतरानुमा टुकडे बाजारोमे पसारियोके यहाँ मिलते है।

वर्णन—नरकचूरसे बडी और मोटी एक जड है जिसमे कपूर जैसी सुगन्ध आती है। इसे जमीनसे उखाड-उबालकर कतरा-कतरा सुखाकर रखते है जिसमे वायुविकार एव कीडा लगनेसे सुरक्षित रहे। छोटी और बडी भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। कपूरकचरीके सुन्दर क्षुप होते है। पत्तियाँ ३० सें० मी० (या १ फुट) तक लम्बी(या अधिक), रूपरेखामें आयताकार-भालाकार तथा चिकनी होती है। चौडाईमें वहुत भिन्नता पाई जाती है। पुष्पव्यूह विदण्डक (Spike) होता है, जो कभी-कभी ३० सें० मी० (या १२ इञ्च) तक लम्बा होता है, जिसपर सघन सफेद पुष्प होते है। सहपत्र या कोणपुष्पक बडे (१ – १॥ इच × ½ इच), रूपरेखामे आयताकार, कुण्ठिताग्र तथा हरे रगके होते है, जिनमे प्रत्येकके कोणमे १-१ पुष्प होता है। केशरसूत्र हलके लालरगके होते है। फल (Capsule) गोलाकार एव चिकना होता है। मूल जमीनमे अनुप्रस्थ दिशामे फैलता है और सुगन्धित होता है। औषध्यर्थ इन्ही (कन्दाकार मूलस्तभ)का सग्रह किया जाता है।

बाजारोमे मिलनेवाली देशी कपूरकचरीके गोल-गोल कतरानुमा तिरछे काटे हुए टुकडे होते है, जो व्यासमे १ २५ से० मी० (या १/२ इञ्च) तक होते है। वल्कलका भाग एव मध्यवस्तु स्पष्टतया पृथक्-पृथक् मालूम पडते है। वल्कल रक्तिमा लिए भूरेरगका होता है, जिसपर अनेक चिह्न (Scars) एव मुद्रिकाकार रेखाये मालूम पडती है। अन्तर्वस्तु सफेद रगका होता हे। वल्कलमे कही-कही सूत्राकार उपमूलोके अवशेप भी लगे होते है। कपूरकचरीमे कर्पूर जैसी उग्र सुगन्धि होती है तथा स्वादमे तिक्त सुगन्धित एव तीक्ष्ण होती है। चीनी कपूरकचरीके कतरे अपेक्षाकृत बडे तथा अधिक सफेद होते है। त्वचा भी हलके रगकी होती है और स्वादमे इनमें तीक्ष्णता भी भारतीय कपूरकचरीकी अपेक्षया कम पायी जाती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एव मिलावट—कभी-कभी कपूरकचरीकी कतिपय अन्य प्रजातियोके मूलका सग्रह भी कपूरकचरीके ही नामसे किया जाता हे। यथा (१) हेडीकिडम् कोरोनारिया (**Hedychium coronaria** Koen.), परतु यह असली कपूरकचरी नही है। (२) केम्फेरिया गलगल (**Kaempferia galangla** Linn)–इसे चद्रमूल कहते है। इसके क्षुप दक्षिणकी ओर वगीचोमे लगाये मिलते है। किन्तु ये असली कपूरकचरी नही है।

सग्रह एव सरक्षण—कपूरकचरीको अच्छी तरह मुखवद पात्रोमे अनार्द्र, शीतल स्थानोमे रखना चाहिए। सूर्यप्रकाशसे इसे वचाना चाहिये। वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

रासायनिक सगठन—कपूरकचरीकी जडमे राल (रेजिन), सुगधित तत्व, एक स्थिर तेल तथा स्टार्च, म्युसिलेज, ऐल्व्युमिन, सेलूलोज एव शर्करा प्रभृति तत्व पाये जाते हे। मात्रा–(चूर्ण) १से ३ग्राम (१–३ माशे) तक।

प्रकृति—यूनानी चिकित्साविदोने दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष) लिखा है। आयुर्वेदमतसे भी उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदय-मस्तिष्क-आमाशयबलदायक, अवरोधोद्घाटक, मन प्रसादकर, वाजीकर, शिश्नोच्छ्रायकारक, मूत्रार्तवजनन तथा शीतजन्य कास एव बालप्रवाहिका हर, वातानुलोमन, आमाशयगत वातविलयन और पाचन है। इसका चूर्ण मलनेसे सूजन उतरती है और वेदना शमन होती है। कीडा न लगे हुए इसके छोटे भेदको महीन पीस, पानीमे सान, मटरप्रमाणकी गोली बना १–२ गोली खिलानेसे तीव्र छर्दि बद हो जाती है। ६ ग्राम (६ माशे) कपूरकचरीका चूर्ण समप्रमाण खाँड मिला ठडे पानीसे फाँकनेसे दस्त बन्द हो जाते है। *मात्रा–४॥ ग्रामसे ६ ग्राम (माशा) तक (रुमूज आजम-अतिसार प्रकरण)।*

आयुर्वेदीय मत—कटु, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, ग्राही, लघु, तीक्ष्ण तथा थोडा उष्णवीर्य होती है एव यह मुखके मलको दूर करनेवाली शोथ, खाँसी, व्रण, श्वास, शूल, हिक्का और ग्रहबाधा इन सवको दूर करनेवाली है। (भा० प्र० कर्पूरादि वर्ग ९९-१००)। चरकोक्त (सू० अ०४) हिक्कानिग्रहण एव श्वासहर महाकषायोंमें (शटी नामसे) कपूरकचरी भी है।

नव्यमत—कपूरकचरी उष्ण, ग्राही, लघु, कटु, तिक्त, दीपन एव वातानुलोमक होती है। इसका उपयोग कास, श्वास, हिचकी, वमन, अपतन्त्रक, शूल एव व्रणमें किया जाता है। दतशूलमें इसके मजनसे लाभ होता है। इससे मुखकी दुर्गंधि दूर होती है। सिरपर लगानेके लिए प्रयुक्त तैलयोगोमे सुगन्ध हेतु भी कपूरकचरी डाली जाती है।

●

(१००) कबर।

फैमिली : कैप्पारीडासे (Family Capparidaceae)।

नाम—(हिं०) कवर, कब्र, बेर; (यू०) कैपरिस Kapparis (D 2 204), (अ०) अल्कबर (इ० वै०), कवर, कब्र, (फा०) कवर, (प०) कबार, बेर, (बम्ब०) कवर, (लै०) कैप्पारिस स्पीनोजा (Capparis spinosa L), (अ०) दी एडीबल् केपर या केपर प्लांट (The Edible Caper or Caper Plant)। (मूलत्वक्)—कश्र अस्लुल्कवर, (फा०) पोस्तबेख कवर।

वक्तव्य—अरवी 'कवर', फारसी 'कवर'से व्युत्पन्न है। लैटिन नाममे प्रजातिक नाम (Generic name) 'Capparis' इसके ग्रीक या यूनानी नाम 'Kapparis' पर आधारित है। जातीय नाम (Specific name) 'स्पीनोजा' उक्त वनस्पतिके कटकाकीर्ण होनेका परिचायक है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें उष्णप्रधान पश्चिम हिमालयकी घाटीसे पूरबकी ओर नेपाल तक तथा पजाब और सिंधमें वेतियाकी पथरीली घाटियोमे इसके क्षुप पाये जाते हैं। दक्षिण भारतमे दकन, कोकण एव पश्चिमी घाटमें भी होता है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे भी होता है।

वर्णन—यह ऊसर और ककरीली भूमिमे होनेवाली करीरकी तरहका अत्यत शाखायुक्त और प्रसरणशील तीक्ष्ण कटकाकीर्ण झाडी व गुल्म होता है जो श्वेताभ मृदु रोमावरणसे ढँका रहता है। शाखाये भूमिपर झुकी और फैली हुई होती हैं। पत्तियाँ वृत्ताकार अथवा चौडाई लिये हुए लट्वाकार २ ५से ५ से०मी० (१"–२") बडी होती हैं। फूल प्रारभमें हरे रगके कोप (कटोरी)से आवृत्त होता है और आकारमे छोटेसे जैतून या चनेके दानेके बराबर होता है, परतु खिलनेपर यह सफेद हो जाता है और उसके बीचमे बालोकी तरह कुछ ततु होते हैं। बसुके मतसे ये ततु बैगनी रगके (पुकेशर) होते हैं। फूलके झड जानेपर इसमे बलूतके समान या उससे बडा लम्बा या अडाकार फल लगता है। अरबीमें इसको 'खियार कवर' कहते हैं। पकनेपर इसका गूदा लाल हो जाता है। यह जितना ही परिपक्व हो जाता है, उतना ही कडुआहट और कसायपन कम और मिठास अधिक होती जाती है। बीज पीले होते हैं, जड सफेद, बडी और लम्बी तथा कडुई, चरपरी और किंचित् क्षारीय होती है। इसकी छाल मोटी होती और सूख जानेके उपरात प्राय काष्ठसे भिन्न हो जाती है। इसे पोस्त बेख कवर कहते हैं। इसमे आडे रुख दरारे होती हैं। यह बाहरसे भूरी और भीतरसे सफेद होती हैं। इसका सर्वांग कडुआ होता है। उपर्युक्त वर्णनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवर सफेद फूल का करीर है।

उपयुक्त अग—यूनानी वैद्यकमे इसकी जड वा जडकी छाल (जो उनके मतसे इसका सर्वाधिक वीर्यवान् भाग है), फल, बीज और पुष्प।

रासायनिक सगठन—इसकी छालमे सेनेगिन (Senegen)के समान एक उदासीन तिक्त सत्व होता है। फूलकी कलियोमे कैप्रिक एसिड और एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है। इसके क्षुपसे एक उत्पत् तेल प्राप्त होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—कबर अवरोधोद्घाटक, लेखन, श्वयथुविलयन, कफोत्सारि एव कफछेदनीय है तथा दर्दोको शात करता (पीडाशामक) है, और कडुआहटके कारण कृमियोको नष्ट करता (कृमिहर), वायुका अनुलोमन और मूत्र तथा आर्तवका प्रवर्तन करता है। कबरके फल दीपन, क्षुधाजनक, वातानुलोमन और सर है।

उपयोग—पक्षाघात, स्वाप, आमवात, गृध्रसी और वातरक्त जैसे कफ एवं वात रोगियोमें कबर उपयोग किया जाता है। कवरकी जडकी छालको सिरकामे क्वाथ करके गंडूष करानेसे दंतशूल आराम होता है। यकृत्प्लीहाके अवरोधोद्घाटन, उदरज कृमिको नष्ट करने और मूत्र एव आर्तव-प्रवर्तनके लिए उपयुक्त औषधोके साथ इसका क्वाथ बनाकर पिलाते है। प्लीहाशोथ मिटानेके लिए कबरके फलको सिरकामें डालकर तैयार होनेपर खिलाते हैं और इसके मूल एव पत्रको पीसकर प्लीहाके ऊपर लेप करते है। मूल या पत्रको पीसकर कठमाला तथा अन्य शोथोको विलीन करने और व्यग तथा दद्रुको नष्ट करनेके लिए भी लेप लगाते है। उदरकृमिनाशनार्थ इसका पत्रस्वरस पिलाते है। श्लेष्मनि सारक होने से कास और श्वासमे इसका उपयोग करते है। यह मस्तिष्क सशोधक भी है। अहितकर–वस्ति और आमाशयको। निवारण–सिकजबीन, अनीसूँ और शुद्ध मधु। प्रतिनिधि–बीज, पत्र और पुष्प एक दूसरेके प्रतिनिधि है। मात्रा–५ ग्रामसे ९ ग्राम (५ माशेसे ९ माशे) तक।

नव्य मत—इसकी पुष्पकलिकाओंका उत्तम अचार बनता है और चिकित्सामे उपयोग होता है। ये वरुण या सेनेगाके समान कार्य करती है। कबर उष्ण, उत्तेजक, श्लेष्मघ्न और मूत्रजनन होता है। इसकी पुष्पकलिका और छालकी क्रिया वरुण और सेनेगाके बहुत समान होती है। इसकी उक्त क्रिया यद्यपि बिल्कुल समान नही, पर उससे मिलती-जुलती सैपोनिन नामक सत्वपर निर्भर करती है (ऐन्सली और डीमक)। यह अर्दित, जलोदर, आमवात और सधिवातमें गुणदायक है।

●

(१०१) कबाबचीनी।

फ़ैमिली पीपेरासे (Family· Piperaceae)।

नाम—(हिं०, बम्ब०, द०, उ०) कबाबचीनी, (हिं०) शीतलचीनी, शीतलमिर्च, (अ०) कबाबे सीनी, हब्बुल् उरूस, (फा०) कबाब, कबाबचीनी, (द०) दुमकी मिर्ची, दुमदार मिर्च, (व०) कबाबचीनी, (गु०) चणकबाब, (लैं०) कुबेबी फ्रुक्टुस (Cubebae Fructus), (अं०) क्यूबेब्स (Cubebs), टेल्ड पेपर (Tailed pepper)।

वक्तव्य—उपर्युक्त प्राय सभी नाम इसके उपयुक्त अग अर्थात् 'फल'के है। इन्द्रीपर इसका लेप करनेसे सुरतकर्मकी वृद्धि करनेसे अरबीमे इसको 'हब्बुल-उरूस = नवपरिणीतावधूफल' कहा गया है। अंग्रेजी क्युबेब सम्भवत. अरबी 'कबाब 'से व्युत्पन्न है। इसका व्यवसाय चीनी व्यापारियोके माध्यमसे होनेके कारण सम्भवत. इसका प्रसिद्ध नाम कबाबचीनी पडा। इसकी लताको लैटिनमे पीपेर कूबेबा **(Piper Cubeba** L f) या कूबेबा ऑफ्फीसिनालिस **(Cubeba officinalis** Miq.) कहते है, परन्तु डाक्टर ब्लूमके विचारसे यूरोपीय बाजारोमें इस जातिसे प्राप्त कबाबचीनी नही भेजी जाती। उनके मतसे व्यापारिक कबाबचीनी उसकी एक अन्य जातिके पौधे **(P Caninum** Rumph or **P, Cubeba** Roxb)से प्राप्त होती है। यह उसकी अपेक्षया छोटी और कम चरपरी होती है।

इतिहास—मध्यकालीन अरबी चिकित्साविशारदोने कबाबचीनीका समावेश चिकित्सामें किया। सुतग मसऊदीने, जो ईसवी सन् की दशवी शतीमें हुआ, कबाबचीनीको जावाकी उपज लिखा और 'सहाह' के रचयिताने जिसका निधन ईसवी सन् १००६ मे हुआ, इसे चीनकी एक विशेष औषधि लिखा। इब्नसीनाने भी उसीकालमें इसका उल्लेख किया है और लिखा है कि इसमे मजीठ (फुव्व) के गुणधर्म निहित है। कतिपय यूनानी वैद्यकीय

ग्रन्थोमे लिखा है—जो इसका यूनानी नाम 'माहीलियून' या 'करफियून लिखा है, वह वास्तविक नही है। राजनिघण्टुमे 'कंकोल' के नामसे कबाबचीनीके उल्लेखका सकेत मिलता है। प्रतीत होता है, कि इसकी समस्त सस्कृत सज्ञायें अभिनव ग्रहीत है। फार्माकोग्राफियाके लेखक लिखते है, कि मूत्रेन्द्रिय और जननेन्द्रियपर कबाबचीनीके जो प्रभाव होते है, यद्यपि प्राचीन आरब्य चिकित्साविदोको ज्ञात थे, तथापि यूरूपीय चिकित्सकोको ईसवी सन्‌की १८वी शतीके आरम्भमे उक्त औषधिका ज्ञान हुआ। सन् १८१६ ई०मे डॉ०वेल्वशने फ्रासमे एक पुस्तिका लिखी, जिसमे उक्त औषधि-विषयक प्रयोग प्रकाशित किया।

उत्पत्तिस्थान—सुमात्रा, जावा, मलाया, आदि टापू इसके आदि उत्पत्तिस्थान है। अधुना वहाँ इसकी खेती भी की जाती है। भारतवर्षमे भी कही-कही थोडी बहुत इसकी खेतीकी जाती है। वम्बई बाजारमे सिंगापुरसे कबाबचीनी आती है।

वर्णन—यह मिर्च, पीपल और पान आदिकी जातिकी एक लिपटनेवाली पराश्रयी झाडाके प्रसिद्ध सूखे फल है। फल प्रारम्भमे वृतशून्य होते है, परन्तु ज्यो-ज्यो वे परिपक्वावस्था को पहुँचते जाते है, त्यो-त्यो प्रत्येक फलकी डडी भी दृष्टिगोचर होती जाती है। अतत वे गुच्छोसे पृथक दृग्गोचर होने लगते है। जब फल पूर्ण वृद्धिको प्राप्त हो जाते है, पर अभी वे हरे एव कच्चे होते है, ता उन्हे गुच्छेसे तोड लेते है। कतिपय फलोकी डडियाँ भी उनमे ही लगी रहती है, जिससे उन्हे कभी-कभी 'दुमदार मिर्च' या 'दुमकी मिर्ची' और अग्रेजीमे 'टेल्ड पेपर' कहते है। इन फलोको धूपमे सूखाकर रख लेते है, जिससे हरा रग कालाई लिये भूरे रगमे परिणत हो जाता है। फलमे लगी हुई पतली-सी गोल या किंचित् चिपटी डडी स्वय फलाधारके सिकुडनेके कारण वन जाती है। इसलिए यद्यपि वह वास्तविक नही, तथापि देखनेमे वैसी प्रतीत होती है। फलके शीर्षपर फूलके कुछ ददानेदार अविशिष्टाश भी दृग्गोचर होते है। फल कालीमिर्चके वराबर गोल होता है। इसके वाह्य तल पर चुनटें वा झुर्रियाँ पायी जाती है, जो कच्चे फलोको सुखानेकी दशामे प्राय उत्पन्न हो जाती हैं। यह अन्दरसे सफेद होता है। इसे कुचलने से इसमेसे मसालेकी तरह विशिष्ट मनोरम एव तीक्ष्ण गध आती है। ये मिर्चसे कुछ मुलायम और खानेमे कडवे और चरपरे होते है। इनके खानेसे पीछे जीभ बहुत ठडी मालूम पडती है। इसमे दो-वर्ष तक वीर्य रहता है। स्वर्गवासी श्री जादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयने इसे आयुर्वेदका 'कङ्कोल' मानकर वर्णन किया है (दे० द्रव्यगुणविज्ञानम् उत्तरार्ध २रा खण्ड पृ० ३१७)। भेद—गजवादावर्द के मतसे चीनी, हबशी, हिन्दी भेदसे कबावचीनी तीन प्रकारकी होती है। सर्वोत्तम कवावचीनी वह है जो ताजी, सुगधित, चरपरी और चीनसे आयी हो। इससे बाद हवशी वा रूमी होती है। भारतीय कडवी तथा हीन कोटिकी होती है। परन्तु तेलके विचारसे यह विदेशी कवावचीनीसे किसी प्रकार कम नही है। असली-नकली की पहचान—नकली कवावचीनी साधारण तथा असलीसे कुछ वडी और रग एव सुगन्धमें इससे सर्वथा भिन्न होती है। उनमेंसे किसीकी डडी टेढी होती है और इससे अधिक कडवी होती है। तीव्र सल्फूरिक एसिडके स्पर्शसे इसका चूर्ण गहरा लाल हो जाय तो असली समझना चाहिये।

रासायनिक सगठन—इसमे एक प्रकारका लघु एव पिलाई लिये हरा या हलका हरापन लिये पीले रगका उडनशील तेल (रोगन कवाव **Oil of cubeb**) १० प्र०श० होता है जो स्वाद और गधमे कवावचीनीके समान होता है। इसके अतिरिक्त इसमे दो प्रकारकी रालें और क्युबेबिन नामका दानेदार सक्रिय तत्व होता है।

उपयुक्त अग— सम्यक् विकसित सूखे कच्चे फल (कवावचीनी) और फलोमे प्राप्त उडनशील तेल (रोगन कबाब.)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म—दोषोको पतला करनेवाली, प्रमाथी, श्वयथुविलयन, दीपन, दाँतों और मसूडोंको वलप्रद मूत्रजशोधक, मूत्रल, आर्तवजनन, वातानुलोमन, मुखदौर्गन्ध्यहर, शोणितोत्क्लेशक और ध्वजोच्छ्रायजनक है।

उपयोग—दीपतारल्यजनन एव प्रमाथी होनेके कारण यकृत्प्लीहाके अवरोधमे इसका उपयोग करते है। आर्तव एव मूत्र प्रवर्तनके लिए इसका क्वाथ और चूर्ण देते है (सूजाकमे)। मूत्र-मार्गके शोधनके लिए इसे अकेला या योगौपधके रूपमे प्रयुक्त करते है। यदि एक प्याला छाछमे ३ माशे कबावचीनी बारीक पीसकर छिडक दें और प्याले पर कपडा बाँधकर रातके समय ओसमे रखे और प्रात काल मिलाकर पिलायें। इसी प्रकार ४-५ दिन करें, तो मूत्रमार्गस्थ व्रणमे अत्यन्त उपकार हो। पथ्यमे विना नमकके दहीके साथ केवल भात खिलावें। यह दाँतो और मसूडोको मजबूत करती और मुखका दुर्गन्ध दूर करती है। इसलिए इसे दन्तमजनोमे डालते है। स्वरशुद्धिके लिए तथा दन्तशूल एव मुखपाक निवारणके लिए इसे मुखमे रखकर चवाते है। खाँसीके लिए इसे मधुमे मिलाकर चटाते है। इन्द्रियपर इसका लेप करनेसे यह शिश्नोत्थापन करती है। इसका लेप श्वयथुविलयन है। शरीरको सुवासित करनेके लिए इसे सुगन्धयोगविशेप (गालिया) मे मिलाकर उपयोग करते है। अहितकर–वस्तिरोगोको। निवारण–सफेद चन्दन, अर्कगुलाब और मस्तगी। प्रतिनिधि–दालचीनी और छोटी-बडी इलायची। मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशेसे ३ माशे), तेल, ५-२० बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—के लिए 'ककोल' देखे।

नव्य-मत—कबावचीनी कफघ्न, उत्तेजक, पूतिहर, मूत्रजनन, वातनाशक और दीपन है। इसकी क्रिया श्लेष्मल कलापर विशेपत मूत्रमार्ग और गुदा पर होती है। श्वासमार्गकी श्लेष्मल कलापर इसकी थोडी बहुत उत्तेजक क्रिया होती है। पुराने सूजाक और अर्शमे यह उत्तम औपध है। पुराने कफरोगमे कबावचीनी उत्तेजक कफघ्न क्रिया करती है। गलेकी शिथिलता और मुखपाकमे कबावचीनी मुँहमे रखनेको देते है। नाकके भीतरका कफ कम होनेके लिए कबावचीनीका नस्य देते है। वनौपधिदर्पणकारके अनुसार ग्रन्थान्तरमें 'सुरप्रिय' नामसे कबाव चीनीका उल्लेख आया है। उनके मतसे यह वातप्रशमन, श्लेष्मापहारक, अग्निवर्धक और मूत्रवृद्धिकर है तथा यह औपसर्गिक (पूय)मेह, शुक्रमेह, श्वेतप्रदर, अर्श और मूत्रकृच्छ्रका नाश करती है।

●

(१०२) कमरख।

फ़ैमिली : ऑक्ज़ेलिडासे (Family Oxalidaceae)

नाम—फल (हिं०) कमरख, कमरक (मख़्ज़न), कमरग, (द०) खमुरक (जखीरे अकवरशाही), कर्मल, (मीठा, कामरग, (स०) कर्मरङ्ग, धाराफल, (ब०) कामरागा, (गु०) कमरख, (म०) कर्मर, कमरल, (ते०) करमगग, (मल०) चतुरपुलि, (का०) धौरहुली, (लै०) आवेर्होआ काराम्बोला (**Averrhoa carambola** Linn) (अ०) चायनीज गूजबेरी (Chinese gooseberry), कारवाला एपल (Carambala apple)।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवत मलायाका आदि निवासी है। किसी-किसीका अनुमान है कि मलक्का या नई दुनियाँसे पुर्तगालनिवासी इसे यहाँ ले आये थे जो इसे 'करबोला और 'बिलिंबिनास' कहते है। खट्टे फलोके लिए भारतवर्पके समस्त उष्णप्रधान प्रदेशोमें इसे लगाते है। राजनिघंटुमें 'कर्मरङ्ग' नामसे इसका उल्लेख आया है।

वर्णन—यह मझोले कदके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो लम्बा और पाँच या छ फाँकोवाला होता है। कच्चा फल हरा होता है, किन्तु पकनेपर यह पीला हो जाता है। यह रसपूर्ण और अम्ल होता है। कच्चे फल खट्टे और पके खट-मिट्ठे होते है। पत्र हरफारेवडीके पत्र जैसे होते है। खट्टा और मीठा (वा खटमिट्ठा) भेदसे कमरकका

फल दो प्रकारका होता है। बिलिंबी (**Averrhoa bilimbi** Linn) नामक कमरख भी इसीकी एक अन्यतम जाति है जिसमें पत्तियाँ कम चौडी और फलके खण्ड गोलाई लिए होते हैं।

रासायनिक सगठन—फलके रसपूर्ण गूदेमें अधिक प्रमाणमे एसिड पोटैसियम ऑक्जेलेट पाया जाता है। बीजोंमें हर्मेलाइन नामक उपक्षार रहता है।

उपयुक्त अग—फल, मूल, पुष्प और पत्र।

कल्प—फलका साग, चटनी, अचार और शर्बत बनाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म—यह सग्राही है और पित्तकी तीक्ष्णता और तृष्णाको शमन करता है।

उपयोग—यह पित्तल प्रकृतिवालोंको सात्म्य है। यह बहुधा मेवाकी भाँति खाया जाता है। पित्तज वमन और अतिसारको बन्द करने तथा प्यासको बुझानेके लिए इसे खिलाते और इसका रस (३ तोले से ५ तोले तक) पिलाते है। अहितकर–शीतप्रकृतिको। निवारण–उष्ण ओषधियाँ और जुवारिशें (खाण्डव)। प्रतिनिधि–रेबास।

आयुर्वेदीय मत—पका हुआ कमरख मधुर, अम्ल, शीतवीर्य, बल्य, पुष्टिकारक, रोचक और कफ तथा वातको दूर करनेवाला है (रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्य मत—पका फल या उसका शर्बत शीतल रोचक और रक्तशुद्धिकर है। ज्वर और रक्तपित्तमें इनका प्रयोग करते है। कमरख प्रशीताद (स्कर्वी) रोगमें और रक्तार्शमें लाभकर है।

●

(१०३,१०४) कमल और नीलूफर

फैमिली : नीम्फीआसे (Family Nymphaeaceae)

नाम। कमल–(हिं०) कमल, कँवल, पुरइन, (अ०) कातिलुन्नहल (मधुमक्षिकानाशक), (म०, गु०) कमल, (स०) कमल, पद्म, (क०) पम्पोश, (व०) पद्म, (ता०) तामरै, (लै०) नेलुम्बो नूसीफेरा **Nelumbo nucifera** Gaertn (पर्याय *Nelumbium speciosum* Willd), (अ०) इजिप्शन या सेकरेड लोटस (Egyptian or Sacred lotus) बीज–(हिं०) कमलगट्टा, कँवलगट्टा, कमल-ककडी, (अ०) बाकिलाए नव्ती (या कुब्ती वा मिश्री), (स०) कमलाक्ष, कमलकर्कटी। (अ०) कॉप्टिक बीन (Coptic bean)।

नीलूफर

नाम—(हिं०) कूई, कोई, कोईं, (अ०) कर्नबुल्माऽ, (फा०) नीलू(को)फर, (स०) कुमुद, उत्पल, (व०) सुँदि, शालूक, (गु०) पोयणु, (म०) कमोद, (क०) पम्पोश, निलोफर, (लै०) नींम्फीआ लोटुस (**Nymphaea lotus** Linn), (अ०) वाटर लिली (Water lily)। (पुष्प)–(यू०) निम्फेआ (Nymphaia), (अ०) वर्द नीलूफ़र, (फा०) नीलूफर, गुल नीलूफर। (बीज)–(हिं०) बेरा, गगोल, (अ०) बज्रुल् नीलूफर, (फा०) तुख्म नीलूफर।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतीय जलाशयोमे उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त अमेरिका, कास्पिअन सागरके तटवर्ती प्रदेश, फारस, चीन और मिश्र देशमें इसका पौधा होता है। नील कमल केवल कश्मीरके उत्तरांश, तिब्बतके अतर्गत और चीनके किसी-किसी स्थानमें देख पडता है।

वर्णन—सूर्यविकाशी कमलके फूल सूर्योदयके समय खिलते हैं और सध्याको वद हो जाते हैं। श्वेत, रक्त और नील आदि भेदसे यह कई प्रकारका होता है। इसके बीजको कमलगट्टा कहते हैं। चन्द्रोदयविकाशी या रात्रि-विकाशी कुमुदके फूल सन्ध्या समयमे खिलते हैं और सूर्योदयके समय वद हो जाते हैं। कमलकी भाँति श्वेत, रक्त, नील और पीत आदि इसके भी अनेक भेद होते हैं। इनमें पीले फूलका दुर्लभ हैं और सफेद फूलका पुष्कल मिलता है। यूनानी वैद्यकमे मात्र नीलूफर शब्दसे कूई का पुष्प वह भी 'नीला फूल' विवक्षित होता है। नीलूफर शब्द सस्कृत 'नीलोत्पल' (नील, उत्पल = कूई)से व्युत्पन्न जान पडता है। इन भेदोंमें औपधार्थ सफेद कूईं सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है। बाजारमें नीलूफर नामसे प्राय इसीके पुष्प मिलते हैं। रात्रिविकाशी कूईके वीज छोटे, गोल, कच्ची हालतमे लाल और पकनेपर काले होते हैं। हमारे यहाँ इसे 'बेरा' कहते हैं।

रगभेदसे कूई के नाम—(१) सफेद (हिं०) सफेद कूई (कुमुदिनी), (लै०) नीम्फीआ आल्वा (**N alba** Linn), (अ०) ह्वाइट वाटर-लिली (White Water-lily), (२) लाल कूईं, (स०) हल्लक, कोका, रक्त कवल, (लै०) ना० रूब्रा या प्यूब्रीसेन्स (**N.rubra** Roxb or **pubescens**)। (३) नीला (हिं०) नाली कूईं (कुमुदिनी) (स०) नीलोत्पल, कोकावेली, (फा०) नीलूफर, (लै०) नी० स्टीलाटा या सीरुलेआ (**N stellata** Willd or **caerulea**), (अ०) ब्ल्यू वाटर लिली (Blue Water-lily)।

वक्तव्य—यूनानी हकीम सावफरिस्तुसने 'कुआमोस इजिप्टिओस (Kuamós aigyptios)' अर्थात् 'मिश्रकी सेम' नामसे इसका उल्लेख किया है। अरव और फारस निवासियोने नीलूफर शव्दके अतर्गत कई प्रकारके कमल और कूई का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे कमलको किसी प्रकार कूईंसे वढकर नही मानते थे। यही कारण है कि यूनानी वैद्यकमे केवल कूईं (नीलूफर) का ही इतना अधिक प्रयोग देखनेमें आता है। वास्तवमे कमल और कुमुदकी सब जातियाँ गुण-कर्ममे अधिकाशमे समान हैं। अत योगोमे जहाँ उनका उल्लेख हो वहाँ जो जाति प्राप्त हो सके उनसे काम चल सकता है।

कल्प तथा योग—अर्क नीलूफर, शर्बत नीलूफर।

नीलूफर—

प्रकृति—अन्याय अगोसे पुष्प श्रेष्ठ है। यह दूसरे दर्जेमे शीत एव तर है। जड उष्ण एव रूक्ष, बीज शीत एव रूक्ष हैं। भारतीय नीलूफर विदेशी से कम सर्द है।

गुण-कर्म—पुष्प शीतसग्राही, स्वप्नजनन, दाहप्रशमन, कामावसादकर, वीर्यपुष्टिकर दोपतारल्यजनन, स्निग्ध और मार्दवकर होता है। जड और वोज सक्षोभरहित रूक्षण और स्रावरोधक हैं।

उपयोग—शीतल और सग्राही होनेसे नीलूफर नीद लाता, उष्ण हृदय और मस्तिस्कको शक्ति देता, दाह शमन करता और उष्ण एव पित्तज शिर-शूलको नष्ट करता है। शीतल एव प्रभावज गुणके कारण यह स्वप्नदोप एव कामशक्तिको घटाता और वीर्यको पुष्ट करता है। जालीनूसके मतसे इसकी जड और बीजमे एक ऐसा वीर्य है जो सक्षोभरहित रूक्षता उत्पन्न करता है। इसीके कारण यह उदरमे कब्ज पैदा करता और द्रवोकी प्रवृत्ति एव शुक्रप्रमेहको वद करता है। इसका शर्वत जो दाहप्रशमन के लिये उपयोग किया जाता है इसमें थोडी-सी उष्णता भी है जिससे यह दोषोको तरल बनाता (मुलत्तिफ) है। तीव्र स्निग्ध एव मार्दवकर होनेसे यह कास और सीनेकी खुश्कीको दूर करता है। मसूरिकामे दाने निकल आनेके उपरात इसका (नीलूफरका) उपयोग गुणकारी है। अहितकर—वस्ति एव मैथुन शक्तिको और शीतके कारण मस्तिष्कको कमजोर करता है। निवारण—मिश्री और गाजर (मुरव्वा) और मैथुन शक्तिके लिये लुबूब और मधु। प्रतिनिधि—बनफशा और बेतसपत्र या सफेद खतमी। मात्रा—(पुष्प) १०॥ ग्राम या १०॥ माशे, (चूर्ण) २ तोले (क्वाथ में), जड ३ ५ ग्राम (३॥ माशे) और बीज १० ५ ग्राम (१०॥ माशे) तक।

कमलगट्टा—

प्रकृति—शीत एव तर ।

गुण-कर्म—पित्त एव रक्तोद्वेगसंशमन, तृट्प्रशमन, सग्राही और वीर्यपुष्टिकर ।

उपयोग—पित्तसशमन होनेके कारण कमलगट्टेकी गिरीको जलमे पीस-छानकर शिशुओके पिपासाधिक्य (उतास) रोगमे पिलाते है। ग्रीष्म ऋतुमें विषैले वायुसे सुरक्षित रखनेके लिए भी इसका शीरा निकालकर पिलाया जाता है। सग्राही होनेके कारण बच्चोके अतिसारमे इसका शीरा वा चूर्ण उपयोग करते है। सशमन होनेके कारण रक्तकी तीक्ष्णता एव रक्तोद्वेगमे उक्त विधिसे पिलाते है। वृष्य होनेके कारण शुक्रतारल्य एव शुक्रप्रमेहमे अन्य औषधियोके साथ इसका चूर्ण (सफूफ कवलगट्टा) खिलाते है। हकीम अजमलखॉ महोदयके अनुसार कमलगट्टेके अन्दरकी हरी पत्तीको अर्क गुलावमे घिसकर पिलानेसे हैजेकी असाध्यावस्थामे भी उपकार होता है।

मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—सब प्रकारके कमल और कूईके पुष्प रसमे कषाय, मधुर और किञ्चित् तिक्त, शीतवीर्य, स्निग्ध, पिच्छिल, आह्लादकारक, मूत्रविरजनीय तथा रक्तपित्त, दाह, तृषा, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छाका नाश करनेवाले है। बिस रक्त और पित्तको शान्त करनेवाला, विष्टम्भि, दुर्जर, रूक्ष, शीतवीर्य, अविदाहि और कफ तथा वायुको उत्पन्न करनेवाला है। कमल और कूईके कन्द रसमे मधुर और कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, पित्तका शमन करने-वाले और वायुका प्रकोप करनेवाले है। कमलगट्टा रसमें मधुर और किंचित् कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, कुछ विष्टम्भि, बलकारक, गुरु, कफकारक और रक्तपित्तका शमन करनेवाला है। कमलकेशर ग्राही और रक्तपित्त प्रशमन है। (च० सू० अ० ४, २५ व २७, सु० सू० अ० ३८, ४६)।

नव्य मत—कमलकी पखडियाँ शीतल, दाहप्रशमन, हृदयबल्य, हृदयसरक्षक, रक्तसग्राहक, मूत्रजनन, मूत्रविरजनीय और ग्राही है। इनकी क्रिया साधारणत डिजिटेलिसके समान स्वय हृदय और छोटी रक्तवाहिनियो पर होती है। इससे रक्तवाहिनियोका सकोचन होता है और हृदयकी गति शान्त और कम होती है। इनमें मूत्रजनन और ग्राही गुण कम है। कमलकेशर दाहप्रशमन और रक्तसग्राहक है। कमलगट्टा पौष्टिक, स्नेहन, ग्राही और रक्त-सग्राहक है। कमलकन्दका चूर्ण पौष्टिक स्नेहन, ग्राही और रक्तसंग्राहक है। उष्णदेशमे होनेवाले कमलकी अपेक्षया ईरान, कश्मीर आदि शीतल प्रदेशोमे होनेवाले कमल विशेष गुणदायक है। रक्तार्श, अत्यातर्व और दाह कम होनेके लिए कमलकेशरको मिश्री और मक्खनके साथ देते है। गर्भिणीके गर्भाशयसे रक्तस्राव होता हो तो वह कमलके फाँटसे तुरन्त बन्द होता है। रक्तार्श और रक्तप्रवाहिकामे कमलकन्दके चूर्णकी पेया देते है। इसके फूलोके फाण्टसे हृदयकी धडकन और नाडीकी गतिकी तीव्रता कम होती है। यह जीर्ण हृद्रोगमे उपयुक्त नही है। कमलका हृदय-सरक्षक धर्म ज्वरचिकित्सामे देखनेमे आता है। तीव्र सतत-ज्वरमे उष्णतासे हृदयपेशी खराब और शिथिल होती है। ऐसे ज्वरमें प्रारम्भसे ही कमल देते रहनेसे ये दोनो घातक क्रियाएँ नही होती। कमल देनेसे हृदयकी धडकन दूर होती है और हृदय अशक्त नही होता। कमलके फूल, चदन, रक्तचदन, खस, मुलेठी, नागरमोथा और मिश्रीका मन्दाग्निपर बनाया हुआ काढा ज्वरमें अति हितकारक है। इस काढेसे हृदयका सरक्षण होता है, पेशाब होता है, दाह कम होता और दस्त पतले होते हो तो बन्द होते है। कमलगट्टेकी पेयासे वमन, हिचकी और प्रदर आराम होता है।

(१०५) कमाजरियूस

फैमिली : लेबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(यू०) खमाइड्रूस Khamaidrus (D. 3 112.), (अ०) कमाद(ज)रियूस; (लै०) टेउक्रीउम् कामेड्रीस (**Teucrium chamaedrys** Linn.); (अं०) वॉल जर्मेण्डर (Wall Germander)। वक्तव्य—'खमाड्रुस' यूनानीसे 'कमाजरियूस' अरबी वनाया गया है। इस वनस्पतिका प्रजातिक (Generic) नाम 'Teucrium', यूनानी पौराणिक कथाओंमें ट्रायके प्रथम वादशाह 'Teucer' द्वारा इसका सर्वप्रथम औषधीय प्रयोग किये जानेपर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और एशियाके किसी भागका निवासी है। जहांतक ज्ञात है यह वाजारमें अप्राप्त है।

वर्णन—काण्ड ३०से ६० सें०मी० (१-२ फुट) ऊँचा, पत्र गहरा हरा, ऊपरकी ओर चमकीला, लट्वाकार (Ovate), १ २५से २ ५ सें० मी० (॥ से १ इच) लम्बा और ० ६२५ से० मी० से १ २५ से० मी० (१।४-१।२ इच) चौडा, आयताण्डाकार एव अधिककोणीय, दतुर और फानाकार (Wedge-shaped), अखण्ड आधारयुक्त, पौष्पिक पत्र लगभग अखण्ड, पुष्प वैगनी लिये-लाल, ऊर्ध्वोष्ठ गम्भीर द्विविभक्त (Bifid) और वाहर निकले हुए पुंकेसर (Projecting stamens) युक्त होता है। स्वादमें तिक्त और गधरहित होता है।

उपयुक्त अग—क्षुप (पचाग)।

रासायनिक सगठन—इसमे उत्पत् तेल (Essential oil) और एक तिक्त सत्व पाया जाता है।

प्रकृति—तृतीय कक्षाके मध्यमे उष्ण और तृतीय कक्षाके प्रथममें रूक्ष।

गुण-कर्म—वल्य, मूत्रल, स्वेदल और उत्तेजक। प्रधानकर्म—रज प्रवर्तक और प्लीहाशोथहर।

उपयोग—पूर्वकालमे वातरक्तकी औषधिके रूपमे यूरोपमे इसका उपयोग होता था तथा यह प्रसिद्ध सधिवातहर औषधि या 'पोर्टलैण्ड पाउडर'का एक उपादान था। विषमज्वर, कण्ठमाला और त्वग्रोगोंमें भी इसका उपयोग होता था। अहितकर–वस्ति, वृक्क और अन्त्रको। निवारण–वस्तिके लिए विही और शेपके लिए कतीरा या सर्दतर वस्तु। प्रतिनिधि–गाफिसकी जड, तुख्म हुम्माज वर्री, तुख्म शलगम वर्री, तज। मात्रा–चूर्णकी मात्रा ५ तोले तक और क्वाथमे २ तोले तक।

●

(१०६) कमाफ़ीतूस

फैमिली : लेबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(यू०) Khamaipitus (D. 3.165), (अ०) कमाफीतूस, (लै०) आजूगा कामेपिटिस **Ajuga chamaepitys** Schreber (**Teucrium chamaepitys**); (अं०) यूरोपियन ग्राउड पाइन (European Ground-pine)।

वक्तव्य—यूनानी 'खमाइपीतूस'से 'कमाफीतूस' अरबी वनाया गया है, जिसका धात्वर्थ 'भूमिज सनोवर अर्थात् 'सनोबरूल् अर्ज' है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप।

वर्णन—क्षुप, ग्रन्थिदार, ७.५ सें॰मी॰से १५ सें॰मी॰ (३-६ इंच) ऊँचा, अतिरोमश, गभीर त्रिखंडमय-पत्रयुक्त, तट रेखाकार लम्बा; पुष्प एकाकी पत्रकोणमें स्थित, पुष्पाभ्यन्तर कोष (Corolla) पीले, काले बिंदुयुक्त, नीचेके पत्र भालाकार, किंचित् विभक्त (Scarcely divided) स्वाद और गंध सुगन्धित एवं तारपीनवत्।

उपयुक्त अंग—पत्र।

कल्प—हिम या फांट, और चूर्ण (१-२ ग्राम)।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण तथा रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, मूत्रल, आर्तवप्रवर्तक, अवरोधोद्घाटक और संशोधनकर्ता है। अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ यह कामला और संधिवात (आमवात)की उत्तम औषधि है। स्त्री रोगोंमे यह गुणकारी है। अहितकर—फुफ्फुस और उष्ण प्रकृतिको। निवारण—पहलेके लिए शहद और अनीसून, दूसरेके लिए जुअरूर। प्रतिनिधि—स्वर्णा या सोनारी बूटी (Laggera aurita Schultz-Bip), कमाजरियूस, जीरा स्याह आदि।

मात्रा—३ ग्राम (३ माशे) तक।

•

(१०७) कमीला।

फॅमिली : एउफॉर्बिआसे (Family . Euphorbiaceae)

नाम—(हिं॰) कबीला, कमीला, रोरी (मिर्जापुर, पलामू, गढ़॰), रैनी (देहरादून), (अ॰) कबील (इ॰बै॰), किंबील (फा॰) कंबाला, (स॰) कम्पिल्लक, (बं॰) कमला गुंडि, (म॰) कपिला, (गु॰) कपीलो, (माल॰, प॰) देवसिन्दूर; (लैं॰) कमाला (Kamala); (अं॰) कमीला (Kameela), रॉटलेरा (Rottlera)।

वक्तव्य—इसके लैटिन, अंगरेजी, अरबी, फारसी एवं अन्य भारतीय नाम संस्कृत 'कम्पिल्लक'से व्युत्पन्न हैं और पक्व फलोंपर स्थित लालरज (Crimson powder)के लिए प्रयुक्त होते हैं जो इसका औषधोपयुक्त भाग है। वृक्षका लैटिन नाम मालोटुस फिलाप्पिनेन्सिस Mallotus philippinensis Muell-Arg. (पर्याय—*Rottlera tinctoria* Roxb.) है। अंग्रेजी में इसको मंकी-फेस-ट्री (The monkey-face tree) कहते हैं। इसके वृक्षको दूरसे देखनेसे सुरखई रंगका दिखाई देता है, इसीसे अंग्रेजी नाम रखा गया।

उत्पत्तिस्थान—इसके पेड़ एशिया तथा अरब और अबीसिनीया, आस्ट्रेलिया और भारतवर्षके प्रायः सभी गरम प्रांतोंमें पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक मझोले कदके सदाबहार पेड़के फलके ऊपरका रज है। इसके फल त्रिदल, आकारमें झड़-बेरीके समान और गुच्छोंमें लगते हैं। आरंभमें ये हरे रंगके होते हैं, पर बादको उनपर ललाई लिये चमकदार, घनावृत रोम और सूक्ष्म लाल रंगकी ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह देखनेमें लाल धूलसी जमी हुई प्रतीत होती है। पके फलके गात्रपर जो यह कुछ-कुछ बैंगनी लिये लाल या ईंटके रंगका दानेदार पदार्थ (रज) संचित होता है, इसी लाल रजको कमीला कहते हैं। यह निर्गंध तथा स्वादरहित होता और जलके ऊपर तैरता है। यह लाल रेणु फलके अतिरिक्त शाखाओंपर भी लगा रहता है जिसे संग्रह करनेवाले झाड़कर और अलोडितकर रखते हैं। नकली-असली कमीलेकी पहिचान—जलसे भीगी हुई उँगलीसे कबीलेको उठाकर सफेद कागजपर जोरसे लकीर खींचने या रगड़नेसे यदि वह मसृण वर्तिरूपसे परिणत हो जाय, अथवा उसपर उज्ज्वल पीले रंगका निशान हो जाय

और स्पर्श मृदु मालूम हो तो शुद्ध एवं उत्कृष्ट, अन्यथा मिश्रित वा अशुद्ध कबीला समझना चाहिये। गजनबादावर्द में कबीलेकी पहिचान इस प्रकार लिखी है–"शुद्ध हलका एव स्वादरहित होता और उसकी सुर्खीमें पिलाईकी झलक होती है। नकली भारी एव अत्यन्त लाल होता है। इसमे पिलाईका लेश भी नही होता और किसी-न-किसी प्रकार का स्वाद भी होता है।"

रासायनिक-सगठन—इसका प्रधान सत्व कम्पिल्लीन-राट्लरिन (Rottlerin) नामक एक क्रिस्टली द्रव्य है जो ललाई लिये पीला, पत्राकार परतके रूपमे पाया जाता है। यह ईथरमे तुरन्त विलीन हो जाता है। विलेयता–कबीला शीतल जलमे अविलेय, खौलते जलमे अशत विलेय, किन्तु क्षार, सुरासार एव ईथरमे सम्यक् विलेय होता है और इससे गहरे लाल रगका विलयन प्राप्त होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०)।

गुण-कर्म—उदरकृमिनाशन(Taenifuge) एव नि सारक, पिच्छिल (लजिज) द्रव और दूपित दोप विरेचनीय, एव क्षत और व्रण शोपण-रोपण।

उपयोग—दिल्लीके हकीम उदरकृमि, विशेपकर कद्दूदानेको नष्ट करके निकालनेके लिए कमीलाको दहीमे मिलाकर उपयोग करते है। इसके लिए यह परमोपयोगी औपध है। इससे समस्त कृमि मरकर दस्तके द्वारा निकल जाते है। अकेला उपयोग करनेके अतिरिक्त इसे अन्य औपध द्रव्योके साथ चूर्ण बनाकर भी खिलाते है। लखनऊके हकीम इसके आभ्यतरिक प्रयोगकी आज्ञा नही देते। तर खुजली, दद्रु और अन्य तर व्रणो और क्षतोमे तथा खालित्यमे इसे अकेला तेलमे मिलाकर (रोगन कमीला) लगाया जाता है या विना तेल मिलाये छिडका जाता है। यह व्रणोको बहुत जल्द सुखा देता है और बाह्य कृमियोको भी नष्ट करता है। अहितकर–अन्त्र और आमाशयिक द्वारको। निवारण–मस्तगी, कतीरा और अनीसूँ। प्रतिनिधि–वायविडग। मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कमीला कटु, उष्णवीर्य, रेचक तथा व्रण, गुल्म, उदर, मलावरोध, पेटका अफारा, कफ और कृमिका नाश करनेवाला है (च० सू० अ०२, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०)।

नव्य मत—सब प्रकारके उदरकृमिके लिए कमीला उत्तम औपध है। इससे कृमि मरकर विरेचन द्वारा निकल जाते है। कमीलेको तेलमे मिलाकर व्रण, अग्निदग्ध व्रण और कण्डूपर लगाते है। मात्रा–१ ५ ग्राम से ३ ग्राम (१॥-३ माशा), बालकोको ० ६ ग्राम (५ रत्ती)।

१०८ (कयपूती)।

फ़ैमिली : मोर्टासे (Family Myrtaceae)।

नाम—(हिं०) कय (कै) पूती, कायपुटी, कायाकुटी, (ब०) कायपुटी, (द०) काईपुती, काईबूटी, (गु०) कायपुती, (लै०) मेलालिउका लीउकाडेन्ड्रोन **Meloleuca leucadendron** Linn (पर्याय–मे०काजुपुटी *M Cajuputi Roxb*), (अ०) केजुपुट (Cajuput), कैजेपुट (Cajeput)। तेल–(हि०) कयपूतीका तेल, (लै०) केजुपुटी ओलेउम (Cajuputi Oleum), (अ०) केजुपुट ऑइल (Cajuput oil)।

वक्तव्य—'कयपूती' मलायन (कयु = पेड + पूती = सफेद) शब्दका किंचित् परिवर्तित रूप है।

इतिहास—सर्वप्रथम डॉ० रम्फीअस ने उक्त वृक्षके सुगधित गुणका और मलाया और जावावासियोने इसके पत्तोके उपयोगका उल्लेख करके इससे तेल निकालनेकी विधि बतलाई। सुतरा सन् १७२७ ई० में डचनिवासियोने

सर्वप्रथम व्यापार हेतु यह तेल बनाया। भारतीयोंको १८वी शतीके आरम्भमें इस तेलका ज्ञान हुआ, जबकि यूरपमे इसका व्यापार होने लगा।

उत्पत्तिस्थान—सुमात्रा, जावा, फिलिपाइन आदि पूर्वीय द्वीपसमूह। कभी-कभी भारतीय वगीचोमे इसे लगाते है।

वर्णन—एक सदाबहार विशाल वृक्ष जावा और मैनिला आदि स्थानोमे जिसकी ताजी पत्तियो एव टहनियो का तेल निकाला जाता है। यह तेल प्रथम कुछ-कुछ हरे रंगका किंतु दोबारा भभकेसे चुआनेपर यह रंगरहित या पाडुपीत वर्णका होता है। महक बहुत कड़ी होती है और जो बहुत साफ यूकेलिप्टस और कपूरकी तरह उडनेवाला और स्वादमें चरपरा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल (Essential oil) पाया जाता है, जिसका प्रधान उपादान केजुपटोल ४०-६० प्र० है जो युकेलिप्टोलके समान होता है।

उपयुक्त अंग—तैल (१-३ बिंदु)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उत्तेजक, आक्षेपहर, स्वेदल और कोथप्रतिबंधक। मलक्का द्वीपके निवासी, जहाँ इसके वृक्ष उत्पन्न होते है, वाह्याभ्यंतरिक सभी प्रकारके दर्दोंकी उपकारी औषधिकी भाँति बडी प्रशसा करते है। आमवातिक विकारो, दन्तशूल, वातवेदना, कण्ठगविनाल, (मोच) और नील (Bruises) के लिए द्रवौषधोमें इसका लाभकारी उपयोग हो सकता है। शूल (Colic), आक्षेप, आध्मान और हिक्का रोगोमें मूल्यवान्, आशुकारी उत्तेजक (Diffusible stimulant) औषधकी भाँति १-१० बिंदुकी मात्रामे चीनीके ऊपर डालकर इसका आन्तरिक उपयोग किया जा सकता है। उत्तेजक और कोथप्रतिबन्धक होनेसे वैसूचिकीय अतिसारमे, रक्तिमाकर (Rubefacient) होनेसे सोरिएसिस (Psoriasis), चिरकालज पिटिरिएसिस (Chronic pityriasis), मुहाँसा (Acne) और पामा (Eczema) रोगोमें तथा मसाजमालिशके लिए इसका उपयोग करते हैं। छाल उत्तेजक एव वल्य है।

●

(१०९) करंजुवा (कंजा)

फॅमिली : सीसॅल्पीनिआसे (Family : Caesalpiniaceae)

नाम—(हिं०) कंजा, सागरगोटा, (अ०, सु०) अकितमुकित, (अ०) हज्रुल्‌विलादत, हज्रुल्‌मासक, हज्रुल्‌उकाव, रक्कमेरियम्, हज्रुन्निसाऽ, (फा०) खाये इब्लीस, खुर्माए अबूजहल, (स०) पूतिकरञ्ज, पूतीक, कुवेराक्षी, लताकरञ्ज,, कण्टकिकरञ्ज, (म०) सागरगोटा, (गु०) काकच, काचका, (व) नाटाकरञ्ज, (लॅ०) सीसैल्पीनिया क्रीस्टा **Coesalpinia crista Flem** (पर्याय—*C bonducella* Flem), (अं०) बॉडक नट (Bonduc nut)।

वक्तव्य —"अकितमकित" (सुर०, अ०) को कानून (सचिका १, पृ० २६२) मे एक भारतीय औषधद्रव्य लिखा है। इब्नुल्‌बैतार (मचिका ६, पृ० १५१)ने इसे एक प्रकारका प्रस्तर लिखा है, जिसे 'हज्रुल्‌विलादत' और 'हज्रुलउकाव' भी कहते है। इसे 'बुन्दुक हिंदी' भी कहते है (Schlimmer)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण-प्रधान प्रदेश।

वर्णन—यह एक विस्तृत आरोही कँटीली झाडी की फली के बीज है। शाखाओ पर अकुशकी तरहके सरल कडे, पीले कांटे होते है। पत्र सिरिसके पत्रसे मिलते-जुलते, उनसे कुछ अधिक चौडे, अल्पाधिक रोमावृत, एक सीकपर

६-९ जोडे, पत्रयुगलके बीच तीक्ष्णाग्र कटक होता है। फूल बडे पीले वा गधकी रगके मजरीमें भरपूर लगे होते है। प्राय बरसातमे इसमें फूल और फलियाँ लगती हैं। फलियाँ २॥-३ अगुल चौडी और ६-७ अगुल लबी प्राय लबगोल होती हैं। इसके ऊपरका छिलका कडा और घन कटकावृत होता हैं। प्रत्येक फलीमे १ से २ तक बेरके बराबर प्राय लबोतरे गोल और १ २५ से० मी० से १ ८७ से० मी० (१।२ से ३।४ इच) व्यासके दाने होते है। ये हरियाली लिये सीसाके गहरे भूरे रगके, मसृण और अति कडे होते हैं। इन बीजोके छिलके बहुत कडे, मोटे, गहरे खाकी धुएँके रगके और भगुर होते है। इसके भीतर एक द्विदल पिलाई लिये सफेद गिरी और अत्यंत कडुवा बीज पत्र होता हैं। जड़ और जडकी छाल कडवी नही होती। पत्र अत्यंत तिक्त होते है।

रासायनिक सगठन—अभी तक इसमें किसी प्रकारके वीर्यवान् सत्व आदिकी विद्यमानता सिद्ध नही की जा सकी है। बीजोमें विपुल प्रमाणमे एक प्रकारका अप्रिय गधयुक्त, सफेदी लिये पीले रगका तेल (१४ प्र० २७०) होता हैं।

कल्प—पत्रस्वरस १-२ तोला, मूलचूर्ण १ ३ ग्राम से २ ग्राम (१०-१५ रत्ती)।

उपयुक्त अग—बीजकी गिरी (मग़ज तुख़्म करजुआ), पत्र और मूल। बीजको भून लेनेसे कडुवाहट किंचित् कम हो जाती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव पहले दर्जेमे रूक्ष।

गुण-कर्म—करजुवा उपशोषण (रूक्षण) और द्रवशोषणकर्ता हैं। यह वायुका उत्सर्ग करता और उदरज-कृमियोंको नष्ट करता है तथा रक्तप्रसादन एव सर, व आक्षेपहर और कोथप्रतिबधक, तथा विशेषकर नियतकालिक (नौबती) ज्वर प्रतिबधक है।

उपयोग—रूक्षण और द्रवशोषणकर्ता होनेके कारण जलोदर और मूत्रजवृद्धिमे करजुवाका लेप लगाते है अथवा इसका बारीक चूर्ण बनाकर मलते है। पीडित वृषणोपर इसका चूर्ण एरण्ड पत्रपर छिडककर बाँधते है। इसके अतिरिक्त खुजलीमे इसका बारीक चूर्ण मर्दन करते हैं। करजुवाकी आधी गिरी सात नग लौंगके साथ बारीक पीसकर वातिकशूलमे खिलाते है। शीतपूर्व ज्वरो और रक्तविकारजन्य रोगोको दूर करनेके लिए करजुवाके पत्र काली मिर्चके कुछ दानोके साथ जलमें घोट-छानकर पिलाते हैं। करजुआ, छिलका उतारा हुआ, पलासपापडा और बबूलका कोपल इनको समप्रमाणमे लेकर जलमें पीसकर गोलियाँ (हब्ब करंजुवा) बनाकर नियतकालिक ज्वरो विशेषकर चतुर्थक ज्वरका आवेग रोकनेके लिए खिलाते हैं। आक्षेपयुक्त रोगोमे विशेषकर कृच्छ्रश्वासमे इसका उपयोग करते हैं। यदि दो-तीन दाने करजुवाके बीजोको आगमें डाल दे और जब उनका बाहरी छिलका जल जाय तब उनकी गिरी निकालकर कृच्छ्रश्वासकी उग्रावस्थामे उपयोग करें तो वह तत्काल बन्द हो जाता है। करजुवाकी गिरीको तिलोके तेलमे जलानेके उपरात तेल छानकर रख लेते है और इसे दूषित व्रणोपर लगाते और खुजलीमे मर्दन करते है। **अहितकर**—रूक्षताकारक है। **निवारण**—कालीमिर्च और पीपल। **प्रतिनिधि**—करजुआके पत्र। **मात्रा**—० २५ ग्रामसे १ ग्राम (२ रत्तीसे १ माशा) तक। (मग्ज) १ ३ ग्राम से २ ६ ग्राम या १०-२० रत्ती। (मूलचूर्ण)—१ ३ ग्रामसे २ ग्राम या १०-१५ रत्ती। **पत्रस्वरस**—१ से २ तोला।

आयुर्वेदीय मत—करजुवाके पत्र विपाकमे कटु, लघु, उष्णवीर्य, विरेचक तथा वात, कफ और शोथका नाश करनेवाले है। करजुवाकी छाल रेचन है। फल यकृत् और प्लीहाके रोग तथा वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू०अ०१, सु०सू०अ० ३९, ४६, सोढ० नि०)।

नव्य मत—करजुवा उत्तम ज्वरघ्न है। शीतज्वरमे पत्रस्वरस हीगके साथ या बीजोका चूर्ण कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर देते है। सूतिकाज्वरमे करजुवा अनेक प्रकारसे लाभ पहुँचाता है। इससे ज्वर कम होता है, गर्भाशयका सकोचन होता हैं तथा पेटकी पीडा बन्द होती है, रक्त अच्छी तरह गिरता है और जख्म पडा हो तो वह शीघ्र भर आता है। सूतिकावस्थामे ज्वर न हो तो भी करजुआका उपयोग लाभकारी है। इसे ज्वरात-दौर्बल्य दूर करनेके लिए

देते हैं। यह उत्तम रक्तशोधक औषध है। [illegible] विषमज्वरप्रतिबन्धक है। बीजोंको दबाकर निकाला हुआ [illegible] लगाया जाता है। [illegible] इसे [illegible] और इसका लेप करते हैं। यकृत्के रोग, कुष्ठ और [illegible] में [illegible] है। [illegible] पूर्ण देते हैं। कुपचनमें बीज और [illegible] होता है।

•

(११०) करीर (न)।

फॅमिली : कैप्पारिडासी (Family . Capparidaceae)।

नाम—(हि०) करीर (न), (म०) [illegible]; (गु०) [illegible], (म०) करीर, मरुस्थ; (व्रज) टेंट, टेंटी, (बं०) करी; (पं०) [illegible]; (गु०) केर, केरडो; (मा०) केर, [illegible], (म०) नेपती; (सिंध) किरिड; (कच्छ) [illegible], (फा०) [illegible] (ले०) कैप्पारिस डेसीडुआ Capparis decidua (Forsk.) Edgew (पर्याय—Capp. aphylla Roxb.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—[illegible] कांटेदार गुल्म होते हैं, जो देखनेमें, [illegible] होते हैं। [illegible] इसमें पत्र नहीं होते। गुल्म [illegible] छोटे फूल लगते हैं। चैत-वैसाख में [illegible]। यह कुनैनी [illegible] उत्तम प्रतिनिधि [illegible] है। उपयुक्त अंग फूल और कच्चे फलों (टेंटी) [illegible] हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी [illegible] सेनेगिन (Senegen) के समान एक उदासीन तिक्त तत्त्व होता है। फल और [illegible] में [illegible] और एक ग्लूकोसाइड होता है, जिसे गंधकके तेजाबके साथ उबालने पर आइसो-[illegible] (Isodulcite) और क्वर्सेटिन (Quercetin) वत् एक प्रकारका रंजक पदार्थ—ये दो तत्त्व होते हैं।

प्रकृति—[illegible], मतान्तरसे [illegible]। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कड़वा, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, मृदुविरेचक, भेदन, मन प्रसादकर तथा आनंद-दायक है। हृदयको शक्ति देना, बुद्धि एवं चेतनाशक्ति (हवास)को बलवती बनाता और कामेच्छाको पुष्ट करता है तथा कफ, वात, फोड़ा, फुन्सी, सूजन, अर्श, विष, धड़कन, वहशत और विशेषत. उन्मादका नाश करता है। उसका फूल कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। इसके फल (टेंटी)को पकाकर खाते हैं और पानी, नमक और रोगन-स्याहमें इसका अचार भी डालते हैं। यह पक्षाघातसे आक्रांत रोगीके लिए गुणदायक है। मीठे तेलके साथ इसकी नस्य नासूरको लाभ पहुँचाती है (म०, मु०, बु० मु०, ना० मु०, ता० श०)।

आयुर्वेदीय मत—करीर रसमें तिक्त और कटु, लघु, उष्णवीर्य, भेदन तथा अर्श, कफ, वात, आमशोथ, कृमि और व्रणका नाश करनेवाला है। करीरके फूल कटुविपाक, वातहर और मल-मूत्रको साफ करनेवाले हैं। करीरके फल (टेंटी) मधुर (पाकावस्थामें), कटु और तिक्त (आमावस्थामें) तथा कफ और वातका नाश करनेवाले हैं (सु० सू० अ० ४६, कै० नि०)।

नव्यमत—'करील' और 'करेरुआ' दोनों प्रतिक्षोभक (Counter-irritant) रूपमें काममें आते हैं। इन दोनोंके कच्चे फलोंका कालीमिर्च, राई और तेल मिलाकर डाला हुआ अचार काममें आता है। छाल, कडुआ,

मृदुरेचक और प्रदाहजन्य शोथोके लिए उपयोगी है। आमवात, वातरक्त, कास, जलोदर और अगघात एव अर्धांगवात (Palsy) प्रभृति रोगोमे इसकी जडकी छालका चूर्ण वा शीतकषाय काममे आता है। दुष्ट व्रणोपर इसके चूर्णका बहि प्रयोग होता है। फोडे-फुन्सी एव सन्धि रोगोपर इसके क्षुपके शीत कषायका वाह्य और विषके अगदस्वरूप अन्त-प्रयोग होता है। कविराजगण यक्ष्मा, हृद्रोग, उदरशूल, क्षुधानाश और स्कर्वीमे इसका व्यवहार करते है। इसके फूल और बन्द कलियोंका अचार पडता है या इनकी चटनी काममे आती है। कानके कीडोको नष्ट करनेके लिए इसके ताजे पौधोका रस कानमे डालते है। यह 'सेनेगा' का उत्कृष्ट प्रतिनिधि भी है। पजाबमे इसके पिसे हुए पल्लव एव कोमल पत्तोका उपयोग छाला डालनेके लिये करते है।

●

(१११) करेमू

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) करमी, करेमू, कलमीसाग, नाडी, (स०) कलम्वी, कलम्बुका, शाकनाडिका, नालिका, (ब०) कलमीसाक, (बम्ब०,म०) नाली चीभाजी, नाडीसाक, (प०) नाली, नाडी; (लै०) ईपोमेआ आक्वाटिका **Ipomoea aquatica** Forsk (पर्याय–*I reptans* (L.) Pers)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके सभी भागोमे तालावोमे इसकी स्वयजात लताएँ होती है।

वर्णन—इसकी लताएँ जलाशयोमे पानीके ऊपर या उनके पास जमीनपर फैली हुई पाई जाती है। पत्तियाँ प्रासवत्से अण्डाकार-आयताकर या लट्वाकार कुन्तवत् या हृद्वत्, ३ ७५ सें० मी०से १५ सें० मी० (१ ५ इचसे ६ इच) लम्बो और लम्बे वृन्तवाली होती है। पुष्प सफेद या हलके जामुनी रगके (कण्ठमे गाढे जामुनी रगके) होते है। इसकी नवीन शाखाओका शाक होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, शाखा (नाल), पत्र और कद (पचाग)।

प्रकृति—शीतल एव स्निग्ध (सर्द एवं तर), मतातरसे गरम व रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—थोडा एव अनुपयोगी आहाररसोत्पादक, श्वयथुविलयन, वातविलयन, वातानुलोमन, मन्दाग्निकारक, सौदावी, दूषित दोष उत्पन्न करनेवाला तथा भारतीयोके आहारमे समाविष्ट है। इसका स्वरस निचोडकर पिलानेसे आमाशयशोथ दूर होता है, शरीरकी उष्णता शान्त होती है तथा कफजकास मिटता है और मृदु विरेचन भी होता है। सखिया और अफीमका विष उतारनेके लिए इसका स्वरस मिलाकर वमन कराते है। बोए हुएकी अपेक्षया स्वयजात पौधेमे विषनिवारणकी शक्ति अधिक होती है। इसके पत्तोको पकाकर रोटीके साथ खानेसे अफीमका नशा उतरता है। इसके सुखाये हुए उसारे (Dry extract)के चूर्णकी फकी देनेसे दस्त आते है। इसके पत्ते और टहनियोके टुकडे सुखाकर रख छोडते है और खटाईके साथ उबालकर चावलके साथ खाते है। उन्हे रातमे उबालकर रख देवे और प्रात काल रोटी खानेसे पूर्व खावे तो स्त्रियोकी वातनाडी विषयक सामान्य-रोगजनित दुर्बलता दूर होती है और स्तनों मे दूध की वृद्धि होती है। इसकी कोमल शाखा, पत्र और जड पकाकर रोटी और चावलसे खाये जाते है। अहितकर–मन्दाग्निकारक और आध्मानकारक है। निवारण–नमक और खटाई आदि। प्रतिनिधि–कतिपय गुणोमे बथुआका साग। मात्रा–बलाबल अनुसार।

आयुर्वेदीय मत—नाडी शाक दो प्रकारका होता है—कडुआ और मीठा। इनमें मीठा करेमू मधुर, शीत-वीर्य, पिच्छिल और विष्टम्भकारक तथा कफवातजनक है, तथा कडुआ रक्तपित्त, कृमि और कुष्टका नाश करता है।

इसके सूखे पत्ते ज्वरदोषनाशक विशेषत पित्तज्वर, कफज्वर (तथा आमवात) विनाशक है। इसका रस भी पित्तका हरण करनेवाला, रुचिकारक और व्यञ्जनयोगकारक है। (सु० सू० अ० ४६, रा० नि०)। राजवल्लभके अनुसार यह मधुर, कषाय, भारी, स्तन्यवर्धक, शुक्रजनक और कफकारक है।

नव्यमत—इसकी कोमल कलियों और पत्तियोका साग बनाया जाता है। यह साग गर्मी तथा खूनके दस्तोको बन्द करता, वायुकी वृद्धि करता और पौष्टिक है। इसकी कलियाँ ज्वरनिवारक है। ज्वरजनित सन्निपात और मूर्च्छामें इसकी डडी और पत्ते उपयोगी होते है। वात, एव सार्वदैहिक दौर्बल्यसे पीडित ललनाओके लिए इसका पचाग गुणकारी है। इसकी पत्ती पीसकर फोडेपर बाँधनेसे वह पक जाता है। यह वामक, विरेचक, और अफीम तथा सखियाके विषका अगद है। आत्महत्याके लिए यदि किसीने अधिक मात्रामें अफीम खा लिया हो तो उसे आधेसे एक छटाँक करेमूका रस पिलानेसे अफीमका विष दूर हो जाता है और उसके प्राणनाशकी आशंका जाती रहती है।

•

(११२) करेला

फैमिली . कूकूरबीटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) करेला, करैला, (स०) कारवेल्लक, कारवल्ली, (ब०) उच्छे, (म०) कारले, (गु०) कारेला, (क०) करेल; (ता०) पार्क, पाकल, (तें०) काकर, (मल०) पेरुपावल, (लै०) मोमॉर्डिका कारान्टिआ Momordica charantia Linn) (अ०) कारिल्ला फ्रूट (Carilla Fruit)।

वक्तव्य—लेटिन नाम करेलाकी बेलका है।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक आरोही लताका प्रसिद्ध फल है जो लबगोल वा अडाकार होता है। इसके छिलकेपर उभडे हुए लबे-लबे और छोटे दाने या अर्बुद होते है या धारियाँ पडी होती है। बीज अडाकार, चिपटा कद्दू या तुरईके बीजकी तरह और खुरदरा होता है। कच्चा फल हरे रगका और अत्यन्त कडुवा (तिक्त) पर रुचिकारी होता है। पकनेपर यह पीला और भीतरसे लाल हो जाता है और इसकी कडुवाहट कम हो जाती है। इसका सर्वांग तिक्त होता है। इसका एक सफेद भेद भी है जो ४५ सें० मी० (आध गज) तक लम्बा होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक जलविलेय तिक्त ग्ल्यूकोसाइड होता है, जो ईथरमे अविलेय होता है तथा एक प्रकारका पीलेरगका अम्ल, राल और ३प्र० श० भस्म इत्यादि।

उपयुक्त अग—फल और पत्र।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्ण-वीर्य (कै० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—करेला अधिकतर तरकारीकी तरह खाया जाता है। यह वातानुलोमन, वाजीकर, नाडीबलदायक, दीपन, सर, कफछेदन, उदरकृमिनाशन, श्वयथुविलयन अश्मरीछेदक और श्लेष्मप्रकृति वालो के लिए गुणकारी है। कफज रोगो, जैसे–आमवात, शीतल वातरक्त, जलोदर, प्लीहाशोथ, उदरकृमि तथा कास एव श्वासमें खिलानेसे यह लाभ करता है। बालकोके फुफ्फुसशोथ मे इसका पत्रस्वरस पिलानेसे उपकार होता है और इससे दस्त आते है। कठशोथपर करेलेको सिरकामें पीसकर लेप करनेसे उपकार होता है। अहितकर–रूक्षताकारक है। निवारण–काली मिर्च और पीपल। मात्रा–पत्रस्वरस ११ ६ से २३ २५ ग्राम (१ तोला से २ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—करेला तिक्त, कुछ कटु, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, भेदन, अवृष्य तथा अरुचि, पित्त, रक्तविकार, कफ, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, श्वास, कास, प्रमेह, अश्मरी, कुष्ट और ज्वरका नाश करनेवाला है। जगली करेला—तिक्त, दीपन, हृद्य तथा ज्वर, अर्श, कृमि, कास, कफ और वायुका नाश करनेवाला है (च०वि०अ० ८; सु० सू० अ० ४६, कै० नि०)। सुश्रुत ने चि० १ अ० मे करेलेकी बेलके काढेद्वारा सिद्ध घृतको वातरक्तमें गुणकारक बतलाया है। चक्रदत्तने ज्वर रोगीको करेलेका शाक देनेको लिखा है। इनके मतसे करेलेके पत्तोका स्वरस हलदीका चूर्ण मिलाकर पीने से रोमान्तिका, ज्वर, विस्फोट और मसूरिका शान्त होती है तथा करेलेकी जड पीस कर लेप करनेसे अत प्रविष्ट योनि वहि निसृत होती है। भावप्रकाशके अनुसार करेलेकी लताका काढा, तिलतैलका प्रक्षेप देकर पीनेसे विसूचिका रोग शान्त होता है।

नव्य-मत—करेला कृमिघ्न, मूत्रजनन, स्तन्यजनन, आर्तवजनन और वायुनाशक है। विरेचनके लिए तथा तिक्त भेषजसुगंधिकरणार्थ इसका व्यवहार करते है। करेलेका फल दीपन, उत्तेजक, बल्य, पित्तनाशक, मृदुरेचक, कृमिघ्न और रसायन है। फलमज्जा, पत्र एव पत्रस्वरस और बीज कृमिघ्न है। पत्र कृमिघ्न, स्तन्यजनन और पित्तनाशक है और जड सग्राही है। पचाग त्वग्रोगनाशक है। रुचिदायक होनेसे इसके फलकी तरकारी खाई जाती है। फल और पत्तेका व्यवहार कृमिघ्नरूपसे किया जाता है। कुष्ठमे इसका बहि प्रयोग होता है। वातरक्त, आमवात तथा यकृत् और प्लीहाके रोगोमे फल गुणदायक है। यह रक्तविकारनाशक, मद (मालिन्खोलिया)नाशक और विकृत दोषसशोधक माना जाता है। कुष्ठ, अर्श, कामला आदि रोगोमे फल और पत्ती दोनोका आभ्यन्तररूप से उपयोग होता है। मुखपाकमे एक चम्मच भर इसके फलका स्वरस थोडी खडी मिट्टी और चीनी मिलाकर दिया जाता है। आर्तवजनन होनेसे कृच्छ्रार्तव, रजोरोध या विलम्बित आर्तवमे यह सेवनीय है। अधिक मात्रामे सेवन करनेसे गर्भस्राव हो जाता है। प्रसवोत्तर इसका काढा पीनेसे गर्भाशयद्वार सकुचित होता और स्तन्यमे वृद्धि होती है। शिरकी सपूय छोटी-छोटी फुन्सियोमे इसका सिरपर लेप करते हैं। दग्ध एव विस्फोट आदिमे इसका बाह्य प्रयोग करते है। कष्टदायक हस्त–पाद शोथमे इसे पानीमें पीसकर लेप करते है। कृमिके लिए भी यह गुणदायक है। दीपन और वातानुलोमन होनेसे विषमज्वर, ग्रहणी, अग्निमाद्य, अजीर्ण और अतिसारमे चीतेकी जडके साथ इसका उपयोग करते है। पित्तके रोगोमे वमन और विरेचनके लिए पावभर करेलेकी पत्तीका रस अकेला या सुगन्धद्रव्योके योगसे दिया जाता हैं। पाद-तलदाहमे इसकी पत्तीका रस मर्दन करते और रतौंधीमे उसमें कालीमिर्च घिसकर अक्षिगुहाके चारो ओर लेप करते हैं। बालकोके उत्क्लेशमे इसकी पत्तीका स्वरस आधा तोला थोडी हल्दीके चूर्णके साथ दिया जाता है। इससे वमन होकर आमाशय शुद्ध हो जाता है। शिशुओके यकृत रोगोमें करेलेके पत्तोका स्वरस गोरखइमलीके पत्तोका रस और जामुनकी ताजी छालका रस एकत्र मिलाकर उसमे वच घिसकर सप्ताहपर्यन्त सेवन कराते है। इसकी समग्र बेल, दालचीनी, पीपल, चावल और तुवरकतैल द्वारा प्रस्तुत अनुपेल चर्मरोग विशेष (Psoriasis), कण्डू, दुष्टक्षत तथा अन्य चर्मरोगोमे गुणकारी सिद्ध होता है। कुष्ठ एव अन्य सक्रमणशील व्रणोपर इसकी लताके चूर्णका अवधूलन या अवचूर्णन कहते है। इसकी जड सकोचक है तथा रक्तार्शको दूर करती है।

●

(११३) करौंदा

फ़ेमिली: आपोसिनासे (Family Apocynaceae)।

नाम—(हिं०) करोंदा, करौंदा, करोना, (स०) करमर्दक, (ले०) कारीस्सा काराडास **Carissa carandas** Linn), (अ०) जैस्मिन-फ्लावर्ड कैरिसा (Jasmine-flowered Carissa)।

उत्पत्तिस्थान—यह सर्वत्र भारतवर्पमे शुष्क, बलुई और पथरीली भूमि में उपजता है।

वर्णन—यह एक बडे कटीले झाडका प्रसिद्ध फल है जो १ २५ सें० मी० से २ ५ सें० मी० (आध इच से १ इच) लवा, गोल, छोटे वेरके वरावर और वहुत सुन्दर होता है। कच्चा फल हरा, खट्टा और कसैला होता है। यह जितना बडा होता जाता है, उतना ही इसका खट्टापन और कसैलापन कम होता जाता है और मिठास वढने लगती है। यह आधा लाल हो जाता है। जव भलीभाँति पक जाता है तव वह काला वा नीलगूं और खटमिट्ठा हो जाता है। इसके भीतर २-३ या इससे अधिक वीज होते है। यह सफेद और किंचित् चौडे होते है। यह करौदाका उद्यानज भेद है। जगली करौंदा या करौदी अर्थात् करमर्दिका को लेटिनमे कारीस्सा ओपाका या स्पानारुम् (**Carissa opaca** Stapf oı **C spinarum DC**) कहते है। सथाल लोग इसे कनवत या करवत और मीरजापुरके जगलोमे करवन् कहते है।

रासायनिक सगठन—इसमे सैलिसिलिक एसिड और उपक्षार पाया जाता है।

उपयुक्त अग—फल।

प्रकृति—सग्राही वीर्यके साथ शीत एव तर।

गुण-कर्म— कच्चा और पका करौदा सग्राही और उष्ण आमाशयवलदायक है। पका करौदा पित्तकी अधिकता एव प्यासको शान्त करता है।

उपयोग—कच्चे करौदाको छीलकर तरकारी आदिकी भाँति उपयोग करते है। इसके अतिरिक्त इसको मुरव्वा और अचार वनाकर खाते है। यह रक्तपित्त प्रकृतिवालोको सात्म्य है और उनके आमाशयको शक्ति देता (दीपन) है। पका करौदा पित्तसशमन होता है और प्यास वुझाता है। इससे खूव भूख लगती है और पित्तके दस्त वन्द हो जाते है। इसका प्रचुर उपयोग कामशक्तिको अहितकर है। अहितकर—आनाहकारक, चिरपाकी और कफकारक है। निवारण—नमक, शक्कर और कालीमिर्च।

आयुर्वेदीय मत—करौदा (कच्चा) खट्टा, उष्णवीर्य, भारी, प्यासको दूर करनेवाला, रुचिकारक, अग्निदीपन, पित्तकारक, कफकारक, वातनिवारक, ग्राही और रक्तपित्तकारक है। करौदा (पका) मधुर, शीतवीर्य रक्तपित्तनाशक, पित्त और वायुनाशक, शुक्रदोपनाशक, सर्वप्रमेहनाशक, शोथघ्न, त्रिदोपनाशक, अरुचिनाशक (रुचिकारक) और विषनाशक है। जड कृमिनाशक और दस्तावर (सर) है (सू०सू०अ० ४६, ध०नि०, रा०नि०, कै०नि०, शो०नि० भा०प्र०,)।

नव्य मत—करौदेका कच्चा फल अम्ल, सग्राही (मलरोधक) और स्कर्वीहर है। पका शीतल, पित्तनाशक, रक्तशोधक, दीपन, स्कर्वीहर, शैत्यजनक और पाचक है। खट-मीठा फल पेशावकी रुकावटको या बूँद-बूँद पेशाव आने की शिकायतको दूर करता है। कच्चे फलका उत्तम मुरव्वा, अचार और चटनी भी वनती है और पकनेपर यह उत्कृष्ट अम्लफल है। यूरोपवासी इसकी जेली भी प्रस्तुत करते है जो सर्वथा लाल किशमिश द्वारा बनी जेलीके समान होती है। पित्तोल्वणतामे शर्करा और इलायची मिला पके करौदेका स्वरस शीतजनक पेय है, और यह पित्तका निवारण करता है। ज्वरोमे इसकी पत्तियोका काढा शीतजनक है और इसे लगातार आनेवाले ज्वरोमे देते है। पत्तियोके रसमें मधु मिलाकर पिलानेसे सूखी खाँसी मिटती है। जड चरपरी एव कुछ-कुछ कडवी होती है। इसे नीवूके रस एव कपूरमें फेंटकर खाजपर लगानेसे खुजली कम होती है और मक्खियाँ नही वैठती। इसके बीजोंका तेल मलनेसे हाथ-पैर फटनेमें वडा उपकार होता है।

०

(११४) कलंबा ।

फ़ैमिली : मेनिस्पेर्मासि (Family Menispermaceae)

नाम । (जड)—(हिं०, द०) कलवा, कलबाकी जड, (यू०) कलस्तारियून; (अ०) रा (अ्) यूल् हमाम, साक्‌ल् हमाम, (फ़ा०) गावमुशग, देवमुशग, बेखेकलब॰, (म०) कलमकाचरी, (बम्ब०) कलवकचरी, (गु०) कलुंबो, (लै०) कालुम्बी राडिक्स (Calumbae Radix`; (अ०) कैलवा रूट (Calumba Root) । (लता) जाटेओर्‌हीजा पाल्माटा **Jateorhiza palmata** (Lam) Miers. ।

वक्तव्य—कपोतको इस लतापर रहना और बसेरा करना बहुत पसद है, इसलिए इसकी अरवी सज्ञा 'राअ-युल्‌हमाम (अर्थात् कपोततृण)' अन्वर्थक है । इसी प्रकार कतिपय लेखको द्वारा दिया गया इसका अरवी नाम 'साकु-ल्‌हमाम (Dove's foot)' भी सार्थक है । किसी-किसीने 'वर्वेन' Vervain (**Verbene officinalis** Linn)को राअ्‌युल्‌हमाम लिखा है । कतिपय आधुनिक ग्रन्थोमे इसके लिए 'कपोतपदी' सस्कृत नाम दिया हुआ है जो उक्त अरवी नामका सस्कृत अनुवाद एव अभिनव सज्ञा है। भारतीय कलवा जिसे अग्रेजीमे फाल्स कलबा (**False Calumba**) भी कहते है एक सुदीर्घ लता है, जो दक्षिणभारतमे होती है । किसी समय इसकी जड एव काण्डका उपयोग असली कलबाके प्रतिनिधि स्वरूप अथवा मिलावटके लिए किया जाता था । अनेक लेखकोने भ्रमवश इसके लिए भी 'दारु-हल्दी' नाम दे दिया है, जवकि शास्त्रीय दार्वी (दारुहल्दी) इससे भिन्न वनस्पति (बर्बेरिसकी जाति) है और हिमालयमें पायी जाती है । इसी भ्रमवश आज भी दक्षिण भारतके बाजारोमें इसका आयात दारुहल्दी नामसे ही होता है । स्वरूपत एव गुणत साम्यता होनेपर भी यह सर्वथा भिन्न द्रव्य है । इसको आयुर्वेदीय निघटूक्त (भा०प्र०) कलम्बक कहना अधिक समीचीन होगा ।

इतिहास—अफरीकावासियोको तो इस औषधिका ज्ञान अतिप्राचीन कालसे था । अस्तु, अतिप्राचीन कालसे ही वे इसका उपयोग प्रवाहिका एव अन्त्रके अन्य रोगोमे करते थे । इसी प्रकार अरववासियोको भी पुराणकालसे ही यह औषधि ज्ञात थी । परन्तु यूरोपमे इसे पुर्तगाली लोग सन् १६७१ ई०में ले गये, जहाँपर कुछ कालोपरान्त इसकी ओरसे डॉक्टरोका ध्यान हट गया था । पर पुन सन् १७७३ ई०मे इसके उपयोगकी ओर ध्यान गया । सन् १८०५ ई०मे यह पहले पहल मद्र समे लाई गयी । तदुपरान्त बगाल और बम्बईमे आई । भारतीय कलवाका उप-योग लका (एव दक्षिण भारत)मे तिक्त औषधिकी भाँति प्राचीनकालसे ही होता था । लकामे प्रमादवश कलम्वा समझकर उपयोग करने लगे । सम्भवत कलम्वा नामका सम्बन्ध लकाके कोलम्बो बन्दरगाहसे है, जहाँसे किसी समय इस औपधिका व्यवसाय यूरोपीय देशोसे होता था । जब यह औषधि योरोपीय बाजारोमें गई तो वहाँ पहचान होनेपर 'फाल्स कलम्बा'के नामसे प्रसिद्ध हुई ।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी अफरीकाके वनोमे मोजम्बीक कूलपर तथा जंबेसी और मैडागास्कर प्रदेशमें इसकी बेल होती है।

वर्णन—यह दक्षिणी झाडकी हलदीकी जातिकी एक सुदीर्घ लताकी जड है, जो भारतीय बाजारोमे अफरीकासे बिकनेके लिए आती है । इसके आडे या वक्राकार खड काटकर सुखाकर रख छोडते है । यह चपटे, विपम, वृत्ताकार वा अडाकार होते है, जो लगभग ५ सें० मी० (२ इञ्च) व्यासके और ०.८३ सें० मी०से १.२५ से० मी० (१।३से १।२ इञ्च) तक याअधिक मोटे होते है । किनारोका भाग मोटा, भूरापन लिये पीला और झुर्रीदार, बीचका भाग हरापन लिये पीला होता है । गध काईकी तरह (Mossy) और स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है । ये सहजमे चूर्ण हो जाते है ।

रासायनिक सगठन—इसमें बर्बेरीन (Berberine), कोलंबिन (Columbin), स्टार्च एव कैलंबिक एसिड (Calumbic acid) और लबाब आदि द्रव्य पाये जाते है।

कल्प—चूर्ण (२॥से १० रत्ती), हिम (२से ४ तोला)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कटुपौष्टिक, दीपन और पित्तसारक है। इसके उपयोगसे आमाशयका क्षोभ दूर हो जाता है। यह न उत्तेजक है और न सग्राही। इसके सेवनसे भूख लगती है। प्राय जब आमाशय अन्य कटुपौष्टिक द्रव्योको ग्रहण नही करता, तब इसका उपयोग अनुकूल होता है। दौर्बल्य, अरुचि (भूखकी कमी), पाचन विकार, हृल्लास, अम्लताधिक्य (अम्लत्व) और आनाहमे इसका उपयोग अत्यन्त गुणकारी है। जब सगर्भावस्थामें वमन होता हो अथवा वृक्कसे पथरीका उत्सर्ग होते समय या किसी छर्दिजनन औषधके सेवनोपरात वमन बन्द न होता हो, तब इसे देते है। दांत निकलते समय जब बच्चोको अतिसारादिका उपद्रव होता है, उसमे भी यह औषधी गुणकारी है। कषायरहित एव शुद्ध कटु द्रव्य होनेसे मुख और जिह्वागत प्रान्तस्थ वातनाडियोपर प्रभाव डालकर यह (अन्यान्य कटु द्रव्योकी भांति) निगलनेसे पूर्व आमाशयिक रस और लालास्रावको बढाता है। इसने आमाशयगत वातनाडियोको उत्तेजना प्राप्त होकर क्षुधा प्रतीत होती है। आमाशयमें पहुँचकर यह तत्स्थानीय वातनाडियोंपर सीधे प्रभाव करके आमाशयिक वाहिनियोको विस्फारित कर देता और तत्रस्थ रक्तपरिभ्रमणको तीव्र कर देता है। इससे आमाशयिक रसोत्सेक बढ जाता है। इसके अतिरिक्त लालारसके आमाशयमें पहुँचनेसे भी उसकी इलैष्मिक-कलाको उत्तेजना मिलती है। फलत उक्त कर्मोका यह परिणाम होता है कि भूख एव पाचनक्रिया बढ जाती है। कलका अन्त्रकी पुरःसरणगतिको किसी कदर तीव्र करता है, परन्तु इतना नही जितना कि कटु सुगध द्रव्य। यह हलका वातानुलोमन और कोष्ठप्रतिबधक है। इसके काढेकी बस्ति देनेसे गुदागत सूत्रकृमि मर जाते है। आमाशयशोथ, आमाशयशूल, आमाशयिकव्रण एव आमाशयके कैन्सर आदि रोगोमे इसका प्रयोग निषिद्ध है। कलबा रसमे तिक्त विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, दीपन-पाचन और जीर्णज्वरनाशक है।

मात्रा—० ३ ग्राममे ० ६ ग्राम (२ रत्तीसे १० रत्ती) तक।

●

(११५) कलौंजी

फैमिली . रानुनकुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हि०) कलौंजी, मँगरैला; (यू०) Melanthion (D. 3 83), (अ०) शोनीज, अल्शोवनीज, हब्बतुस्सौदा, अल्कम्मूनुल् अस्वद, हब्बे अस्वद; (फा०) स्याह-दान, (स०) उपकुञ्चिका, (ब०) कालजीरा, मुगरेला, (गु०, म०) केलौंजी, (लै०) नीजेल्ला साटीवा (Nigella sativa Linn), (अं०) नीगेला सीड्स (Nigella seeds)। वक्तव्य-लैटिन नाम पौधेका है। इसके अरबी 'हब्बतुस्सौदा' और फारसी 'स्याहदाना' नामोके धात्वर्थ (कृष्णबीज = कालादाना)को दृष्टिमे रखकर किसी-किसी लेखकने इसका हिन्दी नाम (कालादाना) लिखा है। परन्तु कालादाना इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है जिसका वर्णन आगे होगा।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष और मिश्र आदि।

वर्णन—यह सौफकी तरहके एक क्षुपके बीज है जो छोटे, तिकोने, गहरे भूरे व काले रगके होते है। इनके ऊपरका छिलका खुरदुरा होता है। ये स्वादमें किंचित् तिक्त और सुगधित होते है। उनको मसलनेसे नीबू जैसी तीक्ष्ण सुगध आती है। बीजको काटनेपर उसमें तेलसे भरा हुआ सफेद मग्ज दिखता है। बीजोको गरम मसालेमे डालते है। नये, भारी, मोटे, तेज और चपरपरे दानेकी कलौंजी उत्तम होती है। इसमे सात वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—बीजमे एक स्थिर तेल ३७ ५ प्र० श० और उत्पत् तेल १ ५ प्र० श० होता है। इनमे यह उत्पत् तेल ही इसका वीर्य भाग है।

उपयुक्त अग—बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०) एव० रूक्ष (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—बाह्य प्रयोगसे कलौजी लेखन एव शोणितोत्क्लेशक है। सूँघनेसे मस्तिष्कके द्रवोको नासिकाकी ओर आकर्षित करती है। भीतरी तौरपर खिलानेसे श्लेष्मनि सारक, वातानुलोमन, दीपन, सर और उदरकृमि-नाशक तथा आर्तव, स्तन्य और मूत्रका प्रवर्तन करती तथा वेदनाशामक होती है।

उपयोग—कलौजीको अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्योके साथ सिरकामे पीसकर व्यग, किलास, दद्रु, गज, खालित्य और मुँहासोपर लगाते है। सिरके पुराने दर्द और आधासीसी (शकीका)को दूर करनेके लिए इसको सिरकामें भिगोनेके बाद पीसकर नस्य देते है। इसको स्त्रीके दूधमे पीसकर नाकमे टपकानेसे कामला रोग आराम हो जाता है। सर्द प्रतिश्यायमे इसे भूनकर कपडेमे पोटली बाँधकर रोगीको सुँघाते है तथा इसकी धूनी देते है। कृच्छ्रश्वास और उरोवेदनाको नष्ट करनेके लिए इसका चूर्ण बनाकर खिलाते है। अग्निमाद्य, उदरानाह, उदरशूल, शूल (कुलज),जलोदर, कामला, पेटके कृमि, आमवात, कटिशूल और प्राय सर्द कफजरोगोमे इसका उपयोग करते है। रजोरोधमें इसका चूर्ण व क्वाथ इत्यादि प्रयोग करते है। पक्षवध, अर्दित और कटिशूल इत्यादिमें इसका तेल तैयार करके मर्दन करते है। इसके लेपसे सूजन उतरती है। कलौजीको जलाकर बनाई हुई मसी मोम और तेलमे मिलाकर सिरके गजपर लगाना गुणकारी है। इसे छाछमे पीस-गरम करके नारूपर लगानेसे नारू बाहर निकल आता है। कलौंजी ५ तोला, बकुची ५ तोला, गूगल ५ तोला, दारुहलदी ५ तोला और गंधक २॥ तोला—इनके कल्कमें १ प्रस्थ नारियलका तेल सिद्ध करके लगानेसे पामा, विचर्चिका आदि त्वचाके रोगोमे लाभ होता है।

अहितकर—कठशोथ (खुनाक) और भ्रम (सिर चकराना) उत्पन्न करती है। निवारण—कतीरा और शीतल-द्रव्य। प्रतिनिधि—अनीसूँ। मात्रा—१से २ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—कलौजी रसमे कटु और तिक्त, विपाकमे कटु (लघु), वीर्यमें उष्ण, रूक्ष और तीक्ष्ण, रोचन, दीपन (अग्निवर्धन), दौर्गन्ध्यनाशन, ग्राही, पित्तकर, मेध्य, गर्भाशयशोधन, पाचन, बलकारक, वृष्य, सुगंधी तथा कफ, वात, गुल्म, आमदोष, अफारा, वातगुल्म, वमन, अतिसार, कृमि और ज्वरका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २७, सु० सू०, अ० ४६, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—कलौजी तिक्त, सुगन्धी, कोष्ठवातप्रशमन, दीपन, ज्वरहर, कृमिघ्न और स्तन्यजनन है। इससे भूख लगती है, अन्न तथा घृत-तेल पचता है और पेटमें वायु (रियाह) नही भरता। यह त्वचा, स्तन तथा मूत्रपिंडके रास्तेसे बाहर निकलती है तथा बाहर निकलते समय इन अवयवोको उत्तेजित करती है। अत मूत्र तथा दूध बढता है और पसीना आता है। गर्भाशयपर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। गर्भाशयका सकोच विकास जोरसे होता है और ऋतु साफ होता है। प्रसवके बाद स्त्रियोको केवल कलौंजी देनेसे भूख लगती है, घी और अन्न पचता है, पेटमें वायु नही भरता, कमरकी पीडा कम होती है, मूत्र साफ होता है और पुष्कल दूध उत्पन्न होता है। विषम-ज्वरमें आधा तोला कलौंजी जरा भूनकर गुडके साथ मिलाकर देते है। त्वचाके रोगोमें कलौंजी खानेको देते है और तेलमें मिलाकर लगाते है। इससे कण्डू कम होती है। सूजे हुए अर्शको कलौंजीकी धूनी देते है। इससे सजे हुए अर्शको कलौजीकी धूनी देते है। इससे मसेकी वेदना और सूजन कम होती है। इसको खिलानेसे गोलकृमि निकलते है। विरेचन द्रव्योके साथ इसे मिलाकर देनेसे पेटमें मरोड, (ऐंठन) नही होता।

(११६) कलगा (जटाधारी)

फैमिली : आमारान्थासे (Family · Amaranthaceae)

नाम—कलगा, जटाधारी, (ले०) **आमारान्थुस हीपोकान्डिआकुस Amaranthus hypochondriacus** Linn , **Amaranthus melancholiacus** Linn , (अ०) रेड काक्सकूम (Red Cock's Comb), ऐमरन्थ (Amaranth), लव-लाइज ब्लीडिंग (Love-lies bleeding)।

उत्पत्तिस्थान—सामान्य उद्यानज क्षुप। प्राय भारतीय बगीचोमे लगाया जाता है।

वर्णन—काण्ड चपटा, पुष्प अतिक्षुद्र, गोलाकार गुच्छोमे जो समूहबद्ध (Crowded), रेखाकार, गोपुच्छाकार (Tapering), शल्कसहपत्रवत् (Chaffy) गहरे लाल रगके पौष्पिक सहपत्रो (Bracts) से आवेष्ठित (Hidden) होते हैं। बीज लेन्साकारी (Lens-shaped), काले, लगभग १ २५ मि०मी० ($\frac{1}{20}$ इच) व्यासके होते हैं।

उपयुक्त अग—पुष्पित क्षुप।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही होनेसे **रक्तप्रदर, अतिसार,** प्रवाहिका और अन्त्रस्थ रक्तस्राव में यह बडा ही प्रशसनीय है। इसके काढेका आतरिक उपयोग होता है। बाह्य रूपसे मुख और कण्ठकी व्रणित अवस्थाओमे इसका लेप लगाते हैं। श्वेतप्रदरमे इसकी बस्ति देते और व्रण एव घाव आदिमे इससे उनको धोते हैं। रगरूपादि द्वारा द्रव्योके गुणकर्म ज्ञानकी पद्धति (Docrine of Signature)मे विश्वास रखनेके कारण कुलपेपर महोदय सभी-प्रकारका रक्तस्राव वद करनेके लिए इसके लाल फूलोके उपयोगकी अभ्यर्थना करते है।

कल्प (तरल सार)—मात्रा, १।२–१ ड्राम। २ मि० लि० से ४ मि० लि० ($\frac{1}{2}$ ड्राम से १ ड्राम)

●

(११७) कलहड़पात

फैमिली : आल्गी (Family Algae)

नाम—(हिं०) कलहडपात (नुस्खा सईदी), गलहड (र)का पत्ता, गलहूर (गिलूर)का पत्ता, गिल्हडपात, (ले०) **लामीनारिआ साक्कारीना Laminaria saccharine** Lam), (अ०) स्वीट टैंगल (Sweet tangle)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त गहरे समुद्रोमें पाया जाता है और प्राय भारतीय समुद्रतटोपर फेंका हुआ मिलता है। यह कश्मीर तथा तिब्बतकी खारी झीलोमे और चीनदेशकी अमूर नदीमे भी उत्पन्न होता है। पजाब और सिंधके बाजारोमें यह बाहरसे आकर बिकती है।

वर्णन—सेवारकी जातिका एक उद्भिज्ज जिसके पत्ते तमाकूके पत्तेके सदृश, किन्तु उससे छोटे, ललाई लिये कालेरगके सूखे पत्तेकी तरह दीखनेवाले होते हैं। सूखनेपर ये पान सरीखे होते हैं। धूपमे सुखानेपर इसमेंसे एक प्रकारका सफेद शर्करावत् मधुर पदार्थ स्रवित होता हैं।

उपयुक्त अग—पचाङ्ग।

रासायनिक सगठन—इसमे आयोडीन (Iodine) होता है।

प्रकृति—गरम एव खुश्क।

गुण-कर्म—रसायन और धातुपरिवर्तक ।

उपयोग—शीतनिर्यास उपदश, वा फिरग, कठमाला और गलगण्डमें लाभदायक है। यदि गलेमे सूजन आ जाय (Bronchocelc) तो थोडासा कलहडपात सोते समय मुँहमे रखकर सो जाँय, जिसमे लबाव कठके भीतर उतरता रहे। थोडे दिनोके उपयोगसे उपकार होता है। इसे रातमें ठढे पानीमे भिगोकर प्रात इसका हिम खाली पेट पीनेसे भी इस रोगमे लाभ होता है।

●

(११८) कसेरू

फैमिली : सीपेरासे (Family Cyperaceae)

नाम—(हि०) कसेरू, (स०) कशे (से) रुक, (ब०) केशुरु, (म०) कचरा, (ले०) स्कीर्पुस कीसूर (Scirpus kysoor Roxb), (अ०) वाटर चेस्टनट (Water chestnut) । (२) स्कीर्पुस ग्रॉस्सुस (Scirpus grossus Linn) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके प्राय सभी गरम प्रदेश और चीन ।

वर्णन—यह एक प्रकारके मोथेकी जड है। पौधे तालो और झीलोमें प्राय ३० सें०मी० (१ फुट) या अधिक गहरे पानीमे अथवा उनके किनारे जहाँ पानी रुका होता है अथवा आर्द्र-भूमिमे उपजते है। यह कद वा जड जायफलके बराबर, अंडाकार गोल, गाँठकी तरह होती है। इसके काले छिलकेपर काले रोए या बाल होते है। इसे काटनेपर भीतरका गूदा बहुत सफेद दिखता है। वह मधुर, स्वादिष्ट, किंचित् फीका और सुगधित होता है। इसका ताजा कद भूनकर, जलमे उबालकर या वैसे ही खाया जाता है।

उपयुक्त अग—कद ।

रासायनिक सगठन—इसमे पिष्ट (स्टार्च) ६३%, मासवर्धक द्रव्य ७%, गोद ७%, सीठी ६% और राख २½% होती है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष । आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) एव रूक्ष (कै०नि०) ।

गुण-कर्म—शीतजनन, सग्राही, हृद्य और हैजेमे गुणकारक है।

उपयोग—शीतजनन होनेसे यह प्यास बुझाने और विशेषत आमाशय एव यकृत् आदि अगोका दाह मिटानेके लिए इसका उपयोग करते है। यह सग्राही भी हे, अतएव रक्तातिसार और पित्तातिसार बन्द करनेके लिए इसका उपयोग करते है। यह हृदयदौर्बल्य एव उष्ण हृत्स्पदन का निवारण करता हे। हैजेमे जबकि वमन और अतिसारके द्वारा दूषित दोषोका उत्सर्ग भली-भाँतिहो चुका हो, इसका उपयोग कराते है। उक्त समस्त रोगोमे अधिकतया इसका शीरा मिश्रीसे मीठा करके पिलाया जाता है। कभी इन कर्मोको तीव्र करनेके लिए इसे अर्क-गुलाबमें पीसकर पिलाते है। रक्तज और पित्तज ज्वरोमें भी शीतजनन (तब्रीद) औषधकी भाँति दाहशमनार्थ इसका उपयोग कराते है। अहितकर–किंचित् गुरु एव चिरपाकी है। निवारण–शर्करा और शुद्ध मधु। प्रतिनिधि–ताजा कँवलगट्टा। मात्रा—७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—कसेरू मधुर, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, विष्टम्भि, ग्राही, शुक्रल, स्तन्य (दूध), कफ और वात को बढानेवाला, वृष्य, कृमिकारक तथा पित्त, रक्तविकार, दाह, नेत्ररोग, प्रमेह और तृष्णाको दूर करनेवाला है (सु०सू०अ० ४६, कै०नि०)।

नव्यमत—कसेरू ग्राही है। इसका उपयोग अतिसार या (रक्तातिसार) एवं वमनके निवारणके लिए किया जाता है।

●

(११९) कसौंदी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) कसौंदी, कसौंजी, (स०) कासमर्द, (व०) कासन्दा, (म०) कासविंदा, (गु०) कासोदरो; (ते०) कासिन्दु, (ता०) पेयाविरै, (मल०) पोन्नाविरम्, (का०) दाङ्गुतगचे, (लै०) कास्सिआ आक्सिडेन्टालिस **Cassia occidentalis** Linn (अ०) निग्रो काफी (Negro Coffee)।

उत्पत्तिस्थान—कसौंदीके क्षुप समस्त उष्णप्रधान स्थानोंमे यत्र-तत्र होते हैं।

वर्णन—यह एक शाखाबहुल ० ९ मीटर से १ ८ मीटर (३-६ फुट) ऊँचा क्षुप है। शाखाएँ लम्बी, चिकनी चारो ओर फैली हुई और प्राय जडके पाससे अथवा उससे थोडा ऊपरसे निकली हुई होती है। पत्रक एक सींकमे आमने-सामने २-६ वा ३-५ जोडे लगते है। उनके मध्य ग्रन्थियाँ नही होती। यह भालाडाकार, प्राय गोल, नुकीले और दोनो ओरसे मसृण होते है। फूले हुए पत्रवृतमूलके समीप एक बृहत् वृतशून्य ग्रन्थि होती है। पुष्प सवृत, क्षुद्र, पीला, चकवँडके फूलकी तरह होता है। वृत लबोतरा होता है। ऊपरी पुष्पस्तवक टहनीके सिरे (शाखात) पर और निम्न पुष्पगुच्छ ३-५ तक अत्यन्त क्षुद्र कक्षीय पुष्पदडपर स्थित होते है। फलियाँ ६-७ अगुल लबी, पतली और चिपटी लगती है। यह चारो ओर उभरी हुई प्राचीर द्वारा आवेष्ठित होती है। प्रत्येक फलीमे १०-३० बीज होते है। बीज भूरे, गोल, चक्रिकाकार ४ ६ मि० मी० से ६ २५ मि० मी० (३/१६ इच से १/४ इच) व्यासके और १ ५ मि० मी० (१।१६ इच) मोटे होते है। यह वर्षात या जाडेमे फूलती-फलती और हेमतमें फलियोके पकनेके साथ सूख जाती है। इसकी गध खराब होती है। इसके अतिरिक्त कसौंदीका एक दूसरा भेद भी है जिसे काली कसौंदी कहते है। इसके फूल, पत्रनाल और डालियाँ काली (रक्ताभ बैगनी रगकी) होती है। इसको लेटिनमे कास्सिआ पूर्पूरेआ (C **purpurea** Royle) कहते है। यह बहुत विरल होती है और गाँवके आस-पास कही-कही मिल जाती है। यह सर्पविषमें बहुत उपयोगी बतलाई जाती है।

रासायनिक सगठन—बीजमे क्राइसोफैनिक एसिड (Chrysophanic acid) होता है। कसौंदीकी पत्तियोमे सनाय जैसा विरेचन द्रव्य होता है। क्षुपके इतर भागकी अपेक्षया बीजोमे विरेचन सत्व अधिक होता है। काली कसौंदीमे इमोडीन और क्राइसोफैनिक एसिड, ये दो तत्व होते है।

प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे भी यह उष्णवीर्य है (रा० नि०)।

गुण-कर्म—उष्णताजनन और श्वयथुविलयन, लेखन, वातानुलोमन, ज्वरघ्न तथा प्राणिज एव खनिज विषनाशक है।

उपयोग—उष्णताजनन और श्वयथुविलयन होनेसे पाण्डु, जलोदर और यकृतके शीतविप्रकृतिके लिए इसके पत्तोका शीरा कालीमिर्चोके साथ निकालकर या फाटकी भाँति उपयोग करते है। इन्ही गुण-कर्मोके कारण यह कास, कृच्छ्रश्वास, उदरकृमि और आमवातमे गुणकारी है। पत्रस्वरसके नेत्रमें आश्च्योतन करने या कसौंदीके बीजोको सुरमाकी भाँति अजन करने या पत्तोको सुखाकर, बारीक पीसकर आटेमें मिलाकर रोटी पकाकर तिलके तेलके साथ खानेसे रतौंधी (नक्तान्ध्य) दूर होती है। काली कसौंदीकी जडको नीबूके रसमे घिसकर नेत्रमें लगानेसे कामला रोग दूर होता है। कसौंदी विशेषकर काली कसौंदीकी जड या उसकी छाल उतारकर थोडी कालीमिर्चोके साथ घोटकर पिलानेसे सर्प और बिच्छूके काटेको बहुत उपकार होता है। १॥ तोला काली कसौंदीकी जड कूट-छानकर उपयोग करनेसे अतिसारसहित जलोदर आराम हो जाता है। आमवातमे जडका लेप उपकारी है। कसौंदीके भुने हुए बीज सग्राही और बिना भुने बीज विरेचन है और हर प्रकारके गर्म और सर्द विषोके लिए लाभदायक है।

कसौदीकी जडको नीबूके रसमे पीसकर लगानेसे दाद अच्छा हो जाता है। काली कसौंदीके गुणधर्म कसौदीके समान है। दादमे पत्तीका वाह्य प्रयोग होता है। उग्र कासमें पत्तियोका क्वाथ दिया जाता है। **अहितकर**-उष्ण प्रकृतिको। निवारण—कालीमिर्च और मधु। प्रतिनिधि-एक भेद दूसरे भेदका। **मात्रा**—७ ग्राममे १२ ग्राम (७ माशेसे १तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—कसौदी कुछ तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, पाचन, कण्ठशोधन, तथा कफ, वात पित्त, अजीर्ण, खाँसी, हिक्का और श्वासकासनाश करने वाली है (सु० सू० अ० ३८, च० चि० अ० १७, रा० नि०)।

नव्यमत—कसौंदी कफघ्न, सकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर), स्रंसन और किंचित् मूत्रजनन है। बीज ज्वरहर, कुष्ठघ्न तथा मूल मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरहर और बल्य तथा पञ्चाङ्ग रेचन है। बीजोंको सेकनेसे उनके भीतर का विरेचन सत्व नष्ट होता है और उसमे कॉफी जैसा स्वाद उत्पन्न होता है। इनकी काफी (कहवा) तैयार करते है। कूकरखाँसीमे पत्रस्वरसमे शहद मिलाकर देते है। कफज्वरमें पत्रस्वरस देते हैं। इससे श्वासनलिकाओंके सकोच विकाससे होनेवाला त्रास कम होता है। पचाङ्गके क्वाथमे वायु सरता है, मरोड कम होता है और दस्त साफ होता है। पत्तियोंको पीसकर व्रणशोथ और विसर्पपर लेप करते है। मूलसे पेशाव वढता है, इसलिये उदररोग और जलशोयमे देते है।

●

(१२०) कहरुवा

फैमिलीः कोनीफेरी (Family: Coniferae)

नाम—(हिं०) कहरुवा, कहरवा, (अ०) समगुल्बहर (सामुद्र निर्यास), कर्नुल्बहर (सामुद्र शृंग), मिस्वाहुर्रूम (रोमदीप), (फा०) कहरुबा, (स०) तृणकान्त, तृणमणि–(अभिनव), (म०) केरबो, (गु०) केरवा, कहरोवा, (द०) कपूर, (ले) सूक्सिनुम् (Succinum), (अ०) (Amber)।

वक्तव्य—फारसी 'कहरुवा' शब्दका अर्थ ('काह' कह्याका सक्षिप्त रूप = सूखी घास या तिनका, 'रूबा' = ले जानेवाला या खीचनेवाला) 'सूखी घास या तिनकेको खीचनेवाला' है। इसके अरवी नाम इसे समुद्री द्रव्य समझकर प्राचीन अरवी यूनानी चिकित्सको द्वारा कल्पित किये जान पडते है।

उत्पत्तिस्थान तथा प्राप्ति—यह विविध सरल या देवदारु कुल (**Coniferae**)के वृक्षो, विशेपकर पीनुस सूक्सीनिफेरा (**Pinus succinifera**)से प्राप्त होनेवाला, जिनका अधुना वशच्छेद हो गया है अथवा जिसके वृक्ष अब पृथ्वीपर नही रहे अथवा जिसका लोप हो गया है, एक प्रकारका पीलेरगका अश्मीभूत गोंद या राल (**Fossil resin**) है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि यह खानसे निकलनेवाला पत्थर विशेप नही है, अपितु एक प्रकारका वानस्पतिक राल है। कहरुवाजनक वृक्षोके भूमिके अन्दर दब जानेके कारण कालान्तरमे उक्त राल अश्मीभूत रूप धारण करती है। वास्तवमें जिस प्रकार तृतीयकल्पमें पृथ्वीगभमे उथल-पुथल होनेके फलस्वरूप जगलके जगल भूगर्भमें समा गये थे वही वृक्ष आज हमे पत्थरके कोयलेके रूपमें मिल रहे है, ठीक उसी तरह कहरूबा भी उस तृतीय कल्पकी राले, जो टपकती रहती थी, जमकर और भूगर्भस्थ होकर अपने विशेष गुण-धर्मके प्रभावसे अक्षुण्ण बनी रही। वही राले आज हमे कहरुबाके नामसे प्राप्त हो रही है।

ऐसा अनुमान किया गया है कि उक्त वृक्षोका जगल पहले उत्तरी स्कैन्डिनेविया (Scandinavia)मे प्रचुरतासे था, जिनका अब लोप हो गया है। उनसे जीवितावस्थामे स्रावित रालें वृक्षोके नष्ट हो जानेके उपरान्त शेष

रह गई और उसके बहुत कालोपरान्त बाल्टिक सागरके पूर्वी तटोंके समीपकी नीली मिट्टीके भारी प्रमाणके नीचे दब गयी और दीर्घकालोपरान्त अब सागरकी तोड़ाईके फलस्वरूप इसी नीली मिट्टीसे कहरुवा (Amber) पाया गया है। सुतरां बाल्टिक सागरके तटीय प्रदेशोंमें नदियोंके मुहानोंपर, कभी-कभी ब्रिटेनके पूर्वी तटोंपर भी कहरुवा पाया जाता है। यही कहरुवा (बाल्टिक अम्बर या सक्सिनाइट Baltic Amber or Succinite) सर्वोत्तम माना जाता है।

वर्णन—यह एक भंगुर, स्वच्छ, चमकदार, लाल या पीले रंगका राल है, जिसके डले बेडौल, चमकदार, नदियोंके तटपर या भूमिमें दबे स्पेन, रोम और जर्मनीके कुछ भागोंमें प्राप्त होते हैं। इसमें न तो किसी प्रकारकी गंध होती है न खानेमें कोई स्वाद होता है। इसके डले या टुकड़ेको कपड़े या बालोंपर रगड़कर तिनकेकी ओर करें तो तिनका खिंचकर इससे चिपट जाता है, किन्तु तुरन्त ही छूट भी जाता है। इसमें निहित इस चुम्बकीय (आकर्षण) गुणके कारण ही इसे 'कहरुवा' कहते हैं। हथेली या कपड़ेपर खूब रगड़कर इसे सूंघा जाय तो इससे नींबूकी-सी गंध आती है। अग्निपर डालनेसे इसके धुएंसे मस्तगीकी-सी महक आती है। इसे वायुशून्य पात्रमें बन्द करके ६० श० पर पिघलानेका प्रयत्न करनेपर यह मृदु होते ही क्षीण होने लगता है और इसकी चमक, आभा-प्रभा सब जाती रहती है। इसलिये इसकी शुद्धताका अन्दाजा लगाना कठिन है। भेद—प्राचीनोंके मतसे कहरुवा दो तरहका होता है। एक रोम देशसे आता है (रूमी) और दूसरा स्पेनके पश्चिमीय नदीतटोंके नगरोंसे। इनमें रूमी अपेक्षाकृत उत्तम होता है।

उत्तमताकी पहचान—उत्तम कहरुवा वह है जो कड़ा, उज्ज्वल और सुनहले रंगका हो, देरसे पिघले, हाथमें रगड़नेपर गरम हो जाय, उससे नींबूकी-सी सुगंध आवे और जो घासके तिनके, पक्षीके पर, रेशम और रूई जैसी हल्की वस्तुको अपनी ओर खींच लेवे या उठावे। कहरुवा शमई इसका सर्वोत्कृष्ट भेद है। इसमें कोई पिलाई लिये लाल और कोई ललाई या सफेदी लिए पीला होता है (गजवादायर्ड)।

मिश्रण आदि—इसमें किसी अन्य रालकी मिलावट नहीं की जा सकती। हां, इसके बारीक-बारीक टुकड़ों (चूर्ण)में अवश्य सदरूसका चूरा गोंद और मिला दिये जांय तो पहचानना कठिन होता है। इस रूपमें मिलावट हो सकती है, डलेमें नहीं। परन्तु सदरूसकी भग्न सतह चमकदार होती है। इन दोनोंमें सूक्ष्म भेद इस प्रकार है–(१) सदरूसके हाथमें अल्पमर्दनसे ही जो थोड़ी गर्मी उत्पन्न होती है, उससे यह चुम्बककी तरह तृणको अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इसके विपरीत कहरुवाको अत्यधिक घर्षणकी आवश्यकता होती है। फिर भी तृणाकर्षणमें सुन्दरूस कहरुवाके बराबर नहीं, (२) सदरूस कोमल होता है, परन्तु कहरुवा कठोर होता है, (३) कहरुवाको मलनेसे उसमेंसे कागजी नीबूके रसकी सी सुगंध आती है, परन्तु सदरूसमें उक्त सुगन्धका अभाव होता है और यह स्वादमें कटुवाहट लिये होता है। (४) सदरूस रक्तवर्ण-प्रधान, परन्तु कहरुवा पीतवर्ण प्रधान होता है। (५) सदरूसको जलानेसे हीगकी सी दुर्गंध आती है, परन्तु कहरुवाको जलानेसे उसमेसे मस्तगीकी-सी महक आती है।

रासायनिक सगठन—यह कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजनका यौगिक है। बन्द वर्तनमे रखकर अधिक गरम करनेपर इससे जो वाष्प उड़ती है, उसे परिस्रावित किया जाय तो इससे एक प्रकारका उड़नशील तेल कहरुवा तैल (Succinum oil or oil of amber) प्राप्त होता है, जो औषधिमें प्रयुक्त होता है। इसे इत्र कहरुवा भी कहते हैं। इसके सूखे चूर्णको बन्द वर्तनमे रखकर निर्वातमें स्रावित करें तो इससे ८ प्रतिशत एक अम्ल प्राप्त होता है, जिसे कहरुवाम्ल (Succinic acid) कहते हैं। यह कई प्रकारके रालीय यौगिकोंका समाहार है। कहरुवाका मूल यौगिक फिनोल (Phenol) है। यह एक ऐसा अतृप्त यौगिक है जो जलका सम्पर्क पाकर गाढा होने लग जाता है। कहरुवापर साधारण गर्मी, जल और वायुका कोई प्रभाव नहीं होता। इसका काठिन्य २ २॥ और विशिष्ट गुरुत्व १ १ है।

कल्प तथा योग—इसकी जलाकर बनाई हुई मसी या विशेषकर बिना जलाये ही अर्कगुलाब या चन्दनादि-अर्कमें घोटकर बनाई हुई पिष्टी (अतिसूक्ष्म चूर्ण) चिकित्सामें प्रयोगमें आती है। योग–कुर्स कहरुवा।

प्रकृति—अनुष्णाशीत (मोतदिल), दूसरे दर्जेमे रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयकी गतिको नियमित बनाये रखनेका इसमे विशेप गुण है अर्थात् हृदयकी क्रियाओको व्यवस्थित करनेमे इसका विशेप प्रभाव देखा जाता है। इसीलिये यह हृदयके लिए बलप्रद माना जाता है। अत हृदयदौर्बल्य एव दिलकी धडकन दूर करनेके लिए इसे सौमनस्यजनन योगो (मुफर्रेहा)मे मिलाते है। नाडी-मण्डल और मस्तिष्कके मानस क्षेत्रपर भी इसका प्रभाव होनेसे यह मनको प्रसन्न करनेवाला (मुफर्रेह) है। इसलिये उन्माद, मनौलिया (मेलन्खोलिया) आदि मानसिक व्याधियोमे इसके सेवनसे लाभ देखा जाता है। रक्तस्तम्भन-आने-वाले रक्तको रोकने अर्थात् रक्तकी द्रवताको घढाकर उसे गाढा करने (रक्तस्कदन)का विशेष गुण इसमे है। इसलिये नकसीर वन्द करने (रक्तस्तभन)के लिए इसको खिलाते अथवा नस्य (नफूख) देते और मस्तकपर लेप करते है। उर-क्षतमे रक्तष्ठीवन (खून थूकना) रोकनेके लिए अकेला या उपयुक्त औपधियोके साथ इसे शर्वत खशखाशमे मिलाकर चटाते है। रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तप्रदर या अत्यत रज.स्राव आदि रोगोमे रक्त आना वन्द करनेके लिए इसे उपयुक्त औषधियोके साथ खिलाते है। सद्योव्रणपर छिडकनेसे रक्तस्राव वन्द करता है और उसको सुखाता है। अन्त्र और आमाशयको बल देनेवाला होनेसे आमाशय और आँतोको वल प्रदान करनेके लिए इसको मस्तगीके साथ मिलाकर खिलाते है। रालरूप होनेसे इसमे सकोचन और शोषणका भी विशेष गुण (सग्राही) है। इसलिये यह प्रवाहिका, ग्रहणी और अतिसारमे भी लाभ पहुँचाता है। कहरुवा रालोमे एक विशिष्ट राल है, इसलिये इसमें दोषों (विकारो)को शोषण करनेका भी गुण है। यह विकारोको शोपितकर अपने साथ वाहर निकाल देता है। कह-रुवा तेल श्वास और कुक्कुर-कासमे उपकारी है। पाश्चात्य चिकित्सामे इसे सधिवात, आमवात आदिकी पीडाओमे मलनेके लिए देते है। अहितकर–शिर शूलजनक। निवारण–बनफशा। प्रतिनिधि–सदरूस। मात्रा-१से २ ग्राम (१–२ माशा)। इसका अर्कगुलाव या चन्दनादि अर्कमे पिष्टी वनाकर उपयोग किया जाता है, भस्म नही वनाई जाती है।

●

(१२१) क़हवा।

फ़ैमिली : रूबिआसे (Family Rubiaceae)

नाम—(हिं०) काफी, कहवा, बुन, (अ०) कहवा, बुन्न, (द०) बून, वूँद, (ब०) काफि, (बम्ब०, मर०) काफी, (गु०) काफि, (म०, गु०) वुद, वुददाण, (ले०) कॉफ्फेआ अराबिका **Coffea arabica** Linn , (अ०) कॉफी (Coffee)।

वक्तव्य—अन्य देशी भाषाओमे इसके अगरेजी 'कॉफी' शब्दका ही अपभ्रश रूपमे प्राय व्यवहार होता है।

उत्पत्तिस्थान—अरव। साम्प्रत इसकी खेती हिन्दुस्तानमे कई जगह होती है। वहाँ इसकी उपज भी पुष्कल होती है।

वर्णन—यह एक पेडके वीज है। ये अडाकार और कुछ पिलाई लिये हलदीके रगके होते है। इनका एक पृष्ठ गोल, (नतोदर) और दूसरा सपाट होता है जिसपर लम्बाईके रुख गहरी धारियाँ होती है। गन्ध एक प्रकारका मृदु और स्वाद मधुर, कपाय एव तिक्त होता है। इन वीजोको भूनते और उनके छिलके अलग करते है। इन्हीं वीजोको पीसकर गरम पानीमे डाल, छान, उसमे चीनी और दूध आदि मिला कर पीते है।

रासायनिक संगठन—कहवेके सूखे बीजोंमें १से ३ प्रतिशत तक चायसे प्राप्त थेईन (Theine) नामक पदार्थके अनुरूप काफीन (Caffein) वा कहवीन नामक एक प्रकारका रेशमकी तरह सफेद क्रिस्टली ऐल्केलॉइड (क्षारोद) होता है।

प्रकृति—ताजा कहवा और विशेषकर उसका छिलका गरमी और खुश्की लिये हुए होता है। पुराना और भृष्ट कहवा शीत एवं रूक्ष होता है। यह जितना पुराना पड़ता जाता या जितना अधिक भुनता है, उसमें उतनी शीतलता एवं रूक्षता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, वेदनास्थापन, दोषतारल्यजनन, लेखनीय, मूत्रल, सौमनस्यजनन और दीपन हैं तथा मस्तिष्ककी ओर वाष्पारोहण नहीं होने देता और पित्तकी तीक्ष्णता, रक्तोद्वेग और दाहको शांत करता है। कदाचित् पुराना, भुना हुआ और काला कहवा वीर्यको सुखाता और कामावसाद उत्पन्न करता है। परन्तु कच्चेमें उक्त गुणकी सम्भावना नहीं है। इसका छिलका तो किसी-किसी प्रकृतिमें वाजीकर एवं आहारपाचन कर्म प्रगट करता है।

उपयोग—लेखनीय और दोषतारल्यजनन होनेसे रक्तपित्त और वातजन्य ज्वरोंमें विशेषतः उनकी प्रारम्भिक अवस्थामें तथा शीतला एवं खर्जूरोगमें भी यह उपयोगी सिद्ध होता है। यह रक्तविकारजन्य उदर्द तथा कामला रोगमें भी गुणकारी है। सारक होनेपर भी यह दस्तोंको रोकता है, विशेषकर अधभुना कहवा। यह द्रवशोषणकर्ता है और बलगमी खाँसी और प्रतिश्यायको नष्ट करता है। यह मार्गजनित श्रम, क्लम एवं शरीरकी शिथिलताको दूर करता तथा नेत्राभिष्यंद, कुष्ठ और अर्शको नष्ट करता है। इसको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे शुष्क एवं तर कास आराम होता है। यह आमाशयकी क्लिन्नताको सुखाता और उसकी शिथिलताको दूर करता है। इसे पीनेके उपरान्त अधिक सोना, प्यास मारना और अल्पाहार, किन्तु इतना नहीं जिससे निर्बलता बढ़ जाय, अतीव गुणकारी है। इसे बार-बार पीनेसे प्रकृति और मस्तिष्क में रूक्षताकी उल्वणता होती और नींद कम आती है। परन्तु जिनके गरमी बढ़ी हुई हो और नींद न आती हो, कहवा पीनेसे उसकी हरारत घट जाती है। इसलिए द्रव कम विघटित होता और नींद आने लगती है। अहितकर—यह शिर शूल, धड़कन, आध्मान, शूल (कूलज) और कुस्वप्न (काबूस) उत्पन्न करता, शरीरको कृश एवं रूक्ष करता और पीला करता तथा फुफ्फुस एवं स्वरयन्त्रमें खुश्की उत्पन्न करता है। शीत, मृदु और विकृत दोषोल्वण प्रकृतिवालेको यह अहितकर है। निवारण—दवाउल्मिस्क, सोंठ, गुलाब, रोगन पिस्ता, खाँड, मिश्री, अम्बर और केसर आदि।

नव्यमत—कॉफीकी पत्तियाँ ज्वरघ्न हैं। बीज हृदयबल्य, हृदयोत्तेजक, नाड्युत्तेजक, मूत्रजनन और चयापचय क्रियाको सुधारनेवाले हैं। ३ से ६ ग्राम (३ से ६ माशा) इसकी पत्तियोंका काढ़ा देनेसे ज्वर और उससे उत्पन्न शिथिलता कम होती है। दूध, जल और चीनीके साथ बनाया इसका फाट नाड़ीकी शिथिलतामें देते हैं। इससे नाड़ी स्वाभाविक जोर और स्थिरतासे चलती है। यह फाट उत्तम हृदयबल्य और हृदयोत्तेजक है। हृदयपर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष हृदयपेशीपर और नाड़ियों द्वारा होती है। ज्वरमें या अन्य किसी कारणसे हृदयमें शिथिलता आयी हो, तब इसे देते हैं। हृत्पटलके रोगमें जब उदररोग हुआ तब हृदयको शक्ति देनेके लिए इसे देते हैं। यह मूत्रजनन भी है, इसलिये इससे हृदयोदरमें शरीरमें सञ्चित विष मूत्रद्वारा उत्सर्जित हो जाते हैं। हृदयोदरमें कॉफीके साथ मूत्रल और आनुलोमिक द्रव्य देते हैं। ज्वरसे हृदयमें शिथिलता आयी हो तो इसके साथ कुचला और डिजिटेलिस जैसे द्रव्य देते हैं।

(१२२) कहेला, कहेली

वर्णन—यह तज (सलीखा) है। परन्तु हकीम शरीफखॉके मतसे यह एक पहाडी वृक्षकी छाल है, जो कडी, मोटी, खुरदरी, मटियाले एव लालगेरूके रगकी होती है। कहेला मोटी छाल है और कहेली पतली, यही दोनोमे अन्तर है। ये दोनो द्रव्य तेज और दालचीनीसे भिन्न और उनके मध्यमे है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही होनेके कारण अधिकतया कटि एव वृक्कको बलप्रदान करनेके लिए तथा स्त्री-गुह्यागसे नाना प्रकारके स्रावोको रोकनेके लिए कहेला-कहेलीका उपयोग करते है। इस हेतु ललनागण प्राय: इसे पिंडियोमे डालकर खाती है और पिचुवर्तिकाओमे योजित करती है।

●

(१२३) काई

फ़ैमिली : आल्गी (Family Algae)

नाम—(हिं० ब०), काई, (अ०) तुहल (लु)ब, तुह्लबुल्माऽ, (फा०) चग्ज़ाब , पश्म वग्ग, जामे गोक, जुल्ले वग्ग, जुल्लेवुक, जाम ख्वाव बुक, कशिश जोय, (स०) कावारम्, (द०) दरियाकी पाची, मोस, (ले०) ग्रैसीलारिया लीकेनोइर्डज (**Gracilaria lichenoides** Harv), (अ०) मॉस (Moss)।

वक्तव्य—काईमे मेढक छिपे रहते है, इसलिये इसका फारसी नाम चग्जाब' (चग्ज, चग्र = मेंढक, आब = पानी) अन्वर्थक है। जामेगोक (जामा = पोशाक, गोक = मेढक) उसका समानार्थी है। 'जुल्' फारसी 'गुल' (पुष्प)से अरबी बनाया गया है। सुतरा 'जुल्लेआब'का अर्थ **'पानीका फूल'** हुआ। यह काईका नाम है। 'जलपानी' भी कहते है। **'बजग'**का अर्थ 'छिपकली' वा 'मेंढक' है। **'जुल्लेबुक'**का अर्थ **'मण्डूकपुष्प'** है।

वर्णन--सेवारसे भिन्न यह एक प्रकारकी सब्जी है जो स्थिर बंधे हुए पानी, जैसे—हौज, तालाब, बावली आदिके ऊपर जिसपर सूर्यका प्रकाश कम पडता है, जमती (हरे कपडेकी तरह बिछी होती) है और उसको दूषित कर देती है। इसकी जड पानीमे अवलबित रहती है। भेद–यूनानी निघटुग्रन्थोमे इसके यह तीन भेद लिखे है– (१) यह वृत्ताकार और परस्पर पृथक् होती है। अरबी में इसको 'तुहलुल लीफी' और हजाजुल्माऽ (हजाज = सिरकी भूसी, माऽ = पानी) कहते है। यह काई है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। (२) यह परस्पर मिली हुई तन्तु वा डोरीकी तरह होती है और नहरो तथा नदीके कूलोपर प्रचुरतासे पैदा होती है। इसको अरबीमे गिज्लुल्माऽ (मख़ज़न) वा गजालुल्माऽ (मुहीत) कहते है। इनका अर्थ 'पानीका हिरन' है। यह सेवार जान पडता है। सेवारको लेटिनमें बालिसनेरिआ स्पोरालिस (**Vallisneria spiralis** Linn) कहते है। (३) इसके अवयव परस्पर खूब मिले हुए और गठे हुए नमदेकी भाँति होते है। इसे अरबीमे खरउल् जफादअ (मडूक-विष्ठा), मख्जनके अनुसार ज़िरूबउल् ज़फादअ (मडूकैरण्ड) कहते है। यह स्थिर वा खडे जलके ऊपर पैदा होती है। मीठे पानीपर जमी हुई उत्तम होती है। समुदरके पानीके ऊपर भी काई उत्पन्न होती है।

वक्तव्य—कानूनके भाष्यकार गाज़ुरूनीके मतसे तहलुब नहरी एक सब्जी है जिसके दाने मसूरके छोटे-छोटे दानोकी तरह होते है। यह पानीके धरातलपर खडी होती है। गीलानीके मतसे इस प्रकारकी मसूराकार काईके दाने जिसे अरबीमे अद्सुलमाऽ (जल मसूर) कहते है, मसूरके बडे-बडे दानोके बराबर होते है।

रासायनिक सगठन—इसमे आयोडीन होती है।

प्रकृति—सग्राहीवीर्यसहित दूसरे दर्जेमे शीत एव तर है।

गुण-कर्म—बाह्य प्रयोगसे काई शीतजनन, दोषविलोमकर्ता सशमन तथा रक्तस्तंभन है, एव आतरिक उपयोगसे यह कब्ज पैदा करती है।

उपयोग—विसर्प एव अन्य उष्ण शोथोमें दाहप्रशमनके लिये और दोषोको विलोम करनेके लिए इसका प्रलेप करते है। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए जौके आटाके साथ इसका लेप लगाते है। यदि कठके भीतर जोक चिपटी हुई हो, तो उसको निकालनेके लिए काई खिलाकर वमन कराते है। सूखी काईका चूर्ण बनाकर दस्त बन्द करनेके लिए खिलाते है। नमनाक (आर्द्र) पत्थर आदिपर उत्पन्न हुई काई बहुत सग्राही बतलाई जाती है। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए इसका पतला लेप करते है। अहितकर–कफप्रकृतिके लिए। निवारण–जौका आटा और कालीमिर्च। प्रतिनिधि–जलकुम्भी जो तालावोमें विपुल पाई जाती है। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेमे ७ माशे) तक।

●

(१२४) काकजंघा (रिज्लुल्गुराब)।

नाम—(हिं०) काकजघा, (अ) रिज्लुल्गुराव, रिज्लुल्उक्राब, रिज्लुल्अक्अक्-(-जुरजूर, -तीर,–जाग), (फा०) पाये कुलाग, कुलागपाव, (तु०) गाजवागी, (स०) काकजघा, पारावतपदी, लोमशा, (व०) काउय ठूठी, काउयाठेडा, (को) काउया ठोका, (म०) कागा ठेंगडे।

वर्णन—इसका पौधा २२.५सें०मी० (एक बित्ता)के बराबर बडा और जमीनपर फैला होता है, इसके पत्ते इतने गहरे हरे रगके होते है कि स्याहीकी झलक मालूम होती है। आकृति राईके पत्ते जैसी, प्रत्येक पत्ता दो भागो में विभक्त होता है और प्रत्येक भागमें तीन-तीन बारीक पत्ते होते है जिनमेसे बीचका लबा होता है। इस प्रकार कौएके पजेकी-सी शकल मालूम होती है। शाखाएँ इसकी फैली होती है। चाबनेसे इसमें थोडीसी तेजी मालूम होती है तथा जिह्वाको किंचित् सिकोडती है और गाजरकी तरह मिठास पाई जाती है। इसकी जड जमीनके भीतर गोल और ग्रन्थिल होती है। यह ऊपर थोडी पीली, पीसनेपर सफेद सुरजान जैसा रग निकल आता है। 'आजुरबैजान' और 'बैतुल्मुकद्दस'की ओर इसको लोग उबालकर और घीमे बघारकर खाते है। कमर और घुटने आदिके दर्दमें बहुत गुणकारक है।

वक्तव्य—उपर्युक्त यूनानी विवरणसे यह 'मसी' और 'आतरीलाल'से सर्वथा भिन्न पौधा ज्ञात होता है। उक्तविवरण-का मेल बहुत कुछ लाआ हीर्टा **Leea hirta** Roxb, और वीटेक्स पेडन्कुलारिस (**Vitex peduncularis** Wall.) तथा वीटेक्स ल्यूकॉक्सीलोन (**V. leucoxylon** L f)से मालूम होता है। इनमेंसे प्रथमको आसाम और बगालके वन-वासी'काउरठइयाँ (काउ = काग + ठइया)' तथा दूसरीको विहारमें 'सिमजघा' (को०) एव 'मुरगीगोड' (उडि०) और तीसरीको चिरईगोडा (मुडयाँ) कहते हैं। इन स्थानीय नामोके आधारपर इसे शास्त्रकारोकी काकजघा माना जा सकता है। यूनानी 'रिज्लुल्गुराव'का अर्थ 'कागजंघा' है। इसीसे किसी-किसीने इसे काकजघा लिखा है। किंतु आधु-निक भारतीय वैद्योमें इसके सबधमें बडी मतभिन्नता पाई जाती है। कोई इसे 'मसी' तो कोई 'आतरीलाल' बतलाते है। अस्तु हकीमोने भी इसे मसी आदि ही समझा है। किन्तु जब भारतीय काकजघाका ही निश्चय नही हुआ है, तब रिज्लुल्गुराबको मसी कैसे माना जा सकता है। यदि उपर्युक्त पौधोमेसे किसी एकको काकजघा मान लिया जाय तो उसे रिज्लुल्गुराव माना जा सकता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यूनानी हकीमोके मतसे रिव्लुल्गुराव प्रमाथि (अवरोधोद्घाटक), वातविलयन, शूल एव पेटकी मरोडके लिए हितकर, जीर्ण अतिसारको बन्द करनेके लिये बहुत लाभकर तथा कटि, सधि, घुटना एव पेटके दर्दको मिटानेवाला है। इसे बकरीके मासमे पकाकर खानेसे अगोकी थकावट (मादगी) और दर्द आराम होता तथा दस्त बन्द हो जाते है। कहते है कि दस्तोको बन्द करनके लिए इसकी जड इतनी गुणकारी है कि एक व्यक्तिको २० वर्षसे दस्त हो रहे थे वह इससे बद हो गये। कोई-कोई इसे क्षोभरहित कोष्ठमार्दवकर (मृदुसारक) बतलाते है। इसकी रसक्रिया (उसारा)को पानीमे घोलकर सधियोपर लगानेसे सधिशूल आराम होता है। अधिक कष्ट होनेपर ७ ग्राम (७ माशे) वह दवा पानीमे मलकर और उसमे ७ ग्राम (७ माशे) लुफाह (बेलाडोना)की जड पीस-मिलाकर लगानेसे बडा लाभ होता है। मात्रा–अकेला ४ से ९ ग्राम (४॥ माशे से ९ माशे) तक, माजून ४॥ ग्राम (४॥ माशे) तक, मतातरसे अकेला वातरक्तके लिए ७ से १० ५ ग्राम (७-१०॥ माशे) तक खा सकते है। गोलीके रूप मे ३ ५ से ४ ५ ग्राम (३॥-४॥ माशे) तक सेवन करना चाहिये।

●

(१२५) काकडासींगी

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family Anacardiaeae)

नाम—(हि०) काकडासी (-सिं-) गी, (म०) शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी, (व०) काँकेडा-शृङ्गी, (प०) ककडसिंगी, काकडासिंगी, (म०) काकडाशिंगी, (गु०) काकडासिंगी, (क०) काकडसिंगी, (लै०) पास्टासिआ ईन्टेगेर्रीमा (**Pistacia integerrima** Stewart), (अ०) क्रैब्स क्ला (Crabs claw)।

उत्पत्तिस्थान—पेशावरकी घाटी, सुलेमान पहाड, हिमालयकी उत्तर-पश्चिम श्रेणियाँ तथा सिंध नदीसे कुमाऊँ तक शिमलाके पासके स्थानोमे 'काकड' (पजाबीमे 'कक्कर') नामक वृक्ष होते है।

वर्णन—यह काकड नामक पतझडवाले एक ऊँचे वृक्षके पत्तो एव टहनियोपर लगा हुआ एक प्रकारका शृंग-सदृश कीटगृह (Gall) है। समय आते ही पत्तोकी गाठोपर अर्बुदाकार चिह्न (Galls) पडकर बढता हुआ शृगाकार हो जाता है। इसीको काकड़ासिंगी कहते है। बाजारमें मिलनेवाली काकडासीगी कठिन, भीतरसे पोली, हलकी, अनियत आकारवाली लगभग ३ ७५ से० मी० (१॥ इच) लम्बी बकरीके सीगके समान, नोकदार, कालापन लिये लाल और स्वादमे कसैलापन लिये कुछ कडवी होती है।

वक्तव्य—बहुत प्राचीन यूनानी निघटुग्रन्थोमे काकडासिंगीका उल्लेख नही मिलता और न इसके अरबी-फारसी नामोका ही उल्लेख उक्त ग्रन्थोमे मिलता है। मख्जनुल् अद्विया और मुहीत आजम इत्यादि उत्तरकालीन ग्रन्थोमे काकडासिंगी नाम से इसका उल्लेख मिलता है। इनके मतसे यह भारतीय द्रव्य है।

रासायनिक सगठन—इसमे ७५ प्र० श० टैनिन होता है।

कल्प तथा योग—सफूफ काकडासिंगी।

प्रकृति—पहले दर्जेमे उष्ण और दूसरेमे रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०)

गुण-कर्म—श्लेष्मनिस्सारक, उपशोषण, दीपन, ज्वरघ्न, और श्वास-कासहर है।

उपयोग—इसको अधिकतया अकेले या अन्य औषधद्रव्योके साथ कास और कफज कृच्छ्रश्वासमे शहदमें मिलाकर चटाते है। विशेषत बच्चोकी खाँसीमे यह अत्यन्त गुणकारी है, यहाँतक कि कालीखाँसीमें भी लाभदायक सिद्ध होती है। अहितकर–यकृतके रोगोको। निवारण–कतीरा और बबूलका गोद। प्रतिनिधि–मुलेठी। मात्रा–१ से २ ग्राम (१ से २ माशा)। तक।

आयुर्वेदीयमत—काकडासिंगी कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृषा कास, हिक्का, अरुचि और वमनका नाश करनेवाली है (च० सू० अ०४, भा प्र.)।

नव्य-मत—काकडासिंगी कषाय, तिक्त, उष्ण, कफघ्न और सग्राहक है। कफरोगोमे काकडासिंगी विशेष उपयोगी है। नये और पुराने श्वासनलिकाशोथमें इससे जमा हुआ कफ गिरता है और नया कफ उत्पन्न नही होता। श्वासनलिकाओको श्लेष्मल त्वचाको इससे शक्ति मिलती है। श्वासनलिका शोथमें गलेमे शिथिलता उत्पन्न होती है और कौआ वढता है, जिससे अकारण (कफरहित) खांसी आती है, वह इससे वन्द होती है। वडे मनुष्योकी अपेक्षया यह शिशुओको विशेष अनुकूल पडती है। काकडासिंगी, अतीस, वच और नागरमोथा का चूर्ण (वाल-चातुर्भद्र चूर्ण) वालकोको देते है। कफरोगोमे कभी-कभी उलटी और विरेक होते हैं, तव काकडासिंगीसे विशेष लाभ होता हैं। आमाशयके प्रदाहसे उत्पन्न वमन, हिक्का, जीर्ण अतिसार और जीर्ण आँव मे काकडासिंगीका उपयोग करते है।

●

(१२६) काकनज।

फैमिली सोलानासे (Family Solanaceae)

नाम—क्षुप (अ०) काकनज, (अल्-), काकिनज, (फा०) काकन, अरूसक-पसे-पर्द, अरूसक-दर-पर्द, अरूस-दर-पर्द, (शीराजा) कचूमन, (मु०) खमरी मरजा, (यू०) स्ट्रुख्नोस अह्सि ककावोस, फुसेंल्लिस, फुसेलीस, (रू०) वेसिकेरिआ (Vesicaria), हेलिकाकावुस (Helicacabus), (ले०) फीजालिस आल्काकेंजा (**Physalis alkakengi** Linn), (अं०) विंटर-चेरी (Winter-cherry), एल्केकेंजी (Alkekengi)। फल (अ०) हुव्वकाकनज, हुव्वुल्लहू, जौजुल्मर्ज, (फा०) काकन, अरूसक-पसे-पर्द।

वक्तव्य—फारसी 'काकन' सज्ञासे काकनज अरवी वनाया गया है। अरवी वैद्यकीय कोशग्रथोमे अरूसक को वीरवहूटीकी तरहके एक कीडेका नाम लिखा है। डीमक ने 'अरूसक-पसे-पर्द' का परदेके पीछे (आडमें) दूल्हन' ऐसा अर्थ किया है। प्राचीन यूनानी 'स्ट्रुख्नोस' सज्ञाका व्यवहार जिसका आधुनिक रूपान्तर स्ट्रिक्नॉस (Strychnos) है, काकमाची कुलके उद्भिजके अर्थमें करते थे। परन्तु अधुना उक्त संज्ञाका व्यवहार कारस्करादि कुलके अर्थमे होता है। इसकी रूमी सज्ञा 'हेलिकाकावस' यूनानी 'अह्लिकाकाबोस' से व्युत्पन्न है। इसके हव्वुल्लहू आदि सज्ञाओसे यह ज्ञात होता है कि यह मदकारि अनुमान किया जाता था। इसके यूनानी, रूमी, फारसी और अरवी इत्यादि सज्ञाओके अर्थका विचार करनेसे यह विदित होता है कि यूनानी और रूमी चिकित्सक इसे वस्तिरोगोपयोगी अनुमान करते थे। प्राय यूनानी निघटुग्रथोमें इसके हिंदी नाम 'राजपूतिक' और 'वनपूतिका' दिये गये है। डीमकने इसका सस्कृत नाम 'राजपुत्रिका' लिखा है। डॉ० वामन गणेश देसाईने इसकी एक सस्कृति सज्ञा 'हेमन्तफल' भी लिखा है। परन्तु ये नवीन कल्पित सज्ञाएँ है। किसी-किसीने इसका हिन्दी नाम 'पपोटन' भी लिखा है। परन्तु पपोटन 'देशी काकनज' वा 'पुनीर (**Withania coagulans**)' का नाम है। वि० दे० 'असगध देशी'।

उत्पत्तिस्थान—फारस, दक्षिण यूरोपसे जापान तक और सयुक्तराज्य अमरीका, भारतीय वाजारो विशेषकर वम्वईमे इसके फल ईरानसे आते है।

वर्णन—यह मकोयकी जातिकी एक विदेशीय वनस्पति है। फल मकोयके फल से वडा, लाल रगका होता है। फलत्वक् मसृण, चमकदार, ललाई लिये भूरी और अत्यन्त झुर्रीदार होती है। इसके भीतर चपटे, वृक्काकार, हल्के

भूरे रगके बहुसख्यक बीज भरे होते हैं। मात्रा—काकनज शब्दसे इसका फल विवक्षित होता है। शुष्क फल मद लाल, लगभग ८ ३मि मी से १ २५ से मी (१।३-१।२ इच) व्यासमें, गोलाकार, द्विकोपयुक्त जिनमें असख्य सफेदी लिये अडाकार (Ovoid), चपटे (वृक्काकार) बीज होते है। लाल विस्फारित (Inflated) वाह्यदलकोप (Calyx) लगभग १ इच व्यासके कभी-कभी फलमे लगे रह जाते है। स्वाद तिक्ततालिये मधुर, गध कुछ नही। वक्तव्य-भारतवर्षमे भी काकनजकी जातिकी एक वनस्पति होती है जिसे पनीर या देशी काकनज (**Withania Coagulans** Dunal) कहते है। यह गुण और स्वरूपमे वास्तविक काकनजसे सर्वथा मिलती-जुलती होती है। इसी कारण बम्बईमे जहाँ वास्तविक काकनज ईरानसे विक्रयार्थ आता है, लोग इसे काकनज कहनेके भ्रममे पड जाते है, परन्तु काकनज भारतीय पैदावार नही है। इसी प्रकार पजावमे टकारी वा चिरपोटा (**Physalis minima**)को काकनज कहते है। वास्तविक काकनज न होने पर भी वे दोनो इसके उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

उपयुक्त अग—पत्र, लाल और पका हुआ फल। तीन वर्ष तक इसमें वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—फलमें मैलिक एसिड, सिट्रिक एसिड, साइट्रोन, एक उत्पत पदार्थ, शर्करा, लवाब, पेक्टिन, काष्ठतन्तु और जल ये द्रव्य होते है। पत्र एवं पुष्प-वाह्यावरण (Calyx)में काकनजीन (फायसेलीन) नामक एक अक्रिस्टली तिक्त सत्व होता है।

कल्प—खाण्डव (जुवारिश), चक्रिका (कुर्स) और माजून इत्यादि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्वापजनन, मूत्रल एव बस्ति-वृक्क रोगोमे उपकारी, पित्तरेचन, यकृत्सशोधन और सूत्र एव ब्रध्नाकारकृमि-नि सारक है। काकनज वृक्क एव बस्तिरोग, अश्मरी, बस्तिवृक्कस्थ व्रण और मूत्र-मार्गस्थ व्रणमें लाभ पहुँचाता है। पित्तज कामला, पित्तसचयजन्य यकृद्विकार और यकृच्छोथमें भी यह लाभकारी है। दोषविलोमकरण हेतु इसके ताजे पत्रको प्रारभिक सूजन पर लेप करते है। श्वयथुविलयन और ग्रंथिविलयनके लिए काकनजका लेप लगाते है। काकनजकी बनी चक्रिकाये (कुर्स काकनज) वस्तिवृक्कगत व्रणके कारण होनेवाले सपूयमूत्रमे गुणकारी है। अहितकर—अगको शिथिल एव सुस्त करता है। निवारण—गुलकद। प्रतिनिधि—मकोय। मात्रा—५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

नव्यमत—यह मूत्रल और ज्वरघ्न है। विपम ज्वरो तथा वातरक्त और आमवात जनित मूत्र विकारोमें इसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है। बस्ति और वृक्क विकारोके लिए इसके फलको दूधमे पकाकर और चीनी मिलाकर सेवन करनेकी अभ्यर्थना जोसेफ मिलर महादेय करते है। कामलाके लिए भी इनकी अभ्यर्थना की जाती है।

●

(१२७) काजू

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) काजू (ट्र), काजूवादाम, (फा०) वादामे फिरगी, (स०) काजूत (क), वृत्तारुष्कर—(नवीन); (म०, गु०) काजू, (मेवाड) काजूकुली, (व०) काजू वादाम (गिरी), काजूमेव (फल), हिजली वादाम; (मारवाड) काजूगुली, (ले०) आनाकार्डिअम ऑक्सिडटाले (**Anacardium occidentale** Linn), (अ०) केश्यू नट (Cashew-nut)।

उत्पत्तिस्थान—ट्रॉपिकल (या दक्षिण) अमेरिकाका मूलनिवासी है। लगभग ४००साल पहले पुर्तगाली इसे ब्राजीलसे भारतवर्षमें ले आये। अब दक्षिण भारतवर्षके समुद्रतटीय जगलो, विशेपत मद्रास और केरलमे पुष्कल, अशत बम्बई, मालाबार तथा उडीसामें इसके वृक्ष होते है। कुछ अशोमे यह पश्चिम बगालके मेदनीपुर जिलेमें भी उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह एक ९ मीटरसे १२ मीटर (३०-४० फुट) ऊँचे, बडे वृक्षके फलका मग्ज है। फल—वृक्काकृति, मसृण, भूरापन लिये (या सफेद राखकी तरह) लगभग २ ५ सें० मी० (१ इच) लम्बा, १ २५ से० मी० (½ इच) चौडा और मोटा, इसके ऊपरका मोटा छिलका सुषिरपूर्ण होता है। इसके भीतरका मग्ज वृक्काकार, महीन छिलके-के भीतर और सफेद रगका होता है। इसे काजू या काजू बादाम कहते है। यह चिकना, मधुर और स्वादिष्ट होता हैं तथा स्वादमें बादामसे कम नही होता। भूननेसे या नमकीन बनानेपर इसका स्वाद बहुत बढ जाता है। गिरी प्राप्त करनेके लिए गुठली (Nut)को भूनते है। फलको ताजी अवस्थामे बडे चावसे खाया जाता है। इसका रग लाल-पीला होता है और आकारमें यह बादामसे तीनगुना होता है। भिन्न-भिन्न श्रेणीके काजूका रग, आकार और चेहरेमे बहुत अन्तर होता है।

वक्तव्य—यूनानी निघण्टुग्रन्थोमें सर्व प्रथम मुहीतआजम में काजू नामसे इसका उल्लेख मिलता है। काजू शब्द केश्यूनटके स्थानीय नाम ब्राजील शब्द 'आकाजन (Acajan)'से व्युत्पन्न है।

रासायनिक सगठन—इसके छिलकोमेंसे एक प्रकारका काला कडुआ (तेजाबकी तरह तीक्ष्ण) तथा अति-सवेदनशील, त्वचाके लिए भयकारी तेल प्राप्त होता है। इसे शरीरपर लगानेसे छाले उठ आते हैं। इसकी गिरीमे ४१ ६ प्रतिशत एक प्रकारका हलका पीला तेल (स्नेह) निकलता है। इसके अतिरिक्त इसमें औसतन प्रोटीन ३१ २ प्रति०, धातव द्रव्य २ ४ प्रति०, शर्करा २२·३ प्रति०, सुधा ० ५ प्रति०, फॉस्फोरस ० ४५ प्रति०, लोहा ५ ० (मि० ग्रा०) प्रति० और १ ३ प्रति० सीठी होती है।

इसके अतिरिक्त हर १०० ग्राम काजूमे विटामिन 'A (कैरोटीन)' १०० मि० ग्रा०, थियामिन (Thiamin), जो वाततन्तुओ एवं पाचनयन्त्रको कार्यक्षम रखनेमें आवश्यक है ६३० मि० ग्रा०, नियासिन (Niacin) २ ९ मि० ग्रा० तथा रिबोफ्लेवीन जो बुढापेको दूर रखनेके लिए आवश्यक है १९० मि० ग्रा० होते है।

कल्प—मक्खन, दूध, दही, बिस्कुट, केक आदि।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—काजू बृहण, सौमनस्यजनन, हृद्य, शुक्रल और वाजीकर है। यह वृक्क, स्मृति और मस्तिष्कको शक्ति प्रदान करता है (मेध्य एवं बुद्धिवर्धक है)। इसे नोहार खाकर ऊपरसे थोडा शहद चाटनेसे विस्मृतिरोगका नाश होता है। शीतल एव तर प्रकृतिके लिए यह भिलावेसे कम नही है (मुहीत)। अहितकर—गरम प्रकृतिवालोके रक्तमे उष्णता उत्पन्न करता एव पित्तकारक है। निवारण—खट्टा अनार और सिकजबीन।

आयुर्वेदीय मत—काजू कषाय, मधुर, उष्ण, लघु, धातुवर्धक तथा वात, कफ, गुल्म, उदररोग, ज्वर, कृमि, व्रण, मन्दाग्नि कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, सग्रहणी, अर्श और अफाराको दूर करनेवाला है (नि०र०)।

नव्यमत—काजूका मग्ज पोषणकर्ता, स्निग्ध और स्नेहन है। तैल उत्तम स्नेहन है। अविराम और चिरकारी वमनसे पीडित अति दुर्बलरोगियोके लिए काजू उत्तम खाद्य है। क्षोभक विषोके लिए इसका तेल यान्त्रिक एव रासायनिक प्रतिविष (Mechanical & Chemical antidote) है। यह न केवल आमाशय और आँतोके भीतर स्तर करनेवाली झिल्लीकी विषजन्य क्षोभसे रक्षा करता है और इसको विलयन और शोषण दोनोसे बचाता है, अपितु यदि सयोगवश क्षार हुआ तो उसे साबुनके रूपमे परिणतकर उसके प्रभावको नष्ट (निर्विषीकरण) भी करता

हैं। यह मलहमो और इतर वहि प्रयोगके औषधोके लिए एक उत्तम अनुपान (Vehicle) भी है। तेल बादाम और जैतूनके तेलका उत्तम प्रतिनिधि है (डॉ० मोहिउद्दीन शरीफ)। काजूका आदर अधिक खाद्य-मूल्यके कारण होता हैं। इसका व्यवहार खाद्य तथा दवाके रूपमें किया जा सकता है। खानेके बाद जो फल खाये जाते है, उनमें काजूका एक श्रेष्ठ स्थान है। वस्तुत भोजनके बाद काजूके साथ और कोई सूखा फल मुकाबिला नही कर सकता। सूखे मीठे फलोके साथ यह बहुत अच्छी तरह ग्रहण किया जा सकता है और कभी-कभी किसमिस, खूबानी, खजूर तथा अजीरके साथ खाया जाता हैं। इस मिश्रणसे इसका स्वाद और खाद्य मूल्य ही नही बढ जाता है, अपितु इनसे यह एक निर्भर योग्य रोचक स्वादमे परिणत होता है। कोष्ठशुद्धिके लिए रोज करीब-करीब २० दाने एक मुट्ठी किशमिसके साथ लिये जा सकते है (डॉ० कुलरजन मुखर्जी)।

●

(१२८) कायफल

फैमिली : मीरिकासे (Family . Myricaceae)

नाम—(हि०, म०, गु०) कायफल, कायछाल, (अ०) अजूरी, ऊदुल्बर्क, कदूल, (फा०) दारशीश्आन, (स०) कट्फल, (कु०, गढ०, नै०) काफल, (व०) कट्फल, कायछाल, (लै०) मीरिका एस्कूलेंटा (Myrica esculenta Buch-Ham) (पर्याय—*M nagi Hook f pp non Thunb*), (अ०) दी बॉक्समिर्टिल (The box myrtle)।

वक्तव्य—जब इन्द्रधनुप या विद्युत् इसके समीप पहुँचती है, तब इसमेसे हिंदी अगरसे भी अधिक सुगध आने लगती है, इसीलिए इसे अरबीमे 'ऊदुल्बर्क' (ऊद = अगर, बर्क = बिजली) कहते है। कदूलका उच्चारण 'बुहीन'मे 'किन्दूल' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर पजाब, गढवाल, कुमाऊँ, नेपाल और खसिया पर्वतपर इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक पतझड वाले लगभग ९ मीटर (३० फुट) ऊँचे वृक्षकी छाल हैं। मात्र कायफल शब्दसे यह छाल ही अभिप्रेत होती है। छाल १ २५ से० मी० (½ इच) मोटी, भारी, लालई लिए, स्वादमे चरपरी या चरपराहट लिए कडुई और कसैली होती है। इसमे वर्षोतक वार्य रहता है। छालका चूर्ण सूँघनेसे छीके आने लगती है। इसके वृक्षमे आश्विनमे मार्गशीर्ष तक फूल आते है, जो लाल रगके तथा सुगधित होते है।

उपयुक्त अग—वृक्षकी छाल, छालका चूर्ण या क्वाथ और पुष्पतैल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क, मतातरसे पहले दर्जेमे गरम और दूसरेमें खुश्क। इसमे शीत और सग्राही उभयवीर्य है। अतएव यह समिश्रवीर्य (मुरक्किबुल्कुवा) है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा०नि०) है।

गुण-कर्म—यह ग्रन्थिविलयन (मुहल्लिल), वाजीकर, सग्राही (काबिज) है। अन्त्र और आमाशयकी वायुको विलीन करता और उनके गाढे द्रवोको सुखाता है। वातनाडियोको बल प्रदान करता है और प्रकोथको नष्ट करता है। इसका नस्य की भाँति उपयोग करनेसे यह नाककी श्लेष्मल कलापर सक्षोभ उत्पन्न करके छीकें लाता है और मस्तिष्कके द्रवोको आकर्पित करता, फुफ्फुसोसे श्लेष्माका उत्सर्ग करता और रक्तनिष्ठीवन बन्द करता है।

उपयोग—कायफलको महीन पीसकर तिल इत्यादिके तेलमे मिलाकर पक्षवध, अर्दित और कम्पवात आदिमें मर्दन करते हैं। इसका सूक्ष्म चूर्ण दूपित व्रणोपर छिडकनेसे प्रकोथ दूर होता है, और उनका शोपण-रोपण होता है। मुखपाकमे प्रकोथनिवारणके लिए तथा दतशूलमे शूलको शात करनेके लिए इसके काढेसे गण्डूप (गरगरा)

कराते हैं। वेदना निवारण एवं दृढताके लिए इसे मजनोंमें डालकर दाँतोंपर मलते हैं। शीतल शिर शूल, शीतल प्रसेक और प्रतिश्यायमें इसको बारीक पीसकर अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ हुलासकी भाँति उपयोग करते हैं। आमाशयशूल, उदराध्मान और कफज कासमें इसका काढा पिलाते हैं। खाँसीमें इसे मधुमें मिलाकर चटाते हैं। अहितकर—यकृत्प्लीहाको। निवारण—मस्तगी। प्रतिनिधि—असारून। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कायफलकी छाल कटु, उष्णवीर्य, सधानीय, शुक्रशोधन, वेदनास्थापन, रुचिकर तथा कास, श्वास, ज्वर, प्रतिश्याय और मुखरोगका नाश करनेवाली है (च०सू०अ० ४,सु० सू०अ० ३८,रा० नि०)।

नव्यमत—कायफलकी छाल कटु, तिक्त, सुगन्धि, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, उत्तेजक, वातहर, शोथघ्न और गर्भाशयोत्तेजक है। ज्वरमें कायफलसे पसीना आता है, शरीरकी पीडा कम होती है, सरदी और सिरका दर्द कम होता है और छातीमें कफ हो तो ढीला होकर निकलने लगता है। अग्निमांद्य, अरुचि, कुपचन, अतिसार, गलेका शोथ, कास और श्वासमें कायफलका उपयोग करते हैं। कायफल, केसर और काले तिलकी गुडके साथ गोली बनाकर खिलानेसे पीडितार्तवमें लाभ होता है। कपडेमें कायफलके चूर्णकी पोटली बनाकर योनिमें रखनेसे गर्भाशयकी सकोचविकासक्रिया तीव्र होकर आर्तव ठीक तरहसे आने लगता है। मूर्च्छा, जुकाम और सिरके दर्दमें कायफलका चूर्ण सूँघनेको देते हैं। कायफलका चूर्ण छिडकनेसे अथवा इसके क्वाथसे व्रणको धोनेसे उसका शोधन-रोपण होता है। शरीर शीतल पडनेपर कायफलके चूर्णकी मालिश करते हैं।

कायफलके फूलोंका तेल (दुह्नुल् कन्दूल)

निर्माण-विधि—इसके फूलोंसे गुलरोगन वा रोगन गुलबनफशा और बादामकी भाँति तेल बनाते हैं। यदि बादामके स्थानमें साफकी हुई तिल्ली हो, तो यह अधिक सुगंधित होता है। प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कडी सूजनको उतारता है। वातरक्त और शीतजन्य संधिवातमें इसे लगानेसे उपकार होता है। इससे शिथिलता मिटती है। इसके नस्यसे मस्तिष्ककी झिल्लियोंमें रुका हुआ वायु विलीन होता और मस्तिष्कके अवरोधोंका उद्घाटन होता है। अस्तु शिर शूल, प्रसेक, अर्धावभेदक और अपस्मारमें इससे लाभ होता है, अर्धांगवात और अर्द्धावभेदकमें इसके अभ्यगसे उपकार होता है तथा मस्तिष्क और वातनाडियोंके रोग आराम होते हैं। यह वाजीकर और ध्वजोच्छ्रायकारक है।

●

(१२९) कालमेघ

फ़ैमिली : अकैन्थासे (Family Acanthaceae)

नाम—(हिं०) कालमेघ, कलपनाथ, महाभाग, चिरैता (राँची), भूनीम (उडिया), (फा०) नैनिहावदी, (स०) भूनिम्ब, (व०) कालमेघ, (म०) पाले किराईत, ओले किराईत, (गु०) लीलु कारियातु, (लें०) आन्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा (**Andrographis paniculata** Nees), (अ०) ग्रीन चिरेटा (Green chiretta)।

वक्तव्य—डॉ० दत्त स्वरचित हिन्दू मेटीरिया मेडिकाके पृष्ठ २१६पर लिखते हैं कि कतिपय लोगोंके विचारसे इसका संस्कृत नाम 'यवतिक्ता' है, महातिक्त और सखिनी जिसके पर्याय हैं। परन्तु यवतिक्ता नाम, किसी योगमें देखा नहीं गया और महातिक्तसे नीम अभिप्रेत है। डॉ० ऐन्सलीके कथनानुसार भारतीय प्रायद्वीपके दक्षिणी भागमें फ्रासद्वीपसे लाकर लगाई गई है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे जगलोके पथरीले स्थानोमे विशेषकर बगालमे यह स्वयभू होता है। कभी-कभी लगाया हुआ भी मिलता है।

वर्णन—इसके सीधे खडे क्षुप, १-३ फुट तक ऊँचा हरे रगका, कांड चौकोन, नीचे चिकना तथा ऊपर रोमश-रसस्रावि, पत्तियाँ अखण्ड, आमने-सामने रेखाकार प्रासवत् चिकनी और ३ ७५ सें० मी०से ६ २५ सें० मी० (१-५से २-५ इञ्च) लम्बी होती है, पुष्प सवृन्त, श्वेत या हलके जामुनी रगके होते है। फल १·७५मे २ सें० मी० (०·७से ० ८ इञ्च) लम्बे, यवाकार और समग्र क्षुप, अत्यत तिक्त होनेमे बगालके वैद्य इमे यवतिक्ता मानते हैं।

उपयुक्त अग—समग्र क्षुप, पत्र और मूल। संग्रहकाल–वर्षा ऋतुके अत और शीतके आरम्भमें इसे छायामें सुखाकर सूखे स्थानमें रखना चाहिये। मात्रा–चूर्ण ५-१० रत्ती, माशा, क्वाथ २-४ तोला।

रासायनिक सगठन—इसमे कालमेघिन (Kalmeghin) और एण्ड्रोग्रेफोलॉइड (Andrographolide) नामक एक तिक्त सत्व पाया जाता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूल पत्र और क्षुप (पचाग) दीपन, कटुपौष्टिक, तिक्त, ज्वरघ्न, कृमिघ्न और रसायन है तथा अजीर्ण, प्रवाहिका, और दौर्वल्यमें उपकारक है। ज्वरमें इसका फाट देते है। दो भाग कालमेघ और एक भाग कालीमिर्चका चूर्ण १॥ माशाको मात्रामें मलेरिया ज्वरमे देते है। यकृत्की वृद्धि, जीर्णज्वर और शोथमें इसके सेवनसे दस्त साफ होता है, भूख लगती है और शरीर सुस्थ होता है। चिरायताके समान गुणकारी होनेसे ही इसे चिरायताके नाम दिये गये है। बगालमे जीरा, अजमोद, लवग, जायफल और बडी इलायचीके बीज-इनके चूर्णको कालमेघके स्वरसकी ५-७ भावनाये दे, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, माताके दूधमे मिलाकर बालकोको अतिसार, पेटका दर्द, वमन आदिमें देते है। इस योगको 'आलुई' कहते है। हरीगिलोय और नौसदार, कल्पनाथके पत्ते और कालीमिर्च समभाग ले-कूट-छानकर जलसे पीसकर चना प्रमाण या उडद प्रमाणकी गोलियाँ बनाकर ज्वरके आवेगसे पूर्व दो गोलियाँ देनेसे लाभ होता है।

●

(१३०) कालादाना

फैमिली : कॉन्वॉलवुलासे (Family . Convolvulaceae)

नाम—(हिं०, ब०) कालादाना, (अ०) हब्बुन्नील, कुर्तुम हिन्दी, दम्अतुल् उश्शाक, (फा०) तुख्मेनील, तुख्मेकबूक, (स०) कृष्णबीज, श्यामबीज (आ०वि०), (क०) सियाहदाना, (कु०) भौरड, (गु०) कालादाणा, कालो-कूपो, (म०) कालादरणा, (ले०) ईपोमेआ नील **Ipomoea nil (L.)**। पर्याय–*I hederacea* Auct non Jack।

वक्तव्य—मख्जनुल् अदविया और मुहीत आजम में 'हब्बुन्नील' और 'कालादाना'के विवरण प्रसगमे इसके एक अन्य भेदका भी उल्लेख किया गया है, जिसको बगला भाषामे 'अपराजिता', हिन्दीमें 'विष्णुक न्ता' और लेटिनमे क्लीटोरिआ टेर्नटेआ (**Clitoria ternatea**) कहते है। यह वस्तुत माजरियून हिन्दी है जिसको सस्कृतमे अपराजिता और गोकर्ण कहते है। बुस्तानुल् मुफरदातमें हरमलका भी प्रसिद्ध नाम कालादाना लिखा है जो वास्तवमे ठीक नही है। सुतरा विभिन्न वैद्यकीय ग्रन्थोमे यह नाम तीन विभिन्न औषधियोके लिए आता है। अर्थात् एक हब्बुन्नीलके

लिए, दूसरे 'माजरियून हिन्दी' के लिए और तीसरे 'हरमल' के लिए। परन्तु जहाँतक खोज किया गया है हरमलके लिये यह नाम सर्वथा त्रुटिपूर्ण है और अपराजिताको जो वस्तुत माजरियून हिंदी है, कालादानाका भेद कदापि न समझना चाहिये। सुतरा भविष्यमे 'कालादाना' सज्ञाका आरोप केवल 'हब्बुन्नीलके' लिए होना चाहिये।

इतिहास—प्राचीन मुसलमान चिकित्सकोने 'हब्बुन्नील' के नामसे इस औषधिका वर्णन किया है। किंतु सस्कृतके प्राचीन द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोमे इसका स्पष्ट उल्लेख नही पाया जाता। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय चिकित्साविशारदोको यह औषधि स्पष्टरूपेण ज्ञात नही थी।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक लताके प्रसिद्ध बीज है जो काले होते है, जिससे इसे 'कालादाना' कहते है। ये तिकोनिया होते है। तोडनेपर इनके भीतरसे सफेद मग्ज निकलता है। इसका स्वाद आरम्भमें मीठा और पीछे कडुआहट लिए चरपरा प्रतीत होता है। इसमे ३ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—इसमें फार्बिटिसिन (Pharbiticin) नामक एक राल लगभग ८ प्रतिशत होती है। यह राल जलापाके रालके समान होती है। गुणकर्ममे भी कालादाना जलापाके समान है।

उपयुक्त अग—बीज। इसको भाड मे भुना चूर्ण बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुणकर्म—बाहरी तौरपर उपयोग करनेसे कालादाना लेखन और आतरिक रूपसे तीव्र विरेचन कर्म करता है। यह पानीके समान पतला दस्त लाता तथा उदरज कृमियोको निकालता और रक्तको शुद्ध करता है। उर फुप्फुसशोधन, मूत्रजनन और आर्तवजनन इसके प्रधान कर्म है।

उपयोग—बाह्यरूपसे किलास और झाँईपर कालादानेको पीसकर पतला लेप (तिलाऽ) करते है। समस्त प्रकारके कच्छू (जर्ब) को नष्ट करने के लिए चीनीके साथ इसका चूर्ण बनाकर खिलाते है। सधिवात, वातरक्त जलोदर जैसे शीतल कफज रोगोमे विरेचनकी भाँति इसका उपयोग करते है। इसके खिलानेसे व्याकुलता एव उत्क्लेश उत्पन्न होता है। इसके निवारणके लिए इसके साथ हड या गुलाबका फूल मिला लिया जाता है। इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोके साथ खिलानेसे उदरकृमि मरते और निकल जाते है। अहितकर—शिर शूलकारक और व्याकुलताकारक है। निवारण—फलोका सत (रुब्ब) और अम्ल पदार्थ। प्रतिनिधि—सुद्दाबके बीज। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम० (१ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—श्यामबीज (कालादाना) रेचन है। शोथ, उदररोग, ज्वर, आनाह (पुरीपसग), सिरदर्द तथा उदावर्तमे इसका प्रयोग करते है। (आ० वि०)।

नव्य मत—इसकी क्रिया जालप अथवा निशोथके समान होती है। इससे पित्त, कफ और कृमि विरेकद्वारा निकलते है। जलोदर, आमवात और वातरक्तमे इसका प्रयोग होता है। कालादानाको बालूके साथ भाडमे भून, चूर्ण बना, चीनीके साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

●

(१३१) कालाबिच्छू

फैमिली पेडालिआसे (Family . Pedaliaceae)

नाम—(हिं०) बिछुआ, कालाबिछुआ (बिच्छू), कौआ, (व्रज) बिछुआ घास, (व०) बघनोकी, (बम्ब०,म०) विंछू, (गु०) विच्छिका, (लैं०) मार्टीनिआ आन्नुआ **Martynia annua** Linn (पर्याय *M diandra* Glox)।

उत्पत्तिस्थान—यह अमरीकाके मेक्सिकोका आदिवासी पौधा है जो विदेशागत होनेपर अब भारतवर्षमे बस गया है। मध्य वर्षाकालमे यह भारतवर्षके प्राय उजाड स्थानो तथा कूडा-करकटके ढेरोपर उगा हुआ देखा जाता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध क्षुप (९० से० मी० से १२० से० मी० या ३-४ फुट ऊँचा) के बीज है, जो काले, बहुत कठोर तथा रूपरेखामे विच्छूके समान होते है। इसके पिछले वा अग्रभागपर ३ तीक्ष्ण एव टेढे काँटे लगे होते है जिनके सिरे नीचेको मुडे होते है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वाजीकर तथा स्वाप एव पक्षवध आदि वातव्याधियोंमें प्रयुक्त तैलयोगोमे पडता है। पातालयन्त्रकी विधिसे निकाला हुआ इसके बीजोका तेल[1] (डढुआ) सफेद दागो (किलास)पर लगानेसे श्वित्रके दाग जाते रहते है और शरीरकी समस्त त्वचाका वर्ण समान हो जाता है। इसीलिए इस तेलको रोगन बर्स (श्वित्र-हर तेल) कहते हैं। खजाइनुल् अदवियामे हजरत शाह अब्दुल अलीमके श्वित्रमे परीक्षित प्रयोगोमेसे एक योग इस प्रकार दिया है—कालाविच्छू १ सेर और वकुची ३ पाव दोनोको खूब महीन पीसकर रखे। इसमे से ६ मा० प्रति-दिन प्रात काल तालाबके या वर्षाके इतने पानीमे मिलाकर, जितनेमे वह केवल भीग भर जावे अधिक नही, निरतर खाते रहे। यदि इतने से दस्त न आवे तो तीन-तीन माशा उत्तरोत्तर बढाते हुए १। तोला तक बढाकर देखें। जब दस्त आने लगे तब वहीपर रोककर सत्तर दिन तक सेवन करे। चालीस दिन औषध सेवन करनेपर श्वित्रका स्थान और उसका रूप आदि काला हो जायगा। पथ्यमे धोई हुई मूँगकी दाल आवश्यकतानुसार लहसुन या प्याजका बघार देकर, किंतु लाल या कालीमिर्च रहित, गेहूँकी रोटीसे खाते रहे। दालसे अरुचि होनेपर रुचिके अनुसार नमक और मसालेमे केवल प्याज और हल्दी पडा हुआ छागमास और रोटी खा सकते है। इसके सिवा अन्य सभी प्रकार-की तरकारी एव फलादि और आहार वर्जित हैं। औषधि-सेवनकाल मे आदिसे अन्त तक हर तीसरे-चौथे दिन चौथे पहर शीतल द्रव्य या औषध (तबरीद) पिया करे। औषधसेवनकी मर्यादा समाप्त हो जानेपर तबरीदकी (शीतल) औषधि प्रतिदिन दिनमे एक-दो बार पिया करे और पूर्ण लाभ होने तक बराबर पीते रहे। तबरीदकी औषधि—काहू-बीज, कासनीबीज, खीरा-ककडीके बीज, कुलफाके बीज और सूखा धनिया प्रत्येक चार माशा—इनको पानी में पीसकर ½ तोला मिश्री मिलाकर पीना चाहिये।

●

(१३२) कालीजीरी

फैमिली : कॉम्पोजीटे (Family Compositae)

नाम—(हि०) कालीजीरी, करजीरी, बनजीरी, (अ०) कमूनबर्री, (फा०) जीरए बर्री (सहराई), सियाह-जीरा जगली, (स०) अरण्यजीरक, वनजीरक, (द०, गु०, मा०, बम्ब०, कुमाऊँ) कालीजीरी, (म०) कडूजिरे; (गु०) कडवीजीरी, (ले०)सेंट्राथेरम् आन्थेल्मीन्टिकुम् **Centratherum anthelminticum** (Willd) Kuntze (पर्याय- *Vernonia anthelmintica* Willd), (अ०) पर्पल फ्लीबेन (Purple Flea-bane)।

वक्तव्य—करजीरीके फल (बीज) आपातत जीरे या स्याहजीरे जैसे होते है और इसके पौधे प्राय स्वय-जात पाये जाते है। इसीलिए इसको अरण्यजीरक या बनजीरी आदि नाम दिए गए है। किन्तु यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि वास्तवमे जीरेकी भाँति इसका व्यवहार नही होता। अरबी नाम कमून बर्री (कमून = जीरा, बर्री =

---

१. भभकेमे फलका निकाला हुआ तेल पामा आदि चर्म रोगोंमें उपयोगी बतलाया जाता है। (वि० व० पृ० १०२)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—ये दोनो ही प्रसिद्ध लताएँ है। दोनोमे अन्तर यह है कि पहलीकी पत्ती बडी जामुनके पत्रसे मिलती-जुलती तथा चिकनी और दूसरीकी पत्ती इससे छोटी और रोमश होती है। वास्तविक सारिवाके अधिक मात्रामे न मिलनेके कारण उत्तरप्रदेश आदिके बाजारोमे सारिवाके नामसे इन्ही लताओके काण्ड मिलते है। मूल सारिवा जैसे कालाई लिये भूरे रगके होते है। काण्डमे तो क्या इनके मूलमे भी कोई गध (सारिवा या अनन्तमूल तुल्य गध) नही होती। फिर भी काण्डत्वक्‌के रगके आधारपर इसे कृष्णसारिवा या श्यामालता कहते है।

उपयुक्त अग—मूल और काण्ड।

प्रकृति—सर्द एव खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कालीसर पित्त-कफ-सौदा तथा ज्वर, जलोदर और स्त्रियोके योनिरोग और अधिक रक्तक्षरण होनेके कारण हुए उसके क्षतको दूर करती है, पेटमे कब्ज उत्पन्न करती और शुक्रकी वृद्धि करती है। गुणकर्ममे यह सारिवा (अनन्तमूल)के समान होती है। प्रतिनिधि—अनन्तमूल, उशवा, चोवचीनी।

आयुर्वेदीय मत—कृष्णसारिवा मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, ग्राही, शुक्रकर तथा कफ, पित्त, तृपा, अरुचि, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, आम, विप, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर और अतिसारका नाश करनेवाली है। (सु० सू०, अ० ३८, ध० नि०, भा० प्र०)।

•

(१३४) काश्मीरी पत्ता।

फैमिली : रूटासे (Family : Rutaceac)।

नाम—(हिं०) का (क) श्मीरी पत्ता (-पट्‌ठा); (फा०) बर्गे तिब्बत, बर्गे कश्मीरी, कश्मीरीपत्तर; (गढ़०) नहर, (प०) नेर, (नेपाल) चुमलनी, (कु०) नेहर, (ले०) **स्कीम्मिआ लाउरेओला (Skimmia Laureola** Hook.)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयमे कश्मीरसे कुमाऊँ तक तथा देहरादून एव खसिया पर्वत आदि।

वर्णन—यह एक वनस्पतिके प्रसिद्ध पत्र है जो तेजपातके समान, किन्तु उससे बडे, चर्मवत् १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४-६ इच) लम्बे, १५ से० मी० से ३७॥ से० मी० (६ से १५ इच) चौडे, कुछ-कुछ मासल और मोटे होते है तथा शाखाओके अग्र पर पाये जाते है। पर्ण सरल धारवाले, आयताकार, ऊपरसे गोलाकार या लट्वाकार होते हैं। **कश्मीरमें इसे बेलपत्रकी भाँति उपयोग करते हैं।** पत्तियोका व्यवहार चिकित्सामे प्राय. दीपन-पाचन, वायुनाशक ओपधिके रूपमे होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुणकर्म—छिक्काजनन।

उपयोग—इसको अकेला या अन्य औषधियोके साथ बारीक पीसकर नस्यकी भाँति उपयोग करते है। अवरुद्ध प्रसेक और प्रतिश्यायकी दशामे यह अत्यन्त लाभदायक है और प्रसेकको जारीकर सिरदर्दको दूर करता है। प्रतिनिधि—नकछिकनी।

•

(१३५) काशिम

सदिग्ध एव अनिर्णीत द्रव्य ।

(यू०) Ligustikon (D 3 51)—Ligusticum इब्नुल्बैतार इसे काशिमुल् रूमी (सचिका ४, पृ० ४४) कहते हैं जिसे वे Kardilon (सचि० ४ पृ० ६५)से भिन्न वतलाते हैं । (अ०, फा०) काशिम ।

●

(१३६) कासनी

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—वन्य (स्वयजात) (हि०, प०) कासनी, (यू०) Seris (D 2 159), (अ०) हिंदवाऽ(-दि-,-दु-), (फा०) कासनी, कसनाज, (ले०) सिकोरिडम् इन्टीबुस (**Cichorium intybus** Linn), (अ०) एण्डिह्व (Endive), चिकोरी (Chicory), सकोरी (Succory) । उद्याजज (वागी) (हि०) कासनी, (क०) सञ्जे हद, (ले०) **सिकोरिडम एण्डीविया (Cichorium endivia** Linn), (अ०) दी गार्डेन एन्डिह्व (The Garden Endive) ।

वक्तव्य—'अञ्जुमन आराए नासिरी'के मतसे, यह 'कासान' जो समरकदके निकट एक नगर है, वहाँ प्रचुरतासे होती है इसलिए इसका कासनी नाम रखा गया है । अरवी हिंदुवाऽ इसके रूमी 'इन्टुवम' सज्ञाके वहुवचन 'इन्टुवा'से व्युत्पन्न है ।

उत्पत्तिस्थान—कासनी उत्तर-पश्चिम भारतवर्पमें ६,००० फुटकी ऊँचाईपर तथा कुमाऊँ, उत्तरप्रदेश, वजीरिस्तान, वलूचिस्तान, ईरान, पश्चिमी एशिया और यूरोपमे स्वयजात होती है । पजाव और कश्मीरमें इसकी खेती की जाती है । यूनानी दवा वेचनेवालोके यहाँ इसकी जड और वीज मिलते हैं । हिन्दुस्तानमे अच्छी कासनी उत्तरी पजाव और कश्मीरमें होती है ।

वर्णन—यह एक वहुवर्पायु क्षुप है । इसके दो भेद है—(१) जंगली (दश्ती व वर्री), और (२) लगाया हुआ (वुस्तानी या वागी) । वागीके भी ये दो भेद हैं—(१) इसका पौधा ९० सें० मी० से १८० सें० मी० (१-२ गज) या अधिक ऊँचा, शाखाएँ कोमल, पत्ते जंगलीकी अपेक्षया अधिक लम्बे-चौडे, खुरदरे, स्वादमे किंचित् तिक्त, फूल वडा, नीलवर्णका और प्रियदर्शन होता है । (२) पत्ते और फूल छोटे, फूल नीलवर्णके स्वादमे अत्यन्त तिक्त होते हैं । इसके वीज छोटे खाकस्तरी सफेद रगके, वजनमें हलके और स्वादमे तिक्त या फीके कुस्वाद होते हैं । कालाई लिये मोटे और भारी वीज उत्तम समझे जाते हैं । जड़ गोपुच्छाकार, गुदार, उपमूलयुक्त, लबाईके रुख झुर्रीदार, वाहरसे हलकी भूरी, भीतरसे सफेद, ऊपरकी त्वचा पतली, स्वाद फीका कुछ तिक्त एव लवावदार तथा निर्गन्ध होता है ।

उपयुक्त अग—पचाग, बीज और जड ।

रासायनिक सगठन—बीजोंमें एक प्रकारका मृदु तेल (Bland oil) होता है । जलाई हुई कासनीमे शर्करा, स्वतन्त्र तद्भव द्रव्य (Tree extractives), सेलूलोज (Cellulose), भस्म, वसा और नत्रजनीय पदार्थ होते हैं । जड़में नाइट्रेट और सल्फेट ऑफ पोटाश, लवाव, तिक्तसत्व और इन्युलिन (Enulin) ३६ प्रतिशत होते है । फूलमें एक प्रकारका वर्णरहित क्षारविलेय, उष्णजलविलेय एव सुरासारविलेय स्फटिकीय ग्लूकोसाइड होता है ।

कल्प तथा योग—**अर्क कासनी, अर्क कासनी सब्ज और आब मुरव्वकीन ।**

प्रकृति—हरी कासनीके पत्र प्रथम कक्षामें शीत एवं तर है । इसके पत्तोपर सूक्ष्म उष्ण घटक भी फैले होते है । इनका सगठन इतना शिथिल होता है, कि धोने मात्रसे नष्ट हो जाता है । अत कासनीपत्रको धोनेसे मना किया जाता है । सूखे पत्ते शीत एव रूक्ष है । जगली (छोटी)की अपेक्षया वागी (वडी) अधिक तर और शीत हैं ।

गुण-कर्म—कासनी तिक्त, फीकी, क्षारवाली, सग्राही और अवरोधोद्घाटक है। यकृत्के उन्नतोदर भागके अनुबधसे होनेवाले कासमे यह लाभकारी है। यह सताप तृष्णा, रक्त और पित्तका प्रकोप और रक्तकी उष्णता तथा पित्तकी तीक्ष्णताका शमन करनेवाली, मूत्रल, आर्तवजनन आमाशय-यकृत्-प्लीहा आदिके उष्ण शोथको विलीन करने तथा इन अगोकी उष्णताको नष्ट करनेवाली है। उष्ण शोथोमे इसका प्रलेप ठढक पहुँचाता है तथा दोषोको विलोम करता और शाति प्रदान करता है। यह आमाशय और यकृत्को बलप्रद और उष्ण यकृत्को सात्म्य है।

उपयोग—हृत्स्पन्दनमे इसके स्वरसमे सत्तू मिलाकर अथवा इसके हरे पत्ते जौके आटेके साथ पीसकर लेप करते है। गरमी एव पित्तके सिरदर्दमे हरी कासनीका पत्र-स्वरस अकेला या सिरका और चदनके साथ सिरपर लेप करते है। लालचदन, अर्कगुलाब और सिरकेके साथ पित्ती उछलने (शीतपित्त)मे ददोडेपर लगाते है। इसके पत्तोको पीस रोगन बनफशामे मिलाकर पित्तज नेत्राभिष्यंदमें नेत्रके चतुर्दिक् और पपोटोपर लेप करते हैं। इसका स्वरस यकृत्, आमाशय और प्लीहाका शोथ, कामला, पित्तज जलोदर, तृषा, उत्क्लेश तथा पित्तोद्वेगमे देनेसे लाभ करता है। इसके पत्रस्वरसमें अमलतासका गूदा और शर्बत तूत घोलकर गडूप करनेसे कण्ठशोथमें लाभ होता है। उष्ण आमवात एव वातरक्तमे इसे जौके आटेके साथ प्रलेप करते है। यकृच्छोथ और आमाशयशोथमे इसके रसमें दवाओको पीसकर लेप करते है। आमाशयको बल प्रदान करनेके लिए इसके पत्रस्वरसमें सिकजबीन मिलाकर पिलाते है। मूत्रल होनेके कारण मूत्रमार्गके शोधनार्थ इसका रस पिलाते है। अहितकर–खाँसीके लिये। निवारण–शर्करा और शर्बत बनफशा। प्रतिनिधि–शाहतरा वा हरी खतमी वा खुब्बाजीके पत्रका स्वरस। मात्रा–पत्रस्वरस १४ तोले (मव्जन), हरी कासनीका फाडा हुआ रस ४-५ तोले तक।

कासनीके बीज—

नाम—(हिं०, प०; गु०) कासनी, कासनीके बीज; (अ०) बज्र ुल् हिंदबाऽ, (फा०) तुख्मे कासनी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—पित्त एव रक्तसशमन, अवरोधोद्घाटक, मूत्रल, दीपन और पित्तज्वरनाशक है तथा यकृत्के रोगो मे लाभकारी है।

उपयोग—इसके गुणकर्म पत्रके समान है। बीजोके काढेका गडूप करानेसे मसूढोका दर्द मिटता है। इसे शर्बत बनफशाके साथ पीनेसे नीद आती है। कासनीके बीज अवरोधोद्घाटक और मूत्रल होनेके कारण यकृद्विकारज अवरोधजन्य कामला, जलोदर, यकृदवरोध, यकृच्छोथ और दोषसमिश्र एव जीर्णज्वर जैसे यकृत् और प्लीहाके रोगोंमे प्रचुरतासे प्रयुक्त किये जाते है। कभी पित्तज्वरोमें अन्य द्रव्योके साथ क्वाथ वा फाट बनाकर और कभी शीरा निकालकर पिलाया जाता है। यकृत्के अवरोधोके उद्घाटनके लिए तथा यकृत्के अमिश्र उष्ण विप्रकृति, पीत कामला और यकृत्के अनुबन्धसे होनेवाले जीर्णज्वरोमें कासनीके बीजोसे प्रस्तुत किये हुए चकीदए कासनी[1] और दरीदए कासनी[2]के योग (नुसखा) यूनानी औषधालयोमें प्रयुक्त होते है। अहितकर–आमाशयमें देर तक ठहरता है। कुस्वाद होनेसे कभी मिचली और उबकाई उत्पन्न करता है। प्लीहाको अहितकर, वृक्कको निर्बल करता तथा कास-

---

१—**नुसखा चकीदये कासनी**–कासनीके बीज १ तोलाको अधकुट करके रातके समय उष्णजलमें भिगो रखें। प्रात काल चार तहकी साफी (छनना)में उसके चारों कोने चार लकडियोंसे बाँधकर सात बार रगरेजोंकी रेनीकी भाँति टपकायें। इसके उपरात ४ तोले **शर्बत बजूरी** मिलाकर पिलायें।

२—**नुसखा दरीदये कासनी**–कासनीके बीज १ तोला और सेंधानमक १॥ माशा दोनोंको पानीमे पीसकर आगपर रखें। जब फट जाय तब नीचे उतारकर पिलायें। कभी सेंधानमकके स्थानमें ४ रत्ती नौसादर और योजित करते है।

श्वास करता है। निवारण–हालो, सुगंधिद्रव्य, सिकंजबीन, अनीसून, कतीरा और बबूलका गोंद। प्रतिनिधि–हरी कासनीका अर्क, तुख्म कुशूस, तुख्म खुरफा और तुख्म शाहतरा। मात्रा–७ ग्राम से १० ग्राम (७-१० माशा)।

कासनीकी जड़—

नाम—(अ०) अस्लुल् हिंदबाऽ, (फा०) बीखे कासनी।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीय कक्षामे रूक्ष।

गुण-कर्म—दोषपाचन, मूत्रल, आर्तवजनन, प्रमाथी, संशोधन, दोषतारल्यजनन, श्वयथुविलयन, रक्तशोधक और कफज्वरहर है।

उपयोग—दोषपाचन रूपसे यह कफज व्याधियो वा कफज्वरो और उदरविकृतिमे भी प्रयुक्तकी जाती है तथा उदरविकृतिमे प्रयुक्त योगोका एक उपादान यह भी है। मूत्र एव आर्तवप्रवर्तनके लिए भी इसका उपयोग करते है। श्वयथुविलयन होनेके कारण आशय (अहशाऽ) गत शोथ उदाहरणत यकृच्छोथ आदिमे यह उपयोग की जाती हैं। प्रमाथी, दोषतारल्यजनन और मूत्रजनन होनेके कारण संधिशूल, जलोदर और दोषसमिश्र ज्वरोमे इसका उपयोग करते है। अहितकर–मिचली करती है। निवारण–शुद्ध मधु। प्रतिनिधि–सौंफकी जड। मात्रा–७ ग्राम (७माशा)।

वक्तव्य—कासनीके हरे पचांगसे अर्क तैयार किया जाता है और ७-१४ तोलेकी मात्रामे उक्त रोगोमे प्रयुक्त होता है। कासनी पत्रस्वरसको भीतरी तौरपर प्राय फाडकर (मुरव्वक करके)[1] पिलाया जाता है।

नव्यमत—बल्य, मूत्रजनन और मृदुमारक। एक पाइंट उबलते जलमे २॥ तोले कासनीमूल डालकर बनाया हुआ काढेका स्वतंत्रतया उपयोग होता है तथा कामला, यकृद्वृद्धि, वातरक्त और आमवातिक विकारोमे प्रभावकारी सिद्ध हुआ हैं। यही कासनीका फाडा हुआ (मुरव्वक) पानी है।

●

(१३७) कासनी जंगली (दुधल)

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)।

नाम—(हिं०) जंगली कासनी, दुधल, कानफूल, बरन, (फा०) कासनी दश्ती, कासनी सहराई, (अ०) हिंदबाऽ अल्बर्री (इ० बैं०), बक्ले यहूदिया, (सं०) दुग्धफेनी (रा० नि०), (कश्मीर) हंज, हंद, (पं०) दूदल (ली), दुधल (ली) दूधबत्थल, कानफूल, (गु०) कानफूल, (बम्ब०) बथुरी, (लें०) टाराक्साकुम् आफ्फीसिनाले (**Taraxacum officinale** Weber), डेंडिलाइन (Dandelion)।

वक्तव्य—इब्नसीनाने 'तरख़श्कून' नामसे जंगली कासनीका उल्लेख किया है। लेटिन 'टाराक्साकुम्' शब्द सम्भवत इसीका रूपान्तर है। इस वनस्पतिके पत्तोके दंदाने सिंहके दाँतोके समान होते है। इसलिए अंग्रेजीमें इसे डेंडिलाइन कहते है। पौधेको तोडनेसे दूध (Latex) निकलता है। इसी आधारपर इसका संस्कृत नाम है, जिससे हिन्दी और पंजाबी नाम व्युत्पन्न है। इसके पुष्पव्यूहकी रूपरेखा प्रसिद्ध अलंकार 'कर्णफूल (कनफूल)'की भाँति होती है, जिससे हिन्दी, पंजाबी, गुजराती नाम 'कानफूल' व्युत्पन्न है। (अ०) तल्लख़श्कूक, तल् (र) ख़श्कूक (इ०बै० सचि० ३ पृ० १०२), (यू०) सेरिस (D 2 759), (अं०) Wild Succory। अल्तबरी के अनुसार यह अल्ख़सुल बर्री

---

[1] —कासनीके पत्रस्वरसको किसी मिट्टी आदिके पात्रमें आगपर पकायें। जब इसका पतला और गाढा भाग पृथक्-पृथक् हो जायँ तब पतले भागको लेकर काममें लेवें।

(Wild Lettuce lactica) है। 'पिजिश्कीनामा'के सकलयिता जनाव नाजिमुल् अतिब्बाके कथनानुसार 'टैरेक्सेकम्' संज्ञा यूनानी है जो 'तारास्सुव'से जिसका अर्थ 'सारककी ओर संकेतके हैं', व्युत्पन्न है। परन्तु डॉक्टर डाइमॉकके कथनानुसार उक्त सज्ञाकी वास्तविकता अज्ञात है। सभव है कि यह फारसी 'तरखश्कून' सज्ञाका अपभ्रश हो। मख्जनुल् अदवियामे 'हिन्दुबाऽ बर्री' और मुहीत आजममे 'कासनीदश्ती'के नामसे इसका विवरण किया गया है।

इतिहास—भारतीयोको इस औपधिका ज्ञान प्राचीन कालसे था। राजनिघण्टूक्त 'दुग्धफेनी' या 'कर्णफूल' उपर्युक्त औपधिके ही सस्कृत नाम है। अस्तु, जिन्होने यह लिखा है कि भारतीयोको इस औषधिका ज्ञान नही था, उन्होने प्रमाद किया है। प्राचीन यूनानी चिकित्साविदोने यद्यपि कई प्रकारकी कासनीका उल्लेख किया है, तथापि प्रतीत होता है कि उन्होने इस कासनीका उल्लेख नही किया है। इब्नसीनाके अतिरिक्त अन्यान्य मुसलमान चिकित्सकोने भी इसका वर्णन किया है। यूरूपमें ईसवी सन्की सोलहवी सदीमे ट्रैगस और मेथीओलस प्रभृतिने डेंडिलॉयनके नामसे, जिसको इब्नसीनाके तरखश्कूनका पर्याय समझते थे, इसका वर्णन किया है। सत्रहवी शतीके अन्तमे यूरूपमें उक्त औषधिका पुष्कल प्रयोग होने लगा।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त हिमालय (१०,०००-१८,००० फुटकी ऊँचाई तक), नीलगिरी पर्वत, पश्चिमी तिब्बत एव मिष्मी पर्वत प्रभृति स्थानोमें तथा यूरोप और उत्तरी अमरीकामे होती है। उटकमडमे यह अपने आप होती है।

वर्णन—यह दुग्धयुक्त बहुवर्षायु बनगोभीसे मिलता-जुलता या कासनी जैसा पौधा है जिसमें सभी पत्तियाँ मूलस्तभसे निकली रहती हैं। परतु इसके पत्ते उसकी अपेक्षया अधिक बारीक, अधिक मोटे और क्षुद्रतर होते है। इसके फूल छोटे, पीले, ५-२० से०मी० लम्बे, पीले, निष्पत्र एकाकी पुष्पदण्डपर स्थित, पुष्पस्तबकमे रहते है। यह अत्यत कटुई होती है। फूल झड जानेके बाद बारीक बीज प्रकट होते हैं। इसकी जड मूलीके सदृश, गुलगुली, बाहरसे ऊदी और भीतरसे पिलाई लिये सहजमे मुडनेवाली होती है। इसके ताजे पत्ते भी मुड जाते हैं। इसमे एक प्रकारका गधरहित कडुआ श्वेत दूध सदृश चिकना पदार्थ निकलता है। यह सूखनेपर चिक्कट ऊदीरगका हो जाता है।

रासायनिक सगठन—इसके दुधिया रसमे एक तिक्त विकृताकार वा अस्फटिकीय सत्व–टैरेक्सेसिन (Taraxacin), एक स्फटिकीय सत्व–टैरेक्सेसेरिन (Taraxacerin) तथा पोटैसियम और कैल्सियमके लवण एव रालदार (Resinoid) और सरेशी (Glutinous) पदार्थ होते हैं। जड़में इन्युलिन (Inulin) २५ प्रतिशत तथा पेक्टिन, शर्करा, लेवुलिन (Levulin) और भस्म ५ से ७ प्रतिशत होती है।

उपयुक्त अग—सूखी या ताजी जड़। औपधमे प्रयुक्त इसकी जड अधिकाश बाहरसे आती है। बाहरवालीसे यहाँवालीकी जड कुछ छोटी होती है। परन्तु गुणकर्ममे उससे अधिक कार्यकर होती है।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें या उसके अन्तमें शीत और रूक्ष। यह कासनीसे अधिक शीत है। परन्तु सत्यान्वेपकोके मतसे कहा जाता है कि यह शीत नही, अपितु प्रथम कक्षामे उष्ण और रूक्ष है। इसके समर्थनमें वे शेखका यह वचन कि इसका दूध आँखका जाला दूर करता है, प्रमाण मानते है।

गुण-कर्म—यह सग्राही, दीपन, आर्तवजनन, स्तन्यजनन तथा यकृत् एव प्लीहाके अवरोधोका उद्घाटन करनेवाली, रक्तनिष्ठीवनको दूर करनेवाली और कामलानाशक है। यह समस्त गुणोमें बागी कासनीसे बलवती है।

उपयोग—इसका दूध आँखमें लगानेसे फूली कट जाती है। इसके स्वरसमें कपडा भिगोकर योनि वा गर्भाशयके भीतर स्थापन करनेसे, उनकी सूजन दूर होती है। जैतूनके तेलके साथ इसका रस पीनेसे प्राय पानजनित विषो एव जमीनके भीतर रहनेवाले जानवर (हवाम्म)के विप लक्षणोका निवारण होता है। बिच्छू, भिड और सर्पदशमें इसकी जड पीसकर प्रलेप करनेसे उपकार होता है। इब्नजहरके मतसे जगली कासनीका रस मद्यके साथ पीनेसे

कृष्ण सर्प (अफई)का विष उतर जाता है। विसर्प (सुर्खबादा)मे इसे जौके आटाके साथ और अग्निदग्ध एवं दाहमे सिरका और सफेदाके साथ लेप करनेसे उपकार होता है। गीलानीके अनुसार जगली कासनी (तरखश्कूक) यकृत्की श्रेष्ठ औषधोमे से है। इसका निचोडा हुआ स्वरस और जड दोनो ही जलोदरमे उपकारी है। इसका शर्बत सभी प्रकारकी सूजन और यकृत्के अवरोधोमें लाभकारी है। चिरज यकृत् और वृक्क विकारोमे औषधकी भाँति प्रयुक्त होती है। अहितकर–मूत्रपिंड (वृक्क)को। निवारण–सिकजवीन। प्रतिनिधि–बागी कासनी। मात्रा–२से ६ ग्राम (२मे ६ माशा) तक।

०

(१३८,१३९) काहू (बागी तथा जंगली)

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(१) उद्यानज (बागी या बुस्तानी)–(हिं०, व०, प०) काहू, सलाद, (अ०) खस, खस्स, (फा०) काहू, (ले०) लाक्टूका साटीवा (**Lactuca sativa** Linn), (अ०) दी गार्डेन लेटिस (The Garden Lettuce), लेटिस (The Lettuce)। (२) वन्य (जगली)–(हिं०) जगली काहू, (अ०) खस्स वर्री, (फा०) काहू सहराई, काहू वर्री, (सिंध) वन काहू, (ले०) लाक्टूका सेरिओला **Lactuca serriola** Linn (पर्याय–*L scariola* Linn), (अ०) दी वाइल्ड लेटिस (The Wild Lettuce)।

वक्तव्य—अरबीमे 'खस (वा खस्स)' शब्दका व्यवहार काहूके अर्थमें होता है, पर हिन्दीमे इसका व्यवहार उशीर वा वीरणमूलके अर्थमें होता है। प्राचीन यूनानी काहूको 'थ्रीडास (Thridas)' कहते थे। 'तरीद्गास' इसीका अरबी रूपान्तर है। सावफरिस्तुस् ने इसका एक यूनानी नाम 'थ्रीडाकिर्नी' भी लिखा है। जगली काहूको यूनानीमे 'थ्रीडास अगरिया' कहते हैं। सम्प्रति 'थ्रीडास' शब्दका व्यवहार काहू स्वरसके अर्थमे होता है।

उत्पत्तिस्थान—फारस और समस्त भारतवर्षमे इसकी खेती की जाती है। बम्बईमे इसको 'साळीटची भाजी' कहते हैं। जंगलीकाहू पश्चिम हिमालयमे मुर्रीसे लेकर कुनावर तक जगली होता है। चिकना काहू अर्थात् सुगन्धित और जगली अंग्रेजी काहू (*L virosa*) इसका एक निकटतम भेद है।

वर्णन—यह एक उद्भिद् है जो लगाया हुआ (बागी वा बुस्तानी) और जगली (वर्री वा सहराई) भेदसे दो प्रकारका होता है। इनमे बागीके पुन दो अवातर भेद होते हैं—(१) इसके पत्र चौडे और पेड आध गजसे डेढ गज तक ऊँचा, चिकना, मधुर और कोमल होता है। इसमें बारीक शाखाएँ निकलती है जिनके आस-पास सफेद फूल आते हैं। बीज बारीक और सफेद होते हैं। बीजोद्भव कालमे इसमे दूध पैदा हो जाता है और पत्ते कडुए हो जाते हैं। शरदृतुमें जबकि पानी नही बरसता तब यह हिन्दुस्तान और बंगालमे होता हैं, परन्तु अरब, ईरान और रोम आदिमे यह वसतऋतुमें होता और विपुल होता है। इनमे भारतीय काहू ऊँचाई और गुणमे विदेशीसे हीन होता है। (२) फिरंगी है। यह भी दो प्रकारका होता है। इनमें एक किस्मके पत्र, हरे, कमरग, अत्यत कोमल, मसृण और मधुर होते हैं। दूसरी किस्मके पत्तोके सिरोपर कुछ-कुछ बैंगनी रगत रहती है। ये पहलीकी तरह कोमल, मसृण और मधुर नही होते। इन उभय जातियोके पत्ते एक दूसरेसे लिपटे और बँधे हुए कलिकाकी भाँति एव गोल होते है। प्रतिवर्ष इनके ताजे बीज फिरगसे लाते और जाडेमें बोते है। वायु जितना ही शीतल एव तर होता है, उतना ही ये उभय जातियाँ अधिक प्रफुल्लित होती है और खूब, अत्युत्तम, अत्यत कोमल और अधिकाधिक (पत्तियाँ) सिकुडती जाती है। इन दोनो (मख्जनके मतसे वनफशई फिरगी)के बीज प्राय काले होते हैं। इनकी मृदुता-कठोरता और उत्कृष्टता-निकृष्टतामें भूमिभेदका बहुत हाथ होता है। मुतरा नरम, उर्वर भूमिमें जिसमे

अच्छी सिंचाई की गई हो, बोये हुएका पत्ता और तना कोमल, चिकना एव मधुर और बीज सफेद होता है। इसके विपरीत बोये हुएका इसके विरुद्ध होता हे। खानेमे केवल बागी काममें आता है। जगली काहूके पत्र बागीसे अधिक पतले और अधिक लम्बे होते है, चिकने नही होते और उससे अधिक हरे, कुछ अधिक कडे और तिक्त होते है। तनेमे प्रचुर दुग्ध होता है। किसी-किसी स्थानमें इसके उक्त दूध (दुधिया रस या लैटेक्स Latex)से अफीम बनाते है। परन्तु यह पोस्तेसे बनी अफीमसे घटिया होती है। (मख्जन)। प्राचीन कालमे यह जगली काहूसे प्राप्त की जाती थी, पर अधुना इसे उद्यानिज काहूसे भी प्राप्त करते है। सुतरा पजाब और सिंधमे खेती किये जानेवाले काहूके दुधिया रससे अफीम बनाई जाती है जिसे वहाँ खीखाओ कहते है। परन्तु जगली काहूसे बनी अफीम उद्यानिजकी अपेक्षया अधिक गुणकारी होती और प्रमाणमे अधिक निकलती है। पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयुक्त काहूकी अफीम (Lactucarium) या लेटिस ओपियम् (Lettuce Opium) प्राय लाक्टूका वीरोसा (*Lactuca virosa* Linn)से जो जगली काहूका ही एक भेद है, प्राप्त की जाती हैं।

रासायनिक सगठन—जगली काहू (**L scariola**)में लेक्टूकेरिअम नामक एक दुधिया रस (काहूजात अहिफेन) होता है। यह लैक्टोसिन (Lactocin), लैक्टूसिन नामक प्रधान वीर्यवान् सत्व, लैक्टोपिक्रिन् (Lactopicrin), और लैक्टूसिक एसिड (Lactucic acid) नामक तिक्त सत्वका यौगिक है। लैक्टूसिनके सफेद स्फटिक वा परत होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमे लैक्टूसेरिन नामक एक निष्क्रिय मोमकी तरहका पदार्थ, फेरिक ऑक्साइड और सुधा प्रभृति द्रव्य लगभग ५० प्रतिशत, अशमात्र हायोसायमीन, शुक्लि, पोटास एव सोडा आदि होते है। पत्रमे शुक्लीय पदार्थ, पिष्टमय पदार्थ, शर्करा, निर्यास इत्यादि पदार्थ होते हैं। अपवाद स्वरूप इसमें प्रचुर लौह होता है। परन्तु कोषस्थ रस (Cell-sap)मे अत्यल्प लौह होता हैं। यह उबलनेसे बहुधा सम्यक् अवक्षेपित हो जाता है।

उपयुक्त-अग—पत्र (शाकार्थ), बीज और प्रगाढीभूत दूधिया रस अर्थात् काहूकी अफीम।

कल्प तथा योग—क्वाथ और फाण्ट, मात्रा २॥ तोलेसे ३॥। तोले, दुधिया रस या काहू की अफीम (Lactucarium), मात्रा–१८० मि० ग्रा० से ० ५ ग्राम (१॥-४ रत्ती), बीजचूर्ण, मात्रा–० ५ से १ २५ ग्राम (५ से १० रत्ती), सुरासव (टिंकचर) मात्रा–१०-३० बूंद, शार्कर (शर्बत) जिसमे १० प्रतिशत टिंक्चर होता है। मात्रा–१-४ ड्राम, रसक्रिया मात्रा–० ३ से ० ६ ग्राम (२॥-४॥ रत्ती), तैल (बीजोत्थ) और पाक आदि।

उद्यानज (बागी) काहू—

प्रकृति—काहूके पत्र दूसरे दर्जेमे सर्द एव तर है।

गुण-कर्म—काहू पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तोद्वेगको शात करता है। यह रक्तप्रसादन, तृट्प्रशमन, स्वप्नजनन, स्वापजनन, मूत्रल, स्तन्यजनन, उष्ण आमाशयको बलप्रद, बाष्पारोहणका प्रतिषेधक और क्षुधाजनक है। जलवायु-परिवर्तनसे शरीरमे जो विकार उत्पन्न होते है, यह उनको निवारण करता है।

उपयोग—काहू अधिकतया पत्रशाककी भाँति उपयोग किया जाता है और अपने उपर्युक्त गुणकर्मोके कारण रक्त एव पित्त प्रकृतिवालोके लिए बहुत सात्म्य है। यह गरम खाँसी, खुजली, उन्माद, मद (मालीखोलिया), कामला, गरम ज्वरो और सूजाकमे बहुत लाभ करता है। बच्चेवाली स्त्रियोको दूध बढानेके लिए खिलाया जाता है। भूख बढाने और आमाशयशूल निवारणके लिए सिरकाके साथ इसका उपयोग करते हैं। महामारीके जमानेमे और यात्राकी अवस्थामे जलवायुजनित दोषोके प्रतीकारके लिए इसे खाते है। शैखके अनुसार कच्चा काहू अथवा इसका काढा स्वप्नजनन है और इससे अनिद्रा रोगका नाश होता है। यह तीव्रज्वरजात प्रलापमे लाभदायक है। अहितकर–अवाजीकर और विस्मृतिकारक। निवारण–पुदीना और करफ्स। प्रतिनिधि–कुलफा पत्र-स्वरस। मात्रा–पत्र-स्वरस २ से ४ तोले तक।

नाम—काहूके बीज–(अ०) बज्रुल्खस्स, (फा०) तुख्म काहू, (द०) काहूके बीज, (ता०) शलात्तुविरै (ते०) कापु वित्तुलु, (अ०) लेटिस सीड्स (Lettuce seeds)।

वर्णन—काहूके बीज सफेद, चमकीले, छोटे-छोटे और लम्बे होते हैं। स्वाद फीका होता है। किसी-किसीके मतसे कालाई लिये लाल बीज बहुत भारी (कसीफ) और बलवान होते हैं तथा ललाई लिये सफेद बीज हलके (लतीफ) एव निर्मल होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—शीतजनन, शिर शूलनाशक, अवसादक (मुसक्किन), स्वापजनन, स्वप्नजनन और तृट्शमन हैं तथा पित्तकी तीक्ष्णता एव रक्तोद्वेगको शमन करते, पतला लेप (तिलाऽ) करनेसे बालोको शक्ति प्रदान करते और खिलानेसे वीर्यको सुखाते हैं।

उपयोग—गरम सिरदर्दको नष्ट करने और अनिद्राको दूरकर नीदलानेके लिए काहूके बीजोको पीसकर सिर-पर लेप करते हैं तथा बालझडता बन्द करनेके लिए भी इसे सिरपर लगाते हैं। रक्तज एवं पित्तज ज्वरो, मालन्खो-लिया, उन्माद जैसे रोगोमे अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्योके साथ इनका शीरा पिलाते हैं। वीर्यशोषण और शीत-जनन होनेसे ये वीर्यको पुष्ट एव गाढा करते हैं। स्वापजनन होनेसे ये कामवासनाको कम करते (पुस्त्वोपघाति) हैं। इसी कारण ये स्वप्नदोषको भी कम कर देते हैं। अहितकर—काम (बाह)को। निवारण—मस्तगी और शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—खशखाश (पोस्तेका दाना)। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

काहूका तेल—

नाम—(अ०) दुह्नुल्खस्स, (फा०) रोगन तुख्म काहू। कल्पना विधि—काहूके बीजोका शीरा २ भाग, तिलका तेल अथवा बादामका तेल १ भाग—दोनोको यहाँतक पकायें कि केवल तेलमात्र शेप रह जाय। इसे बादामके तेलकी भाँति अथवा कोल्हूमे पेरकर भी तेल प्रस्तुत करते हैं। यह कुछ पिलाई लिये सफेद और स्वादमे किंचित् तिक्त होता है।

प्रकृति—शीत एव तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म-तथा उपयोग—नीद लानेके लिए इसे शिरमें लगाया जाता और नाकमे टपकाया जाता हैं। इसके अतिरिक्त बालोको दृढ करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—शीत प्रकृतिको तथा विस्मृति-कारक एव दृष्टिमान्द्यकर है। निवारण—बादामका तेल। प्रतिनिधि—कद्दूका तेल या सफेद पोस्तेका तेल।

काहूकी अफीम—

नाम—(फा०) अफ्यून काहू, (ले०) लाक्टूकारिउम (Lactucarium), लेटिस ओपियम (Lettuce Opium)।

निर्माणविधि और वर्णन—बागी काहूके पौधोकी फूलदार शाखाओ और तनोको पाछने वा चीरा देनेसे एक प्रकारका दूध सरीखा सफेद रालदार रस निकलता हैं। यह हवा लगनेसे गाढा और कडा हो जाता है और उसकी रगत भी बदल जाती है। यही काहूकी अफीम है। यह पोस्तेकी अफीमकी तरह तेज नही होती। इसकी रगत बाहरसे भूरी किन्तु भीतरसे सफेद वा पिलाई लिए और टूटे हुये मोमके समान कुछ चमकीली होती है। स्वाद तिक्त होता है। गध किसी प्रकार अफीमकी गधकी तरह गभीर होती है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—काहूकी अफीम पोस्तेकी अफीम, खुरासानी अजवायन और भाँगकी भाँति स्वाप जनन, वेदनास्थापन, स्वप्नजनन, सकोचविकास प्रतिबन्धक, कासहर और सशमन है। परन्तु इसका स्वप्नजनन कर्म पोस्तेकी अफीमकी अपेक्षया कम होता है। इससे गाढी और सुखदायक नीद आती है। अफीमसे भी गाढी निद्रा

आती है, किन्तु उससे कब्जियत होती है और यकृतकी क्रिया बिगड़ती है। यह दुर्गुण इस औषधिसे पैदा नही होता। पोस्तेकी अफीमके सदृश इससे न तो पाचन-विकार होता है और न कब्ज होता ह। इससे गाढी और सुखदायक नीद आती है। अफीमसे भी प्रगाढ निद्रा आती है। किन्तु उससे कब्जियत होता है और यकृत्‌की क्रिया बिगडती है। यह दुर्गुण इस औषधीसे पैदा नही होता। पोस्तेकी अफीमके सदृश इससे न तो पाचन-विकार होता है और न कब्ज होता है और न इसके खानेके बादको आलस्य एव कमजोरी प्रतीत होती है। इसका वेदनास्थापन गुण भी अफीम की अपेक्षया बहुत कम है। इस कारण भयकर कष्टके कारण जब निद्रा भग हो जाती है, तब काहूके सत्वसे काम नही होता। उस समय अफीम ही कारगर होती है। किन्तु जहाँ अफोम वर्जित हो वहाँ वेदनाहर एव निद्राकारक-रूपमे इसका उपयोग विहित हे। सूखी खाँसी और कफक्षयमे काहूका सत्व देनेसे लाभ होता है। अफीमसे भी खाँसीमे लाभ होता है, परन्तु उससे कफका पडना बन्द हो जाता है, काहूके सत्वसे कफका पडना बन्द नही होता। सक्षोभयुक्त कासमे इसका शर्बत वा चक्रिका गुणकारी होती है। ज्वरमे जब रोगी प्रलाप करता है, तब इसके सेवनसे वह कम हो जाता है। इससे भूख लगती है और पाखाना साफ होता है। मात्रा—२ चावल से १ रत्ती तक (मतातरसे १ से ३ रत्ती तक।)

जंगली-काहू—

गुणकर्म तथा उपयोग—यह बागीसे कम शीत एव तर है। गुणकर्ममे यह बागीसे बलवत्तर है। इसका दूध आँखमे लगानेसे कनीनिका (कॉर्निया)गत व्रण शुद्ध होता है। इससे नेत्रनाडी (गर्ब)मे भी उपकार होता है। इसका दूध जलीय दोष मलमार्गसे उत्सर्ग करनेवाला (मुसहिल कैमूस माई) आर्तवजनन और लगानेसे विच्छूविष-नाशक है।

(१४०) किरमाला

फैमिली · कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०) किरमानी अजवायन, किरमाला, छुहारी जवाइन, (अ०) शीह, अफसन्तीनुल्‌बहर, (फा०) दिर्मन, (स०) चोहार, किरमाणी (कीटमारी) यवानी, (क०) अम्मुरीन, मुञ्जमुरीन भुट्ट टिट्टवन, (पश्तो) तर्ख, (म०) किरमाणी ओवा, (गु०) करमाणी अजमा, छुहा (वा) रो, (यू०) सेरिफोन (सरीफून), (लॅ०) आर्टीमीसिआ मेरीटिमा (**Artemisia maritima** Linn), (अं०) वर्मसीड (Worm-seed), सैंटोनिका (Santonica)।

वक्तव्य—फारसके 'किरमान' नामक प्रदेशसे यह औषधि भारतवर्षमे आती है। 'किरमाला' इसीका अपभ्रश है। इस उद्भिज्जके नामोमे 'यवानी' या 'अजवायन' शब्दका उल्लेख करना इसलिए अनुचित है कि एक तो इस उद्भिज्जका अजवायनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नही है और दूसरे इसके नामोमें अजवायन शब्दका उल्लेख किया जानेसे अधिकाश वैद्य व हकीम महाशय इसके अविकसित पुष्पोको अजवायनका भेद और खुरासा-एनी अजवायन समझ बैठनेके जिस भ्रममे फँसे हुये हे उसका निराकरण करना भी आवश्यक है। इतने विवरणके बाद हमें यह कहनेकी आवश्यकता नही कि उपर्युक्त वनस्पतिका अजवायन खुरासानी अर्थात् 'पारसीक यवानी'से या 'अजवायन' अथवा 'यमानी' शब्दोसे कोई सम्बन्ध नही हे।

उपयुक्त अग—इसके कोमलपत्र, पचाग तथा अविकसित पुष्पस्तवक (Santonica) और उससे प्राप्त सत्व सेंटोनीन औषधके काममे आते है। इसकी गन्ध विशेष प्रकारकी, तीव्र एव प्रिय, किसी प्रकार कपूर या कयपूतीके तेलकी गन्धसे मिलती हुई होती है। सग्रहकाल—अगस्त मासमें कोमल पत्र सग्रह कर लेवे।

उत्पत्तिस्थान—यह एशिया, फारस, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान, पश्चिम हिमालयकी श्रेणियोसे सलग्न कश्मीर, कुल्लू, नैपाल, गढवाल तथा भारतके कतिपय पार्वत्य प्रदेश (८००० फुटकी ऊँचाईपर) और पश्चिम तिब्बतमे विपुल होता है।

वर्णन—एक क्षुप, प्राय ४५से ९० से० मी० (१॥-३ फुट) ऊँचा, मूल, काण्ड और शाखायें काष्ठमय, काण्डकी मोटाई, अगुलि प्रमाण और शाखाओकी पेंसिल प्रमाण, क्षुपका रग धूमिल, पत्र छोटे अडाकार (ओवेट) रगमे श्वेत, पुष्प लट्वाकार मजरियोके रूपमे, शाहतराकी तरह रगमे गुलाबी, पत्र और पुष्पकी गन्ध कर्पूरवत् और आस्वाद किंचित् तिक्त होता है। स्वाद सुगन्धित एव तिक्त होता है। भारतवर्षमे अफगानिस्तान और फारससे इसका विपुल प्रमाणमे आयात होता है। इसके अविकसित पुष्पोका बम्बईके बाजारोमे किरमाणी अजवायन, किरमाणी ओंवा (म०) और किरमाणी अजमो (गु०) आदि नामोसे क्रय-विक्रय होता रहा है और सभवत आजकल भी होता है। अधुना कश्मीर सरकार द्वारा इसके सग्रह और इससे सेंटोनीन निकालनेका प्रबन्ध किया गया है। भेद-शीह अरमनी, शीह जबली (पहाडी शीह), शीह खुरासानी या तुर्की (दिर्मिन तुर्की) और जगली शीह प्रभृति इसके कतिपय भेद यूनानी ग्रथोमे लिखे है। इन विदेशी भेदोके अतिरिक्त इसका एक भारतीय भेद भी है, जिसे जौहरी जवाहन (किरमाला) कहते है। फारसीमें इसे 'दिर्मन' कहते है। इसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। दिर्मनःतुर्की इसी-का एक भेद है, जिसका वर्णन उक्त शब्दमे होगा। पाश्चात्य चिकित्सामे प्रयुक्त सेंटोनीन, इसके जिस भेदसे प्राप्त किया जाता है उसे अग्रेजीमे लेवाट वर्मसीड (Levant Worm-seed) और लेटिनमे आर्टीमीसिआ सीना (A cina Berg) कहते है। इसकी उत्पत्ति प्राय रूसमे होती है।

रासायनिक सगठन—इसमे ६ ५ प्रतिशत राख होती है। राखमे चूना (कैल्सियम) और यवक्षार होते है। डॉ० के०सी० बोसके अनुसार इसमे एक उडनशील तेल भी होता है, जिसकी गन्ध कपूर तथा कयपूती तेलके समान होती है। फूलोमे सेंटोनीन नामक एक क्षारस्वभावी कार्यकारी तिक्त सत्व (२ ३ से ५ प्रति०) होता है। यह नया होनेपर श्वेत और पुराना होने या धूपमे रखनेपर पीला पड जाता है। पुष्पोके विकसित होनेपर उसकी यह राशि शीघ्रतासे घटने लगती है। इसी सेंटोनीनके लिए लेवाट वर्मसीडका मुख्यतया उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसमे आर्टिमिसिन (Artimisin) नामक सत्व भी पाया जाता है।

मात्रा—पचाग चूर्ण ३से ६ ग्राम (३-६ माशा)। सेंटोनीन ६० मि० ग्रा० से १८० मि० ग्रा० (½-१॥ रत्ती)।

कल्प तथा योग—अतरीफल दीदान। बच्चोंके लिए अविकसित पुष्प चूर्ण ० २५से ० ६ ग्राम (२-५ रत्ती) तक, वयस्क मात्रा ४ से ८ ग्राम (३०-६० रत्ती) तक। फाण्टके लिए पचागको उपर्युक्त मात्रामे दुगुना लें।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, दीपन, कृमिघ्न, छेदन, लेखन, वातानुलोमन, दोषतारल्यजनन, दोषोत्सर्गकर्ता, रोमसजनन, श्वयथुविलयन, मूत्र और आर्तवप्रवर्तक, सर, मूत्रावरोधनिवारक और कामोत्तेजक है।

उपयोग—उदरज कृमियो, विशेषत व्रध्नाकार कृमियोको मारकर निकालनेके लिए किरमालाको खिलाते और पेटपर लेप करते है। उक्त गुणके लिए इसके तेलको नाभिपर लगाते और अकेला या चावलके साथ पकाकर शहद मिलाकर पिलाते है। इससे कृमि मरकर मलके साथ निकल जाते है। इसको जलाकर बनाई हुई राखको जैतून या कडुए बादामके तेलमे फेटकर लगानेसे बालखोरा और सिरका गज आराम होता है, और उस पर बाल उग आते है। यह लोमवर्धक भी है। किरमाला और उसका तेल कृच्छ्रश्वास, शीतपूर्व ज्वर, मिश्रदोषजन्य ज्वरो, शीत-जन्य व्याधियो, आमाशयशोथ, जलोदर तथा वृश्चिक एव रुतैला-दशमे लाभकारी है। इसे लगानेसे व्रणपूरण होता है। हिक्का और मरोडमे इसके सेवनसे उपकार होता है। इसके अभ्यगसे पृष्ठ एव कूल्हेका दर्द आराम होता है। अहितकर-शिर, आमाशय और वातनाडियोको तथा शिर शूलजनक है। निवारण-अफसतीन, कमीला या वाय-विडग। मात्रा-१ ७५ ग्रामसे ९ ग्राम (१॥। माशेसे ९ माशे) तक।

नव्यमत—

गुण-कर्म—डॉ० वामन गणेश देशाईके अनुसार यह दीपन, वेदनास्थापन और उत्तम कृमिघ्न है।

उपयोग—शहद या गुड (Treacle)के साथ इसके बीजोका घरेलू चिकित्सामे व्यवहार होता है। इसका कृमिघ्न प्रभाव इसमे स्थित सेटोनीन नामक क्षाराभ(ऐल्केलॉइड)के ऊपर निर्भर करता है। इसके पुष्पस्तवकको जिसे साधारणतया बीज (Semen Sanctum) कहते है, ० ६से २ ग्राम (५-१५ रत्ती)की मात्रामे रात और दिनमे उपयोग करनेसे गोलकृमि-गण्डूपदाकार कृमि (केचुए) निकल जाते है। सूत्रकृमियोपर इसका अत्यल्प और व्रघ्नाकार कृमियो (कद्दूदाने)पर थोडा प्रभाव होता है। पार्किसनके मतसे प्रधानतया यह बालकोमें कृमिघ्न कार्य करता है। (पॉटर्स न्यू० सा० पृ० ३२८)। इसमे रेचन गुण नही है, इसलिए इसके अविकिसित पुष्पोके गुडमिश्रित चूर्णको रात्रि मे देकर सबेरे एरडतैलका विरेचन देते है।

सटोनीन

सेटोनीनका मात्रासे अधिक सेवन करनेसे विपलक्षण प्रगट होते है। अत इसका प्रयोग विज्ञ चिकित्सकके कथनानुसार मात्रामे करना चाहिये।

मात्रा—एक वर्षके बच्चेके लिए–१५ मि० ग्रा० से ३० मि० ग्रा० (१/८ रत्तीसे १/४ रत्ती) तक।

पाँच वर्षके बच्चेके लिए–६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (१/२ रत्तीसे १ रत्ती) तक।

पाँच वर्षसे अधिक आयुवालोके लिए–१२० मि० ग्रा० से १८० मि० ग्रा०(१ रत्तीसे १॥ रत्ती) तक और वयस्क एव प्रौढ मनुष्यके लिए अधिकसे अधिक पूर्ण मात्रा २५० ग्राम (२ रत्ती) तक है।

सेवन-विधि—इसके सेवनकी सामान्य विधि यह है, कि जिस दिन रोगीको सेटोनीन देनी हो उस दिन उसे रात्रिमे अन्न खानेको नही देते और सोनेसे पूर्व ही सेटोनीनको समभाग कैलोमल और थोडी-सी मिल्कशूगर अथवा सादे शक्करमे मिलाकर दुग्ध अथवा जलके अनुपानसे खिला देते है और अगले दिन प्रात ही एरड तैल या अन्य किसी विरेचन द्रव्यका प्रयोग कराते है। तदनन्तर एक-दो दिनके अन्तरसे इस प्रयोगविधिकी तीन-चार बार पुनरावृत्ति करते है। सूत्रकृमियोके प्रतीकारार्थ सेटोनीनका मुखमार्ग द्वारा प्रयोग करना तो विशेष लाभदायक नही है, परन्तु एरण्डतैलमे मिलाकर इसकी वस्ति प्रयोग की जाय तो एक-दो बारके प्रयोगसे ही रोगी रोगमुक्त हो जाता है। वस्तिके लिए सेटोनीन एक बारमे ० २ ग्राम (१॥ रत्ती) तक प्रयोग की जा सकती है। परन्तु सूत्रकृमियोके लिए अफसन्तीन और चिरायतेके क्वाथका बस्ति द्वारा प्रयोग कराना विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। सूर्यके प्रकाशमे जो सेंटोनीन पीतवर्णकी हो जाती है, ० ३ ग्राम (२॥ रत्ती)की मात्रामे उचित अनुपानके साथ सग्रहणी (Sprue)मे प्रात एव साय सेवन कराना चाहिए।

●

(१४१) किसमिस कावलियाँ

फ़ैमिली लोरान्थासे (Family Loranthaceae)

नाम—(फा०, भा० बाजार) किशमिश कावली, किशमिशे कावलियाँ, (यू०) इक्सोस (Ixos), (अ०) दिब्क, मवीजजे असली, (फा०, इरान) अगूरे कोली, मवीजक असली, (हिं०) बन, बदर, बदा, (प०) बाँदा, बबल, (नेपाल) हुर्चु, (जौनसार) चुलुका वदा, चुल्लूका बाँदा, झिझा, हरिबबल, (लै०) वीस्कुम् आल्बुम् (Viscum

album Linn), (अ०) ह्वाइट मिस्टलेटो (White mistletoe), यूरोपियन मिस्टलेटो (European Mistletoe), बर्डलाइम मिस्टलेटो (Birdlime Mistletoe)। कुल्पेपर इस (Mistletoe)का उच्चारण मिस्सेल्टो (Misselto) करते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय (Temperate Himalayas), कश्मीरसे नैपाल तक, वजीरिस्तान (Waziristan) ३,००० फुटसे ७,००० फुटकी ऊँचाईपर, पश्चिमकी ओर एटलाटिक तक।

वर्णन—यह एक प्रकारके बाँदाके सूखे फल हैं, जो छोटे चनाके दानेकी तरह लगभग ८ ३ मि० मी० (⅓ इञ्च) व्यासके, नरम, हलके, अधिक गोल नही, ताजे हरे और सूखे भूरे या कालापनलिये और झुर्रीदार होते हैं। फलके भीतर चेपदार द्रव और पोस्तेके दानेके बराबर एक छोटा बीज होता है। औषधके लिए उत्तम फल वह है, जो ताजा, चिकना और गोल हो, तोडनेपर रग गहरा नीला (कालापन लिये नीला) निकले और बाहरसे रग कुछ-कुछ हरा, काला और नीला हो, ऊपर खुरदरा न हो और उस पर भसीकी तरह कोई चीज न हो। यह वलूत, सेब और नासपाती इत्यादिके वृक्षपर होता है। इनमे वलूतपरका उत्तम समझा जाता है।

रासायनिक सगठन—इसके फलमें विस्किन (Viscin) नामक एक पदार्थ होता है। मात्रा—० ६से २ ग्राम (५से १५ रत्ती)।

उपयुक्त अग—फल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जेमे खुश्क। इसहाकने मलभूत द्रवके साथ गरम और तर लिखा है।

गुण-कर्म—दोषतारल्यजनन, श्वयथुविलयन, सारक (मुलय्यिन), दोपाकर्पणकर्त्ता (जाजिब), ज्ञानेन्द्रियोको बलप्रद और अगोकी सर्दी दूर करनेवाला है।

उपयोग—इसके उपयोगकी एक साधारण विधि यह है कि इसे रातमें गरम जलमे भिगोकर सबेरे छिलके और बीजोको दूर करके अखरोट या एरंडकी गिरीके साथ पीस और शहदमें मिलाकर अन्य उपयोगी औषधियोके साथ उपयोग करते हैं। यदि सूखा उपयोग करना हो तो तिलके तेलमे मिलाकर उपयोग करें। इससे कफ और सौदाका उत्सर्ग होता, अवरोधोका उद्घाटन होता और गृध्रसी, भगदर तथा सर्दीके रोगोमें उपकार होता है। शीतल शोथपर इसका लेप करनेसे वह विलीन हो जाता है। यह कफज शीतपित्त और उदर्दमे भी लाभ करता है। यह दूषित पुराने फोडो और व्रणोको नरम करता है। सम प्रमाण मोम और रालके साथ इसकी कैरूती बनाकर लगानेसे कठिन सधि नरम हो जाती है। इस कैरूतीमे कुदुर भी योजितकर लेनेसे वह अधिक गुणकारी हो जाती है और सधियोकी कठोरतासे होनेवाला दर्द आराम हो जाता है। इसके लेपसे समस्त शीतल और कफज शोथ पककर फूट जाते है। इससे मुँहकी झाँई दूर हो जाती है। इसको हडताल और जिफ्तके साथ सडे-गले नखोपर लगानेसे वे उखड जाते हैं। इसे चूना, अगूरका रस और शहदके साथ लगानेसे नख निकल आते है और उनमें शक्ति आती है। मेंहदीके साथ यह शिरोगत गज और अन्हौरियोको मिटाता है। गुलरोगनमे मिलाकर लगानेसे केशोको बढाता है। इसे चूनाके पानीमें पकाकर या चूनामें मिलाकर लगानेसे प्लीहाशोथ दूर होता है और अन्य अशोपर लगानेसे उनके अन्दरसे पतले और गाढे द्रवोको आकर्षित करके उन्हे नष्ट कर देता है। इसे अधिक खा लेनेसे भ्रम, अगगौरव तथा उदरमें मरोड और ऐंठन होने लगती है। ऐसा होनेपर पानी और शहद मिलाकर कै(वमन) कराये और बस्तिका प्रयोग करे। इसके उपरात सिकजबीन पिलाये। अहितकर—हृदयको। निवारण—बिल्लीलोटन, गावजबान और खीरा-ककडीके बीज। मात्रा—४-५ ग्राम (४॥ माशे) तक, कफजरोगोमे ३-५ ग्राम (३॥ माशे) तक।

नव्यमत—फलकी क्रिया रक्तपरिसचरण पर डिजिटेलिसके समान ही नही, अपितु उससे भी बढकर होती है। और इससे छोटी रक्तवाहिनियोका सकोच होता है। हृदयको शक्ति मिलती है। और मूत्रका प्रमाण बढकर जलोदर अच्छा होता है। यह आनुलोमिक और शोथघ्न है। गर्भाशयपर इसकी क्रिया अर्गटके समान होती है। सगर्भावस्थामें देनेसे गर्भपात हो जाता है। मज्जाक्षतक के रोगोमें भी यह अच्छा काम करता है।

उपयुक्त अंग—फल, फलसत्व, पत्र, मूल और पचाग ।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष ।

गुण-कर्म—यह दोषतारल्यजनन, पतले कफसे मिले हुए विकृत पित्त और आम श्लेष्माका विरेचन-वमनकर्ता, शिरोविरेचनीय, लेखनीय, विलयन (मुहल्लिल) तथा मूत्र एव आर्तवजनन है ।

उपयोग—शिरोविरेचन होनेसे पुरातन शिर शूल, सपूर्ण शिरोगत सामान्य शूल, अर्द्धावभेदक और कामला तथा समस्त चिरकारी शीतजन्य शूलोमे वदालकी भाँति इसे पीसकर नकुओमे लगाने या मलने अथवा कन्यावती-स्त्रीके दूधमे इसका स्वरस मिलाकर नाकमे टपकानेसे नाकके द्वारा शिरोगत मलोका प्रचुर उत्सर्ग होकर उक्त रोग आराम हो जाते है । कफ और पतला कफ मिला हुआ विकारी पित्तका विरेचनकर्ता होनेसे जलोदर, कामला और पाण्डुमे इसका उपयोग करते है । सर्वांग शोफमे इसकी जडका शरीरपर लेप करते है । इसके फलस्वरसको तिलके तेलमे पकाकर तैयार किया हुआ तेल अर्शांकुरो पर लगानेसे वे गिर जाते है । गरम और श्वयथुविलयन होनेसे इसे कानमे टपकानेसे कर्णनाद, वाधिर्य, ऊँचासुनना और कर्णक्ष्वेड, कृमिकर्ण तथा साद्र वायुका नाश होता है । इसके अभ्यग और पानसे शरीरको सर्दी, व्यग, झाई, यौवन पिडका और चिरकारी आमवात आराम होता है । इसे योनिमे धारण करनेसे आर्तवका प्रवर्तन होता और गर्भस्थ शिशु वाहर निकल जाता है । कफ और पित्तके वमन-रेचनार्थ इसके उसारेका उपयोग करते है । थोडा उसारा जलमे घोलकर मुरगीके परमे लत करके जिह्वामूल और उसके आस-पास लगानेसे वमन होता है । इसके पत्रका स्वरस कुनकुना नाभिके नीचे मलनेसे कृमि मरकर निकल जाते है । इसे आमाशयके ऊपर मलनेसे कै आती है । अहितकर–अत्यत वामक और मरोड पैदा करता है । निवारण–शीतल और तर द्रव्य, स्नेह, फल और मेवे आदि । प्रतिनिधि–माहूदाना । मात्रा–सत(उसारा) १२० मि०ग्रा० से १ ग्राम या १ रत्ती से १ माशा तक, जड २ ग्राम या २ माशे तक, फूल और फल ३ ५ ग्राम (३॥ माशे) तक, इन्हे निवारण द्रव्यके साथ मिलाकर उपयोगमे ले ।

(१४३) कीडामारी

फेमिली : आरीस्टोलोकिआसे (Family Aristolochiaceae)

नाम—(हि०) कीडामारी, (स०) कीटमारी, कीटारि, धूम्रपत्रा (रा०नि०), (म०) कीडामार (वम्ब०), (गु०) कीडामारी, (मा०) गधण, कीडामारी, (ले०) आरिस्टोलोकिआ ब्राक्टेआटा (**Aristolochia bracteata** Retz) ।

उत्पत्तिस्थान—वगाल, गगाका उत्तरी मैदान, बुन्देलखण्ड, सिंध, कोकण, उत्तरसरकार, कर्नाटक आदि ।

वर्णन—एक क्षुद्र प्रसरी वनस्पति, जो इसरौलकी एक दूसरी जातिकी लता है । इसके पत्र वृक्काकार या चौडे, लट्वाकार और उनके अधस्तल धूम्रवत् श्वेताभ होते है । फूल किरमिजी होता है । फल १ २५ से० मी० से २ ५ सें०मी० (½-१ इच) लम्बा, १ २५ से० मी० (१/२ इञ्च) चौडा और ६ फाकवाला होता है । समग्र लताका स्वाद तिक्त होता है ।

उपयुक्त अग—पचाग । मात्रा–१ ५ ग्रामसे ३ ग्राम (१॥-३ माशे) ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क । आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह विरेचक, कृमिघ्न और आर्तवजनन तथा उदरकी कठोरता, कफज्वर और शीतपूर्व ज्वरोमे उपकारी है । यह पिच्छिल द्रवोको सधियोसे निकालती तथा उदरकृमियोको नष्ट करती है । यही नही, इसके पेटके ऊपर लेप करनेसे भी कृमि नष्ट होते हैं । यह कफज ग्रथियोको पिघलाती है, फोडो, क्षतो और

उनमे पडे कृमियोको भी नष्ट करती है। इसके पत्रस्वरसमें रूई तर करके नासिकाके भीतर स्थापना करनेसे नासागत अर्श (नाकडा) कट जाता है। पत्तियोको कुचलकर रेंडीका तेल मिलाकर लगानेसे शिशुओके पैरका पामा (Eczema) आराम होता है। केंचुओको निकालनेके लिए जडका काढा पिलाते है।

आयुर्वेदीय मत—कीडामारी (धूम्रपत्रा) तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, दीपन तथा वात, कफ, शोथ, कृमि, खाँसी और विषको दूर करनेवाली है (शो०नि०, रा०नि०)।

नव्यमत—कीडामारी कडुई, कटुपौष्टिक, स्रसन, कृमिघ्न, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, पर्यायज्वरप्रतिबधक और विषघ्न है। कीडामारीसे गर्भाशयका सकोचन होता है और शीघ्र प्रसव होता है। अनार्तवमें स्त्रीको विशेषत पाण्डुरोग और मलावरोध हो तो कीडामारीसे लाभ होता है। इसका ज्वरघ्न और स्वेदजनन गुण प्रशसनीय है। विषमज्वरमे इसे कालीमिर्चके साथ देते है। इससे पेटके कृमि मरकर निकल जाते है। व्रणान्तर्गत कृमिनाशनार्थ इसका रस व्रण पर लगाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण शिर.शूलमे इसका लेप गुणकारक है। यह वमन, पित्तकी उष्णता, खाँसी, रक्तविकार और विषके प्रभावको नष्ट करती है। तेलमें इसके फूलोको बसाकर तेल तैयार करनेसे वह अत्यंत सुगंधित होता है। यह हृदय एव शीतल मस्तिष्कको शक्ति देता है। चमेलीके तेलकी अपेक्षया इसे गरम बतलाते है। इस तेलमें सिरका और नीबूका रस मिलाकर मलनेसे खुजली मिटती है।

●

(१४४) कुंद

फ़ैमिली : ओलेआसे (Family . Oleaceae)

नाम—(हिं०) कुद, कुदी, जगली रायबेल, (स०) कुन्द, (ब०) बडा कुंद, (गु०) मोगरो, (बम्ब०) कुदी, (ले०) जास्मीनुम पूबेसेन्स (**Jasminum pubescence** Willd)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उद्यान।

वर्णन—एक पुष्पलता जो दूसरे वृक्षोपर चढती है। फूल चमेलीकी तरह होता है और ऐसे समयमें इसमें फूल आता है, जबकि इतर सुगधित फूल बेला, मोतिया, मोगरा और चमेली आदि नही होते। इसके फूलमें सुगध होती है, परन्तु कम होती है। मतातरसे यह एक प्रकारकी 'नेवाडी' है, जो चमेलीकी तरह और निर्गंध होती है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष। हकीम शरीफ खाँ महोदय कुदके फूलको गरम बतलाते हैं।

●

(१४५) कुकरौंधा

फ़ैमिली : कॉम्पोजिटी (Family . Compositae)

नाम—(हिं०) कुकरौधा, ककरोदा, कुकरछदी, (सं०) कुक्कुरद्रु (कुकुन्दर), (ब०) कुकुरशोका; (म०) कुकुरवदा, (द०) दीबारीमूली, (गु०) कोकरोदा, (ले०) ब्लूमेआ बाल्सामीफेरा (**Blumea balsamifera** DC); ब्लूमेआ लासेरा (**B. lacera** DC)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक कर्पूरगंधी क्षुद्र वनस्पति है। पत्र कासनीपत्रके समान, किन्तु उससे दलदार और रोईदार होते है और इनसे तीव्र गन्ध आती है। पत्र प्रथमत. जडसे निकलकर भूमिपर फैल जाते है। इसके उपरात उनके मध्यसे तना और शाखाये निकलती है। पौधेकी ऊँचाई ६७ ५ से० मी० से ९० से०मी० (३ या ४ बित्ता) या इससे न्यूनाधिक होती है। फूल छोटे और पीले प्रियदर्शन होते है। फूल खिलनेके बाद रुई जैसे बारीक रेशे निकलते है। बीज क्षुद्र (बारीक), काले और शकायिककी बोडी जैसे एक रोमटेदार कोषके भीतर होते है। जड़ बारीक, सफेद और स्वादरहित होती है। यह दीवारके नीचे सायादार, उजाड और गन्दी जगहोमें वर्षान्तमें उत्पन्न होता है।

रासायनिक सगठन—इसमें पुष्कल कपूर होता है, जिसे 'पत्रीकपूर' या 'नागीकपूर' कहते है।

उपयुक्त अग—पत्र, मूल, बीज और पचाग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म—कुकरौंघा शोथहर, उदरकृमिनाशक, प्रकृतिको मृदु करता (सर), खूनी और वादी दोनो प्रकारके बवासीरको नष्ट करता और पागल कुत्तेके विष (जलसत्रास रोग)को दूर करनेके लिए गुणदायक बतलाया जाता है। यह नेत्राभिष्यदमें भी लाभकारी है।

उपयोग—इसके पत्तोका रस निचोडकर नेत्रके भीतर बार-बार आश्च्योतन करनेसे नेत्राभिष्यद (आशोब-चश्म) आराम होता है। शिशुओकी गुदामें इसका रस टपकानेसे चुरने (सूत्रकृमि) नष्ट हो जाते है। इसके पत्तोपर घी लगाकर गरम करके बांधनेसे सूजन उतर जाती है। इसके पत्तोका रस निचोडकर अर्शांकुरोंपर लगाते है। आतरिक रूपसे जलोदर, अर्श और उदरकृमि, इनको नष्ट करनेके लिए इसका रस पिलाते हैं। इसके पत्रस्वरसको, पकाकर गाढा होनेपर कालीमिर्चका बारीक चूर्ण मिलाकर गोलियाँ बनाते है और वातार्श तथा रक्तार्शमें खिलाते है। कुकुरौंधाके पत्र और गेरूकी गोलियाँ बनाकर भी अर्शमें खिलाते है। इसकी जड १२ ग्राम (१ तोला)की मात्रामें पागल कुत्ता काटे हुएको खिलाते है। इससे कै आती है। अहितकर–फुफ्फुस और कठके रोगोमें। निवारण–काली-मिर्च और मधु। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरे भेदका। मात्रा–पत्रस्वरस ११ ६ ग्राम (१ तो०)।

आयुर्वेदीय मत—कुकुरौंधा कटु, तिक्त, उष्ण, ज्वरनाशक तथा रुधिरविकार, कफ, दाह और तृषाको दूर करने वाला है। इसकी ताजी जडको मुहमे रखनेमे मुँहके रोग दूर होते है (नि० र०)।

नव्यमत—कुकरौंधाकी जातियोमें न्यूनाधिक मात्रामें दीपन, वातहर, स्वेदजनन, मूत्रजनन, कासहर, कफघ्न, संकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर), सग्राहक, कृमिघ्न और वेदनास्थापनके गुण होते हैं। अत्यार्तव, रक्तातिसार तथा अर्शमें इसका उपयोग होता है।

•

(१४६) कुचला

फ़ैमिली : लोगानिआसे (Family Loganiaceae)

नाम—(हिं०) कुचला, कुचिला, (अ०) अज(जा)राकी, फ़ल्समाही (मछलीका सेहरा), खानिकुल् कल्ब (कुत्तेका गला घोटनेवाला अर्थात् हलाक करनेवाला या मारनेवाला), हब्बुल् गुराब (कागफल), (फा०) कुचूला, फुलूसे माही, (सं०) कुपीलु, काकपीलु, कारस्कर, विषतिन्दुक, (म०) काजरा, (गु०) झेरकचोला (केचिला), (ब०) कुँचिला, (प०) कागफल, (ले०) स्ट्रीक्नोस नुक्सवॉमिका (**Strychnos nux-vomica** Linn), (अं०) नक्स-वॉमिका (Nux-vomica), वामिट नट (Vomit-nut), डॉग पॉइजन (Dog poison)।

वक्तव्य—अंग्रेजी 'नक्सवॉमिका' और 'वॉमिटनट' सञ्ज्ञाका अर्थ 'अल्जौज़ुल् मुक़ई' या 'जौज़ुल्क़ै' (इ०वै०) अर्थात् 'वामकास्थि' है। इसीलिए उत्तरकालीन और वर्तमान मिश्र देशीय यूनानी हकीमोंने अपने ग्रन्थोंमें 'जौज़ुल्क़ै'को कुचिला (नक्सवामिका)का पर्याय लिखा है। परन्तु पुराकालीन अरबी-यूनानी हकीम रुब्अ यमानी (Trichilia emetica)को जौज़ुल्क़ै कहते थे और भारतीय मुसलमान हकीम 'जौज़ेक़ौसल' अर्थात् मैनफल (**Randia dumetorum**)को जौज़ुल्क़ै कहते हैं। सुतरां पुराकालीन अरबी-यूनानी हकीमों और भारतीय मुसलमान हकीमोंके जौज़ुल्क़ै यद्यपि दो भिन्न द्रव्य हैं तथापि वे गुणकर्ममें सर्वथा अभिन्न हैं, क्योंकि इन उभय द्रव्योंमें सैपोनिन नामक सत्व विद्यमान होता है। परन्तु वर्तमान मिश्रदेशीय हकीमोंका जौज़ुल्क़ै (कुचिला) पूर्वोक्त उभय द्रव्योंसे सर्वथा भिन्न और एक विषैला द्रव्य है। कुत्तोंके लिए प्रसिद्ध विष होनेसे इसे अरबीमें 'क़ातिलुल्कल्ब (श्वानघातक)' और 'ख़ानिक़ुल् कल्ब' और अंग्रेजीमें 'डॉग प्वाइज़न (श्वाविष)' कहते हैं। इसका प्रयोग कौओंको मारनेके लिए होनेसे अरबीमें इसे 'हब्बुल्ग़ुराब (कौओंकी गोली या कागबीज)' कहते हैं। 'अजाराक़ी' इसकी सुरियानी (Syrian) सञ्ज्ञा है। स्ट्रिक्नोससे, जिसका शुद्ध यूनानी रूप 'स्ट्रुख्नोस' है, काकमाची (Nightshade)का तात्पर्य है। अस्तु, प्राचीन यूनानी काकमाची जाति (जीनस नाइटशेड) या सूची (ऐट्रोपा)के अर्थमें इस शब्दका व्यवहार करते थे। ईसवी सन्‌की सोलहवीं बल्कि सत्रहवीं शताब्दी तक भी यूरोपमें स्ट्रिक्नोसको ऐट्रोपाका पर्याय समझते रहे, किन्तु अधुना इस शब्दका व्यवहार कारस्कारादिवर्गके अर्थमें होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी वैद्योंको उक्त औषधि ज्ञात न थी। डॉ० फ्लकीजर स्वनिर्मित फार्माकोग्राफिया (औषधिका इतिवृत्त)में लिखते हैं, कि प्राचीन यूनानी एवं यूरूपीय वैद्योंको इस औषधिका ज्ञान नहीं था। संभवतः अरबी यूनानी हकीमोंने इसका समावेश चिकित्सामें किया। यद्यपि कुचला भारतवर्षमें होता है परन्तु फार्माकोग्राफिया इंडिका (भारतीय औषधियोंका इतिवृत्त)के रचयिता डॉक्टर डाइमॉकके कथनानुसार प्राचीनकालमें भारतवर्षमें औषधि रूपमें प्रयुक्त नहीं होता था। कारण प्राचीन वैद्यकीय ग्रंथोंमें इसका उल्लेख नहीं है। अलबत्ता शार्ङ्गधर वैद्यने विषमुष्टिके नामसे जिस द्रव्यका उल्लेख किया है, कोई-कोई उसे कुचिला समझते हैं। किन्तु भावप्रकाश निघंटुके लेखकके मतसे इसके फल खाये जाते हैं और सस्कृतमें इसे 'डोडिका' और हिन्दीमें 'करेंढआ' कहते हैं। हाँ उक्त द्रव्यका हिन्दी नाम 'कुचला (कचूला)' फारसीके कतिपय प्राचीन ग्रन्थोंमें पाया जाता है इत्यादि। ईसवी सन्‌की सोलहवीं शतीमें उक्त द्रव्यका ज्ञान यूरुपवासियों विशेषकर जर्मनवासियोंको हुआ और लगभग सन् १५४० ई०में डॉ० विलियरी इसक़ारुडस ने इसका खोजपूर्ण विवरण किया और सन् १६४० ई०में इंगलैंडके औषधविक्रेताओंकी दुकानोंमें यह औषधि बिकने लगी। परन्तु उक्त कालमें अधिकतर यह कुत्तों, बिल्लियों और कौओंके मारनेके लिए ही प्रयुक्त होती थी, औषधरूपेण इसका प्रयोग नहीं होता था।

शङ्का-समाधान—फार्माकोग्राफिया इण्डिका नामक स्वरचित ग्रन्थकी द्वितीय संचिका पृष्ठ ४६० पर नक्स-वॉमिकाके वर्णनप्रसंगमें डॉ० विलियम डॉइमॉक महोदय शैखुर्रईस बू-अलीसीना का वचन उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि जनाब शैखने अजाराक़ी को 'ज़ुब्दुल्बह्र (एक प्रकारका समुद्रफेन)' लिखा है। मुझे इससे अत्यंत आश्चर्य हुआ कि शैखने ऐसी त्रुटि की। परन्तु फिर अन्यान्य ग्रन्थोंका ध्यानपूर्वक परिशीलन, आलोडन करनेसे ज्ञात हुआ कि स्वयं डॉ० डाइमॉक महोदयको ही शंका—भ्रम हुआ। कारण उन्होंने अज़ाराफ़ी (ازارفی)को जिसका अर्थ समुद्रफेन है अजाराक़ी (ازارقی) पढ़ लिया और एक बिंदुकी त्रुटिसे शैखके व्यक्तित्वपर अंगुलिनिर्देश किया। ख़ैर मनुष्य प्रमाद एवं विस्मरणका एक समवाय है—अस्तु, उन्हें भी क्षम्य समझना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णप्रधान प्रदेशों, विशेषतया मद्रास प्रांतमें, मानभूमके समीपवर्ती वनों, त्रावणकोर, कोचीन और कारोमंडल तटोंपर इसके वृक्ष प्रायः जंगली और विपुल होते हैं। यह बंगालमें बहुत कम होता है, परन्तु मदरास और आसाममें विपुल होता है। लंका, कोचीन, चीन और पूर्वी भारतीय द्वीपसमूहमें भी होता है। मीरजापुरमें अघोरीके किलाके समीप चोपनमें इसके वृक्ष देखनेको मिलते हैं।

वर्णन—यह एक बडे वृक्षके फलके बीज हैं। फल तेंदूँकी तरह, बीज गोल, चपटे टिकियोंकी तरह, २ ५ से० मी० या एक इञ्च व्यासमें (अधेलाके बराबर) और ६ २५ मि० मी० (चौथाई इञ्च) मोटा होता है। बाहरसे बीजकी रंगत खाकी होती है और छिलकेपर रेशमकी भाँति छोटे-छोटे सफेद और चमकदार घने रोंगटे होते हैं। भीतरकी गिरी अर्धस्वच्छ, लचीली, गंधरहित और अत्यन्त तिक्त होती है। इसकी रचना शृंगके समान होती है। इसके दो दलोंके भीतर एक मोटा-सा पर्दा निकलता है जिसे 'जीभी' कहते हैं।

रासायनिक सगठन—बीजोंमें स्ट्रिक्नीन ० ९से १ ९ बल्कि २ प्रतिशत तक (भिन्न-भिन्न प्रकारके बीजोंमें इसका प्रमाण भिन्न-भिन्न होता है), ब्रूसीन ० ५मे १ ५ और कभी ३ प्रतिशत तक, आइगेस्युरिक अम्ल जिसमें स्ट्रिक्नीन और ब्रूसीन दोनों होते हैं; लोगेनिन एक निष्क्रिय ग्लूकोसाइड, वसा, शर्करा, निर्यास, श्वेतसार और मोम प्रभृति द्रव्य होते हैं। काष्ठ, वल्कल और पत्रमें ब्रूसीन होता है, परन्तु स्ट्रिक्नीनका अभाव होता है। नये वृक्षकी ताजी छालमें अत्यधिक ब्रूसीन (३ १ प्रतिशत) होती है। पत्रमें यह १ ३ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अग—वृक्ष वल्कल और बीज।

शुद्धि—कुचला विष हैं। इसलिए यूनानी वैद्यकमे शुद्ध किये हुए कुचलाका ही प्रयोग करनेका विधान है। इसके शोधनकी विधि मेरे लिखे 'यूनानी द्रव्य गुणविज्ञान' ग्रंथमें देखें। इसका चूर्ण बहुत मुश्किलसे होता है। इसलिए इनको सर्वप्रथम पानीमे भिगोकर मुलायम कर लेते है। फिर छिलका उतारकर सोहान वा रेती से रेतकर बुरादा करके या कूट-पीसकर चूर्ण बनाकर उपयोग करते हैं।

कल्प तथा योग—रोगन कुचला, हब्ब कुचला, हब्ब अज़ाराकी, दवाए अज़ाराकी और माजून अज़ाराकी आदि। प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष है। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (ग० नि०) है।

गुणकर्म—कफज और वातज व्याधिनाशक, दीपन, वातनाडीबलदायक, सारक, उत्तेजक, हृदयबलदायक, श्लेष्मनि सारक, वाजीकर, वस्तिबलदायक, विलयन, रक्तप्रसादन और त्वग्रोगनाशक हैं।

उपयोग—पक्षवध, अर्दित, आमवात और कटिशूल आदि जैसे कफज और वातज व्याधियोंमें तथा आमाशय, वातनाडी और वाजीकरणके लिए इसका उपयोग करते हैं। अरोचक और अन्त्रकी निर्बलताके कारण रहनेवाले कब्ज (आनाह) मे इसका उपयोग किया जाता है। कफष्ठीवनकर्ता एवं कफोत्सारि होनेसे यह कास, कृच्छ्रश्वास और उर क्षतरोग (मर्जे सिल) में भी प्रयुक्त होता है। वृद्धावस्थाके कारण होनेवाले बहुमूत्रको रोकने और बच्चोंके वस्ति-दौर्बल्यनिवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं। श्वयथुविलयन होनेसे शोथ विशेषत प्लेगकी ग्रन्थियो (सूजन) पर इसको घिसकर लेप करते हैं। इसको तिलके तेलमें जलाकर और तेलको छानकर मर्दन करनेसे आमवात आदिमें उपकार होता है। रक्तप्रसादन होनेसे फिरग जैसे रक्तविकारजन्य रोगोंमे इसे खिलाया जाता है। माजून लना और हब्बे आजाराकी इसके प्रसिद्ध योग हैं जिनका कुचला प्रधान उपादान है।

कुचलाके विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—अशोधित या औषधीय मात्रासे अधिक (३ माशे) कुचला सेवनसे ये लक्षण होते हैं। थोडी देर बाद अग टूटने लगता है, पीठ और हाथ-पाँवमे दर्द होने लगता है, फिर सपूर्ण शरीरमे आक्षेप प्रारम्भ हो जाता है, नाडीकी गति तीव्र हो जाती है और शरीरका तापमान किसी कदर बढ जाता है। इसके उपरात शरीरपर पसीना आ जाता है। रोगी थकान एव श्रान्ति अनुभव करने लगता है। इसके बाद आक्षेपका वेग शीघ्र-शीघ्र और अत्यन्त तीव्र होने लगता है। नेत्रगोलक बिलकुल बाहरको निकल आते है और भय एव सन्नाटा छा जाता है। जबडेकी पेशियोंमें भी आक्षेप होने लगता है और पृष्ठकी पेशियोंके आक्षेपग्रस्त होनेसे सपूर्ण शरीर धनुषकी भाँति वक्राकार, केवल रोगीका सिर और एडी चारपाई पर लगी रहती है। अतमें आक्षेपकी अवस्थामें श्वास बन्द होकर रोगीकी मृत्यु होती है।

विषकी चिकित्सा—आक्षेपसे पूर्व प्रथमत. रोगीको गायका घी और दूध बारम्बार पिलाकर वमन करायें या स्टमक पम्प द्वारा गरम जलसे बारम्बार आमाशय को धोकर खूब साफ कर दें। इसके उपरान्त उपयोगी विषघ्न औषधियोंको दूध, अण्डेकी सफेदी या किसी स्नेहमें मिलाकर पिलायें।

अहितकर—अशोधित कुचला अधिक प्रमाणमे सेवन करानेसे आक्षेप एव बुद्धिविपर्यय उत्पन्न कर देता है। इसके बाहरी प्रयोगसे छाले (विस्फोट) पड जाते है। निवारण–शर्करा, लवाव और समस्त प्रकारके स्नेह। प्रतिनिधि-भिलावाँ। मात्रा—६० मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० (½ रत्तीसे २ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुचला (कारस्कर) कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा कुष्ठ, वातरोग, रक्तविकार, खाज, कफ, आम, अर्श और व्रणको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्यमत—कुचला तिक्त, दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, नियतकालिकज्वरप्रतिवन्धक, वल्य और वाजीकर हैं। बीजका लेप पूतिहर और वेदनास्थापन हैं। इससे शरीरकी सब क्रियाएँ उत्तेजित होती हैं। नाडीसस्थानके ऊपर इसकी विशेप क्रिया होती है। मस्तिष्कके ऊपर तो इसकी विशेप क्रिया नही होती, परन्तु मस्तिष्कके नीचे जो जीवनीय केन्द्र है, उनपर और पृष्ठवशकी नाडियोपर इसकी विशेप उत्तेजक क्रिया होती हैं। श्वासोच्छ्वासके केन्द्र-स्थानको उत्तेजन मिलनेसे रोगीकी श्वास लेनेकी शक्ति बढती है, भली-भाँति खाँसा जाता है और कफ गिरता है। हृदय और रक्तवाहिनियोके केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे हृदयकी सकोचन-विकासन क्रिया ठीक होती हैं। रक्त-वाहिनियोकी स्थिति सुधरती है और रक्तका दवाव बढता है। कुचला शीतज्वरमें गुणकारक हैं। इससे ज्वरकी वारी रुकती है और ज्वरके दुष्परिणाम नही होते। इससे आमाशय की शक्ति बढती है और पाचनक्रिया सुधरती है। अतएव कुपचन और जीर्ण अभिष्यदयुक्त आमाशयके रोगोमे इसे देते हैं। आमाशयकी अपेक्षया आँतोपर विशेपत. बडी आँत पर इसकी प्रबल क्रिया होती हैं। इससे आँतो की चलनशक्ति बढती है। आँतो की शिथिलतामें सुगधित द्रव्योके साथ इसे देते है। इसे अल्पप्रमाणमें देनेसे कष्ट दूर होता है। अर्दित, अर्धांगवात आदि नाडियोके रोगोमें जो गति-भ्रश और ज्ञानभ्रंग होता है, उसमे भी इसे देते हैं। शिशुओका शय्यामूत्र, हस्तमैथुनके अनन्तर अपने-आप वीर्यस्खलन, अतिमैथुनसे उत्पन्न नपुसकता, मूत्राशयकी अशक्तता, मानसिक थकावटसे उत्पन्न अनिद्रा इन रोगोमे इससे लाभ होता है। हृदयमे शिथिलता आनेसे हृदयका स्पन्दन ठीक सुननेमें आता हो, नाडीकी गति मन्द-अतित्वरित किंवा खडित होती हो, जरासा श्रम करने पर पसीना आता हो और दम भर आता हो, उक्त अवस्थामें इसका प्रयोग आवश्यक है। हृत्पटलके जीर्णरोगोमे हृदयमे शिथिलता आती है और हृदय बडा होता है, हाथ-पाँवमें सूजन आती है, पेटमे जल उत्पन्न होता है, यकृत् बडा होता है, मूत्र कम और लाल रगका होता है, दस्त साफ नही होता, अन्न नही पचता पेट फूलता है, सोनेसे जी घबराता है, इसलिये दिन-रात बैठा रहना पडता है। उक्त अवस्थाको हृदयोदर कहते है। इसमे कुचलाका अर्क देते है और साथमे इतर सहायक औषध, जैसे कफकी प्रधानता हो तो कफघ्न द्रव्य, हीग और कपूर, जलशोथकी प्रधानता हो तो स्वेदजनन, मूत्रजनन और रेचनद्रव्य तथा कॉफी आदि देना चाहिये। फुफ्फुसके तीव्र रोगोमें जब श्वासक्रिया ठीक नही चलती, जी घबराता है और रोगी थकने लगता है, उस समय इसे देते है, श्वासनलिकाशोथ, फुफ्फुसशोथ और दमेमे उत्तेजक कफघ्न औषधियोके साथ इसे देते हैं। राजयक्ष्मामे इससे रात्रिको स्वेद आना बन्द होता है।

●

(१४८; १४९) कुट (ठ), कड़आ कुट

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

मीठा कुट—

नाम—कुट (हिं०) कुट (ठ), कूट, मीठाकूट, (अ०) अल्कुस्त (इ० बै०), कुस्त, कुस्ते अरबी, कुस्ते बहरी, कुस्तुल् हुलुव्व, (फा०) कुस्ते शीरी, कुस्ते सफेद, (लै०) ईरिस वि० (Iris sp.), (अं०) ऑरिस रूट (Orris root); (यू०) Kostos, Costus (D. 1 15)।

वक्तव्य—यह वास्तविक कुटमे भिन्न अरबवालोका कुट है। यह ईरिडे फैमिलीके एक गुल्मकी जड है जो रोम और ईरान आदि देशोमें होती हैं। इसे 'ईरसा' या 'सौसनकी जड' कहते है।

कडआ कुट—(हिं०) कुट (ठ), कडवा कुट, कूठ; (अ०) कुस्ते हिन्दी, कुस्तुल्मुरं, (फा०) कुस्ते तल्ख (-स्याह), कोश्त, (यू०) कोस्टोस (Kostos); (स०) कुष्ट, काश्मीरज; (ब०) कुड, पाचक, (प०, क०) कुट (ठ); (का०) पोस्तरवें, (वम्ब०) कुट, ओपलेट; (म०) कुष्ट, (गु०) कठ, उपलेट, (कर्णाटकी) कोष्ट, (ते०) गोश्नमु, (ता०) गोश्तम्, (लें०) साउस्सूरेआ लाप्पा **Saussurea Lappa** C B Cl.। (आप्लोटाक्सिस आउरीकुलाटा **Aplotaxis auriculata** DC., कोस्टुस आराविकुस **Costus arabicus** Linn.), (अं०) दी कॉस्टस (The Costus), इण्डियन कास्टस (Indian Costus)।

वक्तव्य—यह मुण्डीकुल (Compositae Family)का कुट ही वास्तविक कुट है। कुट या कूठ आदि सज्ञाएँ सीधे सस्कृत 'कुष्ठ'से अथवा संस्कृतसे अन्य भाषाओके द्वारा व्युत्पन्न हुई है। उनमे अरवी 'कुस्त' तो सस्कृत कुष्ठ ही हैं। अन्तर केवल यह हैं कि उसमें 'ठकार'की जगह जिसका अरवी या फारसी वर्णमालामें अभाव है, 'तकार' हो गया है। जहां तक ज्ञात होता हैं अरवी कुस्त सस्कृत कुष्ठसे यूनानी 'कोष्टोस (कुस्तुस)' द्वारा अथवा सुरयानी 'कोश्ता' या फारसो 'कोश्त' द्वारा व्युत्पन्न है।

कुट क्या सन्दिग्ध औषधि है ?

यह अत्यन्त प्रसिद्ध वस्तु हैं और इसमें सुगन्ध होती है तथा यह कृमिघ्न गुण रखती है। प्राय इसकी गधके समीप कीडे नही आते। रेशमो और ऊनी वस्त्रोमें रखनेसे कोडे नही लगते। इसीलिए इसका उपयोग चीनमें रेशमकी रक्षाके लिये होता है तथा वहाँ इसे धूपकी सामग्रीके साथ मिलाकर देवस्थानोको सुगन्धित करनेके लिये अधिक उपयोग मे लाते हैं। इसी से यह चीन देशमें अधिक जाती है। इसका उत्पत्तिस्थान एकमात्र चम्बा और जम्बू कश्मीर स्टेट था। इसे वहांसे ठेकेदार ही खरीद सकते थे अन्य व्यक्ति नही। कुष्टके विक्रयकी रोक-थामके लिए जम्बू कश्मीर स्टेटने सन् १९२२ ई०में पजाव गवर्नमेंट द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त किये और कानून वनवाया। इसीसे कुठको प्रत्येक व्यक्ति न ला सकता था न बेंच सकता था। अभी यह सामान्यतया महँगी रहती थी। किन्तु, आज कोई ६-७ वर्षके भीतर स्वर्गवासी लाल धन्वन्तरि प्रसादजी कविराज इसका बीज जम्बूकश्मीर स्टेटसे किसी प्रकार प्राप्त कर सके और उन्होने मण्डी स्टेट, टिहरी स्टेट, चम्बा स्टेट तथा कागडा जिलाके लाहुल प्रान्तमे इसके बीजोको भेजकर वहाँ खेती करवायी। परिणाम यह हुआ कि पजाव गवर्नमेन्टने इसके विक्रयका प्रतिबन्ध पजाबसे उठा लिया। अब प्रत्येक व्यक्ति कश्मीर स्टेटसे बाहर कही लगा सकता, रख सकता और बिना परमिट (पास)के बेंच सकता है। इसका बीज अन्य स्थानोमे पहुँच जानेसे इन दो-तीन वर्षोमें इसकी खेती काफी वढी। इसी कारण अब कुठ वाजारमें काफी आने लगा है जिसमे इसका बाजारभाव भी गिर गया है।

यद्यपि कुठका पूर्ण अभाव कभी नही हुआ, तो भी ठेका होने और चीनमें जानेके कारण भारत में प्राय. कम रह पाती थी। इसीलिये महँगी और बहुत स्थानोमें अप्राप्य रही, जब जो चीज महँगी हो और प्राय कठिनतासे मिले और मांग अधिक हो, तो दूकानदार उसके स्थानमें दूसरी चीज देवे तथा नकली चीजे मिलाकर वेचनेका प्रपच करते है। इसीलिए पजाबको छोडकर प्राय अन्य प्रान्तोमें वैद्योको यह मिलावटका या नकली मिलता था। अभी, "कुठ क्या है ? कैसा होता है ?" इसके सम्बन्धमें वैद्यसमुदाय सन्देहमें रहता आया हैं। यद्यपि यह कभी सन्दिग्ध नही था। कश्मीर स्टेटके जगलातके महकमें से पता चलता हैं कि वहाँ ठेके द्वारा इसका विक्रय सन् १८८०-८१ ई० से होता चला आ रहा है। फिर आज तक वैद्य इसको सन्दिग्धकहनेका साहस करे तो उन्हें क्या कहा जाय, यह मेरी समझमें नही आता।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान जिला हजारा, कश्मीर स्टेटका बारामूला वाला प्रान्त, कष्टवार, भद्रवार प्रान्त तथा चम्बा स्टेटका मनमहेश और याशी-की-जोत नामके स्थान थे। हजारों वर्षोंमे इन्ही प्रदेशोके हिमाच्छादित स्थानोंमे और उसके आस-पास होता चला आया है। इसकी उत्पत्ति प्राय: सात हजार फुटसे लेकर बारह हजार फुटकी हिमाच्छादित गिरिशिखरपर देखी जाती है। परीक्षाओमे सिद्ध हो गया है कि यह हिमालयके किसी भी ऊँचे स्थानपर लगानेसे लग जाती है। इसीलिए अब कश्मीरसे लेकर टिहरी गढवाल तक फैल गयी है। यह वनस्पति बहुत प्राचीन वनस्पतियोंमेसे है। इसका उल्लेख अथर्ववेदमे कई जगह आया है।

वक्तव्य—यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यूनानी निघण्टुओमें वर्णित कुस्तके अन्यान्य भेद तो यमन, इरान, रोम और भारतीय द्वीपसमूहो अर्थात् विदेशोंमें अवश्य होते है, किन्तु वास्तविक कुष्ट जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है, केवल भारतवर्ष, वह भी विशेषकर कश्मीरमे होता है। इसलिये इन्होने 'कुस्ते हिन्दी (Indian Costus)' नामसे इसका उल्लेख किया यह कुष्ठ प्राचीन कालसे ही मसाला आदि अन्यान्य द्रव्योकी भाँति भारतसे बाहर जानेवाले निर्यात द्रव्यावलीकी तालिकामे समाविष्ट था। तालीफशरीफाके अनुसार भी तिक्त कुष्ट हिन्दुस्तानमें पुष्कल होता है। अरब व्यापारी इसे यहाँसे यूरोप आदि पश्चिमी देशोमें ले जाते थे। अस्तु, बहुत काल तक वहाँके निवासी इसे अरबकी पैदावार समझते रहे। इसीलिये इसका एक अंगरेजी नाम अरेबियन कॉस्टस (Arabian Costus) लिखा मिलता है। परन्तु 'कुस्ते अरबी (अरबी कुट)' इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। इस बातको स्वयं अरबी ग्रन्थकार स्वीकार करते है।

वर्णन—इसका क्षुप ४॥–५ फुट तक सीधा उठता है और बहुवार्षिक होता है। बरफ गलनेके कुछ दिन बाद पत्र निकलने लगते है। जेठ-आषाढमें अकुर निकलते है और कार्तिकमे जब काफी ठढ पडने लगती है, इसके पत्ते जल जाते है, केवल डठल खडे रह जाते है। वह भी फरवरीमें टूट-फूट जाते है। इसके पत्तोकी आकृति राईके बडे पत्तोके समान होती है। पत्ता आगेसे चौडा और पीछेसे पतला होता चला जाता है, अर्थात् पत्ते गोपुच्छाकार होते है। कुछ पत्ते बीचमे तीन-चार हिस्सोमे बँट भी जाते है। पत्तेके किनारे आरे सरीखे या कँगूरेदार होते है। पत्तेके बीचमे एक बडी रेखा चलती है। उसीमेसे पत्राच्छादक और रेखाएँ निकलती है। पत्ता खुरदरा और वृन्त-विहीन होता है, अर्थात् पत्रदण्डी नही होती, मूल दण्डसे ही पत्रका भाग लगा होता है। पत्रकी चौडाई आगेकी ४ से ६–७ इच तक और लम्बाई १२-१८ इञ्च तक होती है। अकुरोदय होनेपर वह पत्ता जैसे-जैसे बढता है, धरतीपर सरसो या राईकी तरह चारो ओर फैलने लगता है। तीन-चार बरसोंमें जाकर उसमेंसे ऊँटकटारा या राईके समान एक मूल तना या डठल निकलता है जो ऊपर जाकर कुछ शाखा-प्रशाखाओमें बँट जाता है। इसके डण्ठलकी लम्बाई चार-पांच फुट तक चली जाती है। डण्ठल या मूल तना बीचसे रेंडकी तरह पोला रहता है। उस डण्ठलपर पत्र-रचना विषम होती है, मूलकी अपेक्षा डण्ठलपर, छोटे पत्ते होते चले जाते है। शाखाओके अन्तमे तीन-तीन चार-चार फूलोके गुच्छे निकलते है। फूलकी आकृति चन्द्र मल्लिका (गुलदाउदी)के समान ज्वाला-मुखी फूल जैसी होती है। फल अव्यक्त अवस्थामे ईषत् नील-पीत वर्णका पुष्पपत्र द्वारा छोटे-छोटे काँटोसे युक्त होता है। फूल खिलनेपर कुछ पीला सूरजमुखीकी तरह होता है। बीजोकी शकल भी इससे मिलती है। फूल भादोमें खिलते है और कार्तिकमे बीज पककर गिरने लगते है। (रगीन चित्र देखिये)।

जड—इसकी जडकी शकल मूली-गाजरकी तरह होती है। किसी-किसी जड़मे शाखाएँ भी हो जाती है। इसकी लम्बाई जमीनमे कभी-कभी दो-दो फुट तक चली जाती है। जडमें छोटे-छोटे तन्तु या रोएँ होते है जो आसपासकी भूमिमे फैल जाते है। उन्ही के द्वारा यह अपना खाद्य चूसता है। इसके मूलका रग सफेदीमायल हलका पीला होता है। उखाडनेपर अच्छी तरह सुखाया जाय तो उसका रग ज्योका त्यो बना रहता है। इसे यदि पूरेका पूरा सुखा लिया जाय तो यह हरिनकी सीगकी तरह लम्बी-लम्बी सीधी झुर्रियोमे मरोड खाकर और सिकुड–

कर सूख जाता है। इसीलिये तो शास्त्रकारने "मृगशृङ्गोपम कुष्ठ" अर्थात् कुठ मृगके सींगकी आकृतिका होता है और तोडनेपर भी मृगशृंग जैसा तोडमें दिखाई देता है, ऐसा लिखा है। औषधमें केवल इसकी जड काममें ली जाती है। इसे सितम्बर और अक्टूबर महीनेमें जमीनसे खोदकर संग्रह करते हैं। इसके टेढ़े-मेढ़े बल खाये-हुए २ से ६ इञ्च लम्बे टुकडे होते हैं जो ½ से १॥ इञ्च मोटे होते हैं। बाहरसे ये भूरे होते हैं और उनपर लम्बाईके रुख उभरी हुई रेखाएं होती हैं। उसका धरातल खुरदरा और कुछ-कुछ जालनुमा होता है। यह भंगुर होता है। जडके टूटे भागपर गोंदनी लगी हुई जान पड़ती है और वह उसकी सफेद रंगका होता है। जड स्वादमें तिक्त और चरपरी होती है तथा इसमेंसे ईरसा (Orris root) जैसी एक विशेष प्रकारकी अत्यन्त सुरभिपूर्ण गन्ध आती है।

अरबी या मीठा कुट (कुस्ते अरबी)—यह सफेद या पिलाई लिये सफेद, एक जड है जो वजनमें हलकी, सुगन्धित और मीठी होती है। यूनानी वैद्यकमें मात्र 'कुस्त' संज्ञासे यही विवक्षित होता है और औषधमें अधिकतया इसीका व्यवहार होता है। यूनानी हकीम इसे 'कुस्ते हिन्दी (कडुआ कुट)'से उत्तम समझते हैं। इनके मतसे इसमें भी उत्कृष्टतर कुट वह है जो ताजी हो, कृमिभक्षित न हो, जिसमें सुगन्ध हो, जिसके चाबनेसे जिह्वामें दाह मालूम हो और जिसकी छाल पतली और नरम हो। इसमें दस वर्ष तक वीर्य शेष रहता है।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें यद्यपि 'मीठा कुट' या 'सफेद कुट' को कुट का एक भेद लिखा है, तथापि मुल्ला नफीस के मतमें यह कुष्ठभेद नहीं, अपितु एक प्रकारके सोसनकी जड है जो रोम देशमें होती है। वनफशाके साथ इसकी खेती की जाती है। इराकमें इसकी जडको 'बेखे बनफशा (बनफशा की जड)' कहते हैं। परन्तु यह उससे भिन्न एक जड है जिसे 'ईरसा' या 'सोसनकी जड' कहना चाहिये, क्योंकि अरब निवासी इसे ईरसा या सौसन कहते हैं। इसे अंगरेजीमें 'ओरिस रूट' और इसके क्षुपको आयरिस(Iris Sp) कहते हैं।

उक्त विवरणसे तथा यूनानी ग्रन्थोक्त इसके अन्यान्य भेदोंका विचार एवं उसपर लिखे गये अन्यान्य विद्वानो-के विवरणोंका गंभीर ऊहापोह एवं गवेषणात्मक अध्ययन-परिशीलन करनेपर अन्तत यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तविक कुट (कुस्त) वस्तुत एक ही है और वह 'भारतीय कुठ' है। नामभेदसे इसे ही अरबी कुस्त (Arabian Costus) कहते हैं। यूनानी ग्रन्थोक्त इसके अन्यान्य भेद कुष्ठभेद नहीं, अपितु गुण या स्वरूपादिमें इससे मिलने-जुलते, किन्तु इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। अस्तु, मैंने विस्तारभयसे उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया है।

यूनानी हकीमोंमें इसके उपर्युक्त दोनो भेद ही अधिक प्रचलित हैं। इसलिये मैंने उनका यहाँ वर्णन कर दिया है। यद्यपि इनके अतिरिक्त इसके एक 'तीसरे' भेदका उल्लेख यूनानी निघण्टुओंमें मिलता है, जो सुर्खी मायल, भारी और सुगंधित होता है, किन्तु तिक्त नहीं होता, तथापि विषैली होनेके कारण इसका उपयोग चिकित्सामें नहीं होता।

रासायनिक संगठन—कडुवे कूटमें एक उत्पत् तेल १ ५%, कुष्ठीन या सॉसूरीन (Saussurine) नामक एक क्षारोद ० ०५%, राल लगभग ६ ०%, अशत एक तिक्त पदार्थ, अल्प प्रमाणमें कषायिन (Tannin), इन्युलीन लगभग १८ ० प्रतिशत, अनुत्पत् तेल, पोटैसियम नाइट्रेट और शर्करा इत्यादि द्रव्य होते हैं। पत्रमें ० ०२५% यह क्षारोद होता है और कोई उत्पत तेल नहीं होता। (इ० ड्र० इ०—चोपडा)।

उपयुक्त अंग—मूल। मात्रा—२५० मि० ग्रा० से १ २५ ग्राम (२ रत्ती से १० रत्ती)।

कल्प तथा योग—अमरूसिया, रोगन कुस्त।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म—यह बाह्यत लेखन, शोणितोत्क्लेशक, श्वयथुविलयन और रूक्षण कर्म करता है। आतरिक उप-योग से यह उत्तमांगोको बलप्रद और वातनाडीबलदायक है तथा फुफ्फुसोपर कफोत्सारि कर्म करता और उरोवेदनाको

शात करता है। अन्त्र ओर आमाशयपर बलदायक और वातानुलोमन कर्म करता, उदरज कृमियोको नष्ट करता, मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करता तथा जरायुशूलको शमन करता है। खिलाने और लगानेसे यह कामोत्तेजक कर्म करता और जीर्ण कफज्वरोको लाभ पहुँचाता है। वाजीकरण और उत्तमाङ्गशक्तिवर्धन इसके प्रधान कर्म हैं।

उपयोग—कुट को मधुवारिमे पीसकर झाईं और त्वचाके दाग-धब्बो तथा युवापिटिकाओको दूर करनेके लिए लेप लगाते हैं। खालित्य विशेष (दाउस्सालब), झाईं (बरश व नमश) और गजको नष्ट करने तथा रोमसजननके लिए इसको सिरका, कत्रान और मधुके साथ पीसकर लगाते हैं। अर्दित, पक्षाघात, अपतानक, कम्पवात, आमवात, वातरक्त और गृध्रसी जैसे शीतल रोगोमे वेदनाको शमन करने और वातनाडियोको उत्तेजन एव शक्ति प्रदान करनेके लिए जैतून या तिलके तेलमे मिलाकर मर्दन करते हैं। आतरिक रूपसे उपर्युक्त कफज और वात व्याधियोमे इसे विविध प्रकारसे खिलाते हैं। कास, कृच्छ्रश्वास, उरोवेदना और पार्श्वशूलमे इसे मधुमे मिलाकर चटाते हैं। प्लीहा-शोथ, जलोदर और उदरज कृमिरोगमे इसको खिलाते हैं। आर्तवप्रवर्तनके लिए इसका क्वाथ करके पिलाते हैं। जरायुशूल निवारणके लिए इसके काढेमे रोगियोको बिठाते हैं। वाजीकर औषधियोमें योजित करके नपुसक रोगियो-को बाह्यातरिक रूपसे उपयोग कराते हे। अहितकर–वस्ति और फुफ्फुस रोगोके लिए। निवारण–गुलकद। प्रतिनिधि–अकरकरा। मात्रा–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुष्ठ तिक्त, कटु, मधुर, लघु, उष्णवीर्य, लेखन, शुक्रशोधन, शुक्रल, आस्थापनोपग, वात-हराभ्यङ्गोपयोगी तथा वात, कफ, कुष्ठ, विसर्प, विष, कडू, दाह, वातरक्त, खाँसी, श्वास, हिक्का और ज्वरको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४,२५, सु०सू०अ० ३८, ध०, रा० नि०, कै० नि०)। प्राय यह लगानेमे अधिक प्रयुक्त होता है।

नव्यमत—कुष्ठ सुगन्धि, तिक्त, दीपन, पाचन, वातहर, कुछ सग्राहक, उत्तेजक, कफघ्न, सकोचविकास-प्रतिबन्धक, कुछ मूत्रजनन, आर्तवजनन, आर्तवशूलप्रशमन, वाजीकर, त्वग्दोषहर, कान्तिकर, व्रणरोपण, व्रणशोधन और वेदनास्थापन हैं। त्वग्रोगोमे इसको खानेको देते है और इसका लेप करते है। इससे त्वचाका रक्तानुधावन और विनि-मय क्रिया सुधरती है। काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे सिरका दर्द बन्द होता है। दाँत ढीले होनेसे मसूढे दुखते है तब कुष्ठका चूर्ण मसूढोपर मलनेसे मसूढे शुद्ध होकर पीडा शात होता है। व्रणपर लेप करनेसे व्रणजन्तु मरते हैं। व्रणकी शुद्धि होती हैं और वह शीघ्र भर आता है। व्रणको कुष्ठकी धूनी भी देते है। आमवातमें कुष्ठका चूर्ण रेंडीके तेलमे मिलाकर खिलाते हैं और सूजे हुए जोडपर उसका लेप भी करते हैं। कुष्ठ उत्तेजक और स्वेदजनन है, इसलिए इसे ज्वरमे देते हैं। स्वेदल औषध प्राय थकावट लानेवाले होते है, परतु यह उत्तेजक और चेतनाकारक है। ज्वरमे इससे थोडा पेशाब भी अधिक होता है। यह उत्तेजक कफघ्न है, इसलिये खाँसीमे जब कफ अधिक आता हो तब इसे देते हैं। इससे ज्वर उतरता है, खाँसनेकी शक्ति बढती है, कफ निकलने लगता है और खाँसीका जोर कम होता है। कूकर-खाँसी और दमामे इसका सकोचविकासप्रतिबन्धक गुण उपयोगी होता है। जननेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियपर इसकी उत्तेजक क्रिया होती हैं। इससे दूध बढता है। प्रसूतावस्थामे कुष्ठ देते है ओर प्रसूतिगृहमे कुष्ठका धूप देते हैं। इससे ऋतु साफ होता है और ऋतुकालमे होनेवाली पीडा कम होती है। इसलिए अनार्तव और पीडितार्तवमे इसे देते हैं। अपचन, कुपचन, उदरशूल, आध्मान, अतिसार और हेजेमे इससे अच्छा लाभ होता है। महामारीमे इसके फाटसे शरीरमे उष्णता आती है और नाडी सुधरती है। हृदयोदर और जलोदर मे इससे पाचनका सुधार होता है। मूत्र-मार्ग से उदरस्थ जल निकलता है और शरीरमे उत्तेजना आती है। यह उन्माद, सन्यास, भूतोन्माद एव अपस्मार रोगोमे गुणकारक हैं।

अफीमके बदलेमे इसका धूम्रपान करनेसे अफीमचीको कुछ शाति मिलती है। दाँतके दर्द और पार्श्वशूलमें इसे लगानेसे लाभ होता है। लगानेसे मुखपर निकलनेवाली यौवनपिटिकाओ–झाइयो (मुँहासो)को दूर करता है, वर्णको बढाता है। प्राय यह लगानेमे अधिक प्रयुक्त हुआ है।

उपयोग—अजीर्ण और मंदाग्निमें जठराग्नि दीपनार्थ कुटकीको खिलाते हैं। उदरजकृमियोंको नष्ट करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। जलोदर और जीर्ण ज्वरोंमें जबकि यकृत्के रोगपीडित होनेके कारण हाथ-पाँव पर सूजन आ जाती है, तब इसका चूर्ण खिलाते हैं। पित्तज ज्वरोंमें नीमकी छालके साथ इसका क्वाथ पिलाते हैं। अहितकर-वमन, पटशोथ (गुताक) और आक्षेप उत्पन्न करती है। निवारण-बादाम का तेल और मस्तगी। मात्रा-कटुपौष्टिक गुणके लिए ०.६ ग्राम से १.३ ग्राम (५ रत्ती से १। माशा) तक, ज्वरोंमें २-३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक और जलोदरमें विरेचनार्थ ६-७ ग्राम (६ से ७ माशे) तक क्वाथ बनाकर देना चाहिये।

आयुर्वेदीय मत—कुटकी तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, लेखन, भेदन, स्तन्यशोधन, दीपन, हृद्य तथा कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, श्वास, कास, रक्तविकार, दाह, कुष्ठ और कृमिका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८, भा० प्र०)।

नव्यमत—कुटकी दीपन, उत्तम कटुपौष्टिक और बडी मात्रामे रेचन है। इसका नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक धर्म कुनैनसे कम दर्जेका है। इसमे दीपन-पाचन होता है। आमाशयरस बढता है और दस्त साफ होता है। इसकी जडका काढा देनेसे डिजिटेलिसके समान क्रिया होती है। हृदयकी गति कम होती, परतु शक्ति बढती है और रक्तका दबाव बढता है। विषमज्वर रोकनेके लिए कुटकी बडे प्रमाणमे देनी पडती है। कभी-कभी इसमे विरेक होने लगते है। जिन रोगियोको विषमज्वरके साथ मलावष्टंभ हो उनको अच्छा लाभ पहुँचाती है। कुपचनसे उत्पन्न श्वासरोगमें कुटकीको मिश्रीके साथ देते हैं। कुटकीका काढा दिनमे तीन-बार हृदयोदर और जलशोथमें देनेसे विशेष लाभ होता है। इससे पानी सरीखे दस्त होते तथा हृदय को शक्ति मिलती है और उदर कम होता है।

●

(१५०,१५१) कुड़ा सफ़ेद व काला

फ़ैमिली . आपोसिनासे (Family Apocynaceae)

नाम। काला या तिक्तकुड़ा वृक्ष—(हिं०) कुडा, कोरया (था०, को०), कुरैया, कीरै(र)या; (खर०) कालाकुडा, दुधिया (मु गेर), (अ०) शज्रलिसानुल् असाफीरुल् मुर्र, (स०) कुटज, (व०) कुडचि गाछ, (उडिया) कुडा, (प०) कुरो, (म०) कालाकुडा, (गु०) कडो, (लै०) होलेरहीना आंटीडीसेंटेरिका (Holarrhena antidysenterica Wall)। कुडाकी छाल (हिं०) कुडाछाल, कुरैयाकी छाल, (अ०) कश्र शज्रलिसानुल् असाफीरुल् मुर्र, तीवाजे हिंदी, (फा०) पोस्तकुडा, पोस्तदरख्त जबानकुजिश्क तल्ख, पोस्त दरख्त इन्द्रजौ तल्ख, (स०) कुटजत्वक्, (व०) कुर (ड) ची, (अ०) कोनेस्सी बार्क (Conessi Bark), कुरची बार्क (Kurchi Bark)। कडुआ इद्रजौ (हिं०) इद्रजौ, कडुआ इद्रजौ, (अ०) लिसानुल् असाफीर, लिसानुल् असाफीरेल् मुर्र, (फा०) जबाने कुजिश्के तल्ख, जबाने कुजिश्क, इन्द्रजवे तल्ख, पजशकरदान, (स०) कुटज बीज, इन्द्रयव (तिक्त), (गु०) कडवो इन्द्रजव, (म०) कडू इन्दरजो, कडवा इन्द्रजव।

वक्तव्य—(१) 'विलायती कुडा' अर्थात् विलायती कडुए इन्द्रजौकी छालको यूनानी वैद्यकमें 'तीवाज' कहते है। यह 'खतादेश'में होता और वहीसे आता है। इसीलिए इसे 'तीवाजे खताई' भी कहते है। अरबी 'तीवाज' शब्द सम्भवत सस्कृत 'त्वक्' शब्दसे व्युत्पन्न है। (२) इन्द्रजौ गौरे(चटक)की जीभकी रूपरेखाका होता है। इसीलिए, इसे अरबीमे 'लिसानुल् असाफीर या लिसानुल् उस्फुर (चटक जिह्वा)' और फारसीमें 'जबान कुजिश्क (चटक जिह्वा)' कहते हैं।

●

(१५२) सफेद या मीठा कुड़ा

नाम—वृक्ष (हिं०) सफेद कुडा, मीठाकुडा, गिरना, गिन्ना, (सर०, मिर्जापुर), दूधी, दूधकोरैया (मुंगेर), (स०) सित कुटज, (म०) सफेद कुडा, पांढरा कुडा, (गु०) धवलकुडा; (काठियावाड) दुधलो, (लै०) राइटिआ टिंक्टोरिआ (Wrightia tinctoria R Br); (२) राइटिआ टोमेंटोसा (W. tomentosa Roem & Schult)। बीज (हिं०, द०, गु०) मीठा इन्द्रजौ, (अ०) लिसानुल् असाफीर हुलुव (हलो), (फा०) इन्द्रजवे शीरीं, ज़बान कुंजिश्के शीरीं, (म०) गोड इन्द्रयव।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—भारतवर्षके उष्णतर वनो और बगालमे कुडाके वृक्ष विपुल होते है । वृक्ष मझोले आकारके लगभग ६ से ९ मीटर (२० से ३० फुट) तक ऊँचे होते है । तना छोटा और उसकी गोलाई ०.९ से १.२ मीटर (३–४ फुट) होती है । पत्र प्राय धाराकदब या अमरूदके पत्रकी तरह होते है । पुराने पत्र माघमे गिर जाते और चैत-वैसाखमे पुन नये पत्र निकलते है । कोमल शाखाग्र या पत्र तोडनेपर सफेद दूध निकलता है । यह चैत-वैसाखमे फूलता है । पुष्प, पत्रवृन्तके समीपसे निकलता और सशाख पुष्पदण्डपर स्थित होता है । पुष्प गुच्छोमे लगता तथा अनुज्ज्वल शुभ्र, मिलितदल, पुष्पनाल क्षीण एव सकुचित, पुष्पनालाग्रभाग पाँच भागोमे चीरित होता है । इसमें मधुर सुगध होती है जो दूरतक फैल जाती है । फलियाँ गोल, पतली (२२.५ से ३३.२५ से० मी०) लम्बी, युग्म और सिरेपर मिली हुई नही होती है । ये जाडेमें पकती और प्राय फागुन-चैतमे तडक जाती है । इनमेंसे जो या गेहूँकी जीभ जैसे लवे बीज निकलते है । इनके सिरेपर सफेद रोएँका गुच्छा (घूआ) लगा रहता है, जो खुलकर गोल हो जाता है । इन बीजोको इन्द्रजौ या कडुआ इन्द्रजौ (इन्द्रजवे तल्ख) कहते है । वास्तविक इन्द्रजौ ये ही है । पके बीज बाहरसे ललाई लिये और सूखनेपर मटमैले या भीतरसे पिलाई लिये सफेद होते है । स्वाद, तिक्त और तीक्ष्ण या चरपरा होता है । इनके चाबनेसे जीभपर मक्षोभ प्रतीत होता है । इसकी छाल मोटी, बाहरसे कुछ भूरी व काली और भीतर लाल, हलकी और कडुई होती है । वास्तविक कुडा छाल (कुटज त्वक्) यही है । भारतवर्षमें होनेसे इसे अरबीमें 'तीवाजे हिन्दी' कहते है । वास्तविक तीवाजको जिसका यूनानी निघटुओमें वर्णन आया है, 'तीवाजे रुवाई' कहते है, क्योकि उसे सतादेशसे लाते है । वस्तुत ये दोनो एक ही द्रव्य है । केवल देश (हिंदी और नसारी) भेदसे इनमे भेद किया जाता है । तात्पर्य यह कि भारतीय कुडा (काला या कडुआ कुडा) की छाल तो 'तीवाजे हिंदी' और फारस एव सना इत्यादि विदेशोमें होनेवाले कुडाकी छाल तीवाज या 'तीवाज नसारी' है । अस्तु, इनमेसे प्रत्येक एक दूसरेके स्थानमे काम आ सकती है ।

मीठे या सफेद कुडाके वृक्ष काले या कडुए कुडाके वृक्षसे बहुत बडे होते है । फली भी उससे लम्बी, मोटी तथा काले रगकी और सिरेपर जुड़ी हुई होती है । इसके बीज कालाकुडाके बीजकी तरह कडुवे नही होते, इसलिये इसको लोग 'इन्द्रजवे शीरीं' कहते है । यूनानी वैद्यकमें कडुवे की अपेक्षया इसका ही अधिक व्यवहार होता है । इसकी छाल सफेद होती और कडवी नही होती । इसलिये इसे सफेद कुड़ा या मीठा कुडा कहते है ।

वक्तव्य—कोई-कोई इसके विपरीत पहले भेद को सफेद कुडा (पाढरा कुडा) और दूसरे भेदको कालाकुडा (काली कुडई) कहते है ।

रासायनिक सगठन—इसकी छालमे गुडूचीसत्व जैसा एक विषमय, क्षारस्वभावी तिक्तसत्व होता है । इन्द्रजवमें एक कडुआ और क्रिस्टली सत्व होता है, जो मद्यमें घुलता है, परन्तु जलमे नही घुलता ।

कल्प तथा योग—जुवारिश तीवराज (जदीद व मुरक्कब) ।

उपयुक्त अग—छाल और बीज ।

छाल (तीवाज-पोस्त कुडा)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष है, आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है ।

गुण-कर्म—सग्राही और रक्तस्तम्भन ।

उपयोग—सग्राही और रक्तस्तम्भन होनेके कारण कुडा छाल (तीवाज)को पुराने अतिसार, अर्शोजात अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, अतिरज और प्रत्येक अगजात रक्तस्राव बन्द करनेके लिये पुष्कल उपयोग करते है । जुवारिश तीवाज और हब्ब तीवाज इसके प्रसिद्ध योग है । कुडाछालको बारीक पीस-छानकर ५ माशेसे १ तोला तक (वय और बलानुसार) दहीमें मिलाकर अर्शोजात रक्त और अतिसार बन्द करनेके लिये खिलाते है । कोई-कोई

हकीम रक्तार्शमे इस प्रकार इसका प्रयोग करते हैं कुडाछाल २३ तोलेको वारीक पीस-छानकर वादामके तेलमे मलकर चिकना करके पहले दिन ४ ५ ग्राम (४ ५ माशा) खिलाते है। इसके वाद प्रतिदिन ० ५३ ग्राम (४-४ रत्ती) वढाकर पाँच दिनमे समाप्त कर देते हैं। प्रतिदिन एक वार दोपहरके समय अडेकी जर्दीके साथ चलाव खानेको देते है। पाँचवे दिन ताजे मक्खनके साथ खिलाते है। ग्राही होनेके कारण दाँतोकी मजवूतीके लिये मजनोमे सम्मिलित करते है। ग्राही और रक्त-स्तम्भन होनेके कारण नकसीर वन्द करनेके लिये इसको वारीक पीसकर नाकमें फूँकते (नफूख करते) और चन्दन तथा कपूरके साथ अर्क गुलाबमे पीसकर मस्तकपर लेप करते है। रक्तप्रवाहिकामे मूलकी छालके समान दूसरी औपधि नही मानी जाती। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

इन्द्रजौ—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—वातानुलोमन मूत्रल, अश्मरीघ्न, वाजीकर, वृष्य (शुक्रल), काम (बाह) जनक और गर्भस्थापक।

उपयोग—अश्मरिनाशन, मूत्रोत्सर्जन और वातार्श (रीहुलबवासीर)मे वायुके उत्सर्गके लिये इसका उपयोग करते है। परन्तु अधिकतर वृष्य एव वाजीकर होनेके कारण माजूनो और चूर्णोंमे सम्मिलित करके खिलाते है। गर्भस्थापक होनेसे मधु एव केसरके साथ ऋतुस्नानोत्तर इसकी योनिवर्ति वनाकर योनिमे रखते है। अहितकर–आमाशयको। निवारण–गरम मसाला और नमक। प्रतिनिधि–वहमन और तोदरी। मात्रा–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुडा (कुटज) तिक्त, कपाय, रूक्ष, शीतवीर्य, दीपन, वामक, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्य-शोधन, आस्थापनोपग, साग्राहिक, उपशोषण तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त, विसर्प, अतिसार तृषा, आम और कुष्ठको मिटानेवाला है। कुडाके पुष्प तिक्त, कपाय, शीतवीर्य, लघु, दीपन, वातकर तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, अतिसार और कृमिका नाश करनेवाले है। इन्द्रजव तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, त्रिदोषघ्न, दीपन तथा रक्तार्श, अतिसार, शूल और कृमिका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० २, ४, २५, च० क० अ० ५, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, कै० नि०, भा० प्र०,)।

नव्यमत—सफेद कुडेकी छाल इपिकाक्वानाके समान तिक्त, दीपन, स्तम्भन, नियतकालिक ज्वर-प्रतिवन्धक, ज्वरहर और वल्य है। छाल और वीजोंमें रक्तसंग्राहक और वेदनास्थापन गुण हे। वीजोके सेकनेसे सग्राहक गुण वढता है। रक्तप्रवाहिकामें इसकी जडकी छालके वरावर दूसरी औपधि नही है। ताजी जडकी छाल खट्टे छाछमे पीसकर ५ तोलाकी मात्रामे वह छाछ चार-चार घटेपर देनेमे ज्वर, वार-वार दस्त आना और मलमें रक्त आना कम होता है। आँवमे इन्द्रजौका काढा देते है। नवीन आँवमे छालसे विशेष गुण नही होता, परन्तु जीर्ण आँवमें निश्चित गुण होता है। सदा ताजी छालका उपयोग करना चाहिये। क्योकि सूखनेपर वह निरुपयोगी हो जाती है। ताजी छालकी घनरसक्रिया करके रख लेनेसे काम चलता है। कुडेके घनक्वाथके साथ अतीस, बच और मधु मिलाकर देते है। शिशुओके रक्तातिसारमें कडवा इन्द्रजव और नागरमोथाका काढा देते हे। सग्रहणीमे छालके साथ कषाय, सुगन्धि और वल्य औषध मिला, काढा करके अथवा सेका हुआ इन्द्रजव देते है। कडवे इन्द्रजवका चूर्ण प्रतिदिन खानेसे भूख वढती तथा अन्न पचता है। पेटमें वायु नही भरता और कृमि हो तो मरकर निकल जाते है। अर्शसे रक्त गिरता हो तो इन्द्रजवका फाट देनेसे वन्द होता है। मसूढोसे रक्त वहने और मसूढोमे पूय होनेपर इन्द्रजवको मसूढोपर मलनेमे लाभ होता है। कालाकुडा अल्पप्रमाणमें देनेसे आमाशय और यकृत्की क्रिया सुधरती है। परन्तु अधिक प्रमाणमे देनेसे वमन और विरेक होते है। कोमल पत्तियोका स्वरस १ ड्रामभर देनेसे कामलामे लाभ होता है।

(१५२) कुरूया

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae)

नाम—(हि०, म०, गु०) विलायती जीरा, (यू०) Karon (D 3 59) (अ०) अल्कराविया (इ० बैं०), करवाद, करेकार कुरुया, करोया, करावियां, कमूनेरूर्मी, कमूने अरमनी, (फा०) करोया, कुरूया, जीरएरूमी, ज़ीरए अरमनी, शाहज़ीरा, (द०) करोया; (व०) विलायतीजोरा, (ले०) कारुम कार्वी (**Carum Carvi Linn**), (अं०) कैरावे, केरवे (Caraway)।

वक्तव्य —लेटिन नाम कुरुयाके पौधेका है। कुरूया सुरयानी 'करावी (करुई)' 'करावियाय' वा 'करावियानी'से अथवा इसके लेटिनशब्द (कार्वी)से व्युत्पन्न या अरबी बनाया गया है। वानस्पतिक नाममे प्रजातिक नाम कारुम्' यूनानी करान (Karone)'से व्युत्पन्न है। अंग्रेजी Caraway भी 'कार्वी'का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओंमें कालाजीरेके अर्थमें 'कारवी' संस्कृत शब्द आता है ('कारवी कृष्णजीरकम्', इति चक्र)। कुरुया इसीका एक विदेशी भेद है। अत बहुत सम्भव है कि इसके उक्त सभी नाम मूलत इसी संस्कृत शब्द 'कारवी'से ही व्युत्पन्न हो। यूनानी उसको 'अर्मानियून (**Armenion**)' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप ईरान (किरमान) और एशियामें यह सामान्यरूपमें होता है। उत्तर अफरीका एव ग्रेटब्रिटेनमें कभी-कभी इसकी खेती की जाती है। भारतके कश्मीर आदि प्रदेशोंमें भी यह होता है।

इतिहास—प्रतीत होता है कि यूरुपीय या विलायती स्याहजीराके भारतमें आनेसे पूर्व भारतीयोको एक प्रकारके जीराका ज्ञान था, जिसको संस्कृतमें कृष्ण(=स्याह)जीरक अर्थात् 'स्याहजीरा' कहते है। किन्तु शोनीज 'कलौंजी'को भी कृष्णजीरक कहते हैं। सर्वप्रथम अरबवासियोने 'करावियां'के नामसे विलायतीजीराका उल्लेख किया है। इब्नमासुया, इद्रीसी एव इब्नबैतार आदि सभीने इसको "कमून (Colam)"से पृथक् वर्णन किया है। परन्तु वास्तवमें यह 'कमूनरूर्मी' है। मख्ज़नुल् अदविया और मुहीतआजममे कुरूया नामसे इसका वर्णन किया गया है। भेद—यूनानी चिकित्साविशारदोंने रंग एव उत्पत्तिस्थानके विचारसे जीरा (कमून)के कतिपय निम्नभेदोका वर्णन किया है —

(१) कमून किरमानी, कमूनहब्शी व कमून असवद अर्थात् 'स्याहजीरा', (२) कमून अस्फर व कमून फारसी अर्थात् पीलाजीरा', (३) कमून अख्जर व कमूनशामी अर्थात् 'सब्ज(हरा)जीरा', (४) कमूननब्ती अर्थात् 'सफेद जीरा', (५) कमूनरूर्मी और कमून अरज़ी अर्थात् 'करोविया' या 'जीराविलायती'।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पतिके फल है, जिनको गलतीसे (व्यवहारमे) बीज कहते है। बागी और जगली भेदसे कुरूया दो प्रकारका होता है। इसके जगली भेदको किर्दिमाना कहते हैं। यहाँपर इसके उद्यानज भेद अर्थात् 'कुरूया'का वर्णन किया जाता है। इसका पौधा लगभग ४५ सें० मी० (हाथ भर) ऊँचा, तथा पत्र सोयेके पत्तोके समान और स्याहीमायल और इसके छत्रक भी सोयेके छत्रक जैसे होते हैं। फूल सफेद, बीज (फल) पिलाई लिये सफेद जीरेकी तरह, किन्तु उससे किंचित् बडा और तिक्त एव कटु होता हैं। जड़ गाजरकी तरह होती है। इसको पकाकर खाते है। मात्र 'करुई वा कुरुया' शब्दसे इसका यह उद्यानजभेद ही विवक्षित होता है। तीन वर्ष तक इसमे वीर्य रहता है। भारतवर्षमें इसका आयात बहुधा इगलैंड और कभी लेवाटसे होता है। अब कश्मीरसे भी यह भारतीय बाजारो में आता है। अंग्रेजी कुरुया अपेक्षाकृत स्वच्छ, चमकीला, भूरा और सर्वोत्तम होता है। आयुर्वेद और यूनानीका कृष्णजीरक एव स्याहजीरा संभवत इसीको कहना चाहिए, क्योकि स्याहजीरा नामका इससे भिन्न कोई उद्भिद भारतवर्षमे होता है, यह ज्ञात नही है। भारतीय बाजारोमें स्याहजीराके नामसे जो वस्तु बिकनेको आती है, वह प्राय नकली होती है। कृष्णजीरककी एक संस्कृत संज्ञा 'कारवी' लिखी है, जो यूनानीग्रंथोक्त 'कुरूया' ही है, यह स्पष्ट है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक उत्पत् तेल पाया जाता है, जिसके ये पाँच उपादान है,–(१) सायमिन (Cymin) जो यूकेलिप्टस तेलमे भी विद्यमान होता है, (२) कारीओन (Caiyon अर्थात् 'कारवीन' नामक सत्त्व), (३) कारवोल (Carvolc) या कारवी कर्पूर, (४) क्युमिनोल (Cuminol) या जीरककर्पूर (काफूर कम्मूनी) और (५) लाइमोनिन (Limonin) या निम्बुकीन एक प्रकारकी टर्पीन जो निंबुकतेलमे भी पाई जाती हे)। मात्रा–१से ३ बूँद।

उपयुक्त अग—फल (बीज) और पचाग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—अन्त्र और आमाशयपर कुरूया ग्राही और वातानुलोमन कर्म करता है और भूख लगाता है, उदरजक्रमियोको मारकर निकालता ह और मूत्रजनन कर्म करता है। प्रधानतया यह वातानुलोमन, दीपन और पाचन है।

उपयोग—वातिक हिक्का, अरोचक, उदरशूल, अजीर्ण, आनाह और वातिकोद्वेष्टनमे कुरूयाका उपयोग करते है। इमे उदरजक्रमियोको नष्ट करनेके लिए खिलाते है। मूत्रल होनेके कारण जलोदरमे भी इसका उपयोग किया जाता ह। यह आनाहकारक आहारोके उक्त दोपनिवारणके लिये भी उपयोग किया जाता है। अहितकर–फुफ्फुसके लिये। निवारण–शुद्ध मधु और सातर फारसी। प्रतिनिधि–अनीसूँ और जीरा। मात्रा–३ ग्राममे ५ ग्राम (३से ५ माशे) तक। आयुर्वेदीय मतके लिये 'जीरास्याह' देखे।

नव्यमत—इसमे एक उडनेवाला तेल होता है। यह दीपन, स्तन्यजनन और उत्तम कोष्ठवातप्रशमन है। आध्मान, उदरशूल, शिथिलताप्रधानकुपचन और पेचिशमे यह उपयुक्त ओषध ह। इसको अजीर्णमे अन्न पचने और भूख बढानेके लिए देते है।

●

(१५३) कुलंजन

फेमिली : जीजिबेरासी (Family : Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) कुल (लि) जन, (अ०) ख़ौलिंजान, ख़ूल (लि) जान, ख़ूलिंजान अकारिबी, खावलिंजान, (फा०) खुसरवे, खुसरो (इ०बै०)दारू, (स०) कुलञ्ज (रा० नि०), कुलिञ्जन, मलयवचा, सुगन्धा (भा०प्र०), (प०) खुलजान, (व०) कुलजन, (म०) कुलीजन, (गु०, सिंध) कुलिंजन, (ता०) सितरित्ती, (ले०) आल्पीनिआ ऑफ्फीसिनारुम Alpinia officinarum Hance (*Alpinia chinensis* Roscoe), (अ०) दी लेसर गेलगल (The Lesser Galargal), गेलगल (Galangal), ईस्टइडियन रूट (East Indian Root)।

वक्तव्य—चीनीभाषामे जहाँ कि इसके क्षुप होते है इसको, 'काओन लिअंग-किअग' कहते है। इसीसे खौलिंजान आदि इसके अरबीनाम व्युत्पन्न है। इन अरबी नामोसे इसके अगरेजी, संस्कृत एव सस्कृत प्रभावित भारतीय भाषाओके नाम व्युत्पन्न है। पौलूसईजिनेट (Paulus Aegineta ७वी शती) यूनानी ने 'गैलगस' और तत्पश्चात्कालीन यूनानी लेखकोने 'खैलीजेन', गलाङ्कस और कोलौट्जीआ' नामोसे इसका उल्लेख किया है। आयुर्वेदीय निघण्टुओमें इसका समावेश भारतागत यवन चिकित्सकोके माध्यमसे हुआ प्रतीत होता हे जैसाकि इसके 'कुलज, कुलिञ्जन' नामोसे अनुमान होता है। क्योकि यह उपरोक्त अरबीनामोका साधारण रूपान्तरमात्र है। किन्तु आयुर्वेदीय निघण्टुओमें इसीप्रकारकी एक भारतीय ओषधिका उल्लेख 'मलयवचा' नामसे वचाभेदोमे मिलता है।

सम्भवत उस समय व्यवहारमे चीनी कुलजन सुलभ रहा था तथा भारतीयकी अपेक्षा श्रेष्ठतर समझा जाता था। इधर कतिपय वर्षोसे विदेशी सामानोके आयातकी स्थितिमे परिवर्तन होनेसे अब भारतीय 'मलय वचा' ही कुलजन नामसे चलने लगी है। इसके पौधेका नाम आल्पीनिआ गालांगा (**Alpinia Galanga** (L) Willd) है। इसका पौधा एव राइजोम पूर्वकी अपेक्षा बडे होनेसे इसे बडाकुलिंजन तथा अग्रेजीमें ग्रेटर गैलगल (Greater Galangal) कहते है।

इस प्रकार वर्तमान स्थितिमे प्रथमको चीनी कुलजन तथा द्वितीयको देशी कुलजन कहना अधिक समीचीन होगा।

कतिपय आधुनिक निघण्टुकारोने प्रमादवश 'पानकी जडको कुलजन' मान लिया है। अस्तु प्रायश आयुर्वेदीय-यूनानी निघण्टुओमे ऐसा ही लिखा मिलता हे। प्रमाणस्वरूप विद्वद्वर हकीम कबीरुद्दीन महाभागा किताबुल् अदविया नामक स्वरचित ग्रन्थके द्वितीय भाग, चतुर्थ आवृत्तिमें लिखते है, 'खौलिंजान (कुलीजन) पानकी जड है जिसका रग बाहरसे सुर्खीमायल और भीतरसे पीताभ श्वेत होता हे।' खजाइनुल् अद्विया नामक विशाल निघण्टुग्रन्थके रचयिता विद्वद्वर मौलवी मुहम्मद नजमुल्गनी महोदय भी इसके परिचयके विपयमे अपना कोई निजी अभिमत स्थिर न करके पानकी जडके चक्करमे ही आकर रह गये है। जनाव हकीम मुजफ्फर हुसेन साहब किताबुल् मुफरदातके चतुर्थ सस्करणमें लिखते है, 'खूलजान पानके पुराने वृक्षकी जड है।' तात्पर्य यह कि इसी प्रकार अनेकानेक यूनानी निघण्टु ग्रन्थोमे मक्षिका स्थाने मक्षिका लिख दिया गया है।

इसी प्रकार प० विश्वनाथजी द्विवेदी शास्त्री महाभागाने जो भावप्रकाशनिघण्टुकी हिन्दी टीका की है उसके तृतीय सस्करणमे महाभरी वचा (कुलजन)के वर्णनमे वे लिखते है, "कुलजनके विपयमे बडा प्रमाद पाया जाता है क्योकि बहुश वैद्यगण पानकी जडको ही कुलंजन कहते है। परतु उक्त कथन सत्य नही है।"

वस्तुत इसका स्वरूप इस प्रकार है, "इसकी वेल अगूरकी बेलकी तरह फैलती है। पत्ते पानके समान होते हैं। जड ग्रन्थिल रक्तवर्णकी और सुगन्धित होती हैं। वास्तवमे यही कुलजन हैं।" तात्पर्य यह कि आप भी एक प्रमादका निराकरण करते हुए स्वय ही एक अन्य प्रमादका आखेट हो गये है।

वास्तवमे कुलजन न तो पानकी जड है और न कुलजनकी कोई बेल होती है, जैसा कि कुलजनके उपर्युक्त वर्णनसे ज्ञात होता है। प्रत्युत ये दोनो भिन्न-भिन्न कुलकी वनस्पतियाँ है। मैने स्वय शतश पुरानेसे-पुराने पानकी जडे निकलवाकर अवलोकन की है। पानकी जडसे इसका कोई साहृश्य नही है। अस्तु पानकी जडको कुलजन कहना और मानना सर्वथा भ्रामक एव प्रमादमूलक हैं। इतने विश्वस्त प्रमाणिक प्रत्यक्षमूलक विवरणके पश्चात् अब इस भ्रमका निराकरण हो जाना चाहिए। वि० दे० 'पान'।

उत्पत्तिस्थान—हेनान द्वीप और चीनका दक्षिण-पूर्वी तटप्रदेश। भारतीय कुलजन भारतवर्पके कतिपय भागोमे होता है।

वर्णन—कुलजन एक क्षुपका कदवत् पाताली धड हैं जिसे प्राय जड समझते है। इसके कटे हुए उँगलीके बराबर या इससे अधिक मोटे, ५ मे० मी० से ७ ५ से० मी० (२ से ३ इञ्च) लम्बे, एक सिरेपर दूसरेकी अपेक्षया अधिक मोटे टुकडे बाजारमे मिलते है। इनमेंसे किसी-किसी टुकडेपर उपमूल भी होते है। उनपर गोल-गोल सफेद मुद्रिकाएँ होती हैं। वाहरसे ये गहरा ललाई लिये भूरे और भीतरसे भूरापन लिए सफेद (फीका लाल) और कडे एव चिमटा तथा सुगन्धित होते है। स्वाद तीक्ष्ण काली मिर्चवत् और चरपरा होता है। गन्ध प्रिय जो सोठका स्मरण दिलाती हैं। यह प्राय ग्रन्थिल होते है। चीनसे भारतवर्षमे इसका आयात होता हे।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् सुगधित तेल होता हैं।

कल्प तथा योग—अर्क खूलञ्जान।

उपयुक्त अग—पाताली धड (जड) ।

प्रकृति—दूसरे दर्जे तक गरम और रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्ण एव तीक्ष्ण (रा० नि०) है ।

गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, हृद्य, आमाशय और शीतल यकृत्को बल देनेवाला, उष्णताजनन, सौदा और कफ रोगनाशक, वातानुलोमन, मुखको सुवासित करनेवाला, कफोत्सारि, लालाप्रसेकजनन, शीतजन्य वेदनाहर, लेखन और वाजीकर है। विशेपकर यह हृदयको उल्लसित करता (मुफर्रेह कल्ब) है।

उपयोग—आमाशय और यकृत्को बल देनेवाले तथा कफज रोगहर योगोमे कुलजन मिलाते है। मुखदौर्गन्ध्य-मे इसे मुखमे रखकर चावते है। जिह्वास्तम्भ, वाक्सग (सिक्लुल्लिसाँ) और हकलापन (लुकनत),कास, श्वास और कफज स्वरभेदमे इसका उपयोग कराते है । कफज वेदनाओ विशेपकर शीतल वृक्कशूल और हस्तिमेहमे इसे खिलाते है। वाजीकरणके लिए इसे वाजीकर माजूनो और चूर्णोमे डाला जाता और अकेला भी लगभग ३ माशे चूर्ण करके दूधके साथ उपयोग कराते है। वातानुलोमन होनेसे यह उदरशूल और वातिक शूलमे प्रयुक्त होता है। झाईमे इसका लेप करते है। **अहितकर**—मूत्रावरोधकारक है । **निवारण**—कतीरा, चन्दन, अनीसूँ और वशलोचन। **प्रतिनिधि**—दालचीनी । **मात्रा**—२ ग्राम से ३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—कुलजन कटु, तीक्ष्ण, सुगन्धि, दीपन, रुचिकर, स्वरको सुधारनेवाला, छाती, कण्ठ और मुखका शोधन करनेवाला तथा कफकी खाँसीको दूर करनेवाला है। (रा० नि०, भा० प्र०) ।

नव्यमत—मधुमेहमे पेशाव कम करनेके लिए कुलजनका फाट देते है । पसीना अधिक आकर शरीर ठढा हो तो कुलजनका चूर्ण शरीरपर मलते है ।

(१५४) कुलथी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguninosae)

नाम—(हिं०)कुल (र)थी, खुरथी, (अ०) हब्बुल्-कु(कि)ल्त, बज्रुल्लबूस, (फा०) सगे शिकन, माशे हिंदी, (स०) कुलत्थ, कुलित्थ, कुलत्थिका, (ब०) कुलत्थ, (म०) कुलीथ, (गु०) कलथी, (लै०) डॉलीकॉस बीफ्लोरुस (**Dolichos biflorus** Linn), (अ०) हॉर्स ग्राम (Horse Gram) ।

वक्तव्य—लेटिन नाम इसकी वनस्पतिका है। अरबी एव अग्रेजी नाम बीज (उपयुक्त अग)के है। हिन्दी, सस्कृत एव शेप अन्य सज्ञाये वनस्पति एव बीज दोनो ही के लिए सामान्य है। 'कुल्त' सस्कृत 'कुलत्थ' से अरबी बनाया गया है। फारसी नाम 'माशे हिन्दी' भारतका इस औषधिसे मौलिक सम्बन्धकी ओर सकेत करता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—यह एक प्रकारका प्रसिद्ध अनाज है, जो पीला और मीठा या कोई कडुआ, मसूरके दानेके बरावर और कुछ गोलाई लिए होता है। यह खरीफ (भदई)के साथ उत्पन्न होती है। कुलथी कई रगकी होती है। कोई कुछ नीली झाई मारती हुई काली और चमकीली, कोई पिलाई लिए सफेद, और कोई मटमैली होती है। कुलथी जगली भी होती है। आयुर्वेदीय निघण्टुओके मतसे चाक्सू जगली (कुलथी) है।[1]

उपयुक्त अग—बीज ।

१—कुलत्था दृक्प्रसादा च ज्ञेयाऽरण्यकुलत्थिका ।
कुलाली लोचनहिता चक्षुष्या कुम्भकारिका ॥१८॥ (रा० नि०—पर्पटादि वर्ग ५)

वक्तव्य—अजुमन आराए नासिरीके मतसे इसका वास्तविक नाम 'बक्लतुज़्ज़ोहरा' था जिसे इसलाम (अह्लेबैत)के शत्रुओने 'बक्लतुल्हमका' कर दिया। इसका उक्त नाम रखनेका कारण सुलेमान-बिन हस्सानके मतसे यह है कि यह मनुष्योके मार्गमे, अथवा जगल एव जलासन्न तथा आर्द्र अथवा त्याज्य भूमिमे स्थानविशेषका विचार किये बिना उत्पन्न होता है जहाँ यह पैरो तले रौंदा जाता है अथवा पानीके बहावके स्थानमे पैदा होता है, जहाँ पान का बहाव इसे उन्मूलित कर डालता है, फिर भी यह उसी स्थानमें उत्पन्न होता है। इसलिये इसे 'मूर्ख या अविवेकी शाक (बक्ल = साग, हुमका = अह्मक का स्त्री० = मूर्खा)' कहा गया है। परन्तु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि उद्यानज कृपिकृत कुलफा जिसका साग खाते है, वह उतनी सरलतापूर्वक और सामान्य रीतिसे नही होता, अपितु परिश्रमपूर्वक खेती करनेमे होता है। अस्तु, इसके नामकरणके उपर्युक्त कारण असगत प्रतीत होते है। फरफख, 'परपहन' फारसीसे अरबी बनाया गया है। दीसकूरीदूस यूनानीने 'अनद्राख्नी (Andrakhne)' और कैल्सूस रूमी (Celsus)ने 'पॉर्च्युलका (**Portulaca**)' नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्णप्रधान प्रदेशोमें कुलफाकी खेती होती है। लोनिया प्राय नीची, मार्द्र, दलदली स्थानो एव नम नालो आदिमे स्वयजात होती है।

वर्णन—यह एक छोटा विसर्पी कोमल रसदार प्रसिद्ध साग है जो छोटा और बडा भेदसे दो प्रकारका होता है। इनमे बडेको कुलफा और छोटेको लोनिया कहते है। कुलफा—इसका पौधा ४५ सें० मी० (हाथ भर)से कम होता है और इसकी खेतीकी जाती है। इसका तना उँगलीके बराबर या उससे न्यूनाधिक मोटा, अत्यत कोमल, (सहजमें टूटनेवाला), ललाई लिये और भूमिपर परिविस्तृत होता है। पत्र गोलाई लिये किंचित् मोटे होते है, और उनके भीतर चेपदार रस भरा होता है। यह स्वादमें पानीका-सा होता है। फूल सफेद (अपने यहाँ होनेवाले स्वयजात कुलफाका फूल पीला, और स्वादमें फीका होता है। बीज छोटे-छोटे पोस्ताके दानेके बराबर और काले रगके होते है। लोनिया—इसका पौधा भूमिपर अच्छादित होता है। इसके पत्र, शाखाये और बीज इत्यादि कुलफेके पत्र और बीजादि मे बहुत छोटे होते है। इसमें नमकीन (खारापन) अधिक और खटास थोडी होती है। फूल छोटा और पीला तथा चार पखडीयुक्त होता है। यह पहर दिन चढे खिलता और फिर मुरझा जाता है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक अम्ल क्षार पाया जाता हे, जिसमे अशत जवाखार और ऑक्जैलिक एसिड होते है।

उपयुक्त अग—पत्र और बीज।

प्रकृति—दिल्लीवालोके अनुसार दूसरे दर्जेमे शीत एव स्निग्ध (तर) है। लखनऊवालोके अनुसार तीसरे दर्जेमे शीत एव दूसरेमे तर है। आयुर्वेदमतमे लोणिका शीतवीर्य एव रूक्ष (च०,सु०) है।

गुण-कर्म—कुलफाके पत्र बाह्यत शीतजनन और सशमन कर्म करते है। यकृत् और आमाशयपर भी इसका शीतजनन और सशमन प्रभाव होता है। अन्त्रपर भी यही कर्म होनेके अतिरिक्त इसके उपयोगसे कब्ज भी होता है। स्कन्धाकार कृमियोपर इसका घातक कर्म होना है, परन्तु निश्चितरूपसे यह नही कहा जा सकता कि कुलफेमे ऐसा कौनसा गुण-कर्म निहित है जिससे वह कद्दूदानोको मार डालता है। वस्ति और वृक्कपर सशमन कर्म करनेके अतिरिक्त, यह मूत्रजनन कर्म भी करता है। इसका प्रधान कर्म पित्तसशमन और यकृत्सताप निवारण है।

उपयोग—अकेले या मासके साथ कुलफाका साग पकाकर खाया जाता है। उष्ण व्याधियो जैसे पित्तज एव रक्तज ज्वर, सदाह मूत्र, उर क्षत, यक्ष्मा, रक्तष्ठीवन तथा गर्भाशय-आमाशय और यकृत्की उष्णताको शमन करनेके लिये उपयोगी साग है। उष्ण जल या अग्निदग्ध अग, उष्णशोथ और गरम सिरदर्दपर लेप करनेसे शान्ति और शीतलता प्रदान करता है। हस्त-पादका दाह मिटानेके लिए मेहदीके साथ इसका लेप लगाते है। पित्तातिसारको बद करने और अन्त्रको बल देनेके लिए इसका साग खिलाते हे। पत्रको सुखाकर और बारीक पीसकर बालकोके मुखपाक और (बुसूरुस्हन)में छिडकते है। अहितकर—प्लीहा और दृष्टिको। निवारण—पुदीना।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमे यूरोपसे रगोके आनेके पूर्व प्रचुरताके साथ इनकी खेती होती थी, क्योकि इसका फूल (कुसुम) वस्त्र रगनेके काम आता था। अब भी भारतवर्षके कतिपय स्थानोमे रबीकी फसलके साथ इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—इसका क्षुप कँटीला और लगभग ० ९ मीटर या ९० से० मी० (गजभर) ऊँचा होता है। पत्र लबे ऊपरकी ओर नीचेसे अधिक चौडे, तना एव शाखाके जोडपर तथा शाखा फूटनेकी जगह और शाखापर निकलते है। पत्रप्रात दतित या बहुश क्षुद्र, कटीले अनीदार कगूरोसे व्याप्त होता है। तना और शाखायें छोटी और अपरिपक्व पौधेकी हरी और पक्व एव पुष्ट पौधेकी सफेद हो जाती है। फूल कँटीले और पिलाई लिए लाल (कुसुम)रगके होते है, जो अधिकतया कपडा रगनेके काम आते है। फलकोष कँटीला और गोपुच्छाकार तथा फूलोके नीचे पैदा होता है। इसके भीतर बीज भरे होते है जिन्हे 'कड (तुख्मकुर्तुम-खसकदाना)' कहते है। इनका औषधमें उपयोग होता है। प्रत्येक कोषमे ७-८ बीज होते है। बीज गवाकार किसी कदर चपटे, चौकोर, चिकने और सफेद रगके होते है। इनको तोडनेपर अदरमे सफेद चिकना मग्ज निकलता है। बीज जितना पुराने पडते है, उनका छिलका उतना ही स्याही मायल और मग्ज जर्दीमायल होता है। अतमे ये काले पड जाते है।

उपयुक्त अग—बीज (कड)। औषधके लिए बुस्तानी (कृषिकृत), सफेद, या भारी और मोटा दाना उत्तम होता है। मात्र कड या कुर्तुम शब्दसे यही विवक्षित होता है।

रासायनिक सगठन—फूलमें कार्थेमीन नामक एक रजक द्रव्य, बीजमे २०-३० प्रतिशत एक प्रकारका तेल होता है।

कल्प तथा योग—मत्बूख हब्ब कुर्तुम, जुवारिश कुर्तुम और माजून कुर्तुम आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जे मे रूक्ष।

गुण-कर्म—कफपाचन-रेचन, कफोत्सारि स्वरशोधक, वाजीकर, शुक्रल, आर्तवजनन, वातविलयन और उर-शोधक है। उपयोग—कफपाचन और विरेचन होनेसे कफज प्रसेक, कास, श्वास (कृच्छ्रश्वास), जलोदर, सर्वांगशोफ और शूल (कुलज)मे इसका उपयोग किया जाता है। कास और श्वासमे इसे मधुके साथ उपयोग करनेसे यह कफका उत्सर्ग करके सीनाको शुद्ध करता है। स्वरभगमे उपयोग करनेसे यह स्वरको शुद्ध और कठकी खरखराहटको दूर करता है। आर्तवप्रवर्तनके लिए आर्तवजनन योगोमे मिलाया जाता है। वाजीकरण और शुक्रजननके लिए माजूनोमे डाला जाता है। अहितकर—आमाशयिक रोगोके लिए। निवारण—अनीसूँ। प्रतिनिधि—हब्बतुल् खजरा। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुसुम पाकमे कटु (चरपरा), रूक्ष, दीपन, विदाही, वातकारक, कफनाशक तथा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाला है (ध०नि०,रा० नि०, वै० निघ०, भा० प्र०)। कुसुमके पत्ते मधुर, अम्ल, कटु, उष्णवीर्य, गुरु, रूक्ष, पित्तकारक, अत्यत रुचिकारक, नेत्रको हितकर, अग्निदीप्तिकर, गुदरोगकारक तथा कफ-मल-मूत्र-मेद इनके परम नाशक है (वै०निघ०)। कुसुमका शाक मधुर, अम्ल, कटु (रा०नि), उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु तथा कफनाशक और पित्तवर्धक है (च०सू०अ० २१, सु०सू० अ० ४६), रुचिकर, अग्निदीपन, मदनाशक, मलमूत्रके दोषहरण करनेवाला और विशेषकर दृष्टिको स्वच्छ करनेवाला है (रा०नि०)। कुसुमके पुष्प सुस्वादु, उष्णवीर्य, रूक्ष लघु, भेदक, त्रिदोषनाशक, पित्तकारक, केशरञ्जन तथा कफनाशक है (वै०निघ०)। कुसुमका बीज मधुर, कषाय, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, अवृष्य तथा कफवात, रक्तपित्त (वृ० नि० र०), अश्मरी और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाला है (च०चि०अ० २६)। कुसुमका तेल विपाकमे कटु, उष्णवीर्य, गुरु, विदाही, त्रिदोषकारक तथा विशेषकर रोगप्रकोपक (ध०नि०, रा०नि०), प्रमेहनाशक (सु०चि०अ०३७) और निर्लोमकारक है (चक०चि०)।

नव्यमत—कुसुमके बीज विरेचक हैं। कुसुमके क्षुपको कूट-पीसकर तिलके तेलके साथ पकाकर सिद्ध किया हुआ तेलको मालिश वातमें सूजी हुई सधिकी पीडामें, पक्षाघातग्रस्त अगपर, तथा दुष्टव्रणके पूरणार्थ इस तेलका प्रयोग करते हैं। स्वेदजनन होनेसे कुसुमके सूखे हुए फूलोका कोष्ण फाण्ट कामला, प्रतिश्याय और आमवातमे सेवन कराते हैं। उसका शीतकषाय मृदुरेचक एव बल्य हैं, इसलिए खसरा और कोठोत्पादि सन्निपातज्वर विशेषत रक्तज्वर (Scarlatina)में इनके सेवनसे खसरा और कोठके उत्तमरूपसे प्रकाशपानेमें सहायता मिलती है। इसकी पत्तियोमें रेनेट (Rennet)की भांति दूध जमानेकी शक्ति है। इसलिए पनीर बनानेके लिए इसका उपयोग किया जा सकता है (आर० एन० चोरी-मेटीरिया मेडिका ऑफ इडिया, भा० २ पृ० ३५६)। बरहाम के कथनानुसार एक ड्रामकी मात्रामे इसके सूखे फलोके सेवनसे कामला आराम हो जाता है।

●

(१५८) कूजा

फेमिली · रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०)कूजा, कुजोई, जगली गुलाब, (फा०) गुले कूज.; (अ०) वर्दमुन्तिन, (म०) कुब्जक, (व०) कूजा, (लै०) रोज़ा मॉस्काटा (**Rosa moschata Herrm**), रोजा इन्वॉल्युक्रेटा (**R involucrata Roxb**), (अ०) मस्कसेन्टेड रोज (Musk scented rose)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण, मध्य एव पश्चिम हिमालय, मुर्रीसे नेपाल तक २,०००से ११,००० फुटकी ऊँचाई तक, पूर्णिया आदि (केवल उत्तरी भागमे) यह प्राय नदियोके किनारे अधिक होता है। अन्यत्र विरल होता है।

वर्णन—जंगली या लतागुलाबकी एक जातिके पुष्प श्वेत, व्याससे २ इंच, पत्रकोणीय, एकाकी अथवा समस्यकाण्टज व्यूहमें रहते हैं। फूल सफेद और गुलाब तथा सेवतीकी अपेक्षा अल्प सुगधि होते हैं। इसका सुन्दर गुल्म होता है जिसकी शाखाएँ लम्बी एव प्रसरणशील होती हैं। इसमें सदा फूल आता रहता है। इसलिए इसे सदागुलाब कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कूजा, गुलाब और सेवती तीनो शीतल, लघु, वाजीकर, त्रिदोष-रक्तविकार नाशक, हृद्य, सग्राही और चेहरेका रग निखारने वाले हैं। उसके सफेद भेद लालकी अपेक्षया अधिक हृदयबलदायक एव गुणकारी मानते हैं तथा गुलकद और अर्क दिलके धडकन दूर करनेके लिए प्राय प्रयुक्त करते हैं। यह आमाशय और यकृत्को बल देता है। मुखपाक और कण्ठशूलमें इसका गण्डूष उपकारक है। सदागुलाब सर्द एव खुश्क है। इसके फूल रक्तविकार, विस्फोट और फोडे-फुसीमें परीक्षित है।

आयुर्वेदीय मत—कूजा सुगन्धित, स्वादिष्ट, किंचित् कषाय, शीतल, सारक, वातपित्तका नाशकरनेवाला एव वीर्यवर्धक है। फूल शीतल, शरीरके वर्णको निखारनेवाला (वर्ण्य) दाह और वातपित्तनाशक है (रा० नि०, भा० प्र०)।

●

(१५९) केला

नाम—(हिं०) केरा केला, (अ० फा०) मौज, तल्ह, (स०) कदली, मोचा, (व०) कला, (द०) मौज, (म०) केल, (लै०)–(छोटे फल) मूसा सापीन्टुम (**Musa Sapientum L**), (बडे फल) मूसा पाराडीजिका (**M. Paradisica Linn**), (गु०) केला, (अं०) प्लाण्टेन (Plantain), बैनाना (Banana)।

वक्तव्य—अरबी 'मौज' संस्कृत 'मोचा' से व्युत्पन्न है। लेटिन 'मूसा (ज़ा)' अरबी 'मौज़' से, अंग्रेजी 'बनाना Banana' ग्रीक अरियाना (Ariana)' से और अरियाना (Ariana) संभवत तैलंगी भाषा के शब्द 'अरिति'से व्युत्पन्न है। ग्रीक अरियाना का अन्यतम पर्याय औराना (Ourana) है। कितने ही लोग ग्रीक 'औराना' शब्दको संस्कृतके 'वारणवुणा' शब्दसे व्युत्पन्न मानते हैं, क्योंकि ग्रीक भाषामें जिन भारतीय औषधियोका उल्लेख है, उनका देशीय नाम अधिकांश दक्षिण देशीय भाषासे ही संग्रहीत हुआ है। 'Plantain' शब्द ग्रीक ग्रन्थकार सावफरिस्तुस (Theophrastus) और रूमी प्लाइनी (Pliny) द्वारा लिखित 'पल' नामक शब्दसे व्युत्पन्न है। उनके द्वारा लिखित 'पल' वृक्ष और उसके फलका वर्णन सर्वथा कदली वृक्ष और इसके फलके समान है। पुन उन्होने उसे हमारे ऋषियोका खाद्य भी बतलाया है। अस्तु, इसमे कोई संदेह नही कि 'पल' संस्कृत 'फल' वा तामिल 'वल' शब्दसे व्युत्पन्न है। मलाबारमे अब भी इसे 'पल'नामसे पुकारते है। इसकी लैटिन मूसा सापीएन्टुम संज्ञा इसके वृक्ष की है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषकर पूरब और दक्षिण भारतवर्ष, अरबके उपकूल, यमन, अमान, बसरा, ईरान, चीन, अफरीका, अमेरिका इत्यादि देश।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है, जो खानेमें अत्यत स्वादिष्ट और मीठा होता है। पहाडी, कोकनी, जगली, बागी, छोटा, बडा, हरे और पीले छिलकेके विचारसे भारतीय केला नाना प्रकारका होता है। अच्छी किस्मोके फलोमें बीज नही होता है।

रासायनिक संगठन—केलाके पूरे पके फलमे २२ प्रतिशत शर्करा और श्वेतसार इत्यादि द्रव्य होते हैं। इसमे विपुल प्रमाणमे विटामिन 'A' और कुछ मात्रामें विटामिन 'B' पाया जाता है। कच्चे वा हरे फलमें विपुल प्रमाणमे टैनिन होती है। इसमे श्वेतसारकी मात्रा लगभग आलूगत मात्राके बराबर ही होती है। किन्तु पोषणकी दृष्टिसे यह उससे अधमतर होता है। अच्छे पके केलेमे २२ प्रतिशत शर्करा होती है। केलेके पञ्चांगको जलाकर बनाये हुए क्षारमे अधिकांश यवक्षार होता है। पक्का केला, छिलका सहित जलानेसे कोयला ७॥, चूना ७, यवक्षार ४५, सर्जिकाक्षार ६, लवणाम्ल और यवक्षारका मिश्रण २५ तथा (पोटैसियम फॉस्फेट) ५·२५ प्रतिशत मिलता है। काण्डके स्वरस मे यवक्षार २५ २५, सर्जिकाक्षार ९ ५, चूना १५ ७५ और मैग्नीशिया ५ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अंग—फल।

प्रकृति—गरमी सर्दीमे मोतदिल, अनुष्णाशीत और संग्राही वीर्यके साथ दूसरे दर्जेमे तर (स्निग्ध) है। आयुर्वेद मतसे किंचित् शीतल (सु०) एवं स्निग्ध (कै० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—केला मेवाकी भाँति खाया जाता है। इसका निहार मुँह खाना अहितकारी है। यह बृंहण, ग्राही, चिरपाकी और आनाहकारक है। परन्तु तीक्ष्णाग्नि लोगोमे जब भली-भाँति पच जाता है तब यह अन्त्रपर मृदुसारक कर्म करता, शरीरको पुष्टि प्रदान करता और उसे परिबृंहित करता एवं बाजीकरण होता है। यह कफोत्सारि है, इसलिये शुष्क कास और उर कंठके खरत्वको नष्ट करता है। इसमे किसी कदर लेखनीय वीर्य भी है। इसलिए सिरका और नीबूके रसके साथ पीसकर पतला लेप करनेसे खुजली, गंज, कण्डू एवं कच्छूको लाभ पहुँचाता है। अग्निदग्ध पर लगानेसे यह दाह और वेदनाको शांत करता है और छाले (विस्फोट) नही पडने देता। यह उदरावष्टंभक है। *अहितकर*–आनाहकारक (नफ्फाख) और अभिष्यंदी है। *निवारण*–नमक और आदीका मुरब्बा। *प्रतिनिधि*–शकरकंद।

आयुर्वेदीय मत—केला रसमें मधुर, कषायानुरस, किंचित् शीतल, रुचिकारक, वृष्य, गुरु, कफकारक, स्निग्ध तथा रक्तपित्त, रक्तप्रकोप, योनिरोग और भ्रमको दूर करनेवाला है। केलेका कन्द कषाय, रूक्ष, शीतवीर्य,

[illegible], [illegible] तथा [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], सोमरोगको दूर करनेवाला है। [illegible] गुण और [illegible] है। [illegible] शीतवीर्य [illegible] तृषा, [illegible], प्रमेह, कर्णरोग, अतिसार [illegible] और [illegible] है। (सु० सू० अ० ४६, ध० नि०, रा० नि०)।

नव्यमत—इसका पुष्प [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] है। इसके [illegible] और संदीपक है। [illegible] स्वेदजनन और तृष्णा-निग्रहण है।

●

(१६०, १६१) केवड़ा और केतकी

फैमिली पाण्डानासी (Family : Pandanaceae)

नाम—(हिं० म०) केवड़ा; (सं०) [illegible], [illegible], [illegible]; (बं०) [illegible], [illegible], [illegible], (म०) केतक (की), [illegible], [illegible] (मा०) [illegible], (गु०) [illegible]; (ले०) पांडानुस फासिकुलारिस Pandanus Fascicularis Lam.; (अं०) [illegible] (Kaldera bush), अम्ब्रेला ट्री (Umbrella tree)। वक्तव्य—इसका दैनिक व्यवहारमें आनेवाला प्रसिद्ध और अधिक प्रचलित नाम 'केवड़ा' है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः दक्षिण भारतवर्ष और बंगाल।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध पुष्प है, जिसके दो भेद होते हैं-(१) केतकी (सफेद केवड़ा)—इसका वृक्ष दूर से देखनेमें नारियलके वृक्षकी तरह मालूम होता है। पत्र आदमीके कदके बराबर लम्बे और नोकदार होते हैं, और पत्र-प्रान्त कंटकित होता है। [illegible] भाग [illegible] (पत्रकोशावृत पुष्पसमूह) निकलता है जो मकाईके भुट्टाकी तरह सफेद या मटमैला सफेद तथा परम सुगंधित होता है। इसके ऊपर तह-बतह पत्ते लिपटे हुए (सफेद पत्रकोश) होते हैं। इसके मध्यमें असली फूल (पुष्पव्यूह) होता है। यह इसका 'पुंपुष्प' भेद है। इसको प्रायः केवड़ा कहते हैं। इसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। (२) स्वर्ण केतकी या पीला केवड़ा (सुवर्ण केतकी)—इसका पेड़ सफेद या काले मोटे गन्नेकी तरह मालूम होता है। फूल केवड़ेके फूलसे छोटा, पिलाई लिए सफेद और अधिक सुरभिपूर्ण होता है। यह इसका 'स्त्रीपुष्प' भेद है। प्रायः इसे 'केतकी' कहते हैं।

प्रकृति—यूनानी निघण्टुमें इसे दूसरे दर्जेमें गरम तथा शुष्क और मतान्तरसे अनुष्णाशीत लिखा है। परन्तु केवड़ा अत्यन्त शीतल (शीतवीर्य) है। आयुर्वेदका भी यही मत है। (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—केवड़ेके फूलका अर्क (अर्क केवड़ा) और शर्बत बनाया जाता है। इनका व्यवहार अन्तर्बाह्य ज्ञानेन्द्रियों, हृदय और मस्तिष्कको बल एवं सौमनस्य प्रदान करने तथा दिलकी धड़कन (खफकान) दूर करनेके लिए किया जाता है। खसरा, मसूरिका और शीतपित्त आदिमें भी इनका उपयोग होता है। यदि शीतला निकलनेके समयमें इनका पिलाया जाय तो ये उसे निकलनेसे रोकते हैं। यदि निकले भी तो कुछ दानोंसे अधिक नहीं निकलता और यदि निकली हुई हो तो इनके उपयोगसे उपद्रव कम हो जाते हैं। यह रक्तकी तीक्ष्णताका शमन करते हैं, इसलिए रक्तविकारमें भी इनका उपयोग होता है। तिलोंको केवड़ेके फूलमें वास कर तेल निकालते हैं जिसे रोगन केवड़ा कहते हैं। इसे मर्दन करनेसे कटिशूल, आमवात और अंगोंकी थकावट दूर होती है।

इसे सूँघनेसे मन प्रसाद एव आनन्द प्राप्त होता तथा कानमे डालनेसे कर्णशूल आराम होता है और व्रणोपर लगानेसे वे सूख जाते है। अहितकर-प्रमेहोत्प्रेरक। निवारण-अर्क बेदमुश्क। प्रतिनिधि-लाल चदन। मात्रा-अर्क केवडा (४ से ६ तोले) तक, शर्बत केवटा २३ से ४६ ग्राम (२ तोले से ४ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—केवडा तिक्त, कटु, कटुविपाक, शीतवीर्य, वर्ण्य तथा पित्त, कफ और केशको दुर्गन्धको दूर करनेवाला है (ध० नि०, रा० नि०)।

●

(१६२) केस(श)र

फैमिली : ईरिडासे (Family Iridaceae or Irideae)

नाम—(हिं०; म०, गु०) केस(श)र, (अ०) जाफरान, (फा०) करकमीस, (स०) केसर, कुङ्कुम, रुधिर, सकोच, (सु०, इब्रा०) कुर्कुम, (क०) कु (को)ग, (व०) कुम्कुम्; (ता०) कुगुमपू, (ते०) कुकुमपुवु, (ले०) क्रोकुस साटीउस **Crocus sativus** Linn), (अ०) सैफ्रन (Saffron), क्रोकस (Crocus)।

वक्तव्य—लेटिन 'क्रोकुस' यूनानी 'क्रोकोस (Krokos)' से, अग्रेजी 'सैफरन' अरबी 'जाफरान'से और सीरियन एव इब्रानी 'कुर्कुम' सभवत सस्कृत 'कुङ्कुम'से व्युत्पन्न है। इब्रानी भाषामें इसे 'कर्कुम' भी लिखा है। यह फारसी 'करकमीस'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणी यूरोपका आदिवासी है तथा श्यामदेश, मिस्र, स्पेन, खुरासान, ईरान और यूनान आदि भारतेतर देशोमें भी होता है, परन्तु उनमें कश्मीरी केसर सर्वश्रेष्ठ होता है। कश्मीरके पाम्पुर-क्षेत्र में ५३०० फुटकी ऊँचाई पर इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र गुल्मके पुष्पके भीतरके सूखे ततु (केसर) और फूलके जीरे है जो 'केसर' के नामसे प्रसिद्ध है। इसका प्रत्येक ततु पतला और लगभग २ ५ से०मी०से ३ ७५ सें० मी० (१–१॥ इच) लम्बा होता है, और उसके सिर पर तीन दबीज गहरे नारगी लालरग के जीरे पाये जाते है। यह मुलायम और छूनेसे चिकना मालूम होता तथा पिलाई लिए गहरे लाल रगका, तीक्ष्ण, प्रियगधी और तिक्त एव सुगन्धित होता है, तथा पानीमें घोलनेसे पानीका रग गहरा पीला हो जाता है। स्वाद सुरभित किन्तु विशिष्ट प्रकारका, गध प्रिय (मनोरम) तथा केसरके असली होनेकी दशामे इसके स्वरूपमे उपर्युक्त विवरणसे भिन्न कोई इतर वस्तु नही होनी चाहिए। पानीमें रखने पर पानीमे कोई वस्तु तलस्थित नही होनी चाहिए और न जलाने पर इसमेंसे फूत्कार या सुरसुराहटकी आवाज या आँचसे चटकनेका शब्द आना चाहिए। सफेद कागज पर इसको रखकर दबानेसे चिकना दाग नही पडता। मिश्रण-गेदा और कुसुमके फूल आदि। किन्तु कुसुमके फूल अपने नलिकाकार स्वरूप और पीले कुक्षिवृन्त (Style) के कारण सहजमें पहिचाने जा सकते है।

रासायनिक सगठन—इसमे क्रोकिन (Crocin) नामक एक नारगी रगका ग्लूकोसाइड और एक उत्पत् तैल होता है।

उपयुक्त अग—बसतऋतुमे सग्रह किया हुआ गर्भकेसर (Flower pistils)।

कल्प तथा योग—दवाए कुर्कुम सगीर व कबीर, जिमाद जाफरान, सुरमा जाफरानी आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जेमे खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) एव स्निग्ध (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सौमनस्यजनन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, सग्राही, श्वयथुविलयन और लेखन है तथा औषधियोके अहितकर गुणोके परिहारके लिए अधिकतया प्रयुक्त होता है। यह हृदय, मस्तिष्क, यकृत् और शरीरको बल प्रदान करता और कामोत्तेजक है। अन्य औषधियोके साथ योजित करनेसे यह उनके वीर्यको हृदय एव मस्तिष्क तक शीघ्र पहुँचाता है। कतिपय शोथो, विशेषकर यकृच्छोथ और जरायुशोथको विलीन करने या कतिपय औषधद्रव्योके दोषनिवारणके लिए इसे योजित करके प्रलेप करते है। दृष्टि-दौर्वल्यमें अकेले या अन्य द्रव्योके साथ खरल करके नेत्रमे डालते है। हृदय और मस्तिष्कको सौमनस्य एव बल प्रदान करनेके लिए नाना प्रकारसे इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। हृदय और मस्तिष्क तक शीघ्र औषधीय प्रभाव (वीर्य) पहुँचानेके लिए इसे अन्य औषधद्रव्योके साथ सम्मिलित करते हैं। नपुसकताके लिए इसे पुस्त्वदायक योगोमें मिलाकर खिलाते है। आर्तव-प्रवर्तनके लिए बाह्याभ्यन्तरिक रूपसे इसका उपयोग करते है। इसका ततु मूत्रमार्गके भीतर रखनेसे मूत्र जारी हो सकता है। अहितकर—वृक्कदौर्वल्यकारक और क्षुधानाशक है। निवारण-अनीसूँ, शुक्तमधु और जरिश्क। प्रतिनिधि—बिजौरे-केबीज, कुट और तज। मात्रा—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—केसर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, स्निग्ध, शरीरकी काति सुधारनेवाला तथा कफ, वात, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग, विष, व्यग, कृमि और तीनो दोषोको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ८, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्य मत—केसर दीपन, पाचन, रुचिकर, वेदनास्थापन, सग्राही, सकोचविकासप्रतिबन्धक और कामोत्तेजक है। मात्रा—६२५ मि० ग्रा० से २ ५ ग्राम (५ से २० रत्ती)। पीडितार्तवमे केसर पूर्ण मात्रामे देनेसे पीडा शान्त होती हैं और रक्त ठीक पडने लगता हैं। इस रोगमे केशरकी गोली बनाकर योनिमे रखवाते है। स्तनपर केशरका लेप करनेसे दूध बढता है। बच्चोके सर्दी-जुकाममे केसरको दूधमे मिलाकर पिलाते है और कपाल, नाक तथा छातीपर केसरका लेप करते हैं। मसूरिका, रोमान्तिका आदिमें दाने बाहर आनेके लिये केसर देते है।

●

(१६३) कैथ

फैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०) कैथ, कवीट, कै(कइ)त, (स०) कपित्थ, दधित्थ, (ब०) कठबेल, कयेद्, कयेत्बेल, (गु०) कोठ् (ठ), (म०) क(क)वठ, (ता०) कल्विला, (मल०) विलावु, (ले०) फेरोनिया लीमोनिया **Feronia limonia** (Linn) Swingle (पर्याय—*F elephantum* Correa, *L monia acidissima* (L) Sw), (अ०) वुड-एपल (Wood Apple)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, विशेषत दक्षिण हिन्दुस्तानमे यह विपुल होता है।

वर्णन—इसका वृक्ष बडा होता है। पर्णक्रम एकान्तर, पर्ण सयुक्त होते हैं तथा पत्तोंको मलनेसे सौंफ जैसी महक आती है। शाखाओपर काँटे होते है। पुष्प फीके लाल रगके ग्रीष्मऋतुके आरम्भमे लगते है। फल गोल और बेल या छोटे गोल खरबूजेकी तरह होता हैं। कच्चे फलका गूदा कसैलापन लिए खट्टा और सफेद होता है। पकने पर वह खटमिट्ठा, स्वादिष्ट और सुगन्धित तथा कुछ लाल हो जाता है। बीज बेलके बीजकी तरह, किन्तु उनमे छोटे होते है।

रासायनिक सगठन—फलके सुखाये हुए गुदा (कैथगिरी)मे विपुल (१५ प्रतिशत प्रमाणमे) सिट्रिक एसिड, लबाब और राख होती है, जिसमे पोटास (जवाखार), सुधा और लोहेके क्षार होते है। पत्रमें, वेलपत्रमें वर्तमान उत्पत् तेलके समान तेल होता है।

उपयुक्त अग—फल, वृक्षवल्कल और पत्र।

प्रकृति—कच्चा कैथ तीसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष, पका कैथ दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे भी कैथ शीतवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पका कैथ सौमनस्यजनन और हृदयबलदायक है; अन्त्र, यकृत् और आमाशयको शक्तिप्रदान करता और ग्राही है तथा पित्तकी तीक्ष्णताको नष्ट करता, प्यास बुझाता, वेदना शमन करता और रुतेलाके विपको नष्ट करता है। पके हुए कैथका गुदा एक मेवाकी भाँति खाया जाता है। पित्तप्रकृतिके लोगो और पित्तज व्याधियोमे यह लाभदायक है। इसे दस्तोको रोकनेके लिए खिलाते है। इसके खानेसे मुखके भीतरी अगोमे सकोच (कब्ज) पैदा होता है। तालु, जिह्वा और कठको चेचकके आवलोसे सुरक्षित रखनेके लिए इसके काढेसे कुल्ली कराते है। रुतेलाके विप निवारणके लिए इसका गूदा खिलाते है और दशस्थान पर इसे मलते है। पाताल-यत्रसे इसके वृक्षकी छालका अर्क खीचकर व्यग (वहक), किलास और दद्रु प्रभृति त्वचाके रोगोमे लगाते है। इसके पत्रको जीराके साथ जलमे पीस-छान, चीनी मिलाकर पिलानेसे शीतपित्त (पित्ती) आराम हो जाता है। अहितकर–उर कंठको। निवारण–लवण, शर्करा और कालीमिर्च।

आयुर्वेदीय मत—कैथ (कपित्थ) मधुर, अम्ल, कपाय, तिक्त, शीतवीर्य, वृष्य, ग्राही तथा पित्त और व्रणका नाश करनेवाला है। कैथका कच्चा फल कण्ठ (स्वर)के लिए अहितकर, ग्राही, कफ तथा विपका नाश करनेवाला और वायु करनेवाला है। परिपक्व कैथ मधुर-अम्ल-कपाय तथा सुगन्धि होनेसे रुचिकर, दोपघ्न, विपघ्न, ग्राही, गुरु, कण्ठको स्वच्छ करनेवाला तथा कफ, वायु, श्वास, खांसी, अरुचि और तृष्णाको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २५, २७, सु० सू० अ० ४६, रा० नि०)।

नव्यमत—कैथके गुण-कर्म वेलफलके समान है। परन्तु रक्तपित्तप्रशमन धर्म वेलमे विशेप है। पत्र वातनाशक है। इसके गोदसे आंतोकी पेचिश कम होती है।

●

(१६४) क़ैसूम

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(अ०) कैसूम, (हिं०) गंदमार, (द०) दौना, (ले०) आर्टीमोसिआ आउस्ट्रिआका (**Artemisia austriaca** Linn), (अ०) इण्डियन सदर्न-वुड (Indian Southern-wood)।

उत्पत्तिस्थान—कारोमण्डल तट।

वर्णन—वस्तुत कैसूम विरजासिफसे भिन्न, किन्तु उसी किस्मकी एक घास है। यह बिरजासिगका बडा भेद है। नर व मादा भेदसे यह दो प्रकारका होता है। कैसूम और बिरजासिफ एक ही उद्भिद्के नर व मादा दो भेद है। नरको 'कैसूम' मादाको 'विरजासिफ' कहते है। कैसूमके काडके सिरेपर फूलका एक छत्र-सा होता है जिसकी गध भारी और अरुचिकर होती है। रग पीला और स्वाद तिक्त होता है। इसके फूलोसे कभी पत्तोसे तेल तैयार करते है, जिसे रोगन कैसूम कहते है।

वर्णन—गोल कद्दूकी तरहकी एक लताका प्रसिद्ध फल है, जो ऊपरसे पीला या ललाई लिए अथवा चितकबरा होता है। उसके भीतरसे ललाई लिए पीला मोटा गूदा निकलता है। इनमें कोई-कोई घड़के इतना बडा होता है। पका हुआ कुछ मिठास लिये हो जाता है। यह प्राय वर्ष भर रह जाता है। कूकूरबीटा पेपो (**Cucurbita pepo** Linn) इसकी दूसरी जाति है। इसको सस्कृतमे महा (राज-)कोशातकी, हिंदीमें 'कोकुँहड़ा' और कौल 'कर्काह' कहते है। बीज चौडा-लट्वाकार लगभग २ ५ से०मी० (१ इच) लम्बा, कुछ-कुछ सफेद, किनारेके चारो ओर किंचित् खातोदर और चपटी उभरी रेखा होती है। नुकीले सिराके समीप हाईलम (Hilum) होता है। गिरीका दल चप्टा, सफेद, तैलीय एव एक छोटे शवबाकार बीजपत्र (Radicle)मे युक्त होता है। इसमें कोई विशेष गन्ध नही होती, किन्तु स्वादमें गिरीकी भांति (Nutty) होता है।

उपयुक्त अग—फलका गूदा, बीज और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक सगठन—इसमे सैपोनिन (Saponin), कूकुरबिटीन और लूटीन (Lutein) प्रभृति सत्व पाये जाते है।

प्रकृति—सर्द एव तर। स्वाद मधुर एव स्वादिष्ट।

गुण-कर्म तथा उपयोग—(बीज) कृमिघ्न, विशेषकर कद्दूदानाहर (Taenicide), मूत्रल और वल्य। बीजोत्थ तेल कृमिघ्न एव नाडीबलदायक, फलका गूदा दग्ध, शोथ और फोडे-फुन्सीपर पुलटिसकी भाँति प्रयुक्त करते है। यह गुरु, कोष्ठमृदुकर (सारक), पित्तहर, बवासीरका खून बन्द करता, खुलकर मूत्रोत्सर्ग कराता, हाथ-पाँवकी जलन या दाह दूर करता, प्रमेह और हस्तिमेहभेद (सलसलुल्बौल)को लाभ पहुँचाता, प्यास बुझाता, शरीरको स्थूल करता और भूख बढाता है। पका फल बारीके ज्वरको लाभ पहुँचाता और अधपका कफका नाश करता है। उसके अतिरिक्त यह वायु, पित्त और फोड़ा-फुन्सीको दूर करता, सुस्वादु होता, चित्तको प्रसन्न रखता, कफ उत्पन्न करता, शरीरको वल प्रदान करता तथा विपको नष्ट करता है। गुण-कर्ममे कद्दूके समान, प्रत्युत उससे आर्द्रता कम रखता और पेठेसे सादृश्य रखता है। कृमिनिर्हरणके लिये पहले रोगीको एक दिन उपवास रखकर उसे लवण विरेचन देते है। पुन यह मिश्रण पीनेको देते है —३-४ औस बीजका मग्ज इतनी चीनी और दूध या पानी मिलाकर पीसते है कि वह एक पाइट हो जाता है। इसकी तीन मात्राये बनाकर दो-दो घटे बाद एक-एक मात्रा देते है और अन्तिम मात्रा देनेके तीन-चार घटे बाद एरड तेलकी एक मात्रा देते है। बीजोत्थ तेल १५ ग्राम (१¼-१½ तोला) दो-दो घटेके अन्तरमे दो बार देकर उसके दो-तीन घटे बाद एरड तेलका विरेचन देते है। **अहितकर**—आमाशयको। निवारण—गरम मसाला तथा अदरक-सोठ आदि।

आयुर्वेदीय मत—पीला कोहडा स्वादु, गुरु, अग्निमान्द्यकर, वातप्रकोपक, परम पित्तकारक और कफनाशक है। (भा० प्र०)।

●

(१६६) कोका

फैमिली : एरिथ्रॉक्सीलासे (Family Erythroxylaceae)

नाम—(अ०) कोका (Coca), (ले०) भेद—(१) एरीथ्रॉक्सिलुम् कोका **Erythroxylum coca** Lam (अ०—बोलीवियन कोका Bolivian Coca), (२) एरीथ्रॉक्सिलुम् ट्रक्सीलेंसे (**Erythroxylum truxillense** Rusby) (अ०—पेरूवियन कोका Peruvian Coca)।

उत्पत्तिस्थान—यह भी एक विदेशागत वनस्पति है और पेरू तथा बोलीवियामें होती है। जावा तथा फारमूसामें यह विस्तृत परिमाणमें लगाया जाता है। भारतवर्षमें मद्रास, मैसूर एवं रांचीएटो तथा अन्य स्थानोंमें भी इसको लगानेका प्रयास किया गया है।

वर्णन—१(बोलीवियन या हुआनुको कोकावाला) पत्र—भूरापन लिए हरा, अण्डाकार, पतला, किंतु दृढ़ वा सघन, लगभग ५ सें० मी० (२ इंच) लम्बा और २.५ सें० मी० (१ इंच) चौड़ा अध पृष्ठपर मध्यपर्शुकाके समानान्तर दो स्पष्ट सिराओंसे युक्त, पत्राग्र नोकदार या (Apex) गोल, मध्यपर्शुकाके ऊपरी धरातलपर एक धूमिल उभरी हुई रेखा होती है। (२) पेरुवियन कोकाके पत्र हरे, अभिपानवत् (Oblanceolate) और अत्यन्त भंगुर, किन्तु आकारमें और उत्तरोत्तर कम मोटे होते हैं। यह लगभग ३.५७ सें० मी० (१॥ इंच) लम्बे और १.२५ सें० मी० (½ इंच चौड़े) तथा ऊपरी और नीचे मध्यपर्शुकाके बिना किसी उभरी हुई रेखाके होते हैं।

व्यापारिक कोका ट्रक्सिलो कोका (Truxillo) का निर्यात टूटे हुए पत्तेके रूपमें होता है, और कोकेन बनानेके काम आता है। इसके पत्रका ऊपरी पृष्ठ हरा और अधःपृष्ठ किंचित् पिताई लिए होता है। इसमें चाय जैसी हल्की गन्ध होती है जो मसलनेपर अधिक स्पष्ट होती है। स्वाद किंचित् तिक्त एवं सुगन्धित होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियोंमें कोकेन (Cocaine) नामक प्रसिद्ध ऐल्केलाइड पाया जाता है, जिसका उपयोग स्थानिक संज्ञाहरण (Local anaesthesia)के लिए किया जाता है। वनस्पतिकी छाल एवं बीजमें भी उक्त ऐल्केलाइड पाया जाता है।

वक्तव्य—इस औषधिका प्रदान एवं विक्रय 'डेंजरस ड्रग ऐक्ट' द्वारा नियन्त्रित होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, ऐल्केलाइड (कोकेन)।

कल्प—प्रवाहीघनक्रिया (मात्रा—१/२ से १ ड्राम) एलिक्सिर कोको, (मात्रा—१-४ ड्राम)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सबल नाड़ीउत्तेजक और बलकारक है। थकानको रोकता है। दक्षिण अमेरिकानिवासी इसकी पत्तीको इसलिए पानकी तरह चबाते हैं जिसमें यह उनमें उत्साहके शौर्य (Feats of endurance)का सामर्थ्य उत्पन्न करे, थकावट दूर करे और प्यास बुझावे। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग श्वासरोगकी चिकित्सामें तथा सार्वदैहिक नाड़ीबलदायक और वाजीकरणके रूपमें भी होता है। सामान्य दौर्बल्य एवं रोगोत्तर-दौर्बल्यनिवारणके लिए ये पत्तियाँ अतिशय गुणकारी हैं। मद्यपान और अहिफेनभक्षणकी आदत छुड़ानेके लिए इनको देते हैं। स्वापजनन और अवसादन भी इनके गुणोंमेंसे हैं। कोकाके पत्तोंकी रसक्रियाका द्रव आँतोंके रक्तस्रावको बंद कर देता है। अन्यान्य योगोंकी अपेक्षया इसके ताजा सुखाये हुए पत्ते श्रेष्ठतर होते हैं।

कोकेनको जलमें विलीन करके आँखमें डालनेसे पुतली फैल जाती है और आँखके पटल सुन्न हो जाते हैं। उस समय नेत्रके ऊपर शस्त्रक्रिया की जाती है। ५ भाग कपूर, ५ भाग क्लोरल हाइड्रास और १ भाग कोकेनको मिलानेसे बने हुए द्रवको दाँतमें लगाने दंतशूल आराम होता है। कोकेनके विलयनकी पिचकारी देकर बिना पीड़ाके दाँत उखाड़ा जा सकता है; परन्तु यह क्रिया भयकारी है। कोकेनको केवल मसूढ़ोंपर मल देनेसे भी उनको संज्ञाहीन किया जा सकता है जिससे दन्तोत्पाटनयन्त्रसे दाँतको पकड़नेसे बिल्कुल पीड़ाका अनुभव नहीं होता। दंतशूल, सूजाक और बिच्छूके काटनेमें विविध प्रकारसे इसका उपयोग करते हैं, जिससे आध मिनट या मिनट भरमें आराम हो जाता है। विभिन्न प्रकारकी वेदनाओंमें इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। अहितकर—प्रबल घातक विष है। अस्तु इसके उपयोगमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। निवारण—नाइट्रेट ऑफ एमाइल सूँघना, ब्रोमाइड ऑफ पोटैसियमका उपयोग, सिरपर ठंडे पानी आदिसे सर्दी पहुँचाना।

(१६७) कोदों

फेमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) कोदो (दो), कोदव, को (कु)दई; (फा०) खुदरव, (स०) कोद्रव, कोरदूप (क), (गु०) कोद्रो, (म०) कोद्रु, (ब०) कोदोआ-धान, (बम्ब०, प०) कोद्र (लै०) पास्पालुम् स्क्रोबिकुलाटुम (**Paspalum scrobiculatum** Linn), (अ०) पकचर्ड पैसपेलम् (Punctured paspalum) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशमे यह जगली होता या इसकी खेती की जाती है ।

वर्णन—एक प्रसिद्ध अन्न जिसे देहातके लोग खाते है । इसके दाने कगनीके समान होते हैं ।

प्रकृति—सर्द (मतातरसे गर्म) एव खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह आमाशयको (गलीज) करता है । यह गुरु, बल्य, दीपन, विबधकारक, शुक्र-क्षयकर्त्ता और विकृतदोष तथा कब्ज एव अफारा उत्पन्न करता है । इससे बहुत कम पोपण प्राप्त होता (कम रक्त बनता) है । (म० मु०) । इसका पुआल बहुत उष्ण है । इसे जलाकर मजन करनेसे सूजे हुए मसूढोसे खून बहकर सूजन उतर जाती है । (बु० मु०) । यह उदरजकृमिनिस्सारक, अतिसारघ्न और शुक्रसाद्रकर्त्ता है तथा अकेला सेवन करने से आमाशयस्थ द्रवोका शोपण करता है । यह तर (मर्तूब) प्रकृतिको सात्म्य है । अहितकर–निर्बल एव रूक्ष प्रकृतिको, प्रबलरोधोत्पादक हैं । निवारण–खाड, गुड, दूध, घी और शीतल पदार्थ । प्रतिनिधि–किसी-किसी गुणमे साँवाँ । प्रधानकर्म–स्निग्धप्रकृतिको लाभकारी है । मात्रा–आवश्यकतानुसार ।

आयुर्वेदीय मत—कोदो रसमें कपाय, मधुर, शीतवीर्य, लघु, वातवर्धक, कफपित्तनाशक, सग्राहक (अत्यन्त-ग्राही) तथा शोपक है । (च० सू० अ० २९, सु० सु० अ० ४६) । कोदो रूक्ष, लेखन, विपनाशक, आमनाशक एव रक्तपित्तको दूर करनेवाला है । बनकोदो स्वादु, कपाय, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, लेखन, वातकारक (वादी), कफनाशक और मलमूत्रवर्द्धक है (वाग्भट्ट, शो० नि०, भा० प्र०) ।

●

(१६८) खजामा

फैमिली · लाबीआटी (Family Labiatae) ।

नाम—(अ०) खजामा, (फा०) शबेअबूय, शबेबू, (लै०) लावैंडुला जाति (**Lavandula Sp**) ।

वक्तव्य—इसे फारसीमे 'शबेबू' और 'शबेअबूय' कहते है, विशेपकर सफेद फूलवालेको । परन्तु भारतवर्षमे जिसे 'शबेबू (गुलशब्बू)' कहते है, वह इससे भिन्न है ।

वर्णनादि—एक क्षुद्र वनस्पति जिसका क्षुप १ गज ऊँचा होता है । तना बारीक और चौकोर होता है; पत्र लकीरदार और सफेद, फूल नन्हे-नन्हे और आसमानी रगके होते है, जिनसे कपूरकी तरह तीव्र सुगन्ध आती है । अधिकतया ये फूल ही औषधके काममे लिये जाते है । लावेण्डूला कुटुबकी जातियाँ निम्न है —

(१) लावेडुला वेरा (**Lavendula vera** DC), अर्थात् 'खजामा मुत्आरफ़ो' या (**Lavandula officinalis** Choise.) । इसको रोमसागरके पश्चिमी तटो पर और इगलैण्डमें बोया जाता है । इसके फूलोका तेल (Lavender Oil) ब्रिटिश फार्माकोपियामें सम्मत है । (२) लावेडुला स्पीका (**Lavendula spica**) । इसको

उस्तामदस्सुबुल, उस्तामदल्फ़र्थाव, सुंबुल रूजामी (उस्तामदस् सुबक्कर) और अगरेजीमें स्पाइक लैवेण्डर (Spike Lavender) कहते हैं। इसके फूल गुच्छों या बालियोंमें लगते हैं, इसलिए इसे स्पाइक या 'सुबुल' कहते हैं। यह स्पेन और इटलीमें विपुल होता है। इससे भी एक अत्यन्त तीक्ष्ण गंधी तैल खींचते हैं, जिसे साधारणत 'स्पाइक ऑयल' कहते हैं। (३) लावेंडुला स्टीकास (Lavendula stoechas Linn) अर्थात् उस्तूख़ूदूस। अंगरेजीमें इसको 'स्टीकाडोस (Stoechados)' कहते हैं, जो इसके यूनानी नामसे व्युत्पन्न है। वस्तुत स्टीकाडोस जिससे उस्तूख़ूदूस अरबी बनाया गया है, उस द्वीपका नाम है, जहाँ यह उत्पन्न होता है (दे० 'उस्तूख़ूदूस')। (४) लावेंडुला बाइपिन्नाटा Lavendula bipinnata O Ktze. (Syn L burmanı Benth) अर्थात् जगली लेवेंडर आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—तीव्र सुगन्धपूर्ण होनेके कारण यह कोथप्रतिबंधक औषध है। व्रण और सूजन पर इसका उपशोषण और श्वयथुविलयन कर्म होता है। हृदय और मस्तिष्क पर यह सौमनस्यजनन एव बल्य कर्म करता है। यह वातनाड़ियो तथा अन्त्र और आमाशयको भी शक्ति देता और उनसे वायुका उत्सर्ग करता (वातानुलोमन) है। यह गर्भाशयगत द्रवों और मलोंको सुखाता और शोधन करता तथा गर्भधारणामें सहायक होता है।

उपयोग—वायुकी दुर्गन्ध दूर करनेके लिए उस्तामाके फूलकी धूनी देते है। व्रणरोपण और श्वयथुविलयनके लिए जौके आटाके साथ इसका लेप लगाते हैं। मस्तिष्क, वातनाड़ी, हृदय और यकृत्के दौर्बल्य, अग्निमांद्य, उदराध्मान और शूल (कुलज) जैसे रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। गर्भाशयके शोषण और सशोधन तथा गर्भधारणाके लिए इसकी योनिवर्ति उपयोग करते हैं। इसके फूलोंसे निकाला हुआ तेल उदराध्मान, शूल, वातिक मद (मराक), अपतन्त्रक और वातनाड़ीदौर्बल्य प्रभृति रोगोंमें प्रयुक्त होता है। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक, रोगन उस्तामा ½ बूँद से ३ बूँद तक।

●

(१६९) खजूर

फैमिली : पामे (Family · Palmeae)

नाम—पक्व ताजा पिंडखजूर(हिं०) खजूर (म०; गु०), पिंडखजूर, (अ०) रुतब, तम्र रुतब, (फा०) खुर्माए तर, खुर्माए ताजा, (स०) पिण्डखर्जूरी, द्वीप्या, (व०) खेजुर। पक्व सूखा पिण्डखजूर या छुहारा (हिं०) छुहा(–वा,–आ)रा, छोहारा, खार (–रि) क, खुरमा, (अ०) खुर्माए याबिस, तम्र, (फा०) खुर्मा, खुर्माए खुश्क, खुर्माए खारके (ख़रके), (व०) खाजूर, खुर्मा, (अ०) खुर्मा, (तु०) कर्मा, (पश्तु) कजूर, (म०) खारीक, (कना०) खर्जूर, (गु०) खजूर, खारेक, (सिंध) कुरमा, (प०) पिंड, (बलू०) खुर्मा, (अ०) डेट (Date)।

वक्तव्य—इसके उपर्युक्त समस्त नाम फलके है। वृक्षको लैटिनमें फेनिक्स डेक्टिलीफेरा (**Phoenix dactylifera** Roxb) कहते हैं। अगरेजीमें अरेबिअन या कल्टिवेटेड डेट पाम (Arabıan or cultıvated Date-palm), यूनानीमें फोइनिक्स (Phoınıx), इब्रानीमें 'तोमेर' जिससे अरबी 'तम्र' व्युत्पन्न है, अरबीमें नख्ल, नख़ील और शज्रतुत्तीव तथा फारसीमें 'दरख्ते खुर्मा' और हिंदीमें खजूरी, सेंधी या सेंदी कहते हैं। यह विदेशी खजूर है। देशी या जगली खजूरको लैटिनमें फेनिक्स सिल्वेस्ट्रिस (**Phoenix sylvestrıs** Roxb) कहते है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया और अरबका यह आदिनिवासी हैं तथा यूनान, इटली और सिसलीमे इसके पेड लगाये भी जाते है। साम्प्रत भारतवर्पके सिंध और पजाब आदि देशो विशेषत मुलतानमें इसकी खेतीकी जाती है। यह मुलतान, अजमेर, सूरत, बम्बई और गुजरातकी ओर से यहाँ आती हैं। विदेशी पिंडखजूर (रुतब) मक्केसे यहाँ आती है।

वर्णन—यह ताल या खजूरकी जातिके एक बडे पेडका प्रसिद्ध फल है। फल पकने पर १ से ३ इच लम्बा प्राय कुछ लाल या कुछ भूरे रगका होता है। इसका गूदा मीठा होता है। जब यह सूख जाता है तब 'छुहारा' कहलाता है। छुहारा अगूठेके बराबर लबा, बेलनाकार और गोपुच्छाकार होता है। यह एक अत्यन्त बारीक और स्वच्छ लाल और कुछ-कुछ पीले छिलकेसे आवरित होता है। इसका ऊपरी धरातल झुर्रीदार होता है और गूदा अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। इसके भीतर एक बडी गुठली होती है। इसके वृक्षसे बहनेवाले रसको 'खजूरी' कहते है।

रासायनिक सगठन—इसमे विटामिन 'B' और स्कर्वी (प्रशीताद) हर जीवतिक्ति, फलमें जीवतिक्ति 'A' 'B' और 'D' होती है।

पिंडखजूर और छुहारा—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जेमें तर है। आयुर्वेदके मतसे शीतल (च०, सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह जीवनीय (कसीरुल्गिजा), सान्द्ररक्तजनक, वाजीकर, शुक्ल, बृहण, उष्णता-जनन और वातनाडीबलदायक है। छुहारेको आहारकी भाँति खानेसे यद्यपि अत्यन्त पुष्टि प्राप्त होती है, तथापि इससे जो रक्त उत्पन्न होता है वह सान्द्र होता है (इसी कारण यह यकृत्प्लीहाके लिए अहितकर है)। औषधकी भाँति इसको अधिकतर शरीरके बलवर्धन (पुष्टि), वाजीकरण और पैच्छिल्यजननके लिये दूधमें उबालकर उपयोग करते हैं। नपुसकताके लिये इसका माजून खिलाते हैं। माजून आर्द्र-खुर्मा इसका एक प्रसिद्ध माजून है जिसका प्रधान उपादान छुहारेका आटा (आर्द्र-खुर्मा) है। उष्णताजनन और वातनाडीबलदायक होनेके कारण कतिपय कफजरोगो, जैसे—कटिशूल, कूल्हेका दर्द (दर्दवरिक) आदिमे इसका उपयोग कराते है। यह वक्षको कफसे शुद्ध करता है। उष्णता जनन होनेसे शीत प्रकृतिवालोको सात्म्य और उष्ण प्रकृतिवालोको असात्म्य है। अहितकर—कब्ज पैदा करता है। निवारण-काहू और शुक्तमधु। प्रतिनिधि—खजूर। मात्रा—५ से ७ दाने तक।

आयुर्वेदीय मत—खजूर (फल) रस और विपाकमें मधुर, गुरु, शीतल, बृहण, वृष्य, हृद्य, तर्पण, वात-पित्तहर तथा क्षय, अभिघात, क्षत-क्षय, दाह और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। खजूर की ताडी (खजूरी) मादक, पित्तकर, रुचिकर, दीपन, बलकारक, वीर्यवर्धक तथा वातकफहर है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, कै० नि०)।

वक्तव्य—नारियल (म०-माड), ताड और खजूरके वृक्षसे बहनेवाले रसको क्रमश माडी (मराठीमें), ताडी और खजूरी कहते हैं। इसको सडानेसे इसमे अम्लता और मद्य उत्पन्न होता है। इसको भबकेमें खीचकर मद्य तैयार करते है। यह मद्य दीपन, पाचन और उत्तेजन होता है। विदेशी मद्यसे यह मद्य विशेष अच्छा होता है। रोगीको मद्य देनेकी आवश्यकता होने पर विलायती मद्य देनेकी अपेक्षया इसे देना अधिक प्रशस्त है। नारियल, ताड और खजूरके रससे गुड तैयार करते है। यह गन्नेकी चीनीसे अधिक पौष्टिक और सारक है। फल स्निग्ध, कफोत्सारि, पोषणकर्ता, मृदुसारक और वाजीकर है तथा श्वास, उर व्याधि एव कास और ज्वर, सुजाक आदिमें भी इसका उपयोग करते है। निर्यास—अतिसारमें तथा मूत्र-जननेन्द्रिय सस्थानके रोगोमें गुणकारक है।

नव्यमत—(यह) ताजारस शीतल, मूत्रजनन, पौष्टिक एव मृदुसारक है।

(१७०, १७१) खतमी और गुलखैरू

फ़ैमिली : माल्वासे (Family Malvaceae)

खतमी—

नाम—वृक्ष (फा०) खत्मी, ख़िత्मी (खतमी), (अ०) कसीरुल् मुनफेअत; (तु०) हत्मी, (क०) सजपोश; (ले०) आल्थेआ आफ्फीसिनालिस (Althoea officinalis Linn.), (अं०) मार्श मैलो (Marsh-mallow)। पुष्प (हिं०) खत्मीका फूल, (अ०) ख़िత्मी, वर्दुल् ख़िత्मी, (बम्ब०, द०) गुलखैरू (रा)। बीज (हिं०) खत्मीका बीज, (अ०) बज्रुल् ख़िత्मी, हब्बुल्खत्मी, (फा०) तुख्मे ख़िత्मी। पत्र (फा०) बर्गे ख़िత्मी। मूल (अ०) अस्लुल् ख़िత्मी, (फा०) रेशए ख़िత्मी, बेखे ख़िత्मी।

उत्पत्तिस्थान—ससारके लगभग हर भागमें यह बोई जाती है। यह कश्मीर और पश्चिम हिमालयमें भी होती है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससेभी होता है।

गूलखैरू—

नाम—(हिं०) गुलखैरू, (फा०) ख़ैरू, गुले ख़ैरू, (बम्ब०, द०,० म०) गुलखैरू, (ले०) आल्थेआ रोजेआ (Althoea rosea Linn), (अं०) होली हॉक (Holly Hock), राउड डॉक (Round Dock)।

वक्तव्य—'खेरुज' खेरू (फारसी)का अरबी रूपान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—अब यह प्राय ममस्त भारतीय उद्यानोमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक बडा बहुवर्षायु क्षुप है जो ६० सें० मी० से ९० सें० मी० (२ से ३ फुट) ऊँचा और लोमयुक्त होता है। पत्र वडे, भूरापन लिए हरे (फीके), तारकाकार रोमोसे घनावृत होनेके कारण मखमली, हृदयाण्डाकार, नुकीले, पत्र प्रान्त अनियमितरूपसे दन्तुर (Serrate), ६ २५ से० मी० (२½ इच) लम्बे, ३ ७५ सें० मी० (१½ इच) चौडे, किंचित् खुरदरे, खुब्बाजीके पत्रसे वडे, सूखनेपर भगुर होते हैं। फूल बडा, गोल और चौडा तथा गधरहित होता है। फूलोके रगके विचारसे सफेद, लाल और काला इत्यादि इसके विविध भेद होते है। इनमें सौसनी या ऊदे फूलकी खतमीको 'गुलखैरू' कहते हैं। इसके फूल खतमी के फूलसे बहुत वडे होते है। फूलोके झडनेके बाद इसमें बोंडी लगती है जिसमें गोल, चपटे और काले बीज होते है। जड बेलनाकार या किंचित् शक्वाकार और ततुकी तरहके उपमूलोसे युक्त, ७ ५ से० मी० से १५ से० मी० (३ से ६ इच) लम्बी भीतरसे सफेद और भरी हुई ततुमय होती है। बाहरसे भी इसका रग सफेद (भूरापन लिए सफेद) होता है और उस पर लबाईके रुख गहरी लबी झुर्रियाँ पडी होती है। यह साधारणतया छिलका उतारी हुई दशामें बिकती है। उस समय इसका बाहरी धरातल ततुमय और सफेद होता है। सूखनेके कारण इसपर लबाईके रुख गभीर सीतायें या नलिकायें (Furrows) होती है तथा नीचेकी ओर यह क्रमश गोपुच्छाकार होता जाता है। इसकी गन्ध हलकी और मनोरम तथा स्वाद पिच्छिलतायुक्त किंचिन्मधुर एव फीका (Mawkish) होता है। इसको थोडा छीलकर उपयोग करना चाहिए। इतर भागकी अपेक्षया जडमें लबाब अधिक होता है। प्राय दो वर्षके पुराने क्षुपसे एक प्रकारका पीला या लाल गोद प्राप्त होता है। इसको सूखा रखना चाहिए, अन्यथा (सीलसे) इसका काढा पिलाई लिए और अप्रिय गन्धवाला बनेगा।

रासायनिक सगठन—सूखी जडमे २५ प्रतिशत लवाब, ५० प्रतिशत पिष्ट (स्टार्च), पेक्टिन, शर्करा, स्थिर तेल और १ या २ प्रतिशत ऐल्थीईन (Althein) या खतमीन एव ऐस्पैरैगिन (Asparagin) होता है। यह क्रिस्टली और ऐस्पैरागसमें वर्तमान ऐस्परीन (Asparin)के समान होता है। जलाने से ४½ प्रतिशत राख मिलती है।

उपयुक्त अग—फूल, वीज, जड, पत्र, तना और गोद इत्यादि।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे समताके साथ गरम। लखनऊके हकीमोके मतसे पहले दर्जेमें गरम व तर।

गुणकर्म तथा उपयोग—खतमीके बीज और पत्र शोथ, फुंसी (बुसूर) और दर्दकी जगह लगानेसे दोष-विलोमकरण, श्वयथुविलयन, दोषपाचन और संशमन कर्म करते है। इसके बीजो और फूलोका क्वाथ आतरिक रूपसे कफका पाचन करता है और श्वासोच्छासावयवोमें मृदुता उत्पन्न करता है। जड अन्त्रपर सशमनकर्म करती है और उससे दोषोको फिसलाकर उत्सर्गित करती है। इसका प्रधान कर्म श्वयथुविलयन और कासघ्न है। खतमी और उसके पत्तोंको पानीमे पीसकर प्रलेप करनेसे या पानीमें पकाकर परिषेक करनेसे बालतोड (दुम्मल), स्तनकोप, गृध्रसी, आम-वात और अन्य उष्णशोथ विलीन या परिपक्व हो जाते है। पार्श्वशूल (फुफ्फुसावरणशोथ) और फुफ्फुसशोथमें इसके बीजोको कैरूतीमे योजित करके मालिश करते हैं। प्रसेक, प्रतिश्याय और उष्ण कालमे इसका काढा पिलाते हैं। मूत्रदाह, अन्त्रशोथ, प्रवाहिका, अन्त्रावरोध और पित्तज अतिसारमें खतमीका बीज दोषोको फिसलाकर निकालनेवाले और संशमनकी भाँति इसका काढा करके या जलमे लबाब निकालकर पिलाते है। अहितकर–आमाशय को। निवारण–मधु और सौफ। प्रतिनिधि–खुब्बाजी। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

खमान सगीर व कबीर

यूनानी निघंटु-ग्रन्थोमें इसके इन दो भेदोका उल्लेख मिलता है–(१) क्षुद्र (खमान सगीर) और (२) बृहत् (खमान कबीर)। नीचे इनमेसे प्रत्येकका क्रमश विवरण किया जा रहा है —

●

(१७२) खमान सग़ीर

फ़ैमिली : काप्रीफोलिआसे (Family : Caprifoliaceae)

नाम—(प०) मुश्कियार, गन्हुला, (नब्ती) खमान, खम्मान, (अ०) खमान सगीर, खमानुल् अर्ज, रक्आ बसरा, (लै०) साम्बुकुस एबुलुस (**Sambucus ebulus** Linn), (अ०) ड्वार्फ एल्डर (Dwarf Elder), ग्राउड एल्डर (Ground Elder)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयकी शुष्क आतरिक घाटियाँ जैसे—कगन घाटी, कश्मीर, पगी और चबामें ६,०००-११,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा यूरोप और ब्रिटिश द्वीपसमूह।

वर्णन—एक तृणजातीय पौधा (घास), काण्ड चौकोर, कडा नही और ग्रथिल, पत्र बादाम पत्रवत्, पत्र-प्रात कटवाँ, प्रत्येक गाँठ पर फल लगता है, पुष्प सफेद, नरकेसर गुलाबी, शाखातपर घुडियाँ भी बडे भेदवालेकी तरह होती है। बीज राईके दानेके बराबर होते हैं। गध गभीर, जड लम्बी और उगलीके बराबर मोटी, काले और रक्त वर्णकी होती हैं। यूनानी वैद्यकमे इसीका अधिक व्यवहार होता है। मात्र खमान शब्दसे यही क्षुद्र भेद अभिप्रेत होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, फल और मूल।

रासायनिक सगठन—पत्तीमें सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड (Cyanogenetic glucoside) तथा उत्पत् तेल (Essential oil) होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—जड़ एव फल विरेचन होनेसे शोथमे प्रयुक्त होते हैं। पत्र–श्लेष्मनिस्सारक, मूत्रल, स्वेदल, विरेचन एव शोथोपयोगी है। बुकरात जलोदरमें प्राय खमानका प्रयोग कराता था। इस रोगमें रोगीके विरे-चनार्थ वह खमानके पत्तोको पानी और दूधमे उबालकर पिलाया करता था।

●

(१७३) खमान कबीर

नाम—(अ०) खमान कबीर, (यू०) आकनी, (लॅ०) साम्बुकुस नीग्रा (**Sambucus nigra Linn.**), (अं०) कॉमन एल्डर (Common Elder), ब्लैक एल्डर (Black Elder)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोपके बहुश भाग, ब्रिटेन, उत्तरी अमरीका, एशिया माइनर और जापान और भारतीय उद्यानोंमें अल्प मात्रामे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसके पौधे खमान सगीरके पौधोसे बडे, शाखाये सफेदी मायल और नरकट या बाँसकी तरह गोल; पत्र अखरोटके पत्रकी तरह, किन्तु उससे छोटे होते है और उनसे दुर्गन्ध या तीव्र गध आती है। प्रत्येक शाखामें पाच तक पत्र होते हैं और हर शाखाकी छोर पर घुण्डी (कुब्ब) होती हैं। छोटे-छोटे फूलोके गुच्छे परस्पर मिलकर एक बडे फूलमे परिणत हो जाते है। फूल पहियेके आकारका छोटा, पच अडाकार और अधिककोणीय खडयुक्त, ताजा पाडुपीत और सूखनेपर पाडुधूसरित पीत, स्वाद पिच्छिलतायुक्त, गध हलकी किन्तु विशिष्ट प्रकार की होती है। फूलकी ऊपरी पखुडियाँ दवित रगमें ललाई लिये सफेद होती है। पुष्पके मध्यमें पाँच पुकेसर (Stamens) या बाल होते है और केसर पीले रगका होता है। स्वाद तिक्त और गध विशिष्ट प्रकारकी अप्रिय होती है। फल—हब्बतुल्खजराकी तरह तथा श्यामता लिए नीलवर्णका और आकृतिमें बाल (खुशे) के सदृश होता है तथा उससे मदिराके समान गंध आती है। छाल वाहरसे हलकी भूरी, कोमल और कॉर्कवत्, जिसमें चौडी दरारें पडी होती हैं, भीतरी धरातल सफेद और चिकना होता है। स्वाद पहले कुछ-कुछ मीठा, उसके बाद तिक्त एव उत्क्लेशकारक होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प, फल, त्वक् और मूल। पुष्प (पत्र और छालका) तथा पुष्पार्कका पाश्चात्यवैद्यकमें भी उपयोग होता है।

रासायनिक सगठन—पत्र और छालमे सम्बुनाइग्रिन (Sambunigrin) नामक एक सायनोजैनेटिक ग्लुकोसाइड, कोमल पत्तियोमें सम्बुसिन (Sambucin) नामक एक क्षाराम (Alkaloid), ऑक्जैलिकाम्ल, अनुत्पत् तेल (Essen oil), फूलमें रूटिन (Rutin)के समान एल्ड्रीन नामक सत्व और अल्पप्रमाणमें उत्पत् तेल, छाल, पत्र और पुष्पकी घुडीमें कोलीन (Cholin) और एक क्षाराभ तथा फल में क्राइसैन्थेमिन (Chrysanthemin) नामक सत्व होता हैं।

प्रकृति—उभय भेद खुश्क (रूक्ष) है। खमान सगीर स्पष्टतया दूसरे दर्जेमें सर्द एव खुश्क है, यद्यपि इसमें स्वल्प प्रमाणमें उष्णता भी है, तथापि वह पराभूत है और शीतलता अभिभूत (प्रबल) है। किन्तु खमान कबीरमे उष्णता अभिभूत है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—(बृहत्) फूल—स्वेदल, मूत्रल, ज्वररोगमें प्रयुक्त, फिरग तथा आमवातमे रसायन-रूपेण प्रयुक्त, फल-छाल-मूल मृदुसारक, तनेकी भीतरी हरी छाल विरेचक एव अवरोधोद्घाटक है। यूरोपीय चिकित्सक ५ रत्ती से ½ ड्रामकी मात्रामें मद्यके साथ इस छालका व्यवहार उन अवस्थाओमें जिनमें तीव्र विरेचनकी आवश्यकता हो, करते थे। उभय भेद शोथादिविलीनकर्ता है। इनमें बृहत् भेदके पत्तोको पीसकर प्रलेप करनेसे व्रण-पूरण होता है। क्षुद्रभेद दोषादि विलोमकर्त्ता (रादेअ) है। यह पिच्छिल दोषोका मलमार्गद्वारा निर्हरण करता है। इसके तने और पत्तोका काढा पीनेसे श्लेष्मा और कफमिश्र अप्रकृत पित्त (मिर्रए सफरा)का मलमार्ग द्वारा निर्हरण होता है। इसी प्रकार इनके स्वरस और मूलक्वाथके उपयोगसे भी होता है। सधिच्युत (जब्र) एव अस्थिभग्न स्थानपर अस्थिसधानार्थ तथा उग्रकडरावितान अर्थात् मोच आनेपर इसकी जडका स्वरस एव क्वाथ तथा इसी प्रकार ९ माशा इसकी जड पीसकर लगाने या बाँधने और अभिघात (सक्ता) पर प्रलेप करनेसे बडा उपकार होता है। जलोदर, कृष्णसर्पदश और सधिशूलमें इसकी जडका काढा मद्यके साथ सेवन करने अथवा जड और पत्तोको मद्यमें

पकाकर खानेसे जलोदर आराम होता है। इसके सेवनसे उदरसे पीले रगके द्रवका निर्हरण खूब होता है तथा अवरोधोका उद्घाटन होता है। इसके रसका गडूप करनेसे दन्तकृमि नष्ट होते है। तीन दिनतक इसे नाकमें टप-कानेसे नेत्रकी लालिमा दूर होती है। इसके काढेमे बैठनेसे जरायुकी सूजन एव कठोरता दूर होती है, गर्भाशय कोमल होता है, गर्भाशय का मुँह खुल जाता और अन्यान्य गर्भाशयिक विकारोका सुधार होता है। इसका फलस्वरस मद्यके साथ पीनेसे भी उक्त लाभ होता है। इसके फलोका स्वरस पीनेसे अथवा पके फलोको बालोपर मलनेसे वे काले होते है और उनका झडना बन्द हो जाता है। इसके ताजे पत्तोको पीसकर जौवके आटेमे मिलाकर लेप करनेसे गरम सूजन, अग्निदग्ध (एव तज्जन्य वेदना वा) जलसत्रास और भगदर आराम होता है। बकरीकी चरबीके साथ इसका उपयोग करनेसे वातरक्त आराम होता है। गर्भाशय-शूल, गुदरोग और नाडीव्रणमे इसकी जडके स्थापनसे उपकार होता है। (मखज़न व मुहीत)।

आधुनिक पाश्चात्य वैद्यकके मतसे इसके फूल (गुलेखमान-Sambuci floweres)में कोई विशेष गुण नही होता। केवल इसका अर्क (Aqua Sambuci) सुगधके लिए लोशनोमे पडता है। यह छाईं (Freckles)को दूर करता है। इसके फूलोका मलहर भी बनाते है। यह ठढा मुलायम करनेवाला है। आध सेर इन फूलोको आध सेर चर्बीमें उबालकर छान लेते है।

●

(१७४) खरबूजा

फैमिली कूकूरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम। फल—(हिं०) खरबूजा, डँगरा, (अ०, रू०) बित्तीख, (फा०) खर्बु(बू)ज, खर्पु(पू)ज, (स०) खर्बु(बू)ज, पड्भुज(जा), (म०) खरबुज, चिबुड, (ले०) कूकूमिस मेलो (**Cucumis melo** Linn), (अ०) स्वीट मेलन (Sweet Melon)। (बीज) (अ०) बज्रुल् बित्तीख, (फा०) तुख्म खर्पु(बु)ज।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारतवर्षमे इसको खेती की जाती है।

वर्णन—यह ककडीकी तरहकी एक लताका प्रसिद्ध फल है, जो गोल, परिपुष्ट, मीठा और सुगधित होता है।

फल (खरबूजा)—

प्रकृति—पका और मीठा पहले (मतान्तरसे दूसरे) दर्जेमे गरम और दूसरे दर्जेमे तर (स्निग्ध), कच्चा और फीका खरबूजा पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खरबूजेका गूदा शरीरको पुष्टि (आहार) प्रदान करता और तरी पैदा करता है। सुगधित होनेसे हृदय एव मस्तिष्क पर इसका सौमनस्यजननकर्म होता है। त्वचा पर यह लेखनकर्म करता है। यह आशुप्रवेशक्षम (सरीउन्नुफूज) है और आमाशयमें प्रधान दोपमें परिणत हो जाता है। अन्त्र पर यह सारक (मुलय्यिन) तथा वृक्क, बस्ति और स्तनकी वाहिनियो (दुग्धस्रोतस्) प्रवर्तनकारीकर्म करता है। इसका प्रधान कर्म मूत्रजनन और कामलानाशन है। खरबूजा एक मेवाकी भाँति खाया जाता है। इससे पर्याप्त पुष्ट (गिज़ाइय्यत) एव तरावट (तरतीब) भी प्राप्त होती है। अतएव इसके निरतर उपयोगसे शरीरका कार्श्य दूर होकर शरीर मोटा हो जाता है। इसके सेवनका सर्वोत्तम काल दो आहारोके मध्यका काल है जबकि प्रथम आहार आमाशयमे पचकर अन्त्रकी ओर चलायमान हो चुका रहता है। इसके सिवाय अन्य दशाओमे इसका सेवन निरापद नही है। इसके बारबार खानेसे

दांत स्वच्छ और चमकीले हो जाते हैं, दांतो पर जमा हुआ मैल भी साफ हो जाता है। इसे उचित रीति और प्रमाणमे खानेसे खुलकर साफ दस्त होता है, परन्तु अधाधुन्ध और अत्यधिक सेवनसे दस्त आने लगते हैं। मूत्रजनन होनेके कारण जलोदर, कामला, मूत्रमार्गस्थ व्रण और वस्तिवृक्काश्मरीमे इसका सेवन गुणकारी है। स्तन्याल्पताकी दशामें यह स्तन्यकी वृद्धि करता है। त्वचाके चिह्न और झाईं दूर करनेके लिए इसका गूदा पीसकर त्वचापर लगाया जाता है। इसका छिलका भी मूत्रल और अश्मरीघ्न है। इसे मासके साथ मिलाकर पकानेसे उसको शीघ्र गला देता है। अहितकर—यह अजीर्ण तथा पित्तज ज्वर उत्पन्न करता और शीघ्र परिणतिशील है। निवारण—शुक्तमधु, सिरका और अनारका रस। प्रतिनिधि—प्रवर्तन कर्मके लिए फूट।

बीज (तुख्म खर्बुजा)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, आर्तवजनन, वस्ति-वृक्काश्मरीनाशन, लेखन और अवरोधोद्घाटक है। इसका प्रधान कर्म यकृद्वरोधोद्घाटन और मूत्रप्रवर्तन है। रुद्धमूत्रार्तव, वस्तिवृक्काश्मरी और औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) में इनका शीरा निकालकर पिलाया जाता है। प्रवर्तनकारी होनेके कारण ही यह ज्वरसतापको शमन करता है। मूत्रजनन, लेखन और प्रमाथी (मुफत्तेह) होनेके कारण यह यकृत्के अवरोधोका उद्घाटन करता तथा यकृत्, वस्ति और वृक्कके शोथोंको नष्ट करता है। लेखन होनेके कारण चेहरेका रग निखारने और त्वचाके कतिपय रोगोको नष्ट करनेके लिये पतला लेप (तिला)की भांति इसका वाह्य प्रयोग करते हैं। अहितकर—प्लीहाके रोगोके लिए। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—ककडीके बीज। मात्रा—५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीयमत—कच्चा खरबूजा कडवा, कुछ-कुछ मीठा और पाकमें किंचित् खट्टा है, पका खरबूजा तृप्तिकारक, पुष्टिकारक, वृष्य, दाहको दूर करनेवाला, श्रमको हरनेवाला, मूत्रवर्धक तथा पित्त और उन्मादका नाश करनेवाला, कफकारक और वीर्यजनक है (रा० नि०)। रत्नाकरमें इसे शीतवीर्य लिखा है।

o

(१७५) खर्नूब (बुस्तानी व बर्री)

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Legumicseae)

(१७५) खर्नूब बुस्तानी

नाम—(अ०) खर्नूब, खुर्नूब संदलानी, खर्नूब शामी, (यू०) केराटिआ (Keratia), केराटोनिआ (Keratonia), (प०) खर्नूब, (लै०) सेराटोनिआ सिलिकुआ (**Ceratonia siliqua** Linn), (अ०) सेंट जॉन बीन (ब्रेड) (Saint Jhon's bean (bread), फ्रूट ऑफ दि केरोब ट्री (Fruit of the Carob tree), दी केरोब ट्री (The Carob Tree)।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरके तटीय देश (प्रान्त) का आदिवासी है। एशियामाइनरमे फैला हुआ है। अन्य देशो जैसे फिलस्तीन, श्यामदेश, पुर्तगाल और अफ्रीकामे यहीसे लगाया गया है। भारतवर्षमें भी पजाब तथा अन्य कतिपय स्थानोमें यह अब नैसर्गिक रूपसे होने लगा है।

वर्णन—खर्नूबके वृक्ष दो प्रकारके होते हैं —(१) बागी (बुस्तानी) और (२) जगली (बर्री)। इनमें बागी खर्नूब (खर्नूब बुस्तानी)का पेड बडा होता है। पत्र सयुक्त, पक्षाकार (Pinnate), गहरे हरे गोलाई लिए, दलदार और कडे, पत्रप्रान्त अखडित, शाखापर आमने-सामने लगे होते हैं। फूल सुनहला पीला होता है। इसमें फलियाँ

लगती हैं जो एक बित्ताके बराबर १०सें० से १२.५ सें०मी० या २० सें०मी० (४-५ या ८ इञ्च लम्बी), २.५ सें० मी० (१ इञ्च चौडी), ३.१२५ मि० मी०से ४.१६ मि० मी० (१/८-१/६ इञ्च) मोटी और पतली, चपटी, सूखने-पर चौकोर, काली या ललाई लिए भूरी, मसृण, गुदार, बहुकोषयुक्त और कपाटरहित होती हैं। इनके भीतर हलका भूरा, मुलायम मीठा मासल गूदा भरा होता है। बीज बाकलाकी तरहके, कुछ-कुछ चपटे, स्थूलत. अण्डाकार पृथक् कोषमें और ८-९ मिलीमीटर लबे होते हैं जो कागजकी तरह पतले छिलकेसे ढँके होते हैं। बीजकी गिरी द्विदलीय पीले रगकी और किंचित् मधुर होती है। इसके दोनो ओर कठिन श्वेत, शृगमय धातु (Endosperm) युक्त दो आवरण खड होते है। यह धातु ही निर्यासका आश्रय होती है। यदि इन उभय खडोको अलग कर कुछ समय जलमें भिगो रखें, तो वे खूब फूल जाते है और निर्यासीय स्वभावका प्रकाश करते है। यह निर्यास ट्रैगाकन्थ निर्यास (Gum Tragacanth)के प्रतिनिधि और उससे अल्पमूल्यसाध्य हैं। इसका फल भी मीठा होता है और खाया जाता है। इससे मधुवत् एक प्रकारका तेल निकालते हैं। मिस्र और श्यामदेशमें इससे सत्व (रुब्ब)कल्पना भी करते है। मात्र खर्नूब शब्दसे यही विवक्षित होता है। (२) जगली खर्नूब (खर्नूब वर्री)को खर्नूबनब्ती भी कहते है। इसका वर्णन आगे उक्त शब्दमें किया गया है। 'खर्नूब हिन्दी'को अमलतास कहते है।

उपयुक्त अग—फली (The Carob pod), बीज (The Carob seed), बीजोत्थ निर्यास (Carob seed gum, Carob gum)।

रासायनिक सगठन—फलीमें स्थूलत ५० प्रतिशत शर्करा होती है। खाद्यमूल्य लगभग दालोके तुल्य है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, दीपन और बृहण है। बस्ति और वृक्कपर इसका मूत्रजनन कर्म होता है। मासधातुपर इसका सग्राही (काबिज) और सशमन (मुसक्किन) कर्म होता है। इसके बीज भी सग्राही और रक्त-स्तभन कर्म करते हैं। यदि पके खर्नूबको मेवाकी भाँति खाया जाय और यह भलीभाँति पच भी जाय तो इससे अच्छा आहार (गिजा) प्राप्त होता है। इसके मूत्रजनन कर्मसे किसी विशेष रोगमें कोई लाभ नही प्राप्त किया जाता है। खर्नूबका उरोवेदना और जीर्णकासके लिए लाभदायक वर्णन किया जाता है। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि फेफडोपर इसका क्या कर्म होता है जिससे यह कासमें लाभ पहुँचाता है। आमाशयके मासधातुओको बल प्रदान करनेके कारण यह दीपन है। यह कब्ज पैदा करता और रक्तस्रुतिको बन्द करता है। चोटपर लगानेसे यह दर्दको शात करता है। इसके बीजोको बारीक पीसकर गुदभ्रशमें अवचूर्णन करते हैं। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए इसका चूर्ण बनाकर खिलाते है।

मुअल्लिमुल् अद्वियाके लेखक लिखते हैं कि गुरुवर्य स्वर्गवासी श्रीमान् शिफाउल्मुल्क हकीम अलहाज अब्दुल् हमीद साहब तथा पितृवर्य स्वर्गवासी श्रीमान् हकीम मौलवी मोहम्मद सुलेमान साहब नपुसक रोगियोको शुक्रतारल्य एव शुक्रमेह निवारणकरने और कामेच्छा जागृत करनेके लिए माजून और चूर्णक कल्पोमे इसका पुष्कल उपयोग कराते थे। बीज, पूर्वकालमें फली का अनुपयोगी भाग समझा जाता था। पर अधुना शर्करा एव पिष्ट (Starch) रहित उच्च प्रोटीनमय आटाका आश्रयरूप माना जाने लगा है और अब मधुमेहीके खाद्यरूपमे प्रयुक्त किया जाता है। इसका आटा रगमें पाडुपीत होता है तथा इसमे अत्यधिक प्रमाणमें (६० प्रतिशत) प्रोटीन होता है। (वेजिटेबुल् गम्स एण्ड रेजिन्स-एफ० एन० हावेस डी०, एस-सी०)। गायकलोग स्वर सुधारनेके लिए फलीको खाते है। अहितकर—संग्राही है। निवारण—बिहदाना और मिश्री। मात्रा—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशा से १ तोला) तक।

●

(१७६) खर्नूब नब्ती (बर्री)

नाम—(अ०) खर्नूब नब्ती, खर्नूब बर्री, खर्नूब मअज़्ज़ी, खर्नूबुश्शोक, (फा०) गुर्द, जीलाक, (श्याम और पश्चिम) बंबूत।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी भूमध्यसागर स्थित भागोंका मूलनिवासी है। भारतवर्षमें वहींसे लाया गया है।

वर्णन—यह खर्नूबका जंगली भेद है। इसका वृक्ष लगभग ०.९ मीटर (१ गज) ऊँचा होता है। शाखायें इतस्ततः होती हैं और उनपर बारीक बारीक तेज कांटे लगे होते हैं। फूल पीला और दागदार होता है। फल बकरीके छोटेसे स्तनके समान और कालापन लिए लाल होता है। इसके भीतर बीज होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य त्वचापर लेप करनेसे यह शरीरके अंगोंपर संग्राही कर्म करता है। आमाशय और अन्त्रपर इसका संग्राही और हाबिस (स्तंभन) कर्म होता है। बाहरी त्वचापर खर्नूबको पीसकर लेप करनेसे शरीरकी ग्लानि (थकान) दूर हो जाती है। मेंहदीके साथ इसको पीसकर बालोंपर लगानेसे यह उनको शक्ति देता और उन्हें समयसे पूर्व श्वेत होनेसे रोकता है। खिलानेसे यह दस्तोंको रोकता और मेदेकी कमजोरी (मंदाग्नि)को दूर करता है। इसके काढ़ेसे गण्डूष (मजमजा) करने या सुखाकर और बारीक पीसकर मंजनकी भांति उपयोग करनेसे दन्तशूल आराम हो जाता है और हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं। मात्रा—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशे से १ तोला) तक।

खर्बक (Helleborus)

वक्तव्य—एक उद्भिज्ज जिसके अनेक भेद होते हैं। उनमेंसे खर्बक सफेद और खर्बक स्याह इन दो भेदोंका उल्लेख यूनानी चिकित्सा ग्रन्थोंमें मिलता है। नीचे इनमेंसे प्रत्येकका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

●

(१७७) खर्बक सफेद[1]

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family Liliaceae)

नाम—(फा०) खर्बक, खर्बक सफेद, (अ०) खर्बक अब्यज, अस्सर्बकुल् अब्यज, कातिलुल् कल्ब (श्वघातक), (यू०) एल्लेबोरोस-ल्युक़ोस Elleboros leukhos (एल्लेबोरोस = साघातिक विषौषधि, विषाक्त औषधि + ल्युखोस = सफेद), (लै०) वेराट्रुम आल्बुम् (**Veratrum album** Linn.), (अं०) व्हाइट हेलेबोर (White Hellebore), यूरोपियन हेलेबोर (European Hellebore)।

उत्पत्तिस्थान—यह मध्य और दक्षिण यूरोपके पर्वतीय नम स्थानोंमें उत्पन्न होता है।

वर्णन और उपयुक्त अंग—कुटकीसे ही सर्वथा भिन्न नहीं, अपितु 'खर्बक स्याह' से भी भिन्न कुल एवं जातिके एक विदेशीय उद्भिज्जकी प्रसिद्ध जड़ जिसका छिलका औषधके काममें आता है। जड़ (पाताली घड) खर्बक अमेरिकी

---

१ खर्बक सफेदका चित्र जेराड्'स हर्बल (Gerard's Herbal)में अंकित है। 'दी फ्लोरा ऑफ ग्रीस'के प्रणेता हेल्ड्रीख (Heldreich)ने अपने प्रत्यक्ष ज्ञानके आधार पर इस बातकी पुष्टिकी है कि **थावफ्रस्तुस (Theophrastus)** लिखित खर्बक सफेद (व्हाइट हेलेबोर) यही है।

या हरित्तसे वहुत मिलती-जुलती होती है और लोग इसे उसीकी एक जाति मानते है। व्यापारमे साधारणतया समूचा और कभी जड दूरकिया हुआ पाताडी धड (Rhizome) मिलता है। गध तिक्त और अत्यन्त कटु, निर्गंध किंतु चूर्ण-से नकुओमें अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होता है।

रासायनिक सगठन—इसका रासायनिक संगठन भी 'अमरीकी खरवक (वेराट्रुम विरिडे Veratrum viride Aiton (*Family Liliaceae*) की भाँति होता है। इसमे ईस्टर ऐल्केलाइड्स (Ester alkaloids), ग्लाइको-ऐल्केलॉइड्स (Glyco-alkaloids) एव ऐल्कामीन्स (Alkamines) का जटिल सम्मिश्रण (Complex mixture) पाया जाता है। क्रिया की दृष्टिसे इनमें प्रोटोवेराट्रीन A (Protoveratrine A) एवं प्रोटोवेराट्रीन B (Protoveratrine B) नामक दो ईस्टर ऐल्केलॉइड अधिक महत्त्वके है। सफेद खर्वकमें रक्तचापह्रासी (Hypotensive) गुणकर्म भी पाया गया हे, जो सम्भवत इन्ही ऐल्केलॉइड्सके कारण होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेके मध्य या अन्तमे गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रवल वामक एव तीव्र विरेचक, गाढे पित्त और पिच्छिल एव पीले कफ तथा श्लैष्मिक दोषोका विरेचनद्वारा शोधन करनेवाला, आर्तवजनन, गर्भशातक और छिक्काजनक हे। प्राय अत्यल्प प्रमाणमें देनेसे भी यह कम्प, चक्कर और मूर्छा तथा प्रमाणके अधिक होनेपर मृत्यु उत्पन्न करता है। प्रधानतया यह शीतजन्य मस्तिष्करोगोमे लाभकारी है और वामक (वमनद्वारा दोषोका निर्हरण करने वाला) है। कतिपय त्वग्रोगो एव जूओ (Pediculi) को नष्ट करनेके लिये इसका सामान्यत बाह्यरूपेण प्रयोग किया जाता है।

अहितकर—आमाशयको तथा खुनाक (कण्ठक्षत), आक्षेप एव तीव्र वमन उत्पन्न करता है। निवारण—आमाशयके लिये मस्तगी, अन्यान्य उपद्रवो के लिये ताजा छाछ, रोगन वादाम, गोघृत, यवमड (आशे जौ), थोडा हाशा और कतीरा। खालीपेट इसका सेवन कदापि न करे। सेवनसे पूर्व इसे गूधे हुये आटेमें रखकर पका लेना चाहिये। प्रतिनिधि—खर्वक स्याह। मात्रा—१ ५ ग्रामसे ३ ५ ग्राम (१½ माशासे ३½ माशे) तक। बिना शोधन किये या बिना निवारणद्रव्यके तथा अधिक मात्रामें इसका सेवन भयसे खाली नही है। नव्यमतसे मात्रा—(जड़ चूर्ण)—६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (½ रत्तीसे १ रत्ती), (प्रवाहीसार) १-२ विंदु, (टिंक्चर वेरेट्रम) (१० में १) ५ से ३० विंदु।

●

(१७८) खर्बक स्याह

फैमिली : रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(फा०) खर्वक स्याह, खालजगी, (अ०) अलखर्बकुल् अस्वद, खर्बक अस्वद, रिज्लुर्राई, (यू०) फरी एल्लेवोरो मेलानोस (Feri elleborou melanos), (ले०) हेल्लेबोरुस नीगेर **Helleborus niger** L (पर्याय—*Veratrum niger*), (अं०) ब्लैक हेलेबोर (Black Hellebore), क्रिस्मस् रोज (Christmas rose)।

वक्तव्य—(१) यह क्रिस्मस (वडा दिन) कालमे फूलता है तथा फूल लाल रगके होते है। इसलिये इसे 'क्रिस्मस रोज' कहते है जिसका समीचीन अरवी भाषान्तर 'वर्दुल मेलाद' और 'वर्दुश्शता' है। अब यह निश्चित हो चुका है कि वेराट्रुम् (**Veratrum**) एव 'हेल्लेबोरुस' (**Helleborus**) दो पृथक् वानस्पतिक जातियाँ है, इनमें एक दूसरेका भ्रम नही होना चाहिए। और हेल्लेबोरुस प्रजातिकी वनस्पतियोका 'वेराट्रुम्' प्रजातिमें समावेश नही होना चाहिये। वेराट्रुम् पर भेषजगुणकी दिशामे अमेरिकामें हुए आधुनिक शोधकार्योंसे भी यह सिद्ध हो चुका

है कि इनमे एक दूसरेके विपरीत गुणधर्म पाये जाते है। (२) जहाँ तक ज्ञात होता है खर्वककी किसी जातिकी जड भारतीय बाजारोमे विकनेके लिये नही आती और न इसकी कोई जाति भारतवर्षमे उत्पन्न होती है। फिर भी यूनानी द्रव्य-गुण पर भारतीय मुसलमानो द्वारा रचित सभी ग्रन्थो मे यूनानियो द्वारा वर्णित खर्वक (हेलेबोर)का वर्णन उपलब्ध होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दीसकूरीदूस आदि यूनानियो और रोमनोके ग्रन्थोसे सर्वप्रथम अरबी चिकित्सकोने एतद्विषयक विवरणका अरबी भाषान्तर किया और उसीका भारतीय मुसलमान चिकित्सकोने अपने ग्रन्थोमें ग्रहण किया और उसे 'कुटकी' समझकर उसके पर्याय नामोमे इसको (कुटकी) स्थान दिया, परन्तु गुणकर्म आदि खर्वकके ही दिये। **यह सर्वथा भ्रामक एवं हानिकारक है।** इसके निम्न कारण है —

(१) जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, खर्वक न तो भारतीय पैदावार है और न यह भारतीय बाजारोमे विकता है। कुटकी इससे सर्वथा भिन्न कुल एव जातिके भारतीय उद्भिज्जकी जड है जो भारतीय बाजारोमें सामान्यतया मिलती है।

(२) कुटकीसे इसका न तो गुण-साम्य है और न स्वरूप-साम्य ही है।

(३) खर्वकके दोनो भेद महान् साघातिक विष-(सफेद खर्वक वामक और स्याह खर्वक विरेचक विष) है। इसके सेवनमें थोडी-सी असावधानीसे तथा कभी-कभी इसकी अत्यल्प मात्रासे भी तीव्र विरेचन, वमन एवं छिक्का-जनन प्रभाव होकर कम्प, भ्रम और मूर्च्छा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है तथा मात्रा अधिक होनेपर मृत्यु तक हो जाती है। अस्तु, प्राचीन चिकित्सकोने बडी सावधानीपूर्वक एव निवारण औषधियोके साथ इसके उपयोग करनेका आदेश किया है, और उत्तरकालीन यूनानी चिकित्सकोने तथा आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकोने तो इसका उपयोग सर्वथा वर्जित ही कर दिया है। इसके विपरीत कुटकी एक सर्वथा निरापद औषधि है। इसकी अधिक मात्रामे भी किसी प्रकारकी विशेष हानिकी सभावना नही होती। भारतीय यूनानी चिकित्सकोका इसके सेवनमे भयका कारण उनका खर्वक और कुटकीको एक मान लेना है, जो सर्वथा निराधार है। वि० दे० 'कुटकी'।

उत्पत्ति-स्थान—यह पूर्वी, मध्य एव दक्षिणके उपाल्पीय जगलो, टीलो और पर्वतोपर उत्पन्न होती है। यह भारतवर्षमे नही होती।

वर्णन—कुटकीसे ही सर्वथा भिन्न नही, अपितु खर्वक सफेदमे भी भिन्न कुल एव जातिके एक विदेशी उद्भिज्जकी प्रसिद्ध ग्रन्थिल, तन्तुल, अनियमित मुडी हुई, एक वा एकाधिक इच लम्बी, चौथाईसे आध इच मोटी जड है, जिसपर लम्बाई और आडे रुख चिह्न पडे होते है। यह बाहरसे काली और भीतरसे सफेदी लिये होती है। गन्ध अत्यन्त सूक्ष्म तथा वसामय, स्वाद तिक्त और किञ्चित् कटु होता है। इसकी कडुआहट सफेदकी अपेक्षया कम होती है, किन्तु शक्ति एव तीव्रता उससे बढी हुई, भयकारी एव सापद होती है। इसकी जडमेसे प्याजकी जडकी पेंदीमें लगे बारीक तन्तुके समान काले बारीक तन्तु लगे होते है। ये तन्तु ही औषधके काम आते है। मात्र खर्वक-स्याह सज्ञासे उक्त तन्तु ही अभिप्रेत होते है, जो न बहुत पुराने, न बहुत नये, न बहुत मोटे, न बहुत पतले, खाकी रग के और शीघ्रभगुर हो, जिनके भीतर मकडीके जालेकी तरह कोई वस्तु हो, स्वादमे जो तिक्त तीक्ष्ण एव चरपरे हो और चाबनेसे जो स्वादमे तिक्त, तीक्ष्ण एव चरपरे हो अर्थात् चाबनेसे जो जिह्वामे दाह उत्पन्न करें वह जड उत्तम है। उपयुक्त अग–जड (Rhizome) और जडमें लगे हुये तन्तु।

रासायनिक सगठन—इसमे खर्वकीन (हेलेबोरिन Helleborin) और हेलेबोरीन (Helleborein) नामके दो विषाक्त ग्लूकोसाइड पाये जाते है। जड मे हेलेब्रिन (Hellebrin) नामक एक और ग्लूकोसाइड पाया जाता है जो हेलेबोरीनसे २०-३० गुना अधिक कार्यकारी तथा गुण-कर्ममे स्ट्रोफैन्थीनसे श्रेष्ठतर है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेके अन्तमे (मतान्तरमे चौथे दर्जेके अन्तमे) गरम और खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र विरेचन, मूत्रल, आर्तवजनन और कृमिघ्न है। स्थानीय स्वापजनन एव तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के समान हृदयवलवर्धन तथा उन्माद, सन्यास, अपस्मार आदि मानस एव शिर रोगो, अपतन्त्रक और मालिन्खोलिया (मद) आदि वातव्याधियो, रजोरोध और हलीमक (Chlorosis) प्रभृत स्त्रीरोगो एव जलोदर आदि तथा किलास, व्यग, उकौता और अन्यान्य त्वचाके रोगोमे इसका उपयोग होता है। प्रधानतया यह शीतव्याधिनाशक और कफ एव सौदाका विरेचनकर्ता है। सफेद खर्वककी अपेक्षया यह तीव्र प्रभावकारी एव विष है। अस्तु, इसके प्रयोगमे उसकी अपेक्षया अधिक सावधानीकी अपेक्षा होती है। इसे कम-से-कम मात्रामे देना चाहिये। अहितकर—उष्ण प्रकृति एव वृक्कको तथा कण्ठशोथ (खुनाक) उत्पन्न करती है। निवारण—कतीरा, सातर, पुदीना, मस्तगी और गोघृत। प्रतिनिधि-खर्वक सफेद, खर्वक सब्ज (Helleborus viridis) या अमरीकी खर्वक सब्ज (Veratrum viride) आदि। मात्रा—१½ माशासे २½ माशा तक (पाश्चात्य वैद्यकीय मतसे ५ रत्तीसे १० रत्ती तक चूर्ण, टिंक्चरकी मात्रा २०-६० बूँद तक, प्रवाही रसक्रियाकी २-१० बिंदु, घन रसक्रियाकी मात्रा—६० से १२० मि० ग्रा० या ½ से १ रत्ती)।

●

(१७९) खस

फैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) खस, गाडर(सीक)की जड, वीरन (मीर्जापुर), (फा०) बीखेबाला, रेशए वाला, (स०) उशीर, वीरण, (ब० द०) बाला, (ब०) वेणारमूल, खश, वाला, (गु०) वालो, (ता०) वेट्टिवेर, वीरणा, (ले०) वेटीवेरिया जीजानिओइडेस **Vetiveria zizanioides** (L) Nash (पर्याय—*Andropogon muricata* Retz), (अ०) कुस-कुस (Cus-Cus), खुस-खुस (Khus-Khus)।

वक्तव्य—'खस' वस्तुत हिन्दी भाषाका शब्द है। इसे फारसी लिपिमे प्राय 'खस' लिखते है। अरबीमे खस' शब्दका व्यवहार 'काहू'के अर्थमें होता है। आयुर्वेदीय साहित्यमें इसके लिए 'उशीर' एव 'वीरणा' आदि नाम दिए गए है। भारतवर्षमे इसके औषधीय एव व्यावहारिक उपयोगोका ज्ञान अति प्राचीनकालसे है। उपर्युक्त भारतीय भाषाओके नामोको देखनेसे प्रतीत होता है कि इनमें अनेक 'वीरण' शब्दसे व्युत्पन्न है। अनेक जगली क्षेत्रोमें स्थानिक लोग इसे 'वीरर्ना' या 'बीरने' नामसे जानते है। वह भी सम्भवत सस्कृत नाम 'वीरण' की ओर सकेत करता है। लेटिन नाममे इसका प्रजातिक नाम सम्भवत खसके तामिल नाम 'वेट्टिवेर' पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके पजाब, उत्तरप्रदेश और कुमाऊँ आदि प्रान्तोमे विशेषत तालावो, सभी बहते हुए पानीके किनारे और नीची गीली जमीनमे खस विपुल होता है। राजपूताना, छोटानागपुर, कन्नौज और इटावा आदि स्थानोमे भी यह बहुत होता है।

वर्णन—यह 'गाडर' या 'सीक' नामक घासकी जड है, जिससे गरमीमें पखे, खसगृह (खसखाना), टट्टियाँ और हुक्कोके नैचे इत्यादि बनाते है। यह सूत या तार जैसी वारीक न्यूनाधिक लम्बी, सीधी या घुँघराले बालोकी तरह और पिलाई लिये भूरी होती है। गध कुछ-कुछ बोलजैसी, तीक्ष्ण एव स्थायी होती है। स्वाद तिक्त और सुगधित होता है। यह जड ही औषधके काममे ली जाती है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक उत्पत् तेल, एक बोलगधी चरपरा और गहरा रक्तधूमर रालदार पदार्थ, ,जक द्रव्य, स्वतन्त्र अम्ल, चूने के लवण, लौहभस्म और काष्ठपदार्थादि होते है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष । लखनऊके हकीमोके मतमे दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क । आयुर्वेदके मतसे शीतल (रा० नि०) एव रूक्ष (कै० नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदय और मस्तिष्कको वलप्रद और सौमनस्यजनन, ग्राही, पित्तशामक, रक्तोद्वेगहर, दीपन और रक्तज एव पित्तजज्वरनाशक है। इसको अधिकतया अर्क, हिम या फॉट और शर्वतके रूपमे उपयोग करते है। इसका इत्र अत्यन्त सूक्ष्म (लतीफ) एव सुगधित और उष्णप्रकृतिवालोके लिए गुणकारी है। सौमनस्यजनन (हृद्य) तथा हृदयबलदायक होनेके कारण दिलकी धडकन, हृदयदौर्वल्य, मूर्च्छा और मरकवायु (हवाए वबाई)के दोषोके निवारणके लिए इसका पान और आघ्राणरूपमें उपयोग करते है। सशमन और ग्राही और दीपन होनेसे सग्रहणीमें इसका उपयोग करते है। सशमन और पित्तघ्न होनेके कारण यह तृष्णा एव रक्तज और पित्तज ज्वरोको शमन करता है। वालकोके तृष्णाधिक्य (उताश)रोगोमे थोडे अधकुटे खसको दो-तीन दाने अधकुटे कवलगट्टाकी गिरीके साथ अर्ककेवडामें भिगोकर अथवा पीस कपडासे छानकर पिलानेसे विशेष लाभ होता है। अहितकर-उष्णप्रकृतिके लिये। निवारण-चदन। प्रतिनिधि-खसका इत्र। मात्रा-५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—खस, तिक्त, मधुर, शीतल, रूक्ष, लघु, पाचन, स्तम्भन, छर्दिनिग्रहण, दाहप्रशमन, पित्तसशमन, जलको सुगन्धित करनेवाला तथा स्वेदकी दुर्गन्ध, श्रम, पित्तज्वर, मुखशोप, मद, तृपा, रक्तविकार, विप, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, वमन और व्रणका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ४, सू० अ० २५, सु० सू० अ० ३८, ३९, ध० नि०, रा० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—खस शीतल, मूत्रजनन, पिपासाहर, मृदु, स्वेदजनन, ज्वरमें त्वचाका दाह कम करनेवाला और रोचन है। खसके फांटमे वमन वन्द होता है।

●

(१८०) खाकसी

फैमिली : क्रूसीफेरी (Family Cruciferae)

नाम—(हिं०) खाकसी (-र), खूबकलाँ, (यू०) एरुसिमोन (Erusimon) (अ०), खुब्ब , (फा०) खूबकलाँ (ला), खाकची, शिब्र , तुख्मे शहूह, (ईरान) खाकशी (-शू), शफ्तरक, (क०) चरिल छज, (ले०) सिसीम्ब्रिडम ईरीओ (**Sisymbrium irio** Linn), (अ०) हेज मस्टर्ड (Hedge Mustard), लडन रॉकेट (London Rocket)

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष, फारस और यूरोप आदि। इसके पौधे वनो, वगीचो और पर्वताचलोमें आपसे-आप उत्पन्न हो जाते हैं। भारतवर्षमें रवीकी फसलमे यह गेहूँ, मेथी इत्यादिके साथ पैदा होती है।

वर्णन—यह ललाई लिये पीले और अत्यन्त क्षुद्र (पोस्ताके दानेसे भी छोटे) बीज है। इसका क्षुप आध गजसे लेकर १ गज तक ऊँचा होता है। पत्र लम्बे, शाखायें पतली, पुष्प छोटे पीले और फलियाँ सरसोकी फलियोके समान, किन्तु अत्यन्त वारीक सीधी होती है। इसमें क्षुद्र बीज भरे रहते है। ये नीचे से ऊपरको खुलती है, केवल सिरेपर लगी रहती है। यूनानी वैद्यकमें ये बीज ही काममें लिये जाते है। भारतीय मुसलमान हकीमोमें इसकी वडी माँग होनेके कारण फारससे यहाँ इसका आयात बडे परिमाणमें होता है।

उपयुक्त अग—बीज। मात्रा-४ से ६ ग्राम (४-६ माशे तक।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह विसूचिका (हैजा) में लाभकारी, ज्वरघ्न, उर:स्थदोषष्ठीवनकर्ता, पुष्टिकर, बृहण और श्लेष्मनिस्सारक है। ज्वरघ्न होनेसे ज्वरो (पित्त और कफ)में खाकसी का पुष्कल उपयोग करते है। मसूरिका (चेचक) एव खसरा (रोमान्तिका)मे भी इसका क्वाथ पिलाते है तथा रोगीके बिछौनेपर छिड़कते या दाने पानीके साथ खिलाते है। इससे मसूरिका (चेचक) और खसराके दाने शीघ्र प्रगट हो जाते है। यह बालयक्ष्मा (दिकुल्अत्फाल)के लिये भी उपयोगी समझी जाती है। उर स्थदोषनिस्सारक होनेके कारण इसका जीर्ण कासमें उपयोग कराते है। श्वास, स्वरभग और कठ या स्वरयत्र सबधी सभी प्रकारकी निर्बलतामें इसका गुणकारी होना एव श्लेष्मनि सारक होना भी प्रसिद्ध है। सुतरां खाँसीमे इसका अवलेह बनाकर चटानेसे कफ सरलतासे निकल जाता है। हैजामे प्यास और वमन बद करनेके लिए इसे अर्कगुलाबमे उबालकर पिलाते है। पित्तल विसूचिकामे इसे हरी कासनीके फाडे हुये रसके साथ खिलाते है। भारतवर्षमे इसके बीज पुष्टिकर एव बृहणीय पाकोमें पडते है और शरीरकी पुष्टिके लिये इसे दूधके साथ पकाकर देते है। आँख, रक्त, वृषण आदिकी सूजनपर इसको जलमें पीसकर लेप करते है। मात्रा–(बीज) ५ से ७ ग्राम (या ५ से ७ माशे) तक।

●

(१८१) खिरनी

फ़ैमिली सापोटासे (Family Sapotaceae)

नाम—(हिं०) खिरनी, खिन्नी, (स०) क्षीरी, राजादन, (ब०) खीरखेजूर, (म०) राजण, केरनी, (गु०) रायण, (ता०) पल्ल, (बम्ब०) अहमदाबादी मेवा, खेर्नी, (लै०) मानील्कारा हेक्साण्ड्रा **Manilkara hexandra** (Roxb) Dubard (पर्याय–**Mimusops hexandra** Roxb)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषत दक्षिण भारत, गुजरात और बगाल आदि।

वर्णन—यह एक भारतीय बहुत बडे प्रसिद्ध वृक्षका फल है। यह आकृतिमे नीमकी निबौलीसरीखा, किंतु उससे कुछ लम्बा और मोटा चिरगोजाके समान होता है। पकने पर इसका रग पीला और स्वाद मीठा और स्वादिष्ट हो जाता है। कच्चा फल हरा होता है। इसमे दूध जैसा चेप बहुत निकलता है। खानेके समय होठ और हाथ चिपक जाते है। फलके भीतर एक बीज होता है। बीजोसे तेल निकाला जाता है। वृक्षकी छाल कुछ भूरी या कुछ काले रगकी और खुरदरी होती है।

रासायनिक सगठन – फलमे फलशर्करा (फ्रुक्टोज) होती है।

उपयुक्त अग—फल, बीज और वृक्षकी छाल।

प्रकृति—मलभूत द्रवोमे युक्त पहले दर्जेमे गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका प्रधान कर्म शरीरके अग-प्रत्यगको बल प्रदान करना और दोषोके प्रकोपको शात करना है। यह सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, तृष्णाप्रशमन और वाजीकरण है तथा कास और मूत्रमार्गस्थ व्रणोंको लाभ पहुँचाती है। इसके बीजोका मग्ज लेखनीय है। नेत्रगत फूली (शुक्ल), जाला, कण्डू और दृष्टिदौर्बल्य इनको दूर करनेके लिये अकेला या अन्य उपयुक्त ओषधियोके साथ इसको खरल करके आँखमें लगाते है। इसकी छाल वीर्यपुष्टिकर (मुगल्लिज मनी) है। इसको अकेला या अन्य उपयुक्त ओषधद्रव्योके साथ चूर्ण बनाकर शुक्रप्रमेहमे खिलाते है। अहितकर–गुरु, चिरपाकी और आनाहकारक है। मात्रा–छाल ५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ माशे से ६ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—खिरनी स्वादु, मधुर, कषाय, पाकमें अम्ल, शीतवीर्य, भारी, स्निग्ध, तृप्तिकारक, वृष्य, बलप्रद, हृद्य, देहको स्थूल करनेवाली (बृंहण), संग्राही (मलरोधक), विष्टम्भजनक, रुचिकर, मांसवर्धक तथा तृष्णा, दाह, मद, मूर्च्छा, भ्रान्ति, मोह, क्षय, क्षतक्षय, रक्तपित्त, प्रमेह और त्रिदोषका नाश करनेवाली है। (सु० सू० अ० ४६; रा० नि०; म० नि०)।

●

(१८३) खीरा

फैमिली : कूकुरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) खीरा, (अ०) कसद; (फा०) खियार, खियार बादरंग (माकूल या बालंग), बादरंग, बादरू (ग), (सं०) त्रपुस, त्रपुषी, (लै०) कूकूमिस सार्टीवुम (Cucumis sativus Linn), (अं०) कुकुम्बर (Cucumber)।

वक्तव्य—यद्यपि फारसी खियार शब्द का व्यवहार 'ककडी' और 'खीरा' उभय अर्थों में होता है, इसी लिये इनके बीजो को 'तुख्म खियारैन' कहते है, तथापि 'खियार' से प्राय. खीरा ही अभिप्रेत होता है। ककडी के लिये प्राय 'खियारज.' शब्द व्यवहार में आता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष मे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह ककडी जैसी एक लताका प्रसिद्ध फल है, जो एक बित्ता या इससे न्युनाधिक लंबा होता है। इसको ककडीकी तरह छीलकर खाते हैं। बीज ककडीके बीज की तरह होते है और फारसी तथा अरबी में क्रमश 'तुख्म खियार' और 'बज्रुल्कसद' कहलाते है। बीजो से प्राप्त तेलको फारसी तथा अरबी मे क्रमश रोगन तुख्म खियार और दुह्नुल् बज्रुल्कसद कहते है। ककडी और खीरा इन उभय बीजोसे प्राप्त तेलको फारसी मे रोगन तुख्म खियारैन कहते है।

कल्प तथा योग—आबेखियार, बनादिकुल्बजूर आदि।
प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध (तर)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खीरेको छीलकर नमकके साथ खाते है। यह रक्त और पित्त की तीक्ष्णताको दूर करता, प्यास बुझाता और खूब पेशाब लाता (तृष्णाघ्न और मूत्रल) है तथा पित्तज एवं रक्तज ज्वरो, मूत्रदाह और कामला रोग में लाभकारी है। गरम सिर-दर्दमें खीरेको सूँघने और इसके छिलकोको मस्तक पर रखने से दर्द आराम होता और नींद आ जाती है। उष्ण हृत्स्पदनमे खीरा लाभदायक है। यह अनिद्रा और गरम सिरदर्दमें विशेष रूप से लाभ पहुचाता है। अहितकर–शीत प्रकृतिमें आनाह उत्पन्न करता है। निवारण–सिकंजबीन। प्रतिनिधि– ककडी।

आयुर्वेदीय मत—खीरा (त्रपुस) रसमें मधुर, कडवा, शीतवीर्य, भारी, कफवातकारक, मलमूत्रकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाला, बहुमूत्रजनक और रक्तपित्तनाशक तथा श्रम, पित्त, दाहकी पीडा और वमनको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६, रा० नि०)। कच्चा खीरा स्वादिष्ट, शीतवीर्य, हलका तथा तृष्णा, क्लम, दाह, पित्त और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। पका खीरा खट्टा, गरम, पित्तकारक और कफवातनाशक है। इसके बीज शीतवीर्य, रूक्ष, मूत्रजनन तथा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाले है। (भा० प्र०)।

●

(१८४, १८५) खुन्सा व असराश

फैमिली : लीलिआसे (Family Lilaiaceae)

नाम—खुन्सा (हि०) पियाजी, गोनी, मुनमुना, (प०, सिध) पियाजी, वोखा(पोगा-)ट; वि(वृ)घर बीज, गन्दुमदाना, (अ०, फा०) खुन्सा, (ले०) आस्फोडेलुस फिस्टुलोसुस (**Asphodelus fistulosus** Linn)।

असराश। (हि०) पियाजी, बोखाह, (फा०) अश्राश, सरेश, (प०) प्याजी, बोकाट, (गु०) डुग्गु (-ग्रो०), (ले०) आस्फोडेलुस् टेनुइफोलिउस् (**Asphodelus tenuifolius** Cav)।

उत्पत्तिस्थान—प्राय अन्नके खेतोमें अन्नके साथ समस्त भारतवर्ष, विशेषतया उत्तर भारत में तथा अफगानिस्तानमें भी होती है। पजाब और सिंध में इसके बीज बाजारो में बिकते हैं। दक्षिण अफगानिस्तान और झेलमके समीपवर्ती जोते-बोए खेतोमें यह पुष्कल होती है।

वर्णन—खुन्सा और अश्रास दोनो एक ही जातिके दो भेदमात्र है। इनमे खुन्सा या गोनी ४५ से० मी० (आधागज) ऊँची एक वर्षायु प्रसिद्ध घास है। जड ततुबहुल या झकरा होती है। पत्र प्याज के पत्तेकी तरह, सरल, रेखाकार, बेलनाकार, नालीदार, खोखला (Fistulosus), गोपुच्छत् अग्रकी ओर नुकीला होता है। पत्तोके पुष्ट होने पर एक वा अधिक कडे डठल वा कांड निकलते हैं जो भीतर से ठोस और सशाख होते है। पुष्प क्षुद्र एव, श्वेत जिसके मध्य भूरे रगकी एक रेखा पडी होती है। फल-गोल, प्रत्येक फलमे कालेरग के तीन तिकोने (वा-गोल) बीज होते है। स्वाद खारापन लिये कषाय (अफीस), जड़ गोल, चिकनी, कम चौडी, लम्बोतरी और स्वाद मे तीक्ष्ण होती है। बीजो में चार साल तक वीर्य शेष रहता है। अश्राश का पौधा खुन्सा के समान होता है। अन्तर केवल यह है कि अश्रासकी पेडी चौडी और ऊँची होती है, पत्र प्याजके पत्तोकी तरह किन्तु उनसे मोटे और चौडे होते हैं। फूल ललाई लिये सफेद और फल गोल स्वाद में कुछ-कुछ तिक्त एव कटु होते है। इसके विपरीत खुन्सा का फूल सफेद होता है। इसमे लेश मात्र भी ललाई नही होती और पेडी छोटी होती है। अश्रास की तरकारी पका कर खाते है।

उपयुक्त अग—पचाग, जड और बीज।

खुन्शा—

प्रकृति—दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क। जला लेने पर दूसरे दर्जेमे गरम और तीसरे दर्जेमे रूक्ष हो जाती है। जड़ मे मलभूत द्रव होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रल, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन और मार्दवकर है तथा गर्मी एव खुश्की (रूक्षता) उत्पन्न करती है। टूटी हुई हड्डीपर बाँधनेसे उसका सधान करती है। वृषणशोथ निवारण करती, वायु को विकीरित करती (बिखेरती), तथा बस्ति और वृक्कको पथरीको खण्ड-खण्ड करती है। इतर अगोकी अपेक्षया इसकी जड अधिक वीर्यवती है। इसकीजड को जलाकर किसी तेलमे मिलाकर इन्द्रलुप्त और खालित्य (दाउस्सालब व दाउल्हय्य) पर लगानेसे बाल उत्पन्न हो जाते हैं।

व्यग (बहक सफेद) पर इसकी राख मलकर धूपमे बैठनेसे लाभ होता है। इसे मुर्गी के अडेकी सफेदीमे मिलाकर आगसे जले हुए स्थानपर लगानेसे उपकार होता है और गधकके साथ दाद जाता रहता है। इसका स्वरस कानमे टपकानेसे कानसे पीप बहना आराम होता है। इसे दाँत पर लगानेसे दतशूल मिटता है। इसमें यह प्रभाव है

कि यदि दाँत कोट (कुन्द) हो गये हो और उनमे दर्द होता हो तो इसको सिरकेमे पीसकर उस ओर के अगूठे पर लेप कर देवें तो दर्द जाता रहे। इसके फूल और फल कब्जनिवारक है। उनको थोडासा खा लेनेसे सरलतासे वमन हो जाता है और शराबके साथ खानेसे विरेक (दस्त) होते है, तथा बिच्छू और कनखजूरेका विष उतर जाता है। इसके अतिरिक्त इससे इतर कीटोके विषोको भी लाभ होता है। अहितकर—प्लीहा एव वृक्कको अहितकर है। इसकी अधिकता पित्तको बढाती है। निवारण—प्लीहा के लिये चिकना शोरवा, वृक्कके लिये मस्तगी और पित्त के लिये इमली। प्रतिनिधि--मैंदालकडी (मगास) और मजीठ, वाजीकरण हेतु शकाकुल और विषोके लिये जगली प्याज।

मात्रा—१०½ ग्राम (१०½ माशे) तक।

अश्रास्—

प्रकृति—जड़ पहिले दर्जेमें गरम एव रूक्ष, जला लेनेके बाद दूसरे दर्जेमे गरम और तीसरे दर्जेमे रूक्ष हो जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पीनेसे पार्श्वशूल आराम होता है, पित्तज कामला और गलेकी कर्कशता मिटती है। जलीहुई जड मूत्रजनन, आर्तवजनन और कफजशोथविलयन है। सिरकेके साथ इन्द्रलुप्त (दाउस्सालब), छीप और दादको लाभ पहुँचाती है, टूटी हुई हड्डीको जोडती है तथा अन्त्रवृद्धि (फतक), फोडे-फुन्सी, वृपणशोथ और कण्डूका नाश करती है। बीज लेखन है और साद्रदोषोका उत्सर्ग करता तथा जडसे अधिक उष्ण है। थूक में रक्त आता हो तो इसके उपयोगसे लाभ होता है। अहितकर—जड आमाशयको शिथिल करती और अवरोध (सुद्दा) उत्पन्न करती है। निवारण—आमाशयके लिये गुलकद और सुद्देके लिये सिकंजबीन। प्रतिनिधि—प्राय गुणकर्मोमे सरेशमाही। मात्रा-(जड) १७ ग्राम (१ तोला ५½ माशे) तक और जली हुई ४ ५ ग्राम (४½ माशे) तक तथा बीज ७ ग्राम (७ माशे) तक।

●

(१८६) खुब्बाजी व खुब्बाजी बुस्तानी

फैमिली : माल्वासे (Family Malvaceae)

नाम। क्षुप—(हिं०) पापरा (डा), पापिरा (डा), चगेर, चगेल, (लै०) माल्वा सिल्वेस्ट्रिस (**Malva sylvestris** Linn)।

फल—(हिं०) कुश्नि, खुबाजी, (यू०) मलाखी (Malakhe), (अ०) खुबा (ब्बा) जी, (फा०) नानेकुलाग (कागरोटिका), पीजक, (सिन्ध) खबाजी, (अ०) दी कॉमन मैलो (The Common Mallow), ब्लू मैलो (Blue-Mallow), चीज केक (Cheese Cake), (शीराजी) खित्मीए कूचक।

उत्पत्तिस्थान—यह समशीतोष्ण हिमालयमें कुमाऊँ, कश्मीर और पजाब पर्यन्त होती है। औषधके लिये भारतवर्षमें इसके फलोका आयात फारससे होता है।

वर्णन—खुबाजी नामसे इसके फल बाजारमें मिलते है। पुष्पकाल मई और जून। फल बहुकोशयुक्त, मडलाकृति (Disciform), प्रत्येक कोश एक बीजयुक्त, स्वाद लुआबी (पिच्छिल) एव निर्गन्ध होता है। 'खुब्बाजी बुस्तानी' इसका अन्यतम भेद है।

रासायनिक सगठन—खुब्बाजीमें पुष्कल स्नेह या लबाब (पिच्छा) और अल्पप्रमाणमें एक तिक्त पदार्थ होता है। ये दोनो ही जलमें विलेय होते है। इतर भागकी अपेक्षया फूलमें लबाब पुष्कल होता है।

उपयुक्त अग—यद्यपि शीत एव पिच्छिल गुणके कारण इसका समस्त अग यूनानीवैद्यकमें प्रयुक्त होता है, तथापि बीज (फल) सर्वापेक्षया अधिक गुणकारी माना जाता है।

प्रकृति—पहिले दर्जेमे शीत एव स्निग्ध।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कास तथा अन्य फुफ्फुस रोगोमे विशेष गुणकारी, दोषपाचन, सारक, दोष-विलोमकर्ता, स्नेहन, पिच्छिल तथा मूत्रजनन है। तुख्म खुब्बाजीका उपयोग पित्तपाचनकी भाँति करते है। यह पित्तके किवाम (चाशनी)को प्रकृतिस्थ करती है। स्नेहन होनेके कारण उर फुफ्फुसके खरत्व, उष्णकास और स्वरघ्न (गिरफ्तगी आवाज)को दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। इसी प्रकार स्नेहनगुणके कारण अन्त्रके घर्षण (सहज्ज), अन्त्रव्रण और वृक्कबस्तिदाह तथा विरेचन औषधियोकी तीव्रता दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। दोषविलोमकर्ता होनेके कारण उष्णशोथोमें दोषविलोमकरणार्थ अकेला या अन्य औषधियोके साथ इसका लेप किया जाता है। अहितकर–आमाशयको। निवारण–मूली। प्रतिनिधि–कुलफाके बीज। मात्रा ५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

●

(१८७) खुमी

फैमिली आगारिकासे (Family · Agaricaceae)

नाम—(हिं०) खुबी, खुमी, छतरी, गगनधूल, कुकुरमुत्ता, साँपकी छतरी; (अ०) कमात, नबातुर्रद; (फा०) समारोग, कुलाहे बाराँ (जमी), कुलाहेमार, (स०) भूच्छत्र, सर्पच्छत्र, छत्रक, कवक, शिलीन्ध्र, (ब०, हिं०) छाता, (बम्ब०) अलो(ले)म्बे, खुम्ब, (सिंध) खुब, (म०) अलम्बी, भुईफोड, (आसा०) कठफूल, मसरवेल; (गु०) बिलाडोनो टोप, (प०) भूफोड, ढिंगरी; (सि०) खुम्भा, खुम्भी, (ले०) आगारिकुस कम्पेस्ट्रिस (**Agaricus campestris** Linn), साल्लिओटा कम्पेस्ट्रिस (**Psalliota campestris** Linn.), (अ०) कॉमन मशरूम (Common mushroom)।

वक्तव्य—इसके अभक्ष्य भेदको अरबीमें 'फि(फु)त्र' और भक्ष्यभेदको 'कमात' कहते है। किसी-किसीके अनुसार उक्त दोनो सज्ञाओका व्यवहार साधारणतया उभय भेदोके लिये होता है। कहते हैं कि हिन्दीमे भक्ष्यभेदका नाम 'खुबी' और अभक्ष्यका नाम 'पद्भेरा' है और 'गगनधूल' एव 'फेनछत्र' आदि इसके भेद हैं। इसके एक भेदको 'कश्नज' कहते है। यह अत्यन्त स्वापजनन है। यह रेगिस्तानमें उत्पन्न होती है और स्वादिष्ट होती है। यह खुरासानमें तथा नहरीशहरोमें अधिक होती है। यह फित्रके समान हानिकारक नही, अपितु इसके स्वादमें थोडी-सी मिठास होती है। मासरजोयाके अनुसार इसका वीर्य चौलाईकी तरह और बसरीके अनुसार छडीलाकी तरह होता है। इसका एक भेद कश्मीरकी ओरसे आता है। इसको 'कानकच्चू' कहते है। कश्मीरी लोग इसे नमकीन और चाशनीदार मासके साथ पकाकर बहुत खाते है। कहते है कि यह स्वादिष्ट एवं बलकारक है।

उत्पत्ति स्थान—भारतवर्षके अनेक भागोमें सामान्यत , विशेषकर मध्य पजाबके पशुशालाओमे बरसातके अन्तमें, मध्य तथा दक्षिण पजाब और बलूचिस्तानके उजाड एव बंजर भागोमें यह स्वयभू होती है।

वर्णन—पत्रपुष्परहित छत्राकार क्षुद्र उद्भिज्जकी एक जाति जिसके अन्तर्गत भूँफोड, ढिंगरी, गगनधूल आदि है। पराश्रयी और मृताश्रयी भेदसे ये दो प्रकारकी होती हैं। इनमें पराश्रयी, जैसे-गेरूई आदि और मृताश्रयी, जैसे–कुकुरमुत्ता, कठफूल और भूँफोड आदि है। भक्ष्या-भक्ष्य भेदसे भी ये द्विविध होती है—(१) भक्ष्य या निर्विषैली,

जैसे–भूफोड, ढीगरी आदि और अभक्ष्य अर्थात् दुर्गन्धयुक्त और विषैली, जैसे–कुकुरमुत्ता, कठफूल आदि। कश्मीर तथा पंजावके पहाडी प्रदेशोमें गुच्छी और ढीगरी ये दो छत्रककी जातियाँ होती है, जो निर्विष हैं। कच्चा या इनका साग बनाकर खाते है जो स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है। इसके तरोताजा पौधोको खानेके काममे लेना चाहिये और सूखी हुईको अच्छी तरह भिगोकर और घी डालकर खाना चाहिये। उत्तम वह है जो रेतीली जमीनमे और पर्वतोकी तराईमें उत्पन्न हुई हो। दुर्गन्धित भूमिमे तथा खराब किस्मके पेडोके तले जमी हुयी और कालाई लिये हुयी त्याज्य है। इसका उत्तम रग ललाई लिये हुये है। किसी-किसीके मतसे सफेद रग उत्तम है, स्याहीमायल रंग त्याज्य है और विल्कुल स्याह (काला) तो घातक एव विष है। अतएव उसको नही खाना चाहिए। वल्कि धूमिल रक्तवर्ण भी विषप्रभावसे शून्य नही है।

उपयुक्त अग—समग्र क्षुप।

रासायनिक सगठन—इसके रसमे एक तापसह (Thermostable) पदार्थ होता है।

प्रकृति—इसका भक्ष्यभेद दूसरे दर्जे में शीत एव स्निग्ध (सर्द एव तर) और अभक्ष्य भेद तीसरे दर्जे मे सर्द एव तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका स्वरस विशेषत जो इसके भूनने से टपके, लगाने से आँखका जाला कट जाता है। सुर्मेको इसके स्वरसमें घोटकर लगाने से दृष्टि, दृष्टिशक्ति और पलकोको शक्ति प्राप्त होती है तथा प्रसेक (नजला) दूर होता एव पलक और आँखकी खुजली मिटती है। इसको सुखा-पीसकर खानेसे हर प्रकार के दस्त वन्द हो जाते है। वच्चोकी फूली हुई नाभि और अन्त्रवृद्धि पर भी इसे सिरका और सरेशममाहीके साथ लगाने से लाभ होता है। कहते है कि इसका एक विशेष प्रभाव यह है कि यदि खुंबी खाये हुये व्यक्तिको विषैला कीडा काट खाये तो जव तक उसके आमाशयमे यह उपस्थित रहेगी, उस समय तक कोई औषधि लाभ नही करेगी। यह कफ और कफात्मकरक्त उत्पन्न करती है। इसे व्रणो पर लगाने से वे सूख जाते हैं। ग्रन्थोमें लिखा है कि इसके नमकीन भेदसे जिसे पहले दर्जेमें शीत एव रूक्ष अथवा शीतल एव स्निग्ध वताते है, उत्पन्न रक्त इतर भेदोसे खराव नही होता। यह ग्राही है। इसे अधिक नही खाना चाहिये। अधिक खा लेने पर ऊपर से शराव पिये। इसका मधुर भेद आध्मानकारक, दीर्घपाकी और स्थूल (गलीज) है। अधिक खानेसे शूल (कुलज) उत्पन्न करता है। इसका प्रतिकार इतर भेदोके समान है। सुखाई हुई खुमीको पानी में पीसकर सिरके अग्रभागपर लगानेसे बालउतरजानेका रोग (सलअ) दूर होता है। सूखी हुई खुमी नही खानी चाहिये। यदि आवश्यक हो तो मिट्टीमिले पानीमें इसे घोलकर तीन-दिन उसमें भीगा रखें। इसके वाद इसे साफ करके काममें लेवें। यूनानी वैद्योके कथनानुसार सूखे हुये फितर (खुवीभेद) के खानेसे कम हानि होती है। इसका वज्नज नामक भेद उष्णतानिवारक है। इससे सार्द्र दोष उत्पन्न होता और वहुत कम उत्पन्न होता है। स्त्रियाँ इसे वृहगीय हलुओंमें मिलाती है। खुवीको मुर्गीके अडे या मुर्गीके मासके साथ खाकर ऊपरसे ठढा पानी पीना हानिकर है। इसके निरतर सेवनसे सन्तानोत्पादनी शक्ति नष्ट हो जाती है।

विषैली खुवीके खानेसे मूर्छा, शीतल स्वेद, आमाशयमे गौरव, शूल और अडशोथ आदि विकार प्रगट हो जाते है। इसकी चिकित्सा यह है कि मूली, पुदीना, सिकजवीन, काँजी, वूरए अरमनी और नमक अथवा मुर्गीके वच्चेकी विष्टा सिकजवीन या सिरकेके साथ और अजीरकी लकडीकी राख थोडेमे नमक और सिरकेके साथ और मधु आदि के साथ खायें तथा तीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करें। आमाशय के ऊपर तारल्यजनन एव छेदनीय औषधोका लेपन करें। शरावके मटकेके नीचे उत्पन्न खुमीका छिलका साघातिक विष है। सुखाया हुआ इसके भीतरका हिस्सा अल्पमात्र भी खानेसे मूर्छा उत्पन्न हो जाती है। वगाल में इसका भक्ष्यभेद भी विषसे रहित नही है। अहितकर—अधिक खानेसे विवध, शूल, सन्यास, पक्षवध, स्वाप और जिह्वा तथा आमाशयमें गौरव उत्पन्न करती है, मूत्रावरोध करती व कोखो को फुलाती एव छीप और श्वासकृच्छ्र उत्पन्न करती, आमाशय तथा मस्तिष्कको हानि पहुँचाती और दीर्घपाकी है, तथा शीघ्र सड जानेवाला खराव एव सान्द्रदोष उत्पन्न करती है। इसके अधिक खानेसे हैजा

उत्पन्न हो जाता है। निवारण-शैखके अनुसार उबालना, तर व खुश्क नाशपाती इसके साथ सम्मिलित करना और भाष्यकार गीलार्नाके अनुसार राई और कांजीके साथ खाना। इसके अतिरिक्त नातर, सोआ, नमक, पुदीना, घी और गरम मसाला डालकर पकाना। इसीप्रकार सिरका और तिल या जैतूनका तेल भी इसके निवारण हैं। इसके सेवनोपरात सिकञ्जबीन चाटना, अदरक का मुरब्बा, जुवारिस कमूनी और माजून फलासफा आदिका खाना इसके दोषोका निवारण करनेवाला है। प्रतिनिधि—नेत्रके लिये आस के पत्तों का स्वरस।

आयुर्वेदीय मत—सर्पछत्रक (सांप के छाते) को छोडकर अन्य छत्रक जातियां शीतवीर्य, जुकाम करनेवाली मधुर और गुरु है। (च० सू० अ० २७)।

नव्यमत—बल्य, मृदुमारक, वाजीकर उद्भिज्ज होने पर भी यह मास के समान किंबहुना माससे भी अधिक पौष्टिक एवं वाजीकर है। जब आमाशयकी पाचनकी शक्ति कम हो और रोगी सूखता जाता हो तब इसका साग खिलाते है। क्षयरोगमें इसको दूध के साथ पकाकर देते है। (औ० सं०)।

●

(१८८) खेरी या खैरी

नाम—(यू०, हिं०) खेरी, खैरी, (अ०) मन्सू(शू)र, (फा०) शबेबूय, शब्बू, (अ०) इजिप्शन वॉयोलेट (Egyptian Violet)।

वक्तव्य—'शबेबूय' शब्दका प्रयोग गुलशब्बोके सिवाय 'खेरी' और 'खजामा'के अर्थमें भी होता है। ये प्रायः रात्रिमें सुगध देते है। अस्तु, इनके लिये शबेबू (शब = रजनी, बू = गध = रजनीगंधा) सज्ञाका व्यवहार अन्वर्थक है। मन्सूर सज्ञाका व्यवहार 'खेरी' और 'लालपोस्ता (खशखास मन्शूर)' दोनोके लिये होता है। इब्नजहरके मतसे खेरी 'मन्सूरसुर्ख (गुलेलाला)'का भी नाम नाम है जिसका फूल सुगन्धित होता है।

उत्पत्तिस्थान—अरब, फारस, इराक आदि।

वर्णन—खजामा और भारतीय गुलशब्बोसे भिन्न एक छोटा-सा काडमय, शाखाबहुल पुष्पवृक्ष जिसकी छाल सफेदी लिये हुये होती है। पत्र—किंचित् सूक्ष्म रोमावृत, पुष्प शाखाओके ऊपरी भागमें आता है और कई रगका होता है, कोई पीला, कोई सफेद, कोई लाल और कोई नीला होता है। इनमेसे औषधके काममे केवल पीला या लाल आता है। मात्र खेरी शब्दसे इसका पीला भेद ही अभिप्रेत होता है। लाल फूलवाले को 'खिलाले इब्राहीम' कहते है तथा यह उसका जंगली भेद है। फारसीमें इसको 'अरवानः' कहते है। बागी और जगली भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। खेरीको इराक और अरब में 'मन्सूर' कहते है।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प, बीज और मूल सभी औषधमें काम आते है।

प्रकृति—पहले या दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। पीला तीसरे दर्जेमे गरम और दूसरे में खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फूल आंतो और आमाशयके वायु तथा हिचकीका नाश करनेवाला, लेखन और तारल्यजनन है। इसे नेत्रमें लगानेसे नेत्रगत जाला कट जाता है। इसके सूंघनेसे मस्तिष्कगत वायु एव कफ विलीन हो जाते है। इसके काढे में अवगाह (आबजन) करनेसे मूत्र और आर्तवका रक्त चालू हो जाता है। मरा हुआ शिशु और आँवल (अपरा) निकल पडती है। योनिमें इसकी वर्ति धारण (हमूल) करनेसे भी उक्त लाभ होता है। इसमें उष्णता और आर्तवजननकी शक्ति अधिक होनेसे इसके उपयोगसे गर्भाशयगत शिशु मर जाता है। अतएव गर्भवती स्त्रीको इसे नही देना चाहिये। इसे १० ग्राम (१० माशे)की मात्रामे पीसकर पीनेसे आर्तवरक्त जारी हो जाता है और

गर्भ गिर पडता है। गुलावके फूलोकी भाँति इसके फूलोका तेल बनाया जाता है। यह अत्यन्त श्वयथुविलयन (मुहल्लिल) है। इसके नस्यसे अवरोध का नाश होता है। इसे खीरा-ककडीके छिले बीजोके साथ पीनेसे वृक्क एवं वस्तिगत पथरी वह जाती है। इस तेल का तैलपिचु योनिमें रखने से गर्भशिशु नष्ट होकर निकल जाता है। तुख्म-अजुरा के साथ कमरपर मालिश करनेसे वाजीकरण होता है। इसके बीजोको मधुके साथ योनिमें रखनेसे भी गर्भ-शिशु नष्ट होकर निकल पडता है। कठिन सन्धिशोथपर इसके बीजोको पीसकर लेप करनेसे लाभ होता है। इसकी जड और पत्तो के लेपसे प्लीहाशोथ मिटता है। दोपतारल्यजनन एव मूत्रार्तवप्रवर्तनमें जगलीखेरी वढी हुई है। अहितकर–सिरदर्द उत्पन्न करती है। निवारण–गुलरोगन और सिरका। मात्रा–लगभग १४ ग्राम (१४ माशे) तक।

●

(१८९) खेसारी

फ़मिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) खि(खे,के)सारी, कस्सा, केराव, लतरी, (अ०) जुल्बान अस्वद; (स०) त्रिपुट(टी), (गु०) लाग(क), (ते०) लाक, (व०) खेसारिकलाय, (लै०) लाथीरस साटीवुस (**Lathyrus sativus** Linn), (अं०) चिक्लिग या ह्वाइट वेच (Chickting vetch or White vetch)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के अनेक भागोमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध अन्न है।

रासायनिक सगठन—इसके बीजो मे एक विपतत्व सम्भवत फायटिक एसिड (Phytic acid)का अम्ल-लवण होता है। बीजोत्थ तेल प्रवल एव भयकर तीव्र विरेचक है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे सर्द और दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको सर्वसाधारण वादी जानते है। यूनानी वैद्य गुणमें मसूरवत् मानते है। इससे दुष्ट साद्रदोष तथा वातावृत रक्त उत्पन्न होता है। यह वायु, आध्मान और बुद्धिमाद्य उत्पन्न करती है।

अहितकर—तरोताजाको अधिक खानेसे सिरमें चक्कर आने लगता है। निवारण–मधुकृत मद्य।

आयुर्वेदीय मत—खेसारी मधुर, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, अत्यन्त रूक्ष, गुरु, रुचिकर, अत्यन्त वातको कुपित करनेवाली, शोधक या (मलरोधक), कफपित्तनाशक, खञ्जत्व(पगुत्व)कारक, हड्डोकी नसोको वलवान् करनेवाली तथा शूल, विबन्ध, श्रम, सूजन, दाह, अर्श एव हृदयके रोगको उत्पन्न करनेवाली और बैलोको हितकारी है। (हा० स०, भा० प्र०, नि० र०)। इसके पत्तोंका शाक वादी, रुचिकारी तथा पित्त और कफनाशक है। (नि० र०)।

●

(१९०) खैर (कत्था)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम। कत्था—(हिं०) कत, कत्था, कथ, खैर, खैरसार, (अ०) कात, काद, (फा०) कात, (सं०) खदिर-सार, खादिर (खदिरनिर्यास), (द०) क-थ, (व०) कत कात, (म०) कयो, कात, (गु०) कथो, (मल०) कात्तु, (अ०) कँटेच्यू (क्यू) Catechu, कच (Cutch)। (वृक्ष)–(हिं०, म०) खैर, (फा०) दरख्त कात, (सं०) खदिर; (प०, गु०) खैर, (व०) खवे(ए)र; (मल०) कदरम्, कारङ्गालि, (ता०) काचुकट्टि करङ्गालि, (ते०) पोडलमानु; (लै०) आकासिआ काटेचू (**Acacia Catechu** (L f) Willd)।

वक्तव्य—खैरका ज्ञान भारतीयोको अतिप्राचीनकालसे है। इसकी विभिन्न भाषीय संज्ञाओपर भी संस्कृत नाम 'खदिर' एवं लोकप्रचलित नाम 'कत्था'का मूलत. प्रभाव प्रतीत होता है। औषधीय प्रयोगके अतिरिक्त पानके साथ सर्वत्र भारतवर्षमे कत्थेका दैनिक व्यवहार होता है। कत्था भारतीय व्यवसायके एक प्रमुख द्रव्योमेंसे है। केटेच्यू (क्यू)का समावेश ऐलोपैथिक निघण्टुओमें भी है, लेकिन वह रुबिआसी फैमिली की एक आरोही स्वभावके गुल्म (**Uncaria gambir** Roxb (*Famly · Rubiaceae*) से प्राप्त किया जाता है। यह एक विदेशी पौधा है, जो मलाया प्रायद्वीप एव पूर्वी द्वीपसमूह (बोर्नियो, सुमात्रा)आदिमे पाया जाता है। भारतीय कत्थेकी अपेक्षा इससे प्राप्त कत्था कुछ हल्के रगका होता है। बनौषधियो पर लिखित आधुनिक ग्रन्थो मे कही-कही इस वनस्पतिके लिये भी सस्कृत नाम 'खदिर' दिया गया है। कत्थेका प्राप्तिसाधन होने पर भी यह भारतीय खदिरसे सर्वथा भिन्न वनस्पति है। अतएव इसको (विदेशी खैर या खदिर) कहना ही अधिक समीचीन है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष और ब्रह्मा।

वर्णन—यह खैरके पेड (Acacia catechu Willd)के सारकाष्ठ (हीर)से विशेष विधिद्वारा काष्ठके छोटे-छोटे टुकडोसे घनक्वाथकी क्रियासे कल्पनाकी गई हुई शुष्क रसक्रिया है। इसके घनाकार चौरस लगभग एक इच लबे-चौडे टुकडे या उनसे मिलकर बने हुये डले होते है। इसके निम्न भेद होते हे —

१—यह ललाई लिये हुये भूरा और भीतरसे अत्यत हलका पीले (या बादामी) रग का होता है और दालचीनीकी भांति सहजमे टूट जाता है। स्वाद पहले तिक्त एव कषाय गोद जैसा और पीछे मधुर प्रतीत होता है। इसको पानके साथ खाते और औषधमें प्रयुक्त करते है। इसको प(पा) पडिया, भगूरी या पखरा कत्था कहते है।

२—लाल–इसे औषधमें नही प्रयुक्त करते। यह अधिकतया पानके साथ खाया जाता है।

३—काला–यह अत्यत तिक्त होता है और औषधके काममें नही आता। यह तीनो निर्गन्ध होते हैं। खौलते हुये जलमे कत्था विलीन हो जाता है।

रासायनिक सगठन—इसमे कैटेक्यु टैनिकएसिड नामक एक गुणोत्पादक वीर्य होता है। यह उबालनेसे या मुखकी लालासे मिलकर कैटेकीन (कातीन या खदिरीन)मे परिणत हो जाता है। छालमें ५७ प्रतिशत कषाय द्रव्य और ३५ प्रतिशत कत्था है। छालका काढा होने पर पात्रके तलभागमें कत्था बैठता है।

कल्प तथा योग—जरूर कत्था आदि।

उपयुक्त अग—कत्था, खैरसार या खदिरसार (वृक्षोके काष्ठके भीतर दरारोमें पायाजानेवाला एक रवेदार कृष्णाभ जमा हुआ पदार्थ) और छाल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसग्राही, रक्तप्रसादन, व्रणलेखन और उदरकृमिनाशन है। दांतोसे खून आने (शीताद) और गलशुण्डिकामे यह विशेष लाभकारी है। सग्राही होनेके कारण दन्तमूलकी दृढताके लिये तथा गलशुण्डिकामे मजन, गण्डूष या कवल की भांति इसका उपयोग करते है और अतिसारमे चूर्ण बनाकर खिलाते है। व्रणलेखन होनेके कारण मुखपाकमे तथा शरीरगत व्रणोंपर भी इसका अवचूर्णन किया जाता है तथा इसे मलहरोमे मिलाकर लगाते है। इसे अकेला भी मक्खनमे मिलाकर उपयोग करते है। यह पानमें लगाकर पुष्कल खाया जाता है। अहितकर–कामावसादकर और वृक्काश्मरिकारक है। निवारण–अम्बर और कस्तूरी। प्रतिनिधि–गेरू और माजू। मात्रा–१ से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—खैर तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, पाचन, कफ और शुक्रको सुखानेवाला तथा पित्त, कफ कुष्ठ, खाँसी, शोथ, कण्डू, व्रण, अरुचि, मेद, प्रमेह, ज्वर श्वित्र, आम, रक्तविकार और पाण्डुरोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८, चि० अ० ९, ११, ध० नि०, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—खैरसार गलेकी शिथिलतामें उत्तम औषध है। इसको कफरोगोमे देते है। इससे कफ कम होता है और छोटी-छोटी रक्तवाहिनियोका सकोच होता है। इससे नया कफ उत्पन्न होना बद होता है। मात्रा—२५० से ६००मि०ग्रा० (२से५ रत्ती)। कत्था अच्छा सग्राहक है। इसकी क्रिया श्लेष्मलत्वचा और रक्तवाहिनियोपर होती है। कत्थेसे आमाशयका पाचकरस कम होता है और आँतोका मल गाढा होता (बँधता) है। इससे सर्वशरीरकी शिथिलता कम होती है। खैरकी छालमें कत्थेके सब गुण वर्तमान है। खैर सग्राहक, श्लेष्मघ्न, रक्तसग्राहक, रक्तपित्तप्रशमन, विषमज्वरप्रतिबन्धक और कुष्ठघ्न है। जीर्णज्वरमें खैरकी छाल और चिरायतेका काढा देनेसे प्लीहाकी वृद्धि कम होती है और शरीरको बल प्राप्त होता है। छालका काढा पीने और कुल्ली करनेमे मसूढोसे खून आना बन्द होता है। त्वचाके रोगोमे व्रण होकर पीप और रक्त आता हो तो छालका काढा पिलाते है और उससे व्रणको धोते हैं। सग्रहणी, अतिसार और अम्लोद्गारमें कत्था गुणकारी है। गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न प्रदर, रक्तस्राव और योनिशैथिल्यमे समभाग कत्था और बोलकी गोलियाँ गुणकारी है। तरुणोके कफविकारमे जब बहुत कफ निकलता है, कफ पतला हो, शरीर फीका पड गया हो और हलका ज्वर रहता हो तब इन गोलियोसे लाभ होता है। अकेला कत्था मुँहमें रखनेसे गलेकी शिथिलता से उत्पन्न सूखी खाँसी में उपकार होता है।

●

(१९१) दुर्गन्ध खैर

नाम—(हिं०) गुआ बबूल, दुर्गन्ध खैर, (स०) अरिमेद, विट्खदिर, (ब०) गन्धबाबुल, गुइया बाबुल, (मुगेर) गुइआ सेन, (सथा०) गबुर, (लै०) आकासिआ फार्नेसिआना (**Acacia farnesiana** Willd)।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—इसके गुल्म या १२-२० फुट ऊँचे वृक्ष होते है। शाखाओपर छोटे और प्राय मुलायम काँटे होते है। पुष्प गहरे नारगवर्णके सुगधित और मुण्डकवत् गुच्छेमे रहते है। मूल और मूलत्वक्मे तीव्र दुर्गंध होती है। इसलिये इसे 'गुआ (गुह) बबूल' या विट्खदिर कहते है। विलायती बबूल या रेवा (**Acacia leucophloea** Willd) की छाल तथा ताजी लकडीमें भी दुर्गंध होती है। इसलिये कुछ लोग इसे भी विट्खदिर मानते है। खैरकी एक जाति श्वेतसार (लकडी) वाली होती है। उसको सस्कृतमें सोमवल्क (सफेद छालवाला) कहते है।

●

(१९२) गगेरन, गुलशकरी

फैमिली : टीलिआसे (Family Tiliaceae)

नाम—(हिं०) गगरेन, गुलसकरी (मीरजापुर जगल), कुकुरोंड, (स०) गाङ्गेरुकी (वृक्ष), गाङ्गेरुक (फल) (सु०, च०); (बम्ब०,म०) गोवली, (लै०) ग्रूइआ हिर्सूटा (**Grewia hirsuta** Vahl)। भेद (हिं०) गगेरन, गगेरून, गगो (राजपुताना), (सं०) गाङ्गेरुकी, (गु०) गगेटी, (प०, मा०) गगेर (न), (लै०) ग्रूइआ टेनाक्स (**Grewia tenax** (Forsk) Aschers. (पर्याय–G **populifolia** Vahl)।

वक्तव्य—सुश्रुतकी टीका (सु० उ० ४२ अ०, श्लो० ६८)मे टीकाकार डल्हणने 'गुडशर्करा'का अर्थ 'गागेटीफल' लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'गागेटी' गुडशर्करा ही है। मीरजापुरके जंगलोमें उपर्युक्त पौधोके लिए प्रयुक्त होनेवाला गुलशकरी शब्द शास्त्रोक्त गुडशर्कराका अपभ्रंश मालूम होता है। अस्तु, प्रायः आधुनिक निघटुग्रथोमे श्वेतबला (**Sida spinosa L.**) के लिये प्रयुक्त हुआ गुलशकरी शब्द गलत है; क्योकि कही भी इसे उक्त नामसे नही बोलते। पीछेके निघंटुकारोने गागेरुकी तथा नागवलाको एक मान लिया है जिससे गुलशकरीको भूलसे नागवला माना जाने लगा; किन्तु यह ठीक नही है। मुहीतआजममें लिखे 'गंगेरक', 'गगेरन', 'गगेरुक' और 'नागबला' शब्द सब एक ही उद्भिज्जके नाम है।

उत्पत्तिस्थान—प्रथम भेद उत्तर भारतमे सिन्धु नदीसे पूरवकी ओर विहार एव उडीसा तक और द्वितीय भेद पजाब, सिन्धु, राजपुताना और पश्चिमी भारतवर्ष नीचेकी ओर नीलगिरि तक इसके वृक्ष जगली होते है।

वर्णन—प्रथम भेदके रोमश गुल्म प्राय १½-३ फुट ऊँचे और मूलके पाससे निकली हुई अनेक शाखाओसे युक्त होते है। पत्तियाँ विचित्र प्रकारकी होती हैं, यथा रेखाकार, लट्वाकारप्रासवत् अथवा चौडाई लिए हुए आयताकार आदि प्रकारकी होती हैं, जो प्राय लम्बाग्र, अल्पवृन्तवाली और तीक्ष्ण दन्तुर होती हैं। फूल पीले और फल प्राय चार खडवाले होते हे और मृदु रोमो से ढके रहते हैं। फल गुच्छोमे लगते है। कच्चाफल स्वादमे अम्ल और मधुर होता है। द्वितीय भेदके इससे मिलते-जुलते ५-१० फुट ऊँचे वृक्ष होते हैं, पुष्प श्वेतवर्ण, किंचित् सुगधित, जेठ आषाढमे आते हैं। शीतकालके आरम्भमें फल पक जाते हैं। पके फल कुछ कसैलापन लिए हुए खटमीठे होते हैं।

प्रकृति—गरम व रूक्ष, मतातरसे शीत एव स्निग्ध। आयुर्वेदके मतसे गाङ्गेरुक(फल) शीतवीर्य (च०) हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मुहीत आजममे उक्त चारो सज्ञाओके अन्तर्गत लिखी हुई गुणवर्णनाका साराश यह है—यह दस्त लाता है, वात, पित्त और रक्तके विकारको दूर करता तथा अपने प्रभावसे रक्तपित्तका नाश करता है। यह वल्य, वाजीकर और रसायन है तथा कण्डू एव किलासको नष्ट करता और घावोको साफ करता है। इसका फल मधुर, शीतल, भारी एव प्रभावत ग्राही है तथा रक्तपित्तका नाश करता है।

आयुर्वेदीय मत—गगरेनका फल (गागेरुक) मधुर, कुछ कपाय, शीतवीर्य तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाला (च० सू० अ० २७), कफवातनाशक (सु० सू० अ० ४६) है। तलवार आदिसे घाव होनेपर तत्काल उसमे गगेरनकी जडका स्वरस भरकर बांध देनेसे घाव शीघ्र आराम होता है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, शार्ङ्ग० म० ख०)।

नव्यमत—विहारमे शुक्रदौर्बल्यमे इसके मूलका प्रयोग किया जाता है। इसको फोडा पकाने या पकाकर बहानेके लिये जलमे पीसकर लगाया जाता है। मूल और फलका अतिसार और प्रवाहिकामें भी प्रयोग होता है।

●

(१९३) गंदना

फैमिलि : लीलिआसी (Family Liliaceae)

नाम—(हि०) गदना, ददना, (अ०) करास, कुरास, किरास, कुरसि, (फा०) गंदना, कालूख; (प०) पद, (ले०) आलिअम् पोर्रम् (**Allium porrum** Linn, **A. ampelo-prasum** Linn), (अ०) लीक (Leek), पोरेंट (Porret)। (अ०) बज्र लुकुर्रास, बीज (फा०) तुख्म गदना।

उत्पत्तिस्थान—ईरान और भारतवर्षमे इसके पौधे गेहूँ और चनेके खेतोमे स्वयजात होते है। उद्यानज फसलके रूपमे भारतीय उद्यानोमें इसकी खेती भी की जाती है।

उत्पत्तिस्थान—सयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा। भारतीय जाति नेपालसे भूटान तक ६,०००–८,०० फुटकी ऊँचाईपर, खसियाकी पहाडी एवं पश्चिमोघाट, नीलगिरि और ट्रावन्कोर आदिमें ५,००० फुटकी ऊँच पर होती है। नेपालमे इसे 'मचिनो' और लेपचामें 'कलोवा' कहते हैं।

वर्णन—पत्र चर्मिल, रूपरेखामे अभिलट्वाकार (Obovate) या दीर्घवृत्ताकार (Elliptical), ह्रस वृन्तयुक्त, पत्रप्रान्त हलका दन्तुर (Faintly serrate), ऊर्ध्वपृष्ठ चमकीले हरेरंगका तथा अध पृष्ठ पाडुरवर्ण (Pale स्वादमे कषाय तथा सुगन्धित। पत्तोमे मेथिल मैलिसिलेट जैसी विशिष्ट सुगन्धि होती है।

रासायनिक सगठन—इससे एक प्रकारका उत्पत् तैल (Essential oil) प्राप्त होता है, जिसे ऑय ऑफ विंटरग्रीन (Oil of Wintergreen) या ऑयल बीट्‌ल (Oil Betul) अथवा गाडल्थेरिया औलियम् कहते हैं

गुणकर्म तथा उपयोग—सुगन्धित (Aromatic), सग्राहक और उत्तेजक तथा आमवातके लिए बडी ह मूल्यवान् औषधि है जिसके लिए प्राय इसका उपयोग होता है, विशेषकर अन्य औषधियोके साथ। अतिसार औ शिशु-वातानुलोमन औषधिकी भाँति इसका उपयोग किया जा सकता है। २½ तोला इस औषधिका १ पाइंट जल बनाया गया फाण्ट सुरापात्रकी मात्रामें लेते हैं।

•

(१९५) गन्ना

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हि०) ईख, ऊख, गन्ना; (अ०) कसबुस्सुक्कर, (फा०) नैशकर, (प०) इख, (कु०) रिखु, (मा० साठा, (सिं०) कमद, (व०) आक्, (नेपाल) उक, (गु०) शेरडी, (म०) ऊँस, (ले०) साक्कारुम् आफ्फीसिनारुम (**Saccharum officinarum** Linn), (अं०) सुगर केन (Sugar-cane)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण एशिया विशेषत. भारतवर्ष इसका मूल उत्पत्तिस्थान है। यह सर्वत्र भारतवर्षमें और प्राय ससारके सभी उष्णप्रधान देशोमे होता है।

वर्णन—यह तृणजातिको एक प्रसिद्ध वनस्पति है, जिसके तनेमे मीठा रस भरा रहता है। इसीके रससे गुड, चीनी और अन्य समस्त मिठाइयाँ बनती है। यह कई प्रकारका होता है। उनमे पौंढा सर्वोत्तम होता है। यह खानेमे नरम, बहुत मीठा और स्वादिष्ट होता है।

रासायनिक सगठन—ईखके रसमे इक्षुशर्करा (Saccharine matter), जल, लबाब, राल, वसा और ऐल्व्यूमिन प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं। इसमे अल्पमात्रामें ग्वानीन (Guanine) नामक एक जलविलेय सफेद स्फटिकीय चूर्ण भी होता है।

उपयुक्त अग—इसप्रकारका रस और उससे बने हुए राब (स०-फाणित, म०-काकवी), खाँड (चीनी), गुड, सिरका और मद्य प्रभृति पदार्थ तथा इक्षुमूल।

कल्प तथा योग—लऊक आबनैशकरवाला आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और दूसरे दर्जेमे तर। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—गन्ना हृदयको उल्लसित करनेवाला प्रकृतिको मृदु करता (सर) तथा मूत्रजनन, बल्य और बृंहण है। यह दाँतोको मजबूत और साफ करता तथा मुखकी दुर्गन्धको निवारण करता है। गन्नेको

अधिकतया टॉनिकरूप खाया जाता है। इसके निरन्तर सेवनसे शरीर बलवान् और स्थूल (परिबृंहित) हो जाता है। मूत्रजनन होनेके कारण यह मूत्रके दाहको मिटाता है। गन्नेकी गंडेरियोंको छीलकर रात्रिमें ओसमें रखकर सवेरे चूसनेसे मूत्रदाह और मूत्रकृच्छ्र आराम होते हैं। कभी-कभी बहुत पेशाब लानेके कारण बस्तिगत अश्मरीको निकालता है। गन्नेके छिलके हुए इसमें भी प्रायः उपर्युक्त गुण पाया जाता है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। निवारण—अदरक। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरेका प्रतिनिधि है।

गुड़—

नाम—(हिं०) गुड़, (अ०), कन्द स्याह, कन्द अस्मर, कन्द स्याम, (म०) गूळ; (अं०) जैगरी (Jaggery)।

वर्णन—ईखके रससे बना हुआ प्रसिद्ध पदार्थ है। गन्नेके रसको पकाकर बिना साफ किये जमा लिया जाता है। जब इसी चाशनीको बनाकर और हाथोंसे मसलकर चूर्ण बना लेते हैं तब उसको 'शक्करगुड़' कहते हैं। इसको हिन्दीमें लाल खाँड़ या '[illegible]' कहते हैं। शक्कर जो गीला रहता है जिसे हमारे यहाँ देशमें राब और आयुर्वेदमें 'फाणित' कहते हैं।

प्रकृति—इसके नएमें गरम और तर, पुराना गुड़ गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे नातिशीत(कुछ-शीत)। गुण गुरु (गु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुड़ उष्णताजनक, एवं अग्निसंदीपक (मल) है, मलका उत्सर्ग करता, थोड़ी मात्रामें मलको ग्रहण करता है, वायु उतारता और पचाता तथा पोषणप्रसादक है एवं औषधियोंको सुरक्षित रखता है। गुड़ आहार (खाद्य)की भाँति पुष्टिकर माना जाता है। आध्मान विबंध वातजन्य शूलादिको दूर करनेके लिये इसको खाते हैं। विरेचन औषधियोंके सहायतार्थ इसको उनके साथ उपयोग करते हैं। भोजनोत्तर आहारको पचानेके लिये थोड़ी मात्रामें इसका उपयोग करते हैं। अधिक परिमाणमें खानेसे यह आहारको दोषपाकी और गुरु बनाता है। व्रणशोथको विलीन करने और पकाने तथा आघात-प्रत्याघात (चोटचपेट)जन्य सूजन और वेदनाको शान्त करनेके लिये इसकी पुल्टिस बनाकर बाँधते हैं। औषधियोंको सुरक्षित रखनेके लिये मधुके स्थानमें गुड़की चाशनी बनाकर माजून भी बनाया करते हैं।

मात्रा—मृदुरेचनार्थ विरेचन औषधियोंके साथ ४ से ६ तोले तक।

रासायनिक संगठन—गुड़में इक्षुशर्करा ५९.७१%, मधुशर्करा (ग्लूकोज) २१.२८%, क्षार (खनिज) ३.३६%, जलांश ८.८६ प्रतिशत, इनके अतिरिक्त खनिजोंमें कैल्सियम् (Calcium), फॉसफोरस (Phosphorus), आयरन (Iron) और ताम्र (Copper) प्रधान रूपसे होते हैं। इसमें शर्कराका पाँचवाँ भाग ग्लूकोज होनेसे जिसका पाचन करनेकी आवश्यकता नहीं होती, चीनीकी अपेक्षया गुड़से बल जल्दी उत्पन्न होता है।

खाँड़ (चीनी-शकर)—

नाम—(हिं०) चीनी, खाँड़, बूरा, सफेद शक्कर, (अ०) सुक्कर, सुक्करुल् अब्यज, (फा०) शकर, शकरतरी, शकरे सुफेद, (सुफेद); (सं०) शर्करा, खण्ड, (बं०) भूरा, बूरा, चीनी, (म०) साखर, (गु०) शाकर, चीनी, भूरी खांड, (लै०) सा़क्कारम् (Saccharum), (अं०) सुगर (Sugar)।

वक्तव्य—अरबी 'सुक्कर' संस्कृत 'शर्करा'से फारसी 'शकर' द्वारा व्युत्पन्न है। इसके लेटिन और अंग्रेजी नाम अरबी सुक्करसे व्युत्पन्न हैं। ईखका मूल उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। प्राचीन भारतवासियोंको ईख, शर्करा और

गुड भली-भाँति मालूम थे, परन्तु इनको तथा प्राचीन यूनानियोको शर्कराका ज्ञान नही था। सर्वप्रथम अरबी व अजमी हकीम, यथा–राज़ी, अलीअब्बास और इब्नसीनाने इसवी सन्‌की दसवी शताब्दीमे इसका ग्रथोमे उल्लेख किया। शर्करानिर्माणके आविष्कारका श्रेय भी पूर्वात्योको ही है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मिष्ठ पदार्थ है। यद्यपि खजूर, नारियल, ज्वार, चुकदर, ताड और अन्यान्य वनस्पतियोके रससे भी खाँड बनाते है, तथापि इसका सबसे बृहत् स्रोत गन्ना है। यहाँ उसीके रससे बनी खाँड (चीनी) अभिप्रेत है। यह दो प्रकारकी होती है—(१) **शकर सुर्ख** अर्थात् बिना साफ की हुई लाल देशी चीनी। घोटनेसे जब यह कुछ पीले रगकी हो जाती है, तब 'शकर खाम' कहलाती है। (२) **शकर सफेद** अर्थात् साफ की हुई दानेदार सफेद खाँड (शकर) या चीनी। इसको पुन साफ करके जमाकर मिश्री (नबात या नबात सफेद) और बताशे तथा अन्य मिष्ठ पदार्थ बनाते है।

जब नबात सफेदको दोबारा साफ करके बर्तनमे डालकर जमा ले तो उसको **शकर सुलेमानी** कहते है। जब तीसरी बार पुन साफ करके सनोवरी कालिबो (साँचो)मे ढाले तो उसे **फ़ानीज या कन्द** कहते है। यदि तीसरी बारके पकानेमे बहुत आँच दी गई तो उसको **अबलूज़** (अ०) और **कन्द मुकर्रर** (फा०) कहते है। यदि इसे फिर आँच दी जाय तो उसको **नबात सब्ज़ा** (फ़ारसी सब्ज़ीका अरबीकृत) कहते है। यदि शकर सफेदको तीसरी बार पकानेमे इसका दसवाँ भाग दूध डालकर यहाँ तक पकाया जाय कि जम जाय, तो उसे 'तबरज़द' कहते है। किन्तु प्राय कन्दमुकर्ररके लिये इस शब्दका प्रयोग होता है।

रासायनिक सगठन—चीनीमे इक्षुशर्करा ९९ ७%, मधुशर्करा शून्य प्रतिशत, क्षार (खनिज) ०·०२ प्रतिशत, जलाश ० ०४ प्रतिशत होता है। रासायनिक दृष्टिसे इसमे तथा खजूर और चुकदरकी बनी शर्करामें केवल इक्षुशर्करा (Saccharose) सारके रूपमे एक ही द्रव्य होता है।

प्रकृति—शकरसफेद पहले दर्जेमे गरम और तर, शकरसुर्ख शकरसफेदकी अपेक्षया किसी कदर अधिक गरम होती है, पुरानी होने पर शकरकी तरी कम और खुश्की अधिक हो जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शकर कोथप्रतिबधक उष्णताजनन और बल्य है। बडी मात्रामे खिलानेसे यह प्रकृतिमार्दवकर (सारक) है। शकरसुर्खमें मार्दवकरणकी शक्ति अधिक होती है। व्रणो पर अवचूर्णन करनेसे उनका लेखन करती और मलादिसे शुद्ध करती है। हलकी मात्रामे पाचन है। इसका प्रधान कर्म यकृत् और ओजो (अरवाह) को बल प्रदान करना है। औषधियोको बिगड़ने या खराब होनेसे बचाने, उनका स्वाद सुधारने और उनके वीर्य-संरक्षणके लिये इसका पुष्कल उपयोग करत है। सुतरा माजून, शर्बत और मुरब्बे खाँड (शकर) की चाशनीमे तैयार किये जाते है। स्वादिष्ट बनानेके लिये इसका क्वाथ और फॉटमे मिलाते है। साधारण कब्ज दूर करनेके लिये विशेषत शकरसुर्खको दूधमें मिलाकर पिलाते है तथा अन्य विरेचन औषधियोमे डाला करते है। पाचनक्रिया के सहायतार्थ थोडी मात्रामे भोजनोत्तर खाते है। परन्तु इसके अधिक सेवन से पाचनक्रिया बिगड जाती है और मधुमेह जैसा रोग लग जाता है। दूषित एव प्रकुथित व्रणो पर छिडकने से उनका प्रकोथ दूर हो जाता है और वे दूषित मलोसे शुद्ध हो जाते है। शकर का आहारो मे उपयोग करनेसे कृश एव दुर्बल शरीर परिबृंहित, पुष्ट एव बलवान हो जाता है। किसी-किसी रोगीमे इसके विपुल रक्त उत्पन्न होनेके कारण शरीर लाल हो जाता है। शारीरिक व्यायाम करनेवाले अधिक शकर पचा सकते है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालो को। निवारण—बादाम और दूध। प्रतिनिधि—यवासशर्करा (तरजबीन)। मात्रा—मार्दवकरण (सारक)के लिए ४-५ तोले तक, आहार की भाँति जितना पच सके।

आयुर्वेदीय मत—ईख मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, वृष्य, मूत्रल, रक्तपित्तप्रशमन तथा कृमि और कफको उत्पन्न करनेवाला है। दाँतोंसे दबाकर चूसी हुई ईखका रस मधुर, शीतवीर्य, वृष्य, सारक, स्निग्ध

बृंहण, कफकर, अविदाही, मुखको आल्हादित करनेवाला तथा वातपित्तनाशक है। यन्त्रसे निकाला हुआ रस गन्नेके मूल, अग्रभाग (तथा पर्वसन्धि), कीड़ा लगा हुआ भाग इनका भी पीडन द्वारा रस आने तथा बाह्य मलके संसर्ग और कुछ समय खुला पड़ा रहनेसे विकृत हो जानेके कारण गुरु, विदाही और विष्टम्भी होता है। गुड़ कुछ क्षारधर्मी मधुर, कुछ शीत, स्निग्ध, मूत्रल, रक्तशोधक (असृक्प्रसादन-रक्तवर्धक), कुछ पित्तशामक, वातघ्न मेद-कृमि और कफको बढ़ानेवाला, बल्य और वृष्य होता है। साफ किया हुआ गुड़ मधुर, रक्तप्रसादन तथा पित्तवातनाशक होता है। पुराना (एक सालके ऊपर और दो सालके भीतरका) गुड़ अधिक गुणवाला और पथ्य होता है। मत्स्यण्डिका (मौजाखांड), खांड (चीनी) और मिश्री (शर्करा) उत्तरोत्तर निर्मल, शीत, स्निग्ध, मधुर, गुरु, वृष्य तथा रक्तपित्त और तृष्णाको शमन करनेवाली है। (सु० सू० अ० ४५, च० सू० अ० २७, वा० सू० अ० ३५)।

वक्तव्य—गुड़में जो क्षार होते हैं उनमें अयस् तथा ताम्र दोनों रहते हैं। आधुनिक विज्ञानसे यह सिद्ध हुआ है कि अयस् रक्त बनाता है, परन्तु उसके बननेमें ताम्रसे बहुत सहायता मिलती है। आरोग्यशास्त्रके आधुनिक विद्वानोंका यह मत है कि आहार्य द्रव्योंमें जो अल्पमात्र खनिज द्रव्य होता है वह स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी रहता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चीनी की अपेक्षया गुड़ स्वास्थ्य रक्षाकी दृष्टिसे अधिक लाभकर होता है।

नव्यमत—आर्यों का असली शक्कर गुड़से बनी हुई देशी शक्कर ही है जिसे बनारसी शक्कर कहते हैं। औषध में इसीका प्रयोग करना चाहिये। राब सौम्य रेचन है। इतर पदार्थोंमें मिलाने से राब उसे सड़ने नहीं देती। वनस्पतियोंके घनक्वाथोंको कुछ समय रखना हो और उसमें मद्य न डालना हो तो उसमें राब मिलाकर रखना चाहिये। शक्कर शीतल, पौष्टिक, स्नेहन, मूत्रजनन, उत्तेजक, कासहर, पाचन, आस्वादकर, श्रमहर, जीवन, कोथ-प्रशमन, व्रणरोपण और कण्ठ्य है। शक्कर हृदयको पुष्टि देनेवाली है। इसलिये वृक्क और हृदयके रोगोंमें शक्कर देना चाहिये।

सिरका—

नामादि—तथा निर्माण विधिके लिये यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान का पूर्वार्ध पृष्ठ २१९ पर देखें।

कल्प तथा योग—सिकंजबीन सादा व बजूरी, उम्मुल्खल और सिरकए असल।

प्रकृति—यह उष्ण एवं शीत वीर्योंसे युक्त होनेसे समिश्रवीर्य है, किन्तु उनमें शीतवीर्य प्रधान है। मतांतर-से यह दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह संग्राही, उपशोषण, त्वचामें बहुत शीघ्र प्रवेश करनेवाला, सान्द्रदोषछेदन एवं तारल्यजनन, कृमिघ्न, वेदनाहर, आहार-पाचन, क्षुधाजनक एवं पित्तनाशक और विशेषकर आशुप्रवेशकारक दोषविलोमकर्ता तथा विलयन है। उष्ण शिर शूल एवं उष्ण सरसाममें मिलित सिरका, रोगनेगुल और अर्कगुलाव-में कपड़ा भिगोकर शिर पर रखते हैं। आशुप्रवेशनीय होनेके कारण प्रायः लेपों और अभ्यंग (मालिश) की औषधियोंमें औषधीय वीर्यको शीघ्र प्रवेश करानेके लिये इसे मिलाकर लगाते हैं। कृमिकर्णको नष्ट करने तथा कर्णशूल निवारणके लिये इसे कानमें टपकाते हैं। दंतशूल, शीताद और कंठशोथ (खुनाक)में उपयुक्त औषधियाँ सम्मिलित करके मिलाकर गण्डूष कराते हैं। आहारपाचन तथा अरुचि (जोफे इश्तिहा) को दूर करने के लिये भोजनके साथ या अचार-चटनीके रूपमें खिलाते हैं। इसका शर्बत जिसे सिकंजबीन कहते हैं, पैत्तिक ज्वरोंमें पित्तकी तीक्ष्णता दूर करने और मिचली तथा कै नष्ट करने लिये पिलाते हैं। अहितकर—नाड़ियों तथा कामशक्ति को। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—नीबू का रस और शराब। मात्रा—६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—सिरका (शुक्तचुक्र) रक्तपित्तकारक, छेदि, भोजनका पचानेवाला, स्वरभगकारक, आमपाचक, कफनाशक (चरकके अनुसार कफोत्क्लेदि, पाण्डुरोग और कृमिका नाशक तथा हलका (सु० सू० अ० ४५), वातानुलोमन (च० सू० अ० २७) है। शुक्तके अनुसार शुक्तसधित-शुक्तमे सधित किया हुआ (कन्द, मूल आदि) तीक्ष्ण, उष्ण, मूत्रल, हृद्य, कफनाशक, विपाकमे कटु और विशेषतया रुचिकारक होते है। (सू० सू० अ० ४५)। गुडके शुक्त, रसके शुक्त और मधुके शुक्तमें गुडशुक्त सबसे अधिक भारी और अभिष्यन्दकर तथा मधुशुक्त सबसे हलका और कम अभिष्यन्दकर है। (सु० सू० अ० ४५)।

●

मद्य—

नाम—(हिं०) मदिरा, दारु, शराब; (अ०) खम्र, (फा०) शराव, मै, बाद, (स०) मद्य, मदिरा, सुरा, (द०) दारु, (ब०) मद, सुराप, (म०) दारु, सराय, (गु०) दारू, (लै०) लिकर स्पिरिट्स (Liquor Spiritus), (अं०) ऐरक (Arrack), लिकर (Liquor)।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमे ऐसे प्रत्येक प्रवाही द्रव्यको, जो जल वा शर्वतकी भाँति पी जावे, शराव कहते है। अर्थात् 'शराव' शर्वत का पर्याय है, जैसे–शर्व वनफ्शा, अर्थात् शर्वत वनफ्शा। सुतरा मदकारी शराव (शरावे मुस्किर) के लिये 'खम्र' या 'नबाज्' शब्दका व्यवहार होता है। किन्तु साधारण बोलचालकी भाषामें शराव शब्द का व्यवहार मद्य (खम्र) के अर्थ मे भी होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मादक रस (प्रवाही) है जो अगूरके रस, गन्नेके रस, गुड, महुआ आदिसे विशेष विधिसे सधान करके और भभकेसे खीचकर वनाया जाता है। द्रव्यभेद और विधिभेद आदिसे इसके अनेक भेद होते है।

प्रकृति—ताजी शराव स्निग्धता (रतूबत) लिए गरम और पुरानी शराव गरम और खुश्क होती है।

गुण-कर्म—शराव कोथप्रतिबधक और आशुप्रवेशनीय है। बाहरी तौरपर लगानेसे शीतजनन और वेदनास्थापन है। मर्दन करनेसे यह सूजन उतारती, त्वचामे दाह उत्पन्न करके वेदनाओको शमन करती और किसी खराश (सक्षोभ)पर लगानेसे उसकी वेदना शात करती और उसको प्रकोथसे बचाती है। आन्तरिक उपयोगसे यह मद (सुरूर) एव आनन्द उत्पन्न करती तथा हृदय, मस्तिष्क और सम्पूर्ण शरीरको बल प्रदान करती और नीद लाती है। यह शरीरकी प्रकृतोष्माको जागृत करती, यकृत् और आमाशयको बल देती, पाचनको बढाती, क्षुधाकी वृद्धि करती, वायुका उत्सर्ग करती, शरीरमे रुधिर एव मासकी वृद्धि करती और उनको शक्ति देती है। यह शरीरको स्थूल एव बलवान् और मनुष्यको वीर एव साहसी बना देती है। इसके पीनेसे किसी कदर पसीना आता और मूत्रका प्रवर्तन होता है। यह अन्त्र पर सग्राही कर्म करती है।

उपयोग—शरावको आघात-प्रत्याघात (जर्ब व सक्त)मे वेदनाशमनार्थ लगाते है। सद्य व्रणो एव खराश (सक्षोभ)को प्रकोथसे बचाने और उनकी वेदना नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करते है। चिरज आमवात, सधिकाठिन्य, फुफ्फुसशोथ और फुफ्फुसावरणशोथ (जातुल्जनब)मे इसका तिला करते और दन्तशूल, कण्ठशोथ, दतवेष्ट और मुखपाकमें प्रकोथ निवारण, श्वयथुविलयन और वेदनाशमनार्थ इसका गण्डूष कराते है। पाचन वा जठराग्निको तीव्र करने, दुर्वल एव रोगीको बलवान् बनाने, दुःख और चिन्ता तथा मानसिक एव शारीरिक क्लातिको दूर करनेके लिए इसको पिलाते है। आमाशयशूल के कतिपय भेदो, उदरानाह और अतिसारमे मे भी इसका उपयोग कराते है। शरीरसे अत्यन्त रक्तस्राव हो जाने और ज्वरोमे जबकि हृदय अत्यन्त दुर्वल हो गया हो, तब बलवर्धनके निमित्त इसको पिलाते है। अनिद्रा, अपतन्त्रक और कतिपय वातवेदनाओको यह आरजी

तौर पर नीद लाकर लाभ पहुँचाती है। प्रतिश्यायमे शरीर एव मस्तिष्कको गरमी पहुँचाने और पसीना लाने हेतु इसका उपयोग कराते और स्वेदन होनेसे कतिपय ज्वरोंमें भी इसे पिलाते हैं। दुर्बल एव कृश व्यक्ति शराबव औषधीय आहारकी भाँति एतदालके साथ (नियमित) उपयोग करनेसे तरोताजा एव स्थूल हो जाता है इनकी समस्त शक्तियाँ सचेष्ट हो जाती हैं। रुधिर उत्तम, निर्मल और पुष्कल उत्पन्न होता है। मस्तिष्क भ स्फूर्तिमान् हो जाता है तथा साहस और वीरता उत्पन्न हो जाती है। शरीर चतुर, सजग या तेजस्वी और स्फूर्ति मान बन जाता है। परन्तु इसे अनियमित मात्रामें सेवन करनेसे सरासर अनिष्ट होता है। अस्तु, इसके अनियमि प्रचुर प्रयोग से मस्तिष्क विकृत हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट एव ज्ञानेन्द्रियाँ कुण्ठित हो जाती हैं। मस्तिष्क केवल ए निष्क्रिय एवम् निश्चेष्ट अगकी भाँति रह जाता है और प्राय मस्तिष्क एव वातरोग, जैसे—उन्माद, कम्पवात, पक्ष वध और अर्दित आदि हो जाते हैं। इसके प्रचुर प्रयोगसे आमाशय भी अपने निर्दिष्ट प्रतिनियत कर्मोसे जवाब बठता है और पाचनशक्ति नष्टप्राय हो जाती है। इन सबसे प्रबल अहित यह होता है कि मनुष्य अपना सम्पू शक्तिकोष इस धनधर्मविघातिनी मदिराको भेंट करके अपने निर्धन एव कगाल बन जाता है और दीनहीन एव दुनियामें किसी काम का नहीं रहता है। इसी हेतु प्राय धर्मोमें इसे निषिद्ध एवम् वर्ज्य (हराम) माना है अहितकर—विराग एवम् ज्वरकारक। निवारण—उपयुक्त द्रव्य। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरेका। मात्रा—३०मि० लि०से ६० मि०लि० (२½ तोले से ५ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—मद्य अम्ल, पाकमे लघु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, पित्तकारक, अग्निदीपक, दाह उत्पन्न करने वाला, रुचि उत्पन्न करनेवाला, विरेचक, हृदयके लिए हितकर (अथवा मनको आनन्द देनेवाला),मदकर, (विकासी) ज्ञानेन्द्रियोको उत्तेजना देनेवाला, मलमूत्र खुलकर लानेवाला, मूत्रशोधक तथा हर्ष, ऊर्ज (तेजस्विता वा चातुरी) पुष्टि, आरोग्य तथा परम पौरुष करनेवाला तथा कफवातनाशक है। यह मदके सुखको देनेवाला, स्वरको शु करनेवाला, वर्णको निखारनेवाला, धातुओंका सतर्पण करनेवाला (प्रीणन), शरीरको स्थूल करनेवाला (बृहण) बल्य, भय-शोक तथा थकावटको दूर करनेवाला, अनिद्रामे नीदलानेवाला मूक पुरुषोकी वाणीको खोल देनेवाला, अति निद्रायुक्त पुरुषोंकी नीदको दूर करनेवाला, स्रोतोके बन्धको खोलनेवाला, वध वा बन्ध आदिके अतिक्लेशके दु खको न अनुभव होने देनेवाला होता है। मद्यसे उत्पन्न होनेवाले रोगोका बाधक भी मद्य ही है। मद्य रति है— आनन्द है वा कामको उत्पन्न करनेवाला है। रूप, शब्द आदि विषयोके सयोगमें प्रीति और सयोग बढानेवाला होत है। तात्पर्य यह है कि इसके सेवनसे पुरुषको रूप, शब्द आदि इन्द्रिय विषयोमे प्रीति अधिक होती है और इन्द्रिय विषयग्रहणमें पूर्वापेक्षया अधिक समर्थ होती है। बडे वयवाले अर्थात् प्रौढपुरुषोके लिए भी मद्य उत्सव और आमोदका कारण होता है। जवान या बूढेपुरुषोको प्रथम मदमे पाँच काम्य विषयो (रूप, रस-शब्द आदि)में जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी उपमा इस पृथ्वीपर नही है अर्थात् प्रथम मदमे सेवनकर्ता अतुल आनन्दका अनुभव करता है। युक्तिपूर्वक (उचित कालमें अपने बलके अनुसार और हितकर अन्नोके साथ) सेवन किया गया मद्य बहुत दु खोसे दु खी, शोकमे डूबे हुए जीवोका एकमात्र विश्राम है (सु० सू० अ० ४५, च० चि० अ० २४, अन्न पानविधि अध्याय, मदात्ययचिकित्सा)। चरक चि० अ० २४ और सुश्रुत उ० अ० ४७ में इसके ये दस गुण लिखे हैं–लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुग, रूक्ष, विकाशी (सी) और विशद। मद्यके इन गुणोमेंसे केवल विकासी गुणको छोडकर जो शरीरके लिए हानिकर है, शेष सभी गुण शरीरके लिए हानिकर नही, अपितु लाभ कर ही होते हैं। अत इस गुणका प्रादुर्भाव जिस प्रकार न हो उस प्रकार मद्यका सेवन करना उचित है—

"यावद् दृष्टेर्न सभ्रान्तिर्यावन्न क्षोभते मन । तावदेव विरन्तव्य मद्यादात्मवता सदा।" (अष्टाग हृदय, चिकित्सा ७)।

(१९६ गर्जन)

फ़ैमिली : डीप्टेरोकार्पासे (Family : Dipterocarpaceae)

नाम—(हिं०, ब०, म०, गु०, मार०) गर्जन, (स०) यक्षद्रुम, अश्वकर्ण, (ले०) डीप्टेरोकार्पुस् अलाटुस् (**Dipterocarpus alatus** Roxb) । तेल (हिं०) गर्जनका तेल, (अ०) दोहनुल्गर्जन, (फा०) रोगन गर्जन (या चोब), (स०) यज्ञद्रुतैल, (ले०) बाल्सामुम् डिप्टेरोकार्पी (**Balsamum dipterocarpi**); (अ०) गर्जन आइल् (Garjan oil), वुड ऑइल (Wood oil) ।

उत्पत्ति स्थान—गर्जनके वृक्ष पूर्व बगालमे चटगाँव, आसाम एव ब्रह्मा, सिंगापुरमें होते हैं । इसके काण्ड-स्कन्धसे तेल निकलता है । उसको गर्जनका तेल (दोहनुल् गर्जन) कहते हैं ।

उपयुक्त अग—पत्र, फल, बालसम, छाल और तेल ।

रासायनिक सगठन—उत्पत् तेल (Essential oil), राल जिसमे स्फटिकीय अम्ल होता है ।

प्रकृति—तीसरे दर्जे तक गरम एव खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गर्जनके तेल (Oil or Balsam)की क्रिया कोपाइबा (Copaiba) जैसी होती है । यह श्लेष्मल त्वचाके लिये विशेषत मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मल त्वचाके लिए उत्तेजक हैं । इससे पेशाब बढता है और मूत्रमे कोथप्रशमन धर्म उत्पन्न होता है । अत मूत्रमे जीवाणु जीते नही और नये उत्पन्न होते नही ।

गर्जनका तेल—पुराने सूजाक (गोनोरिया)में दिया जाता है । मात्रा–२ मि० लि०से ८ मि० लि० (½ से २ ड्राम) ।

उपयोग—गर्जनका तेल, कबाबचीनीका तेल और चदनका तेल समभाग मिलाकर ३० बूदकी मात्रामे चीनीमे मिलाकर खिलानेसे सूजाकमे अच्छा लाभ होता है । सिरकेमें पकाकर बनाये हुये इसके पत्तोंके काढेसे कुल्ली करनेसे दतशूल आराम होता है । तर खाँसी, यकृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र और अपरापातनके लिये इसके फलका खाना लाभकारी हे तथा इससे मूत्रका प्रवर्तन होता है । छालका काढा पीनेसे उदरस्थ भ्रूण एव अपराका निर्हरण होता है । अहितकर–फल आमाशयको हानिकर, शिर शूल उत्पन्न करता तथा शरीरको कृश करता है । निवारण–बारतगका स्वरस, खट्टे फल और धनिया ।

●

(१९७) गर्भफूल (कफेमरियम्) ।

फ़ैमिली : क्रूसीफेरी (Family Curciferae)

नाम—(हि०, गु०, बम्ब०) गर्भफूल, (अ०) कफेमरियम्, कफे आयेशा (इशा), असाबेउस्सिफर, (ले०) अनास्टाटिका हिरोकून्टीना (**Anastatica herochuntina** Linn), (अ०) रोज ऑफ जेरिको (Rose of Jericho) ।

उत्पत्तिस्थान—अरेबिया, फिलस्तीन और सीरिया आदि । भारतवर्षमे इसका आयात सीरियासे फारस की खाडी होकर होता है ।

वर्णन—यह एक वार्षिक क्षुद्र मरुभूमिज वनस्पति है । काण्ड छोटा और काष्ठीय तथा कठोर होता है । पत्र अभिलट्वाकार, निम्नस्थ अखण्ड, ऊर्ध्वस्थ दूर-दूर दतित, पुष्प क्षुद्र पीताभश्वेत होता है । दे० 'बखुरमरियम' ।

गुणकर्म तथा उपयोग—कष्टप्रसूतिमे यह उपयोगी सिद्ध होता है ।

(१९८, १९९) गाजर, जंगली गाजर

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family Umbellifeiae)

नाम—कद (हिं०,म०,गु०,वं०) गाजर, (यू०) डायकी (Dayki), डायकोस (Daykos), (अ०) जजर, (फा०) गज़र, जर्दक, (स०) ग(गा)र्जर ?, (क०) मोरमूज, (लै०) डाउकुस कारोटा प्र० साटीवा (**Daucus carota** L vai **sativa** DC (पर्याय–*D carota* Auct), (अं०) केरट (Carrot), गार्डेन कैरट (Garden carrot)। वीज–(हिं०) गाजरके वीज, (अ०) वज्र ुल् जजर, (फा०) तुख्मे जर्दक, तुख्मे गजर।

वक्तव्य—फारसी 'गजर' से अरवी 'जजर' वनाया गया है। फारसी 'गज़र' सस्कृत गाजर या गर्जरसे व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीर और पश्चिमी हिमालय। समस्त भारतवर्षमें, विशेपत उत्तरभारतमें, इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह गोपुच्छाकार लाल, पिलाई लिए लाल या सफेद रगकी प्रसिद्ध जड है। यह मधुर एव स्वादिष्ट होती है। वीज सौफसे वहुत मिलते-जुलते होते है। इसके जगली भेद (गजर वर्री)को सस्कृतमें गृञ्जन, फारसीमे 'गजरेदश्ती', अरवीमे 'जजरलूवर्री' और लेटिन तथा अग्रेजीमे क्रमश डाउकुस कारोटा (**Daucus carota** Linn) और वाइल्ड कैरट (Wild carrot) कहते है। इसकी जड गाजरकी अपेक्षया छोटी, वडी तथा सफेद होती है। यह जड प्रसिद्ध 'शकाकुल' नहीं है। किसी-किसीके मत से 'दूकू' इसीके वीज है, किन्तु यह सत्य नही है। द्रि० दे० 'दूकू'।

रासायनिक सगठन—जडमें गर्जरीन (कैरोटीन), शर्करा, पिष्ट (स्टार्च), ऐल्ब्युमिन, मैलिक एसिड, लवण और एक उत्पत् तेल प्रभृति पदार्थ होते है। इसमे पर्याप्त मात्रामें लोह भी होता है। वीजमें एक प्रकारका पीला, गाजरके समान प्रियगधी और चरपरा उत्पत् तेल होता है।

उपयुक्त अग—मूल (कद), वीज और पचाग।

कल्प तथा योग—जोशांदा (क्वाथ), अचार, सफूफ गाजर, हलवाए गाजर, मुरब्बाए गाजर, अर्क गजर सादा (व अवरी), अर्कगजर अवरी वनुसखा कलाँ आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर है। सुर्ख (विलायती) पहले दर्जेमे गरम व तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गाजर सौमनस्यजनन, उत्तमागोको वलप्रद और वाजीकर है तथा फुफ्फुसो पर श्लेष्मनिस्सारक और मूत्रपिंडो पर मूत्रजनन कर्म करता है। गाजरको पकाकर या विना पकाये पुष्कल खाया जाता है। इससे पुष्टि (गिजाइय्यत) प्राप्त होती है। परन्तु अधिक प्रमाणमें खाने से आनाह उत्पन्न करता है। गाजरको भूभल (भौरा)में पकानेके उपरात उसे कतरा-कतरा काटकर रात्रिमे ओसमें रख दिया जाता है। सवेरे अर्कंकेवडासे सुगधित और मिश्रीसे मीठा करके दिलकी धडकन (खफकान)के लिए खिलाते है। श्लेष्मनिस्सारक और मूत्रल होनेके कारण कास, श्वास, मूत्रदाह और वस्तिवृक्काश्मरीमें गाजरका सेवन गुणकारी है। इसका मुरब्बा और हलवा तथा अर्क वनाया जाता है। सौमनस्यजनन और शरीरको बल और पुष्टिप्रदान करनेके लिए इनका उपयोग करते है। अहितकर–गुरु और दीर्घपाकी है। निवारण—गरम दवायें, मासके साथ पकाना। प्रतिनिधि–शलगम।

गाजर के वीज—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जेमे खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रल, आर्तवजनन या गर्भाशयशोधक और गर्भशातक, वस्तिवृक्काश्मरिनाशन तथा पृष्ठ-उर शूलहर है। उदराध्मान, मूत्रावरोध और जलोदरमे इसकी मसी वनाकर उपयोग करते और व्रणो पर

अवचूर्णन (छिडकते) रहते है। गाजरसे उसका बीज अधिक वाजीकर है। १ भाग गाजरके बीज और १ भाग शलगमके बीज दोनोको मूलीके भीतरका गूदा निकालकर उसके भीतर भर दे और उसका मुँह बन्द करके भूभलमे पका ले। इसके सेवनसे बस्ति और वृक्कगत अश्मरी निकल जाती और मूत्रका प्रवंतन होता है। ये पलक और पादशोथ मिटाते है। अहितकर–कठ, आमाशय और वातनाडियोको। निवारण–अनीसूँ। प्रतिनिधि–दूकू और अनीसूँ। मात्रा–७ ग्राम (७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—गाजर मधुर, तिक्त, किंचित् कटु, उष्ण, दीपन, हलका, रुचिकारक, सग्राही तथा पित्त, रक्तपित्त, दाह, कफ, वात, सग्रहणी, अर्श, कृमि, शूल, आध्मान और तृषाको दूर करता है। (रा० नि०, भा० प्र०)। जगली गाजर (गृंजन)=चरपरा, उष्ण, दीपन, रुचिकारक, हृदयको हितकारी तथा दुर्गन्ध, कफवातरोग और गुल्मका नाश करता है।

o

(२००,२०१,२०२) गाफिस, गाफ़िस देशी (त्रायमाण) और पश्चिमी गाफिस

फैमिली : जेंटिआनासे (Family Gentianaceae)

नाम—(भा० वाजार) गुले गाफिस, (अ०) गाफि (फ)स, हशीशतुल् गाफिस, (फा०) गुलखाना, गुलकल्ली, (लें०) जेंटिआना डाहुरिका **Gentiana dahurica** Fisch (पर्याय–*G olivieri*)।

वक्तव्य—फारसमे इसे 'गुलकल्ली' इसलिए कहते है, कि वहाँ की ग्रामीण जनता 'कल्ली (शिशुकपालगत दद्रु)' नामक रोगको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करती है। इसकी दर्याफ्तसे पूर्व यूनानी चिकित्सामें इसकी जगह स्पेनदेशज पाश्चिमात्य गाफिसका प्रयोग होता था, जो एक कँटीला क्षुप है। मख्ज़नुलअद्विया एव मुहीत आजममे इसकी यूनानी सज्ञा 'उबतूरी' लिखी है जो 'यूपेटोरियोन' यूनानी सज्ञाका अरबी रूपातरमात्र है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन यूनानी चिकित्सकोका गाफिस वह रहा जिसको अरबीमे 'शज्रतुलूबरागीस' और लेटिन तथा अग्रेजी में क्रमश आग्रीमोनिआ एउपाटोरिआ (**Agrimonia eupatoria** Linn) तथा ऐग्रिमनी (Agrimony) कहते है। बादमे इसका उपयोग उपर्युक्त औषधिके लिए होने लगा। परन्तु इस बातका निश्चित ज्ञान न होनेके कारण तथा इन दोनो वनस्पतियोको एक (अभिन्न) समझने तथा इन दोनोके पृथक्-पृथक् स्वरूप-ज्ञान न होनेसे अनेक यूनानी निघण्टुओमे गाफिसके प्रसगमे इन दोनो भिन्न वनस्पतियोके मिलितस्वरूप (कुछ स्वरूप एकका तथा कुछ दूसरेका) विवरण कर दिया गया है, जो औषधि-अभिज्ञान की दृष्टिसे भ्रमोत्पादक है। अतएव यहाँ गाफिस नामसे प्रयुक्त इन दोनो वनस्पतियोके अपने पृथक् वास्तविक स्वरूपके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे तथा उनके कालक्रमके ऐतिहासिक तथ्यके स्पष्टीकरणके लिए, आधुनिक एव प्रचलित गाफ़िस और प्राचीन गाफिस दोनोका विवरण पृथक्-पृथक् दिया गया है। 'जेंटिआना डाहुरिका'मे जातीय नाम डाहुरिका उक्त वनस्पतिके उद्भवस्थलके नाम पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—फारस, बलूचिस्तान, डहूरिया, मेसोपोटेमिया और पश्चिमी हिमालय। भारतवर्षमे इसका आयात फारससे होता है। इसकी एक अन्य जाति जेंटिआना कुरू (**Gentiana kurroo** Royle) भारतवर्षके कश्मीर आदि स्थानोमे होती है, जिसे वहाँ 'त्रामान(ण)' या 'नीलकण्ठ' कहते है। सम्भवत यह आयुर्वेदोक्त त्रायमाणा है। इस नाममे यह पजावके बाजारोमे मिलती भी है। इसे 'देशी गाफिस' कह सकते है। तज्किरतुल्हिन्द और मुहीत आजममें गाफिसका सस्कृत नाम 'त्रायमाणा (तुरियामाना)' दिया है। गाफिस नामसे यूनानी औषध-

विक्रेताओंके यहाँसे मिलनेवाला उद्भिज्ज त्रायमाणाकी फारसमें होनेवाली एक जाति है, जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

वर्णन—फारससे भारतवर्षमें आये हुए गाफिसके पार्सलोंमें इसका समग्र क्षुप प्राय मिल जाता है। उसके देखनेसे इसका जो विवरण प्राप्त होता है, वह निम्न है —

पुष्पदण्ड २-४ इंच लम्बा, कोमल और चौकोर होता है। समूचे पुष्पदण्ड पर पाँच फूल होते हैं, जिनमेंसे एक उसकी छोर पर और शेष चार दो-दोके सम्मुखवर्ती युग्ममें तथा लम्बे पुष्पवृन्तपर स्थित होते हैं। पौष्पिकसहपत्र पुष्पपत्रके बराबर लम्बा होता है। पुष्पाभ्यंतरिक कोष (दलचक्र) फुनेलके आकार का, लगभग २५ सें०मी० (१ इंच) लम्बा, सीधा, पचधा चीरित और नीलवर्ण, पुष्पबाह्यकोष (पुटचक्र) पचधा चीरित, बाह्यपुटके खण्ड बराबर (त्रायमाणामें बाह्यपुट लम्बाईमें आभ्यन्तर पुटसे आधा, पुष्प नीले सफेद दागवाले, फल आयताकार, पुष्पलिंग पांच पुटचक्र खडोसे एकांतरित, योनिसूत्र अकेला, योनिच्छत्र दो, फल पौन इंच लम्बा, एक कोषयुक्त, असंख्य क्षुद्रबीजयुक्त, दलचक्र और पुटचक्र उभय स्थायी होते हैं)। क्षुपके निचले भागमें लगे हुए पत्र जेन्शियन पत्रवत् होते हैं। समग्र क्षुप १५ सें०मी०से २० सें० मी० (६ इंचसे ८ इंच = एक बित्ता भर) ऊँचा और अत्यन्त तिक्त होता है। फारसमें शीराजके पहाडोंमें उत्पन्न गाफिस सर्वोत्तम समझा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक स्फटिकीय तिक्त सत्त्व होता है।

उपयुक्त अंग—फूल (गुले गाफिस) और इसके क्षुप (पचांग)से बनाई हुई रसक्रिया। इसमें तीन वर्ष तक वीर्य रहता है।

कल्प तथा योग—हब्ब गाफिस, कुर्स गाफिस आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष) है। आयुर्वेद (ध० नि०) मतसे भीयह (त्रायमाण) उष्णवीर्य है। परन्तु किराततिक्तादि कुलकी सभी औषधियाँ शीतवीर्य होती हैं और उक्त कुलकी औषधि होनेसे इसे भी शीतवीर्य होनो चाहिए। इसके पित्तविकारोंमें प्रयुक्त होनेसे भी इस बातको पुष्टि होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह यकृत्-प्लीहाके अवरोधोको खोलनेवाला, दोषतारल्यजनन, दोषच्छेदन, लेखन, स्रोतोविशोधन (बाहिन्युद्घाटक), दग्धदोषविरेचन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, स्तन्यजनन (शोधन), स्वेदन, दीपन और रक्तप्रसादन है। यकृत्-आमाशयका शोथ एवं काठिन्य प्लीहाकाठिन्य, पाण्डु और सर्वांगशोथमें इसका उपयोग करते हैं। दोषतारल्यजनन और स्वेदल होनेके कारण जीर्ण एवं दोषसमिश्र ज्वरोंमे भी इसका उपयोग करते हैं। रक्तप्रसादन होनेसे कण्डू, कच्छू तथा इन्द्रलुप्त भेदो (दाउस्सालब और दाउलहय)मे पेय और लेपकी भांति इसका उपयोग करनेसे लाभ होता है। इसका उसारा (रसक्रिया—उसारए गाफिस) प्राय माजूनों एवं नक्रिशाओंमें सम्मिलित किया जाता है। अहितकर—प्लीहा को। निवारण—अनाम्न (तगर) और अफसन्तीन। प्रतिनिधि—गंठी-मून। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम या ७ ग्राम (३-५ या ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—त्रायमाणा तिक्त, उष्णवीर्य, सारक तथा पित्त, कफ, रक्तविकार, गुल्म ज्वर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, भ्रम, वमन, विष और हृद्रोगको दूर करनेवाली है। (चरक चि० अ० ८, चि० अ० ३ सु० उ० अ० ३८, ध०नि०, भा०प्र०)।

नव्यमत—स्वाद तिक्त। इससे भूख लगती है [illegible] (टॉनिक), [illegible] साफ होता है और दस्त साफ होता है। इसके [illegible] धर्म होने से पेट फूलने [illegible] है या कम होता है। इसमें [illegible] प्रमाण [illegible] है। [illegible]

आजकल हकीम लोग इसका विशेप प्रयोग करते है। यह तिक्त होनेसे कुपचनरोगमे और अग्निमाद्यजनित शरीर-शैथिल्यमे कटुपौष्टिकके रूपमे इसका उपयोग करते हैं। इससे दस्त साफ होता है। यह पीडाशनामक है, इसलिए इसे अर्शमें देते है। इससे दस्त साफ होता है और मूत्रका प्रमाण बढता है। इसलिए प्लीहोदर यकृदुदर, जलोदर और हृदयोदरमे भी इसे देते है। मूत्रजनन और स्रसन होनेसे जीर्णज्वर और पित्तज्वरमें इसका प्रयोग करते है। इन सब रोगोमे इतर योगवाही औषधो के साथ (गाफिस या) त्रायमाणा देते है।

●

प्राचीन पाश्चिमात्य ग़ाफ़िस

फैमिली : रोजासे (Family . Rosaceae)

नाम—(अ०) शज्रतुल् बरागीस, शौकतुलमुन्तिन (शौक =कण्टकी, मुन्तिन =बदबू, दुर्गन्धित), हशीशतुलगाफिस, (स्पेन) तुवाक, (यू०) युपेटोरियोन (Eupatorion) जिसे मख्जनमे 'ऊबतूरी' लिखा है, (लै०) आग्रिमोनिआ एउपाटोरिआ (**Agrimonia eupatoria** Linn), (अ०) ऐग्रीमनी (Agrimony), स्टिक-वर्ट (Stick-wort)।

वक्तव्य—पश्चिमी देशके अरबलोग इसको पहले शज्रतुल्बरागीस आदि नामोसे और पीछे 'गाफिस' नामसे जानते रहे है। इब्नसीना और पूर्वदेशीय अरबी तथा फारसनिवासियोने यूनानियोके 'यूपेटोरियोन (अरबी रूपातर ऊबतूरी)'के स्थानमें गाफिस नामक एक फारसी पौधेका ग्रहण किया, जो अद्यावधि भारतवर्ष (पूर्व)मे उक्त नामसे बिकता है, जिसका वर्णन प्रथम गाफिस शीर्षकमे किया गया है। भारतीय और फारसी हकीम गाफिसका वर्णन इस प्रकार करते है—

एक कँटीला क्षुप जिसके पत्र भाँगके पत्रकी तरह और फूल लम्बे एव नीले रगके होते है। उक्त वर्णनमे वे यूनानियो द्वारा दिये गये एग्रिमनी अर्थात् यूपेटोरिओनके पौधेके वर्णनकी प्रतिलिपि करते है और उसके साथ फारसी गाफिस अर्थात् जेन्शनके फूलोका जिससे वे परिचित है, आरोप करते है। उनके द्वारा दिये गये इसके औषधीय गुणकर्म आदि गाफिसके न होकर एग्रिमनी (शज्रतुल् बरागीस–तुवाक)के है।

उत्तरकालीन पूर्वात्य गाफिसकी दर्याफ्त (खोज)से पूर्व उसकी जगह इसी पाश्चिमात्य प्राचीन स्पेनीय गाफिस शज्रतुल्बरागीस का उपयोग होता था। तदुपरात उसके स्थानमें वर्तमान गाफिसका व्यवहार होने लगा। यही कारण है कि प्राचीन यूनानी निघटुओमे गाफिसके वर्णनमे इन दोनोका मिलित वर्णन किया गया मिलता है जो ठीक नही है।

जॉन हिल एम० डी० ब्रिटिश हर्बल (सन् १७५१ ई०)मे विवरण करते है कि प्राचीनो द्वारा एग्रिमनीके प्रयोगकी बहुत ही अभ्यर्थना की जाती थी, परन्तु वर्तमान व्यवहारमे वह अत्यधिक उपेक्षित एव विस्मृत कर दी गयी है। कामला और आशयगत अवरोधोके उद्घाटनके लिए वे इसके उपयोगकी अभ्यर्थना करते है। (पा० न्यू० सा०)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय, मुर्री और कश्मीरसे सिक्किम–खासिया पहाडी तक ४,०००-६,००० फुटकी ऊँचाईपर।

वर्णन—यूनानी और रूमी हकीमोका 'यूपेटोरिओन' एक हाथ या इससे अधिक ऊँचा रोमश और कँटीला क्षुप है। पत्र भाँगके पत्ते जैसे ऊपरकी ओर हरे और नीचेकी ओर भूरापन लिए हुए (Greyish), रोमश, १२ ५सें०मी०

(५ इच) या इससे लवे, ३-५जोडे, भालाकार, दतुर पत्रकोमे युक्त, मध्यवर्ती पत्रक अपेक्षाकृत छोटे और अर्ध हृदयाकार एवं दतुर उपपत्र (Stipules)से युक्त, पुष्प क्षुद्र, पच क्षुद्र दलो (Petals) वाले, रगमे पीले, पतले, लवे पुष्पदण्ड (Spikes)पर स्थित; फल क्षुद्र ऊर्ध्व शक्वाकार (Obconical), पर्शुकायुक्त (Ribbed), अग्रपर अकुशाकार हृष्टरोमोसे युक्त। प्रत्येक फल दो बीज युक्त होता है, स्वाद कषाय, किंचित् तिक्त होता है। पुष्पकाल जुलाई-अगस्त है। इसके शीघ्र वाद ही बीज परिपक्व हो जाते है।

उपयुक्त अग—क्षुप।

रासायनिक सगठन—इसमें एक प्रकारका उत्पत् तेल (Essential oil) होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—क्षुप और मूल मृदु कषाय, वल्य, मूत्रजनन, अवरोधोद्घाटक तथा कास, साधारण अतिसार और अन्त्रशैथिल्यमें गुणकारक है। २॥ तोले सूखे क्षुपको एक (पाइट उवलते पानीमें डालकर फाट तैयारकर मधु या शर्करा मिलाकर आधे प्याले भरकी मात्रामे प्राय सेवन कराते है। (पा०न्यू-सा०)।

●

(२०३) गार

फैमिली : लाउरिनी,–आसे (Family Laurineae.,–aceae)

नाम—फल (अ०) हब्बुल्गार; (यू०) दफ्नी (Daphne), (ले०) लाउरुस नोबिलिस (**Laurus nobilis** Linn), (अं०) बे (Bay)लारेल, लॉरेल बे (Laurel bay), स्वीट बे (Sweet bay)।

वक्तव्य—मुहीतआजम आदिमें गीलानीके कथनानुसार जो इसका यूनानी नाम 'जाकनी' लिखा है, वह शुद्ध 'दफ्नी' है। 'दफ्नी' यूनानी 'डफ्नी' का अरवी रूपातर है। इसका लेटिन नाम वृक्षका है।

उत्पत्तिस्थान—एशिया माइनर और दक्षिण यूरोप। यह भारतीय वगीचोमे लगाया गया है।

वर्णन—वाजारमें गारवृक्षके अडाकार या कुछ गोल लगभग ०.८३ से०मी०मे १.२५ से०मी० (⅓ से½ इच) लम्बे फल मिलते है। सूखने पर ये हरापन लिये काले या कालापन लिये भूरे हलके झुर्रीदार तथा भिदुर या भगुर, छिलका एव छिलके का भीतरी पृष्ठ ललाई लिये भूरा स्तरयुक्त, पतला और भगुर होता है। इसके भीतर एक टोला अडाकार बीज होता है, जिसके उन्नतोदर-सपाट, कुछ कुछ भूरे, दोनो दल सरलतासे पृथक हो जाते है। ये सुगन्धित, चिकने (स्नेहयुक्त) एव तिक्त होते है। ये जितने पुराने पडते जाते है, उतना ही हरापन और कालापन लिये होते हुए अतमें काले पडकर विगड जाते है। पत्र चर्मवत् गहरा हरा, नीचेकी ओर अधिकाधिक पाडुर, लगभग ७.५ सें० मी० (३ इञ्च) लम्बा और २.५ सें० मी० (१ इञ्च) चौडा, दीर्घ वृत्तभालाकार, मध्योर्ध्व अपेक्षाकृत किंचित् चौडा, अखड, पत्रप्रान्त तरगित तथा पत्रपर क्षुद्र कुछ श्वेतशिराकृत लगभग वर्गीकृत सूक्ष्म जालरन्ध्रोका जाल वना होता है, स्वाद रुचिकर, गध मलने पर या कुचलने पर सुगन्धित होती है।

इतिहास—यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'डफ्नी' नामसे इस ओषधिका उल्लेख किया है। प्राचीन यूनान-वासी गारवृक्षको वडे सम्मानसे देखते थे। इसका कारण यह उपाख्यान है कि, "डफनी नामकी एक कुमारीकन्या थी, जिसपर अपोलोदेव प्रेमासक्त हो गये थे। अस्तु, जव उक्त देवराजने उक्त कुमारीकन्याका पीछा किया तथा उसको जा पकडा तव उसने सहायताकी पुकार की। उसकी उक्त पुकार स्वीकृत हुई। परिणामतया वह गारवृक्षके रूपमे परिवर्तित हो गया। प्रोफेसर मैक्समूलरने यूनान निवासियोके उक्त कथानकसे जो वेदोमे उल्लिखित है, तुलना की है। कारण वह भी इसी प्रकारका कथानक है। प्राचीन यूनानी कवि इस वृक्षकी शाखाओको सम्मानस्वरूप अपने

हाथमे रखते थे। कदाचित् इस भावनासे कि अपोलोकी कामुक वासनासे उनके कामुक पद्य प्रभावित एव स्वीकार्य हो। आजकल भी कतिपय यूनानी कवि इस वृक्षकी शाखाओका मुकुट अपने सिर पर धारण करते है। इस वृक्षकी शाखाओको विजयका, भी एक शकुन समझा जाता था इसलिये प्राचीन रोमवासी भी अपनी कतिपय रस्मोमें इसका उपयोग करते थे।"

एशिया माइनरमे इसके वृक्ष स्वयजात पाये जाते है। वहाँसे इसे यूरोपमे ले गए और इसको बगीचोमे लगाते है। भारतवर्षमे इसके फल 'हब्बुल्गार' नामसे बिकते है। भारतवर्पमे इसका प्रवेश मुसलमान चिकित्सकोके द्वारा हुआ। हकीम दीसकूरीदूस द्वारा आविष्कृत 'रोगन हब्बुल्गार' यूरोपमे अद्यावधि नाड्युत्तेजकरूपसे प्रयुक्त किया जाता है।

रासायनिक सगठन—हब्बुल्गारमे एक पाण्डुपीत उत्पत् तेल (Essen oil) होता है। बीजोमे वसा, उत्पत् तेल और राल होते है।

उपयुक्त अग—फल (हब्बुल्गार–Laurel berries)। भारतवर्पमें इनका आयात मिस्रसे होता है। भारतमे यह मुसलमानोद्वारा लाया गया और अद्यावधि प्राय सभी बडे-बडे शहरोमे मुसलमान औपध-विक्रेताओकी दूकानोमे यह 'हब्बुल्गार' नामसे मिलता है। इसके अतिरिक्त पत्र और रोगन हब्बुल्गार (Essen oil)।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क, फलकी मीग, वृक्षकी छाल और पत्रसे अधिक गरम तथा खुश्क, मीगका तेल अखरोटकी मीगके तेलसे भी अधिक गरम है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कफज शिर शूलकारक, विवेक और बुद्धिवर्धक और मृगीहर है। इसे ९ ग्राम (९ मासे) निरतर खाते रहने से स्वाप, पक्षवध और अर्दित आराम होता है। इसे गुलरोगन और सिरका या शराबमे पीसकर कानमे टपकानेमे शिर शूल, बाधिर्य और कानमे साँय-साँय होना आराम हो जाते है। मधुमे पीसकर चाटनेसे श्वासरोग आराम हो जाता है। इसे (९ ग्राम) ९ माशे अकेला पीसकर इसबगोलके लबाबके साथ पीनेसे पेटकी मरोड तुरत मिट जाती है। यह हस्तिमेह और बिंदुमूत्रमे भी लाभकारी है तथा पथरीको तोडता और अखिल विषोका अगद है। सर्प-वृश्चिक और अन्यान्य कीडे-मकोडोका विष दूर करनेके लिये इसे शराबके साथ पीना चाहिये और भिड या मधुमक्खीके दश पर इसे पीसकर लेप करना चाहिये। शहदमे इसका लेह प्रस्तुतकर चाटनेसे कृच्छ्रश्वास और उर फुप्फुस व्रण दूर होते और वक्षके अन्य सर्दरोग भी जाते रहते है। यदि गरमीसे सीनेमे यह रोग हो गये हो तो सिकजबीनके साथ इसे खानेसे उर फुप्फुसकी ओर दोषका गिरना रुक जाता है और जीर्णकास मिट जाता है। अहितकर—यकृत् तथा आमाशयको शिथिल करता और वमन कराता है। निवारण—जरिश्क। प्रतिनिधि—हब्बुल्महलिब और कडवे बादामकी गिरी। मात्रा—२·२५ ग्राम से ९ ग्राम (२$\frac{1}{4}$ माशेसे ९ माशे) तक।

गारका तेल (रोगन हब्बुल्गार)—

कल्पना विधि—गारके फलोको कुचलकर पानीमे क्वाथ करते है और फिर छोड देते है। शीतल होने पर जो कुछ पानीके ऊपर जम जाता है उसे ले-लेते है अथवा इसके फलो या पत्तोका रस पानीमे पकाते है। जब रसका वीर्य पानीमे आ जाता है तब उसको जैतूनके तेलके साथ इतना पकाते है कि पानी जलकर तेलमात्र शेप रह जाता है। फिर उसे छानकर रखते है।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह समस्त अंगोसे अधिक गरम है। इसका अन्वेषण यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने किया है। दक्षिण यूरोपमे अद्यावधि यह वातनाडयुत्तेजकरूपमे उपयोग किया जाता है इसको अगूरी शराबके साथ पीनेसे या इसकी मालिशसे यकृच्छूल आराम हो जाता है। यह सशोधन करता, किन्तु मिचली उत्पन्न करता और आमाशयको ढीला करता है। इससे कै भी आ जाती है। क़ानून और उसके भाष्योमे लिखा है कि यह चिरज सधिशूल मे लाभकारी है। वायुको विलीन करता है और इन्द्रलुप्त विशेप (दाउस्सालब) तथा दद्रुको लाभ पहुँचाता

है। नया और तीक्ष्ण तेल उत्तम होता है। इसमे लेखनीय वीर्य और सूजन उतारनेवाली गरमी है। इससे मस्से और फोडे-फुन्सी के चिह्न जाते रहते है। यह वातनाडियोको मुलायम करता और खुजलीको नष्ट करता है। वातग्रस्त और सुप्त (मुन्न) अग पर इसके मर्दनसे उपकार होता है। इसे चर्बीमे मिलाकर कानमे टपकानेसे बाधिर्य (तर्श) जाता रहता है। इसके मर्दनसे सर्दीका दर्द, प्रसेक और मस्तिष्ककी सर्दी जाती रहती और मस्तिष्क गरम रहता है। इसके नस्यमे सर्दीका आधासीसी आराम होता है। **अहितकर**–आमाशय, वक्ष और उष्ण प्रकृतिको। निवारण–आमाशयके लिये इसके पीनेसे पूर्व अनीसूँ खा लेवे। वक्षके लिये इसे कतीराके साथ उपयोग करना चाहिये। प्रतिनिधि–जिफ्त तर।

●

(२०४) गारीकून

नाम—(भा० बाजार) गारीकून, (प०) कीआईन, (हिं०) छत्री, (यू०) अगारिकोन (Agarikon), (अ०) अगारीकून, गारीकून, गारीकून अन्यज, गारीकून तिब्बी, (फा०) गारीकून सफेद (मुसहिल-सनोबर), (का०) जगली वलगर, (लें०) १ **आगारिकुस आल्बुस Agaricus albus** (*Family Agaricaceae*), २ **पोलिपोरुस आफ्फीसिनालिस Polyporus officinalis** Fries (*Family Polyporaceae*), (अ०) लार्च एगैरिक (Larch Agaric), पूर्जिग या ह्वाइट एगैरिक (Purging or White Agaric)।

वक्तव्य—**सरमाशिया** (Sarmatia) प्रदेशांतर्गत '**अगारिका**' नामक स्थानमे यह औषधि विपुल होती थी, इसीलिये यूनानीमें 'अगारीकोन' नामसे प्रसिद्ध हो गई। इसीसे '**अगारीकून**' अरबी बनाया गया। इसका 'अ'कार हटा देनेसे 'गारीकून' रह गया। अरबी यूनानी-वैद्यकीय ग्रंथोमें इसी नामसे इसका उल्लेख मिलता है। बाजारोमे भी यह इसी नामसे मिलता है।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह खुमो (फितर)की जातिकी एक पराश्रयी क्षुद्र वनस्पति है जो दक्षिण और मध्य यूरोपमे सनोबर (चीड)के पुराने वृक्षो पर उत्पन्न हो जाती है। बाजारमे यह सफेद विषम टुकडोके रूपमे प्राप्त होती है जो वजनमे हलके, ऊपरी त्वक्‌रहित, किसी प्रकार ततुल और स्पजवत् होते है। गध अत्यन्त सूक्ष्म होती है। स्वाद पहले मधुर और पीछे (अम्ल) तिक्त एव चरपरा होता है। जब इसको बारीक तारोकी चलनीसे छान लिया जाता है, तब उसको **गारीकून मुग़र्बल**(चलनीसे चाला हुआ) कहते है। औषधमे यही काम आता है। **नकली और असली की परीक्षा**–छना हुआ गारीकून सफेद, हलका और कमजोर होना चाहिये। यदि सफेद और हलका न हो तो नकली या मिश्रणयुक्त समझे। असली स्वादमे कुछ मधुरता लिये कडुआ होता है। दूसरी परीक्षा यह है कि जलमे खूब भिगोने और मिला देने पर यदि पानी पर ठहर जाय तो असली और यदि तलस्थित हो जाय तो नकली समझे (**गजवादावर्ड**)।

रासायनिक सगठन—इसमे **एगेरिसिन** (Agaricin) या **एगेरिक एसिड** (Agaric acid) नामक एक तत्त्व होता है जिसके अत्यन्त सूक्ष्म सफेद चमकदार रवे होते है। ये शीतल जलमें तो स्वल्पविलेय, किन्तु उष्णजलमे सुविलेय होते है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और दूसरेमे खुश्क है।

गुणकर्म—गारीकून सान्द्रदोषविरेचन, छेदन, अवरोधोका उद्‌घाटन करनेवाली दोषोमे तरलता उत्पन्न करनेवाली, रक्तस्राग्राहिक, रक्तस्तभन, छर्दन, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। विशेषकर यह सौदा और कफविरेचक है।

उपयोग—गारीकूनका एक छेदन और विरेचन ओषधकी भाँति आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, मृगी, श्वास, कास, अवरोधजन्य कामला, जलोदर, फुलज(शूल) कफज्वर, रक्तष्ठीवन और राजयक्ष्मामे उपयोग करते है। सिकंज-बीनके साथ इसे प्लीहाशोथमे देते हैं। अहितकर—कण्ठशोथ और आकुलताकारक है। निवारण—ताजा दूध और जुदवेदस्तर। प्रतिनिधि—इन्द्रायन का गूदा। मात्रा—०.५ ग्रामसे २ ग्राम (४रत्तीसे २ माशे) तक।

●

(२०५) गावजवान

फैमिली : बोराजीनासे (Family · Boraginaceae)।

नाम—(फा०, हिं०, म०,गु०, भा० बाजार) गाव (अ)जवान, (अ०) लिसानुस्सौर, (सं०) गोजिह्वा, दर्वीपत्रा, खरपत्रा, गोजी,(१)(प०) काजवां, (क०) काहजवान, (सि०) गाजवां; (ले०) काक्सीनिआ ग्लाउका (**Caccinia glauca** Savi)।

वक्तव्य—फारसी 'गावजबान'का अर्थ (गाव = वृष या गो, जबान = जिह्वा) 'गोजिह्वा' और अरबी लिसानुस्सौरका अर्थ (लिसान् = जिह्वा, सौर = वृष) 'वृषजिह्वा' है। प्राचीन यूनानी और रूसी वैद्योंने बोग्लोस्सूस (Bouglossos) नामक जिस औषधिका वर्णन किया है, उस 'बग्लोस (Bugloss)'को दीसकूरीदूसके भाष्यकार मार्सेलस वर्जिलिअस (Marcelus vergilius)ने सबल प्रमाणो द्वारा 'बरॉज (Borage, Burrage)' सिद्ध किया है। यह दोनो ही अर्थात् (१) बग्लोस, वाइपर्स बग्लोजया एक्यूबीउ (**Echium vulgare** Linn) जिसका फूल नीला और बीजकी आकृति सर्पमुखाकार होती है तथा कॉमन बग्लोस (**Lycopsis arvensis** Linn) जिसका फूल नीला होता है और (२) बरीज (**Borago officinalis** Linn) जिसका फूल नीला ही होता है, श्लेष्मातक-कुलके उद्भिज्ज हैं। सुतरा इनमे आकृति एव गुणसाम्य पाया जाता है। इसलिये पृथक् होनेपर भी इनका एक दूसरेके लिये प्रयोग होने जैसी भूल हो सकती है। फॉर्स्कह्ल (Forskahl)ने बरीज का समन्वय अरबोंके लिसानुस्सौरके साथ किया है। अन्यान्य फारसी लेखकोंके सहित मख्जनके लेखक यह स्वीकार करते है कि पारस्यवासियोका गावजबान और यूनान तथा रोमवासियोका बग्लॉस एकही द्रव्य है। मख्जनुलअदविया और तोहफ़तुल्मोमिनीनके लेखकोंने इसके एक छोटे भेदका भी उल्लेख किया है जिसका फूल नीला (लाजवर्दी) और छोटा एव गोल होता है। यह सभवत औंधाहुली अथवा उसकी ही कोई अन्य प्रजाति (Trichodesma) है। इस प्रजातिकी यह दो जातियाँ ट्रीकोडेस्मा इंडिकुम् (**Trichodesma indicum** Br) और ट्रीकोडेस्मा जीलानिका (**T. zeylanica** Br) सभवत औंधाहुली(अधोपुष्पी) भारतवर्षमें भी होती है। सिंध मे इन्हे 'गावजबान' कहते है। सिंध और पजावमे फारसी गावजवान के स्थानमे इनका उपयोग होता है। इनके अतिरिक्त इस कुलके कतिपय निम्न जातिके क्षुप भी गावजवानके प्रतिनिधिस्वरूप व्यवहार किये जाते है, जैसे—(१) ओनोस्मा ब्रेक्टिएटम् (**Onosma bracteatum** Wall)। यह हिमालयमे कश्मीरसे कुमाऊँ पर्वतपर होता है। (२) मैक्रोटोमिआ बेन्थमाई (**Macrotomia benthami** DC)। यह कश्मीर, पजाब आदि प्रातो मे होता है।

उत्पत्तिस्थान—फारस और बलूचिस्तान।

वर्णन—यह एक बडा बहुवर्षायु क्षुप है जिसका तना पाताली (Rhizome) काला, काष्ठमय, १ से २ इच व्यासका और एक ग्रथिल शीर्षमे अत होता है जिससे कडे सफेद, चूर्णोपम हृष्ट रोमोसे युक्त और चूना जैसे सफेद क्षुद्र अर्बुदोसे घनावृत अनेक कोणाकार (नुकीले) काड फूटते है। पत्र जो बहुत मासल, मोटा, सपूर्ण, सवृत २०से०मी०(८ इच) लम्बा और ११ २५ से०मी० (४½ इच) चौडा, और लट्वाकार-लम्बाग्र गोजिह्वाकी आकृतिका होता है, पत्रप्रात किंचित्

तरंगायित होता है, काडपत्र ११ २५ सें० मी० (४½ इंच) लम्बा और ५ सें० मी० (२ इंच) चौडा होता है, पत्रके उभय पृष्ठ कडे, सफेद और चूर्णोपम प्रहृष्ट रोमोको पश्रय देनेवाले, चूना या सावूदाना जैसे सफेद, क्षुद्र अर्बुदोसे घनावृत होते है। पत्रका स्वाद फीका और लवावदार होता है। पुष्पाग्र वृश्चिकाकार और सशाख तथा कडे सफेद हृष्ट रोमोसे घनावृत होता है; वृन्तपत्र (पौष्पिक पत्र) भालाकारसे रेखाकार-भालाकार, हृष्टरोमयुक्त, पुटचक्र (Calyx) १.२५ सें० मी० (½ इञ्च) लम्बा, पचधा चीरित (5-partite), खण्ड (Segments) रेखाकार-भालाकार, हृष्टरोमयुक्त, पुष्पवान् क्षुपका पुष्पवृन्त अतिक्षुद्र, वीज पडने पर १ २५ सें० मी० (½ इञ्च) तक लम्बा और चूना जैसे सफेद चित्तियोसे जटित हो जाता है, गर्भकेशर (Pistil) लोमश, द्वि-शीर्ष, पुटचक्रसे दूना लम्बा, दलचक्र (Corolla) ३ ७५ सें० मी० या १½ इञ्च लम्बा, नीलवर्ण, ग्रीवापर ½ इंच चौडा, फुलेलाकार लगभग द्वयोष्ठीय, वाहरसे लोमश, ५-खण्डयुक्त, दोनो ऊर्ध्वखण्ड सर्वाधिक लम्बे, दलचक्रग्रीवा मसृण (Glabrous), नग्न, पुंकेशर (Stamens) पाँच, मिलित, कुछ लम्बे, पुंपरिलिंग-मध्यवर्ती रोम नरम, फल लम्बोतरे झुर्रीदार वादाम आदिकी तरहके कडे छिलके और एक-एक वीजकोषयुक्त फलो (Nuts)का समाहार है। यह ⅙ से ⅛ इञ्च लम्बा, ⅛ इञ्च व्यासके अस्थिमय प्यालानुमा फलाधारपर स्थित होता है। वीज (तुख्मे गावजवान) छोटे-छोटे, गोल और जरा लम्बे खाकी सफेद रंगके, खुरदरे, कडके वीजकी तरह, परन्तु उससे कुछ पतले होते है। भिगानेसे इनसे भी कुछ लवाव निकलता है। देर तक रहने पर इसके फूलोका गहरा नीला रग कुछ-कुछ लाल रगमे परिणत हो जाता है। वाजारमें इसके पत्र (वर्ग गावजवान) और पुष्प (गुले गावजवान) सर्वत्र मिलते है।

रासायनिक सगठन—पत्रोको जलमे भिगोनेसे पुष्कल लुआव (पिच्छा) उत्पन्न होता है, जो स्वादमे कुछ खारा होता है और एक प्रकारका नाइट्रोजनी पदार्थ है। इसके क्षुप (पचाग)की राखमें सज्जीखार ९½%, यवक्षार १४⅓%, मैग्नेशिया २⅓%, चूना ६७% और लोह १ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, पचाग, वीज और फूल (गुल गावजवान)। मात्रा—पत्र ५ से ७ ग्राम (५–७ माशा), पुष्प ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा)।

कल्प तथा योग—अर्क गावजवान (अवरी), शर्वत गावजवान, खमीरा गावजवान (सादा), खमीरा गावजवान, खमीरा गावजवान अवरी जवाहरवाला, खमीरा गावजवान जवाहरवाला, खमीरा गावजवान जदवार ऊदसलीववाला, खमीरा गावजवान जदवारी आदि।

प्रकृति—ताजा गावजवान पहले दर्जेमें गरम और तर, तथा शुष्क गावजवान रूक्षता (खुश्की) लिये गरम है। आयुर्वेदके मतसे गोजिह्वा शीतवीर्य है।

गुण-कर्म—गावजवान सौमनस्यजनन, सारक, हृद्य, उत्तमागोंको वलप्रद और श्लेष्मनि सारक है।

उपयोग—गावजवानके पत्र (वर्ग गावजवान) और पुष्प (गुले गावजवान) मद (मालिन्खोलिया) उन्माद, सौदावी हृत्स्पन्दन जैसे व्याधियोमें सौमनस्यजनन और हृदयको वल देनेके लिये उपयोग किये जाते है। अकेला या उपयुक्त अन्य औषधियोके साथ गावजवानका क्वाथ शीतल प्रसेक, प्रतिश्याय, कास, श्वास और उर-स्वरत्वको निवारण करनेके लिये पिलाया जाता है। गावजवानको जलाकर वनाई हुई मसीको वारीक पीसकर वालकोके मुखपाकमे दाहशमन करनेके लिये और व्रणोको सुखानेके लिये छिडकते है। इसका खमीरा और अर्क वनाया जाता है जिनका उपयोग सौमनस्यजनन और वलवर्धनके लिये होता है। अहितकर—प्लीहाको। निवारण—सफेद चदन। प्रतिनिधि—विजौरेका छिलका, अधोपुष्पी भेद (Trichodesma zeylanica R Br)।

आयुर्वेदीय मत—गोजिह्वा (गावजवान) कषाय, तिक्त, मधुर, मधुरविपाक, लघु, शीतवीर्य, वातल, ग्राही, हृद्य तथा कफ, पित्त, कास, अरुचि, श्वास, प्रमेह, रक्तविकार, व्रण और ज्वरको दूर करनेवाली है। (कै० नि०)।

नव्यमत—रसायन, बल्य, मूत्रजनन, रक्तप्रसादन और स्निग्ध है तथा आमवात, काय, हृत्स्पदन (धडकन) तथा फिरगमें इसका उपयोग होता है।

गावजबान क्षारस्वभावी, मूत्रजनन और स्नेहन है। विषमज्वरमे शीत लगने पर इसको आसवके साथ देते हैं। उपदश और पूयमेह (सूजाक)से उत्पन्न सधिशोथमे इसे चोपचीनीके साथ देते हैं। इसके फाटसे मूत्रका प्रमाण बढता है। हृत्स्पन्दन और मूत्रकृच्छ्रमे फाट देते हैं।

(२०६) गिलोय

फैमिली : मेनिस्पेर्मासे (Family Menispermaceae)

नाम। लता—(हि०) गिलोय, गुरुच, (सं०) गूडूची, अमृता, (द०, म०,) गुलवेल, (व) गुलच, (गु०) गळो, (कच्छ) गडू, (ते०) तिप्पतीगे, (मल) पैट्यमृतम्, चिट्टामृतम्, (क०) अमरदवल्लि, (को०) गरुडवेल, (सि०) गिलोर, (लै०) टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिआ **Tinospora cordifolir** (Willd) Miers, (अ०) गूलचा (Gulancha)। गिलोयका सत–(फा०, हिं०) सतेगिलो, (स०) गूडचीसत्व, (हिं०, द०) गुरुच (गुलवेल)का सत, (व०) पलो, (अं०) एक्स्ट्रैक्ट ऑफ गुलच (Extract of Gulancha)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष।

वर्णन—गिलोयकी बहुवर्षायु, मासल और बडे वृक्षो पर चढनेवाली बडी लता होती है। पत्र एकान्तर, मसृण और हृदयाकृति, काडसे अवरोहमूल निकलते है, फूल छोटे, पीले रगके गुच्छोमे लगते है। फल पकनेपर लाल रगके और मटरके बराबर गोल होते हैं। काण्डकी अन्तस्त्वचा हरे रगकी और मासल होती है। बाह्यत्वचा सफेदी लिये हुये भूरे रगकी होती हैं। काण्डको काटनेसे भीतरका भाग चक्राकार दिखता है। औषधके लिए नीमपर चढी हुई गिलोय (नीम गुरुच) उत्तम समझी जाती है।

रासायनिक सगठन—इसमें (१) अत्यल्प प्रमाणमे एक अस्फटिकीय तिक्त ग्लूकोसाइड, (२) अत्यल्प प्रमाणमें बर्बरीन और (३) पुष्कल पिष्टमय पदार्थ (स्टार्च) जिसे 'सत गिलोय' कहते है, प्रभृति उपादान पाये जाते है। सत गिलोय आटेकी तरह दिखता और किंचित् तिक्त होता है। वक्तव्य–बाजारू सतगिलोय साधारण श्वेतसार (स्टार्च)के सिवाय और कुछ नही होता। इसके निर्माणके सबधमे यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान ग्रथका पूर्वार्ध भेषजकल्पनाखड देखे।

उपयुक्त अग—काण्ड। इसे ग्रीष्मऋतुमे वर्षाके पूर्व सग्रह करना चाहिए। जहाँ तक बने गिलोय ताजी काममें लेनी चाहिए।

कल्प तथा योग—सत गिलोय, शर्बतगिलोय, हब्बगिलोय, सफूफ सतगिलोय शिलाजीतवाला।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और खुश्क, मतातरसे सम्मिश्रवीर्य (परस्परविरोधीवीर्य) हैं। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) मतान्तरसे शीत एव रुक्ष है।

गुण-कर्म—दीपन, ग्राही, बल्य, ज्वरनाशक, कृमिघ्न, रक्तप्रसादन, मूत्रल तथा शुक्रप्रमेह (जिरयान) और सूजाकमे लाभकारी है। उपयोग–हरी एव ताजी गिलोय ज्वरके समस्तभेदो, यहाँ तक कि दोष सम्मिश्रज्वरो (हुम्म-यात मुरक्कबा मुज्मिना) और राजयक्ष्माके लिए क्वाथ और फाटके रूपमें प्रयुक्त होती है। यदि हरी गिलोयका रस

निकालकर उपयोग किया जाय, तो वह अधिक गुणकारी होता है। सग्राही होनेके कारण चिरज अतिसार और रक्तातिसारको वन्द करनेके लिए इसका उपयोग कराते हैं। सूजाक और प्रमेहमें भी यह अकेली या उपयुक्त औषधियोके साथ प्रयुक्त होती है। रक्तशोधक होनेके कारण त्वचाके रोगो, फिरग और कुष्ठरोगमें इसका उपयोग कराते हैं। तिक्त होनेके कारण उदरजकृमियोको नष्ट करनेके लिए इसे पिलाते हैं। इसका (सतगिलोका) भी ज्वरोमे उपयोग किया जाता है। यह मोतदिल (अनुष्णाशीत) है और गुणधर्ममे गिलोयके समान है। अतिहकर–वहुत अहितकर नही हैं। निवारण–वशलोचन और इलायचीका दाना। प्रतिनिधि–सतगिलोय। मात्रा–क्वाथ या फाटमे १ तोला से २ तोले तक, गिलोयका स्वरस (काण्ड और पत्रको कूटकर निकालना हुआ) २४ ग्राम से ३६ ग्राम (२ तोले से ३ तोले) तक और सत्व ० ६ ग्राम से २ ग्राम (५ से १५ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—गुडूची रसमे तिक्त, कुछ कषाय, गुरु, उष्णवीर्य, ग्राही, दीपनीय, रक्तशोधन, विवन्धप्रशमन, वातपित्तकफहर, तृतिघ्न, तृषानिग्रहण, दाहप्रशमन, वय स्थापन, रसायन और ज्वर, वमन वातरक्त, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामला, श्वेतप्रदर तथा भ्रमको दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, २५, २७, च० चि० अ० १, ३, १६, सु० सू० अ० ३८, ४६, रा० नि०)।

नव्यमत—गुरुच कटुपौष्टिक, पित्तसारक, सग्राहक, त्वग्रोगहर, मूत्रजनन और ज्वरहर हैं। यह उत्तम मूत्रजनन और मूत्रविरजनीय है। इस कार्यके लिए इसे वडे प्रमाणमे देना चाहिये। सभी प्रकारके प्रमेहमे इसका स्वरस या सत्व देते हैं। वस्तिशोथमें वहुत गुणकारक है। मूत्रेन्द्रियके अभिष्यन्दप्रधान रोगोमे इसके साथ पाठा भी देना चाहिये। नये सूजाक (औपसर्गिक पूयमेह)में इसका स्वरस देनेसे मूत्रका दाह कम होता है और प्रमाण वढता है। सभी प्रकारके प्रमेहमें दो से तीन ड्राम इसके स्वरसमे पाषाणभेदका चूर्ण (५ से ८ रत्ती) और मधु मिलाकर देते हैं। त्वग्रोगो (कुष्ठ)में यह प्रधान औषधि है। इससे त्वचाकी कण्डू और दाह कम होते हैं। इससे भूख लगती, अन्न पचता तथा रक्त वढता है और शक्तिमेवृद्धि होती है। ज्वर अथवा अन्यरोगके पश्चात् जो दुर्वलता होती है, उसमे इसे देते हैं। इससे पित्तका स्राव भली-भाँति होने लगता है तथा यकृत्की पित्तवाहिनियोका और आमाशयके भीतरकी श्लेष्मलकलाका अभिष्यन्द कम होता है। इसलिए कुपचन, पेटका हलका दर्द और कामलामे इससे लाभ होता है। जीर्ण अतिसार तथा आँव और अम्लपित्तमें इसका सत्व हितावह है। इससे पचननलिकाकी अधिक अम्लता कम होती है। इसका मिश्रित फाट उत्तम रसायन है। इससे जीर्ण आमवात और फिरगोपदशकी द्वितीयावस्थामे उत्तम लाभ होता है।

गुरुचका मिश्रित फाण्ट—१० तोले ताजा गुरुचको धो और पीसकर वनाया हुआ कल्क तथा १० तोले अनन्तमूलका चूर्ण दोनोको १०० तोले उवलते हुए पानीमे डाल, पात्रको वन्द करके दो घटे रख छोडे। पश्चात् हाथसे मसलकर कपडेसे निचोड लेवे। मात्रा–५ से १० तोला दिनमे तीन वार देवे। यह फाण्ट उत्तम रसायन और मूत्रजनन है।

●

(२०७) गुआर, गुआलिन

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) गुआर (ग्वार), गुआलिन (ग्वालिन), भटफली, खुरथी, कौरी, (स०) गोराणी, दृढबीजा, गोरक्षफलिनी–(अभि०), (गु०) ग्वार, (म०) गोवारी चा शेग, (वम्व०) गौरी, (ले०) सिआमाप्सिस टेट्रागोनोलोबा (**Cyamopsis tetragonoloba** (L) Taub (पर्याय–*C Psoralioides* DC)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके बहुतसे भागोमे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक वार्षिक पौधा जिसकी फलियोकी तरकारी और बीजोकी दाल होती है।

प्रकृति—शीत लिए हुए अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सारक (मतातरसे सग्राही एव आध्मानकारक) तथा पित्तप्रकोप और नेत्रान्ध्यरोगमे उपकारक है। यह बृहण, वाजीकर, वातकारक, शुक्रजनक, रक्तोद्वेगकारक, ज्वररोगी एव दर्दके लिये हानिकर और कफवर्धक है। इसका निवारण हरी धनियाँ है। आयुर्वेद मतसे यह मधुर, शीतवीर्य, रुक्ष, पचनेमे भारी (गुरुपाकी), कफजनक, उष्णतावर्धक और पित्तनाशक है। पित्तातिसार मिटानेके लिए इसका काढा पिलाना चाहिए। इसके पत्ते पित्तनाशक है। चोट या मोचकी सूजनपर तिल और गुआरकी फलीको कूट-पकाकर बाँधना चाहिए। पत्तोका रस आँखमे लगानेसे रतौधी दूर होती है। इसके पत्तोको पकाकर खानेसे भी रतौधी मिटती है। दुर्बल एव बादीके रोगवालेको इसकी फलियाँ पकाकर नही खाना चाहिए, क्योकि इससे उदराध्मान एव वायुजन्य पीडा उत्पन्न हो जाती है। इसकी कच्ची नरम कलियोको तोड सुखाकर रख छोडते है और जब चाहते है, तेल या घीमे तलकर नमक-मिर्च छिडककर खाते है। (ख० अ०)।

(२०८) गुग्गुल (गूगल)

फ़ैमिली : बर्सेरासे (Family Burseraceae)

नाम—(हिं०) गुग्गुल, गूगल, (यू०) ब्डेल्लिओन (B lellion), (अ०) मुक्ल (मुक्लि), मुक्ल-अर्जक, अफ्लात (तू) न, (फा०) बूए जहूदान, (स०) गुग्गुलु, कौशिक, (ब०) गुग्गुल, (क०) काण्ठगण, (सिध) गुगरु, गुगर, (द०) गूगल, (म०, गु०) गुगल, (लै०) कोम्मीफोरा वाइटिई, **Commiphora wightii** (Arn) Bhandari (पर्याय—*C Roxburghii* (Stocks) Engl , *C mukul* (Hook ex Stocks) Engl , *Balsamodendron mukul* (Hook ex Stocks), (अ०, ब्डेलियम् (Bdellium)।

वक्तव्य—लेटिन नाम गूगलके वृक्षका है। पहले स्वीकृत लेटिन नाम 'कोम्मीफोरा मुकुल' एव 'बाल्सामोडेन्ड्रॉन मुकुल'मे जातीय नाम (Specific name) गूगलके अरबी नाम 'मुक्ल'पर आधारित है। कहते है कि गुग्गुलके वृक्षको अरबीमे 'दौम' या 'दूम' और फलको मुक्लमक्की या मुक्लुद्दूम कहते है। परन्तु प्राचीनोके लिखित दूमवृक्ष और उसके फल (मुक्लमक्की)के विवरणसे गुग्गुलके विवरणका मेल नही खाता। अस्तु, इन दोनोको एक मानना शस्त्रसम्मत और ठीक नही है। 'दूम' के वृक्ष मक्काके आसपास होते है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके सिध, कच्छ, काठियावाड, बरार, खानदेश, मारवाड, राजस्थान, सिलहट, आसाम, मैसूर तथा पूर्व बगाल आदि प्रदेश। अरब और अफरीकामे भी गूगल होता है।

वर्णनादि—यह एक छोटे कँटीले वृक्षका गोद है जो तिक्त और आकार, स्थान एव रगभेदसे कई प्रकारका होता है। जैसे—(१) मुक्ले अर्जक–यह ललाई लिये होता है, (२)मुक्ले यहूद–यह पिलाई लिये (कुछ-कुछ पीला) होता है, (३) मुक्ले सक्लाबी (सकालबी)–यह भूरा होता है, (४) मुक्ले अरबी–यह यमनमे पैदा होता तथा ललाई लिये भूरा या बैगनी होता है और (५) मुक्लेहिंदी–यह हिंदुस्तानमे होता है। उत्तम वह है जो शुद्ध, चमकीला, चिपकनेवाला (चिमचोड), नरम, मधुरगधी, कुछ पीला और तिक्त हो, पानीमें शीघ्र घुल जाय तथा लकडी, रेत और मिट्टी आदि अपद्रव्योसे शुद्ध हो। इसमे २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

नामान्यतः आजकल बाजारमें गूगलकी दो जातियाँ मिलती हैं (१) कणगूगल और (२) भैंसा (महिषाक्ष) गूगल। कणगूगल मारवाड़में होता है और उसके ललाई लिये हुये पीले रंगके गोल दाने होते हैं। यह भैंसागूगलसे नरम होता है। भैंसागूगलका रंग हरापन लिये पीला होता है। यह सिंध, कच्छ आदि में होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तैल, रालदार गोंद (Gum-resin) और एक तिक्त सत्व प्रभृति होता है।

उपयुक्त अंग—निर्यास (गूगल)।

मिश्रण और उसकी परीक्षा—इसमें मुरमक्की (बोल) मिला देते हैं। भेद यह है कि गुग्गुल चिपकती है, परन्तु बोल चिपकता नहीं। गुग्गुल स्वच्छ होता है, परन्तु बोल इसके विपरीत अस्वच्छ होता है। मजयादावर्द में इसकी पहिचान यह लिखी है, "इसको कूटकर सूँघे. यदि इसमें आसी-सी गंध हो, रंग लाल हो और कड़ा हो तो निकम्मा समझें; क्योंकि खालिसमें गंध नहीं होती, रंग नीलापन, वजन भारी और हरेके सदृशमें होता है। स्वाद में थोड़ा-सा कषाय (कसैला) होता है। इसको शुद्ध करके औषधके काममें लेना चाहिये।"

कल्प तथा योग—अतरीफल मुक्ल, अतरीफल मुक्ल मसृणिका, माजून मुक्ल, माजून योगराज गूगल, हब्ब मुक्ल आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्मविलयन, सर, दोषपाचन, कफविरेचन, उष्णताजनन, लेखन, वातानुलोमन अर्शोघ्न, स्रोतोगत रक्तस्तम्भन, मूत्र और आर्तवजनन, रगड़ (घर्षण)को रोकनेवाला (मानेअ सहज्ज), वृक्काश्मरीछेदन और वाजीकर है। श्लेष्मविलयन होनेके कारण गुग्गुल समस्त अन्तर्बाह्य कठिन शोथों और आशय (अहशाऽ) शोथके लिये पान और लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। यहाँ तक कि कंठमाला और प्लेगकी ग्रंथियोंपर इसका लेप किया जाता है। इससे वे बैठ जाती या पककर फूट जाती हैं। कफपाचन और विरेचन तथा उष्णताजनन होनेके कारण यह समस्त शीतल कफज रोगों, जैसे—अर्दित, पक्षाघात, आमवात, वातरक्त और गृध्रसी आदिमें उपयोग किया जाता है। श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण कास और कफज श्वासकृच्छ्रमें तथा रक्तस्तम्भन होनेसे रक्तष्ठीवनमें खिलाया जाता है। साद्र वायुको विलीन करने और आमाशय तथा वाजीकरण शक्तिको बल प्रदान करनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। वातार्श तथा रक्तार्श और चिरज अजीर्ण (रीहुल् बवासीर)में यह पुष्कल उपयोग किया जाता है। सुतरां इसको बवासीरकी गोलियों और माजूनोंमें सम्मिलित करते हैं। उपयुक्त औषधियोंके साथ अर्शाङ्कुरोंको शिथिल करनेके लिये इसका लेप लगाते तथा इसकी धूनी देते हैं। उष्ण विरेचन औषधियोंकी गोलियोंमें उनके दोषपरिहार के लिये इसको इसलिये योजित करते हैं जिसमें अन्त्र रगड़ (सहज्ज)से सुरक्षित रहे। लेखन होनेके कारण दद्रुपर अकेला या अन्य औषधियोंके साथ इसका लेप करते हैं। आर्तवप्रवर्तन और अपरापातन (आविजनन)के लिये पेय और फलवर्ति (हमूल)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—यकृत् और फुफ्फुसको। निवारण—कसीरा और केसर। प्रतिनिधि—एलुआ, पीला एलुआ (सिब्र जर्द) और बोल। मात्रा—१ ग्राम से १ ५ ग्राम (१ से १½ माशे या ८ रत्ती से १२ रत्ती, तक।

आयुर्वेदीय मत—गूगल रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, सुगन्धि, लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल, रसायन, हृद्य, सर, त्रिदोषहर, भग्नसंधानकर, अग्निदीपन, व्रण तथा कफरोग, वातरोग, कास, कृमि, उदर, प्लीहाके रोग, शोथ, अर्श, प्रमेह, मेदोवृद्धि, कुष्ठ, आमवात, विद्रधि, ग्रन्थि, अपची और गण्डमालाका नाश करनेवाला है। नया गूगल बृंहण और वृष्य है तथा पुराना गूगल कर्षण (लेखन) है। (सु० सू० अ० ३८, सु० चि० अ० ५, रा०नि०)।

नव्य मत—गूगल रसायन, दीपन, स्नेहन, स्रंसन, वातहर, कफहर, कोष्ठवातप्रशमन, आर्तवजनन, रक्तके श्वेतकणोंको बढानेवाला, रक्तवर्धक, श्लेष्मल त्वचाके लिए उत्तेजक, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और शोथघ्न

है। इसके अतिरिक्त यह उत्तेजक, रोगजन्तुघ्न, दुर्गन्धहर और कफघ्न है। इसलिए जब पुरानी खासीमे अतिशय गाढा और दुर्गन्धयुक्त कफ निकलता है, तब इसे पीपल, वासा, शहद और घीके साथ मिलाकर देते है। अशक्त और मध्यम अवस्थाके मनुष्यको इसे लोहभस्मके साथ देते है। यह दीपन और आनुलोमिक है, इसलिये कुपचन और मलावष्टम्भमे विशेष करके जब आमाशय और आँतोमे शिथिलता हो तब इसे सुगन्धित द्रव्य, इन्द्रजव, एलुवा और गुडके साथ मिलाकर देते है। यह रक्तशोधन है तथा इससे समस्त शरीरको उत्तेजन एव बल मिलता है। इसलिये उपदश, सूजाक और जीर्ण आमवातमे इसका उपयोग करते है। गण्डमालामे इससे बहुत लाभ होता है। इन रोगोमे यह रक्तके श्वेत कणोको बढाता है और श्वेतकण बढने से लाभ होता है। गण्डमालामे पारा (रससिन्दूर), सखिया और वायविडगके साथ और उपदश मे सारिवा (अनन्तमूल)के साथ देते है। जीर्ण आमवातमे अथवा सूजाकसे जो सधिशोथ होता है उसमे शिलाजीतके साथ खिलाते है और इसका लेप करते है। पुराने सूजाक और वस्तिशोथमें गुरुचके काढेके साथ इसे देते है। खानेको देनेपर यह त्वचा द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और बाहर निकलते समय त्वचाकी विनिमयक्रिया सुधारता है। इसीलिये सभी प्रकारके जीर्ण त्वग्रोगोमे इसे देते है और इससे लाभ होता है। इससे त्वचा की कण्डू कम होती है। नीरोग मनुष्य इसका सेवन करे तो त्वचाका रग सुधरता है। यह गर्भाशयके सकोचविकासको भी कम करता है। जवान स्त्रियोके अनार्तवमे गूगल, एलुवा और कसीसकी गोलियाँ बनाकर देते है। गर्भाशयसे कभी-कभी चिकने पदार्थका स्राव होता है और इससे स्त्रीको वन्ध्यात्व आता है। उक्त अवस्थामे इसे रसौतके साथ मिलाकर देते है। रक्तमे जैसे-जैसे श्वेतकण बढते है वैसे-वैसे रक्तकण भी सुधरते है। श्वेतकण बढनेसे जैसे रोगोत्पादक जन्तुओका नाश होता है वैसे ही रोगीकी तेल-घी आदि स्निग्ध पदार्थ पाचन करनेकी और उनको रक्तमे शोषण करनेकी शक्ति भी बढती है। इसलिये पाण्डुरोग मे इसे लोह और सुगन्धि द्रव्योके साथ देते है। इसे कुट और घी मे मिलाकर बनाए हुए मरहमसे व्रणका उत्तम शोधन और रोपण होता है। इसे गरम पानीमे पीसकर दिनमे दो-चारबार लेप करनेसे क्षयरोगके जन्तुओसे होनेवाली ग्रन्थियाँ जिनको गण्डमाला (अपची) कहते है उनमे उत्तम लाभ होता है। दिल्लीसोर (Delhi Sore)मे गूगल, गन्धक, सुहागा और कत्थे का मलहर लगानेसे लाभ होता है।

●

(२०९) गुडमार

फ़ैमिली आस्क्लेपिआडासे (Family Asclepiadacae)

नाम—(हिं०) गुडमार, मेढासिगी, (स०) मेपश्रृंगी, मधुनाशिनी—(नवीन), (व०) मेपसिगी, मेढाशिगे, (ते०) पोडपत्री, पुडपत्र, पुडपत्रम् (मुहीत), (द०, म०) परपत्राह, (बम्ब, म०) कावली, (ले०) जीम्नेमा सील्वेस्ट्रे (**Gymnema sylvestre** (Retz) Schult), (अ०) पेरिप्लोका ऑफ दी वुड्स (Periploca of the woods), स्मॉल इन्डियन इपीकाकुआन्हा (Small Indian Ipecacuanha)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्पके उष्णप्रदेश।

वर्णन—इसकी काष्ठीय परन्तु पतले-पतले काडकी चक्रारोही लतायें होती है। शाखायें या टहनियाँ रोमश होनेके कारण प्राय पीताभ, पत्तियाँ अडाकार आयताकार, या लट्वाकार कभी-कभी हृद्वत् और २ ५ से ५-७ ५ सें० मी० (१-२ इञ्च कभी-कभी ३ इञ्च) लम्बी होती है। पत्तियोको चबानेसे जीभकी स्वाद और स्वादग्रहणशक्ति नष्ट हो जाती है। इसीसे इसे गुडमार या 'मधुनाशिनी' कहते हैं। स्वाद किंचित् तिक्त। इसकी लकडी (काष्ठ) पत्तोसे वीर्यवान् होती है। इसमे कई वर्प तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, मूल और काष्ठ।

रासायनिक सगठन—जिम्नेमिक एसिड, पत्रमें ऐन्थ्राक्विनोन के योग पाये जाते हैं।

कल्प—चूर्ण, क्वाथ, सुरासव आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुणधर्ममे यह उतरन (Daemia extensa Br) और इपीकाक (Cephaelis ipecacuanha) के सदृश होता है। पत्तियोंका उपयोग मधुमेह (जयाबीतुस शकरी) में होता है। जड कफोत्सारि एव वामक है। सर्पविषमे मूल का क्वाथ दिया जाता है, जिससे वमन और दस्त आते हैं। यह खुजली, दाद, कोढ और खांसीमें उपकारक है। पत्तियोंको कालीमिर्चोंके साथ पीसकर पिलानेसे विषूचिकामें लाभ होता है। इसकी लकडीका चूर्ण चौडे मुँहकी बोतलमें डालकर ऊपरसे भरकर मुँह बद कर देवे और दो सप्ताह रहने देवें। तदुपरान्त बोतलको उलटकर छानकर प्राप्त सुरासवको बोतलमें सुरक्षित रखें। इससे ४ माशे चूर्णसे बने सुरासवको १ मात्रा मानकर इसी प्रकार १-१ मात्रा सर्पदष्ट, अफीम खाये हुये और हैजाके रोगीको पिला देवें। इसी प्रकार यथोचित अन्तर दे-देकर इसका सेवन करनेसे उक्त रोगोका नाश हो जाता है। प्लेगवालेको इस बूटीके सेवनसे सूजन जाती रहती है। खजाइनुल् अद्वियाके लेखकके मतमे ये दोनो प्रयोग श्रीमान् मालवी फर्ज़ी साहबके बारम्बारके अनुभूत हैं। यह गुहेरा और विषखोपडाके विषका भी नाशक है। निवारण—तेल।

०

(२१०) गुड़हल (जपा)

फैमिली माल्वासे (Family Malvaceae)

नाम—(हि०) गुडहल (र), अड (ड) उल, जासून, जवा, (अ०, फा०) अगिरा (—हिंदी), (स०) जपा, जवा, ओड्रपुष्पी, (ब) जवा, जवाफूलेरगाछ, (प०) गुडहल, (म०) जास्वद, (गु०) जासून, (बम्ब०) जासुंद, जासुन, (तै०) दासनमु, (ता०) जपातुपू, (मल०) अयमरुत्ति, शेपरुत्ति, (का०) दासवाल, (लै०) हिबीस्कुस रोज़ासीनेन्सिस् (**Hibiscus rosa-sinensis Linn**), (अं०) शू-फ्लॉवर (Shoe-flower)।

वक्तव्य—लेटिन नाम गुडहलके पेडका है।

उत्पत्तिस्थान—प्राय समस्त भारतीय उद्यानोंमें इनके वृक्ष लगाये मिलते हैं। बागोंकी मेडपर इसकी बाटी लगायी जाती है।

वर्णन—वृक्ष अनारके बराबर और खूब शाखेदार, पत्र शहतूतके पत्रकी तरह किन्तु उससे अधिक छोटे, फूल गुलनारकी तरह, किंतु उससे बहुत बडा, मुलायम एव निर्गंध होता है। सफेद और लाल रंगके फूलके विचारसे इसके दो भेद होते हैं। कहते हैं कि जोगिया, पीले और आसमानी फूलका गुडहल भी होता है। इसकी सुखाई हुई जड बम्बईमें गिरमीकी जडके स्थानमें बिकती है।

उपयुक्त अंग—पत्र, फूलकी कली। मात्रा—३ से ६ ग्राम (३-६ माशे), नस्य।

कल्प तथा योग—शर्बत गुडहल—गुडहलके एक सौ फूलोंको काँच या चीनी-मिट्टीके पात्रमें रख, इनमें २० कागजी नींबूका रस डाल, पात्रको ढाककर रातभर रहने देवे। सबेरे इनको हाथोंसे मसल छानकर

उसमे १ सेर मिश्री तथा गुले गावजबानका अर्क, मीठे अनारका रस और सतरेका रस प्रत्येक २० तोला मिलाकर मदी आँचपर पकावे। जब शर्बत जैसी चाशनी हो जाय तब उसमें कस्तूरी २ रत्ती, अवर ३ माशा, केशर १ माशा अर्कगुलावमे पीसकर मिला देवें। मात्रा–२ तोला किसी योग्य अर्कमे मिलाकर देवे। यह शर्वत दिल और दिमागको शक्ति देता है तथा उन्माद और पैत्तिकज्वरको दूर करता है।

वक्तव्य—शर्वत गुडहलके अन्य योगोके लिए देखे 'यूनानी सिद्धयोगसग्रह और जामेडल् हिक्मत' प्रभृति ग्रथ।

प्रकृति—अनुष्णाशीत (मोतदिल) लिये सर्द व तर।

गुणकर्म—सौमनस्यजनन, हृद्य और ज्ञानेन्द्रियोको बलप्रद, हृद्रोगनाशक और शीतजनन है।

उपयोग—सौमनस्यजनन और हृदयबलदायक होनेके कारण अधिकतया हृद्रोग, जैसे-धडकन, हृदयदौर्बल्य और उन्मादरोगमे इसका उपयोग कराते है। वहुधा इसका फाट, अर्क और शर्वत पिलाया जाता तथा इसका गुलकद खिलाया जाता है। शर्वतगुडहल इसका प्रसिद्ध योग है। हृद्य और मन प्रसादकर माजूनोमें भी इसे प्रयोग करते है। अहितकर–प्रसेकरोगी और शीतप्रकृतिको। निवारण–कालीमिर्च, मिश्री और चीनी। प्रतिनिधि–गुलचाँदनी। मात्रा-५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—गुडहल (जपा) ग्राही, केशके लिए हितकर और रक्तप्रदर का नाश करनेवाला है। इसके फूलोको काली गायके मूत्रमें पीसकर लगानेसे सिरका गज आराम होता है और वाल बढते है। जपाके फूलोकी १०-१२ कलियाँ दूध में पीसकर खानेसे तथा केवल दूध पीकर रहनेसे प्रदर आराम होता है। (रा० मा०, ग० नि०)।

नव्य मत—इसकी कली रक्तसग्राहक, वेदनास्थापन और मूत्रजनन है। प्रमेह और प्रदरमें इसका प्रयोग करते है।

●

(२११) गुल अब्बास

फैमिली : नीक्टाजिनासे Family Nyctaginaceae)

नाम—(हि०) गुलाबाँस, गुलबास, गुलब्बास, (अ०) शबुल्लैली, (फा०) गुले-अब्बास (सी), अब्बास (सी), (द०) गुलाबाश, (व०) कृष्णकेलि, गुलाबास, (म०) सध्याकाली, (बम्ब०) गुल अब्बास, (ले०) मीराबिलिस जालापा (**Mirabilis jalapa** Linn), (अ०) मार्वेल ऑफ पेरू (Marvel of Peru), फोर-ओ-क्लॉक फ्लावर (Four o' clock flower)।

वक्तव्य—इसके अधिकाश भारतीय भाषाओके नाम फारसी नाम पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—उष्णकटिबन्धीय अमेरिका विशेषत पश्चिम भारतीय द्वीप-समूह। अब प्राय यह भारतके अधिकाश भागोमें फैल गया है, तथा अब स्वयजात स्वरूपका भी हो गया है। भारतीय उद्यानो एव रेलकी पटरीके किनारोपर लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—यह लगभग एक गज ऊँचा क्षुप है, जिसे सुन्दरताके लिए घरो और बगीचोमें लगाते है। शाखायें विपुल, नरम और कोमल, इतस्तत और ग्रन्थिपूर्ण, पत्र प्राय त्रिकोण, हृद्वत्, लगभग ३ गिरह लबे फूल–शहनाईकी आकृतिके लाल-सफेद और लाल-पीले रग के तथा निर्गन्ध, बीज (फल) गोल कालीमिर्चकी तरह और झुर्रीदार, मूल बहुवर्षायु स्थूल और कन्दसदृश, नये क्षुपकी जड ऊपरकी ओर बेलनाकार और नीचेकी ओर गोपुच्छाकार,

परन्तु पुराने पौधेकी जड सलगमाकार या अर्धगोल होती है। इसका बाहरी पृष्ठ गहरा भूरा और असख्य वृत्ताकार छल्लोसे युक्त तथा भीतर से मटियाली सफेद या कुछ-कुछ भूरी होती है। यह मद उत्क्लेशगधी और मूल बहुवर्षायु होता है। इससे प्रतिवर्ष वर्षामें नया पौधा फूट पडता है। फूल प्राय सध्याकालमे खिलता है।

रासायनिक सगठन—जडमे अल्पप्रमाणमे एक क्षारोद (ऐल्केलॉइड) होता है जिसे अद्यावधि पृथक् नही किया जा सका है।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प और जड (कन्द)।

प्रकृति—पत्र तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क; फूल अनुष्णाशीत, मूल (कद) दूसरे दर्जेमे गरम और तर तथा बीज शीत एव रुक्ष हैं।

गुणकर्म—पत्र बाह्यत उपयोग करनेसे श्वयथुविलयन, व्रणशोफपाचन और दारण है तथा आतरिक उपयोगसे विरेचन है। फूल अर्शोघ्न है। जड वाजीकरण और रक्तप्रसादन है। बीज ग्राही, उपशोषण और रक्तस्तभन है।

उपयोग—फोडे-फुसियोको विलीन करने तथा उनके पाचन और दारण के लिए अब्बासी पत्रको तेलसे चुपडकर गरम करके बांधते या पीसकर लेप करते हैं। कामला और जलोदरमे इसके पत्रकी भुजिया बनाकर दिनमे दो-तीन वार रोटीके साथ खिलाते है। इससे विरेक आकार रोगजनक दोप-नष्ट हो जाता है। फूलोका चूर्ण अर्शमें खिलाते है। आमवात, फिरग, कण्डू और कच्छूमे इसकी जडका क्वाथ पिलाते है। बाजीकरणार्थ जडका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। श्वेतप्रदर और असृग्दरमे इसके वीजोका चूर्ण उपयोग कराते है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–मिश्री और ताजा दूव। मात्रा–जड ७ ग्रामसे ११ ६ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक, बीज और फूल ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

नव्यमत—मूल स्नेहन और कुछ-कुछ आनुलोमिक होता है, तथा पत्ती शीतल, वेदना-स्थापक और शोथहर होती है। शोथादिकी लाली और वेदनाको दूर करनेके लिये पत्ती पीसकर बाँधी जाती है।

●

(२१२) गुलचाँदनी

फैमिली . आपोसीनासे (Family Apocynaceae)

नाम—(हिं०) चाँदनी, टेंगरी, (फा०) गुलचाँदनी, (व०, म०, गु०, हिं०) त (ट) गर, (लें०) टाबेर्नेमोटाना डीवारिकाटा **Tabernaemontana divaricata** (L) R Br (पर्याय–*T coronaria* Willd, *Ervatamia coronaria* Stapf., *E divaricata* (L) Alston), (अ०) वैक्स फ्लॉवर प्लाट (Wax-flower Plant), सीलोन जैस्मीन (Ceylon Jasmine)। वक्तव्य–लेटिन तथा अग्रेजी नाम इसके वृक्षके है। इसका व्यवहार-प्रचलित नाम 'चाँदनी' सम्भवत इसके फारसी नाम पर आधारित है। गुलचाँदनी वाटिकाओ एव मन्दिर आदिके पास सौन्दर्य एव पुष्पोके लिए लगाया जानेवाला मालियोका सुपरिचित पौधा है। सम्भवतः इसके मालियोमे प्रचलित नाम 'टेंगरी एव (त)टगर' प्रजातिक नाम (Tabernaemontana)के अपभ्रशस्वरूप व्युत्पन्न हुए है। किन्तु यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है, कि यह शास्त्रोक्त 'तगर' नही है, और नही तगरके स्थानमे इसकी जडका ग्रहण होना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें उद्यानो एवं वाटिकाओमें सौन्दर्य एव पुष्पोंके लिए लगाया मिलता है। अनेक क्षेत्रोमें स्वयंजात भी होने लगा है।

वर्णन—यह एक झाड़दार आदमीके कदके बराबर (६-८ फुट) ऊँचे वृक्ष का प्रसिद्ध फल है। पत्र-चिकना और चमकदार बहुत करके चर्मवत्, हरे, उत्तम सुदृश्य, ४-६ इंच लम्बे और १–१½ इंच चौड़े, पत्रप्रांत तरंगीयत, पत्रवृंत १/४ से १/२ इंच, वृंताक्षकोण ग्रथिल, पुष्पदंड १/२ इञ्च, पुष्पवृंत पतला, वृंतपत्र (Bracts) क्षुद्र; पुष्प सफेद, प्राय दोहरा और सुगन्धित तथा रातमें खिलता है, फली १–३ इञ्च लम्बी, विनाल या आधारपर एक प्रकारके नालरूपमें सकीर्णभूत, फुल्लावसहित दीर्घाकार, चञ्चुयुक्त या चञ्चुरहित, त्रिपर्शुकायुक्त; बीज ३ से ६ दीर्घाकार धारीदार, एरिल (Aril) लाल और मांसल होता है। इसके समस्त अगोमें एक प्रकारका तिक्त दूध होता है। तगरके लिए दे० 'बालछड़'।

रासायनिक सगठन—इसके काण्ड एव मूलत्वक्‌में भेषजगुणकर्मकी दृष्टिसे दो सक्रिय ऐल्केलाइड्स टेबर्नेमान्टेनीन (Taberaemontanine) एवं कोरोनेरान (Coronarine) पाये जाते हैं, तथा दूध (Latex)में राल एव कुचूरु (Caoutchouc) आदि पदार्थ होते हैं।

उपयुक्त अग—पुष्प, मूल और दूध। प्रकृति-दिल्लीके हकीमोंके मतसे अनुष्णाशीत (मोतादिल), लखनऊ के हकीमोंके मतसे दूसरे दर्जेमें शीतल एव रुक्ष। गुणकर्म-मन.प्रसादकर, हृदयबलदायक, प्रमाथी, श्वयथुविलयन और मृदुविरेचन है। यह विशेषरूप से मन:प्रसादकर और दिलकी धड़कनको दूर करनेवाला है। उपयोग-इसका गुलकन्द उन्माद और दिलकी धड़कनमें खिलाया जाता है। इसे क्वाथ करनेसे इसका मार्दवकर वीर्य निर्बल और अन्य वीर्य बलवत्तर हो जाते हैं, परन्तु इसका निचोड़ हुआ स्वरस इसके विपरीत होता है। अन्त्रव्रणमें इसके काढ़ेमें बादामका तेल मिलाकर पिलानेसे उपकार होता है। पत्रस्वरस खटमलनाशक है। खुलासतुल् इलाजके मतसे ३ नग गुलचांदनीको प्रतिदिन बतासोंके साथ निरन्तर सप्ताहपर्यंत खानेसे हृदयदौर्बल्य और उष्ण हृत्स्पदन आराम होता है। ऊल्वीखाँने दोनो की मात्रा ७-७ नग लिखी है। अहितकर-शीतल प्रकृतिको। निवारण-मिश्री, बतासा या चीनी। मात्रा-५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

नव्यमत—यह शीतल, ज्वरघ्न वेदनास्थापन, शामक, गर्भाशय-उत्तेजक और व्रणरोपण बतलाया गया है। प्रसूतिकामें मूलका लेप बहुत गुणकारक बतलाया जाता है।

●

(२१३) गुलदाउदी

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०, ब०; गु०) गुलदाऊदी, गुलदाउ (वो)दी, (फा०) गुलेदाउदी, (सं०) शतपत्री, सेवती, (द०) गुलचीनी, (म०) शेवती-च-फूल, (लै०) क्रीसान्थमुम् इंडिकुम् (**Crysanthumum indicum**), पारेन्थ्रुम इंडिकुम् (**Pyrenthrum indicum** DC)।

उत्पत्तिस्थान—चीन और जापान। इसे भारतीय उद्यानोमें बोते तथा घरोमें गमलोमें लगाते हैं।

वर्णन—यह लगभग १ मीटर (गजभर) ऊँचा एक क्षुप है। पत्र कपासके पत्रकी तरह और फूल सेवती (गुल नसरीन)के समान होते हैं। इससे बरजासिफकी तरह सुगन्ध आती है। फूलके रगके विचारसे यह तीन प्रकार का होता है, पीला, सफेद और नीलापन लिये सफेद। इनमें पीला सुलभ है। यह शरदृतुमें फूलता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल (Essen oil) क्रिसेन्थिमिन (Crysanthemin) नामक एक अर्धशुष्क तेल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क है।

गुणकर्म—समस्त गुणकर्मोमे यह बरजासिफके समीप है। इसका सूँघना मस्तिष्कको उष्णताप्रद, सौमनस्यजनन और हृद्य है। आतरिक उपयोग वातानुलोमन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और बस्तिवृक्काश्मरीछेदन है। यह शोथोको विलीन करता और व्रणोको सुखाता है। सौमनस्यजनन और श्वयथुविलयन इसके प्रधान कर्म है। उपयोग-मन प्रसादकरण और हृदयबलवर्धनके लिए गुलदाउदीका अर्क उपयोग किया जाता है। शीतल मस्तिष्क रोगोमे इसका फूल सूँघनेसे उपकार होता है। बस्तिवृक्काश्मरी छेदन और मूत्रप्रवर्तनके लिए फूलोका चूर्ण, क्वाथ तथा क्षुपक्षार देते है। गर्भाशयकी कठोरता दूर करनेके लिए इसके काढेमे कटिस्नान (आवजन) कराते है। पीले गुलदाउदीको व्रणशोपणके लिए प्रलेप करते है। पीली गुलदाऊदी १ तोला, सौफ ३ माशे और सफेद जीरा १½ माशे इनको पकाकर मरहमकी भाँति गाढा हो जानेपर लगानेसे कफज सूजन उतर जाती है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–गुलाबपुष्प और बरजासिफ। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

●

(२१४) गुलदुपहरिया

फैमिली : स्टेर्कूलिआसे (Family : Sterculiaceae)

नाम—(हिं०) दुपहरिया, गुलदुपहरिया, गेजुलिया, (स०) बन्धूक, बन्धुजीव, पुष्परक्त, (ब०) बाधुली, काटलाला, (प०) गुलदुपहरिया, (प०) ताबडीदुपारी, (लै०) पेन्टापेटीस फीनीसेआ (**Pentapetes phoenicea** Linn)।

उत्पत्तिस्थान—गुलदुपरिया उत्तरपश्चिम भारत, बगाल, गुजरात आदिका देशज (Indigenous) पुष्पवृक्ष हो गया है। भारतवर्षके समस्त उष्णप्रधान प्रदेशमे वाटिकाओमे लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक १ २ से १ ५ मीटर या ४-५ फुट ऊँचा वार्षिक पुष्पवृक्ष (क्षुप) है, जो बागोमे लगाया जाता है। यह पावस ऋतुमें नम जमीनमे उत्पन्न होता है। पत्र लबोतरे गोपुच्छाकार (सनोबरी) और कगूरेदार होते है। फूल साधारणत लाल (किरमिची-श्यामता लिए लाल) चमकदार, २ इच लवा और गुल्लालासे कुछ मिलता-जुलता होता है। सफेद, पीला और काला फूलका भी गुलदुपहरिया होता है। यह प्राय दोपहरमे खिलता है, इसीलिए इसे '**गुलदुपहरिया**' कहते है। इसमे बारहो मास विशेषकर बरसातमे फूल लगते है। बोंडी (Capsule) लबगोल, खुरखुरी, पचकोप तथा पचकपाट युक्त और लगभग स्थायी अन्तर्पुट चक्रके लगभग आधा लबी, प्रत्येक फलकोपमे ८ से १० तक बीज होते है।

उपयुक्त अग—फूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म—सग्राही, वातानुलोमन और द्रवाकर्षणकर्त्ता (जाज़िब रतूबात) विशेषत अर्धावभेदकनाशक है।

उपयोग—अर्धावभेदकको नष्ट करनेके लिए इसके फूलोका रस निकालकर रोगीकी नाकमें टपकानेसे द्रव-का उत्सर्ग होकर रोग आराम हो जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–कतीरा और मधु। मात्रा–किसी भी रोग मे इसका आतरिक उपयोग नही किया जाता है।

●

(२१५) गुलमेंहदी

फ़ैमिली : बाल्सामिनासे (Family Balsaminaceae)

नाम—(हि०, फा०) गुलमेहदी, (ब०) दुपटी, (ले०) ईम्पाटिएन्स बाल्सामिना (**Impatiens balsa-mina** Linn), (अ०) टच-मी नॉट (Touch-me-not)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—इसका क्षुप ४५ से०मी० से ६७ ५ से०मी० (हाथ-डेढ हाथ तक) ऊँचा और प्रियदर्शन होता है। पत्र बारीक, लबे और कोमल होते है। फूल लाल, गुलाबी, नीला और सफेद इत्यादि नाना वर्णका होता है। बीज गोल, काले, बडी इलायचीके दानेकी तरह और एक छोटीसी थैलीके अन्दर कई दाने होते हैं। इसे प्राय ग्रीष्मके अन्त और वर्षाके प्रारम्भमे बगीचोमे बोते हैं। कहते हैं कि जगलमे यह स्वयजात भी होता हैं।

उपयुक्त अग—फूल, काड और शाखा तथा बीज।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वाजीकर, दीपनीय और दाहप्रशमन है। इसके फूलोको मासके साथ पकाकर खाया जाता और वाजीकर वर्णन किया जाता हैं। इसके काड और शाखाओको जलमें हलका जोश देनेके उपरात सिरकामे डालकर अचार बनाते है। यह अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। इसके बीजोको बारीक पीसकर गुदभ्रशमें अवचूर्णन करते हैं। इसके फूलो और पत्रका स्वरस जले हुए अगका सलाप और दाहशमन करनेके लिए लेप करते हैं। इसके अतिरिक्त कोई-कोई हकीम गुलमेंहदीको दीपन, वल्य और सौमनस्यजनन वर्णन करते हैं। अहितकर-स्निग्ध प्रकृतिको। निवारण–मास और स्नेह। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

●

(२१६) गुललाला

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family . Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) लाला, लालए नुअमानी, (अ०) शकीक, शकायिक, शकायिकुन्नुअ्मान्, (ले०) आनेमोने ओब्टूसीफ़ोलिआ **Anemone obtusifolia** D Don), या आनेमोने पुल्साटिल्ला (**A pulsatilla** Linn) (अ०) वुड एनीमोन (Wood Anemone), विंड फ्लावर (Wind flower), पास्क फ्लावर (Pasque flower) पल्साटिल्ला (Pulsatilla)।

वक्तव्य– उत्तर भारतवर्ष और कश्मीरमे लाल पोस्ते (खशखश मन्सूर)को 'लाला', 'गुललाला' या 'गुल्लाला' कहते हैं। (दे० 'पोस्ता')। 'पल्सेटिल्ला' पल्सेटाइल (Pulsatile = फडफडाना, कपित होना)से व्युत्पन्न हैं। यह वनस्पति सदा कपित रहती है, इसलिए इसका यह नाम रखा गया है। 'एनीमोन' यूनानी 'अनीमोस (Anemos = वायु)से व्युत्पन्न हैं। यह वनस्पति खुली हुई वायु और स्थानमे उत्पन्न होती हैं। इसीलिए लेटिन और अग्रेजीमें, क्रमश इसे 'आनामोन' और 'विड फ्लावर' कहते है। किसी-किसीके मतसे 'अनीमोन', 'नुअ्मान'का अपभ्रश है। बसन्त (ईस्टर)ऋतुमे फूलनेसे इसे अग्रेजीमे 'पास्क फ्लावर (गुलईद)' कहते है। 'नुअ्मान विन-मुन्जर' शकायिक पुष्पको बहुत पसद करता था और इनको अपने महलके चतुर्दिक् लगवाया करता था इसलिए अरबीमें इसका शकायिकुन्नु-

अमान' नाम पड गया। फूल लाल होनेके कारण फारसीमे इसका 'लाला' नाम पडा जो शकायिकुन्नुअ्मान का पर्याय है। दीसकूरीदूस यूनानीने 'अनीमून (Anemone)' नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और उत्तरी यूरोप विशेषकर इगलैंड, जरमनी, साइबेरिया और हिमालयके सम-शीतोष्ण उच्चतर भाग। गजबादावर्दके मतसे इसकदरियामें विपुल होने से इसके बीज वहींसे आते है।

वर्णन—यह एक वर्षायु क्षुद्र वनस्पति है। इसका तना सीधा होता है जिसके ऊपरी छोर पर एक प्याला-नुमा फूल होता है। पत्र कोमल, रोंगटेदार, बल्कि समग्र क्षुप रोंगटेदार होता है। यह निर्गंध और चरपरा होता है। पत्र रोमश ३ से ५ इच या अधिक लम्बा और २–३ इच चौडा, द्विपक्षाकार (Bipinnate), पत्रक सम्मुखवर्ती, नीचे सवृत (Stalked below), खड त्रिशीर्षक और रेखाकर, नुकीला; पत्रदड गोल, ऊर्ध्वपृष्ठपर सकरी नालीयुक्त और आधार पर कुछ-कुछ बैंगनीयुक्त, फूल बडे, रक्तलोहित और कभी-कभी वनफशई (नीललोहित), बैंगनी कटोरी-युक्त, बाहरसे रोमश और रोमावृत्त पुष्पवृन्तयुक्त होते है जो बारीक शाखाओंके सिरोपर लगते है। इनके झडने पर डोडा या फल (Carpel) लगता है जो पोस्तेके डोडेसे बहुत छोटा होता है। ताजेपर इसका स्वाद चरपरा, दाहक एवं निर्गंध होता है। उसमे काले रगके छोटे-छोटे गोल बीज भरे हुए होते है। ये स्वादमे चरपरे और कषाय होते है।

उद्यानज और वन्य भेदमे यह दो प्रकारका होता है। इनमें वन्य उद्यानजसे बडा होता है। इसके अनेक भेद हैं, यथा-कोही, सहराई, नुअ्मानी, शकायिक, दिलसोज, खुदरव, जर्द, सफेद, अब्बासी आदि।

वक्तव्य—जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर बादशाहने वाकआत-बाबरीमें लिखा है कि लगभग पचास प्रकारके लाला काबुलके कतिपय जिलोंमें देखे गये है।

आवश्यक टिप्पणी—उम्दतुल्मुहताज और पिजिश्कीनामाके लेखको जैसे बहुधा लेखको एव सकलन-कर्ताओंने पापावेर रूहीआस (Papaver rhoeas)या रेडपॉपी (Red Poppy)को 'लाला' या 'शकाइकनुअ्मान' लिखा है। परन्तु कतिपय डॉक्टरो, जैसे—डॉ० डाइमाक आदिने इसको खशखशमसूर लिखा है। अस्तु, मुहीतआजममें भी खशखाश (पोस्ता)के वर्णनमें पोस्त (डोडा शकाइकुन्नुअ्मानके पोस्त (डोडा)मे छोटा होता है, ऐसा लिखा है। चूँकि मेरे अभिमत मे पापावेर रूहीआसका कुल पोस्ता और अनीमून या शकाइकुन्नुअ्मानका वत्सनाभ है, अतएव इन दोनोंमें अवश्य अतर होना चाहिये। फलत मैं, डॉक्टर डाइमॉकसे सहमति रखते हुए पापावेर रूहीआसका समनार्थी खशखाश मसूर ही समीचीन समझता हूँ।

इतिहास—हकीम दीसकूरीदूसने अनीमून (शकाइकुन्नुअ्मान)का उल्लेख किया है और जालीनूसने इसको आर्तवजनन, स्तन्यजनन और मूत्रजनन आदि लिखा है। साम्प्रत भी बहुधा इन्ही गुणोके लिए इसका उपयोग किया जाता है। ईसवी सन्की अठारहवी शती के अन्तमे यूरोपमे इस औषधिका उपयोग बहुत कम हो गया है। परन्तु इसके कुछ कालोपरात अमरीकामे 'पल्साटिल्ला'के नामसे अनीमूनके कई एक रोगोमें लाभकारी होनेकी बहुत प्रशसाकी गई और आजकल यह औषधि अमरीका व यूरोपमे एलोपैथी (प्रत्यनीक-चिकित्सा-डॉक्टरी) और विशेषकर सम-चिकित्सा (होमियोपैथी) दोनोमें प्रयुक्त है।

इसलामी चिकित्सकोने शकायिकुन्नुअ्मानके नामसे कई प्रकारके एनीमूनका वर्णन किया है। परन्तु उन्होने इसके गुणकर्मवर्णनमे यूनानी चिकित्साविशारदोका अनुसरण किया है। अस्तु, मुहीत आजममे भी 'शकाइकुन्नुअ्मान'के वर्णनके अन्तमे इसको आर्तवजनन, स्तन्यजनन और मूत्रजनन आदि लिखा है। अलबत्ता इतना अधिक लिखा है कि 'अखरोटत्वक् (पोस्त जौज) आदिके साथ मिलाकर केशरजनार्थ इसक खिजाब बनाया जाता है।'

सग्रहकाल और उपयुक्त अग—जब यह फूलता है उस समय इसका सग्रह करते है। फूल, बीज और मूल प्राय औषधके काम आते हैं। एक वर्षके बाद यह निर्वीर्य हो जाता है।

मिश्रण और उसकी परीक्षा—गजबादावर्दके मतसे इसके बीजोमें 'गासूल (उश्नान)'के बीज मिला देते है। इनमे भेद यह है कि शकायिकके बीज पोस्ताके दानेकी तरह स्वादमे चिकने और गोल होते है, परन्तु उनसे

छोटे एव कुछ कुछ लाल होते हैं। इसके समस्त बीज आकार और स्वरूपाकृतिमे एक समान होते हैं। उश्नानका बीज शकायिकके बीजसे बडा, सफेदी लिए पीला और किंचित् स्नेहास्वादयुक्त होता है। यह भी शीघ्र टूट जाता है। रगके सिवाय इन दोनोमे और कोई अन्तर नही है।

रासायनिक सगठन—इसमे अनीमोनोल (Anemonol) नामक पीले रगका एक अत्यन्त कटुक (तीक्ष्ण) तेल होता है जो इसके क्षुपका अर्क परिस्रुत करनेसे प्राप्त होता है। यह जलकी उपस्थितिमे अनीमोनिन (Anemonin) अर्थात् शकाकीन या पल्साटिल्ला कैम्फर (काफूर शफीफ)मे परिणत हो जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और तीसरेमे खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी प्रयोग करनेसे गुलेलाला लेखन, श्वथुविलयन और शोणितोत्क्लेशक है। इसके लगानेसे त्वचामे दाह होने लगता है और कभी-कभी विस्फोट उत्पन्न हो जाता है। बालोपर लगानेसे यह उनको काला और सुन्दर बनाता है। मुखमे रखकर चावनेसे यह लालाप्रसेकजनन कर्म करता है। इसके रसका नस्य देनेसे नाकसे द्रवोत्सर्ग होता है। आतरिक उपयोगसे यह स्रोतोद्घाटक, दोषतारल्यजनन और रक्तप्रसादन है तथा मूत्रार्तवस्तन्यजनन, श्लेष्मनिस्सारक, वेदनास्थापन और विकासीकर्म करता है। परन्तु अधिक मात्रामे उपयोग करनेसे अन्त्रामाशयमे सक्षोभ (खराश) करनेके कारण यह विरेक और वमन कराता है। इसका प्रधान गुण रक्तस्तम्भन और किलासघ्न है। श्वयथुविलयनके लिए सूजन पर गुलेलालाका लेप लगाते है। लेखन और शोणि-तोत्क्लेशक होनेसे किलास, झाई (बहक), न्यच्छ (नमश) और दादपर तथा व्रणोपर लेप करते या मरहमोमे मिलाकर लगाते हैं। गुलेलालाको ताजा अखरोटके छिलकेके साथ कूटकर बाल काला करनेके लिए लगाते और अन्यान्य केशरजन औषधो (खिजाबो)मे डालते है। इसके बीजोको आतरिक रूपसे खिलानेसे किलास (बर्स) आराम हो जाता है। इसका रस निकालकर नाकमे टपकानेसे द्रवोत्सर्ग होकर मस्तिष्कका शोधन हो जाता है। यह अर्धाव-भेदक और पुरातन शिर शूलको लाभ पहुँचाता है। नेत्रके जाला, फूला और धुध नष्ट करनेके लिए इसका रस आँखमे आश्च्योतन करते है तथा प्रारम्भिक लिगनाश (मोतियाबिंदु)मे इसे बूँद-बूँद, नेत्रमे टपकाते है। कास, कुक्कुरकास और श्वासमे विकाशी और कफोत्सारि की भाँति इसे सातरके साथ पकाकर पिलाते है तथा आतरिक अगोके दर्दोको शमन करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। मूत्रार्तवप्रवर्तनके लिए इसको जौके भूसाके साथ पकाकर देते है। आर्तवप्रवर्तनके लिए इसके काढेमे कपडा भिगोकर योनिमे रखते है। स्रोतोद्घाटक, दोषतारल्य-जनन और रक्तप्रसादन होनेके कारण शीतला (जुद्री)को प्रगट करनेके लिए इसका काढा पिलाते है। अहितकर—मस्तिष्कको। निवारण—सौफ। प्रतिनिधि—कतिपय गुणकर्ममे पोस्तेका डोडा (पोस्त खशखाश)। मात्रा—३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक, बीज १ से ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक।

●

(२१७) गुलशब्बो

फ़ैमिली : आमारील्लीडासे (Family Amaryllidaceae)

नाम—(हि०,बम्ब०) गुलशब्बो (ब्बू), गुलचेरी, (फा०) शब्बू, (म०) गुलछडी, (ब०) रजनीगधा, (प०) गुलशब्बो, (ले०) पोलिआन्थिस ट्यूबेरोसा (**Polyanthes tuberosa** Linn), (अ०) ट्युबरोज (Tuberose)।

वक्तव्य—गुलशब्बो एक विदेशागत (Exotic) फूलवनस्पति है। यह फारसी शब्द है, जिसका तात्पर्य "गुल = पुष्प, शब्ब = रात्रि = 'रजनीगन्धा' = (रातमे खिलापुष्प तीव्र सुगन्धियुक्त) है। 'रजनीगधा' गुलशब्बूका ही सस्कृत (तथा बगला) रूपान्तर है। पुष्पवाहक दण्ड पत्तियोके बीचसे छडीकी भाँति निकलता है। इसीसे इसे गुलछडी भी कहते है।

उत्पत्तिस्थान—मेक्सिकोका आदिवासी पौधा है। भारतवर्षके उष्णभागोमे बगीचोमे लगाया जाता है।

वर्णन—गुलशब्बोका गुल्म बहुवर्षायु अशाखी और प्रकाडरहित होता है। पत्र-प्याजके पत्रकी तरह अरोमश पर भीतरसे पोले नही होते तथा अरोमश, बहुत दलदार (गुदार एव रसपूर्ण) होते है और प्याजके पत्तेकी तरह जडसे ही निकलते है। जड़-कांदाके समान गांठ होती है। पूरे वर्षभर इसकी जड मिट्टीमे दबी रहती है, पत्ते सूख जाते है। आषाढके महीनेसे पत्र फूटकर और बीचमे एक छडी निकलकर सफेद रगके फूल आते है। कलीमे सुगध नही होती। रातमें खिला हुआ फूल खूब महकता है। इसीलिए इसको 'शब्बू (रजनीगधा)' कहते हैं। फूल तुरही (नफीरी)की आकृतिका होता है। इसे बगीचा और घरोमे लगाया जाता है। यह जगली भी होता है। यह 'खेरी' और 'खजामा'से भिन्न है।

उपयुक्त अग—पत्र, फूल और मूल।

प्रकृति—उद्यानज दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष, जगली तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, दोषतारल्यजनन, लेख, उपशोषण और हिक्का-नाशक है। ३ तोले इसके हरेपत्रका स्वरस पीनेसे आर्तव एव मूत्रका भली-भांति प्रवर्तन होता है। इससे मृतगर्भका भी उत्सर्ग होता है। इसके ताजे पत्तोको पीसकर योनिमें रखनेसे भी उक्त कार्य होता है। गुलरोगनकी भांति इसके फूलोमे तेल बनाते है। इसके पीनेमे मूत्र एवं आर्तवका प्रवर्तन होता तथा गर्भपात होता है। इसका अभ्यग श्वयथु-विलयन और नस्य मस्तिष्कके अवरोधोका उद्घाटनकर्ता है। इसे बालो पर लगानेसे वे बढते है। फूल सूँघनेसे मस्तिष्कगत सान्द्र वायु और कफ विलीन होता है। इसके फूलोका तेल कटिगत सुषुम्नाकेन्द्र पर लगानेसे खूब ध्वजोच्छ्राय होता है। सधिवात और गर्भाशयशोथमें इसके खानेमे उपकार होता है। जड आर्तवजनन, उत्क्लेश-जनन और छर्दिजननके लिए सिद्ध भेषज है। जडका काढा दांत पर लगानेसे शीतजन्य दतशूल आराम होता है। प्लीहाशोथमें जडको सिरकामें पीसकर लगाते है। इसके उक्त गुण-कर्मादि खेरीके समान है। अहितकर-उष्णप्रकृतिमे शिरःशूलजनक है। निवारण-गुलरोगन और सिरका।

नव्यमत—कद मूत्रल एव कफघ्न माना जाता है।

●

(२१८) गुलसेवती (सेवती)

फॅमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हि०) सफेद गुलाव, चैती गुलाव, सेवती (गुलाब), (अ०) वर्द अब्यज, वर्दसीनी, (फा०) गुलसफेद, गुलमुश्की(की), गुलनसरीन, मुश्की वफादार, नस्तर (न), न(नि)सरीन, गुल अम्बरी, (स०) शतपत्री, तरुणी, (क०) काशुर गुलाव, (म०) शेवती गुलाव, (व०) श्वेत गुलाब, (प०) गुल सेवती, (लें०) रोजा आल्बा (**Rosa alba** Linn), (अ०) इडियन ह्वाइट रोज (Indian White Rose)।

वक्तव्य— गुलमुश्को'को लेटिनमे रोजा मॉस्काटास (**Rosa moschatas** Mill) कहते है। दे० 'कूजा'।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके कश्मीर, गढवाल आदि प्रदेशमें जगली (स्वयजात) गुलाव होता है। भारतवर्षके अन्य प्रदेशोमे लगाया जाता है।

वर्णन—सेवती गुलाबमे भिन्न और प्राचीन क्षुप है। इसका पौधा गुलाबके समान होता है। परन्तु फूल लाल होनेके स्थानमें पिलाई लिए सफेद होता है और यही औषधमें काम आता है। यह बागी (बुस्तानी-उद्यानज) और जगली (स्वयजात) भेदमे दो प्रकारका होता है-(१) गुल सफेद बुस्तानी (वर्द अब्यज), और (२) गुल सफेद सहराई (वर्द अब्यज बर्री)।

कल्प—गुलकंद सेवती।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलदायक, हृत्स्पदनहर और कोष्ठमृदुकर (सर) है। गुलसेवतीका गुलकद और अर्क हृदयको उल्लसित और बलप्रदान करने तथा दिलकी धडकन (खफकान) दूर करनेके लिए पुष्कल उपयोग किया जाता है। कतिपय औपधद्रव्यके साथ इसे फाण्टकी भाँति भी पिया जाता है। अहितकर—उष्णप्रकृतिवालोको। निवारण—चमेलीका फूल। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक। इसका गुलकद १२ ग्राम से २४ ग्राम (१ से २ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—शतपत्री (गुलाब)के पुष्प तिक्त, कटु, शीतवीर्थ, हृद्य, सारक, शुक्ल, लघु, वर्ण्य, पाचन तथा तीनो दोप और रक्तके विकारोको दूर करनेवाले है। (भा० प्र०)।

नव्यमत—गुलाव शीतस्वभावी आनुलोमिक है। इससे दस्त साफ होता है, भूख लगती है, अन्न पचता है और शरीर पुष्ट होता है। बच्चो और गर्भिणी स्त्रियोको गरमीके दिनोंमे इसका गुलकद खानेको देते है। गुलकद और अर्क गुलावका अनुपानके रूपमे प्रयोग किया जाता है।

●

(२१९) गुलाब

फैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—पुष्प–(हिं०) गुलावका फूल, (अ०) वर्द, वर्दे अह्मर, वर्दुल् अह्मर, (फा०) गुल, गुलेसुर्ख, गुले गुलाव, (स०) तरुणी, (व०) गोलाप फूल, (म०) गुलाव चे फूल, (गु०) गुलावि, गुलावनु, (ता०) इराशा, (मल०) पन्नीरपु, (ले०) रोजा डैमासेना (**Rosa damascena** Miller), (अ०) डमस्क रोज (Damask Rose), रोज (Rose)।

वक्तव्य—यद्यपि फारसी 'गुलाव' शब्दका योगार्थ–वास्तविक भाव (गुलपुष्प या गुलाबपुष्प, आव = जल) पुष्पजल (आबेगुल या अर्कगुलाब) है, तथापि उर्दू और हिंदीमे इससे 'गुलाबपुष्प (गुलेसुर्ख)' का अर्थ ग्रहण होता है। फारसी 'गुल' से ही 'जुल' (गुलावपुष्प) अरवी वनाया गया है।

इतिहास—रोजेज (विभिन्न प्रकारके गुलेवर्द) यूनानवासियोको ज्ञात थे। प्रत्युत वह देवजानस और जोहरा (शुक्र)के लिये पुनीत माने जाते थे। प्राचीन रोमवासियोमें 'रोसालिया (Rosalia)'के नामसे मालियोका मेला हुआ करता था। प्राचीनकालमे गुलाव (गुलेसुर्ख) पूर्व और पश्चिम मे कतिपय अनोखे सौर्य भ्रमो (ताह्भात)का हेतुभूत हुआ है। सुतरा गुलवकावलीकी कथा इसका उत्कृष्टतम दृष्टान्त है। प्राचीन यूनानी, रूमी और मुसलमान चिकित्सा-विदोने गुलावघटित प्राय योग और उनके वैद्यकीय उपयोगोका उल्लेख किया है। यथा—गुलकद, गुलाव, गुलगवीन (मधुघटित गुलकद), दुह्नुल्वर्दखाम एव क्वाथ (मत्वूख) और इत्रगुल आदि, ये सब पुरातन योग है। अलबत्ता अधुना इनके घटक एव कल्पनाविधिमें कुछ अन्तर आ गया है।

हकीम दीसकूरीदूस यूनानीने गुलावकी पखडियोके ग्राही गुणका उल्लेख किया है और इनकी भस्मका गण्डूपोमे प्रयोग बतलाया है। उन्होने गुलावके फूलसे जीरे (जरेवर्द)का प्रयोग भी लिखा है। जालीनूस और शैख तथा कानूनके भाष्यकार आदिने गुलाबके विपयमे जो कुछ लिखा है, उसके विवरण स्थानाभावके कारण यहाँ अनपे-

शित है। इच्छा होनेपर कानूनमें अथवा कमसे कम मुहीत आजममें उन विचारोंका अध्ययन कर सकते हैं। और अर्क हृदयको उल्लसित और बलप्रदान करने तथा दिलकी धडकन (खफकान) दूर करनेके लिए पुष्कल उपयोग किया जाता है। इससे खींचा हुआ अर्क भी उक्त रोगोंमें प्रयुक्त होता है। कतिपय औषधद्रव्योंके साथ इसे फाटकी भाँति भी पिलाया जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालोंको। निवारण–चमेलीका फूल। मात्रा–५ से ७ माशे तक। इसका गुल्कद १२ ग्राम से २४ ग्राम (१ से २ तोले) तक।

गुलावकेसर—

नाम। गुलावकेसर—(हि०) गुलावका जीरा; (अ०) जरेवर्द, (फा०) जीरए गुल, तुख्मे गुल, (अं०) रोज स्टेमेंस (Rose stamens), रोज-सीड्स (Rose seeds)।

वक्तव्य—यद्यपि 'जरेवर्द' का अर्थ किसी-किसीने 'गुलावका फल' या 'गुलावकी कली' लिखा है, तथापि हकीम और औषधविक्रेतागण उसका प्रयोग उन दोनोंके अर्थमें करते हैं जो गुलावके फूलके अन्दर पीले रगके होते हैं। ये उद्यानज लालगुलावके केसर (पुष्पलिंग Stamens) हैं।

फल—(हि०) गुलावका फल, (अ०) दलीक, समरतुल्वर्द, (फा०) समरे गुल।

वक्तव्य—अरवीमें 'दलीक' जंगली गुलाव (**Rosa canina**)के फलको कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान सीरिया है, परन्तु अब यह सम्पूर्ण भारतवर्ष (और ईरान)के बगीचोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध गाछदार कँटीले क्षुपका प्रसिद्ध सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्प है जो हलके लाल (गुलावी)रगका होता है। यह स्वादमें तिक्त, चरपरा, कषाय और किंचिन्मधुर है। परन्तु रखे हुए (शुष्क) पुष्पमें कटुत्व कम हो जाता है। इसलिए ताजा सारक है और शुष्क सारक नहीं है। इसके पीले पुष्पलिंग (जीरे)को अरवीमें 'जरेवर्द' और फारसीमें 'जीरएगुल'कहते हैं। प्राचीनोंने इसे वीज (तुख्मे गुल) लिखा है। फल जैतूनके फलकी तरह, अण्डाकार, मांसल (गुदार), चिकना, ताजे (पकने)पर गहरा लाल, सूखनेपर कालाईलिए, शीर्षपर पुष्प-वाह्यकोषके दन्तों (Calyx teeth)के अवशेषोंसे युक्त, वीज कोणयुक्त कुछ-कुछ सफेद घनरोमावृत्त, फलको अरवीमें समरतुल्वर्द (समरेगुल-गुलावफल) कहते हैं। उसका स्वाद कुछ-कुछ मिठास लिए और खट्टा (किंचिन्मधुर और कषाय) होता है। पका फल औषधमें प्रयुक्त होता है। उद्यानज और वन्य भेदसे गुलाव दो प्रकारका होता है। भेद–(१) लाल उद्यानज गुलाव (वर्दुल् अहमर बुस्तानी–गुलेसुर्ख बुस्तानी)–यह अत्यन्त सुगन्धित होता है। इसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। यह शरद्के अंत (चैत-वैसाख)में फूलता है, इसलिए इसे फसली (मौसमी) कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें इसीके फूल और केसर (जरेवर्द) काममें लिए जाते हैं। मात्र 'वर्द' और 'गुल'से इसीके फूल विवक्षित होते हैं। (२) लाल वन्य गुलाव (वर्दुल् अहमर बर्री, गुलेसुर्ख सहराई) यह जंगली लाल गुलाव (**Rosa canina** Linn) है। इसे अंग्रेजीमें डॉगरोज कहते हैं। इसीके फलको अरवीमें 'दलीक' कहते हैं। हिमालयके कश्मीर, गढवाल आदि प्रदेशोंमें जंगली (स्वयंजात) गुलाव होता है। उसमें गुलावी रंगकी ५ पखडियाँ होती हैं। बागोंमें गुलाव लगाया जाता है। उसमें अधिक पखडियाँ होती हैं। (३) सेवती या सफेद गुलाव (वर्द अब्यज–गुल सफेद बुस्तानी)। (४) जंगली सेवती (वर्द अब्यज बर्री–गुल सफेद सहराई)। गुलावको इस जातिके फूल पीताभ श्वेत रंगके होते हैं। इन दोनोंका वर्णन 'गुलसेवती'में देखे। (५) पीली वागी सेवती (वर्द अस्फर बुस्तानी–गुलजर्द बुस्तानी)। (६) पीली जंगली सेवती (वर्द अस्फर बर्री—गुलजर्द बर्री)। (७) गुलेराना (वर्दुल् हमाक–हिमार)–एक प्रकारका जंगली गुलाव जिसकी पखडियाँ वाहरसे पीली और भीतरसे लाल वर्णन की गई है। (८) सदा गुलाव जिसे गुल-कूजा (**Rosa pubescens**) भी कहते हैं (दे० 'कूजा')। सदा फूलनेसे इसे 'वारहमासी' भी कहते हैं। (९) हजारा गुलाब–तरुणी या शतपत्री (वर्द मुजाअफ-गुलसदबर्ग) जिसका फूल गुलावी आधारकी ओर कुछ-कुछ सफेद होता

है। इसे अंग्रेजीमे पेल या केबैज रोज (Pale or cabbage rose) तथा हड्रेड-लीव्ड रोज (Hundred-leaved rose) और लैटिनमे 'रोजा सेन्टिफोलिआ (Rosa centifolia)' कहते है। फ्रासमे यह अर्क गुलाव चुआनेके काममे आता है। हिमालयके कश्मीर, गढवाल आदि प्रदेशमे यह जगली (स्वयजात) होता है। आयुर्वेदमे इसे शीतवीर्य (भा० प्र०) लिखा है। इनमे बारहमासी उत्तम नही होता और सफेद भेद निर्वल है। अकवराबादी सर्वोत्तम होता है। इसके वाद पेशावरी, फिर कशमीरी। फूलके रगके विचारसे गुलाव अनेक जातिका और नवीन है अर्थात् पहिले भारतवर्षमें नही होता था।

सग्रहकाल—सिराजुल्वहाज के अनुसार गुलावके फूल वृक्षसे उस समय तोडे, जव तक उसके अदरका जीरा (जरे वर्द) फटे नही। औपधके लिये वसतऋतुमे उत्पन्न (मौसमी), छायामें सुखाई हुई पुष्पोकी अविकसित कलिकाएँ ली जाती है। औपधप्रयोगमे सेवती और गुलाव को लेना चाहिये।

रासायनिक सगठन—इसमे (१) गुलावपुष्पसार–रोगन गुल या इत्रगुल (ऑलियम् रोजी), (२) टैनिक एसिड (कपायाम्ल), और (३) मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड) ये तीन उपादन होते है। फलसे वनाये गये शर्वतमे इन्वर्ट शूकर, निम्वाम्ल, मेवाम्ल और ०.४–१.० प्रतिशत ऐस्कॉर्विक एसिड (जीवतिक्ति 'सी') पुष्कल प्रमाणमे होता है। शिशुओको जीवतिक्ति 'सी'की हीनतामें इसका उपयोग करते है। उपयुक्त अग–खिले हुए फूल विशेपत कली, गुलाबका जीरा (जरेवर्द) और गुलाव फल।

कल्प तथा योग (१) अर्क—(हि०) अर्क गुलाव, अर्क वहार, गुलावजल, (अ०) माउल्वर्द, (फा०) गुलाव, अर्क गुलेसुर्ख, (लै०) एक्वा रोजी (Aqua Rosae), (अ०) रोज-वाटर (Rose Water), (२) पुष्पखड (अ०) वर्द मुरब्बा, (फा०) गुलकद, गुलशकर, (अ०) कन्फेक्शन ऑफ रोजेज (Confection of Roses)। इसके भेद–गुलकद आफ्तावी, गुलकद माहतावी, गुलकद आवी, गुलकद सेवती (गुलसेवती)। (३) पुष्पमधु (अ०) जुलजवीन, (फा०) गुलगवीन, गुलकद असली। (४) गुलाबपुष्पसार या इत्र (हिं०) गुलावका इतर या अतर, (अ) इत्रुल्वर्द, इत्रुल्वर्दुल् अहमर, (फा०) इत्र गुलाव, इत्रेगुलेसुर्ख, (अ०) अट्टर या अट्र ऑफ रोजेज (Attar or Utr of Roses), ओट्टो ऑफ रोजेज (Otto of Roses)। (५) गुलाब का तेल (अ०) दुह्नुल्वर्द, (फा०) रागनगुल, (लै०) ऑलियम् रोजी (Oleum Rosae), (अ०) रोज ऑइल (Rose Oil),ऑइल या ओट्टो ऑफ रोजेज (Oil or Otto of Roses)।

वक्तव्य—गुलाबके ताजे फूलोको तिल या जैतूनके तेलमे डालकर शीशेमें करके धूपमें रख देते हैं। जव फूलोका रग वदल जाता है तव तेलको छानकर उसमें दोवारा ताजे फूल डाल देते है। इसी तरह सातवार करनेके उपरात उसे छानकर रख छोडते है। यह रोगन गुल (दुह्नुल्वर्द) है। यह तेज धूपमे २० दिनमें और शरदऋतुमे ४० दिन में तैयार होता है। इसे दुह्नुल्वर्द खाम (रोगनेगुल खाम या रोगने गुल आफ्तावी) कहते है। यह एक वर्पके उपरात विगड जाता है। कभी धूपमे रखनेके स्थानमे इसे अग्नि पर पकाकर तैयार करते है अर्थात् अर्क गुलाव या गुलाबके फूलोको तिल या जैतूनके तेलमे इतना पकाते है कि तेलमात्र शेप रह जाता है। तब इसे अग्निसे उतारकर छान लेते है। इसे दुहनुल् वर्द मत्बूख (रोगनेगुल मत्बूख या रोगनेगुल आतशी) कहते है। शेप अर्क और गुलकन्द इत्यादिकी परिभाषा और कल्पनाविधि ग्रन्थके यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान पूर्वार्ध भेपजकल्पनाखण्डमें दी गई है। अस्तु वही देखे। (६) कुर्स वर्द (गुल), (७) शर्वत वर्द, जगली या गुलावके अन्य भेदोके फल (Hips)से एक प्रकारका शर्वत वनाया जाता है। वि० दे० 'रासायनिक सगठन'।

गुण-कर्म तथा उपयोग

गुलाबके फूल—

प्रकृति—यह समिश्रवीर्य (मुरक्किबुल्कुवा) है, क्योकि इसमे सूक्ष्म उष्णवीर्य और स्थूल शीतवीर्य यह दो परस्परविरोधी वीर्य वर्तमान है। उष्णता शीतलतासे अधिक है। प्राय हकीमोके समीप यह पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमे खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह मन प्रसादकर, बल्य, उत्तमागोंको बलप्रद, अन्त्रामाशयको बलप्रद (दीपन), दस्त लाता और कब्ज पैदा करता, विशेषत शुष्क गुलाबपुष्प सग्राही, पित्तकी तीक्ष्णताको शान्त करता, शरीरके स्वेदको सुगंधित बनाता और उसकी अधिकताको रोकता है। बारीक पीसकर अवचूर्णन करनेसे यह व्रणोको सुखाता है। इसका प्रधान कर्म सौमनस्यजनन, श्वयथुविलयन और अवरुद्धदोषोत्सर्गकरण है। गुलाबका ताजा फूल सूँघना मन प्रसादकर, हृद्य और मेध्य (हृदयमस्तिष्क बलदायक) हैं, परन्तु दुर्बल व्यक्तियोमें इससे प्रसेक और प्रतिश्यायको उत्तेजना प्राप्त होती है। इसका रस नेत्रमे डालनेसे उष्ण नेत्राभिष्यद और कानमे डालनेसे उष्ण कर्णशूल आराम होता है। शिर शूलमे इसको जलमे पीसकर मस्तक पर लेप करते है। विलीनीकरण वीर्यके अतिरिक्त इसमे सग्राही वीर्य और सुगन्धित (इत्रिय्यत) है। अतएव यकृच्छोथमे इसे लेपोमे योजित करके उपयोग करते है। दाँतोको मजबूत करने और दतशूलनिवारण करनेके लिए इसके काढेका गण्डूष कराते तथा इसे दतमजनोमे डालकर दाँतो पर मलते है। शुष्क फूलोको बारीक पीसकर मुखपाकमे अवचूर्णन करते है। आतरिक रूपसे गरम हृत्स्पदन, मूर्च्छा और हृदयदौर्बल्यको दूर करने तथा यकृत् और अन्त्रामाशयको शक्ति देनेके लिए इसका उपयोग करते है। गरम दस्तोको तथा पेचिस और रक्तष्ठीवनको बन्द करनेके लिए इसे खिलाते है। स्वेदाधिकताको रोकने और दुर्गंधस्वेदताको नष्ट करनेके लिए इसको बारीक पीसकर शरीरपर मलते है। अहितकर–वाजीकरण (काम)के लिए। निवारण–अनीसूँ और हब्बुज्जुलम। प्रतिनिधि–बनफ्शा और मर्जञ्जोश। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेमे ७ माशे) तक।

अर्क गुलाब—

प्रकृति—सर्दीके लिए समिश्रवीर्य है, किन्तु थोडी-सी गरमीसे खाली नही है। गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन और हृदयमस्तिष्क बलवर्धन है। धडकन और मूर्च्छाको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग किया जाता है। निवारण–अर्क नीलूफर, मिश्री और खाँड। मात्रा–६$\frac{3}{4}$ तोले तक।

गुलकद (गुलगबीन)—

प्रकृति—पहले दर्जेमे तर और दूसरेमे गरम है। गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन हृदयमस्तिष्क-बलवर्धन और कब्ज निवारणके लिए इसका उपयोग होता है। यह बल्य और बृहण माना जाता है। मात्रा ४६ ग्राम (४ तोले) तक।

गुलाबका जीरा (जरेवर्द) और फल—

प्रकृति—जीरा दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क (फल दूसरे दर्जेमे शीत एव खुश्क) है। गुण-कर्म तथा उपयोग—मासतंतुसाग्राहिक, दीपन, रक्तस्रुतिको रोकनेवाला और उपशोषण है। इसका प्रधान गुण अतिसारघ्न है। सग्राही होनेके कारण अन्त्रामाशयातिसारमें यह स्वतन्त्र या योगोमे प्रयुक्त होता है, रक्तष्ठीवन और हर प्रकारके रक्तस्रावके लिए उपयोग किया जाता है। उपशोषण और मासततुसाग्राहिक होनेके कारण गर्भाशयस्थ द्रवोको शुष्क करके तथा गर्भाशय आदिके माततंतुओको सिकोडकर गर्भाशयको दृढ एव सकुचित कर देता है। उक्त प्रयोजनके लिए यह पिचुवर्तिकाकी भाँति उपयोग किया जाता है। अहितकर–फुफ्फुसको। निवारण–कतीरा और गोद। मात्रा–१ ग्रामसे २-३ ग्राम (१से २-३ माशे) तक।

गुलरोगन (रोगनगुल)—

प्रकृति—गुलाबका वीर्य प्राप्त होनेसे समिश्रवीर्य (मुरक्किबुल्कुवा) है।

गुण-कर्म—यह मस्तिष्क बलदायक (मेध्य), अनिद्रातक, दोषविलोमकर्ता, श्वयथुविलयन, सग्राही तथा दर्दोको शान्त करनेवाला है। आतरिक उपयोगसे यह विरेचन और सग्राही कर्म करता है तथा आतरिक दर्दोको शमन करता है। यह अन्त्रामाशयका दाह मिटाता और उनके व्रणोको ठीक करता है।

उपयोग—गुलरोगन, अर्कगुलाब और सिरकामे कपडा भिगोकर सन्निपात (सरसाम) रोगमे सिरपर रखते है। मस्तिष्कको बल देनेके लिए इसे सिर पर लगाते है और कर्णशूल निवारणके लिए कानमे डालते है। अधिक चूना खानेसे मुखमे जो व्रण हो जाते है उनको नष्ट करनेके लिए तथा दतशूल निवारणके लिए इसका कवल कराते है। अग्निसे जले हुए अगोको शान्ति देनेके लिए अग्निदग्धावयव पर लगाते है। अन्त्रामाशयव्रण, पेचिस और मरोडमे इसका आतरिक उपयोग कराते है। अहितकर–काम (वाह)के लिए। निवारण–मीठे बादामका तेल। प्रतिनिधि–रोगन बनफ्शा। मात्रा–७ ग्रामसे ११ ६ (१२) ग्राम (७माशेसे १ तोला) तक।

(२२०) गुलाबजामुन

फैमिली मीर्टासे (Family Myrtaceae)

नाम—(हि०) गुलाबजामुन, (ब०) गुलाबजाब, (ले०) सीजीजिउम् जाम्बोस (**Sygygium jambos** Linn) Alst (पर्याय–एउजेनिआ जाम्बोस (**Engenia jambos** Linn); (अ०) रोजएपल (Rose Apple)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी भारतीय द्वीप का मूलनिवासी है। अधुना भारतीय बगीचोमे विशेषत आसाम, बगाल और सिक्किम को तराईमे लगाया जाता है।

वर्णन—इसका वृक्ष जामुनके वृक्षसे छोटा होता है। इसकी शाखाये बिखरी हुई होती है। पत्र भी जामुनके पत्रसे छोटे, हरे और चमकीले होते है। गरमीके अन्तमे और बरसातके आरम्भ मे इसमें फल लगते है। फल नासपातीकी तरह और आकारमें नीबूके बराबर, पर कुछ चपटा होता है। इसमें गुलाब जैसी सुगन्ध आती है। स्वाद ऐसा होता है, माना अर्कगुलाबमे भिगोया हुआ और मधुर एव रसदार हो। फलमे १ से ३ तक खाकी गोल बीज निकलते है जो परस्पर चिपके होते है। इनको तोडनेपर अन्दरसे हरा मग्ज निकलता है। फलोको परिस्रुत करनेपर उत्तम 'अर्कगुलाब' प्राप्त किया जा सकता है।

रासायनिक सगठन—पत्र और छालमे जम्बोसीन (Jambosine) नामक ऐल्केलॉइड होता है। इसके अतिरिक्त एक ओलियोरेजिन तथा टैनिन आदि द्रव्य भी पाये जाते है।

उपयुक्त अग—फल और बीजकी गिरी।

प्रकृति—शीतलता और रूक्षता लिए हुये मोतदिल।

गुणकर्म—यह सौमनस्यजनन है और हृदय, मस्तिष्क, यकृत् तथा आमाशयको बल प्रदान करता है। परन्तु अधिक प्रमाणमे खानेसे यह आनाह उत्पन्न करता है। इसके बीजोका मग्ज सग्राही और दोषविलोमकर्ता है। इसका प्रधानगुण वाजीकर और सग्रही है।

उपयोग—गुलाबजामुन एक मेवाकी भाँति खाया जाता है। इसके बीजोके मग्जका चूर्ण दस्त बन्दकरनेके लिये खिलाते है। मिश्री और किंचित् सोठके साठ चूर्ण बनाकर शुक्रप्रमेहमे उपयोग कराते है। अहितकर–चिरपाकी और आनाहकारक। निवारण–कालीमिर्च और दारचीनी। प्रतिनिधि–मेव। मात्रा–बीज का मग्ज ३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

(२२१) गूमा

फेमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) गूम (-मा,-मी), गोम, (स०) द्रोणपुष्पी, फलेपुष्पा, कुतुम्बक (च०,सु०), (ब०) घलघसे, दण्ड-कलस, (कु०) उघनफूला, (म०) तुबा, कुमा, देवकुभा, (गु०) कूबो, (मा०) दडघल, (लै०) लेउकास सेफालोटीस (**Leucas cephalotes**) Roth (Spreng) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (कश्मीर, पजाब, बगाल, आसाम, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, काठियावाड, गुजरात एव मद्रास स्टेटमे वर्षामे इसके पौधे होते है ।

वर्णन—गूमा वर्षाऋतुमे सर्वत्र भारतवर्षके मैदानोमें विशेषत हलकृष्ट क्षेत्रोमे भदईके साथ विपुल होता है । यह एक वर्षायु २२ ५ से० मी० से ४५ से० मी० (एक बित्तासे आध गज ऊँचा) सीधा या छत्तादार क्षुद्र क्षुप है । काण्ड चोकोर, दृढ, खुरखुरा या रोमटेदार, पत्र २ ५ से ७ ५ सें० मी० (१–३ इच) लम्बा, रेखाकार या लम्ब कुण्ठिनाग, पुष्पके प्रत्येक स्तरमें आमने-सामने दो-दो पत्रविन्यास होते हैं । पत्रप्रान्त पूर्णधार या गोल दन्तमयधार, मर्दन करनेपर विचित्र तीव्रगन्धयुक्त होता है । पुष्प बहुत बडा, शाखान्त, गोलचक्राकार (अन्य भेदमे अन्तिम और अक्षकोणीय), वृन्तपत्र लम्बे, रेखाकार, पुष्प शरद् ऋतुमे फूलते है । गरमीमें क्षुप शुष्क हो जाता है ।

रासायनिक सगठन—इसमें अल्प प्रमाणमें एक उत्पत् तेल और एक क्षारोद (ऐल्केलॉइड) होता है ।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प और पञ्चाग ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क, आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, उदरकृमिनाशन, अर्श, कामला एव कफज्वरनाशक तथा विषघ्न है । जीर्ण कफज्वरमें और उदरकृमियोको मारने तथा निकालनेके लिए इसका काढा पिलाते है । सूजन उतारनेके लिए इसको जलमे उबालकर और कुचलकर बांधते है । सभी प्रकारके प्राणिज और वानस्पतिक विषोमे इसको पीसकर पिलाते हैं । यह अर्शमे लाभकारी है । इसके पञ्चागका रस नेत्रमे लगानेसे कामला आराम हो जाता है । अहितकर–उष्ण प्रकृतिको । निवारण–कालीमिर्च, मधु और अदरक । प्रतिनिधि–भँगरा । मात्रा– ३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशा) ।

आयुर्वेदीय मत—गूमा कटु, उष्णवीर्य, रुचिकर तथा वात, कफ, अग्निमान्द्य कामला और ज्वरको दूर करनेवाला है । (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, रा० नि०) ।

नव्यमत—गूमा उष्ण, स्वेदजनन, वातप्रशमन, स्रसन और कफघ्न है । कफज्वरमे गूमाका स्वरस शुद्ध टकण और मधु मिलाकर देते है । आध्मान और पेटके दर्दमें स्वरस पिलाते है । सर्दीके सिरदर्दमे इसके स्वरस का नस्य देते हैं ।

●

(२२२) गूलर

फैमिली : मोरासे (Family Moraceae)

नाम—(हिं०) गुल्लर, गूलर, ऊमर, (अ०) जम्मेज़, तीनुल्-अहमक, (फा०) अजीरे आदम, अजीरे अहमक, समरे-पश्श (जतुफल), (स०) उदुम्बर, जन्तुफल, (ब०) यज्ञडुमुर, (म०) उबर, (गु०) उबरा, उमरडो, (लै०) फीकुस् ग्लोमेराटा **Ficus glomerata** Roxb. (पर्याय–*F racemosa* Linn), (अ०) दी गूलर फिग् या कन्ट्री फिग् (The Gular Fig or Country Fig), ग्लोमरस फिग् (Glomerus Fig) ।

वक्तव्य—यूनानी हकीम जिस गूलरका उपयोग करते थे, उसे यूनानी और अरबीमे क्रमश 'सुक्रोमोरोस' और 'जम्मैज' और लैटिनमे 'फीकुस सीकोमोरुस' (**Ficus sycomorus** Linn) कहते है। मिस्रमे उन्ही प्रयोजनोके लिए अब भी इसका उपयोग किया जाता है। भारतीय मुसलमान हकीम उसकी जगह गूलर (**Ficus glomerata**)का प्रयोग करते है। दोनो गुणकर्म और स्वभावमे प्राय समान है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषत बगाल, मध्य भारतवर्ष, आसाम, ब्रह्मा और दक्षिण भारतवर्षमें इसके वृक्ष होते है।

वर्णन—यह पीपल और बरगदकी जातिका एक बडा और मोटा प्रसिद्ध पेड है, जो ६ से ९ मीटर (२०-३० फुट) ऊँचा होता है। शाखाये घनी होती है। काड 'सितवल्कल' और खुरदरा होता है। पत्र–एकांतर, सवृत, चौडा या लबभालाकार, दोनो छोरोकी ओर समानरूपसे क्रमश कमचौडा (Tapering), अखड, अतिसूक्ष्म त्रिनाडीयुक्त, उभय पृष्ठ मसृण, पुष्पव्यूह सयुक्त या सदण्डिक (Panicled), काड या बडी शाखाओपर लगे होते है। फल सवृत, लगभग साधारण अजीर जैसा बडा और आकृतिमें सर्वथा उसीके समान और कोमल रोइयोसे घनावृत और पकनेपर लाल और स्वादमे मीठा होता है।

वक्तव्य—अश्वत्थवर्गके और पेड़ोके समान इसके फूल और फल भी बहुत सूक्ष्म होते हैं। ये नीचेसे चौडी और नीचेसे ऊपरकी ओर गोलाई ली हुई (कोष्ठाकृति अर्थात् शून्यगर्भ वर्तुलाकार) कर्णिका अथवा पुष्पाधारपर स्थित होते है। इस कर्णिका या पुष्पाधारको ही इसका फल समझा जाता है। परन्तु वास्तवमे तो इसके फूल और फल इन कर्णिकाओके अन्दर सूक्ष्मरूपमे (बद) रहते है। पुष्प और फल दोनो सूक्ष्म होनेसे तथा कर्णिका द्वारा आच्छादित होने (ढके रहने)के कारण बाहरसे दिखते नही, इसीलिए इसे 'अदृश्य' (गुह्य) पुष्प' कहते है। पुपुष्प और स्त्रीपुष्पके अलग-अलग कोष होते हैं। गर्भाधान कीडोके सहायतासे होता है। पुकेसरकी वृद्धिके साथ-साथ एक प्रकारके कीडोकी उत्पत्ति होती है जो पुपरागको गर्भकेसरमे ले जाते हैं। यह नही जाना जाता कि ये कीडे किस प्रकार पराग ले जाते है, परतु यह तो निश्चित है कि ले अवश्य जाते है और उसीसे गर्भाधान होता है तथा कोष बढकर फलके रूपमे होते है। यह बिलकुल मासल और मुलायम होता है। उसके ऊपर कडा छिलका नही होता, बहुत महीन झिल्ली होती है। फलको तोडनेसे उसके भीतर पके हुए सूक्ष्म बीजो जैसे फल दीख पडते है, जिन्हे हम 'गूलरके बीज' कहते है। उसके भीतर भुनगे या कीडे भी मिलते है। इसीलिए फारसी और सस्कृत मे इसे क्रमश 'समरेपश्श' और 'जतुफल' कहते है। इसके काड और शाखाओ पर चीरा देने, कच्चे फलोको काटने और नरम शाखाओको तोडनेसे दूध निकलता है। कच्चा फल हरा और सफेद, फीका और किंचित् कसैला होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे टैनिन, (Tannin), मोम और काउचूक (Caoutchouc) अर्थात् रबर और राखमे सिलिका तथा फॉस्फोरिक एसिड होता है।

उपयुक्त अग—मूल, मूलत्वक् या वृक्षत्वक्, क्षीर और फल।

प्रकृति—पका गूलर दूसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जेमे तर, कच्चा गूलर दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (ध० नि०) एव रूक्ष (कै० नि०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—गूलर मन प्रसादकर, शरीरको विशेष पुष्टि प्रदान करता, सर और श्लेष्मनिस्सारक है। कच्चा गूलर सग्राही और रक्तस्तभन है। यह विशेषकर अतिसारघ्न है। इसका दूध श्वयथुविलयन, दोषपाचन और दारण है। जडका रस (पानी) शीतजनन और सशमन है। पकागूलर मेवोकी भाति खाया जाता है। गरमियोमें पके गूलरका शर्बत उत्तम पेय है। इससे मन प्रसाद और शरीरको पुष्टि प्राप्त होती, कब्ज दूर होता तथा कास और श्वासमे लाभ पहुँचता है। कच्चे गूलरोको पकाकर तरकारीकी भाँति खाया जाता है। सग्राही होनेके कारण यह दस्तोको बद करते और बवासीरके खूनको रोकते है। गूलर और इसके पत्र एव शाखाओसे यथाविधि

अवलेह (लऊक) बनाकर कास, श्वास और स्वरभेदमें चटाते है। गूलरके पत्तोको जलमे पीस-छानकर दस्त बद करनेके लिए पिलाते है। इसके दूधको सूजन पर उसे बिठाने, पकाने और फोडनेके लिए लगाते है। जडका पानी निकालकर दाहप्रशमन और सशमन होनेके कारण राजयक्ष्मा (तपेदिक) और मधुमेहमें पिलाते है। गूलरकी जडसे पानी निकालनेकी विधि यह है कि गूलरके युवा वृक्षकी जडमे गड्ढा खोदकर उसकी किसी एक जडको काटकर एक घडेके अदर रख दे। जडसे बूँद-बूँद पानी टपककर घडेमे एकत्रित होता जायगा। इसी पानीको लेकर आध पाव से पाव भर तक प्रात सायकाल प्यास लगनेपर पिलाये। अहितकर—आमाशयके लिये अहितकर और ज्वरकारक है। निवारण—अनीसूँ, सिकजबीन और शीतल जल। मात्रा—कच्चे गूलर का चूर्ण ५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक। गूलरके पत्रका शीरा ७ ग्रामसे १२ गाम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—गूलर कषाय, मधुर, शीतवीर्य, गुरु, रूक्ष, मूत्रसग्रहण, भग्नसधानकर, वर्ण्य तथा व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला है। गूलरका कच्चा फल कषाय, पक्वफल मधुर, शीतवीर्य, कृमिकर तथा पित्त, रक्त-विकार, मूर्च्छा, दाह और तृषाको मिटानेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८, सु०स०, ध०नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—गूलरकी छाल स्तम्भन, पक्वफल शीतल, स्तम्भन और रक्तसाग्राहिक, दूध शीतल, स्तम्भन, रक्तसाग्राहिक, पौष्टिक और शोथहर है। जिन रोगोमे रक्तस्राव होता हो अथवा शोथ हो उन रोगोमे गूलरका उपयोग करते है। मधुमेहमे पाचन और पौष्टिक गुणके लिए उसका फल देते है। छोटे बच्चे जब सूखते जाते हो, खाया-पीया लाभ नही पहुँचाता हो, वमन और दस्त होते हो तथा हलका ज्वर रहने लगता हो तब गूलरका दूध ० ३ मि० लि० से ० ६ मि०लि० (५-१० बूँद) दूधमें मिलाकर देते है। गडमाला, बद आदि सूजे हुए स्थानपर एव कमर तथा वक्ष स्थलके दर्दपर गूलरका दूध लगाते है। इसकी जड आँवमें देते है। ताजे गूलरका रस शीतल, स्तम्भन, रक्त-स्तम्भन और उत्तम पौष्टिक है तथा सूजाकमें देनेसे मूत्रनलिका शोथ कम करता है। अत्यार्तवमे इसकी छालका फाण्ट देते है।

०

(२२३) गेंदा

फेमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०) गेंदा, गुलजाफरी, मखमल (बम्ब०), (फा०) मदवर्ग, गुलहज़ारा, (स०) झण्डू (रा० नि०), (म०) झेंडु, (गु०) गलगोटो, (उडि०) गेंदु, (ब०) गेंदा, (ले०) टाजेटीस एरेक्टा (**Tagetes erecta Linn**), टाजेटीस पाटुला (T Patula)। (अ०) फ्रेंच मैरिगोल्ड (French Marigold)।

उत्पत्तिस्थान—गेंदा अपने पीले सुन्दर फूलोके लिए समस्त भारतीय बागो एव घरोमे लगाया जाता है।

वर्णन—वर्षायु ० ९ मीटर (१ गज) तक ऊँचा क्षुप, काण्ड सीधा, साधारण कोनयुक्त और खुरदरा, शाखायें पतली और विपुल एव खरस्पर्श, पर्ण एकान्तर, अडाकार, मोटे, भाँगके पर्णकी तरह और उभय पृष्ठ रोयेंदार, पुष्प गोल, कटोरीनुमा, कोई पीला, कोई लाल और कोई केसरिया होता है। गंध किंचित् अफीम सरीखा, स्वाद तिक्त एव क्षारीय, बीज बारीक, लबे काले रगके होते है। पुष्प आनेपर इसका प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक तिक्तसत्व होता है।

उपयुक्त-अग—पत्र, पुष्प, बीज और पचाग।

कल्प तथा योग—अर्क सदवर्ग, गुलकद सदवर्ग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म एव उपयोग—उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, संग्राही, मूत्रल, अश्मरीनाशन और कामावसादकर है। व्रणशोथपाचन-विलयनके लिए इसको लेप लगाते है। अर्शका रक्तवद करनेके लिए गुणकारी है। यह वातार्शमें भी लाभकारी है। इसकी कोपलोका शीरा मिश्री मिलाकर पिलानेसे मूत्रावरोधका नाश करता है। हज्रुरुल्यहूद (वेर-पत्थर)के साथ यह बस्त्यश्मरीके उत्सर्ग और मूत्रसगको खोलनेके लिए प्रयुक्त होता है। भिड (वर्रे)के दशपर इसे कालीमिर्चके साथ पीसकर लेप करते और पिलाते है। इसके पत्तोका रस कानमे डालनेसे कर्णशूल आराम हो जाता है। इसके पत्रक्वाथका गण्डूष करनेसे दतशूल आराम होता है। ११ ६ ग्राम (१ तोला) इसके पत्रको दो माशे काली-मिर्चके साथ पीसकर पीनेसे अर्श आराम होता है। गेदेके पत्र पाव भर और केलेकी जडको दो सेर पानीमे रात्रि भर भिगोकर सवेरे अर्क खीचे। इसमेसे दो तोले सवेरे-शाम पिलानेसे अर्शका खून वन्द होता है और विसर्प भी जाता रहता है। गेंदेके बीज १० ग्राम (१० माशे) सुखा-कूटकर खिलानेसे स्त्री-पुरुष दोनोकी कामेच्छा शात हो जाती है। साहब शम्सुद्दरके मतसे गेदा वीर्यको शुष्क करता और वीर्य-स्तम्भन भी करता है। अहितकर–शिर शूल, नेत्राभिष्यद और कण्डू उत्पन्न करता है। निवारण–विल्लीलोटन और अम्ल पदार्थ। प्रतिनिधि–कुसुमके फूल। मात्रा–(हरे पत्र) १२ ग्राम (१ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—गेदा (झण्डू) तिक्त, कषाय और ज्वर तथा भूतग्रहका नाश करनेवाला है (रा० नि०)।

नव्यमत—गेदा शोणितसग्राहक और शोथकर है। फूलकी पखडियाँ ½–१ तोला घीमे तलकर अर्शका रक्त वन्द करनेके लिए देते है। गेदेके पचागका स्वरस जोडोके मोच और अभिघातज शोथपर लगानेसे लाभ होता है।

(२२४) गेहूँ

फैमिली : ग्रामीने (Family : Graminae)

नाम—(हिं०, द०) गेहूँ, गोहूँ, (यू०) पुरोस (Puros), (अ०) हिंत, कमुर, (फा०) गदुम, (क०) कनक, (पश्तु) गनम, (अफगा०) गनम्, गदम, (स०) गोधूम, (ब०) गम, (म०) गहूँ, (गु०) घऊँ, (कु०) गोधी, (लें०) **टीट्रीकूम् एस्टीवुम Triticum aestivum** Linn (पर्याय–*T sativum* Linn, T vulgare Host), (अं०) ह्वीट (Wheat)। भूसी–(हिं०) चोकर, गेहूँ की भूसी, (अ०) नुखाला, (फा०) स(सु)वूस गदुम। निशास्ता–(यू०) आमोलन, (अ०) नशाऽ, नशास्तज, (फा०, उ०, हिं०) निशास्त, (लें०) आमीलुम (Amylum), (अं०) स्टार्च (Starch)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके पजाव, (मुलतान), राजपुताना, सिन्ध, अयोध्या, सम्भलपुर, जवलपुर, नरसिंहपुर, होशगाबाद, वम्बई और मद्रास प्रान्त, काठियावाड और इग्लैड, ब्रह्मा तथा चीन इत्यादि देशोमे गेहूँ विपुल होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मासल और पौष्टिक अन्न है। इसका धान्य और उसका चोकर औषधमे काम आता है। गेहूँके दानो (धान्य)का छिलका जो आटा छान लेनेके उपरान्त चलनीमे वच रहता है, चोकर (सबूस गदुम) कहलाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें अधिक मात्रामें कार्बोहाइड्रेट, अल्प प्रमाणमें प्रोभूजिन (प्रोटीन) नामक धातुवर्धक पदार्थ और चरबी, कुछ खनिज द्रव्य तथा छिलके (चोकर) में अधिक परिमाणमें प्रोटीन और खनिज तथा सेल्युलोज होता है।

कल्प—दलिया, फालूदा और निशास्ता (सत)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम तथा स्निग्धता (रतूबत) और रूक्षतामें मोतदिल (समस्निग्धरूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गेहू समस्त धान्योंमें श्रेष्ठतर धान्य (अन्न) है। मनुष्यके लिए यह सर्वोत्तम पौष्टिक (कसीरुल्‌गिजा) आहारद्रव्य है। इसके आटेकी रोटी पकाकर खाई जाती है। इसके मैदे (बारीक चलनीसे छाने हुए आटे)की रोटी मलग्राही (काबिज) और दीर्घपाकी होती है। बादामकी गिरीके साथ गेहूँका हरीरा बनाकर कास, रक्तष्ठीवन, कामावसाद (नपुंसकता), मस्तिष्कदौर्बल्य और शरीरदौर्बल्यको दूर करनेके लिए उपयोग किया जाता है। इसका निशास्ता (गोधूमसत्व) भी हरीरामें योजित करके पिलाया जाता है। गेहूँमें लेखन, विलीनीकरण और दोषपाचन वीर्य भी है। अस्तु, गेहूँ को मुखमें चाबकर बालतोड (दुम्मल) और अन्य फोडे-फुन्सियो पर लगाते हैं तथा इसके आटेकी पुलटिस (उपनाह) बनाकर सूजनपर बाँधते हैं। इसमें एक प्रकारका स्नेह (दुहनियत्) भी है, जिसको पातालयन्त्रके द्वारा निकाल (तेल) दद्रु, गज (खालित्य) और झाईंपर लगाते हैं। गेहूँकी भूसी जो आटा छाननेके उपरान्त बच रहती है, श्लेष्मनिस्सारक, श्वयथुविलयन, लेखन, संशोधन और कफपाचन है। इसे कास और प्रतिश्यायमें अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ क्वाथ करके पिलाया जाता है। स्तनशोथ विलीन करनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। इसका विशेष गुण श्वयथुविलयन और शरीर स्थौल्यजनन (बृंहण) है। अहितकर–आनाहकारक और अभिष्यंदी। निवारण–सिरका।

गेहूँकी भूसी (सबूस गंदुम)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण कर्म तथा उपयोग—श्लेष्मनिःसारक और श्वयथुविलयन है। प्रधानकर्म श्वयथुविलयन, लेखन और संशोधन (मुनक्का) है।

उपयोग—इसे कास और प्रतिश्यायमें अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ क्वाथकरके पिलाते है। यह सुगमतापूर्वक कफोत्सर्ग करके वक्षको शुद्ध करता है। इसमें निशास्ता (पिस्ट) शेष नही रहता, इसलिए इसको पीसकर विशेष विधि से इसकी रोटी पकाकर मधुमेहीको खिलाते हैं। अहितकर–यकृतको। निवारण–स्नेह और मधु। मात्रा–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—गेहू मधुर, शीतवीर्य (या अतिशीतल), स्निग्ध (या अतिस्निग्ध), भारी, रुचि उत्पन्न करनेवाला, आयु (एवं देह)को स्थिर करनेवाला; सारक, कफकर, टूटी हड्डीको जोडनेवाला, जीवन देनेवाला, बृंहण, वृष्य, बल्य तथा वात और पित्तनाशक है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)। हारीत संहितामें इसे ईषत्कषाय, विष्टम्भकारक और त्रिदोषनाशक भी लिखा है। राजनिघंटुमें मदकारक, दाहहरण-करनेवाला और भावप्रकाशमें वर्णको सुन्दर करनेवाला, यह अधिक लिखा है।

वक्तव्य—शूकधान्यमें गेहूके समान कोई उत्तम धान्य नही है। सन्तुलित आहारकी दृष्टिसे चावलकी अपेक्षा गेहूँ अधिक उपयुक्त है। जिनका प्रधान खाद्य गेहूँ है वे लोग अन्य लोगोकी अपेक्षया अधिक हृष्ट-पुष्ट और मोटे-ताजे होते है।

•

(२२५) गोंदनी

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम—(हि०) गोदनी, गोदी, कणलिया, (आसा०) कैशो, (वम्ब०) आसनो, (ले०) ब्रीडेलिया मान्टाना **Bridelia montana** Willd , ब्रीडे० वेर्हुकोजा (B **verrucosa** Haines) ।

वक्तव्य—छोटे लिसोढाको भी कही-कही गोदनी या गोंदी कहते है (वि० दे० 'लटोरा') ।

उत्पत्ति-स्थान—उप-हिमालयप्रदेश, झेलमसे पूरबकी ओर, खसिया पहाडी, मध्यप्रदेश, विहार और उडीसा आदि । इसका छाल एव फल बहुत कसैले होते है ।

●

(२२६) गोखरू छोटा

फ़ैमिली : जीगोफ़ील्लासे (Family Zygophyllaceae)

नाम—(हिं०) गोख(खु)रू, गुलखुर, छोटा गोखरू, (फा०) खारेखसक, खारेखसक खुर्द, खारे सेहगोशा, (अ०) हसक, (स०) गोक्षुर, स्वादुकण्टक, क्षुद्र (लघु) गोक्षुर, त्रिकण्टक, (ब०) गोखरी (रि), (म०) लहान गोखुर काँटे गोखरू, सराटे, (गु०) न्हान्ना (नाना) गोखरू, मीठा गोखरू, मीठा गोखरू, (क०) मिचिर कुण्ड, (प०) भखडा, (ले०) ट्रीबुलुस टेरेस्ट्रिस (**Tribulus terrestris** Linn), (अ०) स्मॉल कैल्ट्रॉप्स (Small Caltrops) ।

वक्तव्य—फारसी 'खसक'से 'हसक' अरबी वनाया गया है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और अन्यान्य उष्ण देशो, जैसे—ईरान और लका आदिके उजाड एव जगली भागोमे यह सामान्यरूपसे होता है ।

वर्णन—यह एकवर्षायु या बहुवर्षायु क्षुद्र वनस्पति है जिसके छत्ते १ ८-२ ४ मीटर (६-८ फुट)की दूरीमे भूमिपर पथराये हुए या भूमिसे २०-२४ से० मी० (४-६ अगुल) उठे हुए होते है । जडसे चार-पॉच कोमल डालियाँ निकलकर भूमिपर सपाट पसर जाती है । ये पतली, नीचे ऊपर तक एकसी गोल, लगभग ४५ से० मी० (हाथभर लबी) हलके लाल रग की और लोमयुक्त होती है । पत्र-चनेके पत्रकी तरह सयुक्त पक्षाकार, साधारणपत्र ५ से ६ जोडे, क्षुद्र और लगभग गोल, पत्रप्रात अखड, पुष्प क्षुद्र, अक्षकोणीय, क्षुद्र वृतयुक्त, दल (पखडी) पाँच, चौडे, पीले, कुण्ठिताग्र होते है, फल कुछ गोल, पचकोन, लगभग झडवेरके बराबर, कँटीला रोमश और कई खडवाला, प्रत्येक खड दो बडे तथा दो छोटे काँटोसे युक्त होता है । पकनेपर यह पाँच कोणोमे विभक्त हो जाता है । प्रत्येक कोपमे चार तीक्ष्ण कटक और १ या २ चतु श्रग बीज होते है । कोप या खड (Cocci) मेखके आकृतिके, पकनेपर कुछ पीले, काँटोका मध्यवर्ती, बहि उन्नतोदर पृष्ठ खुरदरा होना है । जब पाँचो जुडे होते है तब फलके १० काँटोकी नोके नीचे वृतकी ओर और १० की बाहर परिधिके चतुर्दिक् होती है । इनमे पीछेके १० प्रथम विकसित होते है । इसी कारण किसी-किसी ग्रथमे यह लिखा मिलता है, कि प्रत्येक कोपमे केवल दो ही कटक होते है । बीज स्नेहमय और बहुत कडे छिलकेके भीतर होते है । फलमे कोई विशेष गध या स्वाद नही होता, परन्तु बीज एक क्षारसमोदकी विद्यमानताके कारण किंचित् तिक्त होते है । बाजारमे इसके फल मिलते है । इसका एक भेद और है जिसे लेटिन मे ट्रीबुलुस अलाटा (**Tribulus alata** Delile), हिन्दीमें 'गोखुरे कलॉ' एव वाखरा, सिंधमे 'निढोत्रिकुड' एव लटक, पंजाबीमें 'हसक' और अग्रेजीमें विंग्ड कैल्ट्रोप्स (Winged Caltrops) कहते है । यह पश्चिम भारतवर्ष

विशेषत पजाव, सिंध और बलूचिस्तान तथा फारस, अरब, सीरिया और मिश्रमें होता है। पत्र पहले भेदके पत्रकी तरह, किन्तु उनसे वडे और अत्यत रोमश, पत्रप्रात कटावदार, डालियाँ खडी या भूमिपर पडी, दो हाथ या उससे भी कुछ अधिक लम्बी, फल तिकोनिया मीनाराकार, चौडे पक्षयुक्त, खड (Coccı) हृष्टरोम और प्रत्येक दो वीज-युक्त, कटक मिले हुए होते हैं।

वक्तव्य—अरबी-यूनानी निघण्टुग्रन्थोमे 'जंगली' और 'वागी भेदसे' गोखरूके जिन दो भेदोका उल्लेख किया है, उनमे उपर्युक्त प्रथम यूनानियोका 'जगली' और द्वितीय वागी' प्रतीत होता है। वागी गोखरूके सबधमे यूनानी निघटुकर्ताओने जो यह लिखा है कि इसके तनेपर वारीक वस्तुये बालोकी तरह पतली और गुच्छेकी भाँति सघातभूत लगी होती है, वह हिन्दुस्तानी गोखरूमे अभी तक नही देखनेमे आई। आधुनिक यूनानव.सी गोखरूको 'ट्रिबोलिया (Trıbolıa)' कहते हैं। दीसकूरीदूसने 'ट्रिबोलोस (Trıbolos)' और प्लाइनोने 'ट्रीबुलुस (Trıbulus)' नामसे गोखरूका उल्लेख किया है।

रासायनिक सगठन—फलमे एक ऐल्केलॉइड, स्थिर तेल, अत्यल्प प्रमाणमें एक उत्पत् तेल, राल और पर्याप्त प्रमाणमे नाइट्रेट्स होते हैं।

उपयुक्त अग—फल और मूल।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे गरम और खुश्क, लखनऊके हकीमोके मतसे समिश्रवीर्य, आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—मूत्रार्तवप्रवर्तक, वस्तिवृक्काश्मरीनाशन और वाजीकर।

उपयोग—मूत्र और आर्तवप्रवर्तनके लिए इसका काढा या शीरा उपयोग किया जाता है। यह कृच्छ्रमूत्र और मूत्रावरोधमें लाभकारी है तथा बस्ति एव वृक्कगत अश्मरीको तोडकर मूत्रके साथ उत्सर्गित कर देता है। मूत्र-जनन होनेके कारण औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक)मे पुष्कल उपयोग किया जाता है। वाजीकरणके लिए इसको चूर्णो और माजूनोमें डाला करते हैं। यह अकेला भी प्रयुक्त होता है। अहितकर–शिरोरोगोके लिये। निवारण–बादाम और तिलका तेल। प्रतिनिधि–इसकी जड और पत्तोका स्वरस। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—गोखरू मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, मूत्रविरेचनीय, शोथहर, वाजीकर, बृहण, बल्य तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, हृद्रोग, शूल और वातरोगोका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २५, सु० सू० अ० ३८, चि० अ० ७, ध० नि०, भा० प्र०)। 'गोक्षुरादि गुग्गुल' इसका प्रधान योग है।

नव्यमत—गोखरू स्नेहन, वेदनास्थापन, मूत्रजनन, सग्राहक, बल्य, शीत और मूत्रपिण्ड (गुर्दा)के लिए उत्ते-जक है। इसे बडी मात्रामे देनेसे दस्त साफ होता है। प्रमेह, सूजाक और वस्तिशोथमे इसे देते हैं। इसमे वेदना-स्थापन गुण कम होनेसे इसके साथ खुरासानी अजवायन मिलाते है। मूत्र अत्यम्ल स्वभाववाला हो तब गोखरूके काढेमें जवाखार मिला देते हैं। वृक्कशोथमे मूत्र क्षारस्वभाव, दुर्गन्धयुक्त और गदला हो तव काढेमे शिलाजीत मिला-कर देते हैं। सम-भाग गोखरू और तिलका चूर्ण मधु एव बकरीके दूधके साथ हस्तमैथुनजन्य नपुसकतामे देते हैं। गर्भाशय शुद्ध होकर बन्ध्यत्व नष्ट होनेके लिये गोखरू देते हैं।

(२२७) गोखरू बड़ा

फैमिली : पेडालिआसे (Family · Pedaliaceae)

नाम—(हिं०) बडा गोखरू (गोखुर), विलायती गोखरू, हस्तिचिंघाड, (अ०) हसके कवीर, (फा०) खारे-खसके कलाँ, खसकेकलाँ, (स०) तिक्त गोक्षुर, बृहद् गोक्षुर, वनशृगाट; (प०) गोखरू कलाँ, बडा भखडा (रा), (द०) बडा गोकरू, हत्तो गोकरू, (ब०) बड गोखरि, (गु०) कडवा गोखरू, मोटा (म्हार्टा) गोखरू, ऊभा गोखरू, (म०) करोनटीआ, उभो गोखरू, मोठे गोखरू, (लै०) पेडालिडम् मूरेक्स (**Pedalium murex** Linn)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष विशेषत समुद्रतट, गुजरात, काठियावाड, कोकण और उष्णकटिबन्धीय अफ्रीकाके रेतीले प्रदेश। थोडा बहुत सर्वत्र मिलता है।

वर्णन—इसके किंचित् मासल क्षुद्र, क्षुद्र होते है, शाखाये ६–१८ इच लम्बी तथा उत्थित प्रसरी होती है। पत्तियाँ एकान्तर, दलदार, अडाकार, कुण्ठिताग्र, २ ५ से० मी० से ५ से० मी० (१-२ इञ्च) लम्बी, लहरदार, दन्तुर तटवाली, पुष्प पीले, १ इञ्च लम्बे तथा पत्रकोणोमे एकाकी निकले रहते हैं, पुष्पवृन्त पत्रवृन्तसे ह्रस्व, पत्र-कोणके आसन्न १ से २ वा अधिक, ग्रन्थियुक्त अवयवयुक्त होता है। फल लटकनदार, लगभग १ २५ से०मी० (½ इञ्च) लवा, आधार पर ६ २५ मि०मी० (¼ इञ्च) मोटा, चौकोना, प्रत्येक उभाग्युक्त कोणपर कम नोकदार एक सरल काँटा, इस प्रकार कुल चार काँटे होते हैं और ऊपरकी ओरका भाग चारो ओरसे सिमटा हुआ एक कोनेमे मिलता (शक्वाकार होता) और भीतरसे दो कोशवाला होता है। काँटोके ऊपर यह तग भाग पच-चगुल्याकृति (5–clawed), पुटचक्र (Calyx)के भीतर अन्तर्निवेशित होता है। कच्चा फल हरा, पकनेपर पीला और सूख जाने-पर मटिया रगका और कॉर्कवत् होता और दो कोष्ठोमे विभक्त होता है। प्रत्येक कोष्ठ (कोश)मे दो-दो बीज होते है। बीज ४, लम्बे और सकुचित होते हैं। बीजका स्वाद लोआबी किन्तु गन्ध कुछ नही होती। असख्य क्षुद्र वृतशून्य चमकीली, स्फटिकीय, चतुर्धासे पचधा-चीरित ग्रन्थियोकी विद्यमानताके कारण तरुण शाखाये, पत्रवृत, पत्राध पृष्ठ और अपक्व फलियाँ ऐसी दिखती है मानो उनपर ओसके कण जमे हो। इसका ताजा फल हरा और मासल होता है। ताजे पौधेमे एक विशेष प्रकारकी अप्रिय कस्तूरीवत् गन्ध होती है। इसकी ताजी हरी डालियोमे बिना कुचले जलमे हिलाने मात्रसे जल अण्डेकी सफेदीकी भाँति गाढा और पिच्छिल हो जाता है। लवावके स्रोत पूर्वोक्त ग्रथिवत् स्फटिकीय अवयव होते है। यदि इनको नरम हाथोसे पत्रके अध पृष्ठमे खुरचकर जलमे मिला दिया जाय तो तुरन्त पिच्छिलता उत्पन्न हो जाती है। लवावका स्वाद अस्पष्ट और विशेष प्रकारका परन्तु अप्रिय नही होता है। इसमें न कोई रग होता है और न कोई गन्ध। बाजारमें बडा गोखरूके नामसे इसके सूखे फल मिलते है।

वक्तव्य—**मोहीउद्दीन शरीफके मतसे फरीद बूटी** वस्तुत बडा **गोखरूका** नाम है। उसका यह नाम इस घटनाकी स्मृतिमे रखा गया कि हजरत **शेखफरीदुद्दीन शकरगज रहमतुल्ला** अलेह दीर्घकाल पर्यन्त केवल इसकी पत्तियोको जलमे हिलाकर बनाये हुये घन पिच्छिल जलको सेवनकर जीवन धारण किये रहे अथवा यह कि वे इसे बहुत ही गुणकारी मानते थे और प्राय शरीर रोगोमे इसका सफलतापूर्वक प्रयोग करते थे। कोई-कोई इसे 'पाता' या 'पाथा' अथवा 'फार(ब)' भी कहते है। अहलुल्लाहकी **तक्मिलहे हिंदीमे** इसका सबसे आश्चर्यजनक गुण यह लिखा है कि यह पानीको अतिशीघ्र फालूदेकी भाँति जमा देता है। बडा गोखरू के अतिरिक्त यह गुण जलजमनी या छिरेटा और **भूमिबला** (Sida humilis)मे भी होता है। सभवत इसी गुलधर्मावलम्बित सादृश्यके कारण कुछ लोग भ्रमवश इन्हे भी **फरीदबूटी** कहते है। इन्डियन मेडिसिनल-प्लान्ट्सके लेखक श्री वसु महोदयने राजिका कुलकी **फार्सेटिया** (**Farsetia**) प्रजातिकी **'ईजिप्टिएका'** आदि कतिपय जातियो का पजाबी नाम **फरीदबूटी** लिखा है। डीमनके मतसे मुसलमान चिकित्साग्रथ-लेखकोका बडा गोखरू (हसक) इससे भिन्न **करोनी** जान्थीउम् स्ट्रूमारिउम् (**Xanthium strumarium**) है। डॉक्टर मोहीउद्दीनशरीफके मतसे यह फरीदबूटी है (उपर्युक्त वक्तव्य अवलोकन करे)।

रासायनिक संगठन—फलमें एक हलके हरेरंगकी चर्बी, अल्पप्रमाणमें राल, एक क्षारोद, निर्यास और राख प्रभृतिद्रव्य होते हैं। उपयुक्त अंग-पत्र, फल और पंचांग।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष, आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्नेहन, दाहशमन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, अश्मरीनाशन, बल्य और वाजीकर है। इनके ताजे पत्र, कांड और फलका दूध या जलमें निकाला हुआ लवाव (पिच्छा) मूत्रसंस्थानके रोगोंकी बढी हुई गरमी दाह और जलन, मूत्रावरोध, कृच्छ्रमूत्र, वेदनायुक्त बिंदुमूत्रता, हस्तिमेह, सूजाक, अश्मरी आदि तथा शुक्ररोगों, जैसे जननांगोंकी बढी हुई स्पर्शशक्ति (उकसाहट), स्वप्न प्रमेह और शीघ्रपतनमें मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है अथवा सूखे गोखरूका चूर्ण फँकाया जाता है। इसे सदैव ताजा तैयार करना चाहिये। ताजे पौधोंके अभावमें इसके सूखे फलका काढा व्यवहारमें लेना चाहिए। मूत्रल होनेसे यह जलोदरमें भी गुणदायक है। यकृत् प्लीहावृद्धिमें पंचांग का रस या काढा उपयोग किया जाता है। आर्तवजनन होनेसे अनियमित ऋतुमें और सूतिकारोगोंमें प्रसवशोणितके यथेष्ट उत्सर्गके लिए इसका रस या फलका क्वाथ पिलाते हैं। गोखरूके चूर्णमें लौंग, इलायची, चीनी और घी मिलाकर दूधके साथ देनेसे शरीर पुष्ट और बलवान होता है। सूजाक और सूजाकजन्य आमवात (संधिशोथ)में इसके पत्रका चूर्ण दूध और चीनीके साथ देते हैं। गोखरू और सोंठका काढा नित्य सवेरे पिलानेसे आमवात आराम होता है। वाजीकर और वृष्य होनेसे नपुंसकत्व एवं शुक्रप्रमेह (जरयान)में भी गोखरूका उपयोग करते हैं। बालकोंके मुख-पाकमें इसके पत्रस्वरसका स्थानीय उपयोग करते हैं। व्रणशोधन, रोपणके लिए इसके पत्रका उपयोग होता है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। मात्रा—पत्रचूर्ण १२ ग्राम (१ तोला), फल १२-३५ ग्राम (२ से ३ तोले) तक, क्वाथ या फाटरूपमें पत्र और फल ३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—बडा गोखरू शीतवीर्य, स्निग्ध, बलकारक, बस्तिशोधन (मूत्रविरेचन), मधुर, दीपन, वृष्य, पौष्टिक तथा अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग और वातरोगको दूर करनेवाला है। शर्करा, अश्मरी, प्रमेह, श्वास कास, अर्श मूत्रकृच्छ्र, प्रदर इन रोगों में और रसायन प्रयोगोंमें बडा गोखरू विशेष गुणकारक है (भा० प्र०, शिवदत्त)।

नव्यमत—ताजी पत्तियाँ शीतल जलमें मसलनेसे जल लुआबदार हो जाता है। बडा गोखरू स्नेहन, मूत्र-जनन, बल्य और वाजीकर है। इसका मूत्रजनन धर्म उत्तम है। नये सूजाकमें ताजे हरे पंचांगका हिम ताजा-ताजा बनाकर देते हैं। फलोंका काढा बनाना हो तो उसमें मुलेठी और नागरमोथा मिलाना चाहिये। इससे पेशाबकी जलन कम होती है। स्वप्नमें वीर्यस्राव होना, पेशाब अपने-आप हो जाना, कामशक्ति कम हो जाना इनमें फलोंका फाण्ट या दो माशा चूर्ण शक्कर, घी और दूधके साथ देते हैं। सूतिकारोगमें तथा यकृत और प्लीहाके रोगोंमें फलोंका काढा अथवा पंचांगका स्वरस देते हैं। फाण्टविधि—२॥ तोला फलका चूर्ण २५ तोले उबलते हुए जलमें डाल, एक घंटे तक पात्रको बंद रख, कपडे से छान, थोडा-थोडा करके दिनभरमें दे देवें।

(२२८) गोभी

फॅमिली : क्रूसीफेरे (Family Cruciferae)

नाम—फूलगोभी (हिं०) गोभी, कोबी, (अ०) किंबीत, कर्मशामी कर्मनब्ती, (फा०) कलमरूमी, कलम-गिर्द, (अ०) कॉलीफ्लावर (Cauliflower), ब्रोकोल्ली (Broccoli), (लै०) **ब्रास्सिका ओलेरासेआ प्र० बॉट्रीटिस्** (**Brassica oleracea** Linn, **var botrytis** Linn)। **पातगोभी या गोभीबंद** (हिं०) करमकल्ला, कोबी,

(अ०) कर्नब, कुर्नुब(फारसी 'कर्म'से अरबीकृत), बक्लतुल् अन्सार,(फा०) कर्म कलम, करीत, (द०)करम; (बं०) कोपी, (गु०) कम्बोई, (अं०) कैबेज (Cabbage), कोलवर्ट (Colewort)। इसके निम्न तीन भेद हैं —(१) उद्यानज अर्थात् 'बागी' या 'बुस्तानी'–(हिं०) गाँठ गोभी, (अ०) कर्नब नबती। (२) बर्री अर्थात् वन्य–(अ०) कर्नब बर्री। वि० दे० 'गोभी जगली'। (३) बहरी अर्थात् सामुद्र–(अ०) कर्नब बहरी, (फा०) कलम दरियाई।

वक्तव्य—'गाँठ गोबी' का लेटिन एव अंग्रेजी नाम क्रमश ब्रास्सिका ओलेरासेआ प्र० गोंगीलोडीस (Brassica oleracea Linn var gongylodes L) तथा Knol-kohl है। गोभीका सामान्य वानस्पतिक नाम ब्रास्सिका ओलेरासेआ (B olercaea Linn) है, जो इगलैंड तथा यूरोपके दक्षिण-पश्चिम समुद्रतटवर्ती प्रदेशोका आदिवासी पौधा है जहाँ यह स्वयजात भी होता है। इसीसे अग्रेजीमे इसे वाइल्ड कैबेज(Wild cabbage)भी कहते है। इसी मूल पौधे से अब उपरोक्त तथा अन्य अनेको कृषीजन्य प्रभेद (varieties) विकसित किए गए है जिनका आजकल पुष्कल व्यवहार सब्जीके लिए किया जा रहा है। आलू, पपीता, टमाटर आदि अन्य विदेशागत उपयोगी वनस्पतियोकी भाँति गोभीका भी विस्तृत परिमाणमे भारतवर्ष मे सर्वत्र खेतीकी जाती है और अब गोभीभी यहाँकी उपयोगी वनस्पतियोमे प्रविष्ट हो गई है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य यूरूप। अब भारतवर्षमे भी सर्वत्र इसकी खेतीकी जाती है। गोभी आजकी प्रधान सब्जियोमे से है।

वर्णन—ये प्रसिद्ध शाक है, जो मौसम (सामान्य जाडेके दिनो)मे सर्वत्र तरकारी बाजारोमे प्रचुरतासे मिलती है। फूलगोभीमे दहीके थक्केकी भाँति श्वेत या पीताभश्वेत पुष्पव्यूहपिण्ड तथा कोमल पत्तियोका व्यवहार शाकार्थ, सलाद आदिमे तथा अचारके रूपमे किया जाता है। पुष्पव्यूह–व्यवहृत अग होनेसे ही इसे फूलगोभी–कहते है। फूलोको सुखाकर मौसमके अतिरिक्त दिनोमे व्यवहृत करनेके लिए भी इनका सरक्षण किया जाता है, जो बन्द डिब्बोमे बाजारोमे उपलब्ध होते है। पातगोभीमे चिगुडी हुई स्तरित पत्तियोके विभिन्न आकार-प्रकारके गठित पिण्ड होते है। चूँकि इसका व्यवहृत अग पत्रप्रधान होता है, इसीलिए इसे 'पातगोभी' कहते है। गाँठगोभीमें छोटाकाण्ड ही फूलकर शलजमके आकारके गाँठके रूपमें परिवर्तित हो जाता है जिसपर इतस्तत पत्तियोके स्कार (Scars) होते है।

रासायनिक सगठन—पोषक तत्वोकी दृष्टिमे गोभी एक उपयोगी खाद्य है। इसमे प्रोटीन, वसाजातीय पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट, खनिजतत्व (Mineral matter), कैल्सियम्, फॉस्फोरस, लौह एव विटामिन 'A' विटामिन 'B' एव विटामिन 'C', आदि तत्व पाये जाते है।

प्रकृति—समिश्रवीर्य। मतातरसे पहले दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गोभीका फूल अकेला या मासके साथ पकाकर खाया जाता है। यह अत्यत सुस्वादु एवं रुचिदायक होता है। किन्तु इससे वायु (रियाह) और सान्द्र रक्त उत्पन्न होता है। वायुकारक होनेसे उदराध्मान उत्पन्न करता है, वाजीकर है, किसी कदर मूत्रोत्सर्गकी शक्ति भी रखता है। अपने प्रभावमे (खुमार)को नष्ट करता है। कहते है कि मद्यपानमे पूर्व इसका खाना नशाप्रतिबधक है। इसके काढेसे परिषेक करनेसे सधिशूल शमन होता है। वाजीकरण और नशाप्रतिबधन इसके प्रधान कर्म है। पत्र तिक्त, दीपन और हृदयशक्तिवर्धक है। वातरक्त और आमवातमे इसका प्रयोग करते है। बीज दूसरे दर्जेमे गरम एव खुश्क, मूत्रल, सारक, दीपन और कृमिघ्न है। अहितकर–चिरपाकी, आध्मानकारक और वायुकारक। निवारण–बादामका तेल, घी और गरम मसाला। प्रतिनिधि–फूलगोभीका पातगोभी (करमकल्ला)।

(२२९) गोभी जंगली, वनगोभी

फैमिली : कॉम्पोजिटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०) वनगोभी, जगली गोभी, (अ०) कर्नब बर्री, (फा०) कलमदश्ती, (स०) गोलोमिका, भूलग्ना दीर्घपत्रा, खरदला, शुभा, मध्यदण्डा (शिवदत्त), (प०)दूधल, बत्थल, भत्तल, (म०,गु) भोपथरी, (ले०) लाउनीआ नूडीकाउलिस (**Launaca nudicaulis** Hook), दूसरी जाति लॉ० पिन्नाटीफिडा (**L Pinnatifida** Ceass)।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षके मैदान।

वर्णन—एक क्षुद्र उद्भिद् जिसके समस्त अगोमे दूध होता है। मूलके समीप पत्तियोका गुच्छा होता है। पत्तियाँ प्राय पक्षवत्-खण्डित रहती है और उनके मध्यमें वह काण्ड निकलता है जिसपर मुण्डक होते हैं। मुन्डकके पुष्प समानलिंग और जिह्वाकार होते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दोषका पाचन करती, रूक्षता एव मार्दव उत्पन्न करती, अत्यन्त लेखन, श्वयथु-विलयन और रेचन है। यदि दो-तीनवार उबालकर पानी फेक देवे तो उदरानाह उत्पन्न कर देवे। इसके पत्तोंके लेपसे व्रण भरजाते है। इसके पत्तोका स्वरस लगानेसे शुष्क एव आर्द्र खुजली मिट जाती है। इसके बीज अत्यन्त कामोद्दीपक है। इसके बीज या सूखी हुई जड ७ माशा पीसकर मद्यके साथ पिलानेसे साँपका विष उतर जाता है।

आयुर्वेदीय मत—चरक और सुश्रुतमें गोजिह्वाका उल्लेख शाकवर्गमे हुआ है और उसे शीतल एव रक्त-प्रसादन लिखा है। गोभीका साग (गाजिह्वा) कोढ, प्रमेह, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरनाशक तथा हल्का है (भा० प्र०)।

●

(२३०) घीकुआर

फैमिली : लीलिआसे (Family Liliaceae)

नाम—(हिं०) घीकुँआर, ग्वारपाठा, गोड़पट्ठा, (यू०) आलूए फैकरा, (अ०) सब्बारत, सब्बारा, अलसी, नवातुस्सिब्र,(फा०) दरख्ते सिब्र, (स०) घृतकुमारी, कुमारी गृहकन्या (-कुमारी), (व०) घृतकुमारी, (म०) कोरकाड कोरफड, (गु०) कुवार, कुवारपाठु, (कु०) पतकुवार, (प०) कुवारजदल, (कच्छ) लेपरी, (ले०) आलोए बार्बे-डेन्सिस **Aloe barbedensis** Mill (पर्याय—*A vera* Tourn ex L)। कुमारी (रस) सार—(हिं) एलुवा, एलुवा मुसब्बर, (अ०) सिब्र, (फा०) सिब्र, बोलसियाह, शवयार, (स०) ऐलेयक, कृष्णबोल, (व०) मोशब्बर, (म०) एलिया, काला बोल, (गु०) एलिय, (अ०) एलोज (Aloes)।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमे एलुआको 'आलूय (Aloe) वा फैकरा' कहते है। हिन्दी 'एलुआ' यूनानी 'आलूय'-से बहुत मिलता जुलता प्रतीत होता है। भाष्यकार गीलानीके मतसे इसे अरबोमें सब्र (सिब्र) इसलिये कहते है कि यह बत्तीउल्इसहाल है अर्थात् इसका विरेचनीय कर्म इतना बिलबसे होता है कि इसके सेवन करनेवालेको विरेक आनेकी प्रतिक्षामे बहुत सब्र (धैर्य) करना पडता है।

इतिहास—यूनानवासियोको इस औषधिका ज्ञान ईसवी सन् से ४०० वर्ष पूर्व था। यद्यपि सावफरिस्तुसने इसका उल्लेख नही किया, तथापि यूनानी हकीम दीसकूरीदूस आदिने इसका उल्लेख किया है। उसने जिस प्रकारके एलुआ (सिब्र)का वर्णन किया है वह यही है।

उत्पत्तिस्थान—अफरीका, अरब और भारतवर्षकी खारी रेतीली जमीन और नदीकूल। यद्यपि एलो बेरा या एलो बार्बेडोज जातिके घीकुआरके गुल्म जिससे अरबी या बर्बदी एलुआ (Barbadoes Aloes) प्राप्त होता है, तथा कतिपय अन्यजातीय घीकुआर भारतवर्षमे विशेषकर उत्तर-पश्चिम हिमालयकी घाटियो और समस्त मध्य-भारतीय पठारोसे लेकर कन्याकुमारी तक और बम्बई तथा गुजरातके समुद्रतटवर्ती स्थानोमे पूर्णतया बस गए है, तथापि उनमेंसे इसका 'एलो इडिका' नामक भेद ही, जिसे 'एलो ऑफिफसिनेलिस' भी कहते है, भारतवर्षका निवासी प्रतीत होता है। यह मैसूर और मद्रास प्रातके कतिपय भागोमे होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध गुल्म है जो प्राय आध गज ऊँचा होता ह। पत्र—३-४ अगुल चौडे, हाथ डेढ हाथ लम्बे, गोपुच्छाकार, तीक्ष्णाग्र, बहुत मोटे और गुदेदार तथा बाहरसे हरे, पत्रप्रात कुछ मुडे हुए क्षुद्र काँटेयुक्त होते हैं। पत्तोको काटनेपर पिलाई लिए लसीला कड्वा द्रव और सफेद गूदा निकलता है जिसको लुआब घीकुआर कहते है। कुछ विशिष्ट क्रियाओसे सुखाया और जमाया हुआ घीकुआरका यह दूध या रस जिसका व्यवहार औषधिके रूपमे होता है, अरबीमे 'सिब्र' और हिन्दीमे 'एलुवा या मुसब्बर' कहलाता है। जब इसके पत्र पूरे बढ चुकते है और क्षुप पुराना हो जाता हे, तब पत्तोके बीचसे एक डडा या मूसला (पुष्पदड) निकलता है। इसी डण्डेमे लाल फूल निकलता है।

एलुआ-निर्माण-विधि—घीकुआरके पत्रको जडके समीप आडे बलमे काटने पर जो गाढा रस निकलता है उसे किसी उपयुक्त पात्रमे सग्रह करके वाष्पीकरणकी विधिसे कभी-कभी स्वेच्छापूर्वक यह अधिकतया उबालकर घन-रसक्रिया प्रस्तुत करके सुखा लेते है। प्रारम्भमें रस रगरहित होता है, किन्तु वाष्पीकरण एव क्वथनकी क्रियाके उपरान्त वह काला हो जाता है। सुतरा व्यापारिक द्रव्य (एलुआ) बाजारमे कडे काले टुकडो या डलीके रूपमे मिलता है।

वक्तव्य—व्यापारमें यद्यपि कुल नही, तथापि अधिकाश मिलनेवाला एलुआ भारतवर्षमे विदेशोसे आता है। यद्यपि भारतीय घीकुआरसे बना एलुआ किसी प्रकार घटिया नही होता, तथापि सोकोतरा (Socotra) द्वीपमें होनेवाले एक जातिके घीकुआर (**Aloe perryi** Baker)से बना एलुआ (**सिब्र सकोतरी** Socotrine Aloe) बहुत अधिक आदरणीय है। परन्तु जजीबारमे होनेवाले इसी जातिके घीकुआरसे जो एलुआ प्रस्तुत किया जाता है, उसकी गणना भी इसीमें होती है। अस्तु इस प्रकारका एलुआ सोकोट्रा से तो कम अधिकतर जजीबारसे ही लालसागरके बन्दरगाहोसे होकर जहाजोके द्वारा बम्बईमे आता है। यहॉ से इसका थोडा भाग बाहर भेज दिया जाता है, परन्तु अधिक भाग यही रह जाता है।

भेद—(१) अरबी—इस प्रकारका मुसब्बर एक जातिके घीकुआर (Aloe vera var. officinalis Linn) से विशेष विधिसे अरबमे प्रस्तुत किया जाता है और वहीसे भारतवर्षमें इसका आयात होता हे। भारतवर्षमे इसीका प्रचलन अधिक है। इसमें यथेष्ट भेषज्यगुण वर्तमान होता है। फिर भी सभी अरबी और पारस्य देशीय हकीम इस विषयमे एकमत है कि अरबी एलुआसे सकोतरी एलुआ (सिब्र सकोतरी) श्रेष्ठतर होता है। यूनानी हकीम दीसकूरीदूस वर्णित एलुआ यही है। इसे अरबी, यमनी, मक्की, अदन या बर्बदी सिब्र (एलुआ) कहते है। इसी जातिके एक भारतीय भेदमे प्रस्तुत एलुआको 'सिब्र मैसूरी' कहते है।

(२) सकोतरी—इसे 'सिब्र सकोतरी' कहते है। देखनेमें यह सुनहला भूरे रगका, ऊपरसे कडा, भीतरसे नरम और विशेष सुगन्धयुक्त होता तथा तोडनेपर शीघ्र टूट जाता है। इसका चूर्ण और पतले कण नारगी-भूरे रगके होते है।

वक्तव्य—सर्वोत्तम एलुआ 'सकोतरी (सिब्र सकोतरी)' है। यही आन्तरिक उपयोगमें लिया जाता है। अरबी केवल बाह्य उपयोगमे आता है।

रासायनिक सगठन—इसमे सिब्रीन (एलोइन) नामक कार्मुकवीर्य, राल, उत्पत् तेल जिसपर इसका गन्ध निर्भर करता है आदि सत्व होते हैं।

कल्प तथा योग—इयारज फैकरा, कुर्स इयारज खास, हब्ब इयारज, जिमाद सिब्र आदि।

घीकुआर—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—विरेचन, रक्तप्रसादन, श्वयथुविलयन तथा व्रणशोथपाचन और कफदोषसशमन, विशेषकर श्वयथु एव वातविलयन है।

उपयोग—रक्तप्रसादन एव विरेचन होनेसे रक्तविकारजन्य रोगोमे उपयोग करते है तथा यकृत्प्लीहाके योगोमे सम्मिलित करते है। सफेद जीरा और फिटकिरीके साथ घीकुआर का गूदा (लबाब) मिलाकर पोटली बनाते और नेत्राभिष्यदमे आँखोपर बार-बार फिराते तथा उसका रस आँखमे निचोडते है। घीकुआरके लबाबको अकेला भी आँखोमें आश्च्योतन करते है। इससे ललाई और दर्द दूर हो जाता है। घीकुआरके पत्रको एक ओरसे छीलकर उस पर थोडा आंबाहल्दीका चूर्ण छिडक कुनकुना गरम करके बाघी (वद), ककराली तथा अन्य शोथोपर बाँधते है। घीकुआरके गूदेका माजून बनाते है जो वाजीकरण और कटिको शक्ति देने और आमवातके लिये गुणकारी है। अहितकर—यकृत्, अन्त्र और आमाशयको। निवारण—कतीरा और गुलाबपुष्प। प्रतिनिधि—कब्ज निवारणके लिए एलुआ। मात्रा—घीकुआरका गूदा ७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला तक)।

आयुर्वेदीय मत—घीकुआर तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, भेदन, नेत्रके लिये हितकर, रसायन, बृहण, वृष्य, बलकारक, वाजीकर तथा वात, विष, गुल्म, प्लीहवृद्धि, यकृद्वृद्धि, कफ, ज्वर, ग्रन्थि, अग्निदग्ध, विस्फोटक, पित्त, रक्तविकार और त्वचाके रोगोको दूरकरनेवाला है (भा० प्र०)।

नव्यमत—घीकुआरका रस कडुआ, शीतल, दीपन, पाचन, विरेचन, मूत्रजनन, बल्य, शोणितस्थापन, श्वयथुहर, दाहप्रशमन और व्रणरोपण है। अल्पमात्रामे एलुआ तिक्त, दीपन, पाचन और बल्य है। इससे पचननलिका और यकृत्की क्रिया सुधरती है। बडी मात्रामें एलुआ विरेचन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और कृमिघ्न है। एलुआका लेप शोथहर और व्रणरोपण है। घीकुआरका रस नेत्राभिष्यन्द, स्तनशोथ, विद्रधि, अर्श और अग्निदग्धपर हलदीका चूर्ण मिलाकर या बिना हल्दी मिलाये लगानेसे शोथ और दाह कम होता है।

एलुआ—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, विरेचन, दीपन, यकृद्बलदायक, कृमिघ्न, आर्तवजनन और व्रणशोधन है। कब्ज दूर करनेके लिये एलुआका उपयोग होता है। यह शिर, नेत्र और सधियोके दोषोका उत्सर्ग करता है। उपयुक्त औषधियोके साथ यह सौदावी रोगोमे प्रयुक्त होता है। दीपनके लिये हल्की मात्रामें उपयोग किया जाता है। उदरजकृमि विशेषत सूत्र (चुरन) कृमियोके नाश एव उत्सर्गके लिए इसके घोले हुये जल (आबे महलूल)से वस्ति देते या किसी स्नेहमें मिलाकर गुदामे लगाते है। रुद्धार्तवमें या अनार्तवमें उपयुक्त औषधियोके साथ इसकी गोलियाँ खिलाते है। गर्भवती स्त्रियोको इसका बारबार या अधिक मात्रामे उपयोग करानेसे गर्भपात हो जाता है। गर्भपातके लिये फलवर्तिकी भाँति भी इसका उपयोग करते है। व्रणोको शुद्ध करनेके लिए इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोके

साथ अवचूर्णन करते या मरहमोंमें मिलाकर लगाते हैं। कतिपय शोथोको विलीन करनेके लिए यह प्रलेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। हब्ब अयारिज, हब्ब शबयार, हब्ब सिब्र और हब्ब तकार इसके प्रसिद्ध योग हैं। कब्ज दूर करने, मस्तिष्कीय मलोको दस्तके द्वारा निकालने तथा आमाशय और यकृतको शक्ति देनेके लिये इनका उपयोग करते हैं। अहितकर–अन्त्रमें सक्षोभ (खराश) उत्पन्न करता है, इसलिये अर्शमें यह अहितकर है। निवारण–कतीरा और गुलाब-पुष्प। प्रतिनिधि–निसोथ। मात्रा–१२० मि० ग्रा०से ० ५ ग्राम (१ रत्तीमें ४ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—चरपरा, शीतवीर्य, दस्तावर (भेदक), पारेको शोधनेवाला तथा शूल, अफारा, कफ, वात कृमि और गुल्मको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)

(२३१) घुँघची

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) घुंगची, घूँची, घुमची, गूँच, करजनी, रत्ती, चिरमिटी, गुँची, चुँ(ची)टली, (फा०) सुर्ख, (स०) गुञ्जा, उच्चटा, रक्तिका, (व०) कुँच, (म०) गुज, चानोटी, (गु०) चणोठी; (क०) रचफोल, (प०) रत्ती, लालडी, (मल०) कुन्नि, कुरञ्जी, (मा०) चिरमी, चिर्मिटी, (सिं०) रत्यु, (तें०) गुरिगिंज (का०) गुलगजि; (लै०) आब्रुस् प्रीकाटोरिउम् (**Abrus precatorius** Linn), (अ०) इंडियन या वाइल्ड लिकरिस (Indian or Wild Liquorice), जैक्विरिटी (Jequirity)।

वक्तव्य—घुँघची, पतग और कुचन्दन या वडी गुमची (**Adenanthera pavonia** Linn) के बीज कुक्कुटनेत्रके समान होते हैं, अस्तु उनके लिये अरबी 'ऐनुद्दीक' और 'चश्मेखुरूस' शब्दका, जिसका अर्थ 'कुक्कुटनेत्र' है, व्यवहार प्राय किया जाता है। परन्तु 'ऐनुद्दीक' या 'चस्मेखुरूस' उनसे सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। लेटिन 'आब्रुस' सभवत यूनानी 'एब्रोस (Abros = सुदर)'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक और अन्यान्य उष्ण देश, जैसे—अमेरिका, पश्चिम भारतीय द्वीप आदि।

वर्णन—यह एक सुदर, काष्ठीय, बहुवर्षायु, आरोही परिवेष्टिका सुन्दरलता है जो वर्षाका प्रथम पानी पडते ही पुरानी जडसे अभिनव उत्पन्न होती है। शरत्कालमें यह फूलती है, शरद्के अन्तमे शिम्बी पकती है। शिम्बी पकनेपर लताका प्रतान सूख जाता है। पत्र–इमलीके पत्रकी तरह उनसे किंचित् वडे, युग्मपक्षाकार, ५ सें० मी० से ७ ५ सें०मी० (२–३ इञ्च) लम्बे, पत्रक सख्यामें २०–४० जोडे, १ २५ सें०मी०से २ ५ सें०मी० (½से १ इञ्च) लवे तथा ८ मि०मी० (⅓ इञ्च) चौडे, स्वादमे मुलेठीकी तरह मीठे होते हैं। फूल–सेमके फूलकी तरह पर उसकी अपेक्षया वृहत्तर एव गुलाबी और गुच्छोमें होता है। शिम्बी छोटी, बाकलाकी फलीकी तरह होती है और प्रत्येक फलीके भीतर २ से ६ तक अडाकार गोल क्षुद्रतर मसृण और चमकीले बीज--(घुँघची) होते हैं। रक्त और श्वेत आदि पुष्प या बीजभेदसे घुँघची कई प्रकारकी होती है। इसके बीज कही दो-तिहाई हिस्सेमें लाल या सफेद और शेष भागमे काले और कभी-कभी वे पूर्णत सफेद या काले होते हैं। जो एकरग लाल, गोल, चौडी कुक्कुटनेत्रकी तरह होती है, उसे ही यूनानीवैद्यकमे 'ऐनुद्दीक' कहते हैं। परन्तु मुहीतके मतसे ऐनुद्दीक इससे भिन्न है। वजनमें औसतन लाल घुँघची १ ७५ ग्रेन, काली १ ७७ ग्रेन, और सफेद १·९७ ग्रेन होती है। जड लम्बी, काष्ठीय, कडी और बहुशाखी, क्वचित् ६ मि०मी० (१/४ इञ्च)से अधिक व्यासकी, प्राय मुलेठीसे बहुत छोटी होती है। वल्कलीय स्तर बहुत पतला, ललाई लिये भूरा, अन्तःकाष्ठीय भाग पिलाई लिये सफेद, गध और स्वाद कडुआ (Acrid), किन्तु आपातत प्राय मधुर होता है।

सूचना—इसकी जड़को मुलेठी मानना या [illegible] नहीं है। स्वाद या स्वरूप अथवा गुणमें इसका मुलेठी-से कोई सादृश्य नहीं है, चाहे वह किसी भी पुरानी पुस्तकमें क्यों न ग्रहण की गई हो। इस लताका सबसे मधुर भाग पत्र होता है। इससे मुलेठीकी तरह एक दवाकी रसक्रिया प्रस्तुत हो सकती है। परन्तु मुलेठीसे यह बहुत मँहगी पड़ती है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजमें एब्रिन (Abrin) नामक एक विषके स्वभावका सत्व पाया जाता है। यह गुणकर्ममें बहुत कुछ एरण्डबीजमें पाये जानेवाले रिसिन (Ricin) नामक सत्व की भाँति होता है। जड़में लगभग १५% ग्लिसिराइज़िन (Glycyrrhizin) और ८% एक चरपरा सार, पत्रमें लगभग १० प्रतिशत ग्लिसिरहाइ-ज़िन पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—बीज (सफेद घुँघचीके), पत्र और मूल (दोनों प्रकारकी घुँघचीके)। बीज विषाक्त होते हैं। प्राचीनकालमें [illegible] इसका प्रयोग किया जाता था। आभ्यन्तरिक उपयोगके लिये बीजोंका प्रयोग शोधनोपरान्त ही करना चाहिए। शोधित बीज, पत्र एवं मूल प्रशस्त माने जाते हैं।

प्रकृति—बीज दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (कै० नि०)।

गुणकर्म तथा उपयोग—विषघ्न, लेखन, आग्नेय(दाहजनक), उत्तेजक और वाजीकर है। घुँघचीका अधिकतर बाह्य प्रयोग करते हैं। लेखन होनेके कारण झाईं (कल्फ), किलास, दद्रु और व्रण आदि पर इसका प्रयोग करते हैं तथा नेत्रका जाला और फूला नष्ट करनेके लिये इसे सुरमाकी भाँति उपयोग करते हैं। आग्नेय होनेसे बालोंके [illegible] (इन्द्रलुप्त) और [illegible] दूर करनेके लिये तथा [illegible] नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। उत्तेजक गुणके लिये इसे प्रयोगोंमें प्रविष्ट करते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिये। निवारण—[illegible] और [illegible]। प्रतिनिधि—लाल और सफेद उभय एक दूसरेके प्रतिनिधि हैं।

आयुर्वेदीय मत—घुँघची रसमें तिक्त और कषाय, उष्णवीर्य, चक्षुष्य, वाजीकर, केश्य, त्वच्य, रुचिकारक, बलप्रद, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] तथा [illegible], विष, इन्द्रलुप्त, कण्डू, कुष्ठ, व्रण और कृमिका नाश करने-वाली है। पत्र—मुखपाकको आराम पहुँचानेवाले हैं। [illegible]-पत्र और मूल श्वेत गुंजाके प्रशस्त हैं। (सु० क० अ० २, कै० नि०; नि० र०)।

नव्यमत—घुँघचीकी जड़की क्रिया मुलेठी जैसी होती है। पत्तियोंका गुणकर्म मूलके समान है। मूल और पत्र मधुर, स्नेहन, कफनाशक, मूत्रजनन और व्रणरोपण हैं। कास एवं मूत्ररोगोंमें अन्य सहकारी औषधोंके साथ इसकी जड़का प्रयोग करते हैं। व्रण एवं व्रणशोथपर इसकी पत्तियोंको पीसकर बाँधते हैं। इससे शीतलता आकर सूजन उतरती है और व्रण भर जाता है। स्वरभंगमें पत्तियोंकी गोलियाँ बनाकर मुँहमें रखते हैं।

●

(२३२) चन्दन लाल

फ़ैमिली लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०, प०, गु०) लालचन्दन, (अ०) सदले अह्मर, (फा०) सदले सुर्ख, (स० व०, म०), रक्त-चन्दन, (गु०) रताजली, (क०) रक्तचन्दुन, (ते०) एर्र चन्दनमु, (ता०) चेञ्चन्तनम्, शेन शदनम्, (लै०) टेरोकार्पुस सान्टालिनुस (**Pterocarpus santalinus** Linn), सान्टालुम् रुब्रुम् (*Santalum rubrum*), (अं०) रेड सैन्डर्स वुड (Red Sanders Wood), रेड सैन्डल वुड (Red Sandal Wood)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष। मलाबार समुद्रतटसे बम्बई और कलकत्तामें इसका आयात होता है।

वर्णन—इसका वृक्ष कदमें छोटा होता है। इसके ऊपरकी लकडी सफेद और हीरकी लकडी कुछ कालापन लिये होती है। बाजारमें इसकी लकडीके वजनदार, कडे, लाल टुकडे मिलते हैं। यह पानीमें डूब जाते है। ये प्राय. निर्गन्ध, कषाय एव तिक्त होते है। इसके घिसनेसे लाल रग निकलता है। लकडीका सर्वांग लाल रजक-द्रव्यमे पूर्ण होता है। पानीमे भिगोनेसे पानी लाल नही होता, किन्तु तेल लाल होता है। उत्ताप देनेसे इसमेंसे हलकी सुगन्ध आती है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक रजक द्रव्य, सैन्टेलीन या सैन्टेलिक एसिड (एक स्फटिकीय रक्त सत्व), सैन्टल टेरोकार्पीन (एक सफेद स्फटिकीय अविलेय द्रव्य), होमोटेरोकार्पीन प्रभृति द्रव्य होते है।

उपयुक्त अग—हृत्काष्ठ (Heart-wood)।

•

(२३३) चन्दन सफेद

फैमिली : सान्टालासे (Family Santalaceae)

नाम—(हि०) चदन, सफेद चदन, (अ०) सदले अब्यज्, (फा०) सदले सफेद, (स०) श्वेतचन्दन, चन्दन, श्रीखण्ड, भद्रश्री, (द०) सदल, (ब०) श्वेतचन्दन, साराचन्दन, (गु०) सुखड, (म०) चदन, (ले०) सांटालुम् आल्बुम् (**Santalum album** Linn), (अ०) सैन्डल-वुड (Sandal-wood)। तेल—(हि०) चन्दनका तेल, (अ०) दुहुनुस्सदल, (फा०) रोगने सदल, (ले०) ओलिउम् सान्टाली (Oleum Santali), (अ०) ऑयल ऑफ सैन्डल-वुड (Oil of Sandal-wood)।

वक्तव्य—इसके अरबी-फारसी नाम 'सदल' सम्भवत सस्कृत 'चन्दन'से और लैटिन तथा अग्रेजी नाम अरबी 'सदल'से व्युत्पन्न है। एरिअनने इस भारतीय द्रव्य का उल्लेख 'क्सूला सागालीना (**Xula Sagalina**)' नामसे किया है। अरबी-यूनानी हकीमोने इसके स्वरूपभेद और गुणवर्णनमे प्राय आयुर्वेदका ही अनुसरण किया है।

इतिहास—प्राचीन भारतीयोको चदनका भली-भाँति ज्ञान था। निरुक्तमें, जो वेदोका एक अत्यत पुरातन-भाष्य है (ई० सन्से ५०० वर्ष पूर्व), चदनका वर्णन है। भारतवर्षके पुराणतम इतिहासग्रथ रामायण और महाभारत-मे भी इसका वर्णन है। यूनानवासियोको सिकन्दरमहानके काल मे इसका ज्ञान हुआ। यूरोपमे सर्वप्रथम 'सलरनो विद्यालय'के एक हकीमने इसका चिकित्सा व्यवहारमे उपयोग किया। मुसलमान चिकित्साविशारदोमेंसे मसीही और इब्नसीनाने सर्वप्रथम इसका वर्णन किया और इसके गुणकर्म-वर्णनमे भारतीय वैद्योका अनुसरण किया।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषत दक्षिण भारतवर्षमें मैसूर, मलाबार और कुर्गमें इसके वृक्ष जगली होते या लगाये जाते हैं। चन्दन मैसूरसे बम्बई नगरमे आता है और वहीसे फ्रास, जर्मनी और अमेरिका आदि देशोमें प्रेषित किया जाता है। मैसूर राज्यमें चन्दनकाष्ठसे चुआकर तेल (चूया) निकालनेका प्रवन्ध है। चन्दनको जड एव सारकाष्ठमे एक प्रकारका उत्तम प्रचुर तेल प्राप्त होता है जिसे 'चन्दनका तेल (रोगन सदल)' कहते है। यह स्वच्छ, हलका पीला, कुछ गाढा, चदनकी तरह तीक्ष्ण सुगधयुक्त, स्वादमे तेज और चरपरा होता है। चन्दनका तेल और 'चूया' दोनो एकही द्रव्य है। केवल निष्कासन प्रणाली भिन्न है। इसका सभी अधिकार मैसूरके राज्याधीन है।

वर्णन—यह एक सदाबहार ६ से ९ मीटर (२०–३० फुट) ऊँचे वृक्षका सारकाष्ठ (हीरकी लकडी) है। त्वचा और असार सफेद भाग दूर किये हुए इसके सारकाष्ठके लगभग ७५ सें० मी० (२॥ फुट लम्बे) और १२५

सें० मी० से० (५ सें० मी० (५-६ इंच) लम्बाईके अथवा इससे छोटे आकारके बेलनाकार गोल टुकडे (कुंदे) बाजार-में मिलते हैं। ये हल्के पीले रंगके और चन्दनकी विशिष्ट गन्धसे गन्धयुक्त होते हैं। इसका बुरादा (बुरादा) सफेद चन्दनका भी बाजारमें मिलता है।

रासायनिक संगठन—श्वेतचन्दनमें उड़नशील तैल ३ से ६ प्रतिशत, रालें और टैनिक एसिड, काष्ठ-सारमें परिस्रुत तैल (रोगन सन्दल) में सेन्टेलोल (चन्दनसार या सन्दलोल जौहर सन्दल), सैन्टेलोनिक एसिड (चन्दनाम्ल) और दूसरे कई द्रव्य भी मुक्त या प्रयुक्त रूपमें होते हैं। तैल सुरासारविलेय होता है।

उपयुक्त अंग—काष्ठका सारभाग और उससे परिस्रुत किया हुआ तैल। चन्दनके सारकाष्ठसे बनाये हुये चन्दनसार या सत्व तैलसे उसका उपयोग (व्यवहार) होता है।

प्रमुख योग—अबीर, सन्दल, शर्बत सन्दल, खमीरा सन्दल, कुर्स सन्दल, जुवारिश सन्दलैन, माजून सदल, कुर्स सन्दल, रोगन सन्दल (लाल तैल)।

प्रकृति—सफेद चन्दन तीसरे दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष; लालचन्दन दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे सफेद और लाल दोनों प्रकारके चन्दन शीतवीर्य (ध० नि०, कै० नि०) होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चन्दन ग्राही, शीतजनक, शोथविलयनकर्ता और सशमन है। लालचन्दन उक्त कर्मोंके अतिरिक्त संग्राही है, परन्तु इसमें कुछ उत्तापहर कर्म भी होता है। अतएव इसको बाहरी रूपसे प्रलेपकी भाँति अधिक व्यवहार किया जाता है। सफेद चन्दन आन्तरिक रूपसे अधिक शीत उत्पन्न करता है। यह मन प्रसाद-कर और हृद्य है तथा मस्तिष्कको बलप्रदान करता (मुफर्रेह) है। यह अन्त्र और आमाशयको भी बलप्रदान करता तथा कष्टप्रद प्यासको शान्त करता, गशी (उत्क्लेश) निवारण और रक्तका प्रसादन करता है। चन्दनको अधिकतया उष्ण शोथों और उष्ण शिरःशूलमें गुलाबजल आदिके साथ अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ लेप करते हैं। हृदयका सन्ताप शमन करनेकेलिए इसे हृदयपर लगाते हैं। हृदयदौर्बल्य, उष्ण हृत्स्पन्दन और सन्तापहरण एवं रक्तप्रसादन के लिये इसका आन्तरिक उपयोग करते हैं। रक्तातिसार और पित्तातिसारको रोकने तथा मूत्रदाह नष्ट करनेकेलिए इसको खिलाते हैं। इसका शर्बत (शर्बत) प्रायः दिया जाता है, जो उष्ण हृत्स्पन्दन और अन्त्रामाशयगत उष्णता को नष्ट करनेकेलिए प्रयुक्त होता है। यह विशेष रूपसे यकृत् और आमाशयबलदायक है। लालचन्दन बाष्पारोहणको रोकता है, रक्तको स्तम्भ करता, रक्तका शोधन करता और उष्ण शोथको उतारता है। अहितकर—कामावसादकर (पुंस्त्वोपघाति) है। निवारण—मधु और मिश्री। प्रतिनिधि—कपूर और छरीला। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—श्वेतचन्दन शीत, कण्डूघ्न, विषघ्न, तृषाको शान्त करनेवाला, दाहप्रशमन, अङ्गमर्दप्रशमन, पित्तप्रशमन, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, रक्तप्रसादन, वृष्य, हृद्य, आह्लाद उत्पन्न करनेवाला तथा अन्तर्दाह, विष और कृमिनाश करनेवाला है। चन्दनका लेप दुर्गन्धहर तथा दाहनिर्वापण है। (च० सू० अ० ४, २५, चि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८; ध० नि०, कै० नि०)।

चदनका तेल (रोगन संदल)—

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे शीत एव तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रावयवोकी श्लेष्मला कलापर यह कोथप्रतिबन्धक और सशमन तथा श्वासो-च्छ्वासावयवोंकी वायुप्रणालियोंपर कोथप्रतिबन्धक और श्लेष्मनिस्सारक कर्म करता है। चन्दनके तेलको अधिकतया नये और पुराने सूजाकमें प्रकोप, मूत्रदाह एव बस्तिशोथको दूर करनेके लिये उपयोग करते है। इसको ५-७ बूँद

मात्रामें बताशेपर डालकर दूधके साथ खिलाते हैं या उपयुक्त औषधियोके साथ मिलाकर उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त जीर्णकास और ऐसे कासमे जिसमें दुर्गन्धित कफ निकलता हो, २-३ बूँद बताशेपर डालकर खिलाते हैं। मात्रा-०'३ मि०लि०से १ ३ मि०लि० (५ से २० बूँद) तक।

नव्यमत—जलमे घिसा हुआ,चन्दन तिक्त, शीतल, स्वेदजनन, दाहशामक, पिपासाहर, ग्राही, हृदयसरक्षक और रक्तानुधावनको शान्तिप्रद है। चन्दनका तेल उत्तम मूत्रजनन, मूत्रनलिकाके लिए पूतिहर, मूत्रपिण्ड (गुर्दे) का उत्तेजक त्वग्दोषहर तथा कृमिघ्न है। ज्वरमें हृदय शिथिल होता है और उसमें विकृति होती है वह चन्दन देते रहनेसे नही होती तथा अति उष्णतासे हृदयका रक्षण होता है। चदनसे हृदयकी गति कम होती है, परन्तु शक्ति कम नही होती। पित्तज्वर, जीर्णज्वर और तीव्रज्वरमे चन्दन देनेमे पसीना आता है और शरीरका दाह कम होता है। चदनको जलमें घिसकर देनेसे तृषा, कफमें रक्त आना, दुर्गन्धयुक्त कफ आना और रक्तातिसार ये रोग आराम होते हैं। औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) और जीर्ण बस्तिशोथमें चन्दनका तेल देते है। विसर्प, खुजली, फोडे-फुन्सी, पैत्तिक शोथ, आदिमे चदनको कपूरके साथ घिसकर लगाते हैं।

●

(२३४) चंपा

फ़ैमिली माग्नोलिआसे (Family Magnolıaceae)

नाम—(हिं०) चपा, (अ०) फागिर, (स०) चम्पक, (ब०) चापा, (प०) चपा (बा), (म०) पिंवलोचाफा सोनचाफा, (गु०) पीलो चपो, राय चपो, (ते०) चापेसु, चंपक्रुम, (ता०) सबकम्, (का०) सपिगे, (मल०) चपकम्, (लै०) माइकीलिआ चम्पका (**Michelia champaca** Linn), (अं०) गोल्डेन चपा (Golden Champa)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी उप-हिमालय प्रदेश और नीचेकी पहाडियोपर ३,००० फुट तककी ऊँचाई पर, आसाम, एव पश्चिमीघाट तथा दक्षिण भारतमें यह जगली होता है। भारतवर्षके अनेक भागोमे यह लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—चपाके वृक्ष अपने सुगधित पुष्पोके लिए बागोमें लगाये जाते हैं। इसकी टहनियाँ भुरचई रगकी, पत्तियॉ एकातर, नीचे चौडी, सिरेपर नोकदार, चिकनी हरी ऊपरकी ओर चमकीली, सीधेकिनारोवाली, २० से २५ से० मी० (८-१० इञ्च) लम्बी और ६ २५से १० सें मी (२½-४ इञ्च) चौडी होती है। पुष्प-हलके पीले मन्दमधुर गधवाले होते और वर्षाऋतुमे आते हैं। त्वचा-बाहरसे फीके भूरे रगकी और भीतरसे ललाई लिये भूरे रग की होती है। यह कटु, कुछ तिक्त, कषाय और सुगधित होती है।

रासायनिक सगठन—फूलमे उत्पत् तैल(Essen oil) और त्वचामे सुगधि और तैलके साथ मिश्रित कटु और कषाय द्रव्य होता है।

उपयुक्त अग—पुष्प और त्वचा। छालको फाट अथवा चूर्ण बनाकर देना चाहिये, क्वाथ नही करना चाहिये। काढा करनेसे सुगधित तैल उड जाता है और केवल कषाय द्रव्य काढेमे अधिक उतरता है।

प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (रा० नि०, क्षे० कु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका फूल सूँघनेसे हृदय और मस्तिष्कका बल बढता है, खानेसे कफ निस्सरित होता है तथा वायुका नाश होता है। फूलोको सिरकामें पीसकर कानपर लगानेसे कानका दर्द जाता रहता है। फूलो

का स्वरस कुनकुना गरम करके कानमें टपकानेसे कानका दर्द, कानकी फुन्सी और कानमें पानी चला गया हो तो उसे भी लाभ होता है। इसके फूलोंके बीचमें जो दाना होता है वह किसी भांति मदकारक होता है। इसके फूलोंको तिलके तेलमें डालकर धूपमें रखनेसे तैयार हुआ तेल अत्यन्त वाजीकर है। इसके मालिशसे सन्धिशूल आराम होता है। इसके फूलोंसे परिस्रुत किये हुये अर्कके नस्यसे नासिकागत अवरोध दूर हो जाता है। मस्तिष्कगत मल नाकके रास्ते निकल जाते हैं और नकसीरका रक्त बन्द हो जाता है। शरीफीमें लिखा है कि इसके फूलकी कलीको पानीमें पीसकर मुँहपर मलनेसे झाईं बिल्कुल जाती रहती है। जड़ गुणमें नोशेहयातके निकट है। इसे पानीमें पीसकर पीनेसे यदि नारू टूट गया हो तो उस भी लाभ होता है। जड़ और फूलोंको बकरीके दूधमें पीसकर पीनेसे वस्तिगत रेत (शर्करा) निकल जाता है। इसकी छालको पीसकर पीनेसे वमन होता है। यह जब तक आमाशयमें रहती है, वमन कराती है और जब नीचे उतरती है तब तीव्र विरेचन कराती है। यदि अल्प भी आंतोंमें रह जाती है तो बेचैनी और मरोड़ उत्पन्न करती है। विशेषतः जंगली चंपाकी छाल इस विषयमें अत्यन्त वीर्यवान् है। इसका लेप सन्धिशूल और वातरक्तमें बड़ा गुणकारी है। इसके पत्तोंके लेपसे लिंगेन्द्रियका दर्द जाता रहता है।

आयुर्वेदीय मत—चंपक रसमें कटु, तिक्त, कषाय और मधुर; शीतवीर्य, चक्षुष्य तथा रक्तपित्त, दाह, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, मूत्रकृच्छ्र, विष, कृमि, रक्तविकार, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६, पु० व०, रा० नि०; कै० नि०; रे० म०, धे० कु०)।

नव्यमत—चंपाकी त्वचा कटुपौष्टिक, सुगन्धि, दीपन, ग्राही स्वेदजनन, विषमज्वरप्रतिबंधक, मूत्रजनन, शोथहर, कफहर, आमनाशन, गर्भाशयोत्तेजक, शोथहर, व्रणशोधन और रसायन है। शुष्क मूल एवं मूलत्वक् विरेचन, मूत्रविरेचन, आर्तवजनन और शोथहर है। फूल और फल शीतल, तिक्त, दीपन, वायुनाशक, संकोचविकासप्रतिबंधक, कोथप्रतिबंधक, मूत्रजनन, दाहनाशन, कुष्ठ-कण्डू-व्रणहर और उत्तम उत्तेजक है।

विषमज्वरमें चंपाकी छालका फांट ज्वर आनेसे पहले १-१ घण्टेसे तीन-बार और ज्वर चढ़नेके बाद ३-३ घण्टेसे दिया जाता है। उपदंशकी दूसरी अवस्थामें व्रण, दुष्टव्रण, कोथ, गण्डमाला और सन्धिबंधनका मोटा होना इत्यादि विकारोंमें त्वचा दी जाती है। आमवात और जीर्ण संधिवातमें त्वचा उपयोगी है। विद्रधियोंमें मद्य-में मिलाकर लगानेसे लाभ होता है। छालका फांट आर्तवजनन है। अतएव अनार्तव और पीडितार्तवमें उपयोगी है। मूत्रजनन होनेसे फूलोंका फाण्ट वृक्करोगों एवं सूजाकमें देनेसे पेशाबकी जलन कम होती है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। अजीर्ण, उत्क्लेश और ज्वरमें फूल और फलका उपयोग होता है। तिलके तेलमें मिलाकर भ्रम (चक्कर आना)में बाह्य प्रयोगार्थ इसका लेप बनता है। शिरःशूल, नेत्राभिष्यंद और वातरक्तमें लगानेके लिये इसके फूलोंके तेलका लाभकारी उपयोग होता है। शूल रोग (Colic)में इसकी पत्तियोंका रस मधुके साथ दिया जाता है। पाद-दारीमें इसके फल और बीजोंका उपयोग होता है।

•

(२३५) चकोतरा

फैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०, बं०, पं०, फा०, उर्दू) चकोतरा, (सं०) मधुकर्कटी (मतांतरसे मातुलुंग), (द०) महानीबू, (बं०) बताबी नीबू, (गु०) चकोतरू, पपनस, (म०) पोपनस, (लै०) सीट्रुस माक्सिमा **Citrus maxima** Merr (**C. decumana Linn**), (अं०) प्युमेला (Pumela)।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान बटाविया है। यद्यपि अब यह समस्त भारतवर्षमें लगाया जाता है, तथापि बंगाल विशेषकर हुगलीमें सब जगहोंसे उत्तम होता है।

वर्णन—यह नीबूकी जातिका एक फल है, जो खरबूजेके बराबर तक बड़ा होता है। इसका छिलका नारंगी-से मोटा और खुरदरा तथा गूदा (मग्ज) लाल और खटमिट्ठा होता है।

रासायनिक सगठन—फलमे शर्करा और सिट्रिक एसिड और छिलकेमें एक उत्पत् तेल होता है।

उपयुक्त अंग—फल और पत्र।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण हृदयबलदायक एव सौमनस्यजनन, पित्तसशमन और उष्ण आमाशयबल-दायक है। यह विशेषरूपसे पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताको शमन करता है। चकोतराका मग्ज निकालकर खाया जाता है। यह रक्त और पित्त-प्रकृतिके लोगोके लिये परम गुणकारी है और प्यास बुझाता, उष्ण हृदयको बल और उल्लास प्रदान करता तथा आमाशयको उद्दीप्त करता है। अहितकर—यकृत्को। निवारण—मधु और चीनी। प्रतिनिधि—नारंगी।

आयुर्वेदीय मत—चकोतरा (मधुकर्कटिका) स्वादिष्ट, रोचक, शीतवीर्य, भारी तथा रक्तपित्त, क्षय, श्वास, खाँसी, हिचकी और भ्रमको दूर करनेवाला है (भा० प्र०)।

(२३६) चक्कादाना

वर्णन—यह एक भारतीय उद्भिज्जके बीज (दाने) है, जो मटियाले रगके और कडे होते है। इनके अन्दर हब्बबलसाँके समान, छोटासा बारीक, परन्तु हब्बबलसाँसे वडा मग्ज होता है। इसके अतिरिक्त उसके समान इसमें आगे-पीछे नोक भी निकली हुई नही होती।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विरेचन। इसको अधिकतया घुटीमे अन्यान्य औषधियोके साथ मिलाकर उपयोग करते है।

(२३८) चचीण्डा (मीठा)

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) चचीडा, चिचिडा, चचेंडा, (स०) चिचिण्ड, चिचिण्डा, अहिफल, (गु०) पडोलु, (म०) पडोल, पडवल, (व०) चिचिंगा, (लै०) ट्रीकोजान्थीस आगूइना (**Trichosanthes anguina** Linn), (अ०) (Snake Gourd)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें शाकके लिये यह बीजो द्वारा उगाया जाता है।

वर्णन—यह तुरईकी तरहकी एक लताका फल है, जो एक हाथसे दो हाथ तक लम्बा तुरईके बराबर मोटा और श्यामताविशिष्ट हरा होता है। इसके ऊपर लम्बाईके रुख सफेद धारियाँ होती है। दूरसे यह सर्पके समान

(२३९) चना

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) चना, र(ल)हिला, (अ०) हिम्मस, (फा०) नखुद, (म०) चण, चणक; (बं०) छोला, बूट, (म०) चणे, (ले०) सीसेर आरिएटिनुम् (**Cicer arietinum** Linn), (अ) ग्रैम (Gram)।

वक्तव्य—चनेको प्राचीन रूमी 'सीसेर (**Cicer**)' और यूनानी 'एरेबिंथोस (**Erebinthos**)' कहते थे। मिस्री इसे 'होमोस' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवत. पूर्वी भारतवर्ष। भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशोमे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह चैती फसलका एक प्रधान दालवर्गीय अन्न है।

रासायनिक सगठन—चनेके सिरका (चणकाम्ल)में आक्जैलिक एसिड और मैलिक एसिड होते है। चनेमें पिष्ट ५९ प्रतिशत, ऐल्ब्यूमिनॉइड्स २०प्रतिशत, वसा ४ प्रतिशत, ततु १ प्रतिशत, राख २ प्रतिशत, फॉस्फोरिक एसिड १ प्रतिशत और जल ११ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अग—बीज या दाना (चना) और क्षार।

कल्प—रोगन नखुद, क्षार (चनाखार)।

प्रकृति—मलभूतद्रवसहित पहले दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, श्लेष्मनिस्सारक, मूत्रल, आर्तवजनन और लेखन। चनेके आटेकी रोटी पकाकर खाई जाती है। इसके अतिरिक्त यह अन्य प्रकारसे भी खाया जाता है। चनेके बनाये हुए आहार स्वादिष्ट होते है। पुष्टिके विचारसे यह गेहूँसे दूसरे दर्जेपर है। किन्तु यह गुरु एव आनाहकारक है। यह शिश्नोच्छ्रायजनक है। इसलिए नपुसक रोगियोको इसके आटेका हलवा बनाकर खिलाते है अथवा आवश्यकतानुसार केवल चनेको जलमे भिगोकर सवेरे खिलाते है और उसके पानीको मधु मिलाकर पिलाते है। स्वरको शुद्ध करने, कासको नष्ट करने एव मूत्रार्तव प्रवर्तनके लिए चनेके क्वाथमे मधु मिलाकर पिलाते है। सूजाकमे चनेके आटे (वेसन)का हिम बार-बार पिलानेसे खूब पेशाब आकर मूत्रमार्ग शुद्ध हो जाता है। शरीर एव मुखमण्डलको काति प्रदान करने तथा तर एव सूखी खुजली नष्ट करनेके लिए चनेके आटेका उबटन बनाकर शरीरपर मलते हैं। अहितकर–दीर्घपाकी। निवारण–पोस्तेका दाना, जीरा, सोआ और गुलकद। प्रतिनिधि–लोबिया और तुर्मुस।

आयुर्वेदीय मत—चना मधुर, कषाय, शीतवीर्य,शरीरमे रूक्षता उत्पन्न करनेवाला,कफ और रक्तपित्तनाशक है। (पित्त) कफके रोगोमें दाल का रसा बनाकर खिलाने तथा लेपनार्थ प्रशस्त माना गया है (च० सू० अ० २७) और पुस्त्वनाशक होता है। घीके साथ सेवन करनेमे यह अत्यन्त त्रिदोपशामक होता है (सु०सू०अ०, ४६, च०सू०अ० २७)। चना वादी, वातल (राज०), हलका, विष्टम्भकारक, वातकारक, कुष्ठनाशक (मद०नि०), प्रमेहनाशक, दीपन, वर्णकारक, वलकारक, रुचिकारक, आध्मानकारक (रा० नि०) और ज्वरनाशक है (भा०प्र०)। कच्चा चना किंचित कषाय, शीतवीर्य, कफ और वीर्यकारक, गौल्य, रुचिकर, तृप्तिकारक, दाहनाशक, तृषानिवारक, शोषनाशक और अश्मरीको दूर करनेवाला है (रा०नि०)। चनेका दाल–क्षोभकारक है (भा०प्र०)। चने का शाक–अम्ल, कषाय, कठिनतासे पचनेवाला कफ और वातकारक, विष्टम्भजनक, पित्तनाशक और दाँतोकी सूजनको दूर करनेवाला है। (रा०नि०, भा प्र०)। चनाखार अत्यन्त अम्लरसान्वित, कुछ लवणरसयुक्त, दीपन,दन्तहर्षजनक,रुचिकारी तथा शूल, अजीर्ण और विबन्धको दूर करनेवाला है (रा०नि०)।

●

(२४०) चनार

फॅमिली : प्लांटानासे (Family Platanaceae)

नाम—(हिं०, फा० प०, क०) चनार; (अ०) सनार, दाव, दुल्ब, दुल्लब, (क०) बुइन, बोइन, बुज, (ले०) प्लाटानुस ओरिएन्टालिस (**Platanus orientalis L**)। वक्तव्य–फारसी 'चनार'से अरबी 'सनार' बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष कश्मीरमे केवल लगाये हुए होते है।

वर्णन—यह एक प्रकारका बहुत ऊँचा पेड है, जिसके पत्र एरण्डपत्रके समान किन्तु उनसे छोटे, करतलाकार, जाडेमें बिल्कुल झड जाते हैं, फूल छोटासा पीले रगका होता है। फल–पीले और मटियाले एव ललाई लिये गोल या लम्बगोल कोपयुक्त होते है। पत्रका स्वाद तिक्त एव कषाय होता है। छाल कुछ सफेद रंगकी और मोटी होती है। फल काठ होनेसे खानेके काममे नही आते है।

रासायनिक सगठन—इसमें ऐलेन्टोइन (Allantoin) और ऐस्पेरेगिन (Asparagin) ये दो सत्व पाये जाते है।

उपयुक्त अग—पत्र, फल और छाल।

प्रकृति—शीत और रुक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, संग्राही, वेदनास्थापन और व्रणलेखन है। इसका प्रधान कर्म श्वयथुविलयन और व्रण-लेखन है। कफज शोथ और सन्धिशोथपर इसके पत्तोको महीन पीसकर लेप करते है। इसकी छालको जलाकर और बारीक पीसकर दुर्गन्धयुक्त दूषित और प्रकुपित व्रणोपर छिडका करते है तथा किलास, त्वक्परिपुटन (त्वचाके छिलके उतरना या उसमें व्रण पैदा होना) और परिसर्पी व्रणोपर इसका लेप करते है। सूखे पत्रको बारीक पीसकर अवचूर्णन करनेसे भी व्रण सूख जाता है। सद्यव्रणोको भरनेके लिए इसके ताजे पत्तोका लेप गुणकारी है। दतशूल और मसूडोकी गरम सूजन नष्ट करनेके लिए इसकी छालको सिरकामे पकाकर गडूष कराते है। इसके फूल और फलको बारीक पीसकर हुलास लेनेसे नकसीर बन्द हो जाती है। अहितकर–नेत्र और फुफ्फुसके लिए। प्रतिनिधि–खट्टे अनारका छिलका।

•

(२४१) चमेली

फॅमिली ओलियासे (Family Oleaceae)

नाम—(हिं०, गु०) चबेली, चमेली, (अ०) यासमीन, यासमून, यासमन, (फा०) समन, (स०) सौमनस्यायनी, (ब०) चामेली, (म०) चमेली, (ले०) जास्मीनुम् ऑफ्फीसिनाले प्रकार ग्रांडीफ्लोरुम् (**Jasminum officinale** L forma **grandiflorum** (L) Kobuski (पर्याय–*J grandiflorum* Linn)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषत शीतोष्ण प्रदेशो और शीतोष्ण हिमालय पर इसकी झाडियाँ होती है। प्राय भारतीय बागोमे लगाई जाती है। 'पीली चमेली' ईरान, दिल्ली, दक्षिण और अन्यान्य स्थानोमें विपुल होती है।

वर्णन--फूलके लिये चमेली बगीचो मे लगाई जाती है। यह एक क्षुप (झाडी) जातिकी वनस्पति है जिसकी शाखाये पतली, गोल और लम्बी होती है और अपनेसे खडी नही रह सकती, प्रत्युत अपने समीपके वस्तुओपर चढ जाती है । पत्र जाईसे छोटे, सयुक्त, साधारण वृन्तमे २-३ जोडा और अन्य भागमे एक अयुग्मपत्र होता है। साधारण वृन्तमे नातिदीर्घ, क्षुद्रपत्रवृन्त अति ह्रस्व, केवल अग्रस्थित, अयुग्मपत्रका वृन्त दीर्घतर, वृन्तमूलमें पत्रभाग विषमभावसे अवसित, पत्रोदर गाढ हरिद्वर्ण, पत्रपृष्ठ फीकाहरा, पत्र प्रात अखड, पत्राग्र सूक्ष्म, पुष्प जाई से छोटे पुष्पदण्ड पर स्थित, पुष्पवृन्त दीर्घ, पखडियाँ ऊपरसे रक्ताभश्वेत और भीतरसे श्वेत वर्णको होती है । सुगन्ध जाईसे अधिक होती है और पुष्प श्वेत वा पीत वर्णके होते हे। पीले फूलकी चमेलीका नाम यासमीन जर्द (स्वर्णजाती) है। पुष्प मिलित दल, पुकेसर दलमें सन्निविष्ट, पुष्पनलातिक्रमपूर्वक स्थित, गन्ध मनोहर, पुष्पकाल फाल्गुन-चैत्र ।

रासायनिक सगठन—पत्रमे एक राल, सैलिसिलिक एसिड (Salicylic acid) तथा यास्मीनीन (जस्मीनीन) नामक एक क्षारोद और एक कषाय सत्व प्रभृति द्रव्य होते है। फूलमें उडनेवाला तेल (Essen oil) होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, मूल और पुष्प ।

कल्प—रोगन चमेली ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क है। (तेल) गरम और तर है ।

गुण कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, श्लेष्मद्रवविरेचनीय, वर्णप्रसादन (मुहस्सिन लौन) वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन और वाजीकर है। यह विशेपरूपसे मस्तिष्कबलदायक (मेध्य) और मन प्रसादकर है। चमेलीके फूलोका सूँघना मेध्य और सौमनस्यजनन है। दतशूल और मुखपाकमे इसके पत्रके काढेका कवल (मजमजा) उपकारी होता है। सर्द सिरदर्द और सर्ददर्दोंमें इसकी जडके काढेका परिषेक कराया जाता है तथा कफोत्सर्ग एव वातानुलोमनके लिए इसको पिलाते है। पक्षवध, कम्पवात, अर्दित और आमवातमे भी इसका उपयोग कराते है। इसकी जडको उबटनमें योजित करते और अकेले भी चेहरेपर लेप करते हैं। वाजीकरणार्थ इसे शिश्न पर लगाते है। आर्तवप्रवर्तनके लिए जडका क्वाथ पिलाते है। तिलोको चमेलीके फूलोमें बसाकर तेल निकाला जाता है जो 'रोगन चमेली'के नामसे प्रसिद्ध है। पक्षवध, अर्दित, आमवात और गृध्रसी जैसे रोगोमें इसकी मालिश लाभकारी है। शरीरपर मर्दन करनेसे यह त्वचाको कोमल बनाता और खुजलीको दूर करता है। शिरमें लगानेसे मस्तिष्कको तरावट और शक्ति पहुँचाता है। परन्तु कहा जाता है कि इसके पुष्कल उपयोगसे बाल श्वेत होने प्रारम्भ हो जाते है। इसका इत्र हृदयको उल्लसित एव बलप्रदान करता है। सफेद चमेलीकी अपेक्षया पीली या जर्द चमेली (यासमीन जर्द) (Gelsemii nitidum) बलतर होती है। अहितकर—उष्णप्रकृतिवालोके लिए। निवारण—गुलबनफशा और गुलाबपुष्प। प्रतिनिधि—एक दूसरीका। मात्रा—जड ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—चमेली, जूही (जाति) और मालती तिक्त, शीतवीर्य तथा कफ, पित्त, मुखपाक, व्रण और कुष्ठ,को दूर करनेवाली है। उनकी कली और पुष्प चक्षुष्य तथा वात, कफ, नेत्ररोग, व्रण विस्फोटक, और कुष्ठका नाश करनेवाले है (च० सू० अ० ४, ध० नि०, रा० नि०)।

नव्यमत—(चमेलीके पत्र) शीत, तिक्त, व्रणशोधन-रोपण और कुष्ठघ्न तथा फूल मूत्रजनन, आर्तवजनन और वाजीकर है। त्वचाके रोगोमें कडू कम होनेके लिये इसके फूलोका लेप करते है। मुखपाक और दाँतोकी पीडामे इसकी पत्तियाँ चबानेको देते है। कानसे पीव आती हो तो चमेलीके पत्तोके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल कानमे डालते है। पत्तियां कुचलकर पेडू और कमरपर बाँधनेसे मूत्रोत्सर्ग होता है, कामवासना बढती है और आर्तवशूल कम होकर थोडा आर्तव भी साफ आता है। नेत्ररोगोमे फूलोका लेप करते है। सिरके दर्दमें फूलोका लेप या चमेलीके तेलकी मालिश करते है।

(२४२) चाकसू

फॅमिली : लेगूमिनोसी (Family · Leguminosae)

नाम—(हिं०) चकसू, चाकसू, (अ०) जश्मीजज, तश्मीजज हब्बुस्सूदान, हब्बुस्सौदा, (फा०) चश्मीजज, चश्मीजक, चश्मक, चश्म, चश्माम, (स०) चक्षुष्या, वन्यकुलत्थ,चाक्षु, (प०) चकसू, (गु०) चमेड, चिमेड, (म०) चिनोल, (सि०) चवर; (क०) क्रीउ, निन्द्रताछ, (बम्ब०) चकसी, (द०) चकसू, चकूत, (ले०) कास्सिया आब्सुस् (Cassia absus Linn)। वक्तव्य–'जश्मीजज' और 'तश्मीजज (मल्जन)' फारसी 'चश्मीजज (क)' से अरबी बनाये गए है। लॅटिननाम वनस्पतिका है। इब्नबैतारके मतमे सूडानका चाकसू सर्वोत्तम होता है, इसीमे इसे 'हब्बुस्सूदान' नाम दिया गया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, छोटा नागपुर, पश्चिम हिमालयसे लकापर्यन्त, उष्णकटिबन्धस्थित एशिया, आस्ट्रेलिया, अफरीका, सूडान, ईरान, अरब, हजाज आदि देश।

वर्णन—एक वर्षायु २० से ४५ से०मी० (हाथभर या ८"-१८") ऊँचा और सूक्ष्म चिपचिपा-रोमश क्षुप है। पत्र-सयुक्त समसस्यक पक्षाकार द्विपत्रक, पत्रक केवल दो जोडे, लट्वाकार या तिर्यगायताकार-लट्वाकार ८" से ९" लम्बे, उभय छोर सरल; पुष्प-सवृन्त पीले या लाल जिसमें केवल चार पुकेसर होते है और जो अग्रय मञ्जरीमे रहते है, फली २ ५ से ३ ७५ सें०मी० १.२ अगुल या १-१½ इच लम्बी चौडी, चिपटी और सूक्ष्म रोमश होती है, बीज काले चिकने और चमकीले चपटे विषमाण्डाकार या दीर्घाकार (बिहदानाके बराबर त्रिकोणाकार) होते है। नालचिन्ह (Hilum) वाला सिरा दूसरेकी अपेक्षया अधिक नुकीला, लम्बाई और चौडाई लगभग समान, लगभग ४ १६ मि०मी० से ८ ३ मि०मी० (१/६ इचसे १/३इच) तक, छिलकाकवच शृगवत् कडा और मोटा, मग्ज (गिरी) द्विदल, पीत, स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अग—बीज (चाकसू) और फलमज्जा (बीजकी गुद्दी)।

रासायनिक सगठन—बीजके मग्जमें चकसीन (Chaksine) एव आइसो-चकसीन (Iso chaksine) दोनो मिलाकर १ ५% होते है, जिनमें चकसीन हृदय, नाडी एव श्वासोच्छ्वास का अवसादक होता है। बीज मे राख (Ash) ३ ७% तथा अगत मैंगेनीज पाये जाते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रुक्ष (रूक्ष), आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तस्तम्भन और उग्र सग्राहक, लेखन, विलयन, चक्षुष्य एव प्राय नेत्ररोगोमें लाभकारी है। २१ नग चाकसूको ५ माशे सफेद चन्दनके साथ रातमें भिगोकर सवेरे उसका निथरा हुआ पानी पिलानेसे रक्तमूत्र विशेषत वृक्कविकार-जन्य रक्तमूत्रता आरामहो जाती है। लेखन एव विलयन होनेके कारण प्राय नेत्ररोगों, जैसे–दृष्टिदौर्बल्य, नेत्राभिष्यद, पोथकी, सिराजालक (जाला) और नेत्रस्राव (ढलका) के लिये सुरमा और धूडा (अवचूर्णन) की भाँति उपयोग किया जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालोके लिये। निवारण—शोधन करना और अर्क गुलाब। प्रतिनिधि–कतिपय कर्मोमें किरमानी तूतिया।

आयुर्वेदीयमत—चाकसू कषाय, शीतवीर्य, रक्त-पित्तकर तथा स्थावर और जगमविष, नेत्रस्राव, विस्फोटक, कण्डू, व्रणदोष, आनाह, मेदरोग, अर्श, हिक्का, श्वास, कफ रोग और वातरोगका नाश करने वाला हे विशेषकर नेत्र रोगनाशक होता है। (सु० सू० अ० ४६, ध० नि०)।

नव्यमत—सग्राहक और नेत्राभिष्यन्द प्रशमन, पूययुक्त नेत्राभिष्यन्द में आधी रत्ती बीजोकी गिरीका चूर्ण पलकके भीतर डालते है। इससे उत्तम लाभ होता है। गोबरके साथ पकाकर या प्याजके भीतर रखकर भूभल (भौरा) में पकानेके उपरान्त छिलका उतारकर अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ उपयोग करते है।

●

(२४३) चाब और गजपीपल

फैमिली : पीपेरासे (Family Piperaceae)

नाम—(हिं०) च (चा)व; (स०) चव्य (क), चविका; (म०,गु०) चवक, (व०) चोई, (वम्व०) कंकल, (ले०) पाइपेर चाबा (**Piper chaba** Hunter), (अ०) लॉंग पेपर (Long Pepper)। फल (हिं०) गजपीपल, (स०) गजपिप्पली, हस्तिपिप्पली।

उत्पत्तिस्थान—हेन्सके अनुसार भारतभरमे चव्यकी वन्य लताये नही होती, केवल लगाई हुई मिल सकती है।

वर्णन—चव्यकी मूलरोहिणी लतायें होती है जिनका काड मोटा, अनेक नालियो एव २० पर्शुकाओवाला, गुल्मकीय और चिकना होता है और उससे मूल निकलकर आश्रयसे चिपके रहते है। इस कांडके कटे हुए रगके टुकडे चव, चाब अथवा चव्य नामसे प्रयुक्त होते है जो गुणमे पिपलामूलके समान होते है। पत्तियाँ आयताकार या प्रासवत् आयताकार (नीचेकी लट्वाकार प्रासवत् भी), अग्र नोकदार और फलकमूल प्राय तिरछा होता है। इसकी फलियाँ २ ५सें०मी० से ५सें०मी० (१-२ इच) लबी और व्यासमे १·२५ सें० मी० से १ ८ सें० मी० (½ इच से ¾ इच) मोटी होती है। यह मूलमें सबसे अधिक मोटी तथा शीर्षपरकुण्ठिताग्र होती है। असख्य सूक्ष्म मासलफलोके द्वारा बनी हुई सघन, मासल तथा शक्वाकार रचनाको ही यहाँ 'फली' कहा गया है। फल बाजारमे सिंगापुरी पीपल और गजपीपलके नामसे बिकते है। 'अल्फाजुल्अद्विया,' 'मुफरदात हिन्दी' और 'तालीफशरीफी' आदिके मतसे चबके फल को गजपीपल कहते है और यह सत्य प्रतीत होता है। क्योकि गजपिप्पलीको पिप्पलीसे बडी होनी चाहिये। ऐसा यहां होता भी है। आयुर्वेदमे भी लिखा है, "चविकाया फल प्राज्ञै कथिता गजपिप्पली" (भा० प्र०), "श्रेयसी (हस्तिपिप्पली, चविका विशेष), तस्या (चविकाया) फल विनिर्दिष्ट श्रेयसी गजपिप्पली।" (ध०, रा० नि०)।

उपयुक्त अग—लता (कांड)के टुकडे (चाबा) और फल (गजपीपल)।

योग—जोगराज गूगल (इलाजुल्अमराज)।

चाब—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यकृदामाशयबलदायक, वाजीकर, शुक्रस्तम्भनकर्ता और जीर्णज्वरनाशक है। यह अर्श और उदरशूलको मिटाता तथा गुणवर्ममे पिपलामूलके समान है।

फल (गजपीपल)—स्वादमे यह तिक्त होता है।

प्रकृति—गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह क्षुधावर्धक- अतिसारकनाशक, वाजीकर और कुष्ठघ्न तथा कृच्छ्रश्वास, उदर कृमि और वात एव कफनाशक है।

आयुर्वेदीय मत—चाब कटु (चरपरा), उष्णवीर्य, हलका, रुचिकारक, दीपन तथा कृमि, खाँसी, श्वास, वादी (वात), कफ, ज्वर, अर्श और शूलका नाश करता है (रा० नि०)। इसके गुण पीपलके समान है, विशेषकरके गुदाके रोगोको दूर करता है (मद० नि०)। गजपीपल—चरपरा, उष्णवीर्य, रूक्ष, मलशोधक, स्तन और कर्णवर्धक तथा कफवातनाशक (तीक्ष्ण, अग्निवर्धक, मलशोषक, लिंगवर्धक तथा अतिसार, श्वास, कण्ठरोग और कृमिका नाश करनेवाला) है। (रा० नि०)।

(२४४) चामघास

उत्पत्तिस्थान—बंगाल।

वर्णन—यह एक घास है जो बंगालके तर स्थानोंमें पुष्कल होती है। इसमें दो-तीन काण्ड निकलते हैं जो एक गज या इससे न्यूनाधिक ऊँचे होते हैं। प्रत्येक काण्डपर दो-तीन पत्र एक दूसरेसे मिले हुए लगते हैं। जड सफेद छोटे प्याजके बराबर होती है। फूल सुगन्धित होते हैं। इसका स्वाद तीक्ष्ण एवं क्षारीय होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रस्वेदजनन, [illegible] और विशेषतः द्रवानुविलयन, विसूचिका विध्वंसन और जलोदरमें लाभकारी है। इसके पत्र पकाकर प्लीहारोगीको पिलाते हैं। इसकी जड और कालीमिर्चको पीसकर और चनेके बराबर गोलियाँ बाँधकर ३-४ गोली विसूचिकामें पिलानेसे वमन बंद हो जाता है। प्लीहाशोथ मिटानेके लिए इसकी जड चनेके बराबर थोडेसे नमक दूधमें रखकर पिलाते हैं। इसकी जडसे मरहम बनाकर कतिपय व्रणोंको सुखानेके लिये उपयोग करते हैं। मात्रा—यथा प्रमाण।

(२४५) चाय

फैमिली : थीआसे (Family Theaceae)

नाम—(हि०, बा० बाजार) चा चाह, चाय, (अ०) शाय, (फा०) चाय, (द०, ब०, गु०, म०) चा, (लै०) कामेलिआ थीफेरा Camellia theifera Griff (पर्याय—थीआ सीनेन्सिस *Thea sinensis* Kuntz), (अं०) टी (Tea)।

उत्पत्तिस्थान—चीन, तिब्बत, जापान, नीलगिरी, ट्रावनकोर, आसाम, दार्जिलिंग, नेपाल, पंजाब, मता और भारतवर्षके कतिपय अन्य स्थानोंमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह विशेष विधिसे सुखाये और तैयार किये हुए चायके पत्र हैं जो पीने और औषधके काममें लिए जाते हैं। काली और हरी भेदसे चाय प्रधानतः दो प्रकारकी होती है।

रासायनिक संगठन—चायमें एक विशेष उत्पत् तैल, टैनिक अम्ल (Tannin) और गैलिक अम्ल, क्वेर्सेटिन (Quercetin), बोहिक अम्ल (Boheic acid), थीईन (Theine) नामक क्षारोद जो कहवामें पाये जानेवाले कैफीन नामक क्षारोदके समान होता है तथा जैन्थीन (Xanthine) और थिओफिलीन (Theophylline) नामक क्षारोद आदि द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, मताप एवं मस्तिष्कोत्तेजक, पाचन, सारक, विलयन, उष्णताजनन, तारल्यजनन, प्रमाथी, स्वेदल, मूत्रल और मिथ्या तृष्णा निग्रहण है। थकावट दूर करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह दुःख एवं चिंताको दूर करती है। किसी-किसीके मतसे यह दीपन एवं ओजो और शक्तियों (अरवाह व कुवा)को बलप्रदान करनेवाली है। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृद्रोगों, जैसे—दिलकी धडकन, दुःख एवं भ्रमनिवारणके लिए उपकारक है। मस्तिष्कोत्तेजक होनेके कारण यह श्रान्तिहरणके लिए उपयोग की जाती है।

उष्णताजनन, तारल्यजनन और प्रमाथी होनेके कारण यह पक्षवध, कास, कृच्छ्रश्वास, पाडु (रक्ताल्पता) और जलोदरमे लाभकारी है। मूत्रल होनेसे वह कामला और मूत्रावरोधमे लाभ करती है। पकाकर लेप करनेसे यह ग्रन्थिविलयन और अर्शोविदनाहर है। साम्प्रत आहारके एक उपादानकी भाँति चायके उपयोगका प्रचलन प्रचुरतासे हो गया है। इसके प्रयोगवाहुल्यसे प्रजागरण विकार अधिक हो जाता है जिसका निवारण दूधके मिश्रणसे हो सकता है। अहितकर–अनिद्रा एव रूक्षता उत्पन्न करती है। निवारण–दूध और शर्करा। प्रतिनिधि–कहवा। मात्रा–३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ से ६ माशे) तक।

●

(२४६) चावल

फैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) चावल, (अ०) उरुज(ज्ज), अरुज, उर्ज, रूज, समन, (फा०) बिरज, (स०) तण्डु(न्दु)ल, (व०) चाल, चाओल, (गु०) चोखा, डागर, (म०) भात, (सिंध) चावर, (ले०) ओरीजा साटीवा (**Oryza sativa** Linn.), (अ०) राइस (Rice)।

वक्तव्य—लेटिन नाम धान (चावलके पौधे)का है। अरबी उरुज यूनानी 'ओरीज' या 'ओरूजा (Oruza)'से व्युत्पन्न है। यूनानी नाम सम्भवत सस्कृत 'व्रीहिसे' व्युत्पन्न है। फारसी बिरज भी सस्कृत 'व्रीहि' पर आधारित प्रतीत होता है। सुरयानी भाषामें इसे 'रोजी' और मिस्रमे 'अरूज' या 'रूज' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे धानकी खेती की जाती है अथवा यह जगली होता है। भारतवासियो विशेषत बगाल, विहार, आसाम, ब्रह्मा और मदरास एव बम्बई प्रातके कतिपय भागोके निवासियोका यह प्रधान खाद्य है।

वर्णन—यह तृण जातीय धान नामक पौधेके छिलका उतारे हुए बीज है जिनकी गिनती अच्छे अन्नो मे है। इसके शालि, षष्टिक और व्रीहि आदि बहुसख्य भेद है। इनमे जो बिना कूटे-फटके सफेद होते और हेमन्तऋतुमे (रवीकी फसल)मे होते है उनको 'शालि' और 'हैमन्तिक' कहते है। तथा जो वर्षाऋतुमे होते है उनको 'व्रीहि' कहते है। (भा० प्र०)। चक्र० व्रीहियोको ग्रैष्मिक बताते है। षष्ठिक (साठी)व्रीहिका ही एक भेद है जो शीघ्रपाकी अर्थात् साठ दिनमे होता है। इन सबमे 'रक्तशालि' श्रेष्ठ है। अन्यशालि रक्तशालिसे गुणमे हीनतर होते है। व्रीहियोमे षष्ठिक श्रेष्ठ है। (अ० हृ०)। उपर्युक्त इन शालिभेदोके कारण चावल कई प्रकारके होते है। उनके अनुसार तथा जमीनकी प्रकृति (दग्ध भूमि, जागल और आनूप भूमि), सिचाई, खाद और तैयार करनेकी पद्धति (रोप्य, अतिरोप्य और छिन्नरूढ) उनके अनुसार चावलोके गुणधर्मोमे और पौष्टिकतामे बडा अन्तर होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे पिष्टमय पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट) बहुत अधिक है और शरीरधातुवर्धक (प्रोभुजिन-प्रोटीन), चरबी और खनिज बहुत कम है। खनिजमे फॉस्फोरस (भास्वर), लौह, मैगनीज आदि तत्व होते है। खनिज और प्रोभूजिन चावलके ऊपरी पर्तमे होते है। इनके अतिरिक्त उसमे विटामिन 'B' (Vitamin 'B') भी होता है।

कल्प—फीरिना और मड।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यद्यपि इसमें गेहूँसे पौष्टिकता कम है तथापि यह शीघ्रपाकी एव उत्तम आहार है। उष्ण व्याधियो एव प्रकृतियोमे इसका उपयोग गुणकारी है चावलोंका धोवन ग्राही और मूत्रल होनेके कारण अति-

(२४७) चावलमुँगरी

फैमिली : बिक्सीने (Family Bixineae)

नाम—(हि०, बं०) चावलमुँगरी (मोगरा), चावल(चॉल)मोगरा, चॉलमुगरा, (फा०) तुख्मे बिरज-मोगरा, (म०) तुवरक भेद; (बं०) चालमुगरा, (आसा) कावटी, (ले०) गीनोकॉर्डिआ ओडोराटा (Gynocardia odorata R Br); (अं०) चॉलमोगरा (Chaulmoo (u) gra)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी बंगाल, आसामका पूर्वी भाग, पेगू, यूमा और मर्तबानके दक्षिणी पूर्वी टालुओंपर, सिल्हट और सिक्किमके जंगलोंमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक बहुत ऊँचे भारतीय वृक्षके प्रसिद्ध बीज हैं जो २.५से ० मी० (१ इंच) लम्बे होते हैं। छिलका पतला, भंगुर और खाकी होता है। इसका मज्ज बाहरसे काला और भीतरसे पिलाई लिये सफेद होता है, किन्तु पुराना होनेपर कालापन लिये पीला हो जाता है। इसमें न कोई स्वाद होता है और न गंध। ताजा अच्छा होता है। इसमे १०० तोले बीजोंमेंसे २५ से ३० तोले तक तेल निकलता है। यह पिलाई लिए भूरे रंगका और प्राय जमा हुआ होता है। इसकी गंध विशेषप्रकारकी और स्वाद साधारण तीक्ष्ण होता है।

वक्तव्य—इसके अतिरिक्त इसी कुलके कई अन्य वृक्ष, जैसे-सुश्रुतोक्त तुवरक अथवा कटुकपित्थ या कडुकवीठ (म०), हिड्नोकार्पुस वीटियाना (Hydno carpus wightiana Blume) तथा 'कलव' टॉराक्टोजेनोस कुर्जिआई (Taraktogenos kurzii King) आदि हैं, जिनके बीज एवं तेल स्वरूपाकृतिमें और गुणकर्ममें चॉलमुगराके बीज एवं तेलके बहुत समान होते हैं। अतएव उनका उपयोग भी चॉलमोगराके स्थानमें होता है। पाश्चात्य फार्माकोपिआमें

चॉलमुगराका स्थान अब तुवरकतैलने ले लिया है और इसका तेल पाश्चात्य औपधिससारका अधिकृत (Official) द्रव्य है। भारतीय वैद्यो द्वारा कुष्ठमे इसका सफल उपयोग देखकर मौआर्ट (Mauart)ने सन् १७५४ ई० मे इसका प्रारम्भ युरोपमे किया और तबसे बहुत दिनो तक पाश्चात्य वैद्यकमें भी कुष्ठकी यही प्रधान औपधि रही है। सुश्रुतके मधुमेह चिकित्सा (अध्याय १३)मे तुवरकका विषद विवरण किया गया है। उसके अन्तमे लिखा है–'महावीर्यस्तुवरक कुष्ठमेहापह. पर'। उसी अध्यायमें इसके कुष्ठनाशक गुणके सम्बन्धमे भी लिखा है। इसकी गध विशेप प्रकारकी और स्वाद साधारण तीक्ष्ण होता है।

रासायनिक सगठन—तेलमे चालमौग्रिक अम्ल और नारिकेलाम्ल ये दो अम्ल मुख्यतया होते हैं।

उपयुक्त अग—बीज और बीजोत्थ तेल (चालमुगराका तेल तुवरकतेल)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शोणितोत्क्लेशक, लेखन और रक्तप्रसादन है। चावलमुँगरी कुष्ठकी अव्यर्थ औपधि है। इसका आन्तरिक एव बाह्य उपयोग करते हैं। इसका तेल कुष्ठके व्रणोपर लगाया जाता और कुष्ठीको खिलाया जाता है। कुष्ठके अतिरिक्त चावलमुँगरी और इसके तेल (रोगन चावलमुँगरा)को दद्रु, पामा (नारफारसी), व्रणित कच्छू, आमवात और वातरक्तमे भी खिलाते है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालोके लिए। निवारण–दूध, घी और शर्करा। मात्रा–चावलमुँगरी १ से ३ माशे तक उत्तरोत्तर बढाकर, चॉलमुगरा तेल ५ से १० बूँद धीरे-धीरे क्रमानुसार उत्तरोत्तर बढाते हुए ३० बूँद से ६० बूँद तक दूधकी मलाई या गायके घीमे मिलाकर दे सकते हैं।

नव्यमत—चॉलमोगराका तेल कृमिघ्न, वेदनास्थापन, त्वग्दोपहर, रक्तशोधन और व्रणरोपण है। सब प्रकारके त्वचाके रोगोमे और महाकुष्ठोमे इसे खाने और लगानेको दिया जाता है। फिरगोपदशकी द्वितीयावस्थामे यह उपयोगी है। गण्डमाला, व्रण, नाडीव्रण और अस्थिव्रणमे इस तेलके खिलाने और लगानेसे उत्तम लाभ होता है। आमवात, गृध्रसी आदि वातरोगोमे यह खाया और लगाया जाता है।

●

(२४८) चिरचिटा

फैमिली : आमारान्टासे (Family . Amarantaceae)

नाम— हिं०) चिरचिटा (रा), चिचडा (डी), लटजीरा, ओगा, अझाझार, (अ०) अतूकुम, (फा०) खारेवाजगून, (स०) अपामार्ग, (व०) आपाड, (प०) पुठकण्डा, (गु०) अघेडो, (म०) अ(आ)घाडो, (कु०) साजी, (मा०) ओगा, आँधीझाडे, (लै०) आकीरान्थीस आस्पेरा (**Achyranthes aspera** Linn.), (अ०) रफ चैफ-ट्री (Rough Chaff-tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रकारका फलपाकान्त क्षुप है, जो वर्षाका प्रथम पानी पडते अकुरित होता है। वर्षामे बढ़ता, शीतकालमें पुष्प और फलसे शोभित होता और ग्रीष्मके प्रखर सूर्यातपद्वारा फलके परिपक्व होनेके साथही सूख जाता है। इसका क्षुप १½ या २ फुट ऊँचा और कभी-कभी इससे भी अधिक ऊँचा होता है। काण्ड या साधारण वृन्त सीधा, खडा, चिपटा, चौकोना (लाल चिरचिटाकी शाखायें लाल और सफेदकी श्वेत होती हैं), धारीदार और लोमश होता है। पार्श्विक शाखाये (वृन्त) युग्म, परिविस्तृत; पत्र आमने-सामने बहुत सूक्ष्म शुभ्रवर्णके रोमसे आवृत, हृदयाकृति वा अण्डाकार, आधारकी ओर पतले (नुकीले) ७ ५ सें० मी० (३ इच) लम्बे, ६·२५ सें० मी०

(२½ इंच) चौड़े, पत्रप्रांत सामान्य, पत्रवृन्त क्षुद्र (लाल चिरचिटाके पत्रपर रक्त बिंदुक दाग होते हैं), उभय प्रकारके चिरचिटा की मञ्जरियाँ दीर्घ, कर्कश (खरमञ्जरी), पुष्प लघु हरित वा लाल तथा बैंगनी मिले हुये रंगके होते हैं। पौष्पिकपत्र कठोर तथा कंटकाकीर्ण होता है। फूल खिलते समय ऊर्ध्वमुख और उसके बाद कुछ पार्श्वकी ओर तिर्छा और अन्तमें फलके पकनेपर अधोमुख झूलता रहता है। शरीरसे स्पर्श होनेसे ये कपड़ेमें लिपट जाते हैं। फलके भीतर दीर्घाकार २.५ मि० मी० से ३ मि० मी० (१/१० इंच से १/८ इंच) लम्बा और भूरा बीज होता है। यह चावलके छोटेसे दानेके समान और नोकदार होता है। इसलिए इसे 'अपामार्ग तण्डुल' कहते हैं। यह स्वादमें तिक्त होता है। अपामार्गकी जड़ मूसला होती है।

रासायनिक संगठन—बीजमें विपुल प्रमाणमें एक क्षारीय राख होती है जिसमें पोटास वर्तमान होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग और पंचांग क्षार तथा शाखा, पत्र, मूल, और बीज (तण्डुल)।

अपामार्गक्षार। निर्माणविधि—आवश्यकतानुसार चिरचिटेके क्षुप (पंचांग) लेकर छाँहमें सुखाकर जलायें। फिर इसकी सफेद राखको काफी जलमें हाथसे भली-भाँति घोलकर स्थिर होनेके लिये रख छोड़ें। सबेरे निथरा हुआ साफ पानी लेकर पकायें। जब पानी जल जाय और क्षारके कण जम जायें तब उतार लें और उन्हें खुरचकर शीशी में सुरक्षित रखें। इसे ही 'नमक चिरचिटा' या 'चिरचिटेका खार' कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (ध० नि०, कै० नि०)।

गुण कर्म तथा उपयोग—वृश्चिक एवं सर्पविष-नाशन, वातानुलोमन, दीपन, मूत्रजनन, श्वयथुविलयन, श्लेष्मनिःसारक और रक्तप्रसादन है। चिरचिटाको वृश्चिक एवं सर्पदष्टका अगद मानते हैं। उक्त रोगियोंको इसकी जड़ जलमें पीसकर पिलाते और दंशस्थानपर लेप करते हैं। उदरशूल, आनाह, जलोदर, दद्रु और फोड़े-फुंसियोंको नष्ट करनेके लिये इसके पंचांगका क्वाथ करके या पीस-छानकर पिलाते हैं। अर्शके रक्तको बन्द करनेके लिये चिरचिटाके पत्रके कुछ दाने काली मिर्चोंके साथ पीस-छानकर पिलाते तथा पत्तोंकी टिकिया बनाकर सुहाता गरम करके विकारी अंगपर बाँधते हैं। जड़को पानीमें पीसकर फोड़े-फुन्सियों विशेषकर कक्षाली (कछराली) को बिठानेके लिये लेप करते हैं। चिरचिटाको जड़, पत्र और शाखाओं सहित जलाकर आनाह, उदरशूल, बावगोला, कास, श्वास और बस्त्यश्मरी-को नष्ट करनेके लिये उपयोग करते हैं। इसके पंचांगको सुखानेके उपरांत जलाकर विशेष विधिसे नमक (क्षार) प्राप्त किया जाता है। यह इसका क्षार (नमक) या भस्म कफजकास, श्वास, उदरशूल, आनाह, बावगोला, बस्त्य-श्मरी और जलोदरमें परम गुणकारी है। जलोदरमें इसे ऊँटनीके दूधके साथ खिलानेसे बहुत शीघ्र लाभ होता है। अहितकर-क्षुधानाशक। निवारण-काली मिर्च और शुद्ध मधु। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक, नमक चिरचिटा ०.५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—अपामार्ग कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, दीपन, पाचन, सारक, रोचक, वमन करानेवाला ग्राही, शिरोविरेचन (बीजतण्डुल) तथा कफ, मेद, वात, अर्श, कण्डू, उदर, आम, शूल, हिक्का और अपचीका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० २, ४, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, कै० नि०)

नव्यमत—अपामार्ग तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, दीपन, अम्लतानाशक, रक्तवर्धक, शोथन, अश्मरीघ्न, मूत्रजनन, मूत्राम्लतानाशक, स्वेदजनन, कफघ्न और पित्तसारक है। भोजनके पहिले चिरचिटा देनेसे आमाशयका पाचकरस बढ़ता है और आमाशयकी पीड़ा कम होती है। भोजनके बाद देनेसे आमाशयमें अम्लता कम होती है और कफ विलीन होता है। चिरचिटासे यकृत्की पित्तवाहिनियोंका शोथ कम होता, यकृत्की क्रिया सुधरती तथा यकृत्में रक्तसंचार ठीक होने लगता है। इसलिये पित्ताश्मरी और अर्शमें चिरचिटा देते हैं। चिरचिटाके अन्तर्गत क्षार रक्तमें शीघ्र मिल जाता है, रक्तके रंजक कण बढ़ते हैं, रक्तका रंग सुधरता है और रक्तोदक का क्षार-धर्म बढ़ता है। रक्त में मिला हुआ क्षार मूत्रपिण्ड (गुर्दे), त्वचा, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत् और पित्तके द्वारा बाहर आता है और जिन-

जिन अवयवों द्वारा बाहर आता है उनकी जीवन विनिमय क्रिया सुधारता है। यह नवीन और जीर्ण आमवात, सधिशोथ, गण्डमाला, मूत्रपिण्डोदर, हृदयोदर, अश्मरी, बस्तिशोथ, मूत्रपिण्डशोथ, श्वासनलिकाशोथ, प्लीहावृद्धि इन रोगोमें हितकर है। अपामार्ग रतौंधोमें हितकर है। इसमे चिरचिटाकी जडका चूर्ण ६ ग्राम से १२ ग्राम (½-१ तोला) रातको सोते समय दूधके साथ देना और रोगीको पौष्टिक आहार खानेको देना लाभप्रद है। आँखकी फूलीमें चिरचिटाकी जड शहदमे घिसकर लगाते हैं।

●

(२४९) चिरायता

फैमिली : जेन्टिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(हिं०) चिराय(ई)ता, चिरैता, (अ०) कसब्बुज्जरीरा, (फा०) नैनिहाबन्दो, (स०) किरात, किराततिक्त, भूनिम्ब, (व०) चिरा(रे)ता, (म०) किराईत, (गु०, कना०) करियातु, (प०) चिरैता, (मा०) चिरायतो, (सि०) चिराइतो, (ले०) स्वेर्टिआ किराटा **Swertia chirata Buch** । (पर्याय-ओफेलिया किराटा *Ophelia chirata* Griseb), (अ०) चिरेट्टा (Chiretta), चिरायटा (Chirayta), व्हाइट ऑर ब्राउन चिरेटा (White or Brown Chirata) ।

इतिहास—भारतीयोको अतिप्राचीन कालसे इस ओषधिका ज्ञान है। उत्तर भारतमे एक प्राचीन भारतीय पर्वतीय जाति 'किरात' नामसे प्रसिद्ध थी। यह जाति विशेषरूपमे इस ओषधिका उपयोग औषधिकी भाँति करती थी। अस्तु इसका सस्कृत नाम 'किराततिक्त अर्थात् किरातोकी तिक्त ओषधि', इसी अनार्य जातिके नामसे अभिहित है। इसके लैटिन एव अग्रेजी नाम इसके सस्कृत एव हिन्दी नाम 'किरात या किराता एव चिरेता' सज्ञासे व्युत्पन्न हैं। सुश्रुत आदि ने इसका बार-बार उल्लेख किया है। दीसकूरीदूस ने इसकी यूनानी सज्ञा कालामुस आरोमाटीकुस (**Calamus aromaticus**) लिखी है। परन्तु यूरोपीय अन्वेषकोने विश्वास एव बलपूर्वक लिखा है कि उक्त सज्ञा चिरायताकी नही, अपितु 'बच' का है, जिसको अब 'आकोरुस कालामुस (**Acorus calamus**)' कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि यूनानियोको उक्त औषधि अज्ञात थी।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयमे कश्मीरसे भूटान और खसिया पर्वतमाला तथा कुमाऊँ पर्वतमे समुद्रके धरातलसे ४,००० से १०,००० फुट तककी ऊँचाई पर इसके क्षुप होते है। नैपालके 'मोरग' प्रदेशमें यह विपुल होता है। मार्चके अतमे इसके बँधे हुए गट्ठे बाजारोमें आते है। बाजारमे मिलनेवाले चिरायतेका अधिक भाग नेपालसे ही आता है।

वर्णन—यह एक क्षुप है जो ४५ सें० मी० से ९० सें० मी० (१ हाथसे गज भर तक ऊँचा) होता है। कांड-भूरा या बैगनी लिए २.५ मि० मी० से ७.५ मि० मी० (१/१० से ३/१० इ०) मोटा, नीचे गोल और ऊपर किसी प्रकार चौकोर एव शाखायुक्त होता है। शाखायेंभी चौकोर होती है और प्रत्येक शाखा दो क्षुद्र शाखाओमें विभक्त होती है। काड और शाखा गहरे हरे रंगकी खोखली और ग्रथिल होती है। प्रत्येक ग्रथिसे आमने-सामने दो शाखायें निकलती है। पत्र आमने-सामने अडाकार, लम्बाग्र, आधारकी ओर हृदयाकार, अखड, वृतशून्य, १ इच या अधिक लंबा, लबाईके रूख ३ से ७ सिरायुक्त, जिनमे मध्य पर्शुका दृढतम होती है। फूलकी तुरी लगती है। फूल पीला होता है। दलचक्र ४, चक्राकार १.२५ स० मी० (१/२ इच) लबा, पुटचक्र (पुष्पबाह्यकोष) दलचक्र (पुष्पाभ्यन्तरकोषका ⅓ लबा होता है। फली गोपुच्छाकार, एककोषयुक्त, द्विकपाटयुक्त और असख्य क्षुद्र बीजयुक्त होती है।

'चिरायता निर्गंध और अत्यन्त तिक्त होता है। इसका फूल सर्वाधिक तिक्त होता है। मीठा चिरायता (स्वेर्टिआ आंगूस्टीफोलिआ **Swertia angustifolia** Ham) इसका एक अन्य भेद है। यह बिल्कुल तिक्त नही होता। वासाकुल के कालमेघ या कल्पनाथ आण्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा **Andrographis paniculata** Nees (*Family Acanthaceae*) नामक उद्भिद्को 'हरा चिरायता (Green Chiretta)' कहते है। यह चिरायताके समान ही तिक्त होता हैं, किन्तु स्वादमे मटियाला नही होता। इसके लिये 'कालमेघ' देखे।

रासायनिक सगठन—इसमे किरातीन (चिरेटीन) नामक एक पीला तिक्त ग्लूकोसाइड, किराताम्ल (ओफेलिक एसिड) नामक एक एमॉर्फस तिक्त सत्वसे सयुक्त पाया जाता है। इसमे कषायाम्ल (टैनिक एसिड) नही होता।

उपयुक्त अग—पचाग और पुष्प।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**रक्तप्रसादन**, श्वयथुविलयन, तारल्यजनन (मुलत्तिफ), रूक्षण, सग्राही, मूत्रार्तवजनन, **यकृदामाशयबलदायक**, वातानुलोमन, **कृमिनाशन** और **ज्वरघ्न** है। रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ, फिरग (आतशक), खर्जू (खुजली), शोथ, फुसी आदि अन्य त्वचाके रोगोंमें इसका हिम या फाट दिया जाता है। दीपन, वातानुलोमन और सग्राही होनेसे यह आनाह, अरुचि,अजीर्ण, मदाग्नि और अतिसारमे प्रयुक्त होता है। यह **कटुपौष्टिक** होनेके कारण दौर्बल्य एव रोगोत्तरकालीन दौर्बल्यके लिए उपयोगी है। ज्वरघ्न होनेके कारण जीर्णज्वर और ऋतुज्वरोंमे इसका फाट या क्वाथ बनाकर अकेले या अन्यान्य औषधियोके साथ पिलाते है। श्वयथुविलयन होनेके कारण आतरिक अगोकी सूजनमे पेय औषधकी भाँति और बाह्य शोथमे प्रदेहकी भाति इसका उपयोग करते है। **अहितकर**—कटिके लिए। **निवारण**—अनीसूँ और बुत्मका गोद या धमासा। **मात्रा**—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५से ७माशे)तक।

आयुर्वेदीय मत—चिरायता तिक्त, रूक्ष, लघु, शीतवीर्य, सारक, स्तन्यशोधन तथा कफ, पित्त, रक्त, कुष्ठ, व्रण और कृमियोका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ०४, वि० अ० ८, सु० सू० अ०३८, ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—चिरायता दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन और आनुलोमिक है। इससे आमाशयिक रस बढता है और अन्नका पाचन होता है। यह उत्तम कटुपौष्टिक है। इसके साथ सुगन्धित द्रव्योका प्रयोग करना चाहिए। जीर्ण विषमज्वरमें जब शरीरमे ज्वर गुप्तावस्थामे रहता हो और कुपचन तथा शरीरमे दाह रहता हो तब इसमे बहुत लाभ होता है। श्वासनलिकाओके शोथ और सकोचविकाससे उत्पन्न श्वासमे इससे लाभ होता है। आमाशयकी शिथिलतामें यह उत्तम औषध है। इससें दस्त साफ होता है।

●

(२५०) चिरौंजी

फैमिली : आनाकार्डियासे (Family Anacardiaceae)

नाम—फलमज्जा व बीज (हिं०, बर०) चिरौजी, चिरोजी, (स०) प्रियाल बीज, चारबीज, (ब०) चिरोंजी, (म०, गु०) चारोली, (प०) चिरोल्ली, चिरोजी। फल एवं वृक्ष (हिं०) पियाल (र), कठभिलावा, चिरौजीका पेड, चार (फल); (स०) प्रियाल, (लें०) **बुकानानिआ लाजान Buchanania lanzan** Spreng (**पर्याय**—*B Latifolia Roxb*), (अ०) दी कुड्डपा आमड (The Cuddapah Almond)।

वक्तव्य—'**नफाइसुल्लोगात**' में चिरौंजीका अरबी, फारसी नाम क्रमश '**हब्बुस्सिमना**' और '**बुक्लेखवाजा**' लिखे है। परन्तु वे इससे भिन्न है। क्योकि चिरौजीका फल उससे बडा होता है और फल स्वरूपमे भी एकसे नही होते। गुणकर्ममें दोनो प्राय समान है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष भारतवर्षके समस्त उष्ण एव शुष्क भागोमे होते है। व्यापारमे अधिक मात्रामें चिरौंजी मध्यभारतसे आती है। क्योकि विंध्यपर्वतके जगलोमे इसके वृक्ष अधिक मिलते है।

वर्णन—यह 'चार' या 'पियार' वृक्षके फलके बीज (गुठली)की गिरी (मग्ज) है जो बडे मसूरके दानेके स्वरूपाकारकी बाहरसे बादामी और भीतरसे पाडुश्वेत वर्णकी होती है। यह स्वादमे फीकी, किंचित् मधुर, स्वादिष्ट और चिकनी होती है। इसके वजनका आधा एक प्रकारका हलका पीलेरगका स्थिर तेल (रोगन चिरौंजी) निकलता है। इसके मग्ज (चिरोजी) भारतवर्पके प्राय सभी बाजारोमे मिलते है। एक प्रकारका हलका पीले रगका मीठा स्थिर तेल (रोगन चिरोजी) निकलता है। इसके मग्ज (चिरौंजी) प्राय भारतवर्पके सभी बाजारोमे मिलते है।

रासायनिक सगठन—इसमे मासवर्धक द्रव्य (ऐल्ब्युमिनॉइड्स) २८ प्रतिशत, पिष्ट २५ प्रतिशत और तेल ५८५ प्रतिशत प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहलेमे तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बृहण, वाजीकर और लेखन। चिरौंजी पौष्टिक एव जीवनीय (कसीरूल्‌गिजा) है। कृश रोगियोको पुष्ट एव स्थूल करनेके लिए इसको हरीरेमे डालकर पिलाते है। नपुसकताके रोगियोको इसे वाजीकर माजूनोमे डालकर खिलाते है। चेहरेको कांतिप्रदान करनेके लिए इसको अकेले या उपयुक्त औपधियोके साथ पीसकर चेहरेपर मर्दन करते है। इसके अतिरिक्त व्रणित कच्छूपर इसकी मालिश करते है। इसकी विधि यह है कि चिरौंजी १० तोले और अर्कगुलाब १० तोले दोनोको पीसकर १४ माशे सुहागा मिलाकर व्रणित कच्छूपर दो-तीन दिन मालिश करे। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। अहितकर–गुरु एवं चिरपाकी है। निवारण–शुक्तमधु (सिकजबीन और मधु। प्रतिनिधि– पिस्ता और तिल। मात्रा– ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—चिरौंजीका फल मधुर अम्ल, कषाय, मधुरविपाक, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, श्रमहर, उदर्दप्रशमन, सारक, विष्टम्भि, बलकारक, बृहण, वृष्य, कफ और पित्तको बढानेवाला तथा वात, रक्तविकार, तृषा, दाह, क्षत और क्षयका नाश करनेवाला है। चिरौंजीको गिरी मधुर, वृष्य तथा पित्त और वायुका नाश करनेवाला है। चिरौंजीकी गिरीका तेल मधुर, गुरु और कफको बढानेवाला है।

नव्यमत—चिरौंजी उत्तम पौष्टिक द्रव्य है। इसको बादामके स्थानमे काममे ले सकते है। कासमे चिरोंजीका पेया देते है। बाल साफ करनेके लिए इसका तेल सिरमे लगाते हैं। त्वचाके रोगोमें चिरौंजीको पीसकर उबटन (उद्वर्तन) करते है।

●

(२५१) चिलगोजा

फ़ैमिली : कोनीफ़ेरी (Family : Coniferae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) चिलगोजा, (अ०) हब्ब सनोबरकिबार, जि(जु)ल्लौज, (फा०) चिल्गोज, तुख्म सनोवर, (पहाडी) नेजा, नौजा, नेवजा, न्यौजी, (स) निकोचक (सुश्रुत), (म०) चिल्गोजे, (गु०) चिल्‌गोजा' (का०) चिलगोज, हरि, रूही, (अ०) पाइन नट्स (Pine nuts)। वृक्ष–(हिं०) गुनोबर, रूही, (फा०) सूस, (अफगा०) चिल्, ज गोज, (प०) मिरि, गल्मोज, गोगोजल, (ले०) पीनुस जेरार्डियाना (**Pinus gerardiana** Wall), (अ०) नेओजा पाइन (Neoza Pine), एडिबल पाइन (Edible Pine)।

वक्तव्य—'चिल्गोज' से 'जिल्लौज' अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष शीराज, आजरबैजान, रोमदेशके कुछ हिस्सो, ईरान, अफगानिस्तान और उत्तर पश्चिम हिमालयमें कुनवरसे पश्चिमकी ओर गढवाल आदिमे होते हैं। भारतीय चिलगोजा विदेशी चिलगोजेसे उत्कृष्टतर होता है। कोएट और कुर्रमघाटीसे भारतवर्षमे इसका विपुल आयात होता है। पजाबमें यह प्राय बिकता हुआ मिलता है।

वर्णन—यह एक प्रकारके मादा और बडे देवदार या सनोवरके वृक्षके फल है जिसे 'चीरी' भी कहते है। फल–लगभग २ ५ से० मी० या १ इन्च (खिरनीके बराबर) लबा प्राय गोल एक तरफसे कुछ चपटा और भूरे रगका होता है। इनके ऊपरका छिलका पतला होता है और उँगलियोसे दबाने या चुटकीसे मलनेपर सहजमें टूट जाता है। भीतर सफेद रगका स्वादिष्ट मधुर एव तेलके स्वादवाला मग्ज निकलता है। इसमे एक वर्ष तक वीर्य रहता है। पुराना बहुत चिरपाकी हो जाता है। मग्जमेंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है।

रासायनिक सगठन—मग्जमें मांसल द्रव्य (ऐल्ब्युमिनॉइड्स) १३ ६, पिष्ट २२ ५, तेल ५१ ३ होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृहण, शुक्रल, उष्णताजनन और श्लेष्मनि सारक है। चिलगोजा आहारकी भाँति खाया जाता है। इससे शरीर पुष्ट हो जाता है। परन्तु यह दीर्घपाकी है। इसको अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ माजून बनाकरके वाजीकरण, शुक्रवर्धन, बलवर्धन और परिबृहणके लिए खिलाते है। पक्षवध, अर्दित, कटिशूल और आमवातमें इसका उपयोग करते है। कास-श्वासमे अकेले या उपयुक्त औषधियोके साथ मधुमें मिलाकर चटाते या गोलियाँ बनाकर खिलाते है। अहितकर–चिरपाकी है। निवारण–सुक्तमधु और खट्टा अनार। प्रतिनिधि–शकाकुल और हुब्बुल्गार। मात्रा–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

•

(२५२) चीड़ (ढ़), गधाबिरोजा, तारपीन

फॅमिली पीनासे (Family Pinaceae)

नाम।वृक्ष—(हिं०) चीड, चीट, चील, सरल देवदार, (अ०) शज्रतुल्नक, शज्रतुल्जिन, शज्रतुल्आकल, सनोवरुल् हिन्दा, (फा०) दरख्ते बसक, (म) सरल, श्र्याह्व, (ब०) सरल गाछ, (म०, गु०) सरल (तेलियो) देवदार, (प०) चीड, (अल्मोडा, गढवाल, बा०) साला, (क०) चीर, (कु०) सल्ल, (नेपा०) धुप सलसी, (लै०) पाइनुस रॉक्सबुर्घिई **Pinus roxburghii** Sargent (पर्याय–पीनुस लॉंगीफोलिआ *Pinus longifolia* Roxb), (अ०) दी चीर-पाइन (The Chir-pine), लागलीव्हडपाइन (Long-leaved pine)। गोद–(हिं०) चीडका गोंद, गधाबिरोजा, बिरोजा, बिहरोजा, (अ०) किन्न, (फा०) बारजद, बेरजद, (स०) श्रीवास, श्रीवेष्ट, सरलनिर्यास (द्रव), (प०) गधाबिरोज, (नेपा०) धूम, (पहाडी) बिरजे लासा, लीसा, (क०) पद्यारिकागुललुन; (ग०, कु०) लीसा, (गु०) बेरजो, (अ०) दी ओलियो-रेजिन ऑफ पाइन (The Oleo-resion of Pine)। तेल (हिं०) गधाबिरोजेका तेल, तारपीनका तेल, (अ०) दुहनुल् किन्न, जैतुत्तर्विनतीना-(नवीन), (फा०) रोगन बारजद (तारपीन), बेहरोजा, (द०) खन्नाका तेल, खन्नुतेल, (बम्ब०) तार्पिन, (लै०) टेरेबिन्थीनी ओलिउम् (Terebinthinae Oleum), (अ०) टर्पेन्टाइन ऑयल (Terpentine Oil)।

वक्तव्य—यद्यपि डीमकके मतमे इब्नसीना लिखित देवदार वास्तविक देवदार सेड्रूस लीबानी (**Cedrus libani** Rich var-**deodara** Hook. f (C **deodara** (Roxb) Loud. है, तथापि यूनानी निघटुओके परि-

शीलन एव ऊहापोहात्मक अध्ययनसे वह बहुधा चीड ही सिद्ध होता है। इसलिए इस ग्रथमे युक्तियुक्तताकी दृष्टिसे उनके द्वारा लिखित देवदारका वर्णन चीडमे ही किया गया है। गधाबिरोजाका प्राचीन यूनानीनाम 'खल्बानो (Khalbane)' या 'खल्बानीस (Khalbanese)' है, और लैटिन 'गाल्बानुम् (Galbanum)' इसीसे व्युत्पन्न है। मुहीतके मतसे 'बारजद' फारसी 'वेरज़द'से अरबी बनाया गया है। टेरीबिंथका अर्थ 'बुत्म' है। प्राचीनकालमें बुत्मके बीजकी गिरीको दबाकर इस प्रकारका अस्वच्छ तेल निकाला जाता था। अस्तु, इसका उक्त यूनानी नाम पाश्चात्यवैद्यकमे ग्रहण कर लिया गया। पाश्चात्यवैद्यकमें प्रयुक्त टर्पेन्टाइन ऑइल सरलजातीय सनोबरवर्री या शर्बीन (**Pinus sylvestris**)' नामक वृक्षसे प्राप्त किया जाता है। 'कतरान' भी इससे विशेपविधि द्वारा प्राप्त करते हैं। वि० दे० 'कतरान')

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके ढालुओपर २,००० से ६,००० फुटकी ऊँचाईपर, अफगानिस्तानके पहाडो प्रदेशोसे कश्मीर, पजाब, उत्तर-प्रदेश (गढवाल और कुमाऊँ आदि), भूटान, असम्म और ब्रह्मापर्यन्त इसके वृक्ष होते हैं।

इतिहास—'शज्र्रुल्बुत्म (Terebinth tree)' प्राचीन यूनानी चिकित्सकोको पूर्णतया ज्ञात था। सुतरा यूनानी हकीम सावफरिस्तुसने 'टर्बिन्ठोस'के नामसे और अन्यान्य लेखकोने 'टेरिबिन्थोस'के नामसे इसका उल्लेख किया' है। हकीम दीसकूरीदूसने 'तुख्मबुत्मके' मग्जका उल्लेख किया है जिनको दबाकर एक प्रकारका अस्वच्छ तेल निकाला जाता था और उसको 'टीरीबिन्थीनोन एलेओन' कहते थे। प्राचीन इसलामी चिकित्सकोके समीप' बुत्मका नाम टेरीबिन्थ प्रसिद्ध नही था, किन्तु उन्होने 'इलकुल्अबात' या 'इलकुल्बुत्म'का उल्लेख किया है।

वर्णन—इसका वृक्ष ५०–६० गज या इससे भी ऊँचा और सीधा (सरल) होता है। तना–लबा और सरल, तनेका घेरा ५-७ फुट और कही-कही १०-१२ फुट होता है। लकड़ी अत्यन्त स्निग्ध और तीक्ष्णगधी होती है। इसके तनेसे क्षत करनेसे एक प्रकारका दूध या निर्यास (राळदार गोंद) निकलकर जम जाता है। इसे चीड़का गोद (शैखके मतसे शेगन थेवदार या गन्धाविरोजा कहते हैं। पहले यह सफेद कुछ पतला और गाढा होता है। इसके बाद उत्तरोत्तर, अधिक गाढा एवं पीला, फिर गहरा पीला और अन्तमे लाल और शुष्क कुन्दुरवत् कठोर हो जाता है। इसके अश्रुवत् विरूप दाने या दानोसे मिलकर बनी डलियाँ होती है। दाने मटरके बराबर या उससे बडे होते है। यह हरापन लिये पीले या पिलाई लिये नारगी भूरे और अर्धस्वच्छ होते है शरद् ऋतुमे कडे और ग्रीष्ममे नरम हो जाते है। गध विशेष प्रकारकी एव तीक्ष्ण जो अप्रिय नही होती। स्वाद तिक्त, अप्रिय और किसी प्रकार लहसुन जैसा होता है। दसवर्प तक इसमे वीर्य रहता है। बाजारमे बिरोजा गीला और सूखा दो प्रकारका मिलता है। यह दोनो ही प्रकार औपधमे काम आते है। गधाविरोजेसे ऊर्ध्वनलिकायन्त्र (तिर्यक्पातन)के द्वारा एक प्रकारका तेल परिस्रावित करते है जिसे 'तारपीनका तेल (खरल द्रवया सरल तेल)' कहते है यह रगरहित होता है और इसमेसे गधाविरोजेकी सी गन्ध आती है।

चीडकी लकडी

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दोपविलोमकर्ता शीतजन्यशोथ उतारेवाली वेदनास्थापन, और सर्प-विच्छू आदि बिलमें रहनेवाले शीतल विपके जन्तुओके दशसे होनेवाली पीडाको दूर करनेवाली तथा व्यग, बहक, नाशक है। अर्दित, पक्षवध, अगघात, सन्यास, अपस्मार और प्राय. शीतल मस्तिष्क एवं वात व्याधियोमे इसे बारीक पीसकर पीने और लगानेसे उपकार होता है। इससे वस्तिवृक्काश्मरी खड-खड होकर वह जाती है। श्लेष्मातिसार और वातज हिक्का आराम हो जाती है। उदरस्थ वायुका अनुलोमन और आध्मानका निवारण होता है तथा कफज्वर और दूपित कफका नाश होता है। इसके काढेमें बैठनेसे गुदव्रण तथा गुदभ्रंश आराम होता है। कठमाला और प्राय. शीतल शोथोको विलीन करनेके लिये इसका लेप लगाते है। यह वातार्शमे गुणकारक है तथा व्रणरोपण तैलौपधोंमे

पड़ती है। अहितकर–फुफ्फुसको। निवारण–कतीरा, बबूलका गोंद और मीठे बादामका तेल। मात्रा–३.५ ग्राम (३½ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—चीड़ कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कोष्ठशुद्धिकर, तथा कफ, वात, त्वग्रोग; शोथ, कण्डू और व्रणका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)।

गन्धाबिरोजा। वक्तव्य—इसको प्रायः शुद्ध करके औषधके काममें लेते हैं। इसके शोधनकी विधि यूनानी द्रव्य-गुण विज्ञान ग्रंथके पूर्वार्द्ध भेषजकल्पनाखण्डके शोधन-प्रकरणमें देखें।

प्रकृति—दूसरे (मतान्तर से तीसरे) दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्णताजनक, विलयन, सर (मुलय्यिन), वातानुलोमन, श्वयथुविलयन, व्रणलेखन वातिक एवं कफज रोगोंमें लाभकारी, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रार्तवजनन, आविजनन और कृमिनाशन है। गंधाविरोजेको अधिकतया मूत्राघातमें गोली या चूर्ण अथवा मलहमके रूप में या इसका तेल निकालकर भी उपयोग करते हैं। व्रणोंके लिए मरहमोंमें इसका उपयोग करते हैं। यदि व्रणमें कीड़े पड़ गये हों तो यह उनको मारकर व्रणमें नये मांसका रोहण करता और उसको शीघ्र सुखा देता है। कण्ठमाला आदिके विलीन करनेके लिए लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। गर्भाशयशोथ निवारण, आर्तवप्रवर्तन और आविजननके लिये इसका आंतरिक उपयोग करते और फलवर्ति बनाकर योनिमें रखते हैं। वृक्क एवं बस्तिकी खुजली दूर करने तथा व्रणोंको सुखाने और मूत्रमें सिलकाके उत्सर्गके लिये इसके सतका उपयोग करते हैं। अहितकर–उष्णप्रकृति को। निवारण–रोगन बनफशा और कपूर। मात्रा–१ ग्राम (१ माशा)।

नव्यमत—गन्धाबिरोजा खानेसे मुखमें लालाका उद्रेक होता है, उदरमें उष्णता प्रतीत होती है, उद्गार आते हैं, वायु सरता है, नाड़ी भरी हुई रहती है, श्वासोच्छ्वासका प्रमाण बढ़ता है, शरीरमें गर्मी आती है, मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और मस्तिष्क तथा नाड़ियोंमें उत्तेजना आती है। इसे बड़ी मात्रामें देनेसे वमन और विरेक होते हैं, नाड़ी पतली होती है, जी घबराता है, शरीर शीतल पड़ता है, पेशाबमें जलन होती है और रक्त आता है तथा समस्त शरीरमें शिथिलता आती है। इसलिए गंधाविरोजा अथवा चीड़का तेल (तारपीनका तेल) अल्प प्रमाणमें देना चाहिये। ये दोनों वातनाशक, पित्ताश्मरीघ्न, कफघ्न, स्वेदजनन, मूत्रजनन, रक्तग्राहक, उत्तेजक, कृमिघ्न, शोथघ्न, व्रणशोधन-रोपण और दुर्गन्धनाशक हैं। जीर्णकास और राजयक्ष्मामें गंधाविरोजा बहुत उपयोगी होता है। इससे फुफ्फुस और श्वासनलिकाका रक्तानुधावन घटता है, कफ शीघ्र गिरने लगता है और कफके साथ रक्त आता हो वह बन्द होता है। जीर्ण बस्तिशोथ और पुराने मूत्राघातमें गन्धाविरोजासे लाभ होता है।

तारपीन का तेल (रोगन तारपीन)—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्यत. तारपीनका तेल त्वचापर शोणितोत्क्लेशक, कोथप्रतिबन्धक और सक्षोभ-जनक कर्म करता है, परन्तु क्षोभशमनके उपरात संशमन और स्वापजनन कर्म करता है। अधिक प्रमाणमें त्वचापर मर्दन करनेसे यह उसपर छाले (विस्फोट) डाल देता है और उसे व्रणित कर देता है। इसके अतिरिक्त यह कोथप्रति-बन्धक प्रभाव करता तथा प्रकुथित व्रणोपर टपकानेसे यह उन कीड़ोको मार डालता है जो उनमे उत्पन्न हो जाते हैं। नासागत कृमियोंके लिए भी यह सांघातिक है।

आंतरिक रूपसे यह अन्त्र और आमाशयको उद्दीपन करता और वातानुलोमन कर्म करता है। यह ब्रध्ना-कार कृमियो (कद्दूदाने) और चुरन (सूत्र) कृमियोको नष्ट करता है। इसे अधिक प्रमाणमे पिलानेसे रक्तमिश्रित दस्त आने लगते हैं। अल्प प्रमाणमें सेवन करनेसे यह हृदयको उत्तेजित करता है, और धमनिकाओमे यह हृदयावसाद-कर है। तारपीनका तेल सूँघनेसे श्वासोच्छ्वासागोपर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है, जिससे यह श्लेष्मनिःसारक

है। इसके अतिरिक्त कफ दुर्गन्धित एव दूषित हो तो उसे दूर करता है। मूत्रावयवो पर यह मूत्रजनन कर्म करता है। तारपीनको अधिकतया पार्श्वशूल, फुफ्फुसशोथ (श्वसनक ज्वर), कास, आमवात और कटिशूलमे अकेला या उसमे कपूर विलीन करके मर्दन करते हैं। दद्रु, गज और चवल पर लगाते हैं। जिन व्रणोमे कृमि पड गये हो उन पर टपकानेसे यह कृमियोको नष्ट कर देता है और व्रणके प्रकोथको दूर करता है। नासागत कृमियोको नष्ट करनेके लिए इसमे पिचु आप्लुत करके नथुओमे रखते या कोष्ण जलमें मिलाकर पिचकारी करते हैं। इससे समस्त कृमि मरकर निकल जाते हैं। ६ माशे से १ तोला तक एरण्ड तेलके साथ उदर कृमि विशेषकर कद्‌दूदानेको नष्ट करनेके लिए पिलाते है। चुरनो (सूत्रकृमियो)को नष्ट करनेके लिये इसकी वस्ति देते है। रक्तष्ठीवन और जीर्णकासके लिये खौलते हुए जलमे मिलाकर इसका बाष्प सुँघाते है। रक्तवमन और रक्तमूत्रमें रक्तको बन्द करनेके लिए भी इसका उपयोग करते है तथा अन्त्र और आमाशयसे रक्तस्रुति होती हो, तो उसको रोकनेके लिए भी इसे देते है। मूत्रजनन होनेसे यकृद्विकारजन्य जलोदरमें भी इसे देते है। उरोरोगोमें विशेष रूपसे वक्षपर इसका मर्दन प्रचुरतासे करते है। **अहितकर**—क्षोभ (खराश) उत्पन्न करता है और अधिक प्रयोग करनेसे विस्फोट उत्पन्न करता है। मात्रा—० ६ मि० लि० से ० ६६ मि० ली० (६ से १०) बूँद तक। कद्‌दूदानोको नष्ट करनेके लिए ६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

वक्तव्य—तारपीनके तेलका बहुत सावधानीपूर्वक आतरिक उपयोग करने की आवश्यकता है विशेपकर कद्‌दूदानेको नष्ट करनेके लिए इसकी जो मात्रा निर्धारित की गई है, वह निरापद नही है।

आयुर्वेदीय मत—चीड (सरल), कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कोष्ठशुद्धिकर तथा कफ, वात, त्वग्रोग, शोथ, कण्डू और व्रणको नाश करनेवाला है। सरलके काष्ठका तेल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रण-शोधन तथा कृमि, कफ कुष्ठ और वायुका नाश करनेवाला है। च० सू० ४/१६-३२ (श्रीवेष्टक), सु० सू० ३८/२४ (श्रीवेष्टक), सु० सू० ४५/१२३ (सरल सार स्नेह)।

नव्यमत—आध्मानमे तारपीनका तेल पेटके ऊपर लगाते है। चीडका तेल गोदके साथ मर्दनकर, उसमें थोडी चीनी और पानी मिलाकर देने से पेटके कृमि मरते है और आँतोमे रक्तस्राव होता हो तो वह बन्द होता है।

●

(२५३) चीता (चित्रक)

फैमिली प्लूम्बाजिआसे (Family : Plumbaginaceae)

नाम—(हिं०) चीता, चित्ता, चित्रा, (अ०) शीतरज, मिस्वाकुर्राई, (फा०) शीतर (-क), बेख, बरिंद, (स०) चित्रक, अग्नि, (ब०) चिता, (म०) चित्रक, (गु०) सफेद चित्रा, (प०) चित्रा, (लें०) सफेदचीता (श्वेतचित्रक)—प्लूम्बागो जेइलानिका (**Plumbago zeylanica** Linn), (अ०) सीलोन या व्हाइट लेडवर्ट (Ceylon or White Lead-wort)। लालचीता (रक्तचित्रक)—प्लुम्बागो इंडिका **Plumbago indica** L (पर्याय—प्लुम्बागो रोजेआ P **Rosea** Linn)। नीला चीता (नीलचित्रक)—प्लुम्बागो कापेन्सिस (**Plumbago capensis** Thunb)।

वक्तव्य—सस्कृत चित्रकका ही 'शीतरज' अरबी रूपातर है। 'श्वेत' एव 'नील' चित्रकके लेटिन नामोमें जातीय-नाम (Specific name) उत्पत्तिस्थानवाचक तथा रक्तचित्रकमें पुष्परगपर आधारित है। सस्कृत-हिन्दीमें चित्रकभेदोका आधार पुष्परगभेद है। औषधीय प्रयोगमें प्राय श्वेत एव रक्तचित्रकका ही व्यवहार होता है। नीला चित्रक वास्तवमे केप-ऑफ गुडहोप (Cape of Goodhope) क्षेत्रका आदिवासी है। सौन्दर्यके लिए भारतवर्षमें सर्वत्र यह वाटिकाओमे लगाया जाता है। किन्तु यह पौधा अभी यहाँ बसा (Naturalised) नही है।

उत्पत्तिस्थान—'लाल चीता' प्राय समस्त भारतवर्षमें होता है। 'सफेद चीता' इसीकी एक निकटतम जाति है, जिसे उसका उद्यानज भेद माना जाता है। यह झाडीदार जगलो तथा पहाडोमें ४ हजार फुट तक पाया जाता है। 'नीला चीता' प्राय बागोमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—चीतेका ९० सें०मी०से २ मीटर (३–६ फुट) ऊँचा बहुवर्षायु क्षुप होता है। काण्ड गोल, रेखायुक्त और हरित, शाखायें अनेक, पर्ण एकान्तर, ३ ७५ सें०मी० से ७ ५ सें० मी० (१½–३ इन्च) लम्बे एव १ ८ सें०मी०से ५ सें० मी० (¾–२ इन्च) चौडे लट्वाकार नोकीले, आधारपर यकायक नोकीले और काण्डासक्त तथा सरलधारवाले, हरे रगके होते हैं। पुष्प श्वेत, मजरी विदण्डिक तथा स्पर्शमें लसदार होती हैं, पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५, पुकेसर ५, स्त्रीकेसर १ होता है। लाल और आसमानी रगके फूलके विचारसे इसके दो भेद और होते हैं। फल लम्बगोल; मूल भगुर, मूलका रग ऊपरसे ललाई लिये हुए भूरा और भीतरसे सफेद, मूलका स्वाद कटु, उग्र, जीभको चुभनेवाला और दुखदायक होता है।

रासायनिक सगठन—जडमें चित्रकीन (प्लॅम्बेगीन) नामक एक तीक्ष्ण दाहजनक स्फटिकीय सत्त्व होता है। यह उबलते हुए जलमें अशत. विलेय और सुरासार एव ईथरमें सुविलेय है।

उपयुक्त अग—जड़ और जड़की छाल। मूलकी छाल नई काममें लेनी चाहिये। पुरानी होनेसे हीनवीर्य हो जाती है। यूनानी वैद्यकमें मात्र 'शीतरज' से इसके मूलकी छाल अभिप्रेत होती है। इसमें ५वर्षतक वीर्य रहता है।

कल्प तथा योग—हब्ब शीतरज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें खुश्क (रूक्ष), आयुर्वेदके मतसे यह उष्णवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चीताके पत्र और मूल वाह्यत. त्वचापर लगानेसे लेखन और व्रणजनन कर्म करते, सूजन उतारते और कतिपय त्वचाके रोगोमें व्रण डालकर दूषित दोषको बहाकर अच्छा करते हैं। अन्त्र और आमाशयपर इसका उत्तेजक कर्म होता है। यह वायु (रियाह)को परागदा करता, आहारका पाचन करता और अपनी तीक्ष्णतासे अन्त्रमें उत्तेजना उत्पन्न करके विरेक लाता है। प्लीहापर लगाने और आतरिक उपयोग करनेसे यह उसको विलीन करता है। मुखमें रखकर चाबनेसे यह कण्ठ और स्वरयन्त्रपर उष्णताजनन और उत्तेजन कर्म करता है। पुरुष एव स्त्री जननागोपर इसका उत्तेजनकर्म होता है।

उपयोग—किलास, व्यग (बहक) अर्थात् छीप वा झाईं, कच्छू, दद्रु और त्वक्परिपुटन जैसे रोगोमें लेखन और व्रणजननरूपसे इसका लेप लगाते हैं। व्रण डालकर और दूषित दोषको स्रवित करके यह मूल व्याधिको निवृत्त करता है। आमवात, गृध्रसी और कुल्हेके दर्दपर भी इसका लेप किया जाता है। अल्पप्रमाणमें यह विलीन करता, और अधिक प्रमाणमें प्रलेप करनेसे व्रण डालकर लाभदायक सिद्ध होता है। कामोत्तेजन और गर्भशातनके लिये यह वाह्यातरिकरूपसे उपयोग किया जाता है। आहारपाचन, क्षुधावर्धन और वायुके उत्सर्गके लिये इसका उपयोग करते हैं। कफको नष्ट करके स्वरको शुद्ध करनेके लिए इसको मुखमें रखकर चबाते हैं। कफ और वातव्याधियोमें कफोत्सर्गके लिये विरेचनकी भाँति इसे उपयुक्त औषधियोके साथ पिलाते हैं। प्लीहाशोथ एवं प्लीहाकाठिन्यको दूर करनेके लिये इसका लेप करते और आतरिक प्रयोग करते हैं। अहितकर–फुफ्फुस रोगोमें। निवारण–बबूलका गोद और मस्तगी। प्रतिनिधि–प्रवाल, नरकचूर और मजीठ। मात्रा–१ ५ ग्राम से ३ ग्राम (१½ माशा से ३माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—चित्रक कटु, कटु विपाक, लघु, उष्णवीर्य, रुचिकारक, लेखन, भेदन, दीपन, पाचन, अर्शोघ्न, तृमिघ्न, शूलप्रशमन तथा वात, कफ, शोथ, गुदशोथ, शूल, उदर, अर्श, ग्रहणीरोग, कृमि और पाडुरोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, ४६, ध० नि०)।

नव्यमत—अल्पमात्रामें चीतासे पचननलिकाकी कलाको उत्तेजन मिलता है और आमाशय तथा उत्तरगुदका रक्तानुधावन बढकर उनको शक्ति मिलती है। इससे उदरमें उष्णता उत्पन्न होती है और पाचनक्रिया बढती है।

इससे यकृत् उत्तेजित होकर पित्तका उद्रेक ठीक होने लगता है। इसलिये चीता देनेके बाद मलका रग पीला होता है। यह रक्तमें मिलकर मलोत्सर्जक ग्रन्थियोपर विशेषत' त्वचाकी स्वेद ग्रन्थियोपर अपना कार्य करता है। इसलिये इससे पसीना अधिक छूटता है और ज्वर कम होता है। वडी मात्रामे चीता दाहजनक तथा मदकारक विष है। इससे गले और आमाशयमे जलन होती है, जी मचलाता है, वमन और विरेक होते है, पेशाब करनेमे कष्ट होता है तथा नाडी अशक्त होकर वक्रगतिसे चलती है और शरीर शीतल पडता है। गर्भाशयपर चीतेकी क्रिया विशेष महत्त्वकी और ध्यानमें रखने योग्य है। साधारण बडी मात्रासे कटिस्थित सभी अवयवोमे दाह उत्पन्न होता तथा विरेक होते है और जुलावके साथ गर्भाशयसे रक्त बहने लगता है। पेशाव बूँद-बूँद आने लगता है और गर्भाशयका प्रबल सकोच होता है। यहाँ तक कि एक-दो पहरमें गर्भ गिर जाता है। यह क्रिया निश्चितरूपसे होती है और नौ मासमे कभी-कभी देनेसे गर्भ-पात होता है—गर्भ मरा हुआ गिरता है। गर्भपात होनेके लिए चीता देते है। चीताकी ताजी जडके लेपसे फफोला (विस्फोट) उठता तथा त्वचापर लगानेसे बहुत पीडा होती है और त्वचा काली पडती तथा व्रण शीघ्र नही भरता। विषमज्वरमें जब यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि हुई हो तब चीतासे बहुत लाभ होता है। ज्वरमे जब रक्तानुधावन मद होता है और अन्न नही लिया जा सकता तब चीता उपयुक्त औषध है। सूतिकाज्वरमें चीतासे ज्वर कम हो जाता है, समस्त शरीरको उत्तेजन मिलता है और गर्भाशयको उत्तेजन मिलकर दूषित रक्त बहने लगनेसे मक्कलशूल कम होता है। सूतिकाज्वरमे चीताके साथ निर्गुंडी देनी चाहिये। जननेन्द्रियोकी शिथिलतासे उत्पन्न नपुसकत्वमेंचीतासे लाभ होता है। अरोचक, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कुपचन, कभी कब्ज कभी विरेक, पेटका अफारा आदि पचननलिका-की शिथिलतासे उत्पन्न रोगोमें चीता देते हैं।

●

(२५४) चुकंदर

फ़ैमिली : केनोपोडिआसे (Family Chenopodiaceae)

नाम—(हिं०, फा०) चुकदर, (यू०) Teutlon (D 1 149), सिट्लोन (Sitlon), टिट्लोन (Titlon), (अ०) सिल्क, (व)० विटपलग, पलगसाग, (लें०) बीटा वुलगारिस (**Beta vulgaris** L. **var. rapa** Dum); (अ०) कॉमन या गार्डेन वीट (Common or Garden Beet)।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरके तटवर्ती देश। अव यूरोप और अमेरिकामे वडे पैमानेपर इसकी खेती की जाती है। वहाँ इसे सुगरवीट (Sugar-Beet) कहते है। पत्र और मूलके लिये यह अनेक भारतीय उद्यानोमें भी लगाया जाता है, तथा अनेक स्थानोमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुपकी जड (कद) है, जो गाजर वा शलगमकी तरह वाहर और भीतरसे लाल रग की होती है और तरकारीके काममे आती है। इसका स्वाद कुछ मीठापन लिए होता है। इसे काटनेपर लाल पानी निकलता है। इससे हाथमें गुलावी रग लग जाता है। इसके भीतर चक्रसे दिखते है। पत्र पालकके पत्रकी तरह होते है। इसके निम्न भेद होते है–(१) सफेद (सिल्क अब्यज- चुकदर सफेद), (२) लाल (सिल्क अहमर-चुकंदर सुर्ख), और (३) काला (सिल्क अस्वद-चुकंदर स्याह)।

रासायनिक सगठन—इसके कदमें स्टार्च, शर्करा और एक गुणोत्पादक सत्व वीटिन (Betin) होता है। हरे चुकंदरमें अपेक्षाकृत अधिक लौह तथा विटामिन, विशेषकर विटामिन 'A' पुष्कल प्रमाणमें होता है। इसके अतिरिक्त प्रति किलोग्राममे २ मिलीग्राम यशद तथा विटामिन 'B' एवं विटामिन 'C' होता है।

उपयुक्त अग—पत्र एव कद। इसके कंदमे चीनी वनाई जाती है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतानुसार पहले दर्जेमें गरम और तर; परन्तु लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम व रूक्ष, समशीतोष्णवीर्य ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, स्नेहन, द्रवगुणविलयन, शीतल, स्वेदजनन । चुकदरको अकेला या मांसके साथ पकाकर तरकारीकी भाँति उपयोग करते हैं । इससे पर्याप्त पुष्टि प्राप्त होती है । सर होनेसे मलावरोध (कब्ज) की दशामें इसका उपयोग गुणकारी है । इसका पत्रस्वरस मधुके साथ दद्रु, व्यंग (वहक) और झाईं (कल्फ) आदिपर लगाते हैं । सिरकी भूसी नष्ट करनेके लिए इससे सिरको धोते हैं । चुकदर और उसके पत्रको क्वाथ करके भी सिरकी भूसीको दूर करने तथा सिरकी जूयें (जूआ) मारनेके लिए सिरको धोते हैं । हाथ-पाँवके फट जानेकी दशामें पत्र के क्वाथमें उनको बार-बार रखते और धोते हैं । सूजन उतारनेके लिए इसका पत्रस्वरस लगाते हैं । बाल उगाने और उनको सुन्दर तथा कोमल बनानेके लिये चुकदरके पत्तोंको मेंहदीके साथ पीसकर लगाते हैं । प्रतिनिधि—शलगम ।

●

(२५५, २५६) चूका (आबी व जंगली)

फ़ैमिली पॉलीगोनासे (Family Polygonaceae)

नाम—(हि०) चूका, चूकाका साग, (यू०) लापाथोन Lapathon (D 2 140), (अ) ह(हु)म्माज, बक्लतुल् हामिज़ा, बक्लतुल् मालिया, (फा०) तुर्श , तरए तुराशानी, साक तुर्शक, (स०) चुक्र, चुक्रिका, (बं०) चुका पालङ्; (म०) चाका, चाकवत, (गु०) चुको, खाटीभाजी, (प०) चूक, (लै०) रूमेक्स वेसीकारिउम् (Rumex vesicarium L.); (अ०) कन्ट्री सॉरेल (Country Sorrel), सावर डॉक (Sour Dock), ब्लैडर डॉक (Bladder Dock) । बीज—(हि०) चूकेके बीज, (अ०) बज्रुल् हुम्माज, (फा०) तुख्म तुर्श (या हुम्माज), (स०) चुक्रबीज, (प०) बीजबन्द ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः अजमेर, प्रयाग आदि तथा बड़े नगरोंके सड़कोंके किनारे और घासके मैदानोंमें होता है । 'जलपालक' आसाम, सिलहट, कछार और बंगालके दलदली स्थानोंमें होता है ।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध खट्टा साग है, जिसके कई भेद हैं, यथा-(१) जलचूका (चूका आबी)—यह अधिकतया जलके किनारे उत्पन्न होता है । इसके पत्र किसी कदर मस्न और कासनीपत्रके समान होते हैं । इसे अरबीमें हम्माजुल् माऽ और वैज्ञानिक परिभाषामें सम्भवतः रूमेक्स मारीटिमुस (Rumex maritimus L.) या रूमेक्स आक्वाटिकुम (Remex aquaticus Linn.), और अंग्रेजीमें वाटर डॉक (Water Dock) कहते हैं । इसके बीजोंको पंजाबमें 'बीजबंद' कहते हैं । (२)—जंगली चूका (हम्माजबर्री)—इसको लेटिनमें सम्भवतः रूमेक्स एसीटोसा (Rumex acetosa L.) तथा अंग्रेजीमें सॉरेल (Sorrel) कहते हैं । इसके पत्र चौड़े, स्वादमें बारतंगके पत्रके समान और आकृतिमें चुकदरके समान होते हैं । खट्टे पालकको जनसाधारण 'चूका' कहते हैं । चूकाके बीज छोटे-छोटे, काले रंगके चमकदार और कोई-कोई लाल रंगके और तिपहलू होते हैं । उपयुक्त अंग—पत्र, बीज और क्षुप ।

रासायनिक संगठन—जड़में रूमिसिन (Rumicin) और लैपाथिन (Lapathin) ये दो सत्व जो क्राइसोफैनिक एसिडके समान होते हैं, पाये जाते हैं ।

चूका—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष) तथा आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (रा० नि०) है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, दाहप्रशमन (मुसक्किन हरारत), वेदनास्थापन और उष्ण यकृद्बलदायक है। चूका पित्तातिसार, पित्तके प्रकोपको कम करने तथा प्यास बुझाने और पैत्तिक वमन एव उत्क्लेशको रोकनेके लिये उपयोग किया जाता है। दतशूल-निवारणके लिये इसके पत्रस्वरसका कवल-ग्रह कराया जाता है। उष्ण यकृत् को शक्ति देने और कामलाको नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग करते है। बेदनाशमन और विषनिवारणके लिये इसे वृश्चिकदष्ट रोगीको पिलाते है। दस्तोको बन्द करने तथा कामला, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदरके लिये इसकी जड गुण-कारी है। यह कामलाके लिये विशेष गुणकारी है। अहितकर-कामशक्तिको। निवारण-शार्कर और खण्ड (कद)। प्रतिनिधि-हुम्माज उत्रुज। मात्रा-स्वरस ३ तोले से ५ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—चूका (चुक्रिका) लघु, रुचिकर, दीपन, पथ्य, किंचित् पित्तकर और वातगुल्मको दूर करनेवाली है। (रा० नि०)।

नव्यमत—चूका शीतल, दीपन, शोथघ्न, वेदनास्थापन और स्रसन है। पचननलिकाके दाह और आँवमें तथा वमन वन्द करने और भूख लगानेके लिये इसको देते है। सूजन और विच्छूके दंशपर पत्तियोका लेप करते है।

चूकाके बीज—

प्रकृति पहले दर्जेमे शीत और दूसरे दर्जेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, लेसदार या चिपकनेवाला (मुगर्री) और दाहप्रशमन है। पित्तोद्वेगको शमन करने, उष्ण हृत्स्पंदन, कामला और आमाशयशोथको नष्ट करने तथा मूत्रमार्गके दाहको शात करनेके लिये इसका उपयोग करते है। चुक्रबीजको भृष्ट करके या बिना भुने दस्तोको रोकने तथा अन्त्रव्रण एव रगड (सहज्ज)को दूर करनेके लिये अन्य लबाबदार बीजो जैसे-इसबगोलके साथ खिलाते है। विच्छूका विप दूर करनेके लिये भी इसका उपयोग करते है। पित्तज रोगोमे यह विशेष गुणकारक है। अहितकर-वृक्क और प्लीहाको। निवारण-सौफ और चीनी। प्रतिनिधि-वारतगके बीज। मात्रा-३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

जलचूका (चूका आबी)—

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमे खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, बल्य, हृदयोल्लासकारक और पित्तसशमन और विशेपत उत्क्लेशहर है। उष्ण हृत्स्पदन और उत्क्लेश शमनार्थ, चिता और विरागको नष्ट करने तथा मन प्रसाद एव आनन्द उत्पन्न करने तथा पित्तसशमन एव तृट्प्रशमनके लिये इसका उपयोग करते है। पित्तज अतिसार वद करनेके लिये भी इसका उपयोग होता है। इसके काढेमे बिठानेसे गुदघातमे उपकार होता है। इसके पत्र और बीज चबानेसे दतशूल आराम होता और मसूढे दृढ हो जाते है। कामलाको नष्ट करनेके लिये भी इसका उपयोग होता है। अहितकर-कामशक्ति (बाह) और वृक्क रोगो के लिये। निवारण-शर्करा और सौफ। प्रतिनिधि-उद्यानज चूका। मात्रा-स्वरस ३ से ५ तोले तक।

जगली चूका—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमे खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पत्तोका रस पीना या पत्तोको पकाकर खाना पित्तज सहज्जके लिए गुणकारी है। इसकी जड उद्यानज चूकेकी जडसे बलवत्तर है। दस्तोको रोकने, सहज्ज, कामला, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर (अतिरज)के लिए लाभकारी है। पित्तके दस्तो और पेचिशके लिए यह विशेषरूपसे लाभकारी और कामला-नाशक है। मात्रा-स्वरस ६० मि०लि०से ८५ मि०लि० (५ से ७ तोले) तक, जड ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

(२५७) चूहाकानी

फैमिली . कॉन्वॉल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) चूहाकानी, मूसाकनी, मिर्चाई (चुनार), (अ०) अजानुल्फार, (स०) आखुकर्णी, मूषाकर्णी, (व०) बुडिगुयापान, (म०,को०, बम्ब०) उदीरकानी, (गु०) उदरकणी, (ले०) मेरेमिआ गैंजेटिका **Merremia gangetica** (L) Cuf (पर्याय–*M emarginata* (Burm f) Hall, *Ipomoea reniformis* Chois)।

वक्तव्य—अरबी 'आजानुल्फ़ार' का अर्थ (आजान = 'उज़न'का बहुव० = कर्ण या कान, फार = चूहा) 'चूहाकर्नी' है। 'मर्जंन्जोश' का अर्थ भी 'चूहाकर्नी' है। 'माउस ईयर' Mouse ear) जिसका अथ 'चूहाकनी' हे, हेरासिडम् पीलोसेल्ला (**Hieracium Pilosella** Linn (*Family Compositae*)के एक विदेशी पौधेका अंग्रेजी नाम है। किन्तु यह सभी नाम वास्तवमें भिन्न-भिन्न पौधोके है। इसके कई भेद यूनानी निघण्टुग्रथोमें भी लिखे है। परन्तु उन सबका किसी द्रव्यसे ठीक समन्वय करना सहज नही है। यहाँ भी एक बहुत प्रसिद्ध भेदका ही वर्णन किया जा रहा है।

उत्पत्तिस्थान—इसकी वेल प्राय समस्त भारतवर्षकी गीली भूमिमे चौमासेमे पायी जाती हे।

वर्णन—यह एक परिसर्पी २ से ४ फुट लम्बी क्षुद्र लता है जिसके प्रत्येक पत्रपर गाँठ होती है। इसकी गाँठोमेंसे जड निकलकर जमीनमें जम जाती है। ऊपरकी ओर पत्र निकलते है। इसके इधर-उधर दो-दो पत्र होते है। पत्र वृक्काकार, तरगायित, पत्रप्रान्त दतुर, कुठिताग्र, खुरदरे, चूहेके कान या मण्डूकपर्णीकी तरह होते है। पत्र-वृत लोमयुक्त, पुष्पवृत अतिक्षुद्र १ से २ पुष्पयुक्त, दल (पखडी) पीली, प्राय शरद् ऋतुमे फूलती है। फल छोटे चनेके समान गोल जो पहले हरे या वैंगनी रगके और पकनेपर भूरे रगके हो जाते हैं। इनको चीरनेपर ये दो दलोमे विभक्त हो जाते है और प्रत्येक दलमेंसे एक कडा बीज निकलता है। थोडी दूरसे देखनेपर इसकी लता मण्डूकपर्णीकी तरह प्रतीत होती है। अस्तु प्राय लोग 'मण्डूकपर्णीके' स्थानमे भूलसे इसका प्रयोग करते है।

उपयुक्त अग—इसके प्राय सभी अग (पचाग) औषधके रूपमे काममे आते है।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रल, रक्तप्रसादन और कृमिघ्न है। इसको वृक्क और वस्तिरोगोमे पीस छानकर पिलाते है। कुष्ठ और भगदर जैसे रोगोमें भी उपयोग कराते है और उदरकृमियोको नष्ट करनेके लिये देते है। नेत्राभिष्यद और नेत्रनाडीमे इसका पत्रस्वरस नेत्रमें आश्च्योतन करते है या नेत्रके चतुर्दिक लेप करते है।

वक्तव्य—श्री पागलानद जी स्वामी इसकी पत्तियो विशेषकर बीजोको अत्यन्त पौष्टिक बतलाते थे। उनका कहना था कि जिस प्रकार गृहस्थ पुष्टिके लिए दूध-घीका उपयोग करते है उसी प्रकार सत-महात्मा लोग इसका उपयोग करते है। ये स्वय भी इसका उपयोग करते थे। (लेखक)। अहितकर—वस्तिके लिए। **निवारण**—कुलफा और मरजञ्जोश। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरे भेदका प्रतिनिधि है। **मात्रा**—शुष्क ३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक। हरी ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेमे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—यह कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, पाकमे कटु, शीतवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, सारक, पारेको बाँधनेवाली, नेत्रोकी हितकारी तथा रसायन है और शूल, ज्वर, कृमिरोग, मूत्ररोग, कफरोग, योनिदोष तथा चूहेका विष नाश करनेवाली है। (शो० नि०; भा०प्र०, नि०र०)।

नव्यमत—यह अवरोधोद्घाटक (प्रमाथी), मूत्रजनन और रसायन है तथा आमवात एव वातवेदनामे इसका उपयोग करते हैं।

●

(२५८) चेना

फैमिली : ग्रामीने (Family · Gramineae)

नाम—(हिं०) चेन, चेना, चीन (ना), चेनवां; (अ०) दु(दि)ख्न, (फा०) अ(उ)र्ज़न, (स०) चीनक, काककगु, (व०) चेने, चीना, (क) चिनवा; (म०) राळे, (गु०) चोणो, (लें०) पॅनिकुम् मिलिआसेडम् (**Panicum miliaceum** Linn), (अं०) कॉमन मिलेट (Common Millet) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है ।

वर्णन—कँगनी या साँवाकी जातिका एक प्रसिद्ध अन्न जो चैत-वैसाखमें बोया और आषाढमें काटा जाता है । इसके दाने कँगनीसे छोटे और गोल होते हैं ।

रासायनिक सगठन—यह बहुमूल्य खाद्य (कार्बोहाइड्रेट फूड) है । इसमें ऐल्ब्युमिनॉइड्स १२ ६%, श्वेतसार ६९ ४ प्रतिशत और तेल ३ ६ प्रतिशत होता है ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष (खुश्क) है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चेनाकी रोटी पकाकर खाई जाती है । यह अल्पाहार (कलीलुल्गिजा), दीर्घपाकी और ग्राही है तथा पेशाब लाता और शरीरमें रूक्षता उत्पन्न करता है । जबकि आमाशय में आर्द्र रतूबतोंका प्राधान्य हो और उसका शोषण लक्ष्य हो या वायु आर्द्र हो और भूख अधिक लगती हो, उस समय इसकी रोटीका सेवन कराते है । आर्द्र प्रकृति और वलि (तरहहुल) एव जलोदरीके लिये बहुत सभव है कि इसकी रोटी लाभदायक गुणप्रदर्शित करे । क्योंकि जलांशको यह प्रवर्तनकर्मद्वारा उत्सर्गित करती है । यदि स्वस्थ आदमीको चेनेकी रोटी खाना ही पड़े, तो उसको घीमें पकाकर या कम-से कम घीसे लगाकर खाना चाहिए । इसके अतिरिक्त इसके उपयोगकी सर्वोत्तम विधि यह है कि दूधमें पकाकर घी या बादाम का तेल मिलाकर खांय । इससे पर्याप्त पुष्टि प्राप्त होगी । अहितकर—आनाह और विबध (सुद्दे) उत्पन्न करता है । निवारण—शर्करा और मधु । प्रतिनिधि—चावल ।

आयुर्वेदीय मत—इसके गुण कँगनीके समान है (भा० प्र०) ।

नव्यमत—क्षुपका प्रयोग सूजाकमें होता है ।

●

(२५९) चोबचीनी

फैमिली स्मीलासे (Family, Smilaceae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) चोब(प)चीनी, (अ०) खशबुस्सीनी, अस्लुस्सीनी, (फा०) बेखचीनी, चोबचीनी, (स०) द्वीपान्तरवच, चोपचीनी–भा० प्र०) (म०, गु०) चोपचीनी, (व०) तोपचिनी, (लें०) स्मीलाक्स चीना (**Smilax china** Linn), (अं०) चाइना रूट (China Root) ।

वक्तव्य—अरबी नाम 'खशबुस्सीनी' एव 'अस्लुस्सीनी' फारसी नाम 'चोबचीनी' एव 'बेखचीनी'के अरबी रूपान्तर है । इस औषधिके सभी नाम इसके विदेशी (बाह्यागत) होनेके सूचक है, तथा मुख्यत इसके चीनदेशवासी या व्यवसायमें चीनसे आनेकी ओर सकेत करते है । आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोमें इसका उल्लेख नही मिलता । आयुर्वेदीय निघण्टुओमें इसका समावेश सम्भवत मध्यकालीन युगमें हुआ । भावप्रकाश निघण्टूक्त 'चोपचीनी एव

'द्वीपान्तरवचा' नामोंसे भी इसी तथ्यकी पुष्टि होती है। लेटिन संज्ञामें जातीय नाम 'Specific name' भी इस औषधिके मूलतः चीनवासी होनेके आधारपर रखा गया है।

उत्पत्तिस्थान—जापानका मूलनिवासी, किन्तु चीन और अनेक दूसरे देशोंमें इसे उत्पन्न करते हैं। व्यवसायमें चीनका ही प्रधान सम्बन्ध होनेसे नामकरणमें भी जापानके स्थानमें चीनको ही महत्त्व दिया गया प्रतीत होता है।

वर्णन—यह 'उशबा' या 'रामदतुइनिया'की जातिकी एक बेलकी तन्तुमय जड़ोंमें लगा हुआ कंद है (रंभाकार) जो स्वरूप और आकारमें कसेरूतरे आलू जैसे कभी-कभी कुछ-कुछ चपटा, ग्रंथियुक्त, भूरे रंगकी छालसे आवृत, कभी मसृण एवं चमकीला और कभी खुरदरा होता है, जो भारी, गुलाबी लिए सफेद काष्ठके टुकड़ेकी तरह १० से १५ सें० मी० (४-६ इंच) लम्बा और २.५ से ५ सें० मी० (१-२ इंच) मोटा होता है। इनके भीतरका गूदा गुलाबी लिए सफेद, कड़ा, आटेदार (पिष्टमय), फीका (स्वादरहित), पिच्छिल और गंधरहित होता है। उसके साधारणतः छाल उतारे और कटे हुए बेडौल टुकड़े होते हैं। यह चीनदेशीय चोबचीनी है। इसे 'चोबचीनी जहाजी' भी कहते हैं। मख़ज़नुल् अदवियाके लेखकके मतसे भारी, गुलाबी और ग्रन्थिरहित चोबचीनी औषधके लिए प्रशस्त होती है। कीड़ा लगे हुए मूल निरुपयोगी होते हैं। यूनानी निघण्टुकर्ताओंके मतसे इसका एक उत्कृष्ट भेद 'चोबचीनी सफाई' है, जो मक्का और नैपालके पहाड़ोंसे आती है।

वक्तव्य—चोबचीनीकी कतिपय निम्न जातियाँ भारतवर्षमें भी होती हैं, यथा —(१) बड़ी चोबचीनी **(Smilax glabra Roxb.)**, (२) हिंदी चोबचीनी **(Smilax lanceaefolia Roxb.)** और (३) जंगली (देशी) **उशबा अर्थात् रामदतुइनिया (स्माइलॉक्स मैक्रोफ़ील्ला Smilax macrophylla Roxb.)**। इनके मूल चोबचीनी और उशबाके स्थानमें प्रयुक्त किये जानेके लिए परीक्षणोपयोगी हो सकते हैं।

रासायनिक संगठन—जड़में वसा, शर्करा, एक ग्लूकोसाइड, रंजक द्रव्य, निर्यास और श्वेतसार प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—अर्क चोबचीनी (जदीद), सफ़ूफ़ चोबचीनी, माजून चोबचीनी आदि।

प्रकृति—उष्णता और रूक्षता लिए समिश्रवीर्य है (दिल्लीके हकीम)। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम व तर है। आयुर्वेदके मतसे उष्ण (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तारल्यजनन, अवरोधोद्घाटक, मलोंको विलीन करनेवाली, स्वेदल, रक्तप्रसादन उत्तमांगोंको बलप्रद, मूत्रार्तवजनन, वाजीकर और रूक्षण है। (ताजी चोबचीनी) स्वप्नजनन और संशमन है। रक्तप्रसादनके लिए यह पुष्कल उपयोग की जाती है तथा विदग्ध सौदावी और पित्तज जीर्ण रोगों, जैसे—महाकुष्ठ, फिरंग, परिसर्पी दूषित व्रण, दद्रु, कच्छू और सौदावी कठिन शोथोंके लिए यह बहुत उपयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त उत्तमांगोंको बलप्रद, तारल्यजनन, प्रमाथी और मलोंको विलीन करनेवाली होनेसे यह चिरज शिरःशूल, सौदावी अर्द्धावभेदक, चिरज प्रसेक, प्रतिश्याय, बुद्धिविभ्रम, विविध प्रकारके उन्माद, मद (मालिन्खोलिया), पक्षवध, कम्पवायु, सर्वांगशोफ (इस्तिस्काउ लह्मी) एवं गुदरोगों, जैसे—अर्श, भगंदर (बवासीर) और अर्शोजात अतिसार, वृक्कबस्तिव्रण, हस्तिमेह (सलसुल्बौल), गर्भाशयके रोग, आमवात और चिरज सौदावी ज्वर एवं चातुर्थकज्वरके लिए लाभदायक है। यद्यपि उपर्युक्त रोगोंमें साधारणतया यह क्वाथके रूपमें प्रयुक्त होती है, तथापि इसके माजून, शार्कर और चूर्ण कल्पना करके भी उपयोग किये जाते हैं। वाजीकरणके लिए भी इसका विशेषरूपसे उपयोग किया जाता है। चोबचीनी ताजी जो सूखी न हो, स्वप्नजनन और संशमनकर्म करती है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए। निवारण—ऋतु, काल और रोगके विचारसे जो उपादेय हो। प्रतिनिधि—उशबा मगरबी। मात्रा-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—चोबचीनी (द्वीपान्तरवचा) कुछ तिक्त, चरपरी (मधुर), उष्णवीर्य, अग्निदीपन, मल और मूत्रको साफ लानेवाली तथा विबन्ध, आध्मान, शूल, वातरोग, अपस्मार, उन्माद, शरीरकी पीडा फिरंग रोगको दूर करनेवाली है। (भा० प्र०)।

नव्यमत—यह स्नेहन, स्वेदजनन, वातहर, वेदनास्थापन, रक्तशुद्धिकर, पौष्टिक और रसायन है। कभी-कभी सारसापरिल्लाके प्रतिनिधि रूपमे तथा समान हितोके लिए प्रयुक्त होती है। इसकी मुख्य क्रिया त्वचा, स्नायु (सन्धिबन्धन) और रसग्रन्थियोपर होती है। उपदश और सूजाकसे उत्पन्न सन्धिशोथ, सन्धिबन्धनकी दृढता, इन रोगोमे इससे विशेष लाभ होता है। इससे उपदशकी द्वितीय और तृतीयावस्थामे प्रथम पीडा कम होती है और पीछे सूजन उतरती है।

●

(२६०) चोबहयात

फ़ैमिली : ज़ोगोफील्लासे (Family . Zygophyllaceae)

नाम—(हिं) चोबहयात, (अ०) खशबुल्हयात, (फा०) चोबेहैवत, चोबेहयात; (स०) जीवदारु, लोहकाष्ठ-(नवीन)। (वृक्ष) गुआइआकुम आफ्फीसिनाले (**Guiacum officinale** Linn)। (काष्ठ) लीग्नुम्वीटी (साक्टुम्) Lignum Vitae or Sanctum), (अ०) ग्वायकम वुड (Guiacum Wood)।

उत्पत्तिस्थान—सेट डोमिगो (हैटी द्वीपकी राजधानी), पश्चिमी भारतीय द्वीपमे स्थित जमेइका द्वीप और दक्षिणी अमेरिका। किसी-किसीके मतसे भारतवर्षके वाराणसी, गोरखपुर और रोहतास जिलोमें भी इसके वृक्ष लगाये हुये मिलते हैं। मख़्ज़न और मुहीत में 'गयाक़' नामसे इसका उल्लेख हुआ है।

वर्णन—यह एक बहुत बडे सुन्दर विदेशी वृक्षका सारकाष्ठ है जो अत्यन्त कडा और कालाई लिये गहरा भूरा एव भारी होता है तथा जलमें डालनेसे डूब जाता है। स्वाद मसालेकी भाँति क्षोभक, गध हलकी एव प्रिय जो काष्ठको उत्ताप पहुँचाने (रगड़ने या गरम करने) से प्रगट होती है। वृक्षकी शाखाये खाकस्तरी रगकी खुरदरी छालसे ढँकी हुई होती है। पत्र पक्षवत् सदल एव सयुक्त, सम्मुखवर्ती ३-३ जोडे, पत्रक अवृन्त अण्डाकार और साफ होते है। पुष्प ललाई लिये नीला, टहनियोके अग्र पर, फल प्राय अण्डाकार और कभी गोल भी होते हैं।

रासायनिक सगठन—इसमे लगभग २० से २४ प्रतिशत एक राल होती है जो लकडीको जलाकर पिघले हुए रालको सग्रह करनेसे प्राप्त होती है।

उपयुक्त अग—काडके हीरकी लकडी (सारकाष्ठ)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलदायक, विषोका अगद, वातानुलोमन, श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन है। विषोका अगद होनेसे विसूचिकामे विशेष गुणदायक है। उक्त रोगमे जबकि मलोका शोधन भलीभाँति हो चुका हो, छर्दि और अतिसारकी अधिकतामे रोगी अत्यन्त निर्बल और निढाल हो गया हो, तब इसका उपयोग किया जाता है। वृश्चिक और सर्पदशके लिए भी इसको घिसकर पिलाते हैं। इसके अतिरिक्त दशस्थल पर इसका लेप भी करते है। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

वक्तव्य—पाश्चात्य चिकित्सामे इसके काष्ठ एव काष्ठमे निकाली हुई राल का उपयोग होता है।

●

(२६१) चौलाई, कांटाचौलाई

फॅमिली अमरान्थासे (Family Amaranthaceae)

नाम—(हि) चौलाई, चौराई, (यू०) Bleton (D. 2 113), (अ०) बकलतुल् अरबिया, बकलतुल् यमानिया (इ० बै० १/१०३), बक्लत् (-ला) यमानिया, (फा०) तदु(तु)लीय, अल्पमारिष, (बं०) चाँपानटे, क्षुदेनटे, (गु०) तादलजो (म०) तांदुल-(ली)जा, (लै०) अमरान्थुस पॉलीगेमुस (Amaranthus polygamus Willd)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष तथा उष्णकटिबन्धस्थित एशियाके भूभाग।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध साग है। वास्तवमें यह छोटी जातिका मरसा है। इसका क्षुप लगभग हाथ भर ऊँचा तथा प्रायः भूलुण्ठित होता है। सामान्य कण्टकरहित होती है। वन्य और उद्यानज भेदसे तथा श्वेत और रक्तभेदमे भी यह दो प्रकार की होती है। चौमासे में इसके क्षुप विपुल उत्पन्न होते है और बरसात में फूलते हैं। काँटा चौराई या चौलाई-खारदार (अमरान्थुस स्पीनोसुस Amaranthus spinosus Linn) इसका एक भेद है।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज, मूल और पञ्चाङ्ग।

प्रकृति—दूसर दर्जेमें शीत और स्निग्ध (तर) है। (दिल्ली के हकीम)। तरानऊवाले इसे पहले दर्जेमें सर्द व तर मानते है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मदापहर, रक्तस्तंभन और मूत्रल। चौलाईका साग पकाकर खाया जाता है। इससे अल्प पुष्टि प्राप्त होती है। परन्तु यह शीघ्रपाकी है और उष्णता एवं दाहको शांत कर देती है। क्षय (तपेदिक), उष्ण ज्वरो, उन्माद और सूजाकमें इसका साग लाभकारी है। आर्तवशोणित, अर्शोजात रक्त, रक्तवमन और रक्त ष्ठीवन बन्द करनेके लिये इसके बीज और मूलका उपयोग कराते हैं। सर्पदष्ट-रोगीको इसका पत्रस्वरस पिलाना गुणकारक वर्णन किया जाता है। मात्रा—पत्रस्वरस ६० मि०लि०से १२० मि०लि० (५ से १० तोले) तक, बीज एवं मूल ५ ग्राम से ७ ग्राम (४ माशे से ७ माशे) तक। निवारण—गरम मसाला। प्रतिनिधि—काँटेवाली चौलाई।

आयुर्वेदीय मत—चौलाई रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, दीपन, रुचिकारक, मलमूत्रनिःसारक, पथ्य तथा रक्तपित्त, मद, पित्तकफ, रक्तविकार दाह, भ्रम और विषको नष्ट करने वाली है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, भा० प्र०)। चौलाईके पत्ते छूनेमें शीतल, पित्तरक्तनाशक, विषघ्न, कासनिवारण, मलरोधक, पचनेमें मधुर तथा दाह और शोथविनाशक है (रा० नि०)। चौड़ाईकी जड गरम कफनाशक, रजरोधक तथा रक्तपित्त और प्रदरको दूर करनेवाली है (आ० स०)।

•

(२६२) छड़ीला

फॅमली : लीकेनीज (Family Lichenes)

नाम—(हिं०) छरी(टी)ला, छारछरीला, छैलछबीला, भूरिछरीला, पत्थरका फूल, बुढना, कजाल, (यू०) Bruon (D 1 २०), (अ०) उश्न, तुह्लबुस्सखर, हजाजुस्सखर, हजाजुल्जबल, शैबतुल् अजूज (इ०बै० १/३०), (फा०) उश्न, दुवालक (-ला), गुलेसग, (स०) शैलेय, शिलापुष्प, (कु०) झोला, (म०) दगडफूल, (गु०) छडीलो, (मा०) छाटछडीला, (लै०) पार्मेलिआ काम्ट्सकाडालिस (Parmelia kamtschadalis Esch), लाइचेन ओडोरिफेरुम् (Lichen odoriferum), (अं०) स्टोन फ्लावर्स (Stone flowers), लाइचेन (Lichen)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालय, पंजाब, फारसादिमें, वृक्षो (बलूत और सनोवर आदि), लकडीके पुराने कुदो-दीवालो और चट्टान आदि पर होता है ।

वर्णन—यह काईकी तरह महीन झिल्लीके समान एक पौधा है जिसमें केसर या फूल नही लगते । यह हरी पेडी-सी सचित होकर जब सूखकर उतरती है तब इसके ऊपरका काष्ठ काला और नीचेका सफेद होता है । स्वाद किसी कदर फीका और तिक्त-कषाय होता है । सफेद, नया और तीव्र सुगधयुक्त छडीला उत्तम होता है । छडीला वास्तवमें खुमीके समान परागभक्षी पौधा है जो भिन्न-भिन्न प्रकारको काइयो पर जमकर उन्हीके साथ मिलकर अपनी वृद्धि करता है । इसकी कई जातियाँ है ।

रासायनिक सगठन—इसमे एक पीला स्फटिकीय पदार्थ, निर्याम, शुगरएक्सट्रैक्टिह्व लाइचेनीन और क्राइ-सोफैनिक एसिड प्रभृति द्रव्य होते है ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष) है । लखनऊके झवाई टोलाके हकीमोके मतसे तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमे खुश्क है । आयुर्वेदके मतके शीतवीर्य (रा० नि०, भा० प्र०) है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयोल्लासकारक एव हृदयबलदायक, दीपन, वेदनास्थापन, ग्राही और विल-यन । झवाई टोलाके हकीम इसका केवल वाह्य उपयोग करते है, परन्तु दिल्लीके हकीमोके मतसे छडीला प्राय मुफर्रेह योगो (मुफर्रेहात)मे सम्मिलित किया जाता है तथा हृद्रोगोमे प्रयुक्त होता है । आमाशयको बल प्रदान करने (दीपन) और यकृच्छूल निवारणके लिये इसे खिलाते है । इसे आघ्राणौषधो (लखलखो)मे डालकर मेधाजनन (मस्तिष्क बलवर्धन)के लिये सुँघाते है । कतिपय दर्दोको शात करनेके लिये रोगीको इसके काढेमे बिठाते है । श्वयथुविलयन के लिये उपयुक्त औषधियोके साथ इसका लेप करते है । नेत्रकी शक्ति देने और नेत्रस्राव (दमआ) जैसे रोगोको नष्ट करनेके लिये इसे खरल करके सुरमाकी भाँति आँख मे लगाते है । अहितकर–अन्त्रके लिये । निवारण–अनीसूँ । प्रति-निधि–किर्दमान । मात्रा–३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—छरीला तिक्त, शीतवीर्य, सुगन्धि, हृद्य, लघु तथा कफ, पित्त, दाह, तृषा, वमन, श्वास, व्रण, कण्डू, कुष्ठ, अश्मरी, विष, हृल्लास और रक्तविकारको दूर करनेवाला है । (रा० नि०, भा० प्र०) ।

नव्य मत—छड़ीला मूत्रजनन है । एक तोला इसके काढेमे मिश्री और जीरेका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे पेशाब खुलता है । इसको गरम पानीमे पीसकर सिरपर लगानेसे सिरका दर्द आराम होता है ।

●

(२६३) छतिब(व)न

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Famıly : Apocynaceae)

नाम—(हिं०) छतिब(व)न, सतिवन, सतौना, छतनी; (सं०) सप्तपर्ण, (प०) सरौना; (बं०) छातिम; (म०) सातवीण, (गु०) सातवण, (लें०) आल्सटोनिआ स्कोलेरिस **Alstonia scholaris** R. Br (पर्याय–एकीटीस स्कोलेरिस (*Echites scholaris* Linn), (अं०) डेविल ट्री (Devil Tree) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष ।

वर्णन—इसके प्राय सुन्दर, विशाल और सीधे वृक्ष होते है, जिनकी शाखायें और पत्तियाँ चक्रिक क्रममें निकली रहती है । पत्तियाँ प्रतिचक्रमें ३-७ अथवा प्राय ६ और १०से मी.से २०सें मी (४इच से ८इच) लम्बी और अधस्तल पर श्वेताभ होती है । पुष्प हरिताभ-श्वेत और गुच्छोमे पाये जाते हैं । छाल ३ १२५ मि० मी० से ८ ३

मि० मी० (⅙ से १/३ इ०) तक मोटी, विषम टुकडोके रूपमे, भगुर, खण्ड क्षुद्र और दानेदार, बाहरी धरातल खुरदरा मटियाले रगका (धूमरवर्ण) प्राय अधिक काले रग के धब्बोसे युक्त, भीतरी धरातल हलका बादामी होता है। इसके आडे काटमे असख्य ह्रस्व मज्जकिरणें (Medullary rays) दिखलाई पडती है। स्वाद तिक्त होता है। यह निर्गन्ध होती है।

उपयुक्त अग—छाल (डीटा या एल्सटोनिया बार्क Dita or Alstonia Bark), पत्र और दूध।

रासायनिक सगठन—छालमे २ प्रतिशत पिष्ट जैसा कुछ रवेदार, अतितिक्त और क्षारस्वभावी सत्व (डीटामीन Ditamine) होता है। यह मद्य और जलमे घुलनेवाला होता है। उस सत्वके गुण कुनैनके समान है।

कल्प—छाल का चूर्ण २-४ तोला लेकर, उसका फाण्ट या क्वाथ करके देवें। सत्व २ ग्रामसे ४ ग्राम (१५-३० रत्ती) दिनमें तीन-चार वार देना चाहिये।

प्रकृति—आयुर्वेद मतमे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सत्व नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, ज्वरघ्न, कटुपौष्टिक, कृमिघ्न और स्तन्य-जनन है। समस्त त्वचामे स्तम्भनगुण अधिक है। तालीफ-शरीफके अनुसार यह सारक, वातश्लेष्मघ्न, कुष्ठ और फोडे फुन्सीको नष्ट करता है। मतान्तरसे यह कषाय, दीपन और स्निग्ध है। इसके दूधिया रसको फोडो पर लगाते है। उसमे तेल मिलाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। इसको छालके काढे पर अतीसके चूर्णका प्रक्षेप देकर पिलानेसे पुराने दस्त बन्द होते है तथा उसकी छाल और सौफको औटाकर पिलानेसे दस्त और आँव बन्द होते है। इसकी छालके काढेके साथ वायविडगका चूर्ण फँकानेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते है। ज्वरोत्तर दौर्बल्य मिटाने और पाचन-शक्ति बढानेके लिए इसकी छालके काढेमें पीपलके चूर्णका प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिए। जिन व्रणोसे दुर्गन्धि आती हो और पूयादि निकलती हो, उन पर इसके नरम पत्तोको अग्नि पर तपाकर और पीसकर लेपकर देना चाहिए। इसका काढा पीनेसे सान्द्र प्रमेह आराम होता है। इसके पत्तोका काढा दूधमे मिलाकर दुष्टव्रणो पर लगानेसे लाभ होता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार—छतिवन तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, सुगन्धि, हृद्य, त्रिदोषघ्न तथा कुष्ठ, उदर्द, शूल, गुल्म, कृमि, व्रण, रक्तविकार और श्वासको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ८, वि० अ० ८, सु० सू० ३८, ३९, ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्य मत—सभी प्रकारके ज्वर और पचननलिका के रोगोमे सतिवन को देते हैं। इससे कुनैन के समान गुण होता है, परन्तु कुनैनमे जो दाम होता है, वह इससे नही होता। प्रसूतावस्थामें पहिले दिन से ही सतिवन सुगधि पदार्थों, जैसे वच, अदरक, कचूरके साथ देते रहनेसे ज्वर नही आता, अन्न ठीक पचता है और दूध बढता है। त्वचा के रोगोमें इसका पुष्कल प्रयोग किया जाता है। त्वचा पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। पुराने व्रणोपर छालका लेप करते है। पुराने अतिसार और आँवमे छालका काढा उत्कृष्ट औषध है।

●

(२६४) छुईमुई

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) छुईमुई, लजालू लजावुर, लजनी लजवन्ती, (स०) लज्जालु, नमस्करी, अजलिकारिका; (ब०) लाजक, लज्जावती, (म०) लाजरी, लाजालू, (गु०) रीसामणी, लजामणी, (ता०) तोट्टच्चु रगी, तोड्डालकडी; (ले०) मीमोसा पूडिका Mimosa pudica Linn , (अ०) सेन्सिटिव्ह प्लाट (Sensitive Plant)।

उत्पत्तिस्थान—यह उष्णकटिबन्धस्थित अमेरिका, विशेषत ब्राजील की मूल निवासी है। वहींसे भारत-वर्षमे लाई गई और अब न्यूनाधिक भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशोमें बस गई है और बागो या जगलोमें देखी जाती है।

वर्णन—यह एक छोटी विसर्पी बेल है जो खडी, १ वित्तासे १ हाथ ऊँची होती है। पत्र– सयुक्त द्विपक्षाकार, बबूल के पत्रकी तरह, किन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं। पत्रक तिहाई इच तक लम्बे, जो स्पर्श करनेसे सिकुड जाते और डालियाँ झुक जाती है। काड और शाखाओपर काँटे होते है। पुष्प लम्बे, पुष्पदण्डो पर गुलाबी गोल पुष्प-गुच्छ (मुण्डक) होते है। फलियोमे काँटेदार सधियाँ होती है। मूल पतला तन्तुमय, शखाकार, स्वाद अम्ल और चरपरा होता है। इसके यह दो भेद और है–(१) चागेरी (*Family Geraniaceae*) कुल की यह वनस्पति प्राय खेतोमे वर्षातमे उत्पन्न होती है। पौधा जमीन पर बिछा या थोडा (वित्ता भर) उठा हुआ होता है। पत्र भुँइआँवलेकी तरह पर उससे बडा, पत्रविन्यास स्तवकाकार होता है। बीचसे पतला और पत्तियोसे लम्बा घनरोमश पुष्पदण्ड निकलता है। उसपर पीले रगके छोटे फूल लगते है। फली लम्बी और चपटी तथा बीज लाल रगके होते है। यह समस्त भारतवर्ष, एशिया, यूरोप और अमेरिकामे होती है। इसको लेटिनमे **बीओफील्लुम सेसीटिवम् (Biophyllum sensitivum** DC), सस्कृतमे 'रक्तपादी' और हिन्दीमे लाजरी, लजकन और छोटालजालू कहते है। इसके पत्र भी छूनेसे सिकुड जाते है। (२) यह भी प्रथम भेद के वनस्पति कुलकी ही वनस्पति है, जो भूमिपर पथराई हुई होती है। शेष बातोमे प्रथम भेदकी तरह, किन्तु कण्टकरहित होती है। मख्ज़नुल् अदवियामें इसे 'लजालुमाई' लिखा है। सस्कृतमे इसे 'अलम्बुआ' हिन्दीमे जललजालू और लेटिनमे **नेप्टूनिआ ओलेरासेआ (Neptunia oleraceaea** Lour) या **मीमोसा नेटान्स (Mimosa netans** Roxb) कहते है। यह शीतल एव सग्राही है। इन तीनोके पत्र छूनेसे सिकुड जाते है। इसलिए इनको 'छुईमुई' और 'लजालू' कहते है।

रासायनिक संगठन—इसमे **माइमोसीन** (Mimosine) नामक ऐल्कोलॉइड और जडमे कषाय द्रव्य (टैनिन) होता है।

उपयुक्त अग—जड और पत्र।

कल्प तथा योग—दवाउत्ताऊन (खास)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदीय मतमे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, रक्तस्तम्भन, रक्तप्रसादन, पित्त और रक्तप्रशमन। रक्तविकार और के पित्तके रोगोमे छुईमुईका उपयोग करते है। नासूर और पुराने व्रणो पर इसका रस टपकाया जाता है। रक्तार्श, एवं भगन्दर), रक्तातिसार, रक्तष्ठीवन और आर्तवशोणितस्रावको बन्द करनेके लिए इसका पत्र-मूलका उपयोग करते है। अहितकर–वृक्क और प्लीहाको। निवारण–काली मिर्च और मधु। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तिक्त, कषाय, सधानीय, पुरीषसग्रहणीय तथा कफ, पित्त, अतिसार और योनिरोगोका नाश करनेवाली है। (च०, सु०, भा० प्र०)।

नव्यमत—जलवृषण (Hydrocele) मे इसकी पत्तियोको पीसकर लेप करते है। यह रक्तसग्राहक और छोटी रक्तवाहिनियोको सकोच करनेवाली है। रक्त और पित्तप्रधान रोगोमे लजालू देते है। रक्तमिश्रित आँव तथा सिकवामेहमे मूलका क्वाथ देते है। अर्शमे पत्तियोका चूर्ण दूधके साथ देते है।

●

(२६५) जंभीरी नीबू

फैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०) जंबीरी, जम्भीरी (–म्बी–), जभीरी, (शीराजी) लीमूए खारको, (स०) जम्बीर, दन्तशठ; (प०) जबीरी, गलगल, (व०) जाभीर ले(नें)बु, (म०) इडलिम्बु, (गु०) गोदडिया लिंबु, दोडिंगा, (ले) सीट्रुस लीमोन **Citrus Limon** Burm f (पर्याय–C medica Linn var. **limon** L) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषकर उत्तरप्रदेश, बम्बई आदिमे यह कही-कही गृह-बगानोमे लगाया हुआ मिलता है ।

वर्णन—जंभीरी नीबूकी छाल मोटी होती है और फल लवगोल तथा स्वादमें खट्टा होता है । इसके पत्र, पुष्प और फलके छिलकेमे एक प्रकारका तेल प्राप्त होता है ।

प्रकृति—सर्द एव तर (दूसरे दर्जेमें), वैद्य गरम बतलाते है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इससे पित्तोद्वेग कम होता है, भोजनकी इच्छा उत्पन्न होती है, खूब भूख लगती है; वायु विलीन होता है; उदरकृमि निकल जाते है तथा मद्यका खुमार दूर हो जाता है । वैद्योके मतसे इसमे वे सभी गुण पाये जाते हैं जो कागजी नीबूमें है, भेद केवल यह है कि कागजी नीबूका रस पडा रहनेसे निर्वीर्य हो जाता है परन्तु जम्भीरीके रसमें वह कम नही होता । अहितकर–अधिक कफ उत्पन्न करता है । निवारण–सोंफ ।

आयुर्वेदीय मत—जम्बीरी नीबू अम्ल, गुरु, पित्तकारक तथा तृष्णा, शूल, कफ, मिचली, वमन, श्वास, वात, कफ और विवन्ध (कब्ज)को दूर करने वाला है । (सु० सू० अ० ४६, च० सू० अ० २७) ।

●

(२६६) जदवार

फैमिली : रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) निर्विषी, (अ०) जद्वार, (फा०) जद्वार, जदवार, माहप(फ)र्वीन, महाफर्फीन, (स०) निर्विषा (षी), विषहा, विषभवा, (नेपाल) निलोविख, (जौनसार) मइन, (ले०) डेल्फीनिउम् डेनुडाटुम् (**Delphinium denudatum** Wall) ।

वक्तव्य—'जद्वार' फारसी 'ज़द्वार'से अरबी बनाया गया है । इसका यूनानी रूप 'जेडोआर Zedoar' है । फारसीमें इसे 'माह-पर्वी (चन्द्र और कृत्तिका तारापुज)' सम्भवत इसलिए कहते हैं, कि यह ग्रीष्मके प्रारम्भमे फूलता है, जबकि कृत्तिकातारापुजका उदय होता है । जदवारका अर्थ यूनानीनिघण्टुओमे 'महागद' लिखा है ।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके खोतान (खता), लद्दाख, नेपाल, भूटान, तिब्बत आदि प्रदेशोमें ८,००० से १२,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है ।

वर्णन—बाजारमे जद्वारके कालाई लिये भूरे या खाकी रगके मूल (कद) मिलते है । मूल २ ५ से ३ ७५ से० मी० (१ से १½ इञ्च) लम्बे और शकवाकार होते है । स्वाद पहले कुछ मधुर और बादमें तिक्त होता है । इसको छीलकर चबानेसे बछनाग जैसी जीभपर सुन्नता, चरपराहट और सनसनाहट नही मालूम पडती । यूनानी वैद्यकके मतसे यह छ प्रकारकी होती है (१) बाहरसे श्यामवर्ण, भीतरसे बनफ्शई रगकी तथा गोपुच्छाकार होती है । चखने

पर प्रथम मधुर और वादको अत्यन्त कडवी मालूम होती है । यह खता (खोतान)की पर्वतमालामे बहुतायतसे उत्पन्न होती है, इसलिये इस भेदको 'जद्वारखताई' कहते हैं । यह सब भेदोसे उत्तम होती है । अत. यही अधिकतया औपधमे प्रयुक्त होती है । (२) भीतर और बाहरसे पिलाई लिये श्यामवर्ण, स्वादमे तिक्त और वृश्चिकपुच्छाकार होती है । इसको जद्वार अकरबी (अकरब = विच्छू) कहते है । यह नैपाल और तिब्बतमें होती है । गुणमे खताईके बाद इसका नम्वर है । (३) भीतर और बाहरसे श्यामवर्ण पीसनेपर नीलवर्ण और स्वादमे तिक्त होती है । यह नैपाल, तिब्बत, मोरग और रगपुरके पहाडोपर उत्पन्न होती है । (४) कालाई लिये हुए तिक्त और जैतूनके फलके बराबर होती है । यह भी नैपाल और तिब्बतमे होती है और नैपालसे आती है । (५) यह काली 'नरम' अतितिक्त और एक वित्ता तक लम्बी होती है। इसे 'जद्वार अन्दलुसी (अन्दलुस = स्पेन)' कहते है । यह वच्छनागके समीप एक ही स्थानमे उत्पन्न होती है (विपभवा–रा० नि०) । (६) सफेद, मधुर, सुगन्धित और थोडी चरपर भी होती है । यह भी एक प्रकारकी जद्वार अन्दलुसी ही है । वहाँ इसे 'कैहक' कहते है । पाँचवे भेदको 'अन्तिलएसौदा' और छठवेंको 'अन्तिलए बैजा' कहते है ।

जद्वार और बछनागमे भेद—जद्वार बछनागके समान होती है । इन दोनोमे भेद यह है कि प्राय जद्वार बछनागसे छोटी होती है । बछनागको छीलकर जिह्वापर रखनेसे दाह सुन्नता और सनसनाहट प्रतीत होती है। इसके बाद जद्वारको घिसकर चटानेसे बछनागके उक्त दोप दूर हो जाते है । इससे भिन्न जद्वार कडुई या मधुर और रगमे भीतर और वाहरसे न्यूनाधिक भूरी, गुणमे निर्विष एव विपघ्न होती है ।

जद्वार नकली—बछनागके मूलको दूधमे उवाल, फिर उसपर काला रंग चढाते हैं । इन नकली मूलोको जलसे भिगोकर फिर कपडेसे घिसनेपर कपडेपर काला दाग पडता है । इस नकली जद्वारको तोडनेपर भीतरसे सफेद निकलता है ।

सरक्षण—जद्वारमे शीघ्र कीडे लग जाते है इसलिये इसे तेलके भीतर या पारदके साथ रखना चाहिये ।
विक्रय-स्थान (मडी)—अमृतसर और दिल्ली ।

रासायनिक सगठन—इसमे डेल्फिनीन (Delphinine) और स्टैफिसेग्रीन (Staphisagrine) नामक दो सुरासारविलेय क्षारभ होते हैं । जडमेसे डेल्फोक्युरारीन (Delpho-curarine) नामक क्षारोद निकाला गया है ।

उपयुक्त अग—मूल ।

कल्प तथा योग—खमीरा जदवारी, खमीरा गावजवान जदवारी, मरहम जदवार, हब्ब जदवार आदि ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क (रूक्ष) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विषनाशक, सौमनस्यजनन, उत्तमागो (मस्तिष्क, हृदय और यकृत्)को और नाडियोको बलप्रद, प्रमाथी, दोपविलयन, तारल्यजनक, दोषपाचन, वाजीकर, प्रवर्तक, अश्मरीनाशक, वेदनास्थापन, लेखन तथा कफज और सौदावी ज्वरो (रोगो)को दूर करनेवाली है । विषनाशक होनेके कारण यह सब प्रकारके उष्ण-शीत पेय, दशजविषोमे प्रयोगकी जाती अर्थात् उनका तिरियाक (अगद) है । इसको घिसकर पिलाते है तथा दशज विपोमे घिसकर दशस्थानपर लगाते है । वछनागके विपमे वमन करानेके बाद इसको दूधमें घिसकर पिलाते हैं । सर्प और वृश्चिक आदिके दंशपर इसको मद्यमे घिसकर लगाते है और पिलाते है । उत्तमाँगोको वलप्रद, सौमनस्यजनन और विपनाशक गुणके कारण जनपदोध्वसक (अमराज ववाइया) रोगोमे यह एक उत्तम रोगनिवारक है और पूर्वाविधानतास्वरूप प्रयुक्त होता है । प्लेग और हैजामें उपयोग करनेसे यह रोगको दूर करती, उत्तमागोका रक्षण करती और उनकी शक्तिको बनाये रखती है । पीडाशामक होनेसे वाह्य और आन्तरिक वेदनाओको शमन करनेके लिये इसका लेप किया जाता है तथा ४ रत्तीकी मात्रामें उपयुक्त औषधियोके साथ इसको खिलाते है ।

श्वयथुविलयन और दोषपाचन होनेके कारण सब प्रकारके शोथोपर इसका प्रलेप किया जाता है। अस्तु व्रण (वद) और फुसियो(बुसूर), प्लेग, कण्ठमाला, कण्ठशोथ (खुनाक) और अन्यान्य प्रकारके शोथो और फुसियो (बुसूर) पर प्रलेप करनेसे या तो यह उनको विलीन कर देती है, या पकाकर फोड देती है। लेखन होनेके कारण इसके लेपसे सिध्म, श्वित्र, व्यग (झाई) तथा चेहरेके अन्य चिह्न दूर होते हैं। जद्वार स्रोतोके अवरोधको दूर करनेवाली और दोषतारल्यजनक होनेके कारण यकृत् और प्रतिहारिणी सिराओ (स्रोतो)का अवरोध, कामला, कष्टार्तव, शूल और जलोदर तथा प्रसेक, प्रतिश्याय और अपस्मार प्रभृति कफज शिरोरोगो एव बालापस्मार जैसे बालशिरोरोगोमे लाभ करती है। कामला-को दूर करती है और मूत्रकृच्छ्रमे इसका मूत्रजनन कर्म सहायक होता है। वातनाडियोको बलप्रद होनेसे पक्षाघात, अर्दित, अपस्मार, अगघात, कम्पवात, त्वचाकी सुन्नता और इनके अतिरिक्त मदाग्नि आदि वातरोगोमे इसका प्रयोग किया जाता है। जद्वारकी गोलियाँ बनाकर प्रतिश्याय आदि कफरोगो तथा अन्यत्र मस्तिष्करोगोमे और वाजीकरणके लिए प्रयुक्त होती हैं। कतिपय माजूनोमे इसको डालते और वाजीकरणके लिए तथा कफज रोगोमें प्रयुक्त करते हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–धारोष्ण दूध और यवमड। प्रतिनिधि–नरकचूर और तिरियाक फारूक। मात्रा–०·५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—निर्विषी रसमें कडवी, उष्णवीर्य, बलकारक, सर्वदोषहर, व्रणरोपण और कफ, वातरक्त तथा अनेक प्रकारके विषदोषोका नाशकरनेवाली है। इसका लेप सूजनको दूर करता है। (रा०नि०, भा०प्र०, श०चि० पृ० १४२७)

●

(२६७) जमालगोटा

फ़ैमिली एउफॉर्बिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम—बीज। (हिं०, म०) जमालगोटा, (यू०) Lathuris (D 4 164), (अ०) हब्बुस्सलातीन, दद्दुस्सीनी, हब्बुल्मुलूक (इ०बै०), (फा०)दद, तुख्मवेद अजीर खताई, ददचीना, माहूदाना, (स०) जयपाल, जेपाल, (व०) जयपाल, (प०) जपो(ञ्रो)लोटा, (गु०) नेपालो, (आसाम) कोनीवीह, (लै०) क्रोटोनिस सीमेन (Crotonis Semen), (अं०) क्रोटन सीड्स (Croton Seeds)। तेल (हिं०) जमालगोटाका तेल, (अ०) जैत हब्बुल्मुलूक, (फा०) रोगन दद, रोगन वेद अजीर खताई, (उ०) रोगन जमालगोटा, (स०) जयपाल तैल, (लै०) क्रोटोनिस ओलिउम् (Crotonis Oleum), (अं०) क्रोटन ऑइल (Coroton Oil)।

वक्तव्य—जमालगोटेके पौधेको क्रोटोन टीग्लिउम् (**Croton tiglium** Linn) कहते हैं।

इतिहास—प्राचीन भारतीय वैद्योको उक्त औषधिका ज्ञान नही था। अर्वाचीन सस्कृत ग्रन्थोमे 'जयपाल' प्रभृति नामोसे इसका वर्णन किया गया मिलता है। 'दन्द' नामसे ईरानवासियोको अतिप्राचीन कालसे इस औषधि का ज्ञान है। इसके 'ददचीनी' फारसी सज्ञासे यह सकेत मिलता है, कि चीनसे ईरानमे इसका प्रवेश स्थल-मार्गसे हुआ। अरबीमें भी इसकी यही फारसी सज्ञा किंचित् परिवर्तित रूपमें 'दद्दुस्सीनी' नामसे प्रयुक्त है। किन्तु अरबनिवासी इसको 'हब्बुल्खताई', 'हब्बुस्सलातीन', 'ख़िर्वअ सीनी (चीनी एरण्ड)' और 'हब्बुल्मुलूक' भी कहते है। इब्नुल्बैतारके अनुसार 'हब्बुल्मुलूक' एक सदिग्ध सज्ञा है, जिसका प्रयोग विभिन्न द्रव्योके लिए होता है (सचिका २, पृ० १५)। इब्नसीनाने 'दन्दसीनी' नामसे उक्त औषधिका उल्लेख किया है और उसी प्रकरणमे

उसने 'दन्दहिन्दी'का भी वर्णन किया है, जो सम्भवत 'दन्ती' है, जिसको 'भारतीय जमालगोटा' कह सकते हैं। इगलैडमे सर्वप्रथम सन् १५७८ ई० में उक्त औषधिका वर्णन किया गया। ईसवी सन्की सत्रहवी शतीमे क्रोटन सीड्स (जयपाल बीज) वहाँ औषधरूपेण प्रयुक्त थे। अधुना केवल जयपाल तैल प्रयुक्त है।

उत्पत्तिस्थान—चीन, समस्त भारतवर्ष, विशेषत पूर्वी बगाल तथा आसाममे यह पुष्कल होता है। मलाबार तटपर भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, लका एव भारतीय द्वीपसमूहमे भी होता है।

वर्णन—यह एक छोटे सदाहरित वृक्षका फल है, जो एरण्ड बीज (रेंडी)की तरह लगभग १ २५ से०मी० (½ इच) लम्बा और ० ८३ से०मी० (⅓ इच) चौडा, अडाकर, किसी कदर गोल शकलका, तीन खण्डवाला, कालाई लिए भूरा होता है। इसके भीतरसे पीलाई लिए सफेद मग्ज (गिरी) निकलता है, जिसके दो दल होते हैं। विषैला होनेके कारण बिना शुद्ध किये इसका उपयोग उचित नही है। इसके शोधनकी विधि मेरे लिखे 'यूनानी-द्रव्य-गुणविज्ञान' ग्रन्थके पूर्वार्धमे यथास्थान देखे। मग्जसे ५० या ६० प्रतिशत एक प्रकारका तेल (रोगन हब्बुस्सलातीन) निकलता है। यह पिलाई या ललाई लिये भूरा, गाढा और स्वादमे तीक्ष्ण (चरपरा) एव दाहजनक (जलन पैदा करनेवाला) होता है। भेद–(१) चीनी या खताई, (२) हिंदी और (३) सब्जी भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। इनमे प्रथम सर्वोत्तम, द्वितीय भी उत्तम, परन्तु तृतीय निकृष्ट एव अनुपयोगी माना जाता है।

उपयुक्त अग—बीज और तेल।

रासायनिक सगठन—बीजमें एक अनुत्पत् वसामय तेल, टिग्लिनिकाम्ल, क्रोटोनिक या क्वार्टेनिलिकाम्ल और जयपाल तेल होता है। तेलमे (१) क्रोटोन ऑलीइक अम्ल जो इसका कार्यकर प्रधान वीर्य प्रतीत होता है, (२) टिग्लिक एसिड या मीथिल-क्रोटोनिक एसिड, (३) क्रोटोनोल जो विरेचनीय तो नही, तथापि तीक्ष्ण दाहक और त्वचापर लगनेसे विस्फोट उत्पन्न कर देता है, (४) कतिपय उत्पत् अम्ल जो सब मिलकर एक प्रतिशत होते है जिनपर इसका गध निर्भर करता है और (५) कतिपय वसामय अम्ल जो स्वतन्त्र और चर्बीकी शकलमें सयुक्त भी होते है।

कल्प तथा योग—तिलाए जमालगोटा, हब्बुस्सलातीन, हब्ब मिस्कीनेवाज आदि।

प्रकृति—चौथे दर्जेमे उष्ण और रूक्ष (खुश्क), आयुर्वेदके मतमे भी उष्णवीर्य (रा०नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बीज तीक्ष्ण विरेचन और विस्फोटजनन है। तेल (रोगन जमालगोटा) बाह्यत त्वचापर लगानेसे विस्फोटजनन कर्म करता है, और आन्तरिक रूपसे खिलानेसे अन्त्रामाशयमे सक्षोभ (खराश) उत्पन्न करके तीक्ष्ण विरेचन कर्म करता है। बाहरी त्वचापर लगानेसे रक्तमे शोषित होकर भी यह विरेक लाता है। (बीज) सौदा और कफके रोगोमे इसका विरेचनकी भाँति उपयोग करते है। सुतरा आमवात, जलोदर, सन्यास (सक्ता) जैसे रोगोमें इसका विरेचन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त बाह्यत विस्फोटजनन होनेके कारण यह हस्त-मैथुनीके लिए प्रयुक्त तिलाओ (शिश्न लेपो)मे डाला जाता है। केवल इसीका भी तिला करते हैं। इसके सिवाय दद्रु, गज, किलास और आमवात जैसे रोगोमे भी इसका लेप लगाते है। यह विस्फोट (छाला) उत्पन्न करके दूषित द्रवोका उत्सर्ग कर देता है। इसके स्थानमे जमालगोटाका तेल भी प्रयुक्त किया जाता है। (तेल) इसे जैतूनके तेलमे मिलाकर गजपर लगानेसे वहाँ जख्म डालकर दूषित द्रवोको बहा देता है जिससे मूल व्याधि नष्ट हो जाती है। जलोदर, जलमस्तिष्क, सन्यास (सक्ता), प्रबल मलावरोध और अन्त्रावरोध नष्ट करनेके लिए तीक्ष्ण विरेचनकी भाँति इसका आतरिक उपयोग करते है। किन्तु जब अन्त्र या आमाशयमे शोफ हो या अन्त्रमे क्षोभ (खराश) वर्तमान हो तब इसका उपयोग नही करना चाहिए। वह वमन लाकर कफका उत्सर्ग करता है। अहितकर–वामक और व्रणकारक है। निवारण–खालिस दूध। मात्रा–बीजका मग्ज ६० मि०ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (½ रत्तीसे १ रत्ती) तक, तेल ० ०३ मि० लि० से ० ०६ मि० लि० (½ बूँद से १ बूँद) तक।

जयपाल के विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—इस मात्रासे अधिक सेवन करनेसे उदर (अन्त्र और आमाशय)मे अत्यन्त दाह, मरोड और दर्द होने लगता है, रक्त और आँव (कफ) मिले हुए दस्त आने लगते हैं, रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है, कभी-कभी प्राणनाश तककी नौबत पहुँच जाती है। उक्त अवस्थामे गोदुग्ध और घृत मिलाकर बार-बार पिलायें और कै करायें। इसके उपरात दहीकी लस्सी या अडोकी सफेदी दूधमे फेटकर पिलाये।

आयुर्वेदीय मत—जमालगोटा (जेपाल) कटु, वात, कृमि और जलोदर नाश करनेवाला है (रा०नि०)।

नव्यमत—जमालगोटा तीव्र रेचन और बडी मात्रामे विष है। एक बूँद इसके तेल देनेसे जोरसे पाँच-पचीस पानी जैसे दस्त हो जाते हैं, पेटमे मरोड आते हैं और अन्त्रकलामे शोथ हो जाता है। इससे पेटके कृमि भी मरते हैं, परन्तु कृमिनाशनके लिए इसका उपयोग नही करना चाहिए। जब रक्त का जलाश कम करना अभीष्ट हो अथवा हृदयोदरमे जब हृदयपरके पानीका दबाव कम करना हो तब जमालगोटा देते हैं। सिरकी रक्तवाहिनी टूटकर अर्धाङ्गवात होता है, उस समय जमालगोटा देकर रक्तका जलाश कम न किया जाय क्योकि मस्तिष्कमे रक्तका स्राव अधिक होकर रोग असाध्य हो जाता है। रोगी निःसंज्ञ हो तो तेलकी एक बूँद मक्खनमे मिलाकर जीभपर रखना चाहिए। यदि विरेचन अधिक हो तो कत्था पानीमे मिलाकर या नीबूका शर्बत पिलावे।

•

(२६८) जयन्ती (जैत)

फ़ैमिली . लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) जेत, रवासन, रायमन, झजन, जयती (व), (अरबीकृत) सैसबान, (स०) जयन्ती, जयतिका, मदगन्धवनी, बम्ब०) जैत, (मल०) शेम्प, (ता०) सेम्बइ, (ते०) जलुगु, (ले०) सेस्बानिआ सेस्बान **Sesbania sesban** (L) Merr (पर्याय—पेस्बानिआ ईजीप्टिआका *Sesbania aegyptiaca* Poir)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयमे लका तकके मैदान, उत्तर-पश्चिममे ४,००० फुटकी ऊँचाईपर होता है।

वर्णन—इसके बडे गुल्म या ४ ५ मीटर (१५ फुट) तक ऊँचे अल्पायु, छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं और प्रायः बागोमें पाये जाते हैं अथवा कही स्वन भी उग जाते हैं। समपक्षवत् पत्तियाँ १० से १५ सें० मी० (४-६ इंच) लम्बी, पत्रक १२ से २० जोडे, रेखाकार-आयताकार और पुष्प पीले या लाल, सतरा और जामुनी रगके धब्बेके कारण चित्रित वर्णके होते हैं। फलियाँ लम्बी, पतली, रम्भाकार, परन्तु बीच-बीचमे सकुचित होती हैं।

सैसबान—

प्रकृति—खुश्क (एव गरम)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आमाशयके चुन्नटोको शक्ति देता, उनको दबागत देता, अतिसारको बद करता, कब्ज पैदा करता, रक्तष्ठीवनको बन्द करता और प्लीहाशोथ मिटाता है। इसके लेपसे भी प्लीहाशोथ मिटता है। दूधके साथ विषोका अगद है। इसके पत्ते घरमें फैला देनेसे पिस्सू उत्पन्न नही होते। यह दोषोको दूसरी ओर लौटा देता है और द्रवोका शोषण करता, तथा कफ एव पित्तको नष्ट करता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—बादावर्द। मात्रा—७ ग्राम (७ माशा)। इसके बीजकी, जिसे 'हब्ब' तथा 'सगसबूया' व 'सजसबूया' लिखा है, मात्रा ३.७५ ग्राम (३¾ या पौने चार माशा) है।

उपयुक्त अग—वृक्षत्वक्, फली, बीज पत्र-पुष्प।

रासायनिक सगठन—बीजोमें एक स्थिर तेल, एक गन्धमय तत्व, उच्चाम, शर्करा, एक आर्गेनिक अम्ल, निर्याम, प्रोटीड्स और भस्म ५%।

जैत—

प्रकृति—छाल, पत्ते और फली पहले दर्जेमें गरम और खुश्क तथा फूल समशीतोष्ण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पत्रस्वरस कफविरेचनीय है। प्रात. थोडा मीठा खाकर ऊपरसे लगभग ३ तोले इसका पत्रस्वरस पीनेसे समस्त उदरकृमि निकल जाते हैं। इसके ताजे पत्तोंको अग्निपर तपाकर बाँधनेसे सूजन उतर जाती है। फोडेपर बाँधनेसे वह पक जाता है। सपूय व्रणो (फोडो) पर इसके पत्तोका लेप करनेसे सम्पूर्ण मवाद खिचकर निकल जाता है। वर्षोंके पुराने नाडीव्रण (नासूर)पर कुछ दिन इसके पत्तोको पीसकर बाँधनेसे वह आराम हो जाता है। किसी अवयवमे पानी उतर आने पर इसके पत्ते तपाकर बाँधनेसे वह विलीन हो जाता है। वृषणप्रकोप या मूत्रजवृद्धि अर्थात् वृषणोमें पानी उतर आनेपर इसकी पिसी हुई पत्तियोका टिकिया बनाकर और उसे एक ओर तवेपर पकाकर वृषणोपर बाँधनेसे उपकार होता है, परीक्षित है। इसके गरम किये हुये पत्तोसे सेक करनेसे वातजशूल एव सन्धिशोथ आराम होता है। इसके पत्रस्वरसका आघ्राण करनेसे समिश्र ज्वर छूट जाता है। पेडकी छालको चौगुने पानीमें भिगोकर अर्क खीचे और इसमेंसे प्रतिदिन १-३ तोले तक रोग और बलके अनुसार कलेवाके रूपमें पी लिया करे। इसी प्रकार २१ वरिक ४० दिन तक पीते रहें तथा लवण, खटाई एव वादी पदार्थोंसे परहेज करे तो श्लीपद (फीलपाँव) रोग जाता रहता है तथा अवयवगत उतरा हुआ पानी विलीन हो जाता है। कहते है कि इसके अर्कको काँचके वर्तनमें नही रखना चाहिये, क्योकि उसे तोड देता है। फली बृंहणीय और फूल वल्य एव इसके लाल भेदका रस खुनाकको मिटाता है। बीजो-को पीसकर उसमे बत्ती लत (आप्लुत) करके नाडीव्रण (नासूर) आदि पुराने व्रणोके मुँहमें रखनेसे वे अच्छे हो जाते है। लगभग १ माशा इसके बीजोका चूर्ण प्रतिदिन खानेसे वायु नष्ट होती और अवयवगत वेदना मिटती है।

आयुर्वेदीय मत—जैत तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रसायन (काली जैत), कण्ठशोधनी तथा वात-पित्त-कफ (विशेषकर वात), भूत, विष, गलगण्ड, कृमि और शोथका नाश करनेवाली है (ध० नि०, रा० नि०, भा० प्र०)?।

उपयोग—इसकी जडको सिर पर धारण करनेसे सभी प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। इसकी जडके काढेमें मधु मिलाकर पीनेसे ईक्षुमेह आराम होता है। इसके पत्तोके काढेसे शिश्नको धोनेसे मेढ्पाक नष्ट होता है। मसूरिकाके बाहर निकलनेके लिये गायके घीके साथ पिसे हुए इसके २४ बीज मसूरिकाके प्रथम आविर्भाव कालमें बासी पानीसे लेना चाहिये। नित्य रविवारके दिन सफेद जैतकी जडको गायके दूधके साथ घोट-पीसकर पीनेसे किलास (श्वित्र)का लाभ होता है। पुटपक्व-जैतकी पत्तीका रस सेधा नमक और सरसोके तेलके साथ सेवन करनेसे प्रतिश्याय आराम होता है। (चक्रदत्त)। ऋतुकालमे तीन दिन तक जैतके पिसे हुए फूलोको पुराने गुणके साथ सेवन करनेसे स्त्री वन्ध्या हो जाती है। (भावप्रकाश-वन्ध्या चि०)।

नव्यमत—ग्राही होनेसे जैतके बीज एव छालका स्वरस अतिसारमें दिया जाता है। इसको पीसकर पकाई हुई पत्तियोका उष्णलेप करनेसे अपक्व स्फोटक शीघ्र पक जाते हैं। बिच्छूके दशमे पीडा दूर करनेके लिये बीजोका लेप हितकर है।

•

(२६९) जरदालू और खूबानी

फैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हि०) जरदालू, कुश्मालू, (यू०) अरमीनाकन, (अ०) मिशमिश, (फा०) जरदालू, जर्द आलू, (स०) उरुमाण (सु०, च०), (प०) खुरमानी, खुर्बानी, खुबानी, गुर्दालु, गर्दालु, शिरन, (क०) चेर, (हिमा०) चूलू, चुल्लू, चीलू, (पश्तु) जरदालू, (काश०) इसेर, (सतलज) जलदारु, (कुमा०) चुआरू, (अ०) एप्रीकॉट (Apricot)।

वक्तव्य—इसके वृक्षको लैटिनमें प्रूनुस आरमेनिआका (**Prunus armeniaca** Linn) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—शीतप्रधान प्रदेश, हिमालय, दक्षिण भारत, मैसूरादि तथा अफगानिस्तान और बलूचिस्तान आदि।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है जो अखरोटके बराबर, किसी कदर आड़ूके सदृश गोल २.५ से० मी० (१ इंच) लम्बा और सफेदी लिए होता है। सूखने पर वह भूरा और मीठा हो जाता है। पीले रंगके जरदालूको 'खूबानी' कहते हैं। सूखा हुआ फल ताजेकी अपेक्षया उत्तम होता है। मीठा, खट्टा और खटमिट्ठा भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। इसके अन्दर बादामकी तरह चिकनी गुठली होती है। तोड़नेपर इसके भीतरसे बादाम मग्जकी तरह मग्ज (गिरी) निकलता है। इसे 'शकर बादाम' कहते हैं। यह स्वादमें बादामके मग्जकी तरह स्वादिष्ट होता है। मीठा और कड़ुआ भेदसे यह मग्ज दो प्रकारका होता है। सूखे फल बाजारमें सर्वत्र मिलते हैं।

प्रकृति—फल दूसरे दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध वा तर (खट्टा शीत एवं तर और मीठा उष्ण एवं तर) है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य है। पत्र दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क) फूल भी शीत एवं रूक्ष। कड़ुआ मग्ज दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष और मीठा पहले दर्जेमें उष्ण एवं तर, बीजोत्थ तेल उष्ण एवं रूक्ष है। कड़ुए मग्जका तेल मीठेसे अधिक उष्ण एवं रूक्ष (दूसरे दर्जे तक) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खूबानी जीवनीय, प्रकृतिमार्दवकर (सर) पित्तविरेचन, पित्त तीक्ष्णता एवं रक्तप्रकोप संशमन और पित्तज्वरहर है। ताजा खूबानी (जरदालू) आनाहकारक और प्रकोथजन्य ज्वरोत्पादक है। पत्र कृमिघ्न, कृमिनिस्सारक और श्वयथुविलयन, पुष्प दोपतारल्यजनन, बीजकी गिरी (मग्ज) दीर्घपाकी और वाजीकर, बीजोत्थ तेल अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, कृमिहर और विरेचन है। खूबानी पित्तविरेचन एवं पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तप्रकोपसंशमन है, इसलिए पैत्तिक रोगोंमें विशेषकर पित्तज ज्वरों और आमाशयशोथकी दशामें प्राय इसका हिम वा फांट बनाकर उपयोग करते हैं। प्यास बुझानेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। यह आशुप्रकोथशील है। इसलिए प्रकोथजन्य ज्वरोंको उत्पन्न करती है। पत्रका काढ़ा पीनेसे उदरज कृमि निकल जाते और मूत्रका प्रवर्तन होता है। पत्तोंको पीसकर नाभिपर लेप करनेसे भी उदरकृमि नष्ट होते हैं। पत्रके काढ़ेसे अवसेचन करनेसे सूजन उतरती है। सूखे पत्र कूट-पीसकर ७ माशेकी मात्रामें शीतल जलसे लेनेसे चिरज अतिसार नष्ट होता है। कड़वे जरदालूके पत्तोंका रस कानमें डालनेसे कर्णशूल और कृमिकर्ण आराम होता है। फूलोंको पीसकर अवचूर्णन करनेसे बाहरी और भीतरी रक्तस्राव बन्द हो जाता है। कड़वी गिरियोंका तेल ४½ माशा पीनेसे उदरज कृमि निकलते और तीव्र विरेक आते हैं, गुदशोथ मिटता, अश्मरी खण्ड-खण्ड होकर निकल जाती और शीतजन्य पेचिस जाती रहती है। इसके पानाभ्यंगसे बाह्यांतर अर्श आराम हो जाता है। बाह्य एवं कानमें टपकानेसे कर्णशूल, कृमिकर्ण और बाधिर्यका नाश होता है। अहितकर–खूबानी आनाहकारक है। निवारण–शर्करा, मस्तगी और अनीसून। प्रतिनिधि–खूबानीका शफ्तालू, पत्रका आड़ूपत्र, तेलका कड़वे बादामका तेल। मात्रा–खूबानी ५ दानेसे १० दाने तक।

आयुर्वेदीय मतसे—जर्दालू और खूबानी (उरुमाण) मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य तथा पित्तकफवातहर हैं (च०सू०अ० २७, सु०सू०अ० ४६)।

●

जरावंद

फैमिली : आरीस्टोलोकिआसे (Family : Aristolo hiaceae)

वक्तव्य—जरावद फारसी शब्दका अर्थ गीलानीके मतसे 'सुवर्णपात्र' है। इसका रग सुनहला होता है, इसलिए इसका उक्तनाम अन्वर्थक है। इसका आधुनिक नाम आरीस्टोलोकिआ (Aristolochia) वस्तुत इसका यूनानी (Gr Aristolokhia D 3 1) नाम है जिसको अरबी यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोमें 'आरिस्ताळोखिया' लिखा ह। आरिस्टोलोकिआका योगार्थ 'प्रसवशोणितोपयोगी द्रव्य' ह। परन्तु इब्नबैतार और किताबमालामस्अ के सकलनकर्ताके मतसे इसका अर्थ 'प्रसवशोणितवाली स्त्रीके लिए अत्युपयोगी द्रव्य' है। जरावद वा आरीस्टोलोकिआकी प्राय ८-९ जातियोका उल्लेख 'उम्दतुल्मोहताज' और कतिपय अन्यान्य पाश्चात्य वैद्यकीय निघण्टुग्रथोमें मिलता है। परन्तु अरबी हकीमोने उनमेसे केवल इन २ जातियों (१) जरावद तवील और (२) जरावद मुदहरजका उल्लेख अपने ग्रथोके किया है। अस्तु इनमे मे प्रत्येकका क्रमश वर्णन यहाँ किया जा रहा है। इसरौल या ईश्वरी (आरीस्टोलोकिआ इंडिका Aristolochia indica) तथा कीटमारी या धूम्रपत्रा (आरीस्टोलोकिआ ब्राक्टिओलाटा **Aristolochia bracteolata** Lamk) इसकी अन्यतम भारतीय जातियाँ है (देखो–'इसरौल एव कीटमारी')। इसके अतिरिक्त इसका एक अन्य भेद भी है जो उत्तरी अमरीकामें होता ह, जिसे आरीस्टोलोकिआ सर्पेन्टारिआ (**Aristolochia serpentaria**) कहते है।

●

(२७०) जरावंद तवील

नाम—(अ०) जरावदे तवील, (फा०) जरावन्दे दराज, (लै०) आरीस्टोलोकिआ लॉगा (**Aristolochia longa** Linn), (अ०) लॉग बर्थवर्ट (Long Birthwort)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप और ग्रेट ब्रिटेन।

वर्णन—वह जरावन्द मुदहरजकी तरहकी एक वनस्पतिकी जड (Rhizome) ह जो एक बित्ता या इससे न्यूनाधिक लम्बी, बेलनाकार, १ इच या अधिक व्यासकी, लगभग एक अगुल मोटी, बाहरसे पाडुर-धूसर या ललाई लिए काली, चिकनी, धारीदार या उभारयुक्त (Warty) और कडई होती है। इसका व्यत्यस्त काट (Transverse section) सफेदी लिये, तैलोद्‌यास (Oleo resin) से युक्त वाहिनीपूलो (Vascular bundles) के कारण भूरे बिन्दुओसे युक्त होता है। स्वाद मधुरता लिये, बादको कटु एव अप्रिय होता है। यह जरावन्दका 'नरभेद' है। पौधा लगभग ६० सें०मी० (२ फुट) ऊँचा, पत्र एकातर, पिलाई लिये हरे रगका और आकृतिमे कुछ-कुछ लबलाब (Ivy) के समान, पुष्प, काड और प्रत्येक पत्रवृन्तके सयोग-स्थलसे निकलने अर्थात् कक्ष स्थित होते है तथा प्रत्येक पुष्पमे एक लम्बी खोखली नलिका होती है जिसके छोरपर भूरापन लिए एक पीले रगका लोलक (Flap) होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और दूसरेमे रूक्ष (खुश्क) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रार्तवजनन, गर्भनिस्सारक, विलयन, उष्णताजनन, कफोत्सारि, श्लेष्मविरेचन, कृमिघ्न, लेखन और व्रणरोपण। रुद्धार्तव, गर्भाशयशोधन और गर्भनिर्हरणके लिए इसका वाह्यातरिक उपयोग करते है। दुर्गन्धित (अफिना) व्रणोपर इसको ईरसा और शहदके साथ मिलाकर लगाते है। व्रणस्थ मुर्दार मासको दूर करके नया मास उत्पन्न करता है। इसे कतिपय मरहमोमे भी मिलाकर लगाते है। चेहरेका रग निखारनेके लिए इसका तिलाऽ (पतला लेप) की भाँति उपयोग करते है। वक्षको कफसे शुद्ध करनेके लिए कास तथा श्वासमे इसे

उपर्युक्त सब रोगोंमें मिलाकर चटाते हैं। नाड़ीपात, रक्तसंचयज व आक्षेप, अपस्मार और अपतानक (कुजाज) जैसे वातज (असबी) और कफज रोगोंमें इसे खिलाते हैं। उदरज कृमियोंके नष्ट करने और उनके निर्हरणके लिए इसका उपयोग करते हैं। जूँओं (पुरुओं) को मारनेके लिए तेलके साथ इसका शरीर और शिरापर मर्दन करते हैं। अहितकर—यकृत-प्लीहाके लिए। निवारण—मधु, सिकंजबीन और कालीमिर्च, प्रतिनिधि-जरावन्द मुदहरज, चीता और नरकचूर (जुरबाद)। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

●

(२७१) जरावन्द मुदह्रज

नाम—(अ०) जरावन्दे मुदह्रज (मुदव्वर), (फा०) जरावंदे गिर्द, (लै०) आरीस्टोलोकिआ रोटुण्डा (**Aristolochia rotunda Linn.**), (अं०) राउण्ड बर्थ-वर्ट (Round Birthwort)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप।

वर्णन—यह एक पौधेकी पीली विशाल गांठदार जड़ (कंदमूल) है जो गोलाकार (मुदव्वर), फिंदकके बराबर (या उससे कुछ छोटी या बड़ी), किसी भांति चपटी होती है। यह बाहरसे पीली और भीतरसे ललाई लिए, कड़ई और बकर जैसी गंधवाली होती है। यह जरावन्द तवीलकी मादाजाति है। भारतवर्षमें यह प्राय दुर्लभ है। जरावन्दके इन उभय भेदोंके गुण कर्म लगभग समान हैं, तथापि औषधमें अधिकतया जरावन्द मुदह्रज ही अधिक प्रयुक्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें आरिस्टोलोकीन (Aristolochine) नामक क्षाराभ (ऐल्केलॉइड) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उत्तेजक, दोषतारल्यजनन, प्रमाथि, कफछेदन, श्लेष्मनिरसारक, लेखन, वेदनास्थापन, व्रणशोधन, वाजीकर, आर्तवजनन और प्रधानत श्लेष्मविरेचन है। दोषतारल्यजनन और प्रमाथि होनेके कारण यह आर्तवजननके लिए उपयोग की जाती है। इन कर्मोंके अतिरिक्त यह कफविरेचन एव विलयन भी है, इसलिये अखिल श्लेष्मज व्याधियोंमें उपयोगी ख्याल की जाती है और कतिपय व्याधियोंमें प्रयुक्त भी होती है। यह जीर्ण कास एवं श्वासमें उपयोग की जाती है। इसे उन मरहमोंमें भी सम्मिलित करते हैं जो दुर्गन्धित दुष्टव्रणोंके लिए गुणकारी होते हैं। वाजीकरणार्थ इसे वाजीकर माजूनोंमें डालते हैं। पार्श्वशूल (जातुज्जनब), चिरज वेदनाओं, कूल्हेके दर्द (वजउल्वरिक), गृध्रसी और वातरक्तमें वेदनाको शमन और विलीन करनेके लिए इसको पिलाते और लेप लगाते हैं। यकृत्प्लीहाशोथ एव काठिन्यमें भी इसको पिलाने और लेप लगानेमें लाभ होता है। अहितकर—प्लीहाको तथा नाड़ियोंमें भी रूक्षता उत्पन्न करता है। निवारण—रोगन कद्दू और रोगन बनफशा। प्रतिनिधि—जरावन्द तवील और रेवन्दचीनी। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

●

(२७२) जरीर

फैमिली . रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) असवर्ग, (फा०) जरीर, (इरान) ज़लील, अरफ़क, अस्परग (क), (बम्ब०) गुलज़लील, (लै०) डेल्फीनीउम् ज़लील (**Delphinium zalil Aitch.**)।

वक्तव्य—यद्यपि डीमकके मतसे इसे फारस और वम्बईमे 'त्रायमान' और पजावीमे 'गाफिज' कहते है, तथापि वास्तविक वैद्यकीय त्रायमाण 'देशी गाफिस' जेन्टीआना कुरू (**Gentiana kurroo** Royle), और वास्तविक गाफिस उसकी एक अन्य विदेशीय जाति जेन्टीआना ओलीवेरी (**Gentiana oliveri** Griseb) है, न कि यह जरीर। इसे शास्त्रीय त्रायामाणका प्रतिनिधि द्रव्य माना जा सकता है, त्रायमाण नही, क्योकि यह विदेशी द्रव्य है और त्रायमाण भारतीय।

उत्पत्तिस्थान—फारसके वदगीज और खोरासान आदि प्रदेश। वहीसे इसका आयात भारतवर्षके वम्बई तथा उत्तरभारतीय वाजारोमे होता है।

वर्णन—यह ९० से १८० से० मी० (एकसे दो फुट) ऊँचा एक वहुवर्षायु क्षुप है। वाजारमे इस औषधिके पुष्प, पत्र, पुष्पदण्ड और थोडे प्रमाणमे अपरिपक्व फल अर्थात् पचागके टुकडे मिले-जुले आते है। यह सव हलका हरापन लिए पीले रगके होते है और उसमेसे मधुसरीखा सुवास आता है, पुष्प रोमश, सुन्दर·पीतवर्णके होते है और उनके नीचे सूक्ष्म कण्टकसदृश रचनाये होती है। पत्ती तीन कोप (खड) युक्त जो भीतरकी ओर स्फुटित होते है। फलनासा टेढी, अग्र नोकीला और पृष्ठ रीढयुक्त होता है, पत्तियाँ पीताभ और छोटी होती है। मूल एक वित्तासे अधिक होता है। बीज कोनयुक्त और हलका भूरे रगका होता है। पचागको जलमें डालनेमे जल पीला और स्वादमे कड़ुआ हो जाता है। रगरेज इसे कपडेको पीला रगनेके काममे लाते है। इसके फूलसे एक पीला रग निकाला जाता है जिसे 'असबरग' कहते है। इससे रेशम रगा जाता है।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप (पचाग)।

रासायनिक सगठन—इसमें एक बेरंग तिक्तक्षारोद और दूसरा दारुहारिद्रिक सरीख पीला तिक्तक्षारोद यह दो कटुसत्व पाये जाते है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष। इसमें कुछ गरमी भी है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, सशोधन, श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन और त्वचाके चिह्न दूर करनेवाला है। इसे मुनक्काके साथ उबालकर तीन दिन तक पीने अथवा सवा दो (२$\frac{1}{4}$) तोलेकी मात्रामे पीसकर शहदमे मिलाकर चाटनेसे वढी हुई प्लीहा घट जाती है और जलोदर एव कामला रोगमें उपकार होता है। इसके काढेमे जौका आटा मिलाकर उष्ण सूजनपर बांधनेसे उपकार होता है। इसको जलाकर वनाई हुई राख दद्रु, खर्जू और जख्मपर लगानेसे लाभ होता है। अहितकर—शिर शूलजनक है। निवारण—सिकेजबीन। प्रतिनिधि—मजीठ। मात्रा—डेढ १७ ५ ग्राम (१$\frac{1}{2}$ तोला)।

•

(२७३) जर्नब

फ़ैमिली : सालीकासे (Family Salicaceae)

नाम—(अ०) जर्नब, रिजलुल्जराद (रिज्ल = पाद + एल् + जराद = टिड्डी), (फा०) सरो तुर्किस्तानी, (लै०) सालिक्स इजिप्टिका (**Salix aegyptiaca** Sprengel)।

उत्पत्तिस्थान—फारसके पहाडोमे उत्पन्न होती है। वहाँ इसे '*सरोतुर्किस्तानी*' कहते है। भारतवर्ष और बंगालमे भी इसकी उत्पत्ति वतलाते है।

वर्णन—मख्जनुल्‌अद्‌विया के रचयिता अपने निजी दर्शनके आधारपर लिखते हैं कि मैंने जो सूखी हुई जर्नव देखी है, वह ऐसी मालूम होती थी मानो गूँजकी पत्तियाँ हैं। रग पिलाई लिए काला मानो धूआँ लगनेसे उक्त रग आ गया हो जिसमे पिलाई व ललाई एव कालाई होती है। उसमे किसी भाँति हरेपन की झलक भी होती है जैसे कतिपय विस्फायजको तोडनेसे मालूम होती है। शाखाये गोल, सीककी तरह बारीक और कोई इसमे मोटी और स्थान-स्थानपर ग्रन्थियोपर ऐसे चिन्ह होते है मानो पत्तो की जडें टूट जानेके बाद रह गई हो। शाखाये बहुत होती है और वे भीतरसे ठोस होती है। स्वाद बहुत हलका कटु (तीक्ष्ण) एव तिक्त, गन्ध तीव्र नही, किंचित् बिजौरे नीबूकी सुगन्धियुक्त, चखनेपर हलका दालचीनीके स्वादसे मिलता-जुलता स्वाद होता है। जितनी बारीक एव तीव्र गध हो वह श्रेष्ठतर है। इसकी शक्ति चार वर्ष तक रहती है। यह ब्राह्मी और तालीस-पत्रसे सर्वथा भिन्न द्रव्य है, क्योंकि तालीस पत्रका वृक्ष १२० फुटसे १५० फुट तक ऊँचा होता है, किन्तु जर्नव वा छोटा क्षुप होता है। ब्राह्मीका पौधा तो और भी छोटा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके अन्तमे और मतातरसे तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मन प्रसादकरण एव हृदयबलवर्धनका गुण इसमे सर्वोत्तम है। मनोल्लास-करण गुणमे यह मद्यके समान है। शेखके मतमे यह प्रभावमें नरकचूरसे भी अधिक है। मासरजौया इसकी शक्ति बालछडकी शक्तिके समीप और उससे सूक्ष्म (लतीफ) बतलाता है। राजी तज और कबाबचीनीके समिश्र-वीर्योके समान इसके वीर्यको मानता है। आमाशय, यकृत् और उत्तमागोको बहुत बल प्रदान करती है तथा भूख लगाती है। यह पचनदोषको दूर करती, वायुको अनुलोम करती, स्वर को शुद्ध करती तथा कास, श्वास और हिक्काको दूर करती और कफका नाश करती है। वातव्याधियोंको लाभ पहुँचाती और वस्तिगत शीतको दूर करती है। यदि मूत्रकी प्रवृत्ति सरलतासे न होती हो तो इससे लाभ होता है। यह कामोद्दीपन करती, कष्टसूतिमे लाभ पहुँचाती तथा विषसेवीके लिए भी लाभकारी है। अहितकर—उष्ण प्रकृति, निर्बल व्यक्ति और जिसके यकृत्‌मे उष्णता हो उसे जर्नव हानि पहुँचाती है। निवारण—धनियाँ और चन्दन। प्रतिनिधि—समभाग तज और कबाब-चीनी, दुगुना नरकचूर, छोटी इलायची, कबाबचीनी और बिजौरे नीबूका छिलका। शेखके मतसे चौलाई और बथुआ। मात्रा—१ ७ से ३ ५ ग्राम (पौने दो से साढे तीन माशा) तक, मतान्तरसे (साढेतीन से सात माशा) तक।

(२७४) जलकुम्भी

फ़ैमिली : आरासे (Family . Araceae)

नाम—(हिं०) जलकुभी (-खुबी,-कुम्ही), (अ०) फारिसुल्‌माऽ, (यू०) सतरात्यूतीस (Stratiotes), (स०) कुम्भिका, वारिपर्णी, (व०) टाकापाना, (म०) जलकुमी (गु०) जलकुभी, (तें०) तुरिकुर, (लें०) **पीस्टीआ स्ट्रेटिओ-टीस Pistia stratiotes Linn**, (अ०) वॉटर सोल्जर या लेटिस (Water Soldier or Lettuce)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—जलकुभीके क्षुप समस्त भारतवर्ष मे जलाशयोके ऊपर तैरते हुए पाये जाते है। पत्तियॉ २ ५ से० मी० से ७ ५ से०मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी, अभिलट्वाकार और चक्राकार गुच्छमे रहती है। पुष्पव्यूह पत्रावृत्त होता है, और पत्रावरण पीला या श्वेत होता है। स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अग—मूल व पत्र। स्वरसकी मात्रा १-२ तोला, क्वाथ ५-१० तोला।

प्रकृति—सर्द एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शीतल, मूत्रजनन, दाहशामक तथा मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र, अर्श, गण्डमालादिमें उपयोगी होती है। सिरकेके साथ इसका लेप जख्मोंको पैदा नही होने देता है। यह उष्ण शोथोको पकाती तथा उनकी लालिमा मिटाती है और प्राय अवयवगत व्रणोमे मांस भर लाती है।

रासायनिक सगठन—इसमे पोटैसियम, सोडियम, मैग्नीशियम और सुधाके अतिरिक्त लौह ओर सिलिसिक एसिड भी होता है।

आयुर्वेदीय मत—जलकुम्भी स्वादु, तिक्त, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु तथा सर, त्रिदोषघ्न एव कफ, रक्तदोष, ज्वर और शोथहर है (भा० प्र०)।

नव्यमत—इसकी जड स्निग्ध एवं अवसादक है तथा मूत्रकृच्छ्र रोगोमे इसे देते है। अन्तर्धूमदग्ध की हुई इसकी जड की भस्मको गुलाब जलमे मिलाकर केशदद्रुपर लगाते हैं। इसकी पत्तियोको पीसकर लेप करनेसे अर्शकी पीडा शान्त होती है।

●

(२७५) जलनीम, ब्राह्मी ? (बंगीय)

फैमिली : स्क्रोफुलारिआसे (Family Scrophulariaceae)

नाम—(हि०) जलनीम(-ब), जलब्राह्मी, (स०) ब्राह्मी ? (ब०) ब्रिह्मी साक, (म०) बांब (बी), वाम, (ता० मल०) ब्रमी, नीरु ब्राह्मी, (ले०) बाकोपा मोन्निएरा **Bacopa monnierri** Perrel (पर्याय–हर्पेस्टिस मोन्निएरा *Herpestis monniera* H B & K.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—जलासन्नभूमिजाति कटुलोणी अर्थात् जलनीमका क्षुप प्रसरी और किंचित् मासल होता है। पत्तियाँ अभिलट्वाकार, आयताकार या स्रुवा के आकार की अखण्ड, अवृन्त, अकुण्ठिताग्र और ८ मि०मी०से १ ८७५ से०मी० (० ३ इचसे ० ७५ इञ्च) लम्बी होती हैं। पुष्प जामुनी मिला हुआ श्वेत या गुलाबी (Pink) रगका ० ३ इचसे ० ४५ इञ्च लबा, पुष्पवृन्त ० २५ इञ्चसे ० ५ इञ्च लम्बा होता है। पानीके समीप इसके पौधे प्राय सर्वत्र पाये जाते है और बगीय वैद्य इसे 'ब्राह्मी' कहते हैं। नीमकी तरह कडवी होनेके कारण इसे हिन्दीमें 'जलनीम' कहते हैं। कानून नामक ग्रन्थके कतिपय योगोमे 'बाफलून'के सम्बन्धमें लिखा है कि वह 'बेलमून' है जो जगली कुल्फाका नाम है। किसी-किसीके मतसे वह यही जलनीम है।

रासायनिक संगठन—इसमे ब्राह्मीन (Brahmine) नामक एक क्षाराभ जो गुणकर्ममें कुचलेमें पाये जानेवाले स्ट्रिक्नीन (Strychnine) नामक क्षाराभके समान, किन्तु उससे कम विषैला होता है और हर्पेस्टीन (Herpestine) नामक क्षारसमोद रस होता है।

उपयुक्त अग—समग्र क्षुप।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क, मतान्तरसे तर या सर्द एव खुश्क।

गुण-कर्म—यकृदवरोधोद्घाटक, रक्तशोधक, वातानुलोमन, पाचन, दोषविरेचन, मूत्रजनन और मस्तिष्क एव नाडीबलवर्धन है।

उपयोग—यह सौदाके रोग विशेषकर कुष्ठ, फिरग और खर्जू (खुजली)को नष्ट करती है, कफ और सौदाके दोषोका मलमार्गसे निर्हरण करती है। तेलमे मिलाकर सेवन करनेसे तर खुजलीमें लाभ पहुँचाती है। हरी जलनीमके स्वरसको समभाग तिलके तेलमें यहाँ तक पकाये कि तेलमात्र शेष रह जाय। इसे सूखी खुजली और

शिरके गजपर लगानेसे बडा लाभ होता है। इसकी एक तोला पत्तीका स्वरस निकालकर पीनेसे बहुतसे दस्त आ जाते है। यदि सेर भर लेकर बडे वर्तनमे भर कर पैरसे एक घडी तक मलते रहे यहाँ तक मुँहका स्वाद कडुआ हो जाय तो खुजली दूर हो जाय। यह ज्वर, किलास, गुदभ्रंश और कण्ठमालाको दूर करती है। इसके तीन तोले स्वरसमें ६ माशा जीराका चूर्ण और एक तोला चीनी मिलाकर तीन दिनतक पीने और विना नमकका आहार करनेसे शिश्नगत और वस्तिगत व्रण जाते रहते हैं। मस्तिष्क एव वाततंतु (नाडीव्यूह)के रोगो, जैसे–उन्माद और अपस्मार आदि तथा श्वास, स्वरभग आदि रोगोमे इसे हितकारी वतलाया गया है। अहितकर–क्षतोत्पादक है। निवारण–तेल। मात्रा–९ ग्राम (९ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—ब्राह्मी, तिक्त, कषाय, मधुर, स्वादुपाकी, शीतवीर्य, लघु, सर, अग्निजनक, आयुवर्धक, रसायन, स्वरको उत्तम करनेवाली, स्मरणशक्तिवर्धक, मेधाजनक, बुद्धिदायक, हृदयको हितकारी तथा कोढ, पाण्डु, प्रमेह, रुधिरविकार, खाँसी, विष, सूजन, कफ-पित्त-वात (सकलदोष), कण्डू, प्लीहा, वातरक्त, अरुचि, श्वास, शोष और उन्मादका नाश करनेवाली हैं। 'मण्डूकपर्णी' या 'ब्रह्ममण्डूकीके' गुण भी इसीके समान हैं। (ग० नि०, रा० नि०, भा० प्र०; नि० र०)।

●

(२७६) जलपीपल

फैमिली : वेर्बीनासे (Family Verbenaceae)

नाम—(हिं०) भुई ओकरा, जलपीपल (ली), गगतिरिया, पनिसिंगा, (स०) जलपिप्पली, मत्स्यगंधा, (व०, उडि०) वुक्कन, (प०) वुवकन (–म), (म०) जलपिप्पली, रतवेल, रवोलिया, (गु०) रतवेलियो, (ले०) फीला नोडीफ्लोरा **(Phyla nodiflora (L) Greene** (पर्याय–*Lippia nodiflora* Rich), (अ०) पर्पल लिप्पिया (Purple Lippia)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषकर कश्मीर और दक्षिण भारतवर्ष और लका की आर्द्र एव जलासन्न भूमिमे यह सर्वत्र होती है और बारहो महीने ताजी मिल सकती हैं।

वर्णन—यह जमीनपर फैलनेवाली एक क्षुद्र वनस्पति है। काड पुष्कल, प्राय फुटभरकी लम्बाईमे जमीनपर पसरा हुआ, गोल, रेखाकित और मसृण, पत्र क्षुद्र, लवे, नोकदार, किंचित् चौडे, पत्रप्रात दतुर, पुष्प क्षुद्र सफेद या गुलावी रगके गोल एव शाखात मजरीमे होते हैं, फल–पीपल सरीखा, किन्तु उससे छोटा जिसमे दो बीज होते हैं, बीज गोल, दूसरेकी अपेक्षया एक ओर अधिक चपटा होते हैं। पौधेसे मछली जैसी गध आती हैं। इसलिए इसको मत्स्यगधा कहते है।

उपयुक्त अग—समस्त क्षुप (पचाग)।

रासायनिक सगठन—इसमे एक तिक्त तत्त्व होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क, मतान्तरसे शीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तसंशमन और रक्तप्रसादन, अर्शोघ्न, मूत्रल और विशेषत कफघ्न हैं। मूत्रल होनेके कारण यह मूत्रकृच्छ्र मे लाभकारी है और अपने प्रवर्तनकारी शक्तिसे वस्तिस्थ अश्मरीको उत्सर्गित करती है। यह नकसीर और खूनी ववासीरके लिए गुणदायक है और साधारणतया काली मिर्चोके साथ पीसकर पिलाई

जाती है। रक्तसशमन-प्रसादन होनेके कारण इसे रक्तविकारजन्य रोगोमें उपयोग करते हैं। **अहितकर—उष्ण** प्रकृतिके लिए। निवारण—कालीमिर्च और मधु। **मात्रा**—११६ ग्राम (१ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—जलपिप्पली रस और पाकमें कटु, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, ग्राही, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक (वर्धक), नेत्र तथा हृदयको हितकारी, शुक्रजनक मुखको शुद्ध करनेवाली, वातकारक तथा रुधिर-विकार, दाह, व्रण, रसदोष, कृमि, श्वास, कफ, वात, विष, भ्रम, मूर्छा, तृषा और पित्तको दूर करनेवाली है।

नव्यमत—**श्वेत और रक्तप्रदरकी** यह विशिष्ट औषधि है। १½ तोला जलपिप्पली ५ नग कालीमिर्च और ३ माशे झडबेरीका गोंद या लाखको आध पाव पानीमे घोलकर कपडेसे छानकर १ (एक) तोला मिश्री मिलाकर प्रात साय पिलानेसे थोडे ही दिनमें रोग निर्मूल हो जाता है। इसके अतिरिक्त **फिरंग और सूजाकमे** भी यह परम गुणकारी है। **फिरंग और सूजाकमें** सवा तोला जलपिप्पली और ५ कालीमिर्चोको आधपाव पानीमे घोटकर कपडेसे छानकर रोगीको पिलावे और ऊपरसे वह जितना खा सके उतना मक्खन (नवनीत) खिलावे। पथ्य घी और गेहूँकी रोटी है। दूध और लवण न देना चाहिए। शेष अन्य प्रकारका आहार भी बन्द कर रखना चाहिए। इनके अतिरिक्त नाडीव्रण, मुख-ओष्ठ-तालूगत छाले, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, शुक्रप्रमेह प्रभृति रोगोकी भी यह अचूक औषधि है। फिरग रोगकी तो यह रामवाण औषधि ही है।

(अनुभूत योगमाला जुलाई सन् १९३७ ई०)।

•

(२७७) जलापा

फैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) जलापा (-वा), चलापा, (अ०, फा०) जलब, जल्लाबा, (ले०) जालापा (Jalapa), (अ०) जैलेप (Jalap)।

वक्तव्य—इसकी लताको लेटिनमे **ईपोमीआ (कॉन्वॉल्वुलस) पुर्गा (Ipomoea (Convolvulus) purga** Hayne.) अथवा **ईपोमीआ जलापा (Ipomoea jalapa** Schiede.) या **कॉन्वॉल्व्युलस जलापा (Convolvulus jalapa** Linn) कहते है।

इतिहास—मेक्सिकोवासी तो प्राचीनकालसे उक्त औषधिके विरेचनीय गुणसे अभिज्ञ थे। परन्तु यूरोपमें इसका प्रवेश कतिपय स्पेनीय पर्यटकोके द्वारा ईसवी सन्‌की सोलहवी शतीमे हुआ। परन्तु इस औषधिके मूल उद्भिज्जका यथार्थ ज्ञान सन् १८२९ ई० में उस समय हुआ जबकि डॉ० कॉक्सने इसका वर्णन एव गुणकर्मसहित रंगीन चित्र प्रकाशित कराया, अन्यथा इससे पूर्व कोई-कोई उसे 'रेवद असवद' कहते थे और कोई कुछ और। मख्ज़नुल्अद्‌विया और मुहीत आज़म में 'जलापा' के नामसे इसका वर्णन मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—अमरीकाका जलापा नामक प्रदेश। नीलगिरि और पूनामे उगाया जाता है। यह गङ्गोत्तरीय क्षेत्रमे बगीचोमे पाया जाता है।

वर्णन—जलापा निशोथजातीय एक विदेशी लताकी सूखी गिरहदार जड़ है जो बेडौल अण्डाकृति या तर्क्वाकार, २५ सें० मी० से ७५ सें० मी० (१ से ३ इञ्च) लम्बी, कडी, ठोस और भारी होती है। बडी जडके प्रायः दो-दो या चार-चार टुकडे कटे हुए होते है। यह बाहरसे काली और भीतरसे पिलाई लिये मटमैली होती हैं और उस पर झुरियाँ पडी होती है तथा प्राय स्थान पर छोटे-छोटे दाग होते है। इसको आडे बलमे काटनेसे भीतरकी ओर

काली, अनियमित, गोल रेखाये पायी जाती है। गध हलकी धुएँके समान, स्वाद पहले मीठा और बादको उत्क्लेश-कारक होता है। यह एक विदेशीय द्रव्य है। यूनानी वैद्यकमे इसका ग्रहण बहुत थोडे समयसे हुआ है।

रासायनिक संगठन—इसमे ९ से ११ प्रतिशत एक राल (Jalapoc 1csina) होती है। उत्तम जलापामे यह राल १० प्रतिशत होनी चाहिये। इसी रालके ऊपर इसका विरेचन गुण निर्भर करता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विरेचन और श्लेष्मविरेचन। यह एक परमपयोगी और निरापद विरेचन औषधि है। इसके उपयोगसे कफ और पानीकी तरह पतले तीव्र विरेक आते है, इसलिए इसको जलोदर, तीव्र मलावरोध, दायमी कब्ज, अर्दित, पक्षवध, आमवात गृध्रसी, प्रसेक और प्रतिश्याय आदिमे उपयोग कराते है। इसको अकेला चूर्ण करके सुहाता गरम मास रस (आबे यख्नी) या गुलाबजल (आबे गुलाब) अथवा सोठ, लौंग आदि वातानुमोलन द्रव्योके साथ खिलाते है या अन्य विरेचन औषधोंके साथ देते है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—गुलकद और सौफका अर्क। प्रतिनिधि—मचूकान। मात्रा—० ५ ग्राम से १ ५ ग्राम (४ रत्तीसे १॥ माशा) तक।

●

(२७८) जवाशीर

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफ़ेरी (Family Umbelliferae)

नाम। वृक्ष—(यू०) Ponakes (D 2 48), (अ०) दरख्ते जावशीर, (फा०) गावर, (ले०) फ़ेरुला गाल्बेनीफ्लुआ (**Ferula galbaniflua** Boiss)। निर्यास (हि०, भा० बाजार) जवाशीर, (बम्ब० बाजार) जावशीर; (यू०) Khalbane (D. 3 37), (अ०) बारज़द, किन्न (इ० बै० १/८३)। (फा०) जवाशीर, गावशीर, गोशीर, बरज़द, (ले०) गाल्बानुम् (Galbanum), (अ०) गाल्बेनम (Galbanum)।

वक्तव्य—पानीमें घोलनेपर जवाशीरका रग गोदुग्धकी भाँति सफेद होता है। इसीलिए फारसीमे इसको **'गावशीर (गोक्षीर)'** कहते है। 'जावशीर' इससे अरबी बनाया गया है। मात्र 'जावशीर' शब्दसे यह निर्यास ही विवक्षित होता है। 'गाल्बानुम्'या 'गाल्बेनम'क्रमश इसके लैटिन और अग्रेजी नाम यूनानी 'खल्बानी (Khalbane)' से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान और आयात—फारस, शीराज, किरमान और यूनानके मकदूनियाँ प्रदेशके आस-पास यह पुष्कल होता है। यह उत्तर पश्चिम-भारतवर्ष, स्मरना, ईरान, लेवाट तथा भूमध्यसागरके तटवर्ती प्रदेशोमें भी होता है। हरीरुदकी घाटी, हमदान और बदगीसमे तथा शीराज और किरमानके मध्यवर्ती देशोमे भी इसका सग्रह किया जाता है। बम्बईमे इसका आयात फारससे होता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका गोद (रालदार-निर्यास) है जिसका रग बाहरसे हरापन लिए पीला या नारगी, अर्ध स्वच्छ और भीतरसे पिलाई लिए सफेद, स्वाद तिक्त और अप्रिय होता है। इसे जलमे घोलनेपर घोल दूधकी तरह सफेद हो जाता है। इसमे उशक और मोमका मिश्रण करते है। मुहीत मे इसके कृत्रिमाकृत्रिम होने की पहचान यह लिखी है—"इसे जलमे घोलनेसे यदि विलयन रगयुक्त हो तो कृत्रिम और यदि क्षीरवत् सफेद हो तो असली समझना चाहिए।"

रासायनिक सगठन—इसमे (१) उत्पत् तेल ६ से ९ (मतातर से १९-६१ प्रतिशत) जिसका तारपीनके तेलके साथ रासायनिक साम्य है, (२) सल्फ्युरस रेजिन (राल) ६० से ७५ प्रतिशत, (३) निर्यास १९ से २२ (मतातरसे ६ ४१ प्रतिशत), और (४) एक सत्व (अम्बेलिफेरोन Umbelliferone) ये चार उपादान होते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, सर, विरेचन, कफसारक, दोपतारल्यजनन, प्रमाथि, वातनाडीवलदायक, कफोत्सारि, लेखन, व्रणरोपण, मूत्रार्तवजनन और वातानुलोमन । उष्ण, प्रमाथि और दोपतारल्यजनन होनेमे इसे प्राय मस्तिष्क (शिर) और वात व्याधियो, जैसे–अगघात, अर्दित, पक्षाघात, कम्पवात, अपस्मार, वालापस्मार, सन्यास (सकता), प्रसेक और प्रतिश्याय, जलोदर, मदाग्नि, कफज उदरशूल (कुलज) आदिमें प्रयुक्त करते है । यह नाडियोको वल देता है और इन कर्मोंके साथ ही कफोत्सारि होनेसे कफज कास, श्वास और कृच्छ्रश्वासमे और वातानुलोमन होनेसे आनाह (नफख शिकम), वातिकशूल (कुलजरीही) और वातिक जरायुशूलमे उपयोग किया जाता है तथा लेखन और व्रणरोपण होनेसे दुष्ट व्रणोमें अकेला या मरहम वनाकर प्रयुक्त किया जाता है । कठिन शोथोपर लेप करनेसे यह उनको विलीन करता है । अहितकर–वृपणोके लिये । निवारण–उवालना या भिगोना । प्रतिनिधि–अजीरका दूध (क्षीर) और विरोजा । मात्रा–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक ।

●

(२७९) जवासा

फ़ॅमिली लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम । क्षुप—(हिं०) जवास, जवा(वाँ)सा, हिंगुआ, (अ०) हाज, अल्गोल, आकूल, (फा०) खारे शुतुर, शुतुरखार (= उष्ट्रकण्टक), खारेवुज (छागकण्टक), (स०) यास, यवास(क), (व०) जवाशा(सा), (म०) जवासा, (गु०) जवासो, (लै०) आल्हागी कॅमेलोरुम् **Alhagi camelorum** Fisch , आल्हागी मॉरोरुम् (Alhagi **maurorum** Baker), (अ) अरेबियन या पर्सिअन मेन्ना प्लांट (Arabian or Persion Manna Plant), कैमल्स थॉर्न (Camel's Thorn) । शर्करा (अ०) त(तु)रजवीन, अस्लुल्हाज (यासमधु),(स०)यवासशर्करा, यासशर्करा (च०, सु०), तवराजशर्करा (रा० नि०), (अ०) मेन्ना ऑफ दि डेजर्ट (Manna of the Desert), पर्सिअन मेन्ना (Persian Manna) ।

वक्तव्य—'ख़ारेशुतुर' जवासेका विदेशी भेद मात्र है । उपयुक्त नामोमे से सस्कृत, हिन्दी, वँगला और गुजरती नाम जवासेके तथा शेप 'खारेशुतुर' के है । शर्कराके लिये प्रयुक्त नामोमें संस्कृत नाम जवासेकी शर्कराके और शेप खारेशुतुरका शर्करा के है । 'तरजवीन' फारसी 'तरंगवीन' से वनाया गया अरवी शब्द है, जिसका अर्थ (तरअगबीन (मधु) अर्थात् अस्लेतर या तरमधु' है । 'शक्करजवासा' सस्कृत यवासशर्करा का रूपान्तर है ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्प, मिस्र, सीरिआ, मेसापोटामिया, फारस, खुरासान, अरब आदि । इसके गुल्म शुष्क ऊसर भूमिमे या नदियो के किनारे पाये जाते है ।

वर्णन—३०-९० से १२० सें० मी० (१-३ या ४ फुट) तक ऊँचा क्षुप (गुल्म) होता है । क्षुपमे पतली-लम्बी वहुत शाखाएँ निकलती है । क्षुप पीलापन लिये हुए हरे रगका होता है । पत्तियाँ छोटी, अपत्रक, आयताकार, रोमश, कुठिताग्र, चिकनी और नीचेकी ओर झुकी हुई रहती है और काँटोके मूलसे १-१ निकलती है । पत्रकोणोमें सामान्य शाखाओके अतिरिक्त प्राय १½ (डेढ) इच लम्बे काँटे निकलते है । पुष्प खुले लालरगके माघ-फाल्गुनमे आते है और मजरियाँ १½ (डेढ) इच लम्बी, बीजोके बीचमे सिकुडी हुई होती है । फली १ इच लम्बी सीधी या टेढी तथा मालाकार होती है तथा ग्रीष्मऋतुमे पक जाती है । बीज वृक्काकृति, हरापन लिये भूरे अत्यन्त कडे होते है । ग्रीष्मके प्रखर तापमे जव और वनस्पतियाँ सूख जाती है तब यह हरा-भरा रहता है ।

तुरजवीन—जवासेके क्षुपसे निर्यासकी भांति एक प्रकारका द्रव स्रवकर पत्र और शाखाआदि पर जम जाता है। उसको यूनानी वैद्यकमें तुरजबीन और आयुर्वेदमें यासशर्करा कहते है। यह जवासेके पौधेका प्रगाढी एव शुष्कीभूत द्रव है जो देखनेमे कुछ ललाई और भूरापन लिए हुए सफेद रगके छोटे-छोटे गोलाकार दानोके रूपमे होता है। इसका स्वाद प्रथम मधुर और बादको हलका चरपरा होता है। इसमे मुश्किलसे कोई गध होती है। ताजी, सफेद, शुद्ध और मिश्रणरहित तथा जिसमें पत्ते न हो और काटे कम हो, वह तुरजवीन श्रेष्ठतर होती है। इसे पत्रशाखाफली और कूडा-करकटादिसे शुद्ध करके काममें लेते है।

उपयुक्त अग—पचाग, मूल और निर्यास (तरंजवीन)।

असली और नकली की पहचान—गंजबादावर्द मे लिखा है कि शुद्ध (अमिश्र) तुरजवीन सफेद होती है; किन्तु उसमे ललाईकी थोडी-सी झलक होती है और उसमें फूल और कांटे पाये जाते है, दाने गोल, कुछ-कुछ लदोतरे, हलके और मधुर होते है। इसमें चीनी वा मिश्रीके दानोका मिश्रण करते है। उसकी पहचान यह है—यद्यपि असली तुरजवीनका स्वाद भी मधुर होता है, तथापि मधुरताके साथ उसमें कुछ कुस्वाद और बसागध भी होती है और गरम पानीमें भिगानेसे उसमें किंचित चिकनाई मालूम होता है। इसके विपरीत नकली (खोटी वा मिश्र)में उक्त गुण नही होते।

सग्रह की विधि—जवासेके गुच्छेदार क्षुप (शाखाओं)को काटकर चादरोमे डालकर हिलाते अथवा गोलाकर चादरो पर रखते है तो जो कुछ तुरजवीन उन पर जमी होती है, वह पृथक् हो जाती है। इसे पत्र-शाखा और कूटा-करकट आदिसे शुद्ध करके काममें लेते है। इस प्रकार जो रेणुतुल्य मधुर कण प्राप्त होते है, वही असली तुरंजवीन है। यह उत्तम होती है। जो शाखाओंमें लिपटी रह जाती है उसे पानीमे घोलकर और छाननेके बाद पकाकर गाढा कर लेते है। यह तुरजवीन अधम होती है। (मख्जन)।

वक्तव्य—उक्त विधियोंसे प्राप्त यासशर्कराका ज्ञान हमारे प्राचीन आर्य वैद्योको था, इसमे किंचिन्मात्र भी संदेह नही है। चरकाचार्य लिखते है, "कषायमधुरा-शीता-सतिक्ता यासशर्करा" तथा सुश्रुतमें भी लिखा है, 'यवासशर्करा-मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा चेति।" इससे ज्ञात होता है कि चरक तथा सुश्रुत इन दोनोको परदेशीय यासशर्करा अवश्य प्राप्त होती रही होगी। परन्तु आगे चलकर भारतमे यासशर्करा क्वाथ आदि प्रक्रियासे बनानेकी प्रथा चल पडी। क्योंकि चरकके टीकाकार चक्रपाणि लिखते है, "दुरालभाक्वाथकृतशर्करा" तथा डल्हण सुश्रुतकी टीकामें लिखते है "यवासक्वाथघनीभावात् शर्कराकृता यवासशर्करा।" इन उद्धरणोसे जहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतमे यासशर्करा बनानेकी प्रथा चल पडी थी, वहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त तुरजवीनकी विधिके अनुसार भारतीय जवासासे यह प्राप्त नही होती है। अरब स्थानीय जवासाका इस दृष्टिसे प्रयोग करना आवश्यक है, फिर भी हम अपनी आयुर्वेदीय पद्धतिके अनुसार जवासेका तुरजवीन निकाल सकते है। इससे यह स्पष्ट है कि यह 'धमासा' और 'जवासा' दोनो ही से प्राप्त होती थी और प्राप्त की जा सकती है। फिर भी यूनानी-चिकित्सा ग्रन्थोमें धमासाका पृथक् विवरण न कर जवासामें ही उसका अन्तर्भाव कर दिया गया है, यह भी ज्ञात होता है। व्यापार—क्षुप-सग्रह भारतवर्षमें होता है। तरजवीन यहाँ (बम्बईमें) फारस (ईरान) और अरबस्थानसे आती है।

रासायनिक संगठन—तुरंजवीनमें एक स्फटिकीय सत्व होता है जो किसी अम्लमें उबालने पर द्राक्षाशर्करा (ग्लूकोज)में परिवर्तित हो जाता है। इसमें इक्षुशर्करा भी होती है।

शुतुरखार—

प्रकृति—शीत एव रूक्ष, मतातरसे पहले दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष (लखनऊ), उष्ण एव अत्यन्त रूक्ष, आकूल तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेद मतसे यास शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म एव उपयोग—इसके पत्तोको पानीमे पीसकर निहार दशामे तीन बूँद नाकमे टपकाने और एक घडीके वाद रोगनबनफ्शाका नस्य लेनेसे गरमीका पुराना सिरदर्द जाता रहता है। इसे नेत्रके भीतर लगानेसे धुंध आराम होता और पतला जाला कट जाता है। इसमे लेखन और दोपविलोमकरणकी शक्ति है, इसलिए इसे नेत्रमे प्रयुक्त बरूद नामक कल्पोमे डालते है। इसके पचागको पीसकर पीने, लगाने और काढेसे धोनेसे अर्श आराम होता है। इसके पत्रको पीसकर तेलमे पकाकर उस तेलको आमवात पर लगानेसे उपकार होता है और सरदीके दर्द दूर हो जाते है। स्रावी व्रणोको दूर करता और मूत्र साफ लाता है। यह ककडियो (सगरेजो)को तोडकर निकालता है। इसके पत्तोका पानी (रस) फाडकर पिलानेसे समस्त रोगोमे लाभ होता है। इसके स्थानमें जवासेका उपयोग कर सकते है। अहितकर–वृक्कको। निवारण–कतीरा। प्रतिनिधि–विपखपडा।

तुरजवीन (यवासशर्करा)—

प्रकृति—उष्णता लिए हुए अनुष्णाशीत (मोतदिल) (दिल्लीके हकीम या)। लखनऊवाले इसे पहले दर्जेमे गरम व तर मानते है।

आयुर्वेदीय मत—जवासा मधुर, तिक्त, कषाय, लघु, शीतवीर्य, सारक तथा कफ, पित्त, रक्तदोष, भेद, मद, भ्रम, कुष्ठ, कास, तृषा, विसर्प, वातरक्त, वमन, ज्वर और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है। (ध०नि०, भा० प्र०)। यासशर्करा मधुर, कषाय, तिक्त अनुरस, कफहर और सारक है। (च०सू०अ० २७, सु०सू०अ० ४५)।

नव्यमत—जवासा उत्तम कफघ, स्वेदजनन, अल्पमूत्रजनन और अल्प आनुलोमिक है। खाँसीकी प्रथमावस्थामे इससे गला और श्वासनलिका तर होकर खाँसनेका कष्ट कम होता है और कफ आने लगता है। प्रतिश्याय और गलेका शोथ, श्वासनलिका शोथ आदि श्वासमार्गके रोगोमें जवासेका क्वाथ पीनेसे और उसका भाव गलेमे लेनेसे अच्छा लाभ होता है, दमे मे जवासेका धूम्रपान करनेसे लाभ होता है। अर्शको जवासेके काढेसे धोनेसे लाभ होता है (अर्शमे इसके पत्तोका भी उपयोग होता है)।

●

(२८०) जामुन

फैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) जामन, जामुन (त), (स०) जम्बु(म्बू), राजजम्बू, (ब०) जाम, काल जाम, (गु०) जांबू, (म०) जाम्बूल, (प०) जामलु, (मा०) जामन, जाम्बोली, (ते०) नेरेडु, (ता०) शबु,नावल, (मल०) भावल, (सिंध) जंमू; (आ०) जमु, (ले०) सीजीजिअम् कूमिनी **Syzygium cumini** (L) & Skeels. (पर्याय–*Eugenia jambolana* Lam), (अ०) जामोल (Jamol), जम्बुल (Jambul), जम्बू (Jambu), जम्बूल (Jambool) जम्बोल (Jambol), जावा प्लम् (Java Plum)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके मैदान।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध वृक्ष है। इसके फलको 'जामुन' और गुठलीको फारसीमे 'खस्तए जामुन' कहते है। इसके पके हुए ताजे फल खाये जाते है। फरेंदा, कठजमुनिया (जमता (खर०), कठजामुन–Eugenia heyneana Wall) और 'गुलाबजामुन' आदि भेदसे जामुन कई प्रकारका होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, वृक्षकी छाल, काष्ठ, फलका गूदा और गुठलीका मग्ज (गिरी)।

इतिहास—भारतीय वैद्यो और मुसलमान हकीमोको बहुत प्राचीनकालसे जामुनकी गुठलीके मधुमेहनाशक गुणका ज्ञान है तथा वे इसका प्रयोग इस हेतु करते है। इसके अतिरिक्त ये और भी कई एक रोगमे इसका उपयोग करते है। विस्तारके लिये देखें आर्य एव अरबी यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थ।

रासायनिक सगठन—गुठलीमे जैम्बोलीन (Jamboline) नामक एक ग्लूकोसाइड, जैम्बोसीन (Jambosine) नामक एक क्षारसमोद, अल्पमात्रामे एक पाडु-पीत उत्पत् तेल, हरित रजक द्रव्य (क्लोरोफिल), वसा, राल, मायिकाम्ल, ऐल्व्युमेन आदि, छालमें टैनिन १२ प्र० श० और विजयसारनिर्यास(Kino)वत् एक गोद होता है।

कल्प तथा योग—रुब्ब (सत), सिरका।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण यकृदामाशयबलदायक, क्षुधावर्धक, सग्राही और सतापहर (दाहप्रशमन)। जामुनका रुब्ब (सत) और सिरका बनाकर उष्ण आमाशय और यकृत्को शक्ति देने और भूख लगानेके लिए उपयोग करते है। यह दाह (सोजिश)को शमन करते और पित्तज एव रक्तज अतिसारको बन्द करते है। केवल फल खानेसे भी उक्त लाभ होता है। जामुनकी गुठलीका मग्ज (मग्ज खुस्तए जामुन) सग्राही होनेके कारण अतिसार एव मधुमेह रोगमें प्रयुक्त किया जाता है। इसको आमकी गुठलीकी गिरी और भुनी हुई काली हडके साथ चूर्ण बनाकर सेवन करायें। यह जीर्ण अतिसारके लिये सिद्ध भेषज है। जामुनके वृक्षकी छालके काढेका कवल (मजमजा) करानेसे दाँत मजबूत (दृढ) होते है। जामुनकी लकडीका कोयला बनाकर मजनकी भाँति उपयोग करनेसे दाँत हिलना (चलदन्त) एव दाँतोसे रक्त वहना (शीताद) आराम होता है। अहितकर—आनाहकारक और दीर्घपाकी है। निवारण—कालीमिर्च और नमक। प्रतिनिधि—छोटा, बडे का। मात्रा—जामुन रुब्ब (सत) १२ ग्रामसे २४ ग्राम (२ तोले से ३ तोले) तक, और गुठलीका मग्ज ३ ग्राम (३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जामुन पुरीषविरजनीय, मूत्रसग्रहणीय, ग्राही, वातकर तथा कफ-पित्तहर है। जामुनकी कोमल पत्ती वमनको बन्द करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, २५, २७, सु० सू० ३८, ४६)।

नव्य मत—सग्राही, मूत्रजनन। फल और मग्ज पाचन और साधारण स्तभन है। मधुमेहमे यकृत्की क्रिया विगडती है, वह इसके मग्जसे फिर सुधरती है। इसका विशेष उपयोग शर्कराके पाचनमे होता है। मधुमेहमें यह बडा उपयोगी सिद्ध हुआ है। थोडे समयमें यह मूत्रगत शर्कराकी राशिका कम कर देता है। यद्यपि सभी प्रकारके मधुमेह रोगमें यह रामबाण सिद्ध नही होता, तथापि यह बडा मूल्यवान् सिद्ध होता है और अवसर आनेपर इसकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। फलोका उत्तम आसव बनता है। यह मधुमेह, अतिसार, सग्रहणी और आँवमे दिया जाता है। फलोका रस उत्तम स्तभन है। इसलिए इसे रक्तमिश्रित आँव, अत्यार्तव आदि रक्तस्रावयुक्त रोगोमें देते है।

●

(२८०) जायफल और जावित्री

फ़ैमिली : मिरीस्टिकासे (Family Myristicaceae)

नाम—जायफल (हिं०, ब०, म०, गु०) जायफल, (अ०) जौजबूया (इ० बै०), जौजबव्वा, जौजबोवा (–बुवा), जौजुत्तीब, (फा०) गौजबूया (–बोवा), (सं०) जातीफल, (प०) जयफल, (अं०) नटमेग (Nutmeg)। जावित्री (हिं०) जावित्री, (यू०) Maker (D 1 14), (अ०) व(बि०)सूबास (–स), (फा०) बज्बाज़, (स०) जातीकोष, जातीपत्री, (ब०) जैत्री, (प०) जयपत्री, जवित्री; (म०) जायपत्री, (गु०) जावत्री; (अ०) मेस (Mace)।

वक्तव्य—इसके वृक्षको लेटिनमे मिरीस्टिका फ्राग्रांस (Myristica fragrans Houtt (पर्याय–*M aromatica* Lam.) कहते है। 'जगली' और 'नकली' जायफल और 'जावित्री'के वृक्षको लेटिनमे मिरीस्टिका मालाबारिका (Myristica malabarica Linn.); कहते है। जावित्री और जायफलको अंग्रेजीमें क्रमश बाम्बे मेस (Bombay Mace) और 'कण्ट्री या मलाबार नटमेग (Country or Malabar Nutmeg)' और बम्बई बाजारमे 'रामपत्री' एव जगली जायफल (रामफल) कहते है।

इतिहास—प्राचीनकालीन कतिपय भारतीय जो जावा और भारतीय पूर्वीद्वीपोमे आकर बस गये थे—सम्भवत उनके द्वारा प्राचीन भारतीय वैद्योको जायफल और जावित्रीका ज्ञान हुआ। सुश्रुतने इन उभयद्रव्योका उल्लेख किया है। भारतीयोसे ईरानियो और अरबवासियोको इसका ज्ञान हुआ, और फिर अरबोद्वारा पूर्वी यूरोपमे इसका प्रवेश हुआ। कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) वालोको इससे ५६० वर्ष पूर्व उक्त औषधिका ज्ञान था। मसऊदी जिसने ९१६ ईस्वीमें पूर्वी देशोका पर्यटन किया, लिखता है कि जरबाद द्वीपमे यह औषधि मिलती थी। इब्नसीनाने 'जौजबवा' और 'बसबास 'में से प्रत्येकका विवरण किया है। ईसवी सन्‌की बारहवी शतीके अन्तमे यह औषधि समस्त यूरोप महाद्वीपमे भली-भाँति ज्ञात हो गई थी।

उत्पत्तिस्थान—मलक्का द्वीपपुज, पिनाङ्ग, सुमात्रा, सिंगापुर, लका, पूर्वी भारतीय द्वीपपुज, मलाया आदि तथा जजीबार। भारतवर्षमें नीलगिरिकी पहाडियो और मलाबारतटपर भी इसकी कई जातियाँ होती है। जगली (नकली) जायफलके वृक्ष कोकण, कनाडा और मलाबारमे होते है।

वर्णन—जायफल एक वृक्षके फलका बीज है। फल गोलकाकृति, आकार कुक्कुटडिम्बवत्, फलगात्र मसृण एव पीतवर्ण होता है। फलमे यह तीन स्तर होते है–(१) फलावरण (Pericarp) जो स्थूल, मासल, पक्वावस्थामे पीतवर्ण होता है। इसे घेरे हुए एक सीताचिह्न होता है। फलके पकनेपर यह विदीर्ण होकर फलावरण दो भागोमे विभक्त हो जाता है। (२) जावित्री–फलावरणके विभक्त होनेपर भीतर पलाशपुष्पवर्ण, मासल, बहुधा भिन्न जावित्री का दलगुच्छ दिखाई देता है। यह बीजावरणको घेरेहुए उसके गात्रपर सश्लिष्ट होता है। ताजी अवस्थामें हरापन लिये हुए और सूखनेपर जावित्री भगप्रवण, पिलाई और ललाई लिये हुए, स्वादमे तीक्ष्ण सुगधमय एव सुगन्धित (विशिष्ट गन्धी) होती है और बीजावरणपर से खिसक पडती है। (३) बीजावरण (Testa)– बहुधा भिन्न जावित्री के दलगुच्छके आश्लेषहेतु बीजावरणके गात्रपर तदनुकारि चिह्न विद्यमान होता है। यह बीजावरण कठिन स्थूल एव काष्ठमय होता तथा तोडनेपर उसके भीतर जायफल दिखाई पडता है। बाजारमे दो प्रकारका जायफल मिलता है—बीजावरणसहित एव बीजावरणवर्जित। यह माजूके बराबर अण्डाकृति या गोल लगभग १ इञ्च लम्बा, बाहरसे खाकी-मायल भूरा और भीतरसे खाकीमायल रक्तवर्ण, जिसमें सुर्ख भूरे रगके रेखाओका जाल होता है। गन्ध तीक्ष्ण विशेष प्रकारकी एव प्रिय तथा स्वाद कडुआहट लिए उष्ण एव सुगन्धित होता है। जायफल जितना बडा हो उतना उत्तम होता है। नकलीमे उक्त सुगन्धका प्राय अभाव होता है।

उपयुक्त अग—बीजावरणरहित शुष्क बीज (जायफल) और एरिल (जावित्री)।

रासायनिक सगठन—जायफलमे एक उत्पत् तेल, एक अनुत्पत् तेल, प्रोभूजिद (Proteids), वसा, श्वेतसार (Starch), लबाब और भस्म, जावित्रमें एक उत्पत् तेल, एक अनुत्पत् तेल, राल, वसा, शर्करा, द्राक्ष-शर्करा (Dextrin) और लबाब होता है।

कल्प तथा योग—जुवारिश बस्वासा आदि।

जायफल—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष, मतातरसे तीसरेमे रूक्ष। आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, बल्य, मुखदौर्गन्ध्यहर, वाजीकर, किंचित् संग्राही, स्वापजनन, दीपन, पाचन और वातानुलोमन। जायफलको उष्ण मुफर्रेह एवं माजूनोंमें डालकर हृदयदौर्बल्य, क्लीवत्व और शीघ्रपतनमें उपयोग करते हैं। मन्दाग्नि तथा उदरानाहको दूर करने और दस्त बन्द करनेके लिए इसे उपयुक्त विधिसे खिलाते हैं। वाजीकर औषधद्रव्योंके साथ इसका तेल निकालकर तिलाओंकी भाँति उपयोग करते हैं। शिरःशूल, आमवात और पक्षवधमें इसका लेप लगाते हैं। मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसे मुखमें रखकर चबाते हैं। तिला आदिके तेलमें मिलाकर समस्त शीतल व्याधियों, जैसे—अर्दित, पक्षवध और आमवात आदिमें इसकी मालिश करते हैं। यह सर्वांगशोथमें भी गुणकारी है। अहितकर-यकृत् और फुफ्फुसके लिए। निवारण-सूखी धनिया और मधु। प्रतिनिधि-जाविन्नी और बालछड। मात्रा-०.५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—जायफल तिक्त, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, वृष्य, दीपन, रुचिकर, ग्राही, स्वरके लिए हितकर तथा कफ, वात, तृषा, मुँहका क्लेद—दुर्गन्ध और वैरस्य, कृमि, कास, वमन, श्वास, ज्वर, पीनस, कण्ठके रोग, अतिसार प्रमेह और हृद्रोगका नाश करनेवाला है। (ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—जायफल सुगन्धि, दीपन, वातहर, वेदनास्थापन, उत्तेजक, मादक, पौष्टिक और वाजीकर है। इससे आमाशयका पाचकरस बढता है, भूख लगती है और अधोवायु खुलता है। बड़ी मात्रामें जायफल जोरदार नशा लानेवाला (कैफी) है। मस्तिष्कके ऊपर इसकी क्रिया कपूरके समान होती है। पेटका दर्द, ऐंठन और अतिसारमें जायफलको सेंककर देते हैं। सिरका दर्द और प्रसवोत्तरकालीन कमरके दर्दमें जायफल पानी या मद्यमें घिसकर लगाते हैं।

जावित्री—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, पाचन, उष्णताजनन, वातानुलोमन, किंचित् संग्राही, सौमनस्यजनन, श्वयथुविलयन, अवरोधोद्घाटक, रूक्षण, द्रवशोषणकर्ता, वाजीकर, कामोत्तेजक, गर्भाशय-संशोधक, बलदायक और कोथ प्रतिबन्धक है। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृदयदौर्बल्यको नष्ट करती और हृदय रोगोंमें प्रयुक्त योगोंमें डाली जाती है। उपशोषण एवं द्रवशोषणकर्ता होनेके कारण यह फुफ्फुसके लिए लाभकारी है। उनके प्रवृद्ध द्रवोंको शुष्क एवं शोधन करके उनको बल प्रदान करती है। दीपन पाचन होनेसे यह आमाशयिक रोगोंमें प्रयुक्त होती है। संग्राही और बल्य होनेसे यह जीर्ण अतिसारको बन्द करती और आमाशयको शक्तिप्रदान करती है। उपशोषण और शोषणकर्ता होनेके कारण ही इससे हस्तिमेहमें परम उपकार होता है। इस रोगमें पीठ, नाभि और पेड़ूपर इसका लेप करते हैं और खिलाते भी हैं। गर्भाशयके बढे हुए द्रवोंको शोषण करके यह उसको शक्ति प्रदान करती है। केशरके साथ फलवर्तिकी भाँति उपयोग करनेसे यह गर्भका शोधन करती है। वाजीकर और कामोत्तेजक होनेसे यह वाजीकर माजूनोंमें पड़ती है तथा शिश्नके ऊपर पतला लेप करनेसे शिश्नोच्छ्राय उत्पन्न करती है, इसलिए इसे वाजीकर तिलाओंमें भी डाला जाता है। वाह्यांतरिक आनाह और कठिनताके लिए कैरूतीमें मिलाकर इसका बाहरी तौर पर उपयोग किया जाता है। श्वयथुविलयन, प्रमाथी और वातानुलोमन होनेसे यह उक्त रोगोंमें लाभ पहुँचाती है। यह सुगन्धित एवं कोथप्रतिबन्धक है, इसलिए मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसको मुखमें रखकर चाबते और कक्षाके दुर्गन्धिनिवारणके लिए किसी तेल आदिमें मिलाकर मलते हैं। श्वयथुविलयन और उष्णताजनन होनेके कारण शीत एवं वायुजन्य शिर शूल और अर्धावभेदकमें इसका लेप गुणदायक है। अहितकर—शिर शूलजनक है। निवारण—बबूलका गोंद और गुलाबपुष्पार्क। प्रतिनिधि—जायफल। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जाविश्री तिक्त, कटु, मधुर उष्णवीर्य, लघु, रुचिकर, वर्णकर तथा कफ, तृपा, मुखका क्लेद और दुर्गन्ध, कास, वमन, श्वास, कृमि और विपको दूर करनेवाली है। (मु०मू०अ० ४६, भा० प्र०)।

नव्यमत—जाविश्री वेदनास्थापन है। पुराने सन्धिशोथमें जावित्रीके तेलकी मालिश करते हैं।

●

(२८१) जिंतियाना

फ़ैमिली : जेन्टिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(बाजार) जिंतियाना, (अ०) जिंतियाना, दवाउल् हय्य' कफ़ुल् अर्नब, (फा०) जिंतियाना, कौशाद, (ले०) जेन्टिआना राडिक्स (Gentiana radix), (अ०) जेन्शन रूट (Gentian root)।

वक्तव्य—यह जेन्टिआना लूटेआ (**Gentiana lutea Linn**) अर्थात् साधारण यूरोपदेशीय पीत जिंतियानाकी ग्रन्थिल जड है, जो सुखाकर औपधके काममे ली जाती है। यह देशी गाफिस या त्रायमाण (जेन्टिआना कुरू (**Gentiana kurroo** Royle)का विदेशी भेद है। प्राय यूनानी निघण्टुओंमें इसका हिन्दी नाम 'पखानभेद' लिखा है जो सही नहीं; क्योंकि बाजारमें इस नाम (पखानभेद, पापाणभेद)मे मिलनेवाली औपधि साक्सीफ्रागा लिगूलाटा (**Saxipraga ligulata**) नामक वनस्पतिकी जड होती है। मुहीत आजमके लेखकका भी यही मत है।

यूनानी जेन्तिस या जिंतियूस (Gr **Gentiae** (D 3 3) राजाने सर्वप्रथम इसका अन्वेपण किया था। अतएव इसके नाम पर इसका उक्त नाम पडा (इ० वै० सचिका १,११७ पृ)। इतिहास–यूनानी हकीम दी सकूरीदूस और रोमदेशीय हकीम प्लाइनीने 'जिंतियाना (Gentiana)'के नामसे इस ओपधिका उल्लेख किया है। मध्ययुगमें यूरोपमे यह औपधि सर्प आदिके विपका अगद समझी जाती थी। इसलिए अरबीमें इसकी एक सज्ञा 'दवाउलहय्य (सर्पविपकी औपधि) पडी है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और दक्षिण यूरोपके पर्वती प्रात।

वर्णन—यह देशी गाफिसको एक अन्य विदेशी जातीय क्षुपकी सूखी जड है, जो बाहरसे यहाँ आती है। इसके न्यूनाधिक गोल टुकडे या लम्बाईमे चिरी हुई ६ इञ्चसे एक फुट या अधिक लम्बी और आधसे १ इञ्च तक मोटी कार्शें (Splits) होती है। छाल पर सीधे बलमे बेकायदा और गोल झुर्रियाँ होती हैं और स्थान-स्थान पर पत्तोके चिह्न होते हैं। जड बाहरसे पिलाई लिए भूरी और भीतरसे पिलाई लिए लाल, गध विशेष प्रकारकी, स्वाद पहले मधुर, पर बादको अत्यन्त तिक्त होता है। देशी गाफिसकी जड इसकी उत्तम प्रतिनिधि है और इसके स्थानमें औषधके काममें ली जा सकती है। रूसी और फारसी आदि भेदसे यह कई प्रकारका होता है। इनमें रूसी सर्वोत्तम होता है। इसमे तीन वर्प तक वीर्य रहता है। उसारामे ७ वर्प तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अग—जड।

रासायनिक सगठन—इसमें (१) जेंटिओपिक्रन (Gentiopicrin) (जिंतियानीन) एक तिक्त ग्लूकोसाइड, (२) जशियानिक एसिड, (३) जशिओनोज एक प्रकार की शर्करा, (४) गोद और (५) एक उत्पत् तेल ये पाँच उपादान (तत्व) होते है। इसमें टैनिन (Tannin) नही होती।

कल्प—चूर्ण, रसक्रिया (उसारा)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, बल्य, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन, विषघ्न (तिरियाक सुमूम) और गर्भशातन। विष प्रशमनके लिए जितियानाको जलसत्रास, सर्पदष्ट और वृश्चिकदष्ट आदिको खिलाया जाता है। यह भी 'तिरियाक अरबआ' और 'तिरियाक समानिया' का एक उपादान है। मन्दाग्नि, वस्तिदौर्बल्य और आमाशय-शूलमें इसको चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है। इसे आर्तव और मूत्रप्रवर्तनके लिए उपयोग किया जाता है। गर्भ-शातनके लिए भी इसे देते हैं। अहितकर—यकृत् एव उष्णप्रकृतिवालोको और वक्षके लिए। निवारण—रेवदचीनी और उस्कूलूकदरियून। प्रतिनिधि—कुट (कुस्त), जरावद और असारून। मात्रा—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

•

(२८२) जीरा

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family · Umbelliferae)

नाम—(हिं०) जीरा, (यू०) Kuminon (D 61 62), (अ०) कम्मून, (फा०) जीर, (स०) जीरक, (ब०) जीरे, (गु०) जीरूँ, (म०) जिरें, (अ०) क्यूमिन (Cumin)। सफेद जीरा—(हिं०) जीरा, (अ०) कम्मून अब्यज, कम्मून नब्ती, (फा०) जीरए सफेद, (म०) जीरक, जरण, शुक्लाजाजी, शुक्लजीरक, (ब०) सफेत् जीरे, (गु०) धोलु जीरू, (म०) पाढरे जिरे, (क०) जुर, (प०) जीरा सुफेद, चिट्टा जीरा, (सिंध) जीरो अच्छा, (मा०) जीरो, (का०) जीरिगे, (तें०) जीलकरी, (ता०) चीरकम्, (मल०) जीरकम्, (लें०) क्यूमीनुम् सीमीनुम् **Cuminum cyminum** Linn (पर्याय—*C odorum* Roxb)। कालाजीरा, (हिं०) स्याहजीरा सियाजीरा, (अ०) कम्मून अस्वद, कम्मून किरमानी, (का०) जीरए स्याह, जीरए किरमानी, (स०) कृष्णजाजी, कृष्णजीरक, जरणा, (ब०) केले (काल) जीरे, शाजीरा, (गु०) शाहजीरु, (म०) शाहजिरे, (क०) कुहनज्यु(जु)र, (उर्दू) स्याहजीरा, (लें०) कारम् कार्वी (**Carum carvi** L), (अ०) ब्लैक क्यूमिन (Black Cumin)।

वक्तव्य—लेटिन नाम जीरेके क्षुपका है। मात्र 'कम्मून' शब्दसे 'स्याहजीरा' अभिप्रेत होता है। अरबी 'कम्मून' यूनानी 'कुमीन' (**Kuminon**) या सुरयानी 'कमूना' शब्दसे व्युत्पन्न है। सस्कृत जीर जीरक, तथा फारसी जीर और अन्यान्य भारतीय नाम सस्कृत 'जृ' धातुसे व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी नील (मिस्र)का आदिवासी है। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है। फारस और एशिया माइनरसे भी यहाँ इसका पुष्कल निर्यात होता है। स्याहजीरा कश्मीर, सीमाप्रात, अफगानिस्तान और ईरानमें भी होता है।

वर्णन—यह सोयेकी तरहके एक क्षुपके प्रसिद्ध बीज है, जो सौंफके समान, पर उससे बहुत छोटे किसी प्रकार झुके हुये और काले रगके होते हैं। गन्ध प्रिय, स्वाद कुछ मधुर, चरपरा और सुगन्धित होता है। जीरा, काला और सफेद दो प्रकारका होता है। यूनानी निघुट ग्रथोंमें हरा और पीला ये दो भेद और लिखे हैं, इनमे काला सफेदकी अपेक्षया कतिपय गुण-कर्मोमे प्रशस्ततर होता है। औषधमे यही विपुल उपयोगमे आता है। 'कुरुया' इसका एक विदेशी भेद है। परन्तु जहाँ तक ज्ञात होता है यह कुरुया ही है। आयुर्वेदके ग्रथोमें लिखा है—('कारवी कृष्ण-जीरकम्' इति चक्र) दे० 'कुरुया'। जीराका एक भेद 'जगली' है जो *कालीजीरी के नामसे प्रसिद्ध है जिसकी* आकृति सम्बन्धी समानता होनेपर भी जीरेके साथ व्यावहारिक सम्बन्ध नही है।

उपयुक्त अग—फल (बीज)।

रासायनिक सगठन—इसमे एक उत्पत् तेल जिसपर इसका सुगन्ध और स्वाद निर्भर करता है, पाया जाता है। उत्पत् तेलमें ५६% क्युमिनोल या क्युमिन ऐल्डीहाइड होता है।

कल्प तथा योग—जुवारिश कमूनी, जुवारिश कमूनी कबीर, जुवारिश कमूनी मुसहिल, और माजूल कमूनी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे भी सफेद और स्याह दोनो प्रकारके जीरा उष्णवीर्य है (सु०; ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह बाहरी तौरपर लेखन, संग्राही और उपशोषण कर्म करता है। आतरिक प्रयोगसे यह फुफ्फुसोको शक्ति प्रदान करता, कफोत्सर्ग करता, द्रवोकी अधिकतासे होनेवाली मंदाग्निको दूर करके आमाशयको बलवान बनाता और वायुका उत्सर्ग करता है। इसका प्रधान कर्म वातानुलोमन है। किसी कदर यह मूत्रजनन कर्म भी करता है। चेहरेके रगको साफ करनेके लिए जीराके पानीमें धोते है। अर्म (नाखूना), जाला और अ(परि)क्लिन्न वर्त्म (इल्तिसाकुल् जफ्न) को नष्ट करनेके लिए इसको बारीक पीसकर नेत्रमें लगाते है और ऊर्ध्वश्वास (नफसुल् इन्तिसाब) मे उपयोग करते है। मन्दाग्नि, आनाह, उदरशूल, वातज हिक्का, मरोड और अजीर्णको दूर करने तथा अतिसार बन्द करनेके लिए इसका उपयोग करते है तथा गरम मसालामें डालकर खिलातेया औषधकी भाँति चूर्णौषधमें मिलाकर देते है। मूत्रजननके लिए इसको जलमे पीस छानकर पिलाते है। 'जुवारिश कमूनी' इसका प्रसिद्ध योग है। यह आमाशयगत शीत और द्रवोको दूर करता, आहार पचाता, भूख लगाता, हिचकीको दूर करता और कब्ज पैदा करता है। आमाशयके रोगोमे दीपन और वायुनाशनके लिए इसका अर्क उपयोग किया जाता है। अहितकर—फुफ्फुसोके लिए अहितकर एव कर्षण है। निवारण—कतीरा और शीत एव तर द्रव्य। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सफेदजीरा कटु, कटु विपाक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, पित्त और अग्निको बढानेवाला, शिरोविरोचन, शूलप्रशमन, सुगन्धि तथा कफ, वायु, दुर्गन्ध, गुल्म, अतिसार, ग्रहणी और कृमिविकारको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २४, २७, सु० सू० अ ३८, ४६, ध० नि०)।

नव्य मत—जीरा दीपन-पाचन, कोष्ठवातप्रशमन, शीतल, मूत्रविरजनीय, वेदनास्थापन और दाहप्रशमन है। जीर्णज्वरमें जीरा देनेसे भूख और शक्ति बढती है। नवीनज्वरमे देनेसे शरीर और पेशाबकी जलन कम होती है। जीरेके क्वाथसे शरीर धोनेसे कडू कम होती है। आध्मान, वमन, विरेक, सग्रहणी और कुपचनमें जीरा हितकर है। अर्शके सूजनेसे पीडा होती हो तो जीरा और मिश्रीका चूर्ण खानेको देते है और जीराको ठढे पानीमें पीसकर उसका लेप करते है। सूजाक, अश्मरी और मूत्रावरोधमे जीरा बडी मात्रामे शक्करके साथ देते है। त्वग्रोगोमें कडू और पीडा कम करनेके लिए जीरेका लेप करते है।

आयुर्वेदीय मत—कारवी (कृष्णजीरक), दीपन तथा वात, कफ और दुर्गन्धनाशक है (च० सू० अ० २७), जरण (इसके अतिरिक्त) कटु, उष्णवीर्य, ग्राही, चक्षुष्य तथा शोथ एव जीर्णज्वरको नाश करनेवाला है (ध० नि०) दे० 'कुरुया'।

नव्य मत—इसमें एक उडनेवाला तेल है। यह दीपन, स्तन्यजनन और उत्तम कोष्ठवातप्रशमन है। आध्मान उदरशूल, शिथिलताप्रधान कुपचन और पेचिशमें यह उपयुक्त औषध है। इसको जीर्णज्वरमे अन्न पचने और भूख बढानेके लिए देते है।

●

(२८३) जूफा

फैमिली लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) जूफा, (यू०) (१) Oisupos (D 2 84), Ussopos (D 3 27), (अ०) (१) अल्‌जूफल रतब, (२) अल्‌जूफल याबिस; (फा०) जूफाए खुश्क, उश्नान दाऊद; (ले०) हिस्सापुस ऑफ्फ़ीसिनालिस (Hyssopus officinalis Linn.), (अ०) हिसोप (Hyssop)।

उत्पत्तिस्थान—फारस और श्यामदेश। भारतवर्षके पश्चिम हिमालयमे कश्मीरसे कुमाऊँ तक ८,००० से १०,००० फुट पर भी यह होता है, फिर भी इसका निर्यात फारससे भारतवर्पमे होता है। इसकी एक अन्य जाति हिस्सॉपुस पार्वीफ्लोरा (**Hissopus parviflora** Benth) समशीतोष्ण हिमालय, कश्मीर और पजाबमे होती है। सिंधमे एक प्रकारके बिल्लीलोटन (नेपेटा सिलिआरिस *Nepeta ciliaris* Benth) को 'जूफायाबिस' कहते है। यह पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालयमे कश्मीरसे गढवाल तक ६,००० से ८,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पति है, जो भूमि पर फैली हुई होती है। काड काष्ठीय, पत्र रेखा-भालाकार प्राय अवृत, लगभग १ २५ से० मी० (½ इ०) लम्बा और ३ मि० मी० (⅛ इंच) चौडा, प्रात पर रोमश मरज़न्जोशके पत्रके समान, सुगन्धित एव तिक्त, पुष्प हर एक शाखाकी ग्रन्थिपर एक ओर कक्षीय गुच्छोमे, दलचक्र (Calyx) पाँच विषम दतयुक्त, पु०केसर (Stamens) सख्यामे चार, पुष्प कुछ पीला, स्वाद तिक्त, गध सुगधमय और कपूर जैसी होती है। बाजारमें मिलनेवाला पौधा सूखा और बहुत टूटा-फूटा होता है। इसमे मधुर सूखी घास जैसी प्रिय गन्ध और तिक्त स्वाद होता है।

रासायनिक सगठन—टैनिन (Tannin) के अतिरिक्त इसमे राल, वसा, शर्करा और लबाब आदि पदार्थ होते है। इसका प्रसिद्ध उपादान एक तेल (Oil of Hyssop) है जो ताजे क्षुपसे ¼ से ½ प्रतिशत प्राप्त होता है। यह कुछ-कुछ हरा या पाडु-पीत वर्णका होता है। इसमे क्षुपके समान गन्ध एव स्वाद होता है।

उपयुक्त अग—पचाङ्ग।

कल्प तथा योग—अर्क जूफा, शर्बत जूफा (जदीद)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रमाथी, कफोत्सारि, श्वयथुविलयन, लेखन, वातानुलोमन, उदरकृमिनाशन और प्रधानतया कास-श्वासघ्न है। यह कफोत्सारि और श्वयथुविलयन होनेके कारण कृच्छ्रश्वास, कफज कास, श्वसनक ज्वर (जातुर्रिया), प्रसेक और प्रतिश्यायमे इसका काढा प्रयुक्त होता है। प्रमाथी होनेसे यह जलोदर और यकृदवरोधमे प्रयुक्त कराया जाता है। सूजन उतारनेके लिये इसको लेपोमे भी सम्मिलित करते है। इसका शर्बत बनाकर श्वास और कफज कासमें देते है। अहितकर–यकृत्के रोगोमे। निवारण–खट्टा अनार और बबूलका गोद। मात्रा–३ ग्राम से ९ ग्राम (३ माशे से ९ माशे) तक।

●

(२८४) जूही, जूई

फैमिली : ओलिआसे (Family . Oleaceae)

नाम—(हिं०) जाही (ई), जू(जु)ही, (स०) यूथी, सुमना, जाती, यूथिका, (व०) जाती, (पं०, मार) जूही, (म०, गू०) जाई, (गु०) जूई, (ले०) जास्मीनुम् आउरिकुलाटुम् (**Jasminum auriculatum** Vahl.)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण कर्नाटक आदि। भारतवर्षके बागोमे फूलके लिये इसके क्षुप लगाये जाते हैं।

वर्णन—जूहीकी पत्तियाँ और फूल चमेलीसे बडे होते हैं, और फूल सफेद होता है। जूहीकी एक जाति पीले फूलवाली होती है। उसको सुवर्णयूथिका (स०), सोन (पीली) जूही या स्वर्णजाती (स०) कहते है। लैटिनमे इसका जास्मीनुम हूमिले (**J humile** Linn) कहते हैं। यह दक्षिणभारतमें होती है। इसकी जडसे पीला रग निकाला जाता है और फूलोसे सुगन्धित तेल बनाया जाता है।

प्रकृति—सर्द। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके फूलोके सूघनेसे आँखका दर्द जाता रहता है। इसके फूल वात, पित्त, कफ (तीनो दोषो) को बढानेवाले तथा सिरके दर्दको दूर करनेवाले है। पत्तोके काढेसे कुल्ली करनेसे मुँहका आना (मुखपाक) दूर होता है। इसके फूलोको पीसकर योनिमे धारण करनेसे स्थानिक सकोचक प्रभाव होता है।

आयुर्वेदीय मत—दे० 'चमेली'।

नव्यमत—शीतल, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। मुखपाकमे जूहीकी पत्तीयाँ चबाते हैं या जूहीकी पत्ती, दारुहलदी और त्रिफलाका काढा करके उससे कुल्ले कराते हैं। कर्णशूल और पूतिकर्णमे पत्तियोके स्वरससे सिद्ध किया हुआ तेल कानमें डालते हैं। पाँवकी अगुलियोके बीचमे पडे हुये चीरे पर और व्रण पर पत्तियो कल्क लगाते हैं।

पीली जूही—फूल सग्राही तथा अन्त्र और हृदयके लिये बल्य हैं। जडका प्रयोग दद्रुमे होता है। चिरकारी नाडीव्रणमे और भगदरकी अस्वस्थ आवरक दीवारो (Lining walls), विकृत अस्थि और सडे-गले घावोके किनारो पर उनको नष्ट करनेके लिये इसके दूधिया रगका प्रयोग होता है। इसके फूलोको पीसकर लेप करनेसे योनिका सकोचन होता है।

●

(२८५) जैतूनका तेल

फैमिली : ओलिआसे (Family Oleaceae)

नाम—(हि०) जैतूनका तेल, (अ०) जैत, (फा०) रोगन जैतून, (लै०) ओलिउम् ओलीवी (Oleum olivae), (अ०) ऑलिव्ह ऑयल (Olive oil)। वक्तव्य—ओलिया एउरोपेआ (**Olea europaea** Linn) नामक वृक्षके पके फलसे मशीनमें दबाकर (प्रपीडन expression) द्वारा निकाला जाता है।

इतिहास—ईसामसीहसे सत्रह सौ वर्ष पूर्व पुरातन मिस्रमे जैतूनवृक्ष 'बाक' नामसे ज्ञात था। तौरेत और इन्जील (बाइबिल) मे भी जैतून तेलका उल्लेख है। प्राचीन यूनान एव रोमवासियोको भी यह भली-भाँति ज्ञात था। परन्तु प्राचीन भारतीयोने इसका उल्लेख नही किया।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय देश, दक्षिणी यूरोप, कैलिफोर्निया, अल्जीरिया, आस्ट्रेलिया, एशिया, फिलस्तीन, एशियामाइनर और यूनान। कुछ समयसे यह हिमालय पर्वताञ्चल और नीलगिरीमें भी लगाया गया है। एक जातिके जैतूनका वृक्ष अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और पश्चिम सिंधमें भी होता है।

वर्णन—यह कुछ-कुछ हरापन लिये हलका पीलेरगका तेल है जिसकी गन्ध हलकी और स्वाद तैलीय होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे (१) ओलीईन एक प्रवाही तेल जो ओलीइक एसिड और ग्लीसरीलका यौगिक है, ९३ प्रतिशत, (२) लीनोलीन जो कि ग्लीसरॉइड और लाईनोलिक एसिडका एक यौगिक है, ७ प्रतिशत, और (३) पाल्मेटीन एक गाटा तेल जो कि पाल्मेटिक एसिड और ग्लीसरीलका यौगिक होता है, प्रभृति उपादान पाये जाते है। मिश्रण–विनौलेका तेल, तिल्लीका तेल और पोस्तेका तेल, इन तेलोकी मिलावट करते है। किन्तु विशिष्ट स्वादसे इसे पहचाना जा सकता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव तर, मतातरसे दूसरे दर्जेमें उष्ण एव पहलेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाह्य उपयोगसे यह त्वचापर स्नेहन, मृदुकर, श्वयथुविलयन और सशमन कर्म करता है तथा शरीरपर मर्दन करनेसे अग-प्रत्यगोको शक्ति प्रदान करता है। भीतरी तौरपर खिलानेसे यह शरीरकी पुष्टि करता है, आहारागोके सक्षोभ एव दाहको शमन करता है, अधिक प्रमाणमे खिलानेसे हलका सारक कर्म करता है और यकृद्गत पित्ताश्मरियोको द्रवीभूत करके निकाल देता है। यह विशेषकर नाडीवलदायक है। जैतूनके तेलको अंगवेदना, पक्षवध, आमवात, गृध्रसी और अन्य रोगोमें विलयन और सशमन हेतुमदन करते है। शरीरकी रूक्षता-निवारण एव चवल और गुष्कगज जैसे त्वचाके रूक्ष रोगोमे इसको लगाते है। आग्नदग्धावयवके दाह मिटानेके लिए इसका मलहम वनाकर उपयोग करते है। निर्वल व्यक्तियो विशेषकर निर्वल एव कृश शिशुओमे इसको शरीरपर मर्दन करते है। यह उनके शरीरमें शोषित होकर उसे पुष्ट करता है और दौर्वल्य एव कृशताको दूर करता ह। इसके अतिरिक्त व्रणशोधन-रोपण और सधानके लिए इसको मरहमोमें मिलाकर व्रणोपर लगाते है। सखिया जैसे विषोके विष निवारण और उनसे आहारावयवमे होनेवाली वेदना और दाह या शोथ नष्ट करनेके लिए इसका आत-रिक उपयोग करते है। शरीरके दौर्वल्य एव कृशतानिवारण और वाजीकरणके लिए इसको पिलाते है। चिरज मलावरोध, गुदव्रण और गुदचीरमें इसको २ तोले से ५ तोलेकी मात्रामें पिलाते है। शूल (कुलज) रोगमे तथा कृमि-निस्सारणके लिए भी इसे पिलाते है। चिरज मलावरोध, गुदव्रण और गुदचीर में इसको २ तोले से ५ तोले की मात्रा में पिलाते है। शूल (कुलज) रोगोमे तथा कृमिनिस्सारणके लिए भी इसे पिलाते या वस्ति करते हैं। अहित कर–सडी-गली अवस्थामे उपयोग करने से खुजली उत्पन्न करता है। निवारण–मधु और शर्वत वनफ्शा। प्रतिनिधि–रोगन वलसाँ। मात्रा–६ ग्राम से ११ ६ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

●

(२८६) जोक (मुलूखिया)

फ़ैमिली : स्टेर्कूलियासे (Family Sterculiaeae)

नाम—(हिं०) जोक, चेंच, (स०) चञ्चु, (मालवा) रजायन, रजायनकी भाजी, (यू०) मुलूखिया (मुलूकिया), (व०) तिकि ओकरा, (ले०) मेलोकिया कार्कोरिफोलिया (**Melochia corchorifolia** Linn), (अ०) रेड मेलोकिया (Red Melochia)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। इसका पौधा वरसातमें घूरो, उजाडो, खण्डहरो और दीवालोपर जमा हुआ मिलता है।

वर्णन—इसका क्षुप एक गज या इससे न्यूनाधिक या एक हाथ ऊँचा होता है। शाखाये लाखी रगकी और हरी भी होती है। पत्ते जडकी ओरसे चौडे और शिरकी ओरसे पतले, नीचे खुरदरे और ऊपरसे चिकने तथा सिराओ (नसो)की अधिकताके कारण चरसदार, बीचमे से दो अगुल या उससे भी अधिक चौडे, चार अगुल तक

लम्बे और जो अधिक चौडे होते है, वे कम लम्बे होते है और किनारे कटवाँ होते है। फली आध गिरहके बराबर और ऐसी दीखती है मानो जोक लटक रही हो। इसलिए इस पौधेको 'जोंक' कहते हैं। फूल पीला और छोटा होता है। पत्तोमें बहुत लबाब होता है। इनको पकाकर रोटीके साथ खाते है। मुहीतआजमके लेखक लिखते हैं कि अरबके लोगोकी जबानी मालूम हुआ कि 'मुलूखिया' यही है।

प्रकृति—जोंक शीत है। मुलूखिया पहले दर्जेमे शीत और दूसरे दर्जेमें स्निग्ध, तथा मतातरसे तीसरे दर्जेमें शीत है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तालीफशरीफ के अनुसार जोक मधुर, गुरु, सूजाक और गरमीके लिए गुणकारी तथा वायु, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। अन्य ग्रन्थोके अनुसार यह वाजीकर है। १ तोला इसके पत्र एव फलका शीरा (पानीमे पीसकर छानकर निकाला हुआ रस) पीनेसे मुँहसे खून थूकना और उर क्षतमे लाभ होता है। मुलू-खियाके ताजे पत्ते पीसकर गुलरोगनमे मिलाकर लेप करनेसे सूजन उतरती है और सिरका दर्द अच्छा होता है। सूखी खाँसी और गलेकी कर्कशतामे इसको पकाकर खानेसे उपकार होता है। इसके बीज भी गुणकारी है। ९-१० तोले इसके पत्तोका स्वरस पीनेसे यकृत् और पित्ताशयका अवरोध दूर होता है। छाती और आमाशयके ऊपर लेप करनेमे आर्तव-रक्त बन्द हो जाता है। भिडसे दशस्थानपर इसके लेपसे उपकार होता है। इसके पत्तोको जौके आटेके साथ पीसकर लेप करनेसे आँखका दर्द आराम होता है। इसको मासके साथ पकानेसे शोरबा लबाबदार हो जाता है। छाती और फेफडेकी कर्कशताके लिए गुणकारी है। 'इब्न तल्माज'के अनुसार मुलूखिया उरोमार्दवकर, वस्ति एव शोथके लिए गुणदायी हैं। **अहितकर**—वस्ति स्निग्ध, आमाशय और शीत प्रकृतिवालोके लिए। **निवारण**—वस्तिके लिए गुलाबके फूल और आमाशय आदिके लिए अनीसून।

●

(२८७) जोंकमारी

फ़ैमिली : प्रीमूलासे (Family : Primulaceae)

नाम—(हिं०) जिघना, जैघनी, (यू०) अनागाल्लिस, (अ०) अनागालि(लु)स, आनागलुस (पुरातन), मरि-जाने (नवीन) (म०) जोकमारी, (गु०) काली फुलडी, (कश्मीर) कालाचग, (प०) घव्वर, (ले०) **आनागाल्लिस आर्वेन्सिस (Anagallis arvensis Linn)**, (अ०) स्कार्लेट पिम्पर्नेल (Scarlet Pimpernel)।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्ष विशेषत हिमालयमें ८ ००० फुटकी ऊँचाई तक तथा नेपाल, कुमाऊँ, खसिया पर्वत, कश्मीर, चम्पारन, हजारीबाग आदिमे शीतकालमे प्राय खेतोमें इसके क्षुप पाये जाते हैं।

वर्णन—इसके क्षुप स्वावलम्बी अथवा किंचित् प्रसरी होते है। जड क्षुद्र; काण्ड चतुष्कोण, पत्तियाँ आमने-सामने, अवृन्त, अखण्ड, बिन्दुकित, लट्वाकार, आयताकार-लट्वाकार या प्रामवत् और प्राय ०-५ इच बडी, लग-भग १ २५ से० मी० (½ इञ्च) और ९ मि० मी० (⅜ इञ्च) चौडी होती है, पुष्प पत्रकोणीय, एकाकी, नीले (लाज-वर्दी) रगके और उनके वृन्त पतले होते है, जो फल तैयार होनेपर अग्रपर टेढे हो जाते हैं, आभ्यन्तर कोश चक्राकार, फल गोल, मटराकार और टोप स्फुटनविधिसे फटता है। बीज खुरदरा होता है। क्षुप किंचित् तिक्त एव चरपरा होता है। यूनानियोके मतसे यह उसकी 'मादा जाति' है। नरका फल उनके मतसे लाल होता है।

उपयुक्त अग— समग्र क्षुप (पचाङ्ग)।

रासायनिक सगठन—क्षुपमे दो ग्लूकोसायडिक सैपोनिन होते है। जडको रखनेपर उसमें जटामासीकी गध बढने लगती है और उसम साइक्लेमिन (Cyclamin) नामक एक विषसत्व होता है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क है। कोई-कोई नरको उष्ण और मादाको शीतल जानते है। जालीनूसके मतसे सर्द एव तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अत्यत श्वयथुविलयन, सग्राही, लेखन, अकष्टकर, रौक्ष्यजनन, अवरोधोद्घाटक, दोपाकर्पण करनेवाली (जाजिब) और व्रणके लिए लाभकारी हैं। इसे उनपर लगानेसे सूजन नही आती। यदि दुष्टव्रणके ऊपर लगाये तो उसे फैलने नही देती। इसके काढेसे दन्तशूल आराम होता है। इसे ९ माशेकी मात्रामे सिकजवीनके साथ सेवन करनेसे अपस्मार दूर होता है। इसे शहदके साथ आंखमे लगानेसे दृष्टिशक्ति तीव्र होती है। आंखका जाला (सिराजाल), पोथकी (जरब) और आध्य (कुम्न) आराम होता है तथा नेत्रकी फुन्सीमें पूय सचित नही होता। कण्ठमे जोक चिमट जाय तो इसके सेवनसे वह छूट जाती है और यदि वह आमाशयमे चली जाय तो मरकर निकल जाती है। इसे गुलरोगनमें मिलाकर योनिके भीतर रखनेसे योनि गर्भाशयशोथ मिटता है। अहितकर—इसके सेवनसे (सहज) उत्पन्न होता है। निवारण—बबूलका गोद। प्रतिनिधि—हत्थाजोडी। मात्रा—२·२५ ग्राम से ४ ५ ग्राम (२३/४-४॥ माशा) तक।

●

(२८८) जोअ्दा

फैमिली : लाबिआटो (Family Labiatae)

नाम—(अ०) जोअ्दा, जादेह, बूलियून, (यू०) पोलिओन, फू(बू)लियून, (ले०) **टेउक्रिअम् पोलिअम्** (**Teucrium polium** Linn), (अं०) पाली-जर्मेण्डर (Poley-germander)।

उत्पत्तिस्थान—यह प्राय रुके हुए पानीके पास और आर्द्रभूमिमें वहारके मौसममे उगता है और जाडो तक रहता है। फारस, खुरासान, पूर्वीदेश और भूमध्यसागरीय प्रदेश।

वर्णन—एक उद्भिज्ज जिसके ये दो भेद होते है। (१) पहाडी—इसका क्षुप सफेद और बित्ताभर ऊँचा होता है। पत्ते छोटे और जमीनपर बिछे रहते है। पत्तोके ऊपरी पृष्ठपर रोआँ होता है और किनारोपर नन्हे-नन्हे कांटे होते है। शाखाओके सिरोमे घुडियाँ लगती है जिनपर बालकी तरह बारीक और सफेद रगके तार लटकते है। इन घुडियोमे बीज भरे होते है। फूल पिलाई लिए सफेद रगका होता है। गध बडा गम्भीर, अप्रिय और किंचित् सुगन्धि होती है। स्वाद किंचित् तिक्त होता है। इसे अरबीमें जोअ्दा सगीर और जोअ्दा शामी तथा फारसी या शीराजीमे 'उर्व' कहते है। (२) बागी (बुस्तानी—उद्यानज)—इसके पत्ते पहलेसे बडे होते है। गध अपेक्षया कम होती है। इसको जोअ्दए कबीर और जोअ्दए रूमी तथा फारसीमें अवरबेद कहते है। तोडनेके पश्चात् आठ मास तक इसमें औषधीय वीर्य रहता है। शम्सुद्दरर के अनुसार उपयोगके लिए बागी श्रेष्ठतर होता है। मख्जनके अनुसार इसका पहाडी भेद उपयोगमें आता है। मतातरसे बीजोद्भवकालमे लिया हुआ ताजा एव सफेद श्रेष्ठतर होता है।

उपयुक्त अग—क्षुप (पचाग)।

रासायनिक सगठन—उत्पत् तेल।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आभ्यन्तरिक उपयोगसे वुद्धिवर्धक एव बल्य है और विरेक (दस्त) लाता है, अवरोधोका उद्घाटन करता, दोपोको प्रकृतिस्थ करता, मूत्र तथा आर्तवका प्रवर्तन करता, उदरकृमिको नष्ट करता

और उसे निकालता, वायुका अनुलोमन करता और ओजकी रक्षा करता है। (गज एवं बालखोरा) दूर करनेके लिए इसका बाह्य उपयोग होता है। इसके नेत्रमे लगाने (मधुके साथ अजन करने)से दृष्टिशक्ति बढती है तथा जाला एवं धुध जाता रहता है। जलोदर एव कृष्णकामला (यर्कान स्याह)के लिए गुणदायक है। इसका अवचूर्णन व्रण-पूरक है। इसकी धूनी विषैले जानवरोको भगाती है। बालज्वरमे शरीरमे इसकी धूनी लेते है। २½ तोलेकी मात्रामे इसको रात्रिभर ढके जलमें भिगोकर प्रातः छानकर पोनेसे ज्वरविकार दूर होता है। अहितकर–शिर शूल-जनक और आमाशय हानिकारक। निवारण–आवश्यकतानुसार सर्द एव तर वस्तु, जैसे–धनियाँ, हमामा और बन-फ़्शा। प्रतिनिधि–पहाडी पुदीना, किरमाला, अनारकी जडकी छाल और तज। मात्रा–१०½ (साढे दस) ग्राम या माशा, काढा ७½ तोला तक।

●

(२८९) जौ

फैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) जौ, जव, (अ०) शईर, (फा०) जौ, (स०) यव, (गु०, ब०, प०) जव, (म०) सातु, (लै०) होर्डेडम् वुल्गारे **Hordeum vulgare** L (पर्याय–*H. sativum* Jessen ; *H distichum* L), (अं०) बार्ली (Barley)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेपत उत्तर भारतवर्षमे इसकी खेती होती है। यह एक प्रसिद्ध धान्य (अन्न) है।

रासायनिक संगठन—इसमे स्थिर तेल, स्टार्च (Starch), प्रोटीड कम्पाउण्ड्स (ग्लूटेन ऐल्ब्युमिन), सेलू-लोज (Cellulose), अन्य नाइट्रोजन तत्त्व और भस्म, जिसमें सिलिसिक एसिड, फॉस्फोरिक एसिड, लोह और कैल्सियम होता है, पाये जाते है।

उपयुक्त अग—निस्तुषीकृत वीज (दाना-जौ) गेहूँके दानेकी भाँति निकाला हुआ तेल (रोगन जौ) तथा पचागको जलाकर बनाया हुआ क्षार-यवक्षार (दे०'जवाखार')।

कल्प तथा योग—सत्तू, माउश्शईर, आशे जौ, कशकुश्शईर, कीरुती आर्दजोवाली, आदि। आयुर्वेदमें भी जौ से सत्तू, क्षार, अपूप, मन्थ, वाट्य, कुल्माष, धान यूष एव अन्य विविध चिकित्सोपयोगी पदार्थ बनाये जाते है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—किंचित् उदरसग्राहक उपशोषण, रक्त-पित्तसशमन और लेखन। जौमे गेहूँकी अपेक्षया पोषणाश कम होता है। इसकी रोटी किंचित् सग्राही एव चिरपाकी होती है, अनाह और वायु (रियाह) उत्पन्न करती और शरीरमें रूक्षता उत्पन्न करती है। उष्ण प्रकृतिवालो और अधिक स्थूल मनुष्योको खिलाई जाती है। जौका आटा चेहरे और शरीरकी सफाईके लिए अकेला या अन्य औषधद्रव्योके साथ उबटन बनाकर उप-योग किया जाता है। शिरके गज और दद्रुमे जौका तेल लाभकारी है। यह शोथको नरम और विलीन करता, दाह और गर्मी मिटाता तथा कठोर एव गरम सूजनको लाभ पहुँचाता है। जौका सत्तू और यव मड बनाकर उपयोग करते है। अहितकर–वस्तिके लिए। निवारण–अनीसून और गुलकंद। प्रतिनिधि–ज्वार।

आयुर्वेदीय मत—यव मधुर, कुछ कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य अतिशय रूक्ष, पिच्छिल, लघु, मल और उदरवायु अधिक उत्पन्न करनेवाला, शरीरको स्थिर-दृढ करनेवाला, बलकारक, व्रणमे पथ्य (तिलकी भाँति व्रण-

लेपनमे सदैव हितकर), मूत्र कम करनेवाला, अग्नि-वर्धक, मेध्य, स्वरको अच्छा करनेवाला, शरीरके वर्णको निखारनेवाला, स्थूलको पतला करनेवाला, रक्तशोधक, पित्तशामक तथा कफ, मेदोवृद्धि, वातविकार और तृषाको मिटानेवाला है (च०सू०अ० २७, सु०सू०अ० ४६), प्रमेहनाशक (राज०), लेखन, मृदु, अनभिष्यदी तथा पीनस, श्वास, खाँसी और ऊरुस्तम्भको दूर करनेवाला है (भा०प्र०)। तिलकी भाँति व्रणालेपनके लिए पथ्यकर'—तिल-वद्यवकल्क तु केचिदाहुर्मनीषिण ' (सु० चि० अ० १), होनेके अतिरिक्तजो आभ्यन्तरीय प्रयोगके लिए भी उपयोगी है—'शक्तून् विलेरी कुल्माषञ्जल चापि शृत पिवेत् (सू० अ० १९)। मूत्रकी राशि कम करनेके कारण प्रमेहमें यवोका उपयोग होता है—'यवप्रधानस्तु भवेत् प्रमेही। यवस्य भक्ष्यान् विवधास्तथाऽद्यात्' (च०चि० अ० ६)। मधुमेहीके लिए जौ प्रधान खाद्य है। इसके सेवनसे मधुमेहमे वडा लाभ होता है, इसमे कोई सदेह नही है। चरकमें मेदसावृत वायुकी चिकित्सामे जौका भोजन करनेके लिए लिखा है–'यवका यवा भोजनार्थ प्रयोज्यानि।' (सूत्र० २१)।

जौका सत्तू—

नामादि—(अ०) सवीकुश्शईर, (स०) यवश(स)क्तु। जौको भूनकर पिसवा लेते है। यह पिसा हुआ आटा 'सत्तू' कहलाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उदरसग्राहक (काविज़ शिकम) और सतापहर एव अतिसारघ्न है। यवमडकी अपेक्षया जौके सत्तूमे पोषणाश कम है। वहुधा ग्रीष्मऋतुमे गरमी और प्यास बुझानेके लिये इसका उपयोग करते है। उष्णप्रकृतिके रोगियोको विरेक आनेकी दशामे इसको खिलाते हैं। यह उष्णज्वरोमे भी प्रयुक्त होता है। सत्तूको जलमे भिगो रखनेके उपरात साफ जल निथारकर उसमें मिश्री या शर्वत मिलाकर पीना गरमी और प्यास बुझानेके लिए उत्कृष्ट द्रव्य है। अहितकर–शीत प्रकृतिको।

आयुर्वेदीय मत—सत्तू (श(स)क्तु) अर्थात् भृष्टयवचूर्ण शरीरपुष्टिकर, वृष्य, तृष्णाशामक, पित्तकफनाशक है। सेवन करते ही वल देता है, भेदी है और वातनाशक है। उसका अत्यन्त कठिन लड्डू भारी होता है और मुलायम लड्डू हलका होता है, तथा अवलेह पतला होनेके कारण शीघ्र पच जाता है। (सु०सू०अ० ४६)। यह वातवर्धक, रूखा मलको अधिक मात्रामे उत्पन्न करनेवाला तथा आनुलोमिक होता है। पीनेपर ये सद्य तृप्त करते है और सद्य (तत्क्षण) वलकारक है। ये वाजीकरण द्रव्योकी तरह तत्क्षण ही बलको उत्पन्न करते है, परन्तु रूक्ष होनेसे परिणाममे बलकारक नही होते। (च० सू० अ० २७)।

यवमड (आशे जौ)–

नव्यमत—इसकी परिभाषा, कल्पना और पर्याय आदिके लिए यूनानी द्रव्य-गुण-विज्ञान ग्रथके पूर्वार्ध पृ० २१५ और ३१५ पर देखे।

प्रकृति—शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन (मुवर्रिद), स्निग्धताजनक (स्नेहन), मूत्रल, रक्त और पित्तसशमन। यह उत्तम और शीघ्रपाकी आहार है। समस्त व्याधियो विशेषत उष्णरोगोमे इसका उपयोग गुणदायक है। यकृत् और आमाशयकी उष्णता (सताप) और उग्र पिपासा शमन करनेके लिए श्रेष्ठतर आहार है। समस्त उष्ण ज्वरो, राजयक्ष्मा, उर क्षत, पार्श्वशूल (जातुज्जनव), शुष्क कास और उष्ण शिर शूलमें इसका उपयोग परम गुणदायक है। वाट्यमड (भृष्टयवकृत मंड) सग्राही होता है और अतिसारमें उत्कृष्ट आहार गिना जाता है। विशेषकर उर क्षत

और राजयक्ष्माके ऐसे रोगीके लिए जिसको विरेक आ रहे हो, अत्युत्तम है। रोगियोके लिये यह सर्वोत्तम लघु पथ्याहार है।

आयुर्वेदीय मत—जौका मण्ड (यावक) तथा भुने जौका मण्ड (वाट्य) उदावर्त, प्रतिश्याय, कास, प्रमेह तथा मलग्रह, इन रोगोको नष्ट करता है। (सु० सू० अ० ४६, च० सू० अ० २७)। यवका यूप कण्ठके लिए हितकर और वातनाशक है। (सु० सू० अ० ४६)।

जवाखार

नाम। (हिं०) जौखार, जवाखार, (अ०) मिल्हुश्शईर, (फा०) नमके जौ, (सं०) यवक्षार, यावशूक; (म०, गु०) जवखार, (लै०) पोटास्सिउम् कार्बोनास इम्प्योरा, (Potassium Carbonas Impura), पर्ल ऐश (Pearl Ash), (अं०) इम्प्योर कार्बोनेट ऑव पोटास (Impure Carbonate of Potas)।

प्राप्ति और वर्णन—औषधमे प्रयुक्त जवाखार पके जौके पौधो तथा बालियोको जलाकर उनकी राखसे विशेष-विधि द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसकी निर्माण-विधिके लिए 'यूनानी-द्रव्यगुण-विज्ञान' देखे। इस प्रकार बनाया हुआ खार स्वच्छ अक्रिस्टली चूर्ण होता है। केवल जौकी बालियोको जलाकर बनाये हुए जवाखारकी अपेक्षया समग्र क्षुपको जलाकर बनाया हुआ जवाखार न्यूनगुणवाला होता है। यह श्वेत सूक्ष्म दानेदार चूर्णके रूपमें होता है। इसका स्वाद तिक्त, क्षारीय और कुछ अम्ल होता है।

रासायनिक सगठन—जवाखारमें प्रधानत पोटैसियम क्लोराइड ५० ८, पोटैसियमसल्फेट २० २, पोटैसियम कार्बोनेट ६ ८ तथा पोटैसियम-बाई-कार्बोनेट १२ ६ प्रतिशत होता है (अर्थात् यह पोटैसियम लवणोका मिश्रण (मिक्स्चर ऑव पोटैसियम साल्ट्स) है। जौकी राखमे सैलिसिलिक एसिड २९, फास्फोरिक एसिड ३२ ५, पोटैसियम २२ ५ तथा कैल्सियम ३ ५ प्रतिशत होता है।

वक्तव्य—पाश्चात्य वैद्यक (डॉक्टरी)मे प्रयुक्त पोटैसियम कार्बोनेट (Potassium Carbonate) नामक द्रव्य 'विलायती जवाखार' ही है। उक्त पद्धतिमें यह जौके पौधोको जलाकर तैयार नही किया जाता, अपितु पोटैसियम सल्फेट और कैल्सियम कार्बोनेटको परस्पर मिलाकर उष्णता पहुँचानेसे प्राप्त किया जाता है। प्राय वैद्य और हकीम महोदय इसे ही 'देशी जवाखार'की जगह प्रयुक्त करते है। यह ठीक नही है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें रूक्ष एव उष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, पाचन, वमन, विरेचन, मूत्रल, वस्तिवृक्काश्मरीनाशन और श्लेष्मनिस्सारक। मूत्रल होनेक कारण यह बद्धमूत्र और कामलामे गुणकारक है। मूत्रल और अश्मरीघ्न होनेसे वस्तिवृक्काश्मरीमे प्रयुक्त किया जाता है। दीपन और पाचन होनेसे दीपन-पाचन चूर्णौषधोमे पडता है और मन्दाग्निमें लाभ पहुँचाता है। कफोत्सारि होनेसे कास और कृच्छ्रश्वासमे भी प्रयुक्त होता है। एकही बार अधिक प्रमाणमे देनेसे यह वमन लाता है और बार-बारके उपयोगसे अन्त्रके मासस्तरको वातग्रस्त (घातित) करनेसे विरेक लाता है। अहितकर—आँतोके लिए अहितकर और वामक है। निवारण—कतीरा और गोद। प्रतिनिधि—शोरेका नमक। मात्रा—० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—जवाखार (यावशूक) हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, प्लीह और यकृत्की वृद्धि, आनाह, गलग्रह, कफज कास और अर्शको दूर करनेवाला है (चरक सू० अ० २७)। सज्जीखार और जवाखार उष्णवीर्य तथा कफ, विबन्ध, अर्श, गुल्म और प्लीहवृद्धिका नाश करनेवाले है (सुश्रुत सू० अ० ४६)। यह कटु, उष्णवीर्य, सर (मल-मूत्रको साफ लानेवाले) तथा कफ, वात, उदर, आमशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, गुल्म और विषदोषको दूर करनेवाले है (सु० सू० अ० ४६, ध० नि० वर्ग २)।

नव्यमत—जवाखार स्निग्ध, लघुपाकी, सूक्ष्म (शरीरके सब स्थानोंमें शीघ्र प्रवेश करनेवाला), अग्निवर्धक (दीपन), सारक (मृदुविरेचन), मूत्रल, अम्लत्वनाशक और रसायन है (डॉ० कार्तिक चन्द्र बसु)। यह रक्तशोधक, स्वेदजनन, कफनाशक और पित्तक्रियाको सुधारनेवाला है। भोजनके पहिले देनेसे यह दीपन और आमाशयकी पीडाको कम करता है। भोजनके बाद देनेसे आमाशयकी अम्लताको कम करता है और वहांके कफको विलीन करता है। रक्तमें मिलनेपर रक्तकणोंको गलाता और तरल बनाता है। रक्तशुद्धिकेलिए जवाखार कसीस और सुगन्धित द्रव्योंके साथ देते हैं। जवाखार वृक्कको उत्तेजित करके मूत्रका प्रमाण बढाता है, त्वचाको उत्तेजित करके पसीना लाता है; इससे कफ पतला होकर छूटने लगता है और श्वासनलिकाओंका कष्ट कम होता है। इससे पित्त पतला होता है और पित्त नलिकाका रोग कम होता है। इसलिए कामला और यकृद्दोषमें जवाखार देते हैं। फुफ्फुसके रोगोंमें जवाखारकी अपेक्षा जवकी राखका उपयोग उत्तम होता है (ओ० स०)।

उत्तम मूत्रल होनेसे यह बहुमूत्र और मूत्रकृच्छ्र (कष्ट तथा जलन और कष्टके साथ बूँद-बूँद मूत्र आना)में अतीव गुणकारी होता है। मूत्राघातमें इसके साथ रेवन्दचीनी और कलमी शोरा आदिको मिलाकर स्त्रीजुल्लाब कराया जाता है, जिससे खुब मूत्रका प्रवाह आता है और रोग शुद्ध हो जाते हैं। जब मूत्रमें अम्लता बढ जानेसे वस्तिवृक्कशूल और मूत्राशयमें जलन हो जाती है, तब इसके उपयोगसे विशेष लाभ होता है। इसी प्रकार मिहिकाम्ल (यूरिकएसिड)से उत्पन्न हुए सन्धिशूल एवं वातरक्तमें बडा लाभ होता है। इरेक्टाइलकाशपर भी इसका अच्छा प्रभाव होता है। अस्तु, जब कफ शुष्क हो तथा शुष्क कास आरहा हो तथा गला बैठ गया हो, कफ लेसदार और कडा गोंदके समान निकलता हो, तब इसके देनेसे तुरन्त लाभ होता है। यह नाडीभूत एवं गाढे कफको पतला करके निकलने योग्य बनाता है। तापमानको कम करनेके लिये भी इसका उपयोग होता है। जब आमाशयमें अम्लताकी अधिकताके कारण आमाशय प्रदेशमें दर्द होता है, कलेजा जलता है और अम्ल एवं दुर्गन्धित डकारें आती है, कण्ठमें प्राय क्षोभ रहता है तो इसको भोजन करनेसे दो घण्टे बाद पानीमें मिलाकर पीनेसे आश्चर्यकारक लाभ होता है। त्वचाके रोग, जैसे शीतपित्त (पित्ती), खर्जू आदिमें १० छटाक पानीमें इसे चार माशाकी मात्रामें मिलाकर स्नान करने या अग विशेष पर लगानेसे अतिशीघ्र लाभ होता है।

●

(२९०) जौ विरहना (जई)

फैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) जई, गदल, गनेर, कुल्जुद, आनजौ, (अ०) सु(ति)ल्त, शईर उरयाँ, (फा०) जौ विरहना, जौ गदुम, (म०) अतियव, मुण्डयव, (म०) ओट, (लै०) आवीना साटीवा (Avena sativa Linn), (अं०) ओट (Oat), ग्रोट्स (Groats)।

उत्पत्तिस्थान—ब्रिटेन, अमेरिका, फारस और उत्तर भारतवर्षमें बगालसे सिन्धु नदी तक और हिमालयमें १२,००० हजार फुटकी ऊँचाई तक इसकी खेती होती है। भारतीय बाजारोंमें यह उपलब्ध होता है।

वर्णन—यह जौकी जातिका एक अन्न है, जिसका पौधा जौके पौधेसे बहुत मिलता-जुलता होता है। यह जौसे अधिक बढता है। इसका दाना (बीज) जौसे छोटा और छिले हुए गेहूँके समान होता है।

उपयुक्त अग—दाना (बीज)।

रासायनिक संगठन—इसमें वसा, श्वेतसार, शर्करा, एल्ब्युमिन, सेलूलोज एवं खनिज द्रव्य होते हैं। दानेमें आवेनिन (Avenin) एव विटामिन 'B' तथा बाहरी भागमे फारफेट्स होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमे तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बृंहण, स्नेहन, स्वप्नजनन, कफोत्सारि, मूत्रजनन और वेदनाहर। कृश शरीरको स्थूल (परिबृंहित) करने और मालिन्खोलिया, प्रलाप और जीर्णकासमे इसका हरीरा बनाकर पिलाते हैं। मालिन्-खोलिया और प्रलापमें इसकी अधपकी टिकिया बनाकर गरम-गरम शिरपर बांधते हैं। अर्शवेदना शमन करनेके लिए इसके काढेमे रोगीको बिठाते हैं। अहितकर—आमाशयके लिए। निवारण—गोदुग्ध। मात्रा—१२ से २४ ग्राम (१ से २ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अतियव (नि शूक काले, लाल रगके यव)को सब गुणोमे यवकी अपेक्षया किंचित् हीन-कोटिका समझना चाहिए। (सु० सू० अ० ४६)। बलवर्धक, वीर्यवर्धक, वृष्य और पुष्टिकारक (रा० नि०)।

●

(२९१) ज्वार

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family . Gramineae)

नाम—(हिं०) ज्वार, जोन्हरी, जोधरी, जोनरी, छोटा मक्का, (यू०) Keghhros (D 2 119), (अ०) जुर्रत, जावर्स, (फा०) जावरसे हिन्दी, गावर्स, (स०) या(य)वनाल, (प) चरी, छोटी जुआर, छोटी जुनरी, (बम्ब०; द०) जोवारी, जोआर, जोधला, (व०) जोड़, जोआर, (गु०) जुवार, (म०) जोधला, (लै०) **सॉर्घुम डॉक्ना (Sorghum dochna** (*Forsk.*) Snowden (पर्याय—सॉर्घुम वुल्गारे (S *Vulgare* Pers), (अ०) मिलेट (Millet), ब्रूम कार्न (Broom corn)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम संयुक्त राष्ट्र अमरीका। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध खाद्य अन्न (धान्य) है।

रासायनिक सगठन—इसमें जल, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, श्वेतसार, तन्तु, भस्म, भास्वराम्ल और पोटास आदि होते हैं।

उपयुक्त अग—दाना (बीज)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, रूक्षण, विलोमवर्त्ता (रादेअ) उष्णश्वयथुविलयन और स्तन्यजनन। आहारकी भाँति इसका पुष्कल उपयोग होता है। बहुधा इसके आटेकी रोटी पकाकर खाते हैं। यह गुरु (सकील) और ग्राही है। यद्यपि इससे यथेष्ट पुष्टि (गिजाइय्यत) प्राप्त होती है, तथापि इसके बहुत प्रयोगसे शरीरमें रूक्षता उत्पन्न होती है। स्तन्यजननार्थ स्त्रियाँ सौंफके साथ ज्वारका हरीरा पकाकर खाती हैं। इसके आटेकी पुलटिस बनाकर गरम सूजनको विलीनकरने और उनका दर्द शात करनेके लिए बाँधते हैं। अहितकर—आनाहकारक और चिरपाकी है।

आयुर्वेदीय मत—ज्वार, स्वादिष्ट, शीतवीर्य, रूक्ष, भारी, ग्राही, रुचिकारक, वृष्य, मलस्तम्भक, पित्तकफ-नाशक और रुधिर के विकार का शात करनेवाला है।

●

(२९२) झाऊ

फैमिली टामारीसीने (Family Tamaricaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०; द०) झाऊ, झाव, (यू०) (Murike D १ ११६), (अ०) तर्फा, (फा०) गज, (सं०) झाव (पं) (ब) झाव, (गु०) झाव, झाबू, प्रास, (वि०) झउला, (पं०) फरवां, ओका, (सिं०) लई, (मा०) लवो, (ले०) टामारिक्स ट्रूपिई (Tamarix troupii Holc.) पर्याय—टामारिक्स गॉलिका (T gallica auct-non. L), (अं०) टेमेरिक्स (Tamarix)। फल (हिं०) बड़ी माई (ई), (अ०) समरतुत्तर्फा, हब्बुत्तर्फा, जौजुत्तर्फा, (फा०) माजू कजां, (सं०) झावुकफल, (म०) पटवास, (गु०) पटवास, (बम्ब०) मगिया माई, (अं०) टैमेरिक्स गॉल्स (Tamarix galls)। शर्करा-(अ०) कज अन्जबीन; (फा०) गजन्गबीन, (सं०) झावुक शर्करा, (अं०) टेमेरिक्स मेन्ना (Tamarix manna)।

वक्तव्य—फारसी क(ग)जमाजज, क(ग)जमाजक और क(ग)जमाजू शब्दोंका व्यवहार उभय प्रकारकी (छोटी बड़ी) माईके लिए होता है, परन्तु प्रसिद्ध यह है कि ये बड़ी माईके नाम हैं। 'जज़माज़ज' गजमाजजका और 'कजन्जबीन' गजन्गबीनका अरबी रूपान्तर हैं। इब्नुल्बैतारके कथनानुसार असल तर्फाके चार भेदोंमेंसे एक भेद है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, अफरीका, एशिया, फारस, अफगानिस्तान, उत्तरभारतवर्षमें गंगा और यमुना नदियोंके कूलों पर तथा समुद्रतटपर और उत्तर गुजरातमें प्राय शीत एव समशीतोष्ण कटिबन्धमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक झाड़दार बेढगा, छोटा (आदमीके कदसे या उससे भी कम ऊँचा) और जगली वृक्ष है। पत्र सरोके पत्रके समान और फल ललाई लिये सफेद होता है। उसकी शाखाओंमें एक प्रकारके कीड़ेके छिद्र करने और उन छिद्रोंमें अपने अण्डे रखनेसे उन स्थानोंमें एक प्रकारकी गाँठें उत्पन्न हो जाती हैं जिनको इसका फल समझा जाता है। इनको बड़ा माईं कहते हैं। ये कुछ-कुछ गोल एवं बहुत सछिद्र, विभिन्न आकारकी, मटरसे लेकर रीठेके बराबर तक होती हैं। ये माजूफलसे छोटी तथा छोटीमाईसे बड़ी होती हैं। इनके धरातल पर प्राय तंग गर्दनवाले इतने अधिक छोटे छोटे उभार (गाँठें) होते हैं कि ये उसे घोंदका रूप प्रदान करते हैं। इनके भीतरका भाग प्राय खोखला होता है। इसका रंग बाहरसे साधारणत कुछ-कुछ हरा या पिलाई लिए भूरा होता है। इसकी झाड़से यवासशर्कराकी भाँति एक प्रकारकी शर्करा प्राप्त होती है जिसे गजगबीन (झावुक शर्करा) कहते हैं। भारतीय झाऊमें इसका अभाव होता है।

रासायनिक सगठन—बड़ी माईमें पुष्कल कषायाम्ल (Tannic acid) और गजगबीन में इक्षुशर्करा, इन्वर्ट शूगर (लिव्युलोज और ग्लूकोज), द्राक्षशर्करा (डेक्स्ट्रिन) और जल ये उपादान होते हैं।

उपयुक्त अग—पचाग, फल (बड़ी माई) और गजगबीन।

झाऊ (पचाग)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तन्तुसग्राहक (ग्राही), उपशोषण, श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, रक्तस्तम्भन एव रक्तशोधन है तथा प्लीहाशोथमें अर्थात् प्लीहाकी वृद्धि एव कड़ाईमें विशेष लाभकारी है। प्लीहाकाठिन्य, शिथिल-शोथ और उष्णशोथ पर इसके पत्तोंको पीसकर लेप करते हैं। प्लीहाकी वृद्धिमे पत्तियोका क्वाथ पिलाते हैं और झाऊकी लकड़ीके प्यालेमें १२ घन्टा रखा हुआ जल पिलाते हैं। मसूढोंसे खून एव पीप आना बन्द करने तथा दन्त-शूल मिटाने और मसूढोंकी दृढ़ताके लिये पत्तियोंके काढेसे कुल्ली कराते हैं। पत्तोंके क्वाथसे व्रणको धोनेसे व्रणका

शोधन और रोपण होता है। व्रणशोपणके लिये झाऊके पत्तोकी धूनी देते हैं, विशेपकर मसूरिका (चेचक)के तथा अन्य व्रणको सुखानेके लिये इसके पत्रकी धूनी देते अथवा पत्तियो या पत्तियोके राखको बारीक पीसकर व्रणोपर भी छिड-कते है। अर्शाकुरोको सुखानेके लिये भी इसके पत्रकी धूनी लाभकारी है। इसकी जडका काढा जैतूनके तेलके साथ बहुतकालपर्यन्त पिलानेसे कुष्ठरोगमें बहुत उपकार होता है। इसकी जड और पत्रके काढेमें श्वेतप्रदर और गुदभ्रशके रोगीको बिठानेसे तथा श्वेतप्रदरमे पत्तियोके क्वाथकी उत्तरवस्ति (डूश) देनेसे लाभ होता है। ताजी पत्तियोका स्वरस और माईका चूर्ण वाजीकर और शुक्रस्तम्भक है। अहितकर–आमाशयके लिये। निवारण–मधु और स्नेह द्रव्य। प्रतिनिधि–गुलनार। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

माई (छोटी और बड़ी)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव रुक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, स्तम्भन, दोपविलोमकर्ता, रक्तस्तम्भन (शोणितस्थापन), उपशोपण, लेखन, प्रमाथी, छेदन, दीपन और प्लीहायकृद्वलदायक। माईका उपयोग माजूफलके समान होता है। शीतसग्राही होनेके कारण गलशुण्डिका और दन्तशूलमे यह मंजन और कवलकी भाँति प्रयुक्त होती है तथा पित्तज अतिसार और चिरज अतिसारमें इसको खिलाते है। सग्राही और दोपविलोमकर्ता होनेके कारण कठशूल और कठशोथमें इसके गण्डूप कराये जाते हैं। रक्तस्तम्भन होनेके कारण नकसीर, रक्तष्ठीवन और अरतिरजमें इसको क्रमश प्रधमन, भक्षण और पान एव वर्तिकी भाँति उपयोग करते है। क्षतज रक्तस्रावोमें इसका अवचूर्णन करते है। उपशोपण और सग्राही होनेके कारण श्वेतप्रदर (सैलानुर्रिहम)में यह वर्ति और चूर्णौषधकी भाँति प्रयुक्त की जाती है और इसीकारण शीघ्रपतन और शुक्रतारल्यमे इसका उपयोग करते है। लेखन, प्रमाथी और छेदनीय होनेके कारण प्लीहाशोथमे भी इसका उपयोग करते है। अहितकर–आमाशयको। निवारण–मधु। प्रतिनिधि–एक दूसरेका प्रतिनिधि है। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

झावुकशर्करा (गजगवीन)—

प्रकृति—पहले दर्जेमे उष्ण (एव तर) और खुश्की एव तरीमे मोतदिल (समस्निग्धरूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह लेखन, रेचन, मस्तिष्कसशोधन, प्रतिश्यायहर, उरोमार्दवकर, स्वरशोधक, उर कार्कश्यहर, श्वासकासहर और आहार एव श्वासावयवके लिए उपकारक है तथा स्निग्ध प्रकृतिके लिए लाभ-कारी है। मात्रा–२ तोलेसे ३ तोले, प्रत्युत ६ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—झाऊ तिक्त, कटु और मूत्रकृच्छ्रनाशक है।

●

(२९३) टमाटर

फ़ैमिली : सोलानासे (Family Solanaceae)

नाम—(हिं०) टमाटर, टुमेटो, विलायती भटा, (अ०) बादजाने हिन्दी, (फा०) बादगाने हिन्दी, (लै०) लीकोपेर्सिकॉन एस्कूलेंटुम् (**Lycopersicon esculentum** Mill) (पर्याय–सोलानुम लीकोपेर्सिकुम् Solanum lycopersicum), (अ०) टोमेटो (Tomato), लवएपल् (Loveapple)।

उत्पत्तिस्थान—फ्रास आदि भारतेतर देश। आजसे लगभग १०० वर्ष पूर्व विदेशियोके द्वारा यहाँ इसका उपयोग प्रचलित हुआ। भारतवर्षमे अब इसकी पुष्कल खेती होती है।

वर्णन—प्रसिद्ध फल है।

रासायनिक सगठन—इसके बीजो एव छिलकेमे 'सोलेनीन' नामक एक क्षारसमोद होता है। इसके अतिरिक्त अम्ल (एसिड)के रूपमे ऑक्सलीक ऑफ पोटासियम् भी होता है। इसमें पोषण, यद्यपि अधिक नही होता, परन्तु जीवतिक्ति (ए), (बी), (सी) खूब होती है। प्राय सब भोजनोकी तुलनामे टमाटरोमे खाद्योजका परिमाण अधिक बताया जाता है।

उपयुक्त अग—फल।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बादी, आध्मानकारक, शुक्रवर्धक, किंचित् वाजीकर है तथा इससे सौदावी रक्त उत्पन्न होता है। पके हुए टमाटरको फलोमें गिना जाता है। अकेला या अन्य सब्जियोके साथ पकाकर व्यजनकी भाँति खाया जाता है। सलाद और चटनीमें इसका प्रयोग तो भूमण्डलके अधिक भागमें हो रहा है। अच्छे पके टमाटरोको कच्चा या सलादमे खाना सबसे अच्छा रहता है। बीमारोके लिये इसका यूषके रूपमे प्रयोग अधिक पसन्द किया जाता है। यूरोप और अमेरिकामें टमाटरका रस कभी-कभी नारगीके रसका प्रतिनिधि समझकर उन बच्चोको दिया जाता है जो ऊपरके दूध पर पाले जा रहे होते हैं। पूरे पके टमाटरको कुचलकर मलमलके साफ कपडेमे रस निचोड लेवे। जीवतिक्तियोकी कमीसे होनेवाले प्रशीताद (स्कर्वी) आदि रोगोमें टमाटरका रस देनेसे लाभ होता है।

●

(२९४) डिजिटेलिस (दीजताल)

फ़ैमिली : स्क्रोफुलारिआसे (Family Scrophulariaceae)

नाम—(अ०) कफुस्सालब (अनुवाद), दीजताल (नवीन), (फा०) दस्तानए रोबाह (अनुवाद), (स०) हृत्पत्री, तिलपुष्पी घटावीणा, अगुलपिधान (नवीन), (लै०) डिजिटालिस पूर्पूरेआ (**Digitalis purpurea** Linn), (अ०) फॉक्स ग्लव (Fox glove) पर्पल् फॉक्सग्लव (Purple fox-glove)।

वक्तव्य—पोपुलर नेम्स ऑफ ब्रिटिश प्लान्ट्स (Popular names of British Plants (1870)के लेखक प्रायर (Prior)के मतसे फॉक्सग्लव ऐंग्लो-सैक्सन-फॉक्सेजग्ल्यु (Foxes-glew)से जो लटकती हुई घटियोसे युक्त एक प्राचीन वाद्य यत्र है, व्युत्पन्न है। उम्दतुल्मोहताजके लेखकके मतसे यद्यपि यह (D **lanata** Ehrh — Grecian foxglove); यूनानमें भी उत्पन्न होता है तथापि यह सिद्ध होता है कि यूनानीचिकित्सकोको इसका ज्ञान नही था। सर्वप्रथम डॉक्टर ब्लूरडाने सन् १७२१ ई० मे और उसके बाद डॉक्टर मुरेने सन् १७८८ ई०में इसका उल्लेख किया।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, ब्रिटिश द्वीपसमूह, यूनान और भारतवर्षके हिमालय पर्वत पर यह उत्पन्न होता है। कश्मीरके तगमर्ग और किश्तवारमें ६०००-७००० फुटकी ऊँचाई पर तथा कुमाऊँ, दारजिलिंग और नीलगिरि पर इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसके क्षुप और पत्र गीदडतम्बाकूके समान तथा क्षुपकी ऊँचाई भूमिभेद एव जलवायुके प्रभावानुसार २ फुटसे लेकर ५-६ फुट तक होती है। मूलपत्र ८ या ९ इच दीर्घायताण्डाकार या इससे अधिक लम्बे और ३-४ इञ्च चौडे नीचेकी ओर सपक्षवृन्तसमन्वित गोपुच्छाकार, सपक्ष भागमें सिरा व्याप्त, मध्यपर्शुकासे सिरा न्यूनकोणीय, अध पृष्ठ पर सिरा स्पष्ट (उभरी हुई) और ऊर्ध्व पृष्ठ पर अस्पष्ट (दबी हुई) जिससे पत्रपृष्ठ जालनुमा दिखाई

देता है। रोम ह्रस्व जो अध पृष्ठको घनगमगली पीताभहरित धरातलमय बनाते है, किन्तु ऊर्ध्वपृष्ठ पर वे अपेक्षाकृत अधिक विरल (विकीर्ण) अल्प एव सूक्ष्म और पत्रवृन्त पर दीर्घ एव रेशमके समान होते है। पत्रप्रात अनियमित रूपमे दतित होते है। स्वाद अतितिक्त, सूखे पत्तोकी गध चायके समान होती है। पुष्प तिलके पुष्पोके समान, किंतु उनसे बडे होते है। पुष्पकाल भारतमे अप्रैलमे जूनके अन्त तक और पाश्चात्य देशोमे जुलाईमे सितम्बर तक है।

उपयुक्त अग—केवल पत्र। संग्रहकाल–पूर्ण पुष्पित अवस्थामे।

रासायनिक सगठन—डिजिटोनीन (Digitonin), डिजिटेलाइन (Digitaline), डिजिटेलीन (Digitalin), डिजिटॉक्सीन (Digitoxin) और डिजिटीन (Digitin) नामक ये पांच विशेष वीर्यवान् तत्व (Glycosides) होते हैं। इनके अतिरिक्त दो प्रकारके अम्ल हैं जिनके नाम 'डिजिटेलिक एसिड' और 'एण्टीरिहानिक एसिड' हैं। इनके सिवाय कुछ इतर उपादान, यथा श्वेतसार, निर्यास, कुछ लवण एव रगीन पदार्थ तथा किसी अश तक कपायीन, शर्करा और उत्पत् तैल आदि भी होते हैं।

कल्प तथा योग—चूर्ण ¼ से ½ या १ रत्ती तक, फाण्टके रूपमे ६ मा०से १ तोला (६ ग्राममे १२ ग्राम) तक, गोली या चक्रिका।

गुण-कर्म—अल्पमात्रामे अवसादक (नाडी और हृदय), हृद्गतिसुधारक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न और शोथ-निवारक है। अधिक बडी मात्रामे तीव्र हृदयसकोचक, विवमिषाजनक, वमन-विरेचनकारक तथा उग्र-दाहजनक और मादक–विष होनेके कारण प्राणसहारक है। इसलिए निश्चित मात्रासे अधिक प्रमाणमें नही देना चाहिये।

उपयोग—हृदयकी कतिपय दशाओमे विशेषकर हृदयोत्तेजक एव हृदयशक्तिवर्धकरूपमे इसका उपयोग किया जाता है। वृक्करोगजनित हृद्विकारोमे तथा शोथ (Dropsy) एवं मूत्रावरोधमें भी इसका उपयोग करते है। इसमें संचयी (सञ्चित होनेका) स्वभाव होनेसे बडी सावधानीपूर्वक इसका उपयोग करना चाहिए। डिजिटेलिसकी क्रिया हृदय, रक्तवाहिनियो और रक्ताभिसरण पर होती है[1]। इसकी क्रिया विशेषत हृदय, हृदयमें जानेवाली नाडी और हृदयके केन्द्रस्थानपर होती है। छोटी रक्तवाहिनियोपर भी इसकी क्रिया होती और उनका सकोचन होता है, हृदय अपना कार्य जोरसे और शीघ्र करता है। इसलिए हृदयको अधिक विश्राति मिलती है, नाडी सावकाश चलती है और कुछ समयके अनन्तर मूत्रका प्रमाण भी बढता है। ऊपर लिखे हुए गुणोके कारण ज्वर किंवा इतर रोगोमें जब हृदयमें शिथिलता आती है तब डिजिटेलिस देते है। जलोदर और सर्वांगशोथमें जो विशेषतया हृद्विकार अथवा वृक्कविकारजन्य हो अर्थात् हृदयोदर और वृक्कोदरमे इससे दो प्रकारसे लाभ होता है। प्रथम हृदयको शक्ति मिलती है, दूसरे मूत्रका प्रमाण बढकर उदर कम होता है। इस प्रकारके उदरमें मूत्रजनन, स्वेदजनन और विरेचन औषध इस गणके साथ देना चाहिए। इस औषधिके सेवनकालमें रोगीको बिछौनेपर लेटाये रखना चाहिए और दूध, शर्करा, मासरस आदि पौष्टिक अन्न देना चाहिए। दमा, खाँसी, क्षय फुफ्फुससे रक्तस्राव होना और फुफ्फुसशोथ इन रोगोमें डिजिटेलिससे लाभ होता है। (औ० स०)।

विष-लक्षण

डिजिटेलिसकी अधिक मात्रासे पहले उत्क्लेश होता है, उसके अनतर वमन और वमनके थोडी देर बादही विरेचन भी आरम्भ हो जाते है। वमन द्वारा उत्सर्गित होनेवाले पदार्थ का रग घासके समान हरा होता है। यदि शीघ्र ही विष लक्षणोकी शान्तिका उपाय न किया जाय तो रोगी २–३ घण्टेमे ही मर जाता है।

---

१. रक्ताभिसरण पर क्रिया करनेवाला द्रव्योंका एक गण है। उसमे डिजिटेलिसके अतिरिक्त कनेर, जगली प्याज (कोंदा), कहवा, कपूर, जवाखार, ताँबा, जस्ता, एरडखर्बूजेके पत्र, मकाईके ऊपरके केश, ये प्रधान हैं। यह गण हृदयोत्तेजक, हृदयशक्तिवर्धक और मूत्रजनन है। ये सब द्रव्य विष है। इसलिए निश्चितमात्रासे अधिक प्रमाणमें नही देने चाहिए। जो गुणकर्म डिजिटेलिसके हैं, वे ही थोडे बहुत प्रमाणमें इस गणके अन्य द्रव्योंमें भी हैं। (औ. स)।

विष-लक्षणोकी चिकित्सा—तुरत किसी वमनकारक औषधि द्वारा अथवा स्टॉमक पम्प द्वारा रोगीके आमाशयका प्रक्षालन करना चाहिए और उसे यथेष्ट मात्रामे स्नेहपान कराना चाहिए तथा निवारण औषधिके रूपमें उसे कषायाम्ल (टैनिक एसिड) का प्रयोग कराना चाहिए। जीवनीयशक्तिकी रक्षार्थ उसे सुरा सेवन करानी चाहिए। इसके अतिरिक्त वछनागको भी इसका प्रतिविष समझा जाता है। ऐसा समझनेका कारण यह है कि क्रियाये एक दूसरेके प्रतिकूल होती है।

(२९५) तगर (सुगन्धवाला)

फ़ैमिली : वालेरियानासे (Family Ualerianacae)

नाम—(हिं०, व०) मुश्क (श्क) वाला (क०), तगर, (फा०) असारून हिन्दी, (उ०) रीशावाला, (स०) तगर, नत वक्र, (प०, वाजार) सुगन्धवाला, (वम्ब०, गु०) तगरगठोडा, (म०) तगरमूल, (ले०) वालेरिआना जटामांसी (**Valeriana Jatamansı** Jones) (पर्याय-वालेरिआना वाल्कीची *V. Wallichi* Dc), (अ०) इण्डियन वैलेरियन (Indian Velerıan)।

वक्तव्य—यह जटामासी (वालछड)की ही जातिका एक अन्य भेद है, जो गुणमें वालेरिआना आफ्फीसीनालिस (**Valeriana officinalis**)के समान होता है तथा उसका उत्तम प्रतिनिधि है। पाश्चात्य चिकित्सामें उसके स्थानमें ग्राह्य प्रतिनिधिस्वरूप यह स्वीकृत भी है। इसे आयुर्वेदीय तगर मानना तो युक्तियुक्त प्रतीत होता है, किंतु यूनानी वैद्यकके असारूनकी उत्तम प्रतिनिधि होनेपर भी उससे भिन्न द्रव्य है। (विशेष दे० 'असारून')।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—तगर हिमालयके कश्मीर, गढवाल, कुमाऊँ, नेपाल आदि प्रदेशोमे ५,०००–१०,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है। बाजारमें तगरकी जडके एक-डेढ इच लम्बे अगुलीके वरावर मोटे भगुर टेढे और उग्रगन्धवाले टुकडे मिलते हैं। तगरके नामसे कहीं-कही काले रगकी चन्दनके समान भारी लकडी या उसका चूरा विकता है, वह तगर नही, अपितु कालानुसार्य है। 'तगर' नामका सफेद फूलोवाला एक छोटा वृक्ष होता है, वह भी असली तगर नही है।

रासायनिक सगठन—इसमें एक उत्पत् तेल, दुर्गन्धयुक्त अम्लद्रव्य, राल और मधुर पदार्थ होता है।

प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह उन्माद, कुष्ठ, सिरदर्द, आँखका दर्द, नेत्ररोग, विष, नशा, दिलकी धडकन और मृगी इन रोगोमे गुणकारक है। इसके उभय भेदोके गुण समान है। इसे सुगधियोमें डालते है। (ख० अ० भा० ३ पृ० १८०)।

आयुर्वेदीय मत—तगर कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, स्निग्ध, शीतप्रशमन तथा सन्निपात, नेत्ररोग, शिरो रोग, विष, रक्तविकार, भूतावेश और अपस्मार को दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—तगर वातहर, संकोचविकासप्रतिवधक (आक्षेपहर), रक्तानुधावन और नाडीसस्थानके लिए उत्तेजक, पौष्टिक, चेतनाकारक, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। इसे अधिक मात्रामे देनेसे चक्कर आते है, हिचकी आती है और वमन होते है। इसके फाटसे हृदयकी शक्ति और नाडीकी गति और रक्तानुधावनका वल घटता है। इसमे जैसे शरीरमें गरमी आ रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है और पीछे पसीना आता है। इसकी क्रिया रक्तानुधावन और दोनो प्रकारकी (संज्ञावह और चेष्टावह) नाडियो पर होती है। इससे सज्ञावहनाडियोके प्रान्तोकी स्पर्शग्रहणकरनेकी शक्ति कम होती है और उनमे शून्यता आती है। इसलिए इसमे वेदनास्थापन धर्म है। घाव, दु ख-

दायक व्रण, अस्थिभग्न (काण्डभग्न) और तीव्र आमवातमें सूजी हुई संधिकी पीडा कम करनेके लिए इसके फाटका उपयोग करते हैं। अधिक दिन ज्वर रहनेसे हृदय और सम्पूर्ण शरीरमें शिथिलता आती है और वात-पित्त-कफ तीनो दोषोंका प्रकोप होता है। उक्त अवस्थामें यह उत्तेजक एवं चेतनाकारक होता है। इससे प्रलाप और अस्वस्थता कम होकर नाडी सुधरती है। कूकरखाँसी और श्वासनलिकाके संकोचविकाससे उत्पन्न श्वासमें इसका उत्तम उपयोग होता है।

•

(२९६) तज

फैमिली : लॉउरीने (Family . Laurineae)

नाम—(हिं०; गु०) तज, (यू०) Kassia (D १ १२), (अ०) सलीखा, किर्फा, (म०) त्वक्, गुडत्वक्, सैहलम्, (लै०) सीन्नामोमुम् टामाला (**Cinnamomum tamala** Nees), सिन्नामोमुम् नीटिडुम् (**C nitidum** Hooker); (अं०)सिनेमन् (Cinnamon), इण्डियन सिनेमन् (Indian cinnamon), कास्सिया कॉर्टेक्स (Cassia cortex)।

वर्णन—यह दालचीनी जातीय वृक्ष (दालचीनीसे भिन्न)की छाल है जो दालचीनीके समान किन्तु उससे मोटी और तेजीमें कम होती है। इसका स्वाद और गंध सुगन्धमय दालचीनीहीके समान, किन्तु भिन्न होती हैं। इसे 'भारतीय दालचीनी' कह सकते हैं। जलके साथ पीसनेसे यह पिच्छिलतायुक्त हो जाती है। बंगालीमें इसे 'नालुका' कहते हैं, ऐसा श्री यादवजी महाराजका मत है। बाजारमें मिलनेवाला तेजपात या तमालपत्र इसीके पत्र हैं। दक्षिण भारतवर्षमें इसके अपक्व सूखे फलको काला नागकेसर कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल, गोंद, कषायाम्ल, शर्करा और सुगन्ध तत्व आदि उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—त्वक् (छाल)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शरीरके अंग-प्रत्यंगको बलदेनेवाला, यकृदामाशयबलदायक, वातानुलोमक, संग्राही, आर्तवजनन और कफोत्सारि है। यह मसालेमें डाला जाता है। इससे आहार सुगंधित हो जाता और आमाशय बलवान् (दीप्त) होता है। मसालेके अतिरिक्त शरीरके अंग-प्रत्यंगो, विशेषकर आमाशय और यकृत्को शक्ति देनेके लिये इसका अन्य उपयोगी औषधद्रव्योंके साथ उपयोग करते हैं। इसे आर्तवप्रवर्तनकारी योगोंमें डालते हैं। संग्राही होनेके कारण दस्तोको बन्द करनेके लिए उपयुक्त औषध-द्रव्योके साथ इसका चूर्ण खिलाते हैं। प्रसेक, प्रतिश्याय और कासमें इसे अकेला या अन्य औषधद्रव्योंके साथ मधुमें मिलाकर चटाते हैं। अहितकर—वृक्कके रोगोंमें। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—दालचीनी। मात्रा—२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तज स्वादिष्ट, तिक्त, कटु (चरपरा), शीतवीर्य (रा० नि०), उष्णवीर्य (भा० प्र०), रूक्ष, लघु, पित्तजनक, कण्ठको शुद्धकरनेवाला, शुक्र और आमको शान्त करनेवाला, कफवातनाशक तथा कफ, कास, कण्डू, अरुचि, बस्तिरोग, हृदयरोग, वातार्श, कृमि, पीनस और शुक्रका नाश करता है (रा० नि०, भा० प्र०)। तजका तेल संग्राही, वान्ति (उलटी) और मिचलीको दूर करनेवाला है। दन्तरोगोको दूर करनेवाला तथा मंदाग्नि, वात, अफरा और आक्षेपका विनाशक है तथा रक्तस्राव अर्थात् रुधिरके गिरनेपर इसे पानीमें डालकर लगाना चाहिए। (आत्रेय सं०)।

•

(२९७) तमाकू

फ़ैमिली : सोलानासे (Family Solanaceae)

नाम—(हिं०) तमाकू (पु), सुर्ती, (सं०) ताम्रकूट, कलञ्ज, (बं०) तामाक (कु), (गु०) तवाकु, तमाकु, (म०) तवाखू, गुडाखु, (ता०) काट्टु पापल्लय; (लै०) नीकोटिआना टाबाकुम् (Nicotiana tabacum Linn.)। (जंगलीतमाकू) लोबेल्लिआ नीकोटिनेफोलिआ (Lobelia nicotinaefolia Heyne. ex Roth), (अं०) इंडियन टुबैको (Indian tobacco)।

वक्तव्य—इस प्रकारका तमाकू भारतवर्षमें बम्बईसे ट्रावन्कोर तक और लंकामें जंगली होता है। तामिलमें इसे 'काट्टु पापल्लय' अर्थात् जंगली तमाकू और अंग्रेजीमें 'वाइल्ड टुबैको' कहते हैं। इसके विदेशी भेदको लेटिनमें लोबेल्लिआ इन्फ्लाटा (Lobelia inflata) कहते हैं। यह अमरीकाका जंगली तमाकू है।

उत्पत्तिस्थान—यह अमेरिकाका मूलनिवासी है। अधुना भारतवर्षके सब भागोंमें इसकी खेती की जाती है। टर्की या फारसमें होनेवाली इसकी एक अन्य जाति नीकोटिआना रस्टिका (Nicotiana rustica Linn) यह उत्तरभारतके कुछ भागोंमें बोई जाती है। इसे 'कलकतिया तमाखू' कहते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध क्षुप है। इसके सूखे पत्र भारतवर्षके प्रत्येक बाजारमें खरीदे जा सकते हैं। इसकी गंध विशेष प्रकारकी और गम्भीर तथा स्वाद अप्रिय, तिक्त एवं चरपरा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें निकोटीन (Nicotine) नामक एक प्रवाही क्षारोद (रंगरहित तेल) जो विषैला होता है २-८% तथा निकोटिआनिन (Nicotianin) नामक एक उत्पत् कर्पूरीय सत्व आदि उपादान होते हैं। उपयुक्त अंग—आर्द्र और शुष्क पत्र, डंठा और पंचांग।

कल्प तथा योग—सुनून तम्बाकू आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वामक, श्लेष्मनिःसारक, वेदनास्थापन, छिक्काजनन, द्रवाकर्षणकर्ता (जाजिब रतूबात), श्वयथुविलयन, उपशोषण, दोषनिर्हरणकर्ता और कृमिघ्न है। यह विशेषरूपसे द्रवोत्सर्गकर्ता है। तम्बाकू अधिकतया हुक्कामें पीने और पानमें रखकर खानेके काममें आता है। इससे हानिके सिवाय कोई लाभ नहीं होता। हाँ, इतना अवश्य होता है कि हुक्का पीनेसे अन्त्रमें कुछ उत्तेजना उत्पन्न होती है जिससे कब्ज दूर हो जाता है और वायु अनुलोम होता है। परन्तु इसका अभ्यासी हो जाने पर कभी-कभी कठिनाई प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त कासरोगियोंमें हुक्का पीनेसे खाँसी उठकर छातीमें संचित कफ निकलकर वह शुद्ध हो जाता है। इसके पत्रको उबाल (क्वाथ) कर या जलमें पीस-छानकर पिलानेसे सर्पदंश और श्वासरोगमें बहुत उपकार होता है। इन रोगोंमें कभी गुड़ या शीरेमें बने तमाकूको जलमें घोलकर पिला देते हैं। इससे वमन होकर बड़ा उपकार होता है। श्वासकालमें इसका शर्बत बनाकर पिलाया जाता है तथा यथाविधि इसका क्षार (नमक) प्राप्त करके पानमें रखकर खिलाया जाता है। इसका हरा पत्ता कुनकुना सुहाता गरम करके बाँधनेसे वृषणशोथ और वृषणशूल आराम होता है। इसे मुखमें रखकर चबानेसे दंतशूल आराम होता है और द्रवोंको आकर्षित करके थूकके द्वारा उत्सर्गित करता है। इसके अतिरिक्त इससे एक मंजन भी बनाया जाता है जो सुनूनतंबाकूके नामसे प्रसिद्ध है और दंतशूल दूर करने और मसूढोंसे दूषित द्रव शोषण करनेके लिये प्रयुक्त होता है। इसके सूखे पत्रको बारीक पीसकर नस्य (हुलास) बनाते हैं। प्रसेक और प्रतिश्यायके बन्द हो जानेसे शिरःशूल हो जाता है, उसको नष्ट करनेके लिये इसे सूँघते हैं। तमाकूके गुलको जो हुक्का पीनेके बाद चिलममें जलकर (सोख्ता) रह जाते हैं, दोबारा जलायें, यहाँ तक कि

वह श्वेत भस्म (राख) हो जायँ। इस राखको कासश्वासमे खिलाते हैं। हुक्काकी नैमे जो मैल इकट्ठा हो जाती है उसको प्रारम्भिक मोतियाबिंद (नुजूलुऽमाऽ), रतौंधी और धुंधको नष्ट करनेके लिये आँखमे लगाते हैं। यह व्रणो को सुखाता है, दाँतोको दृढ करता और वेदनाको शात करता है। अहितकर—उष्ण प्रकृति, हृदय और मस्तिष्कके लिये। निवारण—ताजा दूध। प्रतिनिधि—प्रतिनिधि रहित। मात्रा—वमनार्थ ३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशे से ६ माशे) तक।

●

(२९८) तरबूज

फ़ैमिली कूकूरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) तरबूज, हिनवाना, कलींदा, (अ०) बित्तीख हिंदी, बित्तीख- (-शामी,-रूमी,-नवृती इत्यादि), बित्तीख अख्जर, बित्तीख जिक्की, (फा०) हिंदुवान, खरपुजए हिंदी, तर्बुज, (स०) कलिङ्ग, मासफल, तरबुज, (ब०) तरमुज, (मार०) तरबूज, (म०) कलिंगड, (लैं०) सिट्रयुलस् वुॅल्गेरिस (**Citrullus vulgaris** Schrad), (अ०) वॉटर मेलन (Water melon)।

उत्पत्तिस्थान—यह सर्वत्र भारतवर्पमें होता है।

वर्णन—एक बेलका प्रसिद्ध फल हैं। इसका गूदा सफेद या गुलाबी, मीठा और स्वादिष्ट होता है। इसमें काले या लाल चमकीले बीज निकलते है। इनको फारसीमे 'तुख्मतरबूज (हिंदुवान)' और अरबीमे 'बजुल्बित्तीख़ेल-हिंदी' कहते हैं।

रासायनिक सगठन—इसके १०० तोले बीजोमेसे ३० तोला पीला चिकना स्थिरतेल निकलता है।

उपयुक्त अग—बीजका मग्ज, फलका रस और गूदा।

कल्प तथा योग—लऊक तर्बुज, लऊक नजली आब तर्बुजवाला आदि।

प्रकृति—(फल) दूसरे दर्जेमे शीत एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन (दाहप्रशमन), पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताको शमन करनेवाला, मूत्र-जनन और सर है। दाहप्रशमन और सशमन होनेके कारण रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, तृषाधिक्य, आमाशयशोथ, उष्णज्वरो, जैसे—पित्तज ज्वर और आन्त्रिक सन्निपातज्वरमे तरबूजका रस (पानी) पिलाया जाता है। तरबूजका रस लऊकआबे तरबूजवालामे जो उर क्षत, राजयक्ष्मा और शुष्ककासके लिये प्रयुक्त होता हैं, पडता हैं, विशेषकर सिकजबीनके साथ पिलानेसे यह खूब मूत्र लाता है और वृक्क एव बस्तिका शोधन करता है। मूत्रल होनेके कारण यह वृक्काश्मरी और कामलामे भी गुणकारक है। तरबूजके मग्जको पित्तज अतिसार और अन्त्रक्षोभमें खिलानेसे उपकार होता है। अहितकर—शीतप्रकृतिको और पुस्त्वोपघाति है। निवारण—मधु और गुलकद। प्रतिनिधि—पेठा।

बीज (तुख्म तरबूज)। प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर।

गुणकर्म—शीतजनन, स्नेहन, बृंहण, उरोमार्दवकर, पित्तरक्तसशमन और मूत्रजनन है। उपर्युक्त गुणकर्मके कारण तरबूजके बीजको कार्श्य, वृक्कदौर्बल्य, रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, तृष्णाधिक्य, आमाशयशोथ, फुफ्फुस एव फुफ्फुस-प्रणाली (कसबारिया)गत कर्कशता, उष्णकास, रक्तष्ठीवन और उष्णज्वरोमे बहुधा शीरा निकालकर पिलाया जाता है। स्नेहन और दाहप्रशमन होनेसे मस्तिष्कगत रूक्षता और अनिद्रामे यह पान, लेप और नस्यकी भाँति प्रयुक्त

होता है। यह उरःक्षत और राजयक्ष्मामें तथा मूत्रल होनेसे सदाहमूत्र, सूजाक और मूत्रकृच्छ्र (उष्णता एवं रूक्षता-जन्य)में भी उपयोग किया जाता है। अहितकर–प्लीहाको। निवारण–मधु और मिश्री। मात्रा–५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ माशेसे ६ माशे) तक।

आयुर्वेदीयमत—तरबूज मधुर, शीतवीर्य, तृप्तिकारक, बल्य, वृष्य, वीर्यपुष्टिवर्धक तथा पित्त, दाह और श्रम इनका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)। कच्चा तरबूज मधुर, शीतवीर्य, भारी, बल्य, सतर्पण, पुष्टिकर, मलस्तम्भक, कफकारक तथा पित्त, शुक्र, धातु और दृष्टिका नाश करनेवाला है। पका तरबूज गरम, क्षारयुक्त, पित्त-जनक और वातकफनाशक है। (नि० र०, भा० प्र०)। तरबूजके बीजका मग्ज–मधुर, रुचिकर, बल्य और रक्त-वर्धक है। (नि० र०)।

●

(२९९) तरामीरा

फॅमिली क्रूसीफेरे (Family . Cruciferae)

नाम—(हिं०) तर (-रा) मि (-मी) रा, तारामि(-मी)रा, तिरमिरा; (यू०) Eujomon (D. 2 169.), (अ०) जिर्जीर, (सं०) तुवरिका, तुवरी (भा० प्र०), (ग्रामीण) तीरा, तिउरा, (प०) तरामिरी, (बं०) सेतसारिशा, सफेदसरसों, (कुमाऊँ, पश्चिम) तिरा, दुर्गा, (लै०) एरुका साटिवा (**Eruca Sativa Mill**), (अं०) रॉकेट (Rocket)।

उत्पत्तिस्थान—यह भूमध्यसागरीय देशोंका आदिवासी है। अधुना भारतवर्षके बहुतसे भागोंमें इसकी खेती होती है। खेतोंमें शीतकालीन फसलोंके साथ यह स्वयंजात भी होता है।

वर्णन—यह एकवर्षायु या द्विवर्षायु सरसोंके समान क्षुप है, जो शीतकालीन फसलोंके साथ खेतोंमें होता है। पौधे रोमश अथवा किंचित् मसृण काण्डवाले ७५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ से ८ इंच) लम्बे प्रायः पत्र अर्धानुत्तर पक्षवत् खण्डित, खण्ड रेखाकार—आयताकार श्वेताभ या पीताभ और बैंगनी सिराओंयुक्त पुष्पोंवाले होते हैं। इसके बीज मूलीके बीजके समान होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें तैल, ऐल्ब्युमिनाइड्स, विलेय कार्बोहाइड्रेट्स, सेलूलोज, खनिज द्रव्य और सिलिका प्रभृति उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज एवं बीजतैल।

प्रकृति—मलभूत द्रवोंसे युक्त तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आहारपाचन, वातानुलोमन, शुक्रल, वाजीकर, मूत्रार्त्तवजनन और शोणितोत्क्लेशक। तरामीराके बीजों (तुख्म जिर्जीर)को बहुधा वाजीकरणके लिये उपयोग करते हैं। इनको पीसकर थोड़ा नमकके साथ अर्धभृष्ट अण्डेपर डालकर खिलाते हैं और वाजीकर योगोंमें डालते हैं। लेखन और शोणितोत्क्लेशक होनेसे झाईं, छीप, किलास आदि रोगोंमें इसका पतला लेप करते हैं। अहितकर–उष्णप्रकृतिको। निवारण–लेखन-कर्ममें हुब्बयूसफ। मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक। बीजतैल (तुवरीतैल)का प्रयोग चर्मरोगोंमें किया जाता है।

●

(३००) ताड़

फ़ैमिली : पामासे ((Family . Palmaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) ताड, ताल; (फा०) दरख्ते ताडी, (स०) ताल, ताड, (ब०) तालगाछ, (म०, गु०) ताड, (ले०) **बोरास्सुस फ्लाबेल्लिफेर Borassus flabellifer L** (पर्याय–बोरास्सुस फ्लाबेल्लिफॉर्मिस *B flabelliformis* Rox.); (अ०) पाल्मिरा ट्री (Palmyra tree) । तालरस (हिं०, फा०) ताडी, (स०) तालरस (अ०) **पाल्मिरा टॉडी** (Palmyra toddy) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण कटिबधस्थित भाग, लका और ब्रह्मा आदि देशोमे यह लगाया जाता है और आपसे आप भी उगता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध शाखारहित बहुत बडा वृक्ष है। फल नारियलके बराबर काला और कडा होता है। फलका गूदा रेशाबहुल ललाई लिए पीला और मधुर होता है तथा खाया जाता है। वृक्षसे एक प्रकारका सफेदी लिए हुए रस टपकता है जिसको ताड़ी कहते है। इसकी गध अप्रिय और स्वाद खट्टापन लिए मीठा होता है। कच्चे फलका गूदा सफेद मासवत् और मीठा होता है।

रासायनिक सगठन—निर्यास, वसा और अॅल्ब्युमिनॉइड्स।

उपयुक्त अग—मूल, पुष्पयुक्त पुष्पदड, तालरस (ताडी), त्वचा और फल।

प्रकृति—ताडके कच्चे फलका मग्ज शीत और तर। पका फल शीत एव रूक्ष है। ताडी शीत एव तर है। सिरका पहले दर्जेमे उष्ण और तीसरेमे रूक्ष तथा पाचन है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (च०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ताडके पकेफलका मग्ज (गूदा) सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, दाहप्रशमन और वीर्यपुष्टिकर है। ताडी मदकारी (ताजी मादक नही होती), रक्तप्रसादन, सर, वाजीकर, बल्य, बृहण, दाहप्रशमन (संतापहर), मूत्रल और उदरकृमिनाशन है। ताडके कच्चे फलको काटकर उसका मग्ज निकाल लेते है। यह अत्यन्त रसीला, मीठा, स्वादिष्ट और फालूदाके समान घनीभूत होता है। बलवर्धन, सौमनस्यजनन और सतापहरणके लिए इस मग्जको चाकूसे बारीक-बारीक फाँको (काशो)मे तराशकर गुलाबपुष्पार्कमे तर करके मिश्रीसे मीठा करके खाते है। प्यास बुझानेके लिए यह अत्युत्तम है। इसके अतिरिक्त इसके सेवनसे शरीर पुष्ट होता है, किन्तु यह दीर्घपाकी (देरहजम) है। इसके पके फलोके बीजका गूदा निकालकर खानेसे खूब मूत्र आता है और मूत्रकी जलन दूर हो जाती है। ताडी बहुधा शौकिया भी पी जाती है। यद्यपि अपने मदकारी गुणके कारण यह उपयोग करने योग्य नही है; तथापि लाभकी दृष्टिसे यह पुष्कल उपयोग की जाती है। दुर्बल एव रोगोत्तरकालीन दौर्बल्ययुक्त व्यक्ति इसके उपयोगसे बलवान् और स्थूल हो जाते है। नपुसकताके रोगी भी इससे यथेच्छ लाभ प्राप्त करते है। शोक एव चिंताकुल व्यक्ति भी उनके निवारणके लिए इसको पीते है। यह उल्लास (सौमनस्य) एव सुरूर पैदा करती है। थके-माँदे व्यक्ति इसके पीनेके बाद ताजादम हो जाते और उनकी थकावट दूर हो जाती है। मलावरोधीको इसका उपयोग करानेसे मलावरोध दूर हो जाता है। इसे प्यासकी दशामें पीनेसे प्यास दूर हो जाती है। यह मूत्रकी जलनको दूर कर देती है और मूत्रका प्रवर्त्तन करके मूत्रनलिका शुद्ध करती है। इसलिए यह सूजाकमें गुणकारी है। इसे नीहारमुँह पीनेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते है। थकानको दूर करनेके लिए चायकी जगह इसका उपयोग करते है। इसके अतिरिक्त दुर्बल एव कृश व्यक्ति इसका उपयोग करके स्थूल हो जाते है।

आयुर्वेदीय मत—तालका फल मधुर, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, बृहण तथा पित्तहर है। बीज विपाकमें मधुर, मूत्रल तथा वातपित्तहर है। ताल–नारियल और खजूरके वृक्षकी मज्जा (चोटीपर होनेवाला मीठा

गूदा) रस और विपाकमें मधुर, शुक्रल, वातहर तथा कफवर्धक है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ३८, ४६)। वि० दे० 'खजूर'।

●

(३०१) तालमखाना

फ़ैमिली : आकान्थासे (Family · Acanthaceae)

नाम—(हिं०) तालमखाना(-रा); (सं०) कोकिलाक्ष, इक्षुरक, (बं०) कुलेखाडा, कुलेकाँटा, (म०) कोलसुंदा, कालसंद, तालिमखाना, (गु०) एखरो, (लें०) हीग्रोफ़िला आउरीकुलाटा (**Hygrophila auriculata** Schum.) Heine (पर्याय–*H spinosa* T And), *Asteracantha longifolia* (L) Nees.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें प्राय धानके खेतोमें अथवा उस क्षेत्रमें जलाशयोके पास इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते है। बीज (तालमखाना) सर्वत्र बाजारोमे मिल जाते हैं।

वर्णन—यह एक कँटीले, द्विवर्षायु, छोटे क्षुपके बीज है, जो औषधके काम आते है। यह छोटे-छोटे, कुछ-कुछ चपटे, विपमाकृति, भूरे, किसी प्रकार तिलकी रूपरेखाके, किन्तु उससे छोटे (बडासे वडा बीज ⅗ सें० मी० लम्बा और ⅓ से० मी० चौडा) और खाकी रगके होते हैं। स्वाद फीका और लबाबी (पिच्छिल) होता है।

रासायनिक सगठन—बीजमें काफी मात्रामें लुआब (पिच्छा–२३ प्रतिशत) एव पोटैसियम्‌के लवण होते हैं, जिन पर इसका मूत्रलगुण निर्भर होता है। इसके अतिरिक्त स्थिर पीला तेल और मासल पदार्थ (३१ प्रतिशत) होता है।

उपयुक्त अग—बीज (तालमखाना), मूल, पत्र और पचागका क्षार।

प्रकृति—शीत एवं तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदमतेन शीतवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, शुक्रस्तम्भन, वाजीकर और बृहण। तालमखाना अधिकतया शुक्रप्रमेह, स्वप्नदोष और शुक्रतारल्यको नष्ट करनेके लिये खिलाया जाता है। इसे अकेला दूधके साथ चूर्ण बनाकर खिलाते है अथवा उपयुक्त औषधियोके साथ चूर्ण और माजून बनाकर उपयोग करते हैं। अहितकर–आनाहकारक और चिरपाकी है। निवारण–मिश्री, मधु और दूध। प्रतिनिधि–सालममिश्री, सतावर और तोदरी। **मात्रा**–बीजचूर्ण–१ ५ ग्रामसे ३ ग्राम (५ से ७ ग्राम तक) या १½से ३ माशा (५से ७ माशा) तक। **पंचांगका स्वरस**–२ तोला, **मूल**–क्वाथ–४ तोला, क्षार–१से ५ रत्ती।

आयुर्वेदीय मत—तालमखाना मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, शुक्रशोधन, वृष्य, पिच्छिल, सतर्पण, बल्य, रुचिकारक तथा पित्त, कफ, अश्मरी, आमवात, शोथ, तृषा, अरुचि, वातरोग और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४, रा०नि०, भा०प्र०)।

नव्यमत—तालमखानाकी जड़ उत्कृष्ट शीतल, वेदनास्थापन, बलकारक और मूत्रजनन है। बीज–स्निग्ध, मूत्रजनन और कामोत्तेजक है। पंचागका क्षार मूत्रजनन है। जड़का काढा मूत्रजनन है तथा सूजाक और वस्तिशोथमें इसे देते हैं। जडका काढा अथवा पचागका क्षार यकृद्दुदरमें देते है। सूजाकमें इसके बीज देते है। इसके पत्र, मूल और बीज मूत्रल है तथा कामला, शोथ, आमवात, सर्वांगशोथ (Anasarca) तथा मूत्रजननेन्द्रियपथके रोगोमे इनका प्रयोग करते है।

●

(३०२) तालीसपत्र

फैमिली : कोनीफेरे (Family Coniferae, Taxaceae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) तालीसपतर, तालीसपत्ता, (स०) तालीस, तालीसपत्र, (व०, हिं०, पहाडो) बिर्मी, (प०, हिं०) बिर्मि, (गढ०, कुमाऊँ, चकरौता) थुनेर, (व०) थूनो, (क०) पोस्ति (-स्तु) ल, (बम्ब०) बर्मी, बिर्मी, ब्रह्मी, (ले०) टाक्सुस बाक्काटा (**Taxus baccata Linn**), (अ०) यू (yew)।

वक्तव्य—यह वास्तविक 'ब्राह्मी' और यूनानी निघटूक्त 'जर्नब'से भिन्न द्रव्य है। जर्नब इससे भिन्न होनेपर भी, जैसा कि जर्नबके प्रसंगमे कहा जा चुका है, प्राय यूनानी हकीमोने इसे जर्नब समझा है, यह ठीक नही है। इसी प्रकार ब्राह्मीके पर्यायोमे प्राय जर्नब नाम लिखा मिलता है, यह भी ठीक नही है। उक्त प्रमादका कारण यह जान पडता है कि, भ्रमवश प्राय हकीमोने इसे जर्नब समझा है और इसके पर्यायोमें ब्रह्मी, बिर्मी आदि नाम देखकर ब्राह्मीके पर्यायोमें जर्नब लिख दिया है। यह आयुर्वेदका '**स्थौणेयक**' हो सकता है। स्थौणेयकका उल्लेख चरक चि०अ० ३, अगुर्वादितैलमे, चि०अ० २३, मृतसजीवनी अगदमे, चि०अ० २८, बलातैलमे तथा कल्पस्थान अ० १ मे मदनफल-उत्कारिकामोदकयोगमें और सुश्रुत सू० अ० ३८मे एलादिगणमें मिलता है। बंगाल के वैद्योका तालीसपत्र इससे भिन्न है। उसे कश्मीरमे 'बुदु(दि)ल' और लेटिनमे '**आबीएस वेब्बिआना (Abies webbiana)**' कहते है। यह कोष्ठवातप्रशमन, दीपन, श्लेष्मनि सारक और ग्राही है। (औ० स०)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय, कश्मीर, पूर्वी पजाबका पहाडी प्रदेश, गढवाल आदि में ६०००-१०,००० फुटकी ऊँचाईपर अथवा अफगानिस्तानसे भूटान और खसिया पहाडी तक इसके वृक्ष होते है।

वर्णन—यह एक ऊँचे सदाहरित वृक्षके सुगधित पत्र और बारीक शाखायें हैं, जो औषधके काम आते है। पत्र दो कतारोमे वेदपत्रके समान, १ २५ से० मी० (½ इञ्च) से ३ १५ से० मी० (१॥ इञ्च) लम्बे, ⅛ से० मी० ($\frac{1}{10}$ इञ्च) चौडे, एकातर, रेखाकार, शल्याकृति, कठोर, शिराराहित, चिपटे और नुकीले तथा पिलाई लिए हरे रगके होते हैं। इसकी किसी-किसी टहनी पर पु-पुष्प भी लगे पाये जाते हैं। फलके गूदेको छोडकर शेष इसके सभी भाग मनुष्य और पशु दोनोके लिए विषैले होते है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदिके वैद्य इसके पत्रोका व्यवहार **तालीसपत्र**के नामसे करते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रमें एक उत्पत् तेल, टैनिक एसिड, गैलिक एसिड और एक रालमय पदार्थ होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे रूक्ष एवं उष्ण। आयुर्वेदमतानुसार भी उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदय, मस्तिष्क और **नाड़ी** (तन्त्रिका) अर्थात् उत्तमाङ्गबलदायक, उष्णताजनक, दीपन और वातानुलोमन। तालीसपत्रको अधिकतर हृदयको उल्लसित एव बलप्रदान करनेके लिये तथा हृदयदौर्बल्य, हृत्स्पन्दन, और अन्यान्य हृद्रोगोमे उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क और वातव्याधिमे प्रयुक्त योगोमें इसको मिलाकर खिलाते हैं। आमाशयदौर्बल्य (मदाग्नि), अरुचि आदिमें भी इसे देते हैं तथा कफज कास, कृच्छ्रश्वास और कफज हिक्कामे उपयोग करते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—सूखा धनियाँ। **प्रतिनिधि**—दालचीनी, कबाबचीनी और इलायची। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तालीसपत्र तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन तथा कफ, वात, कास, श्वास, हिक्का, क्षय, वमन, अरुचि, गुल्म, आम, अग्निमान्द्य और कृमिका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३९, ध० नि०, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—विषैला स्वभाव और अनिश्चित गुण-कर्मके कारण औषधमें इसका क्वचित् ही उपयोग होता है। किसी समय मृगीरोगके लिए यह उत्तम ख्याल किया जाता था। मात्रा (पत्रचूर्ण) ½-२॥ रत्ती तालीसपत्रके पत्र

और बीजमे एक जहरीला द्रव्य होता है जो बीजके ऊपरके लाल कोषमे नही होता । तालीसपत्र अवसाद, सकोच-विकासप्रतिवन्धक और आर्तवजनन है । अल्पमात्रामें देनेसे नाडी और श्वासकी गति कम होती हैं, मध्यम मात्रा-से श्वासोच्छ्वास शीघ्र चलता है और हृदय धडकता है, बडी मात्रासे चक्कर आते हैं, आक्षेप होता है और प्राण-नाश होता है । तालीपत्रका जहर चढनेपर वमन होता है, नशा चढता है, आँखकी तारकाएँ सकुचित होती है और श्वासोच्छ्वास मन्द होता है । आक्षेपयुक्त रोग श्वासनलिकाके जीर्ण शोथ और दमामें तालीसपत्र देते हैं ।

स्थौणेय (क) कटु, तिक्त, मधुर, स्निग्ध, सुगन्धि, पित्तप्रकोपको शान्त करनेवाला, त्रिदोषहर, रुचिकर वल-पुष्टि-मेधा-शुक्रकर तथा ज्वर, कृमि, कुष्ठ, रक्तविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध और तिलकालकका नाश करनेवाला है। (ध० नि०, भा० प्र०) ।

●

(३०३) तालीसफर

फैमिली . एरीकासे (Family Ericaceae)

नाम—(कश्मीर) तालीशफर, (अ०) तालीसफर, (नेपाल, हिं०) तालीसपत्र, (पजाब) तालीस, तालीस्त्र, (लै०) र्‌होडोडेन्ड्रॉन आन्थोपोगॉन (**Rhododendron anthopogon** D Don.) या (R **lipidotum** Royle) ।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयके ११,००० से १६,००० फुटकी ऊँचाई पर कश्मीरसे नेपाल तकके प्रदेशो-में होता है ।

वर्णन—इसका सदाहरित गधयुक्त क्षुप ३० से ७५ सें० मी० (१-२½ फुट) ऊँचा होता है जिनकी शाखाओ पर वल्कपत्र और खुरदरापन होता है । पत्तियाँ सनाल २ ५ से ३ ७५ सें० मी० (१-१।। इ च) लम्बी अण्डाकार या चौडो आयताकार, ऊपरी पृष्ठपर चमकदार और अध पृष्ठपर भूरे रोमावरणसे युक्त होती है । नेपाल और पजावके कुछ वैद्य इसका व्यवहार तालीसपत्रके नामसे करते है । पुष्प-किंचित् पीताभ । इसके सम्बन्ध-मे यूनानी द्रव्यगुणके ग्रन्योमे बहुत मतभिन्नता पायी जाती है ।

वक्तव्य—इस औषधिके परिचयके विषयमे हकीमोमे बहुत ही मतभिन्नता है । वूअलीसीनाके मतसे यह किसी 'भारतीय वृक्षकी छाल' है । (कानून १,३२८) । अलीअब्बासके मतसे यह 'भारतीय जैतून' है । (किताबुल् मलिकी सचिका २, पृ० ११६) । इब्नुलबैतार कहते है कि वहुतसे लोग इसे जावित्री (बस्बास) मानते है । इब्न जुल्जुल इसको लिसानुल्आसाफीर (Ash tree) मानते है । हुनैनने दीसकूरीदूसके माकेर (१,१११)का अनुवाद तालीसफर (इ० बै० ३९४) किया है ।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम व खुश्क, मतातरसे समशीतोष्ण ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अर्दित, वक्षवव और मुख अथवा और किसी स्थानसे रक्तस्राव होनेको लाभ पहुँचाता है । प्राय अवयवोसे द्रवास्रावको रोकता है, अतिसार बन्द करता है, अर्श तथा अन्त्रव्रणको लाभ पहुँचाता है । इसके काढेमे सिरका मिलाकर कुल्ली करनेसे दंतशूल आराम होता है । अहितकर–रूक्ष प्रकृति एव फुफ्फुसको। निवारण–रूक्ष प्रकृतिके लिये लिसोढा एव मधु और फुफ्फुसके लिये मुलेठीका सत । प्रतिनिधि–⅔ जीरा, आधा या समभाग हाऊवेर, आधी जावित्री एव तेजपात और समभाग वालछड एव गूगल । मात्रा–३ ५ ग्रामसे ४ ५ ग्राम (३० से ४० माशा) तक ।

नव्यमत—सुगधि, उत्तेजक और छिक्काजनन है ।

●

(३०४) तिपत्ती (खटकल)

फ़ैमिली जेरानिआसे (Family Geraniacea)

नाम—(हिं०) तिनपतिया, अमलोनी, विपत्ती (खट्टी), चूकातिपाती; (सं०) चाङ्गेरी, अम्लपत्रिका; (क०) सिबर्गी, चोकचिन, (बं०) आ(अ)मरुल शाक; (म०) आंबटी (अंबुटी), भुईं सर्पटी, (गु०) तीनपानकी खडी, (ते०) पुलिचित, पुल्लचेंचलि, (ता०) पुलियारै, अडाशिन; (मल०) पुलियारल्; (पं०) खटकल, सुर्चि, खट्टी बूटी; (लै०) ऑक्सालिस कॉर्नीकुलाटा (**Oxalis corniculata** Linn), (अं०) इंडियन सोरेल (Indian sorrel) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और लंका। यह बहुधा नीची और नम (आर्द्र) भूमिमें विशेषकर छोटे एव छिछले नालो या सोतो आदिके किनारे जहाँ सदा नमी रहती है, होती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र लता है जो भूमिपर पसरी हुई होती है। पत्र संयुक्त, एक दडपर तीन-तीन, हृदयाकृति और लोमयुक्त, पुष्प प्रत्येक पुष्पदडपर २ से ५ और पीले, कटोरी (आच्छादनपत्र) ५ पत्रयुक्त, फल शिम्बी, रेखाकार, लबोतरा, बहुबीजयुक्त और घनरोमावृत होता है। पौधेका प्रत्येक भाग खट्टा होता है।

उपयुक्त अंग—समस्तलता (पचाग)।

रासायनिक सगठन—इसमे समभाग चांगेर्यम्ल और जवाखार (एसिड पोटासियम् ऑक्जलेट) मिला होता है।

प्रकृति—शीत और तर, आयुर्वेदमत से उष्णवीर्य (च०, सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पित्तसशमन, मूत्रल, दीपन और उष्ण यकृद्बलदायक। इसका साग पकाकर खाया जाता है। उष्णप्रकृतियो और उष्णरोगोमें यह गुणदायक है तथा उष्ण यकृदामाशयको शक्ति प्रदान करता है। कामला-रोगमें इसका उपयोग गुणकारी है। बस्तिके ऊपर लेप करनेसे पेशाबमे उत्तेजना उत्पन्न करती है। इसके और श्वसनके पत्तोका स्वरस समप्रमाण मिलाकर अनन्तवात (असाबा)जनित शूल नष्ट करनेकेलिए नाकमें टपकाते हैं। इसे १ तोलाकी मात्रामे कालीमिर्चके कुछ दानोके साथ एक पाव जलमें पीस-छानकर पिलानेसे विसूचिका (हैजे)में लाभ होता है। अहितकर–फुफ्फुस और शीतप्रकृतिवालोको। निवारण–गरम मसाला। प्रतिनिधि–कुलफाका साग या खट्टी पालक। मात्रा–७ माशेसे १ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत—चाङ्गेरी रसमें अम्ल, कुछ कषाय, उष्णवीर्य, अग्निदीपन, ग्राही, वात और कफके लिये हितकर तथा ग्रहणी और अर्शका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—चांगेरी शीतल, रोचक, दीपन, हृद्य, पित्तशामक, दाहप्रशमन, रक्तसग्राहक, शोथघ्न और स्रसन है। इसके स्वरससे सूक्ष्म वाहिनियोका सकोच होकर रक्तस्राव बद होता है। रक्तमिश्रित आँव और गुदभ्रंशमें चाङ्गेरीका उत्तम उपयोग होता है। चांगेरीका कल्क व्रणशोथपर बाँधनेसे पीडा और दाह कम होकर सूजन उतरती है। धतूरेके विष-निवारणके लिये चाङ्गेरीका स्वरस देते हैं। (औ० स०)।

●

(३०५) तिल

फैमिली : पेडालीने (-नासे) (Family Pedalineae) (-aceae)

नाम—(हिं०) तिल, तिल्ली, (अ०) सिम्सिम्, सम्सम्, हल, (फा०) कुंजद, (स०) तिल, (ब०, म०) ति (ती)ल, (गु०) तल, (सि०) चिर, (ले०) सेसामुम् इंण्डिकुम् (Sasamum indicum Linn.), (अं०) सिसेम (Sesame), जिंजिली (Jinjili, Gingelly)। तेल (हिं०) तिलका तेल, मीठा तेल, (अ०) शीरज, दुह्नुलहल, दुह्नुस्सिमसिम; (फा०) रोगन कुंजद, (स०) तिलतैल, (म०) चोखोट तेल, (गु०) मीठा तेल, (ले०) सेसामी ओलेउम् (Sesami oleum); (अं०) सिसेम ऑइल (Sesame oil), तिल या जिंजिली ऑइल (Teel or jinjili oil)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षका निवासी है। समस्त भारतवर्षमे इसकी खेती होती है। पूर्वी और पश्चिमी अमरीकामें बोई जाती है।

वर्णन—यह ६० से ९० सें० मी० (२ से ३ फुट) ऊँचा एक वर्षायु क्षुप है जिसके बीज तिल या तिल्लीके नामसे प्रसिद्ध है। ये काला और सफेद दो प्रकारके होते है। सरसोकी भाँति इनको कोल्हूमे दबाकर तेल निकाला जाता है। यह तेल पतला और हलका पीले रगका होता है। इसका गध मद और स्वाद रोगनी होता है।

रासायनिक सगठन—बीजोमें ५० से ६० प्रतिशत स्थिर तेल तथा स्निग्ध और मासल पदार्थ होता है। तेलमें (१) सिसेमीन, (२) ऑलीइक एसिड और लाइनोलीक एसिडके ग्लीसराँइड्स और (३) फिनोलसयुक्त सिसेमोल ये तीन उपादान होते है। ताजे पत्रमें पुष्कल लवाब होता है।

उपयुक्त अग—बीज (तिल), बीजोत्थ तेल और पत्र एव मूल (पचाग)।

कल्प तथा योग—कोहल गुल कुजद।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य एव स्निग्ध (च०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृहण, पिच्छिल (मुगर्री), श्वयथुविलयन और अर्शोजात रक्तस्तभन तिलोंको वाजीकर माजूनोमें डालते है। इसके अतिरिक्त इनको शर्करा, पोस्ताके दाने (खशखश) और बादामकी गिरीके साथ खिलाते है। इससे शरीर परिबृहित (पुष्ट) होता और वाजीकरण होता है। चिकनाहट (गर्वियत)के कारण यह कास, श्वास और कठकी कर्कशता, जैसे-उर व्याधियोको दूर करता है। इसे मधुमें मिलाकर अवलेहकी भाँति चटाते है। श्वयथुविलयनके लिये इसका लेप लगाते है। अर्शोजात रक्त बन्द करनेके लिए इसका अखरोटकी गिरोके साथ खाना परम उपकारी वर्णन किया जाता है। तिलके क्षुपके पत्र और जडके काढेसे शिर धोनेसे बाल बढते और काले होते है। अहितकर-दीर्घपाकी। निवारण-भृष्ट करना, शुद्ध मधु और चीनी। प्रतिनिधि-अलसी। मात्रा-७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशासे १ तोला) तक।

तेल (रोगन कुजद)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्नेहन, बृहण और त्वचाको मृदु करता (मुलय्यिन त्वचा) है। तिल्लीका तेल घीकी भाँति आहारोमें पुष्कल उपयोग किया जाता है। यह शरीरको पुष्ट करता है और तरी पहुँचाता है। औषधकी भाँति यह शुष्ककास और श्वासमें प्रयुक्त होता है। शरीरगत रूक्षता एव कण्डू नष्ट करनेके लिये शरीर पर इसको मर्दन करते है। शरीर के अग-प्रत्यगको गरमी पहुँचानेवाले (उष्णताजनन) और वेदनाहर उपयुक्त द्रव्योको मिलाकर पक्षवध, अर्दित, आमवात आदिमें इसे इसलिये मलते है कि यह औषधोको शरीरके भीतर प्रवेश करानेमें सहायता करे। मरहमोमें घी आदिकी भाँति यह पडता है। अहितकर-चिरपाकी और आमाशयको शिथिल करता

है। निवारण–प्याजका रस या नीबूका रस। प्रतिनिधि–मीठे बादामका तेल। मात्रा–औषधरूपेण ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तिल मधुरकटु-कुछ कषाय और तिक्त, विपाकमें मधुर, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, दाँत-त्वचा और केशके लिये हितकर, बल्य, कफ-पित्तकर, साग्राहिक, व्रणमें लेपनके लिये पथ्य, मूत्र कमकरनेवाला, जठराग्नि और मेधाको बढानेवाला तथा वातहर है। तिलोंमें कालेतिल उत्तम, सफेद मध्यम और अन्य कम गुणवाले होते हैं। तिलका तेल मधुर, तिक्त कषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, सूक्ष्म, व्यवायि, पित्तको बढानेवाला, शरीरकी स्थूलता कमकरनेवाला, कफको न बढानेवाला, वातघ्न द्रव्योंमें श्रेष्ठ, बलकारक, मेधा और अग्निको बढानेवाला, त्वचाको हितकर, द्रव्यान्तर-सयोग और सस्कारसे तीनो दोषोके रोगोको हरनेवाला, तीक्ष्ण, बृहण, प्रीणन, गुरु, सारक, विकासि, वृष्य, शोधन, मार्दवकर, मासको दृढ करनेवाला, चक्षुष्य, लेखन, पाचन, कृमिघ्न, योनि-कान और सिरके दर्दको दूर करनेवाला, गर्भाशयशोधन तथा छिन्न-भिन्न, कटा हुआ, विद्ध, उत्पिष्ट, च्युत, मथित, क्षत, पिच्चित, भग्न, स्फुटित, क्षार तथा अग्निसे दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, दुर्भग्न, अहिंस्र या हिंस्र पश्वादिसे दष्ट आदि अवस्थाओमें परिषेक अभ्यग, अवगाह आदिमें प्रशस्त है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, ४५)।

नव्यमत—तिल स्नेहन, कठ्य, कफघ्न, आनुलोमिक, मूत्रजनन, वाजीकर, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, पौष्टिक, बल्य, व्रणशोधन, व्रणरोपण और केशवर्धन है। अर्शरोगमें तिलोको गरम करके अर्शके ऊपर बाँधते हैं और मक्खनके साथ मिलाकर खानेको देते हैं।

●

(३०६) तीखुर

फ़ैमिली जीजीबेरासे (Family · Zingiberaceae)

नाम—(हि०, व०) तीखुर, आरारूट, (फा०) तवाशीर; (स०) तवक्षीर (-री), त्वक्क्षीरी, तुगाक्षीरी, (म०) तवाखीर, (ब०) अरोरूट, (लें०) कूर्कुमा आगुस्टीफोलिआ (**Curcuma angustifolia** Roxb), (अ०) इण्डियन एरोरूट (Indian arrowroot)।

उत्पत्तिस्थान—प्रान्तके जङ्गलोमें इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं। छोटे पैमाने पर इसकी खेती भी होती है।

वर्णन—हलदा जातिका एक गुल्म जिसका मूलस्तम्भ ऊपर शक्वाकार और काटनेपर भीतर हलका पीला तथा बाहरकी ओर सफेद होता है। अन्तर्भूमिशायीका विकास नही होता, केवल मांसल जडोके अग्रपर कन्द बन जाते है जिनसे तीखुर (तवक्षीर या त्वक्क्षरीका अपभ्रष्ट) या आरारूट निकलता है। यह बसलोचनके समान होता है। 'वशलोचनानुकारि द्रव्यम्'—डल्हण, चक्रपाणि। रंग इसका निशास्ताके समान सफेद, किंतु उसकी तरह उज्ज्वल नही होता, नरम होता और शीघ्र टूट जाता है। इसके टुकडे निशास्तेकी तरह होते हैं, मुखमे रखनेसे शीघ्र घुल जाते है। स्वादमें यह कुछ-कुछ बसलोचनके समान होता है। उपर्युक्त क्षुपके अतिरिक्त हल्दीकी जातिकी तथा अन्य अनेक जातिके कदोसे यह प्राप्त किया जाता है। विदेशीय तीखुर जिसे 'बरमुडा ऐरोरूट या वेस्ट इंडियन ऐरोरूट (Bermuda or West Indian arrowroot)' कहते हैं। तुगाक्षीरी या मेरटा (Marantaceae)-कुलके मराटा आरुंडीनासेआ (**Maranta arundinacea** Linn) नामक क्षुपकी जडसे निकाला जाता है। इसके क्षुप ४-६ फुट ऊँचे होते और अमेरिका तथा पश्चिमी भारतीय द्वीपसमूहोमें पाये जाते हैं।

व्यापारिक आरारूट इन्हीकी जडो(Rhizomes)से निकाला जाता है जो सफेद चूर्णके रूपमें होता है और उसमे निशास्ता—पिष्ट (Starch)के छोटे-छोटे पिंड होते है। अणुवीक्षक यन्त्रमें देखनेसे ये विषमतया (Irregularly) अण्डाकार (Oval) दाने होते है जिनके बृहत्तर सिरे या मध्यभागके समीप (Hilum) होता है। औसत व्यास ३०-४० μ होता है। उपर्युक्त भारतीय तीखुर इसके प्रतिनिधि रूपमे व्यवहार किया जाता है।

प्रकृति—सर्द और रूक्ष।

गुण तथा उपयोग—स्निग्ध (Demulcent), अक्षोभक और पोषणकर्ता। रोगसे दुर्बल हुए रोगियो तथा शिशुओके लिये बहुत ही उपादेय, उत्तम एव लघु पथ्य है। इसे दूध या पानीमे पकाकर स्वादके लिये चीनी, नीबूका रस या कोई सुगन्ध या एसेंस मिलाकर सेवन करते है। आधपाव तीखुरके लिए ६ माशा काफी होता है। मुखपाक या जिह्वाके विदारमें इसका सेवन उपकारक है। मूत्रकृच्छ्र, औपसर्गिक पूयमेह, हृत्स्पन्दन, पेचिस और हृद्दाहमें यह गुणकारी है तथा दन्तकृमिको नष्ट करती है।

●

(३०७) तुम्बरू

फैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—फल (हिं०) नेपाली धनियाँ, तुम्ब(बु)रु, तुबुल, तुमरु, तेजफल, (अ०) फागिर, (फा०) कबाबेहे खदाँ, कबाबेहे दहनकुशाद (-शिगाफ्त), फाखिर, (पश्तो) डम्बरे; (स०) तुम्ब(म्बु)रु, (ब०) तम्बुल, नेपाली धने; (प०) कबाबा, तुबरू, तीमरू, (म०) नेपाल धनिया, ति(चि)रफल। वृक्ष—(हिं०) तेजबल, (स०) तेजस्विनी, तेजोवती, (लै०) जान्थोक्सीलुम् आलाटुम् (**Zanthoxylum alatum** Roxb), (अ०) इण्डियन प्रिक्ली ऐश (Indian Prickly Ash), टूथ-एक ट्री (Toothache tree)।

उत्पत्तिस्थान—यह सूडान और जेरबादसे आता है और समशीतोष्ण हिमालयमें २ से ५ हजार फुटकी ऊँचाईपर तथा हरद्वार, भूटान, नेपाल, खसिया पर्वत और दार्जिलिंग जिलेमें भी सामान्यतया होता है।

वर्णन—उत्तरभारतीय नेपाली धनिया एक गँठीली, काँटेदार जगली झाडीका प्रसिद्ध फल है जो देखनेमें धनियाके समान और कबाबचीनीसे बडा, बडे धनियेके बराबर, प्राय आधे तक बीचसे खुला या फटा हुआ (फागिर, दहनशिगाफ्ता), खाकी और मुश्की रंगका होता है। इसमें एक डंडी लगी होती है। इसके भीतर छोटा-सा गोल काला और चमकदार बीज होता है। गध प्रिय, स्वाद तीक्ष्ण एव तीव्र और सुगन्धित होता है। हिमालयसे आनेवाला ताजा फल कुछ हरे रगका होता है। इसकी चटनी पीसकर खानेके साथ खाते हैं। यह स्वादमें अम्लता लिये तीक्ष्ण और थोडा-सा सुगधित होता है। फलके ऊपर तेलयुक्त रालसे भरी हुई सूक्ष्म ग्रथियाँ और भीतर कागज जैसा परदा होता है। दक्षिण भारतमें इसका भेद जान्थोक्सीलुम् बुदरंगा **Zanthoxylum budrunga** Wall. (पर्याय—*Z rhetsa* DC) होता है जिसको 'तिरफल' या 'चिरफल' कहते है।

उपयुक्त अग—बीजरहित फल, छाल और मूल। मात्रा—(फल) ० ६ से १ ३ ग्राम (५ से १० रत्ती), (त्वचा और मूल)—१ से ३ ग्राम (१ से ३ माशा)।

रासायनिक सगठन—छिलके (Bark) में एक उत्पत् तेल, राल (और बार्बेरीनकी तरहका एक तिक्त क्रिस्टली द्रव्य) तथा फलमें एक अनुत्पत् तेल, राल एक पीला अम्लसत्व और जान्थोक्सिलिन (Zanthoxylin) नामक

एक क्रिस्टली ठोस तत्व पाया जाता है । तेलमें रंग नही होता, परन्तु मनोहर सुगन्ध होती है। इस तेल और विरोजेकी सघटना समान होती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदमतसे तेजवल (कै० नि०) और तुम्बरु (ध० नि०) दोनों उष्णवीर्य हैं ।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह एक सुगन्धित द्रव्य है। इसका सूँघना और खाना मस्तिष्क एव हृदयवलदायक है। यह शीतल आमाशय और यकृत्का शक्ति देता है, पाचनशक्तिको बढाता, वायुका उत्सर्ग करता और मलावरोध उत्पन्न करता है। यह बहुधा आमाशय और यकृत्के शीतल रोगोमें प्रयुक्त होता है तथा दस्तोको वन्द करनेके लिये खिलाया जाता है। सुगधित होनेके कारण मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिये इसको मुखमें रखकर चवाते हैं और मस्तिष्कके शीतलरोगो मे भी उपयोग करते हैं। इसके खानेसे प्यास बुझती है। मुखपाकमें इसके स्वरस या काढेसे कुल्ली करनेमे उपकार होता है। इससे हकलापन भी दूर होता है। अहितकर–गिर शूलजनक है। निवारण–नीलूफर और कपूर। प्रतिनिधि–कवावचीनी। मात्रा–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशे से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तेजवल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक तथा वात, कफ, श्वास, कास, हिक्का और मुखके रोगोको नाश करनेवाला है। तुम्बरू कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, दीपन तथा कफ, वात, शूल, अपतन्त्रक और पेटके अफारेका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २, वि० अ० ८, कै० नि०, ध० नि०)। तेजवलकी छाल और तुम्बरूको दांतोके मजनोमे डालते हैं। चरकने अपतन्त्रकके लिये 'तुम्बर्वादि चूर्ण' लिखा है। योग—तुम्बरू, हड, हीग, पुष्करमूल, सैंधव, कालानमक और समुंदरनमक समभागका चूर्णकरके यवमडके साथ हृद्ग्रह और अपतन्त्रकमे देवे (च० सि० अ० ९) ।

नव्यमत—तुम्बरु सुगन्धि, उष्ण, दीपन, पाचन, ग्राही, वातहर और उत्तेजक है। इसकी क्रिया युकेलिप्टस तेल और गधाविरोजेके समान होती है। कुपचन और अतिसारमें इसे देते हैं। ज्वरमे मूलकी छालका फाण्ट देनेसे उत्तेजना आती है और ज्वर कम होता है। व्रणवालेको फलोका चूर्ण खानेको देते है और व्रणपर बुरकते हैं। मूलके क्वाथसे दुष्टव्रणको धोनेसे व्रणका शोधन होता है। तुम्बरूके अन्दरका उत्तेजक द्रव्य त्वचाके मार्गसे बाहर निकलता है, इसलिये श्लेष्मत्वचा (कला) तथा व्रणकी शुद्धि होती है और ज्वरमे पसीना आता है। तिरफलकी जडकी छाल सुगन्धित, मूत्रजनन और कटुपौष्टिक है। इसे आँतोके शैथिल्यसे होनेवाले कुपचनमें देते हैं। दाँतोकी पीडामे और लकवेमे जीभका हलन-चलन ठीक न होता हो तब तिरफलकी छाल चवानेको देते हैं। आमवातमे इसे देते हैं। इससे शरीरका दर्द कम होता है। पेटका दर्द और अफरा, अजीर्ण, कुपचन तथा अतिसारमें इसे देते हैं। इसे और अजवाइनका बाष्पके साथ निकाला हुआ तेल हैजेमें देते हैं।

●

(३०८, ३०९) तुरई (मीठी व कड़ुई)

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family · Cucurbitaceae)

नाम। तोरई—(हिं०) तुरई, तोरई, तरोई, तोरी, (स०) झिंगाक, धाराकोषातकी, घोषा, झिंगा, धुदुल; (क०) तुरेल, (प०) तोरी, (मा०) तोरु, तूरी, (गु०) तुरया, तुरीआ, (म०) शिरोलें, दोडके, (ता०)पेप्पीर्क्कम्, (मल०) काट्टपीच्चिंच, (ले०) लूफ्फा आकूटांगुला (**Luffa acutangula** (L) Roxb)। घियातोरई (हिं०) घियातोरी (–तुरई), नेनुआँ, (स०) राजकोषा(शा)तकी, धामार्गव, (व०) धुदुल, (प०) घियातोरी, (मा०) घीयातुरी, (गु०) गोसली, गलका, (म०) घोसाले, घडघोसडी, (ले०) लूफ्फा सीलींड्रिका **Luffa cylindrica** (L)

Roem (पर्याय–*L Aegyptica* Mill)। कडवी तरोई–(हिं०) कटतुरइआ, कडवीतुरई; (स०) कोषा(शा)तकी, कृतवेधन; (व०) तेंतोधुदुल; (गु०) कडवांतुरीआं, (म०) कडुतुरई, कडु दोडके, रान दोडके (तुरई), (काठियावाड) कडवीघोसोडी, (लै०) लूफ्फा आकूटांगुला प्र० अमारा (**Luffa acutangula** (L) Roxb. var **amara** (Roxb) C B Cl, (अ०) बिटर लुफ्फा (Bitter Luffa)।

उत्पत्तिस्थान—तुरई और घीयातुरई भारतवर्षके अनेक भागोमें वोई जाती है। कडवी तुरई जगली होती है।

वर्णन—तुरई लताजातीय वनस्पतिका प्रसिद्ध फल है, जिसकी तरकारी पकाकर खाई जाती है। यह तीन प्रकारका होती है—(१) तुरई–इसके फलपर लवाईके रुख उभरी हुई रेखाएँ होती है। इसे अर्रा तुरई कहते है। इनके फल कडुईकी अपेक्षया वडे होते है। इसका साग वनाकर खाते है।

(२) घिया तुरई—इसका वाहरी छिलका मसृण और समतल होता है। इसमें भी मीठी और कडुई दो जातियाँ होती है। कडुईका औषधके लिए व्यवहार होता है और मीठेका साग वनाकर खाते है। (३) कडवी (वल्ख) तुरई—इसका प्रत्येक अग कडुआ होता है। फल अत्यन्त तिक्त तीव्र विरेचन और वामक होता तथा खानेके काम नही आता है। यह जगलमे स्वयजात होती है।

उपयुक्त अग—फल।

रासायनिक सगठन—इसके वीजरहित सूखे फलमे इन्द्रायनमें पायेजानेवाले कॉलोसिंथीन नामक सत्वके समान एक सत्व और एक लुफ्फीन (Luffein) या कोपातकीन नामक सरेशी सत्व होता है। वीजमे गहरे भूरे या ललाई लिए भूरे रगका स्थिर तेल होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सतापहर और किसी कदर मूत्रल। इसको अकेला या मासके साथ पकाकर खाते है। उष्ण प्रकृतिके लोगो और उष्ण व्याधियोमें यह सर्वोत्तम पथ्य शाक है। घिया (लौआ)की अपेक्षया यह शीघ्रपाकी है। सूजाक, रक्तमूत्र, अर्श और उष्ण (पित्तज) ज्वरोमे अकेला तरोई पकाकर खिलाना श्रेयस्कर है। घियातरोई अर्रातोरईकी अपेक्षया आनाहकारक होती और श्लैष्मीय द्रव उत्पन्न करती है। अहितकर–आनाहकारक और शीतप्रकृतिवालोके लिये अहितकर है। निवारण–गरम मसाला। प्रतिनिधि–लौआ।

आयुर्वेदीय मत—कडुई तोरई वमन और विरेचन करानेवाली, अत्यन्त तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा प्रवल कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोथ, गुल्म और गर (विष) आदिमे प्रशस्त है (उनका नाश करनेवाली है)। (च० सू० अ० १, २, क० अ० ६)। मीठीतुरईका शाक अतिलघु, हृद्य तथा रक्तपित, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, काम और अरुचिको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। तुरईके बीजोंका तेल कटु, कटुविपाक, तीक्ष्ण, लघु उष्णवीर्य, सारक तथा वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)। जगली (कडवी) घियातोरई (धामार्गव) वमन करानेवाली है। कफके सचयसे होनेवाले गुरु और स्थिर विकारोमें जव वायु कफके आशयोमें सचित हुआ हो तथा कफ, कठ और मुँहमें स्थित हो तव तथा गर, गुल्म और खाँसीमें इसका प्रयोग करना चाहिए (च० सू० अ० १, २, क० अ० ४७, सु० सू० ३९, ध० नि०)। मीठी घियातोरई त्रिदोषहर तथा ज्वरके अन्तमें हितकर है। (ध० नि०)। कड़वी घियातोरईके गुणकर्म कडवी तोरईके समान है।

नव्यमत—जगली तोरई तिक्त, दीपन, मूत्रजनन, विरेचन, वामक, उदरहर, शिरोविरेचन, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषघ्न है। इसे अल्प प्रमाणमे देनेसे भूख लगती है, दस्त साफ होता है और उदरस्थ अवयवोकी

क्रिया सुधरती है। मध्यममात्रासे विरेचन होता है और मूत्रका प्रमाण बढता है। बडी मात्रामें देनेसे पानी जैसे दस्त होते हैं। बीजकी गिरीकी क्रिया इपिकाकुआनाकी तरह होती है। जो व्रण सडने लगे हो उन्हे धोनेके लिए इसका शीतकषाय बहुत गुणकारक है। इससे व्रणकी शुद्धि होकर व्रण शीघ्र भर जाता है। अधकपारी (कफज), सिरका दर्द और कामलामें फलके शीतकषायका नस्य देनेसे शिरोविरेचन होकर उपकार होता है। यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर और यकृत्की विकृतिसे उत्पन्न जलोदरमे इसका सुरासव (टिंक्चर) हितकारक है। आरम्भमे बडी मात्रा देकर पीछे दस्त और पेशावका प्रमाण देखकर मात्रा घटानी-बढानी चाहिए।

●

(३१०) तुरमुस

फैमिली लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(अ०, फा०, मा० बाजार) तुर्मुस, तिर्मुस, बाकलाए मिश्री, (यू०) थरमोस (Thermos) D 2. 132), (लै०) लूपीनुस् आल्बुस (**Lupinus albus** Linn), (अं०) ह्वाइट लूपीन (White lupine)।

उत्पत्तिस्थान—मिस्र और लेवाटका आदिवासी है। भारतके कुछ भागोमे तथा दक्षिण यूरोप, मिस्रादि देशोमें बडे पैमानेपर इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक सगठन—बीजमे लूपीनीन, लूपीनीडीन एव लूपीमीन–ये तीन ऐल्केलॉइड्स पाये जाते हैं। बीजक्वाथ मधुमेहियोमे शर्करा सहनकी शक्ति बढाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और उदरकृमिनाशक। तुरमुसके बीजका मग्ज निकालकर श्वयथुविलयनके लिये लेप करते हैं। व्यग और किलासको नष्ट करनेके लिये तथा चेहरेका रग निखारनेके लिये इसका पतला लेप (तिलाऽ) करते हैं। कृमिघ्न औषध-द्रव्योके साथ इसे उदरजकृमियोको नष्ट करनेके लिये खिलाते हैं। आर्तवजननके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। जलोदर, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पक्षवध, अर्दित और कास तथा श्वासजनक दोषोको विरेक द्वारा उत्सर्गित करता है। अहितकर–गुरु और चिरपाकी। निवारण–सातर फारसी और लवण। प्रतिनिधि–बाकला और खरबूजेके बीज। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

●

(३११, ३१२) तुलसी

फैमिली : लाबिआटी (Family : Labiateae)

वक्तव्य—यहाँ तुलसीके भेदोका वर्णन किया जा रहा है—(१) जगली तुलसी ममरी और (२) राम-तुलसी।

जगली तुलसी—

नाम—(हिं०) जगली (बन) तुलसी, बबुई, बाबरी, न्याजबो, ममरी; (यू०) ओकीमून Okimon; (अ०) रैहान, हूक (इ० बै० १७९), बाजरूज (अरबीकृत), (नब्ती) बादरूज, (फा०) बादरूक, बादरू (-य), तरए खुरासानी,

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयको उल्लसित करता और उसे शक्ति प्रदान करता है। हृद्रोग विशेष (तरस्सुर गन्ध)के लिये लाभकारी है तथा प्यास बुझाता है।

रामतुलसी—

नाम—(हिं०,ब०) रामतुलसी, (अ०) फरजमिष्क, (स०) फणिज्जक, (म०) रानतुलस, (गु०) रान (-म) तुलसी, (लै०) ऑसीमुम् ग्राटीस्सीमुम् (**Ocimum gratissimum** Willd.)।

वक्तव्य—फारसीमे 'पलंगमिश्क' 'फ(रि)रंजमिष्क' अरबी बनाया गया है। किसीने इसी फैमिलीके ड्राको-सेफालुम् मोल्डाविका (**Dracocephalum moldavica** Linn) नामक क्षुपके बीजोको 'तुख्म फिरंजमिष्क' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष तथा ईरान।

वर्णन—यह रैहांकी जातिका एक बहुवर्षायु क्षुप है जो कमर भर ऊँचा होता है। इसका पौधा और पत्ते रैहांसे अधिक बडे होते हैं और उनसे रैहांकी तरह सुगध आती है। कांड चौकोर और लोमयुक्त, पत्र बडा, दतित,

लोमयुक्त और सुगन्धित होता है। फूलकी मजरी बडी और अपरिमित होती है। वीज हरापन लिए पीले, भूरे या काले तिकोने लगभग $\frac{1}{12}$ इञ्च लम्बे, जीरेकी आकृतिके, होते है। भिगोने पर ये पारदर्शक लबावसे आवृत हो जाते है। स्वाद हल्का चरपरा होता है।

उपयुक्त अग—पत्र और वीज (तुख्म फरजमिश्क)।

रासायनिक संगठन—इसमे पतला सोनेके रगका एक पीला तेल होता है जिसमे कार्वोलिक अम्ल और थायमोल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयवलोल्लासकारक, प्रमाथी, शीतल, यकृदामाशयवलदायक, वातानुलोमन, अन्त्रशूलहर (मुसक्किन मग्स), कोथप्रतिवंधक, उदरस्तभक, उपशोषण, रजोरोधक, विशेषकर मस्तिष्क सशोधन और यकृदामाशयवलदायक। हृदयवलोल्लासकारक होनेसे यह दिलकी धडकन (खफकान), वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास) और इनके अतिरिक्त अन्यान्य हृद्रोगोमें प्रयुक्त होती है। अवरोधोद्घाटक होनेसे यह नथुनोके अवरोधोको खोलती और शीतल शिर शूलमें लाभ प्रदान करती है। दीपन और वातानुलोमन होनेसे यह अन्त्र और आमाशयके रोगोमे प्रयुक्त होती है। मुखमें चवानेसे यह मुखकी दुर्गन्ध दूर करती और मसूढोको मजवूत बनाती है। रूक्षण होनेसे यह वीर्यको सुखाती है। अहितकर–शिर शूलजनक। निवारण–गुलवनफसा और सिकजबीन। प्रतिनिधि–बिल्लीलोटन। बीजका तुख्मवालगू। मात्रा–५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक।

नव्यमत—यह पूतिहर, व्रणरोपण, वेदनास्थापन और कुछ मूत्रजनन है।

●

(३१३, ३१४) तूत (स्याह व सफेद)

फैमिली : मोरासे (Family Moraceae)

नाम—(हिं०, अ०, फा०, व०) तूत, (स०) तूद, तूत, (क०) तूल, (गु०) शेतूत, शे (से) तूर, (मा०) सहतूत, (म०) तूत, (कु०) किमु, (का०) तुखु, (नेपाल) किमू, किंबु, (भूटान) सिंगतोक, (ले०) मोरस इण्डिका (**Morus indica** Linn), (अ०) इण्डियन मलबेरी (Indian Mulberry)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयपर यह जगली होता है। कश्मीर, पजाब, वगाल और ब्रह्मामे इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक बडे वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो ३ अंगुलसे ४ अगुलतक लम्बा होता है। यह दो प्रकार का होता है। एक पिलाई लिये सफेद, लम्बा और स्वादमे मीठा होता है। इसको तूतसफेद या तूत नब्ती, लेटिनमें मोरुस आल्वा (**Morus alba** Linn) और अगरेजीमें व्हाइट मल्बेरी (White Mulberry) कहते है। दूसरा ललाई लिये काला (हरा, लाल या काला) स्वादमे खट्टा होता है। इसको तूत स्याह या तूत शामी, लेटिनमें मोरुस नीग्रा (**Morus nigra** Linn) और अगरेजीमें ब्लैक या पर्पल मलबेरी (Black or Purple Mulberry) कहते है। यही 'शहतूत'के नामसे प्रसिद्ध है। वलूचिस्तानमे इसे लगाते है। इसके फलोपर रेशमके कीडे पलते हैं।

उपयुक्त अग—फल, पत्र, मूल और छाल (यह रेचक है)।

रासायनिक सगठन—फलमे शर्करा, पेक्टिन, सायट्रेट्स, मलेट्स आदि द्रव्य होते है।

तूत सफेद (शीरी-मीठा)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं तर (मतांतरसे तर दूसरे दर्जेमें)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (कै० नि०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—नवरोगोत्पादक, प्रकृतिमार्दवकर (सर), मस्तिष्कस्नेहन, उर.फुफ्फुसबलदायक, दोषपाचनकर्ममें अंजीरके समान है, परन्तु प्रबल दोषकी ओर शीघ्र बदल जाता है और आमाशयके लिये अहितकर है। यद्यपि [illegible] गुणकर्ममें सफेद तूत काले तूतके समान है, तथापि औषधरूपेण बहुधा काले तूत (तूत स्याह)का उपयोग होता है। यह शरीरको मोटा करता और रूक्षता दूर करता है। यह कण्ठरोगोंमें प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—मीठा तूत बल और अग्निको बढानेवाला तथा पित्त और वायुका शमन करनेवाला है। (ध० नि०; कै० नि०)।

तूत स्याह (तुर्श-खट्टा)—

प्रकृति—शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन, शीतग्राही, दोषविलोमकर्ता (विशेषकर कच्चातूत), दोषतारल्यजनन, अवरोधोत्पादक, रक्तकी तीक्ष्णताका शामक, स्निग्ध, स्वरयन्त्र और कण्ठके उष्ण शोथका विलयन और जड़कीछाल उदरकृमिनाशक है। स्वरयन्त्र और कण्ठके उष्ण शोथका विलयन होनेसे यह गलेका दर्द, कण्ठशोथ (खुनाक), रोहिणी ([illegible]), [illegible], [illegible], मुखपाक और तालुकंटक (ज़ुकूर दहान)में लाभदायक है। इन रोगोंमें शहतूतका स्वरस निकालकर या [illegible] पिलाया जाता है। अथवा केवल उसके रससे या उसमें हरे धनियाका रस या काहूबीजका रस या [illegible] मिलाकर कवल या गण्डूष कराया जाता है। उक्त रोगोंको दूर करनेके सिवाय यह स्वरयन्त्र और कण्ठकी ओर दोष आनेको भी रोकता है। शीतजनन होनेके कारण यह प्यासको शमन करता और रक्तकी तीक्ष्णताको निवारण करता है। पित्तल प्रकृतिके लोगोंमें यह आमाशयके लिये अहितकर नही है। इसके पत्र और जड़के काढ़ेसे गण्डूष करनेसे भी स्वरयन्त्र और कण्ठगत शोथमें लाभ होता है। जडका काढा स्फीताकार-कृमिनाशक है, विशेषकर उस समय जब इसके साथ शफतालूके पत्र मिला लिये गये होते हैं। तूतकी छाल और [illegible] दन्तशूल भी आराम होता है। अहितकर—उरोव्याधि और वातनाडीको। निवारण—मधु और अनारका रस। प्रतिनिधि—[illegible]। मात्रा—ताजा तूत ५ से १० तोले तक खा सकते हैं। परन्तु इसका स्वरस २ तोलेसे ५ तोले तक और सत (रुब) १ तोलासे ३ तोले तक उपयोग कर सकते हैं।

आयुर्वेदीय मत—मधुराम्ल तूत, गुरु, सारक, वातपित्तहर, दाहप्रशमन तथा वृष्य है। (ध०नि०, कै०नि०)।

●

(३१५, ३१६) तेंदू और माकातेंदू

फ़ैमिली · एबेनासे (Family Ebenaceae)

नाम–तेंदू–(हिं०) तेंदू (द), तेन, केंद (दु), (अ०, फा०) आबनूसे हिंदी, (स०) तिन्दुक, (खर०) तेंद; (कों०, मथा०) तिरिल; (गु०) टीबरवो, टेंबु(भु)णी, (लें०) डिओस्पिरॉस मेलानॉक्सीलॉन (**Diospyros melanoxylon L**)। माकातेंदू (हिं०) काला (माका) तेंदू, गाव, (स०) काकतिन्दुक मर्कटतिन्दुक, (बं०) गाव, (संथा०) मकरकेंद, माकाकेंद, (कों०) मेन्दु, गाडातिरिल, (लें०) डिआस्पिरॉस पेरेग्रिना (**Diospyros peregrina**) (Gaertn) Gurke (पर्याय–*D embryopteris Pers* , *D malabarica* Desr), (अं०) इंडियन पर्सिमोन (Indian Persimon)।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष। प्रान्तके उत्तरी भागको छोडकर सर्वत्र यह वृक्ष पाया जाता है। माका-तेंदूके वृक्ष प्रान्तके मध्य भागमें प्राय नदीनालोके किनारे पाये जाते है।

वर्णन—यह एक मझोले कदके वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो लड्डुकाकृति गोल या अडाकार व्यासमें २ ५ से ३ ७५ से० मी० या १—१·५ इच (आमलेके बराबर), चिकना पकनेपर पिलाई लिये और स्थायी वाह्यकोश-से युक्त होता है। इसके सिर पर बैंगनके समान टोपी होती है। इसकी छाल और लकडो काली होती है। लकडी-के भीतरका सार काला और वजनदार होता है। इसकी दूसरी जाति (माकातेंदू)के फल व्यासमे ६ २५ सें० मी० से ७ ५ सें० मी० (२ ५—३ इच) गोल और रक्तकिट्टावरणसे ढका रहता है। कच्चे फलका गात्र ईंटके चूर्णके समान एक पदार्थ (किट्टावरण)से ढँका होनेके कारण रगीन दिखाई देता है। कच्चा फल हरियाली और कालाई लिये और अत्यन्त कसैला होता है। पकाफल ललाई लिये पीला और मीठा होता है और इसके भीतर आठ या कम शरीफाके समान वृक्काकृतिके बीज गूदासे सश्लिष्ट होते हैं। फलमज्जा (गूदा) प्राय बन्दरोको बहुत प्रिय होती है। अत इसका मर्कटतिन्दुक नाम अन्वर्थक ही है।

रासायनिक सगठन—फलमे टैनिन, पेक्टिन और द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज), कच्चे फल, फूल और छालमे विपुल प्रमाणमे टैनिन होता है।

तेंदू (फल)—

प्रकृति—कच्चा फल शीत एव रूक्ष और पका फल अनुष्णाशीत (मोतदिल) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसग्राही और शुक्रस्तम्भन। प्रधान गुण वीर्यपुष्टिकरण है। कच्चे तेंदूका चूर्ण अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्योके साथ अतिसार बन्द करने और शुक्रप्रमेह, शुक्रतारल्य एवं शीघ्रपतनको नष्ट करनेकेलिये खिलाते हैं। अहितकर—अन्त्र और आमाशयके लिये। निवारण—दूध और तेल (स्नेह)। प्रति-निधि—कठजामुन। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—निघटुओमें इसका समावेश फलवर्गमे किया गया है। कच्चा तिन्दुक कषाय, ग्राही, वातप्रकोपक (सु०) और पक्व फल, मधुर, विपाकमे गुरु तथा कफ और पित्तनाशक है। (सु० सू० अ० ४६, च० सू० अ० २७)। चरकने इसे रसमे कषाय, मधुर और लघु लिखा है। तेंदूकी लकडीका सार पित्तरोगनाशक है (नि० र०)।

नव्यमत—तेदूका अपक्व फल कषाय, सग्राही, वातकारक और श्लेष्मल होता है। पक्वफल मधुर, स्निग्ध, दुर्जर तथा छाल सग्राहक और वल्य मानी जाती है। गाब(माकातेंदू)की फलमज्जा बन्दरोको बहुत प्रिय होती है। बीजतैल तथा फलमज्जा पुराने आँव और अतिसारमें उपयोगी होती है। भीतर या बाहरके रक्तस्रावके रोकने मे भी इनका उपयोग होता है।

●

(३१७) तेजपात

फैमिली : लाउरीने (Family : Laurinae)

नाम—(हिं०) तेजपात, तेजपत्ता, (यू०) Melabathron (D 1. 11), (अ०) अल्-साजजुल् हिन्दी (इ० बै०), साजज हिन्दी, (स०) पत्र(क)म्, (लै०) सिन्नामोमुम् नीटिडुम् (**Cinnamomum *nitidum*** Hooker), (अ०) इण्डियन सिन्नेमन (Indian Cinnamon)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके उष्णकटिबन्धस्थित भाग, सयुक्तप्रान्त, बगाल और ब्रह्मा आदि।

वर्णन—यह दालचीनीकी जातिके, पर उससे भिन्न, एक जगली वृक्षके प्रसिद्ध सूखे पत्ते है, जो औषधके काममें आते है। ये सुगन्धित एव स्वादमें तीक्ष्ण (चरपरे) होते है।

रासायनिक सगठन—पत्रमे एक उत्पत् तेल यूजीनोल (Eugenol), टर्पीन (Terpene) और सिन्नैमिक ऐल्डीहाइड (Cinnamic aldehyde) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एव पिच्छिल (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मन प्रमादकर मस्तिष्कबलदायक, दीपन, वातविलयन, मूत्रार्तवजनन, लेखन, कोथप्रतिबंधक, शीतल, शोफहर और विशेषत आमाशयबलदायक है। सौमनस्यजनन औषधकी भाँति तेजपातको हृदयोद्वेष्टन (वजउल्फुवाद) और हृदयदौर्बल्य जैसे हृद्रोगोमें प्रयुक्त करते है और वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास), उन्माद, विराग (वहशत) जैसे मस्तिष्करोगोमें खिलाते है। आमाशयदौर्बल्य, पाचनदौर्बल्य, उदरशूल, अन्त्रशूलमें और अन्त्र एवं गर्भाशयगत वायुके उत्सर्गके लिये इसका उपयोग करते है। मूत्रार्तवजननके लिये इसको सिरकामे पीसकर उदर और पेडूपर लेप करते और आन्तरिक उपयोग करते है। सव्रणनेत्रशूल (फूली), पक्ष्मशात, दृष्टिमाद्य (धुन्ध) और अर्म (नाखूना)के दूर करनेके लिये अकेले या अन्य औषधियोके साथ सुरमाकी भाँति बारीक पीसकर आँखमें लगाते है। वस्त्रको सुवासित करने या कीटोसे सुरक्षित रखनेके लिये उसमें तेजपातको रखते है। कक्षा और वक्षणस्थ दुर्गन्ध दूर करनेके लिये उसको महीन पीसकर सिरकामे मिलाकर उक्त स्थलोपर लेप करते है। मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिये इसे मुखमें रखकर चबाते है। शीतल शोथोके विलयनके लिये इसका लेप करते है। अहितकर—वस्ति और फुफ्फुसको। निवारण—मस्तगी और विहीका शर्बत। प्रतिनिधि—बालछड और तज। मात्रा—क्वाथमें ३ से ४ ग्राम (३ से ४ माशे) तक, चूर्ण और माजूनके रूपमे २ ग्राम (२ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—तेजपात कुछ मधुर पिच्छिल, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा कफ, वात, अर्श, हृल्लास, अरुचि और पीनसको दूर करनेवाला है। (भा० प्र०)।

नव्यमत—तेजपात कफ और आमप्रधान रोगो तथा उदरमे वायु भरना, उदरशूल, अतिसार आदि पाचन-सस्थानके रोगो और गर्भाशयकी शिथिलतामें इसे देते है।

●

(३१८, ३१९, ३२०) तोदरी (तुदरी) सफेद, सुर्ख व जर्द

फ़ैमिली : क्रूसीफेरे (Family : Crucifereae)

नाम—(फा०) तो(तु)दरी; (अ०) बज्रुल् खुमखुम, बज्रुल् हुब, कसीस, (ले०) **लेपीडिडम् इबेरिस (Lepidium iberis Linn)**, (अं०) पेपर-ग्रास (Pepper-grass), पेपरवर्ट (Pepper-wort)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोपमे साइबेरिया तक और फारसमे तथा हिमालयके पजाबादि स्थानोमे इसके पौधे होते है। बीजका आयात यहाँ फारससे होता है।

वर्णन—यह एक कँटीली क्षुद्र वनस्पतिकी क्षुद्र फलियोके प्रसिद्ध बीज है जो रगके विचारसे तीन प्रकार के होते है—सुर्ख (लाल), जर्द (पीला) और सफेद। तोदरी लाल 'तुदरिये सुर्ख'को तोदरी गुलगूँ भी कहते है। पीली तोदरी (तुदरिएजर्द) शेष उभय भेदोसे उत्कृष्टतर होती है। सफेद तोदरी (तुदरिये सफेद) लाल भेदकी अपेक्षया रगमें केवल कुछ हलका लाल होती है। इसका भूरा भेद कभी-कभी तोदरीस्याह (काली तोदरी) नामसे

बाजारमें मिलती है ? इनमें सफेद सबसे बडी और अधिक चपटी होती है। बीज मसूराकार, किंतु उससे बहुत क्षुद्र किंचित् चपटे होते है। पानीमें भिगोने पर ये लबावसे घनावृत हो जाते है।

उपयुक्त अंग—बीज।

रासायनिक सगठन—बीजोमे तोदरीन (Lepidin) नामक एक अक्रिस्टली (Amorphous) तिक्त सत्व, एक उडनेवाला तेल और गधक (Sulpher) होता है।

प्रकृति—सफेद और पीली उभय प्रकारकी तोदरी दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमे तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, शुक्रल, स्तन्यजनन उष्णताजनन, दोषतारल्यजनन, श्लेष्मनिष्ठीव-नोत्सर्गकर्ता, शीतलामाशयवलदायक, वृहण और लेप श्वयथुविलयन है। वाजीकर, वृष्य, वृहण और स्तन्यजनन होनेसे अकेले इसका चूर्ण या इसके साथ अन्य औषधद्रव्य मिलाकर दूधके साथ खिलाते है। इन प्रयोजनोंके लिए यह पुष्कल उपयोग की जाती है। श्लेष्मनि सारक होनेसे कास, श्वास और कृच्छ्रश्वासमें यह अवलेहकी भांति उपयोग की जाती है। उर फुप्फुसको यह सान्द्र दोषोंसे शुद्ध करती है। शोफघ्न होनेसे इसका लेप सूजन उतारता है। यह जननांगोमें गर्मी पहुँचाती है। अहितकर–दाह और घबराहट उत्पन्न करती है। निवारण–क्वाथ करना और पानीसे तर करना। प्रतिनिधि–लाल और सफेद बहमन। मात्रा–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

नव्यमत—तोदरी पौष्टिक, मूत्रजनन श्लेष्मनि सारक और शोणितोत्क्लेशक है। श्वासनलिका शोथमें कफ निकालने और कम करनेके लिए इसका फाट देते है। इससे मूत्रका प्रमाण बढता है। इसके बीजोका दबाकर निकाला हुआ तेल सन्धिवातमे मलते है। इससे त्वचा किंचित् लाल होती है।

●

(३२१) थकार

वर्णन—यह मनुष्यके आकारका एक वृक्ष है, जो बंगालमें विपुल होता है। शाखायें गँठीली और विकीर्ण होती है। इसके प्रत्येक गाँठपर एक या दो बारीक शाखाएँ होती है जिनपर छोटे-छोटे पत्र लगे होते है। स्वादमें ये तिक्त और कषाय होते है। फूल छोटा सफेद रगका होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—स्वेदन और वेदनाहर। श्लेष्मज्वर और अगवेदना (विशेषत हस्तपादकी वेदना)में खिलाते तथा इसके काढेका बफारा देते है। सुनरा थकारके पत्र ७ ग्राम से १० ग्राम (७ माशे से १० माशे) तक थोडीसी आदीके साथ पीसकर खिलाते है। इससे खूब खुलकर स्वेद आता है और कफज्वर तथा अगवेदना नष्ट हो जाती है। इसके पत्तोको जलमे क्वाथ करके अगघात और अगवेदनाके रोगियोको इसका बफारा देते है जिसमे पसीना आ जाय। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–शीतल और तर द्रव्य। मात्रा–७ ग्राम से ९ ग्राम (७ माशे से ९ माशे) तक।

●

(३२२, ३२३, ३२४) थूहर

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) थूहर (ड), सेंड, सेहुँड, (अ०) ज़क़ू (वक़ू)म, जर्उल्कल्ब, (स०) स्नुही, सेहुण्ड; (ब०) मनसा गाछ (सिज्), (म०) निवडुंग, काँटेनिवडुग, (गु०) थोर, (काठियावाड) कटालो, (प०, मा०) थोर। डडा थूहर—(हिं०) सेहुँड, थूहर, (ब०) मनसासिज, पातसीज, (गु०) थोरकँटालो, (म०) मिनगुट, वईनिवडुग, (लै०) एउफॉर्बिआ निवूलिया (**Euphorbia nivulia** Ham)। त्रिधारा थूहर (हिं०) तिधारा सेहुण्ड या थूहर, (अ०) जक्कूमे हिंदी, (स०) स्नुही, वज्री, वज्रकटक, (ब०) तेकाटासिज, त्रिशिरामनसा, (म०) तीनधारीनिवडुंग, (गु०) तनधारी थोर (सँड) (लै०) एउफार्बिआ आटीक्वोरम् (**Euphorbia antiquorum** Linn), (अं०) ट्रैंगुलर स्पोन्ज (Triangular Sponge)।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक क्षीरी वनस्पति है जिसके तने और शाखाओ पर काँटे होते है। यह कई प्रकारकी होती हैं, यथा—**डंडाथूहर, तिधाराथूहर, चौधाराथूहर, अंगुलिया थूहर** (E **tirucalli** Linn), नागफनी (Cactuses) थूहर इत्यादि। मात्र थूहर शब्दसे डडा थूहर, तिधारा और चौधारा थूहर विवक्षित होते है। डडा थूहरका तना और शाखाएँ गोल होती है। तिधाराका तना और शाखाएँ तिपहलू (तिधारा) तथा चौधाराका चौपहलू होता हैं।

उपयुक्त अग—दूध, कोमल शाखा और पत्र।

रासायनिक सगठन—इसमें युफॉर्बोन, राल, निर्यास, रबड (काउच्चूक), मैलेट ऑफ कैल्सियम् आदि द्रव्य होते हैं।

-- प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और तीसरेमें रूक्ष, दूध चौथे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, त्वग्रागकारक, व्रणकारक, श्लेष्मविरेचनीय और श्लेष्मनि - सारक। थूहरके दूधको तिलाके योगोमे डालकर हस्तमैथुनीके शिश्नपर तिला करते है। यह रक्तको बाहरी त्वचाकी ओर आकर्षित करके उसको रंगयुक्त (सुर्ख) बना देता है और निरतरके उपयोगसे व्रण उत्पन्न कर देता है। अत शिश्नमे इसके उपयोगसे उत्तेजना और उच्छ्राय उत्पन्न होता है और शक्ति जागृत हो उठती है। इसकी कोमल शाखाओको पुटपाककी विधिसे पका (मुशव्वी)कर निचोडते और उसमे समभाग तिलका तेल मिलाकर अग्निपर पकाते है। जब तेलमात्र शेष रह जाता है तब उसे उतार-छानकर आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पक्षवध और अर्दितमे इस तेलकी मालिश करते हैं। इसी प्रकार पत्तोका स्वरस निचोडकर भी तेल तैयार करते और उक्त रोगोमें मर्दन करते है। पत्तोको गरम करके उनका रस निचोडते और समभाग पालकजूहीकी जड मिलाकर गोलियाँ बना लेते हैं। आवश्यकतानुसार गोलीको थूहरके पत्रस्वरसमे घिसकर दद्रु पर लगाते हैं। केवल थूहरका दूध लगानेसे दद्रु आराम हो जाता है। कर्णशूलनिवारणके लिये इसके पत्तोका गुनगुना रस कानमे टपकाते हैं। दतशूल मिटाने और दाँतोको शीघ्र उखाडनेके लिए विकृत दाँतपर इसका दूध टपकाते है। इसका दूध कफविरेचन होनेसे फिरग (आतशक), आमवात, जलोदर और कुष्ठमें उपयोग किया जाता है। बारीक किये हुए निसोथ या चनेके आटेको थूहरके दूधमें गूँधकर चनाप्रमाणकी गोलियाँ बाँधकर रोगीके बलाबलके अनुसार खिलाते हैं। इससे विरेक होकर रोगजनक दोष उत्सर्गित हो जाता है। यह कफजकास और श्वासमे भी खिलाया जाता है। इससे यथाविधि क्षार (नमक)भी बनाया जाता है जो कफजकास, श्वास और जलोदर मे लाभकारी है। अहितकर—उष्णप्रकृतिके लिये। निवारण—दूध। प्रतिनिधि—हर एक दूसरेका प्रतिनिधि हैं। मात्रा—दूध ½ बूँदसे १ बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—पाडुरोग, उदर, गुल्म, कुष्ठ, दूषीविष, शोथ, मधुमेह और दोपज उन्मादमें वलवान् रोगीको थूहरका प्रयोग करना चाहिए। थूहरका क्षीर—दूध तीक्ष्णविरेचन है; इसलिए मृदुकोष्ठवालेको दोप अल्प हो और अन्य उपायसे रोगी अच्छा हो सकता हो तो इसका प्रयोग नही करना चाहिये। तीक्ष्ण और अधिक काँटेवाले सेहुँडके दो या तीन वर्षके वृक्षमे शस्त्रसे छेद करके क्षीर लेना चाहिये। (च० सू० अ० २५, च० क० अ० १०, अ० स० क० अ०, सु० सू० अ० ३८, ३९)।

नव्यमत—सेहुँड्के दूधको अण्डेकी जर्दीके साथ रेचनार्थ देते है। सेंकी हुई पत्तियोका स्वरस, नमक और गायका घी बच्चोकी खाँसीमे दिया जाता है। कोल इसके दूधको ज्वरमे तीव्ररेचनके रूपमे देते है। तिधारा थूहर कफघ्न, ज्वरघ्न, रेचन और रक्तशोधक है। इससे कफ पतला होकर मुख और गुदाके द्वारा निकल जाता है। बालकके कफरोगमें तिधारे थूहरका वहुत उपयोग करते है। इसके साथ अड़ूसा, शह्द और शुद्ध सोहागा दे सकते है। मूलका काढा जीर्ण आमवात और उपदशमें देते है। थूहरकी जातिमे जो दाहजनक द्रव्य होता है वह इसमें अल्पप्रमाणमे होता है।

उपयुक्त अग—मूल और डडा। डडेके टुकडेको गरमकर कुचल और निचोडकर रस निकालना चाहिये। मात्रा–वच्चोके लिये १½—३ माशा, वडोके लिये १½—२ तोला (सेहुँड (डडा थूहर) थूहरकी जातिमे जो दाहजनक विष होता है वह इसमे अधिक होता है। सेहुँडका दूध तीव्र रेचन है। इससे वमन और पानीके समान दस्त होते है। उदररोगमें कालीमिर्चके चूर्णको सेहुँडके दूधमें भिगो गोली वनाकर देते है। सेहुँडके मूल और कालीमिर्च-का चूर्ण सूतिकाज्वरमे देते है। मात्रा—मूल चूर्ण २—४ रत्ती, पत्रस्वरस २—५ वूँद और क्षीर ½—१ रत्ती।

●

(३२५) दम्मु(-मु-)ल् अख़वैन

फैमिली : लीलिआसे (Family . Liliaceae)

नाम—(हिं०) हीरादोखी, खूनखरावा, (अ०) दम्मुल्अख़्वैन, दम्मुत्तिन्नीन, दम्मुश्शोअबान, क़ातिरुद्दम, ऐदअ, (फा०) खूनसियावशाँ, (स०) रक्तनिर्यास (नवीन), (क०) खुनखाँरा, (म०, बम्ब०) हिरादखण, (गु०) हीरादखण, (ले०) ड्राकेना सिन्नाबारी **Dracaena cinnabari** Balf (पर्याय—Sanguis draconis), (अ०) ड्रैगन्स ब्लड (Dragon's blood)।

उत्पत्तिस्थान और भेद—सकोतराद्वीप और कनारीद्वीपमे होनेवालेको ड्राकेना ड्राको (Dracaena draco) कहते है। जजीवार या सिंगापुरी हीरादोखी तालजातीय (Palmae) डोमोनोरॉप्स ड्राको **Doemonorops draco** *Blume*. (पर्याय–कलामस ड्रैको = *Calamus draco*) नामक वृक्षसे प्राप्त होता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध गोद है जो निलाई लिये हुए लाल (गभीररक्त) रङ्गका गोल डलियो के आकारका होता है। इसके यह तीन भेद है—(१) चकीदा (मुकत्तर), (२) तुराबी और (३) मुअत्तर (खशबी)। भारतवर्षमे इसका निर्यात अरवस्तान और अफरीकासे बम्बई होकर सकोतरा द्वीपसे होता है। यह सर्वोत्कृष्ट मुकत्तर स्वच्छ रक्तवर्ण होता है। जो पीसनेपर अति रक्तवर्णका और काष्ठरहित हो उसको औषधके काममे लेना चाहिये। अन्य भारतवर्ष और अफरीका आदिसे आते है।

वक्तव्य—इसके स्वरूपके विपयमे यूनानी चिकित्सकोमें बहुत कुछ आशका हुई है। अस्तु, किसीने इसे 'बकमनिर्यास (समग बकम)' लिखा है, किसीने 'उसारए हूचोबा' और किसीने 'किसाउल्हिमारका उसारा'

लिखा है जो सर्वथा निराधार है। गीलानीने जो लिखा है कि यह एक नीलाभ रक्तवर्णका गोद है जिसे हिंदमहासागर स्थित सकोतरी द्वीपसे लाते है, यथार्थ है। उन्होने इसके पूर्वोक्त तीन भेद लिखे हैं। यूरोपमे पहले तो अफ्रीका और जमैकाकी काइनो आती थी। परन्तु सन् १८११ ई० में उसके स्थानमें मलाबार-काइनो जाने लगी और अधुना भी यही जाती है। भारतवर्षमें इसके स्थानमें दम्मुलअख्वैन्, कमरकस और पलासनिर्यास (Butea kino) प्रयुक्त की जाती है। दे० 'विजयसार'।

रासायनिक सगठन—गोदमें लोबानाम्ल (बेंजोइक एसिड) और सिन्नैमिक एसिड होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आन्तरिक उपयोगसे दम्मुल्अख्वैन अन्त्रपर प्रबल सग्राहक कर्म करती है। बाहरीतौरपर सद्यःव्रणोपर छिडकनेसे यह रक्तस्रावको रोकती है और जख्मोको अतिशीघ्र सुखाती है। यह अतिसार और प्रवाहिकाको बन्द करनेके लिये उपयोग की जाती है। यदि रक्त भी आता है तो उसे रोकनेके लिये भी इसे खिलाते है। रक्तष्ठीवन, अत्यन्त रज.स्राव और अर्शोजात रक्त बद करनेके लिये भी इसे देते है। रक्त-स्राव रोकनेके लिये इसे सद्य.व्रणोपर छिडकते और नेत्रव्रणमें बारीक खरल करके नेत्रमें लगाते हैं। इसका प्रधान गुण समस्त अगो और आशयोके रक्तका स्तम्भन करना है। अहितकर—वृक्कके लिये। निवारण—कतीरा और बबूल का गोद। प्रतिनिधि—धोया हुआ शादनज। मात्रा—१ से १ ५ ग्राम (१ माशा से १½ माशे) तक।

●

(३२९) दरूनज अकरबी

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(अ०, भा० बाजार) दरूनजे अकरबी, (ले०) डोरोनिकुम् पार्डालीआन्केज **Doronicum pardalianches** (पर्याय–*D scorpioides*), (अ०) लेपर्ड्स बेन (Leopard's bane)।

वक्तव्य—इसकी एक भारतीय जाति डोरोनिकुम् रॉयलेई (**Doronicum roylei** DC) या डोरोनिकुम् हूकेरी (**D hookeri** Clarke) की जडको भी पजाबमें दरूनज अकरबी कहते है। यह पश्चिमी हिमालयमें १०,००० फुटकी ऊँचाईपर कश्मीरसे गढवाल तक होती है। 'दरूनज', फारसी 'दरून' या 'दरूनक' से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—यह यूरोप, सीरिया, श्याम और अफरीकामें पुष्कल होती है और वहाँ अकरबीके नामसे पुकारी जाती है।

वर्णन—यह एक वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड (पाताली धड) है जो छोटी गँठीली, कडी, बाहरसे खाकस्तरी (मटि-याली) और भीतरसे सफेद होती है। बाहरसे देखनेपर यह बिच्छूकी पूँछके समान दिखती है, इसलिये दरूनज अकरबी (अ० अकरब = बिच्छू) कहलाती है। स्वाद इसका प्रारम्भमें फीका, किन्तु कुछ मिनटोके उपरान्त जिह्वा पर उष्णता एव चुभनकी-सी प्रतीति होती है। रूमी और फारसी भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। इनमें रूमी उत्तम है, विशेषकर वह जो किसी कदर तिक्त, सुगन्धित, कडी और अन्दरसे सफेद हो। इसमें दस वर्ष तक वीर्य शेष रहता है।

उपयुक्त अग—जड।

रासायनिक सगठन—इसमें औषधीयवीर्यकी अपेक्षया पोषणतत्व अधिक होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, यकृदामाशयबलदायक, उष्णताजनन, कफसौदाविलयन, साद्रवातानुलोमन, गर्भाशयशूलहर, गर्भरक्षक और विषोऱ्‍न अगद (विषघ्न) हैं। हृदयबलोल्लासकारक होनेसे इसकी गणना हृद्रोगोकी प्रधान औषधियोमे होती हैं। शीतल हृत्स्पदनके लिये यह परम गुणकारी है और इन्ही गुणकर्मो के कारण दवाउल्‌मिस्कका एक उपादान यह भी है। कफसौदाविलयन और उष्णताजनन होनेके कारण सौदा और कफजन्य रोगो, जैसे—पक्षवध, अर्दित और वातिक उन्माद (मालीन्खोलियाए मराकी) आदिमें यह अन्य औषध द्रव्योके साथ प्रयुक्त होता हैं। साद्रवायुका अनुलोमन होनेके कारण यह उदरानाह, वायुजन्य उदरशूल और वातज गर्भाशयशूलको नष्ट करता हैं। गर्भरक्षक होनेके कारण गर्भरक्षक माजूनोमे इसको भी डालते है। विषघ्न होनके कारण मरक (वबाई) रोगो विशेषकर प्लेगमे और वृश्चिक एव अन्य विलेशायी विषधर जन्तुओ (हवाम्म)के दशमे पान और लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—शिर शूलजनक। निवारण—सौंफ। प्रतिनिधि-नरकचूर (जुरबाद)। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

●

(३२७) दवाएजुनून (धवलबरुआ)

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family . Apocynaceae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) सर्पगन्धा, धवलब(म)रुआ, पागलकी बूटी (जडी)–(उ० प्र०), धनमरवा, ईशरगज, चदमरवा (बिहार), (ब०) चाँदड (र), चाँद, छोटाचाँद, छोटी चंदन; (म०) अडकई, (अ०) दवाउज्जुनून, दवाउश्शिफा (नवीन), (फा०) दवाए जुनून, (स०) जम्बू (रा० नि०), सर्पगन्धा ? (ले०) राउवॉल्फिया सेर्पेन्टीना (**Rauwolfia serpentina** Benth ex Kurze)। इसकी एक दूसरी जाति भारतवर्षके नम एव उष्णप्रदेशोमे उपर्युक्त उद्भिज्जके साथ-साथ उगी हुई मिलती है। यह बगाल विशेषकर चौबीस परगनाके जिलो और हवडामे पुष्कल तथा उडीसा एव उत्तरप्रदेशके बनारस तथा चुनार आदि स्थानोमें भी मिलती हैं, जहाँ इसे 'पागलकी बूटी' कहते है। परन्तु बिहारमे इसके मिलनेका उल्लेख नही मिलता। इसके नाम, गुणधर्म तथा उपयोग आदि सभी उपर्युक्त औषधिके सर्वथा समान है। इसे लेटिनमे राउवॉल्फिआ कानासेन्स (**Rauwolfia canascens** Linn) कहते हैं।

वक्तव्य—इसका जातिगत नाम 'राउवॉल्फिआ' सोलहवी शतीके जर्मन पर्यटक और चिकित्सक 'रॉवुल्फ'के नामपर रखा गया। आयुर्वेदमे चरकमे इसका कोई उल्लेख नही मिलता केवल सुश्रुत उ० त० अ० ६० के अमानुषोपसर्गाध्यायमे मानसरोगहर अपराजितादिगणमें सर्पगन्धाका उल्लेख, उन्माद आदि मानसरोगहरणार्थ पान-नस्यके रूपमे मिलता है। भाष्यकार डल्लणने इसके परिचयमे 'वर्षासु छत्राकार'के अतिरिक्त और कुछ नही लिखा है। केवल इतने ही से इसे धवलबरुआ मानना उचित नही जान पडता। क्योकि यदि इतने उपयोगी एव गुणदायी ओषधिका ज्ञान प्राचीनोको होता तो उनके द्वारा इसका अनेकविध प्रयोग किया हुआ मिलता। इससे ज्ञात होता है कि भ्रमवश धवलबरुआके लिए इसका प्रयोग प्रचलित हो गया है। सर्पगन्धा वस्तुत 'ईश्वरी' या 'ईश्वरमूल' का नाम हैं और उसीके लिए इसका प्रयोग होना चाहिए। धवलबरुआका विवरण राजनिघण्टूक्त 'जम्बू'से अधिक मिलता है, ऐसा श्रीभागीरथस्वामीका मत है, जो ठीक प्रतीत होता है। यूनानीके प्राचीन ग्रन्थोमे धवलबरुआका उल्लेख नही मिलता, केवल आधुनिक ग्रन्थोमें इसका उल्लेख मिलता है। अस्तु, इसके अरबी-फारसी नाम नवीन एव इसके गुणोको ध्यानमे रखकर दिये गये है। 'सर्पगन्धा' जो संस्कृत नाम जैसा लगता है, वस्तुत 'बाजारू नाम' है।

उत्पत्तिस्थान—यह बिहार, नेपालकी तराई और बगालमे विपुल मात्रामे तथा उत्तरप्रदेशके देहरादून, गोरखपुर आदि स्थानो और कोकणमे अल्पप्रमाणमे होता है।

प्राप्तिस्थान (मण्डी)—कलकत्ता, पटना, भागलपुर और काठमाण्डू (नेपाल)से इसकी जड़ अन्य स्थानोको भेजी जाती हैं। आजकल प्राय. सब बडे शहरोके पसारी लोग इसे वेचनेके लिये रखते हैं।

वर्णन—इसके सुन्दर, चिकने और २-३ हाथ ऊँचे गुल्मक होते हैं। काण्ड स्वाश्रयी, पत्तियाँ आमने-सामने अथवा चक्रित, प्रत्येक सन्धिमें ३-४ आयताकार या अभिलट्वाकार और ३-७ इञ्च लम्बी होती हैं। पुष्प छोटे श्वेत या जामुनी छाया लिये हुए लाल रगके, आभ्यन्तर नाल प्राय टेढा और आपद्म और कण्ठमें प्राय घनरोमश; फल रक्ताभ और अन्तमे काले, व्यासमें २५–५" इञ्च अर्थात् मटर जितने बडे और दो बीजोवाले होते हैं, मूल लगभग १०–१२ इञ्च लम्बे, अगुली जितने मोटे, बाहरसे भूरा-सफेद, भीतरसे पिलाई लिए सफेद और भगुर, स्वाद अत्यन्त तिक्त, गन्ध विशेप प्रकार की, मूल तोडने पर भीतर गोल चक्र और केन्द्ररेखा स्पष्ट दिखती हैं।

उपयुक्त अंग—जड (विशेषकर ताजी जड अभावमें सूखी) और क्वचित् पत्रका भी उपयोग होता है।

रासायनिक सगठन—इसमें अजमलीन और सर्पेन्टाईन नामक दो समूहके क्षाराभ जो इसके कार्मुक प्रभावाश (प्रधान वीर्य) हैं, पाये जाते हैं। इनमें प्रथम समूह अजमलीन–अजमलीन १ प्रतिशत, अजमलीनीन ·०५ प्रतिशत और अजमलीसीन ०२ प्रतिशत, इन तीन सफेद मणिभीय कमजोर मौलिक उपादानोका यौगिक है और द्वितीय समूह सर्पेन्टाइना एव सर्पेनटाइन १% तथा सर्पेन्टाइनीन ०८ प्रतिशत इन दो चमकदार एव मणिभीय दृढ़तर मौलिक उपादानोका यौगिक हैं। इनके अतिरिक्त इसमें राल, पिष्ट, गोद और लवण ये तत्व वीर्यमे इसमें होते हैं। इसकी दूसरी जाति में रॉवुल्सीन (Rauwolscine) नामक क्षाराभ पाया जाता है जो मूलत्वक् में ० १ प्रतिशत, काडत्वक्में ० २ प्रतिशत और पत्रमे ० २ प्रतिशत होता है। इसके अतिरित्त इसमें रिसर्पीन (Reserpine) नामक क्षाराभ भी होता है।

कल्प तथा योग—मूलचूर्ण, पत्रस्वरस, रसक्रिया (सर्पगन्धाघन), दवाएज़ुनून (दबाउश्शिफा), सर्पगन्धाघनवटी, सर्पगन्धादि घनवटी, करामाती गोलियां, सर्पगन्धा योग, सर्पगन्धाचूर्णयोग आदि।

प्रकृति—उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तिक्त, क्षुधाजनक (क्षुद्बोधक), सारक, उत्तम निद्रालानेवाला और उत्तेजनाशामक हैं। आजकल अधिकतया नाडीशामक औषधिके रूपमे ही इसका अधिक उपयोग होता है। अस्तु, नाड्युत्तेजन (वातप्रकोप)के कारण होनेवाले रोग, जैसे–उन्माद, अपतन्त्रक और अपस्मारके लिये यह असीम गुणकारक एव आशुफलदायक सिद्ध हुआ हैं। इसके मूलका चूर्ण उपयुक्तमात्रामे सेवन करनेसे अच्छी नीद आती है और उन्मत्तताका ह्रास होता है; इसलिए अनिद्रा एव उन्माद रोगमें इसका उपयोग होता है। किन्तु उन्मादके सब रोगियो को इससे लाभ नही होता। खूब उत्तेजित और वलवान् रोगीपर इसका प्रयोग करना चाहिए। दुर्वल, निस्तेज और मनोऽवसाद(Melancholy)ग्रस्त रोगीपर सावधानीसे इसका प्रयोग करना चाहिए। इन रोगियोके रक्तके दबाव की परीक्षा करके यदि वह अधिक हो तब ही इसका प्रयोग करना चाहिए। जिन उन्माद रोगियोका रक्तका दबाव कम हो उनको इससे लाभ नही होता। बनारस, बिहार और बगालके लोग प्राचीनकालसे उन्माद और अनिद्रामें इसका प्रयोग करते आ रहे हैं। अत वास्तवमें यहाँसे ही अन्य लोगोने इस रहस्यका ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दुस्तानी दवाखाना दिल्लीकी दवाउश्शिफा या दवाएज़ुनून नामक उन्मादकी प्रसिद्ध औषधि अर्थात् 'दवाउज्जुनून' भी छोटी चन्दनके सिवाय और कुछ नही हैं। प्रारम्भमे केवल इसका चूर्णही इस नामसे बेचा जाता था। किंतु इसकी रासायनिक परीक्षा एव विश्लेपण हो जानेके बाद जब इसका क्षारीय प्रभावाश (क्षाराभ) प्राप्त कर लिया गया तब फिर

अब यह सत्व ही दवाउश्शिफाके नामसे विक्रय किया जाता है। इसका क्षाराभ हृदयपर अवसादक क्रिया करता है और सूक्ष्मरक्तवाहिनियो का विकास–विस्फार करता है। इसलिए रक्तका दवाव (ब्लडप्रेशर) कम होता है। अस्तु, उच्चरक्तचाप (हाईब्लडप्रेशर) की यह अव्यर्थ महौषधि है। रालकी रक्तके दवावपर कोई क्रिया नही होती, परन्तु उसके द्वारा नीद आती है। इसका क्षाराभ गर्भिणीके जरायुका सकोच अर्गटके समान ही करता है। इसलिए प्रसवोत्तर १-१ माशाकी मात्रामें इसे दिनमें तीनवार देते हैं। गर्भाशयोत्तेजक होनेके कारण यह अनियमित ऋतुके लिये गुणकारी है। प्रवल ज्वरमें इसका सेवन करनेसे अशांति और मोह दूर होता है, अच्छी नीद आती है, प्रलाप दूर होता है, आँखोका वर्ण स्वाभाविक होता है और साथ ही ज्वरका वेग भी कम होता है। उकसाइट (जिकावते हिस) दूर करनेका गुण होनेसे यह स्वप्नदोप एव शुक्रप्रमेहके लिये भी गुणकारक है। अकारण लिंगोत्थानसे जिनको निद्राभग और सिरमे दर्द होता हो तथा सूजाक (औपसर्गिक पूयमेह)के परिणामस्वरूप अत्यन्त ध्वजोच्छ्रायसे शिश्न टेढा होता हो, उनको यह फलप्रद है। इसकी क्रिया स्त्री और पुरुष दोनोपर समान होती है। सर्प और वृश्चिक आदिके दशमें इसका सामान्यरूपसे उपयोग होता है। शोप वा फलक एव नेत्रशुक्लमें भी इसका उपयोग होता है। नेत्रशुक्ल (फूली)मे इसकी पत्तियोका दो तीन बूँद रस पिचकारी (ड्रॉपर)के द्वारा डालनेसे लाभ होता है।

मात्रा—रक्तका दवाव कम करनेके लिये २½–५ रत्ती, नीद लानेके लिये ५-१५ रत्ती, उन्माद और प्रवल अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) के लिए १॥–३ माशा तक।

अनुपान—जल, दूध या गुलावके फूलोंका अर्क। इसका चूर्ण १-३ माशा (अथवा ३ से ६ माशा) ५ तोले गुलाबके अर्कमे ३-४ घण्टेतक भिगोकर, या रात्रिका भिगोया प्रात और प्रात कालका भिगोया सायकालको रख देवें। पीछे इसे खूब हिलाकर पिलाये अथवा ठटाई-जैसा पीसकर पिलाये। यदि चाहे तो ४–६ माशे मिश्री भी इसमे मिला सकते है। तीन-चार रत्तीकी अल्प मात्रामे सेवन करना हो, तो फांककर ऊपरसे अर्कगुलाव आदि पीकर सरलतासे निगला जा सकता है। इसके चूर्णकी गोलियाँ अर्कगुलाव या पानीसे वनाकर अथवा यथाप्रमाण कीचेटमे डालकर सरलतासे उपयोग कर सकते हैं। यन्त्रकी सहायतासे इसकी वनाई हुई गोली या चक्रिका (टिकिया) भी प्रयुक्त हो सकती हैं, जिन्हे निगल लेना अत्यन्त सरल होता है। आराम होनेपर मात्रा घटा देनी चाहिये और फिर २-२ या ३-३ दिनके अन्तरसे दवा देनी चाहिये। पथ्य केवल दही-भात खिलावें। मास तथा गरम एव उत्तेजक पदार्थोंसे परहेज करे। अहितकर—पित्तप्रकृतिवालोको (वातकफवालोके लिये उपयुक्त)। निवारण—अर्क गुलाव।

●

(३२८) दानक

वर्णन—अमीनुद्दौलाके मतसे लाल तोदरी जैसा, किंतु उससे छोटा एक बीज है। इसका क्षुप एक वालिश्तके बरावर होता है।

उत्पत्तिस्थान—तवरिस्तानके पर्वतो तथा उस ओरके अन्यान्य प्रदेशोमे उत्पन्न होता है।

प्रकृति—गरम एव तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लैष्मिक एवं सौदावी रोगोमे गुणकारी है। ग्रन्थोमें लिखा है कि १४½ तोलेसे २९ तोले तक पीसकर दुगुने गेहूँके आटेमे मिलाकर रोटी पकाकर खानेसे खूब तैयारी आती है। इसे योनिमे धारण करनेसे गर्भ रह जाता है। गर्भ रहनेकी दशामे योनिमे रखनेसे गर्भ गिर जाता है।

●

(३२९) दामीसाका गोद

वर्णन—शीराजकी ओर होनेवाला एक वडा और कांटेदार वृक्ष है। इसका गोद ललाई लिये हुए तिक्त एवं कटु होता है।

प्रकृति—गरम एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह समस्त गुणधर्मोमे हीगका प्रतिनिधि है। भेद केवल यह है कि यह हीग जैसा दुर्गन्धित नही है। यह उष्ण, तारल्यजनन (मुलत्तिफ), वातविलयन, पाचन, आमाशयगत द्रवोका शोषक है तथा अन्त्रगत शीतको निवारण करता और वातज दतशूलका लाभ पहुँचाता है। मात्रा—१३ ग्राम (१३ माशे)।

०

(३३०) दारु(रू)हलदी

फ़ैमिली · बेर्बेरिडासे (Family Berberidaceae)

नाम—वृक्ष एव काष्ठ (हिं०) दारु(रू)हलदी, (अ०, फा०) दारहल्द, (फा०) दारचोबा, (स०) दारुहरिद्रा, दार्वी, पीतदारु, (व०) दारुहरिद्रा, (म०) दारुहलद; (गु०) दारुहलदर, (वम्ब०) दारहलद, (ने०) चित्रा, कष्मल; (गढ०) किंगोडा, तोतरा, (क०) कावटच्छमूल, दालिद्धर, (प०) दारहल्दी, खिमलू (पहाडी इलाका), (लै०) (१) बेर्बेरिस आरिस्टाटा (**Berberis aristata DC**), (२) बेर्बेरिस आशिआटिका (**Berberis asiatica** Roxb), (अं०) एशियाटिक बार्वेरी (Asiatic Barberry)। घन-रसक्रिया (हिं०) रसवत, रसोत, रसौत, (यू०) Lukion (D. I. 132), (अ०) अल्हुजुज (इ० बै०), हुजुजे हिन्दी, खोलान, फीलज़हज, (फा०) फी(पी)लजह्र., (स०) रसाञ्जन (च०, सु०), (म०, व०) रसाजन; (गु०) रसवन्ती; (ने०) रसवन्ती, (सिंध) रसवल, (लै०) एक्स्ट्राक्टम् बर्बेरिडिस (Extractum Berberidis), (अं०) एक्स्ट्रैक्ट बर्बेरिस (Extract Berberis)।

फल—(हिं०, भा० वाजार), जरिष्क, (अ०) वरबारीस, अंब(अम्ब)र बारीस, (फा०) ज(ज़ि)रिष्क। (अ०) वर्बेरी फ्रूट या बेरीज (Berberry Fruit or Berries)। जड (हिं०) दारुहल्दीकी जड, (अ०) आरगीस, (स०) दार्वीमूल, (अ०) बर्बेरी रूट (Berberry root)।

वक्तव्य—सस्कृत सज्ञाएँ (जो काष्ठके लिए प्रयुक्त हुई हैं) इसके वृक्षके लिए भी प्रयुक्त हैं। लेटिन, नेपाली एव गढवाली नाम इसके वृक्षके है। किसी-किसी क्षेत्रमे स्थानीय लोग इसके वृक्षको भी 'रसवत' या 'रसौत' नामसे ही अभिधानित करते है। लेटिन सज्ञा 'लीकिउम्', यूनानी 'लूकिओन (Lukion)'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान और भेद—हिमालयकी शुष्क घाटियोमे ३,००० से ७,५०० फुटकी ऊँचाई पर इसके वृक्ष होते है। भूटान, गढवालसे हजारा तक, बिहार और पारसनाथकी पहाडियो और दक्षिणमे नीलगिरी पर्वत पर इसकी झाडियाँ उत्पन्न होती हैं। इसकी एक जाति नेपालमे होती है जिसे लैटिनमें बेर्बेरिस ऑरिस्टाटा (**Berberis aristata DC**) और अँगरेजीमें नेपाल बारबेरी (Nepal Barberry) कहते है। बेर्बेरिस लीकिउम् (**B. lycium** Royle) वा ऑफ्थैल्मिक बारबेरी (Ophthalmic barberry) नीलगिरी पर्वतपर होती है। इनका काष्ठ वा मूल, रसक्रिया और फल सभी उपर्युक्त जातिकी दारुहलदीके समान होते और प्राय उन्ही नामोसे बोले जाते हैं। गुणकर्ममे भी ये समान होते है। विदेशीय दारुहल्दीको बेर्बेरिस वुलगारिस (Barberis vulgaris Linn) कहते है। यह भारतवर्षमे भी होती है।

अब यह सत्व ही दवाउश्शिफाके नामसे विक्रय किया जाता है। इसका क्षाराभ हृदयपर अवसादक क्रिया करता है और सूक्ष्मरक्तवाहिनियो का विकास–विस्फार करता है। इसलिए रक्तका दवाव (ब्लडप्रेशर) कम होता है। अस्तु, उच्चरक्तचाप (हाईब्लडप्रेशर) की यह अव्यर्थ महौषधि है। रालकी रक्तके दवावपर कोई क्रिया नही होती, परन्तु उसके द्वारा नीद आती है। इसका क्षाराभ गर्भिणीके जरायुका सकोच अर्गटके समान ही करता है। इसलिए प्रसवोत्तर १-१ माशाकी मात्रामें इसे दिनमें तीनवार देते हैं। गर्भाशयोत्तेजक होनेके कारण यह अनियमित ऋतुके लिये गुणकारी है। प्रवल ज्वरमें इसका सेवन करनेसे अशांति और मोह दूर होता है, अच्छी नीद आती है, प्रलाप दूर होता है, आँखोका वर्ण स्वाभाविक होता है और साथ ही ज्वरका वेग भी कम होता है। उकसाइट (जिकावते हिस) दूर करनेका गुण होनेसे यह स्वप्नदोष एव शुक्रमेहके लिये भी गुणकारक है। अकारण लिंगोत्थानसे जिनको निद्राभग और सिरमे दर्द होता हो तथा सूजाक (औपसर्गिक पूयमेह)के परिणामस्वरूप अत्यन्त ध्वजोच्छ्रायसे शिश्न टेढा होता हो, उनको यह फलप्रद है। इसकी क्रिया स्त्री और पुरुष दोनोपर समान होती है। सर्प और वृश्चिक आदिके दशमें इसका सामान्यरूपसे उपयोग होता है। शोप वा फलक एव नेत्रशुक्लमे भी इसका उपयोग होता है। नेत्रशुक्ल (फूली)मे इसकी पत्तियोका दो तीन वूँद रस पिचकारी (ड्रॉपर)के द्वारा डालनेसे लाभ होता है।

मात्रा—रक्तका दवाव कम करनेके लिये २½–५ रत्ती, नीद लानेके लिये ५-१५ रत्ती, उन्माद और प्रवल अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) के लिए १॥–३ माशा तक।

अनुपान—जल, दूध या गुलावके फूलोंका अर्क। इसका चूर्ण १-३ माशा (अथवा ३ से ६ माशा) ५ तोले गुलाबके अर्कमे ३-४ घण्टेतक भिगोकर, या रात्रिका भिगोया प्रात और प्रातःकालका भिगोया सायकालको रख देवें। पीछे इसे खूव हिलाकर पिलाये अथवा ठढाई-जैसा पीसकर पिलाये। यदि चाहे तो ४–६ माशे मिश्री भी इसमे मिला सकते है। तीन-चार रत्तीकी अल्प मात्रामे सेवन करना हो, तो फाँककर ऊपरसे अर्कगुलाव आदि पीकर सरलतासे निगला जा सकता है। इसके चूर्णकी गोलियाँ अर्कगुलाव या पानीसे वनाकर अथवा यथाप्रमाण कीचेटमे डालकर सरलतासे उपयोग कर सकते है। यन्त्रकी सहायतासे इसकी वनाई हुई गोली या चक्रिका (टिकिया) भी प्रयुक्त हो सकती है, जिन्हे निगल लेना अत्यन्त सरल होता है। आराम होनेपर मात्रा घटा देनी चाहिये और फिर २-२ या ३-३ दिनके अन्तरसे दवा देनी चाहिये। पथ्य केवल दही-भात खिलावें। मास तथा गरम एव उत्तेजक पदार्थोंसे परहेज करे। अहितकर–पित्तप्रकृतिवालोको (वातकफवालोके लिये उपयुक्त)। निवारण—अर्क गुलाव।

•

(३२८) दानक

वर्णन—अमीनुद्दौलाके मतसे लाल तोदरी जैसा, किंतु उससे छोटा एक बीज है। इसका क्षुप एक वालिश्तके बराबर होता है।

उत्पत्तिस्थान—तवरिस्तानके पर्वतो तथा उस ओरके अन्यान्य प्रदेशोमे उत्पन्न होता है।

प्रकृति—गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लैष्मिक एव सौदावी रोगोमे गुणकारी है। ग्रन्थोमें लिखा है कि १४½ तोलेसे २९ तोले तक पीसकर दुगुने गेहूँके आटेमे मिलाकर रोटी पकाकर खानेसे खूब तैयारी आती है। इसे योनिमें धारण करनेसे गर्भ रह जाता है। गर्भ रहनेकी दशामे योनिमे रखनेसे गर्भ गिर जाता है।

•

(३२९) दामीसाका गोंद

वर्णन—शीराजकी ओर होनेवाला एक बडा और कांटेदार वृक्ष है। इसका गोद ललाई लिये हुए तिक्त एवं कटु होता है।

प्रकृति—गरम एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह समस्त गुणधर्मोमे हीगका प्रतिनिधि है। भेद केवल यह है कि यह हीग जैसा दुर्गन्धित नही है। यह उष्ण, तारल्यजनन (मुलत्तिफ), वातविलयन, पाचन, आमाशयगत द्रवोका शोषक है तथा अन्त्रगत शीतको निवारण करता और वातज दतशूलका लाभ पहुँचाता है। मात्रा—१३ ग्राम (१३ माशे)।

o

(३३०) दारु(रू)हलदी

फ़ैमिली · बेर्बेरिडासे (Family Berberidaceae)

नाम—वृक्ष एव काष्ठ (हिं०) दारु(रू)हलदी, (अ०, फा०) दारहल्द, (फा०) दारचोबा, (स०) दारुहरिद्रा, दार्वी, पीतदारु, (बं०) दारुहरिद्रा, (म०) दारुहलद, (गु०) दारुहलदर, (बम्ब०) दारहलद, (नें०) चित्रा, कण्मल; (गढ०) किंगोडा, तोतरा, (क०) कावटच्छमूल, दालिद्दर, (प०) दारहल्दी, चिमलू (पहाडी इलाका), (ले०) (१) बेर्बेरिस आरिस्टाटा (Berberis aristata DC), (२) बेर्बेरिस आशिआटिका (Berberis asiatica Roxb), (अ०) एशियाटिक बार्बेरी (Asiatic Barberry)। घन-रसक्रिया (हिं०) रसवत, रसोत, रसौत, (यू०) Lukion (D. I. 132), (अ०) अल्हुजुज़ (इ० बैं०), हुजुजे हिन्दी, खौलान, फीलज़हज, (फा०) फी(पी)लजहू, (स०) रसाञ्जन (च०; सु०); (म०, ब०) रसाजन; (गु०) रसवन्ती; (नें०) रसवन्ती, (सिंध) रसवल; (ले०) एक्स्ट्राक्टम् बर्बेरिडिस (Extractum Berberidis); (अ०) एक्स्ट्रैक्ट बर्बेरिस (Extract Berberis)।

फल—(हिं०; भा० बाजार), जरिष्क, (अ०) बरबारीस, अंब(अम्ब)र बारीस, (फा०) ज(जि)रिष्क। (अ०) बर्बेरी फ्रूट या बेरीज़ (Berberry Fruit or Berries)। जड़ (हिं०) दारुहल्दीकी जड, (अ०) आरगीस, (स०) दार्वीमूल, (अ०) बर्बेरी रूट (Berberry root)।

वक्तव्य—सस्कृत सज्ञाएँ (जो काष्ठके लिए प्रयुक्त हुई है) इसके वृक्षके लिए भी प्रयुक्त है। लेटिन, नेपाली एव गढवाली नाम इसके वृक्षके है। किसी-किसी क्षेत्रमे स्थानीय लोग इसके वृक्षको भी 'रसवत' या 'रसौत' नामसे ही अभिधानित करते है। लेटिन सज्ञा 'लीकिउम्', यूनानी 'लूकिओन (Lukion)'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान और भेद—हिमालयकी शुष्क घाटियोंमें ३,००० से ७,५०० फुटकी ऊँचाई पर इसके वृक्ष होते है। भूटान, गढवालसे हजारा तक, बिहार और पारसनाथकी पहाडियो और दक्षिणमे नीलगिरी पर्वत पर इसकी झाडियाँ उत्पन्न होती है। इसकी एक जाति नेपालमे होती है जिसे लैटिनमे बेर्बेरिस ऑरिस्टाटा (Berberis aristata DC) और अँगरेजीमें नेपाल बारबेरी (Nepal Barberry) कहते है। बेर्बेरिस लीकिउम् (B. lycium Royle) वा ऑफ्थैल्मिक बारबेरी (Ophthalmic barberry) नीलगिरी पर्वतपर होती है। इनका काष्ठ वा मूल, रसक्रिया और फल सभी उपर्युक्त जातिकी दारुहलदीके समान होते और प्राय उन्ही नामोसे बोले जाते हैं। गुणकर्ममे भी ये समान होते हैं। विदेशीय दारुहल्दीको बेर्बेरिस वुलगारिस (Barberis vulgaris Linn) कहते है। यह भारतवर्षमे भी होती है।

वर्णन—दारुहलदी अकोलकी तरहकी एक कँटीली झाडीकी प्रसिद्ध लकड़ी है जो पीली, तिक्त और मन्द गन्धवाली होती है। इस लकडी (वा मूल)मे विशेष विधिसे कल्पना की हुई रसक्रिया (घनसत्व—उसारा)को जा कालाई लिए पीली, कड़ुई एव कुस्वादु होती है, रसवत (हुज़ुज) कहते हैं। हिन्दी (हुज़ुज़े हिंदी) और मक्की (हुज़ुजे मक्की या रसवत मक्की या फीलज़हरा) भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। इसका फल किशमिशसे छोटा, कालाई लिए लाल और रुचिदायक खटमिट्ठा होता है। इसको 'जरिश्क' कहते है।

उपयुक्त अंग—मूल, काष्ठ (काडके नीचेके भागकी पीलेरगकी लकडी) रसक्रिया और फल।

रसवत बनानेकी विधि—वर्षाऋतुके अन्तमे दारुहलदीके मूल और लकडीका क्वाथकर, उस क्वाथको पुन. पकाकर प्रस्तुत करते है। बाजारकी रसौतमें मिट्टी, पत्ती आदि अन्य द्रव्य मिले होते है। उसको चौगुने पानीमें घोलकर १-२ घण्टा रख, ऊपरका पानी निथार, कपडेसे छानकर मन्दाग्निपर रसक्रिया-जैसा गाढा कर लेवे। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ रसवत औषधके काममें लेवे।

रासायनिक सगठन—दारुहरदीमें दारुहारिद्रीन (बर्बेरीन—Berberine) नामक एक पीला और तिक्त क्षारोद (Alkaloid) और फलमें चिञ्चाम्ल (टार्टरिक एसिड—Tartaric acid) और सेवाम्ल (मैलिक एसिड—Malic acid) होता है।

दारुहलदी—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एव रूक्ष (ध० नि०)।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, सशमन और रक्तप्रसादन।

उपयोग—यह अधिकतया नेत्ररोगोमे प्रयुक्त होती है। नेत्राभिष्यन्दमे यह दोषोको विलीन, विलोम और शमन करती है। यह कामला, फोडे-फुन्सियो और खर्जूमे भी प्रयुक्त की जाती है। भग्नास्थिके सधान और रक्तसचय रोकनेकेलिये अडेकी सफेदीके साथ इसका लेप भी लगाते है। नेत्राभिष्यन्द और चोटके लिए विशेष गुणकारी है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण–बिजौरा या नारगीका अर्क। प्रतिनिधि–चोटके लिए हलदी। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—दारुहलदी रसमें तिक्त, विपाकमे कटु, रूक्ष, उष्णवीर्य, लेखन तथा अर्श, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, प्रमेह, मुख-नेत्र-कर्णरोग और विसर्पका नाश करनेवाली है (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०-गुडूच्यादि व०, रा० नि०–पिप्पल्यादि व०)।

नव्यमत—दारुहलदी तिक्त, उष्ण, कटुपौष्टिक, सौम्य, ग्राही, विषमज्वरनाशक, स्वेदजनन, ज्वरहर, श्लेष्मघ्न और त्वग्दोषहर है। थोडी मात्रामें दारुहलदी कटुपौष्टिक, दीपन और सौम्यग्राही है। बडी मात्रामें जोर-दार स्वेदन, ज्वरहर और मृदुरेचक है तथा पारीके ज्वरको रोकती है। इसका यह गुण कुनैन जैसा होता है। परतु कुनैनसे जैसा रोगीको त्रास होता है, ऐसा इससे नही होता। जीर्णज्वरमे जैसे कुनैनसे बढी हुई प्लीहाका सकोचन होता है, ऐसा इसमें भी होता है। रसौत शोथघ्न, कफघ्न, विषमज्वरप्रतिबन्धक और स्रसन है। विषमज्वरमे पहले हलका रेचन देकर पीछे १५ रत्ती रसौत जलमे मिलाकर देते है। ऐसी दिनमे तीन मात्रा देते है। रसौत देनेके बाद रोगीको खूब कपडा ओढाकर सोने देना चाहिए। कुछ देरके बाद रोगीको प्यास लगेगी। परन्तु जल पीनेको नही देना चाहिए। एक घण्टे बाद उसको पसीना आयेगा। पसीना पोछकर उसको पेय या गरम दूध पिलाना चाहिए। दारुहलदीसे त्वचा और उसके नीचेकी रसग्रन्थियोकी विनिमय क्रिया सुधरती है। इसलिए फिरगोपदश, गण्डमाला, अपची, नाडीव्रण, भगन्दर, व्रण और विसर्पमे दारुहलदीसे लाभ होता है। इन रोगोमे रसौत खिलाते है और इसका लेप कराया जाता है। श्वेतप्रदर और गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अत्यार्तवमें दारुहलदीका काढा या रसौत दी जाती है।

रसवत (उसारए दारहल्द)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क(मतांतरसे तीसरेमें रूक्ष)। (दिल्लीके हकीम)। लखनऊ-वालोंके मतसे शीतस्निग्ध, दूसरे में रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी प्रयोगसे यह दोषविलोमजनन, सशमन और संग्राही कर्म करती है। आतरिकरूपसे खिलानेसे यह सतापको शमन करती और अन्त्रपर सग्रहण कर्म करती है। दोषविलोमकरण और वेदनास्थापनके लिये रसवतको अकेला या उपर्युक्त औषधद्रव्यके साथ उष्ण शोथपर लगाते हैं। कर्णस्राव रोकनेके लिये कानमें इसका आश्च्योतन करते हैं तथा कण्ठके उष्ण शोथको नष्ट करनेके लिये तथा मसूढोंको दृढ करनेके लिये इसके घोल (विलयन)से गण्डूष कराते हैं। नेत्राभिष्यदमें इसे नेत्रके चतुर्दिक् लेप करते तथा नेत्रमें डालते हैं। सूजाकमें इसके घोलकी पिचकारी करते हैं। अर्शोजात रक्त और अतिसारको रोकने, वातार्शको निवारण करने तथा अन्त्रव्रणको नष्ट करनेके लिये इसका प्रचुरतासे आतरिक उपयोग करते हैं। बालविसर्पमें रक्तप्रसादन द्रव्योंके साथ इसकी गोलियाँ (हब्ब रसवत) बनाकर खिलाते हैं। अहितकर-प्लीहारोगमें। निवारण-अनीसून। मात्रा—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—रसाञ्जन तिक्त, शीतवीर्य तथा रक्तपित्त, व्रण, व्रणशोथ, नेत्रके रोग और विषमज्वरको नाश करनेवाला है।

नव्यमत—रसौत, फिटकिरी और अफीमको नीबूके रसमें पीसकर आँखकी सूजनमें आँखके ऊपर लेप करते हैं। अर्शमें रसौत, नीमके फलकी गिरी समभाग ले, उसको मूलीके रसकी सात भावनाएँ देकर बनायी हुई गोली देनेसे लाभ होता है। व्रणशोथ पर रसौतका लेप किया जाता है। एक औंस उत्तम गुलाबके अर्कमें दो रत्ती रसौत और दो रत्ती फिटकिरी डालकर बनाये हुए द्रवके बिन्दु आँखमें डालनेसे नेत्राभिष्यन्द आराम होता है। उबले हुए जलमें रसौत मिलाकर बनाये हुए द्रवसे व्रणको धोनेसे और सूजाकमें शिश्नके भीतर तथा प्रदरमें योनिमें उत्तरबस्ति देनेसे उपकार होता है। रक्तार्श और रक्तप्रदरमें रसौत केवल या नागकेसर और खूनखराबा (दम्मुल्-अख्वैन)के साथ मिलाकर खानेको देते हैं।

कल्प तथा योग—कुर्स जरिष्क, जुवारिश जरिष्क आदि।

जरिष्क—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (दिल्लीके हकीम) तथा लखनऊके हकीमोंके मतसे तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह पित्तसशमन और रक्तोद्वेगसशमन है, तथा यह उष्ण यकृदामाशयके सतापको शमन करती, उनको शक्ति देती और अन्त्रमें कब्ज उत्पन्न करती है। पित्तज रोगों विशेषकर ज्वरोंको शमन करने तथा वमन और उत्क्लेश-निवारणके लिये इसको जल या अर्कमें पीस-छानकर पिलाते हैं तथा यकृदामाशयका सताप दूर करने और उनको शक्ति देनेके लिये इसका उपयोग करते है। यकृत्काठिन्यमें इसको केसरके साथ देते हैं। पित्तज अतिसार और अन्त्रसक्षोभ बन्द करनेके लिये अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ इसको पिलाते हैं। पित्तल प्रकृतिके लोगोंके लिये तथा पैत्तिक रोगोंमें इसको आहारमें मिलाकर भी खिलाते हैं। अहितकर—कफ-प्रकृतिवालोंको। निवारण—शर्करा और लौग। प्रतिनिधि—गुलाबके फूलका जीरा (जरेवर्द) और सफेदचदन। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—जरिष्क शीतल, अम्ल और रोचक है।

●

(३३१) दालचीनी

फ़ैमिली : लाउरीने (Family Laurineae)

नाम—छाल (हिं०; म०) दालचीनी; (यू०) Kinnamomon, (अ०) दारसीनी (इ०वैं०), किर्फा; (फा०) दारचीनी, (स०) त्वक्, त्वचा, गुडत्वक्, वराङ्ग, (व०) दारुचीनी, (ले०) सिन्नामोमी कॉर्टेक्स (Cinnamomi Cortex), (अ०) सिन्नेमन बार्क (Cinnamon Bark)। वृक्षको लैटिनमें सिन्नामोमुम् जेलानिकुम् (**Cinnamomum zeylanicum** Nees) और अँगरेजीमें सीलोन सिन्नेमन (Ceylon Cinnamon) कहते है।

उत्पत्तिस्थान—सिहल (लका) और दक्षिण भारतवर्ष। सिहली दालचीनी सर्वोत्तम होती है।

तेल—(हिं०) दालचीनीका तेल, (फा०) रोगन दारचीनी, (ले०) ऑलिउम् सिन्नेमोमाइ (Oleum Cinnamomi), (अ०) ऑइल ऑफ सिन्नेमन (Oil of Cinnamon)।

वर्णन। सिहली या सिलोनी—यह तज जातीय एक वृक्षकी सुगन्धित छाल है जो एक दूसरेपर लिपटी हुई होती है। यह सबसे पतली, सहजमें टूट जानेवाली, गदलेलाल रगकी, अदरसे कालाई लिये भूरी, स्वाद चीनीसे विशेष मीठी और तेजीमें कम तथा सुगधित होती है। ताजा तेल (त्वक्तेल) पीला और कालातरमें लाल हो जाता है। रुचि एव वास दालचीनी सरीखा होता है। इसका एक भेद और है जिसे 'चीनी दालचीनी' कहते है। लैटिन में इसे सिन्नामोमुम् कास्सिआ (**Cinnamomum cassia** Blume) और अँगरेजीमें चायनीज सिन्नेमन (Chinese Cinnamon) या कॅसिया बार्क अथवा कॅसिया लिग्निया (Cassia Bark or Cassia Lignea) कहते हैं। यह चीन और सिंगापुरसे आती है। चीनी और सिहली दोनोको दाल(र)चीना कहते है। ये दालचीनीके उत्तम भेद है। कागजकी तरह पतली होनेसे यह 'पत्री दालचीनी' कही जाती है। दालचीनीका एक तीसरा भेद भी है जिसे 'तज' कहते है। दे० 'तज'।

वक्तव्य—इसकी लैटिन सज्ञा 'सिन्नामोमुम्', इसकी यूनानी सज्ञा 'किन्नेमोमोन'से व्युत्पन्न है। इसकी अरबी संज्ञा फारसी दारचीनीका अरबी रूपान्तर है। प्राचीन फारसीमें 'दार' वृक्षको कहते है। प्राचीन कालमें यह छाल चीन देशसे ईरान देशम पहुँची। इसलिये इसका उक्त नामकरण किया गया। 'किर्फ' अरबीमे त्वक् (छाल)को कहते हैं। किन्तु अरबवासी 'किर्फतुद्दारसीनी' के स्थानमे केवल 'किर्फ' ही बोलते है। इसकी हिन्दी सज्ञा 'तज' इसकी सस्कृत सज्ञा 'त्वच'का अपभ्रश है। यूनानी भाषामे 'मोमून' 'किर्फ' या दारचीनीको कहते है और कासिया (Cassia) जिसका प्राचीन आरब्य उच्चारण 'कमया' और वर्तमान आग्ल उच्चारण 'केशिया' है, तज (सलीख)को कहते है। परन्तु अधुना यूरूपीय उद्भिज्जशास्त्रवेत्ता इन शब्दोका योगकर 'सिन्नामोमुम् कासिया (**Cinnamomum cassia**)' दारचीनाको कहते है और प्राय इन दोनोको एक दूसरेका पर्याय भी मानते है। किन्तु अर्वाचीन मिस्री लेखक 'सिन्नेमन' को 'किर्फतुल्करन्फुलिय' और कासिया या केशिया अर्थात् 'सलीखा (तज)' को 'किर्फतुल्खशबिय.' लिखते है। हिंदीमें किर्फ' और 'सलीख' दोनोको 'तज' कहते है।

इतिहास—सिन्नेमन् अर्थात् 'किर्फ' या दालचीनी और केशिया अर्थात् 'सलीखा या तज' इन दोनोका उल्लेख 'तौरेत'मे आया है और यूनानी हकीम सावफरिस्तुस् तथा कई एक अन्य प्राचीन लेखकोने भी इनका उल्लेख किया है। जालीनूसके कथनानुसार 'किर्फ व दारचीनी' और 'सलीख' दोनो अभिन्न वस्तु हैं। भेद केवल यह है कि सलीखा किर्फाको अपेक्षया घटिया होता है। यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने भी कई प्रकारकी दारचीनीका उल्लेख किया है। यद्यपि निश्चितरूपसे तो नही कहा जा सकता, तथापि यह सभवनीय प्रतीत होता है कि प्राचीन यूनानी 'क्रिन्नेमामान्' दालचीनीको कहते थे और 'कासिया' तज अर्थात् हिन्दी दालचीनीको कहते थे। परन्तु सीलोन सिन्नेमन (Ceylon Cinnamon) अर्थात् लकाकी दालचीनी जिसे यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमें 'दार-

चीनी सीलानी' लिखा है और जो सर्वश्रेष्ठ भेद है, उसका ज्ञान वस्तुत प्राचीन यूनानी एव अरबी प्रभृति चिकित्साविशारदोको नही था। कारण पवित्र अर्थात् धर्मग्रन्थो और प्राचीन सिंहली आलेखोमें उसका कही उल्लेख नही आया है तथा यह भी ज्ञात नही कि उक्त द्वीपमें उक्त छालका सग्रह किस कालमें करने लगे। कदाचित् कजवीनी प्रथम व्यक्ति है जिसने ईसवी सन्की तेरहवी शतीमे इसका विवरण किया। ईसवी सन्के २७०० वर्ष पूर्वके लिखे चीनी लेखोमें 'केदीके नामसे' जिसका समानार्थी 'केशिया अर्थात् सलीख (तज)' है, दालचीनीका उल्लेख है। परन्तु भारतीय दालचीनी या तजका उल्लेख ईसवीसन् की आठवी शतीकी लिखी चीनी पुस्तकोमें पाया जाता है। प्राचीन भारतीयोको भारतवर्षके विविध भागोमें उत्पन्न होनेवाली विभिन्न प्रकारकी दालचीनीका ज्ञान था। सुतरा प्राचीन सस्कृतग्रथोमें त्वक् गुडत्वक् प्रभृति इसकी कतिपय सज्ञायें दी है। अरबवासी जिनके माध्यमसे प्राचीनोंकी दालचीनी यूरोपमें पहुँची, उसको 'किर्फतुद्दारसीनी', सक्षेपमे केवल 'किर्फ' कहते है। अरबोको इस औषधिका ज्ञान सभवत ईरानवासियोसे हुआ। इब्नसीनाने दीसकूरीदूसके अनुकरणमे विभिन्न प्रकारके दालचीनीभेदोका उल्लेख किया है। परन्तु तत्पश्चात्कालीन इसलामी ग्रन्थसकलनकर्ता दारचीनी सीलानी और दारचीनी हिन्दीसे भलीभांति अभिज्ञ है। सुतरा हाजीजीनुल्अत्तार (सन् १३६८ ई०)ने दारचीनीके वर्णनमे लिखा है कि सर्वोत्तम वह है जो सालान (लका—सिंहल)मे आती है तथा उसके कथनानुसार 'सलीखा' कशिया (केशिया—Cassia) है जो सलखवृक्षकी छाल है।

उपयुक्त अग—त्वचा और उससे निकाला हुआ तैल।

रासायनिक सगठन—दालचीनीमें एक उत्पत् तैल, राल, कषायाम्ल और थोडी-सी शर्करा और तैलमें त्वगम्ल, त्वङ्मद्य प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—सफूफ दारचीनी, हलवाये दारचीनी और रोगन दारचीनी।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे तीसरे और लखनऊके हकीमोके मतसे दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष (खुष्क); आयुर्वेदके मतमे उष्णवीर्य (ध० नि०) एव रूक्ष (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दालचीनी सुगन्धित, दोषतारल्यजनन और कोथप्रतिबन्धक है। बाह्य त्वचापर लेप लगानेसे यह शोणितोत्क्लेशक, उत्तेजक, वेदनास्थापन और लेखन कर्म करती है। सुगन्धित होनेसे हृदय और मस्तिष्कपर इसका सौमनस्यजनन कर्म होता है। श्वासोच्छ्वास अगोमें उत्तेजना उत्पन्न करके यह उनको श्लेष्मोत्सर्गके लिये उद्यत करती है और यकृत् और आमाशयको शक्ति प्रदान करती तथा अन्त्रमें कब्ज पैदा करती है। यह कामोत्तेजक, मूत्रार्तवजनन और उत्तमागोको विशेषरूपसे बलप्रद है। मुखको सुवासित बनाने और दाँतोको दृढ करनेके लिये दालचीनी मजनोंमें डाली जाती है। छीप वा झाईं (बहक) और व्यग (कलफ) जैसे रोगोको नष्ट करनेके लिये इसका पतला लेप (तिला) किया जाता है। इसे वाजीकर द्रव्योमें मिलाकर तैल निकालते और नपुसकताको दूर करनेके लिये शिश्नपर मर्दन करते है या उपयुक्त औषधियोके साथ पीसकर लेप लगाते है। इसे माजून और मुफर्रेह कल्पोमें डालते है, कास और श्वासको नष्ट करनेके लिये मधुमें मिलाकर चटाते या क्वाथ करके पिलाते है। अग्निमाद्य, अतिसार और प्रवाहिकाको दूर करनेके लिये इसे उपयुक्त औषधियोके साथ चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। सर्दीके शिर शूलको दूर करनेके लिये इसको जलमें पीसकर मस्तकपर लगाते हैं और आर्तवप्रवर्तनके लिये क्वाथ करके पिलाते हैं। दालचीनीका तैल अकेला या उपयुक्त तैलोके साथ वाजीकरणार्थ तिलाकी भाँति प्रयुक्त किया जाता है तथा भिड और बिच्छूके दशस्थानपर लगानेसे वेदना और सोजिश (जलन)को शमन करता है। अहितकर—बस्तिको। निवारण—कतीरा और अमारून। प्रतिनिधि—तज। मात्रा—छाल १ ग्राम से २ ग्राम (एक माशेसे दो माशे) तक। तैल ० १३ मि० लि० से ० ३ मि० लि० (२-५ बूँद)।

आयुर्वेदीय मत—दालचीनी (त्वक्) कटु, मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, पित्तकर तथा कफ, वात, विष, कुष्ठ, मुखरोग, कृमि, हृद्रोग, कण्डू, आम, अरुचि, बस्तिके रोग, अर्श, पीनस और कासको दूर करनेवाली है,

(सु०, ध० नि०, भा० प्र०, आ० स०)। दालचीनीका तेल ग्राही, आर्तवप्रवर्तक तथा अग्निमाद्य, वात, आध्मान, आक्षेप, वमन, उत्क्लेश और दतशूल इनको दूर करनेवाला है। (आ० स०)।

नव्यमत—दालचीनी उष्ण, सुगधित, दीपन, पाचन, वातहर, स्तम्भन, गर्भाशयोत्तेजक, शोणितस्थापन, रक्तगत श्वेतकणोकी वृद्धि करनेवाली और उत्तेजक है। इससे आमाशयकी श्लेष्मल त्वचा उत्तेजित होकर जठररस बढता है और अन्नका परिपाक उत्तम होता है। आध्मान, मरोड (पेचिश) और छर्दिको बन्द करनेके लिये इसके तेलको शक्करमे मिलाकर देते है। क्रमिदतमें इसके १-२ बूँद तेलको रूईमें डालकर दाँतके नीचे दबाते है। राजयक्ष्माके जन्तुसे उत्पन्न व्रणपर इसका तेल लगानेसे व्रणकी शुद्धि होती है। राजयक्ष्मा एव उसके कीटाणुओसे उत्पन्न रोगोमे इसका तेल देते है। किसी अवयवमे होनेवाले रक्तस्रावमे दालचीनीका हिम देते है। दालचीनीसे गर्भाशयका सकोचन होता है, इसलिये प्रसवकालमे आवीका वेग बढानेके लिये पीपलामूल और भाँगके साथ तथा अत्यातवमे अशोककी छालके साथ इसे देते है। (औ० स०)

●

(३३२) दिरमना तुर्की

फ़ैमिली : कॉम्पोज़ीटी (Family : Compositae)

नाम—क्षुप (अ०) बस्तियाज, हशीशतुल् खुरासानिया, शीहतुर्की (-खुरासानी), (फा०) दिरमना खुरासानी, खिलाल मक्का, (लै०) आर्टीमीसिआ स्टेक्मानिआना (**Artemisia stechmaniana** Besser)। बीज (हिं०) बस्तियाजके बीज, (फा०) दिरमनातुर्की, बख्शीरक, बख्शीजक, (अ०) कवाद, कद बाकली; (अरबीकृत) बख्शीर (ज)क।

उत्पत्तिस्थान—फारस, खुरासान और रूसी तुर्किस्तानके किरगिज आदि प्रदेशोके विस्तृत अकृष्ट भूभागमे यह पुष्कल होता है।

वर्णन—यह शीहकी जातिका एक कँटीला क्षुप है जो सोयेके बराबर ऊँचा होता है। पत्र छोटे-छोटे खुरदरे, फूल सफेद और नीला होता है, शाखाएँ एक बालिस्त लम्बी और एक जडसे निकली हुई, प्रत्येक शाखाके सिरे पर खुरदरी घुण्डी होती है। इसकी बारीक टहनी या शाखासे दाँत कुरेदनेका तिनका (खिलाल) बनाते है, इसलिये इसे खिलाल मक्का कहते है। बीज अजवाइनकी तरह छोटे और स्वादमें तिक्त एव चरपरे होते है। इनमे से कुछ सुगन्धि भी आती है।

रासायनिक सगठन—इसके अविकसित पुष्पो और कोमल पत्तोमे सैन्टोनीन पाया जाता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल दीदान।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरेमे खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह श्वयथुविलयन, त्वचाका लेखन करता और व्रणोको शुष्क करता है। उदरक्रमि विशेषकर गण्डूपदक्रमिनाशन इसका जबरदस्त कर्म है। यह विरेक लाता है, मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता, वायुको विकीर्ण (परागदा) करता, कफ छेदन करता और सयुक्त एव जीर्णज्वरोको दूर करता है। इसका प्रधान गुण वातज श्वयथुविलयन है। कफज प्रगाढ शोथोको विलीन करनेके लिये इसका लेप लगाते हैं। इसको जलाकर जैतून या जवक (सफेद चमेली या सोसन)के तेलमें मिलाकर लगानेसे खालित्य नष्ट होता और बाल शीघ्र उग आते है। आमाशयशोथ और जलोदर एव केचुओको नष्ट करनेके लिये इसका काढा पिलाते है। यह केचुओको मारकर विरेक-

के द्वारा उत्सर्गित करता है। आर्तवप्रवर्तनके लिये भी उपयुक्त औषधियोके साथ इसका क्वाथ देते हैं। अहितकर—आमाशय और मस्तिष्कको। निवारण—रूमी मस्तगी और तुरमुस। प्रतिनिधि—अफसतीन और सुदाब। मात्रा—१से ३ ग्राम (१से ३माशे)।

●

(३३३, ३३४) दुद्धी (छोटी व बड़ी)

फ़ैमिली : एउफ्रॉबिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम। छोटी-(हिं०) छोटी दुद्धी (दूधी), दुधियाघास, निगाचूनी, (फा०) शीरेगियाह, शीरक, (स०) लघुदुग्धिका, क्षीरिणी, नागार्जुनी; (व०) रक्तकेरु, दुधिया, (प०) दोधक, हजारदाना (नी), (म०) लहान नायटी; (गु०) नानी दुधेली, (सथा०) नन्हा पूसो-तोआर, (ले०) (१) एउफॉर्बिआ थीमीफोलिआ (**Euphorbia thymifolia** Burm), (२) एउफॉर्बिआ मीक्रोफील्ला (E **microphylla** Heyne)।

वडी—(हिं०) वडी दुद्धी (दूधी, दूधिया), लाल दुद्धी, (व०) वडकेरु, वडा केरुई, (म०) मोठी दुधी, नायटी, (गु०) राती दुधेली, नागला दुधेलो, (को०; सथाल) पूतोसोआ, (ले०) (१) एउफॉर्बिआ पिलूलीफेरा (**Euphorbia pilulifera** Linn.), (२) एउ० हीर्टा (E **hirta** Linn.), (अ०) ऐज्मावीड (Asthma weed), स्नेकवीड (Snake weed), कैट्स हेयर (Cat's hair)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षके उष्णप्रधान प्रदेशोमें होती है।

वर्णन—यह एकवर्षायु क्षुद्र प्रसिद्ध क्षीरी वनस्पति है, जिसके पत्र और शाखाओके तोडनेसे दूध निकलता है। इसके यह दो भेद है-(१) छोटी—यह वर्षायु, शाखावहुल, न्यूनाधिक लोमयुक्त, तांवडे रगकी क्षुद्र वनस्पति है जो जमीन पर पसरी होता है। पत्र छोटे-छोटे आमने-सामने तिर्यक् आयताकार या गोल, गोलदन्तुर १/६ से १/३ इञ्च, सवृत ललाई लिये हरे होते हैं। शाखाएँ पतली-पतली सुतारीकी तरह, लाल रगकी होती हैं। इसमें बारह-महीने फूल होते हैं। सुखाई हुई वनस्पतिमें थोडीसी कालीचाय सरीखी सुगन्धि होती है, रुचि जरा कषाय होती है। यह दूधीखुर्दके नामसे प्रसिद्ध है। यही अधिकतया औषधमें प्रयुक्त होती है। इसकी दूसरी जातिमे एकाभ-व्यूह चिकने (पहलेमें मृदुरोमश)और पत्तियाँ पहलीको पत्तियोसे कुछ छोटी और कभी-कभी केवल अग्रपर दतित (पहलीमें गोलदन्तुर) होती है। इसके पौधे प्राय श्वेतवर्ण होते हैं।

उपयुक्त अग—पचाग।

रासायनिक-सगठन—छोटी दुद्धीमें क्वर्सेटिनसे मिलता-जुलता एक स्फटिकीय क्षारोदी सत्व होता है। बडी दुद्धीमें मायाफलाम्ल (Gallic acid), क्वर्सेटिन (Quercetin), एक नवीन फेनोलिक सब्सटैन्स, एक उत्पत् तेल, एक क्षारोद इत्यादि उपादान होते है।

(२) वडी—यह प्रतिवर्ष उत्पन्न होनेवाली लगभग एक वित्ता या इससे अधिक उच्च और लोमयुक्त वनस्पति है। कांड महीन, वेलनाकार, हृष्टरोम, पत्र पहले भेदमे वडे ३/४ इचसे १/२ इच लम्बे, ३/८ इच चौडे आमने-सामने क्षुद्रवृतयुक्त, नुकीला, अडाकार(भालाकार), पत्रप्रात नीमके पत्रके समान तीक्ष्ण दतित, शाखायें लाल-रग की और रोगटेदार, फूल क्षुद्र, असख्य, गोलाकार, पत्रकक्षीय, क्षुद्रवृतयुक्त, स्तवकोमें होते हैं। फल(बीज) अडाकार, वाजरा सरीखे होते हैं। यह वारहोमास होती है। गध कुछ नही, स्वाद तिक्त होता है। अपने नुकीले पत्र, खडे रोम और क्षुद्र फलके द्वारा यह सहजमे पहचानी जाती है। इसको दूधी कलाँ कहते है। इसके एक भेदके पौधेका

समान और पौधा लोमरहित (मसृण) और हरे रंगका होता है। शेष बातोंमें यह पहले भेदके समान होती है। इसको लेटिनमें युफॉर्बिआ हाइपीरिसिफोलिआ (Euphorbia hypericifolia Linn.) कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह अन्त्रपर संग्राही कर्म करती है। गुर्दे शुक्राशयपर भी इसका संग्राही कर्म होता है। यह आंतरिक रक्तस्रावको रोकती है। मूत्रप्रणाली (मसीनो)पर भी इसका संग्राही कर्म होता है। यह आंतरिक रक्तस्रावको रोकती है। मूत्रप्रणाली (मसीना) पर भी इसका संग्राही कर्म होता है। यह रक्तप्रसादन और सर्पविषघ्न है। छोटी दुद्धीको जलमें पीस-छानकर अतिसार बंद करनेकेलिये पिलाते हैं। सूजाकमें जलन और मवाद बंद करनेके लिये इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। शोणितार्श, रक्तार्श, शुक्रप्रमेह, योनिसे नाना प्रकारका स्राव (सैलानुर्रहम), शुक्रतारल्य और शीघ्रपतन नष्ट करनेकेलिए इसका उपयोग करते हैं। रक्तप्रसादन होनेसे रक्तविकारके कारण शरीरपर उत्पन्न सूजन और फुन्सियां (बुसूर)को नष्ट करनेकेलिये इसको पिलाते हैं। १ तोलाके लगभग दुद्धीको कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ जलमें पीस-छानकर सर्पदष्टरोगीको पिलानेसे उपकार होता है। इसमें चांदी और वंगकी बनाई हुई भस्म सूजाक, शुक्रमेह और शुक्रतारल्य रोगमें प्रयुक्त होती हैं। अहितकर—फुफ्फुसको। निवारण—मधु। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरेका प्रतिनिधि है। मात्रा—५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—दुद्धी क्षीरयुक्त, स्वादिष्ट, चरपरी, कड़वी, मधुर, उष्णवीर्य, रूक्ष, भारी, वातकारक, गर्भकारक, मलमूत्रको निकालनेवाली, विष्टम्भजनक, वीर्यवर्धक तथा कफ, कोढ़ और कृमिका नाश करनेवाली है। (भा० प्र०)।

नागार्जुनी मधुर, कड़वी, चरपरी, भारी, उष्णवीर्य, रूखी, ग्राही, वातकारक, वीर्यवर्धक, धातुवर्धक, हृदयको हितकारी, गर्भस्थापक, पारेको बांधनेवाली, मलस्तम्भक तथा प्रमेह, कफ, कोढ और कृमिको दूर करनेवाली है।

नव्यमत—बड़ी दुद्धी—श्वासहर और श्लेष्मनिस्सारक (Pectoral) है। आस्ट्रेलियामें कास, फुफ्फुस और फुफ्फुसप्रणालिकाके रोगोंकी औषधिरूपमें किन्तु उससे अधिक विशेषकर श्वासके आवेग (Paroxymal asthma)-में जो यह तुरत आराम पहुँचाती है, उसके लिये यह बहुप्रशंसित है। १। तोला इस औषधिका १ पाइंट उबलते पानीमें फाण्ट बनाकर चायके चम्मचकी मात्रामें इसे देते हैं।

●

(३३५) दुकू

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०, बम्ब०) दूकू, (यू०) Daukhos (D 3 76), (म०, फा०) बाफली, (लै०) पेउसेडानुम् ग्रान्डे (**Peucedanum grande** C B Clarke)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वनस्पतिका है। यूनानी 'डाउखोस' सज्ञासे प्रथमत 'अल्दूकुआ' सज्ञा व्युत्पन्न हुआ, परन्तु अरबो द्वारा 'अल्जजर अल्वर्री अर्थात्' जगली गाजर (Wild Carrot)के लिए प्रयुक्त किया गया। (इ० बै० २, १२०, कानून १,२९४)। दूकू 'अल्दूकुआ' का ही किंचित् परिवर्तित रूप (अपभ्रश) है। 'बाफली' बहुफली नही, अपितु 'दूकू' की ही मराठी सज्ञा है। दूकूको बहुफली समझना भ्रामक है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम भारतवर्षकी पहाड़ियाँ, पश्चिमी घाट, डेक्कन, कोकण आदि तथा ईरान।

वर्णन—यह शकाकुल, जगली या पहाडी गाजर, बहुफली और पहाडी करफ्स (अजमोद) इन सबसे भिन्न एक बहुवर्षायु, ३-७ फुट ऊँचे क्षुपके प्रसिद्ध बीज (फल) हैं जो बडे, विस्तीर्ण-अण्डाकार, अजवाइनकी तरह, किन्तु उनसे क्षुद्रतर, भिन्न-भिन्न आकारके, वृहत्तम १·६ से० मी० (⅔ इञ्च) लम्बे और ० ९ सें० मी० (⅓ इञ्च) चौडे, मध्यमें उन्नतोदर, ललाईलिए पीले, किनारे आस-पाससे कटवाँ, आरीके दाँतोकी तरह और पाडु-पीत, पृष्ठपर उभरी हुई रेखायें होती है। बीज (फल)का स्वाद गाजरके समान अथवा तीक्ष्ण नीबूके समान होता हैं। स्वाद कुछ तीक्ष्ण होता हैं। यह बीज ही औषधके काम आते है। ताजा और पीला बीज श्रेष्ठतर होता हैं। मीरजापुरके जगलोमें प्रसिद्ध कामराज (**Peucedanum nagpurense** Prain) इसकी एक दूसरी उपजाति हैं।

रासायनिक सगठन—फलमें हलके पीले रगका एक उत्पत् तेल होता हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरे (मतातरमे तीसरे)में रूक्ष हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कफशोथविलयन, प्रमाथी, श्लेष्मनि सारक, दीपन, शुक्रल, वाजीकर, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन, वस्तिवृक्काश्मरिनाशन, स्वेदल और कृमिघ्न हैं। दूकू अधिकतया मूत्रार्तवजनन और वस्तिवृक्काश्मरिनाशनके लिए प्रयुक्त किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त मधुके साथ खानेसे यह वाजीकरण करता हैं तथा माजूनोमें पडता हैं। अवरोधोद्घाटक और वातानुलोमन होनेसे यह यकृदवरोध और वातोदरमें प्रयुक्त होता हैं। श्लेष्मनि सारक होनेसे यह वक्षको गाढे कफसे शुद्ध करता है और कफज कासमें प्रयुक्त किया जाता हैं। इसका लेप कफज शोथ, विशेषकर कफज पार्श्वशूल (शौसा)को नष्ट करता हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—कतीरा और ववूलका गोद। प्रतिनिधि—गाजरके वीज और करफ्सके बीज। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(३३६) दूब

फैमिली : ग्रामीने (Family . Gramineae)

नाम—(हिं०, प०) दूब, (अ०) उस्व, (फा०) मर्ग, (स०) दूर्वा, नीलदूर्वा, (कु०) दुबो, (व०) दूर्वाघास, (प०) दुवडो, खवल, (सिंघ) छब(ब्ब)र, (म०) हरियाली, दूर्वा, (गु०) ध्रो, धिरो, धरोखड, (लै०) **सीनोडॉन डाक्टीलॉन Cynodon dactylon** (L) Pers , (अं०) क्रीपिंग साइनोडॉन (Creeping Cynodon)। सफेद दूब (स०) गोलोमी, (व०) शादादूर्वा, (गु०) सफेद धरो, धोलीध्रो, (म०) श्वेत दूर्वा।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध घास हैं। सफेद और नील (हरा) भेदसे यह दो प्रकार की होती है।

उपयुक्त अग—समस्त लता वा क्षुप विशेषत मूल।

प्रकृति—सरदीकी तरफ मायल और समशीतोष्णके समीप है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०; कै० नि०) हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लगानेसे यह गरम सूजन उतारती और दर्द शमन करती हैं। इसमें एक प्रकारका अगद गुण भी वर्णन किया जाता है। यह आमाशयावसादक, सतापहर और मूत्रल है। उष्णताजन्य शिर शूलमें दूबको जौके साथ ठढे पानीमें पीसकर मस्तक पर लेप करते है। उष्णशोथ, विसर्प और शीतपित्तको नष्ट करनेके लिए इसको अकेला पीसकर लगाते है। चेचकके खुरड उतारनेके लिए इसको चावल और हलदीके

साथ चमेलीके तेलमें पीसकर लेप करते हैं। मूत्रदाह मिटानेके लिये इसको जलमे भाँगकी तरह पीस-छानकर पिलाते हैं। वमन, विसूचिका और सर्पविष नष्ट करनेके लिये इसे कालीमिर्चके कुछ दानोके साथ पीस-छानकर पिलाते हैं। अहितकर—शीतल आमाशयके लिये। निवारण—कालीमिर्च, मधु और मिश्री। प्रतिनिधि—धनियेके पत्र। मात्रा—७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—दूब, मधुर, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, जीवनीय, वर्ण्य, प्रजास्थापन तथा कफ, पित्त रक्तविकार, विसर्प, दाह, रक्तपित्त, तृषा और त्वचाके रोगोका नाश करनेवाली है। (च०सू०अ० ४ वर्ण्ये 'सिता-लता', प्रजास्थापने 'शतवीर्या-सहस्रवीर्या, ध०नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—दूब शीतल, रक्तस्कन्दन, व्रणरोपण और मूत्रजनन है। जड़का काढा वेदनास्थापन और मूत्र-जनन है। इसलिए वस्तिशोथ, सूजाक और मूत्रमार्गके दाहमे इसे देते हैं। त्वग्रोगमे जडका काढा बनाकर पिलाते हैं। इसका स्वरस नाकमे टपकानेसे नकसीर (नाकसे रक्तस्राव होना) आराम होता है। सद्योव्रण, नेत्राभिष्यन्द और अर्शके दाहमे इसके कल्कका लेप करते हैं। अतिसार, आँव, पैत्तिक वमन, उदर, जलोदर, अत्यार्तव, उन्माद और अपस्मारमें इसका स्वरस पिलाते हैं।

●

(३३७) देवदार

फ़ैमिली . पीनासे (Family : Pinaceae)

नाम—(हिं०) देवदार, किलन, (फा०) देवदार, (स०) देवदारु, किलिम (च०), स्निग्धदारु, भद्रदारु (सु०), (व०) देवदारु, (प०, म०, गु०) देवदार, (ता०, ते०) देवदार, (कु०) दयार, (पहाडी) केलोन; (प०) दियार, (क०) दीवदार, (लै०) सेड्रुस लीबानी **Cedrus libani** Rich var **deodara** Hook. f (पर्याय—*C deodara* (Roxb) Loud)। तेल (हिं०) किलनका तेल, (फा०) रोगन देवदार, (स०) देवदारुतैल, (द०) किलन, (अ०) टार (Tar)। लकडी (हिं०) देवदारकी लकडी।

वक्तव्य—वि० दे० "चीड" तथा 'वर्णन'।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालयमें अर्थात् अफगानिस्तान और बलूचिस्तानके उत्तरमे और दोली नदीके जो अलकनन्दामे गिरती है, पूर्व तक अथवा कश्मीरसे गढवाल तक ४,०००-१०,००० फुटकी ऊँचाईपर देवदारके विशालकाय एव अत्यन्त ऊँचे वृक्ष होते हैं। इसमेंसे एक प्रकारका चेपदार द्रव निकलता है जिसे 'रोगन-देवदार' कहते हैं। यह इसके सारकाष्ठसे भी विशेष विधिसे अथवा जलाकर निकाला जाता है। इसके आविष्कर्ता कानूनके भाष्यकार हकीम अली गीलानी हैं। इसकी लकडी (सारकाष्ठ) कुछ पिलाई लिये हलके भूरे रगकी, भारी, कटे हुवे पतले खण्डोमे, जो आडे काटकी तरफ अर्धस्वच्छ होते हैं, क्योकि उस ओर तारपीनका बहुत बड़ा अश एकत्रीभूत होता है। इसकी गन्ध तारपीनवत् और प्रिय होती है। गुजरात और दक्षिण भारतमें प्राय देव-दारके नामसे सरल(चीड)की लकडी बिकती है।

उपयुक्त अग—सारकाष्ठ (लकडी) और इसके काष्ठको जलाकर निकाला हुआ तेल (रोगन देवदार) औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं।

रासायनिक सगठन—इसमे निर्यास, कोलेस्ट्रिन (Cholestrin) और उत्पत् तेल (Essnential oil) प्रभृति तत्व पाये जाते हैं। इसकी लकडीसे बलसाँकी गन्धवाला एक तेल प्राप्त होता है।

लिये अन्य ओषधियोके साथ प्रयुक्त होता है। पत्र एवं पुष्पित अग्रो (Tops)के फांटका प्रयोग वातिक एवं आक्षेपक विकारो तथा श्वास एव मस्तिष्करोगोमें होता है।

आयुर्वेदीय मत—दौना वमन, तिक्त, कषाय, हृद्य, वृष्य, सुगन्धि तथा कण्डू, कुष्ठ, ग्रहणी, विष, रक्त-विकार, क्लेद और तीनो दोषोको दूर करनेवाला है। (ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—दौना तिक्त, दीपन, पाचन, पित्तद्रावी, वातहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, कासहर, शोथघ्न, आनुलोमिक, आर्तवजनन, भूतोन्मादहर और गर्भाशयसकोचन है। मस्तिष्कके ऊपर इसके तेलकी क्रिया कपूर जैसी होती है। अग्निमाद्यमे दौनेका मद्यासव (टिंचर) देते है। ५-१० रत्ती चूर्ण देनेसे डकार और अपानवायुका अनुलोमन होकर उदरका शूल कम होता है। दौनेसे मलका रग पीला होता है, इसलिये इसको पित्तद्रावी कहते है। ज्वरमें दौनेका फाट देनेसे स्वेद और मूत्रका प्रवर्तन होकर ज्वर और शरीरका दर्द कम होता है तथा नीद आती है। अनार्तव और पीडितार्तवमें दौना देनेसे स्त्रीको थोडा नशा होता है, पीडा शान्त होती है और ऋतु साफ आता है। पाडुरोगमे लौहभस्मके साथ दौना देनेसे उत्तम लाभ होता है। दौनेका क्षार जलोदर, वृक्कोदर तथा हृदयोदरमें देते है। इससे मूत्रका प्रमाण बढकर सूजन उतर जाती है। दौनेका व्रणशोथपर लेप करनेसे वेदना और शोथ कम होते है। (औ० स०)।

(३३९, ३४०, ३४१) धतूरा (श्वेत, कृष्ण, राज)

फ़ैमिली : सोलानासे (Family . Solanaceae)

नाम—साधारण (हिं०) धतूर (रा), (अ०) जौजुल्मासेल, जौजमासम, दातूर, (फा०) तातूर (ल), जौजआफत, गौजमासेल, (स०) धत्तूर, धुस्तूर, धूर्त, कनक, उन्मत्तक, (द०, वम्ब०) धरभूली, (व०) धूतूरा, (म०) धोत्रा, धोतरा, (गु०) धत्तुरो, धत्तूरो, धतुरो, (मा०) धत्तूरो, (लॅ०, अ०) डटूरा (Datura)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उजाड स्थान, गाँव और सडकोके किनारे कश्मीरसे मालावार तक इसके क्षुप होते है।

वर्णन—धतूरेका पौधा बैंगनके पौधेके बराबर या उससे बडा होता है। पत्ते भी बैंगनके पत्तेके समान होते है। यूनानी निघटुग्रथोमे दो प्रकारके धतूरेका वर्णन मिलता है—(१) सफेद–इसका फूल सफेद तुरहीकी आकृतिका और शाखाएँ हरी होती है, (२) काला (नीलवर्ण)–इसके फूल-फल और शाखा आदि पहलेके समान, किंतु काले या नीले और फूल दोहरा-तेहरा होते हैं। फल अखरोटसे बडा होता है और उसपर बारीक काँटे लगे होते है। फलके फटनेपर बीज निकलते है। बीज सुमाकके दानेकी तरह, कर्णाकृति, चपटे, खुरदरे, हलका पिलाई लिये भूरे, तिक्त और अप्रियगधी होते है। काला धतूरा अधिक वीर्यवान् समझा जाता है।

विशेष भेद। सफेद फूलका धतूरा–(हिं०) सफेद धतूरा, (अ०) जौजमासेल, जौजमासले(मे)अव्यज़, (फा०) तातूरहे सुफेद, गौजमासले सुपेद, (स०) धत्तूर, श्वेतधत्तूर, उन्मत्त, (द०) उजला धतूरा, (व०) धूतूरा, सादा धतूरा, (म०) पांढरा धोत्रा, (गु०) सफेद धतुरो, (लॅ०) डॉटूरा आल्बा (*Datura alba* Linn), (अ०) व्हाइट-फ्लावर्ड धतूरा (White-flowered Dhatura)। सफेद फूल व कालेबीजका धतूरा—(हिं०), (अ०,फा०) जौकिय, दातूरहे फिरगी, दातूरहे सफेदगुल, (स०) राज-धत्तूर (रा०नि०), (लॅ०) डॉटूरा स्ट्रामोनिउम् (***Datura stramonium*** Linn), (अ०) स्ट्रैमोनियम (Stramonium), थार्न एपल् (Thorn-apple)।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान उत्तरी ईरान और अफगानिस्तान है। यह यूरोप, दक्षिणी रूस, अमरीका, अफगानिस्तान और ईरान तथा कश्मीर, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल आदि हिमालयके प्रदेशोंमें होता है। अमरीकामें इसीका (वहाँ जाने)के पश्चात् ईरानसे यूरोपमें ले जाया गया।

वर्णन—एक क्षुद्र गुल्म, कांड शाखाविस्तृत, द्वि-विभाजी; पत्र दीर्घवृन्तयुक्त, आधारपर विषम, पुष्प सफेद, नलिका कुप्पीकार दंतदारयुक्त होते हैं। बीज काला, वृक्काकृति एवं चपटा, लगभग ½ इंच लंबा और २⅛ इंच मोटा और झुर्रीदार होता है।

काले फूलका धतूरा। भेद —

(१) राजधतूराका एक भेद जिसका फूल बाहरसे बैंगनी शिरायुक्त होता है। यह पश्चिम हिमालय और दक्षिण भारतमें होता है।

नाम—(अ०; फा०) दातूरए जंगली (जिंजिगुल), (लै०) डॅट्यूरा टाट्यूला (Datura tatula Linn.), डॅट्यूरा मेटिल (D metel Linn)।

(२) इसका पौधा और पुष्प आदि बैंगनी रंगका, बीज कुछ पिलाई लिये सफेद होता है। यह समस्त भारतवर्षमें मिलता है।

नाम—(हिं०) काला धतूरा, (अ०) जौज़मासले अस्वद, दातूरए स्याह, दातूरए कबूद, दातूरए सुर्ख गुल; (फा०) तातूरे स्याह, जौज़मासले स्याह, (सं०) कृष्ण धत्तूरक (धुस्तूर), कनक; (द०) ऊदा धतूरा, (बं०) कनक धुतुरा, (म०) काळा धोत्रा, (गु०) काळो धन्तुरो; (लै०) डॅट्यूरा फॅस्ट्यूओसा (Datura fastuosa Linn), (अं०) ब्लैक या पर्पल-फ्लॉवर्ड धतूरा (Black or Purple-flowered Dhatura)।

वक्तव्य—संस्कृत 'धत्तूर' शब्दका अर्थ 'उन्मत्त' या 'उन्मत्त करनेवाला' है। इसका बीज अत्यन्त मदकारक एवं स्वापजनक है, इसलिए इसका उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

इतिहास—प्राचीन इसलामी और भारतीय वैद्योंको उक्त ओषधिका भली-भाँति ज्ञान था। कारण इसका मूल उत्पत्तिस्थान ईरान और भारतवर्ष ही है। प्राचीन यूनानवासियोको इसका ज्ञान नही था। उत्तरकालीन यूनानी चिकित्सकोंने 'टाटूला' नामसे जिसका फारसी नाम 'तातूला' है, इस ओषधिका वर्णन किया है। कतिपय लेखकोंके विचारसे इसकी संस्कृत संज्ञा धत्तूरसे ही इसकी अरबी, फारसी और लेटिन संज्ञाएँ व्युत्पन्न हैं, तथापि डॉ० डायमॉक अपने ओषधिका इतिहास विषयक पुस्तकमें लिखते है कि इसका कोई प्राचीन हिंदी नाम नही पाया जाता। इससे ज्ञात होता है कि जब आर्यलोगोंने मध्य एशियासे भारतपर आक्रमण किया, तब वे इसे भारतमें ले आये। अस्तु, उनके मतसे संभवतः इसकी संस्कृत संज्ञा इसकी फारसी संज्ञा 'तातूर ' से व्युत्पन्न है। क्योंकि उत्तरकालीन यूनानी वैद्योंने भी इसकी फारसी संज्ञा 'तातूलः' को ही अपनी भाषामें समाविष्ट कर लिया। इसकी लेटिन संज्ञा 'डॅट्यूरा' इसकी अरबी संज्ञा 'दातूर ' से व्युत्पन्न है, बल्कि वही नाम है, केवल उच्चारणका किंचित् अन्तर है। इसकी अंग्रेजी संज्ञा 'थॉर्न एपल्' का अर्थ 'कण्टकितसेव' और 'डेविल्स-एपल्' का अर्थ 'आसुरसेव' है। संस्कृतमें भी इसका नाम 'राजधत्तूर' अर्थात् 'महासुर' है।

उपयुक्त अंग—बीज, पत्र और मूल।

रासायनिक सगठन—पत्र और बीजमें काफी प्रमाणमें अजवायन खुरासानीमें पाये जानेवाले हायोसायमीन और हायोसीन नामक क्षारोद और अल्पप्रमाणमें सूची (बेलाडोना)में पाया जानेवाला ऐट्रोपीन नामक क्षारोद होते है। गुण-कर्ममें धतूरा सूची (बेलाडोना)के समान होता है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें शीत एव खुश्क (रूक्ष); आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य प्रयोगसे धतूरा अवसादक और स्वापजनन है। मर्दन या लेप करनेसे यह रूक्षण कर्म करता है। आतरिक प्रयोगसे प्रथमत' यह मस्तिष्कको उत्तेजना प्रदान करता और नशा (मद) तथा प्रलाप उत्पन्न करता है, पर अतमे मूर्च्छा उत्पन्न करता और नीद लाता है। श्वासोच्छ्वासावयवकी प्रणालिकाओ पर यह आक्षेपहर कर्म करता है। धतूरेको नाना प्रकारसे तेलोमें डालकर आमवात, वातरक्त और पार्श्वशूल आदि पर मर्दन करते है। शिर शूलमे इसको मस्तकपर लेप करते है। श्वासका वेग रोकनेके लिये रोगीको इसके पत्तो-की धूनी देते है और हुक्कामें तम्वाकूकी जगह रखकर पिलाते है। कास और श्वासमे उपयुक्त औषधियोके साथ इसके बीजोकी गोलियाँ बनाकर खिलाते है तथा प्रसेक (नजला)को रोकने और ज्वरकी बारी बन्द करनेके लिये देते है।

धतूरेके विष-लक्षण और उसकी चिकित्सा—धतूरके बीज विषैली मात्रामें खिलानेसे रोगीकी ज्ञानेन्द्रियाँ अस्थिर और बुद्धि लुप्त हो जाती है। जिह्वा और कठ शुष्क हो जाते है। नेत्र रक्त वर्ण हो जाते है और पुतलियाँ फैल जाती है। दृष्टि कम हो जाती है। आवाज भर्रा जाती है और रोगी प्रलाप करने लगता है। कभी-कभी उठकर भागनेका प्रयास करता है। परन्तु मद्यपानमे मदमस्त मद्यपियोकी भाँति इधर-उधर पैर रखता है। कभी कभी काल्पनिक वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती है और वह उनके पकडनेका यत्न करता है कभी-कभी सरसामियोकी भाँति अपने कपडेको चुनने लगता है और बिछौना, दीवाल आदिसे काल्पनिक वस्तुओको पकडता है। एक-दो दिन यह दशा रहकर विष प्रभाव हो जाता है। पर कभी गफलत तारी हो जाती है और श्वास एव हृदयकी गति वद होकर रोगी मर जाता है। इसकी चिकित्सा यह है कि रोगीको कोई वामक औषधि, जैसे-मैनफलका काढा पिलाकर वमन करायें, जिसमे आमाशय सम्यक् शुद्ध हो जाय। इसके उपरात घी या ताजा मक्खन खिलाये या गायका ताजा दूध पिलायें। इसके बाद धतूरके विषका कोई अगद खिलाये। शोधन—इसके बीजोको सदा शुद्ध करके औषध काममे लेना चाहिये। अहितकर—प्रलाप और उन्माद उत्पन्न करता है। निवारण—कालीमिर्च और सौंफ। प्रतिनिधि—अफीम। मात्रा १५ मि० ग्रा०मे ६० मि० ग्रा० ($\frac{1}{8}$ रत्तीसे $\frac{1}{2}$ रत्ती) तक। १ ग्रामसे १$\frac{1}{2}$ ग्राम (१ माशासे १$\frac{1}{2}$ माशा) घातक मात्रा है।

आयुर्वेदीय मत—धतूरा कटु, कषाय मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, गुरु, भ्रम-मद-मूर्च्छा-वर्ण-जठराग्नि-पित्त और वायु करनेवाला तथा कफ, कुष्ठ, कण्डू, ज्वर, व्रण, कृमि, विष, जूँ और लीखका नाश करनेवाला है। (ध० नि०, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—धतूरा वेदनास्थापन, संकोचविकासप्रतिबधक, कासश्वासहर, नियतकालिकज्वर-प्रतिबधक और शोथहर है। बडी मात्रामे तीव्र विष है। धतूराको वेलाडोना (लुफाह)के प्रतिनिधि-रूपमे ले सकते है। श्वासमार्गके सकोचविकासप्रधानरोगोमे धतूरेका विशेष उपयोग करते है। श्वासनलिकाशोथ और दमा इन दोनो रोगोमे धतूरा खानेको देते है और उसके पत्रका धूमपान कराते है। इससे कफ गिरने लगता है और दमा कम होता है। पारीसे आनेवाले शीतज्वरमे धतूरेके बीज दहीके साथ देते है। शीतज्वरमे अफीम, भाँग और खुरासानी अजवायन जैसे और भी मादक द्रव्य देते है। इन औषधियोसे शीत, शरीरका दाह तथा शिर और शरीरकी पीडा कम होती है। इन औषधियोसे शीतज्वर समूल नष्ट नही होता, परन्तु उससे होनेवाली पीडा कम होती है। उदरशूल, पित्ताश्मरीशूल और वृक्कशूलमे इसका उपयोग करते है। शोथमे धतूरेकी पत्तियो या मूलको गोमूत्रमे पीसकर उसका लेप करते है। धतूरा और शिलाजीत मिलाकर लेप करनेसे अडशोथ, उदरशोथ, फुफ्फुसधराकलाशोथ, सन्धिशोथ और अस्थिशोथमे विशेष लाभ होता है। स्तनशोथ, शोथयुक्त अर्श और पीडायुक्त अक्षिशोथपर पत्तेको जरा गरम करके बाँधते है।

(३४२) धनियां

फैमिली : अम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) धनिया(आं), (अ०) कज्बुर, कस्फु(बु)र (इ०बै०), कुज्ब(बु)र ; (फा०) कश्नीज ; (सं०) धान्यक, कुस्तुम्बरु, (ते०) धनियालु; (पं०) धनिया, धेनेल, (द०) धनिया, (बं०) धने, (म०) धणे, कोथिम्बीर, (गु०) धाणा, कोथमीर, (मा०) धणीया, धाणा, (कना०) कोत्तुंबरि, (सिंह०) कोत्तमल्लि, (लै०) कोरिआण्ड्रम् सातीवुम् (Coriandrum sativum Linn.), (अं०) कोरिऐण्डर (Coriander)।

वक्तव्य—'कोत्तमल्लि' या 'कोथ(थि)मीर' उपर्युक्त भाषाओंमेंसे कुछ भाषामें धनियाके क्षुप (हरी धनिया)के और 'धनिया' या 'धनियां' उसके फलके नाम हैं। किन्तु इन सब नामोंका व्यवहार प्रायः अभेदरूपमें उनमेंसे केवल एक या उभय द्रव्योंके अर्थमें होता है। हरे धनियां (धनिया सब्ज)को फारसी और अरबीमें क्रमशः कश्नीजरतब (पत्रको बर्ग कश्नीज) तथा कुज्बुर तथा संस्कृतमें कुस्तुम्बरी(सु०) और सूखे धनिया अर्थात् फल (जिनको व्यवहारमें बीज कहा जाता है) यानी धनिया खुश्कको 'कश्नीज खुश्क' तथा 'कुज्बुर याबिसा', बज्रुल् कुज्बुरः या समूरुल् कुज्बुर और संस्कृतमें 'धान्यतुम्बुरु' (सु०) कहते हैं।

इतिहास—भारतवासियों, यूनानियों, अरबों और ईरानियों आदिको पुरातनकालसे ही इसका ज्ञान है। दीसकूरीदूसने 'कोरिओन (कूरिकून)' नामसे इसका उल्लेख किया है। इसकी लैटिन संज्ञा 'कोरिआण्ड्रम्,' जिससे इसकी अंग्रेजी संज्ञा बनी है, इसकी यूनानी संज्ञा 'कोरिएन्नून' से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध सुगन्धित वनस्पति है, जो साग आदि (सालन)और चटनीमें सुगन्धके लिए डाली जाती है। इसके बीज मसालेमें डाले जाते हैं तथा औषधकी भांति उपयोग किये जाते हैं। जब इनको कूटकर बाहरी छिलका उतार दिया जाता है, तब उसको मग़ज़ कश्नीज या बिरज कश्नीज कहते हैं। वन्य और उद्यानज भेदसे धनियां दो प्रकारकी होती है।

उपयुक्त अंग—बीज (सूखे फल) और पत्र।

रासायनिक संगठन—फलमें एक उत्पत् सुगन्धित तेल, अनुत्पत् तेल, वसामय पदार्थ, लवाब, टैनिन, मैलिक एसिड और भस्म, तेल (रोगन कश्नीज)में कोरिएण्ड्रोल (Coriandrol) नामक एक प्रकारका सुरासार होता है।

पत्र (धनियां सब्ज)—

प्रकृति—विलयन और संशमन दो परस्परविरोधी गुणकर्म प्रगट होनेके कारण हरा धनिया समिश्रवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हरा धनियां बाह्यतः विलयन और संशमन कर्म करता है। आंतरिक उपयोगसे मस्तिष्कपर इसका संशमन (मुसक्किन) कर्म होता है। यह बाष्पभवन (तब्ख़ीर)को रोकता है और शारीरिक संताप-को शमन करता है। गरम सूजन और फुन्सियों तथा विसर्पपर पतला लेप (तिलाऽ) करनेसे यह दोषोंको विलोम और विलीन करता तथा वेदनाको शांत करता है। कंठमाला (खनाजीर) और कठिन सूजनके ऊपर इसको जौके आटाके साथ लेप करनेसे यह उनको विलीन करता है। मुख और दाह (सोजिश)को शांति प्रदान करनेके लिये हरे धनियेके रससे गण्डूष कराते हैं। नेत्राभिष्यंदको नष्ट करने और वेदना शमन करनेके लिये इसे स्त्रीस्तन्यके साथ नेत्रमें आश्च्योतन करते हैं। शीतला (चेचक)के प्रारम्भमें नेत्रको उससे सुरक्षित रखनेके लिये इसको अकेला या कपूर घोल (हल)करके टपकाते हैं। नकसीर बन्द करनेके लिये भी इसमें कपूर घोलकर नाकमें टपकाते या उसके

भीतर पिचकारीसे पहुँचाते हैं। नीदलाने और मस्तिष्ककी ओर वाष्पारोहण करनेसे रोकनेके लिये २½ तोले इसका पानी (स्वरस) शर्करा मिलाकर पिलाते हैं। हरा धनियाँ पित्त, आमाशयशोथ या दाह और तृष्णाको शमन करता और कै को रोकता है तथा मैथुनशक्ति (कुव्वतबाह)को घटाता है। यह क्षुधावर्धक है। अहितकर-शिरोभ्रमण(सदर)कारक और विस्मृतिजनक। निवारण-सिकजबीन सफरजली और मधु। प्रतिनिधि-काहू और पोस्ताका पत्रस्वरस। मात्रा-१ तोलेसे २½ तोले तक।

बीज या फल (धनियाँ खुश्क)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे भी यह शीतवीर्य (रा०नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—धनिया (फल) बाहरी तौरपर सशमन कर्म करता है। आतरिकरूपसे खिलानेसे यह हृद्य और मस्तिष्कको शक्ति और उल्लास प्रदान करता है तथा वाष्पको आरोहण करनेसे रोकता है। यह दीपन, वातानुलोमन और सग्राही है। उष्ण शिर शूलको शमन करनेके लिये धनियाको अकेला या अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। हृदय और मस्तिष्कको पुष्ट एव उल्लसित करने तथा वाष्पारोहण रोकनेके लिये अकेला या अन्य उपयोगी औषधियोंके साथ इनका चूर्ण बनाकर या अन्य योगौषधियोंमें मिलाकर खिलाते हैं। अतराफल कश्नीजी इसका प्रसिद्ध योग है जो मस्तिष्कको बलप्रदान करने, वाष्पारोहण रोकने और शिर शूलको नष्ट करनेके लिये प्रयुक्त होता है तथा भ्रम और सम्मोहमें खिलाया जाता है। मदाग्नि और उदराना‌हमे इसको चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। दस्तोको रोकनेके लिये इसको जलमें पीस-छानकर पिलाते हैं। विशेषत भुनाहुआ धनिया विशेष लाभ पहुँचाता है। कामोन्मादको शान्त रखनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर-शुक्रनाशन। निवारण-भृष्ट करनेसे इसके दोपका परिहार हो जाता है और सिकजबीन सफरजली। प्रतिनिधि-पोस्ताके दाने और काहूके बीज। मात्रा-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—धनिया कषाय, तिक्त, मधुर, कटु, मधुरविपाक, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध, हृद्य, स्रोतोविशोधन, रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, मूत्रल, तृष्णानिग्रहण, शीतप्रशमन, त्रिदोषहर, चक्षुष्य तथा ज्वर, तृषा, दाह, कास, श्वास, वमन, आँव, अर्श और कृमिका नाशकरनेवाला है। (च० सू० अ० ४,२७, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, रा० नि०; भा० प्र०)। हरा धनिया भक्ष्य-भोज्य और व्यजनमें मिलानेसे उसको स्वादिष्ट, सुगन्धित और हृद्य बनाता है तथा विशेषकरके पित्तका शमन करता है (सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—धनिया दीपन, मधुर, शीत, कषाय, रूक्ष, मूत्रविरजनीय, पिपासाघ्न, दाहप्रशमन, वातहर और अभिष्यन्दप्रशमन है। कुटे हुये धनियेको पानीमें उबाल कपडेसे छानकर आंखमे डालनेसे नेत्राभिष्यदमें बडा लाभ होता है। ज्वरमें धनियेके पानी (हिम या फाट)का उत्तम उपयोग होता है। उदरशूलमे धनियेका तेल उत्तम औषध है। सिरके दर्द और भिलावेकी सूजनपर हरे धनियेका लेप करते है।

●

(३४३) धमासा (धमाहा)

फैमिली : जीगोफील्लासे (Famıly Zygophllyaceae)

नाम—(हिं०) धमासा, (स०) धन्वयास, दुरालभा, (प०) धमाह, धमाहा (या), धम्या, (ब०) दुरालभा; (म०) धमासा, (गु०, मा०) धमासो, (कच्छ) ध्रामाऊ, (ते०) चित्तिगार, (का०) नेलइगल, (ले०) फागोनिआ आराबिका (**Fagonia arabica** Lınn)।

उत्पत्तिस्थान—मूलत यह भारतीय वनस्पति नही, अपितु अरबस्थान जैसी मरुभूमिकी वनस्पति है। धीरे-धीरे भारतमे भी विशेषकर रेतीली और खारी भूमिमे (सर्वत्र नही), इसकी उपज होने लगी है और अब

दक्षिण भारतके महाराष्ट्र (अहमदनगर), सिंध और पश्चिम खानदेश आदि जिलोंमें और उत्तर भारतके पंजाब, मारवाड आदि प्रान्तोंमें यह विपुल प्रमाणमें होती है। यही कारण है कि मख्जनुल् अद्विया आदि यूनानी निघंटु-ग्रन्थोंके लेखकोंने इसे एक भारतीय घास लिखा है। इसके अरबी, फारसी आदि नाम नहीं दिये हैं और गुण कर्म आदि भी भारतीय ग्रंथोंके आधार पर लिखे हैं।

वर्णन—धमासेका १५ सें० मी० से ३० सें० मी० (½—१ फुट) ऊँचा अथवा ३० सें० मी० (एक फुट)-के घेरेमें भूमिपर लिपटा या बिछा हुआ छोटा क्षुप होता है। पत्तियाँ अलसीकी पत्तियोंसे कुछ मिलती-जुलती होती हैं। प्रत्येक पत्तीके पास दो तीक्ष्णाग्र कांटे होते हैं। पौष तथा माघ मासमें इसमें गुलाबी रंगके पाँच पखडीवाले फूल लगते हैं। फल पांच पखवाले और ऊपर तीक्ष्णाग्र लम्बा कांटा होता है। जवासा भी धमासा जैसा दिखता है और इसे इसका ही एक भेद मानते हैं। परन्तु उसमें फलियाँ (शिम्बी) लगती हैं और इसमें फल लगते हैं। जवासेका क्षुप इनसे बड़ा ०.९ से १.२ मीटर (३-४ फुट) तक ऊँचा होता है। यह अन्तर ध्यानमें रखनेसे दोनोंमें भ्रम नहीं होता। इन दोनोंमें प्रधान साम्य यह है कि दोनों कण्टकित हैं। धमासेमें दो पत्तियाँ, जिन स्थानोंसे उप-शाखा निकलती हैं, उन स्थानपर 'गुणाकार' × 'की आकृतिके समान चार कांटे, पत्र, फूल (सवृन्त) और फल चक्राकार-में होते हैं। पंचफूलीके प्रत्येक भागमें क्रमसे लगे हुए पांच बीज होते हैं। फल पक्व होनेपर इन बीजोंका रंग ऊदी बन जाता है। भारतीय धमासेकी जड सफेद होती है। काड सफेद और अत्यंत कठोर तथा काण्डत्वक् हलके भूरे रंगकी होती है। भिगोने पर यह चिपचिपा और पिच्छिलतायुक्त हो जाता है। यह 'शुकाई' या 'बादावर्द' से भिन्न द्रव्य है (दे० 'जवासा')।

तरंजबीन—अरब आदि देशोंमें धमासा या दुरालभाके सुपक्व क्षुपमें जवासेकी भाँति ही रेणुतुल्य मधुर-कणरूपमें तरंजबीन प्राप्त होती है। यही असली तरंजबीन (यासशर्करा) है। इस पद्धतिके अनुसार भारतीय धमासा व जवासासे तरंजबीन प्राप्त नहीं होती। अरबदेशीय दुरालभाका इस दृष्टिसे प्रयोग करना आवश्यक है, तो भी हम अपने आयुर्वेदीय पद्धतिके अनुसार धमासाका तुरंजबीन निकाल सकते हैं (वि० दे० 'जवासा')।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप, पत्र, टहनी, पुष्प, फल अर्थात् पंचांग और क्षुपसे प्राप्त शर्करा (तुरंजबीन)।

कल्प तथा योग—समग्र क्षुपको कूटनेसे रस नहीं प्राप्त होता, इसलिये उसका हिम तथा फांट बनाना पडता है। धमासा, पित्तपापडा और मुनक्का इन सबका हिम या फाँट बनाना अच्छा है। क्योंकि इससे इसका प्रभावांश एक घण्टेमें उतरता है। इसे अधिकसे अधिक एक दिन तक रख सकते हैं। ६ से १२ ग्राम (½ से १ तोले) चूर्णका हिम बनाकर देना चाहिए।

प्रकृति—मख्जनके अनुसार सर्द एवं खुश्क, मतांतरसे समशीतोष्ण या गरम एवं खुश्क। आयुर्वेदके मतसे यह रसमें स्वादुकषाय, शीतवीर्य और विपाकमें मधुर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तालीफशरीफके मतमें किसी-किसीने गुणमें जवासाके समान लिखा है। अस्तु, इसका अन्तर्भाव जवासामें ही कर दिया है तथा धमासामें भारतीय (आयुर्वेदीय) ग्रन्थोंके आधारपर इसके गुणकर्म आदि लिखे हैं। यथा—यह शीतल, ज्वरघ्न, पित्तदाहप्रशमन, रक्तशोधन, तृष्णानिग्रहण, मूत्रजनन, श्वयथुविलयन, कोथ-प्रतिबन्धक, बल्य, विषघ्न और व्रणरोपण है। इसके प्रधान कर्म पित्तप्रशमन और रक्तशोधन हैं। बहिराभ्यन्तरिक समस्त पित्तज विकारोंमें धमासा लाभकारी है। ग्रीष्म ऋतुमें सन्तापजनित समस्त विकारोंको शमन करनेमें यह अतिशय गुणकारी है। इसके उपयोगसे ज्वर विशेषकर पित्तज एवं सम्मिश्र ज्वर छूट जाते हैं। इस हेतु धमासेका फाँट बनाकर पिलाते हैं और उसमें कपडा भिगोकर उससे शरीर पोंछते हैं। इससे प्यास, शरीरका दाह (संताप) और कण्डू कम होती हैं। सर्दीका ज्वर तथा गले (कण्ठ) और श्वासनलिका एवं फुफ्फुसकी सूजनमें धमासेका अच्छा उपयोग होता है। इससे गलेका सूखना कम होता है और कफ निकलने लगता है तथा कास एवं कृच्छ्रश्वास मिटता

है। विषमज्वरमे इसका प्रधानरूपमे उपयोग नही होता, पर जिस स्थान पर पित्ताधिक्य है उस स्थान पर इस औषधिका इस दृष्टिसे अच्छा उपयोग होता है। चिरायता पित्तविरेचनका तथा पित्तशमनका कार्य करता है, परन्तु उसके तिक्त गुण (उष्णवीर्य)से कभी-कभी पित्तकी भी वृद्धि होती है। यही कारण है कि इसके साथ सदा धमासा देना लाभकारी होता है। जहाँ पित्तप्रकोप होनेसे कोष्ठशूल होता है वहाँ पित्तपापडाके साथ धमासाका प्रयोग लाभकर होता है। इतना ही नही यह मिश्रण किसी अन्य औषधिसे पित्त बढना, जागरण, अग्नि आदिमे पित्तप्रकोप होना, वमन, सर्वाङ्गदाह बलमासक्षय, अग्निमाद्य आदि स्थानोमे भी चलता है। शीतपित्तमें इसका काढा पिलाते है।

यह वातवाहिनियोको शान्त करता है। अतएव पित्तप्रकोपके कारणभूत विविध वातक्षोभजविकारमें इसका प्राय उपयोग होता है। वातपित्तज शिर शूलमे यह अच्छा काम देता है। मन क्षोभ, चित्तविभ्रम, मूर्च्छा एव चित्तविक्षोभजन्य शिर शूल तथा शुक्रप्रमेहमें भी यह लाभकारी है। इसके क्वाथमे घी मिलाकर पिलानेसे भ्रम (चक्कर आना) आराम हो जाता है। निद्रा लानेवाली औषधोमेंसे धमासा भी एक है। मन सताप, विचार, तन्द्रा आदि इससे नष्ट होकर शान्तिकी नीद आती है। इसमे निद्राप्रद यह उत्तम औषधि सिद्ध हुई है। पाश्चात्य औषध ब्रोमाइडसे भी इस काममे यह प्रभावशाली है। इस हेतु सोनामक्खीकी भस्म १ रत्ती, १ तोला गायके घीमें चाटकर रातमे धमासाका लघुकषाय पीना चाहिए।

मुखमे छाले पडे हो (मुखपाक) तो धमासेके काढेसे कुल्ले कराते हैं। धमासेके स्वरसमे मिश्री डालकर मन्दाग्निसे इतना पकावे कि वह पूर्णतया गाढा हो जाय अथवा धमासेको गन्नेके रसमे पका-छानकर उसका अवलेह बनायें। इसमेंसे थोडा-सा मुखमे धरा रखनेसे मुखपाकमें होनेवाला दाह शमन होता है। कण्ठ तथा फुफ्फुसके रोगोमे अन्य औषधोके साथ इस अवलेहको अनुपानरूपमे देते है। धमासेका धूम्रपान करानेसे दमा (श्वास) कम होता है। धमासा प्राणिज औद्भिज वानस्पतिक और अन्य दूषित विषोके प्रभावको नष्ट करती है।

रक्तशोधक होनेसे यह रक्तदुष्टिजन्य कुष्ठप्रभृति रोगो तथा त्वग्रोगोमे लाभ पहुँचाता है। इस हेतु रक्तशोधक (मुसफ्फीखून) काढा आदि योगोमें डालकर इसका उपयोग करते है। शीतल संग्राही होनेसे यह प्रत्येक स्थानसे रक्तस्रावको रोकता है। ३॥ ताले मुनक्का और उतनाही धमासाका काढा बनाकर पीनेसे रक्तातिसार आराम होता है। खुले घावपर इसका स्वरस लगानेसे उसका पकना रुक जाता है। इसे पानी या दूधमे पीसकर-पकाकर कुनकुना लेप करनेसे फोडा बैठ जाता है और कठिन सूजन उतर जाती है। धमासेके काढेसे घाव धोनेसे पीप नही पडती और घाव शीघ्र भर जाता है। काँटा गड जानेसे जो सपूयव्रण हो जाते है, उन्हे पकानेके लिये इसकी पत्तियोको पीसकर उनपर लेप करना चाहिये। शीतल मूत्रजनन होनेसे मूत्रावरोधजन्य विकारो एव मूत्रदाहमे तथा सूजाकमें इसका उपयोग होता है। यह आमाशय तथा यकृतको बलप्रदान करता है। यह जलोदर (इस्तिस्काऽजिक्की)मे भी इसी हेतु गुणकारी है। अहितकर—फुफ्फुसको। प्रतिनिधि—शाहतरा, पित्तपापडा, अफसतीन।

आयुर्वेदीय मत—धमासा मधुर, तिक्त, प्यास कम करनेवाला तथा अर्श, दाह विषमज्वर, वमन, प्रमेह और भ्रम (चक्कर आना)का नाश करनेवाला है। (च०सू०अ०४, ध०नि०)।

नव्यमत— धमासा शीतल, ज्वरहर, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, मूत्रजनन, वल्य, कोथप्रशमन और व्रणरोपण है। आधेसे एक तोले चूर्णका हिम बनाकर देना चाहिये। धमासेका फाँट ज्वरमे पिलाते है और उसमे कपडा भिगोकर उससे शरीर पोछते है। इससे प्यास, शरीरका दाह और कडू कम होती है। सर्दीका ज्वर तथा गले और फुफ्फुसकी सूजनमे धमासेका अच्छा उपयोग होता है। इससे गलेका सूखना कम होता है और कफ निकलने लगता है। धमासेके काढेसे घावको धोनेसे पीप नही पडती और घाव शीघ्र भर जाता है। मुँहमे छाले पडे हो तो धमासेके काढेसे कुल्लियाँ करते है। धमासेको ईखके रसमे पका, छानकर उसका अवलेह बनाते है। इस अवलेहको गले और फुफ्फुसके रोगोमें अन्य औषधोके अनुपानरूपमें देते है। धमासेका धूम्रपान करानेसे दमा आराम होता है।

●

(३४४) धवई

फैमिली लीथ्रासे (Family Lythraceae)

नाम—(हिं०) धतकी, धवईके फूल, धाय(ई)के फूल, धाव, (फा०) गुले धावा, (स०) धातकी, (खर०) फुलधवई, धायफूल, (ब०)धाईफुल, (प०) धावी, (क०) गुलिदावा, (म०) धायटी, धावस, (गु०) धावडी (णी), (का०) थाई, (मा०) धावडी, (सि०) फूल धावो, (तें०) सिरीजी, (मल०) तादिरे, तादिरी, (लै०) वूडफोर्डिआ फ्रूटीकोसा (**Woodfordia fruticosa** (L) Kuiz (पर्याय–*W floribunda* Salisb), (अ०) डाउनी ग्रिजलेआ (Downy Grislea)।

उत्पत्तिस्थान—प्राय समस्त भारतवर्षके पहाडी प्रदेशोमे यह जगली होती है।

वर्णन—यह एक गुल्मके प्रसिद्ध फूल है। फूल और कटोरी (Calices) उभय ताँवडा रग (अग्निवर्ण)के होते है। कटोरी स्थायी और १२ दतयुक्त होती है तथा फूलके सूखने पर भी उसका रग स्थिर रहता है।

उपयुक्त अग—फूल।

रासायनिक सगठन—फूलमे २० प्रतिशत टैनिक अम्ल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष (मतातरसे तीसरे दर्जेमे रूक्ष)। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य है (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तस्तम्भन, शीतजनन तथा रूक्षण। सग्राही होनेके कारण अतिसारको वन्द करनेके लिये इसका चूर्ण या क्वाथ पिलाते है। सग्राही और रक्तस्तम्भन होनेके कारण अतिरज और अर्शोजात रक्त वन्द करनेके लिये रोगीको इसके काढेमें उसे शीतल होने तक विठाते है तथा इसका चूर्ण वनाकर खिलाते है। योनिसे नाना प्रकारका स्राव होता हो तब भी अकेले या अन्य औषधियोके साथ इसका चूर्ण उपयोग कराते है। गुदभ्रशमे इसके काढेके भीतर रोगीको विठाते है या इसका चूर्ण वनाकर अवचूर्णन करके लगोट वाँध देते है। शीतजनन और रूक्षण होनेके कारण इसको सरसोके तेलमें जलाकर दग्ध अगोपर लेप (तिला) कराते है। अहित-कर–कृमिजनक है। निवारण–अनारका रस। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—धायके फूल कटु, कषाय, लघु, शीतवीर्य, सधानीय, पुरीषसग्रहणीय, मूत्रविरजनीय तथा प्रवाहिका, अतिसार, विसर्प और व्रणका नाश करनेवाले है (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—आसवोमें इसका फूल डालनेसे अच्छा रग आता है। फूल सग्राहक है। अत्यार्तव, अतिसार और पुराने आँवमें इसका फूल देते है।

●

(३४५) धावा (धव)

फैमिली : कॉम्ब्रीटासे (Family Combretaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) धौ(धौ)रा, धव(धौ), धौकरा वाकल, (स०) धव [illegible], [illegible], (बं०) [illegible], (गु०) धावडो, (म०) धावडा, (मार०) धवकटो, धव; (खर०) [illegible], (लै०) [illegible] (**Anogeissus latifolia** Wall ex Bedd), (अ०) क्रेन ट्री (Crane Tree [illegible] निर्यास या गोंद (हि०) धावागोंद, (अ०, फा०) समगेहिन्दी, (म०) धवनिर्यास, (लै०) गुम्मी [illegible] (Gum [illegible]) इडियन गम (Indian Gum)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी बगाल और आसामको छोडकर यह शेष समस्त भारतवर्षके शुष्क जगलोमें होता है।

वर्णन—बडे या मध्य ऊँचाईका वृक्ष, स्कंध सीधा और छाल सफेद, पत्र चौडाई लिये हुए अण्डाकार ५ से १० सें० मी० (२—४ इञ्च) लम्बे, कुण्ठित या गोल अग्रवाले, पृष्ठपर बिन्दुयुक्त और सनाल, पत्रवृन्त-वृन्तमूल-वृन्ताध पृष्ठ अरुणाभ, पुष्प छोटे हरिताभ, फल चिपटे द्विपक्ष और चोंचदार होते हैं। चैतके महीनेमें इससे एक प्रकारका गोंद निकलता है, जो साफ कुछ पीला और कभी शहदके रगका होता है, तथा मैल मिल जानेसे भूरे रगका हो जाता है। यह बबूलके गोंदका उत्तम प्रतिनिधि है। स्वाद कषाय तथा तोडनेसे धरातल काँच जैसा दिखता है। यह पानीमे शीघ्र घुल जाता है। इसे 'नागौरी गोंद' भी कहते हैं।

उपयुक्त अग—फूल, फल, काष्ठ, मूल, पत्र, गोंद और छाल।

रासायनिक सगठन—इसमें टॅनिन, गोंदमे पेन्टोज और गॅलेक्टोज आदि होते हैं।

प्रकृति—दूसरेमे सर्द और तीसरेमे खुश्क, मतातरसे अनुष्णाशीत, गोंद सर्द एव खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फूल ग्राही, कृमिघ्न व कृमिनिस्सारक, क्षुधावर्धक तथा अतिसारनाशक है। इसके काढेमे बैठनेसे गुदभ्रशरोग, अर्श, आर्तवका अधिक स्राव आराम होता है। यह शुक्रमेह और शीघ्रस्खलनमें लाभकारी है। फूल इतर अगोकी अपेक्षया लघु (लतीफ) है तथा तृष्णाशमन करता और रक्तविकारका नाश करता है। आमाशयातिसारमे इसे जायफल और खाँडके साथ देते हैं। शहदके साथ यह बच्चोके उदरका सुधार करता है। पौने-दो तोले इसके फूलको पानीमे भिगो-मल-छानकर पौने दो तोले मिश्री मिलाकर पीनेसे अर्शका खून बन्द हो जाता है। फूलोको जलाकर कडवे तेलमें मिलाकर आगसे जले हुए स्थानपर लगानेसे बडा लाभ होता है। मात्रा–फूल ४·५ ग्राम (४½ माशे)।

गोंद—

प्रकृति—शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ललनाएँ सूतिकागारमें तथा अन्याय कालोमें इसे खाती है। इससे उनकी कमरशक्ति सम्पन्न होती है। यह आर्तवरक्त तथा योनिस्रावको बन्द करता है। यह प्रसिद्ध है कि धवका गोंद पुरुषको नही, स्त्रीको खाना चाहिए और खैरका गोंद स्त्रीको नही पुरुषको खाना चाहिए। इस गोंदको राजपुताने-की ललनाएँ एक विशेष विधिसे खाती हैं अर्थात् इसको दरदराकर घीमे भूनकर और खाँड मे जमाकर खाती है। इससे योनि द्वारा होनेवाला श्वेत पानीका स्राव (श्वेतप्रदर) बन्द हो जाता है। इसे उनकी परिभाषामें 'गोंद जनाना' कहते हैं।

आयुर्वेदीय मत—धव कषाय, मधुर, चरपरा, शीतवीर्य, दीपन, रुचिकारक तथा पाण्डुरोग, प्रमेह, कफ, पित्त, अर्श और वातको दूर करनेवाला है। फल स्वादिष्ट, कसैला, शीतवीर्य, रूक्ष, वातकारक, ग्राही (मल-स्तम्भक), वातकारक तथा कफपित्तनाशक है। जड चरपरी, कसैली, पित्तकारक और परम दीपन है। (नि० र०)।

●

(३४६) नकछिकनी

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) नकछिकनी, (स०) छिक्किका, क्षवक, छिक्कणी, (व०) छिकनो, (म०) नाकशिकणी, (गु०) नाकछीकणी, (लै०) सेन्टीपीडा ऑर्बीकुलारिस (**Centipeda orbicularis** Lour.), (अं०) स्नीज-वीड (Sneeze-weed)।

रखते है। इसको 'कचूर' कहते है। दूसरी 'कर्लो (वृहत्)' जो मोटी और लम्बी होती है। इसको जमीनसे निकालनेके बाद उबालकर टुकडे-टुकडे करके सुखा लेते और औषधके काममें लेते है। इसको 'नरकचूर' कहते है। दोनोकी प्रकृति और गुण-कर्म लगभग समान है।

उपयुक्त अग—मूल (कद)। कल्प-चूर्ण और फाँट।

रासायनिक सगठन—कचूरमे जदवारीन (Zedoarin) नामक सत्व और नरकचूरमे उत्पत् तेल और रालादि पदार्थ होते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, अवरोधोद्घाटक, सौमनस्यजनन, हृदयमस्तिष्कबलदायक (हृद्य और मेध्य), यकृदामाशयबलदायक, तीव्र लेखन, मुखदौर्गन्ध्यहर (मुखको सुवासित करनेवाला), श्लेष्मनिस्सारक (कफोत्सारि), मूत्रार्तवजनन, वाजीकर और श्वयथुविलयन। उपर्युक्त गुणोके कारण जरवादको यकृत्, आमाशय और हृद्रोगोमे प्रयुक्त माजून और मुफर्रेह कल्पोमे डालते है। दीपन और पाचनके लिए यह बालकोंके सफूफ घुटकीमें पडता है। श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन होनेके कारण इसका लेप किया जाता है। मुखदौर्गन्ध्यहर होनेके कारण मुखदुर्गन्धिमे इसको मुखमे रखकर चवाते है। श्लेष्मनिस्सारक और कफोत्सारि होनेके कारण कास और कफज कृच्छ्रश्वासमे इसको खिलाते है। लेखन होनेसे व्यग और कच्छूमे लेपकी भाँति इसका उपयोग करते है। अहितकर–शिर शूलजनक। निवारण–गुलेबनफशा। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—कचूर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन, हृद्य, सुगन्धि तथा कफ, वात, श्वास, हिक्का, अर्श, प्लीहा, गुल्म, कुष्ठ और कासको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० २७, ध० नि०)।

●

(३४८) नरगिस

फ़ैमिली : आमारीलिडासे (Family Amaryllidaceae)

नाम–(हिं०, प०, फा०) नर्गिस, (अ०) नर्जिस, अम्बर, (ले०) नार्सीस्सुस टाजेट्टा (***Narcissus tazetta*** Linn)।

वर्णन—यह प्याजके क्षुपकेसे पौधेका एक प्रसिद्ध सफेद, सुगन्धित और सुन्दर फूल है जो प्याजके समान होता है। इसके पत्र और मूल प्याजके समान होते हैं। अधिकतया इसकी जड (प्याजे नरगिस) ओषधमें प्रयुक्त की जाती है। भारतीय बगीचोमे नरगिसका गुल्म लगाते है।

रासायनिक सगठन—इसमें टॅजेटीन (Tazettine) और जडमे सुइसेनीन (Suisenine) नामक क्षारोद (Alkaloid) पाये जाते है।

कल्प तथा योग—रोगन प्याज नरगिस, सफूफ प्याज नरगिस आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल श्वयथुविलयन, लेखन, द्रवशोषणकर्ता, शोणितोत्क्लेशक, उदरकृमिनाशक, गर्भनिस्सारक और वाजीकर। श्वयथुविलयन होनेके कारण प्याजेनरगिसको फोडे-फुंसियोको बिठाने और उनको फाडनेके लिए लेपकी भाँति उपयोग करते है। लेखन होनेके कारण झाईं, छीप और गजपर इसका लेप करते है।

द्रव एवं शोणितोत्क्लेशक होनेके कारण इसको पतले लेपोंमें डालते हैं। यह शिश्नकी वातनाडियोंको बल देता और उनको पुष्ट करता है। उसको शराब करके पिलानेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते हैं और गर्भपात हो जाता है। अहित-कर—उष्ण प्रकृतिवालोंमें शिर शूलजनक है। निवारण—बनफशा, कपूर और निलूफर आदि। प्रतिनिधि—गुले नर-गिस। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशे से ३ माशे) तक।

नव्यमत—जड वामक है। शिर शूल निवारणके लिए उसका उपयोग करते हैं।

(३४९) नागकेसर

फ़ैमिली : गुट्टीफेरे (Family Guttiferae)

नाम—(हिं०) पीला नागकेसर, नागेसर, (अ०) सिरकुरुम्मान, (फा०) नारेमुश्क, (म०) नागकेश(स)र, नागपुष्प, चाम्पेय, (बं०) नागेश्वर, (म०) नागकेस(श)र, नागचाफा (वृक्ष), (गु०) पीलु नागकेशर, (ते०) नाग-केसरम्, नागचम्पकम्, (का०) नागनसिगे, (लै०) मेसुआ फेरेआ (Mesua ferrea Linn)। (अं०) आयर्न-वुड ट्री (Iron-wood Tree)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्व बंगाल, कुमाऊँ, नेपाल, पूर्व हिमालय, दक्षिण हिन्दुस्तान (कोकण), आसाम, ब्रह्मा, लंका, पूर्वी-पश्चिमी घाट और अण्डमान टापू। यह बगीचोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह पुन्नागजातीय नागचम्पा वृक्षके फूलके केसर हैं जो औषधके काममें आते हैं। फूल लगभग २ सें० मी०से ७.५ सें० मी० (०.७५-३ इंच) घेरे (व्यास)में पिलाई लिए सफेद और सुगंधित होता है, कुण्डपत्र (Sepals) गोल, स्थूल, प्रान्त झिल्लीनुमा, भीतरी युग्म सबसे बड़े, स्थायी एवं कठोर, दल (पखडियाँ) ४ या ५ शुभ्रवर्ण (सफेद), पुंकेसर बड़े, दीर्घाकार, बहुसंख्यक, सुविन्यस्त और सुनहले पीलेरंगके होते हैं। कुण्ड और दल-युक्त ये नरकेसर (पीले रंगका गुच्छा) नागेसरके नामसे प्रसिद्ध हैं। नरकेशरका पीले रंगका यह गुच्छा जिसे नाग-केशर (नागेसर) कहते हैं, असली नागकेशर है और औषधमें इसीका व्यवहार होना चाहिए। इसके फूलों विशेषत फूलोंके मध्यमें स्थित पीले नरकेसरोंसे इत्र खींचा जाता है जिसकी गंध बहुत तीक्ष्ण होती है।

उपयुक्त अंग—नरकेसरोंका गुच्छा।

मात्रा—०.५ से १ ग्राम (½–१ माशा)।

रासायनिक संगठन—इसके कच्चे फलोंमें एक प्रकारका तैलोद्यास (Oleo-resin) होता है जिससे एक प्रकारका उडनेवाला तेल प्राप्त होता है। यह अत्यन्त सुगन्धित हलके पीले रंगका फूलके गंधका और चेन-टर्पेन्टाइन-के समान होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे कुछ उष्णवीर्य (रा० नि०) एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुणकर्म तथा उपयोग—संग्राही, उपशोषण और हृदयबलदायक है तथा हृदयको उल्लसित करता, यकृत्, आमाशय और अन्त्रको शक्तिप्रदान करता और कामोत्तेजक है। विशेषकर यह उदरजक्रिमि निःसारक और अर्शोघ्न है। नागेसरको मुफर्रेह कल्पोंमें डालकर उन्माद और मालीखोलिया प्रभृति, जैसे-मस्तिष्क एवं हृद्रोगोंमें उपयोग कराते हैं। हर प्रकारका अर्श नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग किया जाता और गुणदायक है। यदि इसके फूलके केसरको रात्रिमें भिगो दिया जाय और प्रातःकाल छानकर मिश्री या मधु मिलाकर कुछ दिन निरन्तर पिलाये तो अर्शका रक्त बंद हो जाता है और मस्से सूख जाते हैं। इसके अतिरिक्त इससे खींचे हुए इत्रको एक रत्तीकी मात्रामें पानके साथ

खिलानेसे नपुसकता दूर होती है। इसको इन्द्री पर तिला भी कराते है। व्रणोको सुखानेके लिए इसको महीन पीसकर उनपर छिडकते है। अतिस्वेद रोकनेके लिये इसका लेप करते या बारीक पीसकर शरीरपर मलते है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—नागरमोथा। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—नागकेशर रसमे तिक्त और कपाय, लघु, रूक्ष, कुछ उष्णवीर्य, आमपाचन तथा ज्वर, कण्डू, तृपा, स्वेदाधिक्य, वमन, मिचली, दौर्गन्ध्य, कुष्ठ, विसर्प, वस्तिवात, विप, कण्ठ और सिरके रोग, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। नागकेशरको मक्खन और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे ववासीरका खून बन्द होता है (च० चि० अ० १४, सु०, रा० नि०, भा० प्र०)। रक्तार्श, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तकास, रक्तपित्त आदिमें नागकेसर उत्तम औपध है (द्रव्यगुणविज्ञानम् ख० २, पृ० १०२)।

वक्तव्य—सुरपुन्नाग (लाल नागकेसर **Ochrocarpus longifolius**) के गुणकर्म पीले नागकेशर या नागकेशरजैसे ही है, परन्तु उससे निम्न कोटिके है। इसकी सुखाई हुई 'अविकसित पुष्पकलिका' लालनागकेशर-के नामसे बाजारमे बिकती है।

नव्य मत—नागकेशर शीतल, पीडाशामक, रक्तसग्राहक और ग्राही है। गुदद्वारकी जलन रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श और हाथ-पांवकी जलनमे यह उत्तम औपध है। पुष्कल कफयुक्त कासमें यह दिया जाता है। सधिवात और शरीरकी पीडामें इसके बीजोके तेलकी मालिश की जाती है।

●

(३५०) नागफनी (१)

फैमिली . काक्टासे (Family Cactaceae)

नाम—(हि०) नागफनी, (स०) रात्रिप्रफुल्ल, मधुरगधी ? (लै०) सेरेउस ग्रान्डीफ्लोरुस (**Cereus grandiflorus** Mill), कैक्टुस ग्रान्डीफ्लोरस (**Cactus grandiflorus** Mill), (अ०) स्वीट-सेंटेड कैक्टस (Sweet-scented Cactus), नाइट-ब्लूमिंग सेरियस (Night-blooming Cereus)।

उत्पत्तिस्थान—जमैइका। यह तथा इसकी कई अन्य जातियाँ, जैसे—ऑपुन्टिआ डिल्लेनी (**Opuntia dillenii** Haw) या कॉक्टुस ईडिकुस (**Cactus indicus** Roxb) अर्थात् नागफनी सभवत मेक्सिको आदि विदेशोसे लाकर भारतवर्षमे लगाई गई है।

वर्णन—इसके ताजे कांड मासल (गुदार), ५-७ कोणयुक्त और १ २५ से० मी० से १ ८७ सें० मी० (½से ¾ इच) व्यासमें और पुष्प ४-५ इच, कटोरी (Calyx) के बहुसख्यक, रेखाकार, रोमश नारगी रगके खड होते हैं, पखडी (Petals) आयता-भालाकार, श्वेत, नरततु बहुसख्यक और स्त्रीकेशर (Stigma) बहुरश्मिमय।

उपयुक्त अग—ताजा पौधा।

कल्प—रसक्रिया ० ०६ मि० लि० से ० ६ मि० लि० (१-१० विन्दु) और सुरासव ० १३ मि० लि० से २ मि० लि० (२-३० विंदु)।

गुणकर्म तथा उपयोग—हृदयोत्तेजक और बल्य। अनेक हृद्रोगो, जैसे—हृत्स्पदन (दिलकी धडकन), हृच्छूल, हार्दिक वातशूल आदिमे इससे शीघ्र लाभ होता है। यह प्रोस्टेटके रोगो, सक्षुभित वस्ति और वृक्कस्थ रक्तसचयमे भी उपकारक है। अमेरिकामे शोथ (Dropsy)के लिये इसका उपयोग किया गया है। प्रोफेसर लोक (Prof Locke) वातिक ऋतुज शिर शूलके लिए इसके सेवनकी अभ्यर्थना करते है।

●

(३५१) नागफनी (२)

फैमिली : काक्टासे (Family . Cactaceae)

नाम—(हिं०; प०) नागफनी, चप्पलसेंढ, (सं०) नागफण, (व०, म०) नागफण, (द०) नागफनसी, चप्पलसेंढ, (मार०, वृजभाषा) नागफनी थूहर, (गु०) हातला थूहर, (ता०, ते०) नागदली, (मल०) नागमुल्ल, (ले०) **ओपुंटिआ डिल्लेनी (Opuntia dillenii** Haw.), प्रिक्ली पीयर (Pricly Pear), स्लिपर थॉर्न (Slipper-Thorn)।

उत्पत्तिस्थान—सभवत मेक्सिकोका आदिवासी है। भारतमे ला कर लगायी गयी है।

वर्णन—सेहुँडकी जातिका दस-पन्द्रह फुट ऊँचा एक पौधा है। इसके पत्ते जिनको 'पजा' कहते है, जो वस्तुत इसके काडके भाग है, १५ से० मी० से २२ ५ से० मी० (६ से ९ इञ्च) लम्बे होते है और साँपके फनकी तरह होते हैं, इसलिए '*नागफनी*' कहलाते है। इनमे लवावदार गूदा भरा होता है। इनपर रोआँ और काँटे भी होते है। फल बहुत वटी हडकी तरह होता है। कच्चेपर यह हरा और पकनेपर यह अदर और बाहरसे गुल्आबीलाल रगका और मीठा हो जाता ह। कम काँटे और काँटेरहित नागफनी भी होता ह। इसके फूलका स्वाद खट्टा होता है। फलके भीतर काले रगके बीज होते हैं।

उपयुक्त अग एव कल्प—फलके गूदेसे गुड, शर्वत और उच्चकोटिका मद्य वनाया जाता है। पजा (काड के खंड)।

प्रकृति—मीठी, गरम एव खुश्क (रूक्ष) और खट्टी शीत एव रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—खट्टी किस्मके पजो अर्थात् पत्तोको काँटे और छिलके दूर करके टुकडे-टुकडे करके पानीमें भिगोकर रातमे ओसमें रखकर और प्रात उसे मलकर थोडीसी मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तदाह (इह्तिराक खून)में वडा लाभ होता है। खट्टी नागफनीके पजेके दोनो ओरके काँटे दूर करके एक ओरसे छिलका दूर कर उस पर हलदीका चूर्ण छिडककर गुनगुना अर्शके अकुरोपर बाँध देवे और तीनदिन तक बँधा रखे। केवल पाखानेके समय खोलकर मल-प्रक्षालन करनेके वाद पुन गरम करके बाँध लिया करे तो जलन, सूजन और खूनका निकलना सव वन्द हो जाय। यह सधिशूल, पक्षवध और अगघातके लिए वडा गुणकारी है। इसके फलको पकाकर रोटीसे खाने और शेष भागको तिलके तेलमे तलकर और छानकर घातित अंगपर तीन महीनेतक वरावर मालिस करनेसे विल्कुल आराम हो जाता है। यह विधि खजाइनुल्अद्विया ग्रन्थके लेखक महोदयकी नाना परीक्षित है। तिलतेलकी भाँति इसके वीजोसे निकाला हुआ तेल परम वाजीकर, शिश्नोच्छ्राय एव दार्ढ्यकर है। मीठी नागफनीका फल खाँसीवालेको सेककर खाना चाहिए। इसके फलका शर्वत पौने चार-चार माशेकी मात्रामे दिनमें तीन-चार वार पीनेसे पित्तका उद्रेक वढता है। इसका फल खानेसे पेशाबका रग लाल हो जाता है। इसके फलके पौने चार माशे शर्वतमें १५ बूँद चदनका तेल मिलाकर पीनेसे सूजाक आराम हो जाता है। इसके पत्तोको गरम करके बाँधनेसे फोडा शीघ्र पक जाता है। इसके पजेका गूदा आँखपर बांधनेसे आँखका दुखना बन्द हो जाता है और नारूपर वाँधनेसे लाभ होता है। फलका निवारण दूध है।

नव्यमत—सर्पदशमे पौधेका उपयोग होता है। पत्र-शोथ एव गर्मी दूर करनेके लिए इसकी पत्तियोकी-सपुलटिस (उपनाह) बनाकर लगाते है। नेत्राभिष्यद (दुखती हुई आँखो)मे इसका गूदा नेत्रके ऊपर लगाते है। फोडोको शीघ्र पकानेके लिये उनपर गरम करके लगाते है। इसका दूधिया रस विरेचन है। फल शीतल है। सूजाकमें इसका उपयोग करते है। कुकुरखाँसीमे इनको भूनकर खिलाते है। कफ निकालने और आक्षेपयुक्त खाँसीमे इसको शर्वत (शार्कर)के रूपमे देते है।

(३५२) नाना (नाऽनाऽ)

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) नाना, (अ०) नअ्न(ना)अ, अन्नअ्नाउल्फ़िल्फ़िली; अल्हब्कुल नह्री, हब्बकुलभाऽ (नदी-कूलोपर होनेसे) इ०वै०, (फा०) हजारपाया, पूदन' फ़िल्फ़िली; (ले०) मेंथा पाइपेरीटा (**Mentha piperita** Linn); (अं०) स्पीयर-मिन्ट (Spear-mint) । नाना का सत (हि०) पिपरमिंट, (अं०) पेपरमिंट (Pepper-mint), बार्मामिट (Balm-mint) ।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानवासियोके अनुसार 'मेन्था' वस्तुत: एक यूनानी कुमारी कन्याका नाम था, जो यूनानी धनकुवेर प्लेटोकी प्रेयसी थी और जिसको उसकी पत्नी प्रोसर्पाइन (जो धनकी देवी है, जिसे भारतीय लक्ष्मी कहते है)ने राग-द्वेषके वशीभूत हो उसे उद्भिज्जके रूपमे परिणत कर दिया था । अतः इस उद्भिज्जका नाम उसी कुमारी मेथाके नामपर प्रसिद्ध हो गया । मेंथाका अरबी उच्चारण 'मन्सा' है, परन्तु मुहीत और मख़्ज़नमे भूलसे इसे 'मब्सा' लिखा है ।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और उत्तरी अमेरिकाके विस्तृत भूभागपर यह होता है । भारतीय एव यूरोपीय बगीचोमे इसकी खेती की जाती है । यूरोपमें होनेवाला अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होता है । चीनमे और जापानमे इसकी पैदाइश बहुलतासे होती है ।

वर्णन—पुदीनाकी जातिका एक क्षुप जिसका काड सामान्यतया बैगनी लिये, ० ६ से १ २ मीटर (२-४ फुट) ऊँचा, चौकोर, पत्र सवृन्त, ५सें०मी०से ७ ५ से०मी० (२-३इच) लम्बा और १ ८७ से ३ ७५से०मी० (¾-१½ इच) चौडा, दतुर, कालाई लिए हरा, सूक्ष्म, किन्तु अप्रत्यक्षतया लोमश, स्वाद एवं गध विशिष्ट होती है और शाखाओके छोरपर बनफसई रगके फूल निकलते है । यूनानी वैद्योका यह 'नाना बुस्तानी' है । इसका जगली भेद 'नाना बर्री' कुस्वादु होता है । इसके पत्ते छोटे होते है और उनपर फफूँदीकी तरह रोआँ होता है । इसका 'बागी (बुस्तानी)' भेद सुस्वादु होता है । इसके पत्ते अपेक्षाकृत चिकने और बडे होते है । इसमे सुगन्ध होनेके कारण इसे मसालेमें डालते है । इसे छायेमें सुखाना चाहिए ।

भेद—

पुदीना नहरी (मेन्था आक्काटिका Mentha aquatica)—झुके हुए पत्र । जालीनूसने नानाको पुदीना नहरीसे अल्प-वीर्य लिखा है ।

पुदीना विशेष (Corn-mint)—पत्र-कुण्डल काडके चतुर्दिक् होते है और प्रत्येक कुण्डलके नीचे युग्म-पत्र होते है (मेन्था आर्वेन्सिस **Mentha arvensis**) । यह पश्चिमी हिमालय, कश्मीरमे (५,०००से १०,००० फुटकी) ऊँचाईपर, पजाब, कुमाऊँ और गढवालमें होता है ।

मेथोल—(पुदीनेका सत्व, सत या फूल—पिपरमिंट) तथा इसका तेल (ऑइल पिपरमिंट) पुदीनेकी इसी जाति तथा मेन्था पाइपरेटा और प्रधानतया इसीके पाइपरेशियस भेदसे जापान और चीनमे निकाला जाता है और वहीसे भारतवर्षमें आता है ।

इतिहास—सर्वप्रथम गेमेलिन नामक एक रासायनिकने सन् १८२९ ई० में मेथोलका वर्णन किया । उसने इसे यूरूपीय उद्भिज्जसे प्राप्त किया था । सन् १८२९ ई० डॉ० परेरा आदिने चीनी और जापानी मेथोलका वर्णन किया और बतलाया कि चीनी मर्तबानोमें बन्द होकर यह चीनसे यूरोपमे आता है ।

रासायनिक सगठन—इसमें उत्पत् तेल (Essen oil) ० ५से १ ५% जिसमें ३६ २% से ५६% स्वतन्त्र मेन्थोल (पुदीनेका सत—पिपरमिंट) और ४ प्रतिशत अथवा ४ ४ से ९ ९ प्रतिशत ईस्टर्स (Esters) होते है। इसकी खेतीमे १०-१५ दिन आगे-पीछे होनेपर इसमें मेन्थोलका प्रमाण ३० प्रतिशत कम हो जाता है।

उपयुक्त अग—क्षुप, पत्र, पुष्पित और ताजे पौधो (क्षुपो)से भभके (परिस्रावणविधि)से निकाला हुआ तेल अर्थात् ऑइल पेपरमिंट (Distilled or Essen oil) और इस तेलसे प्राप्त लम्बे, षट्कोन, दानेदार पदार्थ जिसे पुदीनेका फूल या सत (सत-पिपरमिंट) कहते है।

कल्प—क्षुपका चूर्ण, मात्रा, १५-३० रत्ती, पिपरमिंटका तेल (Oil Menth Pip), अर्कपुदीना (Aq Menth Pip or Essence Peppermint), सतपुदीना (मेन्थोल या पेपरमेंट-कैंफर) औषधोपयोगी द्रव्य पुदीनेसे ही तैयार किये जाते है।

नाना—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम एव रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कहते है कि यह पुदीनेकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् है। कोई-कोई इसकी गर्मी एव रूक्षता पुदीनेसे कम मानते है। यह किंचित् सग्राही, मन प्रसादकर, हृदयवलदायक, शीतल दोषोको विलीन करनेवाला और गाढे रक्तको पतला करनेवाला है। इसमे कुछ कषायपन भी है जो पुदीनेमे नही है। इसलिए यह थूकमें रक्त आनेको तथा रक्तवमनको रोकता है, यदि रोग पुराना न हो गया हो। अपने कडवापनके कारण यह पेटके कीडोको मारता है तथा पेटके रक्तको भी वन्द करता है। इस गुणके लिए इमे सिरकेके साथ खाना चाहिए। इसके पत्तोका रस ६ रत्ती गुलरोगन मिलाकर तीन वार नाकमें टपकानेमे कण्ठमालेमें वडा लाभ होता है। इसे मस्तकपर मलनेसे शीत एव वायुका दर्द आराम होता है। यह आमाशयमें गर्मी उत्पन्न करता और उसे शक्ति देता (दीपन) है और हिचकी वन्द करता है। यह पाचन, क्षुधावर्धक, वाजीकर, शुक्रस्तम्भक तथा आध्मानहर, है और शुक्रके रहनेके स्थानको भी शक्ति देता है। कुक्कुरदशमे इसके बीज गुणकारी है। इसके चबानेसे दाँतका दर्द मिटता है। इसके लेपसे स्तनोमे जमा हुआ दूध विलीन हो जाता है और स्तनका शोथ भी उतर जाता है। इसके खानेसे भी उक्त लाभ होता है। इसे छातीपर मलनेसे थूक सरलतासे निकलने लगता है और दर्द मिट जाता है। इसे हसराजके साथ औटाकर पीनेसे अधिक लाभ होता है। उर फुफ्फुसके द्रवोको पकाकर उनका सशोधन करता है तथा हृदयको शक्ति देता और कुछ उल्लास भी उत्पन्न करता है। आमाशयजात हृत्स्पदन इसके सेवनसे जाता रहता है। इसका शर्वत भी इसमे तथा कामलामें लाभकारी है। नानाको अनारदानाके साथ सेवन करनेसे विसूचिका शात होती है, क्योकि यह दोनो सग्राही होनेके कारण आमाशयको शक्ति देते (दीपन) है। इसके सेवनसे खूब भूख लगती है, पेटकी मरोड और वातज शूल आराम होता है। वातार्शमें इसके पत्तोका लेप गुणकारक है। अहितकर–अधिक खानेसे गलेमे कण्डू उत्पन्न करता है। कभी ताजा नाना वायु उत्पन्न करता और आँतो एव गुदाको हानि पहुँचाता है। निवारण–कण्डू एव वायुके लिए मधु और आँतो एव गुदाके लिए अजमोदा और बिहीदाना। प्रतिनिधि–पुदीना और दुगुना सातर। मात्रा–९ ग्राम (९ माशे) तक।

पीपरमिंट—

प्रकृति—गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाह्योपयोगसे पुदीनेका सत उत्तम कोथप्रशमन, स्वापजनन (सुन्नता करनेवाला) और त्वग्दोषहर है। खिलानेसे इसकी क्रिया कपूरके समान होती है, परन्तु इसमे श्लेष्महर और कोष्ठवातप्रशमन धर्म विशेष है। यह उत्तेजक, दीपन और वातानुलोमन है। उत्क्लेश, आध्मान, रुग्णता और छर्दिनिवारणार्थ एव शिशुओके लिए हृद्य रूपमे इसका उपयोग होता है। इसका दीपन प्रभाव अपेक्षित होनेपर साधारणतया

अन्यान्य औषधियोके साथ योगके रूपमे इसका उपयोग होता है। पुदीनेका सत्व धान्याहारी लोगोके कुपचन, अजीर्ण और उदरशूलमें देते है। इससे उलटी विशेषत सगर्भावस्थामें होनेवाली उलटी बन्द होती है। दन्तशूलमें रूईको १ से २ बूँद पीपरमेटके तेलमें भिगोकर दाँतके नीचे दबानेसे पीडा शान्त होती है। एक भाग मेथोल और दो भाग कपूरको एकत्र मिलानेसे वह द्रव बन जाता है। किसी भी प्रकारकी वातजन्य पीडाको शमन करनेके लिए इसकी मालिश करते है। अजीर्णजन्यवमन, अतिसार, विसूचिका और उदरशूलमें इसको २-५ बूँद शक्करमें मिलाकर देते है। (पा० न्यू० साइ०; औ० सं०, द्रव्यगुणविज्ञानम्)।

•

(३५३) नाय

फैमिली जेंटिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(हिं०) छोटा किरायता (चिरेता), नै, नाय, नाई, (स०) नागजिह्वा, मामज्जक, (म०) मामिजवा, (गु०,बम्ब०) कडवी नाही (नही), (काठि०) मामेजवो, (प०) बहुगुणी, (लै०) एनीकॉस्टेमा वेर्टीसीलैटम **Enicostema verticillatum** (L) Engl. (पर्याय—*E. littorale Bl*)।

उत्पत्तिस्थान—बंगालको छोडकर समस्त भारतवर्ष। पजाब और बम्बईके बाजारोमे इसका सुखाया हुआ क्षुप सामान्यरूपसे मिलता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुप है जो चौमासेमे सर्वत्र उगता है। जड़ बहुवर्षायु, परिसर्पी, काड साधारण, सरल, ५से०मी०से १०से०मी० (२ से ४इञ्च) कभी-कभी १५से०मी०से ३० से०मी० (६ से १२ इच) या इससे भी ऊँचा, चौकोर, ग्रथिल होता है और इस पर जडके पाससे सिरे तक पत्ते लगते है। पत्र—प्रत्येक ग्रन्थिके आमने-सामने, अवृत, शल्या(भाला)कृति, त्रिशिरायुक्त, मसृण, अखड, ३ ७५ से० मी० से ५ से० मी० (१॥ से २ इच) लम्बा और १ २५ सें० मी० (१॥ इच) चौडा, फूल–प्रत्येक पत्रकोणमे स्थित कक्षीय, प्राय तीन, अवृत, सूक्ष्म, सफेद, दल फनेलकी आकृतिके (Funnel-shaped); फल जौके बराबर, गोल जिसके भीतर पोस्ते के दानेके समान छोटे-छोटे बीज भरे होते है। समस्त क्षुप तिक्त होता है।

उपयुक्त अग--पचाङ्ग।

रासायनिक सगठन—इसमे ग्लूकोसाइडके स्वभावका एक तिक्तसत्व होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ज्वरघ्न, मूत्रार्त्तवजनन, उदरकृमिनाशन और रक्तप्रसादन। कफज्वरमें इसका शीरा निकालकर अथवा क्वाथ बनाकर पिलाया जाता है। गूमाबूटीके साथ तपेदिकमें भी इसका उपयोग कराते है। जीरा, कालीमिर्च और एक दाना लहसुनके साथ इसके पत्रका शीरा निकालकर मूत्र और आर्तवजननार्थ पिलाते हैं। उदर-कृमि नष्ट करनेके लिए शीराकी भाँति उपयोग कराते है। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे तक।

•

(३५४) नारंगी

फ़ैमिली : ऑउराण्टिआसे (Family · Aurantiaceae)

नाम—(हिं०) ना(रि)गी, नौरंगी, नवरगी, (स०) नारग, नागरग, (ब०) नारेंगा, (गु०) नारगी; (म०) नारिंग, (ले०) सीट्रुस् आउरान्टिउम् (**Citrus aurantium** Linn), (अ०) बिटर ऑरेंज (Bitter Orange)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष। यहीसे यह यूरोप गयी। यह जंगली और लगाई हुई दोनो प्रकारकी होती है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो सतरासे छोटा होता है। पकी नारगीका छिलका पिलाई लिए लाल होता है। सतरेके समान इसके भीतर भी फाँके होती है जिनका रस चूसा जाता है। इसका स्वाद मिठास लिए खट्टा होता है। यह नारजसे भिन्न है।

उपयुक्त अग—फल और फलका छिलका।

रासायनिक सगठन—फूल और ताजे फलके छिलकेमे नेरोली नामक सुगन्धित हलका पीले रगका और तिक्त मनोरम स्वादयुक्त उत्पत् तेल होता है। नारगीके रसमें लबाव, शर्करा, सीट्रिक अम्ल, निरिन्दिय लवण यथा-सीट्रेट ऑफ पोटाश विशेषरूपसे होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर, नारगीका छिलका उष्ण एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तके उद्वेगको शान्त करती और दीपन है। नारगीका छिलका लेखन है। नारगीके छिलकेको मेवेकी भाँति पुष्कल खाया जाता है। यह उष्णप्रकृतिवालोके लिए तथा उष्ण व्याधियोमे परम गुणकारक है। उष्णप्रकृतिवालोके आमाशयको बल देनेके लिये इसका उपयोग कराते है। पित्तज वमन, उत्क्लेश और उबकाई शान्त करनेके लिए इसकी फाँके चुसाते है। इसके छिलकेको उबटनमें मिलाकर चेहरेकी रगत निखारनेके लिए मलते है। अतिहकर–शीत प्रकृति और वात-नाडियोको। निवारण–चीनी, नमक और कालीमिर्च। प्रतिनिधि–नारज और सगतरा (सत्रा)।

आयुर्वेदीय मत—नारगी(नारगफल) मधुर, अम्ल, हृद्य, विशद, गुरु, दुर्जर (चिरपाकी), अन्नमें रुचि उत्पन्न करनेवाली और वातघ्न है। (च०सू०अ० २७, सु०सू०अ० ४६)।

•

(३५५) नारंज

फ़ैमिली : आउरान्टिआसे (Family Aurantiaceae)

नाम—(हिं०) करना, कन्ना, (अ०) नारज, (फा०) नारग, (स०) करुण, (ब०) करुणोलेबुर गाछ, कन्ना लेंबू, (मल०) करना, (ले०) सीट्रुस आउरान्टिउम् (**Citus aurantium** Linn var. **bigaradia**), (अं०) बिगार्डी (Bigarade)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें मिलता है। मद्रासके गण्टूर जिलेमें इसकी पुष्कल खेती होती है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है। कच्चे फलका छिलका हरा होता है, किन्तु पकने पर वह पिलाई लिए लाल हो जाता है। इसके भीतर सतरेकी भाँति फाँके होती है जिनका स्वाद खट्टा रसीला होता है। बीज बिजौरेके बीजकी तरह, किन्तु उससे बहुत छोटे होते है। वृक्ष बिजौरेके वृक्षके समान होता है। इसमें सफेद सुगधित फूल लगते है जो बहार नारज या गुल करनाके नामसे प्रसिद्ध है।

उपयुक्त अग—फूल, फल, फलका छिलका और पत्र आदि।

रासायनिक सगठन—फलमें शर्करा और सिट्रिक अम्ल होता है। फलके छिलकेमे विपुल प्रमाणमें उत्पत् तेल होता है।

प्रकृति—छिलका और फूल दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष और फलका रस (तुर्शी नारज) दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नारज और गुलनारज (नारज का फूल)का सूँघना मन प्रसादकर, हृदयबल-दायक और हृदयको उल्लसित करनेवाला है। इसका छिलका वेदनास्थापन, दीपन और उदरकृमिनाशन है। नारजके गूदे (मग्ज)का चूसना या उसका रस निचोडकर पीना रक्त और पित्तका उद्वेग एव तीक्ष्णता शमन करता है। यह भूख लगाता और आमाशयशोथको मिटाता और पित्तविरेचनीय भी है। नारजके फूलोसे खीचा हुआ अर्क सौमनस्यजनन और बलवर्धनके लिए मस्तिष्क एव हृद्रोगोमे प्रयुक्त होता है। सौमनस्यजनन एव हृदयबलदायक होनेके कारण नारजके समस्त अंग-प्रत्यग जनपदोध्वसक (वबाई) व्याधियो, जैसे–प्लेग और हैजामे विविध प्रकारसे उपयोग किये जाते है। इसमे कृमिघ्न गुण होनेके कारण कपडोको कीडा लगनेसे सुरक्षित रखनेके लिए उनमे इसका छिलका और फूल रखते है। शीतल शिर शूलको शमन करनेके लिए नारजके छिलकेको सिरकामे पीसकर लेप करते है। आन्त्रस्थ कृमियोके उत्सर्गके लिए इसको बारीक पीसकर जैतूनके तेलमे मिलाकर गरम जलके साथ पिलाते है। हृदयोद्वेष्टन (वज्उल फुवाद)को नष्ट करनेके लिए केवल नारजके छिलकेको पीस-छानकर गरम पानीके साथ खिलाते है। इसके अतिरिक्त वमन और हृल्लास शमनार्थ उपयोग करते है। नारजके रसमें चीनी मिलाकर पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तोद्वेग शमनार्थ पिलाते है। अहितकर–यकृद्दौर्बल्यकारक (मुज्इफ जिगर)। निवारण–चीनी, नमक और कालीमिर्च। प्रतिनिधि–बिजौरा (तुरज)। मात्रा–नारजका छिलका ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक। नारजका रस ५ तोलेसे ७ तोले तक।

•

(३५६) नारियल

फॅमिली : पामे (Family Palmeae)

नाम—वृक्ष (हिं०) नारियल(र), नारियलका पेड, (अ०) शज्रतुन्नारजील, (फा०) दरख्ते नारगील; (ब०) नारकेल गाछ, (स०) नारिकेल वृक्ष, (गु०) नालीएर, (म०) नारल, नारलचाझाड, माड, (सिं०) पोल, (लै०) कोकोस नूसीफेरा (**Cocos nucifera** Linn), (अ०) कोकोनट पाम (Cocoanut Palm)। फल (हिं०) नारियल, नरियल, नरियर, (अ०) नारजील, जौजे हिन्दी (इ० वै०), (फा०) नारगील, बार्दिज, (स०) नारिकेल (र)फल, नालिकेर, (ब०) नारकेल, (प०) नरेल, खोपा, (गु०) नारिअ(य)ल, (म०) नारल, (अ०) कोकोनट फ्रूट (Cocoanut Fruit)। खोपरा (अ०) मग्जनारजील, (गु०) खोपु, (म०) खोबरी, (अ०) ड्राई कर्नेल ऑफ कोकोनट (Dry kernel of cocoanut)। तेल (हिं०) खोपरेका तेल, नारियलका तेल, (अ०) दोहनुन्नारजील, दोहनुलजौजे-

हिन्दी, (फा०) रोगने नारगील(वादिज), (स०) नारिकेल तैल; (म०) नारलाचें तेल, (अ०) कोकोनट ऑइल (Cocoanut Oil)।

वक्तव्य—सस्कृत नारिकेलसे फारसी 'नारगील' एव फारसी नारगीलसे अरबी 'नारजील' बनाये गये हैं। "नारियल' नारिकेलका हिन्दी अपभ्रंश है। मराठीमें वृक्षसे बहनेवाले रसको 'माड़' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष, लका, पूर्वीबगाल, ब्रह्मा, मलाबारतट, कारोमडलतट एव पूर्वीद्वीप-समूह आदि।

वर्णन—एक प्रसिद्ध फल है। उसका मग्ज जिसको 'खोपरा' कहते है, अधिक व्यवहारमें आता है। वृक्ष ताड-के वृक्षके समान होता है।

उपयुक्त अग—फलकी गिरी(खोपरा) और तेल आदि।

कल्प तथा योग—हृव्व नारजील।

रासायनिक सगठन—ताजा खोपरा(गिरी)में मासवर्धक द्रव्य, वसा, तालशर्करा (ग्लूकोज—द्राक्षशर्करा और इक्षुशर्करा) और निरिन्द्रिय द्रव्य, तेलमें लॉरिक, मायरिस्टिक, पामिटिक और स्टियरिक अम्लोके ग्लीसराइड्सके साथ कैप्रिलिक (Caprylic) अम्ल होता है। ताजा तेल चर्बीके स्थानमें प्रयुक्त होता और उसमे श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और तर। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (च०, सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नारियलकी गिरी(खोपरा) पुष्टिदायक आहार है, परन्तु गुरु होनेके कारण चिर-पाकी है। यह बृहण और वाजीकरण है, प्रकृत देहाग्निको शक्ति देता और सम्पूर्ण शरीरको शक्ति और उष्णता पहुँ-चाता है। पुराना खोपरा उदरकृमि विशेषत कद्दूदानेको नष्ट करता है। इसका प्रधान गुणकर्म शुद्ध रक्तवर्धन और वाजीकरण है। बृहण और वाजीकरणके लिए खोपराको चीनीके साथ खिलाते हैं तथा वाजीकरण माजूनोमें डालते है। कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिए ३ माशा पुराना खोपरा देते है। उत्तम नारियलसे निकाला हुआ तेल घीके स्थान पर उपयोग करनेमे वाजीकर और बृंहण है। बाहरी तौरपर मर्दन करनेसे अगोके शीतल दर्दोंको नष्ट करता है। सिरमें लगानेसे यह बाल बढाता और उनको नरम और मुलायम बनाता है। अहितकर-अवरोधजनक (अभिष्यदि) एव दीर्घपाकी है। निवारण-शर्करा और मिश्री। प्रतिनिधि-अखरोट, पिस्ता, चिलगोजा इत्यादि। मात्रा-दो-तीन तोले तक। पुराने नारियलका स्वरस स्तंभन और पौष्टिक है। खोपड़ा (सूखा नारियल) कृमिघ्न है। पके हुये ताजे नारियलका जलके साथ पका कर निकाला हुआ तेल क्षयरोगमें कॉडलिवर ऑइलके समान लाभ पहुँचाता है। मेदोवृद्धिमें खोपडेका तेल खानेसे मेद कम होता है। सूजाकरोगके लिये नारियलका पानी अच्छा है। इससे मूत्र खुलकर आता है और जलन आदि दूर हो जाती है। हैजेके वमनको बन्द करनेके लिए इसका पानी दिया जाता है।

आयुर्वेदीय मत—नारियल मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, बृंहण, बल्य, मासवर्धक, हृद्य, बस्तिशोधन (मूत्रल) और पित्तघ्न है। नारियलका जल मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, हृद्य, दीपन, वृष्य तथा पित्त और तृषाको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४५, ४६)।

नव्यमत—नारियलके कवचको जलाकर पातालयन्त्रसे निकाला हुआ तेल कुष्ठघ्न (दद्रु पामा आदि चर्म-रोगनाशक) है। नारियलका तेल केश्य, कृमिघ्न, व्रणरोपण, कफघ्न, शोषघ्न और कर्शन है। कच्चे नारियलका पानी शीतल, मूत्रजनन, मूत्रविरजन और पिपासाहर है। कोमल नारियलका दूध (स्वरस) आश्वासजनन, तृप्तिकर मूत्रजनन और स्रंसन है। नारियलका मद्य बल्य, सौमनस्यजनन, दीपन, पाचन, बृंहण, कोष्ठवातप्रशमन, ज्वरहर, निद्रालानेवाला और वाजीकर है।

(३५७) नारियल दरियाई

फॅमिली : पामे (Family . Palmeae)

नाम—(हिं०) दरियाई नारियल, (अ०) नारजीले बहरी, (फ०) नारगीले दरियाई (बहरी), नारजीले दरियाई; (स०) अब्धि नारिकेल, (हिं०, द०) दरियाका नारियल, (म०) दर्याचा नारल, (गु०) दर्यानु नाळीएर (नारिअल), क्षेरी नारियेल, (बम्ब०, को०, म०; मारवाड) जहरी नारल, (ले०) कोडोईसेआ सीचेल्लारुम् **Lodoicea seychellarum** Labill (पर्याय–*L maldivica* Pers), (अं०) सी-कोकोनट (Sea-Cocoanut)।

उत्पत्तिस्थान—सिचेलीज टापू तथा अफ्रीका और अमेरिकाके समुद्रतट। यह भारतवर्षमें लगाया जाता है। बम्बईकी ओर इसके फल मिलते हैं।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो स्वरूप और आकृतिमें नारियलके समान होता है, परन्तु यह उससे अधिक कठोर, मोटा और भारी (२० से २५ सेर तक) होता है। इसके कवचका कमण्डलु बनाते हैं। बाजारमें दरियाई नारियलके नामसे इसके मग्जके कटे हुए बेडौल टुकडे मिलते हैं।

उपयुक्त अग—मग्ज (गिरी)। यह बडा कठिन होता है, इसलिये इसका बुरादा बनाकर या अर्कगुलाबमें घिसकर प्रयोग करते हैं।

प्रकृति—समिश्रवीर्य (मतातरसे गरम और तर अथवा गरम और खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौदावी और कफज्वरनाशक, प्रकृत शरीरोष्माका उत्तेजक, विसूचिकाहर और विषोका अगद है। इसको अधिकतया हैजामें अकेला या अन्य औषधियोंके साथ अर्कगुलाबमे घिसकर पिलाते है। जब तक शरीरके भीतर विप वर्तमान होता है, वमन लाता रहता है। यहाँ तक कि सपूर्ण विषको दूर कर देता और प्यास बुझाता है। अफीम और बछनाग खाये हुएको भी इसे घिसकर पिलाते है। सर्प, वृश्चिक, भिड और अन्य विषधर जतुओके दष्टस्थानपर पतला लेप करनेसे यह सूजन, दाह और विषको दूर करता है। प्रकृत देहाग्निको उद्दीप करनेके कारण इसको जवाहरमोहरामे डालते है। कफज और सौदावी ज्वरोमें शीत या कँपकपी (कश्अरीरा)के प्रारम्भमे इसको घिसकर पिलाते है। अहितकर–उष्णप्रकृति और उष्ण व्याधियोमे। निवारण–गुलाबपुष्पार्क, ताजा दूध और कालीमिर्च। प्रतिनिधि–पपीता। मात्रा–० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

●

(३५८) नारदीन (नारदीन)

फॅमिली वालेरिआनासे (Family : Valerianaceae)

नाम—(हिं०) विदेशी बालछड, नारदीन, (यू०) नारडीन, (अ०) नारेदीन इकलीती, सुबुले अस्फर, सुबुले रूमी (शैखुर्रईस व भाष्यकार गीलानी), (ले०) वालेरिआना ऑफ्फीसिनालिस (**Valeriana officinalis** Linn)।

वक्तव्य—मख्जनुल्अदविया डॉक्टरीके लेखक सुबुलुत्तीबके वर्णनमे इसके इतिहासमे लिखते हैं कि यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'फू'के नामसे इसका और नारदीनके नामसे सुबुलुत्तीबका वर्णन किया है। उन्होने इसका संस्कृत 'ह्रीवेर' और हिन्दी 'सुगंधवाला' लिखा है।

वर्णन—बालछड़से भिन्न एक तृण(घास)की सुगंधित जड़ है जो ममीरे या हल्दीके समान पीले रंगकी और आकृतिमें असारून (नारदीन बर्री)की तरह होती है। इसके ऊपर बहुतसे बारीक तार लगे होते हैं जो असारूनके तारोंसे बारीक होते हैं। उत्तम वह है जो मोटी, नई, सुगंधित और पीले रंगकी हो। सफेदीमायल निकृष्ट होती है। दे० 'बालछड़'।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें रूक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—अर्दित, पक्षवध और कामलामें इसके सेवनसे लाभ होता है। यह आमाशयपर दोष (मवाद) नहीं गिरने देता है। इससे पेशाब और आर्तवरक्त बढ़ जाता है और अधिक आता है। यह श्वयथु-विलयन है। इसको पीसकर आंखमें लगानेसे गिरे हुए पलकोंके बाल जम आते हैं। यकृच्छूल, वृक्कशूल और प्राय गर्भाशयकी बीमारियोंमें इसके (आबज़न) करनेसे उपकार होता है। इसको गरम मरहमोंमें डालते हैं। अहितकर—फेफड़ेको। निवारण—कतीरा और मधु। प्रतिनिधि—बालछड़। मात्रा—३.५ ग्राम (३ माशे)।

●

(३५९) नाशपाती

फैमिली : रोज़ासे (Family Rosaceae)

नाम—(हिं०) नाश(ख)पाती, नासपाती, (अ०) कुम्मस्रा, (फा०) अमरूद, (स०) टङ्क (च०, सु०), अमृतफल, (क०) टङ्ग, (का०) नाग, नाक, (प०) नाक, नाशपाती, (मा०) बनास्पति, (उ० प्र०) नासपाती, नाक, (अफ़०) अमरूच, अमरूद, नाक, (ले०) पीरस कॉम्मूनिस (**Pyrus communis Linn**), पीरस पीरीफॉलिआ व० कूल्टा (**Pyrus pyrifolia Nakai var culta Nakai**), (अं०) पीयर (Pear)।

वक्तव्य—यह अमरूदसे भिन्न द्रव्य है। जिस फलको भारतवर्षमें 'अमरूद' कहते हैं उसका कोई अरबी, फारसी नाम नही है (दे० 'अमरूद')।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी और मध्य यूरोप तथा पश्चिमी एशिया। उत्तर-पश्चिम हिमालयमे अर्थात् कश्मीर, सरहद और पंजाबमें यह बड़े पैमानेपर लगायी जाती है।

वर्णन—यह एक मीठा प्रसिद्ध फल है जो विभिन्न आकार-प्रकारका होता है। सामान्यतया नाशपाती खानेमें कडी होती है, परन्तु कश्मीर आदि पहाडी प्रदेशोंकी अत्यत कोमल और रसीली होती है। उसकी आकृति साधारणतया सुराहीनुमा होती है। इसको विशेषतया नाख (क) कहते है। यह नाशपाती की कलम करके सुधारी हुई जाति है। जगली (कुम्मस्रा बर्री), पहाडी (कुम्मस्रा जबली), बागी (कुम्मस्रा बुस्तानी) और खट्टी वा चीनी (कुम्मस्रा हामिज) भेदसे यह चार प्रकारकी होती है।

कल्प—मुरब्बा नाशपाती।

प्रकृति—शीत एव स्निग्ध (तर)। आयुर्वेदमे भी इसे शीतवीर्य लिखा है (च०, सु०)।

गुणकर्म—सग्राही, आनाहकारक, मन प्रसादकर, हृद्य विशेषतः पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताका प्रशामक एव बृंहण है।

उपयोग—नाशपाती मेवेकी भाँति खायी जाती है। परन्तु इसको अधिक नही खाना चाहिये, क्योकि ग्राही और आनाहकारक होनेके कारण कभी-कभी उदरशूल उत्पन्न हो जाता है। इसको या तो नमक, कालीमिर्च और

खट्टे नीबूके रसके साथ उपयोग करे या इसके खानेके उपरात मधु या जुवारिशकमूनी खायँ, जो इसके निवारण है। औषधकी भाँति इसका स्वरस निचोडकर मुफर्रेहात (मन प्रसादकर योगौषधो)में डालते है। अहितकर–मूत्रपिड (गुर्दे)को। निवारण–अनीसूँ और अगर (ऊद) इत्यादि। प्रतिनिधि–खट्टा सेब।

आयुर्वेदीय मत—नाशपाती (टङ्क) कषाय, मधुर, गुरु, शीतवीर्य और वातकर है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)।

●

(३६०) निगंदबाबरी

फ़ैमिली . लाबिआटे (Family Labiatae)

नाम—(हि०) निगदबावरी, अजगुर (काशी, मिर्जापुर), दमजरी, देवमजनी, देवमजरी (चित्रकूट), (स०) अर्जक, (मार०, राज०) कालीनगदी, नगदीबूटी, (ले०) आर्थोसीफॉन पाल्लिडुम (**Orthosiphon pallidus** Royle)।

वक्तव्य—यूनानी निघण्टुग्रन्थोमे इसका सस्कृत नाम 'आगवल्ली' या 'आजवल्ली' लिखा है। निगदबावरी का अर्थ 'बिना गधकी बाबुई' (निगद = निर्गध + बाबरी = बर्बरी (तुलसी) है।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह तुलसी या रीहाँकी जातिकी एक निगंध क्षुद्र वनस्पति है जो लगभग एक बित्ता ऊँची होती है। पत्र छोटे पुदीनाके पत्रकी तरह और फूल सफेद तुलसीके फूलके समान होता है। स्वादमे यह कडवी होती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन, विषोका अगद, श्वयथुविलयन और चातुर्थकज्वरनाशन। रक्तप्रसादनके अभिप्रायसे निगन्दबावरीको रक्तविकारजन्य रोगो, जैसे–कुष्ठ, कण्डू, शोथ और फोडे-फुन्सी, दद्रु और किलासमे उपयोग किया जाता है। फाट बनाकर और ऊपर निथरा हुआ पानी लेकर बारीक किए हुए कालीमिर्चके कुछ दानोका प्रक्षेप देकर पिलाते है या कालीमिर्चके कुछ दानोके साथ जलमे पीसकर शीरा निकालकर देते है। चतुर्थक ज्वरमे चूर्णकी भाँति बकरीके दूधके साथ खिलाते है। किलास और अर्शजन्य शोथमे कालीमिर्चके साथ पीसकर पिलाते है। किलासमे इसको दीर्घकालपर्यंत सेवन करनेसे उपकार होता है। कहते है कि इसके निरंतर सेवनसे मनुष्य वानस्पतिक और प्राणिज विषोसे सुरक्षित हो जाता है। मात्रा–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

●

(३६१) निर्मली

फ़ैमिली : लोगानिआसे (Family Loganiaceae)

नाम—(हि०, ब०, प०, बम्ब०) निर्मली, (स०) कत(-क), अबुप्रसादन, (पं०) जलनिर्मली, (ते०) कतकमु, (उडि०) कोतोको, (मल) कतकम्; (कना०, गु०) कतक, (ले०) स्ट्रीक्नॉस पोटाटोरुम (**Strychnos potatorum** Linn), (अं०) क्लियरिंग नट्-ट्री (Clearing nut-tree)।

उत्पत्तिस्थान—मध्यप्रदेश, दक्षिण, बंगाल, बिहार, कोंकण, उत्तरकनाडा, कर्नाटक से ट्रावनकोर तक।

वर्णन—एक मझोले सदाबहार वृक्षके फलका बीज है जो कुचलेकी तरह, किन्तु उससे छोटा होता और गूदेमें लिपटा हुआ होता है। इसका फल पकनेपर जामुनकी तरह काला पड़ जाता है, किन्तु कुचलेका फल पकनेपर लाल होता है। निर्मली अगदगुणविशिष्ट होती है और कुचला विषगुणसमन्वित होता है, यह दोनोंमें अन्तर है।

उपयुक्त अंग—बीज। मात्रा—१ ग्रामसे १.५ ग्राम (१-२ आना)। वमनार्थ ५.२५ ग्राम (३ आना)। निर्मलीके बीजको पानीमें घिसकर गँदले पानीमें मिलानेसे गँदलापन नीचे बैठकर जल निर्मल हो जाता है। फिटकिरीकी अपेक्षया निर्दोष होनेसे इसका व्यवहार अधिक स्पृहणीय है।

रासायनिक संगठन—बीजमें ब्रूसीन (Brucine) नामक ऐल्केलॉइड होता है।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क, मतान्तरसे समशीतोष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—निर्मलीको पानीमें पीसकर नाभिके आस-पास लेप करनेसे पेटके कीड़े मर जाते हैं और सांपके काटे स्थानमें लगानेसे लाभ होता है। बारहदाने निर्मलीको पानीमें पीसकर मिश्री मिलाकर एक सप्ताह पर्यन्त पीनेसे सूजाकमें पूर्णतया लाभ होता तथा रुका हुआ पेशाब खुलता है और दाह (सोजिश) शमन होता है। बारहदाने निर्मलीको पानीमें पीसकर दही मिलाकर चीनीके प्यालेमें रखकर उसके मुँहपर कपड़ा बांधकर रात में ओसमें रखे और प्रातः उसे खा जायँ। इसी प्रकार सात दिन तक खायें और पथ्यमें नमकरहित भातका और दहीका सेवन करें। इससे मूत्राघात, सूजाक और सदाहमूत्र आराम होता है तथा मूत्रके रास्ते रक्त जाना बंद हो जाता है। इसे जलाकर अफीम या थोड़ासा शक्कर मिलाकर खानेसे बवासीरका खून (रक्तार्श) बंद होता है। यदि आँखोंमें बहुत कीचड़ आता हो तो निर्मलीके बीजोंको पीसकर थोड़ा कपूर और मधुमें मिलाकर आँखोंमें लगानेसे वह बन्द हो जाता है। निर्मलीके बीज और सेंधानमकको पानीमें पीसकर आँखमें लगानेसे अर्जुनरोग मिटता है। आँखके और कई रोगोंमें निर्मलीके बीज काममें आते हैं। इसके बीजोंको पीसकर दूधके साथ फाँकनेसे सूजाक आराम होता है। इसके बीजको पानीमें घिसकर आँखमें लगानेसे आँखकी रोशनी बढ़ती है तथा शहदमें पीसकर लगानेसे मोतियाबिन्द दूर होता है। निर्मलीके आधे या समूचे बीजको बारीक पीसकर थोड़े छाछमें मिलाकर सप्ताहपर्यन्त खानेसे पुराने दस्त जो किसी दवासे बन्द न हो सकते हों, बन्द हो जाते हैं। निर्मलीके प्रयोगसे अतिमूत्रका होना बन्द हो जाता है। इसके एक तोला बीजको छाछके साथ पीसकर शहदमें मिलाकर खानेसे सब प्रकारके प्रमेह आराम होते हैं। ७½ ग्राम या ७½ (साढ़े सात) माशे निर्मलीके पके हुए फल खानेसे वमन होता है। इसके ताजा बीज खानेके काममें आते हैं। इसका मुरब्बा बनाया जाता है।

आयुर्वेदीय मत—निर्मली (कतक), मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, रुचिकारक, लेखन, विशद विकासी, छेदन, नेत्रोंको हितकारी तथा तृषा, दाह, विष, गुल्म, शूल, कृमि, प्रमेह, नेत्ररोग और जलके मैलेको दूर करती है। इसका कोमल फल नेत्रोंको हितकारी, शीतवीर्य, वातवर्धक तथा रक्तपित्त, तृषा, विष और मोहको दूर करता है। तरुण फल दुर्जर, रुचिजनक, कफ और पित्तनाशक है। पका फल पित्तकारक, वमनकारक, स्वेदल तथा सूजन, पाण्डुरोग, विष, प्रतिश्याय और कामला रोगको दूर करता है। बीज मधुर, कषाय, भारी, नेत्रोंको हितकारी तथा पथ्य, वात, कफ, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, नेत्ररोग, विष, प्रमेह और मस्तकके रोगोंको दूर करता है तथा जलको निर्मल करता है। जड़ सब प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करनेवाली है।

नव्यमत—नेत्ररोगोंमें बीजका स्थानीय प्रयोग करते हैं। नेत्रसे पुष्कल अश्रुस्राव हो रहा हो, तो जलसे घिसे हुए बीजमें मधु और थोड़ा-सा कपूर मिलाकर नेत्रमें लगानेसे लाभ होता है। मधुमेह, पूयमेह और वमनरूपसे प्रवाहिका रोगमें इसका उपयोग होता है।

●

(३६२) निसोथ

फैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) निसो(शो)थ, निसो(शो)त, न(ना)कपतर, पितोहरी, (अ०, फा०) तुर्बुद (मख्जन), (फा०) तर्बुद, (स०) त्रिवृत् (ता), त्रिपुटा, (सिध) ट्रीज, (द०) तिकडा, (ब०) तेउडो(री), (सथा०) वनएटका, (प०) तिरवी, (ते०) तेगड, (ता०) शिवदै, चिवतै, (मल०) चिकोल्पकोन्न, (म०) निशोत्तर, (गु०) नसोत्तर; (लै०) ओपेर्कुलीना टुर्पेथुम् **Opercutina turpethum** (L) Silva Manso (पर्याय—ईपोमेआ टुर्पेथुम् *Ipomoea turpethum* R. Br), (अ०) टर्पेथ (Turpeth), इडियन जैलप (Indian Jalap) ।

वक्तव्य—अरवी व फारसी 'तुर्बुद' सभवत' सस्कृत 'त्रिवृत्' या 'त्रिपुटा' के अरवी रूपातर हैं। इस वेल-का तना और शाखाये तिकोनी होती है, इसीलिए सस्कृतमे इसे त्रिवृत् या त्रिपुटा कहते है। लेटिन नाममें जातीय **(Specific)** सज्ञा **(Turpethum)** एव इसके अग्रेजी नाम 'turpeth' अरबी तुर्बुद से व्युत्पन्न प्रतीत होते है। मख्जनुल्अद्वियामे तुर्बुदका एक हिंदीनाम 'नाकपतर' एव 'विधारा' भी दिया है। किसी-किसीने इसे 'आलूबन' (Gr Alupon (D 4 176) तथा 'तरीफूलियून (Gr Tripolion (D 4 133)'के साथ मिलाकर भ्रामक बना दिया है। परन्तु वे अवास्तविक है (इ० वै० १/५३, ३/१०२)।

इतिहास—भारतीयोको प्राचीनकालसे 'त्रिवृत्' या 'त्रिपुटा' नामसे इस विरेचक औषधिका ज्ञान है। मध्य-कालीन टीकाकारोंने इसे 'श्याम' और 'अरुण' दो प्रकार का बतलाकर श्यामको उग्रवीर्य एव विषैला अत परित्याज्य तथा कही-कही 'श्वेतरक्त-कृष्ण' इस प्रकारके तीन भेद बतलाकर श्वेतको ग्राह्य बताया है। सुखविरेचन द्रव्योमे शास्त्र-कारोने इसे उत्तम बतलाया है। यूनानियोने श्वेत और कृष्ण इसके ये दो भेद लिखे है। इनमे कृष्णको उन्होने विषैला लिखा है। इसलामी चिकित्साविशारदोमे से इब्नसीना, मसीही और राजी आदिने इसका वर्णन किया है। उत्तरकालीन यूनानियोने भी 'टुरेथ' नामसे इसका उल्लेख किया है। ऐन्सलीके कथनानुसार यह औषधि दीर्घकाल-तक ब्रिटिश मैटीरिया मेडिकामें भी समाविष्ट रही। इस प्रकार हम देखते है कि 'त्रिवृत्' या 'निसोथ' के ज्ञान एव चिकित्सोपयोगकी एक अविच्छिन्न धारा चली आ रही है, जिसमे इसके 'श्वेत' एव 'कृष्ण' भेदकी धारणाका प्रभाव भी साथ-साथ अनुबद्ध प्रतीत हो रहा है। यहाँ तक कि भारतीय भेषजकोश या इडियन फार्माकोपिया (I P 1956) मे भी टर्पेथके Specification मे **'White variety** of **I. turpethum'** ऐसा उल्लेख है। किन्तु इस धारणाको लेकर आधुनिक व्यवसायमे निसोथके बारेमे व्यर्थ भ्रम फैला हुआ है, जिससे **Operculina turpethum** के स्थानमे अन्य अनेक औषधियाँ 'सफेद निसोथ' करके बेची जाती है, जिनमे विरेचक क्रिया बिल्कुल नही पायी जाती। दूसरे यूनानी निघण्टुओमें इसे विधाराका पर्याय लिखनेसे अनेक क्षेत्रोमे निसोथका व्यवहार विधारा नामसे किया जाने लगा है, जो भ्रमपूर्ण है। डॉ० रामसुशील सिंह तथा उनके सहयोगियो द्वारा इस भ्रम का स्पष्टीकरण किया जा चुका है कि आयुर्वेदीय ग्रन्थोके निसोथ भेद भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ हो सकती है, तथा **Ipomoea turpethum** के **'white'** या **'black variety'** का भ्रम निराधार है। अतएव व्यावहारिक दृष्टिसे त्रिवृत् या निसोथ एक ही समझना चाहिए, जिसका वानस्पतिक प्रातिसाधन उपरोक्त लता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे ३,००० फुटकी ऊँचाई तक इसकी बेल होती है।

वर्णन—इसकी बहुवर्षायु तथा बडी-बडी आरोही लतायें होती है, परन्तु काण्ड प्राय काष्ठीय नहीं होता और स्राव कुछ-कुछ दुग्धसदृश होता है। इसके ऊपर ३-४ धारायें या पक्ष सदृश उभार होते है। नीचेकी पत्तियाँ चौडाई लिए हुई लट्वाकार, हृद्वत्, प्राय: ६ इच × ४ ७ इच बडी लम्बाग्र तथा तीक्ष्णाग्र और ऊपरकी प्राय आयताकार, कुण्ठित रोमश अग्रवाली और सवृन्त (वृन्त १·८७५ सें० मी० से ७ ५ सें० मी० या ० ७५ इच से ३ इच

लवे) होती है । पुष्प श्वेत और ५-७·५ सें० मी० (२-३ इंच) लवे होते है । आभ्यन्तर नाल चिकना और सपक्ष, मुखपर घण्टिकाकार होता है । फलत्वक्का बाहरी भाग जब फट जाता है तो भीतरी पारदर्शक पर्दा रह जाता है जिसके भीतर दो गह्वर और ४-१ भूरे तथा चिकने बीज रहते है । इसकी जड ही वीर्यवान् होती है । परन्तु बाजारमें यह शुद्ध नही मिलती, अपितु प्राय तनेके टुकड़ोके साथ मिली हुई मिलती है । लताकाण्डका बाहरी धरातल रस्सीके समान बलदार, रंग गहरा खाकस्तरी, गंध हल्की, स्वाद फीका किंचित्तिक्त होता है । गजवादावर्द में लिखा है कि काली निशोथ उपयोग न करें, जो निशोथ सफेद और भारी हो, सडी-गली न हो, उसे उपयोग करें । उत्तम निशोथ वह है जिसके दोनो छोरो पर गोंद लगी हो । सूखी जड ऊपरसे भूरी होती है जो छीलने पर सफेद निकलती है । इसके भीतर एक कड़ी लकडी (काष्ठगर्भ) होती है जिसको निकालकर और बाहरी भूरे हिस्साको छीलकर औषधकी भांति प्रयुक्त किया जाता है । बाजारोमें इसके विभिन्न लबाई और मोटाईके छोटे-छोटे खोखले ५ से ७ ५ या १० सें०मी० (२ से ३ या ४ इंच) लबे टुकडे मिलते है, जिनका व्यास १ २५ से०मी० से ५ सें०मी० (½ से २ इंच) होता है और जो एक बाजूसे फटे हुए होते है ।

योग—हब्ब तुर्बुद (ता० श० पृ० १७५), अतरीफल अस्तूखुद्दूस, जवारिश शहरयारां, जवारिश कमूनी मुसहिल, हब्ब इयारज, दवाए कुवाए अरबआ, शर्बत मुसहिल, जिमाद उशक, जिमाद तिहाल, माजून सरखस, माजून फलकलानज, हब्ब बवासीर (बयाज कबीर भा० २), अतरीफल अफतीमून या जमानी, हब्ब इयारज, शर्बत मुसहिल, माजून नजाह (इला० अ०), माजून तुर्बुद, हब्ब इस्तिस्काऽ आदि ।

रासायनिक सगठन—जडमें (तथा काण्डमें भी, किन्तु अपेक्षाकृत कम) टर्पेथिन (Turpethin) नामक एक विरेचक राल (५ से १०%) होती है। यह एक ग्लूकोसाइड है, जिसका सगठन जलापामें पाये जानेवाले 'जलापिन' या 'कॉन्वाल्वुलिन' नामक सत्वके समान होता है ।

उपयुक्त अग—जड ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष । आयुर्वेदमें भी उष्ण (कै० नि०) एव रूक्ष (च०) लिखा है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—द्रव कफविरेचनीय तथा सोठके साथ सान्द्रकफविरेचनीय है । गुणमें यह जलापाके समान होता है । इसके उपयोगसे जलवत् पतले दस्त आते है । इसलिए इसको आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, अर्दित, पक्षवध, खांसी और दमामें खिलाते है । जब सान्द्रकफका उत्सर्ग अभीष्ट होता है, तब उसमे सोठ मिलाकर खिलाते है । अस्तु, मोटापा (स्थूलता)को दूर करनेके लिए विरेचनकी भांति इसका उपयोग गुणकारी है । मालिखोलिया, उन्माद और अपस्मारमें मस्तिष्कशुद्धिके लिए पीली हडके साथ इसका उपयोग करते है । इसके उपयोगसे कफके पतलेदस्त आते है । इसलिए इससे शारीरिक द्रवोमें कमी उत्पन्न होकर शरीरका स्थौल्य दूर हो जाता है । यह विशेषकर कफोत्मादि और मस्तिष्करोगोमें लाभकारी है। अहितकर—आकुलताकारक है । निवारण—छीलकर बादामके तेलमें स्नेहाक्त (चर्ब) करना । प्रतिनिधि—गारीकून और कालादाना । मात्रा—चूर्णके रूपमे ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक, क्वाथमें ५ ग्रामसे १२ ग्राम (५ माशे से १२ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—निशोथ कषाय, कटु, मधुर, रूक्ष, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वातकर, विरेचन द्रव्योमें श्रेष्ठ तथा कफ, पित्त, कृमि, उदर, ज्वर, शोफ, पाण्डुरोग, प्लीहवृद्धि और व्रणका नाश करनेवाली है । (च० सू० अ० ४,-२५, च० क० अ० ७, सु० सू० अ० ३८, ३९, ध० नि०, कै० नि०) । निशोथ अरुण (फीके लाल)रगके मूलवाली और श्याममूलवाली दो प्रकारकी होती है । इनमें अरुणमूलवाली श्रेष्ठ है और सुकुमार, बालक, वृद्ध तथा मृदुकोष्ठवालोके लिये उत्तम है ।

नव्यमत—निशोध रेचन है । इसकी क्रिया जैलपके समान होती है । इससे पीले रगके पानीके समान दस्त होते है । इससे उदरमें मरोड होती है, इसलिये इसके साथ सुगन्धिद्रव्य और सैंधव वा मिश्री मिलाकर देना चाहिए । जलोदर, आमवात और वातरक्तमे यह विशेष लाभप्रद है । निशोथ और बडी हर्रेका चूर्ण उत्तम कार्य करता है ।

●

(३६३) नीबू

फ़ैमिली रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०) नीवू, नीबू, (नेवू), कागजी नीवू, पत्ती नीबू, (अ०) लीमून; (फा०) लीमून, लीमूए कागजी (तुर्श), (स०) निम्बू(क), ऐरावत, (प०) खट्टा, (व०) ले(ने)बु, कागजी ने(ले)वु, पाति नेवू; (सिन्ध) लिमो, (द०) लीमू, लीमूँ, लीमूँ कागजी, (म०) लिंबू, (गु०) लीबु, कागदी लीबु, (ते०) निम्म, (ता०) एलुमिच्चै, (मल०) चेरुनारूम, (लै०) सीट्रस आउरांटीफोलिया (**Citrus aurantifolia** (Christm) Swingle, (पर्याय-सीट्रस मेडिका प्र० एसिडा (*Citrus medica L var acida* Watt), (अ०) लेमन (Lemon), लिमोन (Limon), लाइम (Lime) फलत्वक् (हिं०) नीवूका छिलका, (अ०) कश्रुल्लीमून, (फा०) पोस्ते लीमून, (लै०) लीमोनिस कॉर्टेक्स (Limonis Cortex), (अ०) लाइम पील (Lime Peel) । फलरस (हिं०) नीवूका रस, (अ०) माउल्लीमू, (फा०) आवेलीमू शीरए लीमू, (अ०) लाइम जूस (Lime Juice) । भेद-(हिं०) शर्वती या मीठा नीवू, (प०) मीठा, (स०) मिष्ठनिम्बू मधुजम्वीर, (म०) साखर लिंबु, (गु०) मीठालिम्बु, (व) मिठालेवु, (लै०) सीट्रस लीमेट्टिऑइडेस **Citrus limettioides** Tanaka (पर्याय–*C medica L var Limetta* Wt & Arn) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषत उत्तरप्रदेश, बम्बई आदिमे गृहबागानोमें यह लगाया जाता है। हिमालयकी तराईकी जलप्राय घाटियो, हरिद्वार और हजारीवागके प्लेटोपर यह जगली होता है। इसे कोल-सथाल जमीर या जम्बीर कहते है । मीठेनीवूके वृक्ष भारतके उत्तरी एव मध्यभागीय प्रदेशोमें लगाये जाते है ।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है । इसकी कई जातियाँ है और हर एक जातिका अलग-अलग नाम है। मात्र लीमूँसे लीमूँ कागजी या कागजी लीमू (लीमूए कागजी) अभिप्रेत होता है । औषधमे तथा आहारमें प्राय इसीका व्यवहार होता है । फल जबीरी नीवूके फलसे छोटा और गोल, छिलका पतला (कागजी) एव पीला तथा रस खट्टा होता है । मीठेनीवूका फल कागजीनीवूसे बडा, गोल, पतले छिलकावाला और मीठा होता है ।

उपयुक्त अग—फलरस (ओबेलीमूँ), बीज (तुख्मेलीमूँ), एव फलका छिलका (पोस्तेलीमूँ) औषधमे प्रयुक्त किये जाते है ।

रासायनिक सगठन—इसके तथा जँबीरी दोनोके फलके रसमे सीट्रिकएसिड (६—१०%), होताहै, किन्तु कागजीनीवूमें अपेक्षाकृत अधिक होता है । इसके अतिरिक्त इसमे फॉस्फोरिक एसिड, मैलिक एसिड एव शर्करा आदि तत्व होते है । फलके छिलकेमे एक उत्पत् तैल तथा एक तिक्त क्रिस्टली ग्लूकोसाइड (विशेषत छिलकेके सफेद भागमे) होता है ।

कल्प तथा योग—तिरियाकजहर, सिकजबीनलीमूनी(सादा) ।

प्रकृति—नीवूका रस दूसरे दर्जेमे शीत तथा पहले दर्जेमें खुश्क (रूक्ष), मतातरसे दूसरे दर्जेमे शीत और पहले दर्जेमे तर (स्निग्ध) है । बीज और फलके ऊपरका छिलका दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है । आयुर्वेदके मतसे नीवू किंचित् उष्णवीर्य (रा० नि०) और मीठा नीवू शीतवीर्य (ध० नि०, रा० नि०) होता है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नीवूका रस शीतजनन, सौमनस्यजनन, लेखन, सान्द्रदोपछेदन, तारल्यजनन, ऋतुज्वर (तपेमौसमी) नाशन, पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताको दूर करनेवाला, पाचन, विषघ्न, दीपन और क्षुधाजनन, बीज सौमनस्यजनन और विसूचिकामें लाभदायक, छिलका सग्राही, दीपन, सौमनस्यजनन और मुखको सुवासित करनेवाला है । नीवूका रस–शीतजनन, सौमनस्यजनन और पित्तघ्न होनेके कारण ऋतुज्वरोमे इसकी सिकजबीन

नाम[1] या पोख्ता बनाकर पिलाते हैं जिससे ज्वरजन्य संताप और तृष्णा कम हो जाती है और हृदयको आह्लाद (फर्हत) मिलता है। दाल-तरकारियोंमें नीबूका रस निचोडकर खाया जाता है। इससे आमाशयको बल प्राप्त होता है और पाचनशक्तिकी वृद्धि होती है। छेदन और लेखन होनेके कारण बाहरीतौरपर उपयोग करनेसे यह त्वचाको मलोंसे शुद्ध करता है। नीलिका (बहक स्याह), व्यङ्ग (कलफ) और दद्रुको नष्ट करनेके लिए अकेले या अन्य औषधियोंके साथ यह सहायककी भांति उपयोग किया जाता है, क्योंकि सूक्ष्म होनेके कारण औषधीयवीर्यको त्वचामें शीघ्र प्रविष्ट कराता है। पित्तकी तीक्ष्णताका निवारण करनेवाला होनेके कारण पित्तजन्य वमन और हृल्लासको दूर करता है। आमाशयको बलवान् बनाता और खूब भूख लगाता है। सांप, बिच्छू, भिड आदिके दंशस्थानपर लगाने और पेयजन्य विषोंमें संशोधनोपरात पिलानेमें उनका निवारण करता है। बीजका मग्ज निकालकर हैजेमें उपयोग कराया जाता है और अपने सौमनस्यजनन और अगदगुणके कारण उसमें लाभ करता है। छिलका—दीपन और हृदयोल्लासकारक होनेके कारण यह आमाशय और हृदयके रोगोंमें प्रयुक्त किया जाता है। केवल इसका सूँघना भी मन प्रसादकर और हृदयबलदायक है। अगद होनेके कारण महामारीकालमें इसका सूघना और खाना गुणदायक है। नीबूका अचार आमाशय, यकृत् और हृदयको शक्ति देता है, आहारको पचाता और उद्गार एवं मुखकी गन्धको सुवासित करता है। वर्षाऋतुमें जबकि ऋतुज्वर और हैजा जैसे जनपदोध्वंसक (वबाई)रोगोंका प्रसार और प्रकोप होता हैं, तब आहारके साथ इसका उपयोग गुणदायक होता है। अहितकर–शीतप्रकृतिवालों और वातनाडियोंको। निवारण–चीनी। प्रतिनिधि–नारंज। मात्रा—नीबूका रस ६ ग्राम (६ माशा)। छिलका और बीज १ ग्राम (१ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—कागजी नीबू अम्ल, किंचित् उष्णवीर्य, अग्निदीपन, चक्षुष्य, रोचन तथा गुल्म, आमवात, काम कफ, कण्ठकी पीडा और वमनका नाश करनेवाला है (रा० नि०)।

मीठा नीबू—मधुर, गुरु, शीतवीर्य, बल्य, बृंहण, वृष्य, तर्पण, कफको बढानेवाला, रक्तशोधक तथा गलेके रोग, विष, शोष, अरुचि, तृष्णा, थकावट, वात और पित्तको दूर करनेवाला है। (ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—कागजी नीबू का रस दीपन, पाचन, तृष्णानिग्रहण, रक्तपित्तप्रशमन, विषमज्वरघ्न, ज्वरहर और मूत्रजनन हैं। नीबू की छाल दीपन और कोष्ठवातप्रशमन है। नीबूके रसमें जवाखार मिलाकर देनेसे पसीना आता हैं, पेशाबकी अम्लता कम होती है और उसकी राशि बढती है। नवीन आमवात, रक्तपित्त और वातरक्तमें नीबूका रस उपयोगी है। पित्तज नेत्राभिष्यंद और पित्तज वमनमें तथा अतिसार और आँवमें नीबूको गरमकर, रस निकाल, उसमें सैंधव और शक्कर मिलाकर देते हैं।

•

(३६४) नीम

फैमिली : मेलिआसे (Family Meliaceae)

नाम—(हिं०) नीम, नीब, (अ०) आजाद्दरख्तुल्हिंद, (फा०) आजाददरख्ते हिंदी, (सं०) निम्ब, (बं०) निम, (पं०) निंब, (सिंध) निमु, (म०) कडूनिंब, बालत निंब, (गु०) लीबडो, लीमडो, (ता०) वेंबु, वेंपु, (मल०) वेप्पु आर्यवेप्पु, (ले०) आजाडीराक्टा इंडिका **Azadirachta indica A. Juss** (पर्याय—*Melia azadirachta*

[1] चीनी या मिश्रीका शर्बत बनाकर उसमें नीबूका रस निचोड देते हैं। यही **सिकंजबीनसादा** कहलाती है। जब नीबूके रसमें चीनी मिलाकर यथाविधि उसका शर्बत बना लेते हैं, तब उसको सिकंजबीन पोख्ता या **सिकंजबीनलीमूनी** कहते हैं।

Linn); (अ०) नीम या मारगोसा ट्री (Neem or Margosa Tree), इडियन लिलैक (Indian Lilac), इण्डियन ऐजाडिरैक (Indian Azadirach) ।

वक्तव्य—'आजादरख्त' जो वस्तुत 'आजाददरख़्त ' था, बकाइनका फारसी नाम है। अरबीमे इसको मुहीतआजमके अनुसार 'ख़रबीत' और 'शजरतुलहुरंत' तथा 'उम्दतुल् मोहताज'के लेखकके अनुसार मिस्रमें इसको 'जन्जलख्त' और श्याममे 'अल्हजरदू' और तबरिस्तानमे 'ताफक' कहते है। इसकी लेटिन और अँगरेजी 'आज़ाडिराक्टा' एवं ऐजाडिरैक्ट संज्ञा वस्तुत इसकी फारसी संज्ञाका किंचित् परिवर्तित रूप (अपभ्रश) है। 'आजाददरख़्त हिन्दी' सज्ञासे नीम विवक्षित है, जो भारतवर्ष एव पूर्वी उपनिवेशोमे उत्पन्न होता है।

इतिहास—यह अति प्राचीन भारतीय औषधि है। अस्तु सुश्रुत आदि आयुर्वेदके आचार्योंने इसका उल्लेख 'निम्ब' नाम से किया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह भारतवर्षका प्रसिद्ध वृक्ष है जिसके सभी अग-प्रत्यग अत्यन्त तिक्त होते हैं।

उपयुक्त अग—काष्ठको छोडकर नीमके सभी अग-प्रत्यग (पत्र, पुष्प, फल, तैल, छाल) औषधमें प्रयुक्त होते है। परन्तु अधिकतया पत्र और छाल प्रयुक्त होते हैं। नीमकी ताड़ी (मद वा रस) का भी औषधमें प्रयोग उन्ही गुणोके लिए होता है।

रासायनिक सगठन—अन्त छाल (अन्तस्त्वक्)में मार्गोसीन (Margosine) नामक एक तिक्त न्युट्रल, अक्रिस्टली (Amorphous) रालसत्व होता है। इसके अतिरिक्त इसमे उडनेवाले तेल, गोद, स्टार्च, शर्करा, टैनिन आदि द्रव्य होते है। बाहरीछाल (बाह्यत्वक्)में टैनिन अधिक होता है। केवल अन्तस्त्वक्का काढा करनेसे उसमें तिक्तरालमय द्रव्य और तिक्तक्रिस्टली द्रव्य उतरते है। सम्पूर्ण छालका काढा करनेसे काढेमें ये तिक्तद्रव्य नही उतरते, अपितु प्रधानत. कषायद्रव्य ही उतरता है। वैसे तो यह जलमे भलीभाँति नही घुलता, किन्तु क्षारस्वभावी द्रव्योके साथ छालको पकानेसे उनके साथ मिलकर पानीमे भलीभाँति उतरता है। छालके अन्दरका तिक्तद्रव्य अम्लस्वभावी होता है। पत्रमे अल्पप्रमाणमे इसी प्रकारका एक तिक्तसत्व होता है, परन्तु उसकी अपेक्षया अधिक जलविलेय होता है। बीज (निबौली)मे लगभग १०% एक पीले रगका अनुत्पत् तैल होता है। तेलमे गधक होता है। यह तेल क्षारस्वभावी द्रव्यसे मिलता है। मद (Toddy or Sap)मे इक्षुशर्करा, ग्लूकोज, निर्यास और रजकद्रव्य प्रोटीड्स तथा भस्म होता है, जिसमे पोटैसियम् लौह, ऐलुमिनियम्, कैल्सियम् तथा कार्बनडाइऑक्साइड आदि होते हैं।

कल्प तथा योग—अर्क गुलनीम, अन्त छालका चूर्ण, मात्रा–४ ग्राम (३० रत्ती) दिनमे ४ बार देना चाहिए। इसके साथ सुगधित द्रव्य देनेसे इसकी क्रिया शीघ्र होती है, पत्रस्वरस (२४ ग्रामसे ६० ग्राम या लगभग २-५ तोला), तेल (४-१० बूँद)।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और खुश्क है। आयुर्वेदमतानुसार नीम शीतवीर्य (च०, ध० नि०) तथा नीमका तेल उष्णवीर्य (मु०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, सशमन, छेदन, सर, दोषपाचन, रक्तप्रसादन, ज्वरघ्न, कोथप्रतिबन्धक, कीटाणुनाशन, उदरक्रिमिनाशन और व्रणशोधन है। श्वयथुविलयन एव पाचन होनेसे इसके पत्तोका भर्ता बनाकर फोडे और अन्यान्य शोथो पर बाँधनेसे वे विलीन हो जाते है या पककर फूट जाते हैं। कठोरताको नरम करनेके लिए भी भर्ता बनाकर बांधा जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तोको उबालकर कर्णशूल (जोकि कानकी फुसीके कारण हो)मे इसका वफारा देते है। पत्तोको पीसकर और टिकिया बनाकर या पत्तोका भर्ता बाँधनेसे दुष्टव्रणोका शोधन होता है, दुष्टमास दूर हो जाता और नवीन मास शीघ्र उत्पन्न हो जाता है। पत्तोके काढेसे व्रणोको धोनेसे

व्रणका कोथ दूर हो जाता है। यदि कोथ न हो, तो यह उनमे कोथ होनेको रोकता है। सूखे पत्तोको बारीक पीसकर भी व्रणोपर अवचूर्णन करते है। कण्डू (खाज) आदि त्वचाके रोगोमे इसके पत्तोके काढेका स्नान लाभकारी है। रक्तप्रसादन होनेके कारण लगभग समस्त त्वचा और रक्तविकारजन्य रोगोमे इसका विभिन्न प्रकारसे उपयोग कराया जाता है। नीमके पत्तोंका रस निकालकर कृमि पडे हुए व्रणोमे तथा नाकके अन्दर कृमि उत्पन्न होनेकी दशामे नाकमे टपकाया जाता है। छाल भी यद्यपि पत्तोकी भाँति यही सब गुणकर्म रखती है, तथापि यह अधिकतया ज्वरघ्न औषधियो और रक्तप्रसादन अर्कोंमे प्रयुक्त होती है। इसका काढा उदरकृमिनाशनार्थ भी पिलाते है। फूलको साधारणतया रक्तप्रसादन योगोमे डालते है। यदि एक कपडेमे फूलोको लपेटकर वत्ती बनायें और उसको सरसोके तेलमे तर करके जलायें और उससे काजल प्राप्त करें तो यह काजल नेत्रकण्डूके लिये गुणकारक है। फल (निवौली) भी रक्तशोधक है। पकी निवौली खानेसे कोष्ठमार्दव भी होता है और रक्तप्रसादन भी। इसके अतिरिक्त यह उदरकृमिनाशन है। फलका मग्ज अर्शोघ्न है। सिरके जूओको मारनेके लिए पानीमे पीसकर वालोकी जडोमे लगाते है। इसके बीजोका तेल समस्त त्वग्रोगो, यहाँ तक कि कुष्ठरोगमे भी अभ्यग करनेसे गुणदायक है। जीर्ण-आमवातमें भी लाभ पहुँचाता है। व्रणोपर अकेले या अन्यान्य औषधियोके साथ लगानेसे उनका कोथ दूर करके बहुत जल्दी अच्छा कर देता है। यदि व्रणमे कीडे पड गये हो तो उनको मार डालता है। कंठमालाके पुराने व्रणोको भी लाभ पहुँचाता है। नीमके पुराने नरवृक्षसे एक प्रकारका पतला दूधिया द्रव या रस महीन धारोमे या बूँद-बूँद निकलता या क्षरा करता है, जिसको नीमका मद (ताडी) कहते है। यह उच्चश्रेणीका रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ, फिरग और खुजलीको दूर करता है। कतिपय सुरमोको इसमें खरल करके बनाते है। नीमका गोंद भी किसी भाँति रक्तशोधक है और इसको बल्य एव उत्तेजक समझा जाता है। नीमकी डालीसे दतधावन करना मुखदौर्गन्ध्यको दूर करता और दाँतोमें कीडे लगनेसे बचाता है। यह प्रधानत सौदानाशक और रक्तशोधक है। अहितकर—रूक्ष प्रकृतिवालोके लिये। निवारण—मधु, कालीमिर्च और स्नेह-द्रव्य। मात्रा—इसके हरे पत्ते और छाल जबकि रक्तप्रसादनके लिए इनका शीरा निकाला जाय या क्वाथ बनाया जाय, ६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक उपयोग कर सकते है।

आयुर्वेदीय मत—नीम रसमें तिक्त, विपाकमे कटु, शीतवीर्य, लघु, वमनकारक तथा पित्त, कफ, कण्डू कुष्ठ, रक्तविकार और व्रणका नाश करनेवाला है। नीम अपक्व व्रणका पाचन और पक्व (पककर फूटे हुए) व्रणका शोधन करनेवाला है। नीमका तेल कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, सारक तथा वात, पित्त, कफ, कृमि, कुष्ठ और शिरोरोगका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २, २७, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८, ४६, ४५, ध० नि०)।

नव्यमत—नीमकी अन्तरछाल शीत, विषमज्वरप्रतिषेधक, ग्राहीपौष्टिक, कटुपौष्टिक, त्वग्दोषहर, शोथघ्न, कृमिघ्न और रसायन है। नीमकी छालका ज्वरप्रतिबन्धक गुण सिंकोनाकी छालके समान है। इसके भीतरका तिक्त रवादार अम्लस्वभावी द्रव्य त्वचाके रास्तेसे वाहर निकलता है। यह त्वचाके लिये उत्तेजक और दाहशामक है। समग्र त्वचामें ग्राहीपन अधिक है। इसलिये इसकी ग्राहीपौष्टिक क्रिया सविशेष होती है। समग्र त्वचामें ज्वरप्रतिबधक गुण अल्प है। नीमकी क्रिया त्वचाके ऊपर सखिया जैसी होती है। पत्तियाँ शोथघ्न, त्वचाके लिये उत्तेजक, त्वग्दोषहर, उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, कोथप्रशमन, कृमिघ्न, विषमज्वरप्रतिबन्धक, यकृत्के लिये उत्तेजक और बडी मात्रा में वामक है। तैल वातहर, पूतिहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, उत्तेजक, कोथप्रशमन, शोधन, उत्तम कुष्ठघ्न और रसायन है। तेलकी क्रिया उसके भीतरके गन्धकसे होती है। नीमके समस्त भागोकी अपेक्षया तेल विशेष प्रबल कार्यकारी है। शीतज्वरमे टिंचर वा क्वाथकी अपेक्षया अन्तरछालका चूर्ण देना श्रेयस्कर है। जीर्ण विषमज्वरमें तेल बहुत गुणकारी है। प्रसूता स्त्रीको पहले दिनसे ही पत्रस्वरस देनेसे गर्भाशयका सकोचन होता है। रक्तस्राव ठीक होता है, गर्भाशय और तत्समीपवर्ती स्थानोकी सूजन उतर जाती है, भूख लगती है, दस्त साफ होता है, ज्वर नही आता

और आया भी तो उसका जोर नही बढता। नीमका थोडा अश बच्चेको मिलते रहनेसे उसकी प्रकृति ठीक रहती है। त्वग्रोगोमे पत्तियोका स्वरस पीनेको देते है और उसका लेप कराते है। नवीन रोगकी अपेक्षया जीर्णरोगमें इससे विशेष लाभ होता है। फिरंगोपदश और कुष्ठमें पत्तियोका स्वरस या तेल देते है। बद, ग्रंथि, व्रणशोथ और व्रण कम करनेके लिए पत्तियोका कल्क गरम करके बाँधते हैं। तेल उत्तम कृमिघ्न और पूतिहर है। इससे उदरस्थ एव बाह्य कृमि मर जाते है। गण्डमाला पककर जो व्रण होता है उसपर और नाडीव्रणपर तेलमें वत्ती भिगोकर रखते है। जीर्णज्वर, जीर्णविषमज्वर, त्वग्रोग, फिरगोपदश, कुष्ठ आदिमें ५-१० बूँद तेल दिनमे दो वार खिलाते हैं। सूजाकमे शिश्न सूजकर मूत्र रुक जाता है, तब रोगीको पत्तोके काढेमें बैठाते है। इससे मूत्र उतरता है और सूजन घटती है। अर्शकी सूजनपर पत्रकल्क बाँधते हैं। सन्धिशोथ और आमवातमे तेलकी मालिश करते हैं। आमवातमें तेल खानेको भी देते है।

●

(३६५, ३६६) नील व बननील

फैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) नील, लील; (अ०) अल्-नील (इ० बै०), नीलज, (फा०) नील, (स०) नीलिनी, नीली, (व०) नील, (म०) नील, गुली, (गु०) गली; (मा०) लील, (सिंध) नीर, (ते०) अविरि, (ता०) अवुरि, (मल०) अमरि, (ले०) इंडिगोफेरा टिंक्टोरिआ (**Indigofera tinctoria** L.); (अ०) इन्डिगो प्लाट (Indigo plant)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषकर बगाल, सिन्ध, अवध, मद्रास और बम्बईमें नील (Indigo)के लिए पहले विस्तृत परिमाणमें इसकी खेती की जाती थी।

वर्णन—इसका क्षुप ६० से ९० सें० मी० (२-३ फुट) ऊँचा, सरल, मृदुलोमयुक्त और आपातत देखनेमें सरफोका (शरपुखा)की तरह होता हैं। पत्रमें पत्रक २-६ जोडा, जिसके अग्रपर एक अयुग्म पत्रक होता है। पुष्पदण्ड ह्रस्व, पत्रवृन्तके मूलसे निकलता है, जिसपर दलबद्ध क्षुद्र नीलाभ गुलाबी पुष्प धारण किये जाते है। शिम्बी छोटी, बेलनाकार, अग्रकी ओर वक्र, बीज १०, गोल, बेलनाकार तथा दोनो सिरोकी ओर खण्डित (Truncated) होते हैं। वस्मा इसका जगली भेद है। (दे० 'बननील')।

वक्तव्य—खजाइनुल् अदवियाके लेखकके मतसे 'वस्मा' नीलीपत्रका नाम नही, अपितु 'बननीलके पत्र'का नाम है, जिसकी पत्तियोसे खिजाब बनाया जाता है तथा यह फारसीका शब्द है। फारसीमे इसे कतम भी कहते हैं (वि० दे० बननाल)। स्लिम्मर (Schlimmer) 'अल्-वस्मा'को 'Indigoferae folia' मानते है। इब्नुल्बतार[१] और बूअलीसीनाका भी यही मत है। परन्तु तथ्यविश्लेषणसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस नामके दो विभिन्न पौधोको अरबोने एकमे मिलाकर स्थितिको भ्रमात्मक बना दिया है।

उपयुक्त अग—बीज (तुख्मेनील), पत्र (वस्मा, वर्कुन्नील) और पत्तोसे तैयार किया हुआ रग (नील)।

रासायनिक सगठन—इन्डिकन नामक एक ग्लूकोसाइड इसका प्रधान सत्व है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०)।

---

१. इब्नुल्बैतार सख्या २२४४, २२९१ पादटिप्पणीसे अनूदित।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन। लेखन होनेके कारण बीजोको बारीक पीसकर मोतियाबिंद और फूलीमें सुरमाकी भांति उपयोग करते हैं। किलास, छीप वा झाईं और दद्रु आदि त्वचाके रोगोमे इसका पतला लेप लगाते हैं। पत्ते खिजावमे पडते हैं।

आयुर्वेदीय मत—नील तिक्त उष्णवीर्य, रेचन, केश्य तथा मोह, भ्रम, उदर, प्लीहाकी वृद्धि, वातरक्त, कफ, वात, आमवात, उदावर्त, मद और विषका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २, सु० सू० अ० ३९, भा० प्र०)।

नव्यमत—नीलका लेप दाहशामक, व्रणरोपण, त्वग्दोषहर, केशवर्धक और केशरञ्जन है। इससे प्रथम व्रणका सकोचन और पीछे उत्तेजन होता है। व्रणके ऊपर इसका सग्राहकधर्म उत्तम है। यह विषमज्वरप्रतिबन्धक, यकृदुत्तेजक, नाडीसस्थानके लिए शामक, भेदन, मूत्रजनन और कासहर है। जो गुण नील (रग)मे हैं, वे ही जडमें कम प्रमाणमे और पत्तियोमें उससे भी कम प्रमाणमें हैं। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि तथा जलोदरमें जड़का घन देते हैं। इससे दस्त और मूत्र होकर उदरका जल कम होता है। जीर्णमलावरोधमें जडका घन अल्पमात्रामे देते हैं। अर्शमें जडका घन खिलाते हैं और नीलको जलमें पीसकर अर्शके ऊपर लेप करते हैं। इससे मस्से संकुचित होते और पीडा शात होती है। कुकुरखांसी और फुप्फुसके शोथमें जडका घन देते हैं। शीतज्वरमें नीलको कालीमिर्चके साथ देते हैं। त्वचाके रोगोमें नीलको देते हैं। अग जलनेपर नीलको पानीमें पीसकर लेप करते हैं। इससे जलन और पीडा शान्त होती है और घाव शीघ्र भर आता है। बीजोंको ७ दिन मद्यमें भिगो कपडेसे छानकर वह मद्य जूंमारनेके लिये लगाते हैं। त्वग्रोग, अर्श और व्रणमे पत्तियोका लेप करते हैं। पागल कुत्ता काटनेपर पत्तियोका स्वरस ५ तोलेकी मात्रामे नित्य प्रात काल देते हैं और दशस्थानपर पत्तियोका लेप करते हैं। विसर्पका फैलाव रोकनेके लिए चारो ओर नीलका लेप करते हैं।

●

(३६७) नीलकंठी

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) शदेवी, सुबाली, (प०) नीलकठी, (ब०) खुडि ओकरा, (ले०) क्रोजोफ़ोरा प्रॉस्टाटा (**Chrozophora prostata Dalz**)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक देशी बूटी है, जिसके पत्ते खुरदरे और जड तथा फूल नीले होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन होनेके कारण यह रक्तविकारजन्य रोगो, जैसे—विसर्प और कण्डू आदिमें उपयोग की जाती है। यह अर्क मुरक्कब मुसफ्फीखूनका एक उपादान भी है। जीर्णज्वरोको नष्ट करनेके लिये अकेले या अन्य औषधियोके साथ इसका क्वाथ पिलाते हैं। प्रधान गुण रक्तप्रसादन और सौदानाशन है। अहितकर–फुफ्फुसके लिये। निवारण–मधु और कासनी। प्रतिनिधि–ब्रह्मदण्डी। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक। लखनऊके हकीम रक्तशोधनार्थ ४ ग्राम (४ माशे) लिखते हैं।

●

(३६८) पँवाड़

फैमिली लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) चकवँ(व)ड, चकौड, पँवाड, पमाड़, (द०) तरोटा, (अ०) सजेसबूया, कल्व, (फा०) सगेसूबूया; (स०) चक्रमर्द, प्रपुन्नाट, एडगज, पामारि, दद्रुघ्न, (बं०) चकुंडा, चाकुन्दे, (गु०) कुवाडियो, (म०) टाकला, तरवटा, (ते०) तगिरिसे, तडेमु; (ता०) तव(क)रै, (मल०) तघर, पोन्नातकरा, (ले०) कासिआ टोरा (Cassia tora Linn), (अं०) रिंगवर्म प्लांट (Ringworm plant)।

वक्तव्य—फारसी 'संगेसबूया'से अरबी 'संजेसबूया' बनाया गया है। सगेसूबूया पँवाडके बीजको कहते हैं। 'सैसबान'के बीजको फारसीमें 'संगेसबूह (दे० 'जयन्ती') और पँवाडके बीजका अरबमे 'ऐलुस्सरातीन' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके सभी उष्णकटिबन्धस्थित प्रदेशोमें वर्षाऋतुमे इसके क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वर्णन—यह एक वर्षायु क्षुप है, जो ६० से० मी० से १५० सें० मी० (२ फुटसे ५ फुट) तक ऊँचा होता है। पत्र सयुक्त, पत्रक ३ जोडे, लम्बगोल, कुण्ठिताग्र, मसृण, अन्तिम युग्म बृहत्तम। पत्र रातमे एक-दूसरेसे मिल जाते हैं, पुष्प कक्षीय, साधारणत युग्म, हलका पीला, शिम्बी लगभग ६ इञ्च लम्बी, बारीक, चौकोनी, बीज पुष्कल, लम्बोतरा, बहुत कडा, कुछ भूरा, दोनो छोर ऐसा प्रतीत होते हैं मानो तिरछे काटे हुए हो तथा मेथी या मोठके दानेके समान दिखता है। प्रत्येक फलीमे २०-३० बीज होते हैं। सम्पूर्ण क्षुप दुर्गन्धयुक्त होता है। बडे पत्र लबाबदार होते हैं और उनका स्वाद उत्क्लेशकारक होता है। कोमल पत्तोकी तरकारी बनाते है।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज और पचाग विशेषत बीज औषधके काममें लिए जाते है।

रासायनिक सगठन—पत्र और बीज दोनोमें क्राइसोफेनिकाम्ल (Chrysophanic acid)की तरहका एक ग्ल्युकोसाइड, इमोडीन और एक मधुरगन्धि अनुत्पत् तेल होता है। पत्रमें कैथार्टीन या सनायके समान एक विरेचन सत्व, एक रक्तरजक द्रव्य और खनिज द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतमे पँवाड और बीज उष्णवीर्य एव रूक्ष है। पत्र शाक शीतवीर्य एव रूक्ष (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विरेचन, सौदा और श्लेष्मनि.सारक, रक्तप्रसादन, लेखन, मरकविकारहर, अर्शोघ्न और विशेषत किलास, दद्रु और कण्डू इनका नाश करनेवाला है। रक्तप्रसादन और लेखन होनेके कारण पँवाडके पत्र और बीजको प्राय रक्तविकार एव त्वचाके रोगो, जैसे-कुष्ठ, कण्डू, दद्रु, छीप या झाइँ, किलास और व्यगमें लेप और पानरूपमें उपयोग करते हैं। चकवडके बीजोको कुछ दिन दहीमें सडानेके बाद लेप करना दद्रुकी परीक्षित औषधि है। महामारीकाल विशेषकर प्लेगमें अनागताबाधप्रतिषेधरूपमें इसके पत्तोका साग बनाकर खाया जाता है। पँवाडके बीजोका खाना और लगाना अर्शरोगमें लाभकारी है। यह कास और कफज कृच्छ्रश्वासके लिए भी प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त सौदा और श्लेष्मनि सारक और विरेचक होनेके कारण यह पक्षवध, आमवात और अन्य शीतल व्याधियोमे गुणदायक हैं। अहितकर-अन्त्रके लिए। निवारण-दही, दूध और अर्कगुलाब। प्रतिनिधि-बकुचीं और सरकण्डेकी जड। मात्रा-१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पँवाड़ कटु, मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु तथा मेद, वात, कफ, दाद, खाज, श्वास, कुष्ठ और कृमियोका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३९, ध० नि०, भा० प्र०)। इसके बीज कटु, उष्णवीर्य तथा

कुष्ठ, कण्डू, दाद, विष, वायु, गुल्म, कास, कृमि और श्वासका नाश करनेवाले हैं। (भा० प्र०)। इसका शाक रूक्ष, लघु, शीतवीर्य, वातपित्तप्रकोपक तथा कफनाशक है। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—पँवाडकी क्रिया त्वचापर होती है। इसको सब प्रकारके त्वचारोगोमें देते हैं। त्वचा मोटी हो गयी हो तो इससे विशेष लाभ होता है। त्वचाके रोगोमें इसकी पत्तियोका साग खिलाते है और बीजोको नीबूके रसमें पीसकर लगाते हैं। पत्र-क्वाथ मृदुसारक, पत्र और बीज दाद-खाजमें और मूल सर्पविषमें प्रयुक्त होता है।

●

(३६९) पखानभे(बे)द

फैमिली : साक्सीफ्रागासे (Family Saxifragaceae)

नाम—(हिं०) पखानभेद, पखानवेद, (स०) पाषाणभेद, वटपत्री (रा० नि०), (क०) पहाँड, (म०, गु०) पाखाणभेद, (व०) पाथरचुरी, (लै०) बेर्जेनिआ लीगूलाटा (**Bergenia ligulata Wall., Engl.**) (पर्याय—*Saxifraga ligulata* Wall)।

उत्पत्तिस्थान—७,००० से १०,००० फुटकी ऊँचाई पर हिमालयके कश्मीर आदि प्रदेशोमे पर्वतोकी ढालो पर पत्थरोकी दरारोमें अधिकतया निकले रहते है।

वर्णन—जिन्तियानासे भिन्न एक बहुवर्षायु क्षुप, काड छोटा और मासल, पत्र लट्वाकार या कुछ गोल, प्राय ७ ५ से १२ ५ से० मी० (३–५ इञ्च) व्यासमें किनारेपर सूक्ष्म सघन दाँतोसे युक्त, निचले पृष्ठपर प्राय: गुलाबी, चमकीले, पहले हरे और पीछे लाल रगके, पुष्प श्वेत, गुलाबी या जामुनी रगके, मूलस्तम ऊपरसे ललाई या कालाई लिए तोडनेपर भीतरसे सफेद, लगभग २ ५ से० मी० (१ इञ्च) मोटा और टूटे हुये धरातलपर तार-तार दिखता है। स्वाद तिक्त होता है। इनके मोटे मूल बाजारमें पखानभेद (पाषाणभेद)के नामसे मिलते है।

उपयुक्त अंग—मूल।

मात्रा—१ से ३ ग्राम (१—३ माशे)।

रासायनिक सगठन—जडमे कैल्सियम् ११ ५%, गैलिक एसिड, टैनिक एसिड (१४ २%), द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज ५ ६%), पिच्छा २ २५%, मोम, एल्बूमिन (७ ७५%), स्टार्च (१९%) तथा क्षार प्रभृति द्रव्य होते हैं। मूलको जलानेसे १३% राख मिलती है।

प्रकृति—आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य तथा रूक्ष या स्निग्ध, यूनानीमतके लिये जिन्तियाना देखें।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पखानवेद तीक्ष्ण एव सारक है तथा प्रमेह, सूजाक और वस्त्यश्मरीका नाश करता है। हकीम शरीफखाँ कहते है कि हमारे दिवगत चाचा इसका इस तरह प्रयोग करते थे कि समभाग पखान-वेद और मेंहदीके पत्तोको पिसवाकर मेहदीकी भाँति उस स्त्रीकी हथेलियो और तलवोपर लगवाया करते थे जिसे आर्तवरक्त जारी होता था, इससे वह बन्द हो जाया करता था। (तालीफ शरीफ)। मुहीत आजममें यह भी लिखा है कि आर्तवरक्तका दाह मिटानेके लिए इसे ४ ५ ग्राम (४॥ माशे) देना चाहिए। यह अर्शमे लाभकारी एव पित्तनाशक है। सूजाकमें इसे बकरीके दूधके साथ देना चाहिए। फोडोपर इसका लेप करनेसे वह बैठ जाता है। तक्रमिलए हिंदीके अनुसार यह तृषा, सताप एव विदुमूत्रको लाभ करता और वस्तिगत पथरीको तोडकर निकाल देता है। यूनानी वैद्य इसे ग्राही मानते तथा इसमे निहित सग्राही एव अगद गुणके कारण इसे हृदयका सरक्षक जानते है और सर्दीके दर्द तथा सूजनका उतारनेवाला समझते हैं। किन्तु वैद्य इसे भारक और सतापहर मानते हैं।

आयुर्वेदीय मत—तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, मूत्रविरेचनीय, बस्तिशुद्धिकर, भेदन तथा वातादि तीनो दोष, शूल, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म, अर्श, योनिरोग, प्रमेह और व्रणका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३८; च० सू० अ० ४, ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—स्नेहन, श्लेष्मघ्न, स्तम्भन, मूत्रजनन और स्कर्वीहर है। अश्मरिमें देनेसे पेशाबका प्रमाण बढ़कर उसका गाढापन (आविलता) कम होता है। दूधमें घिसकर देनेसे बच्चोको मूत्रमें क्षार जाना बन्द होता है। आंव और अतिसारमे इसे देनेसे आँतोको शक्ति मिलती है। दाँत निकलते समय बच्चोके मुँहसे लार गिरती है और मुँहमे व्रण होते है, तब इसे शहदमे घिसकर मुखमें लगाते है। व्रणशोथ और नेत्राभिष्यदमें इसका लेप करते है। ज्वर और फुफ्फुसविकारमे इसका उपयोग करते है।

●

(३७०) पचौली

फैमिली . लाबिआटे (Family Labiatae)

नाम—(हि०) पचो(चौ)ली, पंच पानडी, (ब०) प(प)चपात, (बम्ब०) पचपान; (ले०) पोगोस्टेमॉन पचौली (**Pogostemon patchouli** Pell. Hook), पो० हेनिएनस (P heyneanus Benth), (अ०) पचौली (Patchouli)।

उत्पत्तिस्थान—कनाडा, पश्चिमीघाट, नीलगिरीसे दक्षिणकी ओर तथा मलायाप्रायद्वीपमे यह जगली होती है अथवा खेती की जाती है। मध्यभारत तथा बम्बईमे यह अधिकतासे होती है।

वर्णन—बाहरसे आनेवाली पचौलीके पत्र साधारणतया गहरे भूरे रगके सिकुडे हुए (Crumpled) और प्राय. अन्यान्य पत्तियोके साथ मिले-जुले होते है। इसके जलमे भीगे हुये वास्तविक पत्र आकृतिमे लट्वाकार (Ovate) दिखलाई देते है। वे १० सें० मी० (४ इच) लबे और १३ ७५ सें० मी० (५½ इच) चौडे, किंतु अपेक्षाकृत नये पत्ते उससे आधे आकारके होते है। पत्रप्रात खडित, विषम तीक्ष्णाग्रगोल दाँतवाले (With irregular crenate-serrate teeth), खड कुण्ठिताग्र और पत्राधार अदतित होता है। रोम साधारण (Simple) और साधारणतया चार कोषयुक्त होते है। स्वाद, रुचिकर, गध तीव्र एव स्थायी।

उपयुक्त अंग—पत्र।

रासायनिक सगठन—इसमे, एक उत्पत् तेल (Essen oil) होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, वातानुलोमन और कृमिघ्न। इसकी पत्तियोसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है जो विलायती सुगधियो (एसेस आदि)मे पडता है।

●

(३७१) पटेरा, पटेर

फैमिली : टीफासे (Family Typhaceae)

नाम—(हिं०) पटेर, (-रा,-री,-ला), गोदपटेर, गोदल, मोथीतृण, (अ०) बर्दी, फाफीर (इ० बै०), कसबुल्बर्दी, हलफा, दख्ख, (फा०) पीरज, दोख, लोख, (मिश्र०) फाफा (फी) रूस, फाफीर, (सं०) एरका, गुन्द्रा, गुन्द्रमूला, पटेरक, (यू०) पेपिरस (Papyrus), (ब०) होगला, (उडि०) होगोला (लो), (म०) एरका, (प०, क०)

षीरा: (बम्ब०) रामबाण, (लें०) टीफा एलेफान्टीना (Typha elephantina Roxb), (अं०) एलीफैन्ट्स ग्रास (Elephant's grass), कैट्स टेल (Cat's tail) ।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरपश्चिम भारतवर्षसे आसामतक तथा दक्षिणकी ओर इन्डस डेल्टा आदिमें, झील या नदीके किनारे पानी या दलदलमें होती हैं ।

वर्णन—इसके तृणजातीय परन्तु १ ८ से ३ ६ मीटर (६–१२ फुट) ऊँचे पौधे होते हैं जो जलप्राय स्थानोमें और नदीके किनारे समूहबद्ध होकर उगते हैं । पत्तियाँ १ २ से १ ८ मीटर (४–६ फुट) लबी, २ ५ से० मी० (१ इच) तक चौडी और नतोदर होती है । पुष्पवाहक काण्डके अग्रपर नर और नारी पुष्पोके पत्रावृत्त अवृन्तकाण्डज सघनव्यूह होते हैं जो १ फुट तक लबे और रोईंदार होते हैं । यह रोमा उनपर धूलिकी तरह होता है । स्वादमें यह मधुर एव स्वादिष्ट होता है । इस रोईंके नीचे रुईके समान एक वस्तु होती है जिससे कागज बनाते है । बीज मेथी-के बीजोंसे अधिक छोटे एवं कडुए होते हैं । जड़ मधुर एवं सुस्वादु होती है । मिस्रदेशीय बर्दीमें जो रूई होती है उससे रस्सियाँ और कागज बनाते हैं । जली हुई बर्दी जले हुए कागजका काम देती है । यूनानी वैद्यकमे मात्र कागजसे कागज बर्दी अभिप्रेत होता है । बुरहान कातेअमें लिखा है कि भारतवर्षमें इसे हाथियोको खिलाते हैं । पत्तियोसे बोरिये और चटाइयाँ बुनते हैं । गोद और इसमे यह अतर है कि पटेरेकी पत्ती चौडी होती है, गोदकी पतली । मजबूत एव बहुमूल्य चटाई गोदकी होती है । पटेरकी एक दूसरी जाति (T angustata Chanb) भी होती है । मुख्य भेद दोनोकी पत्तियोंमें होता है । पहली जातिमे कोपमय पत्राधारके ऊपर पत्तीका घेरा त्रिभुजाकार और दूसरी जातिमें वर्तुलवत् गोलाकार होता है । यह न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षमें होता है । इसे होगला (ब०) तथा एरका (स०) कहते हैं ।

प्रकृति—शीतल एव रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी राख अत्यन्त रूक्ष एव व्रणशोषणकर्त्ता है । इसे सिरकेमें तर कर, अलसीका चूर्ण मिला, नासूरपर छिडकनेसे लाभ होता है । यह (आकिल)को भी लाभकारी है । इसबगोल, अलसी, बिहीदाना आदिके लवाबमें इसे मिलाकर चाटनेसे छातीसे आता हुआ रक्त बन्द हो जाता है । केकडोके काढे या अर्कगुलाबके साथ ३½ माशे यह राख सेवन करनेसे उरःक्षत और हर प्रकारके फुप्फुसके रोग आराम होते हैं । पैरोमें जूता काटनेसे हुए घावपर इसकी राख छिडकनी चाहिए । नकसीरमें इसकी राखका नस्य देनेसे लाभ होता है । इसकी धूनी प्रसेक और प्रतिश्यायके लिए गुणकारी है । इसको मजनमें डालनेसे मसूढे मजबूत होते हैं और उनसे रक्त एव पानी आना बद होता है । इसको अलसी या सनके कपडेमे लपेटकर नासूर या खूनी बवासीरके मस्सोमें रखनेसे वे सूख जाते हैं । इसे पेचिसकी बस्तियोंमें मिलाते हैं । इसकी जड चाबनेसे लहसुन, प्याज और मदिराकी गंध जाती रहती है । अहितकर—अन्त्रामाशय और फुप्फुसको । निवारण—अन्त्रामाशयके लिए मधु और फुप्फुसके लिए लुबूब । प्रतिनिधि—समतोल अकाकिया, गर्वके पत्ते और तृतीयांश खूनेखराबा ।

नव्यमत—महाराष्ट्रमें पक्वफलरोम (पुष्पो)का चूर्ण घाव और व्रणोमे लगानेके काममे आता है तथा औष-धीय कार्पासपिचुकी भांति कार्य करता है । इससे घाव शीघ्र अच्छा होता है । मूलस्तभ शीतल, कषाय (ग्राही), वीर्यवर्धक, चक्षुष्य और मूत्रजनन है तथा अश्मरि, दाह, खसरा (Measles) एव रक्तपित्तनाशक है और प्रवाहिका एव सूजाकमें प्रयुक्त होता है ।

एरका—शीतवीर्य, वृष्य चक्षुष्य, वातप्रकोपक तथा मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, पित्त और रक्तविकारनाशक है । (भा० प्र०) ।

(३७२) कसरानी

नाम—(हिं०) कसरानी, कसेरा, कौलन, (अ०) अस्ल, इजखिर अजामी, (फा०) दूख, कर्त, (मिश्र०) समख ।

वक्तव्य—कसरानीका वर्णन जिसे अरबोमें 'अस्ल' व 'इज़खिर अजामी' लिखा है, देखनेमे यह आयुर्वेदोक्त 'गुन्द्र' प्रतीत होता है । वि० दे० 'गोंदरी' या 'गोंद' ।

गोंदरी, गोंद

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family . Gramineae)

नाम—(हिं०) गोद, गोद (रा, री, ला), गु(गो)नरा (री), नेरुई, (स०) गुन्द्र, गुण्डतृण, नीलपत्र, (फा०) सामान, (प०) धमूर, गिरुई, घिरी, (गु०) दुस्तो, दून, (ले०) पानीकुम् आन्टीडोटाले (**Panicum antidotale** Retz) ।

उत्पत्तिस्थान—पजाव, गगाका उत्तरी मैदान, पश्चिमी प्रायद्वीप ।

वर्णन—एक घास जो प्राय जलप्राय स्थानोमे उत्पन्न होती है । पटेर और इसमे यह अन्तर है कि पटेरकी पत्ती चौडी होती है और इसकी पतली, मजवूत, गोल और नरम भी होती है । इससे चटाइयाँ बनाते है । इस विवरणसे यूनानी ग्रन्थोक्त कसरानी जिसे अरबीमे 'अस्ल' व 'इज़खिर अजामी' कहते है, प्रतीत होती है । वि० दे० 'कसरानी' और 'पटेर' ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे सर्द एव खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको जलाकर घावपर छिडकनेसे रक्तस्राव वन्द हो जाता है । घावोको इसके जलते हुए पौधेके धुएँकी धूनी देते है और शीतलामें (Disinfectant)की भाँति इसका उपयोग करते है । इसकी चटाईपर वैठनेसे अर्शका नाश होता है ।

आयुर्वेदीय मत—गुन्द्र यह कषाय, मधुर, शीतवीर्य, रक्तपित्त एव मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाला तथा स्तनमे स्थित दूध, शुक्र, रज और मूत्रका शोधन करनेवाला है । (भा० प्र०) ।

●

(३७३) पतंग

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family Leguminosae)

नाम—(हिं, म०, गु०, द०) पतग, (अ०)बु(ब)क्कम, वकम, खशबुल्अह्मरहिन्दी, (फा०) वकम हिन्दी, (स०) पत्राङ्ग, पतङ्ग, (व०) वोकोम, (ते०) बुक्कपुचेट्टु, (ता०) शप्पगु, (मल०)पत्तगम्, चप्पङ्ङम्, वरत्तागि, (ले०) सेसालपीनिआ साप्पान (**Caesalpinia sappan** Linn), (अ०) सैप्पन वुड (Sappan wood) ।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षके और शेष नाम उसकी लकडीके है । यह 'वकम अमरीकी (**Haematoxylon compectianum**)' या 'लॉगवुड (Logwood)' का उत्तम प्रतिनिधि है ।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतमें पूर्वी-पश्चिमी प्रायद्वीप, श्यामकी पहाडियाँ और पेगू (ब्रह्मा)। दक्षिण भारतके मद्रास प्रांतमें इसके वृक्ष काफी परिमाणमें लगाये हुए मिलते है।

वर्णन—यह एक कँटीले गुल्म या छोटे वृक्षके हीरकी लकडी है, जो औषधके काम आती है। लकडी ठोस, भारी, कडी, ताजी कटी हुई कुछ-कुछ सफेद, किन्तु वायुमें खुला रहनेसे लाल हो जाती है। इसमे कोई विशेष गध और स्वाद नही होता, किन्तु यह कषाय (सग्राही) होती है। इससे जल और सुरासारमे उत्तम लाल रग आ जाता है। बाजारमें इसके विभिन्न आकार-प्रकारके कडे और भारी टुकडे या लाल नारगी रगकी चपटियाँ मिलती है। आडे रुख काटनेसे इनपर वृत्त और सरल रेखायें पायी जाती है। बाजारमें सिंगापुरी, घुनसरी और लका ऐसी तीन नामकी लकडियाँ मिलती है। इनका आयात बम्बईमें होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सैपेनीन नामक एक क्रिस्टलीय सत्व होता है, जो हीमेटॉक्सीलीनकी भाँति होता है। फलियों एव छालमें टैनिन पाया जाता है। पत्तियोमे (० १६%–० २५%) एक सुरभियुक्त उत्पत् तैल पैदा भी पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और चौथेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उपशोषण (ग्रगलेवन), सग्राही और रक्तस्तंभन। पतगके चूर्णको पुरातन और सद्य व्रणोपर छिडकते है। रक्तस्राव बन्द करने और व्रणपूरणके लिए लाभकारी है। इसे बालकोके अतिसार और पेचिशमें पिलाते है। योनिसे नाना प्रकारके स्रावमें इसके काढेकी पिचकारी करते है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण–वमन कराना। मात्रा–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशे से ३ माशे १½ तोलेकी मात्रामे अधिक खुश्की करनेके कारण घातक वर्णन की जाती है)।

आयुर्वेदीय मत—पतंग मधुर, तिक्त, वर्ण्य तथा पित्त और कफका नाश करनेवाला है। (ध० नि०)।

नव्यमत—पतग ग्राही, रक्तसग्राहक, गर्भाशयका उत्तेजक और सकोचक, श्लेष्मघ्न और व्रणरोपण है। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए पतगका काढा पिलाते है और काढेमें कपडा भिगोकर उस व्रणपर बाँधते है। फुफ्फुस, आँत, गर्भाशय आदिके रक्तस्रावपर पतगसे उत्तम लाभ होता है। रक्त प्रदर और श्वेतप्रदरमें पतगके काढेकी बस्ति देते है। अतिसारमें पतंग उपयोगी है। बनफशा और पतगके काढेसे मासार्बुद (कैन्सर)के व्रणको धोनेसे पीडा और दुर्गन्ध कम होती है।

●

(३७४) पथरचूर

फ़ैमिली : क्रास्सूलासे (Family Crassulaceae)

नाम—(हिं०) पथरचूर, पथरचट, (हिं०, द०) जख्महयात; (स०) पर्णबीज (नवीन), (म०) घायमारी; (व०) पाथरकुचा, हिमसागर, (गु०) खाटखटुम्बो, (ले०) कालाची पीन्नाटा **Kalanchoe pinnata** (Lamk) Pers (पर्याय–*Bryophyllum pinnatum* (Lamk) Kurz., *B calycinum Salisb.*)।

वक्तव्य—हेमसागर (हिं०, व०) या ज़ख्महयात (बम्ब०) **Kalanchoe laciniata** DC इसकी एक दूसरी जाति है, जिसमें शोथघ्न एव व्रणशोधन गुण इसीके समान होते है, और पुराने व्रणोपर इसका विशेष उपयोग होता है। इसीलिए कोई-कोई इसको जख्महयात कहते हैं। इसके पत्ते रगीन होते है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त नम और उष्ण भाग, विशेषकर बंगालमें यह साधारण रूपसे होता है। यह उड़ीसामे जगली और विहारमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—बहुवर्षायु मांसल क्षुप; कांड सीधा, मोटा, पोला, रक्तवर्ण; पत्तियाँ अपत्रक अथवा नीचे त्रिपत्रक, हरी, आयताकार या अण्डाकार, गोलदन्तुर, पत्रक २ से ६ इंच लम्बे और पुष्पवाहक काड १-३ फुट ऊँचा होता है। पुष्प हलके हरे या बैंगनी रगके, चतुरगभागी और वाह्यकोश फूला हुआ तथा घटिकाकार होता है। पत्तीके किनारे दाँतोके बीचमें कलिकाएँ होती हैं। अत. जब पत्ती टूटकर गिर जाती है अथवा जब पत्ती जमीनमें दबा दी जाती है तब ये कलिकाएँ विकसित होकर स्वतन्त्र पौधे उत्पन्न करती हैं। इसलिए इसे पर्णबीज कहते हैं। कुछ लोग इसको 'पखानभेद' मानते हैं। पखानभेदकी तरह यह भी मूत्रल होता है, अत. उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है।

उपयुक्त अंग—पत्र और पत्रस्वरस।

रासायनिक संगठन—पत्तियोमें मैलिक अम्ल (सेवाम्ल), आइसोसाइट्रिक और साइट्रिक एसिड (जम्बीराम्ल) प्रभृति अम्ल पाये जाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—

नव्यमत—पर्णबीज तिक्त व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तसंग्राहक और रक्तस्कंदन है। इसके रसकी क्रिया सूक्ष्म धमनियोपर होकर उनका संकोचन होता है और उससे रक्तका स्राव भीतरसे होता हो अथवा त्वचासे होता हो तो बन्द होता है। रक्तमिश्रित आँवमें चौथाईसे आधातोला पत्रस्वरस देते हैं। मार (अभिघात) और व्रणपर पत्तोका कल्क जरा गरम करके बाँधनेसे सूजन, लाली और वेदना शात होकर घाव शीघ्र अच्छा होता है। नवीन घावके लिए इसके बराबर अन्य कोई औषध नही है।

●

(३७५) पत्थरफोड़ी

फ़ैमिली : स्क्रोफुलारिनी (Family : Scrophularineae)

नाम—(हिं०) पत्थ(थ)रफोडी; (गु०) कनोडी, मिंटगलोडी; (लें०) किक्सिआ रैमोसिस्सिमा (**Kichxia ramosissima** Janche)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, साधारणतया पथरीले और चट्टानबहुल स्थानोमें होती है।

वर्णन—एक बूटी जो पत्थरो और दीवारोमें उगती है। इसके पत्ते दबीज होते हैं। इनको मुखमे चाबने-से ल्हेस उत्पन्न होती है। इसका स्वाद खारा होता है।

उपयुक्त अग—पत्र। इस नामकी दूसरी औषधि पश्चिमी उपहिमालयमें चबासे कुमाऊँ तक २,५०० से ५,५०० फुटकी ऊँचाईपर होनेवाला फैमिली जेस्नेरिआसे (*Family Gesneriaceae*)की डिडीमोकार्पुस पेडीसेल्लाटा (**Didymocarpus pedicellata** R Br) नामक औषधि है।

रासायनिक सगठन—इसकी पत्तियोसे पेडिसिन (Pedicin), पेडिसिनीन (Pedicinin) प्रभृति युक्त एक क्रिस्टली रजक द्रव्य पृथक् किया जाता है। इनमे पेडिसिन मछलियोके लिए विष है। पत्तियोसे प्राप्त उत्पत् तेलमे डाइडिमोकार्पीन (Didymocarpene) नामक प्रधान उपादान होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल मूत्रजनन और बस्तिवृक्काश्मरिनाशन हैं। इस बूटीके पत्र अकेले या प्रवर्तनकारी औषधियोंके साथ पीसकर मिश्री या शर्बतबजूरी मिलाकर पिलानेसे मूत्रका अत्यन्त प्रवर्तन होता है और यह वस्तिवृक्काश्मरिको तोड-फोडकर निकाल देती है। अहितकर—कामशक्तिको (अवाज़ीकर)। निवारण—कुलथीका फाट। मात्रा—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशे से १ तोला) तक।

•

(३७६) पपीता

फैमिली : लोगानियासे (Family Loganiaceaeae)

नाम—(हिं०, अ०, फा०, द०) पपीता, पापीता, पपीता रूमी, (ले०) ईग्नाटिआ आमारा **Ignatia amara** Linn (पर्याय–*Strychnos ignatii*), (अं०) सेंट इग्नेशियस बीन (St Ignatius Bean), इग्नेशियस बीन्स (Ignatius Beans)।

वक्तव्य—पपीता (Pepita) वस्तुत. इस औषधिका स्पेनभाषाका नाम है। हिंदुस्तानमें यह औषधि उसी नामसे आयी, इसलिए इसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। 'ईग्नाटिआ' और इग्नेशियस' क्रमश इसके लैटिन और अंग्रेजी नाम 'सन्त इग्नेशियस' के नामपर रखे गए हैं जो ईसवी धर्मानुयायी एक भद्र पुरुष थे। नवीन औषधि करके 'पपीता'का नाम सर्वप्रथम मख्ज़नुल अदविया और उसके बादके यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें उल्लिखित है। यह अरडखरबूज़ासे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। (देखो 'अरडखरबूजा')। 'स्ट्रीक्नोस (Strychnos)' यूनानी सज्ञा 'काकमाची (Nightshade)'का पर्याय है। सुतरां यूनानवासी काकमाचीजाति या सूची (ऐट्रोपा या यबरूज) जातिके लिए इसका आरोप करते थे और ईसवीसन्‌की सोलहवी बल्कि सत्रहवी शती तक भी यूरोपमें स्ट्रीक्नोसको ऐट्रोपा (बेलाडोना)का पर्याय समझते रहे। पर अधुना इसका आरोप 'लोगानिआसे (Loganiaceae)' फैमिलीके लिए होता है।

इतिहास—ईसवी सन्‌की सोलहवी शतीके अन्तमें जोज़ट नामी एक ईसाई धर्मोपदेष्टाने फिलिपाइन द्वीपसे यूरोपमें इस औषधिको भेजा। सन् १६९९ ई० में 'डॉ० रे' और डॉ० पीटीवरने इसको लन्दनके डॉक्टरोंकी राजकीय सोसाइटीके समक्ष उपस्थित किया तथा ईसवी सन्‌की सत्रहवी शतीमें यह भारतवर्षमें आयी। अस्तु, मख्ज़नुल् अदविया और उसके बादकी यूनानी वैद्यकीय पुस्तकोंमें 'पपीता' नामसे इसका वर्णन किया गया।

उत्पत्तिस्थान—फिलिपाइन और कोचीन चाइना टापू जो अधुना अमेरिकाके अधीन है।

वर्णन—यह कुचलाजातीय एक विदेशीवृक्षके प्रसिद्ध बीज है जो औषधिके काममें आते हैं। बीज १ इञ्चसे १½ इञ्च लम्बे, १½ इञ्च व्यासमें, दीर्घाकार या अंडाकृति और अनियमितरूपसे नोकदार होते हैं। प्राय. बीज लगभग तिकोने होते है। बाहरसे हलका भूरा या कालाई लिये, किन्तु भीतरसे अर्धस्वच्छ होते हैं। ये कुचलाके समान शृंगवत्, अत्यत कडे और अत्यत तिक्त होते हैं। गन्ध कुछ नही होता। पपीताके एक फलमें जो बडे अमरूदके बराबर होता है १५ से २० बीज होते है।

रासायनिक सगठन—इसमे भी वे ही सत्व और उपादान होते है जो कुचलामें होते हैं। प्रयुक्त कुचलाकी अपेक्षया इसमें विषमुष्टीन (स्ट्रिक्नीन) नामक वीर्य अधिक होता है।

कल्प तथा योग—हब्ब पपीता।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—गुणकर्ममे यह कुचलाके समान, सभवत अधिक कार्मुक है। प्राणिज, वानस्पतिक और खनिज विषोका अगद, श्वयथुविलयन, उष्णताजनन, श्लेष्मनि सारक, वातानुलोमन, अन्त्रामाशयशूलहर, अतिसार और छर्दिनाशक, आर्तवजनन वाजीकर और विशेषकर अगदगुणके साथ हैजा और छर्दिनाशक है।

उपयोग—प्रतिविप और छर्दि एव अतिसारनाशक होनेसे यह हैजामें प्रयुक्त होता है। यह अन्त्र और आमाशयके शूलको दूर करता है। इसलिए आधी रत्तीकी मात्रामें इसे अर्कगुलाबमें घिसकर पिलाते है। श्वयथुविलयन, उष्णताजनन और श्लेष्मनि.सारक होनेसे यह कास, कृच्छ्रश्वास, शीतल जलोदर, वायुजन्य वेदना, अर्श, आमवात और पक्षवध आदिमे गुणदायक है। मूर्च्छा और बेहोशीमे इसको घिसकर मुखमे टपकाते है। अर्बुद (रसौली) पर लेप करनेसे उसको विलीन करता और प्राणियोके दशपर लेप करनेसे पीडाको शात करता और विषका नाश करता है। वाजीकरणार्थ भी इसका उपयोग करते हैं। यदि बीजको रेजा-रेजा करके तिलके तेलमें पकानेके बाद छानकर उस तेलकी मालिश करें तो पक्षवध, अगघात और कण्डूमें उपकार होता है। अहितकर–उष्णप्रकृतिको। निवारण–हरी कासनी। प्रतिनिधि–दरियाई नारियल। मात्रा–२ चावलसे लेकर ४ चावल तक।

वक्तव्य—पपीतामे कुचलाकी अपेक्षया दूने प्रमाणमे सतकुचला या विषमुष्टीन (अज़ाराकीन या स्ट्रिक्नीन) पाया जाता है जो एक साघातिक विष है। सतर्कतापूर्वक इसका उपयोग करना चाहिये।

●

(३७७) परवल

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) पर(ल)वल, परवर, परोरा, (स०) पटोल; (बं०) पटोल, पल्ता, (म०) पड(-र)वल, (गु०) पाडर, पटोल, परवल, (प०) पलवल (मख्ज़न), (बम्ब०) पोटल; (ते०) पोट्ल, (ता०) पुटोल, (मल०) पटोलम्; ट्रीकोजान्थेस डिऑइका (**Trichosanthes dioica** Roxb)।

वक्तव्य—भारतीय वनस्पति होनेसे इसका कोई अरबी-फारसी नाम नही है। मख्ज़नुल्अदविया आदि यूनानी निघंटुग्रथोमे 'पलवल' नामसे ही इसका उल्लेख मिलता है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोके मतसे 'पटोल'से कडवा परवल अभिप्रेत है। परन्तु भावप्रकाश आदि उत्तरकालिक ग्रन्थोमें इससे 'मीठा परवल' विवक्षित है। सुतरा कडवे (तिक्त) परवल या जगलीपरवलका 'तिक्त पटोलिका' नामसे उन्होने पृथक् उल्लेख किया है। परवल उत्तर भारतवर्षमें होता है, दक्षिणमें नही। यहाँ परवलकी विस्तृत परिमाणमे खेती की जाती है। दक्षिण भारतमें वनचिचिंडा (**Trichosanthes cucumerina** Linn)को ही औषधीय पटोल (तिक्त या वन्य पटोल)के नामसे प्रयुक्त करते है। चिचिंडाकी एक कर्षित जाति (ट्रीकोजाथेस आगूइना **Trichosanthes anguina** Linn.) भी होती है जिसका व्यवहार शाक-भाजीके लिए किया जाता है। महाराष्ट्रमे भ्रमवश इसे भी 'पडवल' कहते है। यूनानी निघटुओमें तिक्तपटोल (कडवा पलवल) का प्रयोग नही है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरभारतमें पंजाबसे आसाम-बगाल तक इसकी बेल होती है। वनचिचिंडा (दक्षिण-भारतीय पटोल) विन्ध्य एव दक्षिण भारतमे जगलीरूपसे होता है।

वर्णन—यह एक बेलका प्रसिद्ध फल है जो कदूरी और कचरीकी तरह २-३ इञ्च लम्बा, गोला, दोनो छोरोकी ओर क्रमश पतला और सफेद होता है तथा उसपर लम्बाईके रुख धारियाँ पडी होती है। कच्चा फल (सफेदी

लिये) हरा और पकनेपर पीला या नारंगी रंग हो जाता है। इसको 'मीठा पटोल' और 'पटोल' भी कहते हैं। सुदीर्घकाल तक यत्नपूर्वक पालित होनेसे आरण्य तिक्त पटोल ही स्वादु पटोल रूपमें परिणत हो जाता है। स्वयंजात (जंगली-कडवा) और लगाया हुवा (मीठा) परवलकी ये दो जातियां होती हैं। औषधके लिये कडवा परवल लेते हैं। इसका काड और पत्र सर, तथा पुष्प श्वेत होता है।

उपयुक्त अंग—फल, पत्र, फुनगी और मूल तथा पंचांग।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें तर। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म—सर, शुद्धरक्तजनक, शीघ्रपाकी और विशेषत त्रिदोषविकारहर है। पत्र ज्वरघ्न है।

उपयोग—परवलको अकेले या मासके साथ पकाकर खाया जाता है। इससे शुद्ध दोष (धातु) उत्पन्न होते हैं। शीघ्रपाकी होनेसे यह रोगियोंके लिए उत्तम पथ्यकर तरकारी है। इसके पत्रादिका स्वरस जीर्णज्वरोंमे पिलाया जाता है। सुतरा पत्रसहित इसकी बेल १ तोला लेकर सूखा धनियाके साथ अधकुटा करके रात्रिमें भिगो देते हैं। प्रात काल मल-छानकर आवश्यकतानुसार शुद्ध मधु मिलाकर आधा सुबह और आधा सायकाल पिलाते हैं। जडको जलमें घिसकर नस्य (सऊत) करना, पान और दशजनित विषोके लिये गुणकारक वर्णन किया जाता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—हरा और सूखा धनियां। प्रतिनिधि—तुरई। मात्रा—बेल और पत्र ६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—कडवा परवल कटुविपाक, उष्णवीर्य, पित्तवर्धक, व्रणके लिए हितकर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रहण तथा कफ, रक्तविकार, कण्डू, कुष्ठ, ज्वर और दाहका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २७, सु० सू० अ० ३८, ४६, ध० नि०)।

नव्यमत—जड़ तीव्र रेचन, फलगर्भ भेदन, प्रतान और वृंत कटुपौष्टिक, ज्वरहर और आनुलोमिक; पत्ते कटुपौष्टिक, दीपन, पाचन और बल्य हैं। अधिकमात्रामें देनेसे वमन और विरेचन होता है। बीज कृमिघ्न हैं। पित्त-प्रधानरोगोंमें परवलको विरेचनके लिए देते हैं। पित्तज्वर, जीर्णज्वर, कामला, शोथ और उदररोगोंमें इससे विरेचन होकर पचन-क्रिया सुधरती है। पित्तज्वरमें परवलकी पत्ती और धनियेका काढा (या हिम) देते हैं। त्वग्रोगोंमें परवल और गुरुचका काढा देते हैं। पत्तियोंका स्वरस लगानेसे इन्द्रलुप्त आराम होता है।

●

(३७८) पलास

फॅमिली लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—वृक्ष (हिं०) पला(रा)स, ढाक, टेसू, छिउल(ला), (फा०) पल, दरख्ते पल, (स०) पलाश, किंशुक, (द०) पलासका झाड; (ब०) पलाशगाछ, (म०) पलस, (गु०) खाखरो (वृक्ष), केसुडा (पुष्प), खाखयडो पल, (ते०) मोदुग, (ता०) मुरुक्कु, (मल०) मुरुक्कप्पूयम, (ले०) बूटेआ मोनोस्पेर्मा **Butea monosperma** (Lamk) Taub (पर्याय—ब्रूटेआ फ्राडोसा *Butea frondosa* Koen ex Roxb), (अ०) बस्टर्ड टीक (Bastard-Teak)। फूल—(हिं०) ढाकके फूल, टेसू, केसू, (फा०) गुले पलास (टेसू), (स०) पलाशपुष्प, (गु०) केसुडा। शिम्बी या फली (हिं०) ढकपन्ना। बीज (हिं०) पलासके बीज, पलास(ढाक)पापडा, पसदामा, (फा०) तुख्मपल (पलास, ढाक); (स०) पलाशबीज, (द०) पलाशपापडा; (म०) पलसाचीबी; (गु०) पलासपापडो, पलाशपापडा, (ले०) बूटेआ सेमिना (Butea Semina); (अं०) बूटिया सीड्स (Butea Seeds)।

गोंद—(हिं०) पलास(ढाक)का गोद, कमरकस, चुनियाँगोद, चुन्नी गोद, ढाककी कनी, (फ़ा०) समग पल. (पलास, ढाक), (सं०) पलासनिर्यास; (बं०) पलाशगुँ, (म०) पलसाचा गोद, (गु०) खाखरनोगोद, (लै०) बूटेआ गुम्मी (Butea Gummi), (अं०) बूटिआ गम (Butea Gum), बगाल काइनो (Bengal Kino)।

वक्तव्य—बम्बईमें फैमिली : लाबिआटीकी साल्विआ प्लीबीआ (Salvia plebeia) नामक क्षुपके बीजको इस नामसे पुकारते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और ब्रह्मा तथा उत्तरपश्चिम हिमालयमें झेलम तक।

वर्णन—यह एक मझोले कदका, पतझडवाला प्रसिद्ध वृक्ष है। पत्र त्रिपर्ण–एक वृतमें तीन पत्रक होते हैं। साधारण वृंत अतिदीर्घ होता है। मध्यस्थ पत्रकका वृंत पार्श्वस्थ उभय पत्रकोके वृतकी अपेक्षया दीर्घतर, मध्यस्थ पत्र क्वचित् किंचित् सगह्वराग्र होता हैं। पत्रक बृहद्, अण्डगोलाकार, पत्रोदर चिक्कण, तथा पृष्ठ रोमाकित होते हैं। वर्षाका पहला पानी पडते ही पलासमे नये पत्ते निकल आते है। वसन्तमें पतझडके बाद इसमें फूल लगते है। फूल केसरिया नारगी रगका वासरहित, परमसुन्दर अशाख पुष्पदण्डपर स्थित, कुण्ड (Calyx) मखमलकी तरह कोमल कृष्णवर्ण सघन रोमोसे व्याप्त, दल शिम्बीधारी उद्भिदके पुष्पदलकी तरह, शिम्बी चपटी सेमकी तरह और पतली, जिसके अग्रभागमें पतले कागजकी तरह आवरणमे आवृत एक ही वृक्काकृति बीज होता है, बोज–चपटा पैसेके बराबर २ ५ से ३ ७५ सें० मी० (१ से १$\frac{1}{2}$ इन्च) लम्वा, २ सें० मी० से २ ५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ से १ इन्च) चौडा, १ ५ मि० मी० से २ मि० मी० ($\frac{1}{16}$ इञ्च से $\frac{1}{12}$ इन्च) मोटा और वजनमे हलका होता है। इसके ऊपरका छिलका बारीक, चमकदार और झुर्रीदार ललाई लिये भूरा होता है। इसकी नाभि बडी और प्रशस्त होती है और मग्ज पिलाई लिए सफेद होता हैं। गन्ध हलकी और स्वाद तिक्त, चरपरा होता है। इसके वृक्षसे एक प्रकारका गोद प्राप्त होता है। सूखनेपर इसके छोटे-छोटे बेडौल चमकदार टुकडे हो जाते हैं जो कालाई लिए लाल (गहरे लाल) होते है। यह अत्यन्त कषाय और गन्धरहित होते है।

उपयुक्त अग—पत्र, छाल, फूल, बीज और गोंद।

रासायनिक सगठन—गोद और छालमें काइनो टैनिक और गैलिक अम्ल और बीजमें पीले रगका एक अनुत्पत् तेल (Moodooga oil या Kino-tree oil) तथा वसाम्ल प्रभृति द्रव्य और फूलमे एक पीतरजक द्रव्य होता है।

छाल और पत्र—

प्रकृति—शीत एव रूक्ष आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, वीर्यपुष्टि(साद्र)कर, उदरकृमिनाशक विशेषकर बाजीकर और मूत्रार्तव-जनन है। ढाकके पत्ते (विशेषत कोपल) और छाल सग्राही होनेके कारण अतिसार, योनिसे नाना भाँतिका स्रव बहना (सैलानुर्रहम), शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यके लिए उपयोग किये जाते है। कोपलको चूर्ण बनाकर खिलाते और छालके काढेसे गुदप्रक्षालन करनेसे योनिसे नाना प्रकारका स्रवस्राव (सैलानुर्रहम) बन्द होता है। योनिसकोचनके लिए भी इसका उपयोग होता है। ढाककी छाल (पोस्त ढाक)के काढेमें साठीके चावलोको भिगो-सुखाकर चीनी (शकर सफेद)के साथ चूर्ण बनाकर या यथाविधि हलवा तैयार करके खिलाना भी उक्त रोगो विशेषकर श्वेतप्रदर (सैलानुर्रहम) और शुक्रप्रमेह एव शुक्रतारल्यके लिए कृतप्रयोग है। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–अर्क-गुलाब और बाबूना। प्रतिनिधि–शफ्तालूके पत्र। मात्रा–कोंपल ३ ग्रामसे ५८ ग्राम (३ माशेसे ५ तोले) तक, छाल ५ ग्रामसे १२ ग्राम (५ माशेसे १ तोला) तक।

बीज (पलासपापडा)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमो के मतसे तीसरे और लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, उदरकृमिनाशक, चतुर्थकज्वरनाशक, लेखन, व्रणकारक और सर्प-वृश्चिकविषघ्न विशेषत कृमिनिःसारक। उदरकृमिनि सारण और नाशनके लिए चूर्ण या क्वाथके रूपमें अकेले या औषधियोंके साथ पिलाते हैं। चतुर्थकज्वर नष्टकरनेके लिए समप्रमाण कंजेकी गिरीके साथ गोलियाँ बनाकर वेगसे पूर्व खिलाते हैं, विशेषकर उस समय जबकि विरेचन द्वारा सौदाका शोधन कर लिया गया हो। लेखन और व्रण-कारक होनेके कारण त्वग्रोगो विशेषकर दद्रुमें इसका लेप करते हैं। व्रण डालकर यह सम्पूर्ण दूषित माद्दको बहा देता हैं। लेखन होनेसे फूलीके दूर करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। लिंगेन्द्रियके दोष दूर करनेवाले तिलाओंमें भी इसे डालते हैं और केवल इसीका तेल (रोगन पलासपापडा) पतालयन्त्रके द्वारा निकालकर उपस्थेन्द्रिय-पर तिला (लेप) करते हैं। सर्प और वृश्चिकदंशमें पान और लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। मृगीमे इसका नस्य भी करते हैं। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–गुलाबपुष्पार्क। प्रतिनिधि–राई। मात्रा–० २५ ग्रामसे १ ग्राम (२ रत्तीसे १ माशा) तक।

चुनिया गोद (पलाशनिर्यास)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके अनुसार गरम और खुश्क, परन्तु लखनऊके हकीमोके मतानुसार पहले दर्जेमें शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शुक्रस्तम्भ, वीर्यपुष्टि(सांद्र)कर, उपशोषण और आमाशयसंग्राहक। वीर्यस्तम्भन और वीर्यपुष्टिकर होनेके कारण वाजीकर और शुक्रप्रमेह एव शुक्रतारल्यनिवारक माजूनों और चूर्णोमे यह पुष्कल उपयोग किया जाता है। सग्राही और व्रणलेखन होनेके कारण श्वेतप्रदर एव योनिसकोचनके लिए भी पान और फलवर्तिकी भाँति बहुत प्रयुक्त होता है। इसको अकेले मिश्रीके साथ चूर्ण बनाकर उक्त रोगोमे दूधके साथ भी उपयोग करते हैं। कटिको शक्ति देनेके लिए स्त्री-पुरुषोको सेवन कराया जाता हैं। इसी हेतु इसको कमरकस कहते हैं। दीपन (आमाशयबलदायक) और आमाशयसग्राहक होनेसे गुदभ्रंश और सग्रहणीमे प्रयुक्त होता है। अहितकर–निम्न अगोको। निवारण–कतीरा, अर्कगुलाब और चन्दन। प्रतिनिधि–बबूलका गोद। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

फूल (गुलटेसू)—

प्रकृति—उष्णता लिए शीत एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, दोषविलोमकर्ता, उदर सग्राहक और मूत्रार्तवजनन। शोथहर, दोषविलोमकर्ता और मूत्रल होनेसे बस्तिशूल, बस्तिशोथ, जरायुशोथ, मूत्रकृच्छ, रुद्धमूत्र, रुद्धार्तव और वृषणशोथमे गुलटेसूके काढेमे परिषेक (नतूल) करते हैं और सोठांको ऊपरसे बाँध देते हैं। सूजाक और अतिसारमें इसका फाण्ट या चूर्ण सेवन कराया जाता है। अहितकर–शीतप्रकृतिके लिये। निवारण–नमक। मात्रा—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—पलाश कषाय, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, क्षारद्रव्योमें श्रेष्ठ, कृमिघ्न, सग्राही, दीपन, वृष्य, तथा प्लीहाकी वृद्धि, गुल्म, ग्रहणीरोग, अर्श, व्रण और शोष (राजयक्ष्मा)का नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३८, ४६, ध० नि०, भा० प्र०)। पलाशका फूल मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, मधुरविपाक, गतिवीर्य, ग्राही, भग्न-सधानकर, वातल तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह, वातरक्त और कुष्ठका नाश करनेवाला है। (ध० नि०, भा० प्र०)। पलाशके फल (बीज) लघु, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रूक्ष तथा प्रमेह, कृमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाले है। (ध० नि०, भा० प्र०)। पलाशके बीजोका तेल कफपित्तप्रशमन है (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—बीज कृमिघ्न, भेदन और कुष्ठघ्न है। फूल वेदनास्थापन और मूत्रजनन है। गोंद ग्राही है। इसकी क्रिया विशेषत: आमाशयपर होती है। खानेके बाद गलेमें खट्टा पानी आता हो तो उसपर यह गोद उत्तम औषध है। जीर्ण अतिसार और आँवमें इसे देते हैं। फूलों के फाटमे कलमीशोरा मिलाकर देनेसे और फूलोको पानीके साथ गरम करके पेडू और कमरपर बाँधनेसे मूत्रावरोध दूर होता है। बीज कृमियोके लिए उत्तम औषध है।

●

(३७९) पाठा

फॅमिली : मेनीस्पेमर्सि (Family · Menispermaceae)

नाम—(हिं०) पाढ, पाढी (देहरादून, मीरजापुर), मिर्चियाकद, कालीपहाड, (स०) पाठा, अम्बष्ठा, (ब०) आकनादि, (प०) पाड, (मार०) पाठ, (गु०) कालीपाठ, करडियु, (म०) पहाडवेल, वेलपाडली, पाडावल, (ते०) पाडा, (का०) पाडावलि, (मल०) पाडक्किलगु, (अ०) वेल्वेट लीफ (Velvet leaf); (लॅ०) (१) छोटीपाठा अर्थात् पाढ़ी—सीस्साम्पेलॉस पारेईरा **Cissampelos pareira** Linn (संस्कृतमें इसे 'लघुपाठा' कहते है)। और (२) बडीपाठा अर्थात् पाढा–स्टेफानिआ हर्नान्डीफोलिआ **Stephania hernandifolia** Walp (इसे सस्कृतमें 'राजपाठा' कहते है)।

उत्पत्तिस्थान—छोटीपाठा भारतवर्षके सभी प्रदेशोमे (नीचेके पहाडी जगलो तथा मैदानके उष्ण जगलो मे) और बडीपाठा पूर्वी और पश्चिमीघाट, देहरादून, बिहार, कछार, पूर्वीबगाल, सिक्किम और आसाममे होती है।

वर्णन—छोटीपाठाकी पतली आरोहिणी या प्रतानिनी लता होती है जिसमे बहुवर्षीय मूलस्तम्भ और पतली, लम्बी, छोटे वृक्षो और झाडियोपर फैली हुई तथा मृदुश्वेताभ रोमोसे आवृत शाखाएँ होती है। पत्तियाँ ३ ७५ सें० मी० से १० से० मी० (१½ से–४ इञ्च) लम्बी, पत्रनालसे ढालकी भाँति पीठकी ओर जुडी हुई (Peltate), लट्वाकार या कभी-कभी वृत्ताकार–वृक्काकार या हृद्वत्, लोमश ऊर्ध्वपृष्ठपर गहरे हरे रगकी और थोडी रोमश तथा अध पृष्ठपर अधिक रोमश होनेसे फीके रगकी होती है। इसमे नर और मादा पुष्प अलग-अलग होते हैं अर्थात् पुष्प एकलिंग छोटे और श्वेताभ या पीताभ, फल मटरके बराबर लाल या नारगी वर्णके और पीलू जैसे होते है। बडीपाठाकी देखनेमे पाठातुल्य लता होती है। परतु दोनोकी पुष्पमजरियोमे स्पष्ट अतर होता है। पाठामें बाह्य कोशके दल ४ (पु० पुष्प) और २ (स्त्रीपुष्प) और इसके बाह्य कोशके दल ६–१० और आभ्यन्तर दल ३-५ (पुं० पुष्प) अथवा (स्त्री-पुष्प) दोनो चक्रोमे होते है। पाठाकी अपेक्षया इसमें पत्ती प्राय बडी (१॥ इच–५॥ इच), चिकनी और शिराजालिका कमसघन होती है। मूल कन्दवत्, गाजरके सदृश बाहरसे खाकी और भीतरसे सफेद, ऊपरसे स्थान-स्थानपर सिकुडा हुआ, दानेदार उभारयुक्त, उपमूलरहित, स्वाद अत्यन्त तिक्त होता इन लक्षणोसे है। इसे वास्तविक पाठासे अलग कर सकते है।

उपयुक्त अग—मूल और पत्र। मात्रा–मूलका चूर्ण १ २५ ग्राम से ३ ७५ ग्राम (१०-३० रत्ती)।

रासायनिक सगठन—छोटी पाठाकी जडमे सिसैम्पेलीन (Cissampeline) नामक तथा अन्य ऐल्केलॉइड। इनके अतिरिक्त पौधेके रसमे साबुनी सत्व (सेपोनिन), बडी पाठामें भी साबुन सत्व (सेपोनिन) होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेके आदिमे गरम एव खुश्क, आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य।

आयुर्वेदीय मत—पाठा रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, ग्राही, सन्धानीय, स्तन्यशोधन, त्रिदोषशमन, बल्य तथा ज्वर, अतिसार, विष, कुष्ठ, कण्डू, वमन, शूल (पेटका दर्द) और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, २७, सु० सू० अ० ३८; ध० नि०)।

नव्यमत—पाठा लघु, तिक्त, बल्य, ग्राही, मूत्रजनन और शोथहर है। इसे अल्पप्रमाणमे देनेसे भूख लगती है, अन्न पचता है और अन्त्रकी श्लेष्मलत्वचा (कला)को शक्ति प्राप्त होती है। बडे प्रमाणमें देनेसे दस्त साफ होता है। मूत्रेन्द्रियकी श्लैष्मिककलापर इसकी सग्राहक, शामक और बलकारक क्रिया होती है। पाठा मूत्रेन्द्रियसे बाहर निकलती है। इसलिए मूत्रेन्द्रियको उत्तेजित करके मूत्रका प्रमाण बढाती है। नूतन और जीर्णवस्तिशोथ, वस्तिका अभिष्यन्द, मूत्रकृच्छ्र रक्तमूत्र और सान्द्रमेहमें पाठा बडे प्रमाणमें दी जाती है। इन विकारोमे पाठाके साथ गुरुच और मुलेठी भी देते हैं। कुपचन, पेटका दर्द, अतिसार, ज्वरातिसार तथा रक्तप्रवाहिकामे अल्पप्रमाणमें पाठा देते है। आंतोकी बीमारीमें पाठाके साथ सुगन्धि द्रव्य देते है। यह नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक, विरेचन, दीपन और सर्पविषघ्न है तथा शोथ एव अजीर्णमें इसका प्रयोग करते हैं। दाहमे पत्रका बाह्य प्रयोग होता है।

●

(३८०) पान (तंबूल)

फैमिली : पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—(हि०,ब०;द०) पान; (अ०) तबूल, ताबूल, (फा०) तंबूल, बर्गेतंबूल, (स०) ताम्बूलवल्ली, नागवल्ली, (गु०) नागरवेल (नापान), पान; (म०) नागवेल नागरवेल, पानवेल्य, (मा०) नागरवेल, (ले०) पीपेर बेटेल (Piper betel L.), (अ०) बीटिल या पेपर लीफ (Betel or pepper leaf)।

वक्तव्य—'तबूल' और 'ताबूल' क्रमश इसके फारसी-अरबी नाम वस्तुत इसके सस्कृत नाम ही हैं। उत्तरभारतकी सभी भाषाओंमें इसके पत्तेको 'पान' कहते है।

इतिहास—भारतवर्षमें पानका व्यवहार अतिप्राचीन है। यही नही अब यह यहाँके आतिथ्यका प्रधान द्रव्य है। प्राचीन यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'मेलेडाथ्रोन' नामसे पानका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवत यह जावाका मूलनिवासी है। भारतवर्षके उत्तरप्रदेश, बगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास आदिमें तथा लका और मलायामें पत्तेके लिए बडे पैमानेपर इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु लताके प्रसिद्ध पत्ते है, जो खानेके लिए भी व्यवहृत होते हैं तथा औषधके काम भी आते हैं। पत्ते चौडे, गोल, अण्डाकार, नुकीले (हृद्वत्) होते हैं, और पत्रोदर चमकदार होता है। स्वाद उष्ण, सुगन्धित और तिक्त होता है। भारतवर्षमें बारह-तेरह प्रकारका पान (माघी, महोबा, बनारसी, कलकतिया, कपूरी मालवी आदि) होता है। कुलंजन इसकी जड़ नहीं है।

रासायनिक सगठन—इसके पत्तेमे एक हल्का पीलेरगका सुगन्धित तीक्ष्ण दाहकस्वादयुक्त (उष्ण) उत्पत्तैल (Betel oil) ४२ प्रतिशत तक होता है। कोमल पत्तोमें यह विशेषरूपसे पाया जाता है। उक्त तेलमे फीनोल तथा टर्पीन होता है। पानभेदसे उत्पत् तैलकी मात्रामें भी न्यूनाधिकता होती है।

कल्प तथा योग—अर्क तबूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०)। देशावरी मोतदिल है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयोल्लासकारक, उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, प्रमाथी, कफोत्सारि, वातानुलोमन, यकृदामाशयबलदायक, लालाजनन, दंतमूलको दृढ करनेवाला और मुखदौर्गन्ध्यहर है। लालाप्रवर्तक होनेसे पान मुखकी रूक्षताको दूर करता और किसी कदर प्यास बुझाता है। इसके अन्दर एक प्रकारकी सुगन्धि पायी जाती है। इसलिए इसके खानेसे विशेषत जबकि इसे कत्था, चूना, सुपारी, इलायची, सौंफ आदिके साथ खाया जाय तब मुख एव श्वासोच्छ्वासकी दुर्गंधको दूर करता, मसूढोको दृढ करता, दन्तवेष्ट (कुरूहलिस्सा), दन्तवेष्टप्रकोप (वरमलिस्सा) और मदाग्निमे लाभ पहुँचाता है। वृक्कशोथ और मधुमेहमे पिपासा शान्त करनेके लिए भी इस प्रकार पानका खाना लाभदायक है। उष्णताजनन होनेसे जठराग्निको दीप्त करता है। इसी हेतु तथा श्लेष्मनि सारक होनेके कारण कास और कृच्छ्रश्वासमे गुणकारक है। यह शीतजन्य स्वरघ्न (बुहूहतुस्सौत) रोगको दूर कर देता है, विशेषत जबकि मुलेठीका चूर्ण डालकर खाया जाता है। पानको तेलसे चुपडकर गरमकरके फोडे-फुसियोपर बांधनेसे उनको बैठाता है। इसी प्रकार वक्षपर बाँधनेसे बालकासमें लाभ करता है। शीतल शिर शूल, यकृच्छोथ, वृषणशोथ, कठशूल (दर्देगुलो) और शोथयुक्त ग्रन्थियोपर बाँधनेसे उनको लाभ पहुँचाता है। शिश्नपर तिला लगाने के उपरात सामान्यत. पान बाँधे जाते है। अहितकर—उष्णप्रकृतिवालोके लिए विशेषत निहारमुँह। **निवारण**—सफेद इलायची। **प्रतिनिधि**—लौग।

आयुर्वेदीय मत—पान कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, सुगंधित, विशद, स्वरको सुधारनेवाला, दीपन, रुचिकर, दाहकर, पित्तप्रकोपक तथा वात, कफ, मुँहके कण्डू-क्लेद, मल और दुर्गन्ध, पीनस और खाँसीका नाश करनेवाला है (सु०सू०अ० ४६,रा०नि०)। यह कामाग्निसदीपक और कृमिनाशक है। (यो०र०)।

नव्यमत—पान उत्तम दीपन, पाचन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। पानका रस उत्तम पूतिहर है। कारबोलिक एसिडसे भी यह अधिक जन्तुघ्न और कफप्रधान रोगोमें बहुत उपयुक्त होता है। दमा, फुफ्फुसनलिकाशोथ और श्वासमार्गद्वारशोथमे पानका रस देते है। कण्ठरोहिणी (डिफ्थीरिया)मे पानका रस गरम पानीमें डालकर कुल्ला करनेसे जन्तुओका नाश होता है। गलेकी सूजन कम होती है और कफ छुटता है। भोजनोपरात पान खानेसे लालाका प्रमाण बढकर आमाशयको उत्तेजना मिलती है। पान गरम करके सूजी हुई ग्रन्थिपर बाँधनेसे सूजन और पीडा कम होती है। स्तनशोथपर पान गरम करके बाँधनेसे दूध नष्ट होता है और शोथ उतरता है। मात्रा—स्वरस ½ से १ तोला तक।

●

(३८१) पानडी

नाम—(हि०) प(पा)नडी, जमी, पर्पटो।

उत्पत्तिस्थान—जैसलमीर, बीकानेर और जोधपुरके इलाकेमे इसके पौधे सामान्यरूपसे पाये जाते है।

वर्णन—इसका क्षुप आदमीके कदसे कुछ छोटा होता है। पत्ते चौडे दाउदीके पत्रके समान होते हैं। इसमें श्वेतहरिताभ पुष्पगुच्छ लगते है। फल नही आते, पत्र एव पुष्प अत्यन्त सुगन्धित होते है। अस्तु, सुगन्धिहेतु ही इनका प्रयोग किया जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक एव मन प्रसादकर है। इसका काढा बनाकर पिलाते है। यह जवारिश तथा माजूनके योगोमे पडती है। इसका इत्र तथा अर्क भी खीचते है। जोधपुरके पाली प्रदेशमें सुगंधिके लिए इसे नस्ययोगोमें योजित करते है। इसे कपडेमे भी इसी हेतु रखते है। मात्रा—७ ग्राम या ७ माशा (ख०अ०)।

●

(३८२) पालक

फ़ैमिली : केनोपोडियासे (Family Chenopodiaceae)

नाम—(हि०) पालक(की), (अ०) इस्फानाख (इ० बै०), इस्फनाख, (फा०) इस्पानाख (क-ज), इस्पानख (ज), (म०) पालख, पालन्न (ज्ञच), (बं०) पालङ्, (गु०) पालक (ख), (लै०) स्पीनासिआ ओलेरासेआ (**Spinacia oleracea** Linn.), (अं०) स्पिनैक (Spinach)। बीज (हि०) पालकके बीज, (अ०) बज्र ुल् इस्फानाख, (फा०) तुख्मे पालक, तुख्मे इस्पानाख़।

उत्पत्तिस्थान—फारस। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध साग है। काड, सरल, गोल, कोनदार, खोखला, लगभग २ फुट ऊँचा, पत्र बृहत्, स्थूल, मासल, गहरा हरा, साधारण, त्रिकोणाकृति, दीर्घवृतयुक्त; पुष्प अतिक्षुद्र, अवृत, पत्रकोणस्थित (Axillary) और गुमकोमें और नरजातीय क्षुपके फूल काडके छोरपर हरे रंगके होते है। फल–किसी किसी भेदमे कटकित और किसीमें मसृण होते हैं। बीज—तिकोने, पिलाई लिये हरे और स्वादमें फीके होते है।

उपयुक्त अग—क्षुप वा पत्र और बीज। औषधके लिये सुर्खीमायल बीज प्रशस्ततर होते है।

रासायनिक सगठन—इसके क्षुपमें लवाव, मासल पदार्थ, क्षारनत्रेत्, वसा, शर्करा, ततु और भस्म होता है। बीजोमें एक प्रकारका गाढा तेल (Chenopodium oil) निकलता है। इसके अतिरिक्त इसमे **फोलिक एसिड** (Folic acid) पाया जाता है, जिसकी आवश्यकता लाल कणो की उत्पत्तिके लिये होती है। इसकी कमीसे पाण्डु-रोग या अल्परक्तता (Anaemia)की बीमारी होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सताप एव दाहप्रशमन तथा मूत्रजनन है और उष्ण ज्वर एव कठशूलमें विशेष गुणदायक है। पालकका साग शीघ्रपाकी और प्रकृतिमार्दवकर (खर) है तथा उष्णज्वरो, राजयक्ष्मा, उर क्षत, मलावरोध, कामला और सदाहमूत्रमें गुणदायक वस्तु है। कठशूलमें इसके पत्रस्वरसमे गण्डूष करना और चीनी मिलाकर पीना लाभप्रद है। अहितकर—शिर शूलजनक। निवारण—बादामका तेल, घी और दालचीनी। प्रतिनिधि—कुलफा और बथुआका साग। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सतापहर और मूत्रल है तथा उष्णज्वर एव हृच्छूलमे विशेष गुणदायक है। रक्तज और पित्तज ज्वरो, राजयक्ष्मा और मूत्रदाहको दूर करनेके लिये अकेला या उपयुक्त भेषजोके साथ इसे पीस-छानकर पिलाते है। अहितकर—प्लीहाके लिये। निवारण - गिल्मिख्तूम। प्रतिनिधि—कुलफाके बीज। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पालक चौलाईके अनुसार वातकारक (वादी), किंचित् चरपरा, मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, मलमूत्रावरोध तथा कफपित्तमें हितकर, कफकारक, भेदक, भारी, विष्टम्भजनक (मलरोधक), पथ्य, तृप्तिकारक तथा मद, श्वास, रक्तपित्त और विषका नाश करता है। (सु० सू० अ० ४६, रा० नि०, आ० प्र०)।

(३८३) पालकजूही

फ़ैमिली : आकान्थासे (Family : Acanthaceae)

नाम—(हिं०) पालकजूही, पालिक जुहिया, जूईपानी, (फा०) गुलबगला, (सं०) यूथिकापर्णी (नवीन), (बं०) जोईपाणी; (द०) कबूतरका झाड, (म०) गजकर्णी, (बम्ब०) जुइपान; (गु०) गजकरण, (लै०) र्‌हीनाकांथुस नासूटा **Rhincanthus nasuta** (L) Kurz. (पर्याय—*R communis Nees*)।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसका संस्कृत नाम 'यूथिकापर्णी' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—डेक्कन प्रायद्वीप, लका और पश्चिमी घाटोमें यह जंगली होती है। समस्त भारतवर्ष विशेषकर पश्चिम और दक्षिण भारतवर्षके बहुश भागो (बगीचो) और लकामे इसे लगाते हैं।

वर्णन—यह एक झाड़ी है जो लगभग ५ फुट ऊँची होती है। जड़ कठिन, विपुल उपमूलयुक्त; कांड पुष्कल, सरल, सशाख, पुराने कडे भाग गोल और सुंदर मसृण राखके रंगकी छालयुक्त, कोमल शाखायें और नये कल्ले जोडयुक्त, मसृण और अप्रशस्त षट्कोण; पत्र आमने-सामने, सवृत, चौडे-भालाकृति, कुण्ठिताग्र, पत्रोदर मसृण और पत्रपृष्ठ लोमयुक्त, पत्रप्रात खण्ड २ से ४ इंच लबा और १ से २ इच चौडा होता है। इसमें सफेद फूलोंकी तुरी लगती है। चावने पर पत्रका खाद चरपरा और मसलनेपर इसमेंसे अप्रिय (बुरी) गंध आती है।

उपयुक्त अंग—पत्र विशेषत जड।

रासायनिक सगठन—मूल और छालमे र्‌हीनाकैन्थिन (Rhinacanthin) नामक एक लाल रगका रालदार पदार्थ होता है। यह इसका कार्यकर वीर्य (गुणोत्पादक सत्व) है और क्राइसोफैनिक एसिड तथा फ्रैग्युलिक एसिडसे इसका बहुत साम्य है।

कल्प तथा योग—जिमाद दाद।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, व्रणकारक और कुष्ठघ्न एव दद्रुघ्न। पालकजूहीकी जडकी छाल दादके लिए परम गुणदायक भेपज है। दादको कपडेसे रगडकर इसे अकेला या उपयुक्त भेषजके साथ पानी या नीबूके रसमे पीसकर लेप करते हैं। इसके हरे पत्तोका रस निचोडकर झाईं और छीपपर लगाते हैं।

नव्यमत—मूल, पत्र, बीज दाद और अन्य चर्मरोगोके लिए उपयोगी औपध है। दूधमें पकाया हुआ मूल वाजीकरणके लिये प्रयुक्त होता है। यह सर्पविषका अगद है।

●

पिपरमिंट

फ़ैमिली लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) पिपरमिंट, (अ०) अन्नअ्नाउल् फिल्फिली, (फा०) पूदन फिल्फिली, (लै०) मेन्था पीपेरीटा (**Mentha piperita** Linn), (अं०) पेपरमिंट (Peppermint), बामिंट (Balm mint)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और उत्तरी अमरीकाके विस्तृत भूभाग पर यह होता है। चीनमें भी इसकी पैदाइश बहुतायतसे होती है। भारतीय बगीचोमें इसकी खेती की जाती है। अब भारतवर्षमें मेन्थोलके लिये कतिपय संस्थाओ द्वारा व्यावसायिक रूपसे पिपरमिंटकी खेती करनेका प्रयास भी किया जा रहा है।

वर्णन—इसके कोमल काण्डीय क्षुप होते है। काण्ड सामान्यतया बैंगनी लिये चतुष्कोणाकार (चौकोर), पत्र सवृत, ५ से ७.५ सें० मी० (२-३ इच) लवा और लगभग २ सें० मी० से ३ ७५ सें० मी० (¾ इच से १½ इच) चौडा, दतुर, सूक्ष्म किन्तु अप्रत्यक्षतया लोमश। सम्पूर्ण पौधे (विशेषत पत्तो)में एक विशिष्ट स्वाद एव गध पाया जाता है। पुदीना नहरी (Mentha aquatica), पुदीना विशेष (Corn Mint)-इसमें पत्रकुण्डल काण्डके चतुर्दिक् होते है और प्रत्येक कुण्डलके नीचे युग्मपत्र होते है। मेन्था आर्वेन्सिस (Mentha arvensis)—यह पश्चिमी हिमालय, कश्मीर, (५,०००–१०,००० फुट), पजाब, कुमाऊँ और गढवालमे होता है। मेंथोल (पुदीनेका सत-सत्व या फूल) तथा इसका तेल (ऑयल पीपरमिंट) मेन्थाके पीपरीटा जाति तथा प्रधानतया इसीके पीपेरासेउस (Piperaseus) भेदसे जापान और चीनमे निकाला जाता है और वहाँसे भारतवर्षमे आता है।

उपयुक्त अग—क्षुप, पुष्पित और ताजी वनस्पतियोसे आसवन विधि (Distillation) द्वारा प्राप्त तेल (ऑयल पेपरमिंट) तथा तेलसे प्राप्त पुदीनेका सत या फूल (मेन्थोल)।

रासायनिक सगठन—इसमे उत्पत् तेल (Essential oil) ० ५% से १ ५% होता है, जिसमें २६ २ से ५६°/० स्वतत्र मेन्थोल (सतपुदीना) और ४ प्रतिशत अथवा ४ ४°/० से ९ ९°/० ईस्टर्स (Esters) होते है। इसकी खेतीमें फसल काटनेमे १०-१५ दिन आगे-पीछे होनेपर या शुष्कीकरणकी अनवधानतासे मेन्थोलकी प्रतिशत मात्रामे कमी (३० प्रतिशत तक) हो जाती है।

कल्प एव योग—क्षुपका चूर्ण (मात्रा–२ से ४ ग्राम या १५ से ३० रत्ती), पिपरमिंटका तेल (Ol Menth. Pip), अर्कपुदीना (Aq Menth Pip), मेन्थोल या सतपुदीना, पेपरमिंट कैम्फर आदि योग पुदीनेसे ही तैयार किये जाते है। अमृतधारा जैसे योगोमें भी मेन्थोल एक उपादान होता है।

प्रकृति—गरम व खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य प्रयोगसे पुदीनेका सत उत्तम कोथप्रशमन, स्वापजनन (सुन्नता लानेवाला) और त्वग्दोषहर है। खिलानेसे इसकी क्रिया बहुत कुछ कपूर जैसी होती है। यह उत्तेजक, दीपन एव वातानुलोमन है। उत्क्लेश, आध्मान, रुग्णता और छर्दिनिवाणार्थ एव शिशुओके लिए हृद्यरूपमे इसका उपयोग होता है। दीपन एव वातानुलोमन होनेसे इसको कुपचन, अजीर्ण और उदरशूलमे देते है। इससे उलटी (विशेषत सगर्भावस्थामें होनेवाली) बन्द होती है। दन्तशूलमें रूईको १-२ बूँद पेपरमिटके तेलमें भिगोकर दांतके नीचे दाबनेसे पीडा शान्त होती है। एक भाग मेन्थोल और दो भाग कपूरको एकत्र मिलानेसे वह द्रव बन जाता है। किसी भी प्रकारकी वातजन्य पीडाको शमन करनेके लिए इसकी मालिश करते है। अजीर्णजन्य वमन, अतिसार, विसूचिका और उदरशूलमें इसको २-५ बूँद शक्करमें मिलाकर देते है।

•

(३८४) पियारांगा

फैमिली : रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) (पिप) यारांगा, पीलीजडी, शूप्रक, पीतरांगा, (स०) पीतरग ? (बम्ब०) पीआरंग; (लै०) थालीक्ट्रुम् फोलिओलोसुम् (**Thalictrum foliolosum** DC)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयमें सर्वत्र ५ से ७ हजार फुटकी ऊँचाईपर होता है। खसिया पर्वतमालापर पियारांगाके पौधे प्रचुरतासे मिलते है। सग्रहकर्त्ता इसे सिलहट और इस्लामाबादमें लाते हैं। जहांसे यह अन्य स्थानोको भेजा जाता है।

वर्णन—पियारांगाके मूल ललाई लिए पीले रगके, १ अगुली तक मोटे, १५ सें० मी० से २० सें० मी० (६ से ८ इञ्च तक) लम्बे और स्वादमे बहुत तिक्त होते है। कही-कही इसको 'ममीरा' भी कहते तथा उसमें इसका मिलावट करते हैं।

उपयुक्त अग—मूल।

रासायनिक सगठन—इसके मूलमें भी बर्बेरीन (Berberine) नामक ऐल्केलॉइड पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन, दीपन, श्लेष्मनि सारक विसूचिकाहर और सर्पविषनाशक है। यह प्राय रोगोमे प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु यह हैजेमें परम गुणदायक है। इस रोगमें इसको अर्क गुलाबमें घिसकर पिलाते है। शीतल शोथोको बैठानेके लिए और कई प्रकारके दर्दोंको शमन करनेके लिए इसका लेप करते है। कास, श्वास और फुफ्फुसशोथमे उपयुक्त भेषजोके साथ इसका प्रयोग करते हैं। सर्प-दष्टको घिसकर पिलाते और दशस्थानपर लगाते है। यह विषनाशक है। नेत्राभिष्यदमें भी इसका प्रयोग करते है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–कालीमिर्च। प्रतिनिधि–पपीता और दरियाई नारियल। मात्रा–० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

नव्यमत—पियारांगाके खानेसे पेटमें गरमी प्रतीत होती तथा जठररस उत्पन्न होता है और अन्न पचता है। इसमें उत्तम कटुपौष्टिक गुण होनेके साथ यह सारक भी है। इसमे थोडा विषमज्वरको रोकनेका गुण भी है। जीर्ण-ज्वरमें भी यह उपयोगी है। गभीर रोगके पीछे जो शरीरमें दुर्बलता आती है उसमें और आमाशयकी शिथिलतासे जो कुञ्चन होता है, उसमें विशेष उपयोगी है। इससे रोगीको भूख लगती है और प्रकृति अच्छी है ऐसा प्रतीत होता है। नेत्ररोगोमे भभीरीके समान इसका उपयोग किया जाता है। सक्षेपमे पियारांगा रसमें तिक्त, वीर्यमें उष्ण एव रूक्ष, कटुपौष्टिक, दीपन, पाचन, शोथहर, ज्वरघ्न, चक्षुष्य, मृदुरेचक, श्लेष्मनि सारक और श्वासहर है। मात्रा–० २५ ग्रा० से ० ६२५ ग्रा० (२ से ५ रत्ती) तक।

●

(३८५) पिस्ता

फैमिली आनाकार्डिआसे (Family Anacardiaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) पिस्तेका वृक्ष, (फा०) दरख्ते पिस्त, (स०) मुकूल विटप, (ले०) पीस्टासिआ वेरा **Pistacia vera** Linn), (अ०) पिस्टेसिओ-नट ट्री (Pistachio nut tree)। फल–(हि०, ब०; प०, गु०) पिस्ता, (अ०) फुस्तुक, मुकश्शर, (फा०) पिस्त, (सं०) निकोचक (सु०), मुकूल (क), (म०) पिस्ते, (गु०) पिस्ता, (अ०) पिस्टेसिओ नट (Pistachio-nut)। फलका छिलका–(फा०) पोस्ते पिस्त, (अ०) पिस्टेसिओ हस्क (Pistachio husk)। पिस्तेका फूल—(फा०) बुजगज, बुजगद, गुलेपिस्त, (ब०) गेटेला, (अ०) पिस्टेसिओ गॉल्स (Pistachio Galls)। निर्यास–(अ०) इल्कुल् अबात (इ० बैं०), (अ०) रेजिन ऑफ पिस्टेसिओ ट्री (Resin of Pistachio-tree)।

वक्तव्य—'फुस्तुक' फारसी पिस्त से अरवी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—सीरिया, फारस और अफगानिस्तानमे इसके वृक्ष लगाये जाते है। फारस और अफगानिस्तानसे यह भारतवर्षमें आता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल (मेवा) है जो लगभग जैतूनके आकारका होता है। इसके ऊपर नम सुर्खीमायल कसैला और तारपीनगन्धी एक छिलका और भीतर एक सफेद कठोर गुठली होती है। तोडनेपर इसके दोनो कपाट पृथक् हो जाते हैं और भीतरमे एक नुकीला मग्ज (Almond) निकलता है, जिसका छिलका पतला और बैंगनी लिये लाल होता है। इसके भीतर हरिताभस्नेहयुक्त दो दल होते हैं, जो आपाततः देखनेमें नीम के बीजकी गिरीकी भाँति प्रतीत होते हैं। किन्तु स्वादमें यह तैलीय और स्वादिष्ट होते हैं। इनको जलमें रगडने पर इमल्शनके रगका घोल प्राप्त होता है। 'मग्ज पिस्ता' और इसका बाहरी छिलका (पोस्ते पिस्त या पोस्त बेरूँ पिस्ता) जो मग्ज निकालनेके बाद बच रहता है औषधमें प्रयुक्त होता है। पिस्तेके वृक्षोके पत्तोंपर विभिन्न आकार-प्रकारके बनाये हुये कीडेके घर (कीटकोश) या कीटगृह (Galls)को पिस्तेका फूल (गुलेपिस्ता) कहते हैं। यह एक ओरसे गुलाबी और दूसरे ओर पिलाई लिए सफेद, कोई अजीरके आकारके, कोई गोल और कोई अडाकृति होते है। स्वाद खट्टा और अत्यन्त कसैला तथा सुगन्धित होता है। यह भी औषधमें प्रयुक्त होता है।

रासायनिक सगठन—बीजके मग्जमें एक मीठा सुगन्धित तेल और पिस्तेके फूलमें टैनिक एसिड तथा टैनिन (४० प्रतिशत) तथा राल (७ प्रतिशत) या तैलीय राल (ओलियो-रेजिन) (इल्कुल् अबात) जिसपर इसकी गन्ध निर्भर करती है, होता है।

मग्ज (पिस्ता)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतमे दूसरे दर्जेमें (लखनऊके हकीमोके मतमे पहले दर्जेमें) गरम और तर। आयुर्वेदके मतमे भी उष्णवीर्य एव स्निग्ध अर्थात् उष्ण एव तर (च०, सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृद्य, मेध्य, बृहण, वाजीकर और श्लेष्मनिस्सारक। पिस्तेकी गिरी (मग्ज पिस्ता)का चिकित्सोपयोग हृदय एव मस्तिष्कके बलवर्धक एव मेध्य क्रियाके लिए किया जाता है। यह मस्तिष्ककी रूक्षताको दूर करता है। इसे वाजीकर माजूनोमें डालकर क्लीवताके रोगियोको खिलाते हैं। वृक्क एव शरीरके दौर्बल्यको दूर करनेके लिए भी यह गुणकारी है तथा कासमें श्लेष्मोत्सर्ग (एख़राजज़ बलगम)मे सहूलियत करता है। पिस्ताके फूल मोतदिल, दूसरे दर्जेमें ग्राहक है और श्वेतप्रदर तथा कासमें गुणदायक है। हब्बगुलेपिस्ता इसका प्रसिद्ध योग है। अहितकर—अधोगात्रगत व्याधियोके लिए। निवारण—खूबानी, सिकजबीन और आलूबोखारा। प्रतिनिधि—मीठे बादामका मग्ज। मात्रा—६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशेसे १ तोला तक)।

छिलका (पोस्ता बेरूँ पिस्ता)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, दीपन, हृदयबलदायक, उत्क्लेश (गसियान) और छर्दिनाशक, विशेष-कर अतिसार और उत्क्लेशहर। यह अतिसार बन्द करने, हृदय और अन्नामाशयको बल देनेके लिए प्रयुक्त होता है। अकेले या उपयुक्त भेषजोके साथ बारीक पीसकर छिडकनेसे मुखपाक आराम होता है। उत्क्लेश और वमन नाश करनेके लिए इसका फाट बनाकर पिलाते हैं या किसी शर्बतमें मिलाकर चटाते हैं। इससे हिचकी भी बन्द होती है। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पिस्ता (मुकूल) मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बल्य बृहण, वृष्य, वातहर और कफ तथा पित्तको बढानेवाला है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४८)।

नव्यमत—पिस्तेके फूलका चूर्ण पानीमें ८५ प्रतिशत और मद्यमे ७५ प्रतिशत विलीन होता है। धर्म—सग्राहक। गलेकी शिथिलतामें और घाटी (कौआ) लटकने या बढ़नेपर इसकी गोलियाँ बनाकर (मुँहमें रखते हैं)। पुराने अतिसारमें इसका चूर्ण खिलाते है।

(३८६) पीपर

फैमिली : ऊर्टिकासे (Family · Urticaceae)

नाम—(हिं०) पीपर, (अ०) शज्रतुल्मुर्तअश; (फा०) दरख्तेलरजाँ; (स०) अश्वत्थ, पिप्पल, (बं०) आशुद गाछ; (गु०) पीपलो; (म०) पिंपल, (नेपाल) पिप्ली; (ले०), फीकुस रेलीजिओसा (**Ficus religiosa** Linn), (अं०) दी पीपल ट्री (The Peepul Tree) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष । यह बगाल, मध्यभारत और हिमालयके निचले प्रदेशोमें जगली होता या लगाया जाता है ।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध क्षीरी विशाल छायातरु है ।

उपयुक्त अग—छाल और पत्र ।

रासायनिक सगठन—छालमे टैनिन, रबड (काउचूक) और मोम होता है ।

प्रकृति—गरम और खुश्क । आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव रूक्ष (कै० नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, रूक्षण छर्दिघ्न और उबकाईको दूर करनेवाला विशेपत फोड़ेको बिठानेवाला है । पीपलके पत्रको गरम करके फोडे पर बाँधते है । यह उसके पकाने या बैठानेमे सहायता करता है । इस प्रयोजनके लिये पीपलकी छालको भी जलमें पीसकर फोडे पर लेप किया जाता है । पीपलके पेडकी छालको जलाते है । जब धुआं बद हो जाता है तब उसको जलमे डालकर बुझाते है और फिर छानकर रोगीको पिलाते है । इससे वमन, उबकाइयाँ और पिपासा नष्ट हो जाती है । कोई इसी अभिप्रायसे पीपलके पत्तोको जलाकर गरम-गरम राखको जलमे बुझाकर जलको छानकर पिलाते हैं । पार्श्वशूल (जातुज्जनब) और बालकोके डब्बा (पसली चलने) रोगोमें पीपलके पत्तोकी राखका निथरा हुआ पानी (आब जुलाब) पिलाया जाता है । पीपलकी छालको उबालकर उस काढेसे दन्तवेष्टशोथ और मुखपाकमें कवलग्रह कराते है । स्त्री-पुरुषके शुक्रमेह (जरायन)में अन्य औषधियोके साथ इसके चूर्णकी भाँति इसका उपयोग होता है और रूक्षण होनेके कारण उक्त रोगोमे इससे लाभ होता है । प्रतिनिधि–बरगदके पत्ते ।

आयुर्वेदीय मत—पीपल कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, मूत्रसग्रहण, वर्ण्य, योनिविशोधन, दुर्जर तथा व्रण, पित्त, कफ और रक्तविकारकको दूर करनेवाला है । (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८, कै० नि०) । पीपलके फल, मूल, त्वचा और कोंपलके साथ दूध पका, उसमे शर्करा एव मधु मिलाकर पीनेसे वाजीकर गुण होता है । (सु० चि० अ० २६) ।

नव्यमत—पीपलकी छाल स्तम्भन, रक्तसग्राहिक और पौष्टिक, पत्र आनुलोमिक; कोमलपत्र पहिले रेचन और पीछे स्तम्भन, फल पाचन आनुलोमिक, सकोचविकासप्रतिबन्धक और रक्तशोधक है ।

●

(३८७) पीपल

फैमिली पीपेरासे (Family . Piperaceae)

नाम—फल (हिं०) पीपल (र), (अ०) दारफिलफिल्, (फा०) फिल्फिल् दराज, (स०) पिप्पली, (प०) मगा, (द०) पिपली, पिपलियाँ, (ब०) पिपुल, (गु०) पीपर(ल०), लिंडीपीपर, (म०) पिंपली, (सिध) तिधिली, (थारु) पीपल, (अ०) लाग पेपर (Long pepper) । जड (पीपलामूल)—(हिं०) पि(पी)पली(ला)मूल, पिपलामूर;

(अ०) फ़िल्फ़िल्मू(गो)य ; (फा०) बेख़ दारफ़िल्फ़िल्, बेख़ फ़िल्फ़िल् दराज, (स०) पिप्पलीमूल, (ब०) पिपुलीमूल, (भाव०) पिपरामूल, (म०) पिंपळी मूळ; (गु०) पीपला(रा)मूल, पीपरगठोडा, (अं०)पेपर(पाइपर)रूट (Pepper or Piper root)।

वक्तव्य—पीपलकी दो जातियां बाजारमें मिलती हैं। (१) छोटीपीपल या पीपल, जिसकी बेलको लेटिनमें पीपेर लोंगुम् Piper longum Linn (या चाविका रॉक्सबुर्घी (Chavica roxburghii Miq.) कहते हैं। 'फ़िल्फ़िल्' संस्कृत पिप्पलीसे फारसी 'पिल्पिल्' द्वारा अरबी बनाया गया है। लेटिन और अंग्रेजी नाम भी संस्कृत पिप्पलीसे व्युत्पन्न हैं। (२) बड़ीपीपल या गजपीपल। इसीके काण्डको चव्य या चविका कहते हैं, जिसका विवरण 'चाब' शब्दके अन्तर्गत किया गया है। यहां पीपलका वर्णन किया गया है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पूर्वी और दक्षिणी भारतवर्ष तथा लंका। पूर्वी बंगालमें फलके लिए इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—पीपल एक बेलदार बूटीका प्रसिद्ध फल है जो २.५ सें० मी० से ५ से० मी० (१ इंचसे २ इञ्च) तक लम्बा, आकारमें कच्चे शहतूत के समान, परन्तु उससे छोटा और बारीक होता है। सूखनेपर यह खाकस्तरी श्यामवर्ण हो जाता है। स्वाद कालीमिर्चकी तरह कड़वाहट लिये तीक्ष्ण एवं चरपरा होता है। पीपलामूल पीपलकी बेलकी जड़ है जो ग्रन्थिल, कड़ी और भारी होती है। इसकी आकृति किसी भांति असारून (तगर)की तरह और रंगत श्यामता लिए खाकस्तरी होती है और तोड़ने पर अन्दरसे सफेद निकलती है। स्वाद पीपलके समान कडवाहट लिये तीक्ष्ण एवं चरपरा होता है।

उपयुक्त अंग—धूपमें सुखाये हुए अपक्व फल (पीपल) और जड़ (पीपलामूल) वा काड।

रासायनिक संगठन—राल, उत्पत् तेल, श्वेतसार (पिष्ट), निर्यास, वसामय तेल, अनैन्द्रियक पदार्थ और पाइपेरीन (Piperine) नामक एक ऐल्केलॉइड १%से २%।

कल्प तथा योग—अर्क फ़िल्फ़िल, जुवारिश फलाफली, माजून फलाफली।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद मत से अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, वातानुलोमन, वाजीकर, उष्णताजनन और श्वयथुविलयन। अग्निमांद्य, उदरशूल, उदरानाह दूर करने और पाचन-शक्ति बढानेके लिए इसका उपयोग कराया जाता है। वाजीकरणार्थ अकेले या उपयुक्त भेषजोंके साथ इसका चूर्ण या माजून बनाकर खिलाते हैं। कास और श्वासमें इसे शहदमें मिलाकर चटाते हैं। आमवात, वातरक्त, गृध्रसी और अन्य शीतल कफज व्याधियोंमें इसे सम्मिलित करते हैं। बकरीकी कलेजीमें पीपलके कुछ दाने चुभाकर अग्निपर सेकते हैं। उनसे जो पानी टपकता है उसे नेत्रमें लगानेसे रतौंधी और धुन्ध (जुल्मते बस्र) आराम होता है। उपयुक्त भेषजोंके साथ खरल करके फूली, ढलका (नेत्रस्राव) और नाखूनाको नष्ट करनेके लिए इसे नेत्रमें लगाते हैं। अहितकर–शिर शूलजनक है। निवारण–बबूलका गोंद, चंदन और अर्कगुलाब। प्रतिनिधि–सफेदमिर्च और सोंठ। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

पीपलामूल—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीयमतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, वातानुलोमन, वाजीकर, उष्णताजनन, लेखन, श्वयथुविलयन विशेषत दीपन और पाचनकर्ता है। यह पीपलसे अधिक वीर्यवान् है। अग्निमांद्य, अरुचि, आमाशयके वायुजन्य शूल, शूल (कुलंज) और उदरानाहमें इसका उपयोग करते हैं। इसे वाजीकर योगोंमें सम्मिलित करते और शीतल कफज व्याधियोंमें उपयुक्त भेषजोंके साथ खिलाते हैं। कूल्हेका दर्द, गृध्रसी, वातरक्त और प्लीहाकाठिन्यमें इसका लेप लगाते हैं। चेहरेका रंग निखारनेके लिये इसको जलमें पीसकर लेप करते हैं। अहितकर–वीर्य और दृष्टिको कम

करता है। निवारण–बबूलका गोंद और सफेद चदन। प्रतिनिधि–नारेमुश्क और सूरंजान। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पीपल कटु, मधुर विपाक, स्निग्ध, अनुष्णशीत, लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन, शिरोविरेचन, उर्ध्वभागदोषहर, पित्तको न बढानेवाली तथा कफ, वात, तृप्ति, हिक्का, कास, शूल, उदररोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहारोग और आमवातका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २, ४, २७, सु० सू० अ० ३८, ३९, ४६, भा० प्र०)। पीपलामूल कटु, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, पाचन, पित्तकर, वेदना तथा कफवात, उदर, आनाह, प्लीहरोग, गुल्म, कृमि, श्वास और क्षयका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २५, भा० प्र०)।

नव्यमत—पीपल उष्ण, वातहर, श्वासहर, दीपन, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक और गर्भाशयसकोचक है। कालीमिर्चकी क्रिया जैसे पचनेन्द्रियपर विशेष होती है वैसे पीपलकी क्रिया फुफ्फुस और गर्भाशयपर विशेष होती है। शीत और कफ प्रधान रोगोमे पीपलसे लाभ होता है। प्रसव होनेमे विलम्ब होता हो तो पीपलामूल, ईशरमूल और हीग पानके साथ देते है। इससे आवीका जो बढकर शीघ्र प्रसव हो जाता है। प्रसवके अनन्तर पीपरामूलका फाट देनेसे जरायु सरलतासे गिर जाता है। प्रसूतिज्वर, शीतज्वर, आमवात, गृध्रसी और कफज्वरमें पीपलको मधुके साथ देते है।

•

(३८८, ३८९) पीलू (छोटा, बड़ा)

फ़ैमिली : साल्वाडोरासे (Family Salvadoraceae)

नाम। (१) छोटा—(हिं०) पीलू(लु), पिलुआ, (हिं०, बं०) छोटा पीलू, (यू०) अराक, (अ०) बरबर, (फा०) दरख्त मिस्वाक, दरख्त शोरा, (स०) पीलु, गुडफल, लघुपीलु, (प०) पीलू, वण, जाल, (म०) पीलु, (बम्ब०) पिल्वु, (गु०) खारीजाल(र), (लें०) **साल्वाडोरा पेर्सिका (Salvadora persica** Linn), (अं०) दी टूथब्रश ट्री (The Tooth-brush Tree)।

(२) बडा—(हिं०) बडा पीलू, (बम्ब०) खाखड, (स०) वृद्धपीलु, महापीलु, (गु०) मीठीजाल(र), (लें०) **साल्वाडोरा ओलेऑइडेस (Salvadora oleoides** Dcne.)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरप्रदेशके इटावा आदि प्रदेश, पश्चिमी बिहार, दक्षिणपजाब, गुजरात, कच्छ, काठियावाड, राजस्थान, सिंध और बलूचिस्तान आदि रूक्षोष्ण प्रदेशोमे पीलूके वृक्ष अधिक होते है।

वर्णन—इसके बडे-बडे गुल्म अथवा छोटे तथा टेढे-मेढे वृक्ष होते है जिनकी शाखायें नीचे झुकी हुई और दुर्बल होती है। पत्तियाँ आमने-सामने चर्मिल या मासल और अण्डाकार-आयताकार, ३ ३ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ २५ से २ इञ्च) लम्बी तथा दोनो शिरोपर गोल होती है। पुष्प सूक्ष्म हरिताभ श्वेत या पिलाई लिए हरे रगके चतुरग-भागी पौष माघमे आते है। फल एक बीजवाला, माँसल और मसलकर सूँघनेपर राई आदिके समान तीक्ष्ण गध देता है। फल चैत-बैसाखमे पक जाते है और पकनेपर श्यामता लिए लाल रगके होते है। फलका स्वाद मीठा और चरपरा होता है। इसके पके काला पडे फलको अरबीमे कबास कहते है।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प, मूल, मूलत्वक्, काष्ठ, काडत्वक्, बीज और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक सगठन—पत्र और मूलमें ट्राइमेथिलेमाइड (Trimethylamide) नामक क्षाराभ, बीजमें वसामय तेल और ईथरियल ऑयल (Etherial oil) होता है।

प्रकृति—समशीतोष्ण एवं खुष्क अथवा पहले या दूसरे दर्जेमे गरम और खुष्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, श्वयथुविलयन, कफघ्न, स्रोतोद्घाटक, वाजीकर, अतिसारघ्न, गर्भाशय-शोथनाशक तथा अर्श, खर्जू एव कुष्ठ इनमें लाभ करता है। छाल सूजन एव पित्तका निर्हरण दस्तके रास्ते करती है तथा जलोदरमे लाभ पहुँचाती, वाजीकरण करती और वावगोला, तापतिल्ली, अश्मरी एव वायु तथा कफके रोगोको नष्ट करती है। इसकी टहनीका दातौन दाँतोको स्वच्छ एव चमकीला वनाता है, उनको शक्ति देता मुखकी दुर्गन्ध दूर करके सुगध उत्पन्न करता है और मसूढोको ढीला करनेवाले द्रवोको निकाल देता है। परन्तु इसकी अधिकतासे गलशुण्डी (कौए) पर जोश आता है। पत्तोंका लेप श्वयथुविलयन है। जैतूनके तेलमें वनाये हुए इसके पत्तोके तेलकी मालिससे पीडा शमन होती है। इस तेलसे गर्भाशयशोथ, अर्श और सिरका गज (खालित्य) दूर होता है। फलको पकाकर पीनेसे मूत्रका प्रवर्तन और वस्तिका शोधन होता, आमाशयको शक्ति प्राप्त होती (दीपन) तथा दस्त वन्द होता है। इसी प्रकार वीज भी आमाशयवलदायक (दीपन) और अतिसारनाशक है। इसके काले भेदका रस प्रतिदिन २३ तोला ६ रत्तीकी मात्रामें पीनेसे, कुछ कालोपरात शरीर कृश एव दुर्बल हो जाता है। इसमें खिजावकी दवा भिगोनेसे वाल खूब काले होते है। आगसे जलेपर इसके पत्तोंका लेप करना चाहिए। इस लेपसे प्रसेक रुक जाता है तथा मुखविसर्प (माशिरा), कक्षा, उष्णशोथ और नेत्रभिष्यंद एव काल-स्फोट (जुमरा) आराम होता है। इसके पत्ते शरीरावयवपर रखनेसे मल और दोष भीतर घुसने नही पाते तथा उस अगमे स्थित मल विलीन एव उत्सर्गित हो जाते है। फोडोपर इसके पत्तोके लेपसे पीप निकलना वन्द हो जाता है तथा उनका शोधन-रोपण होता और प्रसार रुक जाता है, कारण यह क्षोभरहित उपशोषण है। रोगन ईरसामें पीलूके फल पका-छानकर नस्य लेनेसे सिरदर्द जाता रहता है, तथा शिर एव हृदयको शक्ति प्राप्त होती है। सिरकेमें पकाकर इसके लेप करनेसे प्लीहाशूल मिटता है। मुखके रोगोकी उत्तम औषधि है। फल आर्तवजनन है। **अहितकर**—खानेसे पेचिस उत्पन्न करता है। **निवारण**—कतीरा और इसबगोल। **प्रतिनिधि**—चदन। **मात्रा**—१४ तोले २ माशे, फल ४·५ ग्राममे १० ५ ग्राम (४३ माशेसे १०३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पीलू तिक्त, कटु, कटुविपाकी, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, किंचित् स्निग्ध, सारक शिरोविरेचन, विरेचनोपग, ज्वरहर, पित्तहर तथा गर (कृत्रिम विष), कफ, वात, रक्तपित्त, अर्श और बस्तिके रोगोको दूर करने-वाला है। (च०सू०अ० २, ४, २७, वि०अ० ८, सु०सू०अ० ४६, ध०नि०)। पीलूका फूल शिरोविरेचन (सु०सू०अ० ३९)। पीलूका फल कटुविपाकी, स्नेहन, वस्तिशमन तथा वात, कफ और अर्शका नाश करनेवाला है। (ध०नि०)। पीलूके फलका रस मधुर, तीक्ष्ण और गुल्म तथा अर्शका नाश करनेवाला है। (ध०नि०)। छोटा पीलु कटु, कषाय, खटमीठा, स्वादिष्ट, सारक, दीपन और गुल्म तथा अर्शका नाश करनेवाला है। बडा पीलू मधुर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, पित्तप्रशमन तथा विष और आमका नाश करनेवाला है। (रा०नि०)।

नव्यमत—छोटे पीलूके फल वातानुलोमन मूत्रजनन और अवरोधोद्घाटक और पत्तियाँ सनाय जैसी विरेचन है। और हर प्रकारके विषोकी अगद और चरपरी है। सधिवातमे इसका लेप करते है। स्कर्वीरोगमें इसका पत्र-स्वरस दिया जाता है। बीजोकी तेलकी क्रिया राईके तेलके समान है। तेल संधिवातमे लगाते है। मूलकी छाल कटु, उत्तेजक, स्वेदजनन और थोडी मूत्रजनन है। यह रुद्धार्तवमें उत्तेजक एव बल्यरूपमें प्रयुक्त होती है। मूल (काड)की छालका काढा ज्वरमें जव रोगी प्रलाप करता हो और अशक्त होता हो तव चेतनावर्धनार्थ देते है। बड़े पीलुकी पत्तियाँ उष्णवीर्य, वातनाशक, मूत्रजनन और क्षीरजनन है। छाल तिक्त उष्णवीर्य, दाहजनक और उत्तेजक है। फल उष्णवीर्य, लघु, दीपन वाजीकर वातनाशक और मूत्रजनन है। फलमे पुष्कल शर्करा होती है। सधिवात और प्लीहावृद्धिमे फल देते है। बीजोसे निकाला हुआ तेल गाढा हरापन लिए और तीक्ष्णगधवाला होता है। जीर्णसधिवातमे तेलका मालिश करनेसे पीड़ा कम होती है। वम्वईमें तेल 'खांखड़का तेल' के नामसे मिलता है।

(३९०,३९१,३९२) पुदीना

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) पुदीना, (अ०) फूतनज, फ़ूदनज, हबक, (फ़ा०) पूद(दि)न , पू(पो)दीन , (स०) पुदिन , पूतिहा, रोचनी, (ब०) पुदिना, (प०) पोदीना, (म०) पुदिना, (गु०) पुदीनो, (ले०) **मेन्था साटीवा (Mentha sativa** Linn), (अ) इडियन पेपरमिंट (Indian peppermint) ।

वक्तव्य—मेन्था लेटिन शब्द, यूनानी 'मिन्था (एक कुमारी)से व्युत्पन्न है। मेन्थाका अरबी रूपातर 'मि(मे)न्सा' है जिसे मख़्ज़न और मुहीतके फ़ूदनजके प्रकरणमें प्रमादवश मशी लिखा है । अरब लोग इसे भारतवर्षमें लाये । यही कारण है कि आयुर्वेदकी प्राचीन सहिताओंमे इसका उल्लेख नही मिलता है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषत उत्तर भारतवर्षके बगीचो, घरो और खेतोमें लगाया जाता है । हिमालयकी पहाडियोमे यह स्वयजात भी होता है । परन्तु चीनमे इसकी उत्पत्ति बहुतायतसे होती है ।

वर्णन और भेद—यह भूमिपर फैलनेवाला एक प्रसिद्ध क्षुप है जिसकी पत्तियाँ चटनी आदिके काममे ली जाती है । इसे पूदिन बुस्तानी (उद्यानज (बागी) पुदीना) कहते है । मात्र पुदीना शब्दसे यही विवक्षित होता है । औषधिकर्म एव खान-पानमे इसीका व्यवहार प्रचुरताके साथ किया जाता है । यूनानी निघण्टुग्रन्थोमें पुदीनाके इन तीन भेदोका उल्लेख मिलता है—

(१) पूदन: बर्री (अल्नअ्नाउल् बर्री) अर्थात् जंगली पुदीना (**Mentha sylvestris** Linn) अथवा वाइल्ड या हॉर्स मिन्ट (Wild or Horse Mint)—यह पश्चिम हिमालयमे ४,०००-१२,००० फुटकी ऊँचाईपर होता है । गध और स्वाद पहाडी पुदीनावत् होता है । (२) पूद(दि)न: कोही अर्थात् पहाड़ी पुदीना—(लै०) **मेन्था स्पीकाटा या विरिडिस (Mentha spicata** Linn. or **M viridis** Linn) तथा (अ०) गार्डेन या स्पियर मिन्ट (Garden or Spear Mint) और (३) पूद(दि)न. नहरी अर्थात् नहरी या जलज पुदीना (अ०) अल्हबकुल् नहरी, हबकुल्माऽ, नाऽनाऽ (इ० बै०), (ले०) **मेन्था आक्वाटिका (Mentha aquatica)** तथा (अ०) मार्श या हेयर मिंट (Marsh or Hair Mint), इन दोनोको भारतीय बगीचोमे लगाते है । कोई-कोई इसे ही उद्यानज पुदीना मानते हैं ।

रासायनिक सगठन—इसमे एक उत्पत् तेल जिसका सगठन पेपरमिंटके समान होता है । राल, निर्यास और कषाय सत्व होता है । चीनकी जलभूमि इसके विशेष अनुकूल होनेसे चीनदेशका पुदीना अधिक सुगन्धित होता है । इसीसे चीन और जापानमे इसके बडे-बडे कारखाने है, जहाँपर पुदीनाका सत विशेष प्रमाणमे तैयार होकर देश-देशान्तरोमें भेजा जाता है । इसके दूसरे भेदमे उत्पत् तेलका प्रमाण पिपरमिंटमे कम होता है । वि० दे० 'पेपरमिंट' ।

कल्प तथा योग—स्वरस ½-१-२ तोला, फॉट २-४ तोला, अर्क २-४ तोला, अर्क पुदीना मुरक्कब, जुवारिश पुदीना (फूतजी), अर्क नाऽनाऽ, सफ़ूफ़ नाना, सिकजबीन नानाई ।

वक्तव्य—इसका क्वाथ बनाकर देना ठीक नही, कारण वह दुर्जर हो जाता है । क्वाथ बनाकर देना ही अभीष्ट हो तो उसमें अदरक और अभावमे कालीमिर्च मिला लेना चाहिए ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष) । आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सान्द्रदोषपाचन (मुञ्जिज मवाद गलीज), श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन (मुलत्तिफ़), शोणितोत्क्लेशक (जाजिज), त्वग्रागकारक (सुहम्मिर जिल्द), कृमिघ्न, वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन, स्वेदन,

वातानुलोमन और दीपन। इसमें अगद गुण भी है। पुदीना अधिकतया आमाशयिक रोगो, जैसे आमाशयदौर्बल्य, अग्निमान्द्य, उदरशूल, उदरानाह और क्षुधानाशमें उपयोग किया जाता है। वमन और उत्क्लेशनिवारणके लिए इसका क्वाथ या अर्क पिलाते है। अगदगुणविशिष्ट होनेके कारण यह विसूचिकामें भी प्रयुक्त होता है। इसका रस पिलाने और वस्ति देनेसे अन्त्रकृमि नष्ट हो जाते है। कर्ण और नासाकृमि भी इसका रस टपकानेसे मर जाते है। आर्तवजननके लिए यह अत्यन्त वीर्यवान् औषधि है। इसलिए गर्भावस्थामें इसकी फलवर्ति (हमूल) स्थापन करनेसे गर्भपात हो जाता है। यह श्वास और कासमें लाभकारी है और कफको पतला करके उक्त रोगमें लाभ पहुँचाता है। स्वेदन होनेसे यह कामलामें भी गुणदायक है और दोषको पतला एव द्रवीभूत करके त्वचाके स्रोतोसे बाहर निकालता है। मधुके साथ लेप करनेसे यह त्वचाकी कालाई (कृष्णवर्णता)को दूर करता है। बिच्छू और भिड आदिके काटे हुए स्थानपर लेप करनेसे यह विषको खीच (जज्ब) लेता और दर्दको शान्त करता है। इसका सत्व (जौहर) भी निकाला जाता है जो सत पुदीनाके नामसे प्रसिद्ध है और आमाशयके रोगोमें पुष्कल प्रयुक्त होता है। माजूने फुतजी इसका प्रसिद्ध योग है जो जमे हुये रक्तवस्ति अथवा आमाशयगत रक्तस्कदनको पिघलने तथा आमाशयशूल और यकृच्छूलको नष्ट करनेके लिए गुणदायक है तथा कफज एव जीर्ण-ज्वरोमें गुणकारक एव प्रयोगित होता है। अहितकर—अन्त्रके लिए। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—नहरी पुदीना। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पुदीना कटु, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन तथा वायु, कफ, उलटी, पेटका दर्द और अफारा तथा कृमियोंका नाश करनेवाला है।

नव्यमत—पुदीना उष्ण, रूक्ष, वातप्रशमन, दीपन, आर्तवजनन, आक्षेपहर और उत्तेजक है। पुदीना अजीर्ण, कुपचन, उदरशूल उदराध्मान और वमनमें देते है। प्रसूतिज्वरमें पुदीनेका स्वरस १–२ तोला प्रतिदिन देनेसे बहुत लाभ होता है। कफज्वर, आमाशयकी अशक्ता, अतिसार, वातरोग और अश्मरीमें इसका स्वरस देनेसे लाभ होता है।

•

(३९३) पुनर्नवा

फैमिली . नीक्टाजिनासे (Family Nyctaginaceae)

नाम—(हिं०) गदहपुन्ना (पूर्ना), साँठ(ठी), साँटा, साटा, ठिकी, (स०) पुनर्नवा (रक्त–), (प०) इटसिट, (व०) गदापुण्या, गदहपूरना, (मा०) साटी(टो), (म०) घे(घें)टुली, (गु०) रानीसाहोडी, साटेडी, (बिहार) साजर, (मला०) पुनर्नवा, (ता०) मूक्किरट्टै, (ते०) अटडमामिडि, (ले०) बोएर्हाविआ डिफ्फूजा **Boerhaavia diffusa** L (पर्याय–*B repens* L), (अ०) स्प्रेडिंग होग-वीड (Spreading Hog-weed), (पुर्त०) (Beju-code pergacaca)।

उत्पत्तिस्थान—यह सर्वत्र भारतवर्ष, विशेषत घासवाली, ककरीली, पथरीली जमीन में होता है।

वर्णन—इसकी बहुवर्षायु, भूमिपर फैलनेवाली (प्रसारी) लता होती है। वर्षारम्भमे इसमें नये अकुर उत्पन्न होते है। प्रतिवर्ष पुरानी जडसे ही नवीन वनस्पतिकी भाँति पुन-पुन पल्लवित होनेके कारण पुनर्नवा इसकी अन्वर्थ सज्ञा है। काण्ड प्राय ललाई लिये हुये एव बारीक होता है। पत्तियाँ चौडी लट्वाकार, अधस्तल पर प्राय श्वेताभ, आमने-सामनेकी पत्तियाँ छोटी-बड़ी, सबसे बड़ी पत्तियाँ ५ सें० मी० × ४ ५ से० मी० (२ इञ्च × १·७५

इञ्च) बडी होती है। पुष्प कक्षीय पुष्पदण्डपर धारण किये जाते हैं और छोटे, गुलाबी रगके लगभग अवृन्त होते है। सवर्णकोश, घण्टिकाकार, पुकेशर २-३ होते हैं। पत्तीका सागके रूपमे और मूलका चिकित्सामें व्यवहार होता है। पत्तीकी अपेक्षया मूलमे औषधीय वीर्य अधिक होता है। पुनर्नवा सफेद फूलका भी होता है, किन्तु अपेक्षाकृत कम उपलब्ध होता है। लैटिनमें इसे बोएर्हाविया वेर्टीसिल्लाटा (Boerhaavia verticillata Poir.) तथा संस्कृत और बगलामें श्वेतपुनर्नवा तथा हिन्दीमे साठ कहते है। यह लालफूलवालेकी अपेक्षया अधिक गुणकारी माना जाता है। लाल पुनर्नवाके दो भेद और होते है, एकमे मूलकन्द सदृश होता है और पत्रादि छोटे होते हैं। यह शुष्क भूमिमे अधिक होते हैं। पुनर्नवाकी दूसरी भिन्न जाति बोएर्हाविया रेपाडा (Boerhaavia repanda Willd) है, जो प्रसरणशील अथवा आरोहणशील लताजातिकी होती है। इसमे आमने-सामनेकी दोनो पत्तियाँ प्राय कदमें बराबर होती है। मूल कदसदृश मोटा, किन्तु भगुर होता है।

वक्तव्य—'पुनर्नवा' और 'वर्षाभू' दो सर्वथा भिन्न उद्भिज हैं। परन्तु दोनोके रूप और गुणोमे बहुत कुछ साम्य होनेसे निघण्टुकारोने दोनोको परस्पर मिला दिया है। अनेक स्थानोमें आज भी 'बिसखपरा (वर्षाभू)'को ही 'पुनर्नवा' और कुछ उसे केवल 'श्वेतपुनर्नवा' मानते हैं (वि० दे० 'बिसखपरा')। इस प्रसगमें यह स्मरणीय है कि श्वेत और रक्तभेद, पुनर्नवा और (विसखपरा) दोनोमे ही होते है। अत रक्तपुनर्नवा और श्वेत पुनर्नवाका अभिधान पुनर्नवा (बोएर्हाविआ **Boerhaavia**)की जातियोके लिए तथा 'रक्तवर्षाभू' और 'श्वेत वर्षाभू'का अभिधान विसख-परा (ट्रिआथेमा **Trianthema**) जातियोके लिए पृथक्-पृथक् रूपसे होना चाहिए। वर्षाभूकी ही किसी जातिको 'वसुक' मानना चाहिए।

रासायनिक सगठन—जडमे एक प्रकारका क्षारोदीय गधेत् (पुनर्नवीन) ० ०१%, शोरा (पोटैसियम नाइट्रेट) ६ १ प्रतिशत, एक तैलीय समूह, सल्फेट्स, क्लोराइड्स और भस्ममे अंशत नाइट्रेट्स और क्लोरेट्स होते हैं।

उपयुक्त अग—पत्र और मूल। पत्रकी अपेक्षया मूलमे औषधीय वीर्य अधिक होता है।

प्रकृति—गरम और रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (सु०) एव रूक्ष (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वामक, विरेचक, मूत्रल, कृमिघ्न, गर्भशातक और विषघ्न है। जो पानीसे दूर और सूखी जमीनमे हो और जिसके पत्ते बारीक हो, उस पुनर्नवाको सूर्यके निकलनेसे पूर्व जिसमें न मनुष्यकी छाया पडी हो और न धूप लगी हो, जमीनसे उखाडकर उसकी जड कामला रोगीके गलेमे बाँधनेसे आँखका पीला-पन दूर हो जाता है। यदि कामलाके रोगीके शरीरपर सूजन आ गयी हो तो शोथहर औषधियोमें इसकी जड मिलाकर उससे तेल बनाकर मालिश करना चाहिए। इसके पचागको पीसकर जलोदरीके पेटपर लेप करनेसे लाभ होता है। सूखे पुनर्नवाके पचागको गरम पानीमे भिगो मल-छानकर उसमें शोरा मिलाकर पीनेसे भी जलोदरीको लाभ होता है। जलोदरके आरम्भमे इसके पत्तोको पकाकर रोटीके साथ खिलाना चाहिए। सामान्य दौर्बल्य और सूजन दूर करनेके लिए इसकी जडको पानीमें पीसकर पैरोपर लेप करना चाहिए। इसके पत्तोके स्वरसको दूधमें मिलाकर पिलानेसे पेशावकी रुकावट मिटती है। जडका काढा सारक, मूत्रल और उदरकृमिनाशक है। इसके पत्ते और कालीमिर्चोकी घोट-छानकर पिलानेसे मूत्र अधिक होकर सूजाक आराम होता है। इसके फाटमें जवाखार मिलाकर पिलानेसे भी सूजाक आराम होता है। इसको अधिक प्रमाणमें खिलानेसे वमन होता है। इसकी जडके चूर्णमें खाँड मिलाकर फकी देनेसे सूखी खाँसी तर हो जाती है। इसकी जडके ३ माशे चूर्णमें चार रत्ती हलदीका चूर्ण मिलाकर देनेसे दमा और जडका काढा पिलानेसे जोरकी खाँसी और दमा दूर होता है। गाँठके ऊपर इसके पत्तोका लेप करना चाहिए। यदि (रतूवत)के कारण सम्पूर्ण शरीर सूज जाय तो पुनर्नवा, चिरायता और सोठका काढ़ा पिलानेसे लाभ होता है। योनिमे इसकी जड़ रखनेसे गर्भशिशुका पात हो जाता है। सफेद पुनर्नवाका नानाविध

प्रयोग आँखके विविध रोगोमें गुणदायक होता है। इसे पँवाडके बीजोके साथ खानेसे दाद आराम हो जाता है। इसके पत्ते और चरचिटेकी टहनियोको पीसकर मलनेसे विच्छूका विप उतर जाता है।

आयुर्वेदीय मत—पुनर्नवा मधुर तिक्त सारक, रूक्ष, स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर, वयस्थापन, उष्ण-वीर्य तथा वात, कफ, शोथ रक्तप्रदर, पाण्डुरोग, हृद्रोग, उर क्षत और शूलको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४, सु०सू०अ० ३८, ४५, ध०नि०; रा०नि०) श्वेतपुनर्नवाकी जडको पीसकर घीमें मिलाकर अजन करनेसे आँखकी फूली दूर होती है तथा उसमें मधु मिलाकर अजन करनेसे रक्तस्राव, भांगरेके रसके साथ अजन करनेसे नेत्रकण्डू दूर होता है। इसको जड केवल जलके साथ आँखोमे लगानेसे तिमिर रोग दूर होता है। गायके गोवरके रसमें इसकी जड और पीपल उवालकर अजन करनेसे रतौंधी दूर होती है। इसके पत्तोका रस गरम है। (नि०र०) शेप गुण रक्तपुनर्नवावत् होते हैं। नीलपुनर्नवा राजीघण्टूके अनुसार रसायत है। पुनर्नवाका शाक अत्यन्त रूक्ष तथा वात, मन्दाग्नि, गुल्म, प्लीहा और शूलनाशक है। (नि०र०)।

नव्यमत—पुनर्नवा दीपन, विरेचन, मूत्रविरेचन, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक और शोथहर है। पुनर्नवामे मूत्रपिण्ड (गुर्दा)को कुछ भी त्रास न होकर मूत्रकी राशि दूनी वढती है। इसे आधा तोलाकी मात्रामें देनेसे ही मूत्रजनन गुण होता है। कफघ्न गुण थोडा-थोडा वार-वार देनेसे देखनेमे आता है। वमन होनेके लिए ५ माशेकी मात्रा १-२ वार देनी पडती है। इससे वमनके साथ विरेचन होकर उभय मार्गोसे कफ वाहर निकल जाता है। इसका स्वेदजनन गुण अल्प है। इसका असर हृदयपर अल्पप्रमाणमें, धीरे-धीरे परन्तु स्पष्ट होता है। इससे हृदयकी सकोचन क्रिया वढती है। रक्त वेगसे धमनियोमें जाता है, रक्तका दवाव वढता है और सिराओसे हृदयमें रक्त अधिक शोपित होता है। यह क्रिया डिजिटेलिस (हृत्पत्री)के समान है। रक्तका दवाव वढनेसे मूत्रकी राशि वढती है और शरीरमें सचित चल कम होता है। इसलिए पुनर्नवाको शोथघ्नी कहा गया है। इसमें स्थित 'पुनर्नवीन' तत्त्व वृक्कके ऊपर कार्य करके मूत्रद्वारा शरीरमें सचित हुए जलका नाश करके शोथ दूर करता है।

●

(३९४) पुहकरमूल

फ़ैमिली . कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०, उ०) पु(पो)हकरमूल, पुष्करमूल, (स०) पुष्करमूल, पद्मपत्र, काश्मीर, कुष्टभेद, (प०) पोहकरमूल, (म०, गु०) पुष्करमूल, पोहकरमूल, (क०) पोशकरमूल, पोहकरमूल, (ले०) ईनूला रेसीमोसा (**Inula racemosa** Hook)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण और आल्पपर्वतीय पश्चिमी हिमाच्छादित पर्वतमालाओमें ५,०००–१४,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा कश्मीरमें ५,०००–७,००० फुटकी ऊँचाई तक जहाँ सदा नमी रहती है या जलके स्रोत-समीप है, उत्पन्न होता है और यह लगानेसे लग सकता है। इसकी जडकी विक्री अमृतसरमें होनेसे यह वहीसे मिल सकता है। इसके अतिरिक्त पोहकरमूल दिल्ली, वम्वई आदि वडे शहरोमें भी मिलता है। कश्मीर सरकार पुष्करमूल वेचती है।

वक्तव्य—पुष्करमूलका लैटिन या अग्रेजीमे कोई नाम नही मिलता। जो नाम अन्य लेखकोने तथा मैंने भी पुष्करमूलके वर्णनमें दिया है वह वास्तवमें कुष्ठका नाम है। लेटिनमे (*Aplotaxis auriculata*) कुष्ठका नाम है। पुष्करमूलका लैटिन नाम (**Inula racemosa**) मिलता है। यह सेवती, सूर्यमुखी या कुष्ठकुल (*Family Compo-*

sılac) की ही वनस्पति है। डॉक्टर वामनगणेश देसाईने 'ओषधि सग्रह' नामक मराठी ग्रन्थमे इसका उल्लेख रास्ना-के नामसे किया है। वास्तवमे रास्ना और चीज है। रास्ना एरालिआसे-कुल (*Famıly Aralıaceae*)की वनस्पति है। डॉक्टर देसाईने इसे 'वन्दाक' कुलमे स्थान दिया है, यह भी भूल है। पुष्करमूल सेवती कुलकी वनस्पति है। कौन जाने लोगोने कैसे इसे रास्ना माना। रास्नाका इनका दिया वर्णन पुष्करमूलके वर्णनसे ठीक मिलता है।

इस वनस्पतिका ज्ञान तो वैद्योको हजारो वर्षोसे है। किन्तु मालूम होता है कि आजसे ६०–७० वर्ष पूर्व यह कम आता रहा है। इसीलिये पजाबको छोडकर अन्य प्रान्तोमे नही पहुँच पाया। जभी इसके सम्बन्धमे भ्रम व भूल होने लगी।

भ्रमका कारण कुष्ठ भी था—

'कुष्ठ' और 'पुष्करमूल' दोनोकी जडे प्राय बहुत कुछ रूप व गन्धमे समान होती है। कुष्ठ तो थोडा-बहुत देश-के कोने-कोने तक कुछ-न-कुछ पहुँचता था, पर यह शायद ही कभी किसी वैद्यको प्राप्त होता है। क्योकि हर एक वैद्यका अपने-अपने शहरके पसारियोसे ही सम्बन्ध रहता है और उन पसारियोका अपने प्रातके बडे शहरोके पसा-रियोसे बडे पसारी जो कुछ छोटे पसारियोको दे देते है वही छोटे पसारी वैद्योके गले मढ देते है। वैद्योमे पुष्कर-मूलकी माँग सदा रही, किन्तु जितनी इसकी माँग थी उतनी इसकी उपज न थी।

खोजोसे पता चला है कि आजसे ५०–६० वर्ष पूर्वतक यह कश्मीरसे ऊपर कागान इलाकेसे ही आता था। वहाँ यह बहुतायतसे होता था। किन्तु वहाँ इसको प्रतिवर्ष इतनी कसरतसे उखाडा गया कि आजसे २० वर्ष पूर्व ही उस प्रातमे इसका वश ही मिट गया। तभी तो इसकी अन्य प्रातोमे खोज होने लगी। परिणामस्वरूप इसके मिलनेका पता निम्न स्थानोमें लगा—कश्मीरमे ओजपाल, खिलानमर्ग, गुरिज, काकेवार, भद्रपोगी, लाहौल, पित्ती, कुल्लू, व्यासकुण्ड, चम्बा स्टेटका मनमहेश, लटानकी जोन, काली छोकी जोन आदि। जबसे इन देशोमे इसका पता लगा अच्छा मूल्य मिलनेके कारण इन देशोके निवासियोने इसे निकालना आरम्भ किया जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इसका आयात बढता चला गया। इस समय तो यह वर्षमे २००–३०० मनके लगभग निकलकर आने लगा है।

अभावके दिनोमे इसकी पूर्ति कैसे हुई ?

जब देशमे इसकी माँग बराबर बनी रही, और इसका बहुत कुछ अभाव हुआ, तो पजाबके व्यापारियोने कुष्ठकी ऊपरकी लकडियोको, जो ऐरण्डवत् पोली तथा वर्णमें काली भूरी-सी होती है, भेजना शुरू कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि समस्त उ० प्र०मे कुष्ठके डण्ठल पुष्करमूलके स्थानपर प्रचलित हो गये। और आज समस्त उत्तर प्रदेश वैद्य इन्ही पोली लकडियोको पुष्करमूलके स्थानपर बरतने लगे है। धीरे-धीरे कुछ ही समयमें उत्तर-प्रदेशके वैद्य इस असली पुष्करमूलको भूल बैठे। और आज यह अवस्था हो रही है कि वैद्योको असलीका ज्ञान करनेपर भी उनका भ्रम दूर नही होता। कई वैद्य तो अबतक इसे कुष्ठ ही कह देते है। और प्रातोको जाने दीजिये, अभी थोडे ही दिनकी बात है कि सिंध प्रातके एक अच्छे विद्वान् वैद्यने एक सेर पुष्करमूल मँगाया। पुष्करमूल जब उन्होने देखा तो बिना समझे-बूझे चट उसे एक आदमीके हाथ वापिस कर दिया, और एक लम्बा चौडा पत्र लिखकर शिकायत की कि इतनी बडी फार्मेसीवाले भी धोखा देते है, पुष्करमूलके स्थानपर कुष्ठ भेज दिया। जब उनको दूसरी बार कुछ गाँठे पुष्करमूलकी, और कुछ गाँठे कुष्ठकी साथ-साथ भेजी गई तो वैद्यजीका भ्रम दूर हुआ।

रचना या आकृति

इसका क्षुप अषाढ-श्रावणमे—जब बरफ गलती है—भूमिसे निकलता है। यह बहु-वार्षिक क्षुप है। जब बर्फ पड़ने लगती है तब इसका क्षुप जल जाता है, केवल मूल भूमिमें पडा रहता है। जब सर्दी समाप्त होकर भूमि

बरफ रहित हो जाती है तो यह अपना सिर भूमिसे बाहर निकालता है और देखते-देखते कुछ ही दिनोंमें इसका ५-६ फुटतकका अच्छा क्षुप तैयार हो जाता है, और इसके मूल स्कन्धसे कई शाखायें-प्रशाखायें निकलती हैं। नये तनोका वर्ण कुछ ललाई-युक्त होता है जो बडे होने पर घट जाता है।

पत्तोकी आकृति लम्बाईमे ८ इञ्चसे लेकर १८ इञ्च तक तथा चौडाई ५ से ८ इञ्च तक पायी जाती है। इसका पत्रदण्ड भिन्न नहीं होता प्रत्युत तना मूलसे ही पत्र लगकर वडा होता चला जाता है। बहुधा इसके पत्र चन्दनाकृति या ग्रहण स्थितिवत् कटे गावदुमाकार बनते है, कुछ पत्ते आगे जाकर दो-दो, तीन-तीन हिस्सोमे फटकर विभक्त हो जाते है। पत्तोंके किनारे कँगूरेदार तथा उनपर सूक्ष्म लोम कटक होते है। पत्रका निचला भाग भी लोम या रोयेंसे पूर्ण होता है। पत्ते वृक्षपर घने और विषम होते है। फूल सूर्यमुखीके फूलवत् पीले रगकी पखडियोंसे युक्त होता है जिसमें प्राय ७ पुष्पपत्र होते है। बीचमे कमल-फूलवत् केसरकी नीलाभायुक्तकेसरी झालर बनी हुई होती है। बीजकी आकृति सूर्यमुखीके बीजवत् या कुसुम्भबीजवत् होती है। फूल सुगन्धित होता है।

मूल भाग व संग्रहका समय

आश्विन, कार्तिकमें इसका सग्रह करना चाहिये किन्तु लोग भाद्रपदसे ही इसे उखाडना आरम्भ कर देते है। इसकी जडे ही काममें आती है। पत्र व तने फेंक दिये जाते हैं।

मूलकी रचना

उखाडते समय मूल कई शाखोमें विभक्त मूली जैसा होता है। सूखनेपर उसमेंसे सफेद व हमनवत् मोटी-मोटी झुर्रियाँ हो जाती हैं। इसकी जडसे सदा मीठी-मीठी कुष्ठसे मिलती-जुलती कपूरकी-सी कुछ गन्ध लिये वास आती रहती है। यह वास कई वर्षोतक बनी रहती है। इसे कीडा नही लगता।

मूलका रूप

इसकी शकल कुछ-कुछ कुष्ठसे मिलती है, किन्तु सर्वांशमें नही। एक तो यह टूटनेमें सख्त व चटखदार टूटता है। टूटनेपर इसका तोड बिलकुल नया हो तो सफेदीयुक्त मटमैला-सा होता है। कुष्ठका तोड नरम भुरभुरा होता है, इसका तोड-स्थान सफेद-पीत होता है। इसके तोड-स्थान कुछ सुविषापूर्ण दिखाई देते है। इसलिये ये दोनो जल्दी पहचाने जाते हैं। दूसरे कुष्ठकी जडपर झुर्रियाँ भी पतली-पतली पडती है। वह प्राय गोल, कुछ पीतता लिये भूरे वर्णका होता है यह सफेद भूरा-सा। फिर इसकी गन्ध भी कुष्ठकी गन्धसे कुछ भिन्न होती है। यह स्वादमें कुछ चरपरी, कटु गन्धयुक्त होता है। और कठमें लगता है। (विज्ञानसे साभार उद्धृत)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम व खुश्क। आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, क्षुधाभिजनक, वातानुलोमन, श्लेष्मष्ठीवन और वाजीकर। इसका प्रधान कर्म दीपन (आमाशयको बल देना) है। इसका उपयोग वातकफरोगोमे करते हैं। मिश्रितज्वर, क्षुधाकी कमी तथा कामावसाद (जोफेबाह)में यह उपकारक है। उदरशूल और पार्श्वशूलमें खिलाने और लेप करनेसे लाभ पहुँचाता है तथा खाँसी-दमा और जलोदरमें उपकार होता है। हाथ-पाँवके सर्द पसीनाको रोकनेके लिए इसको महीन पीसकर मलते है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—खालिस शहद। प्रतिनिधि—पुरुषत्व रोगमे प्याजके बीज। मात्रा—२ ग्राम से ४ ग्राम (२ माशा से ४ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—पुष्करमूल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हिक्का, अरुचि, ऊर्ध्व वात, शोथ और पाडुरोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—पुष्करमूल तिक्त, कटु, उष्ण, पाचन, उत्तेजक, कफघ्न, श्वासहर, कासहर, ज्वरघ्न, शोथहर, त्वग्रोगनाशन, वातहर और विषहर है। मस्तिष्क, आमाशय, वृक्क और गर्भाशयके ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया

होती है। यह जन्तुनाशक और पूतिहर है। कुपचन, उदराध्मान और उदरशूल तथा सभी प्रकारके फुफ्फुसके रोगो (जैसे—दमा, जीर्णश्वासनलिकाशोथ, क्षय, फुफ्फुसकलाशोथ, पार्श्वशूल आदि)मे इसे देते है। इससे श्वासागोकी सूजन कम होती है, रोगजन्तुका नाश होता है और ज्वर उतरता है। सब प्रकारके वातरोग चाहे वे सर्दीसे हुये हो अथवा आमविषसे, इसके उपयोगसे आराम होते हैं। इससे सूजन और ज्वर उतरता है तथा पीडा कम होती है। क्षयजन्तुओसे जो एक विशिष्ट प्रकारका व्रण होता है, उसका शोधन और रोपण इससे होता है। अनार्तवमे इसे देने-से पेटका दर्द कम होकर आर्तव आने लगता है।

(३९५) पेठा

फ़ैमिली कूकुरबिटासे (Family Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) पेठा, रकसा(रकसवा) कोहडा, कुम्हडा, (अ०) मह्दब, (फा०) वज्दुब, कद्दूए रूमी, (स०) कूष्माण्ड, बल्लीफल, (व०) देशी कुम्डा, (कोल) रकस, रकसा, (क०) अल, (प०) पेठा; (सिंध) पेठो, साओ, (म०) कोहला, (गु०) भुरूँ कोहलु, (मा०) पेठा, कोला, कोहला, (ते०) गुम्मडि, (मल०) कुम्पलम्, (लै०) **बेनीनकासा हीस्पिडा Benincasa hispida** (Thunb) Cogn (पर्याय—*Benincasa cerifera* Savi), (अ०) ह्वाइट पम्पकिन (White Pumpkin), ह्वाइट गोर्डमेलन (White Gourd-melon)। बीज (अ०) बज्रुल् मह्दबः, (फा०) तुख्म कद्दूए रूमी। (बीजका) तेल (अ०) दुह्न बज्रुल् मह्दब, (फा०) रोगन तुख्म कद्दूए रूमी।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षमे इसकी खेती होती है या यह जगली होता है।

वर्णन—यह एक रोईदार लताका प्रसिद्ध फल है जो तरबूजके समान, किन्तु लवाई लिए गोल होता है। फलका छिलका कडा और हरे रगका होता है और उसके ऊपर रोएँकी तरह एक सफेद चीज बिछी होती है, इसलिए वह सफेद मालूम होता है। जहाँ यह सफेदी उतर जाती है, वहाँ यह हरा दिखने लगता है। इसका गूदा मोटा और सफेद होता है। बीज हिंदवानेके बीजकी तरह, किन्तु सफेद होता है। पेठा बहुत काल तक सडता-गलता नही (स्थिरफल) है।

उपयुक्त अग—फलका गूदा और उसका स्वरस तथा बीज एव बीजोत्थ तेल।

रासायनिक सगठन—पेठामे जीवतिक्ति (विटामिन) 'बी', अनुत्पत् तेल, श्वेतसार, कुकुरबिटिन (Cucurbitin) नामक एक क्षारोद, एक तिक्तराल, प्रोभूजिद, मायोसीन, वाइटेलीन, शर्करा और राल और भस्म आदि तत्व होते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव तर। आयुर्वेदके मतसे पका उष्णवीर्य, कच्चा पित्तघ्न, बीज तैल शीतवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**हृदयबलोल्लासकारक, सतापहर, स्नेहन और मूत्रल** विशेषत पित्तरक्तोद्वेग-सशमन। पेठेकी बनी मिठाई सौमनस्यजनन और बल्य है। इसका मुरब्बा (मुरब्बा पेठा) मस्तिष्क और हृदयको बल देने और सौमनस्यजननके लिए खिलाया जाता है। इसका हलवा अधिक बनाते है और कभी-कभी अचार और बडियाँ भी बनाते है। हलवाके लिए पुराना पेठा उत्तम होता है। पित्त और रक्तका प्रकोप शमन करने, प्यास बुझाने और मूत्रका दाह मिटानेके लिए इसके बीजोका मग्ज अकेला अथवा उपयुक्त द्रव्योके साथ तबरीदकी

भाँति पीस-छानकर पिलाते हैं तथा शुष्क कास और उर क्षत एवं राजयक्ष्मा रोगमे उपयोग करते हैं। इसके उपयोगसे रक्तोद्वेग, पित्तकी तीक्ष्णता, पिपासा और मूत्रदाह मिटता है। अहितकर—शीत प्रकृतिवालोको। निवारण—नमक, सौंफ और कालीमिर्च। प्रतिनिधि—लौकी। मात्रा—पेठेके बीजका मग्ज ५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कच्चा कूष्माण्ड (पेठा) पित्तघ्न, अधपका कफकर, पका हुआ मधुर, अम्ल क्षारयुक्त, लघु, उष्णवीर्य, दीपन वस्तिशोधन, मूत्रल, हृद्य, मल-मूत्रको साफ लानेवाला, बल्य, वृष्य, बृंहण तथा उन्माद आदि मनके विकार, मूत्राघात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, अरुचि और पित्तको दूर करनेवाला है। पेठेके बीजोका तेल मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, अभिष्यन्दि, मूत्रल, अग्निमांद्यकर तथा वात और पित्तका प्रशमन करनेवाला है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४५, ४६, रा० नि०)।

नव्यमत— पेठा बल्य, पौष्टिक, शीतल, मूत्रजनन रक्तसग्राहक, शमन और रक्तपित्तप्रशमन है। इससे रक्तवाहिनियोका सकोचन होता है। बडी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है और निद्रा आती है। बीज कृमिघ्न है। चपटे कृमियोको मारनेके लिए २-४ तोला बीजका कल्क देते हैं और ऊपरसे विरेचन देते हैं। उन्मादमे जब रोगीके नेत्र लाल हो, नाडीकी गति तीव्र हो और रोगी उत्तेजित हो तब पेठेका रस देनेसे दस्त साफ होता है और निद्रा आती है। राजयक्ष्मामें कभी फुफ्फुससे रक्त आता है तब और किसी भी अन्दरके अवयवसे रक्त आता हो तब पेठेका रस देते है। क्षयकी प्रथमावस्थामे मुक्तापिष्टिके साथ पेठेका ताजा रस देनेसे बडा उपकार होता है। मधुमेहमें पेठेका रस देते हैं। अर्शमे कूष्माण्डपाक देते है। (औ० स०)।

फल मृदुसारक, मूत्रजनन, बल्य, वाजीकर, नियतकालिकज्वरप्रतिबधक है तथा रक्तष्ठीवन एव आन्तरिक अवयवोसे होनेवाले अन्य रक्तस्रावोको विशिष्ट औषधि है। उन्माद, अपस्मार और अन्य वातव्याधियोमे फलका रस प्रयुक्त होता है। बीज एव बीजोत्थ तेल कृमिनाशक है।

●

(३९६) पोई

फैमिली : केनोपोडिआसे (Family · Chenopodiaceae)

नाम। सफेद—(हिं०) पोई, पोय, (स०) उपोदकी (-दिका), पोतकी, (ब०) पुंई-शाक, (म०) मायाल, मायाल ची वेल, (गु०) पोई, पोथीनी वेल, (ता०) वसेला, (ले०) बासेल्ला आल्बा (**Basella alba** Linn); (अ०) इंडियन स्पिनाच (Indian Spinach), मलबार नाइटशेड (Malabar Night-shade)। लाल—(हिं०) लाल पोई, (स०), रक्त उपोदिका, रक्तपूतिका, (ब०) रक्तबनपुँई; (ले०) बासेल्ला रूब्रा (**Basella rubra** Linn.), (अ०) रेड मलाबार नाइटसेड (Red Malabar Night-shade)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषत बगाल और आसाममे यह प्राय स्वयजात वा जगली होती और घरोमें लगाई जाती है।

वर्णन—यह एक बडी शाखा-प्रशाखाविशिष्ट प्रसिद्ध लता है। पत्र मोटा, मासल, पानकी तरह गोल और गहरा हरा, पुष्प मजरीयुक्त, फल गोल मटराकृति, पकनेपर पके जामुनके काले और नीले डोल-मकोइया जैसे होते हैं। लाल पोईकी बेल सर्वथा सफेद पोईके समान होती है, किन्तु इसका तना लाल और पत्तोको नसे भी लाल होती है।

उपयुक्त अग—पचाग विशेषत पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें पुष्कल लबाव और कुछ लोहा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे सर्द एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र ज्वर (सताप)हर, दाहप्रशमन, स्वप्नजनन और वीर्यपुष्टिकर। रक्तज और पित्तज ज्वरोको शात करनेके लिए पोईके पत्तोको जलमे पीस छानकर पिलाते हैं। नीद लानेके लिए भी इसको इसी भाँति पिलाते और सिरपर लेप करते हैं। अग्निदग्धस्थलपर तुरन्त इसके पत्तोको पीसकर लेप करनेसे दाह शात हो जाता है और फोला नही पडता। शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यमे इसके पत्तोका चूर्ण बनाकर खिलाते या छानकर पिलाते है। अहितकर-शीतल प्रकृतिके लिए। निवारण-बादामका तेल और कालीमिर्च। प्रतिनिधि-पालक या बथुआका साग। मात्रा-७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—पोई रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, सारक (सु०), भेदक (च०), वृष्य, बल्य, कफकारक (वर्धक) तथा वातपित्त और मदको नष्ट करनेवाली है। (सु०सू०अ० ४६, च०सू०अ० २७); कण्ठको अहितकारी, पिच्छिल, निद्राजनक, रुचिकर, पथ्य, पुष्टिकारक, तृप्तिजनक और रक्तपित्तनाशक है। (भा०प्र०) सभी प्रकारकी पोईके गुण समान है।

●

(३९७, ३९८) पोस्ता (सफेद व लाल)

फैमिली : पापावेरासे (Family Papaveraceae)

नाम। क्षुप—(हिं०) पोस्ता, (अ०) नबातुल् खश्खाश, (फा०) कोकनार, (ले०) पापावेर सोम्नीफ़ेरुम् (**Papaver somniferum** Linn), (अं०) ह्वाइट या ओपियम् पॉपी (White or Opium Poppy)। फल (डोडा)-(हिं०) पोस्त, पोस्ता या अफीमका डोडा (बोडी); (अ०) किश्रुल् खश्खाश; (फा०) पोस्ते खश्खश, पोस्ते कोकनार (मुसल्लम); (स०) खाखस, खसफल, खस्तिल वल्कल, (म०) खसखस चे बोंडे; (गु०) खसखसना डोडा; (ले०) पापावेरिस काप्सूले (Papaveris Capsulae), पॉपी (अ०)कैप्सूल्स (Poppy Capsules)। बीज—(हिं०) पोस्तेका दाना, खसखस, पोस्तदाना, खसखास, (अ०) बज्रुल्खश्खश, (फा०) तुख्मे खश्खाश (कोकनार), खश्खाश पोस्तदाना, (व०, बम्ब०, म०, गु०) खसखस; (अ०) ह्वाइट पॉपी सीड्स (White Poppy-seeds)।

अफीम—(यू०) ओपिओन (Opion), (अ०) अल्-अफ्यून (इ० बै०), अफ्यून, लब्नुल् खश्खाश, (फा०) तिर्याक; (स०) अहिफेन, (हिं०,द०) अफीम, (बं०) आफिम्, (क०) अफीम; (म०) अफू, (गु०) अफीम; (मा०) अमल, अफीम, (ले०) ओपिउम् (Opium), (अं०) ओपियम्, थेरिआक (Theriac)।

वक्तव्य—उपर्युक्त नाम 'सफेद पोस्ता' 'ख़श्ख़ाश सफेद' या 'खशखाश बुस्तानी' के हैं। यूनानी वैद्यकमें खशखाश शब्दसे पोस्तेका डोडा (पोस्तखश्खाश) विवक्षित होता है। परन्तु जनसाधारण पोस्तेके दानेको खश्खाश कहते है। 'मात्र खशखाश' शब्दसे यह सफेद भेद विवक्षित होता है।

लालपोस्ता—(हिं०, व०) लालपोस्ता, लाला, (अ०) खश्खाशे मन्सूर, खश्खाशे अह्मर; (फा०) गुलेलाला, (गु०) लाल खश्खश, लाला, (म०) तांबडे खसखस, (बम्ब०) जगली मुद्रिका; (ले०) पापावेर रहीआस (**Papaver rhoeas** L), (अं०) रेड पॉपी (Red Poppy)।

वक्तव्य—उत्तर भारतवर्ष और गुजरातमें इसको 'गुललाला (गुलेलाला, गुल्लाला)' कहते हैं। परन्तु गुलेलाला 'शकायिकुन्नुमान' है। (वि० दे० 'गुल्लाला')।

विशेष टिप्पणी—अफीमकी लैटिन और अंग्रेजी संज्ञा ओपियम (Opium) और अरबी 'अफ्यून' आदि संज्ञायें सभी यूनानी संज्ञा ओपियून (जो स्वयं 'ओपोस' से जिसका अर्थ स्वरस है)से व्युत्पन्न है। इसलिए यूनानियोंने इसे उक्त संज्ञासे अभिधानित किया। परन्तु कतिपय ग्रन्थोंमें लिखा है, कि 'अफ्यून' संज्ञा यूनानी 'उफ्यून'से जिसका अर्थ 'निद्रा औषधि' है, व्युत्पन्न है। कतिपय शब्दकोषकार, यथा कामूसके लेखक आदि अफ्यूनको अरबी भाषाका शब्द ख्याल करते हैं और उसकी धातु 'फीन' या 'अफ्रिन' बतलाते हैं। इसकी संस्कृत संज्ञा अहिफेन 'अहि' (जिसका अर्थ सर्प है) तथा 'फेन' (जिसका अर्थ झाग या फेन है) का यौगिक है। प्राचीन भारतीय इसे सर्पका फेन या झाग ख्याल करते थे, इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया। (२) इसकी फारसी संज्ञा 'तिरियाक' यूनानी 'तिरियाक'का पर्याय है जिसका तात्पर्य 'वनपशु या काटनेवाला जानवर', जैसे—सिंह व सर्प आदि है। किन्तु यूनानी-वैद्योंकी परिभाषामें तिरियाकका अर्थ पशुओंके विषका अगद, जैसे सर्प आदिके विषका अगद है और अंगरेजी ट्रीक्लि (Treacle) जिसका अर्थ अधुना 'शीरा' लिया जाता है, यह भी वस्तुत. यूनानी '(Theriaka)' संज्ञाका समानार्थी है। कतिपय तिरियाकका स्वाद शीराके समान होती थी और अफ्यून वास्तवमें खसखासका शीरा ही है। परन्तु कहते हैं कि रूसमने सुहराबको देनेके लिए जो तिरियाक (तिरियाक) केकाऊसे लिया था, उसमें अफ्यूनभी सम्मिलित थी। अस्तु, उपर्युक्त उभय सम्बन्ध (मुनासिबतों) से अफ्यूनका नाम तिरियाक रखा गया। ईरानमें अधुना तिरियाक संज्ञाका व्यवहार 'कच्ची अफ्यून' के लिए होता है और 'पक्की अफ्यून' मदक अर्थात् अफ्यूनके शीराको ईरानी शीरअफ्यून कहते हैं। यह संज्ञा वस्तुत. तिरियाकके तात्पर्य एवं परिभाषित अर्थोंका अतिसमीचीन पर्याय है।

इतिहास—प्राचीन यूनानियोंको उक्त औषधिका ज्ञान था। यद्यपि बुकरातको इसके गुण-कर्मका ज्ञान नही था, तथापि इसके समकालीन दियागोरास इसके गुण-कर्मसे पूर्णतया अभिज्ञ था और वह कतिपय मस्तिष्क एव सौषुम्निक रोगोंमें इसका उपयोग करता था। जालीनूसने भी इसका सक्षिप्त विवरण किया है। हकीम सावफरिस्तुसने ईसवी सन्से ३०० वर्ष पूर्व 'मैकोनियून' नामसे अफीमका उल्लेख किया है। यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने भी ईसवी सन्से ३०० वर्ष पूर्व पोस्ताके डोडाके शीराको 'ओपोस' के नामसे जिससे 'ओपियून' संज्ञा और उससे 'ओपियम्' और 'अफ्यून' संज्ञायें व्युत्पन्न हैं, अफ्यूनका उल्लेख किया है। और मैकोनियूनको (जो डोडासहित पोस्ताके वृक्षका उसारा होता है) ओपोसको अपेक्षया प्रभावमें निर्बलतर बताया है। इसने अफीमकी प्राप्तिविधिका भी यथार्थ वर्णन किया है। रोमदेशी हकीम प्लाइनीने भी ओपियून नामसे इसका उल्लेख किया है। यूनानियोंसे अरबोंको उक्त औषधिका ज्ञान हुआ और उन्हीके माध्यमसे पूर्वी देशों, जैसे—ईरानमें अफीमके गुणकर्मका ज्ञान हुआ। सूतरां शैख बूअलीसीना और राज़ी ने भी इसका विशद विवरण किया है। चीनदेशमें भी अरबवासियोंके माध्यमसे अफीम पहुँची और भारतीयोंको भी मुसलमानों हीसे इसका ज्ञान हुआ। प्राचीन मिस्र और भारतवासियोको अफीम का ज्ञान नही था। सुतरां संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका विवरण नही मिलता। कदाचित् बादके ग्रन्थोंमें 'अहिफेन' नामसे इसका उल्लेख किया गया है। लालपोस्तेका उल्लेख 'रूईऑस' के नामसे यूनानी हकीम सावफरिस्तुसने तथा हकीम दीसकूरीदूसने मैक्योन रूईऑसके नामसे, अरबी और अजमी चिकित्सकोंने 'खशखास मन्सूर', 'खशखाश अह्मर' और 'गुललाला' के नामसे किया है। इब्न अबी उसैबिआ (सचिका १ पृ० २३)ने लिखा है कि अल्-तिर्याके (यू० Therika) एक योगौषध है जिसे तिरियाक (Theriac) भी कहते हैं। उनके कथनानुसार इसकी व्यवस्था सर्वप्रथम अस्क्लीवियूस ने दी है। अरितर्याकुल अकबर इसका एक भेद है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके बिहार, बनारस, मध्य और पश्चिम भारतवर्ष, राजपुताना और मालवामें पोस्तेकी खेती होती है। यह नेपाल, आसाम और ब्रह्मामें भी होती है। इसके अतिरिक्त चीन, ईरान और एशिया

माइनरमें इसकी विपुल उपज होती है। लाल पोस्ता कश्मीर तथा भारतवर्षके अनेक स्थानो (मैदानो)मे होता है। इसका मूल उत्पत्तिस्थान एशिया माइनर है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुप है। पत्र चौडा, लबा, अवृन्तक, पत्रप्रात कटावदार (खडित) शिराबंधुर, मध्य पशुका शुभ्रवर्ण, पुष्प बृहत्, दल पीत या श्वेतवर्ण, स्थूलत देखनेपर इसका क्षुप भँडभाँडके क्षुपकी तरह दिखता है। फल अर्थात् डोडा (पोस्ते ख़श्ख़ाश) साधारणत अर्ध गोलाकार या अण्डाकृति या किसी कदर लम्बा, २ या ३ इञ्च व्यासमे होता है इसके नीचेकी तरफ ग्रीवा और ऊपरकी ओर कगूरेदार चोटी होती है। रगत पिलाई लिये भूरी जिसमें कही-कही काले धब्बे होते हैं। रचना भीतरसे खानेदार जिनकी दीवारें अत्यत कोमल और महीन होती है। भारतीय बाजारोमे मिलनेवाले डोडे अत्यत टूटे-फूटे होते हैं और टुकडो पर प्राय लम्बाईके रुख और कभी-कभी व्यत्यस्त ३ या ४ चीरा लगे होते है। खानोके भीतर बहुत छोटे-छोटे प्राय सफेद, पर कभी-कभी भूरे या काले बीज पाये जाते है जिनको खश्खाश कहते हैं। स्वादमें यह मधुर और स्निग्ध (Oily) होता है। रगके विचारसे यह दो प्रकारका होता है—(१) खश्खाश सफेद जिसका वर्णन यहाँ किया गया है। इसको ख़श्ख़ाश बुस्तानी भी कहते है। (२) खश्खाश स्याह् जिसको 'जंगली ख़श्खाश' भी कहते हैं। इसका फूल भी काला या नीला होता है। खश्खाश मन्सूर (लाल पोस्ता)के दाने भी काले होते हैं, परतु फूल लाल और डोडी भी लाल मसृण और गोल होती है। सायकाल कच्चे पोस्तेके चतुर्दिक् कतिपय गभीर चीराये (किंतु जो अदर तक न जायँ) लगा देते है और उनसे जो दूधके समान रस निकलकर जम जाता है, उसको प्रात काल उनपरसे खुरचकर सुखा लेते है। इसे अफीम कहते है। यह पहले कुछ-कुछ भूरी और बादमे काली हो जाती है। स्वाद तिक्त, उत्क्लेशजनक और गध विशेष प्रकारकी अप्रिय होती है।

उपयुक्त अग—सुखाई हुई पोस्तेकी डोडी (पोस्ते खश्खाश—फलत्वचा), बीज (तुख़्मेखश्खाश), बीजोत्थ तेल (रोगन ख़श्खाश) और सुखाया हुआ दूध अर्थात् फलनिर्यास (अफीम)।

रासायनिक सगठन—पोस्त (डोडी)मे अल्पप्रमाणमे अफीम और बीजोमे मीठा अनुत्पत् हलके पीले रगका गधरहित तेल होता है, जिसको पोस्ते खश्खाशका तेल (रोगन खश्ख़ाश) कहते है। अफीममें मार्फिन (Morphine), नार्कोटीन (Norcotine) और कोडीन (Codeine) प्रभृति क्षारोद होते है।

कल्प तथा योग—रामहराम (म० जवामेअ), बरशाशा, दियाकूजा, खमीरा खशखाश (मुरक्कब), शर्बत खशखाश, कुर्स खश्खाश, लऊक खशखाश, जिमाद् अजीब, हब्ब शकीका, माजून दिक व सिल, कुर्स मुसल्लस, ख़ब.ब आबर, रोगन मुजर्रबा राजी, तिर्याक अफ्यून।

अफीम

अफीम—शैखलिखित समोहन औषधि योगका एक उपादान है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य योग निम्नलिखित है —

सजरीना (शैख)। माजून मुकव्वी व मुवह्हरी (जामेउस्सेनाआ), रोगन मुसक्किन, जदेजाम इश्क बुजुर्ग, तिर्याक वाहे (शैख), हब्ब अफ्यून, हब्ब जदवार, शियाफ अब्यज अफ्यूनी।

प्रकृति—चौथे दर्जेमे शीत और रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्वापजनन, स्वप्नजनन, वेदनास्थापन, अभिष्यदि (मुसद्दिद), उग्र संग्राही, रक्तस्तंभन, शुक्रस्तभन और ऋतुज्वरहर, विशेषत. वेदनास्थापन और प्रसेकावरोधक (हाबिस नजूलान) है।

स्वापजनन और वेदनास्थापन होनेके कारण शिर शूल, अनन्तवात (दर्दे शकीका) पार्श्वशूल (जातुज्जनब), कटिशूल, आमवात, दंतशूल, नेत्र एवं कर्णशूल, गृध्रसी और बहुधा समस्त अंगप्रत्यंगोंकी पीडा शमन करनेके लिए लेप, अभ्यंग और आश्च्योतनकी भांति इसका उपयोग करते हैं। स्वप्नजनन होनेके कारण रक्तज और पित्तज सरसाम (सन्निपात), मद, उन्माद, अनिद्रा इत्यादि और आंतरिक वेदनाओंमें इसे पिलाते हैं जिससे रोगीको नींद आकर मूलव्याधि बहुत कुछ दूर होती है। संग्राही होनेके कारण यह अतिसार और प्रवाहिकाको बंद करनेके लिए उपयोग की जाती है। पर यदि प्रवाहिका विबन्धजन्य हो तो रेचनके द्वारा विबंध (सुद्दा)का उत्सर्ग कर लेनेके उपरांत इसका सेवन हितकर होता है। रक्तस्तंभन होनेके कारण प्रत्येक अंग विशेषकर अन्त्रके रक्तस्राव-को रोकनेके लिए यह पान और बस्तिकी भांति प्रयुक्त होती है। स्वापजनन और संशमन होनेके कारण बाह्याभ्यंतर उपयोगमें यह समस्त प्रकारके कास विशेषकर उस कासके लिए परम गुणदायक है, जो वातप्रकोप (नसवी हैजान) के कारण बार-बार आता है और कफोत्सर्ग कम होता हो। किंतु जबकि वायुप्रणालिकायें (शोबरिया) कफसे परिपूर्ण हों तब अफीमका सेवन अहितकर सिद्ध होता है। प्रसेकावरोधक होनेके कारण दायमी प्रसेक और प्रति-श्यायमें इसका उपयोग करते हैं। शुक्रस्तंभन होनेके कारण शीघ्रपतन रोगमें यह पुष्कल उपयोग की जाती है। ऋतुज्वरोंको दूर करने और गर्भपात रोकनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। गर्भपात और प्रसवोत्तर वेदनाको दूर करनेके लिए भी इसे पिलाते हैं। नेत्रके रोगोंमें भी इसका उपयोग होता है। यह बाल गिरनेको रोकती है। अफीमके विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—अधिक प्रमाणमें अफीम खानेसे रोगी इतनी गंभीर निद्रामें सो जाता है कि वह सर्वथा अचेत हो जाता है और उसका जागना कठिन होता है। शरीरकी त्वचा शीतल एवं चिपचिपी हो जाती है। नाड़ी कमजोर एवं सुस्त चलने लगती है। श्वासोच्छ्वास भी सुस्त हो जाता है। सतत खर्राटे और शोथ आने लगता है और श्वास अवरुद्ध होकर रोगी यमलोक सिधारता है। चिकित्सा—अफीम खाये हुएको कै करायें या स्टॅमक-पम्पके द्वारा मेदेको भली-भांति धोकर बिनौलेका काढा पिलायें अथवा हींग या जुदबेदस्तर खाई हुई अफीमकी मात्राके बराबर खिलायें। अहितकर—कामावसादकर है और समस्त बाह्यांतरिक शक्तियोंको निर्बल बनाता है। निवारण—केसर और जुदबेदस्तर। प्रतिनिधि—खुरासानी अजवायन। मात्रा—दो चावलसे १ रत्ती तक।

आयुर्वेदीय मत—अहिफेन (अफीम) रसमें तिक्त, विपाकमें कटु, सूक्ष्म, उष्णवीर्य, विष, स्तम्भन, वेदना-स्थापन, स्वेदजनन, निद्रा लानेवाला और कफके रोगोंका नाश करनेवाला है। (द्रव्यगुणविज्ञानम्)।

नव्यमत—मुँहसे लेकर गुदापर्यंत महास्रोतस् (पचननलिका) पर अफीमकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। इससे थूक और आमाशयका रस कम होता है, भूख कम होती है और मल गाढा (शुष्क) होता है। नाडीकी गति सुधरती है। मन आनन्दित और उत्साहित होता है। विचारशक्ति और कामशक्ति बढती है तथा मनके शान्त होनेसे नींद आती है। ये सब क्रियायें थोडी मात्रामें अफीम देने पर देखनेमें आती हैं। इसे बडी मात्रामें देनेसे इसकी उत्तेजकता नष्ट होती है, पाचनशक्ति बिगडती है तथा स्पर्शज्ञान और सुख-दुख समझनेकी शक्ति कम होती है। मस्तिष्कपर अफीमकी ये सब क्रियायें प्रथम और मुख्यतया होती हैं और पीछे ज्ञानवाहिनियों पर होती हैं। इससे शरीरके सभी रस कम होते हैं, मात्र पसीना, मूत्र और दूध कम नहीं होता। अफीममें उत्तेजकआह्लादकारक, वाजीकर शामक, स्वापजनन, पीडाशामक, शूलघ्न, मादक, कफघ्न, ग्राही, रक्तस्तंभन, स्वेदजनन, विषमज्वरप्रतिबन्धक शोथघ्न, कासहर और संकोचनविकास प्रतिबन्धक (आक्षेपहर) ये बहुमूल्य गुण हैं। इसे थोडी मात्रामें देनेसे ये सब गुण देखनेमें आते हैं। एक मात्रामें ऊपर लिखे सब गुण देखनेमें नहीं आते। मात्रा—धीरे-धीरे गुणकी अपेक्षा हो पावसे इसमे किसी भी प्रकार की वेदना शांत होती है। आधी रत्ती गोलीके रूपमें देना चाहिए और त्वरित गुणकी अपेक्षा हो तो १ रत्ती मात्रामें आसव या मद्यमें मिलाकर देना चाहिए।

शस्त्रक्रिया करने बाद, चोट या मार (अभिघात) लगनेके बाद और शरीर जलनेपर रोगीको अफीम देते हैं। इससे पीडाका ज्ञान नहीं होता, रोगीको नींद आ जाती है और मनका आघात कम होता है। यह उत्कृष्ट

वेदनास्थापन है। इससे सब प्रकारकी वेदना शात होती है। इसीलिए मूत्राश्मरी, पित्ताश्मरी, (भार) मानसिक आघात, अग जलना, अस्थिभग, उदरशूल, अर्बुद (केन्सर आदि), आमाशयका क्षत, तीव्रसन्धिवात आदिमें पूर्ण मात्रामे और लारम्बार इसे देते हैं। पीडासे निद्राभग होती हो तो इसके समान दूसरी औषधि नही है इसका लेप शोथघ्न और पीडाशामक है। इसलिए सन्धिशोथ, कटिशूल, फुप्फुम सावरणशोथ, नेत्राभिष्यन्द आदि वेदनाधिक शोथोमे इसे अकेला या उचित द्रव्योके साथ मिलाकर लेप किया जाता है। यह फुप्फुसान्तर्गत श्वास-नलिकाओके सकोच-विकासको कम करता है। इसलिए शुष्क कास-कास और दमामे तथा कफयुक्त कासमें इससे लाभ होता है। परन्तु श्वासोच्छास टीक चलता हो, त्वचा मृदु हो और कफ एकदम ढीला पड गया हो, तब ही इसे सूक्ष्म प्रमाणमे कपूर, नौसादर, मदारकी जडकी छाल, लोबान, लोबानके फूल, काँदा जैसे उत्तेजक श्लेष्मनि.सारक द्रव्योके साथ मिलाकर देना चाहिये। आमाशय या आँतोमें क्षत होकर रक्तस्राव होता है। तब इसे देते हैं। इससे आँतोकी पुर सरण गति कम होती है और रक्तस्राव बन्द होता है। क्षय रोगमें होनेवाला रात्रिस्वेद इसके सेवनसे कम होता है। मधुमेहमे इसे देनेसे शर्कराकी राशि कम होती है।

फल (पोस्तेकी डोडी-पोश्त खश्खाश)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत और पहलेमे रूक्ष। जिस पोस्तेसे अफीम न निकाली गई हो वह अफीम निकाले हुए पोस्तसे वीर्यवान् होता है।

गुण-कर्म—स्वापजनन, स्वप्नजनन, वेदनास्थापन, सग्राही रक्तस्तभन विशेषत स्वापजनन और वेदना-स्थापना है।

उपयोग—यह कण्ठ और उर फुप्फुस रोगोमें लाभकारी है। स्वापजनन और वेदनस्थापन होनेके कारण शिर शूल, अतन्तवात अर्धावभेदक, पार्श्वशूल, कटिशूल, आमवात और गृध्रसीमे यह लेप और परिषेककी भाँति प्रयुक्त होता है। नेत्राभिष्यदमें दर्दको शमन करने और दोषको विलोम करनेके लिए नेत्रके चतुर्दिक् इसका लेप किया जाता है और अन्य औषधद्रव्योके साथ पोटली बनाकर अर्कगुलाबमें तर करके नेत्रके ऊपर बारम्बार फिराया जाता है। कर्णशूलमे इसके काढेका बफारा देते और कपडेकी गद्दी इसमें भिगोकर सेक वा टकोर करते हैं। प्रसवो-त्तर वेदनाको शमन करनेके लिए भी इसके काढेसे सेक कराते हैं। कठके उष्णशोथोमे दोषको विलोम और वेदना को शमन करनेके लिए इसका गण्डूप कराते है। स्वप्नजनन होनेके कारण सन्निपात (सरसाम) मद मालिन्खोरिय, उन्माद और अनिद्रामे इसका काढा पिलाते और लेप करते हैं और अकेले या उपयुक्त औषधियोके साथ पीसकर शिर और मस्तकपर लेप करते है। सग्राही होनेके कारण अतिसार एव प्रवाहिकामे इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। यह शुष्क कासके लिए परम गुणदायक है और इस रोगमें नाना प्रकारसे उपयोग किया जाता है। लऊकसपिस्ताँ इसका प्रसिद्ध योग है जो कासके लिए सिद्ध भेषज है। रक्तस्तभन होनेके कारण यह रक्तष्ठीवन और अन्त्रस्थ रक्त-स्रावमे उपयोग किया जाता है। शर्बत ख़श्ख़ाश, लऊक ख़श्ख़ाश और दियाकूजा इसके प्रसिद्ध योग हैं जो उष्ण प्रसेक और कास एव रक्तष्ठीवनमे प्रयुक्त होते है। अहितकर—फुप्फुसो और शीतप्रकृतिके लिए। निवारण—शुद्ध मधु, शर्करा और मस्तगी। प्रतिनिधि—बहुत ही हलकी मात्रामे। मात्रा—एक माशा से २ माशा तक।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और पहले (साहबहावीके मतसे दूसरे)मे तर है।

गुण-कर्म—बाह्यत्वचापर उपयोग करनेसे यह अवसादक और स्वापजनन कर्म करता है। सिरपर लेप करनेसे इसका स्वप्नजनन कर्म होता है। चूर्ण बनाकर खिलानेसे भी यह स्वप्नजनन और स्वापजनन कर्म करता है तथा अन्त्र-आमाशयमें कब्ज उत्पन्न करता (सग्राही), अतिसारको बन्द करता, फिर भी इसका क्वाथ और फाट सारक और सीठी सग्राही हैं। यह अन्त्रस्थ-रक्तस्रावको बद करता है।

उपयोग—शरीरके समस्त अग-प्रत्यगोकी पीडा शमन करनेके लिए इसको उपयुक्त औषधियोके साथ पीस-कर लेप करते है तथा इसका काढा परिषेक वातरेडा और सीकर (सकूब)की भाँति उपयोग करते है। शर्कराके

साथ यह उर कण्ठ और फुफ्फुसकी कर्कशताको दूर करता है। यह शिर:शूल-निवारण और मस्तिष्क-बलदायक है। गरम तथा खुश्क खाँसी, रक्तष्ठीवन, तपेदिक (क्षयज्वर) और यकृत् तथा वृक्कके दौर्बल्यको नष्टक रता है। यह वस्तिसक्षोभ और वस्तिके अन्य रोगोके लिए गुणदायक है, शरीरको पुष्ट करता, बादामके मग्जके साथ उत्तम रक्त उत्पन्न करता है। इनको किंचित् भूनकर सूँघनेसे अनिद्रा दूर हो जाती है। शैखके मतसे इसमें पर्याप्त पोषणाश नही है। यह साद्रदोष उत्पन्न करता है। १ माशा कम ३ तोलेकी मात्रामे पीसकर शर्कराके साथ खानेसे नीद आ जाती है। स्वर्गवासी हकीम मुहम्मद हुसैन रामपुरी ऋतुजन्य शीतपूर्वज्वरका वेग रोकनेके लिए इसको पिसवाकर शीरा पिलवाते थे। इनको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे शुक्र और वाजीकरणकी शक्ति अधिक होती है। मग्जबादाम और चीनीके साथ इसका हरीरा बनाकर पीते रहनेसे शुक्र उत्पन्न होता है और वृक्कमें स्थूलता आती है। वाह्य प्रयोगसे झाईं, श्याम दाग (नमश) और तिलकालक (खैलान) को दूर करता है। काला पोस्तेका दाना (खश्खाश स्याह) तीसरे दर्जेमें शीत और दूसरेमे रूक्ष है तथा सभी कर्मोमें सफेदकी अपेक्षया बलवत्तर होता है। ज्वरोमें यह सफेदकी भाँति प्रयुक्त होता है। अहितकर—अधिकतर फुफ्फुसको अहितकर है। काला मस्तिष्कके लिये अहितकर है। निवारण—मस्तगी, तज, अजमोदा खाँड और शहद। कालाका सौंफ। प्रतिनिधि—काहूके बीज। कालेका जगली काहू। मात्रा—१ माशासे ३ माशे तक।

खश्खासका तेल (रोगन खश्खाश)—

गुण-कर्म तथा उपयोग—पोस्तेके दानेसे उसके तेलका कर्म निर्बल होता है। यह नींद लाता और सुद्दा (अवरोध) डालता है। इसको गुलरोगनमें मिलाकर सिरपर मलनेसे शिर शूल आराम होता है। यह अन्य तेलोकी भाँति प्रसेक (नजला) उत्पन्न नही करता, प्रत्युत सफेद पोस्तेका तेल तो गरमीसे हुई खाँसीको मिटाता है तथा गरम दर्दों और शोथोको मिटाता है। काला पोस्तेका तेल कनपुटियो पर मलनेसे सुन्नता पैदा करता और नीद लाता है तथा शरीरको भारी बना देता है। कानमें टपकानेसे यह तत्काल कर्णशूल शमन करता है।

आयुर्वेदीय मत—पोस्तेका क्षुप पाकमे मधुर, भारी, ग्राही, वृष्य, बल्य, कफकारक, वीर्यदायक, कान्तिदायक तथा वातपित्तको शमन करनेवाला है। फल रूक्ष, ग्राही और रक्तशोषक है। (नि० र०)। पोस्तेकी डोंडी तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, वातकारक, मलरोधक (ग्राही), धातुशोषक, मदकारक, वाणीको बढानेवाली, रुचिकर, बारबार मोहको उत्पन्न करनेवाली तथा कफनाशक, कासनिवारक और बहुत सेवन करनेसे पुस्त्वका नाश करनेवाली है। पोस्तदाना (खसबीज) मधुर, भारी, बल्य वृष्य, ग्राही और वातविनाशक है। (भा० प्र०)।

●

(३९९) प्याज

फैमिली लीलिआसे (Family Liliaceae)

नाम—(हिं०) प्याज, (अ०) बस्ल, (फा०) पियाज, (स०) पलाण्डु, (ब०) पेंयाज, (प०) गंडा, (क०) पाज, (सिं०) वसर, (म०) कादा, (गु०) कादो, डुगली(री), (लै०) आल्लिउम् सेपा (**Allium cepa Linn**); (अ०) ओनियन (Onion)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध कदशाक है। लाल और सफेद भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसके बीज तिकोने, काले और तिक्त होते है। फारसी और अरबीमे इनको क्रमश 'तुख्मे पियाज' और 'बज्रुल्बस्ल' कहते है।

उपयुक्त अंग—जड़ (कंद) और बीज।

रासायनिक संगठन—इसमें एक चरपरा एवं उग्रगंधि उड़नशील तैल और गंधक होता है। कंदके बाहरी छिलकेमें क्वर्सेटीन नामक एक पीतरंजक द्रव्य होता है। स्वरस कीटाणुनाशक है।

प्याज—

प्रकृति—मलभूत द्रव्योंके साथ तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे कुछ उष्णवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, दोषपाचन, छेदन, श्लेष्मनिःसारक, लेखन, वाजीकर, प्रमाथी (मुफत्तेह), विषघ्न, मूत्रार्तवजनन विशेषतः व्रणशोथपाचन एवं वाजीकर है।

उपयोग—प्याज अधिकतया मसालेमें डालकर खाया जाता है। यह निद्राकर एवं आनाहकारक है। इसका अत्यधिक सेवन मस्तिष्कको हानि पहुँचाता है; किंतु इसका सेवन संभोगशक्तिवर्धक है। वाजीकरणके लिए इसके स्वरसका शर्बत बनाकर उपयोग करते अथवा प्याजका रस, मधु और घी तीनों समप्रमाण लेकर पिलाते हैं। व्रणशोथविलयन और पाचनके लिए इसको अग्निमें दबाकर सुहाता गरम बाँधते हैं। किलास और छीप वा झाँई (वहक) जैसे रोगोंमें औषधद्रव्योंको इसके रसमें पीसकर लेप करते हैं। बवासीरके मस्सोंका मुँह खोलनेके लिए इसको मस्सों पर बाँधते हैं। हैजेमें प्याजके रसके साथ चूनेका पानी मिलाकर पिलाते हैं। प्लेग तथा अन्य जनपदोद्ध्वंसक रोगोंके प्रकोपकालमें प्याजको सिरकामें डालकर खाते हैं। गरम वायुजन्य दोषसे बचनेके लिए कोई-कोई बिना सिरकाके कच्चे प्याजका उपयोग करते हैं। नेत्रकी धुंधता (ग़शावा) और जालेको नष्ट करनेके लिए केवल प्याजका रस या उसमें समप्रमाण मधु मिलाकर नेत्रमें लगाते हैं। यदि कानमें फुंसी और उसके कारण दर्द हो तो अग्निमें पुटपाक (मुशव्वी) करके उसका रस निचोड़कर सुहाता गरम टपकाते हैं। नानाविध विभिन्न प्रकारके जलदोषसे सुरक्षित रहनेके लिए प्याज या उसके अचारका सेवन लाभकारी है। अहितकर—उष्णप्रकृतिको। निवारण—सिरका, नमक, मधु और अनारका रस। प्रतिनिधि—कादा और कुर्रास शामी। मात्रा—प्याजका रस २-३ तोले।

बीज—

प्रकृति—मलभूतद्रव्योंके साथ दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर और लेखन। प्याजके बीजोंको अधिकतया वाजीकर माजूनोंमें डालकर नपुंसकताके रोगियोंको खिलाते हैं। इन्हें शहदके साथ पीसकर खालित्यभेद (दाउस्सालब), व्यंग (कल्फ़) और छीप वा झाँई (वहक)पर लगाते हैं। सिरकामें पीसकर दद्रुपर और मस्सोंको नष्ट करनेके लिए नमकके साथ पीसकर मस्सोंपर लेप करते हैं। यह शीतल प्रकृतिवालोंके लिए विशेष वाजीकर है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए। निवारण—मधु, सिरका और नमक। प्रतिनिधि—गदनाके बीज। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—प्याज गुरु, कुछ उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, कुछ कफ और पित्तकर, बल्य, आहारयोगी, वाजीकर, रोचक, अग्निवर्धक तथा वातघ्न है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—प्याज उष्ण, लघु, कटु, उत्तेजक, आनुलोमिक, कफघ्न और मूत्रजनन है। इससे कफ पतला होकर गिरने लगता है और नया कफ उत्पन्न होना बंद होता है। आंतोंकी शक्ति बढ़कर दस्त साफ होनेके लिए तथा अर्श, गुदभ्रंश और कामलामें प्याजको देते हैं।

(४००, ४०१) प्याज जंगली, व विलायती

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliacea)

नाम—काँदा (हिं०) जगली प्याज, वनपियाज, कांदा, कनरी, (अ०) उन्सुले हिंदी, इस्कीले हिंदी, (फा०) पियाज़ सहराई; (सं०) कोलकन्द, वनपलाण्डु, (म०) वनप्राण, (बं०) जोगलीपेयाज, (गु०) जगली कांदो, पाणकदो; (म०) रानकांदा, कोल्हकांदा; (फा०) पुटाग्न, (लै०) (१) ऊर्गीनेआ इंडिका (Urginea indica Kunth), (२) इसके गुण तथा रूपमें लगभग समान एक दूसरी वनस्पति भी होती है, जिसका नाम सिल्ला हिआसींथिना Scilla hyacinthina (Roth) Macb (पर्याय—सील्ला इंडिका *Scilla indica* Baker) है, (अ०) इन्डियन स्क्विल्ल (Indian Squill), अर्जीनिया (Urginea)।

विलायती कांदा—(हिं०) विलायती जगली प्याज (कांदा, (अ०) अल्-इस(इ–)कील, इस्कील, उन्सुल (इ० बैं० तजि० २ पृ० १३८), उन्सुल(-लान) (इ० बैं०) बस्लुल् उन्सल, बस्लुल्फार (कानून १ पृ० ३४६) बस्लुल्ख़र्र, (फा०) पियाज उन्सुल, पियाज दश्ती(मूश), (लै०) ऊर्जीनआ सील्ला (Urginea scilla), (यू०) स्किल्ला (Skilli = सुखाना)।

वक्तव्य—यह समुद्रतटों, विशेषकर भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) एव ओकियानूस सागरके तटीपर अधिक उत्पन्न होता है, इसलिए इसकी एक प्राचीन सज्ञा स्क्वील्ला मारीटिमा अर्थात् सामुद्रपलाण्डु (Sea onion) है जिसका अरबी पर्याय 'बस्लुल् उन्सुल' है। यह समुद्रतटसे दूर जगलमें भी उत्पन्न होता है। अतएव इसे अरबीमें बस्लुल्ख़र्र और फारसीमें प्याज़ दश्ती और उर्दू तथा हिन्दीमें जगली प्याज़ (वनपलाण्डु) कहते है। 'इस्किल' यूनानी 'स्किल्ला' शब्दसे उत्पन्न है, जिसका अर्थ 'शुष्क करना' या पीडा देना है। मुहीत आज़ममें उन्सुल या उन्सल्को 'ऊन्सल' लिखा है जो यथार्थ नही है। उपयुक्त दोनो वनस्पतियाँ यद्यपि गुण एव स्वरूपमे समान है और इसलिए एक दूसरेका प्रायः प्रतिनिधि हो सकती है, तथापि वानस्पतिकदृष्टिसे एक ही फैमिलीकी होने पर भी भिन्न-भिन्न वानस्पतिक प्रजातियाँ है। यूनानीनिघण्टुओमें विलायती कांदाका वर्णन किया गया है।

इतिहास—यह अतिप्राचीन ओषधि है। यूनानी हकीम फीसागोरसने इसके गुणकर्म विषयक एक सजिल्द पुस्तककी रचनाकी। 'सिरकये उन्सुल' इसीका आविष्कार है। बुक़रात इसका बाह्यान्तर प्रयोग करता था। प्लाइनी इससे परिचित था और इसके दोनो भेदो (लाल और सफेद) का ज्ञान रखता था। दीसकूरीदूसने भी 'इस्क्विल' या 'इस्कील' नामसे इसका उल्लेख किया है। उसने इससे सिरका (सिरकए उन्सुल) बनानेकी विधिका उल्लेख किया जो ब्रिटिश फार्माकोपिआके पिछले सस्करणमें एक मान्य कल्प था। प्राचीन यूनानी हकीम कफोत्सारि, मूत्रजनन, अङ्गरोधोद्घाटकके रूपमें कई एक रोगो विशेषकर श्वास, शोथ, आमवात, कुष्ठ और कतिपय अन्य रोगोमें इसका उपयोग किया करते थे। अरबी यूनानी चिकित्सकोने इसके गुणकर्म वर्णनमें यूनानी चिकित्सकोका अनुसरण किया।

उत्पत्तिस्थान—कांदा भारतवर्षमें विशेषत कारोमडल तट और भारतीय प्रायद्वीपमें तथा विलायती कांदा भूमध्यसागरीय तटवर्ती प्रदेशोमें स्वयजात होता है।

वर्णन—जगली प्याज भी आपातत देखनेमें कर्पितकी ही भाँति होता है, केवल इसके पत्र प्याजके पत्रसे बडे और चौडे होते हैं। ताजाकद चखनेपर जीभपर कण्डू प्रतीत होती है। इसका स्वाद अत्यन्त कटु एव तिक्त होता है।

उपयुक्त अग—कांदाकी परतदार गाँठ (कद) जो विलायतीसे छोटा, प्याजवत् विभिन्न आकार-प्रकारकी, सफेदी लिए तिक्त और उत्क्लेशजनक होती है। कांदाकी नवीन छोटी और ताजी सुखाई हुई जड काफी गुणकारी है और गुणसाम्यके कारण विलायती कांदाकी जगहमें काममे ली जा सकती है। औषधार्थ प्रथमवर्षका नीबू जितना

बडा कांदा लेना चाहिए। विलायती कॉंदाके भीतरी परतकी फॉंकें जो किसी कदर बल खायी हुई २.५ सें०मी० से ५ से०मी० (१ या २ इञ्च) लम्बी अर्धस्वच्छ, पिलाई लिये सफेद या गुलाबी, निर्गंध और तिक्त होती हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) सिल्लीटॉक्सिन और (२) सिल्लीपिक्रिन् यह दो वीर्य जो ग्लूको-साइड है और (३) सिल्लीन यह तीन उपादान पाये जाते है।

कल्प तथा योग—सिकंजबीन अंसली, मिरकण् उन्सुल।

प्रकृति—मलभूत द्रवोके साथ गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, दोषपाचन, व्रणकारक, शोणितोत्क्लेशक (जालिब खून), विषघ्न, मूत्रार्तवजनन, कफोत्सारि, उदरकृमिनाशक और विशेषत कामलाहर तथा दृष्टिप्रसादन (मुजल्ला बस्र) हैं। जंगली प्याज साधारण प्याजसे अधिक वीर्यवान् होता है। यह उसकी भॉंति खानेके काममें नही लिया जाता; किन्तु उन समस्त रोगोमें गुणदायक है जिनमें साधारण प्याज उपादेय होता है। जंगली प्याज विशेषत. मूत्रजनन और कफनिष्ठीवनकर्ममें अधिक बलवान् है। काष और जलोदरमें पुष्कल उपयोग किया जाता है। उदरकृमिनाशनके लिए भी इसका उपयोग करते है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालो और वातनाडीको। निवारण–मिश्री और सिकंज-बीन। प्रतिनिधि–जंगली लहसुन और वच (वजतुर्की)। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जंगली प्याज कटु, उष्णवीर्य, उत्क्लेश और वमन करानेवाला, हृद्य तथा कफ, कृमि, कास और श्वासको दूर करनेवाला है।

नव्यमत—इसकी क्रिया डिजिटेलिसके समान होती है। यह अल्पमात्रामें स्वेदजनन, मूत्रजनन कफघ्न और हृदयबल्य है। बडी मात्रामें इससे वमन और विरेचन होता है तथा आमाशय और अन्त्रका दाह होता है। यह अन्त्र, वृक्क और फुफ्फुस द्वारा उत्सर्जित होता है। आँतोसे निकलते समय मलको पतला करता है। वृक्कसे निकलते समय मूत्रकी राशि बढाता है और फुफ्फुससे निकलते समय कफको पतला करता है। इससे हृदयको शक्ति मिलती है और हृदयका स्पदन स्पष्ट मालूम होने लगता है। विदेशी चिकित्सापद्धतिमें इसका स्वेदजनन, मूत्रविरेचन, कफघ्न और हृदयबल्य औषधके रूपमें उपयोग होता है। बडी मात्रामें यह वामक और रेचक होता है।

●

(४०२) फंजियून

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०,पं०) वातपान, (अ०, भा०बाजार)फंजियून; (अ०) सोआली, हशीशतुस्सोआल, (यू०) फजियून फंजरियून, (लै०) टूस्सीलागो फार्फारा (**Tussilago farfara Linn**), (अ०) कोल्ट्स फूट (Colts' Foot), हॉर्स-हूफ (Horse-hoof), कफ-वर्ट (Cough-wort)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालयमे कश्मीरसे कुमायूँ तक, पंजाब, ईरान और यूरोपकी सान्द्र भूमिमें होता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पति है, जिसकी जड जमीन पर पसरी हुई, पुष्कल उपमूलयुक्त, पिच्छिल और किंचित् तिक्त होती है, जिसमे पत्तोसे पहले फूल आते है अर्थात् फूल आनेके बहुत बाद पत्ते निकलते हैं। बहारके मौसममें पत्तोमेंसे लगभग १ बित्ता लम्बा मूलीय पुष्पदड निकलता है, जो गोल और लोमयुक्त होता है। प्रत्येक पुष्पदंडपर एक फूल आता है, जो चमकीला, पीला, लगभग २ ५ सें० मी० (१ इञ्च) चौडा होता है। पत्र सरल,

जडके समीप निकले हुए (Radical) हृदयाकृति (खुराकृति), विभक्त और बहुकोणाकार दाँतेयुक्त, ऊर्ध्वपृष्ठपर मसृण और हलका चमकीला हरा तथा अध पृष्ठपर सफेद लम्बे घनरोमावृत और उभरी हुई स्पष्ट शिराओसे युक्त, पत्र-मुकुल गोल और घनरोमावृत होता है। स्वाद पिच्छिलतायुक्त कुछ तिक्त और कषाय।

उपयुक्त अग—पचाग।

रासायनिक सगठन—इसमें (पत्तोमें) एक बेरग तिक्त ग्लूकोसाइड और लोआब होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वातविलयन है। प्रारम्भमे फोडोपर इसके पत्र बाँधने से वे बैठ जाते है और अतमे बाँधनेसे वे पक जाते हैं। इसे तरखुजलीमे लगानेसे लाभ होता है। दृष्टिको तीव्र करनेवाली औषधियोमे इसको डालते हैं। थोडी-सी इसकी जड या पत्ते मुखमें रखनेसे कास, श्वास और कृच्छ्रश्वासमे उपकार होता और वायु विलीन हो जाती है। पत्तोका धुआँ पीनेसे भी यह लाभ होता है। इसे गर्भाशयमें रखनेसे गर्भपात हो जाता है और मृत भ्रूण निकल पडता है।

●

(४०३) फरफियून

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(भा० बाजार, अ०) फरफि(वि)यून, अफरबियून, (यू०) Euphorbion (D 3 86), (अ०) अल् अफ्रवियून, फरवियून, लुबानत गवियत (इ० बै० ३/१५८, कानून १/१०८), फरफ्यून, हाफिजुल्अत्फाल, हाफिजुन्नहल; (लै०) एउफॉर्बिउम् (Euphorbium), (अ०) यूफॉर्बियम्, गम यूफॉर्बियम् (Euphorbium, Gum Euphorbium)।

वक्तव्य—उत्तर अफरीकाके मॉरिटेनिआ (Mauritania) नामक एक प्राचीन देशके द्वितीय नूबा नामक राजाके युफॉर्बस (Euphorbus) नामक राजकीय हकीमके नामपर इस औषधिका नाम 'युफॉर्बिअम्' रखा गया है।

उत्पत्तिस्थान—अफरीकाके मोरोक्को प्रदेश। यह ऐटलस पर्वत के समीप होता है।

वर्णन—फरफियून अफरीकाके डडायूहर (एउफॉर्बिआ रेजीनीफेरा **Euphorbia resinifera** Berg) का सुखाया हुआ रालदार दूध है जो औषधके काम आता है। मतातरसे इसका काड मासल, चौकोर (चौधारा), कण्टकावेष्टित और नागफनी (Cactus) के समान होता है। इसमें चीरा देकर दूधके निकलने और सूखनेके लिए छोड दिया जाता है। यह सुखाया हुआ दूधियारस (Latex) ही फरफियून (यूफॉर्बियम्) है। इसके पिलाई लिए भूरे रगके छोटे छोटे वेडौल टुकडे होते है जिनमें एक तीक्ष्ण गध (विशेष प्रकारके मोमके समान) तथा स्वाद तिक्त, चरपरा और काटनेवाला होता है। पुराना होनेपर इसका रग कालाई या पिलाई लिए लाल हो जाता है। इसमे चारवर्ष-तक वीर्य रहता है। इसका रज तीव्र छिक्काकारक होता है और सूँघनेमें भयकारी है।

रासायनिक सगठन—इसमे (१) एक राल, (२) युफॉर्बोन (Euphorbon) नामक एक सत्व, (३) लबाब, (४) कैल्सियम तथा सोडियम और अन्य खनिज योगोके मैलेट्स होते है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य उपयोगसे फरफियून लेखन और विस्फोटजनक है, वातनाडियोको उष्णता पहुँचाता और शक्ति देता है। आतरिक उपयोगसे यह विरेक लाता (तीव्र विरेचन) है। यह विशेषत पिच्छिल श्लेष्मविरेचन और प्राय वातव्याधिनाशक है। इसको अधिकतया कुष्ठतेल या जैतूनतेल आदिमें मिलाकर अर्दित,

पक्षवध, कम्पवायु, स्वाप और आमवात जैसे कफ एव वातरोगोमें अभ्यग करते या लेप कराते है। उपयुक्त औषधियो के साथ इसे वाजीकर तिलाओं और लेपोंमें मिलाकर शिश्नको उत्तेजना देनेके लिए उपयोग करते हैं। अर्दित एव पक्षाघातमें इसे मर्जञ्जोशके साथ हल करके नाकमें टपकाते है। अर्दित, पक्षवध, स्वाप, कम्पवायु, आक्षेप, सन्यास (सकता), आमवात, जलोदर और शूल (कुलज) जैसे कफज एव वातरोगोमें आतरिकरूपमें इसे विरेचनार्थ औषधकी भाँति खिलाते है। रजोरोधनिवारण एव गर्भपात करानेके लिए फलवर्तिकी भाँति इसका उपयोग करते है। अहितकर–अन्त्र, वृषण और गर्भाशयके लिए। निवारण–गूगल और मुलेठी। प्रतिनिधि–जलोदर के लिए माजरियून और शूलमे जुदबेदस्तर। मात्रा–० २५ ग्रामसे ०·५ ग्राम (दो रत्तीसे ४ रत्ती) तक।

वक्तव्य—तीव्र विरेचनकी भाँति इसका उपयोग होता है। किंतु अधुना इसका आतरिक प्रयोग नही होता। प्राचीनोको इसके उक्त गुणका ज्ञान था। प्लाइनीने इसका विवरण किया है।

●

(४०४) फरासियून

फैमिली लाबिआटी (Family . Labiatae)।

नाम—(भा० बाजार, अ०) फरासियून, (हिं०) पहाडी गदना; (यू०) फ्रा (प्रा) सिओन Frasion, Prasion (D. 3. 109), (अ०) अल्फ्रासियून (इ० बै०) शनार, अल्कमा(तिक्तद्रव्य), सूफुल् अर्ज(पार्थिवऊर्णी), हशीशतुल्कल्ब(श्वानतृण); (लै०) मार्रूबिउम् वुल्गारे (**Marrubium vulgare** Linn), (अ०) कॉमन ह्वाइट होरहाउड (Common white Hore-hound), होर-हाउड (Hore-hound)।

वक्तव्य—'फरासियून' यूनानी 'फ्रासिओन (Frasion)'का किंचित्परिवर्तित रूप है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान और हिमालयमें कश्मीरसे पश्चिममे यूरोपपर्यन्त (५,०००–८,००० फुटकी ऊँचाई पर) यह जगली होता है। इसकी खेती भी की जाती है।

वर्णन—यह एक छोटी वनस्पति है, जिसका काण्ड लगभग ३० से० मी० (१ फुट) ऊँचा, चौकोर, बहुशाखान्वित और सफेद नरम रोइयोसे घनावृत होता है। पत्र सम्मुखवर्ती, सवृत, लगभग २ ५ सें० मी० (१ इञ्च) लम्बा, रूपरेखामे अडाकार, हृद्याकृति या आधारकी ओर गोल, पत्रतट सूक्ष्म या स्थूल एव दूर-दूर दतित, पृष्ठ उभरी हुई शिराओके कारण झुर्रीयुक्त, पत्रोदर हलका हरा, लोमश तथा पत्रपृष्ठ श्वेतरोमावृत होता है। पुष्प छोटे, सफेद तथा कक्षीय झुमकोमे लगते है। वाह्यदलपुञ्ज या कैलिक्स (Calyx) १० शिरा और १० कडे अकुशवत् दतुओसे युक्त होता है। क्षुपमें विशेष प्रकारका सुगधित और कुछ कस्तूरीवत् वास और तिक्त-चरपरा स्वाद होता है। कुछ कालोपरान्त यह गध जाती रहती है। इसका एक कालाभेद और होता है, जिसे बलूती तथा अग्रेजी और लैटिनमे क्रमश ब्लैक होरहाउड (Black Horehound) तथा मार्रूबिउम् नीग्रुम् (Marrubium nigrum Crantz) या बाल्लोटा नीग्रा (Ballota nigra Linn) कहते है।

उपयुक्त अग—पचाग।

रासायनिक सगठन—इसमें (शुष्क पुष्पिताग्र तथा पत्रमे) एक उत्पत् तैल तथा मार्रुबिन (Marrubin) नामक एक तिक्त ग्लूकोसाइड (० ४%), राल, टैनिन और वसा प्रभृति द्रव्य होते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उरःफुफ्फुस संशोधन, सार्वदैहिक उत्तेजक, श्लेष्मनिस्सारक, अवरोधोद्घाटक, मूत्रल, वातानुलोमन, स्थानिक वेदनाहर, आर्तवजनन, लेखन, श्वयथुविलयन, कफच्छेदन, तिक्तबल्य और अगद है। मस्तिष्क संशोधनके लिए इसका रस शिरःशूलमें अकेले वा गुलरोगनके साथ नाकमे टपकाते है। लेखन होनेसे यह नेत्रहितकर वर्तियोंमें पड़ता है। जाला, धुंध, फूली, मोतियाबिन्द, नेत्रकण्डू, नेत्रस्राव और नेत्रमे शेष रही हुई कामलाजन्य पिलाईको दूर करनेके लिए इसे अकेले या शहदके साथ नेत्रमें लगाते है। नेत्रमे इसकी धूनीसे कामला-जन्य नेत्रकी पिलाई और इसके स्वरसके नस्यसे कामला आराम होता है। कर्णगूथ, कर्णस्रोतगत अवरोध और चिरज कर्णशूलमे इसके रस या काढ़ेमे मधु मिलाकर कानमे टपकानेसे उपकार होता है। इसके पत्र मुखमें रखकर चाबनेसे मुखरोग आराम होते तथा दाँत और मसूड़े दृढ होते है। श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण तर (कफज) कास, उरःफुफ्फुसक्षत, दमा, श्वासकृच्छ्र आदि कफज रोगोंमे अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ क्वाथ या शर्बत आदिके रूपमें इसका उपयोग करते है। इससे श्लेष्मा, पूय एव सान्द्र दोषोंसे उर फुफ्फुसका शोधन होता है। पार्श्व-शूल और कुक्षिशूलमें इसके पत्र पीसकर और शहद मिलाकर लेप करते है। पार्श्व एव कुक्षि आदि शूलोमे यह बहुत गुणकारी है। कफार्शोनाशहर (सान्द्र मलो अर्थात् सान्द्र वायु और पिच्छिल श्लेष्मासे शरीरके अंग-प्रत्यंगको शुद्ध करनेवाले) द्रव्योंमें फराशियून श्रेष्ठ है। पान, लेप या स्वेद चाहे जिस प्रकार इसका उपयोग करे यह समस्त प्रकारके सान्द्र वायुका अनुलोमन करता है। इस हेतु इसके रस वा काढेमे गुलरोगन या जैतूनका तेल मिलाकर पिलाते है। इससे अन्त्रशूल आराम हो जाता है। गर्भाशयशोधन, गर्भ और अपरा निःसारण, सुखप्रसूति एव आर्तव-जननके लिए विशेषकर इसे ईरसाके साथ पिलाते है। वायुजन्य वस्तिरोग एव मूत्रकृच्छ्रमे रोगीको इसके काढेमें बैठाते या पेडूपर टकोर करते है। अन्त्रपरिवर्तन (तअक्कुद अम्आऽ) और अन्त्रशूलमें जिसे नाभिका स्थानभ्रंश (नाफका टल जाना) कहते है, इसे नाभिके नीचे लेप करते है। साघातिक औषधियोके विषनिवारणके लिए इसकी पत्तीका स्वरस पिलाते है। कुक्कुरदंश पर इसके पत्तोंको पानीमें पीस पका और शहद मिलाकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती तथा दुर्गन्धित एव गाढ़े पूय आदिसे पूर्ण दुष्ट एव पुराना व्रण शुद्ध हो जाता, दुष्टमांस दूर हो जाता, विषगाँठ (दाखिस) आराम हो जाता, गंडमाला कोमल एव विलीन हो जाती, पक्वापक्व व्रण बिना कष्टके फूट जाते और इनका रोपण होता है। इसके विधिवत् स्वेदनसे हर प्रकारकी सूजन उतर जाती है। अहितकर—वस्ति, वृक्क और वातनाडीको। निवारण—रक्तमूत्रताके लिये बबूल का गोंद, कतीरा, शहद और बालछड, वातनाडियोके लिये बालछड। सौंफ इसका अगद एव गुणवर्धक है। प्रतिनिधि—हंसराज, कुन्दुर, (उशक), अफ्तीमून और अनीसूँ। मात्रा—१ ७५ ग्राम से ३ ५ ग्राम (१½ माशे से ३½ माशे) तक।

●

(४०५) फराश

फ़ैमिली : टामारीसीने (Family . Tamariscineae)

नाम। वृक्ष—(हिं०) फरास, फराश, लालझाऊ, (अ०) असल, (फा०) शोरगज, (स०) रक्तझावुक, महा-झावुक, (व०) लालझाऊ; (ले०) टामारिक्स आर्टीकुलाटा (**Tamarix articulata** Vahl)। कीटगृह या माईं (Galls)—(हिं, द०) छोटी माईं, नन्ही माईं, (अ०) समरतुल् अस्ल, हब्बुल् अस्ल, अजब', (फा०) माईं खुर्द; गज्माजजे खुर्द, (बम्ब०) छोटी मुइ (मैन), मगिया मैन, (अ०) स्माल टैमेरिक्स गॉल्स (Small Tamarisk Galls)।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष उन्ही प्रदेशोमे होते है, जिनमें झाऊके वृक्ष होते है, परन्तु यह उसकी अपेक्षया कम होते है। उत्तरभारतवर्षमे नदियोके किनारे तथा पजाब और सिन्धमे यह विपुल होता है। प्राय. इसे लगाते है।

वर्णन—यह झाऊकी जातिका और उसका बागी (बुस्तानी) भेद है। इसके वृक्ष झाऊसे बडे होते हैं। इसके पत्ते भी झाऊके पत्तेके समान होते है। इसके वृक्षसे प्राप्त कीटगृह गाँठें (Galls) जिन्हें भ्रमवश फल समझा जाता है, झाऊमे प्राप्त गांठो (बडी माईं)की अपेक्षया बहुत छोटी, आकारमें प्रायः लगभग चने या मटरके बराबर, त्रिकोणाकार नही, अपितु गोल, गँठीली और पिलाई लिए भूरे या मटियाले रगकी होती है। इसे छोटा माईं कहते है।

उपयुक्त अग—लकडी, पत्र और छोटी माईं। 'छोटी माईं'के गुण कर्म तथा उपयोग आदि झाऊमें देखें।

रासायनिक सगठन—छोटी माईंमे माजूफलमें होनेवाला टैनिक एसिड पुष्कल और खारी जमीन और समुद्र-के किनारे होनेवाली झाडीकी राखमे पुष्कल सोडियम सल्फेट होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, लेखन, रूक्षण, यकृत्प्लीहाबलदायक, वेदनास्थापन और रक्त-प्रसादन। झाऊकी भाँति इसके पत्तो और लकडियोको भी बाह्यातरिक रूपसे उपयोग करते है। यकृद्दौर्बल्य एव यकृच्छूलमे इसका उपयोग करते हैं। दतशूल शमन करने और मसूढोको दृढ करनेके लिये इसके पत्रक्वाथके कुल्ले (मज्मज़ा) कराते है। व्रणो विशेत मसूरिका (चेचक)के व्रणोको सुखाने और बवासीरके मस्सोको गिरानेके लिए इसके पत्तोकी धूनी देते हैं तथा व्रणोपर महीन पीसकर छिडकते हैं। कतिपय रक्तविकारजन्य रोगोमें इसका पत्रक्वाथ पिलाते है। चेहरेकी रगत निखारने और त्वचाके दाग (धव्वे) मिटानेके लिए इसका पतला लेप करते है। उष्णशोथो विशेषकर मुखगतविसर्प (माशिरा)को विलीन करनेके लिए पत्तोको महीन पीसकर लेप करते हैं। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

वक्तव्य—माईंके गुणकर्म आदिके लिए दे० "झाऊ"।

●

(४०६) फालसा

फ़ैमिली : टीलिआसे (Family · Tiliaceae)

नाम—(हिं) फा(पा)लसा, फरसिया, पुरुषा, (फा०) फाल्स', (सं०) परूष(क), (बं०) फलूसा, (गु०, म०) फालसा, (ते०) नल्लजान; (ता०) पलिशम्, (का०) बुत्ति-मुडिप्पे; (सिं०) फारवाँ; (ले०) ग्रूइया आशिआटिका (**Grewia asiatica** Mast); (अं०) एशियाटिक ग्रीविया (Asiatic Grewia)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। इसके क्षुप फलके लिए प्राय बागोमें ही लगाये हुए मिलते है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है जो जगलीबेरके बराबर या उससे छोटा होता है। कच्चा फालसा हरा और कषेला, अधपका लाल एव खट्टा और पूरापका कालाई लिए लाल एव खटमिठा होता है। भेद—फालसा दो प्रकारका होता है—(१) यह रसीला, पकनेसे पूर्व खट्टा और पकनेके उपरात खटमिट्ठा होता है। इसको फालसा शर्बती कहते है। (२) यह कम रसीला, खटमिट्ठा और बादमे मीठा होता है। इसको फालसा शकरी कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, वृक्षत्वक्, वृक्षमूलत्वक्।

कल्प तथा योग—शर्बत फालसा।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदके मतसे पका हुआ शीतवीर्य और कच्चा उष्ण एवं रूक्ष (कै० नि०)।

गुण-कर्म—यह पित्तकी तीक्ष्णताको दूर करनेवाला, रक्तके प्रकोपको शमन करनेवाला, उत्क्लेश, वमन और उबकाईको लाभप्रद, उदरसग्राहक, हृदयबलदायक, उष्णयकृदामाशमबलदायक, पित्तज्वरनाशक विशेषत पित्तज रोग एव हृद्द्रवनाशक हैं।

उपयोग—यह पित्तज रोगोके लिए गुणदायक है। इस हेतु फालसाका शर्बत पिलाते हैं। इस गुणकर्मके कारणसे ही उत्क्लेश, छर्दि एव उबकाई दूर करने और पित्तज रोगोमे इसका उपयोग होता है। इसकी जडकी छाल (पोस्त बेख फालसा शकरी) सूजाक और सदाह मूत्रमे तथा रक्तकी तीक्ष्णता एव उद्वेग शमन करने और प्यास बुझानेके लिए प्रयुक्त होती हैं। हृदयबलवर्धन, दीपन और उष्ण यकृद्बलदायक होनेके कारण यह उष्ण हृत्स्पदन एव विराग (तवहूहुश) जैसे हृद्रोगोको जो हृदयदौर्बल्यके कारण हो जाते हैं, दूर करता है और आमाशय तथा यकृत्के दौर्बल्यको निवारण करता है। उदरस्तम्भक होनेके कारण यह पित्तज अतिसारको बन्द करता है। मूत्रकृच्छ्र एव रक्तमूत्रमे इसकी जडकी छाल और मधुमेहमे इसके वृक्षके तनेकी छाल ले उसको ऊपरसे छील उसका फाण्ट बनाकर पीनेसे उपकार होता है। अहितकर—आनाहकारक (नफ्फाख) है। निवारण—गुलकद, अनीसूँ और माजूनकम्मूनी। प्रतिनिधि—आलूबोखारा। मात्रा—फलसा मेवाकी भाँति २ से ५ तोले तक; औषधरूपेण उसका निचोडा हुआ स्वरस २ से ३ तोले तक, फालसेके वृक्षकी छाल फाटमे १ तोलासे २ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—कच्चा फालसा अम्ल, कुछ मधुर, कषायानुरस, लघु, वातघ्न, ग्राही तथा कफ-पित्त प्रकोपक है। (सु० सू० अ० ४६, वा० सू० अ० ६, कै० नि०)। पका हुआ फालसा रस और विपाकमे मधुर, वातपित्तहर, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, रोचन, हृद्य, विष्टम्भी, बृहण, विरेचनोपग, ज्वरहर, श्रमहर तथा दाह, तृषा और क्षतक्षयका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २०, २७, सु० सू० अ० ३८, ४६, कै० नि०)।

नव्यमत—फालसा पित्तघ्न और हृद्य है। हृद्रोग, पित्तप्रकोप और ज्वरमे फालसेका शर्वत देते है।

(४०७) फाशरा

फैमिली : कूकुरबिटासे (Family . Cucurbitaceae)

नाम—(यू०) अम्पीलोस ल्यूक (दीसकूरीदूस), (अ०) फाशरा (सुर्यानी 'फाशार' से अरबीकृत), फाशीरा, अल् हजारजशान (इ० बै०), कर्मतेल्बैजाऽ(श्वेत द्राक्षा—Vitis alba), लफतुल्शैतान (शैतानका शलगम), (फा०) हजारफेशान, हजारक(ज)शान, स्याहदारू, मारदारू, करमेदश्ती, ताक सहराई, (लै०) ब्रीओनिया डीओइका (**Bryonia dioica** Jacq), ब्रीओनिया आल्बा (**Bryonia alba** Linn), (अ०) इंगलिश मैन्ड्रेक (English Mandrake), मैन्ड्रागोरा (Mandragora), ह्वाइट ब्रायोनी (White Bryony), वाइल्ड वाइन (Wild Vine)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, फारस आदि।

वर्णन—सूत्रोके सहारे वृक्षोपर फैलनेवाली शिवलिंगीकी जातिकी एक लता जिसका काण्ड १५०से १८० सें० मी० (५-८ फुट) लम्बा, महीन और सशाख, नालीदार और क्षुद्र कर्कशरोमोसे आवृत्त होता है। पत्र वृहत्, एकातर, करतलाकार पाँच नुकीले खण्डाग्रयुक्त, मूलमे हृदृत् (Acute), विपमदंतित खडयुक्त ऊर्ध्वाध उभयपृष्ठ कर्कश, पत्रवृत लम्बा, पुष्प पत्रकोणसे निकले हुए क्षुद्रगुच्छोमें होते है। फल चिकना, गोल, हरा और पकनेपर नारगी लालरगका होता है। इसमे छ तक अडाकार बीज होते हैं। जड़ शलगमकी जडके सदृश बहुत बडी ३० से ६० सें० मी० (१-२

फुट) अथवा इससे भी लम्बी, (अरबी 'लूफ' यूनानी 'ल्यूफका' अपभ्रंश है) सशाख और २'५ से० मी० से ७ ५ से० मी० (१-३ इञ्च) व्यासमें बाहर और भीतरसे सफेद होती है। इसके अनुप्रस्थ काटके तलपर अनेक सुषिर वाहिनी-पूलो (Vasculai bundles)की एक केन्द्रिक मुद्रिकाकार रेखायें तथा आरावत् अर्धव्यासीय रेखायें दिखाई पडती है। स्वाद, कटु, तिक्त तथा गन्ध कोई विशेष नही होता। व्यापारमे इसकी सूखी जडके गोल-गोल कटे हुए टुकडे पाये जाते है जो व्यासमे ३ ७५ से० मी० से ७'५ से० मी० (१½-३ इञ्च) अथवा इससे अधिक और ३ १२ से० मी० (१⅓ इच) तक मोटे होटे है। इनका रग बाहरसे पिलाई लिए भूरा और भीतरसे सफेदी लिए होता है। ये सरलतासे चूर्ण हो जाते है और चूर्णका रग सफेद होता है। स्वाद अरुचिकर एव तिक्त होना है। पानीमें भिगोनेमे उसमें इसका वीर्य आ जाता है। व्यापारी इसकी जडको कुष्ठ (कुस्ते तल्ख)की जगह बेचते है। गुण कर्मकी दृष्टिमे सर्वाधिक वीर्यवान् इसका फल है उसके बाद जड और उसके बाद इसका पत्ता है। ब्रीओनिया या ब्रांओनॉप्सिस लॉसीनिओसा (**Bıyonia or Bryonopsis laciniosa** Linn) इसकीभारतीय जाति है, जिसे सरकृतमे 'शिवलिङ्गी, कहते है। यह फाशराका उत्तम प्रतिनिधि है।

रासायनिक सगठन—इसमे ब्रायोनिन (Bryonın) अर्थात् फाशरिन नामक एक तिक्त सत्व होता है जिस पर इसके गुणधर्म निर्भर करते है।

उपयुक्त अग—पत्र, फल और मूल।

कल्प तथा योग। प्रवाही सार—मात्रा–½–१ ड्राम, ब्रायोनिन–मात्रा–१५ मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (⅛ रत्ती से १ रत्ती)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष, जडमें गरमी कम अर्थात् समता (एतदाल)के साथ है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह भीमकीटविषोका अगद है तथा मृगी, चक्कर (शिरोभ्रम), पक्षवध, अगघात, विस्मृति, पार्श्वशूल, आमाशयशूल, खांसी और अन्त्रामाशयके वायुके लिए गुणकारक है। यह मल तथा स्तन्यका प्रवर्तन करता है और पथरीको तोडकर निकाल देता है। इसकी पेडीके (उसारा)को गेहूँके साथ पकाकर खानेसे शुक्र और स्तन्यकी वृद्धि होती है। इसके कच्चे कोपलोको तरकारीकी भांति पकाकर खानेसे आमाशयको शक्ति प्राप्त होती तथा उसमें गरमी आ जाती है तथा लेसदारमल निकल जाते है। इसके अतिरिक्त हृच्छूल एव आमाशय शूलको भी लाभ होता है, दूध बढ जाता है और दस्त होते है। शैखके अनुसार यह प्लीहाकी उत्तम औषधि है। पौने दो (१¾) माशे इसकी जडको सिरका या शराबके साथ लगातार तीस-दिन अर्थात् एक मासपर्यन्त खानेसे बढी हुई प्लीहा घट जाती है। इसको एलुए या सिरके और अजीरके साथ पीसकर लेप करनेसे भी प्लीहाका शोथ जाता रहता है। मधुजलके साथ यह गाढे कफको छाँटकर निकाल देता है। खाज, झाई, मस्से और काले दागोपर इसकी जडको सिरकेमे पीसकर लेप करनेसे लाभ होता है। इसके लेपसे टूटी हुई हड्डीके कण (शल्य) निकल जाते है और फोडोमे मुँह हो जाता है। इसकी जडको घीमे पकाकर व्रणोपर लगाने, बवासीरके मस्सोपर थोडा सा लेप करने और सर्दीके दर्दोपर लेप करनेसे उपकार होता है। यह घी सूजनको भी उतारता है। इसका कटिस्नान (आबजन) गर्भाशयको शुद्ध करता है और बच्चेको निकाल देता है। इसके फलोका लेप बालोको दूर कर देता है। ३'५ से ४'५ ग्राम (३½–४½ माशे) तक इसकी जड कतीरा या मधुजलके साथ खानेसे खूब वमन और दस्त होते है। ३ ५ ग्राम (३½ माशे) इसकी जड खानसे गर्भशिशु मर जाता है। अहितकर–यकृत्, प्लीहा, बुद्धि, विवेक और दृष्टिको। निवारण–यकृत्के लिए रेवदचीनी और शेषके लिए कतीरा खाना या वमन करना और फिर खट्टे सत्व (रुब्ब) खाना। प्रतिनिधि–समभाग दरूनज और ⅔ या ½ भाग जावित्री। मात्रा–जड ४ ५ ग्राम (४½ माशे) तक, फल ७ ५ ग्राम (७॥ माशे) तक।

नव्यमत—यह तीव्र सक्षोभक विरेचन है। अल्पमात्रामे कास, दुष्टप्रतिश्याय, श्वसनिकाशोथ (Bronchitis) और श्वसनक ज्वर (न्यूयोनिया)मे उपकारक तथा वातरक्त या आमवातजन्य हृद्विकारो एव विपमज्वर और अभिपवण सम्बन्धी (Zymotic) रोगोकी मूल्यवान् औपधि है। अधिक मात्रा भयावह है। मात्रा—३०० मि० ग्रा० से ८५० मि० ग्रा० (२½ से ७½ रत्ती) इसका चूर्ण दिया जाता है।

०

(४०८) फिंदक

फ़ैमिली : कुपूलीफेरे (Family Cupuliferae)

नाम—(हिं०) फिंदक, (यू०) Karuon, pontikon (D 1 179), (अ०) फुंदुक, बुन्दुक, (फा०) वादाम कश्मीरी, बादाम कोही, वादाम सेहगोशा, (लै०) कोरीलूस आवेल्लाना (Corylus avellana Linn), (अ०) हैज़ेलनट (Hazel Nut)।

वक्तव्य—'फुन्दक' और 'बुदुक', फारसी 'पदक' से अरबी बनाये गए है। अबूहनीफाके सदर्भसे इब्नुल्बैतारके कथनानुसार यह वही फल है जिसको अरब 'जिलौज (अ)' कहते है। (इ० बै० १।१२५)। यह 'बुन्दुक हिन्दी' से भिन्न द्रव्य है जिसे श्लीमर (Schlimmor)ने करजुवा (Caesalpinia bonducella) वतलाया है।

वर्णन—यह एक बडे पहाडी वृक्षका फल है जो तिकोना गोलाई लिये होता है। इसको तोडनेमे वादामकी तरह मग्ज निकलता है जिसके ऊपर बारीक लाल छिलका होता है। यह वादामके मग्जकी तरह मीठा और स्वादिष्ट होता है। यह मग्ज ही औपधके काम आता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण और पहलेमे तर। मतातरमे पहले दर्जेमे गरम और दिल्लीके हकीमोके मतमे पहले या दूसरे दर्जेमे खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, बृंहण, वाजीकर, आन्त्रबलवर्धक, मेध्य, श्लेष्मनिःसारक और वृश्चिकदश का अगद है।

उपयोग—फिंदककी गिरी (मग्ज फुन्दुक)को वादामकी भाँति पोपणार्थ खाते है। यह चिरपाकी एव गुरु (विष्टम्भी) होता है और आनाह एव वायु उत्पन्न करता है। औपधकी भाँति मस्तिष्कदौर्बल्यमे अकेले या उपयुक्त भेपज द्रव्यके साथ इसका हरीरा बनाकर पिलाते है अथवा माजून बनाकर वाजीकरण, वल्यवर्धन तथा बृंहणके लिये खिलाते है। कास और श्वासमे कफोत्सर्गके लिये इसको शहदमे मिलाकर चटाते है। थोडा भूनकर कालीमिर्चके साथ शीतल प्रसेक और प्रतिश्यायमें खिलाते है। वृक्कदौर्बल्य दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते है। बिच्छू काटे हुएको इसे खिलाते और दश पर लेप करते है। अहितकर—मग्राही वा स्तम्भक और शिर शूलकारक है। निवारण—चीनी और विरेचनीय जुवारिश। प्रतिनिधि—चिलगोजा और अखरोट। मात्रा—६ ग्राम से ११.६ ग्राम (६ माशे से १ तोला)।

०

(४०९) फितरासालियून

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(अ०) करफ्स सखरी (-जबली-; मकदूनी), (फा०) करफ्स कोही, करफ्समकदूनी (लै०) आपीउम् पेट्रोसेलिनुम् **Apium petroselinum** Linn. (पर्याय–*Carum petroselinum* Benth.; *Petroselinum sativum* Hoffm), (अं०) पार्सले (Parsley) ।

वक्तव्य—फितरासालियून यूनानी 'वितरासालियून'का अरबी रूपातर है। बम्बईमे अधुना फतरासालियून नामसे जो द्रव्य बिकता है, वह बादियानकोही है जिसको हिन्दीमे 'कोमल' और लेटिनमे प्रांगोस पाबूलारिया (**Prangos pabularia** Lindl) कहते हैं। इसके पौधे कश्मीरमे ६,००० से ११,००० फीटकी ऊँचाई पर पाये जाते है।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी भूमध्यसागरीय देश, पश्चिम भारतवर्ष और ईरान।

वर्णन—यह अजमोदेकी तरहके एक क्षुपके बीज है जो लम्बे, काले और अजवायनके समान होते है। इन-मे एक विशिष्ट प्रकारका स्वाद होता है। ये बीज ही औषधके काम आते है।

उपयुक्त अंग—मूल, पत्र और बीज।

रासायनिक सगठन—इसमें एक प्रकारका कपूर या स्नेहमय प्रवाही निकलता है जिसको एपिओल (Apiol) कहते है। यह पीला, विशिष्टगधी, स्वादमे चरपरा (तीक्ष्ण) और अप्रिय होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म—उत्कट कफछेदन एव श्लेष्मनि सारक, वातानुलोमन, प्रमाथी, मूत्रार्तवजनन, भ्रूण एव अपरा निस्सारक, अश्मरीघ्न और वाजीकर।

उपयोग—उपर्युक्त गुणोके कारण यह कृच्छ्रश्वास, पार्श्वरुक्, शूलरोग (दर्दे कुलज) और मरोडजन्य शूलके लिए गुणदायक होता है। प्रवर्तक होनेके कारण यह यकृत्का शोधन करती और अपनी प्रकृतिके कारण उस-को गर्मी पहुँचाती है। प्रवर्तक होनेके कारणसे ही यह वृक्क-बस्ति एव गर्भाशयका शोधन करती है। कृच्छ्रमूत्रतामें यह पेशाबको खोलती और रुद्धार्तवमे प्रयुक्तकी जाती है। इसी तरह यह भ्रूण तथा अमराका उत्सर्ग करती है। अहितकर–रक्तमूत्रजनक है। निवारण–कतीरा, शुद्ध मधु, बालछड सौफ और अनीसूं। प्रतिनिधि–उरोरोगोके लिए हसराज। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

●

(४१०) फिल्फिलुस्सूदान

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(अ०) फिल्फिलुस्सूदान (प्राचीन), फिल्फिल् हुलुव्व, फिल्फिल् जमैकी, वहार, फिल्फिल् अफरजी (नवीन), (लै०) पाइमेंटा (Pimenta), पाइमेंटो (Pimento), जमैका पेपर (Jamaica Pepper), आलस्पाइस (Allspice)। इसके वृक्षको पीमेण्टा आफ्फीसिनालिस (**Pimenta officinalis** Lindl) कहते है। अंग्रेजीमें इसे ऑल-स्पाइस ट्री (All-spice Tree) कहते है।

नव्यमत—बादा शीत, तिक्त, कषाय, मधुर, ग्राही कफघ्न, वातहर, रक्तविकारनाशक और व्रणरोपण है। इसके पुष्प और पत्रका कल्क गरम करके सूजनपर बांधनेसे सूजन उतर जाती है। हृद्रोगसे उत्पन्न दमा, कफके साथ रक्त गिरना, अपस्मार, उन्माद और तरुणशोथमें इसके फूलका उपयोग करते हैं। हृद्रोगमें वमन और मूत्र-दाह इससे कम होता है।

●

(४१२) बंदाल

फैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) बं (बिं)दाल, बडाल, घघरबेल, घुसरा(ला)इन, सोनैया, (स०) देवदाली, जीमूत (क), कण्टफला, (व०) घोपालता, देवताड, (प०) घगडबेल, (म०) देवदाली, देवड(डा)गरी, (गु०) कुकडवेल, वाउपला, (मा०) वदालडोडा, (सिंध) नेधजा, डेलू, (ले०) **लुफ्फा एकीनेटा (Luffa echinata** Roxb), (अं०) ब्रिस्टली लुफ्फा (Bristly Luffa)।

वक्तव्य—यह किस्साउल्हिमारसे भिन्न औषधि है। उपर्युक्त लेटिननाम 'श्वेतपुष्पवाले' बदालका है। पीले फूलवालेको लेटिनमें **लुफ्फाबिडाल (Luffa bindaal** Roxb) कहते हैं। इसके फलपर कम कांटे होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरपश्चिम भारतवर्ष, गुजरात, सिंध, बम्बई और पूर्वीबंगाल आदि।

वर्णन—यह एक बेलके फल है जो 'बंडाल डोडा' के नामसे प्रसिद्ध है। यह फल ३.७५ सें० मी० (१½ इञ्च) लम्बे अण्डाकार पीलोहड या जायफलके समान, किन्तु हलके पोले, धारारहित, खेखेस (ककोडा)की तरह कण्टकित और जालीदार होते हैं। इनके ऊपर घने, बारीक और नरम कांटे खड़े होते हैं। रंगत पिलाई लिए और स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। बाजारमें इसके सूखे फल तथा बीज मिलते हैं।

उपयुक्त अंग—फल। पंचांग भी काममें लिया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें एक तेल होता है जो कडुआ नहीं होता। बंदालमें पायाजानेवाला मुख्य द्रव्य इन्द्रायनमें पायेजानेवाले मुख्यद्रव्यके समान होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म—तीव्र विरेचन, छर्दिजनन, आर्तवजनन, अर्शोघ्न और विशेषत गर्भनिःसारक।

उपयोग—बदाल तीव्र विरेचन औषध है। इसको अधिकतया कामला, जलोदर, आमवात, फिरंग, कुष्ठ, कास और श्वासमें प्रयुक्त करते हैं। आर्तवजननके लिए इसका काढा पिलाते और योनिमें फलवर्ति रखते हैं। इसके उपयोग से मृतभ्रूणका निस्सरण हो जाता है। यह गर्भपातके लिए भी प्रयुक्त होता है। घ्राणाज्ञान, पीनस और अपस्मार रोगोंमें इसको पीस, गोघृतमें मिलाकर नाकके अंदर टपकाते हैं। पीतकामलाको नष्ट करनेके लिए दो-तीन बडाल डोडाको रात्रिमें जलमें भिगोकर छोड देते हैं। प्रात काल उसमेंसे दो-तीन बूंद पानी लेकर नाकमें टपकाते हैं। इससे नाकसे पीला पानी बहता है और आँखोंकी पिलाई दूर हो जाती है। गोपित्तके साथ लेप करने या बडालडोडेको पीसकर टिकिया बनाकर घृताक्त करके अर्शांकुरोंपर बांधने या अग्निपर डालकर धूनी देनेसे मस्से सूखकर झड जाते हैं। **अहितकर**—इसका प्राचुर्य घातक है। **निवारण**—स्नेह द्रव्य। **मात्रा**—१ ग्राम से १.५ ग्राम (१से १½ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—बदाल कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, वामक, शिरोविरेचन, रेचन तथा ज्वर, श्वास, हिक्का, पाण्डुरोग, अर्श, कास, कामला, विष, शोथ, आमविकार, अरुचि, क्षय और कृमिका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० १, २ च० क० अ० २, सु० सू० अ० ३९, रा० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—बदाल तिक्त, दीपन, मूत्रजनन, विरेचन, शिरोविरेचन, व्रणशोथन और व्रणरोपण है। बडी मात्रामे देनेपर वमन और विरेचन होता तथा रोगीकी दशा हैजे जैसी दीखती है। स्त्री गर्भवती हो तो गर्भ गिर जाता है। बदाल और कडवी तोरईकी क्रिया समान होती है।

●

(४१३) बकाइन

फैमिली : मेलिआसे (Family : Meliaceae)

नाम—(हिं०) बकाइ(य)न, (अ०)हर्बीत, शज्र्तुल् हर्र, (फा०) ताक, आजाद दरख्त, (स०) महानिम्ब, द्रेक (क्का), रम्यक, (द०) गोरीनीम, (व०) घोडानिम्, (प०) द्रेक, घ्रेरक, धरेक, बकायन, (म०) बकाण(णि)निंब, (गु०) बकानलीबटो, (क०) द्रेक, (सिंध) बकाईण निमु, (ता०) चिधरिनिंबम्; (मल०) मल्लवेणु, (का०) हुच्चुवेतु, तुरुकवेतु, (लें०) मेलिआ आजेडाराक (**Melia azedarach** Linn), (अ०) पर्सिअन लिलेक (Persian Lilac)।

वक्तव्य—बकाइनके वृक्षके लेटिन नाममे जातीय नाम (Specific name) इसके फारसी नाम 'आजाद दरख्त'के आधार पर ग्रहीत मालूम होता है। फारसी 'ताक' एव पजाबी तथा कश्मीरी नाम, सस्कृत नाम 'द्रेक (-क्का)' पर आधारित प्रतीत होते है। इसका बगला नाम 'घोडानिम' किंचित् भ्रामक है, क्योकि वास्तवमे घोडा-निम इसी फैमिलीकी एक भिन्न वनस्पति (**Ailanthus excelsa** Roxb) को कहते है, जिसको किसी-किसीने भ्रमवश 'महानीम' कह दिया है।

उत्पत्तिस्थान—फारस, चीन, पश्चिम हिमालयाञ्चल, बलूचिस्तान, कश्मीर और दक्षिण भारतवर्षके प्राय पहाडी स्थानोमे होते है।

वर्णन—यह नीमकी जातिका और उसके समान एक बडा प्रसिद्ध वृक्ष है। इसकी पत्ती प्राय त्रिपक्षवत् नीमकी पत्तीसे छोटी, किंतु उसकी अपेक्षया चौडी होती है। साधारण वृन्तमें २-४ जोडा पत्ती होती है। प्रथम पत्रयुग्म प्राय त्रिपत्र होता है। निंबका पत्रप्रांत गभीरभावसे चीरित, किंतु बकायनका सामान्य चीरित होता है। नीमकी पत्ती वक्र, किंतु बकायनकी वक्र नही होती – पत्राश वृतके पास किंचित् विषमतया अवसित होता है। फूल नीमकी तरह, किंतु हलका जामुनी रगका होता है और उसमे पहले मीठा फिर कडवा वास आता है। फल निंब-कौडी की तरह अष्ठिल १" से कम लबा होता है। नीमकी भाँति इसके समस्त अग-प्रत्यगका स्वाद कडवा होता है। जडकी ताजी छाल मोटी और अधिकतया स्पजवत् होती है। इसका बाहरी धरातल खुरदरा अर्बुदोसे युक्त और गहरा भूरा वा ऊदी, उक्त स्तरके नीचे यह गहरा गुलाबी और भीतरी धरातल सफेद होता है। इसका स्वाद चर-परा उत्क्लेशकारक, कषाय और हलका तिक्त होता है। इसकी दूसरी जाति (M **composita** Willd) में पत्तियाँ द्विपक्षवत्, पुष्प श्वेत और फल १ इच से बडे होते है। यह उडीसा प्रातमे पायी जाती है।

उपयुक्त अग—फूल, फल या फलमज्जा, पत्र और ताजी छाल (अन्तस्त्वचा)। सूखी छाल नि सत्व होती है और बाजारमे नही मिलती।

रासायनिक सगठन—इसका गुणोत्पादक वीर्य एक हलका पीला अस्फटिकीय, तिक्त रालदार, क्षारोदगुण विरहित पदार्थ है। इसके अतिरिक्त इसमे शर्करा होती है। छालके बाहरी भागमें टैनिन (Tannin) होती है। वीर्यवान् भाग इसका अन्तर्छाल है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन वेदनास्थापन, अर्शोघ्न व्रणशोथन-लेखन, व्रणरोपण कृमिघ्न तथा जीर्ण एव चतुर्थज्वरनाशक है। रक्तप्रसादन होनेके कारण इसके पत्र और छाल रक्तविकारजन्य रोग, जैसे—कुष्ठ एव किलास आदिमे प्रयुक्त होती है। वेदनास्थापन होनेके कारण इसके पत्तोको उबालकर विकारी अगको वफारा देते और पत्तोकी भुजिया बाँधते है। अर्शमे इसके बीजोका मग्ज अन्य द्रव्योके साथ पुष्कल प्रयुक्त होता है। बकायनकी छालको जलाकर सफेदकत्थेके साथ मुखपाकमे मुखके भीतर छिडकते है। उदरकृमि विशेषत कद्दूदाना एव केचवेको मारने और निकालनेके लिए बकायनकी जडकी छालका काढा पिलाते है। जीर्ण एव चौथिया ज्वरमे बकायनके पेडकी अन्तर छाल लेकर अधकुटे कासनीके बीज और धमासाके साथ फाट बनाकर पिलाते है। अर्शमें बकायनके फलकी मज्जाका प्रयोग किया जाता है। अहितकर—यकृत् और आमाशयको। निवारण—अनीसूँ। प्रतिनिधि—तज एव जावित्री। मात्रा—बकायनके बीजका मग्ज ४ रत्तीसे १ माशा तक और छाल ७ माशेसे १ तोला तक अथवा ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदीय मत—बकायन रसमे कषाय—कटु और तिक्त, शीतवीर्य, रूक्ष तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, दाह विपमज्वर, भ्रम, वमन, कुष्ठ, मिचली, प्रमेह, श्वास, गुल्म, अर्श और चूहेके विषका नाश करनेवाला है। (सु० अ० ३८, सु० सू० अ० ३९, रा० नि०, भा० प्र०)। वाग्भटने अर्शमे महानिम्बका प्रयोग लिखा है। (दे० वा० चि० अ०)।

नव्यमत—बकायनके गुण साधारणत नीमके समान है। यह कृमिघ्न, त्वग्दोषहर, गर्भाशयसकोचक, वेदनास्थापन और शोधन है। इससे गोलकृमि मरते है।

●

(४१४) बकुची

फैमिली : लेगूमिनोसे (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) बकुची, बाकुची, बावची, (स०) बाकुची, सोमराजी, (ब०) हाकुच, बुकचिदाना; (प०; गु०, म०,) बावची, (ते०) भावजि, बावची (मल०) कार्कोकिल, (ले०) प्सोरालेआ कोरिलीफोलिआ (*Psoralea* **corylifolia** Linn), (अ०) पर्पल् फ्लीबेन (Purple Fleabane)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक क्षुपके प्रसिद्ध बीज है जो प्राय बाजारमें मिलते है और औषधके काममे आते है। ये मसूरके दानेकी तरह, किन्तु उससे किंचित् बडे, काले या गहरे भूरे, गोल लम्बोतरेसे और चपटे, किन्तु अभगुर एव खुरदरे होते है। इसके ऊपरका छिलका मुलायम होता है। इन्हे काटनेपर अन्दरसे सफेद मग्ज निकलता है। गन्ध ठीक बेलके फल सरीखा रुचिकर एव सुगन्धित और स्वाद तिक्त एवं चरपरा होता है जो जबानमें लगता है।

उपयुक्त अग—बीज और तेल।

रासायनिक संगठन—बीजमें एक उत्पत् तेल पाया जाता है, जो इसका सक्रिय तत्व (Active principle) होता है। इसके अतिरिक्त एक स्थिर तैल, एक राल और ऐल्केलॉइड स्वभावका एक पदार्थ पाया जाता है। बीजोको जलानेसे ७½ प्रतिशत राख मिलती है, जिसमे मैंगेनीज पाया जाता है।

कल्प तथा योग—कुर्स बर्स, जिमाद बर्स, दवाएबर्स आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क तथा आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन, सर, दीपन, वातानुलोमन और उदरकृमिनाशन हैं तथा किलास एवं छीप वा झाईंमें विशेष प्रयुक्त होती है। यह रक्तविकारजनित रोग, कुष्ठ, व्यग, दद्रु और खर्जूमे गोली और चूर्ण आदिके रूपमें उपयोगकी जाती हैं। बाहरी तौरपर अकेले या अन्य औषधियोके साथ उक्त रोगो विशेषत किलास और छीप वा झाईंमे इसे लेपकी भाँति उपयोग करते है। जबकि त्वचाके रोगोके साथ कब्ज, बवासीर और क्षुधानाश जैसे उपद्रव हो, तब उक्त अवस्थामे इसका उपयोग करते हैं। इसका उपयोग शुद्ध करनेके उपरान्त करते हैं जिसकी विधि यह है—इसको बछियाके मूत्र या आदीके रसमे कमसे कम एक सप्ताह तक भिगाये रखखे और हर रोज बदलते रहे। अहितकर—आनाहकारक। निवारण—दही और स्नेह द्रव्य। प्रतिनिधि—पँवाडके बीज। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—वाकुची कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा कृमि, कुष्ठ, कफ, त्वचाके रोग, विष, कण्डू और श्वित्रका नाश करनेवाली है। (रा० नि०)।

नव्यमत—वाकुची मृदु उत्तेजक, वातनाडियोको बलप्रद, कृमिजन्यत्वग्दोषहर, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। सफेद कोढपर बीजोका लेप किया जाता है और तेल लगाते है। नये रोगमें इससे उत्तम लाभ होता है, परन्तु समय अधिक लगता है। (औ० स०)।

•

(४१५, ४१६) बखुरमरियम और अर्तनीसा

फ़ैमिली : प्रीमूलासे (Family Primulaceae)

बखुरमरियम—

नाम—(हिं०) हत्थाजोडी, हाथ(था)जोडी, हत(त्ता)जोडी, (भा० बाजार) फजकुश्त, बखुरमरियम, (अ०) फजकुश्त बुखुरेमर्यम् (इ० बैं० ३/५५), दुख्नए मर्यम्, शजरतुल् मर्यम्, (फा०) पजगुश्त, पजएमर्यम्, चोबक, उश्नान, फंजकुश्त, आजरब, (शामी) कफे मर्यम्, (अरबीकृत) आजरयून, (स०) हस्तज्योडि, हस्त(कर) जोडिका, करजोरिकाकद (नवीन), (ले०) सीक्लामेन पेर्सिकुम् (**Cyclamen persicum** Miller), (अं०) सो-ब्रेड (Sow-Bread)।

उत्पत्तिस्थान—फारस और रेवाट जहांसे यह भारतवर्षमे भी लाया गया है और विशेषत पर्वतीय ठहरनेके स्थानो (Hill-stations)मे प्राय वृक्षोकी छाँह एव नम जमीनमें पुष्कल होता है।

अर्तनीसा—(अ०) कफे असद, कफुज्जह्व, शजरए अबीमालिक, साबूनुल्काफ, (फा०) गुलेमशो, कसवेशो, चोब सवागान, (हिं०) हत्थाजोडी, (ले०) सीक्लामेन यूरोपीडम् (**Cyclamen europaeum**) Linn)।
उत्पत्तिस्थान—यूरोप और काकेशिया।

वर्णन—इन पौधों (क्षुपो)की जड़ें कुछ-कुछ गोल, शलगमकी तरह कंदसम तथा मासल होती है जिनके ऊपरी भागसे कभी-कभी पत्ते और फूल निकलते है (सीधे सिरेसे और एक छोटे ग्रीवासम काडसे), पत्र गम्भीर आधारीयनाडी(Sinus)युक्त, कुछ-कुछ गोल या अडाकार, पत्रप्रान्त कभी-कभी कोणमय और प्राय रोगटेदार, भूरापन लिए श्वेत होते है। पुष्प गुलाबके समान कभी-कभी नीला, पुष्पकी पखडियोके खण्ड पीछेको उलटे हुए होते है। फली पचकोषयुक्त होती है। भारतवर्षमे भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न वनस्पतियोको 'हत्थाजोडी' कहते है।

वक्तव्य—(अ०) बखुरमरियम्, फंजकुश्त, (फा०) पज अगुश्त; (ले०) सीक्लामेन (Cyclamen) इसे तथा सामान्यत 'शज्रएमरियम' और 'शज्रएइब्राहीम'को अभिन्न बतलाया जाता है। परन्तु इब्नुल्बैतार इन दोनोको भिन्न बतलाते है। उनके कथनानुसार शज्रएमरियम जहाँ उकहवान (Feverfew) और कतिपय अन्य पौधोकी सामान्य संज्ञा है, वहाँ फजकुश्त और बखुरमरियमका प्रयोग केवल 'सीक्लामेन (Cyclamen)'के लिए होता है। (इ० बै० ३'५५)। बुखुरमरियम और अर्तनीसा ये दोनो एक ही जातिके दो भेद मात्र है। इन दोनोमें यह अन्तर है कि अर्तनीसाके पेडमें काँटे होते है, किन्तु बखुरमरियममे उनका अभाव होता है। बखुरमरियमके पेडका तना भी उसके तनेसे कुछ छोटा होता है।

उपयुक्त अग—जड। किन्तु इसका स्वरस इससे बलवत्तर होता है।

रासायनिक सगठन—इसका कार्मुकत्व इसमें उपस्थित सैपोनिन सदृश साइक्लेमिन नामक एक विषैले कार्मुक सत्वपर निर्भर करता है। यह स्वादमें कटु-तिक्त होता है। इसे पानीमें मसलनेसे काफी फेन उठता है।

कल्प तथा योग—(उसारा) ० ७५से १ ५ ग्राम (६ रत्तीसे १$\frac{1}{4}$ माशे) तक।

बखुमरियम—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और दूसरे दर्जेमे रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह प्रमाथि, एव कठिनशोथ, कण्ठमाला और वातविलयन है। पत्तोका रस कानमें डालनेसे कानका घाव और नाकमें डालनेसे मृगी आराम होती है। जड़ मूत्रार्तवजनन, स्तन्यजनन और स्वेदल है तथा यकृत्‌गत अवरोधका उद्‌घाटन करती है। जड और बीज दोनो लेखन हैं। बीजोको पीसकर लेप करनेसे कल्फ, नमश, कठिन सूजन और कण्ठमाला आराम होती है। जड चेहरेके दागोको और मैलको साफ करती चेहरेका रग निखारती तथा कल्फ और फुसियोको दूर करती है। इसे पुराने जैतून तेलके साथ मलनेसे भी उक्त लाभ होता है। जाडेमें मुँह फट जाय तो इसके लेपसे आराम होता है। कल्फ, वातरक्त, मोच और खालित्य (दाउस्सालब)पर इसे सिरकामे पीसकर लगानेसे लाभ होता है। गजपर जडके काढेका परिषेक और खालित्य एव झाईंपर शुष्क जड मलने या शहदके साथ लगाने या मलनेसे लाभ होता है। इसका उसारा शहदमें मिलाकर आँख-मे लगानेसे मोतियाबिन्द आराम होता है और दृष्टि बलवान् होती है, परन्तु अकेला आँखमे नही लगावें, अपितु निशास्तेसे इसके दोषका परिहार करे। इसके बीज भी नेत्रके लिए हितकारी है। परन्तु जडका उसारा बीजोकी अपेक्षया अधिक बीर्यवान् है। इसकी एक तोला जडको कुचलकर शहद या सिकजबीनसे कामला के रोगीको पिला और कपडा ओढाकर सुला देनेसे पीले रगका पसीना होकर कामला रोग जाता रहता है। इससे यकृत्‌की शुद्धि होती, अवरोध मिट जाता है और सम्पूर्ण शरीरमें विसरित पित्त निकल जाता है। यह स्वेदानयनकी उत्तम विधि है। इसे १ तोला १॥ माशासे अधिक नही सेवन करे, और यदि सेवन करें तो इसके साथ इसके निवारण कतीरा और अनारके पानी का सेवन करे। उत्तम यह है कि अकेला मदिरा या मधुके साथ ८ या ९ माशेसे अधिक सेवन नही करें। यह विधि कृष्णकामला (यरकान सौदावी)में भी उपकारी है। उष्णप्रकृतिवालेको तथा सान्द्रदोषोत्पन्न एव अत्यन्त स्रोतावरोधज कामला रोगीको इसका सेवन उचित नही है। जड दमाके लिए भी गुणकारी है। सिरका-

के साथ इसका लेप प्लीहाशोथनिवारक है। इसको योनिमे धारण करने और पेडू तथा पेटपर लेप करनेसे भी बलात् आर्तवका प्रवर्तन होता है तथा गर्भ मृत अथवा जीवित हो तो मरकर बच्चा बाहर निकल जाता है। इसका यह एक प्रभाव है कि पेटपर लेप करनेसे दस्त लाती है और गर्भाशय पर बारबार मलनेसे गर्भपात करा देती है। इसे स्त्रीके गलेमें बांधनेसे गर्भधारण नही होता। यदि पायखाना रुका हो तो इसे रूईमें लत करे गुदामे रखनेसे स्रोतोका मुख खुलकर मल निकल पडता है। इसे मधुजलके साथ पीनेसे दस्तके रास्ते काफी कफ निकलता है। अधिक विरेक आते है और सूखा मल निकल जाता है। उष्ण औषधियोके साथ हर प्रकारके उदर कृमियोको यह मारकर निकालती है। यह विषोका अगद है। अहितकर–बुद्धिमान्द्य एव शिरोभ्रम उत्पन्न करती तथा, गुदा, फुफ्फुस, बस्ति और उष्ण-प्रकृतिवालोका अहितकर है। निवारण–वस्तिके लिए उन्नाव और शेषके लिए कतीरा और अनारके दानेका रस। प्रतिनिधि–मामीसा, बोल और सुमाक। मात्रा–जड १ तोले १॥ माशे तक।

अर्तनीसा—

यह विषोका अगद है। अतएव कीडे-मकोडेके विषका निवारण करता है। इसके सूँघनेसे बहुत जोरोमे छीक आती है और गर्भवती स्त्रीके पेटका बच्चा गिर जाता है। इसे योनिमे धारण करनेसे गर्भाशयकी शुद्धि होती है। पत्ते व्रणरोपण, और फोडे-फुन्सीको लाभकारी है। पत्तेके रसके नस्यसे मस्तिष्कका शोधन होता है। जड कुष्ठघ्न, श्लेष्मनि सारक है और धीरे-धीरे सौदाका निर्हरण करती है और समस्त सौदावी रोगोमें गुण करती है। इस विषयमे यह लाजवर्दसे श्रेष्ठतर है। इसमे लाजवर्द की अपेक्षया अधिक लेखन और विलयनकी शक्ति है। कण्ठमालेपर इसका लेप गुणकारक है। दमामें भी लाभ पहुँचाता है। विषैला कीडा काटे हुएको इसे ४½ माशा खिलानेसे लाभ होता है।

विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—इसकी जड १ तोला की मात्रामे खानेसे गला रुक जाता है, विरेक होने लगते है और आक्षेप उत्पन्न हो जाता है। गलावरोधका उपचार बस्तिद्वारा, विरेकका उपचार वमन द्वारा करे। दूध और छाछ पिलायें और आक्षेपकी दशामें शीतौषधि सेवन करायें। शीतल एव स्निग्ध तेलकी मालिश करे और गुनगुना पानीमें बिठायें। इसके प्रत्येक भेदकी जड खाने और योनिमे धारण करनेसे पेटका बच्चा गिर पडता है। विषैला कीडा काटे हुए स्थानको इसके काढेसे धारें। शेष गुणप्रयोग बखुरमरियम्के समान (दोनो समानधर्मी) है। अहितकर–इससे अत्यधिक प्यास लगती है। निवारण–कुलफेके पत्ते। प्रतिनिधि–अजीरका दूध, दुगुना बादावर्द, जरावद तवील और पुदीना। मात्रा–४ ५ ग्राम (४½ माशे) तक।

नव्यमत—वमन, आर्तवजनन, रेचन, मूत्रजनन मत्स्यविष तथा सर्पविषका अगद है। जड (Corm) तीव्र विरेचन है।

•

(४१७) बच

फैमिली : आरोइडासे (Family Aroidaceae)

नाम। घोडवच—(हिं०) वच(छ), घोडवच, (यू०) Akoros (D 1 2), (अ०) अल्-वज्ज (इ० बै०), ऊदुल्वज्ज, (फा०) अगरे(वज)तुर्की, कारूनक, (स०) वचा, उग्रगन्धा, (व०) वच, (प०) वर्च, वरच, (क०) वय, (सिंधी) किनीकाही, (म०) वेखण्ड, (गु०) घोडावज, वज, (लै०) आकोरुम् कालामुम (**Acorus calamus L**), (अ०) स्वीट फ्लैग या सेज (Sweet-Fag or Sedge)।

बालवच (हिं०) खुरासानी वच, सफेदबच, बालबच, दुध(दुधिया)बच, मीठावच, (नेपाल) सतुआ, (फ़ा०) सोसन जर्द ? (अ०) वज्जे खुरासानी; (स०) श्वेतवचा, हैमवतीवचा, पारसीक वचा (च०, सु०), (बं०) खोरासानी वच, शादावच, (म०) पाढरे वेखंड, बालवेखड, (गु०) खुरासानी वच, बालवच, (ले०) पारिस पॉलीफीला (**Paris polyphylla** Sim) ।

उत्पत्तिस्थान—घोडवच यूरोप और उत्तरी अमरीकाका मूलनिवासी पौधा है । समस्त भारतवर्षमे भी नम एव दलदली स्थानोमें ३,००० फुटसे ८,००० फुटकी ऊँचाई पर इसकी खेती की जाती है । हिमालय प्रदेशमें विशेषत. मणिपुर और नागाकी पहाडियोमें झीलो तथा सोतोके किनारे यह पुष्कल होती है ।

वर्णन—यह सोसनकी तरहके एक बहुवर्षायु क्षुपकी प्रसिद्ध जड (पातालीघड) है, जो गँठीली, खुरदरी और झुर्रीदार तथा लाली लिए सफेद रगकी होती है । बाजारमे इसके विभिन्न आकार प्रकारके टुकडे मिलते है जो अर्ध-बेलनाकार या चपटे होते है । बास मनोहर एवं सुगधित तथा स्वाद तिक्त एव चरपरा होता है । ईरानी वच कुछ कालाई लिए अधिक सुगन्धित होती है । घोडवच और बालवच भेदसे यह २ प्रकारकी होती है, जिनमें घोडवचका वर्णन ऊपर किया गया है । बाजारू बालवच पारिस पॉलीफिला नामक क्षुपकी जड है । कही-कही इस नामसे ई साजातीय वनस्पति (**Iris germanica**) की जड (पाताली घड) मिलती है ।

उपयुक्त अग—जड (पाताली घड) ।

रासायनिक सगठन—घोडवचमें एक सुगधित पीले रगका उत्पत् तैल होता है जो विना छिले हुए पाताली घडमे अपेक्षाकृत अधिक होता है । इसके अतिरिक्त इसमें एकोरिन (Acorin) नामक तिक्त ग्लूकोसाइड, पर्याप्त स्टार्च तथा थोडा टैनिन आदि भी होते हैं ।

घोड़बच—

प्रकृति—गरम और खुश्क । आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध०नि०, कै०नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कफछेदन, शोषण, वातानुलोमन, वातनाडी (तन्त्रिका) एव मस्तिष्क सशोधन, मूत्रार्तवजनन और लेखन है । विस्मृति, तर आक्षेप, पक्षवध और स्वाप जैसे मस्तिष्क एव वातरोगोमें बचका उपयोग करते है । हकलाना (लुकनत) और बालकोको बोलनेमें शीघ्र समर्थ होनेके लिए इसको मधुमें मिलाकर चटाते है । आमाशयको बलप्रदान करने और आटोप एव आनाह दूर करनेके लिए इसको खिलाते हैं । यकृत्के सर्द दर्द और प्लीहा काठिन्यमे भी इसका उपयोग किया जाता है । मूत्रार्तवजननके लिए भी यह उपयोगी है । रतौधी, फूली, धुध और मोतियाबिंद जैसे नेत्ररोगोमे इसे नेत्रमे लगाते है । चेहरेकी रगत निखारने और किलास एव छीप वा झाइँ (बहक) मिटानके लिए अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ इसका लेप करते हैं । अहितकर—उष्ण प्रकृति और शिरके लिए । निवारण—सौंफ और सादा सिकजबीन । प्रतिनिधि—जीरा और रेवदचीनी । मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा) तक ।

आयुर्वेदीय मत—वचा तिक्त, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वामक, विरेचन, लेखन, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशमन, सज्ञास्थापन, मेध्य, कण्ठ्य, कृमिहर, वाणी और स्वरको (सुधारने)वाला, आमपाचन, दीपन, मल-मूत्र-विशोधन तथा उन्माद, अपस्मार, विबन्ध, आध्मान, शूल, कफ और वातका नाश करनेवाली है । (च०सू०अ० २, ४; वि०, सु०सू०अ० ३८, ३९, ध०नि०, कै० नि०) ।

नव्यमत—बच उष्ण, स्वेदजनन, कामहर, कफघ्न, वामक, सुगन्धि, दीपन, वातनाशक, उत्तेजक वेदना-स्थापन और कृमिघ्न है । प्रतिश्याय-जुकाम, गलान्तर शोथ और श्वासनलिकाशोथमे इसका काढा देते हैं । इसका टुकडा मुँहमें रखनेसे शुष्ककास और गलेकी सूजन कम होती है । दमामें ५ माशे इसका चूर्ण ६ माशासे १ तोला

संधानमक और आधसेर पानी मिलाकर एक साथ पीनेसे वमन होकर दमेका वेग कम होता है। शिशुओंको दाँत आते समय तथा अपस्मार, उन्माद, लकवा और सन्निपातज्वरमें इसे देनेसे लाभ होता है। इससे गर्भाशयका सकोचन होता है। इसलिए प्रसवके समय आवीका वेग बढानेके लिए केशर और पीपलामूलके साथ इसे देते है। पीडायुक्त अर्शको बच, भाँग और अजवायनकी धूनी देते हैं।

●

(४१८) बछनाग

फैमिली : रानुन्कुलासे (Family . Ranunculaceae)

नाम—(हिं०)सिंगिया(विष), विष, मीठा जहर, (यू०) अकूनीतून(Akoniton); (अ०,फा०) बीश, (स०) विष, वत्सनाभ; (क०) मोहद, (प०) मीठातेलिया, मीठाविष (जहर), (जम्मू) मोहरा, (ब०) काटविष, मिटेविष; (गु०)बछ(स)नाग, (मा०) सिंगी मोहरा, (ले०) आकोनीटुम् नापेल्लुस **(Aconitum napellus Linn)**; (अ०) एकोनाइट (Aconite), वूल्फ्स-बेन (Wolf's-bane)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोपमें आल्प्स पर्वत और एशियामे हिमालयपर १०,००० से १५,००० फुटकी ऊँचाईपर कुमाऊँसे कश्मीर, सिक्किम और गढवालमें इसके क्षुप होते हैं। प्लाइनीके मतसे एकोनाइट 'एकोनिस'से जो पुराना कृष्णसागर स्थित बदरगाह है, व्युत्पन्न है।

वर्णन—यह एक क्षुपकी प्रसिद्ध जड है जो प्राय यूरोप(विदेशो)से आकर यहाँ बिकती है। यह ऊपर गोपुच्छाकार, नीचे लम्बी और ½ से ¾ इञ्च मोटी बाहरसे भूरी काली (कृष्णाभ) और टूटी हुई जडके केन्द्रमे ५-७ कोणीय तारक दिखाई देते हैं अन्यथा भीतरसे वह सफेद पिष्टमय तथा निर्गंध होती है। इसके ऊपरी हिस्सेपर टूटे हुए उपमूल (तन्तु)के चिह्न और लम्बाईमें प्राय झुर्रियाँ होती हैं। यह सरलतासे टूट जाती है। स्वाद प्रथम किसी कदर मधुर, फिर कडुआहट लिए होता है। इसे चबानेसे कुछ मिनट बाद-दो मिनटसे भी कम समयमे-चुनचुनाहट और सुन्नता प्रतीत होती हैं जो बहुत देर तक रहती हैं। वक्तव्य—'शृंगीविष' अर्थात् 'मोहरी' आकोनीटुम् चास्थान्थुम् **(Aconitum chasmanthum** Staff ex Holmes) इसका भारतीय भेद है। यह भारतवर्षमें पुष्कल होता है। भारतीय बाजारोमें मिलनेवाला बछनाग प्राय आकोनीटुम् फेरोक्स **(Aconitum ferox** Wall.) जातीय विष अथवा उसकी कतिपय अन्य जातियोकी मिली-जुली जडें हैं, जो अधुना आयुर्वेदीय और यूनानी चिकित्सामें व्यवहृत होती है।

उपयुक्त अग—जड।

रासायनिक सगठन—इसमे एकोनिटीन (अकूनीतीन, Aconitine) नामक एक अत्यन्त विषैला ऐल्केलॉइड होता है। इसमे वर्तमान सभी वीर्योमे यह सबसे प्रधान है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—ज्वरघ्न, वेदनास्थापन, स्थानीय स्वापजनन, मूत्रार्तवजनन, प्राय कफज एव सौदावी रोगोंमें उपकारक और त्वक्सक्षोभक (मुहय्यिज जिल्द) है। किसी-किसीके मतसे शुद्ध किया हुआ विष प्रत्येक रोग विशेषतः सौदावी रोगोके लिए गुणकारक है। वक्तव्य-विष होनेसे औषधमें प्राय इसे शुद्ध करके उपयोग करनेका विधान है। इसके शोधनकी विधि 'यूनानी द्रव्यगुणविज्ञानग्रथके पूर्वार्ध भेषजकल्पनाखड' में देखें।

उपयोग—ज्वरघ्न होनेके कारण इसे शुद्ध करनेके उपरात उपयुक्त औषधियोके साथ इसकी गोलियाँ बनाकर उपयोग करते है। किन्तु आधुनिक अन्वेपणोसे यह उन ज्वरोमे अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है जो किसी अगके शोथके कारण हुए हो, जैसे—फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरणशोथ आदि। यह वेदनाशामक भी है, अतएव ज्वरको दूर करनेके साथ ही यह वेदनाको भी शमन करता है। वेदनाहर और स्थानीय स्वापजनन होनेके करण अर्धावभेदक, अनतवात (असाव), गृध्रसी प्रभृति जैसी वातिक वेदनाओमे इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। इसको बहुधा बाजीकर तिलाओमे भी डाला जाता है। उत्तेजक होनेके कारण यह अगोके भीतर उत्तेजना उत्पन्न करता है जिससे उसकी ओर रक्तपरिभ्रमण तीव्र हो जाता है और अगपोषणका हेतु बन जाता है। यह अतमे सुन्नता पैदा करता है। अतएव ऐसे रोगीको जिनका अग स्पर्शासहिष्णु (ज़कीउल्‌हिस्स) हो, इस प्रकारके तिला गुणदायक होते है, विशेषकर सर्दी लगनेसे हुए रजोरोधमे यह आर्तवका प्रवर्तन करता है। कुष्ठ, किलास, कास, श्वास, कृच्छ्रश्वास और दुष्टव्रण जैसे कतिपय सौदा एव कफजन्य रोगोमें भी इसका उपयोग किया जाता है।

बछनागके विषलक्षण—इसको अधिक प्रमाणमें खानेसे थोडीदेर बाद विषलक्षण प्रकट हो जाते है। फलत मुख एव अन्नमार्गमे तीव्र झनझनाहट और शोथ होकर नि सज्ञता उत्पन्न हो जाती है। उदरमे भी तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाता है। वमन आता है। शरीरकी त्वचा सर्द और चिपचिपी हो जाती है या प्रचुर स्वेद आने लगता है। सम्पूर्ण शरीरपर च्यूँटियाँसी रेंगती प्रतीत होती है। नाडी मद, अल्प और अनियंत्रित हो जाती है। पुतलियाँ विस्फारित हो जाती है और आँखोकी टकटकी बँध जाती है। श्वास कठिनाईसे आता है। पेशियोकी निर्बलतासे टाँगे लडखडाने लगती है। समस्त शक्तियाँ निर्बल हो जाती है, यहाँ तक कि निर्बलताके कारण मूर्छा आने लगती है। कभी-कभी आक्षेप होने लगता है। अतत: रोगी श्वासावरोध या मूर्छाके कारण मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिए मात्राधिक्यसे सर्वदा बचना चाहिए, क्योकि इसका कोई निश्चित अगद अभी तक ज्ञात नही है। विषकी चिकित्सा उक्त अवस्थामे रोगीको बारबार कै कराये और आमाशयको भलीभाँति धो डालें। इसके बाद दवाउल्‌मिस्क या कस्तूरी अथवा जदवार सेवन कराएँ। अहितकर-अशुद्ध विष साघातिक विष है। **निवारण**—रेंडके पत्र और वमन कराना। प्रतिनिधि—जदवार। मात्रा—१ चावलसे २ चावल तक।

आयुर्वेदीय मत—बछनाग विष, रसायन, बल्य तथा वातरोग, कफरोग, शीत (ठढी), कुष्ठ, शोथ, अग्निमाद्य, श्वास, खाँसी, प्लीहावृद्धि, उदररोग, ज्वर, कठके रोग, सन्निपातज्वर और मधुमेहको दूर करता है। बछनागका लेप शोथ, पीडा और अपचीका नाश करता है।

नव्यमत—अशोधित बछनागका प्रयोग निषिद्ध है। शोधित बछनाग हृदयोत्तेजक, स्वेदजनन तथा पीडा शामक है और अशुद्ध बछनाग जैसा हृदयावसादक नही है। (भा०भै० त० पृ० ३९८)। गोमूत्रमे शुद्ध किया हुआ बछनाग हृदयको बल देता है, रक्तका दबाव और शाखागत रक्ताभिसरणको बढाता है। यह प्रभाव देर तक रहता है। बछनागको गोमूत्रके बदले गोदुग्धमे शुद्ध किया जावे तो यह परिवर्तन विशेष स्पष्टरूपसे मालूम होता है। (डॉ० म्हसकर)। बछनाग खिलानेसे आमाशयके ज्ञानतंतु सज्ञारहित होते है, आमाशयका रस और कफ कम होता है। इसलिए इसे आमाशयकी पीडा, दाह और गर्भिणीके वमनमे देते है। इसका वीर्य शीघ्र रक्तमे मिलकर हृदय, हृदयकेन्द्र, श्वासोच्छ्वासकेन्द्र, त्वचा और मूत्रपिण्ड (गुर्दो) पर शीघ्र क्रिया करता है। बछनागसे खूब पसीना और मूत्र आता है तथा सम्पूर्ण शरीरके ज्ञानतंतु थोडे बहुत सज्ञारहित होते है। इन सब गुणोके कारण शोथ, ज्वर और पीडा होनेपर इसका उपयोग किया जाता है। शरीरमे कही भी सूजन हो तब ज्वर होता है। ज्वरमे इसे देनेसे पसीना एव पेशाब होता है और नाडीकी गति कम होती है तथा सूजन और ज्वर भी कम होता है। कण्ठ, श्वासनलिका, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरणकला, हृदय, अंत्र, अन्त्रावरणकला, सन्धि आदिके शोथप्रधान रोगोमे प्रारम्भसे ही बछनाग देनेसे व्याधि शात होती है और आगेकी अवस्थायें नही उत्पन्न होती। बछनाग उत्तम पीडाशामक होनेसे सिरका दर्द, दन्तपीडा, कर्णशूल, पृष्ठशूल आदि ज्ञानतन्तुओके पीडायुक्त रोगोमे

मिलाया जाता है और लेप किया जाता है। बछनागमें पीड़ाशामक गुण है, परन्तु वह औषधीय मात्रामें देनेसे बहुत सौम्य होता है। इसलिए इसके साथ अफीम, धतूरा या खुरासानीअजवायन देते हैं। सर्दीसे स्त्रियोंका मासिक बन्द हो गया हो तो इसे दिया जाता है। मधुमेह, बहुमूत्र, तनुमेह, स्वप्नमें शुक्रस्राव और मूत्र होना, इन रोगोंमें इसे दिया जाता है। बछनागके आयुर्वेदोक्त पुराने योग सभी उत्तम हैं, परन्तु उनमें इसकी मात्रा कम करनी चाहिए तथा इसके योगोंमें बछनाग मिलाने चाहिए।

●

(४१९) वजरदंती (वज्रदंती)

वर्णन—एक बूटी जो जमीनसे दो तीन गिरहसे अधिक ऊँची नहीं होती, शाखाएँ पतली जिनके आस पास पत्ते होते हैं, अधिक ऊँचो नहीं। जमीनसे फूटकर कुछ खड़ी और कुछ बिछी हुई होती हैं और पत्थरोंमें यह बूटी उगती है। शाखाओंपर अर्धग्रन्थिके समान पुड़ियाँ लगी होती हैं। यह पुड़ियाँ स्वञ्जवत् होती हैं जिनके छिद्रोंमें बारीक बारीक पत्ते और नन्हे-नन्हे कांटे होते हैं। पत्तोंकी आकृति अनारके पत्ते जैसी, परन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं और शाखाओंसे पृथक् नहीं पाये जाते। जब इसकी शाखा जमीनपर गिर जाती है तब उसमें जड निकल आती है और पुण्डियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। शाखाओंके सिरपर भी पुण्डी होती है। ताजी वजरदंतीका रंग लाल और सूखीका रंग कालाई लिए लाल होता है। मेवाड़की पहाड़ियोंमें स्थित जैसमद तालावके आस-पास यह बहुतायतसे होती है। इसके अन्य भेदका पौधा गेंदेके पौधा जैसा आवा रखता है और आकार-प्रकारमें बडासे बडा पौधा दो हाथ तक ऊँचा, पत्ते ऊपरसे हरे, नीचेसे रंगीन ललाई लिए, डालियाँ कालाई लिए लाल यकृद्वर्णकी और सवा इंच तक मोटी होती हैं। यह उसका भेद है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके काढेसे कुल्ली करनेसे दाँत दृढ होते हैं और दाँतोंसे खून बहना बन्द होता है। सूखी वजरदन्तीको नमकके साथ पीसकर दाँतोंपर मलनेसे मसूढे दृढ होते है। इसके चाबनेसे भी दाँतोंमें शक्ति आती है। इसके बराबर मौलसिरीकी छाल मिलाकूटकर बनाया हुआ मंजन शिथिल या कमजोर मसूढोंके लिए अनुपम है। एक उत्तम मंजनका योग यहाँ दिया जा रहा है—नीलाथोथा, कुट, सफेद कत्था, जीरा, मस्तगी और वज्रदंती ३-३ माशे, नमक लाहौरी, सोंठ भूना हुआ धनियाँ और कसीस ६-६ माशे, कपूरकचरी कबाबचीनी १½-१½ माशे। नीलाथोथेको गरम तवेपर रखकर आगपर इतना भूने कि सफेद हो जाय। जीरे और धनियेको भी कुछ भून लेवे जिसमें रंगमें लाली आ जाय। पुन सबको कूटछानकर दाँतोंपर मले और चार घडी तक कुल्ली न करे। उससे दाँत मजबूत होते मसूढोंका मांस स्थिर एव दृढ होता और दाँत स्वच्छ, चिकने एव चमकीले होते है। इसका काढा कफज्वरको नष्ट करता है। तीन तोले इसके पत्ते ले—पीसकर तीन-तोले गायका घी मिलाकर खानेसे वस्तिगत अश्मरी अतिशीघ्र निकल जाती है (ख०अ०)।

●

(४२०) बड़हल

फ़ैमिली : आर्टोकार्पासे (Family : Artocarpaceae)

नाम—(हिं०) बडहल, बडहर, लकूच, भद्दा, (सं०) लकुच, लिकुच, क्षुद्रपनस, डहुक; (लै०) आर्टोकार्पुस लाकूचा (**Artocarpus lakoocha** Roxb), (अं०) मंकी फ्रूट (Monkey Fruit) ।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—एक बडा पेड़ जो संयुक्त प्रदेश, पश्चिमीघाट, पूर्वी बंगाल और कुमाऊँकी तराईमें बहुत होता है । इसे प्राय लगाते हैं । फल गोल जिनके ऊपर उभारसे होते हैं । कच्चा फल हरा और पका नारङ्गी पीलेरंगका होता है । स्वाद किंचित् अम्लता लिए मधुर होता है ।

प्रकृति—शीत एवं तर ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बडहल चिरपाकी, गुरु वा विष्टंभ', आनाहकारक, पित्तोद्वेगसंशमन और अवाजीकर है । इसके बीज बच्चोंके लिए सारक है । छाल ज्वरघ्न है । अतिहक्र—कफ प्रकृति और मैथुनशक्तिके लिए । निवारण—आदी ।

आयुर्वेदीय मत—कच्चा बडहर मधुर, अम्ल, उष्णवीर्य, भारी विष्टम्भकारक, त्रिदोषकारक, रुधिरविकारकारक, नेत्रोंको अहितकारी तथा शुक्र और अग्निनाशक है । पका बड़हर मधुर, अम्ल, कफकारक, अग्निवर्धक, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, विष्टम्भकारक और वातपित्तनाशक है । (भा० प्र०) ।

●

(४२१, ४२२) बथुआ, सुगंधबथुआ

फ़ैमिली केनोपोडिआसे (Family Chenopodiaceae)

नाम—(हिं०) बथुआ, वाथु, (यू०) Atraphaxis (D 2 145), (अ०) अल्सुर्मक (इ० बै०), सर्मक, क़तफ, (फा०) सल्म , सर्म (-क),(तु०)सर्म , (सं०) वास्तु(स्तू)क, क्षारपत्र, शाकराज, (बं०) बेतोशाक, वाथुसाग, (म०) चाकवत, (गु०) टाको, (लै०) केनोपोडिउम् आल्बुम् (**Chenopdium album** Linn), (अं०) ह्वाइट गूज–फूट (Whit Goose-foot), आट्रीप्लेक्स (Atriplex) । बीज—(अ०) बज्रुस्सर्मक, बज्रुल्कतफ, (फा०) तुख्मसल्म , तुख्म बथुआ ।

वक्तव्य—देहरादूनके आस-पास खेतोमें या ऊसर भूमिमे इसकी एक अन्य जातिके क्षुप समूहबद्ध होकर उगते है जिसे लेटिनमें केनोपोडिउम् आम्ब्रोसइडेसिओ (**Chnenopodium ambrosioides** Linn) या कें० आन्थेल्मीन्टिकुम् (**C anthelminticum** A. Gray) और अँग्रेजोमे अमेरिकन वर्म–सीड (American Worm-seed) कहते हैं । इसमे तीक्ष्ण कपूरवत् गंध होनेसे संस्कृतमे इसे सुगंधवास्तुक कह सकते हैं । आँइल चेनोपोडिअम् (Oil Chenopodium) इसी पौधेके बीजोसे निकलता है जिसका व्यवहार आक्षेपहर होनेसे वातव्याधियोंमें या कृमिघ्न विशेषकर अकुशमुखकृमिनाशन रूपमे होता है। वि० दे० 'सुगन्धवास्तूक' ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—यह एक छोटा प्रसिद्ध पौधा है जो गेहूँ आदिके खेतोमें उपजता है और जिसका लोग साग बनाकर खाते हैं । इसके बीज कुलफाके बीजके समान छोटे-छोटे और काले रंगके होते है ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तैल, कैरोटीन (Carotene) और जीवतिक्ति 'ग' (वाइटामीन 'C' पाया जाता है।

उपयुक्त अग—पत्र और बीज।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, उ र कण्ठमार्दवकर, प्रवर्तनकर्ता, सतापहर, तृष्णाहर और यकृद्रोगोमे प्रयुक्त होता है। यह उष्ण प्रकृतिको सात्म्य और उष्ण व्याधियोमे गुणकारक, शीघ्रपाकी एव सर है तथा उष्ण-कास, उर क्षत, राजयक्ष्मा (दिक), कामला, यकृतकी उष्णता और उष्ण ज्वरोमे गुणदायक है, प्यास बुझाता और कठगत शोथको अपने प्रभावसे विलीन करता है। उष्णशोथ, कण्डू और कच्छूके लिए इसका पत्रलेप गुणकारी है। अहितकर—वायुकारक है। निवारण—गरम मसाला। प्रतिनिधि—पालक। जितना पच सके।

बीज। प्रकृति—अनुष्णाशीत और पहले दर्जेमें शुष्क (खुश्क)। गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, मूत्रल, पित्तच्छर्दनीय है। यह यकृद्रोगोमे प्रयुक्त होता और त्वचाके दाग एव धब्बोको मिटाता है। मूत्रजनन होनेके कारण यकृच्छोथ, जलोदर, कामला, कृच्छ्रमूत्र और उष्णज्वरोमें अकेले या अन्य औषधद्रव्योके साथ इसका शीरा पिलाते है। पित्तका वमन करनेके लिए नमक, गरम पानी और शहदके साथ इसका उपयोग करते है। शरीरकी त्वचाको चिह्न एव मलादिसे शुद्ध करनेके लिए इसका लेप लगाते है। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बथुआका साग (वास्तूक) किंचित् क्षारीय, स्वादिष्ट, विपाकमे कटु, लघु, दीपन, पाचन, रुचिकर, सारक, वुद्धि, अग्नि और बल बढानेवाला, शुक्रजनक तथा कृमि, सर्वदोष (तीनो दोष), रक्त, पित्त, प्लीहा और रुधिरविकारका नाश करनेवाला है। (सू० सु० अ० ४६, भा० प्र०)।

सुगंधबथुआ (सुगंधवास्तुक)

फैमिली : केनोपोडिआसे (Family Chenopodiaceae)

नाम (हिं०) सुगन्ध बथुवा, चेनोपोडियम, (लै०) केनोपोडिअम् अम्ब्रोसिओइडीस (**Chenopodium ambrosioides** Linn), के० आन्थेल्मिन्टिकम् (**C. anthelminticum** A Gray), (अ०) अमेरिकन वर्म-सीड (American Worm-seed)।

उत्पत्तिस्थान—अमरीका। भारतवर्षमें रांँची, गगा तटपर, तथा पुर्नियाके आस-पास इसके क्षुप पाये जाते है।

वर्णन—बथुएकी जातिका एक २-४ फुट ऊँचा क्षुप, फल-किंचित् दवे (Depressed), गोलाकार, लगभग $\frac{1}{2}$ इन्च व्यासमें, हरापन लिए या भूरा, ग्रथिमय (Glandular), अकेला, बीज चमकदार (Glossy), काला, रूपरेखामे अर्धचन्द्राकार (Lenticular), कुण्ठित किनारायुक्त (With an obtuse edge), बीजके ऐल्ब्युमेनमें एक वक्र भ्रूण होता है (The albumen containing a curved Embioy); स्वाद कटु, कषाय और तारपीनवत्, समग्र वनस्पतिमें कर्फूर और तारपीनवत् बहुत तीव्र गध होती है। काण्ड नालियो या रेखाओसे युक्त ग्रन्थिरोमश और जालिका सदृश मृदुरोमश होते है।

रासायनिक संगठन—इसमें ३ प्रतिशत एक चेनोपोडियम नामक उत्पत् तेल (ऑइल ऑफ चेनोपोडियम् Oil of Chenopodium) होता है, जिसके ऊपर इसका कृमिघ्न गुण निर्भर करता है।

उपयुक्त अग—बीज और तेल।

कल्प तथा मात्रा—बीजका चूर्ण मात्रा १ ग्रामसे ४ ग्राम (७.। से ३० रत्ती); प्रवाही सार—मात्रा, ½ से १ ड्राम, तैल (Ol Chenopod, B P), मात्रा—० २ मि० लि० से १ मि० लि० (३-१५ विंदु)। यह प्राय अमेरिकासे आता है। पत्तियाँ आयताकार या प्रासवत्, कुण्ठिताग्र, लहरदार तथा दन्तुर होती हैं। पुष्प असख्य, सूक्ष्म, हरित, अवृन्त और लम्बी मञ्जरियोपर गुच्छबद्ध होकर निकले रहते हैं।

गुणकर्म तथा उपयोग—कृमिघ्न, आक्षेपहर। अन्त्रगत कृमियोके निकलनेके लिए इसे भोजनसे पूर्व रातमें सोते समय और प्रात दो-तीन दिन तक देवें। इसके देनेके बाद कोई विरेचन देना चाहिए।

•

(४२३) बननील (वस्मा)

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) बननील, जगली नील, (फा०) अल्वस्मा (इ० बै, बूअलीसीना), वस्मा, कतम, नीलसहराई, (स०) बननीली, झिल्ल, (गु०) वेकारिओ, (शोलापुर) वरवेर, (लै०) ईंडिगोफेरा पाउसीफोलिआ (**Indigofera paucifolia** Del), ईंडिगोफेरा ओब्लॉगीफोलिआ (***I. oblongifolia*** Forsk), (अ० वाइल्ड इडिगो (Wild Indigo)। विदेशी बननील (जो अमेरिकामें होता है)—(लै०) बाप्टीसिआ टिंक्टोरिआ (**Bapticia tinctoria** R Br)। इसके प्रभावाशका नाम बॉप्टिसिनम् (बॉप्टीसीन) है। यह मृदुसारक, वमन, यकृदुत्तेजक और अधिक प्रमाणमें विरेचन है। १ ग्रेन से ५ ग्रेन या ६० मि० ग्रा० से ३०० मि० ग्रा० (½ रत्तीसे २½ रत्ती) तक गोलीके रूपमे देते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष और बलूचिस्तानके समस्त मैदान।

वर्णन—एक गुल्मजातीय प्रसिद्ध वनस्पति। भुईंनील इसका एक भेद है। इसको लेटिनमे ईंडिगोफेरा इन्नेआफील्ला (**Indigofera enneaphylla** Linn), (सस्कृतमें) वासुक, मराठीमें 'भुइगुली' कहते हैं। इसका प्रसरी क्षुप होता है। जगली (स्वयजात) और बुस्तानी (उद्यानज-कृषिकृत) भेदसे नील दो प्रकारका होता है। बाल काला करनेके लिए इसके जगली भेदके पत्तोका ही उपयोग प्राय होता है, जिसे फारसीमे वस्मा कहते हैं। इसके पौधेको प्रात काल काट, उसी दिन धूपमे सुखा कर और पत्ते झाड-पीसकर शीशीमें वायुसे सुरक्षित रखें और काममें लेवे।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह बालोका सामान्य और प्रसिद्ध खिजाब है। इसकी धूनी या लेपसे प्रतिश्यायमे लाभ होता है तथा बालोको शक्ति देता और उन्हे काला करता है। इसे बच्चोके नखोपर लगानेसे पसलोका दर्द जाता रहता है। इसके लेपसे छाती एव गुर्दोका दर्द जाता रहता है। यह सांद्रवायुको विलीन करता, व्रणोका पूरण करता (भरता), ग्राही, वामक और लेखन है तथा विसर्प, कण्ठमाला और खालित्य (सिरके गज)का नाश करता है। यह सडे-गले घावो (व्रणो)के लिए गुणकारी है। कैसी ही खराब एव पुराना व्रण हो इसके पत्तोके लेपसे अच्छा हो जाता है तथा कैसी भी कठिन सूजन हो वह बैठ जाती है। इसका पत्र-स्वरस पीनेसे बहुत वमन होता है। यह पागल कुत्तेके काटे हुएको गुणदायी है। इसके पत्र स्वरसमें बराबर तिलतेल मिलाकर इतना पकायें कि तैलमात्र शेष रह जाय। इस तेलको बालो पर लगानेसे बाल बढते है और गिरने नही पाते। यह अर्श, गुदाके रोग और सर्दी

के दर्दोंको लाभ पहुँचाता है। प्रसेक (नजला)में इसके बीज पीसकर आँखमें लगानेसे लाभ होता है। १ ग्राम (१ माशा) इसके बीजोका तेल पीनेसे स्त्रीको कभी गर्भ नहीं रहता। परीक्षित है। नमकके साथ इसके पत्तोक खिजाब करनेसे वातज एव कफज विभिन्न प्रकारके शिरःशूल आराम होते हैं।

●

(४२४) वनफशा

फैमिली : वायोलासे (Family Violaceae)

नाम—(हिं०; गु०, म०, बम्ब०) वनफसा (शा), वनप्शा, (फा०) बनफ्शः, (अ०) बनफ्सज, फरफीर (क०) गुन्नफचा, बूनपोश; (ले०) वायोला ओडोराटा (**Viola odorata** Linn), (अं०) ब्लू या स्वीट वॉयोलेट (Blue or Sweet Violet)।

वक्तव्य—'बनफ्सज' फारसी 'वनफ्श.'से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—फारस। भारतवर्षमें भी कश्मीर और अनुष्णाशीत पश्चिमी हिमालयमें लगभग ५,००० फुटकी ऊँचाईपर यह विपुल होता है। इसके स्वयजात पौधे भी होते हैं तथा वनफ्शेकी खेती भी की जाती है।

वर्णन—वनफ्शाके ४-६ अगुल ऊँचे कोमल पौधे होते हैं, जिनकी पत्तियाँ हृदयाण्डाकृति, लोमयुक्त और शिरावधुर होती हैं और ब्राह्मीकी पत्तियोके समान दाँतेदार दिखाई पडती हैं। फूल आकर्षक बैंगनी नीलेरगके, झुमकेदार होते हैं, जिनमें एक स्पर (Spur) निकलता है, जो अग्रपर फूला होता है। पुष्पोसे एक बडी ही मनोरम सुगन्धि आती है। पुराना पडनेपर यह भूरे या पिलाई लिए सफेद हो जाते हैं। जड़ (बीखे बनफ्श)[1] पाँच छ उपमूलयुक्त पतली होती है।

उपयुक्त अग—पत्रपुष्प सहित सूखी हुई सम्पूर्ण बूटी औषधके काम आती है। इसे वनफसा कहते हैं। इसके केवल सूखे फूल भी बाजारमें 'गुलेबनफ्शा' नामसे मिलते हैं। इन फूलोका व्यवहार यूनानी चिकित्सामें बहुत होता है। उक्त दोनो ही द्रव्य ईरानसे बम्बईमें आते हैं। शुष्क वनफ्शा एव गुलवनफ्शा कश्मीरसे भी भारतीय बाजारो (विशेषत बम्बई)में आते हैं। इसे कश्मीरी वनफ्शा या बागवनफ्शा कहते हैं। कश्मीरमें खेतीद्वारा उत्पादित वनफ्शेमें फूल प्राय पीले होते हैं। वनफ्शेकी अनेक जातियाँ हैं। इनमें नीले या जामुनीरग मिश्रित (नीललोहित) रगके फूलकी वनस्पति अधिक उत्तम समझी जाती है। मात्रा—५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ से ६ माशा)। विशेष-उत्तर भारतमें वायोलाकी अन्य भारतीय जातियो, जैसे—वायोला सिनेरेआ (V **cinerea** Boiss) एव वायोला सर्पेंस (V **serpens** Wall) का भी व्यवहार वनफ्शा नामसे किया जाता है।

रासायनिक सगठन—फूलमें वायोलीन (Violine) नामक इपीकेक्वानामें पाये जानेवाले इमेटीनकी भाँति एक वामकगुणधर्मी ऐल्केलॉइड, किंचित् उत्पत् तैल, कई रजक द्रव्य, वायोलाक्वर्सेटीन नामक एक पीला वीर्य और शर्करा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प एव योग—अर्क वनफ्शा, गुलकन्द बनफ्शा, खमीरा वनफ्शा, शर्बत बनफ्शा, रोगन बनफ्शा, सफूफ वनफ्शा एव हब्ब वनफ्शा आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव तर।

---

१ बाजारमें इस नामसे ईरसाकी जड मिलती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रकृतिमार्दवकर, पित्तसंशमन, उदरमार्दवकर, रुधिरसंशमन, स्नेहन, स्वप्नजनन, श्लेष्मनिस्सारक और उरःकंठमार्दवकर। पित्त, ज्वर एव तृष्णाको शमन करने और रुधिरकी तीक्ष्णता कम करनेके लिए बनफ्शाका उपयोग किया जाता है। प्रसेक और प्रतिश्याय, फुफ्फुसशोथ, फुप्फुसावरणशोथ (पार्श्वशूल), कास, नेत्राभिष्यद और आमाशय एवं यकृत्के उष्ण रोगोमें इसे फाट या क्वाथकी भाँति पिलाया जाता है। उष्ण शिर शूल और अनिद्रामे इसका लेप किया जाता है। उष्ण शिर.शूलको नष्ट करनेके लिए ताजा बनफ्शा सुँघाया जाता है। मलावरोध दूर करनेके लिए इसके फूलोका चूर्ण या गुलकन्द खिलाते हैं। इसका खमीरा और शर्बत मलावरोध, प्रसेक और प्रतिश्याय तथा ज्वरमे प्रयुक्त होता है। इसके ताजे फूलोमे तिलो या बादामके मज्जको बसाकर निकाला हुआ तेल (रोग़न बनफ्शा) मस्तिष्कस्नेहन और स्वप्नजननके लिए शिरमें लगाया जाता है। अहितकर-आकुलताकारक है। निवारण-नीलूफर और मर्जञ्जोश। प्रतिनिधि-खुब्बाजीके पत्र, गावज़बान और मुलेठी। मात्रा-५ माशेसे ७ माशे तक।

नव्यमत—कर्कटार्बुदीय उभारो (Cancerous growths)मे वेदनाशमनके लिए इसका लाभदायक उपयोग होता है। किसी-किसीके कथनानुसार इससे कर्कटार्बुद या कैसर (Cancer) अच्छा होता जाता है। बनफ्शाकी पत्ती का फाण्ट बनाकर पीने या रुग्ण स्थानको धारने अथवा पत्तीकी पुलटिस बनाकर लगानेसे इस रोगमें उपकार होता है। (पाटर्स न्यू-साइक्लोपीडिआ पृ० ३१३)। गुलबनफ्शा शीतल, स्नेहन, कफघ्न और थोडा-सा स्रसन है। मूल एक ड्रामकी मात्रामे वामक और थोडा विरेचन है। पचाग स्वेदजनन, श्लेष्मनिस्सारक, वामक और जरा विरेचन है। पित्तप्रधानरोगोमे बनफ्शा देते है। गरमीके दिनोमें उष्णताकी बाधा न होनेदेनेके लिये ईरान और अफगानिस्तानमे बनफ्शाका गुलकन्द खानेका बडा प्रचार है। अत्यार्तव, रक्तार्श आदिमे रक्तस्राव बन्द होनेके लिए पचागका काढा उत्तम द्राक्षासवके साथ मिलाकर देते है। कैंसरमे बनफ्शा खानेको देते हैं और इसका लेप लगाते है। इससे केन्सरगत पीडा एव स्राव कम होता है। केन्सरको धोनेके लिए बनफ्शा और पतगके काढेका प्रयोग करते है। मात्रा-पचाग चूर्ण ० ६२ ग्रामसे १ २५ ग्राम (५ रत्ती से १० रत्ती) स्वेदजनन और कफघ्न; १५-३० रत्ती रक्तस्राव बन्द करनेके लिए। (औ० स०)।

●

(४२५) बनसिटकी

नाम—(हिं०) पनसिटकी (मख्जन), बनछि(झि)टकी, बनसि(चि)टकी (मुहीत)।

वर्णन—यह एक छोटा जगली वृक्ष है जिसमे इधर-उधर बिखरी हुई विपुल शाखाएँ लगती है। पत्र मेंहदीके पत्रके समान और फल मकोयके समान होते है। कच्चेफल हरे और पकनेपर नीलवर्णके हो जाते है। इनके भीतर हरे रगके छोटे-छोटे बीज भरे रहते है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल प्रवर्तनकर्ता, श्वयथुविलयन और जलोदरमे गुणदायक है। इसके पत्तो, फलो और बारीक शाखाओको जलमे पीस-छानकर पिलानेसे गर्भपात हो जाता है। जलोदरीके उदर और सूजनके स्थानपर गुनगुना लेप करके ऊपरसे रेडके पत्र बाँधनेसे तीन-चार दिन तक प्रवर्तनके द्वारा समूचेउदरका पानी उत्सर्गित हो जाता है और सूजन जाती रहती है। अहितकर-गर्भिणीके लिए। निवारण-कतीरा और शहद। मात्रा-७ माशेसे १ तोला तक।

●

(४२६) बबूल

फेमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—पेड़ (हि०; म०) बबु(ब)ल (र), कीकर, (अ०) उम्मुगीलां, समुर , (फा०) मुगीलां, (सं०) बब्बुल, बब्बूल, बर्बर, बर्बूर (बं०) बाबला , (उ०) बाबूलगाछ, (गु०) बावल, (म०) बाभूल, (मा०) बावलियो; (सिंध) बबुर (ते०) नल्लतुम्म; (ता०) करुवेल; (मल०) करिवेलम्, (ले०) अकासिआ आराबिका (Acacia arabica); (अं०) अकेशिया ट्री (Acacia Tree), बबूल ट्री (Babool Tree)। गोद—(हि०) बबूलका गोद, कीकरका गोद, मिश्री (ओनरी) गोद, (अ०) समगे अरबी, समगुल् अरबी, (फा०) अजदुए ताजी; (स०) बर्बूर निर्यास; (म०) [illegible] गोद, (अं०) गम अरेबिक (Gum Arabic), अकेसिया गम (Acacia Gum)। फली—(हि०) बबूरी; (फा०) [illegible], (अ०) अकेशिया पॉड (Acacia pod)। छाल—(हि०) बबूलकी छाल, (अ०) कश्र उम्मुगीलां, [illegible]; (फा०) पोस्ते मुगीलां, (अ०) अकेसिया बार्क (Acacia Bark)। रसक्रिया—(हि०) अकाकिया, (अ० फा०) अकाकिया, (अं०) अकाकिया (Akakia), (यू०) Akakia (D. I. 23)।

वक्तव्य—प्राचीनकालमें [illegible] अरबदेशमें बबूलके गोंदका व्यापार अधिक हुआ करता था, इसलिए यह 'गम अरेबिक' अर्थात् 'समगे अरबी (अरबका गोंद)' के नामसे अभिहित हो गया। पर अधुना पश्चिमी अफरीकाके सेनेगल प्रान्तसे [illegible] उत्पादित है, इसीसे गोंदका प्रायः आयात यूरोपमें होता है। शौकुल् मक्क , शौकुल् कुसराबिय , शौकुल् मिस्रिय , [illegible] और मिस्रमें होनेवाले बबूलवृक्षके अरबी नाम हैं। लेटिनमें उनको क्रमशः आकासिआ वेरा (Acacia vera) और आकासिआ नीलोटिका (Acacia nilotica) कहते हैं। मिश्री-भाषामें उसको 'सन्त' कहते हैं। फलीको अरबीमें 'क़र्ज़' और फली एवं पत्रके स्वरसको 'अकाकिया' कहते हैं। समगे अरबी इसी वृक्षका गोंद है। अकाकिया और गोंदका आयात यहाँ अरब और मिस्रसे होता है। डॉ० विटरिंग महोदय अपनी पुस्तक फार्माकोपिया इंडिकामें लिखते हैं कि विलायती कीकर जो भारतवर्षके कतिपय स्थानोंमें पाया जाता है, उसका गोंद समगे अरबीसे भी उत्कृष्ट होता है। आकासिआ (Acacia) जिसका अरबी रूपांतर 'अकाकिया' है, यूनानी भाषामें कीकरको कहते हैं। परन्तु अरबी भाषाके यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें अकाकिया कीकरकी फलियोंकी रसक्रियाका नाम लिया है, जिसे उर्दूमें 'रुब' कहते हैं।

इतिहास—यूनानी हकीम थावफरिस्तुस्ने ईसवी सन्से ३०० वर्ष पूर्व 'गम्मी' नामसे, जिससे अँग्रेजी संज्ञा 'गम' व्युत्पन्न है; इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—यह भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें जंगली अवस्थामें अधिकतया पाया जाता है। राजस्थान, सिन्ध आदिमें पायाजानेवाला प्रधान वृक्ष है।

वर्णन—यह मझोले कदका एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष है। इसके पत्र, पुष्प, फली, वृक्षत्वक्, 'गोद' और कच्ची फलीके रसको सुखाकर बनाई हुई रसक्रिया (अकाकिया) आदि सभी औषधिके काममें लिए जाते हैं।

कल्प तथा योग—दवाए जरयान कोहना, सुनून पोस्त मुगीलाँ, कुर्स अकाकिया आदि।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल और फलीमें प्रचुरतासे टैनिन पाया जाता है। गोदमें अर्बिन (Arbin) या अरेबिक एसिड (Arabic acid), कैल्सियम, मैग्नेसीयम और पोटैसियमके साथ पाया जाता है। इसके सिवाय इसमें थोड़ा सेवाम्ल, शर्करा क्लेद और भी वर्तमान होता है।

पत्र, पुष्प, कच्ची फली और वृक्षत्वक् आदि—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष तथा शुक्रतारल्य रोगमे प्रयुक्त होते है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसग्राही ,उपशोषण और शीतजनन है। आयुर्वेदके मतसे बबूल शीतवीर्य और फली रूक्ष है। दाँतोको शुद्ध करने और मसूढोको दृढ करनेके लिये इसका दातून गुणकारी है। दाँतोकी दृढता और स्थिरताके लिए बबूलकी छालको मुखमे रखकर चबाते है तथा मजनोंमे डालते है। शीतसग्राही और उपशोषण होनेके कारण अतिसार, शुक्रतारल्य, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, सूजाक, शुक्रप्रमेह एवं श्वेतप्रदरमें इसका चूर्ण उपयोग करते है। श्वेतप्रदर और योनिसकोचनके लिए इसके काढेसे धोते या पिचकारी करते है। कतिपय कंठरोगों मे इसका गरारा (गरगर) कराते है। शुक्रमेह और श्वेतप्रदरमे बबूलका फूल, नया निकला हुआ पत्र और कच्ची फलीका चूर्ण खिलाते है। बबूलके नवीन पत्तोको जीरा और अनारकी कलीके साथ जलमे पीसकर बालातिसार बद करनेके लिए देते हैं। अहितकर —अन्त्र और आमाशयको। निवारण—कतीरा और शहद। प्रतिनिधि–अमरूद की छाल। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

बबूलका गोद—

प्रकृति— अनुष्णाशीत, दूसरे दर्जेमे खुश्क, आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही, व्रणलेखन, पिच्छिलताजनक और शुक्रमेह एव श्वेतप्रदरमें उपकारक है। बबूलके गोदके लबाबमे औषधियोको गूँथकर गोलियाँ और चक्रिकायें बनाई जाती है। उर कठके खरत्व, फुफ्फुसव्रण, उर क्षत, प्रवाहिका तौर अतिसारमें इसका उपयोग होता है। अहितकर–कब्ज पैदा करता है। निवारण–कतीरा और मृदुसारक द्रव्य। प्रतिनिधि–कतीरा अकाकिया। मात्रा–१ से ३ ग्राम (१माशेसे ३माशे) तक

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म—शीतसग्राही, रक्तस्तभन, रूक्षण, दोपविलोमकर्ता और प्रत्येक अगसे रक्तस्रावको रोकता है।

उपयोग—अन्त्रस्थ रगड, रक्तातिसार और प्रत्येक अगसे रक्तस्राव रोकनेके लिए इसका उपयोग करते है। इसे शुक्रप्रमेह, स्वप्नदोष और श्वेतप्रदरमे खिलाते हैं। गरम सूजन और नेत्राभिष्यदमे दोषको विलोम करनेके लिए इसका लेप लगाते है। मुखपाक और गुदभ्रशमे इसका बारीक चूर्ण छिडकते है। अग्निदग्ध अवयव पर इसे अडेकी सफेदीमें मिलाकर लगाते हैं। बालोको काला करनेके लिये भी इसका प्रयोग करते है। अहितकर–अवरोधजनक (वा अभिष्यदी) और सग्राही। निवारण–स्नेह द्रव्य। मात्रा–१ ग्रामसे १ ५ ग्राम (१माशासे १॥ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—बबूल कषाय, शीतवीर्य तथा कुष्ठ, कास, आँव, रक्तातिसार, पित्त, अर्श और दाहका नाश करनेवाला है। बबूलकी फली रूक्ष विशद, स्तम्भन, और गुरु है। गोंद ग्राही, शीतवीर्य, सधानीय तथा पित्त, वात, रक्तातिसार, प्रमेह, उदर और रक्तस्रावको दूर करनेवाला है। बबूलकी छालकी रसक्रियामें मधु मिलाकर अजन करने से नेत्रस्राव दूर होता है।

नव्यमत—फलीमें २२ प्रतिशत कषाय द्रव्य है। छाल उत्तम संग्राहक तथा गोंद स्नेहन, ग्राही और पौष्टिक हैं। छालके क्वाथसे मुखरोग, दाँतोके हिलने और गलेकी शिथिलतामें कुल्ले करते हैं। गुदभ्रंशमें बाहर आये हुए अगपर छालके काढेमें कपडा भिगोकर रखते हैं। गलेकी शुष्कता और शुष्ककासमें मुँहमे इसका गोद रखनेसे उपकार होता हैं। मूत्रकृच्छ्रमे गोदको पानीमें मिलाकर देते हैं। अतिसारमें कोमल पत्तियाँ (कल्कके रूपमें) देते है।

●

(४२७) बरगद

(फैमिली : (Family Urticaceae)

नाम—(हिं०) वड, वर, वरगद, (अ०) ज्ञातुज्जवानिब, कबीरुल् अश्जार, (फा०) दरख्ते रीश, (स०) वट, न्यग्रोध, (व०) वटगाछ, (प०) बोड, बूहड, (गु०) वड, वडलो, (म०) वड, (सिं०) नुग, (ले०) फीकुस बेन्गालेन्सिस (Ficus bengalensis Linn) (अ०) बेनियन ट्री (Banyan Tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह पीपर, गूलर आदिकी जातिका एक प्रसिद्ध बड़ा वृक्ष है।

उपयुक्त अग—समस्त अग अधिकतया दूध, नरम और कोमल कोपल (गुद्ध), बडकी दाढी (रीशे बर्गद) आदि।

रासायनिक सगठन—छालमे कषायद्रव्य (Tannin), मोम और रबड (Caoutchouc), फलमे तेल, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, कार्बोहाइड्रेट, तन्तु और रक्षा प्रभृति द्रव्य होते है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमे खुश्क (रूक्ष)। वटक्षीर (शीर बरगद) तीसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव रूक्षण (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही, व्रणलेखन विशेषकर शुक्रस्तम्भन और उत्तमागबलदायक है। अर्श स्वप्नदोष, शुक्रप्रमेह और शीघ्रपतनरोगम उपयुक्त विधिसे बडका दूध पिलाते है। इसकी नरम और कोमल कोपलो और बडकी दाढोका चूर्ण भी शुक्रप्रमेह और स्वप्नदोषमें उपयोग करते है। कोई-कोई हकीम इन रोगोमें वटपत्रका स्वरस (उसारा) निकालकर अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ मिलाकर देते है। स्तनोको कठोर करनेके लिए वटजटा (बरोह) का लेप करते है। दस्तोको बन्द करनेके लिए इसे जलमें पीस-छानकर पिलाते है। कर्णगत व्रण और कर्णकृमिको नष्ट करनेके लिए कानमें बडका दूध टपकाया जाता है। पांवमें बिवाई फटी हुई हो तो उसमे यह दूध भर देनेसे बिवाई शीघ्र ही अच्छी हो जाती है। सूजन विशेषकर वक्षणपर इसका ताजा दूध लेप करते है। यह शोथको विलोम और विलीन करता और दोषाधिक्यकी दशामें व्रणशोफको फोड डालता और शीघ्र अच्छा कर देता है। इसके पत्र जलाकर व्रणपर छिडकते या मलहरमें डालकर लगाते है। अहितकर—अन्त्र और आमाशयके लिए। निवारण—शकरा, मधु और कतीरा। प्रतिनिधि—गूलरका दूध। मात्रा—कोपल या डाढी ३ से ५ माशे तक और दूध २-३ बूंद।

आयुर्वेदीय मत—वट कषाय, शीतवीर्य, गुरु, ग्राही, स्तम्भन, रूक्षण, वर्ण्य, मूत्रसग्रहणीय तथा तृष्णा, वमन, मूर्च्छा, रक्तपित्त, विसर्प, दाह और योनिदोषको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४, वि०अ०, सु०सू०अ० ३८, ध०नि०,भा०प्र०)।

नव्यमत—वडका क्षीर वेदनास्थापन और व्रणरोपण, सूखे पत्र स्वेदजनन, कोमलपत्र श्लेष्मघ्न और छाल स्तम्भन है। बहुमूत्रमें मूलकी छालका काढा और मधुमेहमें फल देते हैं। सडे हुए दांतो में बडका दूध भरनेसे पीडा शान्त होती है। कटिशूल और सधिशूलमें बडका दूध लगाते है।

●

(४२८) बरञ्जासिफ़, बिरञ्जास(सि)फ़

फैमिली . कॉम्पोजीटी (Family . Compositae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) बिरंजासिफ, (यू०) Artemisia (D 3 117), अखिल्लिओन, (अ०) अल् बिरजास्ब(फ)-इ०वै०), बरजासफ, बिरिंजासफ, (फा०, अफ०) बिरजास्प, पलगअस्प, बूए मादरान, (का०) बिरजासफ, मोमाद्रु, चोपादिग, (बम्ब०) रोजमरी, (कच्छ) बिरजासिफ, (ले०) आकिल्लेआ मीलेफोलिउम् (**Achillea millefolium** Linn), (अ०) मेल्फोइल (Melfoil), येरों (Yarrow), नोजब्लीड (Nose-bleed), थाउजंड लीफ (Thousand Leaf) ।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिमी हिमालयमें कश्मीरसे कुमाऊँ तक ३,५००-१२,००० फुटकी ऊँचाईपर इसके क्षुप होते हैं । प्राय इसे बगीचोमें लगाते हैं ।

वर्णन—यह अफसतीनके समान एक बहुवर्षायु क्षुप है, जिसका तना ९० से० मी० (१ गज) तक ऊँचा होता है । समग्र क्षुप न्यूनाधिक रोमावृत होता है । रोम सफेद तथा रेशमी होते हैं । शाखाएँ बारीक, पत्र एकांतर, ७'५ से० मी०से १० सें० मी० (३-४ इञ्च) लम्बे और २ ५ सें० मी० (१ इञ्च) चौडे, आधारपर तनेको आवेष्टित किए हुए (Bipinnatifid), खड पतले, नुकीले होते हैं । पुष्प सोआकी तरह छत्तेदार, पीले, सफेद या गुलाबी (वा नीलवर्ण) होते हैं, जिनमें कुछ-कुछ बाबूना जैसी सुगध होती है । स्वाद किंचित् तिक्त और अधिकतया नमकीन होता है । पौधेपर एक प्रकारका चिपकनेवाला द्रव्य लगा रहता है ।

उपयुक्त अग—पंचाग (क्षुप) । औषधमें उपयोगके लिए इसके फूलोके छत्र और ताजी वनस्पति उत्तम होती है ।

रासायनिक सगठन—इसमें एक नीला या गहरा हरा उत्पत् तेल और एचिलीन (Achillein) नामक एक तिक्त वीर्य (ग्लूकोसाइड) होता है ।

कल्प तथा योग—अर्क बरजासिफ ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और दूसरेमें खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, तारल्यजनन (मुलत्तिफ), प्रमाथी, मूत्रार्तवजनन, अश्मरीघ्न, ज्वरघ्न और आशयशोथ (औराम अह्शाऽ)के लिए विशेष गुणदायक है । उष्णताजनन, शोथघ्न और प्रमाथी होनेके कारण यह आशयशोथ (औराम अह्शाद)में उपयोग किया जाता है । इन्ही गुणकर्म तथा मूत्रजनन होने के कारण बद्धमूत्रार्तव, कष्टप्रसूति, अपरापातन और जरायुकाठिन्यके लिए इसके क्वाथका पान, परिषेक (नतूल) और कटिस्नान(आबजन) गुणदायक है। यकृद्विकारयुक्त कफज्वरमे यह लाभ करता है । अहितकर–मूत्रपिंडोको । निवारण–अनीसूं । प्रतिनिधि–बाबूना । मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक ।

नव्यमत—स्वेदल, उत्तेजक, बल्य, आर्तवप्रवर्त्तक, सर्दी, स्वेदावरोध और ज्वरारभमे इसका उपयोग बहुत गुणकारी है । यह छिद्रोको खोलता हुआ रक्तको शुद्ध करता है । १ पाइंट उबलते पानीमें एक आउंस इस औषधिका बनाया हुआ फांट १ गिलास (Wine glassful) प्रमाणमे गरम-गरम पीवे । इससे खमानपुष्प (Elder flowers) और पेपरमिंट मिलाकर सेवन करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय (Influeza) और सर्दी आदिमे शीघ्र लाभ होता है ।

●

(४२९) बरना

फ़ैमिली काप्पारिडासे (Family : Capparidaceae)

नाम—(हिं०)बर(रु)ना, बिलासी, (सं०) वरुण, तिक्तशाक; (बं०) वरुण गाछा, (पं०) बरना, (मं०) हाडवर्णा, वायवर्णा, (गु०) वरणो, वायवरणो, कागडाकेरी, (ता०) माविलिंगम्; (मल०) नीर्वाल, (लें०) क्राटेवा नुर्वाला (Crataeva nurvala Buch.-Ham. (पर्याय—क्राटेवा रेलीजिओसा *Crataeva religiosa* Hook. f. & Th.), (अं०) थ्री-लीव्ड केपर (Three-leaved Caper)।

उत्पत्तिस्थान—रावी नदीके पूरबकी ओरसे आसाम तक, मणिपुर, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, बंगाल आदिमें इसे लगाते हैं। दक्षिण भारतके मलाबार, कनाडा आदि स्थानोमें यह स्वयजात होता है।

वर्णन—इसके २५-३० फुट ऊँचाईके छोटे वृक्ष होते हैं। पत्र बेलपत्रकी भाँति त्रि-पत्रक तथा लम्बेवृन्तके अग्रपर धारण किए जाते हैं। इनमें मध्यम पत्रक शेष दोनो पत्रकोंकी अपेक्षया बडा होता है। पत्रकोंका ऊपरी पृष्ठ चिक्कण, हरित किन्तु अध पृष्ठ किंचित् फीकेवर्णका होता है। कोमल शाखाओंपर शुभ्रवर्णका रेखाकृति चिह्न होता है। पुष्प पृथग्दल, दल ४, अवखिले दलका वर्ण हरिद्राभ-शुभ्र, विकसित होनेपर शुभ्र एव परिणतावस्थामें ईषत् स्वर्णाभ होता है। पत्रवृत पुष्पवृतकी अपेक्षया ह्रस्वतर, क्वचित् समान, पुष्पधि उत्तान, पुकेसर लाल गर्भकेसरीकी अपेक्षया ह्रस्वतर, पुष्पकाल फागुन-चैत, फल आकृतिमें छोटे कैथके समान तथा फलका ऊपरी धरातल ठीक कैथकी तरह शुभ्र, रूक्ष और बन्धुर एव अपक्व फल हरा और पका हुआ लाल हो जाता है। इसके पत्र, फूल और कच्चे फलका स्वाद तिक्त, फल पकनेपर किंचित् मधुर हो जाता है।

उपयुक्त अग—पत्र, वृक्षत्वक् (पोस्त दरख्त) और मूलत्वक्।

रासायनिक सगठन—छालमें सेनेगामें होनेवाला सँपोनिन (Saponin) द्रव्यके समान एक द्रव्य होता है। छालके टिंचरसे उत्तम इमल्सन (Emulsion) बनता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एव खुश्क। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (सु०) एव रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, अश्मरीनाशन और व्रणशोथविलयन-पाचन है। कृच्छ्रमूत्रनिवारण और वस्तिवृक्काश्मरी एव सिकताके उत्सर्गके लिए इसके पत्र या छालको जलमें पकाकर बाँधते या जलमें पीसकर कोष्ण लेप लगाते है। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—वरुण रसमें मधुर, तिक्त, कटु और कषाय, रूक्ष, लघु उष्णवीर्य, वात-कफप्रशमन, पित्तकारक, भेदन, दीपन तथा मूत्रकृच्छ्र (वातकफजन्य), गुल्म, वातरक्त और कृमिका नाशकरनेवाला हैं। (सु०सू० अ० ३८, ४६, चि०अ० ७, भा०प्र०, च०द०)। बरनाकी जडका काढा मधुमिलाकर पीनेसे गण्डमाला और अपक्व विद्रधिका नाश करता है।

नव्यमत—वरुना कटु, दीपन, उष्ण, कोष्ठवातप्रमशन, पित्तसारक, अनुलोमन, वातहर, मूत्रजनन और शोथघ्न है। इसकी ताजी पत्ती पीसकर त्वचापर बाँधनेसे त्वचा लाल होती है और फफोला उठता है। यह क्रिया राई जैसी होती है। मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें, जैसे—अश्मरी, शर्करा, वस्तिशूल और मूत्रकृच्छ्रमे वरुनाकी छाल या मूलका उत्तम उपयोग होता है। इन रोगोंमें वरुनाके साथ चिरचिटा, गदहपूरना, जवाखार और मुलेठी भी मिलाते हैं। गण्डमालामें छालका काढा मधु मिलाकर पिलाते है और छालको पीसकर उसका लेप लगाते हैं। व्रणशोथ और विद्रधिमें वरुनाकी छालके साथ गदहपूरना भी देते हैं। उदराध्मान और कुपचनमें वरुनाकी पत्तियोका फाट देते है।

(४३०) बरियारा

फैमिली : माल्वासे (Family . Malvaceae)

नाम—(हिं०) बरियारा, बरयारा, बरियाला, बरयाला, बरियरा, खिरैंटी, खरेटी, खिरहटी, (सं०)बला, खरयष्टिका, वाट्यायनी, वाट्या, (पं०) खरयटी, (कोल, सस्थाल) बरियार, (जम्मू)घमनी, (बं०) बेडेला, (म०) चिकणा, (गु०) बल, बला, खरेटी, (लै०) सीडा कॉर्डीफोलिया (**Sida cordifolia** Linn) ।

वक्तव्य—सीडा प्रजाति (Genus)की कई जातियाँ (Species) भी जैसे सीडा स्पीनोजा (S **spinosi** Linn) और सीडा राम्बीफोलिआ (S **rhombifolia** Linn) आदि भी बरियराके नामसे प्रसिद्ध एव प्रयुक्त होती है । मख्ज़नुल् अदविया और मुहीतआजम आदिमें अभिन्न होनेपर भी 'बरियारा' और 'खिरहटी'का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। यह ठीक नहीं है ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेश ।

वर्णन—इसका स्वावलम्बी क्षुप या गुल्मक १॥ से ४ फुट ऊँचा होता है । पत्तियाँ ७–९ शिरायुक्त, तूल-रोमश, लट्वाकार या लट्वाकार-आयताकार (हृदयाकृति), एकान्तर, १–२ इञ्च लम्बी, गोल-दन्तुर, पुष्प पत्र-कोणोद्भूत, हलके पीले या तृणवर्णके, पुष्पबाह्य और आभ्यन्तरकोशके दल ५–५, फल मूँगजितने बडे जिनमें पाँच खाने होते है । बीजोको हिन्दीमे बीजवद और गुजरातीमे फलदाणा कहते है । दे० 'बीजवद' ।

उपयुक्त अग—समस्त क्षुप, मूल, मूलत्वक् पत्र और बीज ।

रासायनिक संगठन—समस्त क्षुप (मूल, मूलत्वक, पत्र और बीजमें) सम्भवत: एफीड्रीनके समान एक क्षाराभ (ऐल्केलॉइड) होता है ।

प्रकृति—गरम और तर (मख्जन); सर्द एव खुश्क (तालीफ शरीफ़ी), आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (ध० नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खिरेटी ग्राही है और चेहरेका रंग निखारती तथा अर्श एव कफज रोगो, विसर्प वायुके विकारो और गर्भाशयके रोगोमे गुणकारी है । ६ माशे इसकी बड २–४ कालीमिर्चोके साथ पीसकर पिलानेसे विसूचिकामे बडा लाभ होता है । सफेद बरियराके पत्ते पानीमे पीसकर पीनेसे सूजाक और शुक्रमेह आराम हो जाता है तथा शुक्र गाढा एव पुष्ट होता है और बस्तिगत अश्मरी नष्ट होती है । इसके पत्तोका स्वरस पिलाने और सुँघानेसे सर्पविषका नाश होता है । इसके सूखे पत्ते पीसकर सुँघानेसे भी उक्त लाभ होता है । यदि रोगी मूर्च्छित हो तो पत्तोके स्वरस या चूर्णको फूंकके द्वारा नाकके भीतर पहुँचायें । पीले बरियराके पत्ते पीसकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती है, दर्द शात होता और फोडा पक जाता है ।

आयुर्वेदीय मत—बरियारा मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, बृहणीय, बल्य, प्रजास्थापन, ग्राही, वृष्य, ओजको बढानेवाला तथा वात, पित्त, रक्तपित्त और क्षयका नाश करनेवाला है । (च० सू० अ० ४, २५, २७, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३९, ध० नि०) ।

नव्यमत—सोठ मिली जडका काढा ज्वरघ्न है । अर्दित और गृध्रसीवातमें जड़की छाल तिलतैल एव दूधके साथ प्रयोग करनेसे उपकार होता है । श्वेतप्रदर एवं मूत्रकृच्छ्रमें चूर्णके रूपमे दूध और चीनीके साथ इसका उपयोग लाभकारी होता है । शुक्रप्रमेहमें इसके पंचांगका स्वरस जलके साथ दिया जाता है । व्रणरोपणके लिए इसके मूलका रस प्रयुक्त होता है ।

(४३१) बलसाँ

फ़ैमिली बुर्सेरासे (Family : Burseraceae)

नाम—वृक्ष (अ०, फा०) बलसाँ, बिलसाँ, (लै०) कोम्मिफोरा ओपोबाल्सामुम **(Commiphora opobalsamum** (Linn) Engl (पर्याय–बाल्समोडेन्ड्रोन ओपोबाल्सामुम *Balsamodendron opobalsamum* Kunth), (अं०) बाल्सम ट्री (Balsam Tree) । तेल (हिं०, द०) बलसाँका तेल; (यू०) Balsamon (D 1 18); (अ०) लबनुल् बलसाँ, दोहनुल् बलसाँ, अकुवुथलासमूँ, (फा०) रोगने बलसाँ, (इबरानी) बाल्सेमीन, (लै०) बाल्सामुम् (Balsamum), (अं०) बाल्सम ऑफ मक्का (Balsam of Mecca), बाल्सम (Balsam), बाम (Balm) । फल (अ०) हब्बे बलसाँ, (फा०) तुख्मे बलसाँ । काष्ठ (अ०) ऊदेबलसाँ, (फा०) चोबे बलसाँ ।

वक्तव्य—इसका यूनानी नाम 'बाल्सेमून्' इसके इब्रानी (Hebrew) नाम 'बाल्सेमीन (बाल = राजा, सेमीन = स्नेह अर्थात् तैलराज)' से व्युत्पन्न है । इसका लेटिन नाम 'बाल्सामुम्' वस्तुत. इसके यूनानी नामका ही किंचित् परिवर्तित रूप है । इसका अंग्रेजी नाम 'बाल्सम' इसके लेटिन नामसे व्युत्पन्न है । इसके अरबी फारसी नाम इसके इब्रानी नामसे ही व्युत्पन्न है ।

टिप्पणी—बाम (Balm) सज्ञाके, जो बाल्समका पर्याय है, डॉक्टरीमें यह चार अर्थ ग्रहण किये जाते है .—

(१) लाबिआटी कुलकी एक सुगन्धित वनस्पति जिसको वैज्ञानिक भाषामें मेलिसा आफ्फीसिनेलिस **(Melissa officinalis)** कहते है, (२) कतिपय प्रकारके वृक्षोका रालदार और सुगधमय रस; (३) कोई सुगधित या बहुमूल्य मलहर और (४) कोई ऐसी औषधि या अभ्यग जो वेदनाहरण एव वेदनाशमन करे । परन्तु बाल्सम (Balsam) सज्ञाका भाव यद्यपि बलसाँ वृक्ष भी होता है, तथापि सामान्यतया इससे बलसाँतैल (रोगन बलसाँ) विवक्षित होता है । यूनानी वैद्यकमें बलसाँसे बलसाँवृक्ष अभिप्रेत होता है । इसके काष्ठको ऊदेबलसाँ, फलको हब्ब बलसाँ और तैलोद्यास–रालदार तेल–को रोगनेबलसाँ कहते हैं । तिबके प्राचीन मनीषी अपनी रचनाओमें 'बालसम' सज्ञाका अर्थ 'रालयुक्त तेल' या 'रातीनज सय्याल' लिखते है । परन्तु उत्तरकालीन मनीषी इस प्रभेदका आरोप उन सान्द्रीभूत या प्रवाही रातीनजी सत्वोपर करते है, जिनमें सतलोबान विद्यमान हो । सक्षेपमें बालसम एक प्रकारका उद्यासमय पारदस्वभावी उत्पत् सुगन्धिमय प्रवाही या सान्द्र पदार्थ है जो कतिपय प्रकारके वृक्षोसे स्वयमेव प्राप्त होता अथवा उनके तनोमे चीरा देनेसे प्राप्त होता है। बाल्सम दो प्रकारका होता है, एक वास्तविक जिसमे सतलोबान (बेंजोइक एसिड) और सतदालचीनी (सिन्नैमिक एसिड) अन्यान्य घटको सहित विद्यमान होते है, यथा बलसानेपेरू या बलसानेमक्का, दूसरा मिथ्या जिनमें सतलोबान विद्यमान नही होता, यथा बालसम ऑफ कोपाइवा (बलसाने कोबाई) ।

भेद—(१) बलसाँ कोपेबी अर्थात् बालसम कोपेबा (Balsam Copaiba) जो शिम्बी-कुलके कोपेइफेरा लांग्सडार्फियाई **(Copiafera longsdorffii** Desf) नामक विदेशी वृक्ष तथा इसकी अन्य जातियोसे प्राप्त एक प्रकारका ओलियो-रेजिन (Oleo-resin) है । (२) बलसाँ पेरू अर्थात् बाल्सम ऑफ पेरू (Balsam of Peru) या पेरुवियन बाल्सम (Peruvian Balsam) जो शिम्बी-कुलके माइरॉक्सिलॉन पेरीरी **(Myroxylon pereirae** Klotsch) नामक मध्यअमेरिकीय वृक्षसे प्राप्त होता है । (३) बलसाँ टोलू अर्थात् बाल्सम टोलू (Balsam Tolu) या टोलू बाल्सम (Tolu Balsam) जो शिम्बी-कुलके माइरॉक्सिलॉन बाल्सामुम् **(Myroxylon balsamum** Harms) या टोलुइफेरा बाल्सामुम् **(Toluifera balsamum** Baill) नामक कोलम्बियामें होनेवाले वृक्षसे प्राप्त होता है । इन तीनों प्रकारके बलसाँका पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयोग होता है । इनके अतिरिक्त एक प्रकारका बलसाँ और है जिसका प्रयोग पाश्चात्य तथा यूनानी और आर्यवैद्यकमे भी होता है । उसे शिलारस कहते है । वि० दे० "शिलारस" । 'रोगन गर्जन' भी एक प्रकारका बाल्सम (बलसाने हिंदी) है । दे० 'गर्जन' ।

(४३३)ब(बि)सफाइज

फ़ैमिली : फीलिसीज (Family : Filices)

नाम—(हिं०) खंकाली, खंगाली, (यू०) Polupodion (D 4.185); (अ०) अल्बिस्फाइज (इ० बै०), बस्फाइज, बिस्फाइज, अज्रासुल् कल्ब (ख्वादत), कसीरुल् अर्जल (=बहुपादी), साकिबुल् हजर (=पाषाणभेदी), इज्रासुल् कल्ब (इ०बै०, सचिका ३९; १४९), (फा०) तस्तिवान्, बस्पाईक, बिस्पाय, बिस्तपाय, (बम्ब०; द०) बिस्फायज, बस्फैज, (लै०) पॉलीपोडिअम् वुल्गारे (**Polypodium vulgare Linn**), (अ०) कॉमन पॉलीपोडी (Common Polypodi)।

वक्तव्य—'बिस्फ़ाइज', फारसी 'बिस्तपाय'से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—फारस तथा यूरोप, अमेरिका और टर्की।

वर्णन—पुरानी दीवालो, पेडके काण्डस्कन्ध आदिपर होनेवाली यह एक क्षुद्र वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड (भौमिककाण्ड-पाताली धड) है जो एक ओर चपटी होती है और जिसमे दोनो ओर उपमूल निकले होते है, जिससे उसकी आकृति कनखजूरेके समान होती है। उक्त जड बारीक, लगभग ०·३ सें० मी० (⅛ इञ्च) व्यासकी, जिसके ऊपर लम्बाईके रुख धारियाँ पडी होती है तथा ग्रन्थिल और ऊपरकी ओर लगभग ०.६२सें० मी०(¼ इञ्च)की दूरीसे प्यालेनुमा पत्राधारयुक्त होती है। अनुप्रस्थ विच्छेदमें यदि जड पुरानी है तो शृंगवत्, हरापन लिए या भूरी, परिधिके समीप क्षुद्र, काष्ठमय, अनियमित प्लेट्सके चक्रसे युक्त होती है। स्वाद बहुत मीठा, किंचित् कटु और निर्गंध, जिसका रग अन्दरसे पिस्तई निकलता है, वह श्रेष्ठ समझी जाती है। इसको 'बस्फाइज फ़ुस्तकी' कहते है।

रासायनिक सगठन—जड और पाताली धडमें उत्पत् तेल, एक वसामय तेल (जो तीव्र विरेचक होता है), एक राल (जो प्रबल कृमिघ्न है) तथा समानबेन (Samanbain) नामक एक ग्लूकोसाइड और सैपोनिन होता है। मतातरसे इसमें मुलेठीमे पाया जानेवाला ग्लिसिर्हाइजिन नामक सत्व पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—जड।

प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्म सौदाविरेचन और वातानुलोमन। कुष्ठ, अपस्मार, मद (मालिन्खोलिया) और आमवात जैसे कफ एवं सौदाजन्य रोगोमें कफ और सौदाके उत्सर्गके लिए इसका उपयोग करते है। सौदाके उत्सर्गके कारण उपलक्षण स्वरूप (बिल्अर्ज) इससे हृदयको शक्ति और उल्लास भी प्राप्त होता है। उदरशूल और आनाहमें उपयोग करनेसे यह उनको नष्ट करती है। अर्शाङ्कुरोको गिरानेके लिए इसको खिलाते हैं। अहितकर-फुप्फुसो एव मूत्रपिण्डोके लिए। निवारण-पीली हड और हसराज। मात्रा-३ ग्रामसे ७ ग्राम (३ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(४३४) बहमन सफेद

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) सफेद (सुफेद) बहमन; (अ०) बह्मन अब्यज, (फा०) बहमने सुफेद; (लै०) सेन्टाउरेआ वेहेन (वेहमेन) (Centaurea behen L. or behmen Linn); (अ०) ह्वाइट वेहीन (White Behen), ह्वाइट र्हैपॉन्टिक (White Rhapontic)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, सीरिया, आर्मीनिया।

वर्णन—यह एक मूली जड़ है जो बाहरसे सफेदी लिए भूरी, अत्यन्त झुर्रीदार एवं गुरदुरी तथा पेंचदार, शीर्ष (Crown)के समीप विपुल वृत्ताकार रेखाओंसे अंकित होती है। या तो यह उपमूलरहित और गोपुच्छाकार (Tapering) अथवा न्यूनाधिक उपमूलयुक्त (मयाल) होती है। कभी कुछ-कुछ बैंगनी तनेका कुछ अंश उससे लगा रहता है। इसकी औसत लम्बाई लगभग २½ इंच और व्यास ¾ इंच (मोटी); काटनेपर भीतरसे यह सफेद और स्पंजवत्, जलमें भिगानेसे यह फूली और लुआबदार हो जाती है, स्वाद लुआबदार और किंचित् तिक्त होता है। भारी, बड़ी सदा गूदावाली और अर्मनी जड़ उत्तम होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक विशेष क्रिस्टली स्वरूपका लैक्टोन (बहमनीन) होता है।

●

(४३५) बहमन सुर्ख

फैमिली : लाबीआटी (Family Labiatae)

नाम—(हि०, भा० बाजार) लाल बहमन, (फा०) बहमने सुर्ख, (ले०) साल्विआ हीमोटोडीस (Salvia haemotodes), (अं०) रेड बहमन या र्‍हैपॉन्टिक (Red Behmen or Rhapontic), ब्लड-वेन्ड सेज (Blood-veined Sage)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और तुर्किस्तान।

वर्णन—यह प्रसिद्ध मूली जड़ है जो छोटी, गाजरके समान झुर्रीदार, गुरदरी, कड़ी, भारी और किसी कदर टेढ़ी होती है। यह टूटनेमें सख्तीसे टूटती है। इसमें सुगंध आती है। यह बाहरसे कालाई लिए अधिक लाल और अन्दरसे कम लाल होती है। साफ, भारी और लाल जड़ उत्तम समझी जाती है। व्यापारमें मिलनेवाला द्रव्य अर्द्ध कटे हुए और मध्य काष्ठभाग दूर किए हुए टुकड़े हैं जो बाजारमें मिलते हैं। स्वाद लुआबी और कुछ कषाय होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें वसा, कषायाम्ल (Tannic acid) और बहमनान नामक एक तिक्त स्फटिकीय क्षारोद प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष। सफेद दूसरे दर्जेमें और लाल तीसरे दर्जेमें गरम व खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृंहण, शुक्रल और हृदयबलोल्लासदायक है। दोनो बहमन (बहमनैन)को हृदयबलवर्धन (हृद्य) और सौमनस्यजननार्थ, दिलकी धड़कन (खफकान) और हृदयदौर्बल्यमें उपयोग करते हैं तथा मुफर्रह या याकूती कल्पोंमें डालकर खिलाते हैं। कामावसादके रोगियो (नपुसकों)को वाजीकरण एव शुक्रजननके लिए इसका चूर्ण दूधके साथ या उपयुक्त औषधियोके साथ चूरण या माजून बनाकर खिलाते है। शरीरको स्थूल करनेके लिये अकेले या उपयुक्त औषधियोके साथ इसका उपयोग करते हैं। सफेद बहमन वाजीकर है और कामला तथा अश्मरिविकारोमें इसका उपयोग होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। प्रतिनिधि—एक दूसरेका प्रतिनिधि है और दोनोंका प्रतिनिधि तोदरी और मुसली है। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

●

(४३६) बहुफली

फैमिली : टीलिआसे (Family Tiliaceae)

नाम—(हि०) बहुफली, भूफली, बौफली, (स०) क्षुद्रचचु, (गु०) झीणकी छुछ, बहुफली, (बम्ब) बाफली, माफली, (ले०) कॉर्कोरुस फासीकुलारिस (**Corchorus fascicularis** Linn), कॉर्कोरुस आन्टीकोरुस **C. anticorus** Raeswch) या कार्कोरुस डिप्रेसुस (C **depressus** Linn) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह चेचकी जातिकी एक क्षुद्र वनस्पति है, जो छत्तेकी तरह जमीनपर पसराई हुई होती है। इसीलिए इसे 'भूफली' कहते हैं। का० फासीकुलारिसमे फल गुच्छोमे लगते है और पौधे प्रसरणशील होते हैं। चूँकि इन वनस्पतियोमे अत्यधिक फलियाँ लगती हैं, इसलिए इनको बहुफली कहते है ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, अवसादक (सशमन) विशेपत शुक्रमेहघ्न है। शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य, शुक्रमेहको नष्ट करनेके लिए बहुफली-बूटीको चूर्णों एव माजूनोमें डालते है तथा इसका चूर्ण समभाग मिश्रीका चूर्ण मिलाकर दूधके साथ उक्त रोगोमे व्यवहार कराते है। अवसादक होनेके कारण सूजाकमे भी चूर्णकी भाँति अकेला या अन्यान्य द्रव्योके साथ खिलाते हैं। **अहितकर**—आनाहकारक और चिरपाकी। **निवारण**—शहद और चीनी। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—क्षुद्रचचु मधुर, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, विबन्धकारक तथा गुल्म, शूल और बवासीरको नष्ट करता है ।

●

(४३७) बहेड़ा

फैमिली : कॉम्ब्रेटासे (Family Combretaceae)

नाम—(हि०, म०) बहेडा, बहेरा, बहेर (मिर्जापुर), (अ०) अल्बलैलज (इ०बै०), बलीलज, बलैलज, (फा०) बलील, बलेल, (स०) बिभीतक, अक्ष, (बं०) बयडा, बहेडा, (क०) बलेल, (म०) बहेडा, बै, (गु०) बहेंढा, (ते०) ताडि, (ता०) अक्कम, अक्कदम, (मल०) तान्नि, (ले०) टेर्मिनालिआ बेल्लारिका (**Terminalia bellirica** (Gaertn) Roxb), (अं०) बेलेरिक मायरोबेलन (Belleric Myrobalan) ।

वक्तव्य—फारसी 'बलील.' से 'बलीलज' अरबी बनाया गया है। फारसी-अरबी सज्ञायें इसकी हिन्दी सज्ञा 'बहेडा' एव मूलत सस्कृत 'बिभीतक' से व्युत्पन्न है ।

उत्पत्तिस्थान—शुष्क भागोको छोडकर समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—यह एक बडे जगली पेडका प्रसिद्ध फल है जो बडे माजूनके बराबर या उससे कुछ बडा, पीला मटियालासा और स्वादमे तिक्त कषाय होता है। इस फलका छिलका औषधके काममें लिया जाता है। यह प्राय. बाजारमे मिलता है ।

रासायनिक सगठन—फलमें मायाफल-कषायाम्ल (गैलो-टैनिक एसिड Gallo-tannic acid), रजक द्रव्य, राल और एक हरियाली लिए पीला तेल होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमे रूक्ष। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है (सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बहेडा आमाशयबलदायक (दीपन), मस्तिष्क-बलदायक (मेध्य), दृष्टिवर्धक, संग्राही और निचोडकर विरेक लानेवाला (मुसहिल बअस्र) है। उपयोग—बहेडा अत्रीफल कल्पो (अत्रीफलात)मे पुष्कल डाला जाता है। दस्तोको बन्द करने और दीपनार्थ इसको भृष्ट करके खिलाते है। कतिपय व्यक्तियोमे यह अन्त्रस्थ मासतन्तुओमे संकोच पैदा करके विरेक भी ले आता है। इसको भृष्ट करके सुरमेकी भाँति बारीक पीसकर नेत्रमे लगानेसे नेत्रस्राव आराम होता है। यह अर्श भी गुणकारी है। अहितकर–अन्त्र और गुदाके लिए। निवारण–मधु और शर्करा। प्रतिनिधि–मेहदीकी कली (शिगूफा)। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्रामसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बहेडा कषाय, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, भेदन, चक्षुष्य, केश्य (बालोके लिए हितकर तथा बालोको काला करनेवाला) तथा रस रक्त-मास और मेदके रोग, स्वरभेद, कफ, उत्क्लेश, पित्तके रोग, कृमि और कासका नाश करनेवाला है। बहेडेका मग्ज कषाय, लघु, मादक तथा कफ, वायु, तृषा और वमनको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २७, सु० सू० अ० ३८, ४६, भा० प्र०)।

नव्यमत—बहेडेकी क्रिया मुख्यत गले और श्वासनलिकापर होती है। फलका मग्ज साधारण मादक, वेदनास्थापन और शोथघ्न हैं। बहेडेके फलकी छाल को प्रतिश्याय, कास, श्वास और स्वरभगमे मुँहमे रखते हैं। दाह कम होनेके लिए सूजनपर मग्जका लेप लगाते है। तेल लगानेसे खाज कम होती है।

●

(४३८) बाँस

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family · Gramineae)

नाम—(हिं०) बाँस, (अ०) कसब, (फा०) नै, (स०) वश, वेणु, (ब०) बाँश, (गु०, सिंध) वास, (म०) बाँस, वेणू, वाणू, (लै०) बाम्बूसा बाम्बोस **Bambusa bambos** Druce (पर्याय–बाम्बूसा आरुन्डीनासेआ *B arundinacea* Willd)। (अ०) बैम्बू (Bamboo)। वश(स)लोचन (अ०, फा०) अल्तबाशीर, रमादुल् हय्य (इ० वै०), तबाशीर, (स०) त्वक्क्षीर, वशरोचन, वशकर्पूर, (गु०) वंशलोचन, बाँसकपूर, (अ०) बैम्बू मेन्ना (Bamboo Manna)।

वक्तव्य—बाँसके विभिन्न भारतीय भाषाओके नाम तथा लेटिन नाममे प्रजातिक (Generic) नाम सस्कृत 'वश'से व्युत्पन्न है। 'तबाशीर' संस्कृत 'त्वकक्षीर' का अरबी अपभ्रश है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। बंगालमें यह प्रचुरतासे लगाया जाता है। भारतवर्षमे किसी-किसी बाँसके खोखले भागसे बंसलोचन निकलता है।

वर्णन—यह तृणजातीय एक प्रसिद्ध वनस्पति है जिसके खोखले भागसे वशलोचन प्राप्त होता है। यह एक सफेद वस्तु है जो प्रारम्भमे पतले द्रव (मद-रस)के रूपमें मादा बाँसके खोखले भागमे सचित होता है और उसके बाद जमकर सूख जाता है। जब बाँसको फाडते है तब उससे बाहर निकलता है। यह जावा और सिंगापुरसे आता है। जो वजनमें हलका रगमे नील आभायुक्त सफेद, उज्ज्वल और सीपके समान हो उसको तबाशीर सद्‌फ़ी या तबाशीर कबूद कहते है। यह सबमे उत्तम बसलोचन है। इस समय बाजारमें कृत्रिम वंसलोचन मिलता है।

उपयुक्त अग—जड, अंकुर, पत्र, काड, फल और निर्यास (बशलोचन)।

रासायनिक संगठन—बसलोचनमें सिलिका ९० प्रतिशत या हाइड्रेट ऑफ सिलिसिक एसिडके रूपमें सिलिकम, जवाखार, मडूर, पोटास और सुधा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—जुवारिश तबाशीर, सफूफ तबाशीर, कुर्स तबाशीर काबिज (वा मुलय्यिन), कुर्स तवाशीरकाफूरी लूलुई (वा मुरक्कब), सफूफ तबाशीर।

बॉस—

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष, जला हुआ उष्ण एव रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—लेखन और मूत्रार्तवजनन। बाँसकी जड अकेले या उपयुक्त औपधियोके साथ चेचकके दागोको मिटाने और चेहरेकी रगत निखारनेके लिए उपयोग की जाती हैं। इसको जलाकर दद्रु और गजपर लगाते है, तथा मजनोमे डालकर दाँतोपर मलते है। आर्तवप्रवर्तक योगोमे इसकी जड डालते हैं। अहितकर--फुफ्फुसको। निवारण–कतीरा और फिदकका मग्ज। मात्रा–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

बसलोचन—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष (शैखके मतसे दूसरे दर्जेमे शीत और तीसरेमे रूक्ष)। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृद्य, हृदयको उल्लसित करनेवाला, उष्णयकृद्बलदायक, संग्राही, तीव्र शीतजनन और रूक्षण हैं। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृदयको वल प्रदान करता है, और उष्ण हृत्स्पन्दन, मूर्च्छा एव बेचैनी (हृदयद्रव)के लिये गुणकारक है। यह पित्तज वमनको दूर करता है तथा उष्ण यकृत् और आमाशयके लिए लाभप्रद है। सग्राही एवं रूक्षण होनेके कारण यह पित्तज अतिसारको वद करता और शुक्रमेह एव शुक्रस्रावको रोकता तथा रक्तार्शमें गुणकारी, आमाशयिक द्रवोको सुखाकर उसको शक्ति प्रदान करता (दीपन), और अन्त्रमे कव्ज उत्पन्न करता है। तीव्र शीतजनन होनेके कारण उष्ण ज्वरो और आशयशोथ (सोजिश अहशाऽ)मे गुणकारी है तथा प्यास बुझाता है। शीतजनन एव रूक्षण होनेके कारण अग्निदग्धमे इसका अवचूर्णन एव पतला लेप लाभदायक है। मुखपाक, मुखव्रण और मुखकी फुन्सियो (वुसूर दहन)में अकेले या गुलावके फूलके साथ इसका पान और अवचूर्णन गुणकारी है। सग्राही होनेके कारण दाँतोको बल देनेके लिये मजनोमें डालते हैं। अहितकर–इसका अधिक प्रयोग वाजीकरण शक्ति और फुफ्फुसोके लिए अहितकर है। निवारण–मधु, मस्तगी, उन्नाव, एलुआ और केसर। प्रतिनिधि–कुलफा और सुमाक। मात्रा १ ग्रामसे ३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—वाँस, मधुर, कपाय, शीतवीर्य, वस्तिशोधन (मूत्रल), छेदन तथा कफ, पित्त, रक्तविकार कुष्ठ, शोथ और व्रणको दूर करनेवाला है। (कै० नि०)। वाँसके अकुर (करीर) गुरु तथा कफ और वायुका प्रकोप करनेवाला हैं। (सु० सू० अ० ४६)। वॉसके बीज (वेणुयव) मधुर, कषायानुरस, कटुविपाक, उष्णवीर्य, मूत्रको कम करनेवाला, वल्य, वातकोपन तथा कफ, पित्त, मेद, कृमि और विपको दूर करनेवाले है। (सु० सू० अ० ४६, च० सू० अ० २७, कै० नि०)। वशलोचन कपाय, मधुर, शीतवीर्य, वल्य, वृंहण तथा कास, मूत्रकृच्छ्र, क्षय और श्वासमे हितकर है। (ध० नि०)।

(४३९) बाकला

फ़ैमिली . लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) बाकला, बाकिला, बल्लर, (अ०) बाकिल्ला, (यू०) कुआमोस, (लें०) विसिआ फाबा (**Vicia faba** Linn.); (अं०) ब्रॉडबीन (Broad bean), गार्डेन या फील्ड बीन (Graden or Field bean)।

उत्पत्तिस्थान—फारस। समस्त ससारमे इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह एक प्रकारकी बडी मटर है जिसकी फलियोकी तरकारी बनती है। फली तीन-चार अंगुल लम्बी, गोल और सूक्ष्म रोइयोसे व्याप्त होती है। हर एक फलीके अन्दर चार-पांच बीज निकलते है। बीज मटर-की तरह गोल और सफेद होता है जिसके सिरपर एक काले रगका अर्द्धचन्द्राकार चिह्न होता है। सफेद, पीला, लाल और काला। भेदसे यह चार प्रकारका होता है। किसी-किसीने बाल्किलाए नब्ती वा कुब्तीको जो यूनानी कुआमोस ईजुप्टिओसका अरबी रूपातर है, इसका मिश्रदेशीय भेद बाकलाए मिश्री लिखा है; परन्तु यह कमल-गट्टेका नाम है। लोबिया इससे भिन्न द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—इसमे प्रोभूजिद (Proteids) और भास्वराम्ल (Phosphoric acid) विपुल होता है, परन्तु श्वेतसार और शर्करा द्रव्य अल्पप्रमाणमे होता है।

उपयुक्त अग—ताजी फली और हरा वा सूखा बीज।

कल्प तथा योग—कैरूती आर्द्र बाकला।

प्रकृति—हरा बाकला पहले दर्जेमे शीत एव तर और सूखा पहले दर्जेमे शीत एव दूसरेमे खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्मनि स्सारक, श्वयथुविलयन और लेखन। बाकलाकी ताजी फलियाँ अकेली या मासके साथ पकाकर खाते है। इससे पर्याप्त पुष्टि (गिज़ाइय्यत) प्राप्त होती है, किन्तु यह आनाह उत्पन्न करती और देरमे पचती है। इसके बीजोके मज्जको उपयुक्त औषधियोके साथ कास और श्वासमे कफोत्सर्गके लिए तथा उर फुफ्फुसरोगोमें दोषको प्रकृतिस्थ करनेके लिए मुखसे सेवन करते है। व्रणशोफपाचनविलयनके लिए इसको पीस-कर लेप करते है। चेहरेका रंग निखारने और झाईं दूर करनेके लिक उपयुक्त औषधियोके साथ इसका पतला लेप (तिलाऽ) करते तथा उबटनकी भाँति उपयोग करते है। अहितकर–अफरा (नफख) करता है। विवारण–बादामका तेल। इसको छीलकर उबालनेसे भी इसके अवगुणोका परिहार हो जाता है। प्रतिनिधि–लोबिया। मात्रा–आहार-की भाँति जितना पच सके, औषधिकी भाँति ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

●

(४४०) बाजरा

फ़ैमिली ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) बाजरा, बजरी, बजरा, जोधरिया, (अ०) जावरस, (फा०) गावरस, (स०) वर्जरी, (म०) बाजरी, (गु०, मा०) बाजरो, (प०) बाजरी, (लें०) पेन्नीसेटुम टीफॉइडेस (**Pennisetum typhoides** Rich.), (अं०) मिलेट (Millet)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक स्थानोमे इसकी खेती होती है।

वर्णन—प्रसिद्ध अन्न है।

रासायनिक सगठन—माल्टेड बीजसे एमाइलेस (Amylase) पृथक् किया गया है। इसमें फॉस्फोरस प्रचुर मात्रामें होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही और उपशोषण। बाजरेकी रोटियाँ और खिचडी पकाकर खाई जाती है। यह चिरपाकी और गुरु वा विष्टभी होता है, प्यास लगाता और कम पुष्टि प्रदान करता है। बाजरेकी पोटली बाँधकर तवेपर बार-बार गरम करके उदरानाह और उदरशूलमें वातविलयनके लिए सेक (तकमीद) करते हैं। अहितकर—दीर्घपाकी एव गुरु। निवारण—घी-तेलादि स्नेह-द्रव्य और दूध। प्रतिनिधि—काँक। मात्रा—जितना पच सके।

आयुर्वेदीय मत—बाजरा गरम, रूक्ष, पित्तप्रकोपक, दुर्जर (देरमें पचनेवाला), वातकारक (बादी), हृद्य, बल्य, कान्तिकारक, स्त्रियोके कामको बढानेवाला तथा पुंस्त्व और पुष्टिका नाश करनेवाला है। (नि० र०)।

नव्यमत—बल्य, क्षुधावर्धक तथा हृद्रोगोमें उपकारक।

●

(४४१) बादाम कडुआ

फ़ैमिली : आमीग्डाले (Family Amygdaleae)

नाम। वृक्ष—(अ०) शज्रतुल्लौजुल्मुर्र, (फा०) दरख़्ते बादाम तल्ख, (ले०) प्रूनुस आमीग्डालुस प्र० आमारा (**Prunus amygdalus** var **amara** (पर्याय–P *Communis* Arcang var *amara* Schneid), (अं०) बिटर आमंड ट्री (Bitter Almond-tree)। बीज (हिं०, द०) कडुआ बादाम, कडुआ बदाम, (अ०) लौजुल् मुर्र, (फा०) बादामे तल्ख, (स०) कटुवाताद, (म०,प०) कोडा बादाम, (ब०) तिनो बादाम, (गु०) कडवो(वी)बदाम, (म०)कडूबादाम, (ले०) आमीग्डाला आमारा (**Amyddala amara**); (अ०) बिटर आमंड (Bitter Almond)।

इतिहास—मीठा और कडुआ दोनो प्रकारके बादाम ईरानमें प्राचीनकालसे उत्पन्न होते हैं। बादाम वृक्षका आरभ फार्माकोग्राफियाके रचयिता डॉ० फ्लकीजरके अनुसार ईरानदेशसे हुआ है। यूनानी हकीम सावफरिस्तुसकी रचनाओमें 'आमड' नामसे बादामका प्रायश: स्थलोपर उल्लेख हुआ।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानी चिकित्साविद् भी कडुए बादामके विषप्रभावसे अभिज्ञ थे। परन्तु उत्तरकालीन चिकित्सकोके विस्तृत प्रयोगोसे यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि कडुवा बादाम विषैला होता है। अस्तु, उन्होने लिखा है कि एक कुत्ता बीस बादाम खानेसे विषाक्त हो गया। इसके अतिरिक्त ऐसे कई व्यक्तियोका उल्लेख भी वैद्यकीय ग्रन्थोमें उदाहरणस्वरूप किया है जो कडुए बादामके अतिमात्रामे खानेसे विषाक्त हो गये। सुतरा एक भौतिकशास्त्रीका उल्लेख किया गया है कि उसने २ छ० (४ आउस) कडुवा बादाम खाया और वह मर गया। मुहीतआजममे लिखा है कि कडुवा बादाम लोमडीको मार डालता है। परन्तु जो यह लिखा है कि सुरापान करनेसे पूर्व यदि ५० कडुआ बादाम खा लेवे तो फिर शराबका नशा नही होता या अरस्तूके कथनानुसार यदि ५ दिरम या २२॥ माशा कडुआ बादाम कूटकर नीहारमुँह खा लेवें तो इसके पश्चात् मद्यपान करनेसे नशा नही होता, यह प्रयोग बहुत भयानक एव वर्जनीय है।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, एशिया माइनर, अफगानिस्तान, श्याम, मोरक्को, सिसली और फ्रांस आदि।

वर्णन—यह मीठे बादामकी तरह मझोले कदके एक वृक्षके फलके प्रसिद्ध बीज हैं जो आकृतिमें मीठे बादामकी तरह, किन्तु उससे कुछ छोटे और अधिक चौड़े, स्वादमें अत्यंत कडवे और अप्रिय होते हैं, विशेषतः 'जंगली' और 'पहाड़ी' बहुत ही कडवे होते हैं। मीठे बादामके विपरीत इसे जलके साथ रगड़ने या जलमें भिगोनेसे विशेष प्रकारकी गन्ध निकलती है और यह विषमें परिणत हो जाता है। इसलिए इनको जलमें न भिगोना चाहिए। इसका मग्ज जहरीला होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अनुत्पत् तेल (जो निर्विष होता है) ४५%, वातादमत्व लौजीन या ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) ३%, प्रोभूजिद (Proteids) २५%, इमल्सन, शर्करा लवाब और भस्म प्रभृति द्रव्य होते हैं। वाताद सत्व अर्थात् ऐमिग्डेलिन एक स्फटिकीय ग्लूकोसाइड पदार्थ है जो मीठे बादाममें नहीं पाया जाता। जलमें अभिषवोत्पादक इमल्सीनके प्रभावसे यह हाइड्रोसायनिक या प्रुसिक एसिड ४-७%, द्राक्षशर्करा (ग्लुकोज) और उत्पत् तेल (जो सविष होता है)में परिणत हो जाता है। इसे दूर करके प्रयोगमें लेते हैं। इसकी मात्रा ½ से १ बिन्दु है।

उपयुक्त अंग—बीजका मग्ज और बीजोत्थ तेल (रोगन बादामे तल्ख)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म— विरेचन, विलयन, लेखन, श्लेष्मनिःसारक और मूत्रार्तवजनन है।

उपयोग—कडुए बादामको यद्यपि कास, श्वास, रुद्धमूत्रार्तव और सांद्रदोषोत्सर्गके लिए गुणदायक वर्णन किया जाता है और अरस्तूके कथनानुकूल डेढ़ तोला कडुआ बादाम मद्यपानके बाद खानेसे नशा नहीं आता, तथापि इसमें विषप्रभाव होनेसे यह आंतरिक रूपसे बहुत कम प्रयुक्त होता है। अधिकतया त्वचाके रोगोंमें लेपकी भाँति इसका बाह्य प्रयोग होता है। दद्रु एवं झाईंके दूर करने और चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसका लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। जूओंके मारनेके लिए इसे सिरमें लगाते हैं। कडवे बादामका तेल कर्णशूल और कर्णनादको दूर करनेके लिए कानमें टपकाते हैं। कृमिकर्णको नष्ट करनेके लिए भी इसे कानमें टपकाते हैं। चेहरेकी झाईं आदि दूर करनेके लिए इसे लगाते हैं। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–शर्करा मिश्री और मीठा बादाम। प्रतिनिधि–हब्बुल्महलिब। मात्रा–यद्यपि इसका आन्तरिक उपयोग उचित नहीं है, तथापि यदि उपयोग करना ही पड़े तो आधेसे एक मग्ज तक उपयोग करना चाहिये।

नव्यमत—कडुए बादाममें एक प्रकारका जहरीला सत्व (हाइड्रोसाइनिक एसिड) होता है। इसलिये इसको खानेके काममें नहीं लेना चाहिये।

●

(४४२) बादाम मीठा

फैमिली : आमीग्डाले (Family Amygdaleae)

नाम। वृक्ष—(अ०) शज्रतुल् लौजुल्हलो, (फा०) दरख्त बादामे शीरीं, (लें०) प्रूनूस आमीग्डालुस प्रा० डुल्सिस **Prunus amygdalus var dulcis** (पर्याय–*Prunus communis* Arcang var *dulcis* Schneid), (अं०) स्वीट आमण्ड ट्री (Sweet Almond tree)। बीज–(हिं०) मीठा बादाम, बदाम, (अ०) लौजेल्हुलो, (फा०) बादामे शीरीं; (सं०) मिष्ट वाताद, मधुर वाताम, (क०) बादम, (म०) गोड बदाम, (लें०) आमी-

ग्डाला डुल्लिस (Amygdala Dulcis),' (अ०) स्वीट आमण्ड (Sweet almond)। तेल (हिं०) बादाम का तेल; (अ०) दोहनुल्लौज; (फा०) रोगन बादाम, बादाम रोगन, (लै०) ओलेउम आमीग्डाले (Oleum Amygdalae),' (अ०) आमण्ड ऑयल (Almond Oil)।

उत्पत्तिस्थान—सभवत फारस और एशियामाइनरका आदिवासी है और अब पश्चिम एशियामें अधिकतासे होता है। उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष (पजाब, कश्मीर आदि) के शीतस्थानोमे इसके वृक्ष लगाये जाते है। अच्छे बादामका आयात अफगानिस्तान आदिसे होता है।

वर्णन—यह एक मझोले आकारके वृक्षके फलका प्रसिद्ध बीज है जिसको तोडनेपर अन्दरसे सफेद मग्ज निकलता है। यह स्वादमे मीठा एव स्वादिष्ट होता है। इसके कई भेद है। उनमें एकका छिलका इतना पतला होता है कि चुटकीसे मलनेसे टूट जाता है। इसको कागजी बादाम कहते है। यह बागी होता है। दूसरेका कडा और मोटा होता है। इसे ठड्डा कहते है। यह जगली होता है। इनका मग्ज खाया जाता है।

रासायनिक सगठन—इसके मग्जको जलमें पीसकर शीरा बनानेपर इसमेंसे किसी प्रकारकी गन्ध नही आती। इसमे ऐल्ब्युमिन बिल्कुल नही होता। इसके मग्जको दबाकर एक प्रकारका अनुत्पत् (स्थिर) तेल ५६% निकाला जाता है। इसमे कडुए बादाममे पाया जानेवाला ऐमिग्डेलीन नामक सत्व जिसे पानीमे नम करनेसे रासायनिक परिवर्तन होकर हाइड्रोसायनिक या प्रुस्सिक एसिड नामक विषाक्त अम्ल बनता है, बिल्कुल नही होता और न तो इसमे उसमें होनेवाला उत्पत् तेल होता है। यह कडुये बादामके विपरीत निर्विषैला एवं निरापद द्रव्य है। इसमे जल विलेय इमल्सीन नामक एक अभिपवजनक द्रव्य, लवाब, शर्करा, प्रोभूजिद और रक्षा (राख) होती है जिसमें पोटैसियम, कैल्सियम और मैग्नीसियम फॉस्फेट्स होते है।

उपयुक्त अग—बीज (बादाम) के ऊपरका कडा छिलका, मग्ज और मग्जका तेल (रोग़न बादाम शीरी)।

तेल निकालनेकी विधि—तेल निकालनेके एक विशेष यन्त्र (प्रेस-मशीन) द्वारा इसका तेल निकाले। उसके अभावमें (१) बादामकी मीगीको कूँडेमें डालकर डन्डेसे खूब पीसे। जब अच्छी तरह पीस जायँ, उनमे थोडी-सी खाँड मिलाये और गरम पानीका छीटा देते और रगडते जायँ। रोगन (तेल) अलग हो जायगा। फिर हाथसे दबाकर अवशिष्ट तेल निकाल लेवें। यह तेल हलके पीले रगका प्राय निर्गन्ध, स्वाद तैलीय या हलका बादामी होता है। यह ईथर और क्लोरोफार्ममें सुविलेय, किन्तु सुरासार (९%) मे कठिनतासे विलेय होता है। (२) बादामकी मीगीको कूटकर थोडी-सी मिश्री मिलाकर ताँबेके वर्तनमे कोयलेकी आगपर फिर थोडा-सा पानी छिडककर गरम करके हाथसे निचोडे और बर्तनको टेढा रखे, जिसमे तेल अलग होकर नीचेकी ओर एकत्रित हो जाय।

कल्प तथा योग—रोगनबादाम, लऊक बादाम, हरीरा या हलवा बादाम।

तेलकी परीक्षा—कभी-कभी आडूके बीजोके तेलका बादाम तैलमे मिश्रण कर देते है। इसकी सहज परीक्षा यह है कि इसमे समान भाग गन्धकका तेजाब, शोरेका तेजाब और पानी मिलाकर हिलाये। यदि आडूके बीजका तेल मिला होगा तो इससे वह ललाई लिये भूरे रगका हो जायगा, केवल बादामका तेल रहनेपर उसमें किसी प्रकारका रग नही आयेगा वह रगरहित रहेगा। पिसी हुई बादामकी गिरीको प्रेसके अन्दर दबाकर निकाल लेनेके पश्चात् शेप रही हुई सीठी (Powdered cake) को 'बादामका आटा' कहते है। इसमे तेल अत्यल्प प्रमाणमे होता है। पिष्टके अभाव और प्रोटीनके प्रमाण के बाहुल्यके कारण यह मधुमेहीके लिये पथ्य एव उत्तम खाद्य है।

परीक्षा—गञ्जबादावर्दमें लिखा है—

(१) इसे गरम रोटीपर डालकर खाये। यदि बादाम जैसा स्वाद प्रतीत होता हो तो शुद्ध वरना अशुद्ध जाने। (२) थोडा-सा हाथकी हथेलीपर लगाकर दोनो हाथोकी हथेलियो को परस्पर इतना रगडे कि गरम हो जायँ। इसके पश्चात् सूँघें और चखें। यदि बादाम जैसा स्वाद हो तो शुद्ध वरन् अशुद्ध जाने।

वक्तव्य—रोगनबादाम दो प्रकारका होता है (१) स्थूल (अनुत्पत्-सकील) और (२) सूक्ष्म (उत्पत्-लतीफ)। इनमें सूक्ष्म या उत्पत् तेल केवल कडुए बादाम से ही निकलता है। परन्तु दूसरे प्रकारका तेल स्थूल तेल कडुए और मीठे दोनों प्रकारके बादामोंसे दबाकर निकलता है और व्यापारिक मण्डियोंमें यह इंग्लिश आमण्ड ऑइल (अंग्रेजी बादामका तेल)के नामसे बिकता है। स्थूल बादाम तेल चाहे कडवे बादामोंसे निकाला जाय या मीठे बादामोंसे, यदि उन्हें प्रेसयन्त्रमें दबाकर निकाला जाय, जैसा कि यूरोपमें निकालते है, तो वह विषैला नही होता है। पर यदि बादामोंको कूटकर और उनमें थोडी-सी मिश्री मिलाकर तथा पानीका छीटा देकर पुन उनको गरम करके तेल निकाला जाय जैसा कि साधारणतया भारतवर्षमें निकालते है ता उस प्रकार यदि कडवे बादामोका तेल निकाला जाय तो वह अत्यन्त विषैला होता है। कारण कडवे बादाममे जो ऐमिग्डेलिन नामक वीर्य होता है वह पानीके साथ मिलकर विषमें परिणत हो जाता है। अतएव यह परमावश्यक है कि यदि साधारणरूपसे बादामतेल निकालना हो तो केवल मीठे बादामोंका ही निकालना चाहिए। यदि उनमें कडवे बादाम मिले हो तो उन सबको छाँटकर निकाल देना चाहिए, क्योंकि कडवे बादामके तेलसे विषमयता की संभावना हो। डा डॉक्टर सय्यद अहमदने हम्दतुल्मोहताज नामक स्वरचित ग्रथमें लिखा है कि एक व्यक्ति जो मालीखोलिया (मद) रोगसे पीडित था उसने ७ मिस्काल (दो दिरम)की मात्रामें कडवे बादामका तेल खाया और वह आधे घण्टेमें मर गया।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मस्तिष्कबलदायक (मेध्य), मस्तिष्कस्नेहन, शुक्रल, वाजीकर, उदरमार्दवकर (सर), उरोमार्दवकर और लेखन। तेल मृदुताकारक, आंतरिक प्रयोगमे पोषक, स्निग्ध (Demulcent) और हल्का सारक है। बादामका मग्ज खानेसे पुष्टि (गिजाइय्यत) प्राप्त होती है। इसका हरीरा पीनेसे मस्तिष्क बलवान् एव तर और शरीर पुष्ट होता है। शुक्रजनन एव वाजीकरणके लिए भी इसका उपयोग करते है और उक्त प्रयोजनके लिए इसको वाजीकर माजूनोंमें डालते है। खाँसीमें प्रयुक्त करनेसे यह उर.कण्ठमें मार्दव पैदा करके कफके सुगमतापूर्वक उत्सर्गमें साहाय्यभूत होता है। चेहरेका रग निखारनेके लिए इसे उबटनमे डालकर चेहरेपर लेप करते है। मस्तिष्क-स्नेह एव बलवर्धनके लिए इसका तेल (रोगन बादाम) शिरमें लगाते हैं। नित्य बने रहनेवाले (दायमी) कब्जको दूर करनेके लिए इसको दूधमे मिलाकर पिलाते हैं। कतिपय त्वचाके रोगोमें दाह एव शोथको शमन करनेके लिए इसका लेप करते है। बादामका बाहरी कड़ा छिलका जलाकर मजनोंमें डालकर दाँतोपर मलते हैं। इससे दाँत स्वच्छ एव चमकदार हो जाते है। अहितकर–चिरपाकी। निवारण–मस्तगी और मिश्री। प्रतिनिधि–अखरोटका मग्ज। मात्रा–बादामका मग्ज ७ से ११ दाने तक। रोगन बादाम ३ माशेसे १ तोला तक विरेचन है।

आयुर्वेदीय मत—बादाम (वाताम) मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बृहण, वल्य, पित्तश्लेष्मकर तथा वातहर है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—बादाममें पिष्टमय सत्व (स्टार्च) न होनेसे इसकी पेया बनाकर मधुमेहमें देते हैं। इसकी पेया बनानेके पूर्व इसको रातभर गरम पानीमें डालकर भिगोना चाहिए। इससे उसमें एक नये तरहका सत्व उत्पन्न होता है जो पचन क्रियाका उत्तेजक एव सहायक है। इसकी पेयाको अधिक पकानेसे यह सत्व नष्ट होता है। अत पेयामें एक दो उफान आते ही उसको आगपरसे उतार लेना चाहिए। श्वासोच्छ्वासेन्द्रियके तथा मूत्र एव जननेन्द्रियके रोगोमें इसकी पेया देते हैं। भिगोया हुआ बादाम असगन्ध, पीपर, घी, दूध और शर्करा इनकी पेया रसायन है। स्त्रियोमें इस पेयासे कटिशूल एवं श्वेतप्रदर आराम होता है और दूध बढता है। कडवे बादामको जलमें पीसकर कण्डूपर विशेषत जननेन्द्रियके कण्डूपर लगाते है।

(४४३) बादावर्द (भूदण्डी)

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family . Compositae)

नाम—(हिं०) बादावर्द, (यू०) Akantha tauke (D 3 12); (अ०) शोकतुल् बैज़ाउ Santapan अल्बावर्द (इ० बै०), (फा०) बादआवर्द; (स०) भूदण्डी, भूमिदण्डी, (गु०) भोयदण्डी; (लै०) वॉल्युटारेल्ल रामोसा **Volutarella ramosa** Roxb. (पर्याय–*V divaricata Benth* Hook. f.; *Amberboa divaricata* Kuntge.) ।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसको तथा ट्रीकोलेपिस प्रोक्रुम्बेन्स (**Tricholepis procumbens** Wight) नामक बूटीको एक माना है । इसका मराठी नाम सकायी, जो शुद्ध, 'शुकाई' है, लिखा है । परन्तु वह इससे भिन्न इसका एक भेद है (दे० 'शुकाई') । इसी प्रकार किसी-किसीने इसकी लैटिन सज्ञा (**Cardunus benedictus**) भी लिखा है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे इसके क्षुप होते है ।

वर्णन—यह ब्रह्मदण्डी नामक वनस्पतिका वह भेद है जो भूमिमे बिछी हुई होती है । इसमे काँटे होते है । शाखायें पुष्कल, रेखायुक्त, सफेदी लिए चौपहल और खोखली, सर्पके समान मुडी हुई होती है । पत्र लोमयुक्त, फूल नीले, ब्रह्मदण्डीके समान और कटकित होते है । फूल और फल झुमकेमे लगते है । बीज कडके स मान, उससे गोल होते है, स्वाद तिक्त होता है । इसका आयात यहाँ फारससे होता है । बाजारमें इसके सूखे क्षुप मिलते है ।

रासायनिक सगठन—एक हरा उत्पत् तेल, एक अम्ल राल, वसा, एक क्षारोद और निर्यास ।

उपयुक्त अंग—पचाग ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एवं रूक्ष ।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, प्रवर्तक (मुदिर्र), रक्तस्तंभन, वेदनास्थापन और ज्वरघ्न, विशेषतः कफज जीर्णज्वरोमें प्रयुक्त होता है ।

उपयोग—अधिकतया जीर्णज्वरोमे उपयुक्त औषधियोके साथ इसको क्वाथ करके पिलाते हैं । रक्तष्ठीवन, यकृतच्छूल, यकृदवरोध और चिरज अतिसारमें इसका उपयोग करते हैं । दतशूलमे इसके काढेसे कुल्लियाँ कराते है । बिच्छूके दशस्थानपर इसके बीजोका लेप करनेसे यह विषका शोषण करता और दर्दको शात करता है । अहितकर—फुफ्फुसको । निवारण—अफसतीन । प्रतिनिधि–शाहतरा और चिरायता । मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक ।

●

(४४४) बादियान खताई

फैमिली : माग्नोलिआसे (Family Magnoliaceae)

नाम– (हिं०), अनासफल, (अ०,फा०) बादियाने खताई, (फा०) राजियानए खताई, (द०,बम्ब०) अनसफल बादियान, (लै०) इल्लीसिउम वेरुम (**Illicum verum** Hook f), (अं०) स्टार एनिस (Star Anise), चायनीज एनिस (Chinese Anise), बाडियान (Badian) ।

उत्पत्तिस्थान—चीन, इंडोचीन और जापान। इसका आयात यहाँ चीनसे होता है। यह भारतके प्रायः सभी बड़े बाजारोंमें मिलता है।

वर्णन—यह आठसे बारहकी संख्यामें तारेके समान [illegible] लाल और चमकीले, अंडाकार क्षुद्र बीज हैं, जो स्वादमें सुगंधित, मधुर, सौंफ या अनीसूनके समान होते हैं। इसलिए बादियान खताई कहलाते हैं। गंध भी उन्हींके समान होती है। फलत्वक् भूरी, नीचे झुर्रीदार और नोंककी ओर चंचुवत् होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगंधित उड़नशील तैल ४ से ५ प्रतिशत होता है, जिसमें ८०% से ९०% एनिथोल होता है। इसके अतिरिक्त एक शर्करा, निर्यास, तथा टैनिन आदि द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुणधर्ममें यह अनीसूनके समान होता है, तथा दीपन, पाचन, वातानुलोमन और [illegible] है। इसको अधिकतया चाय इत्यादिके साथ उबालकर पीते हैं। यह आहारको पचाता तथा वायुका उत्सर्ग करता है। [illegible] गुल्मरोगोंके लिए इसे अकेला उबालकर पीते हैं। अहितकर—शिरःशूल उत्पन्न करता है। निवारण—मधु मिलानेसे इसके अवगुणोंका परिहार हो जाता है। प्रतिनिधि—[illegible]। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(४४५) बाबूना

फैमिली कॉम्पोज़ीटी (Family : Compositae)

नाम—(हि०, प०; ब०) बाबूनेका फूल, बाबूना, सोनागोटी, (अ०) अक़्‌हवानुल्‌ अबयज़, इक्लीलुल्‌ मलिक, तुफाहुल्‌ अर्ज़ (त०अं० १/१३९, २/६), बाबूनज, (फा०) बाबूनः, गुलेबाबूनः, (लै०) माट्रीकारिआ कामोमिल्ला (Matricaria chamomilla L.), (अं०) कैमोमाइल या सिंगल कैमोमाइल फ्लावर्स (Chamomile or Single Chamomile flowers), जर्मन कैमोमाइल (German Chamomile)।

वक्तव्य—इसका अरबी नाम 'बाबूनज' वस्तुतः इसके फारसी नाम 'बाबूनक' से अरबी बनाया गया है। इराक और अरबके 'बाबून' नामक गाँवमें अधिक होनेसे इसका बाबूना नाम रखा गया। मात्र बाबूनासे इसके फूल विवक्षित होते हैं। लैटिन नाम इसके क्षुपका है। फारसी वैद्यकीय ग्रंथोंमें बाबूना शब्दका व्यवहार प्रायः 'माट्रीकारिआ कामोमिल्ला'के लिए होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी हकीम बाबूनाका उपयोग ज्वरनाशनार्थ करते थे। जबतक कुनैनकी प्राप्ति नहीं हुई थी, तबतक वे इसे पर्यायज्वरोंकी मुख्य औषधि जानते थे। यद्यपि हकीम बुकरात और हकीम सेल्सस को इसके गुणधर्म (ज्वरघ्न)का ज्ञान नहीं था, तथापि जालीनूस ज्वरनाशनार्थ इसका उपयोग करता था और विशेषकर यूनानी हकीम दीसकूरीदूस गुलबाबूनाके बारीक चूर्णको पर्यायज्वरोंमें अत्यंत प्रभावी एवं गुणकारी जानता था। सुतरां गुलबाबूना का क्वाथ आमाशयको बलदेने (दीपन) और तद्गत वायुके अनुलोमनार्थ तथा वातनाडीबलवर्धन एवं अंगमर्दप्रशमनार्थ बहुप्रयुक्त एवं लाभकारी है और इंगलिस्तानमें बाबूनेके घनक्वाथका वमनार्थ उपयोग करते हैं तथा उदराध्मानमें इसके तैलके अभ्यंग और क्वाथकी बस्तिको लाभकारी मानते हैं। प्रवाहिका एवं अतिसारमें गुलबाबूनाका क्वाथ प्रयुक्त है। इसी प्रकार आर्तवजननार्थ जहाँ कपूर एवं जुदबेदस्तर आदिका प्रयोग करते हैं, वहाँ बाबूनाक्वाथको भी प्रभावी एवं लाभकारी जानते हैं।

उत्पत्तिस्थान—फारस, यूरोप, उत्तरभारतवर्ष विशेषत गगाका ऊपरी मैदान (पजाब आदि)। पहले समस्त भारतवर्षमे यही छोटा एकहरे फूलोका बाबूना बिका करता था। परन्तु अब थोडे समयसे दोहरे सफेद फूलोका बाबूना यूरोपसे आकर बिकता है। इसकी वनस्पतिको लेटिनमें **आन्थेमिस नोबिलिस (Anthemis nobilis** Linn) कहते है। इसके अन्य नाम इस प्रकार है—(यू०) कामोमिलोन, (अ०) बाबूनज रूमी या तुफाही, (फा०) बाबून तुफाही, बाबून इगलिसी, (अ०) डबल कैमोमाइल (Double Chamomile), रोमन कैमोमाइल (Roman Chamomile), इङ्गलिश कैमोमाइल (English Chamomile)। इसका मूल उत्पत्तिस्थान फारस और यूरोप है। किंतु अब भारतवर्षमे (विशेषत पजाबमे) इसकी खेती की जाती है।

वक्तव्य—इसकी अग्रेजी सज्ञा '**कैमोमाइल** Chamomile' इसकी यूनानी सज्ञा 'कामोमिलोन'से, जो इन दो शब्दोका यौगिक है (कामो = भूमिपर, मिलोन = सेव), व्युत्पन्न है। बाबूनारूमीसे सेवकी-सी गध आती है, इसलिए यूनानियोने इसका उक्त नाम रखा। सम्भवत इसी आधारपर अरबी—यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोमे भी इस प्रकारके बाबूनाको '**बाबूनए** तुफ्फ़ाही (तुफ्फाह = सेव)' लिखा है। इसकी लेटिन सज्ञा 'आन्थेमिस' या अग्रेजी सज्ञा 'कैमोमाइल' जिस प्रकार प्रजातिक (Generic) नामके रूपमें प्रयुक्त होती है, अरबी सज्ञा 'बाबूनज' या फारसी 'बाबून' का आरोप जेनरिक नामकी भाँति इसके समस्त भेदोके लिए होता है। यूनानी वैद्यकमें प्रयुक्त चारो भेदो—(१) **बाबूना रूमी**, (२) **बाबूना** बदबू, (३) **बाबूना गावचश्म** अर्थात् **उकहवान** और (४) **बाबूना हस्सानी** अर्थात् **अकरकरा** इन सबके लिए आन्थेमिस या कैमोमाइल (बाबूना) सज्ञाका ही आरोप होता है। परन्तु यूनानी वैद्यकमें मात्र अकेले इस शब्दका आरोम 'गुल बाबूना' पर होता है अर्थात् यदि नुस्खेमे केवल बाबूना लिखा हो तो इससे गुलबाबूना विवक्षित होगा।

वर्णन—यह एक क्षुपके प्रसिद्ध फूल है जो गुलसेवतीके समान पीले या सफेद होते है। बास तीक्ष्ण, सुगधित मनोरम और स्वाद तिक्त होता है। यह विदेशीय बाबूनाका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

रासायनिक सगठन—एक उत्पत् तेल (**रोगनबाबूना**), एक तिक्त, वीर्य, राल और टैनिन (Tannin) प्रभृति द्रव्य होते है।

उपयुक्त अग—फूल, तेल और जड।

कल्प तथा योग—रोगन बाबूना और कैरूती बाबूनावाली।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और पहलेमें **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, **वातानुलोमन**, श्वयथुविलयन, **मस्तिष्कबलदायक** (मेध्य), वातनाड़ी-**बलदायक**, गर्भशातक और **मूत्रार्तवजनन** है। अधिकतया सूजनो एव कठोरताओको विलीन करनेके लिए लेपोमें बाबूनाको डालते है। उर वेदना आदिमे इसके तेलकी मालिश करते है। मोच खाये हुए अग या शोथकी जगह इसके काढेसे सेक (तक्मीद) करते है। दिल्लीके हकीम आन्तरिक रूपसे मस्तिष्क एव वातरोगोमें इसे खिलाते है। मदाग्नि (जोफे मेदा) और वायुजन्य आमाशयशूलमें तथा वक्षसे कफोत्सर्ग एव कामलाको नष्ट करनेके लिए यह प्रयुक्त होता है। कै लाने और शीतपूर्वज्वरके लिए इसका काढा पिलाते है। मूत्रार्तवजनन एव गर्भ तथा अपरा नि सारणके लिए इसके काढेसे कटिस्नान (आबजन) कराते है और आतरिकरूपसे भी उपयोग कराते है। बाबूनाकी जड बाबूनासे अधिक वीर्यवान् वर्णनकी जाती है। **अहितकर**—कठफो। **निवारण**—शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**—बिरजासफ। **मात्रा**—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

(४४६) बाबूनएगावचश्म

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(फा०, भा० बाजार) बाबूनए गावचश्म, (अ०) उकहुवान, रिज्लुल् दुजाज , (यू०) फर्तानियून, (ले०) माट्रीकारिआ पार्थेनिडम् (**Matricaria parthenium**), (अं०) फेदर फ्यू (Feather few)।

उत्पत्तिस्थान—यह शीतल प्रदेशोमे आबादीके समीप खेती की जानेवाली भूमिमे उत्पन्न होता है। इसे बगीचोमें सुन्दरताके लिए लगाते है।

वर्णन—एक क्षुपके फूल है जो बाबूनेकी तरह सफेद और बीचसे पीले गोनेत्रके समान होते है। इसलिए इसे बाबूनए गावचश्म कहते हैं। गंध खराब और स्वाद तिक्त होता है। इसकी केवल पुष्पवान् शाखाएँ औषधके कामर्में ली जाती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, प्रमाथी, वातानुलोमन, स्वेदन और मूत्रार्तवजनन है। जलोदर, अग्निमाद्य (जोफेमेदा), आमाशयगत आनाह एव वस्तिगत जमे हुए रक्तको पिघलाने और सूजन उतारनेके लिए उकहुवानका प्रयोग करते है। श्वासकासमें अवलेह बनाकर चटाते हैं। मूत्रार्तवजननके लिए इसका काढा उपयोग करते है। जरायुकाठिन्यमें इसके काढेसे कटिस्नान (आवजन) कराते हैं। अहितकर–शिर शूलजनक और आकुलता-जनक। निवारण–बाबूना। मात्रा–२ ग्राम से ५ ग्राम (२ माशे से ५ माशे) तक।

●

(४४७) बाय(व)खुम्बा

फैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) बाय(व)खुम्बा, कुम्हीका फल, (स०) कुम्भी, कुम्भीर (रा०नि०), कुम्भीफल, (व०,हिं०) कुम्भी-वकुम्भ, (म०) वाकुभ, (गु०) वाकुंभ, (को०) कुम्ब, कुम्बी, असुन्द, (ले०) केरिआ आर्बोरिआ (**Careya arborea** Roxb), (अं०) वाइल्ड ग्वावा (Wild Guava)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षका है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक बडे वृक्षके फल है जो गोलाई लिए हुये हरे (कच्चेपर), व्यासमें २½-३ इच, शीर्षपर बाह्य नालसे युक्त, भूरे, खाकस्तरी (पकनेपर) रगके होते है और औषधके काममें लिए जाते है।

रासायनिक सगठन—पत्रमे १९ प्रतिशत कषाय तत्व होता है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे गरमी और खुश्की लिए हुए अनुष्णाशीत, मतान्तरमे पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमे खुश्क (रूक्ष)।

गुणकर्म तथा उपयोग—दोषपाचन, सर, वातानुलोमन और दीपन। अधिकतया आमाशयके सुधार और बलदेनेके लिए बच्चोकी घुटीमे इसे अन्य औषध द्रव्योंके साथ मिलाकर फाण्ट बनाकर पिलाते है। वातानुलोमन होनेके कारण यह वायुजन्य बालउदरशूलको दूर करता है। योन्यर्शकी यह प्रधान औषध है। मात्रा–बालकोंके-लिए ०.५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

(४४८) बायबिडंग

फ़ैमिली : मीर्सिनासे (Family · Myrsinaceae)

नाम। (हिं०)वाय(व)बिडंग, भाभीरग, (अ०) बिरक(ज)काबुली; (फा०) बिरंग काबुली, (स०) विडङ्ग, चित्रतण्डुला, (गु० प०) वावडीग, (म०) वावडिंग, (ब०) बिडङ्ग, (लै०) एम्बेलिया रीबेज (**Embelia ribes** Burm), (अ०) बाब्रेंग (Babreng), एम्ब्रेलिया (Embelia)।

वक्तव्य—'बिरंक' वा 'बिरज' फारसी 'बिरंग' से अरबी बनाये गये है, और फारसी 'बिरंग' सस्कृत विडगका फारसी रूपातर है। लेटिन नाम इसकी झाडीका है।

उत्पत्तिस्थान—हिन्दुस्तानका समस्त पहाडी प्रान्त।

वर्णन—यह एक छोटे पेड (झाडी) का सुखाया हुआ फल है जो कालीमिर्चके समान, किन्तु उससे छोटा, लगभग सफेदमिर्चके आकारका और चिकना, गोल, चित्रित, ललाई लिये काला (खाकस्तरी), शीर्ष पर हस्व चचुयुक्त, किंचित् चरपरा तथा पतला वृन्तयुक्त होता है। इसके ऊपर लम्बाईके रूख धारियाँ बनी होती है जो इसके एक अन्य भेद—**भामीरंग या अमचुर** (एम्बेलिया त्सेजेरिआमकोट्टम् (**Embelia tsjeriamcottam** A DC या **E. robusta** C B. Cl)में नही होती, किन्तु शेष सभी बातोमे यह उसके समान होता है। इसको काटनेपर एक लाल कडा बीज और सफेद मग्ज निकलता है। इसके आधारपर एक कटोरीनुमा गड्ढा (ग्वात) होता है। स्वाद किंचित् तिक्त कषाय एव रुचिकर होता है। गन्ध अतिसूक्ष्म या अलक्षित।

इतिहास—भारतीय और मुसलमान वैद्यो (हकीमो)ने इस औषधिका उल्लेख किया है। सुतरा सुश्रुत और **शैखुर्रईस इब्नसीनाने** इसको प्रवल कृमिघ्न लिखा है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक अम्लस्वभावी सत्व विडंगाम्ल **एम्बेलिक एसिड** (Embelic acid) २ ५ प्रतिशत, एक उत्पत् तेल, रजक द्रव्य, टैनिन, रालदार पदार्थ और क्रिस्टेम्बीन (Christembine) नामक एक क्षारसमोद प्रभृति द्रव्य होते है।

उपयुक्त अग—सूखे फल (बायबिडग)।

कल्प तथा योग—अतरीफल दीदान।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** (रूक्ष)। आयुर्वेदमतसे ऊष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—उदरकृमिनाशन, सौदा और साद्रकफविरेचनीय, कृमिदत एव दतशूलहर विशेषत अन्त्रस्थ क्रिमिनाशक है।

उपयोग—उदरकृमि विशेपत कद्दूदानेको मारने और निकालनेके लिए यह पुष्कल उपयोग किया जाता है। सौदा और साद्रकफविरेचनीय होनेके कारण सधियोसे कफोत्सर्गके लिए यह उत्कृष्ट भेपज है। कृमिदत और दतशूलमें इसके काढेका कवलग्रह (मजमजा) कराते है। अहितकर–अन्त्रको। **निवारण**–कतीरा और मस्तगी। **प्रतिनिधि**–तुरमुस। **मात्रा**–१ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बायविडंग कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, दीपन, शिरोविरेचन, तृसिघ्न, कुष्ठघ्न, तथा शूल आध्मान, उदररोग, कफ, कृमि, वात और विबन्ध नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २, ४, २५; सु० सू० अ० ३८, ४५, भा० प्र०)।

नव्यमत—वायविडग थोडा कडआ, कपाय, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन और आनुलोमिक और मूत्रजनन, कृमिघ्न, वातहर, वल्य, मस्तिष्क और नाडियोको वलप्रद, रक्तशोधन और रसायन है। इसमे मूत्रका रग लाल

होता है और उसमे अम्लता बढती है। इसकी क्रिया शरीरकी सभी ग्रथियोपर विशेषकर रसग्रन्थियोपर होती है। इसके सेवनसे भूख लगती है, अन्न पचता, दस्त साफ होता, भार बढता तथा त्वचाका रग सुधरता है और मनको आह्लाद मालूम होता है। शिशुओके लिए यह दिव्य औषधि है। गण्डमालामें वायविडग, गूगल, मैनसिल और सावरसीगके भस्मके साथ मिलाकर घी और शहदके साथ देते है। इससे देरीसे, पर उत्तम लाभ होता है। आक्षेपक, अपस्मार, अर्धांगवात आदि मस्तिष्क और नाडियोके रोगोमे इसे लहसुनके साथ क्षीरपाकविधिसे पकाकर देते है। त्वग्रोगोमे मुखद्वारा इसका उपयोग करते हैं और इसका लेप तथा धुआँ देते है। विविध प्रकारके त्वग्रोग अन्नके ठीक न पचनेसे होते हैं। इससे पाचनक्रिया सुधरती हैं। दस्त साफ होता है और त्वचा पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है, इसलिए कुष्ठविकार शमन होते है। अग्निमाद्य, अरुचि, कुपचन, वमन आघ्मान और अर्शमें इसका चूर्ण छाछके साथ देते है। गोल और चिपटे कृमिके लिए १ तोला इसका चूर्ण पहिले विरेचन देकर खाली पेट देते हैं। और ऊपरसे पुन विरेचन देते है। इससे कृमि मरकर गिर जाते है। पीनस और अधकपारीमें इसका नस्य देते हैं। स्फीतकृमिघ्न (Taenicide), वातानुलोमन, मूत्रजनन होनेसे पूर्वी भारतवासी अजीर्ण और आमवातिक विकरो में इसका उपयोग करते है, किन्तु इसकी प्रसिद्धि इसके स्फीतकृमि (कद्दूदाना) निकालनेके कर्मके कारण है। मात्रा—फल चूर्ण १-४ ड्राम। कृमिनिर्हरणार्थ फलके चूर्णको १-३ चायके चम्मच भर खाली पेट दूधके साथ लेकर पीछे कोई विरेचन लेना चाहिए।

•

(४४९) बारतंग

फैमिली प्लांटाजिनासे (Family Plantaginaceae)

नाम। वृक्ष (भा० बाजार) वारहग, वारतग, (हिं०) लहुरिज (-या), (अ०) लिसानुल्हमल (=शेपशावक जिह्वा (-इ० वै० सचि० ४, पृ० १०८), (फा०) वारतग, वारहग, (ले०) प्लांटागो मेजोर (**Plantago major** Linn), (अ०) ग्रेटर प्लान्टेन (Greater Plantain)। बीज (हिं०; भा० वाजार) वारतग, (अ०) बज्र लिसानुल्हम्ल, (फा०) तुख्मे वारतग।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण भारतवर्ष, विशेषत पजाव काश्मीरसे भूटान, आसाम, खसिया पहाडी तथा वम्बई एव नीलगिरी आदि और फारस एव यूरोप। हिन्दुस्तानमे इसका विपुल आयात फारससे होता है।

वर्णन—यह इसवगोलकी जाति और उसकी तरह के एक क्षुपके बीज हैं जो छोटे लवगोल, वनफ्शई लिए काले और इसबगोल जैसे होते है। जलमें भिगोनेपर इसमें इसवगोलकी तरह लवाव निकलता है। स्वाद फीका एव हीकदार होता है। गीलानी के मतसे ललाई लिये काले वीज उत्तम होते हैं। पत्र भेड़की जीभके समान होते है।

रासायनिक सगठन—बीजमें हरित रजकद्रव्य (Chlorophyll), राल, मोम, ऐल्ब्युमेन, शर्करा और विपुल प्रमाणमें लवाव होता है।

उपयुक्त अग—पत्र या पत्रस्वरस और बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, रक्तस्तभन और वेदनाहर। हरे वारतंगकी पत्तीके रसका फाडा हुआ (मुरव्वक) पानी आतरिक अगोके रक्तस्राव रोकनेके लिए पिलाया जाता है। सुतरा नकसीर, रक्तार्श और असृग्दरमें इसका उपयोग करते है। अतिसार एव रक्तस्राव वन्द करनेके लिए इसके बीज प्रयुक्त किये जाते हैं। अन्तु,

उर.क्षत एवं यक्ष्मा रोगमें इनका उपयोग किया जाता है। कर्णशूलमे इसके पत्तेके काढेका वफारा देते है या रस कानमें टपकाते है। कंठगत पीडा एव दतशूलमें इसके पानीका गण्डूप कराते है। कतिपय उष्ण शोथोपर वेदना-शमनार्थ इसका लेप कराते है। अहितकर—फुपफुस एव प्लीहाको। प्रतिनिधि—बीजका प्रतिनिधि इसके पत्र है। मात्रा—बारतंगके पत्रस्वरसको फाडकर लिया हुआ पानी ५ तोलेमे ७ तोले तक। बीज-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेमे ७ माशा) तक।

•

(४५०) वाराहीकंद

फ़ैमिली : डिओस्कोरेआसे ((Family . Dioscoreaceae)

नाम—(हिं०) गेठी, वाराहीकद, गाँठालू, (अ०) अस्लुर्लूखिजीर-(नवीन), (फा०) बेख खोक-(नवीन), (स०) गृष्टि(क), वराहकद, वाराहीकद, (म०, गु०) डुकरकद, (ले०) डिओस्कोरिआ साटिवा (**Dioscorea sativa** Thunb) या दूसरी जाति डि० बुल्बीफेरा (D **bulbifera** Linn) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके जगली और पहाडी स्थान।

वर्णन—एक लताका कन्द जो आकृतिमें जमीकद (सूरन)के समान, किन्तु उससे छोटा होता है और उसपर वराहलोमसदृश लोम होते हैं। इसकी लतामें गोल काले रगकी आलूके समान गाँठे लगती है। मीठी लताकी गाँठें तरकारीकी भाँति खाई जाती है। वाराहीकन्द इसकी तिक्त जातिका कन्द है जो औषधके काममे आता है। इसका छिलका खुरदरा और मोटा होता है। स्वाद किंचिन्मधुर और कटुतिक्त होता है। सूअर इसे रुचि-पूर्वक खाता है, इसलिए इसे वाराहीकन्द (वराह = सूअर, कन्द = कदमूल) कहते है। दक्षिणमें डाही-कुल (*Family Taccaceae*)के डुकरकंद (**Tacca aspera** Roxb)को वाराहीकद मानते है।

प्रकृति—गरम।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वृष्य, वाजीकर, बृहणीय, क्षुधाजनक, वल्य और वातकफघ्न हैं। इसका लेप फोडो और शोथको उतारता है। यह उदरकृमिनाशक और शुक्रप्रमेहनाशक है। मूत्रदाह और औपसर्गिकमेह (सूजाक)को नष्ट करता है। इसकी तरकारी खानेसे भूख खूब बढ जाती है, चेहरेका रग निखरता है, खूब भोजन होता है और कुष्ठ एव सौदाका नाश होता है। अहितकर-पित्तकारक है।

आयुर्वेदीय मत—वराहकन्द रस और विपाकमें कटु, वल्य, वृष्य, रसायन तथा कफ, प्रमेह, कुष्ठ और कृमिका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६)।

•

(४५१) बालछड़

फ़ैमिली वालेरिआनासे (Family Valarianaceae)

नाम—(हिं०, प०) बालछड, छड, जटामासी; (अ०) सुबुले हिंदी, सुबुलुत्तीबे हिंदी, (फा०) नारदे हिन्दी, नारदीने हिंदी, (सं०) मासी, जटामासी, नलदा, जटिला (च०), (द०, ब०, गु०, म०, ते०) जटामासी, (क०) भूतजटा, (पहाडिया) भूतकेस, (ले०) नार्डोस्टाकीस जटामांसी (**Nardostachys** jatamansi DC), (अं०) इण्डियन स्पाइकनार्ड (Indian Spikenard)।

वक्तव्य—'सुंबुलुत्तीब' इसका विदेशी भेद है, जिसको लेटिन और अरबीमे क्रमश: वैलेरिअना ऑफ़िसिनालिस (Valeriana officinalis Linn) और 'नारदीन' या 'सुंबुलेरूमी' कहते हैं। यद्यपि विदेशोके अतिरिक्त डॉ० डीमकके मतसे यह हिन्दुस्तान विशेषत. उत्तरी कश्मीरमें भी होती है तथापि भारतवर्षमे इसकी जगह हकीम लोग 'देशी सुंबुल' अर्थात् 'बालछड' का ही उपयोग करते हैं।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके ऊँचे भागमे ऐल्पाइन हिमालय (११,०००से १५,००० फुट), केदारनाथके पास कुमाऊँ और गढवालसे सिक्किम तक १७,००० फुटकी ऊँचाईपर इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु क्षुपकी प्रसिद्ध जड (पातालीधड) है जो सिलाई लिए काली (गहरा भूरी), लगभग छोटी उँगलीके बराबर मोटी होती है और उसपर कुछ-कुछ लाल भूरे रगके बारीक तन्तु लिपटे रहते हैं। बास अत्यन्त तीक्ष्ण एव मनोरम होती है। स्वाद तिक्त होता है।

रासायनिक सगठन—जटामासीमे एक काला राल जैसा पदार्थ ६%, भीमसेनी कपूर जैसा कपूर और गोद ९%, तगर जैसी सुगन्धवाला अम्ल द्रव्य (क्रिस्टली अम्ल-जटामासिक अम्ल) और जलविलेय पदार्थ १२% तथा उत्पत् तेल ३% होता है। यह तेल (रोगन सुंबुले हिन्दी या रोगन नारदीन) इसका गुणोत्पादक वीर्य (मुख्य सत्व) है जो कुछ हरापन लिए हुए पीले रगका, जलसे हलका, हवामे जमनेवाला, कपूरके समान गन्धवाला तथा रसमें तिक्त और कटु होता है। इनके अतिरिक्त इसमें शर्करा, श्वेतसार और तिक्त तरल द्रव प्रभृति उपादान होते हैं।

उपयुक्त अग—जड एव तेल।

कल्प तथा योग—जिमाद सुंबुलुत्तीब, रोगन नारदीन।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मस्तिष्कयकृद्बलदायक, शोथविलयन, उष्णताजनन प्रमाथी, लेखन, वर्णप्रसादक (मुहस्सिन लौन), स्वेद एव मुखदौर्गन्ध्यहर, व्रणरोपण, वातानुलोमन, हृदयबलदायक, वाजीकर और आर्तवजनन है। सुंबुलुत्तीब प्राय गरम माजूनोंमें डाली जाती है। अपनी सुगन्धिसे यह उनको सुगन्धित बनाती और प्राय शीतल स्निग्ध व्याधियोंमें लाभ पहुँचाती है। लेखन और वर्णप्रसादक होनेके कारण चेहरेकी झाई दूर करने और चेहरेको कान्ति प्रदान करनेके लिए इसका लेप किया जाता है तथा इसे उबटनोंमें डाला जाता है। सुगन्धित तथा लेखन एव व्रणरोपण होनेके कारण इसे मलहरोंमें मिलाते हैं। बारीक पीसकर शरीरपर मलनेसे यह स्वेदाधिक्य को रोकती है। स्वेदकी दुर्गन्ध और बगलकी गन्दगी (मल) दूर करनेके लिए भी यह उपादेय है। मुखमें चबानेसे यह मुखकी दुर्गन्धको दूर करती है। यह यकृत्, आमाशय और शीत मस्तिष्कको बलवर्धनके लिए भी प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त वायुका उत्सर्ग करती, उदरानाहको दूर करती तथा सर्वांगशोफ, कामला, यकृच्छोथ, आमाशयशोथ तथा वस्ति और गर्भाशयशोथके लिए भी गुणकारक है। इन रोगोमे अन्य औषधियोंके साथ इसको पेय और लेपकी भाँति उपयोग करते हैं। आर्तवजनन होनेके कारण इसे रजोरोधमें उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्राय कफज रोगोमें प्रयुक्त की जाती है। अहितकर–वृक्कके लिए। निवारण–गुलरोगन। प्रतिनिधि–इज़खिर मक्की। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जटामासी मधुर, कषाय, कटु, शीतवीर्य, सज्ञास्थापन, मेध्य, कान्ति-बल और आमोद देनेवाली तथा कफ, पित्त, भूत, दाह, त्रिदोष, रक्तविकार, विसर्प और कुष्ठको दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—यह सुगन्धित (Aromatic), तिक्त, बल्य, उत्तेजक और कोथप्रतिबन्धक है तथा अपस्मार, अपतन्त्रक तथा आक्षेपीय विकारो एव दिलकी धडकनमें इसका उपयोग करते हैं। यह विदेशीय जटामासीका प्रतिनिधि

है और अन्त्रशूलमे लाभकारी है। जटामासी तिक्त, कटु, सुगन्धि, कषाय, शीतल, वातहर, सकोचविकासप्रतिबन्धक हृदयबल्य, रक्तानुधावनोत्तेजक, त्वग्दोषहर, ज्वरहर, वेदनास्थापन, कफघ्न, केशवर्धक, कान्तिवर्धक और मोदकर है। इससे भूख बढती तथा खूब अन्न पचता है, परन्तु कब्ज नही होता, उदरमे गर्मी प्रतीत होती है, उद्गार आता है, समस्त शरीर गरम होता है, पसीना आता है, मूत्र छूटता है और नाडी सुधरती है। बडी मात्रामें देनेसे वमन, उदरमे मरोड और विरेक होते है। मस्तिष्क और नाडियोपर इसकी पौष्टिक एव उत्तेजक क्रिया होती है। छोटी मात्रामें अधिक दिन लेते रहनेसे मन शान्त होता है, काम करनेका उत्साह मालूम होता है और नाडीका वेग बढता है। अतिशय मानसिक परिश्रम अथवा चिन्तासे जब मन अस्थिर होता है, थकावट मालूम होती है और नाडी द्रुतगामिनी होती है। उस दशामे जटामासीसे लाभ होता है। सिरके दर्दमे जटामासी उत्कृष्ट औषध है। मस्तिष्क और नाडियोके रोगोमे प्रयोग की जानेवाली कस्तूरी, हीग आदि औषधोकी अपेक्षया जटामासी शीघ्र एव जोरदार काम करती है। भूतावेश जैसी चेष्टाओमें जटामासी, ब्राह्मीका स्वरस, वच और मधु मिलाकर देते है। रक्तानुधावन ठीक न होता हो, उस समय जटामासी उपयुक्त औषध है। मस्तिष्कका रक्तानुधावन अधिक होनेपर मस्तिष्कमें रक्तका भराव-सा प्रतीत होता है तथा अन्य कुछ विशेष लक्षण होते है और रक्तानुधावन कम होनेपर चक्कर आना, मूर्च्छा होना, कम सुनना, आँखोके सामने अँधेरा मालूम होना आदि लक्षण होते है। उक्त अवस्थामें जटामासीसे मस्तिष्कगत रक्तानुधावन सम होता है। हृदयकी शिथिलता, धडकन और हृदयके कुछ रोगोमे उदरमे वायुका सचय होता है। उस दशामें अन्य सुगन्धिद्रव्योके साथ जटामासी देते है। जटामासीकी रक्तानुधावनके ऊपरकी यह क्रिया स्वय हृदयपर, रक्तवाहिनियोपर, नाडियोपर और रक्तानुधावनके केन्द्रोपर होती है। इससे रक्तवाहिनियोका सकोच होता है। आध्मान, उदरशूल, कुपचन आदि पचननलिकाके रोगोमें जटामासी, नौसादर और सुगन्धि द्रव्योके साथ इसे देते है। इससे पित्तका स्राव यथावत् होता है और पचनक्रिया सुधरती है। ज्वर अथवा शोथज्वरमें जब तीनो दोष बढकर रोगी थकता है और त्रिदोषके लक्षण दिखने लगते है। तब इसे देनेसे रक्तानुधावन सुधरता है, नाडीव्यूहको शक्ति मिलती है, कण्ठ और श्वासनलिकाके भीतरका कफ छूटता है, शरीरका दाह कम होता है और शोथ भी कम होता है। व्रणके ऊपर इसका लेप करनेसे दाह और पीडा कम होती है। पीडितार्तवमे इससे पीडा कम होती है और आर्तव ठीक आने लगता है।

●

(४५२) बालंगू

फैमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) बालगा (गू), तूतमलंगा, तोकमलगा, (अं०) बालकू, बज्रुलबालकू, (फा०, बम्ब०) बालगू तुख्मे बालगू; (द०) बालका, (प०, हिं०) घरेइ कश्मालू तुख्ममलगा; (बाजार, क०) तुक्मे(ख्मे)बालु गा, (लै०) लाल्लेमान्टिआ रॉयलेआना (**Lallemantia royleana** Benth)।

वक्तव्य—उत्तर भारतवर्षमे तुलसीजातीय एक पौधे साल्विआ ईजिप्टिआका (**Salvia aegyptiaca** Linn var **pumila** Benth)के बीजोको तुख्मबालगूके प्रतिनिधि द्रव्यकी भाँति उपयोग करते है तथा पजावमें इसे 'तुख्ममलगा' कहते है। कही-कही ड्राकोसेफालुम् रॉयलेआनुम् (**Dracocephalum royleanum**) और कही नेपेटा एलीप्टिका (**Nepeta elliptica** Benth) नामक वनस्पतिके बीजोको भी तुख्ममलगा कहते है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिन्दुस्तान, पजाब, बलूचिस्तान तथा फारस जहाँसे इसके बीजोका आयात यहाँ बम्बई होकर होता है।

वर्णन—यह एक क्षुपके बीज हैं जो [illegible] तरह होते हैं और औषधके काममें आते हैं। बाजारमें मिलनेवाले बीज [illegible] लगभग ३ मिलीमी० (⅛ इंच) लम्बे, लम्बोतरे, मसृण और तिकोने, नाभि (Umbilicus)की ओर [illegible] एक सफेद बिंदु होता है, गोपुच्छाकार (Tapering) होते हैं। बीजका एक पार्श्व अन्य दोनोंकी अपेक्षा चौड़ा एवं किंचित् [illegible] होता है। जलमें भिगोनेसे ये फूलकर शीघ्र एक प्रकारके चिपचिपा, पारदर्शक, फीका (स्वादरहित), [illegible] ढक जाते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक और हलका शीतमग्राही है तथा हृत्स्पदन एव हृदयदौर्बल्यमें विशेषतया प्रयुक्त होता है। सौमनस्यजनन एव हृदयबलदायक होनेसे हृदयकी धडकन, विराग और हृदयदौर्बल्यको दूर करनेके लिए इसका उपयोग किया जाता है। संग्राही और पिच्छिल होनेसे रक्तातिसार, मरोड और प्रवाहिकामें इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—आमाशयको। निवारण—चीनी और मिश्री। प्रतिनिधि—रैहांके बीज। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

नव्यमत—मूत्ररोगोंमें मूत्रजनन एव शामकलेपकी भांति इसका आतरिक उपयोग करते हैं। फोडे (Boils) और विद्रधियोंपर इसका स्थानीय उपयोग करते हैं। यह पुष्टिकर माना जाता है।

●

(४५३) विजयसार

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०; प०) विजयसार, विजयसार, बीजा (मीरजापुर), विजासार, विजैसार; (स०) असन, बीजक; (म०) बिबला, (गु०) बीयो, (मा०) विजैसार; (ब०) पियासाल, बोजसाल; (लै०) प्टेरोकार्पुस् मार्सुपियम् (Pterocarpus marsupium Roxb); (अं०) इण्डियन या मलाबार काइनो-ट्री (Indian or Malabar Kino-tree)। गोंद (हिं०) विजयसारका गोंद, देशी हीरादोखी, देशी खूनखराबा, (अ०) दम्मुल्अख्वैन हिन्दी, (फा०) खून-सियावशाने हिंदी; (स०) बीजकनिर्यास, (अं०) काइनो (Kino), गम-काइनो (Gum-Kino)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और लका।

वर्णन—इसके बडे वृक्ष जगलोंमें होते है। पत्र सयुक्तदल, पुष्प श्वेताभ पीले रगके शीतकालके आरम्भमे आते हैं, फली पौष-माघमें पक जाती है। इसकी लकडीको पानीमें डालनेसे पहले पीला और पीछे कालेरगका हो जाता है। वृक्षकी पेडीमें चीरा देने (घाव करने)से जो लाल रस निकलता है, उसे बिना अग्निके धूपमे सुखा लेते है। सूखकर यह काला और कडा हो जाता है। गुणधर्ममे यह दम्मुल्अख्वैनके समान होता है। इसलिए इसे दम्मुल् अख्वैन हिन्दी कह सकते हैं तथा दम्मुल्अख्वैन (खूनखराबा)के प्रतिनिधि रूपसे काममें ले सकते हैं। इसके छोटे-छोटे नुकीले और चमकीले कालाई लिए टुकडे होते हैं या मोटा चूर्ण होता है। यह निर्गंध और स्वादमें अत्यत कसैला होता है। चबानेपर यह दांतोंसे चिपक जाता है और थूकका रग खूनके समान लाल हो जाता है। यह सुरासारमें सम्पूर्ण घुल जाता है। रसको उबालकर यथाविधि बनाये हुए चूर्णको ठडे पानीके साथ हिलानेपर पूरा-पूरा घुल जाता है। प्रोटोसाल्ट ऑफ आयर्नके स्पर्शसे यह घोल बैंगनी (Violet) रग धारण कर लेता है। यूरोपमे पहले तो अफरीका और जमेइकासे काइनो लाते थे। किन्तु सन् १८११ ई०मे उनके स्थानमें मालाबारसे काइनो (मलाबार काइनो) जाने लगा और अब भी यहाँसे ही जाता है, क्योंकि भारतवर्षमें उसके स्थानमें दम्मुल्अख्वैन और चुनिया गोंद (पलासका गोंद) काममें आते हैं जो गुणकर्ममें विजयसारके गोंद जैसे हैं। दे० 'दम्मुल्अख्वैन'।

इतिहास—प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय या इसलामी लेखकोमे से किसीने भी मालावार काइनोका उल्लेख नही किया है।

उपयुक्त अंग—पत्र, त्वचा, सार और लालरंगका गोद जिसे मलवार-काइनो (Malabar-Kino) कहते है।

रासायनिक संगठन—इससे विजयसार निर्यास (Gum-Kino) प्राप्त होता है, जिसमे काइनो-टैनिक-एसिड होता है। इस निर्यासको खूनवरावा (दम्मुल्अख्वैन)के प्रतिनिधिरूपमे काममें लिया जा सकता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह भूख लगाती तथा शरीरपरके दानो तथा उदरजकृमियोको नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त शोथ एव वायुको विलीन करती, श्वित्रके दागको मिटाती, गुदज कृमियोको नष्ट करती और शुक्रप्रमेह एव रक्त दोषका नाश करती है। शोथ और त्वग्रोगोमे पत्तोका लेप या मालिश करते है। इसके पत्तोको फोडे-फुसी और घावके ऊपर बाँधनेमे उपकार होता है। पत्तोका क्वाथ बना-छानकर कुल्लियाँ करनेसे मुख और दाँतो-का दर्द मिटता है। विरेक बन्द करनेवाली ओषधियोके साथ इसका योग करना चाहिए। क्योकि यह सग्राही है। शिशुओ और वडोके लिए यह अत्युत्तम औषध है। इसकी लकडीको पानी से घिसकर लेप करनेसे चोटकी पीडा मिटती है। इसकी लकडीको कूटकर पानीमे भिगोकर ४० दिन तक पिलानेसे कुष्ठ और मधुमेह आराम होता है। इसकी लकडीके चूर्ण (१ तोले)का क्वाथ समभाग दूध और थोडी चीनी मिलाकर पीनेसे आघातज पीडा मिटती है। गोद सग्राहक है। पुराने अतिसार और आँवमें गोद खानेको देते है। दाँतके दर्दमे गोद या पत्ते दाँतोमे रखकर चबाते है। अतिरज, रक्तातिसार प्रभृति रक्तरोगोमे गोद लाभ पहुँचाता है। श्वेतप्रदर, कण्ठशैथिल्य (Relaxed throat) आदिमें इसका स्थानीय प्रयोग होता है। उर. क्षतरोगमें रात्रिस्वेद बन्द करनेके लिए बहुत गुणकारी है। शोथरहित रक्तस्रावरोगमे इसके उपयोगसे बडा लाभ होता है। जब मसूढे फूल जाते और व्रणित (जख्मी) हो जाते हैं तब इसको पानीमे क्वाथ करके उस पानीसे गण्डूष कराते है। मात्रा–२५० मि० ग्रा० से ० ६२५ ग्राम (२ रत्ती से ५ रत्ती)। प्रतिनिधि–ढाकका गोद (चुनिया गोद), यूकलिप्टस काइनो,[1] दम्मुल्अख्वैन (खूनखरावा)।

आयुर्वेदीय मत—विजयसार कषाय, तिक्त, त्वच्य, केश्य, रसायन तथा उदर्द, कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, प्रमेह, व्रण, कृमि, वातरोग, कफ, रक्तपित्त और रक्तविकारका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ४, चि०अ० ६, ध०नि०, भा० प्र०)।

•

(४५४) बिजौरा

फैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम। फल(हिं०)बिजो(जौ)रा, (यू०)किन्त्रिआ, (अ०)उत्र(त्रु)ज, (फा०) तुरज, बालग, (स०) मातुलुंग, बीजपूर(क), (ब०) छोलोगनीबू, होसानेबू, टावा ने(ले)बु, (म०)महालुंग, (गु०)बि(बी)जोरू, (मा०) बीजौरो; (ता०) मादलम्, (सिंध) तुणिज, (अ०) साइट्रन (Citrum), मेलन लाइन (Melon Lime)। फलका छिलका (हिं०) बिजौरेका छिलका, (अ०) किश्रुल् उत्र(त्रु)ज, (फा०) पोस्ते तुरज, (अ०) साइट्रन पील (Pitron peel)।

---

१. विजयसारनिर्यासकी तरहका लाल रंगका एक गोंद (Red gum) जो मद्रास और लंकामें होनेवाले युकेलिप्टस रॉस्ट्रेटा (Eucalyptus rostrata Sch) नामक वृक्ष तथा इसकी इतर जातियोंसे प्राप्त होता है।

वक्तव्य—वृक्षको लेटिनमें सीट्रस मेडिका प्र० मेडिका प्रॉपर (Citrus medica var. medicoa proper) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह नीबूकी जातिका एक प्रसिद्ध फल है, जो भारतवर्षके प्राय सभी बडे बाजारोमें विकनेके लिए आता है। फल नीबूकी तरह बडी नारंगीके बराबर लम्बाई लिए गोल, चिकना, ललाई लिए पीला और सुगन्धित होता है। माठा और खट्टा भेदसे यह दो प्रकारका होता है। छिलका मोटा और तिक्त होता है। अन्दरका गुदा सफेद और थोडा मीठा होता है। बीज (तुख्मे तुरंज) सफेद सनोबरी शकलका होता है। इसके अन्दरसे कडुआ सफेद मग्ज निकलता है।

रासायनिक सगठन—इसमें भी प्राय वही उपादान पाये जाते है, जो नीबूमें होते है। इसके छिलकेसे दवाकर निकाले तेल (रोगन तुरज या उत्रज, दोहनुल् उत्रज) पाडु-पीत, सुगन्धित, तिक्त और ऐल्कोहॉलविलेय होता है। इसमें सिट्रीन या लाइमोनीन ७६ प्रतिशत, सिट्रोल ७ ८ प्रतिशत, साइमीन और साइट्रोनेलल आदि सत्व होते हैं। मात्रा–१/२ से ३ बूंद।

उपयुक्त अग—इसके पत्र, फूल, फलका गूदा(शहम या लहम उत्रज, गोश्ते तुरज, प्रिय बल्लभ, फलरस, छिलका और बीज प्रभृति सभी अग औषधिके काम आते हैं।

कल्प तथा योग—जुवारिश तुरज, रोगन उत्रज।

प्रकृति—वह भाग जो बीजोके साथ लिपटा हुआ होता है (हुम्माज़ उत्रज (तीसरे मतातरसे दूसरे) दर्जेमे शीत एव रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (सु०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—सग्राही, पित्तरक्तसशमन, यकृदामाशयवलदायक, हृदयबलदायक, लेखन तथा पित्तातिसारमें विशेष गुणदायक है। पित्तातिसारको वद करनेके लिए एव पित्तकी अधिकता एव रक्तोद्वेगको नष्ट करके तथा मिचली एव कै बन्द करनेके लिए हुम्माज उत्रुज खिलाते हैं। इसे झाईं और दद्रुपर लगाते है। उष्ण हृत्स्पन्दनको दूर करने और हृदय एव यकृदामाशयको बल देनेके लिए इसका मुरब्बा खिलाते है। महामारीके काल-में इसका खाना गुणदायक है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालोके मस्तिष्क एवं यकृत्को। निवारण–मधु और काली-मिर्च। प्रतिनिधि–नीबू और करना (नारज)।

विजीरेका छिलका—

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क, मतातरसे दूसरेमें खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—उत्तमागबलदायक, दीपन, वातानुलोमन, आहारपाचन, उत्क्लेशहर और विसू-चिकाके लिए अगद है। हृदय, मस्तिष्क, यकृत् और आमाशयको बलदेनेको विजौरेके छिलकेको साधारणतया उपयुक्त औषधियोके साथ खिलाते हैं। आहारपाचन और वातनाशनके लिए अग्निमाद्य एव उदरशूलमें इसका सेवन करते है। विसूचिकामें उपयुक्त औषधियोके साथ इसे देते है। यह मिचली और कै को शात करता तथा आमाशयको शक्ति देता है। अहितकर–शिर शूल उत्पन्न करता है। निवारण–शहद। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

बीज—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क, मतातरसे दूसरे दर्जेमे गरम और पहलेमें खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, आर्तवजनन और विशेषत विपोका अगद है। बिच्छू और सांप का विप दूर करनेके लिए इसे (तुख्म तुरज) को खिलाते है और लगाते है। यह बिच्छूके विषके लिए विशेष गुण-

दायक है। श्वयथुविलयनके लिए इसका लेप लगाते हैं और आर्तवजननके लिए भी देते हैं। अहितकर–उष्णप्रकृति मे शिर शूल उत्पन्न करता है। निवारण–शहद और बनफ्शा। प्रतिनिधि–करनाके बीज। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बिजौरा अम्ल, लघु, दीपन, हृद्य और वमनको बन्द करनेवाला है। (च०सू०अ०४, २७, सु० सू० अ० ४६)। शूल अरुचि, विबन्ध, मदाग्नि, मदात्य, हिक्का श्वास, कास, वमन, गुल्म, अर्श तथा पुरीष (मल), वात और कफके रोगोमें बिजौराका कशर दिया जाता है (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)। यह मेध्य, दीपन, लघु और ग्राही है। बिजौरेकी फलत्वक्–तिक्त, दुर्जर तथा वात, कृमि और कफका नाश करनेवाली है। (सु० सू० अ० ४६)। बिजौरेका मांस–मधुर शीतवीर्य गुरु, स्निग्ध तथा वात और पित्तका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। शूल, अजीर्ण, विबन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि तथा कफ और वातके विकारोमे बिजौरेका रस दिया जाता है (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—बिजौरेका रस शोणितास्थापन और दीपन-पाचन है। छाल सुगन्धित और कटुपौष्टिक है। पत्र स्वेदजनन और वेदनास्थापन है। फल मृदु स्वप्नजनन (निद्राकारक) है। मूल ग्राही और थोडा वेदनास्थापन है।

●

(४५५) बिदारीकंद

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family . Leguminocae)

नाम—(हिं०) बिलाईकन्द, पतालकोंहडा, भुँई कोहडा (कोहला); (सं०) विदारी, विदारीकन्द, भूमिकूष्माण्ड; (ब०) भूँई कुमडा, (गु०) खाखरवेल, फगियो, फगडानो वेलो, विदारीकन्द, (म०) भुई कोहला, वेदर, (खर०) पताल कोहडा, (ते०) नेल्ल गुम्मुडु, (मल०) मुक्षुकु, (जम्मू) सियालिया, (मा०) घोडवेल; (ले०) पुएरारिआ ट्यूबेरोसा–(**Pueraria tuberosa**)।

उत्पत्तिस्थान—कोकड, कनाडा, हिमालय, नैपाल, उडीसा, बिहार और उत्तरप्रदेशकी पहाडियोमें इसकी बेल मिलती है।

वर्णन—यह एक त्रिपत्र वृक्षाश्रयी बड़ी लताके प्राय गोल, बहुत बडे सनाल कन्द है, जो देखनेमें सूरनसे मिलते-जुलते, कभी-कभी ४५ सें० मी० (१½ फुट)लम्बे और ३० सें० मी० (एक फुट) तक मोटे और ७५ सें०मी० (२½ फुट) तकके घेरेमे होते है। बाजारमें इनको काटकर सुखाई विभिन्न आकार-प्रकारकी पतली चपटी सफेद पपडियाँ विदारीकन्दके नामसे मिलती है। स्वाद मीठा कुछ-कुछ मुलेठीकासा तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है। क्षीरविदारी इसका एक भेद है।

उपयुक्त अग—कद।

रासायनिक सगठन—इसमे पुष्कल पिष्ट, शर्करा १० प्रतिशत और अल्प प्रमाणमे आनुलोमिक राल है।

प्रकृति—गरम और खुश्क। आयुर्वेदमें शीतवीर्य (शीतवीर्य (सु०) एव स्निग्ध (रा०नि०) लिखा है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टि(सान्द्र)कर, वाजीकर, श्वयथुविलयन और विशेषकर दीपन है। विदारी-कन्द अधिकतया तरकारी बनाकर खाया जाता है। यह अत्यन्त पुष्टिकर और समस्त अगोको शक्ति देता है। इसको सुखानेके बाद अकेला या अन्य उपयुक्त औषधियोमे साथ चूर्ण बनाकर शुक्रमेह और नपुसक रोगीको खिलाते

हैं। श्वयथुविलयनके लिए इसे जलमें पीसकर लेप करते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशे से ६ माशे) तक। जरासे घीमें सेंक, दूध और मिश्री मिला, पेय बनाकर देना चाहिए।

आयुर्वेदीय मत—विदारीकन्द मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, बृंहण, बल्य, कण्ठ्य (स्वर्य), वर्ण्य, स्नेहोपग, पित्तशमन, स्तन्यजनन, वृष्य, मूत्रल, जीवनीय, रसायन, कफकर तथा वात, पित्त, रक्तविकार और दाहको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८, ३९, ४६, रा०नि०, ध० नि, भा० प्र०)।

नव्यमत—यह उष्ण, स्तन्यजनन, मूत्रजन, उत्तम पौष्टिक, आनुलोमिक, पित्तसारक और स्नेहन है। इससे भूख लगती है, अन्न पचता तथा दस्त साफ होता है एवं शरीरका वर्ण सुधरता है और वजन बढता है। इससे कॉड-लिवर ऑयलसे भी उत्तम कार्य होता है। शारीरिक अथवा मानसिक कारणोंसे जब शिथिलता आई हो और वजन कम हुआ हो तब विदारीकन्द देते हैं। इससे पित्तका स्राव ठीक होता है और दस्त साफ आता है। दूध बढानेके लिए इसे द्राक्षासवके साथ देते हैं।

•

(४५६) विधारा

फैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) विधारा, (अ०) शारफ, (सं०) वृद्धदारु, छगलान्त्री, (ले०) ईपोमेआ पेटालोइडेआ **Ipomoea petaloidea** Chois (पर्याय—*Operculina petaloidea* Chois)।

वक्तव्य—यद्यपि यूनानियोंने शारफका स्वाद कटुत्वरहित (बेहिद्दत) और आयुर्वेदज्ञोंने वृद्धदारुका स्वाद कटु-तिक्त-कषाय लिखा है, जिसके आधारपर दोनोंको अभिन्न मानना आपत्तिहीन नहीं प्रतीत होता, तथापि यूनानियोंने एक स्वरसे इन दोनोंको एक माना है। अतएव यहाँ भी इसी विचारधारासे सहमत होते हुए ही इसका वर्णन किया गया है। चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओंमें तो 'वृद्धदारु' शब्दका उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु मध्यकालीन टीकाकारोंने जिस द्रव्यको विधारा माना है, वह त्रिवृत् या निशोथ जैसी रेचक गुणवाली प्रतीत होती है और पाठमें उसका उल्लेख भी रेचक ओषधियोंके (अधोभागहर)के गणमें मिलता है (इसका विस्तृत विवेचन सहायक लेखक डा० आर० एस० सिंह द्वारा शोधपत्रमें, जो जर्नल ऑफ रिसर्च इन इण्डियन मेडिसिनमें छप चुका है, किया जा चुका है)। इसी विचारधाराका प्रभाव भारतीय मुसलमान यूनानी निघण्टुकारोंपर भी पड़ा प्रतीत होता है। अस्तु तालीफ़शरीफ़ी, मख़्ज़नुल् अद्‌विया, मुहीत आज़म एवं ख़ज़ाइनुल् अद्‌विया आदि यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोंके परिशीलनमें यही प्रतीत होता है, कि उन्होंने विधारा (शारफ)को निशोथ (तुर्बुद = त्रिवृत्)की ही एक जातिकी ओषधि माना है। मध्यकालीन युगमें यूनानी चिकित्सकों द्वारा विधाराकी प्रसिद्धि एक वाजीकर ओषधिके रूपमें हुई, जो उत्तर भारतमें विशेषत पंजाब एवं उत्तरप्रदेश आदिमें अभी भी है। वाराणसी, चुनार, इलाहाबाद एवं कानपुर आदि विधाराके क्रय-विक्रयके अभी भी महत्त्वपूर्ण बाजार हैं। मिर्जापुर एवं चित्रकूट आदि विन्ध्यक्षेत्रोंसे प्राप्त विधारा भी निशोथकी ही जातिकी एक लताके काण्ड एवं जड़ होते हैं। अतएव इन तथ्योंके ऊहापोहसे इसीको विधारा मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषत मिर्जापुर, इलाहाबाद, चित्रकूट तथा कानपुर आदिके जंगली क्षेत्रोंमें इसकी लतायें होती हैं।

वर्णन—निशोथजातीय एक लता, जो प्राय अतिविस्तृत एव काष्ठीय होती है। काण्ड मसृण और उसपर २-४ उभरी हुई रेखाएँ अथवा धारायें होती है। नीचेकी पत्तियाँ लट्वाकार, प्राय १५ से०मी० × १३ सें०मी० बडी, सवृन्त (वृन्त ५ से०मी० से ७½ से०मी० (२ से ३ इच) लबे) और ऊपरकी पत्तियाँ लट्वाकार से प्रासवत्से प्रासवत्-आयताकार ३ ७५ से०मी० से ७ ५ से०मी० (१ ५ इचसे ३ इच) बडी, चिकनी और रक्ताभ तथा दृढमध्यपर्शुकवाली होती है। पुष्प लगभग ३ ५ से०मी० (१ ५ इच) लबे, न्यूनाधिक पीले (कभी-कभी श्वेत भी) हल्ले रोमश होते है। पुष्पकाल मार्चसे मई तक (कभी कुछ पहले भी)। पत्राग्र द्वि-विभक्त या कुण्ठितरोमश होता है। फल (Capsule) १ ५ स०मी० (० ६ इच), अडाकार (Ovoid), फलत्वक् पतला और चारफाँकवाला, और भीतर दो-गह्वरयुक्त होते है। बीज सूक्ष्म मखमली होता है। फलनेका समय अप्रैल से जून तक होता है। इलाहाबाद तथा वाराणसीके बाजारोमे मुख्यत इसीके मूल तथा काण्ड (दुग्ध युक्त) विधाराके नामसे व्यवहृत होते है। बाजारमे इसके विभिन्न आकार-प्रकारके काटकर सुखाये हुए टुकडे मिलते है, जो बाह्यत खाकी या भूरे, हल्के और मुलेठीके बराबर मोटे होते है। इनके कटे हुए भागपर गोदकी तरह एक चीज (जमा हुआ दूध Resinous latex) लगी होती है। स्वाद मामूली कडुआहट लिए फीका होता है। इसका ५-६ ग्राम चूर्ण फाँकनेसे विनाकष्टके ४-५ पतले दस्त आ जाते है। यह खानेमे बुरा भी नही लगता। इसका कार्मुक वीर्य विशेपकर इसकी मूलत्वक् एव काण्डत्वक्मे होता है।

योग—हब्ब असगध (बयाजकबीर)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद मतानुसार उष्णवीर्य (कै०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सारक, श्वयथुविलयन, वाजीकर और जलीय श्लेष्म विरेचनीय है। अधिकतया शीतल कफरोगो, जैसे–आमवात, वातरक्त और जलोदरमे इसका उपयोग करते है। अहितकर–उष्ण-प्रकृतिको। निवारण–आलूबोखारेका जुलाल। प्रतिनिधि–निसोथ। मात्रा–३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशासे ६ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—विधारा कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, रसायन, सारक, शुक्र-आयु-बल-मेधा-जठराग्नि-स्वर और कान्ति देनेवाला तथा शोथ, आमवात, वातरक्त, व्रण, प्रमेह और कफको दूर करनेवाला है। (सु०सू० अ० ३९, कै०नि०)।

विधाराकी जडका चूर्ण ३-६ माशा देनेसे दस्त साफ होता है। समभाग विधारा और असगधका चूर्ण ३ माशा दूधके साथ खानेसे श्वेतप्रदर और शुक्रदोष मिटता है।

●

(४५७) बिन्ताफलु(लू)न

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(अ०) बिन्ताफुलुन(फ़लून), बिन्तातूस, ज़ूख़म्सतेल औराक, ज़ूख़म्सतेअक्साम, (लै०) पोटेन्टिल्ला टोर्मेन्टिल्ला (**Potentilla tormentilla** Neck), (अं०) सेप्टफोइल (Septfoil), टोर्मेन्टिल्ला (Tormentilla)।

वक्तव्य—'बिन्ताफ़लुन' यूनानी 'पेन्टाफाइल्लोन (Pentaphyllon)' से, जिसका अर्थ "पचपत्र" है, अरबी बनाया गया है। 'ज़ूख़म्सतेल औराक़' अरबीशब्द इसका भाषान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, ग्रेट-ब्रिटेन। यह तरभूमिमे तथा नदियोके किनारे होता है।

वर्णन—एक छोटा क्षुप, जिसमे ४५ से० मी० से ६७ से० मी० (२-३ बित्ता) लम्बी और पतली शाखायें (Stalks) होती है। प्रत्येक शाखाके सिरेपर पाँच-पाँच पत्ते लगे होते हैं। कभी-कभी पत्ते अधिक भी तथा दो तरफ होते हैं। पत्र लम्बे और सकुचित, 'नाना'के पत्रके समान, पत्रप्रात सिरेपर दंतुर होते हैं। पुष्प चार पखुडीयुक्त, छोटे और रङ्गमे पीले होते हैं। जड़ मटमैले भूरे रङ्गकी, कठिन, रम्भाकार, अग्रकी ओर सहसा गोपुच्छाकार (Tapering) टुकडोके रूपमे, धरातलपर खुरदरी, अनियमित गोलाकार उभारो और क्षतचिह्नजन्य खातो (Scars)-से युक्त होती हैं। उक्त मूलपर टूटे हुये महीन, पतले आकारके (Filiform) उपमूलोके चिह्न भी होते हैं। टूटे हुये तल अन्दरसे हलका भूरापन लिये लाल होते है, जिनमें अन्दरकी ओर चौडी मज्जा (Pith) का भाग होता है, जिसके चारो ओर काष्ठीय पूलो (Wood bundles)का विच्छिन्न एक या दो वृत्त होते हैं। इस प्रजातिकी कतिपय जातियाँ (Species), जैसे पो० रेप्टास (P. reptans L) तथा पो० सुपीना (P. supina L) भारतवर्षमे होती हैं, जो इसका उत्तम प्रतिनिधि हो सकती हैं। किसी-किसीने इसे भ्रमवश 'हुल्हुल' माना है, जो इसका प्रतिनिधि भले ही हो सकता है किन्तु वास्तविक द्रव्य नही।

रासायनिक सगठन—जडमें टार्मेनोल (Tormenol) नामक सत्व होता है।

उपयुक्त अग—साधारणतया जड़, पर कभी-कभी क्षुप।

कल्प—प्रवाहीसार मात्रा २ मि० लि० से ४ मि० लि० (½ ड्राम से १ ड्राम)। फाण्ट · (१ पाइण्ट उबलने हुये जल में २½ तोला) मात्रा-सुरापानग्लासभर या आवश्यकतानुसार, द्रव (Lotion) आदि।

प्रकृति—समशीतोष्णताके निकट और तीसरे दर्जेमें रूक्ष; मतातरसे दूसरे दर्जेमे गरम।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह प्रवल मूत्रजनन, वस्तिवृक्काश्मरिछेदक, नि सारक और उदरकृमिनाशम हैं। इसके पत्ते पीसकर पीनेसे श्वित्रका नाश होता है। नमकके साथ इसके पत्ते पीनेसे जलोदर, शूल और वायुका नाश होता है। इसके पत्तोका रस लेकर तीन बूँद कोष्णकानमे टपकानेसे कानका दर्द जाता रहता है और फोडिया फूट जाती है। इसका एक पत्ता और धतूरेका एक पत्ता चौथियाके रोगीको खिलानेसे एक वारमे लाभ हो जाता है। ऐसा भी करते हैं कि इसके पत्तोके बराबर कालीमिर्च लेकर दोनोको पीसकर मुद्गप्रमाणकी गोलियाँ बनाकर चार-दिन तक एक-एक गोली खिलाते है। इसके क्षुपको घोट-पीसकर पीनेसे आतशक आराम हो जाता है। इसके काढेसे गुदप्रक्षालन करने और गुदापर तरेडा देनेसे ववासीरके मस्से ठीक हो जाते हैं और बवासीरका खून बन्द हो जाता है। विषो और साघातिक औषधियोका अगद है। इसके पत्ताके काढेकी कुल्लीसे दन्तशूल और गलेकी कर्कशता (खरखराहट) जाती रहती है। जडको सिरकेमें पकाकर लेप करनेसे कण्ठमाला, कठिन एव कफज शोथ विलीन हो जाते है और कक्षारूप फुन्सियोका जिसे मकडी मूतना (नमूला) भी कहते है प्रसार रुक जाता है। पुरानी मृगीमें इसके पत्तोको शरावके साथ एक मास पर्यन्त पीनेसे उपकार होता है। इसके पत्तोको सुखा-पीसकर सद्य जात क्षतो-पर छिडकनेसे वे भर जाते है। नासूरमें इसका लेप उपकारी है। अवरोधजन्य कामलामें ९ या १० रत्ती इसके पत्तोका रस पीनेसे लाभ होता है। इसके खानेसे वाह्याभ्यन्तरित रक्तस्राव बन्द होता है। शय्यापर इसके पत्ते बिछा-कर सोनेसे नीदमें शुक्रक्षरण (स्वप्नदोष) नही होता। जलवृषणमें इसका सेवन गुणकारी है। अहितकर-आमा-शयको। निवारण-सिकजबीन। प्रतिनिधि-प्रतिविष या अगद रूपमें उस्कूलूकन्दरयून और मृगीमें जमुर्रद। मात्रा-३ ५ से १० ५ ग्राम (३½ माशेसे १०½ माशे) तक।

नव्यमत—बल्य और कषाय। जड अपेक्षाकृत अधिक बलवती होती है। इसका पुष्कल उपयोग होता है और अन्त्रशैथिल्य, अतिसार, विसूचिका आदिके सभी रोगी (Case) में इसका उपयोग किया जा सकता है। पुराने घावो तथा व्रणोके लिये इससे बने द्रवका धावन रूपमें प्रयोग होता है। कटे हुये स्थानो, घावो आदिमें इसका प्रवाही-सार रक्त स्तम्भनका कार्य करता है। इस जडकी गणना सर्वाधिक वीर्यवान् एव निरापद कषायोमें की जा सकती है। (पा० सा०)।

(४५८) बिल्लीलोटन

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) बिल्लीलोटन, (यू०) (Mellisophullon D 3 108), (अ०) अल्वादरञ्जबूया, अल्व-कल्तुल् उत्रुजिया, हबक रैहानी (इ० बै० सचिका १, पृ० ७३), मुफर्रेहुल्कल्ब, बादरंजबूया; (फा०) बादरंगबूया (नारगगन्धी), (ले०) मेलीस्सा आफ्फीसिनालिस (Melissa officinalis Linn), (अं०) अरेबियन या जेन्टिल बॉम (Arabian or Gentle balm), स्वीट या लेमन बॉम (Sweet or Lemon balm) बॉम (Bawm), बाम (Balm)।

वक्तव्य—अरबी 'वादरजबूया', फारसी 'वादरगबूया (वादरग = तुरंज; बूय = गंधावाली)' से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य एशिया विशेषत फारस, यूरोप और उत्तर अमरीका। भारतवर्षमे इसका आयात फारससे होता है।

वक्तव्य—इसकी एक भारतीय जाति भी है, जिसको मेलीस्सा पार्वीफ्लोरा (M. parviflora Benth) कहते है। यह समशीतोष्ण हिमालयमे गढवालसे सिक्किम और खसियाकी पहाडियोमें होती है। पजाबमें इसको औषधिके काममे लेते है। अपने यहाँ होने वाली नीलेफूलके बिल्लीलोटनको लेटिनमे नेपेटा हिन्दोस्ताना (Nepeta hindostana Haines) या नेपेटा रूडेरालिस (N ruderalis Hook.) कहते है। यह अफगानिस्तान, पजाब, बगाल, मध्यभारत तथा दक्षिणभारतमे होती है। इसका एक भेद और है, जिसका फूल सफेद और पत्र लबोतरा होता है। कश्मीर आदि हिमालयके पहाडोमें होनेवाला बिल्लीलोटन इसी कुलकी भिन्न वनस्पतिका नाम है। मैदानोमे कुछ लोग इसे ही बिल्लीलोटन कहते है।

वर्णन—बाजारमें मिलनेवाले विदेशी द्रव्यमे जो अत्यन्त टूटी-फूटी अवस्थामे होती है, प्रधानत इसके काड जो चौकोर, जूफासे अधिक बडे और कुछ-कुछ नीली झाईंयुक्त होते है, तथा फल होते है। पत्र आमने-सामने अंडाकृति, सवृत, १½ इच लम्बा, पतला, पत्रप्रात गम्भीर दतित, रोमयुक्त, कटोरी (पुष्प वाह्यावरणकोष) धारीदार, रोमयुक्त, पचविभागयुक्त, जुफाए याबिसके इतनी लबी नही और रगविरहित, बीज ४, नग्न, भूरे, तिकोने, लगभग मसृण, हिलम (Hilum) के प्रत्येक पार्श्वपर सफेद धब्बायुक्त, फूल अक्षकोणीय, लगभग ६ फूल एक स्तवकमे और क्षुद्रवृतपर स्थित होते है। स्वाद तिक्त, गध मद सुगधयुक्त। ताजे क्षुपसे विरोजेकी तरह मनोरम सुगन्ध आती है, इसलिए इसको बादरजबूया कहते है। सूखे क्षुपपर उक्त सुगध नही होती। इस क्षुपकी गधपर बिल्ली मोहित होती है। जब उसको देख लेती है तब मस्त होकर मारे खुशीके उसपर लोटने लगती है। इसीलिए इसको बिल्लीलोटन कहते है।

रासायनिक सगठन—पत्रमे अन्य उपादानोके अतिरिक्त स्वल्पप्रमाणमें कषायद्रव्य (Tannins), एक तिक्त-वीर्य और लगभग १/८ से १/४ प्रतिशत रंगरहित या कुछ-कुछ पीला उत्पत् तेल होता है। तेलमे स्टियरोप्टीन होती है।

उपयुक्त अग—क्षुप (पचाग)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, सौदापाचन, रक्तप्रसादन, मुखदौर्गन्ध्यहर, श्वयथु-विलयन एवं उष्णताजनन है और विशेषकर सौमनस्यजनन तथा बलवर्धनके लिए प्रयुक्त होता है। अधिकतया अपस्मार,

पक्षवध और अर्दित आदि सरीखे सौदा एव कफजन्य रोगोमें तथा हृदयबलवर्धन एवं सौमनस्यजननके लिए बिल्लीलोटनका उपयोग करते हैं। आमवात और स्तनशोथपर इसका लेप लगाते हैं। मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसे मुखमे चबाते हैं। सौदा और कफके रोगोमे इसका शर्बत और अर्क प्रयुक्त होता है। अहितकर–पार्श्वगत रोगोमें इसका उपयोग अहितकर है। निवारण–कुदुर और बबूलका गोद। प्रतिनिधि–अवरेशम। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

नव्यमत–वातानुलोमन, स्वेदल, ज्वरहर। यह हलका स्वेदप्रवर्तन करता और ज्वररोगियो के लिये सुरुचिपूर्ण एव शीतल चायका काम देता है। यह हृदय और मनको प्रफुल्लित करता है और मालिनखोलिया (मद) या कृष्ण पित्त अर्थात् सौदाजन्य दुःखदायिनी चिंता और कुविचारोको दूर भगाता है तथा हृदयको निद्राभिभूत जैसी मूर्छा एव सम्मोह आदिमे पुनर्जीवित करता है।

●

(४५९) बिसखपरा

फेमिली-फीकोइडे (Family Ficoideae)

नाम—(हिं०) बिसखपरा, पथरी, पाथ्री, (अ०) हन्दकूका, (फा०) इस्पिस्त, (पं०) विशकाप्रा, (मला०) चरण, (ते०) गलिजेरु, (क०) विलेगणजलि, (स०) वर्षाभू, वसुक, (म०) पाढरी वसु, खापरा, (गु०) श्वेत-साटोडी, वसेडो, (कों०) कोचोआ, (लें०) ट्रिआथेमा पोर्टूलाकास्ट्रुम **Trianthema portulacastrum** Linn (पर्याय–*T monogyna* L)।

वक्तव्य—राजनिघण्टुकारने 'वर्षाभू' और 'वसुक' के नामोसे इसकी दो जातियो (Species) का उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष। चौमासेमें इसके स्वयजात पौधे घासको भाँति प्रचुरतासे पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक मासल प्रसरणशील, द्विविभक्त शाखाओ वाली क्षुद्र वनस्पति है, जो बरसातमे निकलती है, और शीतकाल तक सूख जाती है। पत्तियाँ प्राय अभिमुख, परतु हरएक जोडेमें एक छोटी और दूसरी बडी (पुनर्नवा की तरह) होती हैं। रूपरेखामें पत्तियाँ अधिलट्वाकार या अण्डाकार और प्राय लाल एव लहरदार तट (Margin) वाली होती हैं। द्विविभक्त शाखाओके बीचसे एकाकी, श्वेत या गुलाबी रगके फूल निकलते हैं। इस विचारसे सफेद और गुलाबी इसके यह २ भेद होते हैं। यह वनस्पति प्राय चौमासेमें सर्वत्र पायी जाती है। पत्तोका शाक होता है। अनेक स्थानके वैद्य इसे ही 'पुनर्नवा' और कुछ इसे 'श्वेतपुनर्नवा' मानते हैं। परन्तु यह ठीक नही है। पुनर्नवा इससे भिन्न वनस्पति हे। दोनोके रूप और गुणोमें बहुत कुछ साम्य होता है। इससे यह गडबडी हुई, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकारका भ्रामक उल्लेख भारतीय औषधीय वनस्पतियोपर अंग्रेजीमे लिखे आधुनिक ग्रन्थोमे भी प्राय मिलता है।

उपयुक्त अग—पत्र, बीज और मूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (सु०) एव रूक्ष (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रार्तवजनन, लेखन, श्लेष्मनिसारक, श्वयथुविलयन, ज्वरघ्न और वृश्चिक विषनाशन है। बीज (तुख्म विषखपरा) वाजीकर और वातानुलोमन है। बद्धमूत्रको खोलनेके लिए ताजे विषखपरेका स्वरस निकालकर गोदुग्धमे मिलाकर पिलाते हैं और जलोदर, कामला तथा विवधयुक्त अतिसारमें इसे बिना

दूधके उपयोग करते हैं। यकृत्प्लीहाकी कठोरता और बस्तिवृक्काश्मरीको दूर करनेके लिए भी इसका उपयोग ६ हैं। जाला एव फूलीमें विषखपरेकी जडको जलमें घिसकर सलाईसे लगाते हैं। नारुवा, फोडा और ग्रीवा शोथमें त विषखपरेकी जडको पीसकर लगाते तथा श्वास और कासमें उपयोग करते हैं। इसे सौदा और कफजन्य ्रि ज्वरमें खिलाते हैं। बिच्छूका जहर नष्ट करनेके लिए विसखपराको कूटकर काटे हुए स्थानपर बाँधते हैं। जड जलमें घिसकर पतला लेप करते हैं। इसके बीजोको वाजीकर माजूनोमें डालकर खिलाते हैं। अहितकर ्ा लिए। निवारण—काहू, कतीरा और शहद। मात्रा—पत्र स्वरस ६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशेसे १ तोला) तक, ज ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक और बीज २ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—विसखपरा (वर्षाभू और वसुक) मधुर, तिक्त, कषाय, कटु, क्षारयुक्त, उष्णवीर्य, ो रूक्ष, रुचिकर, सारक, हृदयको हितकारी तथा वात, कफ, अर्श, व्रण, पाण्डु, विष और उदररोगको नाश करने वाला है। (रा० नि०, ग० नि०)।

●

(४६०) बिही

फैमिली रोजासे (Family Rosaceae)

नाम। फल (हिं०) बिही, बीहि, कश्मीरकी नासपाती, (यू०) क्राइसोमिलिआ, किडोनिआ, (अ०) सफरजल (फा०) बि(बे)ह, बिही, आबी, तौज, (खुरासान) बिही, (क०) वमचूठ, वमसुतु, वम्सुंत, (म०) बीहि, (अं० क्विन्स (Quince)। बीज (हिं०) बिहीदाना, बेहदाना, (अ०) हब्बुस्सफरजल, (फा०) बिहीदाना, बेहदान, तु० आबी, (गु०) मुगलाइ बेदाणा, (म०) बिहीदाणा, मोगली बेदाणा, (अं०) क्विन्स सीड (Quince Seed)।

वक्तव्य—वृक्षको लेटिनमें पीरुस सीडोनिया **Pyrus cydonia** Linn. (पर्याय—सीडोनिआ वुल्गै *Cydonia vulgaris* Pers, सीडोनिया ओबलांगाटा **C oblongata** Mill) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, अफगानिस्तान काबुल और पेशावर तथा उत्तर-पश्चिम भारतवर्षके कश्मीर पजाब आदि प्रदेश। अधिकतया काबुलसे इसके फल यहाँ आते हैं।

वर्णन—यह एक छोटे वृक्ष वा झाडका प्रसिद्ध फल है, जो सेव या (नाशपाती), अमरूदसे मिलता-जुलत उसकी आकृतिका, पकनेपर सुनहले पीले रगका, मनोहर सुगन्धयुक्त और खानेमें बहुत स्वादिष्ट होता है। मी खट्टा और खटमिट्ठा भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। बिहीदाना इसीके बीज हैं, जो लगभग ६ २५ मि० मी (¼ इच) लम्बे, अण्डाकृति या लबगोल, त्रिकोणाकृति अर्थात् तीन तरफसे दबे हुए होते हैं। और उनपर सफेद पिच्छिल (लबाबदार) द्रव्य लगा हुआ होता है, जिसके कारण ये बीज एक दूसरेसे चिमटे हुए होते हैं रगत ललाई लिए भूरी होती है। जलमें डालनेसे बीज फूल आते हैं और एक प्रकारका फीका लबाब (म्युः बना देते हैं। ये ईरान, कश्मीर आदिसे यहाँ आते हैं।

रासायनिक सगठन—बीजमें साइडोनिन (Cydonin) नामक एक विशिष्ट प्रकारका लबाब (- होता है। ताजे बीजमें एक पीला एव बादामके तेल जैसा मदगन्धी तैल १५ ३ प्रतिशत होता है। ल्व व निर्यास और लबाब मिले हुए पाये जाते हैं। बीजकी राखमें जवाखार, सज्जीखार, मैग्नीसिया तथा कैल्सियम भी द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और बीज।

कल्प तथा योग—जुवारिश सफरजली काबिज वा मुसहिल, मुरब्बा बिही, हुब्बबिहीदाना, रुब्ब बिही, लऊक बिहीदाना (जदीद), शर्वत बिहीदाना।

फल—

प्रकृति—मीठी बिही अनुष्णाशीत (गरमी और सरदीमें सम) और पहले दर्जेमें तर है। खट्टी बिही पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदयमस्तिष्कबलवर्धन, यकृदामाशयबलदायक, सग्राही और मूत्रजनन है। मेवाकी भाँति बिही पुष्कल खाई जाती है। यह भारी एव काबिज है। हृदय और मस्तिष्कको उल्लास एव शक्ति पहुँचाती और उष्णप्रकृतिवालोके लिए सात्म्य है। हृदयदौर्बल्य, उष्ण हृत्स्पदन, पित्तातिसार और यकृदामाशयका सताप शमन करनेके लिए इसका शर्वत, रुब्ब (सत) और मुरब्बा सेवन कराते है। प्यास, मिचली और कै शान्त करनेके लिए इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोके साथ देते हैं। अहितकर-कास, शूल, हिक्का और कम्पवात उत्पन्न करता है। निवारण—शहद और अनीसूँ। प्रतिनिधि—अमरूद और सेव। मात्रा—१ तोलासे ५ तोले तक।

बिहीदाना—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फिसलानेवाला, पिच्छिलताकारक सतापहर और उष्ण अतिसारमे विशेष गुणदायक है। गरम प्रसेक और प्रतिश्याय, गरम खाँसी कंठकी कर्कशता, जिह्वापाक, उरःक्षत और राजयक्ष्मा, पेचिस, अन्त्रक्षोभ और उष्ण ज्वरोमें विहीदानेका लुआब उपयोग किया जाता है। इसका मग्ज, उरःक्षत और कासमे प्रयुक्त होता है। अहितकर-आमाशयको ढीला एव दुर्बल (मदाग्नि) करनेवाला है। निवारण-चीनी और सौंफ। प्रतिनिधि-इसबगोल। मात्रा-३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

नव्यमत—विहीदानाका लबाव शीतवीर्य, स्नेहन, ग्राही, मूत्रजनन, कफघ्न और पौष्टिक है। राख बल्य है।

●

(४६१) बीजबंद

वर्णन—यह बरियरा(बला)के बीज हैं, जो प्याजके बीजकी तरह तिकोने, खाकसतरी, गहरे भूर या काले रगके होते है। इनका स्वाद फीका और बुरा होता है। प्राय बाजारोमें बीजबन्द मिल जाता है। गुजरातीमें इसे 'बलदाणा' कहते हैं।

वक्तव्य—डीमकके मतसे यह चूका (Rumex)की किसी जातिके बीज है। मुरेके मतसे अजवार जातीय पौधे पोलीगोनुम आवीकुलारे (**Polygonum aviculare** Linn) के बीजको सिन्धमें बीजबद कहते है। सम्भवत इस नामसे इसकी कई जातियोके मिले हुये बीज बाजारमे मिलते हैं, ऐसा डीमकका मत है। अधिकाश लोग बरियारा (बला) के बीजको बीजबद कहते हैं।

कल्प तथा योग—सफूफ बीजबंद।

प्रकृति—पहले दर्जेमे सर्द एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टि (सान्द्र)कर, शुक्रस्तम्भन और वाजीकर। शुक्रमेह, स्वप्नदोष और शुक्र-तारल्य एव शीघ्रपतनको दूर करनेके लिए बीजवदका पुष्कल उपयोग किया जाता है। सफूफ बीजवद इसका प्रसिद्ध योग है, जो उक्त रोगोमें प्रयुक्त होता है। अहितकर—आनाहकारक। निवारण—शुद्ध मधु और मस्तगी। प्रतिनिधि—इमलीके बीज (चीआँ)का मग्ज। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(४६२) बुत्म (बतुम)

फ़ैमिलो आनाकार्डिआसे (Family Anacardiaceae)

नाम। वृक्ष (हिं०) ख(खि)जक, अल्बतुम (इ०वैं०), शज्रुल्बुत्म, बुत्म, (फा०) दरख्ते बुन, (लें०) पीस्टा-सिआ टेरेबींथुस (**Pistacia terebinthus Linn**), (अ०) टेरीबिन्थ या चिआन टर्पेनटाइन ट्री (Terebinth or Chian Turpentine Tree)। फल (हिं०) बुत्मका फल,(अ०)अल् हब्बतुल्ख(खि)जरा (इ० वैं० सचिका २/५), हब्बुल्बन, हब्बुल्बुत्म, (फा०) बुन, दंदान, सब्जदाना। पत्रपर बनी गाँठें अर्थात् कृमिगृह या गॉल्स (Galls)—(फा०, हिं०, द०) गुलेपिस्ता, (बम्ब०) बूज़गज। रालदारगोद (हिं०) बुत्मका गोद, खिजक, काबुली(बम्बईकी)मस्तगी, (अ०) इलकुल् बुत्म, (अ०) बॉम्बे या काबुल मैस्टिक (Bombay or Kabuli Mastich)।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, अफगानिस्तान, काबुल, अफरीका और यूरोप।

वर्णन—यह एक बडे वृक्षका हरे रगका फल है। इसे हब्बतुल्खिज़रा कहते हैं। इसके तोडनेपर अन्दरसे पिस्तई रगका चपटासा मग्ज निकलता है, जो खानेमे स्वादिष्ट होता है। इसे मग्ज तुख्मबुत्म कहते हैं। इसको दबाकर तेल निकाला जाता है।

उपयुक्त अग—फल (बीज का मग्ज़), इससे निकाला हुआ तेल, गोद(काबुली मस्तगी), गुलेपिस्ता—यह सभी औषध्यर्थ व्यवहृत होते हैं।

कल्प तथा योग—लऊक इलकुल् अबात।

फल—

प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष (मतातरसे तीसरे दर्जे मे)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, श्लेष्मनिस्सारक, सर, लेखन और मूत्रार्तवजनन। हब्बतुल्खिजराको अधिकतया वाजीकर माजूनकल्पोमें डालकर नपुसक रोगियोको खिलाते हैं। चेहरेका रग निखारने, दद्रु, झाइँ और छीप जैसे त्वचाके रोगोके नष्ट करनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। कास और श्वासमे कफको कफमे शुद्ध करनेके लिए तथा बैठी हुई आवाजको खोलनेके लिए इसको खिलाते हैं। अहितकर—मस्तिष्क और आमाशयको। निवारण—कतीरा, बनफ्शा और अर्क गुलाब। प्रतिनिधि—तरबूजके बीज, कढवे बादाम, अखरोट और पिस्तेका मग्ज़। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(४६३) बूजीदान (वलायती)

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family · Compositae)

नाम—(भा० बाजार) मीठा अकरकरा, वोजीदान, (अ०, फा०) बूजीदान, (लै०) टानासेटुम ऊम्बेल्ली-फेरम् (Tanacetum umbelliferum), (अं०) स्वीट पेलिटरी (Sweet Pellitory)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वीईरान।

वर्णन—यह अकरकराकी जातिके एक क्षुपकी प्रसिद्ध जड़ है जो ६-१० इंच लम्बी उँगलीके बराबर या उससे बड़ी नुकीली, जरा पिलाई लिए हुए असली अकरकराके समान होती है। यह बाहरसे ऊदी रंगवाली, खुर-दरी, टेढ़ी मेढ़ी, फटी हुई, रेखायुक्त, सिकुड़ी हुई, थोड़ा मोड़ते ही टूट जानेवाली, काटनेसे चक्राकार, मध्यमें कुछ लाली लिए हुए होती है। इसकी छाल काष्ठमें चिपकी रहती है। इसमें अकरकरे जैसी, किन्तु उससे मंद सुगंध होती है। यह अकरकरेसे अधिक काष्ठमय एवं सत्वरहित है। इसे मीठा अकरकरा इसलिये नहीं कहते कि यह बहुत मीठी होती है, प्रत्युत इसलिए कि इसमें चरपरा वीर्य अत्यल्प होता है। भारतीय हकीम बूजीदानके नामसे इस जड़को ही औषधिके काममें लेते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें पायरेथ्रिन (Pyrethrin) नामक तीक्ष्ण लालाजनक द्रव्य अकरकरेकी अपे-क्षया अत्यल्प प्रमाणमें होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पित्तविरेचन, वाजीकर, वातनाडी और सन्धिसंशोधन। बूजीदानको वाजीकर चूर्णों तथा माजूनोंमें डालकर उपयोग करते हैं। इसका चूर्ण दूधके साथ सेवन करना वाजीकर एवं पुष्टिकर है। वातनाडियों और सन्धियोंको गाढ़े दोषोंसे शुद्ध करनेके कारण यह आमवात तथा वातरक्तमें लाभ पहुँचाती है। अहितकर—वृषणोंके लिये। निवारण—खालिस शहद और राई। प्रतिनिधि—सफेद बहमन। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

•

(४६४) बूली(लू)गाली, सनेगा

फैमिली : पॉलीगालासे (Family : Polygalaceae)

नाम—(अ०) बूलीगाली, (यू०) पोलीगाली या पोलीगालोन (Polygalon), सनीगा, (लै०) पॉली-गाला सेनेगा (Polygala senega Linn.); (अं०) सेनेगा (Senega), सेनेका (Seneka), स्नेकरूट (Snake root)। जड़ (अ०) जजरे सनीगा, जजरे बूलीगाली, (लै०) सेनेगा राडिक्स (Senega Radix), (अं०) सेनेगारूट (Senega Root)। वक्तव्य—सेनेगा संज्ञा 'सनीगा' से व्युत्पन्न है, जो एक प्राचीन अमरिकीय जातिका नाम है। इस जातिके लोग इस वनस्पतिका प्रयोग सर्पविषमें करते थे। सुतरां उक्त जातिके नामसे ही यह अभिहित हो गया है। 'बुलीगाली' यूनानी 'पालीगाली' संज्ञाका अरबी रूपान्तर है। पहले इसे 'बोलूगाली' कहते थे। इसीसे मुहीत आजममें 'बोलूगालीन' नामसे उक्त औषधिका संक्षिप्त वर्णन है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी और रूमी हकीमो, यथा–दीसकूरीदूस और प्लाइनी आदि ने 'पौलीगॉलोन' नामसे इसका वर्णन किया है। अरबदेशीय चिकित्सकोंने भी अपनी रचनाओंमें उक्त नामका उल्लेख किया है, जिनमेंसे इब्नवैतारकी एक आदरणीय रचना है, जिनमे दीसकूरीदूस और जाळीनूसके उद्धरण प्रमाणतया प्रतिलिपि किए गये है। अमरीकाके आदिवासी (सनीगा जातीय) सर्पदष्टके श्वासकृच्छ्रकी दशामे इस जडको दिया करते थे। सन् १७३८ ई० में प्रथमत. वक्षरोगोमे उक्त औषधिका प्रयोग किया गया।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमरीका।

वर्णन—जडमें ऊपरकी ओर साधारण एक ग्रन्थिल मुकुट (Knotty crown) या एक विषम चौडी ग्रन्थि होती है, जिससे पतले काण्ड फूटते है, जिनके आधारपर छोटी-छोटी अल्पवर्धित पत्तियोके अवशेष रहे होते है। उक्त जड पतली, हलकी पिलाई लिए भूरे रगकी १/२ से०मी० से ५/६ से०मी० (१/५ इच से १/३ इच) मोटी, ५ से०मी० से १० सें०मी० (२ इच से ४ इच) लम्बी होती है, जिसपर आडेवल वहुत-सी दरारे होती है। अधस्तल नतोदर, गावदुमी और वलदार होता है, जिसपर एक कीलकी तरहका उभार विद्यमान होता है। जडको तोडनेसे वह खटसे टूट जाती है तथा टूटातल सफेदीमायल होता है। स्वाद कटु और किंचित् अम्ल तथा गॉल्थीरियाका स्मरण दिलानेवाला और गध विशिष्ट प्रकारकी होती है। विशेष—आर्निका, वैलेरियन और ग्रीन हेलबौर (खरवक)की जडें इसकी जडके समान होती है। परन्तु इनमेसे किसी जडपर कील जैसा उभार नही होता।

उपयुक्त अग—मूल। मात्रा–० ४ ग्राम से ० ८ ग्राम (३ रत्ती से ६ रत्ती)।

रासायनिक सगठन—इसमे सेनेगिन नामक एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है, जो रचनामे सैपोनिन के सदृश होता है। परन्तु इसकी क्रिया डिजिटेलिस जैसी होती है। यह एक निर्गंध चूर्ण होता है, जिसको सूँघनेसे छीके आने लगती है। स्वाद पहले मधुर, पीछे अत्यन्त अम्ल तथा क्षोभक, जिससे लार वहने लगती है। पानीके साथ मिलकर यह सावुनकी भॉति झाग तथा इमल्सन वनाता है। सेनेगिनके अतिरिक्त दूसरा उपादान पॉलीगैलिक एसिड होता है।

कल्प—प्रवाहीसत्त्व (लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट)। मात्रा–०·३ मि०लि० से १ मि०लि० (५ से १५ वूँद), जडका चूर्ण—मात्रा–० ४ से ० ८ ग्राम (३ रत्ती से ६ रत्ती), टिन्चर सेनेगा (२ मि०लि० से ४ मि०लि० या ३० वूँद से ६० वूँद), फाण्ट (एक पाइट उवलते हुए जलमे २१/२ तोलाका वनाया फाण्ट), मात्रा–चायके १ चम्मच भरसे १ वाइनफुलग्लास।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्वेदल, मूत्रल, वमन, कफोत्सारि, चिरकालीन प्रसेक (Catarrh), कासश्वासहर। क्रूप (Croup)मे भी अतिशय गुणकारी है।

•

(४६५) वेंत

फैमिली . पामासे (Family Palmaceae)

नाम—(हिं०) वें(वेत), (अ०) खेज(खज)रान, (फा०) वेद; (स०) वेत्र, वेत, (मलय०) रोटग, (व, वम्ब०, हि०) चचीवेत, (ले०) कालामुस रोटाग Calamus rotang Linn); (अ०) केन-पाम (Cane-palm), चेयर-वॉटम केन (Chair-bottom cane)।

उत्पत्तिस्थान—बगाल, आसाम, दक्षिण भारत, लका, देहरादूनके पूर्वी भाग, शिवालिकके जगल, नेपाल, कुमायूँ, गढवाल, कर्नाटक आदि ।

वर्णन—इसके पौधे प्राय आरोही और काँटेदार होते है । आरोहणके लिए पत्रदण्ड, पत्राधार अथवा पुष्प-व्यूहसे निकले हुए लवे, काँटेदार और सूत्राकार अवयव (Flagellum) होते है जिनपर टेढे-मेढे काँटे होते है । इसकी कई जातियाँ होती है ।

उपयुक्त अग—जड, पत्र, काष्ठ ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क, वैद्य शीतवीर्य मानते है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके ताजे पत्तो एव लकडीको पानीमे पीसकर पीनेसे रक्तस्राव वद होता और पथरी टूटकर निकल जाती है तथा विकारी अवयवपर दोष नही गिर पाता। इसके ताजे पत्तो एव लकडीके लेपसे सूजन उतर जाती है । इसका यह विशेष प्रभाव है कि इसे कपडोमे रखनेसे दीमक नही लगती । अहितकर–रूक्षता उत्पन्न करती है । निवारण–स्नेह (तेल) । प्रतिनिधि–हरसिंगार । मात्रा–७ ग्राम (७ माशे) ।

आयुर्वेदीय मत—वेंत (वेत्र) कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य तथा वात, पित्त, कफ, दाह, सूजन, अर्श, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, अतिसार, रुधिरविकार, योनिरोग, तृषा, रक्तप्रकोप, व्रण, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ और विषका नाश करनेवाला है । अंकुर–क्षार कटु, उष्णवीर्य, लघु तथा कफवातनाशक है । पत्र–कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, वातकारक, भेदक तथा रुधिरविकार, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है । बीज–स्वादिष्ट, कषाय, अम्ल, रूक्ष, पित्तजनक तथा रक्तविकार और कफका नाश करनेवाला है । वडा वेत—शीतवीर्य तथा भूतबाधा, पित्त, आम और कम्पको दूर करनेवाला है । शेष गुण वेंतके समान है । (नि०र०) ।

नव्यमत—जडका उपयोग जीर्णज्वरोमें होता है । यह सर्पविषका अगद है । पत्रका व्यवहार रक्त और पित्तके रोगोमें होता है । काष्ठ कृमिहर है ।

●

(४६६) बेदमुश्क

फैमिली : सालीकासे (Family : Salicaceae)

नाम—(हिं०, प०) बेदमुश्क, बेदमिश्क, (अ०) अल्-खिलाफ (इ० बै०), खिलाफुल् वलखी, (फा०) बेदे-मुश्क, बेदेवलखी, गुर्बएबेद, मुश्कबेद, (उर्दू) बेदमिश्क, (स०) वेतस, वानीर, गन्धपुष्प, (क०) ब्रेडमुश्क, (पश्तु, अफ०) ख्वगवल, (प०) बेदमुश्क, (का०) मुश्कबेद, (श्याम) शाहवेद, (रू०) बेहरामज, (लै०) सालिक्स काप्रेआ Salix caprea L), (अं०) ब्रॉड-लीव्हड विलो (Broad-leaved Willow), गोट्स सैलो (Goat's Sallow) ।

वक्तव्य—'सफ्साफ' इसकी एक अन्यतम जाति है । (इ० बै० २/६८) । कोई-कोई इसे दीसकूरीदूसोक्त 'सतूबी (Stoibe)' मानते है (D 4 12) । किन्तु इब्नबैतारके मतसे यह प्रमाद है । (इ० बै० ३/१४) ।

उत्पत्तिस्थान—फारस, यूरोप तथा पश्चिमोत्तर भारतवर्ष, विशेषकर कश्मीर और पजाबमे इसकी उपज होती है । इसका प्रत्येक अग पश्चिमोत्तर भारतके बाजारोमें सुलभ है ।

वर्णन—यह वेतस (बेद-Salix)की जातिका और बेदसादाकी तरहका एक क्षुप वा १५ से ३० फुट ऊँचा छोटा वृक्ष है। पत्र एकांतरीय, हरा, लम्बगोल, सपाट, टोकदार और दंतित, पुष्प (Catkins) १-२ इञ्च लम्बा, मोटा, बेलनाकार वा बलूती शकलका, कोई कोई बिल्लीके हाथ जैसा (गुर्बए बेद), चमकीला पीले रंगका और परम सुगन्धित होता है। इसके ऊपर लम्बा-लम्बा रोआं होता है। इसलिए अत्यन्त कोमल मखमली होता है। फूल पत्तोंके निकलनेसे पूर्व ही निकल आता है। मकरंदकोष अजाकृति होता है। छाल बाहरसे बैंगनी भूरी, क्षुद्र पौधेकी सूक्ष्म लोमयुक्त, अन्दरसे सफेद ठोस और ततुयुक्त होती है।

रासायनिक सगठन—इसकी छालमें वेतसीन (जौहर सफसाफ या वेद सफ्साफीन सॅलॉसिन Salicin) नामका एक तिक्त, रेशमकी तरह मुलायम, चमकदार और श्वेत क्रिस्टली ग्लूकोसाइड, टॅनिन (Tannin), मोम, वसा और निर्यास प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अग—फूल जिससे अर्कबेद्मुश्क (माउल्खिलाफ, माउल्बहरामज) तैयार किया जाता है; छाल, पत्र, मधु वा शर्करा (बेद अगबीन) आदि सभी भाग औषधके काममें लिए जाते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें तर। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

कल्प तथा योग—अर्क बेद्मुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, मेध्य, सतापहर, मूत्रल, वेदनास्थापन, विशेषकर शिर. शूलनाशक और हृदयबलदायक है। बेदमुश्कके गुणकर्म तथा इसका रोगोंमें प्रयोग बेदसादाके समान हैं। यह बेदसादासे सभी गुण-कर्मोंमें अधिक बलवान् होता है। हृदय तथा मस्तिष्कको बल और उल्लास प्रदान करता, कोष्ठको मृदु करता, आशयागो (आजाए अह्शाऽ)को शक्ति देता और उष्ण प्रकृतियोंमें वाजीकरण शक्तिको बढाता है। उष्ण शिर शूलको नष्ट करने और हृत्स्पदनके समस्त भेदोको दूर करनेके लिए यह गुणकारी है। उक्त रोगो तथा उष्ण ज्वरोमें इसका अर्क पिलाया जाता है। अहितकर–कटिके लिए। निवारण–अर्कगुलाब और शर्करा। प्रतिनिधि–अर्क बेदसादा और नीलूफर। मात्रा–बेदमुश्कका ताजा रस २ तोलासे ५ तोला तक, अर्क १० तोलेसे १५ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—बेदमुश्क (वेतस, वानीर) स्वादिष्ट, तिक्त, कषाय, चरपरा, शीतवीर्य, रूक्ष, रुचिकारक तथा दाह, शोथ, अर्श, योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, पित्त, रक्तविकार, रक्तपित्त, अश्मरी, व्रण, कफ, भूत (राक्षस-बाधा, ग्रहपीडा), कोढ और वातको दूर करनेवाला है (ध० नि०; रा० नि०, भा० प्र०, नि० र०), दीपन और वातको कुपित करनेवाला है (रा० नि०, नि० र०)।

नव्यमत—बेदमुश्ककी छाल ग्राही, शीतल, ज्वरघ्न और दाहप्रशमन है। फूल रोचक है। छालका काढा और फूलोका अर्क उपयोगमे लेना चाहिए। छालका काढ़ा विषमज्वर, पित्तज्वर, तरुण आमवात और क्षयमें देते है। इससे ज्वरमें दाह और सिरका दर्द, क्षयमे छातीसे रक्त आना और सन्धिवातमे संधिकी सूजन एव पीडा कम होते है। नेत्राभिष्यद और सिरके दर्दमे अर्कबेदमुश्कमे कपडा भिगोकर रखनेसे लाभ होता है।

•

(४६७) वेदसादा

फ़ैमिली : सालीकासे (Family . Salicaceae)

नाम—(अ०) खिलाफ, सफ्साफ; (फा०) वेद, वेदसादा, (स०) जलवेतस, वञ्जुल (च० सू० अ० ४, २५, क० अ० १,८, सि० अ० १०,११), (क०) वीर, वेद, (प०) वेद, (अफगा०) ओला, (म०) वालुज, (लें०) सालिक्स आल्बा (**Salix alba** Linn), (अ०) ह्वाइट विलो (White Willow) ।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके पश्चिमोत्तर भागमें इसे लगाते है। कश्मीर आदिमें नदी-नालोके किनारे इसके आरोपित वृक्ष प्रचुरतासे मिलते है ।

वर्णन—यह वेदमुश्ककी जातिका पर उससे बडा एक वृक्ष है। इसकी लकडी ठोस नही, अपितु कुछ पोली और सफेद होती है। तनेकी छाल भी सफेद होती है। पत्र बारीक-बारीक लगभग २२ सें० मी० से २३ सें० मी० या कम लवे तथा पत्रपृष्ठ सफेद होता है। पत्र निकल चुकनेके बाद वसतऋतुमें इसमें फूल लगते है। फूल पीले, कुछ सुगंधित, वालकी शकलके तथा कोमल मखमली होते है। वेदमुश्क, वेदस्याह अर्थात् सालिक्स नीग्रा (**Salix nigra** Marsh) या ब्लैक विलो (Black Willow)—यह अमेरिकामे होता है। वेदमजनू (सालिक्स टेट्रास्पेर्मा **Salix tetrasperma** Roxb) आदि इसकी अन्य जातियां है ।

• रासायनिक सगठन—इसकी छालमें भी सैलिसिन (Salicin) नामक वीर्य पाया जाता है। मात्रा—० ३ ग्राम से० ०·९ ग्रा० (२½ से ७½ रत्ती) ।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प और छाल। छाल क्वाथके लिए ६ ग्रामसे १२ ग्राम (½-१ तोला) ।

कल्प तथा योग—अर्कवेदसादा, अर्कतपेदिक खासुल्खास। निवारण—अर्कनीलूफर ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द एव खुश्क। फूल पहले दर्जेमें सर्द और दूसरेमे तर है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सतापहर, हृदयवलोल्लासकारक, मूत्रल, वेदनास्थापन और विशेषकर हृद्य, मेध्य (मस्तिष्क वलदायक) तथा उष्णज्वरके लिए गुणकारक है। उष्ण प्रकृतिवालोके लिए यकृत् एव हृदयका सताप और रक्तज एवं पित्तज ज्वरोको दूर करनेके लिए इसके पत्तोकी शय्यापर सोना गुणकारी है। रक्तातिसार वद करनेके लिए इसके ताजे पत्तोका रस पिलाया जाता है और कर्णशूलमें कानमें टपकाया जाता है। यकृदवरोध, कामला और प्लीहाशोथको मिटानेके लिए इसे पिलाते है। इसके ताजे फूल सूँघनेसे मस्तिष्क उल्लसित होता है, और उष्ण शिर शूल नष्ट होता है। अवसादक होनेसे उष्ण हृत्स्पदन, तपेदिक, मसूरिका और उष्ण ज्वरोमें इसका अर्क प्रयुक्त होता है। प्रतिनिधि—अर्कनीलूफर। निवारण—अर्कगुलाव और शर्करा। मात्रा—ताजे पत्तोका रस २ तोलासे ५ तोला तक। अर्क १० तोलासे १५ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत—जलवेतस (वञ्जुल) वेदनास्थापन (च०सू०अ० २५), शीतवीर्य, मलरोधक और वातको कुपित करनेवाला है। (भा० प्र०)। वेदसादा पौष्टिक, ज्वरघ्न और नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक है।

नव्यमत—यह वल्य, नियतकालिकज्वर प्रतिवन्धक और कषाय है। वातरक्त या आमवातिक मूलभूत ज्वरोमे तथा अतिसार एव प्रवाहिकामें भी इसका उपयोग लाभकारी होता है। इसके प्रयोगकी सामान्य विधि काढेके रूपमें दिनमें ३-४ वार शरावकी प्यालीभर (Wineglassful) प्रमाणमे होती है ।

(४६८) बेर

फ़ैमिली : रहाम्नासे (Family : Rhamnaceae)

नाम । वृक्ष (हिं०) बेरी, (अ०)अल्सिद्र (इ० बै०), (फा०) दरख्ते कुनार; (स०) बदरी, (लें०) जीजिफुस् मॉरीटिआना **Zigyphus maritiana** Lamk (पर्याय—जीजिफुस जूजूबा *Z jujuba* (L) Lamk), (अं०) इंडियन जूजुब (Indian Jujube), वाइल्ड जूजुब (Wild Jujube) । फल (हिं०) बेर, (प०, सिं०, ब०) बैर, (अ०) नवक, नबिक, उन्नावे हिंदी, (फा०) कुनार, किनार, (स०) बदर, कोल, बदरी, (ब०) बयर, कूल, वरुई, (प०) सजित, (म०, गु०, बम्ब०) बोर, (अं०) जूजुब फ्रूट (Jujube Fruit), इंडियन प्लम (Indian Plum) । (२) झड़बेर (हिं०, प०) झाडीबेर, झडबेर, जगली बेर, (अ०) गुबैरा, (फा०) सिजद, कुनार दश्ती,(स०) कर्कन्धु, क्षुद्रबदर, भूबदरी, (प०) कोकन बेर, (ब०) वन कूल, लता वरुई, (गु०) चणी बोर, (मा०) चणीया बोर, (म०) जंगली बहेर, जगर, (अं०) वाइल्ड जूजुब (Wild Jujube) । इसके क्षुपको झड़बेरी, अरबीमें ज़ाल (र) और लेटिनमें जीजिफुस् नुम्मूलारिआ **Zizyphus nummularia** (Burm f) Wt & Arn) कहते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्ष और फारसमें जगली होता है ।

वर्णन—यह मझोले आकारका एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष होता है जिसके छोटे-बडे कई भेद होते है । यह वृक्ष जब जगली दशामें होता है तब झरबेरी और लगाया जानेवाला (बागी) बेरी (सिद्र) कहलाता है । उन्नाव बेरकी जातियोमें सबसे उत्तम है (दे० 'उन्नाव') । जब कलम लगाकर तैयार किया जाता है तब उसे पेबदी (पैवंदी) कहते है । यह फल प्रसिद्ध है । बेरसे सर्वथा 'बागीबेर' अभिप्रेत होता है ।

रासायनिक संगठन—फलमें फलाम्लीके साथ लबाब और शर्करा होती है । पत्र और छालमे अधिक टैनिन, कलम बनने योग्य वीर्य (Principle), बदराम्ल और शर्करा होती हैं ।

उपयुक्त अंग—फल (पक्वापक्व) या सुखाये हुए पक्व बेरका चूरा (बैरचूर), वृक्षकी छाल, मूल (त्वक्), पत्रादि अर्थात् पंचाग ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत एवं रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, सौमनस्यजनन विशेषत सतापहर एव पित्तघ्न । मेवाकी भाँति बेर खाया जाता है । यद्यपि यह चिरपाकी एवं कम पुष्टिकर है, तथापि इससे जो पुष्टि-पोषणाश प्राप्त होता है, वह उत्तम होता है । उष्णप्रकृतिको यह सात्म्य है । यह रुधिर और पित्तके उद्वेग एव तृष्णाको शमन करता है । भूना हुआ पित्तातिसारको बद करता है । बालोको शक्ति देने और शिरकी भूसी दूर करनेके लिए इसके पत्रक्वाथसे शिरको धोते हैं । जगली कच्चे बेरोको जिनमे अभी गुठली न पडी हो छाँहमें सुखाकर चूर्ण बनाते और शुक्रप्रमेह एवं श्वेतप्रदर (जरयान और सैलान)मे खिलाते हैं । झडबेरीकी जडकी छालका भी शुक्रप्रमेह और श्वेतप्रदरमें उपयोग करते है । मुखपाकमें इसके काढेसे कवलग्रह कराते है । अहितकर—आनाहकारक और दीर्घपाकी । निवारण—गुल्कद एव मस्तगी ।

आयुर्वेदीय मत—कोल (मध्यम प्रमाणकेबेर) कुछ अम्ल, रुचिकारक, वातहर, गुरु, सारक तथा कफ और पित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं । छोटे बेर अम्ल, कषाय, कुछ मधुर, स्निग्ध, गुरु और वातपित्तहर हैं । सब प्रकारके सूखे बेर भेदन, दीपन, लघु तथा तृष्णा, थकावट और रक्तविकारको दूर करनेवाले हैं । बेरकी मज्जा (मग्ज या मींगी) कषाय, मधुर, वीर्यवर्धक तथा श्वास, कास, तृष्णा, दाह, वमन, वात और पित्तका नाश करनेवाली है । बेरकी ताजी पत्तियोंका शरीरपर लेप करनेसे ज्वरका दाह कम होता है । बेरकी छाल विस्फोटका शमन करती हैं । (सु० सू० अ० ३९; च० सू० अ० २७, भा० प्र०, कै० नि०; रा० नि०) ।

(४६९) बेल

फैमिली रूटासे (Family · Rutaceae)

नाम—(हिं०; बं०; उ०) बेल, (अ०) सफरजले हिंदी, (फा०) बेह हिंदी, वल, शुल्ल, (सं०) बिल्व, श्रीफल, (गु०) बीली, (म०) बेल; (पं०) बिल, सीफल; (का०) बिलकथ; (ते०) बिल्वमु; (ता०) अलुविलम्, कुविलम्, (मल०) कुवलम्, (सिंध) कठोरी, (लें०) एग्ली मार्मेलॉस (Aegle marmelos Correa.), (अ०) बेल (Bel), बेलफ्रूट (Bael Friut), बेंगाल क्विन्स (Bengal Quince)। फलका गूदा या मज्जा (हिं०) बेलगिरी; (अ०) मग़्ज सफ़रजले हिंदी; (फा०) मग़्ज़बेल (-बेह हिंदी); (सं०) बिल्वपेशिका, (पं०) बिलकत्त।

इतिहास—बेल भारतीयोका पवित्र वृक्ष है। भारतीय वैद्य इसका उपयोग अति प्रचीनकालसे करते आ रहे हैं। इसलामी हकीमोने भी 'सफरजले हिंदी', 'वल' या 'बेल' नामसे इसका उल्लेख किया है। मुहीतआज़ममे 'बल' नामसे इसका वर्णन हुआ है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र लगाये जाते या जगली होते हैं। औषधोपयोगी बेलगिरीके लिए जंगली वृक्षोके कच्चे फल अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं।

वर्णन—यह प्रसिद्ध है।

रासायनिक सगठन—फलके गूदेमें लवाव, पेक्टिन, शर्करा, टैनिन, उत्पत् तैल, तिक्तवीर्य प्रभृति द्रव्य होते हैं। मार्मेलोसिन इसका सबसे अधिक सक्रिय घटक है। ताजे पत्तोमें एक विशिष्ट गधी, तिक्त, पिलाई लिए हरा तेल होता है। जड, पत्र और छालमें प्रधानत. कषायद्रव्य (टैनिन) होता है। काष्ठ भस्ममें पोटैसियम, सोडियमके यौगिक, फॉस्फेट ऑफ लाइम, लौह, कैल्सियम कार्बोनेट, मैग्नीसियम कार्बोनेट, सिलिका आदि तथा बीजोमें एक हल्का पीला तेल जो उत्तम विरेचन है, पाये जाते है।

उपयुक्त अंग—पक्वापक्व फल, फलका गूदा (=बेलगिरी), पत्र मूल, त्वक् (छाल) आदि। चूर्ण आदिके लिए कच्चे फलका, मुरब्बाके लिए अधपके फलका और पानकके लिए परिपक्वफलका गूदा लेना चाहिए। दशमूल आदि कषायोमें मूल या वृक्षकी छाल ली जाती है।

कल्प तथा योग—मुरब्बा बेलगिरी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द और तीसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, रक्तस्तम्भन, दीपन, विशेषकर प्रवाहिकामें गुणदायक है। जडकी छाल ज्वरघ्न है। सग्राही होनेके कारण बेलगिरी जीर्ण अतिसार, संग्रहणी और पेचिसको बन्द करती है। प्रवाहिका (जहीर सादिक)में बहुत लाभ पहुँचाती और अपनी सग्राहिणी शक्तिसे आमाशयको बल देती है। रक्तस्तम्भन और सग्राही होनेके कारण हर प्रकारके रक्तस्रावके लिए गुणकारी है। अतएव रक्तातिसार तथा अतिरजस्राव आदिमे इसका उपयोग किया जाता है। अहितकर–अर्शजनक और अवरोधजनक (अभिष्यदी)। निवारण–शर्करा। मात्रा–चूर्ण २ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशासे ३ माशा) तक। फाण्टमें ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बेल मधुर, कषाय, हृद्य, गुरु, रुचिकर, दीपन, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग तथा अर्श, शोथ, पित्त, कफ, ज्वर और अतिसारका नाश करनेवाला है। बेलका मूल मधुर, लघु, छर्दिघ्न और वातहर है। पत्र वातहर है। कच्चा (कोमल) फल कटु, तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, दीपन, ग्राही तथा कफ और वायुका नाश करनेवाला है। पका हुआ फल मधुर, गुरु, विदाही, विष्टंभि, दुर्जर, दोषकर और दुर्गन्धयुक्त, अधोवायु उत्पन्न करनेवाला है। (च०सू०अ० ४,२५,२७; सु०सू०अ० ३८, ४६, रा०नि०)।

नव्यमत—बेलकी जड ज्ञानतन्तुओके लिए शामक है। यह वातरोगोमें उपयोगी है। हृदयका स्पन्दनाधिक्य, उदासीनता, निद्रानाश और उन्मादमें जडका प्रयोग करते है। इससे नशा (कैफ) होता है। विषज्वरमें जडकी छालका काढा देते है। उस कुपचनमें जिसमें कब्ज और उदराध्मान हो और ऐसे आँतोके रोगमें जिसमें कभी विरेक और कभी कब्ज (आनाह) हो, पके हुए बेल (फल)का शर्बत (पानक) सवेरे देनेसे बडा लाभ होता है। कच्चे फलको भूनकर उसका गूदा रक्तमिश्रित आँवमें और जीर्ण अतिसार मे देते हैं। कच्चे बेलफल, सौफ और वचका काढा जीर्ण आँवमे विशेष हितकर है। कच्चे फलका गूदा और तवाशीर (आरारूट)की पेया अतिसारमें देते हैं। ताजे फलका गूदा और कबाबचीनी पीसकर दूधके साथ सूजाकमे देते है। ताजे पत्तोका स्वरस ज्वर, अभिष्यन्द, शोथ और कफरोगमें देते है। इससे दस्त साफ होकर ज्वर और अभिष्यन्द कम होता है। मधुमेहमें बेलकी पत्तियोका स्वरस १-२ तोला देते है।

●

(४७०) बेला

फ़ैमिली : ओलेआसे (Family . Oleaceae)

नाम—(हिं०) बेला, मोगरा, (स०) मल्लिका, (म०) मोगरा; (गु०) डोलर, मोगरो, (ब०) बेल, मोगरा (री); (ते०) बोन्दुमल्लो, (ता०) मल्लिजाई; (म०) मुल्ल, (लै०) जास्मीनुम् साम्बाक (Jasminum sambac (L) Ait), (अ०) डबल जैस्मिन (Double Jasmine)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें फूलोके लिए लगाया जाता है।

वर्णन—बेलाका ९० सें० मी० (दो हाथ) या इससे अधिक ऊँचा क्षुप या झाड (गुल्म) होता है। यह सुगन्धित फूलोके कारण बागोमे तथा मन्दिरोकी फुलवारियो एवं गृहउद्यानोमे लगाया जाता है। इसकी कई जातियाँ होती है। इनमें प्रथम बेलाका फूल सफेद और सुगन्धित होता है। यह वसन्तसे वर्षा तक खिलता है। इसका फूल थोडा लम्बोतरा और दोहरा होता है। द्वितीय–मोतियाका फूल गोल, बडे, मोतीके समान होता है। इसमें बेलेसे भी अधिक पखुडियाँ होती है। कई तह नीचे ऊपर बराबर होती है। तृतीय—मोगरेका फूल दोनोसे बडा होता है और इसमे पखडियाँ भी दोनोसे अधिक होती है। यह तीनो ही एक ही जातिके तीन भेद मात्र है। केवल भूमि आदिके भेदसे इनमें अन्तर आ गया है। बेलाको रायबेल भी कहते है। आयुर्वेदीय निघटुओके अनुसार इसकी जिस जातिमें वर्षामें पुष्प आते है, उसको वार्षिकी, जिसमें ग्रीष्ममें फूल आते है, उसको ग्रैष्मी तथा जिसमें छोटे फूल आते है, उसको अतिमुक्त कहते हैं।

उपयुक्त अग—पत्र, पुष्प, मूल और पचाग।

रासायनिक सगठन—फूलोमे उत्पत् तेल (Essential oil) होता है, जिसके कारण इसकी सुगन्धि होती है।

प्रकृति—गरम एवं तर। आयुर्वेदमतानुसार सर्द एव तर या उष्णवीर्य (कै० निघ०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बेलेके फूलको सूँघनेसे हृदय एव मस्तिष्कको शक्ति एवं उल्लास प्राप्त होता है। इसका फुलेल गुणमें चमेलीके फुलेल जैसा है, किन्तु उसकी अपेक्षया यह किंचित् उष्ण एव लतीफ है तथा उत्तमागोको शक्ति देता है। नीबूके रस और आम्बाहल्दीमें मिलाकर मालिश करनेसे शरीरकी रूक्षता और कण्डूका नाश होता है।

आयुर्वेदीय मत—मल्लिका कटु, तिक्त, लघु, उष्णवीर्य, वाजीकर, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, मुखपाक, नेत्रके रोग, कुष्ठ, विस्फोटक, कण्डू, विष, व्रण और अरुचिको मिटानेवाली है। (सु० सू० अ० ४६, ध० नि, कै० नि०)।

नव्यमत—क्षुप शीतल है तथा उन्माद, दृष्टिदौर्बल्य और मुखरोगोमें इसका उपयोग होता है। मल्लिका शोथघ्न, शोणितस्थापन, स्तन्यजनन और गर्भाशयोत्तेजक है। गर्भाशय और स्तनपर इसकी क्रिया होती है। प्रसूतावस्थामें जब स्तनकी दुग्धवाहिनियोमें शोथ होकर स्तन पकने लगता है तब मल्लिकासे त्वरित लाभ होता है। तोला भर फूलोको पीसकर शोथपर बांधते है। ४–४ घण्टेपर उसे उतारकर नये फूल बाँधते है। इस प्रयोगमे दूध बन्द होता है, स्तनकी सूजन उतरती है और पीब बननेकी क्रिया बन्द होती है। आर्तव अनियमित और थोडा होता हो तब पाव तोला इसकी जडका काढा देनेसे आर्तव साफ होता है। रक्तप्रवाहिकामें २–४ कोमल ताजी पत्ती २–३ तोले ठढे पानीमे पीस, कपडेसे छान, मिश्री मिलाकर दिनमें ३–४ बार देते है। इससे रक्त और बार-बार दस्त आना कम होता है। न भरनेवाले व्रणोपर पत्तियोका लेप करते हैं।

(४७१) बैंगन

फैमिली : सोलानासे (Family Solanaceae)

नाम—(हिं०) बैंगन, भटा, भंटा, भाँटा, (अ०) अल् बादजान, कहकब, अनब, मग्द, बग्द(इ० बै० १/८०, ४/१९३), (फा०) बादगान, (स०) वृन्ताक, वार्ताकी, (बं०) बेगुन, (म०) वागी, (गु०) वेगण, वताक, रीगणा, (प०) वेंगण, (ले०) सोलानुम् मेलोंगेना (**Solanum melongena** Linn), (अं०) ब्रिंजल (Brinjal), एग-प्लान्ट (Egg-plant)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह कटाईकी जातिका एक पौधा है जिसकी सारे भारतवर्षमे खेती की जाती है। फल तरकारीके काममें आता है। इसके जगली भेदको बनभंटा कहते है। फलके आकार, छोटाई-बडाई और रगके भेदसे भटेकी अनेक जातियाँ होती है। गोल फलवालेको मारू बैंगन कहते है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (मतान्तरसे दूसरे दर्जेमे)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, आनाहकारक, अवरोधजनक, श्वयथुविलयन, शोथप्रशमन, विशेषकर दीपन और वेदनाप्रशमन है। बैंगनको अकेला या मासके साथ पकाकर खाते है। परन्तु इसे अपथ्यकर तरकारी समझा जाता है, क्योकि यह कब्ज एव आनाह उत्पन्न करता और दुष्ट दोष उत्पन्न करता है। जरायुके रोग, आघात प्रत्याघात (जर्बा व सकता) मे उष्ण श्वयथुको बिठानेमे और वेदनाको शमन करनेके लिए इसको भुलभुलाकर कोष्ण बाँधते है। आघातजन्य पीडाको शात करनेके लिए तथा प्रवर्तन (इद्रार) के लिए भुलभुलाए हुए बैंगनका पानी (५-७ तोले) गुड मिलाकर पिलाते हैं। अहितकर–सौदाजनक तथा अर्शजनक। निवारण-(रोगन, स्नेह या तैल), सिरका और मास।

आयुर्वेदीय मत—बैगन (वार्ताक) कटु, तिक्त, मधुर (स्वादु), पाकमें कटु, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, लघु, भारी (रा० नि०), शुक्रल, बलकारक, पुष्टिकारक, हृदयको हितकारी, अपित्तल तथा ज्वर, वात-पित्त कफ (तीनो दोषो) को नष्ट करनेवाला और वातरोगोमें निन्दित है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, रा० नि०, भा० प्र०)। कच्चा बैंगन–कफपित्तनाशक (रा० नि०, भा० प्र०) और पका हुआ बैंगन (पीला) किंचित् क्षारयुक्त

पित्तकारक और भारी है (सु० सू० अ० ४६, राज०, भा० प्र०)। मध्यम बैंगन-त्रिदोषनाशक और रक्तपित्तका प्रसादन करनेवाला है (रा० नि०)। अंगारों पर भुना हुआ बैंगन अर्थात् बैंगनका भुरता किंचित् पित्तकारक, सारक, दीपन, लघुतर (अत्यत लघु) तथा कफ, मेद और वातनाशक है। वही तेल और लवणयुक्त भारी और स्निग्ध है। मुरगेके अण्डेके समान सफेद बैंगन अर्शके रोगीके लिये विशेष हितकारक है तथा पहिले बैंगनोसे गुणोमें हीन है। (रा० नि० भा० प्र०)।

●

(४७२) बैजन्ती (गुलतस्बीह)

फ़ैमिली : केन्नासे (Family : Cannaceae)

नाम—(हिं०) बैजन्ती, जयापुहुप, सब्वजया, (अ०) अलीकुल् बहार (अलीकुल्बहर, अलीकुल्बर्र), (फा०) गुलतस्बीह; (स०) सर्वजया, देवकेलि, वैजयन्ती; (ब०) कामाक्षी, लाल सर्वोजया; (पं०) हकीक; (म०) देवकली (केलि), (गु०) अकलबेर, (लै०) कान्ना इंडिका (Canna indica Linn); (अं०) इन्डियन शॉट या बीड (Indian Shot or Beed)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें यह पुष्कल लगाया जाता है।

वर्णन—हलदी या आदीकी तरहका आधा गजसे लेकर मानवाकारका गुल्म जिसकी पत्तियाँ हल्दीकी पत्तियो जैसी होती हैं। इनके बीचसे शाखा निकलकर उसपर फूल आता है। किसीका फूल एकरग लाल, किसीका सफेद किसीका पीला और किसीका इनके मिले-जुले रगोका होता है। फूल बारहो महीने आते है। फूल सूखनेके बाद रेंडीकी तरह थैली बनकर उसमें बीज उत्पन्न होते हैं। कच्चे बीज सफेद और पकनेपर काले, चमकदार, कडे और मटरके दानेके समान होते है। इनमें कोई लबाई लिये गोल और कोई बिल्कुल गोल होते है। एक कोशमें एकसे चार तक बीज देखे गये है। इन बीजोसे माल्य (तसबीह) बनाया जाता है।

उपयुक्त अग—मूल, काड और बीज।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—जड चरपरी, ग्राही एव उत्तेजक है। ग्राही होनेके कारण इसके पीनेसे नकसीरका खून, मसूढोका खून और खून थूकना बद होता है तथा यह शुक्रप्रमेह एव योनिस्राव (श्वेतप्रदर) में गुणकारक है। इसके लेपसे सूजन उतरती है। इसके काढेसे गुदप्रक्षालन करनेसे काँच निकलना (गुदभ्रंश) बद होता है। यह सिरके बालोको काला करता, शक्ति देता और जमाता है। ज्वरमे पसीना लानेके लिये इसकी जडका काढा पिलाते हैं। इसकी जडको ठडाईकी तरह पीनेसे अधिक मूत्र होकर जलोदर आराम हो जाता है। बीज हृदय बलदायक है। इसके लेपसे घाव भर जाता है।

नव्यमत—मूल स्वेदजनन, मूत्रजनन, उत्तेजक और स्निग्ध (Demulcent) है तथा ज्वर एव शोथमें प्रयुक्त होता है।

(४७३) बोल

फॅमिलीः बर्सेरासे (Family Burseraceae)

नाम—(हिं०) बोल, बीजाबोल, हीराबोल, (यू०) Samurna (D. 1 77), (अ०) अल्-मुर (इ० वै०), मुर्र, मुर; (फा०) बोल, (स०) बोल, गघरस, बर्बर, (व०) गधरस, बोल, गन्धबोल, (म०) हिराबोल; (गु०) हिराबोल, (प०) मुरमकी, (प०, मा०) बीजाबोल, (लै०) मीर्हा (Myrrha), (अ०) मिर्ह् (Myrrh)। इसके वृक्षको लेटिनमें कॉम्मीफोरा मीर्हा **Commiphora myrrha** Nees (पर्याय—*Balsamodendron myrrha* T Nees) कहते है। वक्तव्य—प्राचीन भ्रामक विचारोके पुजारी यूनानियोके विश्वासानुसार 'मिर्ही' एक सुन्दर कुमारी कन्या थी, जिसके साथ कालाकलूटा पिताने बलात्कार किया था। इस दुष्कर्मसे अत्यत लज्जित होकर उसने देवताओसे प्रार्थना की कि वे उसे किसी ऐसी वस्तुमें परिवर्तित कर देवे जो न जीवित हो न मृत। फलत देवताओने इसको बोल (मुर्र) उद्भिजके रूपमें परिणत कर दिया। परंतु कतिपय शोधकर्ताओका विचार है कि मुर्र यूनानी 'मुर्दन' शब्दसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ 'अत्यत सुगधित' होता है। इस सज्ञाका आरोप साधारणतया सुगधित उद्भिज्जो और उनसे प्राप्त पदार्थों, जैसे-गोद आदिपर होता है।

इतिहास—मिस्रके एक प्राचीन आलेखसे ज्ञात हुआ है कि महाराज्ञी हत्सूके कालमें ईसवी सन्से १७०० वर्ष पूर्व सुमालीलैंडसे मुर्रके कुछ एक वृक्ष मिस्रमें लाकर लगाये गए थे। इसलिए प्राचीन मिस्रवासियोको इस द्रव्यका भलीभाँति ज्ञान था और वह अपने प्रार्थनागृहोमें इसका धूप देते थे। धनवान् एव राजपुरुष अपने धनागारोमे इसलिए रखते थे, कि वह इसके आशीर्वादसे परिपूर्ण रहे। प्राचीन यूनानी एव रूमी अपनी शरावो और शिर. तैलोको इससे सुवासित करते थे। हकीम दीसकूरीदूसने सुमरना के नामसे इसका उल्लेख किया है। प्राचीन इस्लामी एव भारतीय चिकित्सकोको भी यह औषधि भली-भाँति ज्ञात थी। परन्तु भारतीयोने इसका अधिक प्रयोग नही किया।

उत्पत्तिस्थान—सुमालीलैंड (अफरीका), एबीसीनिया, सकोतरा और अरब। पूर्वी अफरीका, अरब-फारस और श्यामसे इसका आयात बम्बईमें होता है।

वर्णन—यह गुग्गुलकी जातिके एक क्षुप या छोटे वृक्षका प्रसिद्ध गोद है जो उसके तनेमे घाव करनेसे प्राप्त होता है। इसके गोल-गोल, बेडौल, छोटे-बडे, अश्रुवत् दाने होते है या इन दानोके परस्पर मिलनेसे विभिन्न आकार-प्रकारकी डलियाँ बन जाती हैं। इनकी रगत बाहरसे ललाई लिए पीली या भूरी, वास सुगधित, स्वाद सुगंधित तिक्त होता है। मक्काका बोल (मुरमक्की) सर्वोत्तम समझा जाता है।

उपयुक्त अंग—निर्यास। मात्रा—० ६२५ ग्राम से ० ८७५ ग्राम (५-७ रत्ती)।

रासायनिक संगठन—बोलमें एक उत्पत् तेल मिर्होल (२ प्रतिशत), राल (३५ प्र०श०), मिर्हिन (Myrrhin), गोंद (६० प्र०श०) एक तिक्त सत्व, कैल्सियम फॉस्फेट और कार्बोनेट आदिके रूपमे लवँण—ये द्रव्य होते हैं। असली बोलको तेजाव लगानेसे जामुनी छाया लिए किरमिजी रग उत्पन्न होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कोथप्रतिबधक, व्रणलेखन, लेखन, वातानुलोमन, दीपन, उदरकृमिनाशन, आतवजनन, श्लेष्मनिःसारक, श्वयथुविलयन, प्रमाथी, उष्णताजनन, विशेषकर कृमिनाशन, कफोत्सारि और नेत्ररोगोमें गुणकारी है। यह कोथप्रतिबधक है। इसलिए अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ गोलियाँ बनाकर उसको महामारी कालमें अनागताबाधा प्रतिषेधनकी भाँति उपयोग कराते है। व्रणलेखन और लेखन होनेके कारण अन्य औषधद्रव्योके

साथ अंजनमे डालकर नेत्रव्रण और दृष्टिमाद्य (धुन्ध)मे इसे नेत्रमें लगाते या दूधमें घोलकर नेत्रको उससे धोते है। व्रणलेखन एव कोथप्रतिबधक होनेके कारण व्रणो पर इसको लेपकी भाँति लगाते हैं। दीपन और वातानुलोमन होनेके कारण पाचनदोप और कब्जमें इसका उपयोग करते है। अपनी कटुताके कारण यह उदरस्थ कृमियोको नष्ट कर देता है। श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण कास, कफज कृच्छ्रश्वास, कण्ठगत खरत्व और स्वरघात एवं पार्श्वशूलमें भी गुणकारी है। मुखपाक, दन्तवेष्ट और कठघातमें इसको अर्कगुलाबमें मिलाकर गण्डूप कराते है या औषधद्रव्यके साथ मिलाकर अवचूर्णन करते है। श्वयथुविलयन, प्रमाथी और उष्णताजनन होनेके कारण यह सधिवात, वातरक्त और गृध्रसीमें पान और लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। कफजश्वयथुविलयनके लिए भी इसका लेप लगाते है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। **निवारण**—शुद्ध मधु और सर्द एव तर द्रव्य। **प्रतिनिधि**—कूट, जुदवेदस्तर और मोमियाई। **मात्रा**—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बोल कटु, तिक्त, कपाय, उष्णवीर्य तथा रक्तदोप, कफरोग, वातरोग और स्त्रियोके प्रदरादि रोगोको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्यमत—बोल वातहर, उत्तेजक, व्रणशोधन, व्रणरोपण, श्लेष्मलत्वचाको उत्तेजक, सग्राहक, श्लेष्मनिःसारक, रक्तके श्वेतकणोको वढानेवाला, दीपन, कोष्ठवातप्रशमन, स्वेदजनन, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। बोलका लेप उत्तेजक और मृदुकोथप्रशमन है। इसलिए व्रणपर इसका लेप कराते हैं। मुखपाक और मसूढोकी सूजनमें इसे मुँहमें धारण कराते हैं। दन्तमजनमें इसे डालते है। कण्ठरोहिणी (डिफ्थीरिया)में इसके टिंचरको पानीमें मिला कर उससे कुल्ले करानेसे लाभ होता है। बोल दीपन, वातहर, उत्तेजक और कोथप्रशमन है। इसलिए कुपचन, मलावष्टम्भ और पाण्डुरोगमे इसके देते है। इसे रक्तमें मिलनेपर, रक्तान्तर्गत श्वेतकण बढ़ते है इसलिए स्त्रियोके पाण्डुरोगोमें इसे देते है। यह त्वचा, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, श्वासमार्ग, फुफ्फुस और श्लेष्मल त्वचा द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और निकलते समय उन-उन अवयवोकी विनिमय क्रिया सुधारता है तथा उनको उत्तेजित करता है। इससे श्लेष्मलत्वचाकी अशक्ति कम होती है। यह त्वचासे बाहर निकलनेके कारण स्वेदजनन, मूत्रपिण्डो (गुर्दो)से बाहर निकलनेके कारण मूत्रजनन तथा फुफ्फुस और श्वासमार्गसे बाहर निकलते समय कफकी दुर्गन्धि नष्ट करके उसे पतला करनेके कारण उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक तथा रोगजन्तुघ्न है। इसलिए जीर्ण कास-श्वासमें इसका उपयोग करते है। यह गर्भाशयका सकोचन करनेवाला, उत्तेजक और आर्तवजनन है। इसलिए एलुआ और लोहेके साथ अनार्तवमे इसका बहुत उपयोग करते है। गर्भाशयके शैथिल्यमें यह विशेष उपयोगी है। इससे जीर्ण बस्तिशोथ और श्वेतप्रदर कम होता है।

●

(४७४) ब्रह्मदण्डी

फैमिली कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) ब्रह्मदण्डी, बरमदडी, बरमडडी, (स०) ब्रह्मदण्डी, अजदण्डी, (गु०) फुसियाई; (म०) ब्रह्मदण्डी, (ले०) ट्रीकोलेपिस ग्लाबेरिमा (**Tricholepis glaberrima** DC)।

वक्तव्य—डीमकने इसी कुलकी लाम्प्राकेनिउम् मीक्रोसेफालुम् (**Lamprachaenium microcephalum** Benth) नामक वनस्पतिका, जो पश्चिम भारतवर्षमे होती है, संस्कृत, मराठी और कनाडी नाम ब्रह्मदण्डी लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यह मध्य भारत, उत्तरप्रदेश, पंजाब, मारवाड और दक्षिण कोकणमें प्राय झाडियोके नीचे या मैदानोमें पैदा होती है।

वर्णन—यह ऊँटकटारेकी जातिका ३० सें० मी० (१ फुट)से ९०–१२० सें० मी० (३–४ फुट) ऊँचा और सीधा प्रसिद्ध क्षुप है। इसकी रंगत सफेदी लिए हुए होती है तथा तना चौकोर और शाखायें बारीक होती है। शाखातपर फूल लगता है, जो प्रथम गोल निकलता और खिलनेपर कटोरीकी आकृतिका और रगमें ललाई लिए नीला हो जाता है। इसके चारो ओर बारीक और नरम कांटे होते है। पौधेके समस्त अग स्वादमें अत्यन्त तिक्त होते है।

उपयुक्त अंग—पंचाग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शरीरबलवर्धन, स्मृतिवर्धक, जीर्णज्वरनाशक विशेषकर रक्तप्रसादन है। बल-वर्धन, स्मृतिवर्धन तथा शुक्रमेह (जरयान और सैलानमनीको) बद करनेके लिए ब्रह्मदंडीका चूर्ण गोदुग्धके साथ उपयोग कराया जाता है। रक्तप्रसादनार्थ इसको हिम या फाटमें डालकर उपयोग कराते हैं। कालीमिर्चोंके साथ इसे जलमें पीस-छानकर भी पिलाते है। खर्जू, फोडे-फुसी तथा रक्तविकार एव त्वचाके रोगोमे यह परम गुणकारी है। जीर्णज्वरोके लिए अन्य ओषधियोके साथ फाट और क्वाथकी भांति इसका उपयोग करते है। अहितकर–रूक्षता उत्पन्न करती है। निवारण–मधु। प्रतिनिधि–मुंडी और नीलकण्ठी। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) और हरीको १२ ग्राम (१ तोला) तक उपयोग कर सकते है।

आयुर्वेदीय मत—यह तिक्त, उष्णवीर्य, कफ, वातरोग और सूजनको दूर करनेवाली है। (नि०र०)।

●

(४७५) ब्रह्ममंडूकी या मण्डूकपर्णी

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family Umbelliferae)

नाम—(हिं०)बेंगसाग (बिहार) = मेंढकका साग), बरहमी, (स०) ब्रह्ममण्डूकी, मण्डूकपर्णी, (बं०) थानकुनी, थुलकुडी, (गु०) खडब्राह्मी, (म०) कारिवणा, (का०) ब्रह्मबूटी, (हरिद्वार) कोटयाली, (ले०) सेन्टेल्ला एशियाटिका **Centella asiatica** Urban Linn (पर्याय–हाईड्रोकोटाइल एशियाटिका *Hydrocotyle asiatica* Linn); (अ०) इंडियन पेनिवर्ट (Indian Penny-wort), हाइड्रोकोटाइल (Hydrocotyle)।

वक्तव्य—कतिपय आधुनिक एव प्राचीन लेखकोने इसका अरबी नाम 'जर्नब' लिखा है जो ठीक नही है। इस विषयमे तालीसपत्रमें दिया गया वक्तव्य देखें।

यह वही प्रसरणशील वनस्पति है जो उत्तरप्रदेशमें अधिकाश वैद्यो द्वारा ब्राह्मीके नामसे ग्रहण की जाती है और हरिद्वार आदिसे ब्राह्मीके नामसे भेजी जाती है। परन्तु विद्वानोके मतसे यह शास्त्रकारोकी मण्डूकपर्णी हो सकती है न कि ब्राह्मी। ब्राह्मीके लिए 'जलनीम' में लिखा वक्तव्य देखें।

उत्पत्तिस्थान—यह भारतवर्षके शीतप्रधान और आर्द्र प्रदेशो, जैसे कश्मीर, पजाब, गढवाल और हरिद्वार आदिमें होती है। जल मिलनेपर यह बारहो महीने रहती है। नहरो और नालोके किनारे यह अधिक देखी जाता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र विसर्पी वनस्पति है जो छत्तेदार होती है। इसका तना जमीनपर दूर तक फैलता है जिसकी प्रत्येक जोड (मूलग्रन्थि)पर अनेक पत्र, मूल, फूल और फल लगते हैं। पत्रवृन्त और पुष्पवृन्त उभय गुच्छेदार होते हैं। पत्रवृन्त प्राय ३-४ इच लम्बे, पुष्पवृन्त अत्यन्त क्षुद्र जिनपर ३ या ४ पुष्पोका अत्यन्त क्षुद्र रश्मियुक्त सादा छत्र होता है। दलपत्र कुंठिताग्र और अनाच्छादित होते हैं। पत्र अखंड वृक्काकृति, ½ से २½ इच व्यासमे, ७ शिरायुक्त, दतित, चिकना या कोमल, पत्र नीचेकी तरफ कुछ-कुछ लोमयुक्त, फल पार्श्वमे दबे हुए, ताजा क्षुप सुगन्धित एव विशेष प्रकारकी गाजर पत्रवत् गध देता है; परन्तु सूखी हुई पत्तीमें यह बात नही होती। स्वाद उत्क्लेशकारक तिक्त और किंचित् कषय होता है। परन्तु सूखनेपर इसके उक्त गुण जाते रहते है।

रासायनिक सगठन—सूखे क्षुपसे हाइड्रोकोटायलीन नामक ऐल्केलॉइड प्राप्त होता है। हरी पत्तीसे **एशियाटिकोसाइड** (Asiaticoside) नामक एक महाकुष्ठ एव क्षयनाशक ग्लूकोसाइड प्राप्त होता है। इसमे **वेल्लेरीन** (Vellarine) नामक एक सफेद क्रिस्टली तिक्त गुणोत्पादक वीर्य, राल, कुछ वसामय सुगन्धद्रव्य, निर्यास, शर्करा, कषायद्रव्य, ऐल्युमिनीय द्रव्य, लवण (विशेषकर ऐल्केलाइन सल्फेट्स) तथा ऐस्कॉर्बिक एसिड आदि उपादान भी होते है।

उपयुक्त अग—पचाग या पत्ती।

कल्प तथा योग—हब्ब बरहमी, ताजे पचागका स्वरस या छायाशुष्क पचागका चूर्ण। इसका फाण्ट या काढा नही बनाना चाहिए, क्योकि गरम करनेसे इसका तेल उड जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। मतातरसे सर्द और खुश्क (या तर)। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मेध्य, स्मृतिवर्धक विशेषतया सौमनस्यजनन तथा उत्तमागबलदायक और रतिशक्तिवर्धक है। इसको अधिकतया शीरा निकालकर या चूर्ण बनाकर मेधाजनन एव स्मृतिवृद्धिके लिए गोदुग्धके साथ खिलाते है तथा अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ चूर्ण या गुटिका या माजून बनाकर भी उपयोग करते हैं। कोई-कोई हकीम अन्य रोगो विशेषत. शुक्रमेहमें भी इसे नानाप्रकारसे खिलाते हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण–सूखी धनियाँ। प्रतिनिधि–दालचीनी, कबाबचीनी और तज। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मण्डूकपर्णी तिक्त, कषाय, कटुविपाक, लघु, शीतवीर्य, वय स्थापन, कफपित्तहर, हृद्य तथा रक्तपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, कास, श्वास और अरुचिका नाश करनेवाली है। (च०सू०अ० ४, २७, वि०अ० ८३, चि०अ० १ पाद ३, सु०सू०अ० ४२, ४६)।

नव्यमत—क्षुप त्वग्रोग, महाकुष्ठ, नाडीव्यूह एव रक्तके रोगोमे उत्तम रसायन एव बल्य औषधि है। पत्रका उपयोग बल्य रूपमें तथा स्मृति बढानेके लिए होता है। फिरगीय त्वग्रोगोमे यह बाह्यान्तरिक उभय प्रकारसे उपकारक है।

मण्डूकपर्णी कुष्ठघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्रजनन, स्तन्यशोधन, सग्राहक, बल्य और रसायन है। बडी मात्रामे मादक (नशा लानेवाली) है। इससे सिर दुखता है, चक्कर आते है और नशा चढता है। त्वचापर इसकी विशेष क्रिया होती है। इसका तेल त्वचाके मार्गसे निकलता है, त्वचा गरम मालूम होती है। और त्वचामें चुभन-सी प्रतीत होती है। प्रथम हाथ-पाँवमे चुभन प्रतीत होती है और पीछे सारे शरीरमे दाह प्रतीत होता है, यहाँ तक कि कभी-कभी वह असह्य हो जाता है। त्वचाकी रक्तवाहिनियोका विकास होता है और उसमे रक्त-संचार शीघ्रतासे होने लगता है। त्वचा लाल होती है और उसमे खाज मलूम होने लगती है। सप्ताहके बाद भूख

बढती है । इसका तेल वृक्कके द्वारा निस्सारित होता है, इसलिए मूत्रकी राशि बढती है । त्वचाके रोगोमे यह उत्तम गुणकारक है । उपदेशकी द्वितीयावस्थामें जब रोगका वेग त्वचा एवं त्वचाके नीचेकी कलामें होता है तब इससे विशेष लाभ होता है । सभी प्रकारके जीर्ण व्रण, गण्डमाला, क्षयज व्रण और श्लीपदमें यह उत्तम औषध है । व्रणके ऊपर इसका चूर्ण बुरकनेसे व्रण शीघ्र भर आता है । त्वग्रोगोमें इसे खिलाते और इसका लेप करते हैं । इसके कुछ-दिन सेवनसे त्वचा लाल होती है और खाज होने लगती है । उस समय मात्रा घटानी चाहिए या औषध देना बन्द करके विरेचन देना चाहिए । (औ० स०) ।

●

(४७६) भंगरा

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) भँगरा, भाँगरा, भँगरैया, (अ०) कदीमुल्बित, (स०) भृगराज, मार्कव, केशराज, (क०) भाँगर, जाडवबर; (प०) भँगरैया, (व०) भीमराज, केशुत्ते, केसूही, केससी, (म०) माका, (गु०) भाँगरो, (मा०) जलभीगरी, (सिंघ) भगिए, (को०) हातुकेसारी, (उ०) केसरडा, (ले०) एक्लीप्टा प्रोस्ट्राटा **Eclipta prostrata** (L)—(पर्याय—*E alba* Hassk (E ereta L), (अ०) ट्रेलिंग एक्लिप्टा (Trailing Eclipta) ।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह एक प्रकारकी प्रसिद्ध क्षुद्र वनस्पति है जो बरसातमे विशेषकर प्रायः ऐसी जगह जहाँ पानीका सोता बहता है, बारहो महीने उगती है । यह समस्त भारतवर्षमे होती है । इसका दण्डायमान वा भूलुण्ठित ½ से १-२ फुट लम्बा क्षुद्र क्षुप होता है । तना कुछ ललाई लिए, पत्र आमने-सामने जरा लम्बा, पत्रप्रान्त तरगायित, समस्त क्षुप सूक्ष्म-श्वेतघनरोमावृत होनेके कारण छूनेमे कर्कश (खरस्पर्श), फूल साधारणत सफेद, बीज—कासनीके बीजकी तरह, किन्तु उनसे अधिक मोटे और काले होते है । भँगरा पीले फूलका भी होता है जिसे लेटिनमें वेडेलिआ कालेंडुलासेआ (**Wedelia calendulacea** Less.) और बगालमें केशराज कहते है । काले फूलका भँगरा भी होता है जो कम मिलता है ।

रासायनिक सगठन—इसमे विपुल प्रमाणमें राल और एकलिप्टीन (Ecliptine) नामक क्षरोदीय वीर्य होता है ।

उपयुक्त अग—पचाग, (छायाशुष्क) या स्वरस ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क । आयुर्वेदमे उष्णवीर्य (कै०नि०) लिखा है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन, वाजीकर, दृष्टिवर्धक, वातानुलोमन, श्वयथुविलयन विशेषकर कामवर्धक है । भँगराके पत्रको अधिकतया रक्तविकारजन्य रोगो, जैसे—कुष्ठ, किलास, शीतपित्त और कच्छू आदिमें प्रयुक्त करते है । शोथपर इसका लेप करते है । दृष्टिको शक्ति देनेके लिए इसे खिलाते है । नेत्राभिष्यदमे इसके रसका नेत्रमें आश्च्योतन करते है । उदरशूल एव शूलरोग (कुलज)को नष्ट करनेके लिए भी इसका उपयोग करते है । वाजीकरण एव बलवर्धनके लिए इसके बीज खिलाए जाते है । काला भँगरा विशेषरूपसे बालोको काला करनेके लिए उत्कृष्ट भेषज है । अहितकर—उष्णप्रकृतिको । निवारण—कालीमिर्च, शहद और अदरक । प्रतिनिधि—बिनौला । मात्रा—पत्र ५ माशेसे ७ माशे तक । बीज १ माशासे ३ माशे तक ।

आयुर्वेदीय मत—भँगरा कटु, तिक्त, रूक्ष, उष्णवीर्य, रसायन, दाँत, त्वचा और केशको हितकर तथा कफ, वात, कास, कृमि, श्वास, कुष्ठ, शोथ आम और पाडुरोगका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य केवल दूधपर रहकर एक मास तक केवल भँगरेका रस पीते हैं वे बल और वीर्ययुक्त होकर सौ वर्ष जीते हैं (कै० नि०; वा० उ० अ० ३९)।

नव्यमत—भँगरेको उबालनेसे इसका गुण नष्ट होता है, अत इसके स्वरसका प्रयोग करना चाहिए। भँगरा तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, वातहर, अनुलोमन, मूत्रजनन, बल्य, वातहर, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और वर्ण्य है। इसकी मुख्य क्रिया यकृत्पर होती है। इससे यकृत्की विनिमय क्रिया सुधरती है, पित्तका उद्रेक (स्राव) ठीक होता है, आमाशय और पक्वाशयकी पचनक्रिया सुधरती है और इन तीन स्थलोकी क्रिया सुधरनेसे सम्पूर्ण शरीरमे शक्ति प्रतीत होती है। यकृत्की क्रिया बिगडी हो तब भँगरा देते हैं। यकृत्की क्रिया सुधरनेसे कामला यकृद्वृद्धि, प्लीहवृद्धि, अर्श, उदर और कुपचन ये रोग आराम होते हैं। यकृत्की क्रिया बिगडनेसे एक प्रकार-का शारीरिक विप जिसको आयुर्वेदमे आम कहते है शरीरमें संचित होता है और उससे आमवात, चक्कर आना, सिरका दर्द दृष्टिमान्द्य और नाना प्रकारके त्वग्रोग उत्पन्न होते हैं, उनमे इसे देनेसे उत्तम लाभ होता हैं। अग्निदग्ध व्रणपर भँगरा, मरवा और मेहदीकी ताजी पत्तियाँ पीसकर लेप करनेसे जलन नष्ट होती है और जो नई त्वचा आती है वह शरीरके समान रगकी आती है।

•

(४७७) भाँग

फैमिली कान्नाबिनासे (Family : Cannabinaceae)

नाम—पत्र (हिं०) भग, भाँग, विजया, सिद्धि सब्जी, (यू०) क(क)न्नबिस (Kannabis D 3 133); (अ०) अल्‌वज (इ०बै०), खादअतुर्रजाल, किन्नब, (कुन्नब) हिंदी, हशीश, हशीशतुल्फुक्रा, वर्कुल्‌खियाल, निशात अफ्जाऽ, शह्‌वतअगेज, अर्शनुमा, (फा०) कनब(क्निब) हिंदी, बग, (स०) भगा, विजया, (ब०) भाड्, सिद्धि, (म०, गु०) भाग, (ले०) कान्नाबिस साटीवा **Cannabis sativa** Linn (पर्याय—*C indica* Lamk.); (अ०) इडियन हेम्प (Indian Hemp)। वक्तव्य—लेटिन एव अग्रेजी नाम इसके क्षुपके है। गाँजा (अ०) किन्नब, कुन्नब; (फा०) किन्नब, (स०) गजा, (म०, गु०) गाँजा, (ब०) गाँजा, (अ०) गजा (Ganjah), ग्वारा (Guara)। बीज—(यू०) कन्नाबिसKannabis (D 3 155), (अ०) अल्‌शह्‌दानक (इ०बै०), शाहदानज, बज्र‌ुल्‌किन्नब, (फा०) शा(श)हदान, तुख्मे किन्नब, तुख्मेबग। (ले०) कान्नाबिस साटिवा सीमेन Cannabis Sativae semen। इसकी अरबी सज्ञा 'कुन्निब' इसकी फारसी सज्ञा 'कुन(नि)ब'का अरबी रूपान्तर है। इसकी यूनानी सज्ञा 'कनबिस' और लेटिन 'कैनेबिस' (Cannabis) भी इसकी फारसी 'कनब'से ही व्युत्पन्न है।

मख्जनुल् अद्‌विया और मुहीत आजम में जो इसकी यूनानी सज्ञा 'दूसीफरूस' लिखी है, वास्तवमें इसकी यूनानी सज्ञा नही है। प्रत्युत सुरियानी या श्यामी सज्ञाप्रतीत होती है, जो इसके सस्कृत सज्ञा 'विजया' का पर्याय है।

इसकी यूनानी वैद्यकीय पारिभाषिक सज्ञा 'हशीश' जिससे 'हशीशीन' जातिकी आधारशिला रखी गई, अत्यंत विलक्षण है, जिसकी विशदता आगे इसके इतिवृत्तमें की गई है।

भाँगके नारीक्षुपोकी पुष्पित शाखाओको जिनके पत्तोपर राल (उद्यास) लगी हुई होती है, हिंदी व उर्दूमे 'गाँजा' कहते है जो भाँगकी सस्कृत सज्ञा 'गजा' का पर्याय है। इसके फलवान् पत्तोको 'भॉग' कहते है। इसके पिच्छिल द्रव या राल (उद्यास) को जो इसके पत्तोपर जमी हुई होती है, जिसे उनपरसे खुरचिकर सचित कर लेते है, 'चरस' कहते है। चरस वास्तवमें चमडेके थैलेको कहते है। मध्य एशियामे इस रालको चमडेकी थैलियोमे सग्रहीत करते थे। अतएव इसका उक्त नाम पड गया।

अरवीमे शुष्क घासको हशीश कहते है। शुष्क भगको भी रगडकर पीते है। इसलिए पारिभाषितरूपमे इसको भी हशीश कहने लगे और हशीश अर्थात् भग पीकर अपराध करनेवालोका नाम हशीशिय्यीन या हशीशीन पड गया। सुतरा अग्रेजी शब्द असेसीन (Assassin) जिसका अर्थ 'धोखा देकर मारने वाला', इसी हशीशीन सज्ञा-से व्युत्पन्न है।

शीतल एव मोतदिल देशोमे जो भाँग उत्पन्न होती है, वह अपने गुणधर्ममें ऐसी प्रभावी नही होती, जैसाकि उष्णप्रधान देशोकी भाग।

इतिहास—पूर्वी देशो विशेषकर भारतवर्ष और चीनमें तत्पादक क्षुपके रूपमे भॉग प्राचीन कालसे ज्ञात है। भारतीयोका विश्वास है कि भाँगकी उत्पत्ति अमृतसे हुई और यह प्राय देवताओ विशेषकर शिव और इद्रको बहुत प्रिय था। इसलिए इसको सस्कृतमे 'इन्द्राशन' और हिन्दीमें 'शिवबूटी' या 'शिवजीकी घुटी' भी कहते है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीयोको भाँगके मादक गुणका पूर्णतया ज्ञान नही था। कदाचित् मनुने ब्राह्मणोको इसके सेवनकी मनाही की है। इसलाममें 'कुल्लो मुस्किरन हरामुन्' के अनुसार भग सर्वथा अविहित है। वैद्य, हकीम, डॉक्टर सबका इस विषयमें मतैक्य है कि भाँगके पुष्कल प्रयोग एव निरतर सेवनसे अजीर्ण, दौर्बल्य, कास, जलोदर, पुस्त्वहीनता, कामावसाद, मद (मनोलिया) और उन्माद प्रभृतिरोग उत्पन्न होते है।

यूनानियोको भी दो सहस्र वर्षसे इस औषधिका ज्ञान है। वह भाँगके पौधोके तनोके रेशोसे वस्त्र बनाते थे और कतिपय रोगोमें इसके बीजोंकी धूनी देते थे। यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'कनबिस' के नामसे दो प्रकारकी भाँग—उद्यानज और वन्य—का उल्लेख किया है। सुतरा कान्नाबिस साटिवा (Cannabis sativa) से 'उद्यानज भग' अभिप्रेत है।

जालीनू, इब्नसीना और राजीने भगके गुणकर्मवर्णनमें दीसकूरीदूसके अभिमतका अनुसरण किया है और इसके मादक गुणपर कुछ ध्यान नही दिया।

पश्चिमी वैद्यकीय रचनाकारोमेंसे प्रथम इब्नवैतार है, जिसने भगके मादक गुणका उल्लेख किया है। तत्पश्चात् बहुधा इसलामी वैद्यकीय सकलनकर्ताओने दो प्रकारकी और किसी-किसीने तीन-प्रकारकी भाँग, वन्य, उद्यानज और पार्वतीयका उल्लेख किया है। किसी-किसीने तीसरे भेदमें 'भारतीय भग' का वर्णन किया है जो ईसवी सन्‌की सत्रहवी शतीसे लेकर अद्यावधि रूपमें औषधकी भाँति प्रयुक्त है। अब इसीका वर्णन किया जाता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, ईरान, ईराक और मिस्र।

वर्णन—यह उष्णकटिबन्धजात ५० सें०मी० से १०० से०मी० (१८–२० इञ्चसे ३६–४० इञ्च) ऊँचा एक वर्षायु प्रसिद्ध क्षुप है। इसकी बारीक-बारीक शाखाये होती है, जिनपर चार-पाँच पत्ते लगे होते है। पत्र लम्बे, नुकीले, गहरे हरे और खुरदरे, पत्रप्रान्त दन्तित, फूल सफेद और बीज (फल) छोटा-सा गोल होता है जिसको शह-दाना (भाँगके बीज) कहते है। इसके फलयुक्त पत्तोको भाँग, मादा पौधेकी फूलदार शाखाओ (मञ्जरी) को जिनपर रालदार द्रव्य लगा होता है गॉजा और लेसदार द्रव या राल (निर्यास) को जो भगके पत्तोपर लगी होती है और हाथपर चिपक जाती है और जिसे उनपरसे खुरच कर सग्रहकर लेते है, चरस (मारवाडमें 'सुल्फा') कहते हैं। इसको उसारए भग और इत्रेविलायती भी कहते है।

उपयुक्त अग—फलयुक्त पत्र (भाँग), गाँजा, चरस, बीज आदि।

रासायनिक संगठन—इसमे कैनेबिनोल (Cannabinol) नामक एक रालजातीय गुणोत्पादक वीर्य, एक उत्पत् तेल और एक क्षारोद होता है।

कल्प तथा योग—माजून फलकसेर।

भाँग—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदिक मतसे उष्णवीर्य (शो० नि०) है।

गुण-कर्म—सग्राही, दीपन, क्षुधाजनक, सौमनस्यजनन, वाजीकर, शुक्रस्तभन, वीर्यशोषण, वेदनास्थापन, स्वप्नजनन, आक्षेपहर, प्रलापजनक और विशेषकर मनोल्लासकारक है। शैसुर्रईस आदि अरबीचिकित्सको द्वारा उल्लिखित संमोहन योगौषधोका भग एक उपादान है। इसके अतिरिक्त इसके निम्न योग है :— माजून फलकसेर, माजूनमसीहा, हब्ब तुख्मभग, रोगनभंग, हब्ब मुनव्विम आदि।

उपयोग—सग्राही, दीपन और क्षुधाजनक होनेके कारण पाचनविकृति, अतिसार एव प्रवाहिका (ज़हीर) में इसका उपयोग कराते हैं। मन प्रसादकर, वाजीकर एव शुक्रस्तंभन होनेके कारण इसे कतिपय माजूनोमें डालते है। माजून फलकसर इसका प्रसिद्ध योग है। सग्राही होनेके कारण अतिरज स्रावमे भी इसका चूर्ण खिलाते है। वेदनास्थापन होनेके कारण पीडाशमनके लिए इसका बाह्यातरिक उपयोग करते है। वेदनाशमनार्थ, सूजन उतारने, कृमि नष्ट करने और आर्शांकुरोको गिरानेके लिये झवाईटोलाके हकीम इसका बाह्य प्रयोग करते हैं। सुतरा अर्शांकुरोका पीडा शमन करनेके लिए इसको गोदुग्धमें उबालकर बफारा देते और भाँगको दूधसे निकालकर उसकी टिकिया बनाकर बाँधते है। अर्धावभेदक और निरतर बने रहनेवाले शिर शूलमें इसका आतरिक रूपसे भी उपयोग करते है। स्वप्नजनन होनेके कारण अनिद्रा, कम्पोन्माद और उन्मादमे तथा पीडाशामक और आक्षेपहर होनेके कारण कालीखाँसी, यकृच्छूल, शूलरोग और अपतानक (कुजाज)मे भी इसका उपयोग कराते हैं। पचनावयवो पर इसका बुरा प्रभाव नही पडता। इसलिए अनेक दशाओमे नीदलानेके लिए यह अफीम की अपेक्षया अधिक उपयुक्त होता हैं। भगके पुष्कल एव निरतर उपयोगसे क्षुधानाश, अनिद्रा, कृशता (दौर्बल्य) और कामावसाद प्रभृति उपद्रव प्रगट हो जाते है और मस्तिष्कपर ऐसा अहितकर प्रभाव पडता है कि रोगी पागल हो जाता है। अहितकर—दृष्टि क्षीणकर, उन्मादजनक और मद (मालिन्खोलिया) कारक है। निवारण—घी, पिलाना। मात्रा—१माशा।

चरस—

प्रकृति—चौथे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मदकारि, शुक्रस्तभन, मूर्च्छा एव हृदयदौर्बल्यकारक है। मदकारि एव शुक्रस्तभन होनेके कारण इसको माजून फलकसेरमें डालते है। इसके पुष्कल एव निरतर उपयोगसे वही उपद्रव प्रगट होते है जो भगके प्रचुर उपयोगसे होते हैं। अहितकर—दृष्टि एवं मस्तिष्कके लिए। निवारण—स्निग्ध पदार्थ। प्रतिनिधि—भाँग और गाँजा।

आयुर्वेदीय मत—भाँग दीपन, पाचन, लघु, ग्राही, रुचिकर, निद्राकर, कामोत्तेजक तथा कफ और वातको दूर करनेवाली है। (शो० नि०)।

नव्यमत—गाँजेकी क्रिया प्रधानत मस्तिष्कपर होती है। यह उत्तेजक, वेदनास्थापन, शातिकारक, क्षुधावर्धक, पित्तद्रावी, मूत्रजनन, आह्लादकारक, कफघ्न, स्वापजनन, शोणितस्थापन, आक्षेपहर, गर्भाशयसकोचक, बल्य, वाजीकर और त्वचाकी ज्ञानग्राहक शक्तिको कम करनेवाला है। मात्रा—शुद्ध भाँग १२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक, शुद्ध गाँजा ६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (½—१ रत्ती), चरस ३० मि० ग्रा० या ¼ रत्ती (ओ० स०)।

भाँग और गाँजेको दूधमे दोलायन्त्रसे पका, जलसे धोकर सुखा लेनेसे ये शुद्ध हो जाते है।

(४७८) भारंगी

फॅमिली : वेर्बेनासे (Family . Verbenaceae)

नाम—(हिं०) भारंगी, बनबाकरी (जौनसार), (स०) भार्गी, (म०) भारग, (गु०, बम्ब०) भारंगी, (पं०) भरंगी; (ते०) गंटुबरंगी, (लै०) क्लेरोडेन्ड्रन सेराटुम (Clerodendron serratum (L) Moon.)। वामनहाटी (हिं०) बभनेटी, बाह्मनेटी, (स०) ब्राह्मणयष्टिका, (बं०)वामन(वामुन)हाटी, (लै०) क्लेरोडेन्ड्रम् इंडिकुम् (**Clerodendrum indicum** (L)O Kuntze (पर्याय—*C siphonanthus* (R Br) C B Cl)।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षके प्राय अधिक नमीवाले जिले एव स्थानोमें घासके मैदानो एवं नदी नालोके आसपास विशेषकर हिमालयकी तराई, बगाल, विहार आदिमे इसके पौधे होते है।

वर्णन। भारंगी—इसके बहुवर्षायु ३-८ फुट ऊँचे गुल्म होते है, जिनमे अनियमित क्रमसे अनेक चौपहल शाखायें निकली रहती हैं। पत्तियाँ कुछ-कुछ मासल आमने-सामने या प्रतिचक्रमें तीन-तीन, लगभग अवृत, ३-६ इंच लम्बी और आरावत् दतुर. पुष्प व्यास में १ इचसे अधिक, नीले, हलके गुलाबी रग या सफेद रगके, फल अष्ठिल, प्राय. १–३, परस्पर संयुक्त और मासल खंडफलो के होते है। वास्तविक भारगा यही है, परन्तु बाजारमे मिलनेवाली भारंगी इनसे भिन्न होती है।

वामनहाटी—इसके गुल्मकीय या शाकीय पौधे होते हैं, जिनमें काण्ड सीधा, लम्बा, ३-६ फुट ऊँचा, नालाकार और एक वर्षायु होता है। पत्तियाँ सधियोपर तीन या पाँच-पाँचके चक्रोमें (कभी-कभी अभिमुख), ५–८ इच × ० ५—१ ५ इंच बडी, चिकनी, प्राय अखण्ड या लहरदार तटवाली होती है। पुष्प सुन्दर, श्वेत या मलाई वर्णके पत्रकोणीय गुच्छोमें होता है, फल परस्पर सयुक्त, १-४ फलखण्डोका बना हुआ अष्ठिल, जिसके साथ रक्तवर्णका फलोपचयी बाह्यकोश लगा होता है। शृगारके लिए इसे बगीचोमे लगाते है। इसे बगालमे वामनहाटी और हिंदी में कही-कही भारंगी कहा जाता है जो ब्राह्मणयष्टिका और भार्गीके क्रमश बिगडे हुए रूप है। इसे भी हम वास्तविक भार्गी या उसका एक भेदमात्र मान सकते हैं। दोनो एक दूसरेका प्रतिनिधित्व कर सकते है।

उपयुक्त अग—पत्र, (पत्रस्वरस), मूल और वामनहाटीसे प्राप्त उद्यास (राल)।

रासायनिक संगठन—वामनहाटीके पत्रमे विद्यमान एक तिक्त सत्वपर इसका कृमिघ्न गुण निर्भर करता है।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष। (आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (रा० नि०) एव रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आयुर्वेदीय औषधि होनेके कारण यूनानी ग्रन्थोमे इसके आयुर्वेदलिखित गुण प्रयोग ही कुछ फेर-फारके साथ लिखे मिलते है।

आयुर्वेदीय मत—भारगी कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात, कास, श्वास, शोथ, व्रण, कृमि, दाह, ज्वर, गुल्म, रक्तविकार और पीनसका नाश करनेवाली है। (सु० सू० अ० ३८, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत। भारगी—मूलका प्रयोग दमा मे, कुटजके साथ आर्तवजनन योगमे तथा ज्वरघ्न रूपमे होता है। (वि० व० पृ० १११)। यह उष्ण, तिक्त, कटु, दीपन, पाचन, किंचित् उत्तेजक, ज्वरघ्न, श्वासहर, वातहर और शोथघ्न है। इसे ज्वर और कफयुक्त रोगोमें तथा मलेरिया ज्वरमें भी देते है। सर्दी, कण्ठशोथ और कफयुक्त दमामे सोठ अथवा वचके साथ भारगीमूल देते है। पत्रको ज्वरमें देते है। तेल और मक्खनके साथ पकाई हुई पत्तियोका मलहर बनाकर शिर शूल एव नेत्राभिष्यदमे उपयोग (लेपरूपमें) करते है। सर्पविषमें भी पत्तियोका प्रयोग है

वामनहाटी—मूलका कास-श्वास तथा कण्ठमालामें विशेष उपयोग होता है (वि० व०)। फिरंगीय आमवातमें इसके छालका उपयोग होता है। पत्र कटुपौष्टिक एवं कृमिहर है। हर्पीज विस्फोट (Herpetic eruptions) तथा पेम्फिगस (Pemphigus)मे पत्तियोके रसको घीके साथ लगाते हैं।

●

(४७९) भिंडी

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—(हिं०) भिंडी, रामतरोई, लिलिविरवा, (अ०) वामिया; (फा०) वामिय, (सं०) भे(भिं)डा, भिंडक, करपर्णफल, (व०) ढेंडश, (म०) भेंडा (डे), (गु०) भींडा(डे); (ले०) **आवेल्मॉस्कुस् एस्कूलेंटुस् (Abelmoschus esculentus** (Linn.)Moen (पर्याय–*Hibiscus esculentus L.*); (अं०) लेडीज फिंगर (Ladies finger), एडिवल हिविस्कस (Edible Hibiscus)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक पौधेका चौपहल या पाँचपहल फल है जिसपर वारीक-वारीक चुभनेवाला रोआँ होता है। इसके अन्दर चार-पांच कोष (खाने) होते हैं जिनमे मटरके समान गोल-गोल दाने (वीज) भरे होते हैं। फल और पौधेकी शाखाये सभी लबाबदार होती हैं। मुश्कदाना या लताकस्तूरी इसका एक भेद है।

उपयुक्त अग—कच्ची फली, बीज और मूलत्वक्।

रासायनिक सगठन—ताजी फलीमें विपुल लवाब, पिष्ठ (श्वेतसार) और पुष्कल श्लेष्मनि सारक द्रव्य; सूखी फलीमे २ प्रतिशत मासल द्रव्य और भस्ममें सुधा, यवक्षार और लघुमृत्तिका (मैग्नीसिया), सूखे बीजमें २१/२ प्रतिशत शोराजनक सत्व और भस्ममें २४ प्रतिशत फास्फोरिक अम्ल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे सर्द एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अवसादक, फिसलानेवाली, पिच्छिलताकारक विशेषकर वीर्यपुष्टिकर और प्रवाहिकाहर है। इसकी तरकारी पुष्कल खाई जाती है। यह कम पुष्टिकर, चिरपाकी एव आनाहकारक होती है। उष्ण प्रकृतिवालोके लिए पेचिस, आन्त्रव्रण, सूजाक और गरम खाँसीमें इसका सेवन अधिक गुणकारी है। पेचिस और सुजाकमे इसका लवाब निकालकर पिलाना गुणकारक है। नरम और कोमल भिंडी जिनमें अभी बीज न पडे हो, चूर्ण बनाकर खिलानेसे शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यमे उपकार होता है। इसकी जडकी छालका लवाव भी इन रोगोमे गुणदायक है, विशेपकर जगली भिंडी (दुल्ला)की जडकी छाल जलमे भिगोछानकर पिलानेसे सूजाक आराम हो जाता है। अहितकर–चिरपाकी और आनाहकारक। निवारण–गरम मसाला और अदरक। मात्रा–औषधरूपेण ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—भिंडी (भण्डी) अम्ल, उष्ण, पिच्छिल, भारी, वादी (वातल), रुचिकारक, ग्राही, वृष्य, कफकारक, वलकारक, शुक्रवर्धक तथा खाँसी, मन्दाग्नि, वात और पीनसके रोगमे अहितकारी (चरकके अनुसार वात और पित्तकाहरण करनेवाली) एव मलरोधक है। (च० सू० अ० २७, नि० र०)।

●

(४८०) भिलावाँ

फॅमिली आनाकार्डिआसे (Family Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) भिलावाँ, भिलावा, भेला, (अ०) अन्कर्दिया, इन्कर्दिया, अल् बलाजुर (इ० वै०), हब्बुल्-कल्ब, हब्बुल्फह्म, समरुल्फह्म, (फा०) बलादुर, बिलादुर, (स०) भल्लातक, अरुष्कर, (ब०) भेला, (क०) बिलावा, (प०) भिलावा, (खर०) भेलवा, (म०) बिब्बा; (गु०) भिलामा, (गु०, मा०) भिलायो, (बम्ब०) बि(भि)बा, (ले०) सेमीकार्पुस् आनाकार्डिउम् (**Semecarpus anacardium** L f), (अ०) मार्किंग नट (Marking Nut), धोबीज नट (Dhobis Nut)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षका है। बलादुरसे 'बलाजुर' अरबी बनाया गया है। लेटिन नाममे जातीय (Specific name) 'अनाकार्डिउम् (Anacardium)', अरबी 'अन्कर्दिया' या 'इन्कर्दिया' से ग्रहण किया गया है, जो भिलावेके फलके हृदयाकार रूपरेखापर आधारित प्रतीत होता है। इसका मासल फलवृन्ताग्र जो पकनेपर लाल रगका हो जाता है और खाया जाता है, अलिन्दो (Auricles)के आकारके प्रतिरूप, तथा वास्तविक फल निलयो (Ventricles)के प्रतिरूप होता है। पके भिलावेके फलका रस कपडेपर लगनेसे काले रगका दाग देता है, इसीलिये धोबी लोग इसका उपयोग कपडोपर नम्बर या निशान लगानेके लिए करते है, जिससे इसे अग्रेजीमे 'Dhobis Nut' या 'Marking Nut' कहते है। आयुर्वेदके प्राचीन निघण्टुकारोने भल्लातकका पर्याय 'पृथग्बीज' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यह सतलजसे पूरबकी ओर ३,५०० फुटकी ऊँचाईपर तथा समस्त भारतवर्षके उष्ण-भागोमें आसाम पर्यंत इसके वृक्ष जगली होते है।

वर्णन—यह पतझडवाले मझोले आकारके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो हृदयाकृति उज्ज्वल कृष्णवर्णका होता है। हृदयाकृति (सनोबरी शक्लका) होनेसे ही इसको अरबीमें 'हब्बुल्कल्ब (हृत्फल)' कहते है। फलके अन्दर एक प्रकारका रस होता है जो अपक्वावस्थामे दुग्धवत् सफेद और पक्वावस्थामे शहदकी तरह गाढा और काले रगका हो जाता है। यह अस्ले बलादुर (भल्लातक मधु)के नामसे प्रसिद्ध है। इसे शरीरपर लगानेसे सूजन एव दाह होता है। फलवृन्ताग्र मासल प्राय फलतुल्याकृति, मसृण, पक्वावस्थामे पीला और मीठा होता है। अतएव इसे खाते है। इसके ऊपर फल अधिष्ठित होता है। इसको कुलाहे बलादुर (भल्लातकवृन्त) कहते है। प्राचीन आर्यवैद्योने इसी फूले हुए वृन्तको फल (फलाभास फल) माना है और सच्चे फलको अस्थि या बीज माना है। फलके अन्दरसे बादाम-की तरह मग्ज निकलता है जो मीठा, स्वादिष्ट एव निरापद होता है।

उपयुक्त अग—फलरस (अस्ले बलादुर) और फलका मग्ज (मग्जे बलादुर)।

रासायनिक सगठन—फलके मग्जमे काजूकी गिरीके समान पौष्टिक द्रव्य और अनुत्पत् मीठा तेल (रोगन-बलादुर, दुह्नुल्फह्म) और फलके रसमे काला दाहजनक तेल होता है।

कल्प तथा योग—अन्कर्दियाए सगीर व कबीर, रोगन भिलावाँ।

प्रकृति—फलका रस चौथे दर्जेमे गरम और खुश्क, आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (सु०, भा०प्र०), मग्ज दूसरे दर्जेमे गरम और पहलेमे खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फलका रस व्रणकारक, श्वयथुजनक, उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, वातनाडीबलदायक, बुद्धिस्मृतिवर्धक, इसकी धूनी अर्शांकुरोको सुखानेवाली है। मग्ज—वाजीकर और कफरोगनाशक विशेषकर सर्दरोगोमे गुणदायक है। भिलावाँ और भिलावेंके रस (अस्ले बलादुर) को शुद्ध करके आतरिक रूपसे उपयोग करते है। शोधनके बाद इससे कई माजूनें प्रस्तुत की जाती है जो बुद्धिस्मृतिवर्धनके लिये और वात एव

कफरोगोमे प्रयुक्त होती है। इसकी धूनी देनेसे अर्शांकुर सूखकर गिर जाते हैं। व्रणकारक होनेके कारण चर्मकील (सालील), दद्रु, किलास तथा पुरुष एव त्वचाके रोगोमे भिलावेंके रसका पतला लेप (तिला) करते हैं। सर्पदंशपर पछने लगाकर इसे लगानेसे सर्पविष भीतर शोषित होनेसे रुक जाता है। इसके मग़ज़ (गिरी) को वाजीकर माजूनो-मे डालते हैं। अहितकर–व्रणकारक और उन्मादजनक है। निवारण–तिलका तेल और घी। प्रतिनिधि–बलसाँ। मात्रा–मग़ज १ ग्राम या १ माशा।

नव्यमत—कठमाला, पुरुषरोग और महाकुष्ठमें गोदका प्रयोग करते है।

आयुर्वेदीय मत—भिलावेके फल (फलाभास वृन्ताग्र) का गूदा मधुर, कषाय, शीतल, विष्टंभि, दुर्जर, वातकोपन और वातपित्तप्रकोपक हैं। भिलावा रसमें मधुर-कषाय और कटु, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शुक्रल (वीर्य-वर्धक), पाक करनेवाला (फोला उत्पन्न करनेवाला) तथा कृमि, ज्वर, आनाह, प्रमेह, उदावर्त, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी-रोग, गुल्म, श्वित्र, अग्निमान्द्य तथा वात और कफके रोगोका नाश करनेवाला है। कोई भी ऐसा कफज रोग या विबन्ध (कब्ज या स्रोतोका अवरोध) नही है कि जिसको भिलावा दूर न करता हो। भिलावाका मग़ज़, वृष्य, बृंहण तथा वात और पित्तको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २७, च० चि० अ० १ पा० ३, सु० सू० अ० ३८; भा० प्र०, राजवल्लभ)।

नव्यमत—भिलावेका रस (तेल) शरीरपर लगनेपर त्वचा काली होकर जलन होने लगती है, फोला उठता है और उसमेंकी लसीका (पछा) जहाँ-जहाँ लगती है वहाँ-वहाँ भी फोले (छाले) उठते हैं। अधिकाश लोगोको यह (भिलावा) लगता है अर्थात् मूत्रत्यागनेमे त्रास होता है, ज्वर आता है और फोले फटकर व्रण बनते है। भिलावेकी यह क्रिया लक्ष्यमे आनेपर मनमे स्वभावत यह विचार उत्पन्न होता है कि जैसे भिलावाके बाहर लगनेसे त्रास होता है वैसा ही किंबहुना उससे भी अधिक त्रास इसे खिलाने पर होगा। परन्तु ऐसा कुछ होता नही। योग्य प्रमाणमें और योग्य आहार-विहारके साथ इसे खिलानेसे कुछ भी हानि नही होती। यह तीक्ष्ण, उष्ण, लघुपाक, कटु, दीपन, पाचन, स्वेदजनन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, अर्शोघ्न, वाजीकर, नाडीसंस्थानके लिए उत्तेजक, रक्ताभिसरणके लिए उत्तेजक, कासहर, उत्तेजक श्लेष्मनि सारक, शोथघ्न, रसग्रथियोके लिए उत्तेजक, आमनाशन, रक्तान्तर्गत श्वेतकणवर्धक और रसायन है। यह रक्तमें शीघ्र मिल जाता है, परन्तु धीरे-धीरे शरीरसे बाहर निक-लता है। पचननलिकाके आमाशय और उत्तरगुद इन भागोपर इसकी क्रिया विशेष होती हैं। यकृत्पर इसकी प्रबल उत्तेजक क्रिया होती है और पित्तस्राव ठीक होता है। इससे यकृत्का रक्तानुधावन और विनिमयक्रिया यथावत् एवं भलीभाँति होती है। इसलिये उत्तरगुदपरका रक्तका दबाव कम होता है। गुदाकी फूली हुई सिराये (अर्श) सकुचित होती हैं और गुदवलीको शक्ति मिलनेसे मलसचय नही होने पाता। इससे खूब भूख लगती है और दस्त पीले रग-का साफ होता है। त्वचापर इसकी प्रबल क्रिया होती हैं और त्वचाके रास्ते यह बाहर निकलता है, इसलिये खूब पसीना आता है, त्वचा गरम मालूम होती है, खुजली उठती है और त्वचा लाल होती है। मूत्रपिण्ड(वृक्को)पर इसकी अतितीव्र और उत्तेजक क्रिया होती है। प्रारम्भमे इससे मूत्रका प्रमाण बढता है, परन्तु तुरन्त गुर्दोंके थक जानेसे मूत्रकी उत्पत्ति कम हो जाती हैं। यह क्रिया इतनी तीव्र होती है कि कभी-कभी मूत्र रक्तसे भरा हुआ होता है। गुर्दोंके समान मूत्रनलिकाके लिये भी यह उत्तेजक है। इसलिये इसे खानेके बाद शिश्नेन्द्रियमें पीडा होती है और शिश्नको दबानेकी इच्छा होती है। इसके सिवाय ज्ञानतन्तुओके द्वारा भी यह शिश्न और वृषणके लिये उत्तेजक है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष और परोक्षरीत्या वाजीकर है। इससे नाडीका प्रमाण बढता है और हृदयका स्पन्दन स्पष्ट प्रतीत होता है तथा रक्तान्तर्गत श्वेतकण बढते है और शोथ कम होता है। श्वेतकण बढनेसे और रसग्रथियोंको उत्तेजन मिलनेसे ग्रथियोकी वृद्धि कम होती है। साराश यह कि शरीरके समस्त अवयवोके लिये उत्तेजक है और थोडी मात्रामे लेते रहनेसे विनिमय क्रिया सुधरती है। इसलिये यह रसायन है।

कफज और वातज रोगोमें भिलावेका प्रयोग किया जाता है। यह उष्णवीर्य है। इसलिये शीतकालमे ही इसका प्रयोग करना चाहिये। गरमीके समयमे इसका प्रयोग नही करना चाहिये। छोटे बालक सगर्भास्त्री और वृद्धो (तथा पित्तप्रकृतिवालो)को भिलावाँ नही देना चाहिये। इसके प्रयोगकालमे रोगीको दूध, घी, शर्करा और भात देना चाहिये। नमक और उष्ण पदार्थ नही देना चाहिये और रोगीका मूत्र देखते रहना चाहिये। यदि मूत्रकी राशि घट जाय और मूत्र धूम्र (या रक्त)वर्णका आने लगे तो प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। भिलावेकी मात्रा अधिक होनेपर (या भिलावा सहन न होनेपर) पहिले शरीरमें खुजली उठने लगती है, खूब पसीना आता है, जलन होती है, तृषा अधिक लगती है और अन्तमें मूत्र लाल होता है। इन लक्षणोके होते ही तुरन्त निवारण औषध देना चाहिये (औ० स०)।

भिलावेकी हानिकर क्रिया सबसे पहले गुदा और शिश्नेन्द्रियके मुखपर मालूम होती है। वहाँ खाज होने लगे या जलन मालूम होने लगे तो तुरन्त प्रयोग बन्द करके नारियलका तेल, घी या रालका मरहम लगाना चाहिये और तिल एवं नारियल (खोपरा) खानेको देना चाहिए।

●

(४८१) मँडुआ

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) मँडुआ, मडुआ, मकड़ा, (स०) रागी, मट्टक, मडक, (ब०) माणी, मेरुया, (ता०, कना०) रागी, (लै०) एलेउसीने कोराकाना (**Eleusine coracana** Gaertn), (२) कुरीधान्य या जंगली मडुआ—एलेउसीने ईण्डिका (**Eleusine indica** Gaertn)।

उत्पत्तिस्थान—मडुआकी खेती भारतवर्षके सभी भागोमें होती है। इसका दूसरा भेद 'जगली' होता है।

वर्णन—बाजरेकी जातिका एक क्षुद्र धान्य (कदन्न) जिसके दाने लाल राईके सदृश होते हैं। भूसी दूर करनेपर इसके भीतरसे सफेद मग्ज निकलता है। बहुत प्राचीन कालसे यह भारतमें बोया जाता है, और अब अनेक स्थानोमे जगली दशामे भी मिलता है।

रासायनिक सगठन—ऐल्ब्युमिनॉइड्स ७ ३, स्टार्च ७३ २, तैल १·५, तन्तु २ ५, फॉस्फोरिक एसिड ० ४ आदि घटक होते हैं।

प्रकृति—सर्द एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गरीब और देहाती लोग मँडुएके आटेकी रोटी पकाकर खाते है। यह अल्पाहार (कम पोषक), गुरु, विष्टभी एव आध्मानकारक होता है और आनाह तथा कब्ज उत्पन्न करता है। जिस अगपर मकडी मली जाय उसपर मँडुएको पानीमे पीसकर पतला लेप करनेसे लाभ होता है। मडुएके आटे और खारी नमक (नमकेशोर)को जलोदरीके शोथयुक्त स्थानके ऊपर मलनेसे सूजन उतर जाती है। श्वयथुविलयन इसका प्रधान कर्म है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—विविध स्नेह (तेल)। प्रतिनिधि—बाजरा।

आयुर्वेदीय मत—मडुआ (नर्तक) मधुर, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, तृप्तिकारक, बलकारक तथा पित्त, त्रिदोष और रुधिरके दोषोको दूर करनेवाले हैं। (नि० र०)।

●

(४८२) मुंडी

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) मुंडी, गोरखमुडी, (स०) मुण्डिका, मुण्डी, श्रावणी, (प०) मुडी, (म०, गु०, मा०) गोरख-मुडी, (व०) मुरमुरिया, (ले०) स्फेरान्थुस् इंडिकुस् (**Sphaeranthus indicus L**), (२) महामुडी या महाश्रावणी–स्फेरांथुस आफ्रीकानुस (**S africanus** Linn.)।

वक्तव्य—इसे यूनानी ग्रन्थोक्त 'कमाजरियूस' समझना ठीक नही है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे कुमाऊँसे सिक्किम तक हिमालयमें ५,००० फुट की ऊँचाई पर, प्रान्तके सभी भागोमें प्राय धानकी क्यारियो अथवा नम जमीनमें इसके पौधे अधिक होते है।

वर्णन—मुण्डीके प्रसरणशील (जमीनपर फैले हुए) प्राय ८ इच ऊचे, गधयुक्त क्षुप वर्षाऋतुके अतमें होते है। काण्ड सपक्ष, पत्तियाँ अवृन्त, अभिलट्वाकार अथवा अभिप्रासवत्, दन्तुर, १-२ इञ्च लवी तथा काण्डसयुक्त होती है। मुण्डक पत्राभिमुख विपर्मलिंग, संयुक्त, ० ५ से ० ७५ इञ्च लवे, व्यूहाक्ष दीर्घित और अध पत्रावलिके पत्र रेखाकार तथा तीक्ष्णाग्र होते है। शीतकालमें किरमजी रंगके फूल आते है। पुष्प छोटे-छोटे (फूल मुण्डक) लगते है। यह फूल 'गुलेमुंडी' नामसे अधिक औषधके काम आते है। जड तन्तुल होती है। स्वाद किंचित् तिक्त और फूलकी गध तारपीनवत् होती है। छोटी और बडी भेदमे मुण्डी दो प्रकारकी होती है।

उपयुक्त अग—पंचाग और पुष्प।

रासायनिक सगठन—ताजे पुष्पित क्षुपमे एक कालापन लिए लाल रगका स्थिर तेल और पत्र-पुष्प काडमें स्फीरेन्थीन (Sphaeranthine) नामक एक ऐल्केलॉइड (तिक्त सत्व) होता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल मुडी, अर्कमुण्डी, माजून मुडी, शर्वतमुण्डी, रोगनमुण्डी और चोआ मुण्डी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०)। राजनिघण्टुमें इसे हिम और पित्तघ्न बताया है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मुण्डीका प्रधान कर्म रक्तशोधन (मुसफ्फीखून) है। यह हृदय एव ज्ञानेन्द्रियोको भी बल देनेवाली है। रक्तशोधन होनेके कारण इसे दमामील, सूजन, बुसूर, कण्डू एव कच्छू और दद्रुरोगमें अकेले या अन्य द्रव्योके साथ शीरा निकालकर या फाण्ट (नकूअ) बनाकर या चूर्ण (सफूफ)के रूपमें गुलेमुण्डी (मुडीके फूल) का उपयोग किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियोको बल देनेके कारण तथा हृदय बलदायक होनेके कारण हृदयदौर्वल्य, मद (मालिनखोलिया), धडकन, (खफकान) तथा मस्तिष्ककी दुर्बलता आदि रोगोमे इसका उपयोग होता है। इन रोगोमे यथाविधि इसका अर्क निकालकर या शर्वत बनाकर उपयोग कराया जाता है। पुष्प आनेसे पूर्व समग्र बूटीको उखाडकर छायामे सुखाकर समभाग मिश्री या शहद मिलाकर ज्ञानेन्द्रियोको शक्तिदेनेके लिये सेवन कराते है। इसका चोआ निकालकर भी सेवन कराया जाता है। शीतल व्याधियो और वाजीकरणके लिये भी इसे लाभदायक समझा जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–भाँगरेका स्वरस। प्रतिनिधि–ब्रह्मदडी और सरफोका। मात्रा–७ ग्रा० से १२ ग्रा० (७ माशासे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—गोरखमुडी कटु, तिक्त, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, मेध्य, रसायन तथा वात, रक्तविकार, अपची, अपस्मार, श्लीपद, कुष्ठ, कृमि, योनिरोग, पाडुरोग, प्लीहाके रोग, मेदोरोग और अर्शका नाश करनेवाली है। (च०चि०,अ० १, पाद ४, ध०नि०, भा०प्र०)।

नव्यमत—मुंडी दीपन, मूत्रजनन और आनुलोमिक है। इसका तेल त्वचा और वृक्क द्वारा निःसरित होता है। इसलिए मुंडी सेवन करनेवालेके पसीना और पेशाबमें एक प्रकारकी गंध आती है। मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें मुंडीसे उत्तम लाभ होता है। इससे पेशाब उतरता है और वृक्कसे मूत्रद्वार पर्यंत सारे मार्गका शोधन होता है, बारम्बार पेशाब होना कम होता है और पेशाबका रंग सुधरता है। इसके अधिक दिन सेवन करते रहनेसे बारम्बार फोड़े-फुंसी निकलनेकी आदत मिटती है और कास, गण्डमाला, शारीरिक अशक्तता आदि जीर्णरोग आराम होते हैं तथा कान्ति सुधरती है।

●

(४८३) मकाई

फैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) मकई, मकाई, मक्का, बड़ी ज्वार(जोन्हरी), भुट्टा, ललमकरी, (अ०) खदरूस, हिंतए-रूमिया, गंदुमे मक्का, शईररूमी, (फा०) जुर्रत(जुर्रा) मक्का, ज्वार कलां, (बं०) भूट्टा, जनर, (पं०) मकई, (म०) मका, (गु०,सिंध) मकाई, (मार०) मक्का, (लै०) जेआ मेज (Zea mays Linn.), (अं०) मेज (maize), इंडियन कॉर्न (Indian Corn)। दाढ़ी या बाल (लै०) स्टिग्माटा माइडिस (Stigmata Maidis), (अं०) कार्नसिल्क (Corn-silk), फ्लावर पिस्टिल्ज ऑफ मेज (Flower pistils of Maize)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें मक्केकी प्रचुरतासे खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह जोन्हरीकी जातिका एक प्रसिद्ध अन्न है, जो लाल, पीला और सफेद रंगका होता है। इसकी बालका 'भुट्टा' और दाने निकले बालको 'गुल्ली' या 'छूंछ' और इसके बालोंको 'दाढ़ी' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—भुट्टाके दाने, दाढ़ी और गुल्ली।

रासायनिक संगठन—दाढ़ीमें ईथर-सुरासार तथा जलविलेय मेजिक एसिड (Maizic acid) २ प्रतिशत, चिपचिपा, निर्मल, हलका भूरा, फीका, न सूखनेवाला, न बिगड़नेवाला, भुट्टेकी गंधवाला अनुत्पत् तेल (Oleum maidis), राल, शर्करा, लबाब और लवण, हरेदानेमें मांसवर्धक पदार्थ (८$\frac{3}{4}$ प्रतिशत), स्टार्च (५४ ३ प्रतिशत), वसा (३ प्रतिशत) तथा सेलूलोज (१५ २५ प्रतिशत) आदि तत्व होते हैं। इसके अतिरिक्त जल (१२ प्रतिशत) राख (१ प्रतिशत–१$\frac{1}{2}$ प्रतिशत) सूखे दानेमें पिष्ठ (७० प्रतिशत), मांसवर्धक द्रव्य ९ प्रतिशत, वसा ६ प्रतिशत, वृक्षके कांडमें शर्करा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द तथा दूसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही और आनाहकारक। भुनी हुई मकाई सर है। यह नेत्रके जालामें विशेष गुणकारी है। मकाईके आटेकी रोटी पुष्कल खाते हैं। यह भी काफी पुष्टिकर है। परन्तु ज्वारकी अपेक्षया अधिक गुरु एवं काबिज है, आनाह उत्पन्न करती और उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए पथ्यकर आहार है। मकाईको भूनकर भी बहुत खाते हैं। इसके खानेसे कब्ज दूर हो जाता है। आर्तवशोणित एवं अर्शोजात रक्त रोकनेके लिए भुट्टेकी गुल्लीको जला-चूर्ण बनाकर खिलाते और नमकके साथ खाँसीमें उपयोग करते हैं। अहितकर—आनाहकारक, गुरु, विष्टम्भी एवं दीर्घपाकी है। निवारण—नमक, कालीमिर्च और शर्करा। प्रतिनिधि—छोटी ज्वार (जोन्हरी)।

आयुर्वेदीय मत—मकाई, रूक्ष, वातकारक(वादी), तृप्तिकारक, विष्टम्भकारक और कफपित्तनाशक है। कच्ची मकाई पुष्टि और रुधिरकारक है। (शा० नि० भू०)।

नव्यमत—दाढ़ी मूत्रल और स्निग्ध (Demulcent) है। बहुश मूत्ररोगो, वस्तिविकार आदिमें बहुमूल्य औषधकी भाँति इसकी प्रशसाकी जाती है। वस्तिगतमूत्रके सपूय विघटन (Purulent decomposition)में विशेषरूपसे उपकारक है। एक पाइंट उबलते जलमें २½ आउंस इसका बनाया हुआ फाट एक सर्वाधिक कार्यकारी कल्प है और स्वच्छदरूपेण प्रयोगमे लेने योग्य है। प्रवाही सत्वकी मात्रा ½ ड्रामसे २ ड्राम है।

•

(४८४) मकोय

फैमिली : सोलानासे (Family . Solanaceae)

नाम—(हिं०) मको, मकोय, कवैया, (अ०) इनबुस्सालब, (फा०) रोबाह तुर्बुक, अगूरे शिफा, अगूरे रोबाह, सगेअंगूर, अंगूरे शिगाल, (स०) काकमाची, (सिं०) कावलि, (कच्छ) कापरू, कापेरू, (कु०) किव, गिव, (द०) कामूनी, (व०) काइस्तला शाक, गुडकामाई, (प०) काचमाच, मको, (म०) कामोणी, (गु०) पीलुडी, (सिं०) कावलि, (कु०) किवे, गिवे; (लै०) सोलानुम् मीनिआटुम् ? (**Solanum miniatum**), (अ०) गार्डेन नाइटशेड (Garden Nightshade)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षमें बगीचो और जोते हुए खेतोमे होती है, और प्रसिद्ध है।

वर्णन—मकोयका ३० से ९० से० मी० (१-३ फुट) ऊँचा क्षुप होता है। पत्र लालमिर्चके समान, पुष्प सूक्ष्म, श्वेतवर्णके, कच्चे फल हरे, पकनेपर ललाई लिए काले रगके हो जाते है। लाल फलका मकोय इसीका एक भेद है। इब्न बैतारके कथनानुसार इसके अनेक भेद होते है। काकनज (**Physalis alkekengi** Linn) इसकी पु० जाति है (इ०बै० ३/१३५)।

उपयुक्त अंग—शुष्क अपक्व फल, पत्र और फलयुक्त पचांग।

रासायनिक सगठन—इसके पचागमे विशेषत फलोमे सोलेनीन (Solanine) नामक एक क्रिस्टली ऐल्केलायड, जो शर्करा एव सोलेनिडीनका एक यौगिक है, पाया जाता है। यह कनीनिकाविस्फारक है। इसके अतिरिक्त इसमें साबुनतत्व या सैपोनिन (Saponin) होता है।

कल्प तथा योग—कोमलशाखाग्र एव पत्रस्वरस (मात्रा ३० ग्रामसे १०० ग्राम)। ताजे पत्रके स्वरससे बनाया हुआ क्वाथ तथा रसक्रिया। रसक्रिया-निर्माणविधि—मकोयकी ताजी पत्तियोको खूब कुचल-पीसकर छान लेवें। तत्पश्चात् मिट्टीके बर्तनमें १०-१५ मिनट तक पकावे। पुन उसे उतारकर ठढा होनेपर छानकर रखें। यह क्वाथ है जिसे यूनानीमें हरी मकोयकी पत्तीका फाडा हुआ पानी (अर्क बर्गेइनबुस्सालब सब्ज मुरव्वक) कहते है। इसकी मात्रा १०० मि० लि० से १२५ मि०लि० है। उक्त प्रकारसे प्राप्त रसको पकानेके स्थानमे उसे बालुका या जलबाष्प (Sand or water-bath)पर इतना पकावे, कि वह गाढा हो जाय तो उस मृदु गाढे पदार्थको रसक्रिया (Extract) कहते है। मात्रा—२ ग्राम, दिनमे तीन बार। योग—अर्क मको, कैरूती मकोवाली।

•

(४८५) मकोय लाल

फैमिली : सोलानासे (Family . Solanaceae)

नाम—(भा० बाज़ार) इनबुस्सालब, (ले०) सोलानुम डलकामारा (**Solanum dulcamara** Linn); बिटर-स्वीट नाइटशेड (Bitter Sweet Nightshade), वुडी नाइटशेड (Woody Nightshade) ।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके अनुष्णाशीत प्रदेशोमे कश्मीरसे गढवाल तक, तथा ईरान, तुर्किस्तान, मध्य एशिया आदिमें इसके क्षुप होते है । परन्तु कुछ प्रमाणमे इसके लाल शुष्क फलका आयात बम्बईमे फारससे होता है । बाजारोमें इसके सूखे हुए कोमल लकडीके टुकडे और लाल फल बिकते है ।

वर्णन—यह एक छोटी-सी काष्ठमय झाड़ी या आरोही पौधा है जो लगभग १ ८मीटरसे २३/४ मीटर (६-८फुट) तक ऊँचा होता है । इसकी शाखाएँ पतली और जड काष्ठमय होती है । पत्र एकान्तर, सवृत, त्रिखण्ड, नोकदार, नरम, चिकना और हलका हरा, पुष्प बनफशई रगका, फल छोटा अण्डाकृति चनेके बराबर प्रारम्भमे हरा फिर पीला, अन्तमें श्वेताग रक्तवर्णका हो जाता है, और पत्तोके गिर जानेके उपरान्त गुच्छोमें लटकते रहते है । स्वाद पहले तिक्त बादमें मधुर होता है । इसलिए इसको लेटिनमें डलकेमारा, आग्लभाषामे बिटरस्वीट और अरबी तथा सस्कृतमें क्रमश अल्हलोवल्मुर्र तथा स्वादुतिक्त कहते है । ताजा क्षुप दुर्गन्धयुक्त होता है, परन्तु शुष्कक्षुपमें दुर्गन्ध नही होती ।

उपयुक्त अग—पत्र और छोटी-छोटी शाखाएँ । किन्तु यूनानी वैद्यकमे इसके फल प्रयुक्त होते है । भारतीय हकीम इसके सिवाय पूर्वोक्त दोनो प्रकारकी मकोयका अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार करते है ।

रासायनिक सगठन—इसमें डलकेमारिन (Dulcamarin) या पिक्रोग्लिसिओन (Picroglycion) नामका एक विशेष प्रकारका कुछ पीताभ वर्णका ग्लूकोसाइडके स्वभावका (अक्षारोदस्वभावी) सत्व है जो शर्करा और सोलैनिडीनमें वियोजित हो जाता है ।

कल्प तथा योग—अर्क मको , केरुती मकोवाली ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एव खुश्क है । आयुर्वेदमतेन अनुष्णाशीत (च०, सु०) एव उष्णवीर्य है ।

गुणकर्म तथा उपयोग—सग्राही, दोषविलोमकर्ता, उपशोषण, तारल्यजनन, सतापहर तथा लेप और पानत उष्णश्वयथुविलयन है । कोपस्थ अगो (अहशाऽ) की सूजन विशेषत यकृच्छोथ, अन्त्र आमाशयशोथ और जलोदरमें तथा कण्ठ एव उरःफुफ्फुस रोगोंमें सूखी मकोय पान और लेपत उपयोग की जाती है । उक्त रोगोमे इसके पत्रस्वरसका फाडकर लिया हुआ पानी पिलाते है । इससे विरेक द्वारा दोषोत्सर्ग होता है । अकेला या अन्य औषधियोके साथ पीसकर इसका (मकोय) लेप करते है । प्रारम्भमे लेप करनेसे यह दोषविलोमकरण और उसके बाद श्वयथुविलयन कर्म करती है । अग्निदग्ध, विस्फोटजन्य व्रण, परिसर्पी व्रण और व्रणित कर्कट (सर्तान) रोगमे इसका अकेला या अन्य औषधियोके साथ लेप किया जाता है । जिह्वाशोथ और कठशोथमे इसका अकेला या अमलतासकी गुद्दी डालकर बनाए हुए काढेसे गण्डूप कराते है । नासिका एव कर्ण रोगोमे मकोयके पत्तेका कुनकुना रस कान और नाकके भीतर टपकाया जाता है । यह उष्ण उर शूलका प्रशामक एव सूजन उतारनेवाला है । **अहितकर**—वस्तिरोगोमें । **निवारण**—मधु । प्रतिनिधि—काकनज । मात्रा—शुष्क मकोय ५ ग्रामसे ७ ग्राम तक । मकोयकी पत्तीका फाडा हुआ रस ४ तोले तक ।

आयुर्वेदीय मत—मकोय कटु, तिक्त अनुष्णाशीत, भेदन (सारक), वृष्य, स्वर्य, रसायन, त्रिदोषप्रशमन तथा कुष्ठ, शूल, अर्श, शोथ और कण्डूको मिटाने वाली है एव ज्वर, प्रमेह, वमन और हृदयरोगको हरनेवाली है ।

सुश्रुतने काकमाचीके शाकको सतीन (मटर)के समान लिखा है। चरकमे वात, रक्त, अर्श, ऊरुस्तम्भ आदिमें मकोय शाकको गुणप्रद माना है। मकोय और मधु मिलाकर खानेसे विप होकर मरणकी आशका रहती है। उनके मतसे मकोयका वासी शाक खानेका निपेध है।

नव्यमत—मकोय शीतल, मूत्रजनन, रेचन, वेदनास्थापन, श्लेष्महर, स्वेदजनन और कुष्ठघ्न है। मकोय की प्रधान क्रिया यकृत्पर होती है। यकृत्क्रियाके विगडनेसे जीर्ण यकृद्वृद्धि, अर्श, उदर आदि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। मकोयके पत्रस्वरससे दस्त साफ होकर आन्त्रगत विपका निर्हरण हो जाता है अल्प सचित विष जो वाहर दस्तके साथ नही निकलते और यकृत्मे पहुँचते हैं, वे मूत्र द्वारा निकल जाते हैं। शोथमें स्वरस वहुत ही उपयोगी है। ज्वर, शोथ, हृद्रोग और नेत्र रोगमें इसका फल उपयोगी है।

डॉ० मोहीउद्दीनने सशोथ या अशोथ चिरज यकृद्वृद्धिमें काली और लाल दोनो प्रकारकी मकोयके पत्र-स्वरसके फाडे हुए पानी अथवा पत्रस्वरसकी रसक्रियाका वहुत वडी मात्रा (अत्यधिक प्रमाण)मे प्रयोगका निर्देश किया हे।

यकृद्विकारोमें इसका प्रयोग अतीव गुणकारक सिद्ध हुआ है। इसके ताजे पत्रके रससे तैयार किया हुआ क्वाथ और रसक्रिया काममें ली जाती है। इसके स्वरसको अग्निपर पका छानकर प्राप्त किये हुए पानीको १००-१२५ मि० लि० की मात्रामे प्रतिदिन प्रात काल देनेसे इसका जलवत् विरेचन तथा मूत्रजनन कार्य होता है। इसकी रसक्रियाको २ ग्रामकी मात्रामे दिनमे २-३ वार देनेसे इसका मूत्रजनन एव मृदुविरेचन कर्म होता है तथा यकृद्वृद्धि एव अन्य चिरज यकृद्रोगोमे इसका वडा अच्छा प्रभाव होता है।

०

मकोय जंगली

फ़ैमिली र्‌हाम्नासे (Family Rhamnaceae)

नाम–(हिं) जगली मकोय, मकोय (ई), मकोइचा, मकोइया, अम्लचाँक(ग)डो (मकालात एहसानी), (स०) शृगालकोली, दु स्पर्शा, वल्लीवदर, (व) सियाकुल; (म०) मकोर, (उडि०) वडोकोली, कोटकोली, (खर०) डथौरा, (ते०) परकीपडु, (ले०) जीजिफुस एनोप्लिआ (**Zizyphus oenoplia** Mill), (अ०) जैकाल जुजुव (Jakcal Jujube)।

वक्तव्य—वास्तवमे यह वेर (जीजिफुस) जातिकी वनस्पति है, किन्तु चूकि इसका फल रूपरेखा एव रगमे मकोयकी भाँति होता है, और उक्त वनस्पति जगलीरूपसे (Wild) ही पायी जाती है, इसीलिए इसके उक्त जगली-मकोय या मकोइया आदि नाम रखे है। वदर जातिमे प्राय झाडियाँ या छोटे वृक्ष होने हैं, किन्तु यह लता-स्वभावकी होती है, जिससे सस्कृत मे "वल्लीवदर" सज्ञा पडी है, कँटोली होनेसे पौधेपर हस्तक्रिया सुगम न होनेसे दु.स्पर्शी, तथा सियारको इसके खटमिट्ठे फल प्रिय होनेसे '*शृगालकोली*' नाम रखा गया प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह वेरकी जातिकी तरहकी एक कँटीली झाडीका फल है, जो रगरूपमें मकोयके समान, किन्तु अपेक्षाकृत कुछ वडा और वेरकी भाँति कडा गुठलीदार होता है। अपक्वावस्थामे यह हरा और किंचित् अम्ल, किन्तु पक्वावस्थामें काला और अम्लतायुक्त मधुर हो जाता है। वीज छोटा और चिपटा तथा कडा और मग्ज अरहरकी दालके वरावर, जिसका स्वाद फीका और किंचित तिक्त होता है।

प्रकृति—पहले या दूसरे दर्जेमे सर्द और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह क्षुधाजनक, आहारपाचन, अश्मरीनाशक, कुष्ठघ्न, अर्शोघ्न और अतिसारघ्न है (मखजनुल् मुफ्रदात)। कच्चे फलमें किसी कदर चेप होता है और पका हुआ फल थोडा-सा चिकना और फीका, गुरु, कफकारक तथा मलमूत्रसंग्रहकारक है (खज़ाइनुल् अद्विया)।

●

(४८६) मखाना

फ़ैमिली : नीम्फेआसे (Family Nymphaeaceae)

नाम—(हिं०, व०) मखाना, मखाद्य, फूलमखाना; (म०) मखान; (म०) मकाणे, मखाणे, (गु०) मखाणा; (पं०) ज़ुवेर; (लै०) एउर्यालो फेरोक्स (Euryale ferox Salisb)।

उत्पत्तिस्थान—बिहारके मिथिला प्रदेशमें विशेषतः दरभंगामें मखाना अधिक होता है। उत्तर, मध्य, पश्चिम भारतवर्ष, काश्मीर, बंगाल, बिहार, अवध, मणिपुर आदिके पानीके बड़े तालाबोंमें या झीलोंमें भी पाया जाता है।

वर्णन—यह कमलकी तरहके काँटेदार जलीय पौधेके फलके बीज हैं, जो कमलगट्टेकी तरह होते हैं। इनको भूननेसे मखानेका लावा प्रस्तुत होता है। कच्चे मखानेका सफेद मग्ज निकालकर खाते हैं और पके सूखे मखानेको भूनकर योगोंमें डालते हैं। मखाना (बीज) और कमलबीज (कमलगट्टा) गुणधर्ममें समान माने जाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ताजा मखाना वृष्य, वाजीकर और शुक्रल है। सूखा भुना हुआ मखाना संग्राही होता है। मखानेका प्रयोग अधिकतया स्त्रियोंमें प्रसवोत्तर दौर्बल्यको दूर करनेके लिये हलुओंमें डालनेके लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त शुक्रप्रमेह एवं कामावसादके लिये इसे चूर्णोंमें डालकर उपयोग करते हैं। यह विशेषरूपसे बृंहण है। अहितकर—शीतल प्रकृतिके लिये। निवारण—इसका भृष्ट करना। मात्रा—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—मखाना गुणमें कमलगट्टे जैसा होता है।

●

(४८७) मछेछी

फ़ैमिली आमारान्थासे (Family Amaranthaceae)

नाम—(हिं०) मछेछी, पानाचूनी, (सथाल) गुडरीसाग, गरँपडी अडा, (व०) शालिंच, (बम्ब०) काचडी; (म०) मत्स्याक्षी, मत्स्याक्षक (सु० शा०), मीनाक्षी, (कना०) हुनगुंदा, (लै०) आल्टरनैन्थेरा सेस्सिलिस (Alternanthera sessilis R Br)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—एक छोटी बूटी जो भारतवर्षके समस्त उष्णतर भागोंमें पानीके किनारे या नम स्थानोंमें उगती है। इसके क्षुप परिप्रसरी, अथवा ग्रन्थिमूलप्रसरी होते हैं। कभी-कभी शाखायें उत्थितप्रसरी होकर आस-पासकी झाडियोंपर फैली रहती है। पत्तियाँ लम्बी अण्डाकार, रेखाकार, आयताकार या अन्य प्रकार

की भी होती है और प्राय ०'५–२ इञ्च लम्बी रहती है। पुष्प मुण्डकाकार, पुष्पगुच्छ श्वेत या गुलावी होते है; पुष्प खिलने पर आधार भागमे गुलावी और ऊपर सफेद होते है। इसका पत्रशाक होता है।

उपयुक्त अग—पंचाग (क्षुप), काड, पत्र।

रासायनिक सगठन—नवीन शाखाये पोपक होती है और उनमें प्रोटीन ५ प्रतिशत तथा लोहा होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (मतान्तरसे मोतदिल)। वैद्योकी रचनाओमें सर्द लिखा है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक, व्रणलेखन (मुजाफ्फिफ़ कुरूह), सग्राही (काविज), दृष्टिसरक्षक, रक्तशोधन, व्रणलेखन और शुक्रप्रमेहनाशन इसके प्रधान कर्म है। रक्तशोधक होनेसे रक्तविकारजन्य रोगोमें इसका उपयोग करते है। व्रणलेखन (मुजफ्फिफ कुरूह) होनेसे मलहरकल्पोमें इसे डालते है। जिन व्रणोसे पीला पानी बहता है उनको यह अतिशीघ्र सुखा देती है। तिलके तेलमे इसका स्वरस मिलाकर इतना पकायें कि केवल तेलमात्र शेष रह जाय। यह तेल भी व्रणोमे लगाया जाता है। संग्राही होनेके कारण शुक्रस्राव, शुक्रप्रमेह और रक्तातिसारको बन्द करती है। मछेछी, भँगरा और विषखपरा इनके स्वरससे नेत्रवर्ति वनाकर उपयोग करनेसे नेत्राभिष्यद, रक्ताधिमन्थ (वर्दानिज), नेत्रकण्डू, पोथकी या रोहे और दृष्टिमान्द्यमें लाभ होता है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। **मात्रा**—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—मछेछी स्वादिष्ट, तिक्त, कषाय, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, लघु, ग्राही तथा कुष्ठ, पित्त, कफ और रुधिरविकारको दूर करनेवाली है। (भावप्रकाश)।

●

(४८८) मजीठ

फ़ैमिली : रूबिआसे (Family : Rubiaceae)

नाम—(हिं०, प०, गु०) म(मँ)जीठ, (यू०) Erathrodanon (D. 3 150); (अ०) फूह; फुव्व, फोव्वहुस्सबग, फोव्वहु (–तु)स्सबागीन, उरूकुस्सबग, उरूकुल्‌हम्र, (फा०) रूनास, (अफ०, फा०)रूदक, रूदानक, (स०) मजिष्ठा, लोहितलता, योजनवल्ली, (क०) मजेठ, (ब०) मजिष्ठा, (सिंघ) मैंठ, (म०) मजिष्ठा, (ले०) रूबिआ कार्डिफ़ोलिआ (**Rubia cordifolia** Linn), (अ०) हार्ट-लीव्ह्ड मॅडर (Heart-leaved Madder), इण्डियन मेडर (Indian Madder)।

वक्तव्य—इसका विदेशी भेद रूबिआ टींक्टोरिआ (**R. tinctoria** Linn) है।

उत्पत्तिस्थान—यह शीत कटिवधीय पहाडी प्रदेशो, कश्मीर, नेपाल, अफगानिस्तान आदि स्थानोमें होती है।

वर्णन—यह एक सुदीर्घ लता वा झाडी है, जो वृक्षादिको आश्रय करके प्रतानविस्तार करती है। जड़ एक-दो इच लम्बी, छोटी और ताजी ललाई लिए वैगनी होती है। मोडनेपर अन्दरकी आभा लाल होती है। पुरानी होनेपर जडे काली पड जाती है। स्वाद प्रारम्भमें मीठा इसके बाद जरा चरपरा और तिक्त होता है। हिन्दुस्तानी, नेपाली, ईरानी और अफगानी इन नामोसे चार प्रकारकी मजीठ मिलती है। अफगानिस्तानसे सिंध होकर जो मजीठ यहाँ आती है, वह उत्तम समझी जाती है। हिन्दुस्तानी मजीठ कनिष्ठ होती है।

उपयुक्त अंग—समग्र लता विशेषकर जड।

रासायनिक संगठन—जड़में रालदार एवं तद्भव पदार्थ, निर्यास, शर्करा, रंजक द्रव्य और चूनेके लवण होते हैं। रंजक द्रव्यमें पर्प्यूरिन (Purpurin) नामक एक लाल क्रिस्टली सत्व, मजिस्टीन (नामक एक पीला सत्व (ग्लूकोसाइड) प्रभृति सत्व होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (कै० नि०, ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यकृत और प्लीहाके अवरोधका उद्घाटनकर्ता तथा उनका मशोधनकर्ता, मूत्रार्तवजनन, त्वगश्मविलयन, लेखन और उष्णताजनन है। प्रसवशोणितके उत्सर्ग तथा मूत्रार्तवजननके लिए यह अधिकतर प्रयुक्त होती है। कहते हैं कि इसके प्रचुर प्रयोगसे रक्तमूत्र रोग हो जाता है। यकृत्प्लीहा-नशोधन तथा अवरोधोद्घाटनके लिए इसको सिकंजबीनके साथ उपयोग कराते हैं। शीतल वातव्याधियोंमें भी यह पान और लेपन प्रयुक्त होती है। लेखन होनेके कारण दद्रु, झाईं, किलास और त्वचाके चिह्न दूर करनेके लिए इसे सिरकामें मिलाकर लेप करते हैं। अहितकर—वस्तिको। निवारण—कतीरा और अनीसूँ। प्रतिनिधि—कबाबचीनी और तज। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मजीठ कषाय, मधुर, तिक्त, गुरु, उष्णवीर्य, वर्ण्य, विषघ्न, ज्वरहर, पित्तसशमन तथा कफ, व्रण, प्रमेह, रक्तविकार, नेत्ररोग, कानके रोग, योनिरोग, शोष, विसर्प, कुष्ठ, अर्श और रक्तातिसारको दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, ३९; ध० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—मजीठ स्तम्भन, पौष्टिक, आर्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक, त्वग्दोषहर शोथघ्न और व्रणरोपण है। इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाड़ियोंपर होती है। अल्पप्रमाणमें देनेसे इन्द्रियोंको शान्ति मिलती है। परन्तु बड़े प्रमाणमें देनेसे थोड़ा नशा (कैफ) चढ़कर भ्रम उत्पन्न होता है। इससे गर्भाशयका सकोचन होता है, उसकी पीड़ा कम होती है और आर्तव जारी होता है। यह क्रिया स्वय उसकी पेशीपर और नाड़ियोंद्वारा होती है। इससे त्वचाका रक्तानुधावन बढ़कर त्वचाकी जीवनविनिमयक्रिया सुधरती है। मजीठसे मूत्र और स्तन्य लाल होता है। प्रसूतावस्थामें रक्त साफ गिरनेके लिये इसका काढ़ा देते हैं। इसके साथ गर्भाशयपर कार्य करनेवाले कीटामारी, कपासके मूलकी छाल, भाँग, पीपलामूल आदि अन्य औषध भी मिलाये जाते हैं। सूतिकाज्वरमें इसके साथ मूत्र-जनन और स्वेदजनन औषध मिलाने चाहिए।

●

(४८९) मटर

फ़ैमिली लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) मटर, (अ०) करस्न, हब्बुल्-बकर, (फा०) मुशग, मुशगगावी, गावदान (स०) कलाय, मुण्ड-चणक, सतीन, हरेणु, (म०; बम्ब०) वटाना, (गु०) (प०, बं०) मटर, (लै०) उद्यानज अर्थात् गार्डेन-पी—पीसुम साटीवुम (**Pisum sativum L**); क्षेत्रज या देशी अर्थात् फील्डपी—पीसुम आर्वेन्स (**P. arvense Linn**) इसको हिन्दीमें छोटी मटर, उरी मटर और दिलभी भी कहते हैं। (अ०) पी (Pea), पीसन (Peason), (फ्रा०) पोइस (Pois)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक भागोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध फली जिसके हरे बीजोकी तरकारी और अन्य खानेकी वस्तुयें बनाई जाती है। पकी फलियों और सूखे बीजोको भी विविध प्रकारसे खाया जाता है। छोटे-बड़े, सफेद-काले आदि भेदसे यह कई प्रकार-

की होती है। काबुली मटर इसका एक भेद है। इसे अरबीमें 'खुल्लर' या 'जल्बान' और फारसीमें 'मुशंगदानः' या 'मशो' कहते हैं।

उपयुक्त अग—बीज।

रासायनिक सगठन—इसमे ट्रिगोनेल्लीन (Trigonelline) नामक एक ऐल्केलाइड होता है। पके बीजोमें एक तेल होता है, जिसमे बीज ग्रथि अन्त स्रावविरोधी (Anti-sexhormonic) प्रभाव होता है और जो बन्ध्यत्व (Sterility) उत्पन्न करता और नर (वृपणोके) अन्त स्रावके प्रभावको नष्ट करता (ओजहर) है।

कल्प तथा योग—कीरूती आर्द्र करस्ना।

प्रकृति—पहलेसे दूसरे दर्जे तक गरम और दूसरे दर्जेमे रूक्ष, आयुर्वेदके मतसे शीतल एव रूक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह प्रमाथि, लेखन, सांद्र कफका उत्सर्ग करती और उर·फुफ्फुसको दोषोंसे शुद्ध करती है। मधुके साथ यह तर खाँसीमें गुणकारी है। इसके लेपसे स्तनशोथ मिटता है। जरावद मुदहरज, ईरसा, कुदुर और खूनखराबाके साथ इसका मजन दाँतोकी जडोके मासको दृढ करता है। तिलके तेलके साथ यह पेटकी मरोड एव पेचिशको गुणकारक है। सिरकेके साथ यह कण्डू, वृक्क, कामला और तापतिल्लीको लाभकारी हैं। खालित्य, फिरग और अस्थिभग्नमे मधुके साथ इसका लेप गुणकारी है। कनेरस्वरस और खरबूजोके बीजोके साथ इसका प्रयोग श्वित्रनाशक है। जिफ्तके साथ इसका प्रयोग घावका प्रसार रोकता है। इसके काढेसे मुँह धोनेसे चेहरा लाल होता है तथा दाग आदि मिट जाते है। इसकी रोटी खानेवाले लोग खुश्कीके रोगसे पीडित हो जाते है। इसको पीसकर लेप करनेसे छीप, झाईं और लहसुन (नमश) आदिके दाग दूर हो जाते है। इसको भून-पीसकर पौने तीन तोले ४ रत्तीकी मात्रा मधुमे मिलाकर चाटनेसे दुबला आदमी भी मोटा हो जाता है। इसके छिलके उतार-पीसकर खानेसे कामशक्ति बढती है। मात्रा—७ ग्रामसे १ ०५ ग्राम (७ माशे–१०॥ माशे) तक। अहितकर—रक्तस्राव जारी करती तथा रक्तातिसार और दूपित दोष उत्पन्न करती है। निवारण—गिल अरमनी और गुलाबके फूलोका अर्क।

आयुर्वेदीय मत—मटर (कलाय) मधुर, कषाय, पाकमे स्वादिष्ट, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, अत्यन्त वातकारक, रुचिकारक, पुष्टिकारक, आमदोषकारक, मलको निकालनेवाला तथा दाह, पित्त, कफ और रुधिरविकारका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, रा० नि०, भा० प्र०)। मटरका शाक (कलायशाक) अनुरसमें कषाय, विपाकमें मधुर, भारी, वातजनक और पित्तकफनाशक है। (सु० सू० अ० ४६ शाकवर्ग)।

नव्यमत—ऐसा विश्वास करते है कि इसके कच्चा सेवन करनेसे प्रवाहिकारोग हो जाता है। स्पेनमें इसका आटा ग्रन्थिविलयन एव मार्दवकर (Emollient and Resolvent) समझा जाता है और पुलटिस (Cataplasm) की भाँति इसका उपयोग करते है।

●

(४९०) मनसिम् (मिन्सम् या मिन्शम्)

फैमिली : बर्सेरासे (Family · Burseraceae)

नाम। वृक्ष (हिं०) जावाबदाम, (यू०) लजीतुस, (अ०) मनसि(शि)म्, (फा०) दरख्त हब्बुल्मन्सिमं; (मलाबार) कानारि, (उ०) बादामजावी, (लॅ०) कानारिउम् कॉम्मूने (Canarium commune L.), (अं०) जावा आमन्ड ट्री (Java Almond Tree)। बीज (अ०) हब्बुल्मन्सि(शि)म्, मिन्सम्(मिन्शम्), फल (अ०) समर मन्शिम्। राल (अ०) रातीनजुल् मन्शिम, (उ०) मुन्शिमकी राल।

उत्पत्तिस्थान—पेनाग, पश्चिम भारतीय द्वीपसमूह तथा जावामे इसके वृक्ष होते हैं। भारतवर्ष, विशेषत. दक्षिण भारतके त्रावणकोण और लका आदिमे इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—इसके शमशादके समान वडे वृक्ष होते हैं, जिसके तने और मोटी शाखाओसे पुष्कल निर्यास(राल—रातीनजुल् मन्सिम) स्रवित होता है। यह इतना अधिक होता है कि शक्वाकार (Conical) अश्रुरूप या वडे टुकडोंमें लटकता रहता है। पहले यह सफेद, तरल एव चिपकदार होता है, किन्तु पीछे पीताभ और मोमकी तरह ठोस हो जाता है। यह पीताभ श्वेतरगके वडे सूखे समूहोंमें प्राप्त होता है। गरम करने पर यह तुरत नरम हो जाता है और तब उसमे सौफ या नीबू या एलीमाई (Elimi)के समान गन्ध आती है। इसलिए इसे ईस्ट इण्डियन एलिमाई कहते है। फल (समर मन्सिम्) ३ १२५ से० मी० से ३ ७५ सें०मी० लम्बा, लट्वाकार (Ovoid), त्रिकोणयुक्त, सिरेकी ओर नुकीला, मसृण, कुछ-कुछ वैंगनी तथा बाह्य फलत्वक् पतला होता है। बीज (Nut)—अर्थात् हब्बुल्मन्सिम् सुगन्धित, स्वादिष्ट, कालीमिर्चके बराबर, बहुत चिकना और सरलतासे टूट जानेवाला, बहुत कडा, त्रिकोण, अस्फोटी (Indehiscent), एककोषयुक्त होता है। गिरी या मग्जमे एक प्रिय एव सुस्वादु अघतरल वसा ४० प्रतिशत पायी जाती है। यूनानीमतानुसार बागी और जगली भेदसे उसके वृक्ष दो प्रकारके होते हैं।

उपयुक्त अग—पत्र, राल (Elimi), फल, बीज और मूल।

रासायनिक सगठन—ओलियोरेजिन (Oleo-resin)से प्राप्त अनुत्पत् तेलके ३० प्रतिशत ऐनेथोल, और अल्प प्रमाणमें टरपीन्स (Terpenes) होते हैं। बीजमें आर्द्रता ३ ७६, प्रोटीन १९ ५७, वसा ७२ ८४ और भस्म ३ ८५ प्रतिशत होता है।

हब्बुल् मन्सिम—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण एव खुश्क प्रकृतिके कारण यह उष्णता, रूक्षता और उत्तेजन उत्पन्न करती है। इसमे किसी भाँति अवरोधोद्घाटनकी शक्ति भी होती है। अतः मूत्रावयवो पर इसका मूत्रोत्सर्जक प्रभाव होता है। नाडी बलवर्धन और वाजीकरण इसके प्रधान कर्म है। नाडीदौर्बल्य, कामावसाद (नपुसकत्व), आर्द्र अग्निमाद्यमे इसको मधुमें मिलाकर खिलाते हैं। वस्तिवृक्काश्मरीमें इसका उपयोग करते हैं। हब्बुल्मन्शिम् वृक्षकी राल व्रणोपयुक्त मलहर कल्पोंमें पडती है। अहितकर–शिर शूल उत्पन्न करता है। निवारण–ऊँटनीका दूध। प्रतिनिधि–तुम्बरू। मात्रा–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशासे ३ माशा तक)।

●

(४९१) ममीरा

फैमिली रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हि०) ममीरा, मुमीरा, (अ०) अल्मामीरान (इ० बै०), मामीरान, (स०) मिश्मीतिक्ता, पीतमूला (नवीन), (म०) ममीरा, (व०) ममीरो, (वम्ब०) मिश्मीतीत, मामीरान, मम्मीरा, (अस०) मिश्मीतीता, (ले०), कोप्टिस टीटा (Coptis teeta Wall), (अ०) कोप्टिस (Coptis), गोल्डेन थ्रेड (Golden Thread)।

वक्तव्य—यह आसामके मिश्मी नामकी पर्वतमालामें अधिकतया होता है, जहाँसे 'मिश्मी' नामकी जातिके लोग इसको वेचनेके लिए लाते है, तथा यह स्वादमें तीता (तिक्त) होता है, इसलिए इसको आसाममे 'मिश्मी तीता' कहते है। वनस्पतिके लैटिननाममें Specific name 'teta' भारतीय नामके 'तीता' का ही रूपान्तरमात्र है।

उत्पत्तिस्थान—काबुलसे लेकर असम तक समशीतोष्ण हिमालय प्रदेशमे विशेषत: असमके पूर्वके पहाडो स्थानो (मिष्मी पहाडियो)में तथा चीनमे होता है।

वर्णन—इसका काडहीन छोटा क्षुप होता है। क्षुप वर्षायु, परन्तु मूल बहुवर्षायु होती है। पत्ती देखनेमें हसराजकी पत्तो-सी मालूम पडती है। मूल (पाताकी धड़) लगभग २५ से ७५ से० मी० (१ से ३ इच) लबे, गिरहदार और टेढे, ऊपरसे श्यामवर्ण या कालाई लिए पीले, और भीतरसे पीले, स्वादमें तिक्त होते हैं, जो बम्बईमे चीनसे सिंगापुर होकर आते है। भारतीय बाजारोमे ममीरा असमसे भी आता है। कुछ दूसरे पौधोको जडें, जैसे कुटकी और पियारांगा वा ममीरी (थालीक्ट्रम फोलिओलोसुम् **Thalictrum foliolosum** DC)की जडें भी, जो इससे मिलती-जुलती होती है, ममीरेके नामसे बिकती हैं, और उन्हे नकली ममीरा कहते हैं। चीनी ममीरा (मामीरान चीनी) ममीराका उत्कृष्टतम भेद है।

रासायनिक सगठन—ममीरामूलमें बर्बेरीन (Berberine), तथा कॉप्टीन (Coptine) नामका एक पीला तिक्त सत्व होता है, जो जल और सुरासारमें विलेय है।

कल्प तथा योग—नूरुलऐन।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—ममीरा लेखन और दृष्टिबलवर्धन है। आतरिक उपयोगसे वातानुलोमन और मूत्रल है। इसको अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ खरल करके दृष्टिदौर्बल्य, जाला, फूली और धूम्रदर्शन (गुब्बार) प्रभृति जैसे नेत्ररोगोके निवारणके लिये नेत्रमे लगाते है। यह नेत्ररोगोमें विशेष गुणदायक है। लेखन होनेके कारण नखोका सफेद होना, श्वित्र, छीप वा झाईं, कच्छू तथा त्वचाके दाग (धब्बे)में मधु और सिरकेके साथ इसको पीसकर लेप करते है। मूत्रल होनेके कारण इसे अवरोधजन्य कामलामें अनीसूनके साथ पीसकर पिलाते हैं तथा उपयुक्त औषधियोके साथ इसे सूजाकमे खिलाते है। अहितकर–वृक्करोगोमे। निवारण–मधु। प्रतिनिधि–हल्दी और मुर मक्की। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

नव्यमत—चीनमें मधुमेहघ्न रूपमें इसका उपयोग होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ममीरा रसमे तिक्त, वीर्यमें उष्ण और रूक्ष, लेखन, शोथहर, चक्षुष्य, ज्वरहर, दीपन, पाचन और सर है। नेत्राभिष्यन्दमे नेत्रके ऊपर इसका लेप किया जाता है। बीस भाग गुलाबपुष्पार्कमे एक भाग ममीरा महीन पीसकर कपडेसे छानकर बनाये हुए द्रवकी बूँदें नेत्रमे डाली जाती है। नेत्रशुक्ल (फूली)मे इसे मधुसे घिसकर नेत्रके भीतर लगाते है। नेत्रमे लगानेके सुरमेमें इसे डाला जाता है। १५ से ३ ग्राम (१॥ माशेसे ३ माशे) तककी मात्रामे ज्वर आनेके पूर्व ३-३ घण्टेसे ३ मात्रा देनेसे विषमज्वर रुक जाता है। कटुपौष्टिक और दीपन पाचन होनेसे रोगोत्तर दौर्बल्यमें ५ से १० रत्तीकी मात्रामे अकेला या लोह भस्मके साथ मिलाकर दिया जाता है।

●

(४९२) मरोड़फली

फ़ैमिली : स्टेर्कूलिआसे (Family Sterculiaceae)

नाम—(हिं०) मरोर(ड)फली, मुर्रा, मुरेर, मुरेरआ (मिर्जापुर), (स०) आवर्तनी, आवर्तफला, विषाणिका (अथर्व०), (ब०) आतमोडा, (म०) आडशमन्ति, (ता०) वलम्बुरि, (मल०) ईश्वरमुरि, (का०) भूतकरुलु, (लै०) हेलिक्टेरेस ईसोरा (**Helicteres isora** Linn), (अं०) ईस्ट इण्डियन स्क्रू (East Indian Screw)।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसका अरबी नाम हलिलवाऽअलीऽल् हलिलवाऽ और फारसी नाम गश्तवरगश्त(वा किश्तवरकिश्त) तथा पेचक लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त मध्य और पश्चिम भारतवर्ष और लंका आदि।

वर्णन—यह एक गुल्मकी बाजारमें मिलनेवाली प्रसिद्ध फली है, जो २.५ से० मी० से ५ से०मी० (१–२ इञ्च) लम्बी, बटी हुई रस्सीकी तरह पेचदार होती है। इन फलियोंके गुच्छे लगते हैं।

उपयुक्त अंग—फली।

रासायनिक संगठन—फलीमें थोड़ी मात्रामें स्निग्धपदार्थ होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, तारल्यजनन, विरेचन विशेषकर श्लेष्म-विरेचन, लेखन, संशमन (अवसादक) और प्रवाहिकाहर। विलयन और तारल्यजनन होनेके कारण यह श्लेष्मविकृतिको दूर करती और उदरस्फीतिमें गुणकारी है। लेप करनेसे यह सर्द सूजनको उतारती है। प्रवाहिकामें इसका क्वाथ और फाट बनाकर पिलाते हैं। लेखन होनेके कारण इसको सिरकेमें पीसकर दद्रुपर लेप करते हैं। अहितकर—पुंस्त्वोपघाति है। प्रतिनिधि—एलुवा। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मरोड़फली (आवर्तनी) कषाय, शीतवीर्य तथा अतिसार, उदरशूल और कृमिका नाश करनेवाली है। अतिसार और प्रवाहिकामें मरोड़फलीका चूर्ण १½ माशेसे ३ माशेकी मात्रामें देनेसे अच्छा लाभ होता है। (द्र०गु०वि०)।

नव्यमत—मरोड़फलीकी जड़की छालका काढ़ा मधुमेहमें देते हैं।

●

(४९३) मर्जञ्जोश

फॅमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) मरुआ, मरुवा, मर्वा, (यू०) ओरिगनोस (Origanos), सम्पसुखोन Sampsukhon (D. 3 410), (अ०) अल्मर्व (उ०वं०), मर्जञ्जोश, मर्ज़ंजोश, समगक, (फा०) मर्जन्गोश, मजगोश, (सं०) मरुवक (ध०नि०); मरुव(रा०नि०), (म०) मरवा, (गु०) मरवो, (बम्ब०) मुरवो, (बं०) मुरुं, (लै०) माजोराना हॉर्टेन्सिस **Majorana hortensis** Moen (पर्याय—ओरीगानुम माजोराना *Origanum majorana* L), (अं०) स्वीट मार्जोरम् (Sweet Marjoram)।

वक्तव्य—लेटिन 'Origanum' यूनानी 'Origanos'का रूपान्तरमात्र है। मर्जङ्गोश (मर्जन या मर्ज = मूष , गोश = कर्ण = मूषाकर्ण) फारसीसे 'मर्जञ्जोश' अरबी बनाया गया है। प्रजातिक (Generic) नाम 'माजोराना' उक्त अरबी नामपर आधारित प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान—पुर्तगाल और पश्चिम एशिया। मरुआ भारतीय बागोंमें लगाया जाता है और जंगली भी होता है।

वर्णन—वनतुलसीकी जातिका एक लगभग ३० से० मी० (फुटभर) ऊँचा ऊपरकी ओर सशाख, वार्षिक क्षुप होता है। पत्र-क्षुद्र, अण्डाकार अतिकुण्ठित, अखण्ड, भूरापन लिए हरा या श्वेताभ मृदुरोमावृत और स्वच्छ-बिंदुओंसे चिह्नित (Pellucid punctate), पुष्प क्षुद्र घुंडियोंमें समूहबद्ध, पुष्पाभ्यन्तरकोष (Corolla) क्षुद्र एवं

कुछ-कुछ श्वेताभ होता है। क्षुपकी गध प्रिय एव तीक्ष्ण तथा स्वाद सुगधमय एवं रुचिकारक होती है। बीज काले होते है। इसके एक अन्यभेदके पुष्प काले होते है। इसको मरुआ कहते है।

रासायनिक सगठन—अनुत्पत् तेल, एक तिक्तसत्त्व और रोगन मर्जंजोश (Oleum Marjorana) नामक एक उत्पत् तेल जो पतला, पीताभ तथा क्षुपकी सुगधियुक्त होता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप (पचाग), पत्र, बीज और बीजोत्थ तेल।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम एव खुश्क। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य है (रा०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तारल्यजनन, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन और लेखनीय है तथा द्रवोका आकर्षण करता है। बस्ति एव वृक्कस्थ अश्मरियोंको तोडता है, अर्दित तथा सर्दी एव वातज शिर शूलको लाभ पहुँचाता है और मस्तिष्कगत द्रवोको छाँटता है। यह उरोशूल, श्वास, वातजशूल (कुलज) रोग, यकृत् एव प्लीहाके अवरोध तथा जलोदरको लाभ पहुँचाता और मस्तिष्कका शोधन करता है। इसके सूँघनेसे प्रतिश्याय, पक्षवध और सन्यास (तामसी निद्रा-सुबात) रोगमे लाभ होता है। अहितकर—बस्ति, वृक्क एव मस्तिष्कको। निवारण—कुलफा और कासनीके बीज तथा नीलूफर। प्रतिनिधि—अफसतीन, चमेलीके पत्र और अर्धभाग कालीमिर्च। मात्रा—७ ग्राम से ९ ग्राम (७ माशा से ९ माशा) तक, काढेमे १ तोलाभर तक।

आयुर्वेदीय मत—मरुआ कटु, तिक्त, रुचिकारक, मुखको सुगन्धित करनेवाला तथा कृमि, कुष्ठ, मलावरोध, आध्मान, शूल, अग्निमान्द्य और त्वग्दोषका नाश करनेवाला है (ध०नि,रा०नि०)।

नव्यमत—मरुआ सुगन्धी, कोष्ठवातप्रशमन, स्वेदजनन, उत्तेजक, श्वासहर और आर्तवजनन है। सर्दी (प्रतिश्याय)मे मरुआका फाट देनेसे पसीना आता है और स्फूर्ति मालूम होती है। सर्दीसे ऋतु आना बद होनेपर मरुवाका फाट देते है। पुराने व्रणपर मरुआका स्वरस लगानेसे व्रणरोपण और वेदनास्थापन कार्य होता है।

●

जंगली मरुआ

फ़ैमिली . लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) साथर, (प०) मिर्जञ्जोश; (ते०) मृदुमरुवामु, (ले०) **ओरीगानुम् वुल्गारे (Origanum vulgare** L), (अ०) वाइल्ड मार्जोरम (Wild marjoram)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय, कश्मीरसे सिक्किम पर्यन्त ७,०००-१२,००० फुटकी ऊँचाई पर।

वर्णन—क्षुप, पत्र सम्मुखवर्ती-सवृत, साधारणत अखड, कुछ-कुछ बैगनी, अडाकार या लवायमान घुडियो (Heads)मे न्यस्त, पौष्टिक पत्र साधारणतया गुलाबी, पुष्पवाह्यकोष (Calyx) नलिकाकार और पचदतयुक्त, गध और स्वाद थाइम (Thyme)के समान। यह व्यापारकी वस्तु नही है। इसके नामसे बिकनेवाला तेल वस्तुत फ्राससे थीमुस वुल्गारिस **(Thymus vulgaris** Linn)से प्राप्त उत्पत् तैल होता है।

रासायनिक सगठन—इसमे उत्पत् तेल (Essential oil) होता है। जिसमें ५० प्रतिशत थायमोल (Thymol) होता है।

उपयुक्तअग—क्षुप, उत्पत् तैल।

●

(४९४) मवीज़ज

फेमिली : रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) जगली दाख, (अ०) ज़बीबुज्-जबल, (फा०) मवीज़क, मवीज सहराई; (लै०) स्टाफिसाग्री सेमिना (**Staphisagriae semina**); (अं०) स्टैफिस ऐग्रिस (Staphis agris), स्टैवीसैक्री सीड्स (Stavesacre Seeds)। लताका लेटिन नाम डेल्फीनिउम् स्टाफिसाग्रिआ (**Delphinium staphisagria** Linn.) है।

वक्तव्य—लताके लेटिन नाममें जातीय नाम "स्टाफिसाग्रिआ" वस्तुत यूनानी (स्टैफिस = गुच्छा; अग्रिआ = वन्य) नाम है। इसका पुष्प गुच्छस्वरूप होता है, इसलिए यूनानियोने इसको उक्त नामसे अभिधानित किया। मख्ज़नुल्अद्‌विया और मुहीत आजममें इसका यूनानी नाम "अस्ताफियूस अग्रिया" लिखा है, जो वस्तुतः "स्टाफिस अगरिया" है। केवल उच्चारणका किंचित् भेद है। 'मवीज़ज' फारसी 'मवीजक' से अरबी बनाया गया है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्साविद् इस औषधिसे भली-भाँति अभिज्ञ थे तथा इसका उपयोग करते थे। सुतरा दीसकूरीदूस वमन और विरेचनरूपमें इसका उपयोग करते थे। वह कुष्ठमें भी इसे लाभकारी मानते थे। जालीनूसने भी इसका उपयोग किया है। कतिपय चिकित्सकोने इसे उदरकृमिनाशन भी लिखा है। अरबी और अजमी हकीम भी इससे भली-भाँति अभिज्ञ थे, तथा इसका उपयोग करते थे। उनके अनुसार यह अपनी तीक्ष्णता एव उष्णता (हिद्दत) गुणके कारण अवरोधोद्घाटन करती तथा कफका उच्छेदन एव उसको पतला (लतीफ) करती, और कृमिघ्न है। जूओंकी उत्पत्तिको रोकती एव उनका नाश करती है। सुतरा उत्तरकालीन यूरुपीय चिकित्सकोंका भी इस अन्तिम गुणसे सर्वथा मतैक्य है। प्रत्युत डॉक्टरीमें यह केवल इसी गुणके लिए प्रयुक्त है। मख्ज़नुल् अद्‌वियामें 'ज़बीबुल्जबल' और मुहीत आजममें "मवीज़ज" नामसे इसका वर्णन आया है।

उत्पत्तिस्थान—इग्लैंड, इटली, ग्रीस तथा एशिया माइनर।

वर्णन—यह एक ०.९ से १.२ मीटर (३ या ४ फुट) ऊँचे क्षुप या बेलदार वनस्पतिका वक्राकार (खमदार) बीज है। पककर सूखा हुआ बीज न्यूनाधिक तिकोना या चौपहल, पृष्ठ उन्नतोदर लगभग १.८७५ सें० मी० (३/४ इंच) लम्बा और इससे कुछ कम चौडा होता है। रगमें उक्त बीज कालाई लिये भूरे या भूरापन लिए काले होते हैं, किन्तु पुराना होनेपर हलका खाकीमायल हो जाता है। छिलका झुर्रीदार होता है और अन्दरसे सफेद रोगनी मग्ज निकलता है जो स्वादमें तिक्त एव चरपरा तथा निर्गन्ध होता है।

रासायनिक सगठन—इसमें २ ऐल्केलॉइड्स स्टैफिसैग्रीन (Staphisagrine) जो श्वासोच्छ्वासके लिये प्रबल विष और क्युरारीके समान है, तथा (२) डेल्फिनीन (Delphinine) जो गुणकर्ममें एकोनाइटीन और खर्वकीन (वैरेट्रीन)के समान है, और (३) एक उत्पत् तैल आदि घटक होते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तीव्र लेखन और व्रणकारक है। मुखमें चबानेसे यह लालाप्रसेकजनन, दतशूलहर, कृमिदन्त और शिर यूकाओंको नष्ट करनेवाली है। खिलानेसे यह वमन और विरेचन लाती है तथा उदरज कृमियोको नष्ट करती है। यह विशेषत अवरोधोद्घाटक और गर्भशातक है। उपयोग—कृमिघ्न और लेखन होनेके कारण खालित्य, दद्रु और त्वचाके दागको दूर करनेके लिये इसको शहद या सिरकामें पीसकर लेप करते हैं। हकलापन (लुकनत) और दन्तशूल निवारणके लिये इसको मस्तगी और कुन्दुरके साथ चबाते हैं। लालाप्रवर्तक होनेके कारण यह उक्तरोगोंमें लाभ करती है। एक दाना मवीज़जको साफ रूईमें लपेट-भिगो और किंचित् कूटकर तथा गरम करके

विकारी दांतपर रखनेसे कृमिभक्षित दांतका दर्द शान्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त मवीजजको सिरकामे उबालकर गण्डूष करनेसे भी दर्द शान्त होता है। जूओको मारनेके लिये इसे पीसकर शिरमें लगाते है। अधुना इसका आतरिक उपयोग नही करते। अहितकर–प्लीहाके लिये। निवारण–कतीरा और शीतल पदार्थ। प्रतिनिधि–अकरकरा। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक। ४ ग्राम (चार माशे) से अधिक घातक बतलाई गई है।

●

(४९५) मसूर

फ़ैमिली · लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) मसूर, मसुरी; (अ०) अदस, (फा०) नशिक, मिरजूमक, बनूसुर्ज, (स०) मसूर, (व०) मुस्सूरि, मसूर, (म०) मसूर, (ले०) लेंस कूलीनारिस **Lens culinaris** Medik (पर्याय–लेन्स एस्कुलेन्टुम **Lens esculentus** Moen), (अं०) लेंटिल (Lentil)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—एक प्रकारका प्रसिद्ध अन्न, जो द्विदल, चपटा, ऊपरसे मटमैला और भीतरसे लाल होता है। इसकी दाल पकाकर खाई जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें जल, मासवर्धक (प्रोटीन) और कार्बोहाइड्रेट, तेल, तन्तु, राख और फॉस्फोरिक एसिड आदि तत्व होते है।

प्रकृति—समताके साथ उष्ण और दूसरे दर्जेमे खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मसूरीकी दाल सग्राही, आनाहकारक और चिरपाकी है। समूचे मसूरके काढेसे गलशोथ और कठशोथमे गण्डूष कराते है। यह सूजन उतारती और वेदना शमन करती है। चेहरेका रग निखारने के लिये इसका आटा उबटनमे डालते है। मुखपाक और वण्ठशोथमे यह विशेष गुणकारी है। अहितकर–अर्शके लिए। निवारण–बादामका तेल, घी और पकाना। प्रतिनिधि–उडद और वाकला।

आयुर्वेदीय मत—मसूर रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, मलको बांधनेवाला (बद्धवर्चस, सग्राही), मघु, वातरोगकारक तथा कफपित्त और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाला है। खाने और लेपनमे प्रशस्त है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, रा० नि०)। मसूरका लेप वर्णको सुन्दर करनेवाला और त्वचाके रोगोको हरनेवाला है। इसके पत्तोका साग तिक्त, कषाय और हलका है।

●

(४९६) मस्तगी

फ़ैमिली आनाकार्डिआसे (Family · Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) रूमीमस्तगी, मस्तगी, (अ०) मस्तकी (इ० बै०) मुस्तक्का, मस्तकीए रूमी, इल्कुर्रूमी, (फा०) मस्तकी रूमी, कुन्दुरे रूमी, (म०, गु०) रूमी (मा) मस्तकी, (मा०) रूमीमस्तंगी, (व०) रूमी मोस्तकी; (ले०) मास्टिके या मस्टिके (Mastiche), (अ०) मैस्टिक (Mastic, Mastich), लेन्टिस्क (Lentisk)।

वक्तव्य—इसका लेटिन नाम 'मास्टिके' वस्तुत. इसका यूनानी नाम है। मस्तकी इसीका अरबी रूपान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप, उत्तरी अफरीका, लेवाट और श्याम, रोम तथा अरमीनिया और भूमध्यसागरके आस-पासके प्रदेशोमें होनेसे इसे रूमीमस्तकी कहते है।

वर्णन—यह एक प्रकारका जमा हुआ रालदार गोंद है, जो पिस्टासिआ लेन्टिस्कुस् (Pistacia lentiscus Linn) नामक पिस्ता या बुत्म अर्थात् हब्बतुल् खजराकी जातिकी एक सदाबहार झाडीके तने और बडी-बडी शाखाओमें आडे चीरा देकर या उनको पाछकर निकाला जाता है। इसके छोटे, गोल, बेकायदा लबोतरे (Pear-shaped) या अश्रुवत् पारदर्शक दाने (Tears) होते हैं, जिनका रग पिलाई लिए सफेद होता है। गंध हलकी, किंचित् मधुर एव सुगन्धित (Cedar-like) होता हैं। यदि इसको खरलमे ओढेसे बलपूर्वक रगडा जाय, तो यह बारीक नही होती, अपितु चिपक जाती है।[1] इसके विपरीत सदरूस (Sandrac)के बेलनाकार अस्रुवत् दाने रगडनेसे चूर्ण हो जाते है। भारतवर्षमे इसका आयात एशियामाइनरसे होता है। इसमे २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—इसमें अत्यल्प प्रमाणमें एक उत्पत् तैल, मैस्टिकोनिक एसिड, मैस्टिकीनिक एसिड और मैस्टिकोलिक एसिड–यह तीन ऐल्कोहॉलविलेय रालाम्ल होते है। इसके अतिरिक्त मैस्टिकोन नामक राल (१०%) जो ऐल्कोहॉलमे अविलेय तथा एक ऐल्कोहॉलमें विलेय राल (३० प्रतिशत) आदि द्रव्य होते हे।

कल्प तथा योग—जुवारिश मस्तगा, जुवारिश मस्तगी वनुस्खाफ़लॉ, रोगन मस्तगी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एव खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यकृदामाशयबलदायक, वातानुलोमन, कब्जके साथ मृदुसारक, श्लेष्मनिस्सारक, दोपतारल्यजनन, श्वयथुविलयन, द्रवाभिशोषणकर्ता (जाजिवरतूबात), लेखन, रक्तसांग्राहिक, रुधिरस्तम्भक, मूत्रार्तवजनन और विभिन्न अनुपानोसे विभिन्न दोषोका विरेचक है। दीपन और वातानुलोमन होनेके कारण मदाग्नि आदिमे मस्तगीका उपयोग करते है। मृदुकरण (तलय्यिन)के निमित्त इसे गुलकदके साथ मिलाकर खिलाते हैं। सूजन उतारनेके लिए इसे लेपोमें डालते है। द्रवाभिशोषणकर्त्ता होनेसे इसे विस्मृतिरोगमें उपयोग करते है। लेखन, सग्राही और रक्तस्तम्भन होनेके कारण इसे मजनोमे डालते है। रक्तस्तम्भन होनेके कारण रक्तष्ठीवन और अन्य अगजात रक्तस्रावमें उपयोग कराते है। दोषतारल्यजनन और श्लेष्मनि सारक होनेके कारण खाँसीको दूर करने और फुफ्फुसप्रणालीके शोधनके लिए इसका उपयोग करते है। यह गारीकूनके साथ कफविरेचन, एलुआके साथ पित्तविरेचन और हडोके साथ सौदाविरेचन है। लेखन होनेके कारण इसे उवटनमें मिलाकर चेहरेपर मलते है। अहितकर–गुर्दाके रोगोमें अहितकर है तथा रक्तमूत्र उत्पन्न करता है। निवारण–सिरका और विलायती मेहदी (मूरद)का रस। प्रतिनिधि–श्वयथुविलयनमे पुदीना। मात्रा–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशा) तक।

नव्यमत—रूमीमस्तगी सुगन्धि, उत्तेजक, कफघ्न, मूत्रजनन और ग्राही है। फुफ्फुसके रोगोमें कफ अधिक गिरता हो तब रूमीमस्तगी देते है। इससे श्वासमार्गकी श्लेष्मल त्वचाको शक्ति मिलता है। मुखकी दुर्गंध दूर करने, दाँतोको मजबूत बनाने और आमाशयरस बढानेके लिए इसे मुँहमें रखकर चबाते है।

●

---

१ इसके चूर्ण बनानेकी विधि यह है कि पहले कपडेमें इसकी पोटली बाँध-पानीमें डुबा, फिर पानीसे बाहर निकाल, कोरे कपडेसे पोंछ तुरन्त इसे पीसते हैं।

(४९७) महुआ

फ़मिली : सापोटासे (Family Sapotaceae)

नाम—(हिं०) महुआ, महुवा, (फा०) गुलेचकाँ, (स०) मधूक, गुडपुष्प, (द०) मोहा, (व०) मोहुवा, मौल, मोयाफूल, (गु०) महुडो, (म०) मोहडा, (प०) महुआ, मह्वा, (ले०) माधूका इंडिका **Madhuka indica** Gmel (पर्याय–माधूका लेटीफोलिआ *M latifolia* (Roxb) Mac Br , बास्सिआ लाटीफोलिआ *Bassia latifolia* Roxb) ।

फल या बीज—(हिं०, कोल, सथा०) कोइना, कोइनी, (वं०) कोचरा ।

तैल—(को०, सथा०) कोइनी सुनुम, डोला ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष । पहाडोपर ३,००० फुटकी ऊँचाई तक इसके पेड पाये जाते है ।

वर्णन—यह एक वडे प्रसिद्ध वृक्षका फूल है, जो पिलाई लिए सफेद और मासल होता है, और उससे मीठी-सी गध आती है । स्वाद भी मीठा, पर किंचित् हीकदार होता है । सूखने के उपरात यह मुनक्काकी तरह हो जाता और शराव वनानेके काम आता है । फल (कोइना) किसी कदर लम्बगोल होता है । पकनेपर इसका स्वाद मीठा हो जाता है । इसके अन्दरमे एक या दो गुठलियाँ निकलती हैं, जिनके मग्जसे तेल निकाला जाता है । इसे डोरिया या टोइयाका तेल कहते हैं ।

उपयुक्त अग—छाल, फूल फल तथा तेल (डोरिया) ।

रासायनिक सगठन—वीजमे एक वसायमय अनुत्पत् तेल (५०%-५५%), फूलमें काफी प्रमाणमें शर्करा, एंज़ाइम (Enzymes) और किण्व (Yeast) होने है । वायुशुष्क फूलमें इक्षुशर्करा २·२%, इन्वर्ट शर्करा ५२ ६%, अन्यान्य जलविलेय पदार्थ ७ २%, काष्ठोज २ ४%, मासवर्धक द्रव्य (Albuminoids) २ २%, राख ४ ८% प्रभृति द्रव्य होते है । राखमें सिलिसिक अम्ल, फॉस्फोरिक एसिड, कैल्सियम, लौह, पोटास और अशत. सोडा प्रभृति द्रव्य होते हैं ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क । आयुर्वेदके मतसे फूल और फल दोनो शीतवीर्य (भा०प्र०) है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—महुआ (गुले महुआ) वाजीकर, शुक्रल और स्तन्यजनन है । इससे काफी पुष्टि प्राप्त होती है । इसका हलुआ बनाकर खाया जाता है तथा मद्य खीचा जाता है । यह विशेषकर वातविलमन और शीतलवेदनाहर है । फल उदरावष्टभकारक और मूत्रजनन वतलाया जाता है । इसकी गुठलीके मग्जका तेल आमवात, कटिशूल आदि सर्द दर्दोंपर मर्दन करते है और इसमे सुहागा मिलाकर दद्रुपर लगाते है । महुएके बीजके मग्जको आर्तवजनन और सारक वर्णन किया जाता है । उक्त गुणोके लिए इसकी वर्ति या फलवर्ति वनाकर उपयोग करते है । छालका खुजली और सन्धिवातमे और तेलका वातनाशकरूपमें अच्छा उपयोग होता है । घरेलू चिकित्सामें तेलको गुदामे लगाकर शीघ्र मलत्याग कराया जाता है । अहितकर–शिर शूलजनक है । निवारण–शीतल और स्निग्ध पदार्थ । प्रतिनिधि–वूरए अर्मनी । मात्रा–यद्यपि फलकी भाँति इसका फूल पुष्कल खाया जाता है, तथापि ४–५ तोलेसे अधिक नही खाना चाहिए ।

आयुर्वेदीय मत—महुआका फूल मधुर, गुरु, शीतवीर्य वृहण, वल्य, वीर्यवर्धक तथा रक्तपित्त, वात और पित्तका नाश करनेवाला है । महुआका फल मधुर, गुरु, शीतवीर्य, शुक्रल, अहृद्य तथा वात, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत और क्षयको दूर करनेवाला है । (सु० सू० अ० ४६, भा० प्र०) ।

नव्यमत—फूलोमे ६० प्रतिशत एक प्रकारकी शर्करा होती है, जो शीघ्र मद्यमे परिणत होती है। फूलोमे थोडा-बहुत मद्य तैयार हुआ होता है, इसलिए फूल खानेसे थोडा नशा आता है। बीजोका तैल शीघ्र खराब होता है। इसलिये दवाके काममे नही आता। इससे उत्तम साबुन और मोमबत्ती बनती है। महुआके फूल शीतल, बल्य, पौष्टिक और स्नेहन है, इसलिये ज्वर और कफ रोगमे प्रयुक्त कषायोमे इसे डालते है।

•

(४९८) माजरियून

फैमिली थीमेलासे (Family Thymelaceae)

नाम—(भा० बा०, हिं०) माजरियून, (यू०) खामीलिआ Khamelaia (D 4 109), (अ०) माजेरियून (इ० बं०), जैतूनुल् अर्ज, (लै०) मेजेरी फोलिआ (Mezerei Folia), (अ०) मेजीरिओन लीह्वज् (Mezerion Leaves), स्पर्ज ऑलिह्व या लॉरेल (Sperge Olive or Laurel), वाइल्ड पेपर (Wild pepper)।

वक्तव्य—इस औषधिका लेटिन और अग्रेजी नाम 'मेजेरिओन Mezerion' इसके अरबी नाम 'माजर्यून' से व्युत्पन्न है। इसका यूनानी नाम 'कामीलिआ' है, जिससे 'खामीलिया' अरबी बनाया गया है। इसी प्रकार डैफ्नी (दफ्नी)का 'जाकनी' अरबी रूपातर किया गया है।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह सुमाकके बराबर एक विदेशीय तीक्ष्ण एव जहरीले दूधवाले वृक्षके पत्र है जो औषधके काममे लिये जाते है। डॉक्टरीमे वृक्षत्वक् व्यवहार किया जाता है। माजरियूनके निम्न भेद है—(१) इसके पत्र छोटे और पीले तथा मोटे होते है। इसको हफ्तवर्ग और मुश्तरू तथा लेटिनमें डाफ्नी लाउरेओला (Daphne laureola Linn) कहते है। (२) इसके पत्र बडे और सफेद किन्तु मोटे नही होते। इसको अश्खीस और जाकनी बेदास तथा लेटिनमे डाफ्नी मेजेरेउम् (Daphne mezereum Linn) कहते है। औषध में प्राय यही प्रयुक्त होता है। (३) इसके पत्र काले होते है। इसको कमालियून, खामालियून और खामालावन तथा लेटिनमे डाफ्नी नीडिडम् (Daphne gnidium Linn.) कहते हैं। यह निकृष्ट भेद है और औषधके काममे नही लिया जाता। यद्यपि डाफ्नेकी कई जातियाँ भारतवर्षमे भी होती है, तथापि यूनानी ग्रथोक्त 'माजरियून' हिंदी 'अपराजिता' है, ऐसा मोहीउद्दीन शरीफका मत है। गजबादावर्दके मतसे जिसका पत्ता हरा और थोडे समयका लिया हुआ हो तथा जिसमे जौकी तरह दराज हो एव किसी कदर उससे चौडा हो वह औषधिके लिये उपादेय एव प्रयोजनीय है।

शोधन—जहरीला होनेसे इसे शुद्ध करके औषधमें बरतनेका विधान है। मख्जनुल् अद्विया के मतसे इसे ४८ घण्टे तक सिरकामे भिगो रखनेसे यह शुद्ध और भेषजोपयोगी हो जाता है। बीच-बीचमे सिरका बदलते रहना चाहिये। इसके बाद जलसे धो-सुखाकर बादामके तेलमे घोटकर काममें लेना चाहिये।

रासायनिक सगठन—इसमें मेजेरिनिक एसिड (Mezerienic acid), डैफ्नीन (Daphnine) नामक एक सत्व, एक अनुत्पत् तेल और एक राल ये चार उपादान होते है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—लेखन, तीव्र विरेचन (जलके समान पतले विरेक लाता है), कृमिघ्न, उदर कृमिनि-सारक और मूत्रार्तवजनन विशेषकर श्वयथुविलयन और कण्डूघ्न है। उपयोग—तीव्र विरेचन और जलके समान

पतले दस्त लानेके कारण इसको जलोदर, कामला और उदरज कृमिरोगमे विरेचनीय, तिक्त एव सुगन्ध औषधियोंके साथ प्रयुक्त करते और लेखन होनेके कारण इसे छीप वा झाईं, किलास और दद्रु आदि त्वचाके रोगोमें उपयुक्त औषधियोके साथ लेप करते हैं । अहितकर–उष्णप्रकृति एव यकृत्को । निवारण–किसी तेल, जैसे बादामका तेल आदिमें स्नेहाक्तकर लिया जाय । प्रतिनिधि–ईरसा । मात्रा–१ ग्रामसे १॥ ग्राम (१ माशा या १॥ माशा) ।

●

(४९९) माजूफल

फैमिली : कुपूलीफेरे (Family : Cupuliferae)

नाम—(हिं०, ब०) माजूफल, (यू०) केकिस Kekis (D. I 146), (अ०) अफ्स, अल्अफ्स (इ० बै०), अफ्सुल्बुलूत, (फा०) माजू, (स०) मायाफल, मज्जफल, (द०; बम्ब०) माजूफल, माईफल, (म०) मायफल, (गु०) माजुफल (काटालु), काटावाला मायु; मायु, (लै०) गॉला (Galla), (अ०) गॉल्स (Galls), ओक गॉल्स (Oak Galls) । वक्तव्य—इसके वृक्ष ईरानी बलूत (दरख्त बुलूतुल् अफ्स)को लेटिनमे क्वर्कुस इन्फेक्टोरिआ (**Quercurs infectoria** Olivier.) कहते हैं । इसके फलके ऊपर कतिपय चिह्न कच्छूवत् होते हैं, इसलिए इसको लेटिन और अंग्रेजीमें क्रमश गॉला या गॉल (–कच्छू) कहते हैं । इसका स्वाद कषाय होनेसे इसको अरबीमें अफ्स (= कषाय) कहते हैं ।

इतिहास—प्राचीन यूनान और रोमवासियो तथा अरब और ईरानवासियोको इस औषधिका ज्ञान था। मध्यकालीन भारतीय वैद्य भी इससे अभिज्ञ थे ।

उत्पत्तिस्थान—यूनान, एशिया माइनर, सीरिया और फारस । वहीसे इसका आयात हिन्दुस्तान मे होता है ।

वर्णन—यह बलूतकी जाति और आकृतिकी माजू नामक एक झाडी—ईरानी बलूत—की डालियोपर एक विशेष प्रकारके कृमि (Cynips Gallae-tinctoria Olivier)के छिद्र करने और उन छिद्रोमे उसके अडे रखनेसे उन स्थानोमे एक प्रकारकी गाठें उत्पन्न हो जाती हैं । यही (कीटगृह) माजू या माजूफल कहलाते हैं । प्राचीन यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमे जो इसे फल लिखा गया है, वह ठीक नही है । माजूका आकार उन्नावके बराबर और रग बाहरसे नीलापन लिए गहरा हरा और धरातलपर छोटे-छोटे उभार तथा पीला या सफेदी लिये भूरा, मध्यमें किंचित पीला, निर्गन्ध और स्वाद अत्यन्त कषाय होता है। रगके विचारसे यह चार प्रकारका होता है—(१) नीला–माजू नीला (अफ्सुल् अर्जक), (२) काला—माजू स्याह (अफ्सुल् अस्वद), (३) हरा—माजू सब्ज (अफ्सुल अख्जर), और (४) सफेद—माजू सफेद (अफ्सुल् अब्यज) ।

वक्तव्य—नीलापन लिए गहरे हरे या काले रगके अछिद्र माजू जिनको कीडोके छिद्र करके बाहर निकलनेसे पूर्व सग्रह किया गया हो, औषधके लिए सर्वोत्तम होते हैं और सफेद सछिद्र माजू जिनमेंसे कीडा छेद करके बाहर निगल गया हो, निकृष्ट होते हैं ।

रासायनिक सगठन—इसमें मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड Gallic acid) ६० से ७० प्रतिशत और कषायाम्ल (टैनिक एसिड Tannic acid) २ से ५ प्रतिशत ये दोनो अम्ल गॉलो-टैनिक एसिड ५० से ६० प्रतिशत होते हैं ।

कल्प तथा योग—कोहल माजू ।

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमें रूक्ष, मतातरसे दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमे रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, उपशोपण, रक्तस्तभन, कोथप्रतिबन्धक और बालोंको काला करनेवाला है। सग्राही और उपशोपण होनेके कारण स्वेदाधिक्यको रोकने और स्वेदकी दुर्गन्ध दूर करने के लिए माजूके चूर्णका शरीरपर अवधूलन करते है। अन्त्रव्रण, पुराना अतिसार और श्वेतप्रदरमे इसका आतरिक उपयोग करते है। कर्णस्रावमें इसके चूर्णको कुलफाके रसमे मिलाकर कानमे डालते है। सग्राही और उपशोपण होनेके कारण दाँतों और मसूढोको दृढ करने, उनके रक्तस्रावको वद करने और मुखसे पानी आनेको रोकनेके लिए इसको चूर्णोमे डालते है और अकेले भी काममे लाते है। इसके काढेमे गण्डूप भी कराते है। गलशुण्डिका, कठशोथ, मुखपाक और दन्तवेष्ठप्रकोपमे इसका अवचूर्णन तथा गण्डूप कराते है। यह किसी कदर कोथप्रतिवधक भी है। अतएव मुख की दुर्गधको दूर करता है। सग्राही, उपशोपण और कोथप्रतिवन्ध होनेके कारण परिसर्पी व्रण, कक्षा (नमला), गोश्तखोरा (आकिल)में और झाई आदिके लिए यह अवचूर्णनकी भांति उपयोग किया जाता है। सिरके के साथ लेप करने से यह दद्रु, खालित्य विशेष (दाउस्सालब) और झाई आदिके लिए गुणकारी है। नेत्रस्राव, पक्ष्मशात (मुलाक) और नेत्रगत कच्छूमे इसका अजन (सुरमा) गुणकारी है। रक्तस्तभन होनेके कारण सद्य व्रणोपर इसका अवचूर्णन किया जाता है और नकसीर वद करनेके लिए इसका नस्य दिया जाता है। इसी प्रकार अतिरज स्राव, रक्तमूत्र और रक्तातिसारमे इसकी फरुवर्ति या पिचुवर्ति योनिमें स्थापितकी जाती या इसके काढेकी वस्ति दी जाती है तथा चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है। गुदभ्रंश, गुदशोथ और गुदव्रणमें इसका अवचूर्णन किया जाता है तथा इसके काढासे गुद-प्रक्षालन कराते है। यह बालोको काला करता है। इसलिए खिजाबो (केशकल्पो)मे प्रयुक्त होता हैं। अहितकर—उर कठरोगोके लिए। निवारण—कतीरा, ववूलका गोद और अधभुना अडा। प्रतिनिधि—छोटी माई और अनार का छिलका। मात्रा–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—माजूफल (मायाफल, मायुक) कपैला, विपाकमें कटु, शीतवीर्य (मतातरसे उष्णवीर्य), रूक्ष या तीक्ष्ण, हलका दीपन, ग्राही, शिथिलतानाशक (शिथिलताको सकुचित करनेवाला), केशोको काला करने वाला तथा कफ, पित्त और वातका नाश करनेवाला है। (रा० नि०, शो० नि०, नि० र०)।

नव्यमत—माजूफल उत्तम स्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितस्थापन और विपघ्न है। दालचीनी आदि अन्य सहायक औषधोके साथ माजूफलका चूर्ण पुराने अतिसार और सग्रहणीमे देते है। पुराने सूजाक और तन्तुमेहमे माजूफलका चूर्ण १० रत्तीकी मात्रामें दिया जाता है। विना पीडाके पूय आनेपर इसे देना चाहिए। कुचला, धतूरा, वछनाग, अफीम आदि विपद्रव्य खाये हुएको प्रथम वमन कराके पीछे विपप्रशमनार्थ माजूफलका तेज काढा वटी मात्रामें वारवार देना चाहिए। माजूफलको जलमें घिसकर व्रणपर लगानेसे व्रणका सकोचन होता है और वह शीघ्र भर जाता है। इसे जलमें घिसकर गलेमे लगानेसे गलेकी गाँठो (टासिल)की सूजन उतरती है, और बढा हुआ कौआ सकुचित होकर शुष्क कास आराम हो जाता है (सूखी खाँसी आना बन्द होता है)।

●

(५००) मामीसा

वर्णन—यह एक भूलुण्ठिता बूटी है, जिसको कूटकर वलूती शकलकी चक्रिकाएँ बना लेते है। इनको उसारए मामीसा और शियाफ मामूसा कहते है। यही औषधमे प्रयुक्त किये जाते हैं। (यू०) Glaukion (D. 3 90), (लै०) ग्लाउकिउम् (Glaucium)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन, संग्राही, उपशोषण, दोषविलोमकर्ता और नेत्ररोगोमें विशेष गुण-कारी है। उपर्युक्त गुण-कर्मोंके कारण उसारए मामीसाको उष्ण नेत्राभिष्यंद, उष्ण शिरःशूल, उष्ण आमवात, मुखगत विसर्प(माशिरा), उग्र विसर्प और रक्तजशोथविशेष (फलगमूली)मे पतले लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। नेत्रस्राव, नेत्रच्छदपात और दृष्टि-दौर्बल्यमें सुरमेकी भाँति इसका उपयोग करते है। मुखपाक और परि-सर्पी व्रणमें इसका अवचूर्णन करते है। सग्राही एव शीतजनन होनेके कारण पित्तज अतिसारमें इसका चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है। अहितकर–प्लीहारोगमें। निवारण–मीठा वादाम और शहद। प्रतिनिधि–सुमाक। मात्रा–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

●

(५०१) मालकाँगनी

फैमिली सेलास्ट्रासे (Family Celastraceae)

नाम—(हिं०) मालकाँगनी, मालकँगनी, मालकाकनी, मोजनी, मि(मु)झनी (मीरजापुर), (अ०) तोलाकियून, (स०)ज्योतिष्मती, कगुनी, ककुन्दनी, (प०) मालकँगनी, (म०) मालकाँगाणी, (गु०) मालकागणा(णी), मालकाकणा, (कुमायूँ) मलकक्नी, (को०, सथा०) कुजरी, (था०) मालटागुन, (पलामू) मिझनी, मुजनी, (ता०) वालुलवे, (मल०) पालुए (ल)वम्, (लें०) सेलास्ट्रूस पानीकुलाटुस (**Celastus paniculatus** Willd), (अ०) स्टॉफ ट्री (Staff Tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके पहाडीस्थानोमे, विशेपकर हिमालयपर्वतपर झेलम नदीसे आसाम तक ४,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा उत्तरी, मध्य एव दक्षिण भारतवर्ष, लका एव ब्रह्मामे पाई जाती हैं।

वर्णन—इसकी लता वृक्षारोही वडी लम्बी कभी-कभी वृक्षाकार होती है। पत्र, लम्बे, दाँतेदार, गोल और नुकोले, फूल छोटे-छोटे पीताभ नीले रगयुक्त और मधुर गन्धयुक्त तथा घौदके घौद लगते है, फल आकारमे छोटे मटरकी आकृतिके, कच्चे नीले और पके लाल पीले, फलके चटकनेपर भीतरसे पीत-अरुण वाजरेके दाने या मुनक्काके बीजके आकारके बीज निकलते है। फल तीन भागोमें फटता और प्रत्येक भागमे २-३ तिकोने बीज होते हैं। यह बीज ही मालकाँगनीके नामसे प्रसिद्ध हैं। यह स्वादमें अत्यन्त तिक्त एव उष्ण होता है। बीजोसे कोल्हूसे या ऊर्ध्वपातनसे एक प्रकारका पीले रगका गाढा तेल निकाला जाता हैं।

उपयुक्त अग—बीज और बीजोत्थ तेल। यह दोनो ही बाजारमे मिलते हैं।

रासायनिक सगठन—बीजमे ३० प्रतिशत एक गाढा ललाई लिए पीला, तिक्त एव गन्धयुक्त तेल, एक तिक्त रालयुक्त वीर्य, टैनिन और राख (५ प्रतिशत) होती है। बीजोको जलाकर निकाले हुए तेलमें क्रियोजोट नामक महत्वपूर्ण द्रव्य होता हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और तीसरेमे खुश्क, मतातरसे तीसरे दर्जेमे गरम और दूसरेमे खुश्क। आयु-र्वेदमतसे बीज और तेल दोनो उष्णवीर्य (ध० नि०, रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बुद्धि और स्मृतिवर्धक, शीतल कफरोगनाशक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, वाजीकर, रक्तप्रसादन, श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता और सारक है। शीतल कफरोगनाशक होनेके कारण आमवात, पक्षवध, अर्दित, कटिशूल, वातरक्त, गृध्रसी आदिमे मालकँगनीका उपयोग करते है तथा इसका तेल उक्त रोगोमें अभ्यग रूपसे प्रयुक्त होता है। वाजीकरणके लिए इसे विविध प्रकारसे खिलाते है। इसे वाजीकर तिलाओमें डालकर

तिला बनाते हैं। रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ, किलास, कच्छू और कण्डूमे उपयोग कराते है। कफष्ठीवनोत्सर्ग-कर्ता होनेके कारण इसे कास और कफज कृच्छ्रश्वासमे खिलाते हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृति विशेषकर युवाओके लिये बहुत ही अहितकर है। निवारण–गोदुग्ध और गोघृत। प्रतिनिधि–लौंगका तेल। मात्रा–० ५ ग्राम से १ ग्राम (आधा माशासे एक माशा) तक। तेल–(२ से १० बिन्दु)।

आयुर्वेदीय मत—मालकँगनी कटु, तिक्त, उष्णावीर्य, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन, सारक, जठराग्नि, बुद्धि और स्मरणशक्तिको बढानेवाली तथा कफ और वायुके रोगोका नाश करनेवाली है। मालकँगनीका तेल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, बुद्धि और स्मरणशक्ति बढानेवाला, पित्तप्रकोपक तथा वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २, सु० सू० अ० ३९, ध० नि०, रा० नि०)।

नव्यमत—मालकँगनी तिक्त, उष्ण, उत्तेजक, स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातहर और त्वग्दोषहर है। इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाडियोपर होती है।

●

(५०२) मालती

फैमिली ओलिआसे (Family Oleaceae)

नाम—(स०; हिं०, व०, गु०, प०, मार०) मालती, (म०) कुसर, (लै०) जासीमुम् आर्बोरेसेन्स (**Jasimnum arborescens Roxb**)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—इसकी बडी लता होती है। पत्र लम्बोतरे, और नुकीले, २॥–३ अगुल चौडे, ४-५ अगुल लम्बे, फूल सफेद जूही-जैसे, परन्तु उससे बडे होते हैं। पुष्पवृन्त १-२ अगुल लम्बा होता है।

प्रकृति—तालीफशरीफके अनुसार इसका फूल गरम और खुश्क। वैद्य शीतल बतलाते है। (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तालीफ़शरीफके अनुसार यह अर्श, मृगी और सग्रहणी—इनको दूर करने-वाली है।

आयुर्वेदीय मत—मालती वमनकारक है तथा कफ, पित्त, रक्त-पित्त, मुखरोग (मुखपाक), त्वग्दोष, कृमि, कुष्ठ, व्रण, सूजन और पूतिकर्ण इनको नष्ट करनेवाली है। फूल नेत्रोको हितकारी है। पत्र कफपित्तनाशक है। (रा० व०, शो० नि०) वि० दे० "चमेली"।

नव्यमत—पत्र हलका तिक्त, सग्राही, बल्य, दीपन, कालीमिर्च, लहसुन तथा अन्य उत्तेजक औषधियोके साथ इसके पत्रस्वरसका पिच्छिल श्लेष्माजन्य फुफ्फुसप्रणालीगत अवरोधमें वामक (कफोत्सारि) रूपमें प्रयोग होता है। यह ज्वरघ्न, कफघ्न, वामक और विरेचन है। फुफ्फुस और श्वासनलिकाके शोथमें मालतीका प्रयोग करते है।

●

मालती

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family Apocynaceae)

नाम—(स०, हिं०, व०, ते०) मालती, (सथाल) रतेड, (लै०) आगानोस्मा कारीओफिल्लाटा (Aganosma caryophyllata G Don) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक भागोमे पथरीले नालो आदिमे इसकी लताएँ पायी जाती है ।

वर्णन—इसकी विस्तृत लताएँ उद्यानोमे लगाई हुई मिलती है । पत्तियाँ लट्वाकार या अण्डाकार, नोकीली, ७ ५ से० मी० से १५ से० मी० (३-६ इञ्च) लम्बी व ३ ७५ से० मी० से ७ ५ से० मी० (१॥-३ इञ्च) चौडी होती है । पत्र शिराएँ लाल होती है । पुष्प वडे श्वेत, सुगन्धयुक्त समशिखाकार गुच्छोमे होते है । फलियाँ दो-दो, अग्रपर जुडी हुई और प्राय ४ इञ्चसे १० इञ्च लम्बी तथा अग्रकी ओर क्रमश सकुचित रहती है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लता वामक, पत्र पित्तप्रकोपमें और फूल नेत्ररोगोमे प्रयुक्त होता है । पानी लगनेसे जब पैरकी अगुलियोके बीचमें पक जाता है तब इसकी अग्र कलिकाओका स्वरस निकालकर लगाया जाता है ।

●

(५०३) माहीजहरज

फ़ैमिली : मेनिस्पेर्मासे (Family Menispermaceae)

नाम—(हिं०) काकमारी, (अ०) शीकरानुल्हूत, बूसीर, अल्माहीज़हरज(इ० बै०), नवात सस्मुस्समक, माहीजहरज, (फा०) माहीजहर , जहरेमाही, (क०; ते०; म०) काकमारी; (स०) काकमारी, काकघ्नी, (गु०) काकफल, (प०) नेत्रमल, (को०) गरुडफल, (लै०) आनामीर्टा कॉक्कूलुस **Animarta cocculus** (L) Wt & Arn (पर्याय–**A. Paniculata** Colebr), (अ०) फिश बेरी (Fish-berry) ।

वक्तव्य—इसका चूर्ण जलमें डालनेसे मछलियाँ मर जाती है, इसलिए इसको फारसीमें 'माहीजहर (अर्थात् जहरमाही = मत्स्यविष)' कहते है । इसीसे "माहीज़हरज" अरवी बनाया गया है । इससे काक आदि पक्षी और गायें भी मर जाती है । इसलिए सस्कृत और देशी भाषाओमे इसे तदर्थवाचक (गोघातक और काकनाशक) सज्ञाओसे अभिधानित करते है । 'डीमक' के मतसे वास्तविक माहीजहरा गीदड़तमाकू (**Verbascum thapsus** L, or **V glomeratum**) है न कि उपयुक्त काकमारी ।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण एव पूर्वी भारतवर्ष और ब्रह्माके पहाडी जगलोमे इसकी वेल होती है ।

वर्णन—यह वृक्षारोही बडी बेल है जिसकी छाल खुरदुरी, मोटी और कागवत् होती है । फल कुछ-कुछ गोलाई लिए वृक्काकृति १ सें० मी० से १ २५ सें० मी० ($\frac{2}{5}$ से $\frac{1}{2}$ इञ्च) लम्बे और बैगनी तथा छोटे अगूरके आकारके गुच्छोमे होते है । सूखनेपर यह झुर्रीदार कालीमिर्चके समान होते है । बीज–घोडेके नालकी आकृति के समान (Horse-shoe shaped) तथा स्वादमे अत्यन्त तिक्त होते है । गन्ध तेल सरीखा होता है ।

उपयुक्त अग—फल और छाल ।

रासायनिक सगठन—फलमें पिक्रोटॉक्सिन (Picrotoxin) नामक एक अत्यन्त विषैला तिक्त क्रिस्टली ग्लूकोसाइड होता है ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र विरेचन विशेषकर कफविरेचन और जलोदरनाशक है। इससे छोटे-छोटे जीव मृतप्राय हो जाते हैं। आमवात, गृध्रसी और जलोदर जैसे रोगोमें इसका काढा करके पिलाते हैं और जूओको मारनेके लिए शिरमे लगाते हैं। अहितकर—अन्त्रको। निवारण—कतीरा, निशास्ता और अनीसून। प्रतिनिधि—एलुआ और उसारा। मात्रा—२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशासे ३ माशा) तक। अधिक मात्रामे यह सांघातिक विष है।

●

(५०४) मिर्च, काली

फ़ैमिली . पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—(हि०) कालीमिर्च, गोलमिर्च, मिरिच, (अ०) अल्फिल्फिलुल्अस्वद, (फा०) फिल्फिले स्याह, (गिर्द), पिल्पिल्, (उर्दू) स्याहमिर्च, कालीमिर्च, (स०) मरिच, मरीच, (द०) कालीमिर्ची; (व०) गोलमरिच, (गु०) मरी,मरीआ, कालामरी, तीखा, (म०) मिरी, मिरे, मिरिच, (ले०) पीपेर नीग्रम् (**Piper nigrum Linn.**) (अ०) ब्लैक पेपर (Black Pepper), पेपर (Pepper)।

वक्तव्य—यूनानी 'पेपेरी' अंग्रेजी 'पेपर (Pepper),' लेटिन 'पीपेर' आदि तथा अरबी, फिल्फिल्, फारसी 'पिल्पिल्' यह सभी संस्कृत शब्द 'पिप्पली' से व्युत्पन्न है।

इतिहास—ऊपरके वक्तव्यसे यह ज्ञात है कि अन्य भाषाओंके सभी नाम सस्कृत 'पिप्पली' से ही व्युत्पन्न है। इससे स्पष्ट है कि भारतीयोको अति प्राचीनकालसे इस औषधिका ज्ञान है। इसका कारण यह है कि भारत एव इसके समीपवर्ती उष्ण प्रदेशीय देश इसके मूल उद्भव स्थान है। ईसवी सन्से लगभग ४०० वर्ष पूर्व यूनानी हकीम सावफरिस्तुस्ने तीन प्रकारके मरिच अर्थात् फिल्फिल् दराज (पिप्पली), फिल्फिल् सफेद (सफेद) मरिच और फिल्फिल् स्याह (काली मरिच) का वर्णन किया है। शैखुर्रईसने जालीनूससे प्रतिलिपि करते हुए लिखा है कि फिल्फिल् नामक उद्भिज्जमें जो प्रथम फल लगता है वह दारफिल्फिल (पीपल) होता है और तत्पश्चात् वह गोल मिर्च (फिल्फिल्गिर्द) में परिवर्तित हो जाता है, किंतु इब्नेजमीअ और कानूनके भाष्यकार गाजरूनीनने शैखके इस कथनसे मतभेद व्यक्त किया है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतके गरम और आर्द्र भागो (ट्रावनकोर एव मलाबारके समुद्रतट एव जगली प्रदेश) में विस्तृत परिमाणमें इसकी खेती की जाती है। कालीमरिच भारतका एक मुख्य व्यावसायिक उपज है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु वृक्षारोही दीर्घलताके कच्चे सुखाए हुए फल है जो औषधमें काम आते है और बाजारोमें मिलते है। ये छोटे लगभग ⅕ इंच व्यासमें, गोल, झुर्रीदार और कालाई लिए भूरे होते है। इसके अन्दर एक कडा, चिकना, खाकी, गोल बीज होता है। गध—मनोरम, स्वाद चरपरा एव दाहक होता है। इसका एक भेद सफेद है और मिर्चसफेदके नामसे प्रसिद्ध है। पकी कालीमिर्चका छिलका विशेष विधिसे (पानीमे भिगो-रगडकर) दूर कर देनेसे यह प्राप्त होती है। यह कालीमिर्चकी तरह झुर्रीदार नही होती और उसकी अपेक्षया-छोटी, कम चरपरी तथा भूरी वा सफेद एव चिकनी होती है।

रासायनिक सगठन—इसमे (१) रालमय तेल जिसमें एक मिर्चगधी उत्पत् तेल होता है और एक राल होती है और (२) एक हलके पीले रगका चमकीला पाइपेरीन (Piperine) अर्थात् पिप्पलीन वा फ़िलिफ़लीन नामक क्षारोद होता है जो पिप्पल्यम्ल (Piperic acid) और पाइपरीडीनमे वियोजित हो जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (च०, सु०)।

गुण-कर्म—बाहरी तौर पर उपयोग करनेसे कालीमिर्च प्रथमत लेखन, रक्ताकर्षणकर्ता और संक्षोभजनन कर्म करती है, परन्तु अतत इसका अवसादक कर्म होता है। इसको मुखमें चबानेसे अत्यत लालास्राव होता है। आतरिक उपयोगसे यह वातनाड़ीबलदायक, दीपन और यकृद्बलवर्धन कर्म करती है। यह पाचनको शक्ति देती, खूब भूख बढाती, अन्त्रामाशयगत वायुका उत्सर्ग करती, मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करती और वाजीकरण करती है। फुफ्फुसोपर इसका श्लेष्मनि सारक कर्म होता है। यह सरलान्त्रकी वातग्रस्त और शोथयुक्त श्लैष्मिक कलाको शक्ति पहुँचाती है, तथा शीतल विषोके प्रभावको नष्ट करती और पर्यायसे होनेवाले रोगोकी वारीको रोकती है। यह विशेषरूपसे दीपन-पाचन और कफ रोगोके लिये गुणकारक है।

उपयोग—लेखन, शोणितोत्क्लेशक और सक्षोभजनन होनेसे औपधरूपेण कालीमिर्चको किलास और झाईं पर पतला लेप करते है तथा कतिपय वेदनाओमे वेदनाशमनार्थ इसे लगाते या इसकी मालिश करते है। कण्ठमालेको बैठानेके लिए इसे जिफ्तके साथ पीसकर लेप करते हैं तथा वातज शोथ (तहब्बुज रीही) और कफज शोथोपर उपयुक्त औषधियोके साथ पीसकर लेप करते है। अगघातजन्य कण्ठशोथ और दंतशूलमे इसके काढेसे कुल्ले कराते है। कृमिभक्षित दतशूलमें अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ मजनकी भाँति इसका उपयोग करते है। इसको मुखमे चबानेसे मुखसे अत्यत लालास्राव होता है। अतएव जिह्वागौरवमे इसे चबाया जाता या बारीक पीसकर जिह्वापर मला जाता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्कके द्रवोको कम करनेके लिये इसे बीज निकाले हुए मुनक्काके साथ चबाते हैं। प्लीहाशोथको विलीन करनेके लिए इसे सिरकाके साथ पीसकर लेप करते है। फूली, नाखूना (शुक्लार्म) और दृष्टिमाद्यको दूर करनेके लिये इसे उपयुक्त औषधियोके साथ खरल करके आँखोमे लगाते है। कालीमिर्च आतरिक रूपसे आहारोमे मसालेकी भाँति डालकर खायी जाती है। इससे आनाहकर (बादी) खाद्याहारोके उक्त दोषका परिहार हो जाता है और पाचन-शक्ति बलवती होती है। इसके अतिरिक्त दीपन, आहार-पाचन और भूख लगानेके लिये इसे जुवारिश जालीनूस, जुवारिश कमूनी और अन्य योगोमे डालकर खिलाते हैं। कफज कास और श्वासमे कालीमिर्चको अकेले या उपयुक्त औषधियोके साथ मधुमे मिलाकर चटाते हैं और प्राय वातिक-कफज रोगोमे खिलाते और बाहरी तौरपर लेप करते है। कामोत्तेजनके लिये इसको पतले लेपो (तिलाओ) मे डालते और योगोमे मिलाकर खिलाते हैं। शीतपूर्व ज्वरो (तपे लरज़ा)को रोकनेके लिये इसको उपयुक्त औषधियोके साथ उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अर्श एवं गुदव्रणमें सरलान्त्रकी कलाको शक्ति देनेके लिए इसे खिलाते है। कतिपय मूत्रार्तवजनन नुसखोमे इसको डालते है, और कतिपय शीतल औषधियोके दोषपरिहारके लिये इसे मिलाकर उपयोग करते हैं। वृश्चिक एव सर्पदष्ट तथा अफीम खाये हुयेको इसका काढा बार-बार पिलाकर वमन करानेसे उनका विष नष्ट हो जाता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति और वृद्धोके लिये। **निवारण**—मधु और शीतल स्नेहद्रव्य। **प्रतिनिधि**—सफेद मिर्च और सोठ। **मात्रा**—३६० मि० ग्राम से १$\frac{1}{3}$ ग्राम (३ रत्तीसे १$\frac{1}{3}$ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—कालीमिर्च कटु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, अवृष्य, रोचन, छेदन, शोषण, दीपन, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, शूलप्रशमन तथा कफ, वात और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। सफेदमिर्च उष्णता और शीतलतामे मध्यम (न अति उष्ण न अति शीत), कालीमिर्चसे विशेष गुणकारक और नेत्रके लिए हितकर है। आर्द्र (ताजी) मरिच मधुरविपाक, गुरु और कफका स्राव करानेवाली है (च०सू० अ० २, ४, २७, सु०सू० अ० ३८, ४६, रा० नि०)।

नव्यमत—कालीमिर्च उष्ण, दीपन, वातनाशक, नियतकालिकज्वर-प्रतिवन्धक, उत्तेजक तथा मूत्रेन्द्रिय और उत्तरगुदके लिए उत्तेजक है। कुपचन और आध्मानमे कालीमिर्च गुणकारक है। उत्तरगुदपर इसकी विशेष क्रिया होती है। इसलिए इससे अर्शमें लाभ होता है। मूत्रपिंडके लिए उत्तेजक होनेसे इससे मूत्रकी राशि बढती है। शीतज्वरमें ज्वर आनेसे पूर्व इसे देनेसे रोगीको अच्छा मालूम होता है। परन्तु इसमे ज्वरघ्न गुण अल्प है, इसलिए इसके साथ अन्य ज्वरघ्न औषध देना चाहिए।

(५०५) मिर्च, लाल

फैमिली : सोलानासे (Family · Solanaceae)

नाम—(हिं०) लालमिर्च, मिरचा, मरचा, मर्चा, (अ०) फिल्फिले अहमर, (फा०) फिल्फिले (पिल्पिले) सुर्ख, (उर्दू) सुर्खमिर्च; (सं०) कटुवीरा ? लंका ? रक्तमरिच ? (द०; बम्ब०) मिर्ची, लालमिर्ची, (बं०) लंका, लंकामरिच, लालमरिच, (म०) लालमिर्ची, (गु०) मरचां, (लै०) कॅप्सीकुम् फ्रूटेस्सेंस (**Capsicum frutescens Linn.**); (अं०) रेड चिली या पेपर (Red Chilli or Pepper), बर्ड चिली (Bird Chilli), कैप्सिकम (Capsicum) ।

इतिहास—इसका मूल उत्पत्तिस्थान अज्ञात है। कल्सूम कहता है, कि उसे पुर्तगाली लोग भारतवर्षमे लाये थे और वहांसे सन् १५९५ ई० में यह इंग्लैंड पहुँचा। प्राचीन भारतीयोंको इसका ज्ञान नही था, क्योकि प्राचीन संहिताओं तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नही मिलता। लालमिर्च भी एक वाह्यागत वनस्पति प्रतीत होती है। किन्तु अब यह यहां सर्वत्र खेती द्वारा ऊँचे परिमाणमे उत्पन्न की जाती है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे इसकी खेती की जाती है। हरी मिर्च प्राय साल भर सब्जी-बाजारोमें तथा सूखी लालमिर्च सर्वत्र पंसारियोंके यहाँ मिलती है।

वर्णन—यह एक छोटे क्षुपकी लम्बी गोपुच्छाकार विभिन्न आकारकी प्रसिद्ध फली है, जो अपक्वावस्थामें हरी या हरापन लिए काली और पक्व होनेपर लाल हो जाती है। इसके अन्दर पीले रंगके छोटे-छोटे चपटे बीज भरे होते है। गंध विशेष प्रकारकी और स्वाद कटु एवं अत्यन्त चरपरा होता है। चाबनेपर जिह्वा एवं मुखमें जलन की अनुभूति होती है। बाजारोंमें जो सूखा लालमिर्च मिलता है और जिसकी खेती समस्त भारतवर्षमे अधिकतासे होती है, उसके क्षुपको लैटिनमें कॅप्सीकुम् आन्नुउम् (Capsicum annuum Linn) कहते है।

रासायनिक संगठन—इसमें कैप्सिसिन (Capsicin) नामक एक रालदार उत्पत् क्षारोद, (२) एक स्फटिकीय कटु पदार्थ कैप्सेसिन (Capsaicin), (३) एक उत्पत् तैल, (४) एक अनुत्पत् तैल, (५) राल, (६) रंजक द्रव्य और (७) लाल प्रभृति तत्त्व होते है। इसकी चरपराहटका कारण इसमें वर्तमान कैप्सिसिन नाम रालदार तैल है।

उपयुक्त अंग—फल।

मात्रा। चूर्ण—० १८ से ०·७५ ग्राम (१/४ से १ आना भर), क्वाढा–१२ से २४ ग्राम (२ से ४ तोला)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर उपयोग करनेसे लालमिर्च श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक और संक्षोभजनन है। मुखमें चबानेसे यह लालास्रावको बढाती तथा अन्त्र और आमाशयपर उद्दीपक एवं वातानुलोमन कर्म करती है। अधिक प्रमाणमें खानेसे यह अन्त्र और आमाशयमे संक्षोभ (खराश) करके रगड (सहज्ज) उत्पन्न कर देती है, तथा हृदय और वाहिनियोको उत्तेजित करती एवं किसी प्रकार मूत्रल और वाजीकर भी है। यह विशेषकर दीपन-पाचन और हृदयोत्तेजक है। उपयोग—लालमिर्च भारतवर्षमें अधिकतया आहारोमे मसालेकी भाँति उपयोग की जाती है। इससे वादी एवं आनाहकारक आहारोके दोषका परिहार होता है और पाचनको सहायता प्राप्त होती है। इससे जल और आहारके दोषोका परिहार हो जाता तथा जलवायु परिवर्तनसे आमाशयपर जो कुप्रभाव पड़ता है यह उसे नष्ट करती है। सुतरां यात्रामें विविध जलोंके सेवनसे जो हानि होती है, उसे दूर करनेके लिए लालमिर्च-को आहारोमें डाला जाता है। इसके अतिरिक्त मदाग्नि, कुपचन, उदरानाह और मदात्ययमे यह परम गुणकारी है। सम्भवत दीपन और वाहिनी एवं हृदयोत्तेजक होनेके कारण हैजेकी अन्तिम अवस्थामे जबकि हृदय दुर्बल हो

गया हो, यह उत्तम प्रभाव करती है। इसलिए हैजेमें भी इसका उपयोग करते हैं। बाहरी तौरपर कुत्तेके काटे हुए स्थानपर इसको जलमें पीसकर लगाते हैं। इससे प्रथम तो दाह प्रतीत होता है और द्रवोंका उत्सर्ग बहुत होता है। किन्तु इसके उपरांत वास्तविक वेदना और मिर्चोंका दाह मिट जाता है और जख्ममें पीव नहीं पडती, अपितु वह बहुत शीघ्र सूख जाता है। इसी प्रकार कतिपय अन्य वेदनाओं और दाह, जैसे—कफज शिर:शूल, आमवात, कटिशूल, पार्श्वशूल और गृध्रसीमें इसका लेप लगानेसे वेदना और दाह मिट जाता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—दूध और घी। प्रतिनिधि—कालीमिर्च। मात्रा—० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—लालमिर्च अग्निकारक, कफघ्न, दाहकर तथा अजीर्ण, विसूचिका और सुदारुण क्लिन्न व्रण तथा तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभेद एव अरुचिका नाश करनेवाली है। लालमीर्च दर्शन, श्रवण व वाक्शक्ति-विरहित क्षीण एवं लुप्तनाडीयुक्त सन्निपातरोगियोंको मृत्युके मुखसे आकर्षण कर जीवनदान कर सकता है। (आत्रेय संहिता)।

नव्यमत—लालमिर्च तीव्र स्थानीय उत्तेजक (सक्षोभक) है। इसका लेप अधिक समय तक शरीरपर रहनेसे वहाँ फफोला उठ आता है। औषधोपयोगी मात्रामें सेवन करनेसे यह अन्नप्रणालीको उत्तेजन प्रदान करता है, मुँहमें जलन उत्पन्न करता और लालारसको वृद्धि करता है। आमाशयमें उष्णताका अनुभव होता है, आमाशय-रसका उद्रेक बढता है तथा अन्त्रकी पुरस्सरण गति में वृद्धि होती है। इसके खानेसे हृदय, त्वचा और वृक्कद्वय उत्तेजित होते हैं। वाजीकरणरूपेण यह वात एव जननेन्द्रियसंस्थानको उत्तेजित करता है। यह रक्तवहाओंके धारी-विहीन मासतंतुओंपर अपनी सकोचनीशक्तिके प्रभावसे यह अर्गटकी भाँति रक्तस्रावको बन्द करता है। इन्द्रीक्रिया वैकल्यजात नपुंसकत्व, शुक्रमेह, चिरज मूत्राशय(वस्ती)शोथ एव मूत्रग्रथिप्रमेक (Catarrh of the Prostate)में यह वाजीकररूपसे व्यवहार किया जाता है। वृक्कशोथ विशेष (Parenchymatous nephritis)में यह ऐल्व्युमिनक्षयको बन्द करता है। कुचिलाके साथ इसका सेवन दीपन, बल्य एव ग्रहणी, अजीर्ण, शूल, उदावर्त, कम्पज्वर, अत्यन्त अवसाद एव दीर्घकालिक सुरापानजनित कुपरिणाम (अत्युत्कट मद्यपानेच्छारोग)में प्रशस्त है। प्रलाप, कम्पादि रोगमें तथा अफीमकी आदत छुडानेके लिए इसका अधिक मात्रामें सेवन हितकर है। समुद्रयात्राजन्य रोग, विषमज्वर एव अन्यविध सूक्ष्मज्वर (जीर्णज्वर), चिरज कोष्ठबद्धता, अर्श तथा विसूचिकामें यह उत्तेजनीय भेषजस्वरूप कार्य करता है।

•

(५०६) मिश्केतरामशीअ

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(भा० बाजार) मिश्केतरामशीअ(मिश्कतरामशी), (अ०) मिश्केतरामुशीअ, फ़ूदनज जबली, बकलतुल् गजाल, (फा०) पूदन कोही, पूदन केक, सग; (ले०) मेन्था पॉलीजिउम् (**Mentha polygium**), (अं०) वाइल्ड थाइम (Wild Thyme), फ्ली-मिंट (Flea-Mint)।

वक्तव्य—इसकी गंधसे पिस्सू और मक्खियाँ भाग जाती हैं, इसलिए इसको लेटिनमें पॉलीजिउम्(= पिस्सू-नाशक = दाफेअ केक (फा०)' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—फारस, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और बलूचिस्तान।

वर्णन—यह ५से ७ ५ सें० मी० (२से ३ इञ्च) या ३० सें० मी० (१ फुट) तक ऊँचा बहुत छोटा पौधा है। तना-काष्ठमय, नीचेकी ओर जमीनपर बिछा हुआ, गोल, पतला शाखायुक्त और किंचित् लोमयुक्त होता है।

पत्र छोटे-छोटे अडाकृति, लगभग वेनोक और लोमरहित, पुष्प बहुसख्यक, बारीक और लोमयुक्त, गंध और स्वाद तीक्ष्ण और मनोरम, पेपरमिटकी तरह, किन्तु उससे मधुरतर होता है।

उपयुक्त अग—पचाग।

रासायनिक सगठन—एक उत्पत् तैल जिसमें पार्लोगोन नामक एक कीटोन सत्व होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन और उदरकृमिनाशन आदि। उपयोग—इसको अधिकतया आर्तवप्रवर्तन और अमरा एव गर्भनिःसारणके लिए क्वाथकी भाँति उपयोग किया जाता है। उदरकृमिनाशनके लिए इसको पान और वस्तिकी भाँति उपयोग करते है। कर्ण एव नासिका आदिके व्रणोमें इसका निचोडा हुआ स्वरस डालनेमे उनमें उत्पन्न हुए कृमि नष्ट हो जाते हैं। मात्रा—५से ७ ग्राम (५से ७ माशे) तक।

नव्यमत—क्षुप कफोत्सारि एव वाजीकर, बीज ज्वरघ्न है। प्रवाहिकामे बीजोका चूर्ण मक्खनमे मिलाकर देते है।

●

(५०६) मुचकुन्द

फ़मिली : स्टेर्कूलिआसे (Family Sterculiaceae)

नाम—(हि०,म०,गु०,क०) मुच(नु)कुंद, (फा०) गुले मुचकुन (=मुचकुद), (स०) मुचकुद, छत्रवृक्ष, (व०) मुचुकुदचाँपा, (लै०) प्टेरोस्पेर्मुम् आसेरीफोलिउम् (**Pterospermum acerifolium** Willd.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके पहाडी प्रदेश, देहरादून आदि। अन्यान्य बहुश भागोमें तथा पूरबमे ब्रह्मा और दक्षिणमें लका पर्यन्त इसके वृक्ष होते है। बागोमें पुष्पके लिए तथा सडकोके किनारोपर छाया वृक्षके लिए इसके लगाये पेड मिलते है।

वर्णन—यह बडे वृक्षका प्रसिद्ध सुगन्धित पुष्प है, जो बडा, पीताभश्वेत, गधयुक्त होता है। आभ्यन्तरदलपुज ८.७५ सें० मी०से ११.२५ सें० मी० (३½से ४½ इञ्च) लम्बा होता है। मुचकुदका उक्त पुष्प ही औषध्यर्थ व्यवहृत होता है। बाजारमें इसके सूखे फूल मिलते है।

रासायनिक सगठन—फूलमें एक सुगन्धित उत्पत् तैल होता है।

कल्प तथा योग—जिमाद गुलमुचकुन।

प्रकृति—(पहले दर्जेमे) गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अर्शोजात रक्त बन्द करनेके लिए समप्रमाण बारीक किया हुआ मुचकुद, घी और चीनीका हलुआ गुणकारी है। परन्तु झवाई टोलाके हकीम इसका केवल बाह्य प्रयोग उचित समझते है। शीतल शिरःशूलमें इसे जलके साथ पीसकर मस्तकपर लेप किया जाता है। यह विशेषरूपसे अर्शोजात रक्तस्तम्भन है। अहितकर-उष्ण प्रकृतिको। निवारण—काहूका तेल। मात्रा—७से १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—मुचकुद तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, स्वरको सुन्दर करनेवाला तथा कफ, पित्त, खाँसी, कण्ठरोग, त्वचाके विकार, सूजन, सिरकी पीडा, त्रिदोष, रक्तपित्त, रक्तविकार, व्रण और पामारोगका नाश करनेवाला है। (म०वि,नि०र०)।

●

(५०७) मुलीम

वर्णन—एक भारतीय पौधेकी जड है जो कालाई लिए भूरी (गुल्नारी) और कटु-तिक्त होती है।

वक्तव्य—डीमक लिखित फार्माकोग्राफिया इडिका और एतद्विपयक अन्य ग्रन्थोमे गीदड तमाकू (Verbascum thapsus Linn)का अंगरेजी नाम मुलीन (Mullein) लिखा है। गुणकर्म और उपयोग आदि देखनेपर इसका उपर्युक्त मुलीमसे वहुत सादृश्य दिखलाई पडता है। अस्तु, वहुत सभव है कि यह उपर्युक्त 'मुलीम' ही है। किसी-किसीके मतसे यह सरख्स हैं। दे० 'सरख्स'।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कृमिघ्न विशेषकर व्रणस्थ कृमिहर। कृमिघ्न होनेके कारण इसको ऐसे व्रणोपर छिडकते है जिनमे कीडे पड गए हो। शरह अस्बावके हाशिएपर लिखा है कि इसके पत्तेके स्वरससे भी कीडे मर जाते है। मस्तिष्कगतकृमिजन्य शिर शूलमे इसके नस्य देनेसे कीडे मरकर निकल जाते है और शिर शूल जाता रहता है। जूओको मारनेके लिए इसे जलमें पीसकर वालोकी जडमें लगाते है। यह उदरकृमियोको भी मारकर निकालता है। अहितकर–उष्ण प्रकृति और फुफ्फुसके लिए। निवारण–स्नेह द्रव्य (मक्खन, तेल आदि)।

●

(५०८) मुलेठी

फैमिली लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम।मूल (हिं०) मुलेठी, मुलहठी, मुलठी, जेठीमध, (यू०) मेयन (Meyan), (अ०) अस्लुस्सूस, इर्कुस्सूस, (फा०) वेखमहक, महकमतकी, (स०) मधुक (च०,सु०), मधुयष्टि, मधुयष्टिका, मधुयष्टी, यष्टीमधुक (च०), क्लीतक, (क०) शगर, (प०) मुलेठी, जेठीमध, (उ०प०प्रा०) मुलेठी, (व०) यष्टिमधु, (द०) मीठी लकडी, (म०) जेष्ठीमध, जेष्ठमध, (गु०) जेठीमध, (कना०) ज्येष्ठमध, (सिं०) मिठीकाठी, (ते०) यष्टीमधुकमु, (ता०) अतिमतुरम्, (मल०) इरट्टि-मधुरम्, (ले०) ग्लीसीर्रहीजा राडिक्स (Glycyrrhiza Radix), (अ०) लिकोरिस (Liquorice), लिकोरिस रुट (Liquorice Root)। इसकी लताका लेटिन नाम ग्लिसीर्रहीजा ग्लाब्रा (**Glycyrrhiza glabra** Linn) है। (अ०) अस्लुस्सूस् (इ०बै०); (यू०) Glukurriza (D 3 5.)। वक्तव्य—यह सौसन नही, उससे भिन्न है।

(सत्त्व रसक्रिया)–मुलेठीका सत, सत मुलेठी, (अ०) रुब्बुस्सूस, खुलासतुस्सूस, (फा०) उसारए महक, (ले०) एक्स्ट्राक्टुम ग्लीसीर्रहीजी (Extractum Glycyrrhizae), (अ०) एक्स्ट्रैक्ट ऑफ लिकोरिस (Extract of Liquorice)। इसकी लेटिन सज्ञा 'ग्लीसीर्रहीजी' इसकी यूनानी सज्ञा 'ग्लूकूर्रीजा (Glukurriza)'से, जो 'ग्लूकोज = मधुर' (मिष्ट) और 'र्हीजा = जड'का यौगिक है, व्युत्पन्न हैं। इसकी जड स्वादमें मीठी होती हैं, इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

इतिहास—साव़फरिस्तुस् और दीसकूरीदूस जैसे प्राचीन यूनानी हकीमोने 'ग्लूकोरींजा' नामसे उक्त औषधिका उल्लेख किया है। रोमदेशीय हकीम कल्सूस तथा प्लाइनीने 'डल्कस राडिक्स (= मीठी जड)'के नामसे इसका वर्णन किया हैं। इसलामी हकीमोको भी यह औषधि भलीभाँति ज्ञात थी। भारतीय वैद्योको भी प्राचीन कालसे ही इस औषधिका ज्ञान था। चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदीय प्राचीन संहिताओमें 'यष्टिमधु'का प्रचुरतासे उल्लेख मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—यह दक्षिण युरोप, मिस्र, अरब, ईरान (फारस), तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, एशिया माइनर और मध्य एशियामें उगती है। यद्यपि देशी मुलेठी पेशावरकी घाटी और उपहिमालयन प्रदेशोंमें चनाबसे पूरबकी ओर पायी जाती और नमस्व ब्रह्मा और अन्दमान टापुओंमें उत्पन्न होती है, तथापि वहाँ इसका संग्रह अत्यल्प प्रमाणमें होता है। अधिक मुलेठी फारसकी घाटी, एशिया माइनर, तुर्किस्तान और साइबेरिया आदिसे आती है। इस देशमें मध्य एशियाके कबीलोंद्वारा लायी जाती है। अधुना पंजाब, सिंध और पेशावरमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह पुस्तकोंमें भिन्न एक वेस्तकी प्रसिद्ध जड़के लंबे और गोल टुकड़े हैं जो औषधके काममें लिये जाते हैं। छाल भूरी, काली और झुर्रीदार, काष्ठ भीतरसे पीला और रेशेदार; गंध हलकी विशेष प्रकारकी, ताजी जड़का स्वाद मधुर और लबाबदार होता है, किन्तु सूखने पर उसमें किंचित् तिक्तता और अम्लता आ जाती है। इसके यह तीन भेद हैं—(१) मिस्री, (२) अरबी और (३) तुर्की। इनमें मिस्री उत्तम, अरबी मध्यम और तुर्की अधम होती है। 'तुरुष्क' और 'पारसीय मुलेठी' अत्यन्त मधुर और मिस्री तथा अरबी मधुरतर होती है। भारतवर्षमें मुलेठी प्रायः फारस, सिंध और पंजाब आदिसे आती है और यह अधम होती है। मुलेठी का सुखाया हुआ सत्व (रुब्ब) जो बाजारमें काले रंगके पेन्सिलकी नाईके गोल-गोल लंबे टुकड़ों (बत्तियों)के रूपमें मिलता है, 'रुब्बुस्सूसके नामसे यूनानी' चिकित्सामें काम आता है।

उपयुक्त अंग—छिलका उतारी हुई जड़के टुकड़े।

रासायनिक संगठन—इसमें मधुयष्टीन या मुलेठीन (ग्लीसीरहाइजीन Glycyrrhizein) नामक एक पीला स्फटिक चूर्ण (ग्लुकोसाइड), ॲस्परगीन, ग्लूकोज, राल, श्वेतसार और मैलिक अम्ल (Malic acid) प्रभृति पदार्थ होते हैं।

कल्प तथा योग—सत मुलेठी, सफूफ अस्लुस्सूस मुरक्कब।

प्रकृति—समशीतोष्ण; मआतदिल पहले दर्जेमें गरम और तर और अन्य मतसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध। (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—माद्दःदोषपाचन, तृष्णाशमन, वातनाडीबलदायक, अवसादक, सर, उत्क्लेशकारक तथा छर्दिजनन, विलयन, श्लेष्मनिस्सारक, अन्तरावयवप्रक्षालक, लेखन, वत्य, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन और जीर्णज्वरनाशक तथा फुफ्फुसरोगोंमें विशेष गुणकारक है। माद्दःदोषपाचन होनेके कारण यह प्रायः सौदा एवं श्लेष्मा-रोगोंमें प्रयुक्त, पाचनयोगोंमें डाली जाती है। माद्दःदोषपाचन होनेके अतिरिक्त यह विलयन, मार्दवकर और श्लेष्मनि-सारक भी है, अतएव फुफ्फुस तथा फुफ्फुसप्रणालीके शोथ और खरत्वको दूर करती है तथा स्वरभंग श्वास, कृच्छ्र-श्वास और कासमें प्रयुक्त होती है। यह यकृत्प्लीहाके कतिपय रोगोंमें गुणकारी है। लेखन और अन्तरावयवप्रक्षालन होनेके कारण यह सदाहमूत्र, सूजाक, व्रण और वस्तिवृक्कसंक्षोभके लिए उपकारक है। वातनाडीबलदायक होनेसे यह प्रायः वातव्याधियोंमें उपयोग की जाती है। यह वातनाडीशूलको भी नष्ट करती है। अंजन से दृष्टिवर्धन और नेत्रशुक्लके लिए हितकर है। उत्क्लेशकारक एवं छर्दिजनन होनेके कारण इसका काढा श्लैष्मिक द्रवोंको आमाशयसे उत्सर्गित करनेके लिए पिलाते हैं। यदि इस प्रकार सम्यक् उत्सर्गित न हो, तो कुछ विरेक और कुछ मूत्रमार्गसे उत्सर्गित होता है। शहदके साथ इसका लेप विषगाठ (दाखिस)के लिए उपादेय है। अहितकर—वृक्क और प्लीहाके लिए। निवारण—वृक्कमें कतीरा और प्लीहामें गुलाबका फूल। प्रतिनिधि—वक्षतोदमें इसका प्रतिनिधि कतीरा है। मात्रा—३ ग्रामसे ७ ग्राम (३ से ७ माशे) तक।

मुलेठी का सत—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके गुणकर्म मुलेठी के समान है। यह अधिकतया कासके योगोमे प्रयुक्त किया जाता है तथा कास और मिथ्याकासके अपहरणके लिए इसको मुखमे रखकर चूसते हैं। यह विरेचन औषधोंके दोष-परिहारके लिए विरेचन गुटिकाओमें भी डाला जाता है और कासके लिए विशेप गुणकारक है। यह झूठी प्यासको दूर करता है। अहितकर–वृक्कके लिये। निवारण–कतीरा और गुलावके फूल। प्रतिनिधि–मुलेठी। मात्रा–० ५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—मुलेठी मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, जीवनीय, सन्धानीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, कण्डूघ्न, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थापनोपग, छर्दिनिग्रहण, मूत्रविरजनीय, शोणितस्थापन, रसायन, वाजीकरण, चक्षुष्य, वलकारक, केश्य तथा पित्त, वात, रक्तविकार, व्रणशोथ, विप, तृष्णा, ग्लानि और क्षयको दूर करनेवाली है (च० सू० अ० ४, चि० अ० १, २, सु० सू० अ० ३८, भा० प्र०)।

नव्यमत—मुलेठी मधुर, शीतल, स्नेहन, कफशामक, मूत्रजनन और व्रणरोपण है। मुलेठीको स्वरभग, खाँसी और मूत्रदाहमें देते है।

●

(५०९) मुश्कदाना

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—(हिं०, मार०, फा०) मुश्कदाना, कस्तूरीदाना, (अ०) हब्बुल्‌मि(मु)श्क; (स०) लताकस्तूरिका (भा० प्र०) कटुक, (बं०, गु०) मुश्कदाना, लताकस्तुरी, (म०) कस्तूरभेंड, मुश्कदाणा, (ता०) वेत्तिलै कस्तूरि, (मल०) काट्टुकस्तूरी, (का०) काडकस्तूरि, (लै०) आबेलमॉस्कुस मॉस्काटुस **Abelmoschus moschatus** Medic (पर्याय–*Hibiscus abelmoschus* Linn), (अ०) मस्कमैलो सीड्स (Musk-mallow Seeds), मस्क सीड्स (Musk Seeds)। वक्तव्य—लेटिन नाम **Abelmoschus moschatus** इसके अरबी नाम 'हब्बुल्‌मिश्क (हब्ब = गोली (अर्थात् दाना), मिश्क = मुश्क (Musk) = कस्तूरी दाना पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके उष्णतर भागो, विशेषकर बगाल और मदरासमे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसका क्षुप जगली भिंडीके समान, दो हाथ ऊँचा, पत्र भिंडी सरीखा, फूल भिंडीके फूलकी तरह पीला, फल भिंडी सरीखा, बीज मूत्रपिंडाकृति, जरा चपटा, लगभग $\frac{1}{8}$ इञ्च व्यासमे, साधारणत भिंडीके बीज जैसा खाकी स्याहीमायल होता है। इसके अन्दर चिकना सुगन्धित मग्ज निकलता है। तैलीय बीजोको 'मुश्कदाना' कहते है। बीजको मसलनेसे कस्तूरीवत् गध आती है।

उपयुक्त अग—पत्र, बीज और मूल। कभी-कभी इसका बीज बाजारमे भी मिलता है।

रासायनिक सगठन—निर्यास, अल्ब्युमेन, अनुत्पत् तेल, एक ठोस स्फटिकीय पदार्थ, सुगन्ध द्रव्य और राल। अनुत्पत् तेल हरापन लिये पीला होता है और वायुमे खुला रहने पर जम जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत और रूक्ष, आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चक्षुष्य, सूजाक और शुक्रस्रावनाशक, संग्राही और संशमन है। इसको महीन खरल करके नेत्रमें लगाते हैं और चूर्ण बनाकर शुक्रमेहमे खिलाते हैं। सूजाकमे इसके पत्र और मूलको जलमे मल-छानकर चीनी मिलाकर पिलाते है। (मात्रा–२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मौलसिरी रसमें तिक्त और मधुर, शीतवीर्य, लघु, नेत्र्य, दीपन, वाजीकर तथा कफ, तृष्णा, दन्तके रोग और मुखके रोगोंका नाश करनेवाली है। इसे मुँहमें रखकर चबानेसे मुँह स्वच्छ एवं सुगन्धित होता है तथा भोजनपर रुचि उत्पन्न होती है। (च० सू० अ० ५, सु० सू० अ० ४६, भा० प्र०)।

●

(५१०) मौ(मु)संबी

फैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०, बं०; बम्ब०) मु(मो)संबी, मुसम्मी, माल्टा; (तै०) बटाविया नारिंज; (ले०) सीट्रस सीनेन्सिस (**Citrus sinensis Linn.**), सीट्रस डुल्सिस (**Citrus dulcis Pers.**), (अं०) स्वीट ऑरेंज (Sweet Orange), पोर्चुगाल ऑरेंज (Portugal Orange)।

उत्पत्तिस्थान—सिसिली, पश्चिम भारतीय द्वीप और अफरीका। भारतवर्षके बहुतसे भागों विशेषकर बम्बई, मद्रास आदि तथा हैदराबाद, मध्यप्रदेश, नासिक और पंजाबमें इसे लगाया जाता है।

वर्णन—संतरेकी जातिका एक प्रसिद्ध फल है जो आकृतिमें संतरेके समान, किन्तु पकनेपर पीले रंगका होता है। इसका छिलका संतरेके विपरीत भीतरकी फाँकोंसे संसक्त होनेसे सुगमतासे छीला नहीं जा सकता न तो इसकी फाँकें संतरेके समान सरलतासे अलग की जा सकती हैं।

रासायनिक संगठन—फलमें [illegible] विटामिन 'सी' तथा कैल्सियम फास्फोरस और अयस् प्रभृति शरीरोपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। फलत्वकमें तैल, लिमोनेन, लिनेलूल आदि, फलमें मोगरेकी सुगन्धवाला उत्पत् तैल (Essential oil) होता है, जिसे निरोली तैल (Neroli Oil) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, फलका छिलका।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फल रक्तको शुद्ध करता, ज्वरजन्य तृषाको शांत करता, प्रसेक (Catarrh) और भूख बढ़ाता है। स्वरस पित्तज अतिसार तथा पैत्तिक विकारोंमें उपकारक है। फलका छिलका वातानुलोमन और बल्य है। ताजा फलका छिलका, मुँहासों पर रगड़नेसे लाभ होता है।

●

(५११, ५१२) मुसली (काली व सफेद)

काली मुसली (मूसली स्याह)

फैमिली : हीपॉक्सीडे (Family . Hypoxideae)

नाम—(हिं०) काली मुसली, सिया(स्याह)मुसली, मुसलीकन्द, (सं०) कृष्णमुसली, तालमूली, तालपत्री, मुसली, हेमपुष्पी, भूताली, मुसलीकन्द; (बं०) तालमूली, (गु०) कालीमुसली, (म०) कालीमुसली, (ले०) कूर्कूलीगो आर्किओइडेस (**Curculigo orchioides** Gaertn.)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्ष और लंकाके उष्णतर छायान्वित आर्द्र भूमिमें होती है।

वर्णन—यह पौधा अतिशिशु तालवृक्षाकृति ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० (१-१½ फुट) ऊँचा पौधा होता है, जो चौमासेमें उगता है। फूल सूक्ष्म और पीला; मूलस्तम्भ रम्भाकार, कन्दवत्, देखनेमें तालस्कन्धके सदृश, अगुलितुल्य एव क्षुद्र उपमूल समन्वित; यह 'मुसलीकन्द' नामसे प्रसिद्ध है। कन्दका ऊपरी भाग कृष्णताम्र वर्ण और भीतरी भाग शुभ्र वर्ण होता है। औषधमें दो वर्षीय पौधेका कन्द काम आता है। बाजारमें इसकी सूखी जडके काटे हुए छोटे-छोटे टुकडे मिलते है, जो बाहरसे काले और अन्दरसे सफेद या मटमैले होते है। स्वाद फीकासा लवाबदार होता है। चबानेसे कुछ एलुआ-सी गन्ध आती है, किन्तु कडुआहट नही होती।

उपयुक्त अंग—कद।

रासायनिक सगठन—राल, कषाय द्रव्य, लवाब, वसा, स्टार्च और सुखाये हुए कंदकी राखमें चूना होता है।

●

सफेद मुसली (मूसली सफेद)

फैमिली : आस्पार्गासे (Family : Aspargaceae)

नाम—(हिं०) सफेद मु(मू)सली, (अ०; फा०, द०) शकाकुले हिंदी, (स०) श्वेतमूसली; (म०) सफेद (द) मुसली; (गु०) सफेद मुसली, धोली मुसली, (व०) श्वेत मुषली, (ले०) आस्पारागुस आड्सेंडेस (**Asparagus adscendens** Roxb)।

वक्तव्य—मिर्जापुरके जगलो एव विन्ध्यके कतिपय क्षेत्रोसे संग्रहीत सफेद मुसली सभवत लीलीआसे कुल की क्लोरोफीटुम् प्रजातिकी क्लोरोफीटुम् ब्रेविस्कापिउम् या क्लोरोफी० आरांडीनासेउम् (**Chlorophytum breviscapium** or **C. arundinaceum** Baker) नामक वनस्पतिकी कन्दाकार जड होती है। क्षुप केंदरीके समान और जड शतावरीमूलकी तरह गुच्छाकार होती है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, पजाब, मुरीसे कुमाऊँ तक, गुजरात, रतलाम, रुहेलखण्ड और मध्य भारतवर्ष। उत्तम सफेद मूसली रतलाममे होती है।

उपयुक्त अग—कद।

वर्णन—यह शतावरकी तरहकी एक कँटीली झाडका कंदमूल वा पाताली धड है जिसकी छाल उतारकर सुखा लेते हैं। यह बाजारमें मिलती है और झुर्रीदार, स्वच्छ, हस्तिदत तुल्य, श्वेत, ५ सें० मी० से ७५ सें० मी० (२ इञ्च से २॥ इञ्च) लम्बी, ६ ३ मि० मी० (१।४ इञ्च) मोटी, कडी, भगप्रवण, स्वादमे फीकी और लबाबदार होती है। मूल जलमे भिगोनेपर फूलता और शतावरी सरीखा दिखता है। इसका एक भेद बहुत छोटा होता है। उसको मूसली दक्खिनी कहते हैं। यह सभवत आस्पारागुस् सार्मेन्टोसुस् (**Asparagus sarmentosus** Linn) की सुखाई हुई जड है।

रासायनिक सगठन—ऐल्ब्युमिनस पदार्थ, लबाब और सेलूलोज। कंदचूर्णमें जलीय सत्व, सेलूलोज, आर्द्रता और राख होती हैं। जलविलेय भागमे प्रोटीन होता है। स्टार्च बिल्कुल नहीं होता। इसलिए मधुमेहमे इसका प्रयोग हो सकता है।

कल्प एवं योग—जुवारिश मुसलियैन, सफूफ (चूर्ण) मुसली।

प्रकृति—मलभूत द्रवके सहित पहले दर्जेमे गरम और दूसरेमें खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे काली मूसली शीतवीर्य एव पिच्छिल (रा० नि०), मतातरसे उष्णवीर्य (कै० नि०) है।

उपयोग—कामावसाद (नपुंसकता) और शुक्रमेहमें इसके (मुसली) चूर्णमें समभाग चीनी मिलाकर खिलाते हैं। इसके अतिरिक्त इसे वाजीकर और शुक्रमेहघ्न माजूनों और चूर्णौषधोंमें उपयोग करते हैं। निवारण-नमक, शहद और सोंठ। प्रतिनिधि-एक भेद दूसरेका। मात्रा-५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मुसली-मधुर, तिक्त, गुरु, पिच्छिल, वाजीकर, रसायन, पौष्टिक, वल्य, कफकर तथा पित्त, दाह, थकावट, अर्श और वायुका नाश करनेवाली है (रा० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—सफेद मूसली मधुर, शीतवीर्य, स्नेहन और उत्तम वल्य है। सभी प्रकारकी अशक्तितामें शक्कर और दूधके साथ इसका प्रयोग करते हैं। काली मूसली—स्नेहन, मूत्रजनन, वल्य और वृष्य है। इसकी क्रिया विशेषकर मूत्र-मार्गपर होती है। इसकी दूधके साथ बनाई पेया पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र और अत्यार्तवमें देते हैं। जगली लोग चोट तथा अस्थिभग्नपर भी इसका प्रयोग करते हैं।

•

(५१३) मूँग

फॅमिली . लेगूमिनोसी (Family . Leguminosae)

नाम—(हिं०) मूंग, (अ०) माष, मुज्ज; (फा०) वनोमाष, माषेमज्ज, मुग, (स०, व०) मुद्ग, (म०) मूग, (गु०) मग; (ले०) फासेओलुस् राडिआटा (Phaseolus radiata Linn)। वक्तव्य—'मुज्ज' मुजका सक्षिप्त रूप है और मुंज सस्कृत मुद्ग (या हिंदी मूग)से या इसके द्वारा फारसी 'मुग' से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें बड़े पैमानेपर इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध अन्न है, जिसकी दाल खायी जाती है। इसके दाने उडदके दानोसे छोटे और हरे रगके होते हैं। इसके जंगली भेद वनमूंग या मुगानी अर्थात् मुद्गपर्णी (Phaseolus trilobus Ait.) का आयुर्वेदीय चिकित्सामें व्यवहार होता है। यह शीतवीर्य (रा० नि०) है।

रासायनिक सगठन—ऐल्व्युमिनॉइड्स (Albuminoids) २२%, स्टार्च ५४%, तेल २%, ततु ५%, और राख ४%। ततु इसके छिलकेमें अधिक होता है। इसलिए छिलका वर्जित है। इसमें फॉस्फोरिक एसिड भी होता है।

प्रकृति—रूक्षता लिए हुए पहले दर्जेमें शीतल है। धोई हुई (मुकश्शर) मूंग समस्निग्धरूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूगकी दाल पुष्टिकर है, शुद्ध खिल्त (धातु) उत्पन्न करती और गरमीको शात करती है। अतएव उष्ण प्रकृतिवालोको तथा उष्ण व्याधियोमें उपयोग की जाती है। बिना छिली हुई सर और छिली हुई सग्राही है। छिली हुईको बादामके तेलके साथ पकानेसे इसके उक्त दोष (सग्रहण)का परिहार हो जाता है। परन्तु जब कब्ज इष्ट हो तब इसको भृष्ट करके और पकाकर देना चाहिए। पैत्तिक रोगो विशेषकर पित्तज ज्वरोमें कुलफा और काहूके पत्रके साथ पकाकर इसका खिलाना गुणकारक है। मूगके आटेकी टिकिया एक तरफसे पकाकर दूसरे कच्चे तरफ गुलरोगन और सिरकासे चुपडकर सन्निपात (सरसाम) रोगमे सिर पर बाँधते है और दो-दो घटे बाद उसे बदलते रहते है। प्रधान गुणकर्म—अत्यत पुष्टिकर और रोगियोके लिए पथ्यकर आहार है। अहितकर—शीतल रोगोके लिए। निवारण—जीरा, लौग, दालचीनी, काली मिर्च और सोठ। प्रतिनिधि—वाकला।

आयुर्वेदीय मत—मूँग रसमें कषायमधुर, विपाकमे कटु, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, विशद (पिच्छिलसे विपरीत) और कफपित्तनाशक है। यह दालोमे श्रेष्ठ है। (च० सू० अ० २७)। दालोमे मूँग अत्यन्त वातल नही है और दृष्टिको प्रसन्न करता है। उनमें भी 'हरे मूँग' प्रधान है और 'वनमूँग' गुणमे हरे मूँगके समान होते हैं (सु० सू० अ० ४६)।

(५१४) मूँगफली

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) मूँगफली, चिनिया वदाम, चीनी वादाम; (सं०) भूचणक-(नवीन), (वं०) चीनेर वदाम, (वम्व०) भुई चणे, (गु०) माण्डवी, (म०) मूँगफली, (लै०) **आरेकिस हीपोजेआ (Arachis hypogaea** Linn.), (अं०) ग्राउण्ड नट (Ground-nut), मन्की या पी-नट (Monkey or Pea-nut), अर्थ-नट (Earth nut)।

वक्तव्य—वगालमे यह प्रथम चीनसे आती थी, इसलिए इसका नाम 'चीनी वादाम' प्रसिद्ध हो गया।

उत्पत्तिस्थान—ट्रॉपिकल अफरीका। अधुना भारतवर्षमें सर्वत्र इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसके नीचेके फूलोसे मूँगफलीका विकास होता है, जो पृथ्वीके नीचे गड जाते हैं और पक जाते हैं। बीज ललाई लिए भूरे होते है। इसमे लगभग ४५ प्रतिशत तेल (मूँगफलीका तेल (Oleum arachis) होता है। जैतूनके तेलके स्थानमे इसका पुष्कल उपयोग होता है। परन्तु प्राय इसके विगडनेका भय होता है।

उपयुक्त अंग—पक्वापक्व फल, वीजकी गिरी, वीजोत्थ तेल जो जैतून तैलके प्रतिनिधि स्वरूप बहुत प्रयुक्त होता है, किन्तु यह बिगड जाता है।

रासायनिक सगठन—इसमें वसा, प्रोभूजिन (Protein), वाइटामाइन B_1 B_2 B_6 (पाइरिडॉक्सीन), वाइटामीन 'ई', निकोटिनिक एसिड और लेसिथीन ०५% से ०७% होती है। खली (Nut meal,मे अरेकिन, कॉन अरेकिन होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह खानेमें मधुर और किंचित् हीकदार होती है। इसकी गिरी (मग्ज़) बहुत पौष्टिक होती है। वहुत खानेसे वादी उत्पन्न करती है। इसको खाकर अनुभव करनेवाले लोग कहते है कि यह वहुत गर्मी पैदा करती है। इसके अधिक खानेसे आँखें आ जाती हैं, मुँहमें छाले पड जाते है। एक लडकेने इसका सेवन दीर्घकाल तक किया। वह प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। ज्ञात हुआ कि मूँगफलीने शुक्र को पतला कर दिया और शुक्रप्रमेह उत्पन्न कर दिया है। अधिक खानेसे शिरमें चक्कर भी आने लगता है। इसका तेल किंचित् मृदुसारक है (ख० अ०)।

(५१५) मूली

फ़ैमिली : क्रूसीफ़ेरी (Family Cruciferae)

नाम—(हिं०) मूली, मुरई, मूरा, (यू०) Raphanis (D 2 137), (अ०) फुजुल (-जल)-इ०वं०, (फा०) तुर्ब, (स०) मूलक, (व) मूला, (म०, गु०) मु(मू)ला, (गु०) मूलो, (प०) मुरि, (क०) मुझ, मुज्जी, (लै०) **राफानुस् साटीवुस् (Raphanus sativus** Linn), (अ०) रैडिश (Radish)। बीज (हिं०) मूलीके वीज, (अ०) वज्र् ुल् फुज्ल, (फा०) तुख्मे तुर्ब, (अ०) रैडिश सीड्स (Radish Seeds)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके मैदानमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह विभिन्न आकार-प्रकारकी सफेद रंगकी एक प्रसिद्ध कन्दशाक है। यह १ या १॥ बित्ता लम्बा, सफेद रंगकी स्वाद रसीला, क्षारीय और तीक्ष्ण होता है। पत्र शलगमकी तरह, किन्तु उससे छोटे होते हैं। फलियाँ दो तीन अंगुल तक लम्बी होती है। जिनको सेंगरी या मूँगरे कहते है। पकनेपर इनके भीतरसे गोल, ललाई लिए भूरे रंगके राईके समान बीज निकलते है जो प्रत्येक वडे भारतीय वाजारमें विकते है।

उपयुक्त अंग—कंद (मूली), पत्र और बीज। इसकी कोमल पत्ती, पुष्प, फली और कंदका शाक बनाकर खाते है। मूलीके स्वरस और बीजोका औषधार्थ प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—बीज और मूलमें एक अनुत्पत् तेल, एक गंधकित उत्पत् तेल जो राईके तेलके समान होता है। तेलमें गंधक और फास्फोरिक अम्ल होता है। यह रंगरहित और स्वादमें मूलीके समान होता है।

कल्प तथा योग—रोगन तुर्व, सफूफ तुर्व।

प्रकृति—पहले दर्जेमे उष्ण और दूसरेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूलीमें दो वीर्य (जौहर) एक दूसरेके विपरीत पाये जाते है। एक वीर्य पार्थिव है जो सान्द्र (गलीज) और चिरपाकी होता है और दूसरा उष्ण एवं प्रवाही (लतीफ) है और इसी वीर्यके आधार-पर मूली तारल्यजनन, पाचन, वातानुलोमन, मूत्रल, विरेचन और प्लीहाशोथविलयन है। जव इसको भोजनके वाद खाया जाता है तव यह उसको शीघ्र पचाकर भूख लगाती है, किन्तु अपने पार्थिव वीर्यके कारण स्वयं देरमे पचती है। यही कारण है कि भोजन पच जानेपर भी पीछे तक डकारें आती रहती है जिनमे मूलीकी गंध होती है। मूलीके पत्तोंमें मूत्रजनन शक्ति अत्यधिक होती है। फली (सेंगरी) पाचन होनेपर गुरु एवं ग्राही होती है। मूलीके पत्तो और जडोको जलाकर वनाया हुआ क्षार (मूलीखार) पाचन, अवरोधोद्धाटक, वातानुलोमन एवं मूत्रल है। उपयोग–कच्ची मूलीको काटकर नमकके साथ खाते तथा तरकारी पकाकर सेवन करते है। प्लीहाशोथ मिटानेके लिए मूलीको सिरकेमे डालकर खिलाते है। इसका तराशा गुदरोगमे सूजन उतारता, वेदना शात करता और द्रवोको सुखाता है। इसके पत्ते उपयुक्त गुणोके साथ-साथ वमन द्वारा शीतल दोपोका उत्सर्ग करते है। इसके स्वरसमें अर्शोघ्न औपधियोको गूँथकर गोलियाँ वनाते है। इसके स्वरसमे चौथाई भाग तिलका तेल मिलाकर मदाग्नि पर पकाते है। जव केवल तेल रह जाता है तव उसको छानकर रखते और कर्णशूल एवं कर्णक्ष्वेड (तिन्नीन व वदी) नष्ट करनेके लिए कानमें टपकाते है। कामलारोगमें मूलीकी पत्तियोका रस शक्कर वा बूरा मिलाकर पिलाते है। मूत्रल होनेसे उक्त रोगमें यह परम गुणकारी है। इसी हेतु जलोदरमे भी इसका सेवन गुणदायक है। वस्तिवृक्का-श्मरीमें भी उपयुक्त औषधियोके साथ इसका प्रयोग करते है। आहारपाचन और वस्तिवृक्काश्मरिके उत्सर्गके लिए इसका क्षार (नमक) खिलाते है। अहितकर–सिर, कण्ठ एवं दंतको और उत्क्लेशकारक है। निवारण–जीरा और नमक। प्रतिनिधि–शलगम। मात्रा–स्वरस ४ तोले से ६ तोले तक।

बीज—

प्रकृति—तीसरे दर्जे में गरम और दूसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वहिर प्रयोगसे मूलीके बीज (तुख्म मूली वा तुर्व) लेखन और आंतरिक प्रयोगसे वामक, मूत्रल और वातानुलोमन विशेषकर मूत्रार्तवजनन और वातविलयन है। शोथजन्य शूल निवारण और सार्व-दैहिक वलवर्धनार्थ इसका प्रयोग होता है। कफज रोगोमें वमनार्थ मूलीके बीजोको उवालकर पिलाते है। मूत्रजनन और वायुनाशनके लिए भी इसका उपयोग करते है। व्यंग, किलास, छीप एवं झाईं आदि त्वचाके रोगोमें इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोके साथ पीसकर लेप करते है। अहितकर–आकुलता एवं उत्क्लेशकारक है। निवारण–

नमक, जीरा और मधु। प्रतिनिधि—सरसो। मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक। वमनार्थ ६ ग्राम या ६ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—कच्ची (कोमल) मूली रसमें कटु और तिक्त, हृद्य, रोचन, दीपन, सर्वदोषहर, लघु और कण्ठ (स्वर)के लिए हितकर है। पकी मूली गुरु, विष्टम्भी और तीक्ष्ण है। पकी मूली बिना सिजाये खानेसे तीनो दोषोको उत्पन्न करती है। पकी मूली स्नेह (तेल आदि)के साथ पकाकर खानेसे तीनो दोषोको दूर करती है। सूखी मूली त्रिदोषहर, विषहर और लघु है। मूलीको छोडकर अन्य सूखे शाक विष्टम्भी और वातल होते हैं। मूलीके पुष्प, पत्र और फल उत्तरोत्तर गुरु है। मूलीके फूल कफ और पित्त तथा फली कफ और वायुका नाश करनेवाली है (सु० सू० ४६)। कोमल मूली त्रिदोपहर, वृद्ध पकी मूली त्रिदोषकर, स्नेहके साथ पकाई हुई मूली वातहर और सूखी मूली कफवातहर है (च० सू० अ० २७)।

नव्यमत—मूली उष्णवीर्य है। ताजी पत्तियोका रस और बीज मूत्रजनन, अनुलोमन और अश्मरीघ्न है। चिरकालकी कब्जियत मूलीका शाक प्रतिदिन खानेसे दूर होती है। पेटके दर्द, अफारा और अर्शमें इसकी पत्तियोका रस देते है। ३ ग्राम (३ माशा) बीजका चूर्ण अनार्तवमें देते है। मात्रा–लगभग ११½ ग्राम से २३ ग्राम या १ से २ तोला (स्वरस), (बीज) ३ ग्राम से ६ ग्राम या (३ माशा से ६ माशा)।

●

(५१६) मेंगोस्तीन, मुंगिस्तान

फॅमिली गुट्टीफॅरी (Family Guttiferae)

नाम—(हिं०) ब०, बम्ब०) मगुस्तान, मगोस्तान, मेंगोस्तान, मेंगोस्तास्तिन, मुगिस्तान, (ब्रह्मा) मगकोप (ब), (मल०) मगुस्ता, (म०) मगिस्तना, (ता०) सुलबुली, (ले०) गार्सीनिआ मागोस्टाना (**Garcinia mangostana L**), (अ०) मैंगोस्टीन (**Mangostine**)।

उत्पत्तिस्थान—मदरासके पश्चिमीघाट, नीलगिरि और बम्बई राज्य मे (बहुत कम) लगाया जाता है।

वर्णन—एक वृक्षका फल जो छोटेसे सेवके बराबर होता है। रग कालाई लिए नीला होता है। छिलका मोटा, नरम और खुरदुरा होता तथा नारगी और सन्तरेके छिलकेके समान हाथसे पृथक् हो जाता है। इसके भीतर कुछ दाने होते है। हर एक दानेमे बीज होता है। स्वाद अत्यत मधुर होता है। इसमे फाँके होती हैं जो नारगीके फाँकोके समान नही, अपितु अगूरके दानोकी तरह होती है।

उपयुक्त अग—फल और उसका छिलका।

रासायनिक सगठन—इसमे मैंगोस्टिन (Mangostin) नामक एक तिक्त सत्व होता है।

प्रकृति—फल सर्द एव तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छिलका सग्राही है। चावलके धोवनके साथ इसे देनेसे अतिसार और प्रवाहिकामे उपकार होता है। (नुसखा सईदी)।

●

(५१७) मेंहदी

फ़ेमिली : लीथ्रासे (Family . Lythraceae)

नाम—(हिं०, मा०) मे(मे)हदी, मेहँदी, हिना, (यू०) क़िप्रोस, (अ०) हिन्ना (इ० बै०), (फ़ा०) हिना, (उर्दू) हिना, (सं०) मदयन्तिका (च०, सु०, वाग्भट्ट), मेन्दी, मेंदिका, रागागी; (बं०) मेंदी, मेउदी; (म०, गु०) मेंदी; (क०) माझ, मोझ, (ते०) क्रोम्मि, कुरुवकमु, (ता०) मरुदोड़ि; (मल०) मैलाञ्चि; (लै०) लासोनिआ ईनेर्मिस Lawsonia inermis Linn. (पर्याय—लासोनिया आल्बा *L alba* L), (अं०) हेना (Henna)।

उत्पत्तिस्थान—यह मिस्र, अरब, फारस और सभवत. भारतवर्षके उष्ण प्रदेश और लकाका मूल निवासी है। समस्त भारतवर्षमें बगीचो, फुलवारियो एवं खेतोके किनारे मेंहदी बाड़के रूपमें लगायी जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध झाडी है, जिसके पत्ते सनायके पत्तेके समान होते है। ललनाएँ इसको जलमें पीसकर हाथ और पैरके तलवोमें तथा नाखूनोपर लगाती हैं, जिससे उसकी रंगत लाल हो जाती है। कहीं-कही इसे बाल रगनेके काममें भी लाते हैं। फूल सुगन्धित होते हैं। फूलोंसे इत्र (इत्र हिना) बनाया जाता है।

उपयुक्त अग—पत्र, छाल, गोद, पुष्प, फ़ागिया (फूल और बीज = फ़ागिया और बीज।

रासायनिक सगठन—पत्रमें एक रजक द्रव्य १२ प्र०श० से १५ प्र०श०, हेन्नो-टैनिक एसिड (Henno-tannic acid) नामक एक कषाय द्रव्य (Tannin) और एक जैतूनी हरे रगका ईथरमें अविलेय राल होता है। बीजमें एक प्रकारका तेल और फूलोंमें एक प्रकारका सुगन्धित इत्र (Otto) या तेल (रोग़न हिना) होता है।

प्रकृति—मेंहदी शीत और उष्ण इन उभयवीर्योंका यौगिक है। इनमें उष्णवीर्य प्रधान है। किन्तु शीत-वीर्यकी शक्ति बहुत शीघ्र प्रगट होती है। इसलिए इसकी प्रकृति दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष वर्णन की जाती है। लखनऊवालोंके मतसे शीत लिए समिश्र वीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वेदनास्थापन और उपशोषण है। लेप करनेसे बालोंको सुर्ख कर देती और सूजन उतारती है। यह मूत्रल, विशेषत रक्तप्रसादन एव त्वग्रोगनाशक है। शिर शूल निवारणके लिए मेहदीको जलमें पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। हस्त-पादका दाह मिटानेके लिए इसे हथेली और तलुओंपर लगाते हैं। सिरका और गुलरोगनके साथ इसे शिरोगत व्रणोपर लेप करते हैं। घुटनों (जानु)का दर्द मिटानेके लिए इसे एरंड-पत्रस्वरसके साथ लगाते हैं। मुखपाकमें इसके काढेका गण्डूष कराते हैं। सफेद बालोंको रक्त करनेके लिये केवल मेहदीका लेप करते हैं, किन्तु काला करनेके लिए इसके साथ वस्मा मिलाकर लगाते हैं। इससे बाल काले और सुन्दर हो जाते हैं तथा बाल गिरना बन्द हो जाता है। कामलामें मूत्रल होनेके कारण तथा प्रारम्भिक कुष्ठ, दद्रु और खुजली (खारिश) प्रभृति रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसका खेसांदा (फाण्ट) उपयोग करते हैं। अहितकर—कण्ठ और फुफ्फुसके रोगोंको। निवारण—कतीरा और इसबगोल। प्रतिनिधि—मुण्डी और शाहतरा। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

बीज—दूसरे दर्जेमें शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक, विलयन एवं प्रमाथी (मुफ़त्तेह)।

इत्र—वृक्क एव बस्तिके रोग, खर्जू तथा स्वप्नदोषका रोधक है। गोंद—मूत्रदाहको मिटाता और वीर्यको गाढ़ा करता है।

आयुर्वेदीय मत—सुश्रुतमें कुष्ठचिकित्साके महानीलघृतमें (चि० अ० ९) तथा स्नानयोग्य अंगरागके योगमें (सु० चि० अ० २१) और वाग्भट (अष्टागहृदय)में रक्तपित्त चिकित्सा (अ० २)में 'मदयन्तिका (मेंहदी)का' उल्लेख मिलता है। "मदयन्तिका मेंहदी' इति लोके, अस्या. पिष्टै पत्रैर्नखाना राग स्त्रिय उत्पादयन्ति।" (डल्हण)।

नव्यमत—पत्र शीतल और कुष्ठघ्न है। फूल उत्तेजक तथा हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाले हैं। दाह और सिरकी पीडा कम करने तथा हृदयसरक्षण और नीद लानेके लिए ज्वरमे इसके फूलोका फाण्ट देते हैं। सधि-शोथमें पत्तियोका लेप करते हैं। त्वग्रोगमें मेंहदीका पुष्कल उपयोग किया जाता है। मुखव्रण और गलेकी सूजनमें पत्तियोके काढेसे कुल्लियाँ कराते हैं। सूजाकमें उष्णता कम करनेके लिए पत्र स्वरसमें मिश्री मिलाकर देते हैं। रक्त-मिश्रित आँवमें मेंहदीके बीजोका कल्प देते हैं।

●

(५१८) मेथी

फ़ैमिली · लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०, द०, म०; गु०) मेथी, (यू०) बॉनकेरास, टिली Telis (D 2 124), (अ०) हुल्ब, (फा०) शम्लीत, शम्लीज, शम्बलीद, (स०) मेथिका, पातत्रीजा, (क०) मीथ, (प०) मेथरो, मेथरे, (ते०) मेति, (ता०; मल०) वेदयम्, (मल०) उलुव, (ले०) *ट्रीगोनेल्ला फीनुम्-ग्रीकुम्* (**Trigonella foenum-graecum** Linn); (अ०) फेनुग्रीक (Fenu-greek)।

वक्तव्य—'फीनुम् ग्रीकुम्' का अर्थ 'Greek hay = यूनानी तृण' है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अफरीका और भारत। भारतमें कश्मीर, पजाब, बम्बई और मद्रासप्रातमें बडे पैमानेपर इसकी खेतीकी जाती है। यह जगली भी होती है।

वर्णन—यह एक वार्षिक क्षुपके प्रसिद्ध बीज है, जो भूरापन लिये पीले, लगभग ३ १२५ मि०मी० (⅛ इच) लम्बे, विषमकोणायताकार, थोडे-से चपटे और स्वादमें कटु होते हैं। इसका स्वाद और गध सेलरी (Celery)का स्मरण दिलाता है। इसके पत्तोका साग पकाकर खाया जाता है। 'वनमेथी' को अरबी में 'हुल्ब बर्री' कहते है। 'इक्लीलुल्मलिक' इसीका एक विदेशीय भेद है।

उपयुक्त अग—पत्र, फली और बीज।

रासायनिक सगठन—बीजावरणके कोषोमे टैनिन (Tannin), दालोमे शर्करारहित एक पीतरजक द्रव्य और बीजोमे एक दुर्गन्धित, तिक्त, वसामय तैल ६% तथा राल और लबाब २८%, ऐल्बुमिन २२ प्रतिशत और कोलीन (Choline) तथा ट्रीगोनेल्लीन (Trigonelline)–यह दो ऐल्केलॉइड होते हैं। इसके अतिरिक्त भी कई अन्य ऐल्केलॉइड्स होते हैं। बीजोकी राखमे २५ प्रतिशत फॉस्फोरिक एसिड होता है। इसका रासायनिक सघटन कॉडलिवर ऑयलके समान होता है। इसमे शरीरमें शीघ्र अभिशोषित होने योग्य काफी प्रमाणमे सेन्द्रिय स्वरूपका लोह भी होता है।

प्रकृति—मलभूतद्रवयुक्त दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह लेखन, विलयन, व्रणशोथपाचन, बल्य, वाजीकर और नाडीबलदायक है। फेफडोपर श्लेष्मनिस्सारक प्रभाव करनेके कारण उनको गाढे लेसदार कफसे शुद्ध करती है, अन्त्रामाशयपर दीपन, वातानुलोमन एव शोथहर और सारक कर्म करती है। यह गर्भाशयको उत्तेजना प्रदान करती और आर्तवजनन कर्म करती तथा गर्भाशयशूलको शमन करती है। यह शीतल रोगोको विशेष लाभ पहुँचाती है। श्वयथुविलयन तथा पाचनके लिए मेथीका लेप करते हैं। चेहरेके दाग और धब्बोको मिटानेके लिए अकेले या उपयुक्त अन्य औषध द्रव्योके साथ इसका पतला लेप करते हैं। नेत्रस्राव, अर्जुन (तर्फा) और नेत्राभिष्यद आदिमे इसका लबाब निकाल-

गुणकर्म तथा उपयोग—यह विलयन, सग्राही, नाडीबलदायक, दीपन और कामोत्तेजक विशेषकर वाजीकर एव श्वयथुविलयन है। अस्थिभग्न, मोच, आघात-प्रत्याघात (जरबा व सकता), नाडियोमे बल पडजाना (इस्तिवाए असब) और कडाईके विलीन एव मृदुकरणार्थ गिलअरमनीके साथ इसका लेप करते है तथा कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, आक्षेप, कामावसाद और अस्थिभग्न जैसे कफ एव वातरोगोमें तथा कडाईको दूर करनेके लिए इसे शहदमे मिलाकर खाते है। अहितकर—बस्ति रोगोमे। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—सूरजान। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(५२०) मैनफल

फ़ैमिली रूबिआसे (Family · Rubiaceae)

नाम—(हिं०) मैनफल, मैनफर, (अ०) जौजुल् कै, जौजुल्कौसल; (स०) मदन, मदनफल, (ब०) मयनफल; (गया) मौन, (खर०) मोयन; (था०) मयना, (म०) मेलफल, मदन, (गु०, मार०) मीढल, मींढोल, (प०) मिंडल, मेणफल, (ते०) मग, म्रग, (ता०) मारुकारै, मरुक्कालम्, (मल०) करलिक्काय, (ले०) जीरॉम्फिस स्पीनोसा **Xeromphis spinosa** (Thunb) Keay. (पर्याय—*Randia spinosa* (Thunb) Poir; रान्डिआ डूमेटोरुम् (**R. dumetorum** Lamk), (अ०) इमेटिक नट (Emetic Nut), बुशी गार्डीनिआ (Bushy Gardenia)। वक्तव्य—प्राचीन अरवी हकीम मेलिआसे (Meliaceae) कुलकी रकअ यमानी (**Trichilia emetica**) को "जौजुल् कै" कहते थे। बम्बईमें वलसुरा (**Trichilia trijoliata** Wall) नामसे प्रसिद्ध उद्भिज्ज इसका भारतीय भेद है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के जगली और उजाड स्थानोमें इसके वृक्ष होते है।

वर्णन—यह एक कँटीले छोटे वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो २ ५ से० मी० से ३ ७५ सें० मी० (१-१½ इच) लबा, गोल या अडाकार, आकारमे जायफलके बराकर या उससे किंचित् बृहत्तर, प्राय धारायुक्त और पकने पर पीला होता है। छिलका मोटा, कालाई लिये पीला होता है। इसके भीतर दो खाने होते है और हर खानेमे बिहीदानाके समान बहुत छोटे-छोटे बीज परस्पर एक-दूसरेसे चिपके हुए होते है और बिहीदानाके समान लबाबदार होते है। काले रगके बीजोके इस पिंडको "मदनफल पिप्पली" कहते है। फल बाजारमे प्राय मिल जाते है। फलका छिलका तथा मदनफलपिप्पली को औषधके काममे लिया जाता है। इसका स्वाद तिक्त, कुस्वाद और गध खराब होती है।

रासायनिक सगठन—इसमे सैपोनिन (Saponin) नामक एक कार्मुक वीर्य-साबुन सत्व (प्रत्येक फलमे लगभग २ गुजा अर्थात् रत्ती बराबर), जटामास्यम्ल, मोम, राल और रजक द्रव्य प्रभृति होते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे यह उष्णवीर्य है। (कै० नि०)

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह व्रणशोथविलयन-पाचन और दारण है। आतरिक उपयोग से यह श्लेष्मवमनविरेचन है। फोडे-फुसियोको विलीन करने तथा उनके पाचन और दारण के लिये इसको जलमें पीसकर लेप करते हैं। कफज रोगोमें वमनार्थ उसे नमकके साथ पीसकर, शहदमे मिलाकर खिलाते और ऊपरसे उष्ण जल या सोएकी पत्तियोका काढा शहद पिलाकर पिलाते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिये। निवारण—कतीरा एव शीतल पदार्थ। प्रतिनिधि—बूरए अरमनी और राई। मात्रा—३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशे से ६ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मैनफल मधुर, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, अरूक्ष, लघु, लेखन, वमन द्रव्योंमें श्रेष्ठ, आस्थापनोपग, अनुवासग, वातानुलोमन तथा कफ, पित्त, प्रतिश्याय, ज्वर, विद्रधि, कुष्ठ, गुल्म, शोथ, आनाह और व्रणका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० १, २, २५, क० अ० १, ११; सु०सू० अ० ३८, ३९; कै० नि०)।

नव्यमत—मैनफलके बीज और फलके इतर भागके गुणोमे अन्तर है। बीज वामक तथा कफघ्न हैं, गर्भ तथा त्वचाको क्रिया आमाशय और पक्वाशय पर होती है। इससे रक्त और पूयमिश्रित कफ तथा उस भागकी पीडा कम होती है। समग्र फल कफघ्न है। मैनफल उत्तम वामक है। एक फलका चूर्ण २½ तोले जलमें एक घटा भिगो, पत्थरके खरलमे घोट, कपडेसे छान, उसमे मधु और सेंधानमक मिलाकर खाली पेट पिलानेसे एक घंटेमें एक-दो उत्तम वमन हो जाते है। कभी कभी वमनके बाद विरेक भी आते हैं। तीव्र रक्तयुक्त आँव (प्रवाहिका)में मैनफलसे उत्तम गुण होता है। एक फलके कवचका चूर्णकर, उसके तीन भाग दिनमें करके तीन बार देना चाहिये। आंवमें भीतरके बीज नही देना चाहिए।

●

(५२१) मोठ

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family . Leguminosae)

नाम—(हि०) मोठ, मुगानी, मोथी, (स०) मुकुष्ठक, (व०) खेरी, (म०, गु०,) मठ, (ले०) फ़ासेओलुस् आकोनीटीफोलिउस् **Phaseolus aconitifolius** (L) Ait (पर्याय–फासेओलुस ट्राइलोबुस (*P trilobus* Wall non Ait), (अ०) मोठवीन (Moth-bean)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है तथा जगलोमे भी होती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध अन्न है, जिसकी दाल खाई जाती है। आकृतिमे यह मूँगके समान, किन्तु लाल होती है।

रासायनिक सगठन—मासवर्धक-द्रव्य २३%, स्टार्च ५६%, तेल अत्यल्प प्रमाणमे, ततु ४% और राख ३ ५% प्राप्त होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह स्वल्प पुष्टिकर (कलीलुल् गिजाऽ) और संग्राही है। अधिकतया इसकी दाल पकाकर खाई जाती है। शीतल कफज रोगोमे इसका उपयोग गुणदायक है। यह विशेष रूपसे अतिसारघ्न है। अहितकर–वायुकारक। निवारण–गरम मसाला और स्नेह द्रव्य। प्रतिनिधि–माष।

आयुर्वेदीय मत—मोठ रसमें मधुर, विपाकमे मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, सग्राहक तथा रक्तपित्त और ज्वर आदि रोगोमें उत्तम माने गये है। (च० सू० अ० २७)। मोठ कृमिकारक है (सु०सू० अ० ४६), कषाय, रुचिकारक, वादी, लघु, दाहहारक, कफपित्त (सर्वदोष)नाशक और वमननिवारक है (रा० नि०, भा० प्र०)।

●

(५२२, ५२३) मोथा, नागरमोथा

फैमिली : सीपेरासे (Family Cyperaceae)

नाम—(हिं०)मोथा, मुथा; (यू०) कूपीरोम(न), (अ०)सोअ(अ्)द कूफी, सोअ(अ्)द, (फा०) मुश्क, मुश्के-जमी, मुश्क जेरेजमी; (स०) मुस्तक, मुस्त(ता), (बं०) मुता, (क०) मोस्त; (पं०) मुथा, मुथरा, (म०, गु०) मोथ; (ले०) सापेरुस् रोटुंडुस् (Coperus rotundus L), (अ०) नट ग्रास (Nut grass) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पतिकी प्रसिद्ध कन्दाकृति जड है, जो बाहरसे काली और भीतरसे सफेद, लवगोल, १ २५ से ३ ७५ सें०मी० (½ से १½ इंच) लंबी, कठिन और सुगंधित होती है । स्वाद तिक्त होता है । यही कंदमूल औषधके काममें आता है । केवटी मोथा (स०-कैवर्तमुस्ता; गु० चगामोथ) इसका क्षुद्र भेद है इसके छोटे ग्रन्थि सदृश कन्द होते है । इसकी दूसरी जाति प्राय जलाशयमें होती है, जिसमे मोटे अन्तर्भूमिशायी काड होते हैं । इनको हिंदीमें नागरमोथा, संस्कृतमें नागरमुस्तक और लैटिनमें सांपेरुस् स्कैरिओसुम् (Cyperus scariosus R Br) कहते हैं । इसके मूल लबे, कुछ दबे हुए, टेढे और कालापन लिये होते हैं । यह भी प्राय सर्वत्र मिलता है । तीनो गुणमें प्राय समान होते हैं । अस्तु, एकके अभावमें दूसरेका प्रयोग हो सकता है ।

रासायनिक सगठन—इसमें एक सुगंधित तेल, वसा, शर्करा, निर्यास, कार्बोहाइड्रेट्स, मासवर्धक पदार्थ (Albuminous matter), पिष्ट, ततु और भस्म आदि तथा अंशत. एक क्षारसमोद (ऐल्केलॉइडकी भांति) प्रभृति द्रव्य होते हैं ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क । आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) हैं ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृद्य, मेध्य, नाडीबलदायक, दीपन, वातानुलोमन, मुखदौर्गन्ध्यहर और विशेषत मूत्रार्तवजनन हैं । इसको (मोथा) अधिकतया मस्तिष्कदौर्बल्य, नाडीदौर्बल्य, स्मृतिदौर्बल्य तथा अन्यान्य मस्तिष्क (शिर) और वात रोगोमें उपयोग करते हैं । इसे मदाग्निमें खिलाते है तथा मुख और नासिकाकी दुर्गन्ध दूर करके मुखको सुवासित बनानेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं । अहितकर—कण्ठ और फेफडेके लिए । निवारण—शर्करा, सौंफ और अनीसूँ । प्रतिनिधि—मुरमक्की । मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—मोथा तिक्त, कषाय, कटु, शीतवीर्य,लेखन, तृप्तिघ्न,कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, तृष्णानिग्रहण, स्तम्भन, दीपन, पाचन तथा कफ, रक्तविकार, पित्त, ज्वर, अतिसार, तृषा, अरुचि और कृमिका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, कै० नि०) । भद्रमुस्ता तिक्त, शीतवीर्य, पाचन, ग्राही तथा पित्त, ज्वर और कफको दूर करनेवाला है (रा० नि०) । नागरमोथा–तिक्त, कटु, कषाय, शीतवीर्य तथा पित्त, ज्वर, अतिसार, अरुचि, तृषा, दाह और श्रमका नाश करनेवाला है । (रा० नि०) । केवटी मोथा–तिक्त, कषाय, कटु, शीतवीर्य, कान्तिवर्धक, मेध्य तथा वात, विसर्प, कण्डू, कुष्ठ, कफ, पित्त, रक्तविकार और विषको दूर करने-वाला है । (रा०नि, कै०नि०) ।

नव्यमत—नागरमोथा कटु, तिक्त, कषाय, शीतल, दीपन, पाचन, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, तृष्णानिग्रहण, स्तन्यजनन, स्तन्यशोधन, कण्डूनाशक, मूत्रजनन, उत्तेजक और जन्तुघ्न है । यह अरुचि, अतिसार, रक्तार्श और कुपचन रोगमे गुणकारक है । इसे पित्तज्वर और सूतिकाज्वरमें देनेसे पसीना आता है, तृषा कम होती है, जीभ सुधरती है, पेशाब साफ होता है और गर्भाशयका सकोचन होता है । यह कृमिघ्न है, परन्तु यह गुण बडी मात्रामें देनेसे देखनेमें आता है । दूध बढाने और दूधको शुद्ध करनेके लिए इसे खिलाते हैं और स्तनपर इसका लेप भी करते हैं ।

●

(५२४) मौलसिरी

फॅमिली सापोटासे (Family . Sapotaceae)

नाम—(हिं०; प०; मा०) मौलसिरी, मौलसरी, मौसली, बकुल, (स०) बकुल, (बं०) बकुल गाछ, (गु०) बोलसरी, (म०) ओवली, बकुल, (ले०) मीमूसॉप्स एलेङ्गी (**Mimusops elengi Linn.**)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणभारत और ब्रह्मा। समस्त भारतवर्षके उद्यानोमे इसके वृक्ष यत्नपूर्वक लगाये, जाते है।

वर्णन—यह एक सदाहरित पल्लवयुक्त, सुदर, वडा छायातरु है। पुष्प शुभ्र, मिलितदल, छोटा, गोल सदली रगका और परम सुगन्धित होता है। ग्रीष्मसे शरत् पर्यन्त फूलता है। इस गधमें महुएके फूलकी तरह मिठास होती है। यह सूखनेपर भी अविकृत एव सुगधित रहता है। फल उन्नावके बराबर कुछ-कुछ लबोतरा, कच्चा हरा, कपाय और दुग्धवत् क्षीरवहुल, पक्व सिंदूरवर्ण एव कषाय मधुर होता है। इसके अन्दर एक वडा बीज होता है जिसका मग्ज दुर्गन्धित और तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—त्वक्, पुष्प, तैल, फल और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक सगठन—छालमें कषाय द्रव्य, कुछ रबड (Caoutchouc), मोम, रजक द्रव्य, पिष्ट और भस्म, फूलमे एक उत्पत् तैल; बीजमें एक अनुत्पत् तेल और फलके गूदेमें अधिक प्रमाणमें शर्करा होती है।

प्रकृति—पुष्प गरम और खुश्क तथा फल एव छाल शीत और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फूल अपने मनोरम सुगन्धके कारण मन प्रसादकर, हृद्य और मेध्य, फल और त्वक् सग्राही, वेदनास्थापन और उपशोषण विशेषकर योनिस्रावनाशक एव शुक्रमेहघ्न है। हृदय और मस्तिष्कके उल्लास एव बलवर्धन तथा दिलकी धडकन दूर करनेके लिए इसके फूलोका अर्क सेवन करते है। सफेद चन्दनके बुरादेकी भूमि देकर खीचा हुआ इसके फूलोका इत्र परम सुगन्धित मनप्रसादकर और बल्य होता है। सूखे या ताजे फूलोके स्वरसका कतिपय मानसिक (दिमागी) शीतल व्याधियो और शीतल शिर शूलमें नस्य कराते है। शुक्र-प्रमेह और अतिसार बन्द करनेके लिए इसके फल अकेले या उपयुक्त औषधियोके साथ खिलाए जाते है। इसके चबानेसे दन्तशूल मिट जाता और हिलते हुए दाँत दृढ होते है। स्राव और योनिस्रावको नष्ट करनेके लिए छालका चूर्ण बनाकर खिलाते है। मुखपाक, चलदन्त एव दन्तशूलमें इसके काढेसे कुल्ली कराते है और फाट सूजाकमें पिलाते है। मौलसिरीके मूलकी छालका चूर्ण शुक्रमेह, शुक्रतारल्य और योनिस्रावको दूर करने और कटिको शक्ति देनेके लिए खिलाते है। प्रधानकर्म—स्राव एव शुक्रस्रावहर। अहितकर—आनाहकारक और सग्राही। निवारण—स्नेह और मधु। प्रतिनिधि—बबूलकी छाल। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मौलसिरीका फूल मधुर, कषाय, कटुविपाक, गुरु, हृद्य, स्निग्ध तथा कफ, पित्त, विष, श्वित्र, कृमि और दाँतके रोगोका नाश करनेवाला है। (सु० सू०अ० ४६, ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—मौलसिरीकी छाल कपाय, पौष्टिक, फूल रोचक, फल स्नेहन और सग्राहक है। ज्वरमें पुष्टि-करणार्थ इसकी छालका काढा देते है। ज्वरमे उत्तेजनार्थ फूलोका अर्क देते है। दांत हिलने और मुखपाकमें छाल-के काढेकी कुल्लियाँ कराते हैं अथवा कच्चे फल चबानेको देते है। रक्तयुक्त जीर्ण आँवमें पके हुए फल खिलाते हैं।

●

(५२५) यूकेलिप्टस

फ़ैमिली मीर्टासि (Family . Myrtaceae)

नाम—(हिं०) युकेलिप्टस, नीलगिरी, (स०) तैलपत्र, सुगन्धपत्र–(नवीन), (लै०) एउकालीप्टुस् ग्लोबुलुस् एव अन्य एउकालीप्टुस् जातियाँ **Eucalyptus globulus** Labill and other **E. species**), (अ) युकेलिप्टस (Eucalyptus), ब्लूगम-ट्री (Blue-gum Tree)।

वक्तव्य—यह भी एक नवागत औषधि है। अतएव प्राचीन निघण्टुओमें इसका उल्लेख नही मिलता। युकेलिप्टस तैलका आजकल सभी चिकित्सक प्रचुरतासे व्यवहार करते हैं। इसके उपरोक्त सस्कृत नाम अभिनव है। सर्वप्रथम नीलगिरीकी पहाडियोपर युकेलिप्टस उत्पादनका सफल प्रयास किया गया था। इसलिए 'नीलगिरी' नामसे यह प्रसिद्ध हो गया है।

उत्पत्तिस्थान—विक्टोरिया और टसमेनिया। यह भारतवर्षमें लगाया गया है तथा दक्षिण भारतवर्षके नीलगिरि आदि और आसामकी पहाडी तथा शिलाग आदि स्थानोमे खूब होता है।

वर्णन—एक वडा ऊँचा वृक्ष। पत्र कडा चिमडा, चर्मवत्, भूरापन लिए हुए हरा, कृपाण (टेढी तलवारकी आकृतिका) या क्वचित् अपेक्षाकृत क्षुद्रतर पत्रो या पल्लवोसे प्राप्त होनेपर अण्डाकार और वृन्तशून्य, १०-१५ सें० मी० (४-६ इच) लम्बा और बोचमे लगभग ३ ५ से ३ ७५ सें०मी० (१-१½ इच) चौडा, ह्रस्ववृन्तयुक्त और आधारपर गोल, असख्य पारदर्शक तैलपूर्ण चिह्नोसे युक्त, स्वाद सुगन्धित और शीतजनक, विशिष्ट, कुछ-कुछ कर्पूरवत्। यूकेलिप्टसकी कतिपय जातियोसे युकेलिप्टसका तैल (Eucalyptus Oil) भभकेसे निकाला जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका आतरिक उपयोग करते है। आस्ट्रेलियामे वहुश रोगो एव विकारोके लिए यह घरेलू औषधकी भाँति प्रयुक्त होता है। इग्लैंडमे यह सुविख्यात एव वहुप्रयुक्त औषध है। इसकी गुणवत्ता प्रधानतया इसके कोथप्रतिवन्धक गुणोपर निर्भर करती है, जो इसमें प्रबल रूपमे पाये जाते है, यद्यपि विल्कुल निरापद है। ज्वरो एव ज्वरावस्थाओमे तैलका स्वच्छदतया वहिराभ्यन्तारिक उपयोग हो सकता है। श्वास, रोहिणी (Diphtheria) और कण्ठक्षत आदिके लिए इसे सुँघाया जा सकता है। लगभग डेढ पाव (१ पाइट)के कोष्ण पानीमे २½ तोले इसका तेल मिलाकर व्रण आदिके लिए स्थानीय ओषधकी भाँति इसका उपयोग होता है। इसका उत्तेजक, कोथप्रतिबन्धक और शोधक (Corrective) प्रभाव होता है। स्थानीय सूचिकाभरण (Injection)के लिए १ पाइट पानीके लिए १। तोला पर्याप्त है। चिकित्सकोके प्रतिवेदनके अनुसार इससे केवल व्रणका शीघ्र शोधन-रोपण ही नही आरम्भ हो जाता है, प्रत्युत इससे सभीप्रकार की दुर्गन्धियोका भी तुरत निवारण हो जाता है। इस सम्बन्धमे यह घावो (Wounds) और विकृतवृद्धियो (Growths)के लिए स्थानीय प्रयोगकी औषधिकी भाँति सबसे अधिक मूल्यवान् औपधि है। रक्तज्वर, सन्ततज्वर (Typhoid) और विषमज्वरोमे इसके पत्तोकी प्रवाही रसक्रियाका आतरिक उपयोग किया जाता है और इसके साथ ही तैलका स्वच्छन्दतया प्राय शरीराभ्यगार्थ प्रयोग होता है। कण्ठगतरोगविशेष (Croup) और आक्षेपक कण्ठरोगोमें इसका इसी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। श्वास, उर क्षत और चिरज कासमे इसकी सूखी पत्तियोका सुरासवके रूपमें उपयोग होता है। जड विरेचक है। गोद सुकुमार प्रकृतिके लोगोको सग्रहणी, अतिसार आँवमे देते हैं। पत्रफाट कफघ्न, कफदुर्गन्धिनाशक, मूत्रजनन और पूतिहर है। इसलिए फुफ्फुसके पुराने रोग, वस्तिशोथ और पुराने सूजाकमे इसे देते हैं। ज्वरमे फाट देनेसे पसीना आता है सिर और शरीरकी पीडा कम होती है तथा समस्त शरीरमें स्फूर्ति प्रतीत होती है। छायाशुष्क १-१ पत्रका चूर्ण दिनमे दो वार देनेसे शीतज्वर आराम होता है।

●

(५२७) राई

फ़ैमिली : क्रूसीफ़ेरी (Family Cruciferae)

नाम—(हिं०,ब०,म०,गु०,) राई, (अ०) खरदल, (फा०) सिपदाँ, सिपदाँ गिर्द (खुश), इस्पंदाँ, (सं० राजिका, आसुरी, (द०) रायाँ, (ब०) सरिषा, (क०) आसुर, (प०) ओहार, (म०) मोहरी, (का०) सासि (सिंध) अहुरि, (ता०) कडुवु, (मल०) कडुवम्, (ले०) ब्रास्सिका नीग्रा (**Brassica nigra** (L) Koch) (अ०) ब्लैक या ट्रू-मस्टर्ड (Black or True Mustard)। वक्तव्य—भारतीय राईको लेटिनमें ब्रास्सिका जुंसेअ (**Brassica Juncea** (L) Czern et Coss) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके किसी-किसी भागमे इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह सरसोकी जातिके एक पौधेके प्रसिद्ध बीज है, जो सरसोके बराबर, लाल रगके या काले हो है। स्वाद तिक्त और तीक्ष्ण होता है। बीजोसे तेल (रोगन खर्दल) निकाला जाता है।

उपयुक्त अग—बीज और तेल।

रासायनिक सगठन—बीजमें माइरोसिन और सिनिग्रिन अर्थात् पोटैसियम माइरोनेट (Potassium myronate) ०·५ प्रतिशत, अनुत्पत् तेल २५ प्रतिशत, और सिनैपीन (Sinapine) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे चौथे दर्जे (मतातरसे दूसरे दर्जे)में उष्ण और रूक्ष। आयुर्वेदीय मतानुसार उष्णवीर्य (रा०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य प्रयोगसे राई श्वयथुविलयन, लेखन, शोणितोत्क्लेशक और विस्फोटजनन है। लेप करनेसे प्रथमत दाह उत्पन्न करती है, इसके उपरात सशमन कर्म करती है। आतरिक उपयोगसे यह आमाशयको उद्दीप्त करके पाचन और क्षुधाकी वृद्धि करती है और प्लीहाकी सूजन उतारती है। अधिक प्रमाणमे उपयोग करनेसे यह छर्दिजनन है। यह प्रधानत शोथविलयन, शोणितोत्क्लेशक और आहारपाचन है। कफोल्वण सन्निपात (लीसुर्गुस), पक्षवध, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पार्श्वशूल और फुफ्फुसशोथ जैसे प्राय शीतल रोगोमें राईका लेप करते हैं या उपयुक्त औषध द्रव्योके साथ मिलाकर मर्दन करते हैं। आमाशयशूल, प्लीहाशूल और यकृच्छूलशमन करनेके लिए इसका लेप करते हैं। शीतजन्य आर्तवस्तम्भ(सग)को दूर करनेके लिए इसके क्वाथमे रोगिणीको बैठाते है। शोणितोत्क्लेशक और विस्फोटजनन होनेके कारण दद्रु, किलास और खालित्य प्रभृति रोगोमे इसका लेप करते हैं। शीतल शोथो और कण्ठमालाको विलीन करनेके लिए भी इसका लेप करते हैं। जिह्वा-शोथ और दतशूलमें इसके काढेमे कुल्ले कराते हैं। आहारपाचन और अरुचिको नष्ट करनेके लिए इसे आहारमे डालकर खिलाते है। प्लीहाशोथको विलीन करनेके लिए इसका चूर्ण सेवन करते है। आमाशयसे कफोत्सर्ग और कतिपय विषोके प्रभावको नष्ट करनेके लिए वमन द्रव्यकी भाँति अधिक प्रमाणमे (लगभग १ तोला) गरम पानीमें मिलाकर पिलाते है। दतरोगोमे इसकी कुल्ली कराते है। अहितकर—तृष्णा उत्पन्न करती है। निवारण—बादामका तेल और सिरका। प्रतिनिधि—हब्बुर्रशाद। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—राई रसमे कटु और तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दाहकर, पित्तकर तथा वात, कफ, प्लीहाके रोग, शूल, गुल्म, कृमि और व्रणका नाश करनेवाली है। (च० शाक वर्ग अ० २७ श्लो० १०१, रा० नि०)।

नव्यमत—राई अल्पप्रमाणमे दीपन-पाचन, उत्तेजक और स्वेदजनन है। बडी मात्रामे वामक है। राईमे शीघ्र वमन होता है और वमनके बाद थकावट नही मालूम होती। वमन करानेके लिए राई और थोडा सेंधा-नमक गरम पानीमे मिलाकर जब तक ठीक वमन न हो तब तक थोडी-थोडी देरके बाद पिलाना चाहिए। राईके

लेपसे त्वचा लाल होती है, त्वचा और त्वचाके नीचेके रक्तानुधावनको उत्तेजना प्राप्त होती है। पीछे उस स्थानमें सुन्नता आती है। लेप अधिक समय रखनेसे वहाँ फोडा हो जाता है। फुफ्फुस, यकृत्, श्वासनलिका, मस्तिष्क आदिके शोफमें राईके लेपसे बडा लाभ होता है। ज्वरमे मनोभ्रम कम करनेके लिये सिरपर तथा हृदयकी अशक्तता और शरीरके किसी भागके शीतके दर्दमें राईका लेप करते हैं। (ओ० स०)। राईका तेल वायुके दर्दमें लगाया जाता है।

●

(५२८) राल

फैमिली : डीप्टेरोकार्पासे (Family Dipterocarpaceae)

नाम—(हिं०, द०, म०, गु०) राल; (अ०) रातीनज (इ० बै०), रातियानज, कैकहर, कह्रुहर, (फा०) रातियान , लाल मोअब्बरी (मगरबी), (स०) राल, शालनिर्यास, (व०) धुना, (ले०) रेजिना (Resina), कोलोफोनिउम् (Colophonium), (अ०) रेजिन (Resin), रोइजिन (Roisin), कोलोफोनी (Colophony)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर हिन्दुस्तान, हिमालयकी तराई, गोदावरीके जगल और मोरग आदि।

वर्णन—यह शाखूया शाल (**Shorea robusta** Gaertn) नामक वृक्षका गोद है। नवीन राल रग-रहित और पारदर्शक, परन्तु पुराना फीका अम्बरी वा ऊदी, स्वाद गन्धरहित होता है और धूपकी तरह जलता है। वक्तव्य—पाश्चात्य द्रव्यगुण शास्त्रमें वर्णित रालका वर्णन इस प्रकार है—'चीढ वा सरल (Pinus) जातीय वृक्षोसे एक प्रकारका रालयुक्त गाढा तेल निकलता है। परिस्रावणविधिसे तेल और रालको पृथक्-पृथक् कर लिया जाता है। इस प्रकार पृथकभूत तेल "तारपीनका तेल या रोगन तारपीन" कहलाता है। रालकी अर्धस्वच्छ, हलके अवरी या हलके पीले रंगकी डलियाँ होती हैं, जो आसानीसे टूट जाती और चूर्ण हो जाती है। तोडनेपर टूटी हुई सतह चमकदार होती है। गन्ध और स्वाद तारपीनवत् होता हैं। इसके जलानेसे विपुल धूम्र उत्पन्न होता है और लौ का रग पीला होता है।

वक्तव्य—(१) बूअलीसीनाके कथनानुसार अल्-राजीनज सनोवर वृक्ष (Pine tree)का निर्यास है (कानून १/४३०)। इब्नुलबैतारके कथनानुसार इस शब्दका अर्थ साधारणतया गलत समझा जाता है। राल (Resin)के लिए इसका सामान्य प्रयोग गलत किया जाता है। हुबैनने कोलोफोनी (Colophony)के लिए इसका यथार्थ प्रयोग किया है। (इ० बै० सचिका २, पृ० १३५)।

परिचय—(२) विभिन्न प्रकारके सनोबर (देवदार–Pine)के वृक्षोसे जो सान्द्र रालयुक्त तारपीन तैल प्राप्त होता है, उसमें तारपीनतैलको परिस्रुत करनेके बाद शेष रेजिन (राल) रह जाती है।

रासायनिक सगठन—इसका प्रधान उपादान आर्हबोटिक एसिड नामक एक क्रिस्टली यौगिक है, जो क्षारोंसे विलेय लवणके रूपमे परिणत हो जाता है। विलेयता–यह सुरासार (९०%), ईथर, तारपीन तेल, बेंजोल, कार्वनवाई सल्फाइडमें सुविलेय है तथा गरम जैतून तेल और क्षारमें भी घुलनशील है।

कल्प तथा योग—मरहम राल।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी एव अरबी चिकित्साविशारदोमें इसके स्वरूपके विषयमे परस्पर मत-भिन्नता रही है। सुतरा हकीम जालीनूम और उनके अनुसरणमें इब्न समजूनने लिखा है कि रातीनज सनोवरके बडे भेद-

का निर्यास (गोद) है और 'कलफ़ूनिया' जिसको मख़्जनुल् अदवियामें कल्कूनिया और मुहीतआजममें कल्मूनिया भी लिखा है, छोटे भेदके सनोबरका गोद है। शेख़ महोदयने भी इसको एक प्रकारके बुत्मवृक्षका गोद लिखा है। परन्तु वास्तवमें सनोवरसे निर्यास (गोद) नही, अपितु 'इलक' निकलती है और अरबोके समीप रातीनज इलक, का नाम है; क्योकि 'इलक' ऐसे निर्यासको कहते है जो मुखमें चबाया जा सके। सुतरा रातीनजुल्जाफ को 'इलकुल्जाफ़' और रूमीमस्तगीको 'इलकुर्रूमी' कहते है।

राल तैलीय घटकोके साथ मिली हुई विभिन्न प्रकारके वृक्षो (विशेपकर सनोवर वृक्ष)से स्वयमेव या चीरा देनेसे निकलती है। जब इसमे तैलाश अधिक हो तो यह प्रवाही होती है। तब इसे कोई-कोई 'जिफ्त रतब' या 'कतरान' भी कहते है, जो यथार्थ नही। और जब तेलका परिमाण अल्प हो अथवा उसे इसमेंसे परिस्रुत कर लिया जाय या आँचपर उडा दिया जाय, तब इसे अरबीमे रातीनजुल् याबिस या रातीनजुल्जाफ और यूनानीमें 'कुल्कूनिया (कल्फूनिया या कल्मूनिया)' कहते है। सुतरा दीसकूरीदूसने लिखा है कि रातीनज इलक सनोबर है और जब इसे आँच पर उडाकर शुष्क कर लिया जाय तो इसे कल्कूनिया कहते है।

दीसकूरीदूसके वर्णनानुसार तो रेजिनका वास्तविक पर्याय कल्कूनिया ही होना चाहिए, परन्तु रातीनज या रातियानज सज्ञा जो एक रूमी भाषाका शब्द है, वह भी इसका यथार्थ पर्याय है। मख़्जनुल्अदवियामें 'रातियानज' या 'कैकहर'के नामसे रालका और सकुवा के नामसे शाल वृक्षका वर्णन है और मुहीतआजममें रातीनजके नामसे इसका उल्लेख किया गया है। इसकी अँगरेजी सज्ञा 'कोलोफोनी (Colophony)', 'कोलोफोन (Colophone)'-से, जो एक नगरका नाम है, सबधित है। आइओनिय द्वीपमें यह बलकान प्रायद्वीपके पश्चिममें स्थित द्वीपसमूहोमें स्थित है। वहाँ राल पुष्कल उत्पन्न होती है, अतएव उक्त नामसे अभिधानित हुई।

गुण-कर्म तथा उपयोग—व्रणोमे इसका बाह्य प्रयोग करनेसे यह कोथप्रतिबधक और व्रणलेखन कर्म करती है। आतरिक उपयोगसे फेफडो पर इसका कोथप्रतिबधक और कफोत्सारि कर्म होता है। विशेषत यह श्लेष्मनिस्सारक एव दृष्टिवर्धक है। इसको अधिकतया मलहरोमें डालकर व्रणो पर लगाते है तथा कण्डू, दद्रु, छीप वा झाईं और अर्श जैसे रोगोमें उपयोग करते है। हाथ-पैरका फटना, या बिवाईमे इसे मक्खनमे मिलाकर लगाते है। पुरातन कास, श्वास और फुफ्फुस व्रणमें विभिन्न प्रकारसे इसका उपयोग करते है। कास एव श्वासमें इसका धूम्रपान भी गुणदायक है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण—दूध और घी। प्रतिनिधि—अंज़रूत नेत्रके लिए। मात्रा—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—राल रसमे मधुर और कषाय, स्तम्भन, व्रणरोपण, अस्थिभग्नका सधान करनेवाला तथा विपादिका (बिवाई) और भूतका नाश करनेवाला है। (व० नि०)।

नव्यमत—राल उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तसग्राहक और ग्राही है। रालका मरहम लगानेसे फोडे-फुन्सियोकी पीडा शात होती है, वे फूट जाते है और व्रण शीघ्र भर जाता है और यदि नये हो तो बैठ जाते है। रालका मलहम लगाये जानेवाले स्थानका रक्तानुधावन बढता है तथा वह स्थान कृमिशून्य होता है। रालका मरहम—राल, मोम और तिलका तेल सम भाग ले, आग पर पिघला, कपडेसे छानकर काच-पात्रमे भर लेवें। अन्य सुगन्धि द्रव्योके साथ मिलाकर रालका धूप किया जाता है। यह जन्तुघ्न है। कुपचन, सूजाक, रक्तप्रवाहिका और रक्तार्शमें इसको (रालको) देते है।

●

(५२९) रासन

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family . Compositae)

नाम—(हिं०) रासन, (यू०) Elenion (D 1. 27), (अ०) अल्रासन (इ० बैं०), सौसन जबली, जज़बील शामी(-वलदी), कुस्तशामी, कल्मूज, जंजबीलुल्अजम (फा०)रासन ? (ले०) इनूला हेलेनिउम् (**Inula helenium L**), (अं०) एलीकैम्पेन (Elecampane), स्कैब-वर्ट (Scab-wort)।

वक्तव्य—यह ज्ञात नही हो सका कि रासन किस भाषाका शब्द है, फिर भी यूनानी तथा अरबी-फारसी चिकित्सा-ग्रंथोमे इसी नामसे इसका विवरण मिलता है। उन देशोमे इस नामसे जिस औषधिका ग्रहण होता है, उसके गुण-कर्म-उपयोग तथा परिचय आदि विषयक विवरणका आयुर्वेदीय रास्नाके साथ बहुत सादृश्य जान पडता है। अस्तु, बहुत सभव है कि कदाचित् रास्ना ही विदेशोमे पहुँचकर रासन कहलाई हो। खजाइनुल् अदविया तथा डीमकोक्त रासनका विवरण और कैयदेवनिघटुमें रास्नाकी पाद टिप्पणी देखनेसे मेरे इस मतकी पुष्टि होती है।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण यूरोप और उत्तरी एशिया। कतिपय यूरोपीय देशोमें औषधीय व्यवहारके लिए इसकी खेती की जाती है। ग्रेट-ब्रिटेनमें भी इसकी खेती होती है।

वर्णन—पुष्करमूल जातीय क्षुपकी जड, जो हलकी भूरी, शृंगवत् कठिन, साधारणत ८ १३ मि० मी०से १ ८७५ सें० मी० (⅓ से ¾ इच) मोटी होती है। इसके विभिन्न लबाईके रभाकार टुकडे होते है। प्राय बडे खंडोके साथ जडका शीर्ष (Crown) संलग्न होता है। खंड छोटा होता है। व्यत्यस्त काटमे पुष्कल काले तेल-कोशाओके साथ अरवत् रचना (Radiate structure) दिखलाई पडती है। स्वाद सुगधित एव कटु-तिक्त, गध ईरसाकी जड (Oris root) और कपूरका स्मरण दिलाती है। जड रग और रूपमें बेलाडोनाकी जडके समान होती है, किन्तु बेलाडोनाके विपरीत इसकी बाहरी छाल उतारी हुई जडमें सफेद धरातलका अभाव होता है। इसका क्षुप आकृतिमे जगली मूली (Horse-Radish)[1] के समान होता है। सभी अवयवोमें जड ही अधिक गुणकारी होती है। अतएव औषधमें प्राय इसीका उपयोग होता है। गर्मीमे इसे उखाडकर सुखा लेते है। जड को असलुर्रासन और बीजको हब्बुर्रासन कहते है। जडमे दो वर्ष तक वीर्य शेष रहता है। उत्तम जड वह है जो ताजी हो, जिसमे कीडे न लगे हो, जिसमे हलकी-सी मञ्जीके साथ थोडी-सी ललाई हो और स्वाद विकसा (फीका) हो। बुर्हानके मतसे इसकी जडसे मुरब्बा बनाते है। जंजबील कोही (I **royleana** DC) इसका एक भेद है जिसके क्षुप समशीतोष्ण पश्चिम हिमालयमें ७,०००—११,००० फुट की ऊँचाई पर होते है (कुष्ठमें इसकी जडका मिश्रण करते है)। कल्प—चूर्ण(मात्रा—½ ड्रामसे १ ड्राम), तरलसार (मात्रा—½ से १ ड्राम), फाट और मुरब्बा, इन्युलीन (Inuline मात्रा—½ से १½ रत्ती)।

रासायनिक सगठन—जडमें इन्युलीन (Inuline) नामक सैन्टोनीन जैसा एक तिक्त सत्व होता है।

प्रकृति—मलभूत द्रवके साथ जड दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष है। पत्ते सर्द एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—जड मन प्रसादकर, पाचन, वातानुलोमन और वाजीकर है तथा हृदय, आमाशयद्वार और वस्तिको शक्ति देती एव यकृत्के अवरोधका उद्घाटन करती है। यह शीतल यकृच्छूल, सधि एव पृष्ठशूल, वातरक्त, गृध्रसी, दमा, कृच्छ्रश्वास, कुष्ठ और जलोदरमे गुणकारी है तथा मालीखोलिया मराकी (मद विशेष), हृदय एव आमाशयद्वारकी दुर्बलतामे होनेवाले विराग (वहशत) एव चिंताको दूर करती है। कर्णक्ष्वेड और कर्णनादमे इसे कानमे टपकानेसे लाभ होता है। इसे पकाकर मल-छानकर या इसकी शराब बनाकर पीनेसे

---

१ (ले०) (Cochlearia armoracia Linn. (*Family Crucifera*)

आर्तवरक्त और पेशाब अधिक आता है, स्रोतोका मल मूत्र और आर्तवरक्तके साथ निकल जाता है। समस्त गुणोमें जडकी अपेक्षया इसकी शराब श्रेष्ठतर है। इसकी धूनीसे भी आर्तवरक्तका प्रवर्तन होता है। इसमें एक प्रभाव यह है कि इसके सेवनसे मूत्रकी उत्पत्ति कम हो जाती है। इसके निरतर सेवनसे वस्ति इतनी बलवान हो जाती है कि बारम्बार मूत्रका आना बन्द हो जाता है। इसका लेप अधिक समय तक एक स्थानपर रखनेसे वह स्थान लाल हो जाता है। यह वाजीकर भी है। किसी तेलमें पकाकर शिश्नपर इसका पतला लेप (तिला) करनेसे वाजीकरण होता है। इसको पीसकर शहदमे मिलाकर चाटनेसे जोडोका दर्द जाता रहता है। कफज अर्धावभेदकमें इसके लेपसे लाभ होता है। इसको शहदमें मिलाकर चाटनेसे पुरानी खाँसी, दमा और कृच्छ्रश्वास आराम होता है तथा छाती-से कफ निकल जाता है। रासनका मुरब्बा शीत प्रकृतिवालेको, पक्षवधवालेको तथा जिसके वृक्क शीताभिभूत हो उनको गुणदायक है। यह मूत्रका उत्सर्ग करता और कटिको शक्ति देता है। मुरब्बाकी विधि–दस भाग रासन लेकर उँगलीके बराबर काटकर छीलें और बीस दिन तक नमकके पानीमे भिगो रखे। हर तीसरे दिन इस पानी-को बदलते रहे या शहद और पानीमे भिगो देवें और हर पाँचवे दिन उसे बदलते रहे। इसके बाद पत्थरकी हांडीमें डालकर तीन भाग शहदको पानीमे घोलकर उसे मिलाकर पकावे जिसमें नरम हो जाय। पुन उसमेसे निका-लकर दोबारा उतने ही शहद और पानीके साथ अच्छी तरह पकावे। इसके बाद उसे हरे मर्तबानमे रखकर उसमे सोठ, इलायचीदाना, जायफल, दालचीनी, लौंग और पीपलका चूर्ण मिला देवे। बस मुरब्बा तैयार है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको, आमाशयसे नीचे देरमे उतरती है। निवारण–सिरका, अम्ल रसक्रिया, खट्टा अनार, शर्बत रेवास भी, आमाशयसे नीचे देरमे उतरनेका निवारण मस्तगी और खमीरा बनफशा। प्रतिनिधि–ईरसा, मीठा कुट और बच। मात्रा–७ ग्राम (७ माशे) तक।

नव्यमत—रसायन, बल्य, पाचन, मूत्रल, कफोत्सारि, स्वेदल, आमवातहर तथा मन प्रसादकर है। अन्यान्य औपधियोके साथ कासमें मुख्यरूपसे और श्वास अर्थात् फुफ्फुसविकारोमें सामान्यतया इसका उपयोग होता है। चेहरे या शरीरके अन्य भागोकी त्वचाका रग निखारने या उनसे दाग या धब्बे मिटानेके लिए रासनके पत्र और मूल दोनोमे परिस्रुत किया हुआ अर्क बहुत ही गुणकारी है।

आयुर्वेदोक्त रास्नाके गुणकर्म तथा उपयोग—रास्ना तिक्तरस, मधुरविपाकी, उष्णवीर्य, गुरु, श्लेष्म-प्रशमन, उत्तम वातहर, कफवातहर एव शोफ, कम्प, उदर, श्वास, कास, हिचकी, विष, ज्वर (विषम) कफशूल तथा वातरक्त एव वातशूल आदि सभी प्रकारके वात रोगोको नष्ट करती है। रास्नामें स्निग्धत्व, उष्णत्व, अनुलोमकत्व अनायास सिद्ध होता है। शैत्यके निवारणके लिए इसका प्रलेप उत्तम है। पित्तमे इसका उपयोग नही हुआ है। (च०, सु०, भा० प्र०, शो० नि०)। चरक, सुश्रुत, वाग्भट और मेलसहितामें आये इसके गुणप्रयोग सबन्धी समस्त विवरणोको देखनेसे यह ज्ञात होता है कि रास्ना प्रलेपन, निरूहण, आस्थापन, लेखन, उत्तरबस्ति, उद्वर्तन, तैल, घृत, क्वाथ, चूर्ण, लेह, नस्य, अवसेचन, स्वेदन, यवागू, क्षीरपाक, परिषेचन इत्यादि कल्पनाओमे व्यवहृत है और वातश्लेष्मप्रशमन, श्वास, कास, अपस्मार, श्वयथु, वातरोग, अपतानक, हृद्रोग, वातरक्त, योनिरोग, कफज रोग, शुक्र दौर्बल्य इत्यादि रोगोमें रास्नाके उपयोग देखे जाते है। सूक्ष्म निरीक्षणसे ज्ञात होता है कि वात और कफप्रधान रोगोमें रास्नाके विशेष उपयोग हुए है।

●

(५३०) रीठा

फैमिली : सापीडासे (Family Sapindaceae)

नाम—(हिं०; द०) रीठा, रीठो, (अ०), फुन्दुके (फिन्दकें) हिंदी, बुन्दुके (बन्दकें) हिंदी, (फा०) फुन्दुके फारसी, (स०) अरिष्टक, फेनिल, (व०, म०) रिठा; (क०) रेंट, (प०) रेठा, (गु०) अरीठा, (को०) रिंगीण, (लै०) सापींडुस् इमार्जीनाटुम् Sapindus emarginatus Vahl (पर्याय–*S. trifoliatus* auct non Linn); (अं०) सोपनट (Soap nut)। वक्तव्य—लेटिन नाम रीठेके वृक्षका है। अंग्रेजी नाम फलका है। भारतीय भाषाओं के नाम इसकी सस्कृत सज्ञा 'अरिष्टक' से व्युत्पन्न है। सस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओंके नाम वृक्ष तथा फल दोनोके लिए सामान्य है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष तथा भारतवर्षके अन्य शुष्क वन। बगालमे इसके पेड लगाए जाते है। उत्तर भारतमें होनेवाले रीठेको लेटिनमें सापींडुस् मुकोरोस्सी (**Sapindus mukorossi** Gaertn) कहते है। इसके पेड जौनसार और पजाबमें लगाए हुए मिलते है।

वर्णन—दक्षिणी रीठेके वृक्ष बडे होते है। प्रत्येक सयुक्तदल (Compound leaf) मे तीन-तीन पत्रक (Leaflets trifoliolate) होते हैं, जो लम्बे और नुकीले होते है। उत्तरी रीठेके वृक्ष देखनेमें तूनके सदृश मालूम होते हैं। पत्ता युग्मपक्षाकार, ३० सें०मी० से ५० सें०मी० (१२ से २० इंच) लम्बी, पत्रक ५–१० जोडे, मालाकार, नोकदार, सरलधारवाले, चिकने तथा आगेके पत्रक क्रमश छोटे होते हैं। पुष्प सफेद तथा दोनोके फल एक तरह-के, छालियाके बराबर, मासल, गोल, एक बीजवाले होते है। छिलका झुर्रीदार, रगत, कालाई लिए गदला पीला, तोडनेपर अन्दरसे कँवलगटेके सदृश काला चिकना बीज और बीजको तोडनेपर सफेद मग्ज निकलता है। ऊनी कपडा धोनेके लिए इसका उपयोग होता है। अधिकतया इसका छिलका औषधमें प्रयुक्त होता है।

रासायनिक सगठन—फलमे साबुन तत्व या सैपोनिन (Saponin) ११ ५ प्रतिशत, द्राक्षशर्करा १० प्रतिशत और लबाब सरीखा पेक्टिन (Pectin) नामक कफघ्न पदार्थ, स्थूल दलो (Cotyledons)में ३० प्रतिशत सफेद चर्बी होती है।

कल्प तथा योग—तिरियाक अफ्यून।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य एव स्निग्ध (रा०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर लगानेसे रीठा लेखन, श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक और सक्षोभजनन है। सक्षोभजनन होनेके कारण नाकमे नस्य करनेसे यह छीके लाता, और द्रवोको शोषित करता है। फलवर्तिकी भांति उपयोग करनेसे आर्तवप्रवर्तन करता और गर्भ एव अपराका निर्हरण करता है। थोडी मात्रामे आतरिक रूपमे खिलानेसे दीपन और वातानुलोमन है, और शीतल व्याधियोमें लाभ करता है। किन्तु अधिक मात्रामे खिलानेसे वमन और विरेचन करता है। इसका कारण सभवत यह है कि आमाशय और अन्त्रपर इसका सक्षोभजनन प्रभाव होता है। छीप वा झांई तथा किलास आदि जैसे त्वचाके रोगोके लिए लेपके रूपमें तथा सर्प एव वृश्चिकविषके लिए भक्षणीय औषध रूपमें इसका विशेष रूपसे उपयोग किया जाता है। झाइं, व्यग और किलास जैसे त्वचाके रोगोमे रीठेको पीसकर लेप करते हैं। चेहरेका रग निखारनेके लिए इसे उबटनमें मिलाकर उपयोग करते है। कण्ठमालापर इसे सिरकेमे पीसकर लेप करते है। अर्दित, अर्धावभेदक, अपस्मार और शीतल शिर शूल निवारणके लिए इसको पानीमे पीसकर नस्य कराते है। इससे छीके आती है, या छीकके बिना नासिका-मे सक्षोभ होकर विपुल द्रव स्रवित होता है और रोग निवृत्त हो जाता है। रुद्धार्तवको नष्ट करने और मृत गर्भ एव अपरानिर्हरणके लिए इसको जलमे पीसकर फलवर्ति बनाकर रखते है। रतौंधी और धुधके लिए इसको जलमे

घिसकर नेत्रके भीतर लगाते हैं। सर्प और वृश्चिक दष्टके लिए यह अगद है। सर्प और वृश्चिक दष्टको ६ माशेके लगभग बारीक पीसकर जलमे मिलाकर दो-दो घण्टे बाद पिलानेसे छर्दि एव अतिसार होकर सम्पूर्ण विष दूर हो जाता है। दष्ट अवयवपर पतला लेप भी करते है। कहते हैं कि रीठेका चूर्ण जलमे घोलकर गृहमें छिडकनेसे सर्प भाग जाता है। वाजीकरणके लिए रीठेकी गुठलीका मग्ज खिलाया जाता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण—तेल, विशेषत बादामका तेल। मात्रा—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ मासासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—रीठा तिक्त, कटु, स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण, कटु विपाक, उष्णवीर्य, लेखन, गर्भपात करनेवाला तथा वात, कफ, कुष्ठ, कण्डू, विष और विस्फोटका नाश करनेवाला है। रीठेके पानीका नस्य देनेसे सिरका दर्द मिटता है तथा रीठेका जल पिलानेसे वमन होता है और वमनके द्वारा विष निकल जाता है (रा० नि०; नि० स०)।

नव्यमत—रीठेका गूदा, उष्ण, तिक्त, स्निग्ध, कफघ्न, वामक और वातहर है। वडी मात्रामे रेचन और वामक है। इसकी क्रिया इपीकाक्वाना और सेनेगा जैसी होती है। इससे शीघ्र वमन होता है और त्रास नही होता। इसका लेप वेदनास्थापन और शोथघ्न है। दमामे कफ निकालनेके लिए इसका वमन देते है। इससे कफ पतला होकर गिरता है और हृदयको शक्ति मिलती है। कफ रोगोमे इसको अल्प मात्रामे ही देना चाहिए। दमा और आधासीसीमें इसके नस्यसे वडा लाभ होता है। अफीमके विषमे रीठेका पानी वमन करानेके लिए देते हैं। कुष्ठ, कण्डू सन्धिशोथ, विस्फोटक और गण्डमालामे तथा बिच्छू, कनखजूरा (गोजर) और विषैली मक्खीके दशमे रीठेका लेप किया जाता है।

●

(५३१) रुदंती

फैमिली कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) रुद्रवन्ती, रुद्रती, (स०) रुदन्ती, चणकपत्री, (व०) रुदन्ती, (म०) रुदन्ती, खरडी; (गु०) पडीयो, पलीयो, (सिं०, गु०, कच्छ) उण, गुण, (लै०) क्रेस्सा क्रेटीका (**Cressa cretica Linn.**)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षके प्राय उष्ण भागोमे समुद्र तटके समीप मुलतान, सिंध, गुजरात, कारोमण्डलके किनारे और लका आदिमे होती है। यह वर्षाके उपरात खेतोमें और प्राय सख्त, आर्द्र और क्षारीय भूमिमें नदी-नालोके समीप उत्पन्न होती है।

वर्णन—यह एक वर्षायु, चनेके पौधेके सदृश क्षुद्र क्षुप है। पत्र पुष्कल, चनेके पत्रके समान, किन्तु उनसे छोटे, अण्डाकृति, अवृन्त, राखके रङ्गके, पुष्प क्षुद्र, सफेद या मोतिया रङ्ग या फीका गुलावी रङ्गके और एकत्र पुष्कल पुष्प होते हैं। फल गोलाई लिए क्षुद्र होता है। रुचि तिक्त और खारी। इस बूटीसे सदा पानी-सा टपकता रहता है। अतएव इसके नीचेकी भूमि सदा भीगी और स्याह रहती है और तेलसे सनी हुई मालूम हुआ करती है।

उपयुक्त अंग—पचाङ्ग।

रासायनिक सगठन—एक ईथरविलेय क्षारोद (ऐल्केलॉइड)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—यह शरीर एव शरीरके प्रत्येक अग-प्रत्यगको शक्ति प्रदान करती है। उपयोग—रुद्रवंतीको छायेमे सुखाकर समप्रमाण मिश्रीके साथ या मधुमे मिलाकर शरीर बलवर्धन, वाजीकरण और असामयिक पलितको

रोकनेके लिए खिलाते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भस्थापनके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। सभवत गर्भाशयको शक्ति देनेके कारण यह गर्भस्थापनमे सहायक होगी। अर्धप्रमाण त्रिफला, चौथाई प्रमाण त्रिकुटा और समप्रमाण मिश्रीके साथ चूर्ण बनाकर लगभग ७ माशे यह चूर्ण गोदुग्धके साथ समस्त शरीरकी वेदनाओ और शरीर बलवर्धनके लिए खिलाते हैं। अहितकर–किसी प्रत्यगके लिए विशेष रूपसे अहिकर नही है। निवारण–गोघृत और ताजा दूध। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—रुदती कडवी, चरपरी, उष्णवीर्य, रसायन, अग्निजनक, वीर्यवर्धक तथा क्षय, कृमि, पित्त, रक्तपित्त, कफ, श्वास और प्रमेहनाशक है (रा० नि०, राज०)।

●

(५३२) रेंड़

फ़ैमिली एउफॉर्बिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम—बीज (हिं०) अरड, अरडी, रेडी, (अ०) खिर्वअ, वज़्रु्ल् खिर्वअ, (फा०) बेद अजीर, तुख़्मे बेद-अजीर, (स०) एरण्डबीज, (व०) भेरेंड, भेरेडा, (द०) यरण्डी, (म०) एरण्डी, एरण्डीच बीज, (गु०) एरण्डो, एरण्डियो, (अ०) कैस्टर सीड (Castor seed)। तेल (हिं०) अरण्ड (अरण्डी)का तेल, रेडीका तेल, (अ०) दुह्-नुल् खिर्वअ, दुह्न हव्बुल् खिर्वअ, (फा०) रोगन बेदअजीर, (स०) एरण्डतैल, (अ०) भेरेडा तेल, (म०) एरण्डेल तेल; (गु०) दीवास, एरण्डीनु तेल, (लें०) ओलेउम् रिसिनी (Oleum Ricini), (अं०) कैस्टर ऑइल (Castor Oil)। वक्तव्य—इसके पौधेको लेटिनमे रीसीनुस् कोम्मूनिस् (**Ricinus communis** L) और अग्रेजीमे कैसटर ऑयल प्लान्ट (Castor-oil plant) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह अफरीकाका मूलवासी है, किन्तु समस्त भारतवर्ष विशेषत बगाल, बम्बई और उत्तर-प्रदेश आदिमे विस्तृत परिमाणमें बोया जाता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसके यह दो भेद है—(१) लाल और (२) सफेद। सफेदके पुन ये दो अवातर भेद होते हैं—(१) इसके बीज बडे होते है। इसका तेल जलानेके काममे आता हैं। (२) इसके बीज छोटे होते हैं। इसका तेल औषधमे प्रयुक्त होता है। फलपर बारीक-बारीक और मुलायम काँटे लगे होते हैं। बीजको तोडनेपर सफेद मग्ज निकलता है। इसे कोल्हूमें दबाकर तेल निकाला जाता है। यह गाढा, सफेद या पिलाई लिये होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, बीज, बीजोत्थ तेल और मूल।

रासायनिक सगठन—बीजमें अन्यान्य तेलोके विपरीत सुरासार विलेय एक अनुत्पत् तेल ४५%, प्रोभूजिद (Proteids) २० प्रतिशत, पिष्ट, लबाब, शर्करा और राख १० प्रतिशत। तेल ग्लीसरोलके रिसिनओलिएट या स्वल्प पामिटिन और स्टियरीन युक्त ट्राइ-रिसिन-ओलीइन का यौगिक है। रिसिन-ओलीइक एसिडके ग्लीसराइड्स प्रधानत विरेचन कर्मके लिए उत्तरदायी हैं। मुखद्वारा उपयोग करनेमे तेल साबुनके रूपमें परिणत हो जाता और स्वतन्त्र अम्ल योग मुक्त हो जाता है। इसीके द्वारा उक्त कर्म निष्पन्न होता है। मग्जमे पाये जानेवाले तेलसे भिन्न बीजमें रिसिन (Ricin) नामक ऐल्ब्युमिनॉइड स्वभावका एक परम विपाक्त पदार्थ भी होता है। इसमें विरेचन गुण नही होता और न तेलमे यह किसी अशमे पाया जाता है।

पत्र, बीज, मूलादि—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीयमतसे उष्णवीर्य (सु०)।

गुण-कर्म—रेंडीकी गुद्दी (मग्ज तुख्म बेदजीर) श्वयथुविलयन, शोथघ्न, वेदनास्थापन, लेखन, तीव्र विरेचन, कठोरताको मृदु करनेवाली, आर्तवजनन, उदरकृमिनि सारक और सर्पदष्टका अगद है। रेंडीकी गुद्दीमे रेंडीके तेल-की अपेक्षया विरेचनीय शक्ति अधिक है। पत्र यद्यपि गुणकर्ममें निर्बल है, तथापि इसमें अगदगुण अधिक है। यह प्रधान रूपसे दुष्टदोष विरेचनीय और शोथविलयन है। उपयोग—पक्षवध, अर्दित, कम्पवात, कास, कृच्छ्रश्वास, शूल (कुलज), जलोदर और आमवात आदि जैसे श्लेष्म रोगोमे रेंडीकी गुद्दी खिलानेसे यह कफ और जलाशका निर्हरण करके उक्त रोगोमें लाभ पहुँचाती है एव नाडीदार्ढ्य तथा हर एक प्रकारकी कठिन सूजन उतारनेके लिए इसका बहिराभ्यतरिक उपयोग करते है। लेखन, विलयन और सशमन होनेसे चर्मकील, व्यग, कच्छू, वातरक्त और आमवात आदिमे इसका लेप किया जाता है। औदरीय पेशियोकी कठोरतामे भेडके दूधमें इसे खीरकी भाँति पकाकर बाँधनेसे पेशियाँ नरम हो जाती है। विलयन, श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन होनेके कारण एरण्डपत्रको तेल से चुपडकर सुहाता गरम करके बाँधते है तथा स्तनशोथमे इसे सिरकेके साथ पीसकर लेप करते है और उनकी भुजिया बनाकर कण्ठशोथपर बाँधते है। सर्पदष्टका अगद होनेके कारण रेंडकी कोपलको जलमें पीस-छानकर सर्पदष्ट रोगीको पिलाते है। इससे वमन-विरेचन होकर विष दूर हो जाता है। सीठीको सर्पदशपर बाँधते हैं। उपर्युक्त विधिसे इसको बारबार पिलानेसे वछनाग और अहिफेनका विष भी वमन-विरेचनके द्वारा दूर हो जाता है। पत्र आघात प्रतिघात और दर्दके लिए लाभकारी है। अहितकर–आमाशयके लिए। निवारण–कतीरा और मस्तगी। प्रतिनिधि–जमालगोटा। मात्रा–रेंडीकी गुद्दी ३ दानेसे ५ दाने तक और पत्र ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोले) तक।

तेल (रोगन बेदजीर)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०)।

गुणकर्म—विरेचन, कफनिर्हरणकर्ता, विलयन, शोथघ्न, वेदनास्थापन, कठोरताको मृदुकरनेवाला, उदरकृमिनाशन एव निर्हरणकर्ता, अन्त्रमृदुकर तथा अन्त्रको फिसलानेवाला है। अधिकतया पेचिस, मलावरोध और शूलके लिए विशेष रूपसे प्रयुक्त किया जाता हैं। उपयोग—प्रत्येक आयु एव अवस्थामे रेंडीका तेल एक उत्कृष्ट विरेचन औषध है। मलभूत एव वायुजन्य शूल, मलबद्धता और अन्य कफज रोगोमे इसका विरेचन दिया जाता हैं। इसके अतिरिक इसकी बस्तिभी देते हैं। प्रवाहिकामे किंचित् अफीम या गोदके पानीके साथ पिलानेसे एक-दो दस्त होकर पेचिस दूर हो जाती है। उदरकृमिनाशन और निर्हरणके लिए भी इसे पिलाया जाता है। नेत्रमे चूना पडनेसे जो दाह एव कष्ट होता है, नेत्रके भीतर डालनेसे यह उसको शमन करता है। दृष्टिदौर्बल्य और प्रारभिक मोतियाबिंदमे भी इसे नेत्रमे डालनेसे उपकार होता है। विलयन, शोफघ्न और वेदनास्थापन होनेसे आमवातज तथा अन्यान्य वेदनाओमे इसकी मालिश करते है। कठोरता पर मालिश करनेसे यह उनको नरम बनाता है। अहितकर–आकुलताकारक है। निवारण–दूध। प्रतिनिधि–अन्त्र मृदुकरणमें कोई उत्तम प्रतिनिधि नही है। मात्रा—२ तोलेसे ५ ताले तक।

आयुर्वेदीय मत—एरण्ड मधुर, गुरु, उष्णवीर्य, भेदन, स्वेदोपग, अगमर्दप्रशमन, अधोभागहर, वातसशमन, वृष्य, मार्गशोधन तथा कफ, पित्त, वात, श्वास, कास, व्रध्न, अश्मरी, गुल्म, प्लीहारोग, उदर, आनाह, कटि-वस्ति और सिरका पीडा, प्रमेह, ज्वर, आमवात, रक्तविकार, शूल और शोथको दूरकरनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८ व ४६, कै० नि०)। एरंडपत्रका शाक तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, वातप्रशमन और मलको पतला करनेवाला है। (च० सू० अ० २७)। एरंडतैल मधुर, कटुकषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, स्रोतोविशोधन, त्वच्य, वाजीकर, वय स्थापन, मेधा-आरोग्यकान्ति और बलको बढानेवाला, योनि (गर्भाशय) और शुक्रशोधन, गुरु, कफवर्धक, अधोभाग-दोषहर तथा वातरक्त, गुल्म, हृद्रोग और जीर्ण ज्वरको दूर करने वाला है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४५)। एरंडकी जड़ वृष्य एव वातहर है (च० सू० अ० २५)।

नव्यमत—एरण्डतैल सौम्य, स्रसन, स्तन्यजनन, दाहशामक और वातहर है, एरण्डमूल वातहर है। दो-चार ड्राम एरण्डतैल रातको सोते समय देनेसे सवेरे साधारण पतले पीले रगके एक-दो दस्त होते है। एरण्डतैलसे आँतो-की श्लेष्मल त्वचा मृदु होती है और उसमे मलकी गाठे (सुद्दे) नीचे आती है। इस प्रकार मलको नीचे सरकाने वाले द्रव्योको स्रंसन (ना क आनुलोमिक) कहते है। सवेरे खाली पेट अदरकके रसके अनुपानसे एरण्डतैल देना चाहिए। एक ड्रामकी मात्रामे प्रतिदिन रातको सोते समय एरण्ड तैल लेनेसे पुराना कब्ज दूर होता है, और अर्शमे तथा गुदा-में पडे हुए चीरेमे लाभ होता है। बडी आंतके सिरेपर एक अवशिष्ट भाग रहता है, उसमे कभी-कभी शोथ होता है, इसमे पेडूमे दाहिने ओर दर्द होता है, वमन होते है, ज्वर आता है, नाडी त्वरित चलती (द्रुतगामिनी) है और बारीक होती है; इस रोग (एपेन्डिमाइटिस या अन्त्रपुच्छशोथ)में प्रारंभसे ही एरण्ड तैल देते रहनेसे शस्त्रक्रियाकी आवश्यकता नही पडती। इसमे एरण्डतैल पीनेको देनेके साथ हीगमिश्रित जल और एरण्ड तैलकी बस्ति देना चाहिए। इस व्याधिमें बहुत पीडा होती है। इसको दबानेके लिए अफीम नही देना चाहिये, खुरासानी अजवायन दे सकते है। कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात और सधिशोथमे एरण्डमूल और सोठका काढा प्रात-सायकाल और रात्रिमे सोते समय एरण्ड तैल और थोडा शिलाजीत मिलाकर देते है और पीडित स्थानपर एरण्ड तैलकी मालिश करते है। स्तनपर एरण्ड तैल लगाकर एरण्ड पत्र बांधनेसे स्तनशोथ उतरता है और दूधकी राशि बढती है।

●

(५३३) बघरेंड

फैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) बघरेंड, बाघरेंड(डा), बाघभेरड, (म०) मोगलाई एरण्ड, (ब०) बागभेरड, (स०) व्याघ्रैरण्ड (नवीन), (लें०) जाट्रोफा कुर्कास (**Jatropha curcas L**), (अ०) फिजिक नट (Physic Nut)।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिकाका मूल निवासी है। भारतवर्षमे इसके वृक्ष लगाये हुए मिलते है। अब यहाँ फैल रहा है।

वर्णन—इसके वृक्ष एव पत्र रेंडके समान किन्तु उससे छोटे ३ से ६ मीटर (१०–२० फुट) ऊँचे, होते है। फल उसके समान गुच्छोमें नही लगते, गोल और किसी भाँति लबे होते है तथा इनके भीतर सफेद मग्ज होता है। इसके पत्तोको तोडनेसे सफेद लेसदार द्रव निकलता है। इसीको दूसरी जाति जाट्रोफा गॉस्सीपीफोलिआ (J gossypifolia L) है, जिसे लाल व्याघ्रैरण्ड कह सकते है। सडकोके किनारे तथा ऊसर भूमिमें उगी हुई मिलती है। इसके पौधे ०९ से १८ मीटर (३–६ फुट) ऊँचे, पत्तियाँ ३–५ खण्डित तथा पुष्प लाल होते है। पत्रतट, पर्णनाल और उपपत्रोंके ऊपर श्लेष्मोत्पादक ग्रथियाँ रोगोके रूपमे रहती है, जिससे यह पौधा स्पर्शमे चिपचिपा होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एव खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वमन एव स्वापजनन (मुखद्दिर)। व्रणरोपण इसका प्रधान कर्म है। इससे बीजका भाग मग्ज धतूरके समान विषैला एव स्वापजनन (मुखद्दिर) है। इसके सेवनसे बहुत वमन होता है। वृक्ष-का सफेद लेसदार द्रव सद्यः व्रण अर्थात् क्षतका सधान एव रोपण करनेके लिए तथा खाज, पामा और दद्रुके लिये अत्यन्त गुणकारक है। फूले हुए मसूढोमें इसकी टहनियोका दातून गुणकारी है। इसकी पत्तियोका काढा और स्तनोके ऊपर इसका लेप स्तन्यजनन और रक्तिमोत्पादक (Rubefacient) है। इसका क्षुप मछलियोके लिये विष-वत् है। निवारण–गुलरोगन और शहद। प्रतिनिधि–बरगदके नये पत्ते। मात्रा–आतरिक प्रयोगमे नही आता।

●

(५३४) रेवंदचीनी

फ़ैमिली : पोलीगोनासे ((Family Polygonaceae)

नाम—(हिं) रेवदचीनी, रेवचीनी, (Gr.) Pa, (अ०) अल्‌राबदुस्सीनी, रावद, रकूबत यमानिया, (फा०) रेवद, (द०) रेवनचीनी, (व०) रेवन, (रेउ) चिनी, (गु०) रेवनचीनी, रेवन्दचीनी, (म०, ते०) रेवलचीन्नी, (बम्ब०) लकडी रेवचीनी, (प०) रेवदचीनी रियोदचीनी, (का०) पम्वचालन; (ले०) र्‌हेउम्‌ (Rheum), र्‌हेई राडिक्स (Rhei radix), (अ०) र्‌हुबार्व (Rhubarb), र्‌हुबार्बरूट (Rhubarb root)।

वक्तव्य—इब्नुल्बैतार 'अल्‌-रावद' विषयक अपने विस्तृत लेखमे इब्नेजामीको उद्‌धृत करते हुए कहते है, कि उनके समयमे इस सज्ञाका व्यवहार ४ विभिन्न प्रकारके रावदके अर्थमे होता था, यथा–चीनी, ऐबीसीनियन, पारस्य (फारसी) और तुर्की, जिनमेसे केवल प्रथम दोका व्यवहार प्राचीनो द्वारा होता था। किसी-किसीने इसे ही रेवा(वा)स या राबा(वा)स या रेवाज समझा है। उनके मतसे रेवदचीनी इसीकी जड है। परन्तु रे(रा)वास वस्तुत रेवदचीनीकी एक अन्य छोटी जातिकी लता है, जिसे लेटिनमे र्‌हेउम्‌ रीबेस (**Rheum ribes**) कहते है। यह कश्मीरमें होती है। रेवद फारसी नाम है। यह फारस एव अरब आदि देशोमे चीनी और खता (खोताना) से जाती थी, इसलिए हकीमोने इसका नाम रेवदचीनी या रेवदखताई रखा। र्‌हेउम आफ्फीसिनाले **Rheum officinale** Baill) अर्थात्‌ अगरेजी या र्‌हेउम्‌ पाल्माटुम (**Rheum Palmatum** L) अर्थात्‌ चीनी रेवद अथवा इसी प्रकारके अन्य पौधोका मूल है जिसकी छाल उतारकर सुखा लेते हैं। इनके पौधे तिब्बतके दक्षिण पूर्व और चीनके उत्तर पश्चिम भागोमे होते है। बाजारमे इसकी सूखी जड और लकडी रेवदचीनीके नामसे बिकती है और औषधके काम आती है। यह चीनसे फारस होकर यहाँ लायी जाती है। 'भारतीय रेवद (**Rheum emodi** Wall) जिसे गढवालमे आर्चा, डोलु (कु०) और मदूम(दम)चाक (नैपा०) कहते है, हिमालयमें तथा कश्मीर, नेपाल, भूटान और सिक्किमके पहाडोमे ४,००० से १२,००० फुटकी ऊँचाईपर होती है। कश्मीरसे सिक्किम तक हिमालयके जिन प्रदेशोमें वर्फ पडती है, वहाँ रेवदका एक और उपजाति र्‌हेउम नोबीले (**Rheum nobile** Hook) होती है। इसकी पत्ती और टहनियाँ खट्टी होती हैं। कहते है कि बाजारू गुच्छाकार अम्लवेतस इसीकी टहनियाँ है, जिन्हे वेणीकी तरह गूँथकर अमलबेदके नामसे वेचते है। इसकी एक छोटी जाति और कश्मीरमें होती है जिसे रेबा(वा)स या रेवाज कहते है। लेटिनमे इसको र्‌हेउम्‌ रीवेस (**Rheum ribes**) कहते है। हिन्दुस्तानी रेवद चीनीकी अपेक्षया अधिक काली (कालाई लिये पीली) और रचनामे स्थूल होती है। यह न तो छिली हुई होती है और न इसमे वैसी महक होती है। इसका चूर्ण भूरापन लिए पीला होता है। इसलिए यह चीनी जैसी उत्तम नही समझी जाती। फिर भी पजाबके कागडा जिलेसे देशी औषधोके व्यवहारके लिए यह काफी प्रमाणमें प्रतिवर्ष लाई जाती है।

उत्पत्तिस्थान—उपर्युक्त व्यापारिक रेवद जो इसका उत्कृष्ट भेद है और जिसे चीनी, रूसी और पूर्व-भारतीय रेवद कहते है चीन एव यूरोप से आता है।

इतिहास—प्रतीत होता है कि ईसवी सन्‌-से २७०० वर्ष पूर्व चीनवासियोको 'रावद'का ज्ञात था। प्राचीन यूनानी चिकित्साविद्‌ यथा दीसकूरीदूस आदिने 'र्‌हा' जिसको मख्जन एव मुहीतमें 'राऽआ' लिखा है और र्‌हीअीन' जिससे र्‌हेउम्‌ (Rheum) सज्ञा व्युत्पन्न है और जिसको मुहीत आदिमे रायून लिखा है, के नामसे 'रावद'का उल्लेख किया है। रेवास (रेवाज-रेवाज)के नामसे प्राचीन ईरानवासियोको भी यह औषधि ज्ञात थी। मुतरा अद्या-वधि ईरानके जीलान प्रातमे एक प्रकारकी रेवदको 'रेवास' कहते है। इब्नसीना (जीवनकाल सन्‌ ९७८ ई०)ने रेवास और रावद उभय प्रकारके उद्‌भिज्जोका उल्लेख किया है। इब्न मासविया (मृत्यु सन्‌ १०१५ ई०)ने 'रेवद-

चीनी' और रेवदखताईमें अन्तर किया। पिंजिश्किनामाके संकलयिता जनाव नाजिमुल्अतिब्बाके कथनानुसार प्राचीन कालमें बर्बरी लोग रेवदकी नकल किया करते थे, अतएव इसका लेटिन नाम र्हा वार्बारुम् Rha barbarum) अर्थात् 'बर्बरीरेवद' पड गया और ऊहापोह करनेसे फारसी सज्ञा 'रेवद'का भी यही अर्थ ज्ञात होता है। कारण 'रा'का अर्थ 'रेशा (जड)' और 'वद'का अर्थ बर्बरी (उजाडखण्डमें रहनेवाला) है। मानो र्हुबार्ब और रावंद नाम पडनेका कारण एक ही है।

सज्ञा विवरण—प्राचीन यूनानी चिकित्साविदोने 'र्हा Rha'के नामसे रावंदका उल्लेख किया है। 'र्हा' जिसको अधुना वोल्गा (Volga) कहते है, यूरूपीय रुसमे एक २२०० मील लम्बी नदी है। रेवदकी वेल इसके कूलोपर पुष्कल उत्पन्न होती थी, अतएक उक्त नामसे अभिधानित हुई।

'र्हुबार्ब' जिसका उच्चारण 'रुबर्ब' भी कहते है, र्हा बार्बरम् (Rha barberum)से, जिसका अर्थ 'बर्बरी तत्तु' है, व्युत्पन्न है। कतिपय अन्वेपकोका विचार है कि प्राचीनकालमे उत्तरी चीनसे बोखारामे रेवद लाई जाती थी और वहासे यह कदाचित् कालासागरके रास्ते यूरूपमे जाती थी अथवा सिंधु नदीके मार्गसे प्राचीन बदर बार्बरीक पर पहुँचती थी, अस्तु, जो रेवद कालासागरके रास्ते पहुँचती थी, वह र्हा पॉन्टिकुम (Rha ponticum) कहलाती थी, क्योकि (पान्टिकुम्का अर्थ कालासागर है) और जो बार्बरीक बदरपर पहुँचती थी उसको र्हाबार्बारुम् (Rha barbarum) अर्थात् 'रावदबर्बरी' कहते थे। अस्तु, र हुबार्ब (Rhubarb) सज्ञा इसी र्हाबार्बारुम् (Rhabarbarum)का परिवर्तित रूप है। और हाजा जीनुल्अत्तार रेवदको 'रेवास' ही मानता है। मिन्हाजके सकलयिता इब्नजज्ला कहता है कि रेवद दो प्रकारकी होती है—एक चीनी और दूसरी खुरासानी। सुतरा उत्तरकथितको रेवंददवाब कहते है। इस प्रकारकी रेवदका उपयोग पशु-चिकित्सामे होता है, और रेवदचीनीका मानुषी-चिकित्सामें। मख्जनुल्अदवियाके सकलनकर्ता हकीम मुहम्मद हुसेन 'जो स्वयं खुरासानका राजा है', रेवासके वर्णनमे इसकी जडको 'रावद (रेवद)' लिखता है (दे० मख्जनुल्अद्विया वर्णन 'रावद' और 'रेवास')। अबुरेहान भी रेवासकी जडको रावद कहता है। इसलामी चिकित्साशास्त्रियोने रावदके गुणकर्म वर्णन करनेमे जालीनूस, पॉलूस (Paulos), राजी, इब्नसीना और मसीहोका अनुकरण किया है। प्राचीन आर्य वैद्योने इस औषधिका वर्णन नही किया। अलबत्ता उत्तरकालीनोने इसलामी और यूरोपीय चिकित्साचार्योसे इसके गुणकर्म ज्ञात किये।

वर्णन—यह एक जड है, जिसके छिलका उतारे हुए लम्बे और गोल टुकडे या गोपुच्छाकार या सिलिंड्रिकाकृतिके बेडौल या एक तरफसे चपटे और दूसरी ओरसे उन्नतोदर टुकडे होते है, जिनपर पीले रगका चूर्ण छिडका हुआ होता है। बाहरी सतह साफ या किसी कदर झुर्रीदार जिस पर भूरे, लाल या पीले रगकी रेखाएँ और तारोके सदृश बिन्दु होते है। प्राय टुकडोमें छिद्र होते है, क्योकि वे डोरीमे पिरोकर सुखाये हुए होते है। ये टुकडे सख्त होते हैं और तोडनेपर टेढे टूटते हैं। गध विशेष प्रकारकी तीक्ष्ण, स्वाद किसी कदर कषाय एव तिक्त (कुस्वाद) मुखमें चबानेसे दाँतोमें कुरकुराहट प्रतीत होती है और थूक पीला हो जाता है। इसमे १ वर्ष तक वीर्य रहता है। इसे ममीरेके साथ रखना चाहिये। रेवदचीनीका रस निकालकर इतना पकाये कि गाढा हो जाय। इसे रेवदचीनीका शीरा (उसारा) कहते है। यह एक साल तक ठीक रहता है।

रासायनिक सगठन—विश्लेषण करने पर इसमे निम्न उपादान पाये जाते है। (१) क्राइसेरोबीन (Chrysarobin) जिसको र्हीईन (Rhein) (जौहर रेवद) और क्राइसोफेन भी कहते है। यह सत्व इसका प्रधान उपादान है। इसकी रगत और विरेचन कर्म इसी सत्वके आश्रयभूत है, (२) क्राइशोफैनिक एसिड जो ताजी जडमें नही पाई जाती प्रत्युत सुखानेमें क्राइसेरोबिन ऑक्सीजनको अभिशोषित करके क्राइसोफैनिक एसिड मे परिणत हो जाता है, (३) इमोडिन (Emodin), (४) र्हीओ टैनिक-एसिड, (५) ऑक्जेलेट ऑफ लाइम ३५ प्रतिशत। रेवदको चबानेसे दाँतोमें कुरकुराहट इसी उपादानके कारण होती है, (६) अन्यान्य उपादान, जैसे—र्हयुमिक ऐसिड, राल, पिष्ट (स्टार्च) प्रभृति उपादान होते है।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य, क्योकि विरेक लाती है और कब्ज भी पैदा करती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बहिः प्रयोगसे रेवदचीनी लेखन, मक्षोभजनन, विलयन और वेदनास्थापन कर्म करती तथा आतरिक प्रयोगसे फुपफुसोसे कफ निर्हरण करती, अल्प प्रमाणमें खिलानेसे अन्नामाशयको शक्ति देती, वायुका उत्सर्ग करती, कब्ज उत्पन्न करती और सम्पूर्ण शरीरको शक्ति प्रदान करती है। किन्तु अधिक प्रमाणमें उपयोग करनेसे पीले रगके पतले विरेक लाती और अन्तमे कब्ज करती है। यकृत्पर इसका बल्य एव उत्तेजक प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र एव आर्तवका प्रवर्तन करती है। यह प्रधानत पिच्छिल दोष-विरेचनीय है। झाईं, न्यच्छ(नमश), दद्रु और त्वचाके दाग-धब्बोको नष्ट करनेके लिए इसको सिरकामें पीसकर लेप करते है। कतिपय बहिराभ्यतरिक अगोकी सूजन उतारनेके लिए भी इसका लेप करते हैं। कास, श्वास और रक्तष्ठीवनमे इसका उपयोग कराते हैं। अन्नामाशयदौर्बल्य और उदरानाहको दूर करने तथा अतिसार बद करनेके लिए इसे अल्प प्रमाणमे खिलाते है। कामला, जलोदर, यकृच्छोथ, प्लीहाशोथ और चतुर्थक ज्वरमें विभिन्न प्रकारसे इसका उपयोग करते हैं। अजीर्णजन्य अतिसारमें इसे अधिक प्रमाणमे उपयोग करनेसे प्रथम खुलकर विरेक आ जाते हैं और तदुपरान्त कब्ज हो जाता है। बद्धमूत्रार्तवको नष्ट करने तथा बस्तिवृक्कशूल निवारणके लिए इसका चूर्ण या काढा सेवन करते है। अहितकर–निर्बल व्यक्तियोको इसका विरेचन अहितकर है। निवारण–बबूलका गोद, कतीरा, बिहीदानेका लबाव आदि। प्रतिनिधि–आमाशय और यकृत्के रोगोके लिए गुलाबका फूल। मात्रा–कब्ज आदिके लिए १२० मि० ग्रा०से ३६० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे ३ रत्ती) तक। विरेचनके लिए १ ५ ग्रामसे २ ग्राम (१½ माशेसे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—रेवतचीनी (रेवद चीनी) चरपरी, कडवी, बलकारक, मृदुरेची तथा अजीर्ण, अतिसार, मदाग्नि, अरुचि, विबध, शीतपित्त और दुष्ट व्रणको दूर करनेवाली है (शा०नि०भू०)।

नव्यमत—रेवदचीनी तिक्त, दीपन, अल्प (१-५ रत्ती) मात्रामें ग्राही यकृत् उत्तेजक और सारक है, बडी (७½-१५ रत्ती) मात्रामे रेचक है। थोडी मात्रामे देनेसे लालारस और आमाशयरस बढता है, भूख लगती है, अन्न पचता है और यकृतको उत्तेजन मिलनेसे पित्तका उद्रेक ठीक होता है। छोटी मात्रामें देनेसे इसका गुण स्पष्ट देखनेमे आता है। बडी मात्रामें देनेसे विरेक् होते है। इससे बडी आँतोकी गति बढकर छ-आठ घण्टोमें विरेचन होने लगता है और पेटमे मरोट होते हैं, विरेचन होनेके पश्चात् इसकी ग्राही क्रिया आरम्भ होती है और विरेक अपनेआप बन्द हो जाता है। इससे मूत्रका रग गाढा (लाल) होता है। वातरक्त रोगीको विरेचनके लिए रेवद-चीनी प्रशस्त औषध है। अर्शके रोगीको रेवदचीनीके विरेचनसे लाभ होता है। छोटे बच्चोको पेटमे दूध न पचकर सडनेसे और अम्लता बढनेसे दस्त होते है। उक्त अवस्थामे रेवदचीनी देनेसे सडा हुआ दूध विरेक द्वारा निकल जाता है, अम्लता कम हो जाती है और विरेक अपनेआप बन्द हो जाते है। प्रथम विरेक लाकर, पीछेसे कब्ज करनेवाले दो औषध द्रव्य है–एक एरण्डतैल और दूसरा रेवदचीनी। परन्तु एरण्डतैल क्षारस्वभावी न होनेसे उससे पेटकी अम्लता नष्ट नही होती और रेवदचीनीसे अम्लता नष्ट होती है। रेवदचीनीका क्षारस्वभाव अल्प है, इसलिए इसके साथ थोडा शुद्ध सर्जिका क्षार (सोडा-बाई-कार्ब०) मिलाना चाहिए। रेवदचीनीसे पेटमें मरोड होती है, इसलिए इसके साथ सोठ (और सौफ) जैसे सुगधित द्रव्य मिलाने चाहिए। इसे जलमे पीसकर सूजनपर लगानेसे सूजन उतरती है।

रेवास या रेवाज—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे सर्द एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सशमन, तारत्यजनन (तल्तीफ़), शोधन (तस्फिया) और प्रतिविषघ्न इसके प्रधान कर्म हैं। उन्माद, विराग, दाह, ज्वरोकी तीव्रता, पित्तज वमन एव अतिसार, अर्श कामला और प्लेगजन्य विषमयताको इसका शर्बत नष्ट करता है (मु०आ०)।

(५३५) लटकू, लखोट

नाम—(हिं०) लटकू, लखोट ।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष बंगालमें पुष्कल होते है ।

वर्णन—आलूबोखारेके इतने बडे कँटीले एक वृक्षका फल, जो छोटे आलूबोखारेके बराबर होता है । इसका रग सफेदी लिए पीला और स्वाद कच्चेपर खट्टा तथा पकनेपर खटमिट्ठा हो जाता है । कतिपय फलोके भीतरसे तीन और कतिपयके भीतरसे चार दाने निकलते हैं, जो शरीफाके दानेके समान होते हैं । इन दानोके खानो (जोफ)-से पीले रगके नरम, लुआबदार बीज निकलते है । फल गुच्छोमें लगते हैं ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एव तर ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रधानतया रक्तोद्वेग और पित्तकी तीक्ष्णता (पित्तप्रकोप)को शमन करता, प्यासकी उग्रताको शान्त करता और वमन एव उत्क्लेशको नष्ट करता है । यह अन्य फलोकी भाँति खाया जाता है । पित्त प्रकृतिवालोके लिए और पैत्तिक रोगोमें लाभकारी हैं । इसका रस निकालकर शर्बत बनाया जाता हैं, जो गर्मीके ऋतुमें प्यास बुझाने और शरीरका उत्ताप शमन करनेके लिए उपयोगमे लाया जाता है । अहितकर—पित्त प्रकृतिको । निवारण—कालीमिर्च और लवण ।

(५३६) लटूकरी

फैमिली : रानुन्कुलासे (Family Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) लटूक(प)री, देवकाँडर, कडरी, जलधनियाँ, लटपुरिया, (यू०) बट्राखिओन Batrakhion, (अ०) कबीकज, कफुस्सबअ, (फा०) मूपक, करफस दश्ती, (स०) कांडीर (ध०नि०), (लै०) रानुन्कुलाटुस स्क्लेराटुस (**Ranunculatus scleratus L**), (अ०) वॉटर सेलरी (Water Celery) । वक्तव्य—इसके पौधे प्राय आर्द्र एव दलदली भूमिमे जलस्रोतके किनारोपर होते है, तथा आपातत देखनेमे हरा धनियाँके पौधो जैसे लगते है, जिससे इसको "जलधनियाँ" कहने लगे । किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि, गुणकर्ममें धनियाँसे इसका कोई सम्बन्ध नही है । हिन्दी नाम "कड़री" सम्भवत सस्कृत "कांडीर" या सस्कृत "काडोर" सम्भवत. इसके बोलचालकी भाषाके नाम "कडरी"पर आधारित प्रतीत हाता है । फारसी नाम "करफस दश्ती" एवं अग्रेजी "वॉटर सेलरी"में भी इस कल्पनाके अनुसरणका झलक मिलती है ।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष और बगालमें नदियोके किनारे, पेशावरके दलदली भागो और हिमालय-की गरम घाटियो, सिंध, वजीरिस्तान और श्याम आदि स्थानोमे उत्पन्न होती है ।

वर्णन—यह एक मसृण, ४५ सें० मी० (आध गज) तक ऊँचा वार्षिक क्षुद्र क्षुप है, जो साधारणतया नदियोके किनारे ग्रीष्म ऋतुमें उत्पन्न होता है । पत्र धनियेके पत्रकी भाँति कटावदार तथा फूल पीला और फल पिप्पलीकी भाँति होता है । इसके पत्र और टहनियोमे राईकी-सी झाल होती है ।

उपयुक्त अग—समस्त क्षुप ।

रासायनिक सगठन—इसके समस्त पौधामें उग्र वीर्यवान् सत्व होता है ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विस्फोटजनन। यह उभरी हुई गिलटी बैठानेकी अच्छी दवा है। अचार भी इसका पडता है। हस्तमैथुनीके शिश्नपर इसका लेप किया जाता है जिससे विस्फोट उत्पन्न होकर मलिन द्रव उत्सर्गित हो जाता है तथा इन्द्रीकी उत्तेजना एव शक्ति प्राप्त होती है। विस्फोटजनन औषधकी भाँति दद्रु, किलास, स्वाप (सुन्नबहरी) और आमवातमे भी इसका उपयोग करते है। प्लेगके प्रकोप कालमें कतिपय हकीम इसको कलाईपर बाँधते है। इससे विस्फोट उत्पन्न होकर असली गिलटीका जोर कम हो जाता है। कहते है कि फीलपाँवकी सूजनपर इसका लेप गुणकरी है।

•

(५३७, ५३८) लटोरा, लिटोरा (लिसोडा)

फैमिली : बोराजिनासे (Family Boraginaceae)

नाम—(१) बडा (हिं०) लसोडा, लिसोडा, लसोरा, लिसोरा, लसोढा, लिसोढा, लटोरा, लिटोरा, लसूडा, लभेडा, लभेरा, ब्योहार (मीरजापुर), (अ०) मुखीता (इ०वैं० ३/४), दिब्क, सफिस्ताँ, अत्वाउल् कल्बा, मोखातए कबीर, (फा०) सपिस्ताने कलाँ, सपिस्ताँ, सपिस्तान, (स०) बहुवार, श्लेष्मान्तक, श्लेष्मातक, कर्बुदार, शेलु, (ब०) बहुवार, (प०) लसूडा, (मा०) वडगूदा, ल्हेसवा, (म०) मोकर, (गु०) वडगूँदा, गूँदा, (सिंध) लेसूडो, (लै०) कॉर्डिआ आब्लीकुआ (**Cordia obliqua** Willd), (अ०) लार्ज सेबेस्टन प्लम (Large Sebestan Plum)। (२) छोटा (हिं०) छोटा लिसोडा, लटोरा, गोंदनी, गोदी, (अ०) सबिस्ताँ (इ०वैं०), मोखात, मोखीत, (फा०) सपि-(बि)स्ताँ, सगपिस्ताँ, सपिस्ताने खुर्द, (स०) भूशेलु, भूकर्बुदार, श्लेष्मातक, (गु०) गूदी, (द०) गोदनी, (लै०) कॉर्डिआ मीक्सा (**Cordia myxa** L), (अ०) स्माल सेबेस्टन प्लम (Small Sebestan plum)। वक्तव्य—'सपिस्ताँ' फारसी सगपिस्ताँ' (सग = सगेमादा अर्थात् कुतिया, पिस्तान = चूचुक) का सक्षिप्त रूप है। लिसोढेके फलोकी रूप-रेखा बहुत-कुछ कुतियाके चूचुककी रूप-रेखासे मिलती-जुलती है, अतएव यह स्वरूपवाचक अन्वर्थ सज्ञा है। 'सफिस्ताँ' फारसी 'सपिस्ताँ'से अरबी बनाया गया है। अरबी सज्ञा 'अत्वाउल्-कल्बा'का अर्थ भी (अत्वा = पिस्तान, कल्बा = कुतिया अर्थात् 'कुतिया चूचुक' (सगपिस्ताँ) है। मीरजापुरके जगलोमें स्थानिक लोग इसे 'ब्योहार' कहते है, जो सस्कृत सज्ञा बहुवार' से मिलता-जुलता है। संस्कृत संज्ञाएँ 'श्लेष्मान्तक' एव 'श्लेष्मातक 'गुणवाचक' है, जो लसोढेके कफनिस्सारक कर्मपर आधारित है। लेटिन नाम लसोढेके वृक्षका, तथा अग्रेजी नाम इसके फलका है। अरबी-फारसी सज्ञाएँ भी विशेषत फलपरक है। शेष भारतीय नाम वृक्ष एव फलके लिए सामान्य है। लेटिन नाम भी इसके फलके आकारपर रखा गया Cordia = तिर्यग् (हृदयाकार) प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, मिस्रसे कोचीन-चीन तक तथा आस्ट्रेलिया।

वर्णन—यह मझोले कदके वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो २ ५ सें०मी० से २ ७५ सें०मी० (१ इच या १$\frac{1}{10}$ इच) व्यासमे पुच्छाकर या दोनो ध्रुवोपर चपटा-अडाकर, कच्चा हरा किंतु पका पीला चमकीला, एकबीजी तथा चिपचिपी मज्जासे युक्त एव किंचित् मधुर लबाबदार होता है। सूखा लिसोढा (सपिस्ताँ) औषधमें प्रयुक्त होता है और प्राय सभी बाजारोमें मिलता है। यह स्याहीमायल और झुर्रीदार होता है। इसे जलमें भिगोनेसे लबाब पैदा होता है। लिसोढेकी पत्ती विभिन्न आकारकी प्राय चौडी लट्वाकार, गोलदन्तुर या लहरदार धारवाली, ७ ५ सें० मी० से १५ सें०मी० (३ से ६ इच) लबी, ५ सें०मी० से १० सें०मी० (२ से ४ इच) चौडी प्राय चिकनी और चर्मिल (Coriaceous) होती है। छाल सफेद या भूरी और अनुलब शिकनोसे युक्त होती है। छोटा लिसोढे (गोदनी)का वृक्ष लिसोढेके वृक्षकी अपेक्षया छोटा होता है। शेष सब अग प्राय समान होते है। फल अपेक्षाकृत छोटा-प्राय

छोटे जायफल या फालसेके बराबर, गोल, मसृण और किसी कदर गोपुच्छाकार होता है। कच्चा हरा और पका आलूबुखारेकी तरह लाल या पीला हो जाता है। गूदा बीज सहित लिसोढ़ेके समान पिच्छिल एवं मधुर होता है।

उपयुक्त अंग—फल, पत्र और छाल।

रासायनिक संगठन—फलके गूदेमें शर्करा, निर्यास तथा राख, छालमें कैथार्टिनके समान एक सत्व और २०% टैनिन होता है।

कल्प तथा योग—लऊक सपिस्ताँ (रायारत्नवरी), शर्बत सपिस्ताँ।

प्रकृति—समशीतोष्ण (अनुष्णाशीत) और प्रथम कक्षामें स्निग्ध। पका फल शीतवीर्य (भा०प्रा०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उर कण्ठमार्दवकर, कफनिःसारक, पित्तकी तीक्ष्णताका शमनकर्त्ता, फिसलानेवाला और प्रकृतिमार्दवकर है। विरेचन औषधियोंके साथ सम्मिलित करनेसे तज्जन्य तीक्ष्णता एवं सक्षोभका परिहार करता है। यह शुष्क कासमें विशेष गुणकारी है। पके हुए लिसोड़े अन्य फलोंकी भाँति खाए भी जाते हैं। इसके अतिरिक्त शुष्क कास, उष्ण प्रसेक और उर कण्ठके खरत्वको नष्ट करनेके लिए मुखमें रखकर उसका लवाब चूसते या फाण्ट कल्पना करके पिलाते हैं। रक्तज एवं पित्तज ज्वरों, सदाह मूत्र और उग्र तृष्णामें भी इसका उपयोग करते हैं। रक्त (नहृज्ज) और पेचिशमें अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ इसका फाट पिलाते हैं। संक्षोभजनन एवं तीक्ष्ण विरेचन औषधियोंके दोषपरिहार एवं उनके कर्मसौकर्यके लिए इसे उनमें डालते हैं। अहितकर-यकृद्दामाशयदौर्बल्यजनक है। निवारण—उन्नाव और गुलाबके पत्र। प्रतिनिधि—खतमी। मात्रा—९ दानेसे १५ दाने तक।

छोटा लिसोड़ा (गोदनी)—

प्रकृति—पकी गोदनी समशीतोष्ण और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध), कोंपल शीत और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गोदनीके गुणकर्म सपिस्ताँके समान है। विशेषकर यह श्लेष्मनिस्सारक एवं वाजीकर है। पकी गोदनीको दूसरे फलोंकी भाँति खाते हैं। यह उर मार्दवकर और कफनिःसारक है। इससे खाँसी एवं उर कण्ठके खरत्वमें उपकार होता है। गोदनीकी कोंपल और गुठली निकाला हुआ मुनक्का प्रत्येक एक-एक तोला जलमें पीस-छानकर एक माशा गेरूका चूर्ण मिलाकर अर्शोजात रक्त रोकनेके लिए पिलाते हैं। पकी गोदनीका लवाब निकालकर सम प्रमाण चीनी मिलाकर चाशनी करते हैं। फिर उसमें किंचित् बबूलके गोदका चूर्ण मिलाकर कासनिवारणके लिए चटाते हैं। शुक्र प्रमेह एवं शुक्रतारल्यमें सूखी गोदनीका चूर्ण बनाकर चटाते हैं। अहितकर—यकृदामाशयके लिए। निवारण—गुलाबकी पत्ती, उन्नाब और मिश्री। प्रतिनिधि—सपिस्ताँ। मात्रा—सूखी गोंदनीका चूर्ण ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—लिसोड़ा मधुर, कषाय, तिक्त, केशके लिए हितकर तथा कफ, पित्त और विषको दूर करनेवाला है। लिसोडेका फल विष्टम्भी, रूक्ष तथा पित्त, कफ और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। लिसोडेका पका हुआ फल मधुर, स्निग्ध, गुरु और शीतवीर्य है। (च० सू० अ० ४, भा० प्र०)।

नव्यमत—छाल संग्राहक और पौष्टिक तथा फल स्नहेन और संग्राहक है। कफको पतला करने और पेशाबकी जलन कम करनेके लिए तथा अतिसारमें फलका काढा देते हैं।

(५३९) लब्लाब

फैमिली : आरालिआसे (Family Araliaceae)

नाम—(हिं०) चाँदनी वेल, (यू०) कोस्सूस (Kossos), Elxine (D 4. 39); (अ०) ल(लि)बलाब, लबलाब कबीर, किसोस (यूनानीसे अरबीकृत-शैख), Kissos(Low इ० वै० 4 12), (फा०) लबलाब कलाँ; (बिहार) लबलाब, (प०, मुमा०) बाँदा, कटमोरा, (लै०) हेडेरा हेलिक्स (**Hedera helix L**), (अं०) आइवी (Ivy)।

वक्तव्य—'गुलचाँदनी' जो एक झाडीनुमा पौधा है, इससे भिन्न है। 'हब्बुल्मसाकीन' संज्ञाका आरोप सफेद फूल और बीजवाले भेदके लिए होता है। इसके 'काले' भेदका फूल नीला और बीज (पिलाई लिए) काला होता है। उक्त दोनो भेदोके पत्र लोबिएके पत्रके समान होते है। इनके पत्तो और शाखाओमें दूध होता है। बूअली-सीनाने इसका एक 'लाल' भेद भी लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, हिमालय पर ६,०००-१०,००० फुटकी ऊँचाई पर सर्वत्र, खसिया पर ४,०००-६,००० फुटकी ऊँचाई पर कही-कही उगता है।

वर्णन—एक वृक्षारोही लता, पत्र गहरा हरा, नीचेकी ओर अपेक्षाकृत पाडुर वर्ण, चर्मवत्, चमकीला, दीर्घवृन्तयुक्त, लगभग ४ से १० से० मी० (२-४ इच) चौडा और दीर्घ, केन्द्रसे फैलनेवाली सिराओसे युक्त (Radiate-veined), ३-४ त्रिकोणाकार खडयुक्त, ऊपरी पत्र लट्वाकार (Ovate) या अण्डाकार-भालाकार (Ovate-lanceolate), फल (Berries) लगभग मटराकार, पुष्प बाह्यकोषके किनारेके तुल्य अग्रपर एक मण्डलयुक्त, बीज २ या ३ (Ruminated), स्वाद तिक्त और उत्क्लेशकारक, गध मलने पर सुगधित और रालवत् (Resinous)।

उपयुक्त अग—पत्र और फल।

रासायनिक संगठन—१ किलोग्राम पत्रमे ० २२५ मिलीग्राम आर्सेनिक ऑक्साइड, लगभग १०% सैपोनिन (Saponin), हेड्रिन, फलो से हेलिक्सिन (Helixin) नामक ग्लूकोसाइड प्राप्त होता है।

प्रकृति—गरमी लिए हुए समिश्रवीर्य।

गुणकर्म तथा उपयोग—प्रमाथी, श्वयथुविलयन, सर और भेदन या विरेचन है। पकानेसे इसके प्रमाथी गुणकी वृद्धि होती है और रेचनीय शक्ति घट जाती है। इसका दूध लगानेसे बाल झड जाते है। इसके पत्तोसे सिर मलकर धोनेसे जूएँ मर जाती है। इसके रससे बाल काले हो जाते है। इसके ताजे पत्तोके लगानेसे बडे-बडे घाव अच्छे हो जाते है। आगसे जले हुए पर इसका लेप करनेसे उपकार होता है। इसके काढेसे सूजन उतर जाती है, दर्द और थकावट मिटती है। जोडोके उष्ण शोथ पर इसके पत्तोका रस लगानेसे बडा लाभ होता है। दूध सहित इसके पत्तोके लेपमे फोडोके मुँह हो जाते है। इसके पत्तोका रस कानमे टपकानेमें कर्णशूल आराम होता है और कर्णगत पिडिका जाती रहती है। इसके नस्यसे सिरदर्द आराम होता है। इसके रसमे बत्ती लतकर कानमें रखनेसे भी पीप साफ होती है। इसका काढा सिरकेके साथ कानमें टपकानेसे भी गरमीकी सूजन और सिरदर्द आराम होता है।

इसके सफेद भेद के ताजे पत्तोका रस पीनेसे सिर दर्द और उर फुफ्फुस रोगोमें बडा लाभ होता है, यकृत के अवरोधका उद्घाटन होता है, उष्णदोषोद्भूत शूल आराम होता है तथा विदग्ध पित्त एव पीत द्रव और विदग्ध जले हुए द्रव दस्तोके रास्ते निकल जाते है। इसके सेवनकी एक श्रेष्ठतर विधि यह है कि इसका १४ तोले रस लेकर उसमे ३½ तोलेके लगभग अमलतासका गूदा और ५ तोले खाँड तथा १¾ तोले बादामका तेल मिलाकर

पिलायें। १ माशा सक्रमूनिया मिलानेसे यह अधिक प्रभावकर हो जाता है। १०३ माशे इसके फूल अन्त्रक्षत मिटाते हैं। सिरकेके साथ इसके ताजे पत्तोका लेप प्लीहाशोथ मिटाता है। इसके काले भेदके लेपसे दुष्टव्रण भर जाते हैं और सूखे पत्तोको पीसकर बुरकनेसे वे सूख जाते हैं। इसे बालोपर लगानेसे वे काले होते हैं। यह उर शूल, खाँसी, प्लीहाशोथ, शूल, जीर्णज्वर और चातुर्थक ज्वरमें गुणकारक है। इसका ७ तोले रस ७ माशे गेरूके साथ प्रत्येक स्थानके रक्तस्राव को बंद करता है। इसका फलरहित (वन्ध्या) भेद नासादौर्गन्ध्यहर, आर्तवजनन, गर्भ-नाशक, लोमनाशक, जूँनाशक तथा कीटविषनाशक है। बुर्हानकातेअ के अनुसार कसूमके गोंदसे जूएँ मर जाती है। यह आर्तवजनन है। अहितकर—आमाशय, सिर, वस्ति और वातनाडियोको, काले भेदके अधिक सेवनसे विवेकका नाश होता और बल घटता है। निवारण—आमाशयके लिये इमली और शोफके लिए मिश्री और जैतूनका तेल। प्रतिनिधि—खतमी, कासनीपत्र और शाहतरा। मात्रा—पत्रस्वरस २३ से ८३ तोले तक मिश्रीके साथ और बिना पकाये (मिन्हाज के रचयिता)।

नव्यमत—(पत्र और फल) उत्तेजक, स्वेदजनन और विरेचन। ग्रन्थिवृद्धि (Glandular enlargement), मदरोहीव्रण (Indolent ulcer), विद्रधि, घाव आदिमें सेक या उपनाह (पुल्टिस)की भाँति इसकी पत्तियोका बाह्य प्रयोग होता है। फल रेचक है तथा ज्वरके विकारोमें लाभकारी पाये गये है। लंदनमे जब प्लेगकी महामारी फैली थी, उस समय इनका सिरका बनाकर बडे पैमाने पर प्रयोग किया गया था।

●

(५४०) लबलाबभेद

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०, बं०) दुधिया कलमी, चाँदनी, (अ०) हब्बुलमसाकीन, (स०) चन्द्रकान्ति, (बम्ब०) गुलचाँदनी; (ले०) कोलोनीक्टिओन आकूलीआटुम् (**Colonyction aculeatum** Hax), ईपोमेआ बोनानॉक्स **Ipomoea bona-nox** (**I bona nox** Boj var **grandiflora**), (अं०) मून फ्लावर (Moon-flower)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—कौडेनाकी जातिकी एक शृंगारमयी (Ornamental) या सुंदर लता जो न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षमें लगाई हुई मिलती है। उत्तरी दुनियाँमें इसकी अन्य लताएँ भी पायी जाती है। इसके फूल बडे-बडे सुगंधयुक्त, श्वेत और केवल रातमें खिलनेवाले होते हैं।

रासायनिक संगठन—इससे उद्यास या राल जैसा एक पदार्थ निकाला जाता है। यह उद्यास जैसा पदार्थ कदाचित् 'लादन' है। (दे० 'लादन')।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके कच्चे बीजोको खाया जाता है। सर्पविषमें बीज उपयोगी माने जाते है।

●

(५४१) लहसुन

फ़ैमिली लीलिआसे (Family Liliaceae)

नाम—(हिं०) लहसुन, लसुन, (यू०) स्कोर्डोन Skordon (अरबी रूपांतर 'स्कूर्दून'), आग्लिडिओन Aglidion इसका अरबीरूपांतर (अग्लिदियून), (अ०) सूम, फूम, (फा०) सीर, (स०) लशुन, रसोन, (क०) रोहन, (कु०) आलण, (मा०) लहसण, लहकुल, (प०, सिं०) थूम, (द०) लस्सन, लसन, (ब०) रशुन, (म०) लसूण, (गु०) लसण, डुमरी;

(ले०) आल्लिडम् साटीवुम् (**Allium sativum** L), (अ०) गार्लिक (Garlic)। वक्तव्य—लशुनमें अम्ल रसको छोडकर शेप पाँच रस विद्यमान हैं, इसलिए सस्कृतमे इसको 'रसोन' एक रसकी कमीवाला कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध कद है। पत्र प्याजके पत्रके समान, किंतु उनसे बहुत छोटे एव पतले होते हैं। कद प्याजके समान गोल गाँठके रूपमें, तीक्ष्ण और उग्रगधवाला होता है। इसकी गाँठ चारो ओर एक पक्तिमें गुछी हुई फाकोसे बनी होती है, जिन्हें 'जवा' कहते हैं। लहसुनकी एक जाति और है, जिसकी जड छोटे प्याजके समान केवल एकपोथी (एकपुतिया या एकदाना) होती है। इसको एकपोथिया लहसुन, अग्रेजी और लेटिनमें क्रमशः वनक्लोव गार्लिक (One-clove garlic) या शैलट (Shallot) अथवा एस्कैलॉट (Eschallot) और आल्लिउम् आस्कालोनिकुम् (**Allium ascalonicum** Linn) कहते हैं। जगली लहसुनके लिये दे० 'उस्कूर्दियून'।

उपयुक्त अग—कद और पत्र।

रासायनिक सगठन—लहसुनमे पिष्ट (स्टार्च), गोद, ऐल्ब्युमिन, शर्करा और एक विशेप दुर्गन्धित स्वच्छ (पारदर्शक), गहरे भूरे या पीले रगका उत्पत् तेल होता है। शुद्ध करने पर यह वेरग हो जाता है। लहसुनके गुण-कर्म इसी तैलके ऊपर निर्भर होते हैं। इसकी गध लहसुनकी-सी एव बडी खराब होती है। इस तेलमें रासायनिक दृष्टिसे ऐलिल, प्रोपिलडाइसल्फाइड, डाइएलिल डाइसल्फाइड (Allyl, Propyl disulphide, Diallyldi sulphide) तथा गधकके अन्य यौगिक होते हैं। इस तैलका गन्ध बहुत अप्रिय होता है और यही लहसुनका वडा भारी दोष है।

कल्प तथा योग—माजून सीर, माजून सीर, ऊबली खाँ।

प्रकृति—मलभूत द्रव सहित तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेद मतानुसार उष्णवीर्य एव स्निग्ध है (च०, सु०)।

गुण-कर्म—लहसुन बाह्यत लेखन विलयन (मुहल्लिल) और व्रणकारक है। आतरिक उपयोगसे यह उष्णताजनन (मुसख्खिन वदन), सर, साद्रदोषछेदनीय और श्लेष्मिनि सारक है। यह आमाशयिक द्रवोको सुखाकर आमाशयको शक्ति देता और वायुका उत्सर्ग करता है। मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता, पसीना लाता और वाजीकरण करता है। उपयोग—यह कफज एव वातज रोगोमे विशेष गुणकारी बताया जाता है और आहारमे मसालेकी भाँति प्रयुक्त किया जाता है। इसको बारीक पीसकर फोडे-फुसियोमें लेप करते हैं। यदि अभी उनमें पीव न पडी हो तो उनको बिलीन कर देता है। यदि पीव पड चुकी हो, तो उनको फोड देता है। इसके अतिरिक्त लहसुनको अकेला या उपयुक्त औषधियोके साथ तिलके तेलमे पकाकर आमवात तथा शीतजन्य वेदनाओमे इस तेलकी मालिश करते हैं। झाईं, किलास एव दद्रु पर इसे नौसादरके साथ लगाते हैं। समस्त कफज एव वातज व्याधियो, जैसे-पक्षवध, अर्दित, कम्पवात, आमवात, गृध्रसी, कटिशूल, कास, श्वास और जीर्णज्वरोमें इसे खिलाते हैं। माजून सीर इसका प्रसिद्ध योग है। यह उक्त प्रकारके रोगो, नाडीदौर्बल्य और कामावसादमे उपयोग किया जाता है। इसमे अगदीय वीर्य भी है। अतएव यात्राकालमें इसका उपयोग करनेसे विभिन्न प्रकारके जलसेवनसे होनेवाला दोष दूर हो जाता है। इसी प्रकार महामारीके प्रकोपकालमे इसका सेवन मरकवायुके विकारसे सुरक्षित रखता है तथा विषका शोषण करता और वेदनाको शात करता है। अहितकर-गर्भवती स्त्रियोको। निवारण-बादामका तेल, सूखा धनियाँ, नमक और पानीमे पकालेना। प्रतिनिधि-जगली लहसुन। मात्रा-२-३ ग्राम (२-३ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—लहसुन कटु, मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, पिच्छिल, सर, बल्य, वृष्य, मेध्य, स्वर्य और नेत्रकी ज्योतिको बढानेवाला तथा भग्न अस्थिका सन्धान करनेवाला एव ज्वर, उदरशूल, विबन्ध, कास, अरुचि, राजयक्ष्मा, अर्श, अग्निमान्द्य और श्वासको मिटानेवाला है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६)। काश्यप-

संहिताके कल्पस्थानमें लशुनकल्प नामक स्वतन्त्र अध्याय है जिसमे लशुनके सम्पूर्ण गुणोका विवरण बडे विस्तारके साथ किया गया है। उन गुणोका परिशीलन करनेसे यह स्पष्ट होता है कि काश्यपके अनुसार लशुनका सबसे श्रेष्ठ गुण प्रजास्थापन या गर्भास्थापन है (उत्तर ४९)। अष्टागसंग्रहमे भी इस गुणका उल्लेख लशुनकल्पके अन्तमें किया है। प्रजास्थापनके साथ लशुनको वृष्य और वाजीकर भी बताया है। अष्टागसग्रह उत्तर ४९ मे वाग्भट्टने भी इसे एक श्रेष्ठ प्रकारका रसायन माना है। काश्यपने भी इसे रसायन माना है। यह अग्निदीपक, वातानुलोमन, सन्धि-वातनाशक और कफनिस्सारक है। पित्तावृत और रक्तावृत वायुको छोडकर अन्य सब आवरणयुक्त या शुद्ध वायुके लिए लशुन परमौषध है। (दे० अष्टागहृदय उत्तर ४९)।

नव्यमत—लहसुन उष्ण, लघु, दीपन, वातनाशक, कृमिघ्न, उत्तेजक, कफघ्न, कोथप्रशमन, मूत्रजनन और बल्य है। लहसुनका तेल त्वचा, फुफ्फुस और मूत्रपिण्डद्वारा उत्सर्जित होता है। इससे श्वासनलिकाका कफ शिथिल होकर सरलतासे निकलने लगता है तथा कफकी दुर्गन्ध कम होती है और रोगजन्तुओका नाश होता है। नाडीव्यूहपर इसकी प्रवल उत्तेजक क्रिया होती है। गृध्रसी, पृष्ठग्रह, अर्दित, पक्षवध, एकागरोग, ऊरुस्तम्भ, सन्धिवात आदि वातरोगोमे लहसुनका क्षीरपाक करके देते है और लेप करते है। लेप अधिक समय तक नही रखना चाहिए, क्योकि इससे शरीर पर फोडा हो जाता है। हृद्रोगोमें लहसुन देनेसे उदराध्मान कम होकर हृदयपरका दबाव कम होता है तथा हृदयको शक्ति मिलती है और मूत्र छूटने लगता है। आधुनिक दृष्टिसे लशुनमे कृमि तथा जीवाणुओके नाश करनेका उपसर्गनाशक गुण भी है। इसलिए लशुन, श्वास, कास, राजयक्ष्मा, फुफ्फुस, विद्रधि आदि फुफ्फुसके रोगोमें बहुत लाभदायक होता है। इसका उपयोग टिंकचर, सिरप तथा कई पेटेट औषधिके रूपमें पाश्चात्यवैद्यकमे किया जाता है। किसी-किसीने इसे रक्तचापहर भी लिखा है। एक पोथी लहसुन सेवन करनेसे रक्तवाही नाडियोम मार्दव उत्पन्न होता है तथा पाचनशक्ति बढती एव हृदयकी गति सम और प्रसादयुक्त होने लगती है और रक्तचाप धीरे-धीरे स्वाभाविक होता जाता है।

●

(५४२) लादन

नाम—(यू०) Ladanon (D 1 128), (अ०) अल्लादन, लाजन (इ० बैं०), (फा०) लादन, (लै०) लाडानुम् Ladanum (Labdanum)। वक्तव्य—मख्जनुल् अद्वियामे लिखित लादन डीमकोक्त 'लाडानुम्' ही है।

वर्णन और भेद—बडे लबलाब या उसके एक भेदके पौधेपर स्रवित एव शुष्क होकर लगा हुआ एक द्रव है। इसके यह दो भेद है—(१) पौधेकी पेडी और पत्तोसे प्राप्त या सग्रहीत द्रव जो शुद्ध, अत्युत्तम और सुगंधित होता है। इसको लादन अंबरी कहते है। (२) उक्त पौधेको चरते समय बकरी या भेडोके बालोमें लगे हुए द्रवको छुडानेसे प्राप्त द्रव्य। यह निकृष्ट है। विशेषत वह जो उनके खुरो (सुमो)से छुडाया जाता है, अत्यन्त खराब होता है। इसमें रेत और मिट्टी मिली होती है। किब्रिस द्वीपसे लाया हुआ, सुगन्धित, चिकना, ललाई लिए काला, अबरी शुद्ध एव भारी तथा जो हाथोपर मलनेसे नरम हो जाय, वह उत्तम है। जो पिलाई लिए हो शैख उसे उत्तम बतलाते हैं। यह इसकी खूबीमेसे है कि तेलमे डालनेपर पूरा-पूरा घुल जाय और कुछ भी तलछट शेष न रह जाय। काला भेद अग्राह्य है। गजबादावर्दके अनुसार शुद्ध लादनके निम्न लक्षण है—नरम, स्वादमें फीका, जिसमे थोडा कसाव (कब्ज) हो, हलका हो, चाबनेसे दाँतोके नीचे कर्कशता (खुशूनत) नही पाया जाय और न तलछट रहे, उसे शुद्ध समझना चाहिए। मिश्रणयुक्त (खोटा) इसके विपरीत होता है।

(५४४) लु(लो)काट

फैमिली : रोजासे (Family Rosaceae)

नाम—(हि०) लुकाट, लोकाट; (बं०) लोगाट, (मरा०) [illegible], (ता०) नोकोट्टू, (ले०) एरिओबोट्रिया जापोनिका (Eriobotrya japonica Lindl.) (अं०) दी लोकाट (The Loquat), चायनीज या जापान मेडलर (Chinese or Japan Medlar), जापान क्विन्स (Japan Quince)।

उत्पत्तिस्थान—चीन और जापान। [illegible] भारतवर्षमें ५,००० फुटकी ऊंचाईपर इसके वृक्ष बगीचोंमें लगाए जाते हैं।

वर्णन—एक सदाहरित फल जिसके वृक्ष प्रायः भारतवर्षमें हो जाते हैं। वृक्ष करीब आम या अमरूदके वृक्ष जितने बड़े होते हैं। पत्ते महुवेके पत्तोंके समान और लम्बे, [illegible], फूल और फल गुच्छोंमें लगते हैं। कच्चा फल हरा और रोएंदार स्वाद खट्टा होता है। किन्तु पकनेपर पीला और मधुर मीठा हो जाता है। यह कबूतरके अण्डेसे लेकर मुर्गीके अण्डेके बराबर और स्वादमें अम्लमिश्र होता है। इसके भीतरसे कत्थई लिए लाल तीन-चार चिकने बीज निकलते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, फूल और पत्र।

रासायनिक संगठन—इसके फलमें प्रधान उपादान यह हैं—लेवुलोज(Laevulose), इक्षुशर्करा (सुक्रोज Sucrose) और मैलिक एसिड (Malic acid), अपक्व फलके छिलके और बीजमें बादाममें पाया जानेवाला प्रधान तत्त्व एमिग्डेलिन (Amygdalin) तथा पत्रमें ऐस्कार्बिक एसिड ऑक्सिडेज (Ascorbic acid oxidase) और विटामिन 'B' होता है।

प्रकृति—(यूनानीमतसे) फल सर्द एवं खुश्क, किन्तु मतान्तरसे सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फल पित्तनाशक एवं स्नायविक उत्तेजना (हिद्दते खून)का हारक अर्थात् संशमन (Sedative), मनःप्रसादकर, शीतल (आमाशय बलदायक) और संग्राही है। फूल कफोत्सारि है। यह पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता है। अतएव पैत्तिक रोगोंमें इससे लाभ होता है। यह पित्तज उत्क्लेश और वमनको शान्त करता है। पैत्तिक ज्वरोंमें इसे खिलाना और इसका स्वरस या उससे बनाया हुआ शर्बत पिलानेसे उपकार होता है। मन प्रसादकर होनेसे, हृद्रोग जैसे [illegible] हृत्स्पन्दन और हृदयदौर्बल्यमें इसका उपयोग करते हैं। संग्राही होनेसे यह पैत्तिक अतिसारमें लाभदायक है तथा आमाशय और अन्त्रको शक्ति प्रदान करता है। यह प्यास बुझाता है। मन प्रसादकर और पैत्तिक रोगोंमें गुणकारी होना इसके प्रधान गुण-कर्म है। अतिसारमें पत्तियोंका फाण्ट गुणदायक है। अहितकर—वातजनक है। प्रतिनिधि—[illegible]। मात्रा—(फल) ५–१० दाने तक और इसका स्वरस ५–७ तोले तक।

•

(५४५) लुफ़ाह, यब्रूज, बेलाडोना

फैमिली : सोलानासे (Family . Solanaceae)

वक्तव्य—बेलाडोनाका विवरण करनेसे पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि फैमिली सोलानासे (काकमाचीकुल)का जिसमें बेलाडोना भी सम्मिलित है, औषधीय वनस्पतियोंकी दृष्टिसे यहांपर संक्षिप्त वर्णनकर दिया

जाय। काकमाची-कुलमें अनेकानेक उद्भिज्ज समाविष्ट हैं। परन्तु इस कुलके वे उद्भिज्ज जिनका उपयोग चिकित्सामें किया जाता है, उनमेंसे कतिपय अत्यन्त विषयुक्त और स्वापजनन हैं, यथा—लुफ़ाह (बेलाडोना), यबरूज (मैंड्रागोरा), धतूरा (डाटूरा), खुरासानी अजवायन (हायोसायमस), तमाकू (टुबैको) आदि। परन्तु कतिपय अन्य भेद सविष नहीं केवल किसी भाँति स्वापजनन हैं, यथ.–फ़ाकनज (**Solanum vesicarium**), वन्यचमेली (यास्मीन बर्री) आदि। और तृतीय प्रकारके वे उद्भिज्ज हैं, जो आहारमे काम आते हैं, यथा–बैंगन, आलू, प्रभृति। इस कुलके सविष उद्भिज्ज यह तीन हैं (१) धतूर, (२) अजवायन खुरासानी, और (३) लुफ़ाह (बेलाडोना)। सुतरा इनमेंसे तृतीय अर्थात् लुफ़ह और उसके प्रसंगमें यब्रूजका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

संज्ञा विवरण—बेलाडोला (Belladonna) वास्तवमे लैटिन संज्ञा है, जो 'बेल्ला = सुन्दर' और डोन्ना = नारी'का यौगिक है। अस्तु, बेल्लाडोन्नाका अर्थ 'सुन्दरीनारी' है। परन्तु मिस्रवासियोने प्रथम शब्द बेल्लाका अर्थ सुन्दरके स्थानमे 'सौंदर्य' किया है। अस्तु, उन्होने बेल्लाडोन्ना संज्ञाका अर्थ 'नारीसौन्दर्य' किया है।

पुरातन कालमे ईसवी सन्‌को सोलहवी शतीतक इटलीदेशकी ललनाएँ अपने कपोलोको रक्तवर्ण (सुन्दर) बनानेके लिए उक्त उद्भिज्जके अर्क (परिस्रुत जल)से धोया करती थी, इसलिये इसका उक्त नाम पड गया और इसी आधार एव सम्बन्धके कारण अर्वाचीन अरबी वाङ्मयमे इस उद्भिज्जको हशीशउल्हमरत, हशीशुल्हुस्न या सनुल्हुस्न भी कहते हैं।

टिप्पणी (१)—मख्ज़नुल्अदविया और मुहीत आजम प्रभृति द्रव्यगुण विषयक ग्रन्थोमे लुफ़ाहके गुणकर्ममें यह भी लिखा है कि अर्ध दिरम लुफ़ाहबीजके पीनेमे कपोल ऐसे रक्तवर्ण हो जाते है जैसा अत्युष्ण स्नानागारमें स्नान करनेसे वे रक्तवर्ण होते हैं। बेलाडोनाका वैज्ञानिक नाम आट्रोपा बेलाडोना है और इस प्रजातिमें इन दो उद्भिज्जोका समावेश होता है —

(१) आट्रोपा बेलाडोना (**Atropa belladonna** Linn) अर्थात् नबात लुफ़ाहबर्री (वन्य लुफ़ाह) और (२) आट्रोपा मैन्ड्रागोरा (**A mandragora**) अर्थात् नबात यब्रूज (यबरूज)।

बेलाडोना संज्ञाके नामकरणका हेतु ऊपर दिया जा चुका है। अब 'आट्रोपा' और 'मैंड्रागोरा' संज्ञाओके नामकरणहेतुका विवेचन नीचे दिया जा रहा है—

'आट्रोपा' संज्ञा वास्तवमे 'एट्रोपॉज' था, जो एक यूनानी संज्ञा है, जिसका अर्थ 'काल' या 'मृत्यु' है। यह एक सविष उद्भिज्ज है। अतएव यूनानियोने इसको उक्त नामसे अभिधानित किया। 'मैंड्रागोरा' संज्ञाका अर्थ 'जीवधारियोंके लिए हानिकर' है।

टिप्पणी (२)–ईसवी सन्‌की सोलहवी और सत्रहवी शतीमें 'एट्रोपा'को 'स्ट्रिक्नोस्' भी कहते थे। प्राचीन यूनानी चिकित्सक भी 'यबरूज'को बेख लुफ़ाहबर्री लिखते है और लुफ़ाहको वन्य यबरूजफल कहते हैं। मानो इनके समीप भी यह उभय ओषधियाँ अभिन्न हैं। सुतरा पूर्व एव उत्तरकालीन चिकित्साचार्योंके शोधोसे ज्ञात हुआ कि बेलाडोना निःसन्देह यबरूजकी एक जाति या भेद है। मैन्ड्रागोराका सत 'मैंन्ड्रोगोरीन' बेलाडोनाके सत 'बेलाडोनीन' या 'एट्रोपीन (धत्तूरीन)' के सर्वथा समान होता है। मानो रासायनिक गुणोके विचारसे भी यह उभय ओषधियाँ सजातीय और गुणप्रभावमे समान है। अर्थात् एकही जातिके दो भेद मात्र और विदेशी हैं। यहाँ मैन्ड्रागोराके पर्याय और इसके आमयिक प्रयोगका संक्षिप्त इतिहास लिखकर तदनु बेलाडोनाका विशद वर्णन किया जायगा।

यबरूज (मेन्ड्रागोरा)

नाम—(हिं०) लछमना, लछमनी ?, (भा० बा०) यबरूज, (यू०) मैन्ड्रागोरोस Mandragoros (D 4 76), (अ०) यबरुज(ह), यबरुजु(हु)स्सनम्, बेखलुफाह, अस्तरज, (फा०) अस्तरग, शाहबीरक, मर्दुम गियाह, मिह्रे गियाह, सगशिक्न, वेख लुफाह बर्री, (लै०) आट्रोपा मैन्ड्रागोरा (**Atropa mandragora**), मैन्ड्रागोरा आफ्फीसिनारुम् (**Mandragora officinarum** Betro), (अ०) मैन्ड्रेक (Mandrake) ।

वक्तव्य—कतिपय आरब्य यूनानी चिकित्सा ग्रन्थो, यथा मख्जन एव मुहीत आदिमे इसको 'मन्द्रागोरस' लिखा है, जो यथार्थत मेन्ड्रागोरस है जिसका अर्थ 'हानिकर प्राणी' है ।

श्याममे 'शम्माम' और ईरानमे 'दस्तम्बू'को भी लुफाह कहते है । शम्माम और दस्तम्बू एक प्रकारका छोटा सा सुगन्धित खरबूजा है जिसकी प्रशसामें यह एक फारसी पद्य भी उल्लिखित है —

"यार दस्तम्बू बदस्तम दाद व दस्तमबू गिरफ्त ।
वा चे दस्तम्बू कि दस्तमबूए दस्ते ओ गिरफ्त ॥"

इतिहास—बुकरात कालसे लेकर रोम साम्राज्यकी प्रथम शती तक यूनानी चिकित्सक यबरूजका औषधरूपेण उपयोग करते थे । सुतरा कतिपय काल वे शल्यकर्म (जर्राही-ऑपरेशन)से पूर्व समोहनार्थ (यथा साम्प्रत क्लोरोफॉर्म और ईथर सुँघाकर मूच्छित करते है) उक्त औषधिका मूलत्वक् श्रेष्ठतर माना जाता था ।

उक्त ओषधिके दीसकूरीदूस और प्लाइनी लिखित गुणकर्म नि सन्देह बेलाडोनाके गुणकर्मके सदृश पाये जाते थे । यूनानी हकीम सावफरिस्तुस और दीसकूरीदूसने लिखा है कि उक्त औषधिके मूलका उपयोग प्रेमासक्ति या मोहनीकी भाँति भी करते थे, इसी हेतु फारसीमे भी इसकी एक सज्ञा 'मेहरे गियाह' है, जिसको (मेह्र = प्रेम) कतिपय ग्रथो यथा मख्जन एव मुहीत आदिमे 'मुहरेगियाह (मुहर = जहरमोहरा, सर्पमणि)' लिखा है ।

उक्त ओषधिके उत्पादनके विषयमे एक विचित्र भ्रम था । उन्होने लिखा है कि जो कोई उक्त ओषधिको उखाडता था वह मर जाता था । अतएव इसकी जडको उखाडनेके लिये वे ऐसा करते थे कि जडके आस-पासकी मिट्टी खोदकर और उसमे एक रस्सी बाँध देते थे और दूसरा सिरा एक कुत्तेकी गरदनमे बाँध देते थे तथा पुन उसको मारकर भगाते थे । इस प्रकार कुत्तेके बलपूर्वक दौडनेसे जड उखड आती थी, परन्तु कुत्ता मर जाता था । ईरानियोने भी इसीलिये इसका नाम 'सगशिकन (श्वघ्न)' रखा है । इसके विपरीत उत्तरकालीन विद्वान् इन बातोको केवल कथानक मानते हैं ।

फलत सावफरिस्तुस्के जीवनकालसे लेकर ईसवी सन्की पन्द्रहवी शती तक यूरोपमे एतद्विषयक भ्रम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होते गये । यहाँ तक कि फिर इसको ऐन्थ्रोपोमोरफोन (Anthropomorphon) अर्थात् मानवसदृश और सेमिहोमो (Semi-homo) अर्थात् ऊर्ध्वमानव सदृशके नामोसे अभिधानित किया गया । अतएव सुरियानी या अरबी संज्ञाएँ 'यब्रूज' जिसका अर्थ 'प्राणहीन मानव युगल' और फारसी अस्तरग ('अस्तरज' जिसका अरबी रूपान्तर है) जिसका अर्थ भी 'नर-नारी युग्म (जोडे)' हैं, या 'मर्दुमगियाह' यह इन्ही यूनानी एव लेटिन भ्रामक सज्ञाओके समानार्थी शब्द है ।

मध्ययुगमे यूरोपमे यह एक ऐन्द्रजालिक ओषधि या जादूकी ग्रथि समझी जाती थी । डॉक्टर परेराके कथनानुसार कतिपय इटेलियन कारीगर इसकी जड और अन्यान्य उद्भिज्ज मूलोके मानवी अर्थात् स्त्री-पुरुषके चित्र बनाकर प्रेमासक्ति (अमलियात हुब्ब)के लिए विक्रय किया करते थे । तात्पर्य यह कि ईसवी सन् की अठारहवी शती तक यूरोपके प्राय देशो, यथा—इग्लैड, जर्मनी, और फ्रासमे उक्त ओषधिविषयक ऐसे ही भ्रम चालू रहे ।

फार्माकोग्राफिया इंडिकाके संकलयिता डॉक्टर डाइमॉकके कथनानुसार यूनानियोंसे अरबो और उनसे ईरानियोने उक्त औषधिके वैद्यकीय एवं भ्रामक, उभय गुणोकी पूर्ण प्रतिलिपि की। हाजी जीनुल्अत्तार लिखते हैं, कि उनके कालमे अर्थात् सन् १३६८ में शीराजके गरमसीलकी सीमाओपर उक्त उद्भिज्ज उत्पन्न होता था। मुफ्रदात क़ानूनके भाष्यमें गाजरूनी लिखते हैं कि लुफाह् ईरानमें पुष्कल होता है।

●

लुफ़ाह्, यबरूज

फैमिली : सोलानासे (Family Solanaceae)

नाम—लुफाह् (यू०) स्ट्रिक्नोमेनिकोस (Strychnomanikos), (अ०) लुफा(फ्फा)ह्, यबरूज, लुफाह् बर्री, यबरूजुस्सनम, (फा०) शाबीरक (शाबीरज-अरबी), (ले०) आट्रोपा बेलाडोना (**Atropa belladonna** Linn), बेलाडोना (Belladonna), (अ०) डेड्ली नाइटशेड (Deadly-Nightshade), ड्वेल (Dwale), डेथ्स हर्ब (Death's herb), ग्रेट मोरेल (Great Morel)। वक्तव्य—यह उभय उद्भिज्ज एक ही प्रजातिके दो भेदमात्र है और विदेशी है। इसके देशमे होनेवाले भेदके नाम निम्नलिखित है—नाम-(हिं०,उ०) सग अगूर, (क०) मैतब्रद, झलाकफल, (प०) सूची, बनतमाकू, (व०) यबरूइ, (बम्ब०) गिरबूटी, (ले०) आट्रोपा आकूमिनाटा (**Atropa acuminata** Roxb), (अ०) इंडियन बेलाडाना (Indian Belladonna)। वक्तव्य-'नाइटशेड' और 'मोरल' आग्ल भाषामे 'काकमाची' को कहते है, जिसे फारसीमे 'ताजरेजी' या 'रोबा तुरबक', उर्दूमे 'मकोय' और पजाबीमें 'गाचमाच' कहते है। इस उद्भिज्जका भी समावेश काकमाची कुलमे होता है। यह कई प्रकारकी होती है। डॉ० फ्लकीजर स्वरचित ग्रन्थ फार्माकोग्राफियाके पृ० ४५६ पर बेलाडोनाके वर्णन प्रसगमें लिखते है कि सन् १५४२ ई० में जर्मनीके एक उद्भिज्जशास्त्रवेत्ता श्रीमान् ल्यूहार्डन्सने इनबुस्सालब मुनव्विम-निद्रल काकमाची (**Solanum somniferum**) के उद्भिज्ज बेलाडोनाका एक अत्युत्तम चित्र बनाया था आदि।

डॉ० डाइमॉक अपने ग्रथ फार्माकोग्राफिया ईडिकाकी सचिका २ के पृ० ५७२ पर ऐट्रोपा बेलाडोनाके वर्णनमें लिखते है कि यूनानी वैद्यकके आरब्य लेखकोने यूनानियोसे उनके विभिन्न प्रकारके 'स्ट्रिक्नोस' के, जो प्राचीन कालमें ऐट्रोपाका समानार्थी माना जाता था, गुणकर्मोकी केवल प्रतिलिपि कर लिया है और वे अर्थात् अरबवासी इनको काकमाचीके विविध भेद बतलाते है। काकमाची (इनबुस्सालब) अरबीमें नाइटशेड (Nightshade) का प्रजाति नाम है अर्थात् सभी प्रकारके मकोयके लिए बोला जाता है। फलत इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'इनबुस्सालब मुनव्विम' या 'मुखद्दिर' या मुजन्निन या 'इनबुस्सालब सियाह्' जिसके आभ्यन्तर प्रयोगको यूनानी वैद्योने सामान्यतया वर्जित किया है, वह बेलाडोना ही है।

जैसा कि ज्ञात हुआ कि, कतिपय सत्यान्वेषकोने इनबुस्सालब मुनव्विम एव मुखद्दिरको बेलाडोना माना है, वैसा ही इसके उपर्युक्त आग्ल सज्ञाओ डेड्ली नाइटशेड (इनबुस्सालब मुह्लिक) और 'ग्रेट मोरल' अर्थात् 'इनबुस्सालब कबीर'से भी यह प्रमाणित होता है। यद्यपि पजाब प्लान्ट्सके सकलयिता डॉ० स्टुवर्टके कथनानुसार पजाबमें यह स्वयजात होता है जिसे वहाँ 'सूची' कहते है और भौमकीटोको भगानेके लिए इसे जलाते या इसकी धूनी देते हैं, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय आर्य वैद्योने इसका कभी औषधमे उपयोग नही किया। अस्तु, सस्कृतके वैद्यकीय ग्रथोमे इसका उल्लेख किया गया नही मिलता।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर लुफाह् वेदनाहर एवं स्वापजनन है। यह त्वचाको रागयुक्त करती तथा उष्णशोथको विलीन करती है और स्वेद एव दुग्धकी उत्पत्तिको वन्द करती है। यह विशेषकर मूत्रजनन एवं दिलके घडकनको दूर करनेवाली है। आन्तरिक प्रयोगसे नाडियोकी सवेदना नष्ट करके सवेदनास्थापन कर्म करती है। अधिक प्रमाणमें खिलानेसे यह नशा (मद) लाती, प्रलाप उत्पन्न करती और अन्तमे तीव्र मूर्च्छा उत्पन्न करती है। आमवात, वातरक्त एवं समस्त वातज वेदनाओमे इसका लेप करते या उपयुक्त तेलमे मिलाकर मालिश करते है। विसर्प, वालतोड और वृषणशोथ जैसे उष्ण शोथोमे वेदना शमनार्थ तथा सूजन उतारनेके लिए इसका लेप करते है। अतिस्वेदको रोकने, स्त्रीस्तन्यको सुखाने और स्तन्यकी अधिकतासे होनेवाले शोथ–स्तनशोथ (वरमे पिस्तान)को नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करते है। व्यग, न्यच्छ (नमश), और किलासपर इसका पतला लेप करते है। नेत्रगत शूल एव शोथको नष्ट करनेके लिए तथा नेत्रस्रावको दूर करनेके लिए नेत्रके चतुर्दिक इसका लेप लगाते और नेत्रके भीतर आश्च्योतन करते हैं। प्राचीन कालमे शस्त्रकर्मके समय रोगीको मूर्च्छित (सम्मोहित) करनेके लिए लुफाह्की जडको मद्यके साथ मिलाते थे। किन्तु अधुना इसका उपयोग परित्यक्त हो गया है। कतिपय आतरिक अगोकी वेदना शमनार्थ इसे खिलाते है। योनिस्रावमें इसकी फलवर्ति योनिमे रखते है। स्वप्नदोष, पुरानी खाँसी और काली खाँसीमें इसे खिलाते है। पसीना रोकनेके लिए भी इसे देते है। अहितकर–शिर शूलकारक। निवारण–सिकजबीन और जुवारिश कमूनी। प्रतिनिधि–सेव। मात्रा–४ रत्ती से १ माशा तक (½ से ¼ रत्ती)। ७ माशे की मात्रामें प्राणनाशक है।

नव्यमत—वेलाडोना घातक विष है, परन्तु सावधानीसे और अत्यल्प प्रमाण (औषधीय मात्रा)मे उपयोग करनेसे उपयुक्त औषधि है। यह अवसादक, सकोचविकासप्रतिबन्धक, कासहर, श्वासहर, हृदयवल्य, नाडी शैथिल्यकर, तारकाविकासी, शोथहर, रक्तप्रतिवन्धक, ग्रन्थिस्रावस्तम्भन, मस्तिष्कावसादक, मूत्रजनन, स्तन्यनाशन, कडूघ्न, वेदनास्थापन और त्वचाको सुन्न करनेवाला है। फुफ्फुसके रोगोमे वेलाडोना परम गुणकारक है। श्वास, श्वासनलिकाशोथ और कुक्कुरकासमें इसे देते है। खाँसीमें कफ अधिक हो, खाँसनेकी शक्ति कम हो और हृदय अशक्त हो तव यह उत्तम औषधि है। इससे शरीरके वहुतसे रस कम होते है। मस्तिष्कके रोगोमें और सगर्भावस्थामे लालास्राव अधिक होता हो तव इसे देते हैं। क्षयमें और अन्य कई ज्वरोमे पसीना बहुत होता हो तव इसे अकेला या यशद भस्मके साथ देते हैं। दूध वन्द करनेके लिये भी इसे देते है। इससे दूध बन्द होता है और स्तनमें आई हुई सूजन भी उतरती है। आमाशयमें अम्लरस अधिक उत्पन्न होता हो तव इसे देते है। पुराने कब्जमें इसे एलुआके साथ देते हैं। मूत्रमार्गसे निकलते समय यह मूत्रका प्रमाण वढाता है। केवल मूत्रजनन कर्मके लिए इसका प्रयोग नही होता। परन्तु अन्य उपयुक्त द्रव्योके साथ इसे देनेसे मूत्र मार्गका पीडा और सकोच विकास, दु खदायक शिश्नस्तब्धता, स्वप्नमें शुक्रस्राव (स्वप्नदोष), मूत्रावरोध, शय्यामूत्र, वस्तिशोथ और कफमेह इन रोगोमे इसका प्रयोग करते है। इसे मधुमे पीसकर लेप करनेसे ज्ञान तन्तुओके छोरोपर इसकी क्रिया होकर उतने भाग सुन्न होकर पीडा कम होती है। इससे शोथकी विभिन्न अवस्थाओका जोर कम होता है। मूत्रोत्पत्ति कम होती है या होती ही नही। व्रणशोथ, ग्रथिशोथ, दूध भरनेसे उत्पन्न स्तनशोथ और सन्धिशोथमे इसका पूय रक्तप्रतिवन्धक धर्म अच्छा देखनेमे आता है। आमवात, सन्धिशोथ, वातरक्त, विसर्प और सिराशोथमें इसका लेप करनेसे सूजन उतरती है और पीडा कम होती है। हृदयकी पीडा हृद्द्रव और हृदयके अनियमित स्पन्दनमे इसे देते हैं। यह अफीमका अगद (निवारण-उतार) है। इसके प्रयोगसे आँखकी तारका (पुतली) विकसित होती है, जब पुतली वडी हो जाय तब इसका प्रयोग वन्द कर देना चाहिये।

•

(५४७) लोध पठानी

फ़ैमिली स्टीरासे (Family : Styraceae)

नाम—(हिं०) लोध (थारू); (प०) पठानी लोध, (स०) लो(रो)ध्र, शा(सा)वर, शावरक, (व०) लोध, (म०) लोध्र, (गु०) लोधर, पठाणी लोधर, (को०) लुदम्, (सथा०) लोदम्, (कु०) लोधिया, (मा०) लोद, (लै०) सीम्प्लोकास रासेमोसा (Symplocas racemosa Roxb), (अ०) दी लोध (The Lodh)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्षके मैदान व जगल, बगाल, आसाम तथा ब्रह्माकी नीची पहाडियोपर और छोटा नागपुरके शुष्क वनोमें समुद्रके धरातलसे २५०० फुटसे अधिक ऊँचाईपर इसके वृक्ष होते है।

वर्णन—यह एक छोटे वृक्षकी प्रसिद्ध छाल है जो औषधके काममें ली जाती है और प्राय बाजारोमें मिलती है। यह भीतर और बाहरसे सफेदी लिए लाल या कृष्णाभ श्वेत और खुरदरी होती है। स्वाद कषाय होता है। काट (Blaze) १/२ इञ्च तक मोटा, रेशेदार, हलका पीला, परन्तु हलके नारगी भूरे रगकी रेखाओंसे युक्त होता है। इसकी दूसरी जाति सीम्प्लोकॉस क्राटेगॉइडेस (S crataegoides Ham.)की छाल हलके सफेद रगकी तथा कार्कयुक्त होती है। उसपर खडी नालियाँ रहती है। इसकी त्वचाका काट भी पहली जातिके वृक्षकी छालके काट इतना मोटा, हलका, पीला व रेशेदार होता है। इसके वृक्ष जौनसार और बाहरी हिमालयमें ३ से ९ हजार फुटके बीच (चकराता और देवबन) पाये जाते है। बाजारमें जो लोधकी छाल आती है वह इन वृक्षोकी छालोसे भिन्न मालूम होती है। सभवत पश्चिमी पहाडी देशोमे जहाँसे यह छाल आती है, ये ही वृक्ष ऊँचाई, मोटाई आदिमे कुछ भिन्नता रखते है। (व० दर्ग०, वि० व०)।

वक्तव्य—चरक और सुश्रुत दोनोके मतसे लोध और सावरलोध दोनो ही ग्राही और स्तम्भन है तथा तिल्वक इनके विपरीत विरेचन है। अत 'तिल्वक' और 'लोध्र' एक वस्तु नही है।

रासायनिक सगठन—इसमे यह तीन क्षारोद होते है-(१) लोटूरीन ० २४ प्रतिशत, (२) कोलोटरीन ० ०२ प्रतिशत और (३) लोटूरिडीन ० ०६ प्रतिशत। इनके अतिरिक्त इसमें विपुल प्रमाणमे एक रक्तरजन द्रव्य और छालकी राखमे १८ प्रतिशत सज्जीखार (Carbonate of Soda), परन्तु कषाय द्रव्य (Tannin)का अभाव होता है।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे भी शीतवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ततुसग्राहक, वीर्यपुष्टिकर और नेत्ररोगोमे उपादेय है। लोध अधिकतया नेत्राभिष्यदमे वेदनाशमनार्थ उपयोग की जाती है। सुतरा नेत्रके चतुर्दिक् इसका लेप किया जाता है तथा इसको अन्य औषधियोके साथ पोटलीमे बाँधकर जल या अर्कमे भिगोकर नेत्रके ऊपर फिराते है। सग्राही होनेके कारण आर्तवशोणित, रक्तातिसार, अर्शोजन्य अतिसार, विट्मूत्र, मूजाक और योनिस्रावमे हितकर है। सग्राही होनेसे शुक्राशयको शक्ति देती है। अतएव शुक्रमेह एव वाजीकरणके लिए यह माजूनो और चूर्णोमे डाली जाती है तथा गर्भाशयको शक्ति देनेके निमित्त भी सेवनकी जाती है। मजनोमे डालनेसे यह दाँतोको मजबूत करती है। इसको महीन पीसकर कानमे डालनेसे कर्णस्राव आराम हो जाता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण—हरी कासनीके स्वरसका फाडा हुआ पानी। प्रतिनिधि—पीली हड। मात्रा—१से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—लोध कषाय, लघु, शीतवीर्य, ग्राही, सधानीय, शोणितस्थापन, चक्षुष्य तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, रक्तविकार, ज्वर, अतिसार और शोथका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, भा० प्र०)।

नव्यमत—लोध ग्राही, रक्तस्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न और व्रणरोपण है। इसकी मुख्य क्रिया छोटी रक्तवाहिनियोपर होती है और उनका सकोच होता है। इसलिए रक्तस्राव बन्द होकर सूजन उतरती है। लोध्रसे श्लेष्मल त्वचामें शक्ति आकर कफका उत्पन्न होना कम होता है। त्वचाके रोग (कुष्ठ) और व्रणमे लोधको खिलाते और उसका लेप करते है। आँखकी लाली और सूजन उतारनेके लिए आँखकी पलकपर इसका लेप करते है। अतिसार, रक्तातिसार और प्रवाहिकामें इसे देते है। श्वेतप्रदर और अत्यार्तव बहुत करके गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न होते है। लोधमें शिथिलता कम होती है और रक्तवाहिनियोका सकोच होता है। इसलिए उक्त दोनो रोगोमे इससे लाभ होता है। सगर्भावस्थामें सातवें-आठवें मासमें गर्भका विशेष चलन होता है। उस समय इसे मधुके साथ देते हैं। इससे गर्भाशयकी शिथिलता कम होकर गर्भका चलन कम होता है। प्रसूतावस्थामे योनिमे क्षत होनेपर लोधका लेप करते है या लोधके काढेकी उत्तरवस्ति देते है। (ओ०म०)।

●

(५४८) लोबान

फ़ैमिली स्टीरासे (Family Styraceae)

नाम—(हिं०) लोवान, लोहवान, (अ०) अल्जावी, जावी, हसी लु(लो)वान, (फा०) हस्नलुव, (स०) देवधूप; (द०) ऊद; (बं०) लोवान, (प०,म०) लोवान, (म०क,) ऊद, (गु०) लोवान, साम्ब्राणी, (ब्रह्मा) लोवाँ, (लै०) वेन्जोइनुम् (Benjoinum); (अ०) वेन्जोइन (Benzoin), गम वेन्जामीन (Gum Benjamine) या गम वेन्जोइन (Gum Benzoin)।

वक्तव्य—इसका लैटिन नाम 'बेन्जोइनुम् (Benzoinum)', वस्तुत इसके इब्रानी (Hebrew) नाम 'बिनजावा (= जावाजात)'का अपभ्रश है। उक्त नाम इसके नैसर्गिक उद्भवस्थलका सकेत करता है। लोवानके वृक्ष जावा टापूमें अधिक होते है। इसी हेतु अरवीमे भी इसे जावी या अल्जावी कहते है। इसकी अँगरेजी सज्ञा 'वेन्जोइन' इसकी लेटिन सज्ञासे व्युत्पन्न है जो किंचित् परिवर्तित होकर वेन्जामिन बन गया।

इतिहास—डॉ० फ्लूकीजर लिखित फार्माकोग्राफिया और डॉ० डाइमॉक लिखित फार्माकाग्राफिया ईंडिका, इन ग्रन्थोके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि इस वातका कोई प्रमाण नही मिलता कि यूनानी या रूमी या प्राचीन आरव्य चिकित्सक उक्त द्रव्यसे अभिज्ञ थे और न प्राचीन भारतीय आर्यवैद्योको इस औषधिका ज्ञान था। ईसवी सन्की दसवीसे तेरहवी शती तक अरवी एव अजमी व्यापारी जो व्यापारका माल चीन ले जाते रहे है, उसमें लोवानका कही उल्लेख नही आया। परन्तु उसमें सुमात्राके कपूरका उल्लेख अवश्य है। यूरोपवासियोको इब्न-वतूताके पर्यटनवृत्तसे लोबानका ज्ञान हुआ जिसने सन् १३२६ ई० से १३४९ ई० पर्यन्त पूर्वी देशोकी यात्राकी और जावाद्वीपके विवरणमें लोवान और कपूरका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—जावा, सुमात्रा और स्याम। पेनागसे भारतवर्षमें इसका आयात होता है।

वर्णन—यह एक सुगन्धित राल (वाल्समिक रेजिन Balsamic resin) है, जो स्टीराक्स बेन्जोइन (**Styrax benzoin** Dryander) जिसे अरबीमे जिर्व और फारसीमें कमकाम कहते है और उसी जातिके विभिन्न वृक्षोकी छालमें त्रिकोणाकार चीरा देनेसे प्राप्त होती है। वायु लगनेसे यह जम जाती है। इसके अश्रुवत् दाने (Tears) या डलियाँ होती है, जो एक रालदार पदार्थद्वारा एक दूसरेसे चिपकी होती है। रग बाहरसे ललाई लिए भूरा और अन्दरसे दुधिया सफेद होता है। यह सहजमे टूट जाता या चूर्ण हो जाता है। उष्णतासे

पहले नरम हो जाता फिर जलने लगता है। स्वाद रुचिकर (मधुर) होता है। एक प्रकारके लोबानका रंग सफेद और ललाई लिए भूरा, दागदार या चितकबरा होता है। इसमें कोई खास स्वाद नही होता, तथा इसके बादामके आकारके कौड़ी-जैसे देखनेवाले टुकड़े होते है। यह सुमात्राका लोबान है जिसे अंगरेजीमें सुमात्रा बेंजोइन (Sumatra benzoin) कहते हैं। स्यामी लोबान (स्यामबेंजोइन)के दाने या डले चपटे या मुड़े हुए ललाई लिए भूरे होते है। इसके दाने छोटे-बड़े होते है। बड़ेसे बड़ा दाना ५ सें० मी० (२ इञ्च) लम्बा १.२५ सें० मी० (आध इञ्च) मोटा होता है। तोड़नेपर इसका रंग भीतरसे दूधके समान होता है। परन्तु सुमात्रा बेंजोइनके दाने अश्रुवत् होते है, जो परस्पर मिलकर डले बने होते है। उनका रंग सफेद और ललाई लिए दागदार या चितकबरा होता है। इसी प्रकारके लोबानको हिन्दीमें कौड़िया लोबान कहते है। आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सक इसी लोबानको अधिक उत्तम एवं श्रेयस्कर समझते है। परन्तु आधुनिक चिकित्सक स्यामीको वरीयता देते है। स्यामी लोबान स्टीरॉक्स टोंकिनेन्स (Styrax tonkinense Craib.) नामक वृक्षसे प्राप्त किया जाता है। इसकी गंध अमरीकोसनूबके समान होती है। परन्तु सुमात्रा या जावाके लोबानकी गंध सिलारस (Storax)के समान होती है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रंथोंमें लोबानका वर्णन नही मिलता।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अम्लस्वभावी सत्व (१२% से २०%) होता है, जिसको बेंजोइक एसिड (एसिडबेंजोइन– लोबानका फूल, सतलोबान) कहते है। स्यामके लोबानमें यह १५ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त सिन्नैमिक एसिड (Cinnamic acid–दालचीनीका फूल), वैनिलिन (Vanillin) आदि सत्व पाये जाते है।

कल्प तथा योग—जौहर लोबान, रोगन लोबान खास।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें रुक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—कोथप्रतिबन्धक, शोषणकर्ता, लेखन, यकृदुत्तेजक, कफनिस्सारक, वृक्करोग-नाशक, दीपन, वाजीकर, ज्वरघ्न– विशेषकर वाजीकर यथा द्रवयगुविलयन है। कोथप्रतिबन्धक होनेसे लोबान धूनियो (बखुरात) में उपयोग किया जाता है तथा व्रणरोपण मलहरोमें पड़ता है। शरीरकी त्वचाको स्वच्छ एवं सुवासित करनेके लिए अन्य ओषधियोके साथ इसका उबटन बनाकर मालिश किया जाता है। कफज रोगो, अर्दित, पक्षवध, वातरक्त, आमवात आदिमें यह पेय तथा लेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। कफष्ठीवन-निर्हरणकर्ता (श्लेष्मनिस्सारक) होनेके कारण पेय और आघ्राणरूपमें (शुमूरात् व दर्बत) इसका उपयोग किया जाता है। यह उरोव्याधियो, कफज कास और कृच्छ्रश्वासमे लाभ पहुँचाता है। इसका चूर्ण बनाकर पिलानेसे ज्वर नष्ट होता है। किसी उपयुक्त तेलमें मिलाकर कानमें टपकानेसे शीतल कर्णशूलको शमन करता है। वाजीकरणके निमित्त पेय और लेपके रूपमें प्रयुक्त किया जाता है। इसका सत्व (जौहर) प्रस्तुत करके भी उपयोग किया जाता है। यह लोबानकी अपेक्षया अधिक प्रभावकारक होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—रोगन बनफ्शा और काहू। प्रतिनिधि—मस्तगी और लादन। मात्रा—१ माशा तक। लोबानका सत (जौहर लोबान) १ रत्ती तक।

नव्यमत—लोबान पूतिहर, दुर्गन्धनाशक, त्वचाकी रक्तवाहिनियोको उत्तेजित करनेवाला, व्रणशोधन, व्रणरोपण, शोणितस्थापन, श्लेष्मघ्न, उत्तेजक, कफघ्न और मूत्रजनन है। पेटमें जाने पर लोबान श्वासनलिका द्वारा निःसारित होता है। पुष्कल गाढे और दुर्गन्धकफयुक्त जीर्ण श्वासनलिका शोथमें लोबानको बादाम और गोंदके साथ जलमें घोटकर देते है। इससे श्वासनलिकाकी श्लेष्मल त्वचामें शक्ति आकर कफकी उत्पत्ति कम होती है तथा उत्पन्न कफ शीघ्र निकलकर कास कम होता है। क्षय और दमामें इससे लाभ होता है। फुफ्फुसके समस्त रोगोमे इसका धुआँ लेनेसे लाभ होता है। इसके धुएँसे प्रतिश्याय, सिरका दर्द, गलेकी सूजन और श्लेष्मकज्वर (इन्फ्लुएन्जा) में लाभ होता है। आमाशयमें अन्नका विदाह, सूजाक और वस्तिशोथमें इसे देते है। इसका सुरासव (टिंक्चर बेंजोइन) ताजे घाव (सद्योव्रण) पर लगानेसे रक्तस्राव बंद होता है। इसके फूल उत्तम पूतिहर, स्वेदजनन,

ज्वरघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक, कफघ्न और चयापचय क्रियाको उत्तेजित करनेवाला है। यह त्वचासे निस्सरित होता है। उस समय पसीना आता है। फुफ्फुससे भी निस्सरित होता है। इसलिये कफघ्न है। जब वृक्कसे निःसारित होता है, तब मूत्रका प्रमाण बढता है और मूत्र अम्ल होता है। मात्रा—३ से ८ रत्ती मुलेठीके चूर्णके साथ देवे। जीर्णबस्तिशोथमे लोबानके फूल बहुत उपयोगी है। यह वृक्कसे मूत्राशयमें जानेपर उसकी शोधन और पूतिहर क्रिया आरम्भ होती है। इससे गाढे तथा क्षार और दुर्गन्धयुक्त मूत्रकी शुद्धि होती है। वृक्कशोथमें इससे लाभ होता है। पुराने सूजाकमें होनेवाले पेशावकी जलन इससे कम होती है। तीव्र और तरुण आमवातमें लोबानके फूल १५ रत्ती प्रमाणमे देनेसे वेतसाम्ल (सैलिसिलिक एसिड) जैसा गुण होता है। इसके साथ शुद्ध सर्जिकाक्षार (सोडा-बाई कार्ब०) मिलानेसे विशेष लाभ होता है।

•

(५४९) लोबिया

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) लोबिआ(या), रौसा, सोट, (अ०) फरीका, लोबा, (फा०) कजराज, (स०) राजमाष, (व०) बर्वटी, (म०) चवल्या, (गु०), चोला, (मा०) चवला, (लै०) विग्नाकाटिएन्ग (**Vigna catiang** Linn), **डोलीकोस काटिआग (Dolichos catiang** Linn), (अ०) काउ-पी (Cow pea), किड्नी बीन्स (Kidney-beans)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—यह एक प्रसिद्ध शिम्बी धान्य है जिसकी समस्त उष्णदेशोमे खेती की जाती है। यह एक बेलदार बूटी (सफेद और बडे बोडे) की फलियोके प्रसिद्ध बीज है जो सफेद और छोटेसे गुर्दे (वृक्क) की शक्लके होते है। इसके सिर पर काले रगका चिह्न होता है। इसका एक भेद लाल भी है जिसके दाने लाल होते है।

रासायनिक सगठन—मासवर्धक द्रव्य २४%, स्टार्च ५६%, तेल १%, राखमें १% फॉस्फोरिक अम्ल होता है।

प्रकृति—मलभूत द्रवयुक्त गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—लोबियासे पुष्टि प्राप्त होती है, किन्तु आनाहकारक एव दीर्घपाकी है। यह श्लेष्मनि सारक और मूत्रार्तवजनन तथा कामोत्तेजक, वाजीकरण, स्तन्यजनन, लेखन और श्वयथुविलयन तथा विशेषकर शुक्रल है।

उपयोग—लोबियाकी कोमल और नरम फलियाँ अकेली मासके साथ पकाकर खायी जाती है और पकी फलियोके बीजोकी दाल पकाकर खाते है। आर्तवजनन के लिए इसका क्वाथ करके पिलाते है। चेहरे का रग निखरने और सूजन उतारनेके लिए इसका लेप लगाते है। अहितकर—आनाहकारक एवं चिरपाकी। निवारण—दालचीनी, अदरक और कालीमिर्च। प्रतिनिधि—दूसरा भेद (लाल)। मात्रा—क्वाथ रूपमें १ तोला।

•

(५५०) लौंग

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family Myrtaceae)

नाम—(हिं०) लौंग, लोंग, (अ०) करन्फल, करन्फुल, (फा०) मेखक, (यू०) कारुओफुल्लोन (प्राचीन), केरियोफिल्लोन (उत्तरकालीन), (सं०) लवङ्ग, देवकुसुम, (द०) लवंग, (बं०; मं०, गु०) लवङ्ग, (गु०) लवीग, (क०) रुग, (मा०) लौंग, लूंगू, (ता०) किराम्बु, करुवाप्पु, (ते०) लवगपू, (मल०) कराम्पु, करयापूवु, (सिं०) कराम्बु, (लै०) केरिओफील्लुम् (Caryophyllum), (अं०) क्लोव्ज (Cloves)।

वक्तव्य—लौंगके वृक्षको लेटिनमें एउजेनिआ कारीओफील्लुस (**Eugenia caryophyllus** Spreng) कहते हैं। इसकी 'करन्फुल' अरबी संज्ञा इसकी तामिली संज्ञा 'करावू' या इसकी मलायी संज्ञा 'काराम्पु'से व्युत्पन्न है। इसकी यूनानी संज्ञा कोरोफुल्लोन संभवतः इसकी अरबी संज्ञा 'करन्फुल'से और इसकी वर्तमान लेटिन संज्ञा कारीओफील्लुम् इसकी यूनानी संज्ञासे व्युत्पन्न है।

इतिहास—प्रतीत होता है कि चीनवासियोको ईसवी सन्‌से २६६ वर्ष पूर्व इसका ज्ञान था। कारण उक्त-कालके राजदरबारके दरबारी फगफूर चीनराजके सम्मुख कुछ प्रार्थना करते समय अपने मुखमें कोई सुगंधित वस्तु रख लिया करते थे और वे प्रायः लौंगको ही मुखमें रखकर चबाया करते थे। यद्यपि यह ज्ञात नहीं कि भारतवर्षमें प्रथमवार इसे कब लाया गया था, तथापि चरकाचार्यने लवङ्गके नामसे उक्तद्रव्यका उल्लेख किया है और लगभग यही नाम अद्यावधि विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रचलित है। प्राचीन यूनानवासियोंको तो उक्त द्रव्यका ज्ञान नहीं था। परन्तु प्राचीन मिस्रवासी इससे पूर्णतया अभिज्ञ थे, क्योंकि इनकी एक अत्यन्त प्राचीन एवं पवित्र कब्रसे लौंग-का हार निकला था।

उत्पत्तिस्थान—पहले तो लौंग मलक्का टापुओंमें उत्पन्न होता था। किन्तु इसके बाद समीपवर्ती द्वीपोंमें बोया गया और अब जंजिबार, पेम्बा, पेनांग, मेडागास्कर, मलाबार, अफ्रीकाके समुद्रतट, मलाया, जावा आदिमें और थोड़े परिमाणमें मॉरीशस, दक्षिण भारत तथा लंका आदिमें भी इसकी खेती की जाती है। लौंगका आयात मुख्यतः जंजिबार और पेम्बाके टापुओंसे ही होता है।

वर्णन—लौंग एक सदाबहार झाड़की वृन्तयुक्त कली है जो खिलनेके पहले तोड़कर सुखा ली जाती है। बाजारमें मिलनेवाला लौंग अधिकतर हीनकोटिका होता है, क्योंकि उसमें से तेल निकाल लिया गया होता है अथवा वह बहुत पुराना होनेसे सशुष्कस्नेह होता है। जिसमें उग्र सुगन्ध हो, जो स्वादमें अतिशय तीक्ष्ण एवं झाल-दार हो, जिसे नखमें दबानेसे अन्दरसे तेल चुकचुका पड़े, वह औषधके कामके लिए उत्तम होता है। लौंग लगभग १.५ सें०मी० ($\frac{2}{3}$ इञ्च) लंबा और ललाई लिये होता है। जिसे हम लौंग कहते हैं, वह लौंगके वृक्षकी कलिका होती है, जो बाह्यदल नलिका (Calyx tube) के साथ मुग्दरके रूपरेखाकी होती है। मुण्ड अविकसित दलपत्रोंसे बनता है (जो संख्यामें ४ होते हैं)। इसके अन्दर अनेक पुंकेसर (Stamens) तथा एक स्त्रीकेसर (Style) होता है। जब पुष्प कलिकावस्थामें ही होता है तथा मांसल बाह्यदल नलिका और पुष्पाधार (Receptacle) गहरे गुलाबीरंग या लोहितवर्णका हो जाता है, तब इसे हाथसे चयन कर लेते हैं और छायाशुष्ककर विक्रयार्थ प्रेषित करते हैं। इस समय लौंग अधिकतम तैल पूर्ण होता है। अस्तु, यही इसके तोड़नेका उपयुक्त काल होता है।

इसमें एक उत्पत् तेल (रोगन करन्फुल) १८ प्रतिशत, केरियोफिलीन या यूजीनीन नामक एक कर्पूरवत् सत्व (करन्फलीन या लवंगीन—लवंग सत्व) नामक एक स्फटिकीय पदार्थ, एक कर्पूरवत् राल (जो शोरकाम्लकी सहायतासे केरियोफाइलिक यायुजीनिक अम्लमें परिवर्तनीय होता है) ६ प्रतिशत, कषायद्रव्य (गैलो-टैनिकअम्लमें परिवर्तनीय टैनिन), काष्ठ-तन्तु, निर्यास प्रभृति उपादान होते हैं। केरियोफायलीन रेशमी तारकाकार सूचिकाओंके रूपमें होता है।

लौगसे खीचे हुये तेलमे (१) यूजीनोल ८५ से ९२ प्रतिशत रसायनतः फेनोलवत्, (२) एसीटिल-यूजिनोल, (३) केरियोफायलीन (Caryophyllene) आदि उपादान होते है ।

कल्प तथा योग—अर्क लौग, नकूअ करन्फुल, रोगन करन्फुल, सफूफ लौगाद आदि ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क । आयुर्वेदमे शीतवीर्य (भा० प्र०) लिखा है ।

गुण-कर्म—बाहरी तौरपर लगानेसे यह श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक(मुहम्मिर), स्वापजनन और कोथप्रतिबधक है । आतरिकरूपसे उपयोग करनेसे सौमनस्यजनन, मस्तिष्कहृदयबलवर्धन, श्लेष्मनि सारक और आक्षेपहर है तथा अन्त्र, आमाशय और यकृत्को शक्ति प्रदान करता और वायुका उत्सर्ग करता तथा वाजीकर एव शुक्रस्तम्भन भी है । यह विशेषरूपसे वाजीकर, वातानुलोमन, पाचन और श्वयथुविलयन है ।

उपयोग—फोडे-फुसियोपर लौगका लेप करते और शीतजन्य वेदना एव शोथपर मालिश करते है । शोणितोत्क्लेशक और स्वापजनन होनेसे हस्तमैथुनीमें लेप और तिलाकी भाँति इसका उपयोग करते है या उसके तेलकी मालिश करते है । लौग मुँहमें चबानेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर करके उसे सुवासित करता है, मसूढोको शक्ति प्रदान करता और शीतजन्य दन्तशूलको नष्ट करता है । दन्तशूल शमन करनेमे लौगका तेल परम श्रेयष्कर है । पीडित दाँतपर इस तेलके एक-दो बूँद टपकानेसे दतशूल आराम हो जाता है । आतरिक रूपसे लौगको मसालेकी भाँति आहारोमे डालते है । इससे आहार सुगन्धित हो जाता है और आनाहकारक एव विष्टम्भी आहारके दोषका परिहार भी होता है । इसके अतिरिक्त औषधरूपसे इसे शीतल हृत्स्पदनमे प्रयुक्त कराते तथा मुफर्रेह कल्पो (मुफर्रेहात)मे डालते है तथा वाजीकर और शुक्रस्तम्भन योगोमे डालकर खिलाते है । यकृदामाशयदौर्बल्य, अजीर्ण, उदरानाह और शूल (कुलज)में इसका क्वाथ या योग देते है । लौगसे परिस्रुत किया हुआ तेल (रोगन लौंग) भी खिलानेसे आमाशयको शक्ति देता तथा आनाह एव शूलको नष्ट करता है । वाजीकरणके लिए इसे तिलाओमें मिलाकर लगाते है । तिलके तेलमे पकाकर प्रस्तुत किया हुआ लौगका तेल साधारणतया वेदनाओको शमन करने और अगघात निवारणके लिए मालिश किया जाता है । अहितकर—मूत्रपिंडोको । निवारण—बबूलका गोद । प्रतिनिधि—दालचीनी, जावित्री और फरजमुश्क । मात्रा—० ५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक । तेल आध बूँदसे ३ बूँद तक ।

आयुर्वेदीय मत—लवंग कटु तिक्त, लघु, शीतवीर्य, दीपन, पाचन, मुँहको साफ करनेवाला, रुचिकर, सुगन्धि तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, वमन, अफारा, शूल, कास, श्वास और क्षयको दूर करनेवाला है । (च० सू० ५, सु० सू० अ० ४६, रा० नि०, भा० प्र०) ।

●

(५५१) वर्स

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(अ०) अल्वर्स (इ० बै०), वर्स, खुस; (फा०) कर्कमा, (ले०) फ्लेमीगिआ ग्राहामिआना **Flemingia grahamiana** W A , (मेमेसीलॉन टिंक्टोरिउम् Memecylon tinctorium (*Family Melastomaceae*)

उत्पत्तिस्थान—भारतमें नीलगिरी, यमन और अफरीका ।

वर्णन—पिसे हुए केसरकी तरहका किंचित् तिक्त एव सुगन्धित एक रालदार चूर्ण, जो उपर्युक्त क्षुपकी फलीगत ग्रन्थियोसे प्राप्त होता है और दूर-दूर देशान्तरमें ले जाया जाता है तथा वहाँ कपडे रगनेके काममे आता है । यमनी, हबशी और हिंदी भेदसे यह तीन प्रकारका होता है ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पश्चिम अफरीका और दक्षिण अरबमें कृमिघ्नरूपमें इसका उपयोग किया जाता है। यह प्राय· विषोका अगद है; शरीरको वल प्रदान करता है; परम उल्लास प्रदान करता, हृत्स्पदन (धडकन)-को दूर करता; काले दाग मिटाता, साद्र वायुको विलीन करता, लेखन करता, वाजीकरण करता और अश्मरीको तोडकर निकाल देता है। इसका लेप चेहरेकी झाईं और श्यामताको दूर करता तथा छीपको लाभ पहुँचाता है। अहितकर—फुफ्फुसको। निवारण—मस्तगी, शहद और कतीरा। प्रतिनिधि—समभाग केसर और आधाभाग तेजपात (साजिज)। मात्रा—४·५ ग्राम (४½ माशे) तक।

●

(५५२) शकरकंद, कंदा

फैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) श(स)करकंद, कदा, (सं०) शर्करकन्द—(नवीन), (प०; बम्ब०; ब०) शकरकद, (ब०, असम) रगा आलू, (बम्ब०) रताळू, (म०) रताळी, (ले०) ईपोमेआ बाटाटास (**Ipomoea batatas** Lamk), (अं०) स्वीट पोटेटो (Sweet Potato)। वक्तव्य—मख़्जनमें भूलसे इसका फारसी नाम 'जमीकंद' लिखा है, जो वस्तुत. 'सूरन' का नाम है।

उत्पत्तिस्थान—यह अमेरिकाका मूल निवासी है। अधुना समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक कदलताकी प्रसिद्ध जड (कंद) है जो लाल और सफेद दो प्रकारकी होती है। यह अधिकतया उबालकर या भूमलमें भूनकर खायी जाती है तथा मधुर एव स्वादिष्ट होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें आइपोमोसिन (Ipomocin) नामक एक सत्व पाया जाता है।

प्रकृति—मलभूत द्रवके साथ दूसरे दर्जेमे शीतल एव स्निग्ध।

गुणकर्म तथा उपयोग—शकरकद आध्मानकारक एव आनाहकारक होता है तथा शरीरको शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए यह शुक्रोत्पत्ति एव रतिशक्तिमें किसी प्रकार वृद्धि करता है। वाजीकरण और मस्तिष्कवल-वर्धन (मेधाजनन) इसके प्रधान कर्म हैं। शकरकदका सामान्यत उपयोग आहारके रूपमें किया जाता है। इसे चीनी और घीमें भूनकर हलुआ बनाकर शुक्रोत्पत्ति एव वाजीकरणके लिए खिलाते हैं। अहितकर—आनाहकारक, आध्मानकारक और अवरोधोत्पादक (अभिष्यदि) है। निवारण—ताजादूध और चीनी। प्रतिनिधि—गाजर।

●

(५५३) शकाकुल

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) दुधाली, सताली, सवाली, (अ०) शकाकुल, शिकाकुल, अल्शिक्राकुल (इ० बै०), (फा०) शक्काकुल, गज़रदश्ती, कोज सहराई, (ले०) ट्राकीडिउम् लेह्मान्नी **Trachydinm lehmanni** Benth (पास्टीने साकाकुल Pastinae sacacul)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, मिस्र और अफगानिस्तान। भारतवर्षमें भी यह कतिपय स्थानोंमें, विशेषत कश्मीरमें पायी जाती है।

वर्णन—यह एक वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड़ (मूल) है जो आकार एवं आकृतिमें छोटे गाजरके समान, शीर्ष (Crown)से निकला हुआ ग्रंथ्याकार पत्रवृन्तमूलक, बाहर तलपर झुर्रीदार और लम्बाईके रुख गहरीरेखायुक्त और हल्के भूरे रंगके, भीतरसे सफेद, स्टार्ची, तोड़नेपर सहसे टूटनेवाली, स्वाद निशास्ता जैसा लेसदार और किंचित मधुर होता है। बाजारमें यह प्राय. काबुलमिश्रीके नामसे मिलती है और अधिकतर काबुलसे आती है।

वक्तव्य—कश्मीरमें एरीन्जियम् सेरूलेडम् (Eryngium coeruleum Bieb (Family : Umbelliferae) एवं अफगानिस्तानमें पॉलीगोनाटुम् वेर्टीसिल्लाटुम् Polygonatum verticillatum (Family : Liliaceae) को शकाकुल कहते हैं। उक्त पौधेका क्षेत्रीय नाम 'दुधाली' (हि०, प०) है।

प्रकृति—मतभूत द्रवयुक्त पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें तर है।

गुणकर्म तथा उपयोग—बल्य, वाजीकर, शुक्रल, वीर्य पुष्टिकर तथा स्तन्यजनन और विशेषकर वाजीकर है। शुक्रमेह और नपुंसकता (कामावसाद)को नष्ट करनेके लिए इसे चूर्णों और माजूनोंमें डालते हैं। दूध बढ़ानेके लिए इसका चूर्ण बनाकर स्त्रियोंको खिलाते हैं। शरीर बलवर्धन एवं वाजीकरणके लिए इसका मुरब्बा सेवन किया जाता है। अहितकर—क्षुधाको कम करती और देर दृढ़जाता है। निवारण—शहद। प्रतिनिधि—तूदरी और हब्बुस्सनोबर। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशा) तक।

●

(५५४) शमशाद

फैमिली : पीनासे (Family . Pinaceae)

नाम—(फा०) श(शि)मशाद, (अरबीकृत)बक्स (बक्सन); (यू०) बकसीन, बकसियून।

वर्णन—सरो या मोरपंखीकी तरहका एक सुन्दर वृक्ष है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीतल और तीसरे दर्जेमें खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पत्र पशुओंके लिए विष हैं। विशेषकर ऊँटके लिए अत्यन्त अहितकर है। काँच निकलता हुआ (गुदभ्रंश) हो तो इसके पत्तोंके क्वाथसे इस्तिजा करनेसे लाभ होता है। इसके फल और बीज मलग्राही (काबिज) तथा आमाशय और अन्त्रस्थ आर्द्रताके शोषक हैं और मुँहसे लार बहना बन्द करते हैं। साहब जामाके कथनानुसार इसमें यह एक विचित्र गुण है कि इसका फल खानेसे स्त्री वन्ध्या हो जाती है। मदिराके साथ इसके पत्रक्वाथका लेप कालस्फोट या ऐन्थ्राक्स (जमरा), कक्षा (नमला सइया) और गज वा अरुंषिका (साफा)के लिए गुणकारी है। शहद और मेंहदीके साथ इसके प्रयोगसे त्वचाके दाग व धब्बे दूर होते हैं। इसकी लकडीकी कंघी वालोंकी जडोंको दृढ करती है। वालोंपर मेंहदीके साथ इसके बुरादाके लेपसे उनमे शक्ति आती है। सिरके ऊपर इसके लेपसे सिरदर्द आराम होता है। इसके फूलोंका अर्क हृदय मस्तिष्कबलदायक है तथा यह पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता है। अर्क वहार नारजकी अपेक्षया वलवत्तर है।

●

(५५५) शरीफा

फैमिली आनोनासे (Family Anonaceae)

नाम—(हिं०) शरीफा, सरीफा, सीताफल, (सं०) गण्डगात्र, सीताफल, (बं०) आता, (पं०) शरीफा, (म०, गु०; मा०, वृज) सीताफल, (गु०) अनुरा, (ता०) आत्तापलम्, (ते०) सीताफलम्, (लै०) आनोना स्क्वामोजा (**Anona squamosa** Linn), (अं०) कस्टर्ज एपल (Custard Apple) । वक्तव्य—अंग्रेजी नाम इसके फलका तथा लेटिन नाम वृक्षका है । शेष (भारतीय) सज्ञाये इसके वृक्ष एव फल दोनोके लिए सामान्य हैं ।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवत. शरीफावृक्ष वेस्टइण्डीज (अमरीका)से यहाँ आया है । अधुना प्राय समस्त भारतवर्ष विशेषकर बगाल, उत्तर प्रदेश, राजपुताना, पजाब, मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, कुमाऊँ, पचमहल और बबई आदिमे यह लगाया जाता है तथा जगली भी होता है ।

वर्णन—यह मझोले आकारके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो खाया जाता है । शरीफाका फल अमरूदके सदृश गोला और हरिताभ खाकी रगका होता है । इसका छिलका कडा होता है और इसके ऊपर उभरे हुए दाने होते है । पकाफल खानेमे मधुर और रसीला होता है ।

रासायनिक संगठन—पत्र, वृक्षत्वक् और मूलमें हाइड्रोसायनिक एसिड होता है । फलमे विटामि 'ए' एव 'सी' तथा ग्लूकोज सेवसे अधिक होते है ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गर्म और तर है । आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य है ।

गुणकर्म तथा उपयोग—शरीफा एक मेवाकी भाँति खाया जाता है । इसका रस सर (प्रकृतिमार्दवकर है और सीठी (फोक) कब्ज पैदा करती है । इसके गूदेसे रस चूसकर सीठीको फेंक देना चाहिये । यह सौमनस्यजनन, हृदयबलवर्धन और दिलकी धडकन दूर करनेवाला है । यह वाजीकर एव वृहण भी वर्णन किया जाता है तथा यह विशेष रूपसे सारक (प्रकृतिमार्दवकर) है । अहितकर–सौदाके रोग उत्पन्न करता है । निवारण–सिकजवीन और अम्ल पदार्थ ।

आयुर्वेदीय मत—सीताफल मधुर, शीतवीर्य, हृद्य, बलकारक, तृप्तिजनन, वृहण तथा दाह, रक्तपित्त और वायुका नाश करनेवाला है ।

नव्यमत—मूल विरेचक, बीज गर्भाशयमुख और आँखके भीतरी भागकी झिल्ली (Conjunctiva)के लिये क्षोभक तथा गर्भशातक, बीज, फल और पत्र कीटघ्न (Insecticide) एव मत्स्यविष है । इसके पत्र या बीजका कल्क सिरमे लगानेसे सिरकी जूँ मर जाती है । रातको सोते समय लगाकर सिरको एक मोटे कपडेसे कसकर बाँध कर सो जाना चाहिये अथवा दिनमे इसे लगाकर २-३ घण्टेके बाद सिरको नीचा करके आँखोमे पानी न जाने पावे इस प्रकार सावधानीसे सिर धोना चाहिये । इसके पत्रका कल्क लगानेसे दुष्ट व्रणमे पडे हुए कीडे मर जाते हैं । पका फल खानेमे स्वादिष्ट, पुष्टिकारक, मासवर्धक तथा दाहको शात करनेवाला, कफकारक, शीतवीर्य, हृद्य एव बल्य है । इसके खानेसे तृप्ति होती है, रक्त बढता है, रक्तपित्त और वात शान्त होता है। जलन शान्त करनेके लिए इसे रात को ओसमे रख देना चाहिए और सवेरे इसके सेवन करनेसे शरीरको जलन और दाह शान्त हो जाता है ।

(५५६) शलगम

फैमिली : क्रूसीफेरी (Family · Cruciferae)

नाम—(हि०) शलगम, शलजम, (अ०) सल्जम, शल्जम (अरबीकृत), (फा०) शलगम, (ले०) ब्रासिका रापा (Brassica rapa Linn); (अं०) टर्निप (Turnip) ।

उत्पत्तिस्थान—यह सारे भारतवर्षमें जाड़ेके दिनोंमें होता (बोया जाता) है ।

वर्णन—यह मोलीकी आकृति और गाजरकी तरहका एक प्रसिद्ध कंदशाक (मांसल पातालीय धड़ या मूल) है, जिसका तरकारीके लिए उपयोग किया जाता है । बाहरी छिलकेकी रंगतके विचारसे लाल और सफेद दो प्रकारका होता है । स्वाद मधुर किंतु कच्चा तेजी लिए होता है । पौधा और फूल आदि सरसोंकी तरह होते हैं । बीज (तुख्मे शलगम-फा०; बज्रुल्लिफ्त (अ०) सरसोंके बराबर [illegible] किसी कदर मैलेसे होते हैं ।

शलगम—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें तर है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—[illegible], कामोद्दीपक, दृष्टिवर्धक, मृदुल और मूत्रकृच्छ्रनाशक है । शलगम अधिकतया उबालकर या गाजरकी भाँति गोश्त या मांसके साथ पकाकर खाया जाता है । शलगम पुष्टिकर, सारक और मृदुल है । इसके पत्ते अधिक मृदुल हैं । यह किंचित् श्लेष्मनिस्सारक भी है । कब्ज, खाँसी, दौर्बल्य, दृष्टिदौर्बल्य, अर्श, आनाह, [illegible], मूत्राश्मरी और मूत्रकृच्छ्रमें यह एक पथ्यकर आहार है । सर्दीमें फटे हुए हाथ पाँवको इसके क्वाथसे धोते हैं । शलगमका अचार [illegible] लिए खाया जाता है । अहितकर—विष्टंभी एवं आनाहकारक । निवारण—कालीमिर्च और अम्ल पदार्थ । प्रतिनिधि—चुकन्दर और गाजर ।

बीज (तुख्म शलगम)—

प्रकृति—किन्हींके हकीमोंके अनुसार तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें तर तथा मतांतरसे गरम एवं रूक्ष है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, कामोत्तेजक और मूत्रजनन है । चेहरेका रंग निखारने और कतिपय त्वचाके रोगोंको नष्ट करनेके लिए शलगमके बीजोंको अकेले या उपयुक्त अन्य औषधियोंके साथ तिलाकी भाँति उपयोग करते हैं । वाजीकरणार्थ इनको वाजीकर माजूनोंमें डालकर खिलाते हैं । मात्रा—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक ।

●

(५५७) शाहतरा

फैमिली फूमारिआसे (Family Fumariaceae)

नाम—(हि०) शातरा, पित(त्त) पापड़ा; (यू०) कापनूस Kapnos (D 4 108), (अ०) अल्शाहरज (इ० बै०), शाहतरज, कुज्बुरतुल्हिमार, बकरतुल्मलिक, मलिकुल्बकुल, (फा०) शाहतर , (म०, बम्ब०) शातरा, (गु०) यवनपर्पट, (ले०) फूमारिआ आफ्फीसिनालिस (Fumaria officinalis Linn), (अं०) फ्युमिटरी, कॉमन (Fumitory, Common), अर्थ स्मोक (Earth-smoke) ।

वक्तव्य—'शाहतर.' का अर्थ 'शाकराट् (= शाकोका राजा)' तथा यूनानी, लेटिन और अँगरेजी सज्ञाओका अर्थ 'पृथ्वीका धुआँ (भूधूम्र)' है । 'शाहतरज' प्राचीन यूनानी-अरबी सज्ञासे अभिप्रेत 'रक्तशोधक औषध' है ।

उत्पत्तिस्थान—यह एशिया, यूनान और फारसमें प्राय बोये हुए खेतोमें होता है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे होता है।

वर्णन—एक क्षुद्र कोमल क्षुप; कांड कोणयुक्त; पत्र दोहरा पक्षाकार (Twice pinnate) अन्तिम खण्ड (Ultimate segments), रेखाकार, कुण्ठिताग्र या तीक्ष्णाग्र, अलोमश; पुष्प पतला (Slender), गुलाबी (बन-फशई), बालियाँ ह्रस्व (In short spikes), अनियमित, तीन पुंकेसरोके दो बन्डलयुक्त, फल गोलाकार, खातयुक्त, एक बीजयुक्त, प्राय निर्गन्ध, स्वाद तिक्त, किंचित् कटु, कषाय और नमकीन तथा कुछ-न-कुछ अरुचिकर। बाजार में इसके सूखे पौधेके प्राय बहुत टूटे-फूटे टुकडे मिलते हैं जिसमे लगभग गोल, मसृण और अस्फोटी बहुसख्यक फल मिश्रीभूत होते हैं।

रासायनिक सगठन—इसमें फ्युमेरीन (Fumarine-पर्पटीन) नामक एक ऐल्केलॉइड जिसके ऊपर इसका गुणधर्म निर्भर होता है ६ प्रतिशत और एक अम्लस्वभावी सत्व फ्युमेरिक एसिड (Fumaric acid) होता है।

●

(५५८) पित्तपापड़ा (देशी शाहतरा)

नाम—(हिं०) पित(त्त) पापडा, धमगजरा, (अ०) शाहतरज; (फा०) शाहतर; (स०) पर्पट(-क), वर-तिक्त, (प०) शाहतरा; (गु०) शाहतरा, पित्तपापडो, (म०; बम्ब०) पित्तपापडा; (सिं०) शाहतरा, शातरा, (बं०) बन सुल्फा, (लै०) फूमारिआ पार्वीफ्लोरा (Fumaria parviflora Linn.) भेद–फूमारिआ ईण्डिका (Fumaria indica Pugsley), (अ०) फाइन-लीव्हड फ्युमिटरी (Fine-leaved Fumitory)। वक्तव्य—पंजाब, सिंध, राज-पूताना, उत्तरप्रदेश और बिहारके वैद्य प्राय पर्पट नामसे इसका व्यवहार करते है।

उत्पत्तिस्थान—बलूचिस्तान और भारतवर्षके अनेक भागो, अधिकतर प्रान्तके पश्चिमी-उत्तरी भागमें गेहूँ और चनेके खेतोमे जाडेके दिनोमें पाया जाता है।

वर्णन—यह अनेक शाखाओवाले, स्वावलम्बी, प्रसरणशील १/२ से १ फुट ऊँचा क्षुप है। यह खडा या जमीनपर फैला हुआ होता है। पत्ते गाजरके पत्ते जैसे होते हैं, इसलिये कही-कही इसे धमगजरा कहते है। फूल श्वेताभ या गुलाबी लाल और सिरेपर जामुनी रगके ० २ इञ्च-०·३ इञ्च लबे होते है, बाह्यदल दो, आभ्यन्तर दल २-२ इनमें बाहरवाले नीचेकी ओर चोचदार, भीतरसे दोनो ऊपरकी ओर सयुक्त, पुंकेसर ६, तीन-तीन एक साथ मिले हुये, फल शाहतरेके फल जैसे क्षुद्र एव गोल, अग्र (Apex) पर दो-खातयुक्त, स्वाद तिक्त होता है। यह शाहतराका ही देशी भेद है और औषधमे उसीके स्थानमें प्रयुक्त होता है।

उपयुक्त अग—क्षुप (पंचाग), पत्र और बीज।

कल्प तथा योग—तरलसार (मात्रा–२ मि०लि०से ४मि०लि० या ½ से १ ड्राम), फाण्ट (नकूअ शाहेतर), १ पाइण्ट उबलते जलमें लगभग २९ ग्राम (२॥ तो०), हरे पत्तोंका (स्वरस मात्रा–१४ तो० से २८ तो०); सूखा शाहतरा अन्यान्य औषधियोके साथ) (मात्रा–१४ ग्रामसे ३५ ग्राम या १४ माशेसे ३ तोले तक), चूर्ण. (मात्रा–१० ५ ग्राम से १४ ग्राम या १०॥ माशासे १४ माशे तक), बीज.(मात्रा–७ ग्रामसे १० ग्राम या ७ माशेसे १० माशे तक)। योग–अतरीफल शाहतरा, अतरीमल शाहतरा उलवीखाँ, अर्कशाहतरा (मुरक्काब), शर्बत शाहतरा और माजून शाहतरा।

प्रकृति—समिश्रवीर्य, अनुष्णाशीत, दूसरे दर्जेमें खुश्क है। आयुर्वेदमें पर्पटको शीतवीर्य लिखा है (च०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक मूत्रल, दीपन, क्षुधाजनक, ज्वरघ्न है। इसको अधिकतर रक्तदाह (एहतेराक खून) एव रक्तविकारजन्य रोगो, जैसे-आतशक, कण्डू दाद, और फोडे-फुन्सियोमे अकेले या उपयुक्त औष-

पियोंके साथ स्वरस, फाण्ट क्वाथ या अर्क बनाकर पिलाते हैं। यह जीर्णज्वरोंमें प्रयुक्त होता है। इसके बीज भी इसी हेतु प्रयुक्त होते हैं। अहितकर–फुफ्फुसके लिये। निवारण–कासनी। प्रतिनिधि–हृद और सनाय। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—पित्तपापड़ा (पर्पट) रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, शीतवीर्य, ग्राही, तृषा कम करनेवाला पाचन तथा पित्त, कफ, ज्वर, रक्तविकार, भ्रम, अरुचि और दाहको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६; भ० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—(देशी शाहतरा–पर्पट)—कृमिघ्न, मूत्रजनन, स्वेदजनन, मलशोधक तथा मन्दज्वर एव त्वग्रोगोंमें रक्तशोधकके रूपमें इसका उपयोग होता है। इसमें पाया जानेवाला ऐल्केलाइड त्वचा, यकृत् तथा वृक्क द्वारा बाहर निकलता है और निकलते समय इन अवयवोंको उत्तेजित करता है। इसलिये शाहतरा स्वेदजनन, मूत्रजनन, स्रंसन और बहु पौष्टिक है। आंतोंकी शिथिलतामें उत्पन्न कुपचन और त्वचाके रोगोंमें शाहतरा उपयोगी है। साधारण सर्दी-जुकाममें शाहतराका काढ़ा देनेसे पसीना और पेशाब आता है, दस्त साफ होता है और शरीरकी पीडा कम होती है। पित्तज्वर और यकृत्के रोगोंमें यह उत्तम औषध है। त्वचाके रोगोंमें इसे देते हैं।

शाहतरा (यवनपर्पट) इसका धन्य, मूत्रल, मलशोधक, प्रधानतया आमाशयिक विकारों, यकृत् व्याधियों और त्वचाके रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। जिरार्ड (Gerard) लिखते हैं— 'दीसकूरीडस दृढतापूर्वक यह स्वीकार करते हैं कि जोरे थोव (जौके संगमें) उगे हुए शाहतराका स्वरस बबूलकी गोंदके साथ प्रयोग करनेसे पलकोंपर उगे हुए अनुपयोगी बालोंको, जो आंखोंमें चुभते हैं, दूर कर देता है।' प्रथम आंखोंमें चुभनेवाले बालोंको उखाड देवें, क्योंकि यह अपनेसे दूसरोंका उगना सहन नहीं करेगा।" कल्पेपर (Culpeper) लिखते हैं "शाहतरा (और Docks) का स्वरस सिरकाके साथ मिलाकर इससे उस स्थानको धीरे-धीरे धोनेसे सभी प्रकारके चर्मरोग विशेष (Scabs), फुन्सी या मुंहासा (Pimples), ददोड़ा (Blotches and Wheals) और आघात (Pushes) जो चेहरे या हाथ या शरीरके अन्य भागमें होते हैं, आराम हो जाते हैं।" शिर विकारोंके लिए जॉनहिल (John Hill M D 1756) कहते हैं "कुछ लोग तमाकू की तरह इसकी सूखी पत्तीको सफलतापूर्वक तमाकूकी पीते हैं।" (पाटर्स न्यूसाइक्लोपीडिया पृ० १२७)।

●

(५५९) शाहपसन्द

फैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) शाहपसन्द, बादशाहपसन्द, (ब०) शाव-पसन्द्, शुप्पसन्दु, शापुस्सुन्दो, (लें०) फार्बिटीज या कॉन्वाल्वुलस जाति (**Pharbitis or Convolvulus Spp**)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। बीज प्राय. बाजारोंमें मिलते हैं।

वर्णन—एक आरोहीलताके प्रसिद्ध बीज हैं, जो वृत्तके चतुर्थांश रूपरेखाके या कौडेना अथना बीरबहूटीकी आकृतिके, भूरे, गहरे भूरे वा ललाई लिए भूरे (कुकटीरगके), ऊर्णमय (Woolly), क्षुद्र, अतिकोमल और तूलवत् रोइयोसे आच्छादित, निर्गंध तथा प्राय स्वादरहित होते हैं। लताके पत्र लोबिया पत्रवत्, किंतु उनसे चौडे; पुष्प सफेद एव मनोरम, फल सूखनेपर उसके तले घुण्डी बँधती है, जिसके भीतर २-३ छोटे दाने होते हैं। औषधिमें उक्त बीजोका व्यवहार होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र विरेचन है तथा सान्द्रदोषोका उत्सर्ग करता है। यह विशेषरूपसे विरेचन और अवरोधोद्घाटनकर्ता है। आमाशयशोथ (औराम शह्म) को विलीन करनेके लिए इसको अमलतासकी गूदीके साथ पिलाते हैं। इसके अतिरिक्त आमवात जीर्णज्वरो एव बालकोके डब्बाके रोग (डब्बाए अत्फाल)में इसको खिलाते है। ७ ग्राम (५-७ माशे) इसके महीन चूर्णको नमक या गुलकन्दके साथ खानेसे अच्छे विरेक आ जाते है। अहितकर—शीतल मस्तिष्कको। निवारण—मिश्री। प्रतिनिधि—खत्मी और खुब्बाजीकी पत्तीका स्वरस। मात्रा—३ से ५ ग्राम (३-५ माशे) तक।

●

(५६०) शिलारस

फैमिली : हैमामेलिडे (Family Hamamelideae)

नाम—(हिं०, व०, म० वम्व०) शिलारस, (यू०) Sturax (D 1 79), स्टोरक्स (Storax), स्टाइरेक्स, (अ०) अल् इस्तिरक (इ० बै०), मीअ साइला, लब्नी (ल्ना), (फा०) अम्बर माइअ, अस्ले लब्नी (अ०), (स०) तुरुष्क (सु०, रा० नि०), सिल्हक (भा० प्र०), (गु०) शेलारस; (तै०) शिलारसम्, (ले०) लिक्विड अम्बर ओरिएण्टालिस (**Liquidamber orientalis** Miller), (अ०) स्टोरैक्स (Storax), स्टाइरैक्स (Styrax), लिक्विड स्टोरैक्स (Liquid Storax), वालसम् स्टाइरेसिस (Balsam Styracis)।

वक्तव्य—वृक्षको अरवीमे 'जिर्व' या 'उस्तुरक' कहते हैं। लेटिन नाम वृक्षका है। अरवी मीअ (मीआन = प्रवाही) से व्युत्पन्न है। मात्र 'मीअ' से मीअ साइला (प्रवाही शिलारस) अभिप्रेत होती है। इसकी एक जातिके वृक्ष जिसे अँगरेजी और लेटिनमे क्रमश बर्मीज स्टोरैक्स (Burmese Storax) और आल्टीन्जिआ एक्सेल्सा (**Altingia excelsa** Noronha) कहते है, ब्रह्मा, पूर्वी वगाल, आसाम भूटान, पेगू, चीन, मलाया और जावा आदिमे भी होते है। इससे प्राप्त शिलारस उपर्युक्त विदेशी शिलारसका उत्तम प्रतिनिधि है। 'स्टाइरेक्स' और 'स्टोरेक्स' वास्तवमे यूनानी सज्ञायें हैं। लिक्विडअवर (Liquidamber)का अर्थ अम्बरसाइल (प्रवाही अम्बर) है। 'मीअ साइला' से अम्बर जैसी सुगन्धि आती है। इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्सको, यथा-दीसकूरीदूस और जालीनूस आदिने इसका वर्णन किया है। इसलामी चिकित्सक इससे पूर्णतया अभिज्ञ थे। अरब व्यापारी इसको चीन और भारतवर्षमे ले गये। ईसवी सन् की प्रथम शतीमे भारतवर्षमे इसके आयातका पता चलता है। सुतरा 'शिलारस'के नामसे यह प्राचीन भारतीय वैद्योको भी ज्ञात था।

उत्पत्तिस्थान—एशिया माइनरका दक्षिण-पश्चिम भाग और अरव आदि। वहीसे इसका आयात वम्बई-में होता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका गोद (दूध-Balsam) है जो वृक्षकी छालमे चीरा देनेसे स्रवित होनेके उपरात शहदकी तरह उससे अधिक गाढा हो जाता है। इसका रग पिलाई या हरापन लिये लाल या भूरा (धूम्रवर्ण), गध एव स्वाद रुचिकर (बलसांवत्), पानीसे भारी, अपारदर्शक, नरम और चिकना होता है। इसे मीअ.साइला (प्रवाही शिलारस) कहते है। इसका एक भेद मीअ.याबिसा (शुष्क शिलारस) है, जो उक्त वृक्षकी लकडी आदि-को पकानेके उपरान्त छानकर और दोबारा पकाकर बनाया जाता है। यह काला और गुरु (सकील) होता है। शिलारस ९०% मद्यमे विलीन होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) सिन्नेमिक एसिड २० प्रतिशत, एक उत्पत सैक जो ऑक्सीजनके मिलने-पर बेन्ज़ोइक एसिड (लोबानके फूल)में परिणत हो जाता है; (२) स्टायरीन जो एक उत्पत् तैल है, (३) स्टोरेसिन (Storesin) जिसका रासायनिक नाम सिन्नेमेट ऑफ सिन्नेमाइल है, और (४) दो रालें (Resins) प्रभृति उपादान होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है। (भा०प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वल्य, वेदनास्थापन, मज्जातन्तुवर्धन, वस्ति और वृक्कके रोगोंमें गुणकारक, कतिपय प्रकारके रोगजनक कीटाणुओंका नाशक, कोथप्रतिबन्धक विशेषकर श्लेष्मनिःसारक तथा मूत्रार्तवजनन है। पुरानी खांसी और उरःक्षत (सिल)रोगमें कफोत्सर्ग एवं उसके प्रकोपनिवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह स्वरघ्न और प्रतिश्यायमें भी प्रयुक्त होता है। इसे जलवृक्कवस्तिप्लीहारोगमें खिलाते हैं। स्वाप, अपतानक, आमवात और वातरक्तमें इसको जैतूनके तेलमें मिलाकर मर्दन करते या लेप लगाते हैं तथा तर खुजली और जूओंको नष्ट करनेके लिये उपयोग करते हैं। अहितकर—फुफ्फुसोंके लिये। निवारण—मस्तगी और कतीरा। प्रतिनिधि—जुन्दबेदस्तर। मात्रा—० ५ ग्राम से १ ५ ग्राम (४ रत्ती से १½ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—सिल्हारस तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, स्निग्ध, सुगन्धि, वृष्य, कण्ठ्य, कान्तिकर तथा कफ, वात अश्मरी, मूत्राघात, श्वास, ज्वर, स्वेदाधिक्य और दाहका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३८, रा० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—शिलारस कफघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक, शोथघ्न, पूतिहर, कृमिघ्न, कण्डूघ्न, व्रणशोथहर और व्रणरोपण है। यह उत्तेजक और पूतिहर कफघ्न है, परन्तु कभी-कभी इससे मूत्रपिण्डका शोथ उत्पन्न होता है। यह फुफ्फुस और मूत्रपिण्डके रास्तेसे शरीरसे बाहर निकलता है। मात्रा—५-१० गुंजा, मुलेठीके चूर्णके साथ लेह (चटनी) बनाकर देवें। जीर्णकफरोगमें और क्षयमें शिलारसको मधुमें मिलाकर देते हैं। इससे फेफड़ेको शक्ति प्राप्त होती है। जीर्णपूयमेह (सूजाक)में मुलेठीके साथ शिलारस देते हैं। कण्डू, पामा आदि त्वग्रोगोंमें १ भाग शिलारस और चार भाग तिलका तैल मिलाकर लगाते हैं। क्षयजन्तुजन्य व्रणपर शिलारसको अकेला लगाते हैं। इससे वहाँ रक्ताभिसरण बढ़ता है और क्षयके जन्तु मरते हैं। अण्डवृद्धिपर शिलारस लगाकर ऊपर तमाखू या धतूरेके पत्ते बांधते हैं।

●

(५६१) शीरखिश्त

फैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०,फा०,द०) शीरखिश्त, (अ०) मन्न, शीरखिश्त, अस्लुल्हवा, अस्लुस्समावी, (फा०) शीर-खुदक, शीरखिश्त; (सं०) आकाशमधु—(नवीन), (हिं०) शुष्कक्षीर, हरलालू, (म०) माउ, (ता०, ते०) मेना, (मल०) मन्ना, (लें०) मान्ना (Manna), (अं०) मेन्ना (Manna)। वक्तव्य—वृक्षको फारसीमें सियाहचोब और कशीरू तथा लैटिनमें क्रोटोनेआस्टर नुम्मूलारिआ (**Crotoneaster nummularia** Fisch) (*Crotoneaster racemiflora* Koch) कहते हैं। डॉक्टरी चिकित्सामें प्रयुक्त शीरखिश्त संभवत फैमिली ओलेआसे (*Family* · *Oleaceae*) के फ्राक्सिनुस् ऑर्नुस् (**Fraxinus ornus L**) तथा फ्रॉक्सिनुस् रोटुन्डीफोलिआ (**F. rotundifolia**) नामक वृक्षोंसे प्राप्त होता है।

वक्तव्य—'मन्न' वास्तवमें इबरानी (Hebrew) भाषाका शब्द है जिसका अर्थ 'अल्मुअ्‌जीयुल् इलाही' अर्थात् 'ईश्वरकी ओरसे आहार देनेवाली वस्तु' जैसा कि 'तौरात'के उल्थाकारने लिखा है। किन्तु यूनानी एव लैटिन भाषामें इसका उच्चारण 'मन्ना' किया गया है और अंग्रेजीमें 'मेन्ना'। प्राचीन अरबी एवं फारसी शब्दकोषो एव यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोमें लिखा है कि 'मन्न' ऐसे अवश्याय (ओस-शब्नम)को कहते हैं, जो वृक्षो और पाषाणोपर गिरे और मधुर एव शहदकी भाँति सान्द्र और निर्यासवत् शुष्क हो जाय। अरबी भाषामें इसको 'आकाशीय आर्द्रता नदियुस्समाऽ), वायवीय मधु (अस्लुल्हवा) और आकाशमधु (अस्लुल्समावी)'की काल्पनिक संज्ञाओसे भी अभिधानित किया गया है। कारण इसके बिंदु कतिपय वृक्षोके पत्तोपर भी पाये जाते है, जिन्हें संग्रह करके सुखा लेते है। इसी हेतु प्राचीनकालमें इसको 'आकाशीय आहार (एजाज नबूअत)' माना जाता था। परन्तु अधुना यह विश्वास एव श्रद्धा घट गई है तथा यह मन्न और इसकी फारसी संज्ञा शीरखिश्त या शीरखुश्क वास्तवमें 'शीरीखुश्क' थी जिसका अर्थ 'शुष्क मिठास' है। कुरानशरीफकी सूरये बकरके रुकूअ ६ की आयत मे इसका उल्लेख है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्साविद् इसके वैद्यकीय प्रयोगसे पूर्णतया अभिज्ञ थे। सुतरा हकीम दीसकूरीदूसने 'एलोमेली' के नामसे इसका उल्लेख किया है तथा इसको आमदोष एव पित्तका विरेचक लिखा है। जालीनूसने इसका उल्लेख नही किया। सर्वप्रथम इटलीवासियोने इसका प्रयोग किया है। प्राचीनकालमें इटलीके प्राय. स्थलोमें आहाररूपमें इसका सेवन करते थे और अब भी इटलीके दक्षिणमें स्थित सिसलीमें यह ओषधि पुष्कल उत्पन्न होती है तथा वहीसे इसका अधिक आयात होता है।

वर्णन—जैसा कि उपर्युक्त वक्तव्यमें लिखा गया, पहले इसको एक प्रकारका सान्द्रीभूत मधुर अवश्याय (शब्नम) ख्याल करते थे; परन्तु बादमें यह ज्ञात हुआ कि यह नि.सदेह एक प्रकारका सान्द्रीभूत मधुर स्वरस है जो ग्रीष्मऋतुमें शीरखिश्त वृक्ष फ्राक्सीनुस् ऑर्नुस् (**Fraxinus ornus**), जिसको खुरासानके समीपवर्ती प्रदेशोमें कबीरू कहते है अथवा फ्राक्सीनुस् रोटंडिफोलिया (**Fraxinus rotundifolia**) के पत्तो, तने और बडी-बडी शाखाओकी त्वचासे स्वयमेव रिसकर सान्द्रीभूत हो जाता है। परन्तु तनेकी त्वचामें आडे चीरा देनेसे यह अधिक रिसता है। सुतरा सिसलीमें जहाँ इसके वृक्ष लगाये जाते हैं, सामायतया इन वृक्षोकी त्वचामें आडे चीरा देकर इसको प्राप्त करते है। शीरखिश्तको संग्रह करनेकी ऋतुके विचारसे इसके मूल्यमें अन्तर होता है। ग्रीष्मऋतुमें संग्रहकी हुई सर्वोत्तम होती है। भेद—जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया, असली शीरखिश्त केवल दो प्रकारकी होती है: (१) शीरखिश्त तख्ता और (२) शीरखिश्त अश्की। परन्तु एतदतिरिक्त नकली एव कृत्रिम (बनावटी) शीरखिश्त भी कई प्रकारकी होती हैं। नकली और कृत्रिम शीरखिश्तमें मन्नाइयत (मन्नीन) सत्वका सर्वथा अभाव होता है। कतिपय प्रकारकी नकली शीरखिश्तके नाम अधोलिखित हैं, जो सोथल्ज आर्गेनिक मेटीरिया मेडिकासे नीचे उद्धृत किये गये है. (१) पर्शियन मेन्ना (Persian Manna) अर्थात् तरजबीन जो यवासाके क्षुपसे प्राप्त होता है। (२) टैमेरिस्क मेन्ना (Tamarisk Manna) अर्थात् 'गजगबीन' जो झाउवृक्षसे प्राप्त होता है। (३) ओकमेन्ना (Oak Manna) अर्थात् 'शीरखिश्त बलूती' जो बलूत वृक्षसे प्राप्त होता है आदि। (४) फिक्टिशश मेन्ना (Fictitious Manna) अर्थात् कृत्रिम शीरखिश्त जो आलू की शर्करासे प्राप्त होती है। टिप्प०—तिबमे तरजबीन और गजगबीन पर शीरखिश्त संज्ञाका आरोप नही होता। शीरखिश्तके उपर्युक्त भेदोके अतिरिक्त ईरानी मनीषी नाजिमुल्अतिब्बा सकलित 'पिजिश्कीनामाग्रन्थ' में लिखा है कि 'इस्पन्दन' और 'सफसाफ'से एक प्रकारकी प्रवाही शीरखिश्त (शीरखिश्त माइअ) प्राप्त होती है जिसे फारसीमें 'बेद-खिश्त' कहते है। मख्जनुलअद्वियाके संकलयिता लिखते है कि बिहार, पटना और भागलपुरप्रान्तमे एक प्रकारकी घाससे, जिसे 'हिंदी कतीरा' कहते है, शीरखिश्त प्राप्त करते है जिसे उक्त प्रदेशमें 'हरलालू' कहते है। हकीम मुहम्मद हुसेन और तोह्फाके हाशियालेखक हकीम अब्दुलहमीदने लिखा है कि यह 'हरलालू' गुण-कर्ममें शीरखिश्तके सर्वथा समान है। मुहीतआजम प्रभृति ग्रन्थोमे मन्नके वर्णनमें प्रसगवश सुक्करुल्उशर (मदारशर्करा) और मन्न खरजहरा (कनेरशर्करा)का भी, जो विरले ही प्राप्त होती है, वर्णन किया है।

उत्पत्तिस्थान—सिसली, दक्षिण यूरोप, भूमध्यसागरके तटवर्ती प्रदेश, एशियामाइनर, ईरान और खुरासान आदि। पश्चिमी तिब्बत और कश्मीरमें ६,०००–११,००० फुटकी ऊँचाईपर भी पाया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका जमाहुआ मधुर द्रवपदार्थ है, जो उक्त वृक्षोंके पत्तों, तनों और बड़ी-बड़ी शाखाओंकी छालसे स्वयं स्रवित होकर जम जाता है। बाजारमें निम्न दो प्रकारका शीरखिश्त मिलता है —(१) शीरखिश्त तख्ता जो अँगरेजी औषधालयोंमें प्रयुक्त होता है इसको शीरखिश्ते अँगरेजी (Flake Manna) हल्ताशीरखिश्त–(फा०) भी कहते हैं। और (२) शीरखिश्त शर्का या ममगी (Sortis Manna) अर्थात् शीरखिश्त) जिसके बड़े-बड़े मुलायम अश्रुवत् दाने होते हैं। यह बाहरसे देखनेमें पिलाई लिये सफेद और स्वच्छ गोदके सदृश होते हैं। स्वाद मधुर होता है। मुखमें रखनेपर यह शीघ्र घुल जाता है और पीछे इससे मिठास लिए शीतानुभव होता है। औषधमें प्रायः यही व्यवहृत होता है। इनके अतिरिक्त एक और प्रकारकी शीरखिश्त होती है, जिसे फारसीमें शीरखिश्त चोब (चिकनी)' कहते हैं। वास्तवमें यह विकृतभूत शीरखिश्ततख्ता होती है।

रासायनिक संगठन—ग्लूकोज लगभग ८ ३ प्रतिशत, सुक्रोज ४ १ प्रतिशत या एक तद्वत् सुक्रोज लगभग ५० प्रतिशत तथा चिरखेस्टाइट (Chirkhestite) नामक एक नवीन शर्करा आदि उपादान इसमें होते हैं। बीजमें हाइड्रोसायनिक एसिड होता है।

कल्प तथा योग—शर्बत शीरखिश्त मुरक्कब।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे पहले दर्जेमें गरम एव तर मानते हैं। मतांतरसे यह अनुष्णाशीत (पहले दर्जेमें उष्ण) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्नेहन, पित्त एव विदग्ध दोषविरेचनीय, उरोमार्दवकर, श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता और विशेषकर मृदु, दोषत्रयविरेचनीय और उष्ण (पित्तज) ज्वरनाशक है। सारक एव विरेचनकी भाँति यह उष्ण व्याधियों विशेषकर पित्तज ज्वरमें अकेले गुलाबजलके साथ प्रयुक्त होता है। गर्भिणी स्त्रियो, शिशुओं और कोमल प्रकृतिके लोगोंको, जिन्हें अन्य विरेचन औषधियोंके पीनेसे कष्टानुभव होता है, उन्हें इसका उपयोग कराते है। यह निरापद विरेचन है। उर मार्दवकर एवं श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता होनेके कारण उर फुफ्फुसके खरत्व एव उष्ण कासमें इसका उपयोग गुणदायक है। स्नेहन होनेके कारण चेहरेका रग निखारनेके लिए इसका पतला लेप करते है। इसका प्रचुर उपयोग वायुकारक, आटोपकारक (पेटमें गुड़-गुड़ाहट पैदा करता), शुक्रतारल्यजनक एव शीघ्रपतनकारक है और मृदु (गुल्म) रोगीके लिए अहितकर है। शीरखिश्त समगीमें भी ये ही गुण होते है। निवारण—बादामका तेल, अर्क गुलाब और सोफ। प्रतिनिधि—तुरंजबीन तरंजबीन। मात्रा—२ तोलेसे ४ तोले तक।

●

(५६१) शीशम

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) शीशम, सीसम, सीसो, (अ०) सासम, सासिम; (फा०) शीशम, (स०) शिंशपा, कृष्णसारा, (ब०) शिशुगाछ; (प०) टाहली; (म०) शीसव, (गु०) सीसम, (अ०) सीसु (Sissoo)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध वृक्ष है जिसकी लकड़ीका बुरादा (बुरादए शीशम) औषधके काममें आता है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क मानते हैं। मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम मोतदिल है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—लेखन (मुहज्जिल वदन), उदरकृमिनाशन, रूक्षण और विशेषकर रक्तशोधन है। रक्तप्रसादनके निमित्त आतशक, कुष्ठ, किलास, कण्डू और फोडे-फुंसियो तथा अन्यान्य त्वचाके रोगोमें इसकी लकडी के बुरादेका फाट, क्वाथ या शर्वत प्रयुक्त होता है। जूतेकी रगडसे पैरमें होनेवाले जख्म (चमरस)के लिए इसके पत्तो को पीसकर पतला लेप करते है। यह दाह (सोजिश) मिटाता और जख्मको सुखा देता है। इसकी लकडीको जलानेसे उसके दूसरे सिरेपर जो द्रव निकलता है, उसे दादपर लगानेसे लाभ होता है। पत्र शामक (मुसक्किन) है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण–बबूरका गोद और शहद। प्रतिनिधि–आवनूस। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) क्वाथ एवं फाण्टके रूपमे प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—शीशम कषाय, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, वर्ण्य, गर्भपात करनेवाली तथा कण्डू, मूत्राशयके रोग, हिक्का, शोथ, विसर्प, मेदके रोग, कुष्ठ, श्वित्र, वमन, कृमि, दाह, रक्तविकार और कफका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २५, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३)। शीशमकी लकडीका तेल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रण-शोधन तथा कृमि, कुष्ठ और वातविकारका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—पत्रक्वाथ सूजाकमें उपयोगी है। पत्तियोका स्वरस रक्तप्रदरमे पिलानेसे लाभ होता है।

●

(५६२) शुकाई

फ़ैमिली . काम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(भा० बाजार, अ०) शुकाई, (यू०) Akatha arabika (D 3 13), (अ०) अल्शुकाआ (इ०वै०) अल् शौकतुल् अरबिया, जू सलासुल् शौकात (इ० वै०), (म०) सकायी, (लै०) वाल्टारेल्ला (**Volutarella Spp.**), अरेबियन थॉर्न (Arabian Thorn)।

वर्णन आदि—यह बादावर्दकी जातिकी एक कँटीली वनस्पति है जिसका काण्ड तिपहल और उँगलीके बराबर मोटा होता है। पत्ते तिकोने किंचित् मोटे और रोइंदार होते है तथा उनकी प्रत्येक नोकपर काँटा होता है। फूल पिलाई लिए नीले (बनफ्शई), बीज बारीक, तिकोनिया, खाकस्तरी और मधुर होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और मूल। इनमें मूल अधिक वीर्यवान् होता है। बाजारमे सूखे पचागके टूटे-फूटे टुकडे मिलते हैं जिनमें जडका अत्यल्प अश विद्यमान होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—यह उपशोषण, सग्राही, श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, दीपन, यकृद्बलवर्धन तथा ज्वरघ्न है और जीर्णज्वरो एव यकृत्के रोगोमें विशेष गुणकारी है।

उपयोग—शुकाई अधिकतया यकृत् और आमाशयके रोगो तथा पुराने ज्वरोमें प्रयुक्त की जाती एव गुणकारी है। गलशुण्डीशोथ (वरम लहास)को विलीन करने और दतशूलनिवारणके लिए इसके क्वाथसे गण्डूष (गरगरे) कराते है। अतिरज और जीर्ण अतिसार बद करनेके लिए इसकी जडका क्वाथ पिलाते हैं तथा अतिरज एव गुदशोथमे अवगाह (आबजन) कराते है। अहितकर–फुप्फुसोके लिए। निवारण–कतीरा गोद। प्रतिनिधि–बादावर्द। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(५६३) शौकरान

(फ़ैमिली ऊम्बेल्लीफेरी (Family . Umbelliferae)

नाम—(यू०) Konion, (अ०) कूनियून, शौकरान; (फा०) दोरस, तप्त, (लें०) कोनीउम् माकूलाटुम् (**Conium maculatum** Linn), (अं०) हेमलॉक (Hemlock), कोनायम (Conium)।

वक्तव्य—इसकी लैटिन संज्ञा 'कोनिउम्' इसकी यूनानी संज्ञा 'कोनियोन' से, जिसको बुकरातने रखा था और जिसका अरबी रूपान्तर 'कूनियून' है, व्युत्पन्न है। रूमी भाषामें इसको सिक्यूटा (Cicuta) कहते हैं।

शेख़ुर्रईस बूअलीसीनाने लिखा है कि 'कूनियून' से शौकरान अभिप्रेत है और कभी-कभी जो इसका उल्था किया गया है, वह अयथार्थ है। इब्नबैतार और हाजी जीनुल अत्तार भी कोनियूनको शौकरान ही बताते हैं। इब्न बैतारके कथनानुसार स्पेनमें इसको 'टफूज' कहते हैं और हाजी ज़ीनुलअत्तारके कथनानुसार यज्द जिलो (ईरान)में इसको दोरस कहते हैं। सर्वोत्तम वह है जो तप्त पर्वत पर उत्पन्न होती है और दोस्त तप्ती कहलाती है। मुल्ला नफीसने भी शरहअस्बाबमें ऐसा ही लिखा है। इसकी जड़को बेखतप्त कहते हैं।

डॉ० डाइमॉकके कथनानुसार भारतवर्षके कतिपय स्थानो यथा बम्बई आदिमें शूकरानका बाजारू नाम 'किर्द-माना' और 'अजवायन खुरासानी' है जो सर्वथा मिथ्या है। मुहीत आज़मके लेखकके अनुसार कोई-कोई सुकरानको 'बागर मोठ'की जड़ (बेख मोठदस्ती) मानते हैं। यह भी असत्य है और जिन्होने इसे 'कालापोस्ता' लिखा है, उन्होंने भी यह आशंका किया है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी हकीम इसको अच्छी तरह जानते थे। प्राचीनकालमें यह अपने घातक प्रभावके कारण प्रसिद्ध थी। मुतरां एथेन्सनिवासी जब किसीको मृत्युके घाट उतारना चाहते थे तब इसको पोरताके काढेमें मिलाकर देते थे। हकीम सुकरात[1] (Socrates)को यही विष पिलाकर मृत्युके घाट उतारा गया था। इसलिए इसको 'शौकराने सुकरात' भी कहते हैं। अरबी और अजमी चिकित्सकोने उक्त औषधिके गुण-कर्मवर्णनमें यूनानी चिकित्सकोका ही अनुकरण किया है। भारतीयोंने इसका उल्लेख नही किया।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और उत्तरी समशीतोष्ण एशिया। इंगलैंडमें साधारणरूपसे होता है।

वर्णन—यह 'शौकरान कबीर' या 'शौकरान सुकरात'के ताजे पत्र और छोटी-छोटी शाखायें होती हैं जो जूनके महीनेमें उक्त वनस्पतिमें फल आते समय तोडकर संग्रह कर ली जाती हैं तथा औषधिमें प्रयुक्त की जाती हैं। पत्र चिकने और साफ, पत्रप्रांत गहरे कटे हुए और नोक तेज होती है। गंध तीक्ष्ण एवं अप्रिय, स्वाद अरुचिकर, इसमें सोयेके समान छत्र लगता है जिससे अनीसूँ की तरहके बीज निकलते हैं।

उपयुक्त अंग—पुष्प, पत्र और जड़ (बेखे तप्त)।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) कोनिईन (Coniine जौहर शौकरान), एक स्नेहमय उत्पत् प्रवाही क्षारोद जिसमेंसे चूहोंकी-सी दुर्गन्ध आती है और जो इसका वीर्य है, (२) मीथिल कोनिईन (Methyl coniine) एक रंगरहित प्रवाही क्षारोद; (३) कोनहाइड्राइन (Conhydrine) एक निर्वीर्य क्षारोद और (४) कोनिक एसिड आदि उपादान होते हैं।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें शीत और तीसरे दर्जेमें रूक्ष।

---

[1] हकीम सुकरातका जन्म और मृत्यु स्थान यूनानकी राजधानी एथेंस, जीवनकाल ईसवी सन् ४६९ से ३९९ पूर्व था। इस धर्मप्राण ईश्वरभक्त यूनानी दार्शनिकको मूर्तिपूजाके विरुद्ध ईश्वरपूजनकी शिक्षादेनेपर यूनानी मूर्तिपूजकोंने उन्हें बन्दी बना दिया और तत्कालीन ग्यारह न्यायाधीशोंने उन्हें वधयोग्य होनेका फैसला दिया। अततोगत्वा उस बेचारे निरपराधीको बन्दीखानामें ही विष देकर मार डाला गया।
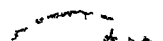
गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौर पर उपयोग करनेसे शूकरान स्वापजनक, वेदनास्थापन और आक्षेपहर है। स्तनो पर लेप करनेसे स्तन्यका शोषण करती है तथा उदरके ऊपर लेप करनेसे यह दस्तोको बन्द करती है। आतरिक उपयोगसे यह आक्षेप का निवारण करती, नीद लाती, वीर्यका शोषण करके शुक्रस्तभन करती और नशा लाती है। यह विशेषकर शामक और स्वप्नजनन है तथा स्वप्नदोषके लिए गुणदायक है। उष्ण आमवात, कक्षा, काल-स्फोट या जमरा (ऐन्थ्रैक्स), विसर्प और नेत्रशूल आदिमें वेदनाशमनके लिए इसका पतला लेप लगाते है। स्तनो-का स्तन्यशोषण और स्तनसकोचनके लिए इसका लेप करते है। दस्तोको बद करनेके लिए उदरपर और नकसीर बन्द करनेके लिए मस्तक पर इसका लेप करते है। आक्षेपनिवारक और सशमन होनेके कारण इसे आक्षेपयुक्त व्याधियो, जैसे—बालापस्मार, कम्पवात, पक्षवध और कालीखांसीमें भी देते है। इसे शुक्रस्तंभन औषधियोमें मिला-कर खिलाते है। विषलक्षण—शूकरान एक साघातिक जहरीली औषधि है। इसके अधिक प्रमाणमें खानेसे शरीर की मासपेशियाँ वातग्रस्त हो जाती है। दृष्टिमें विकार उत्पन्न हो जाता है। कण्ठस्थ पेशियोके वातग्रस्त होनेसे निग लना कठिन हो जाता है और अन्तत श्वास अवरुद्ध हो जानेके कारण रोगी यमलोक सिधारता है। अहितकर—दृष्टिको कम करती है और आक्षेप एव कठशोथ (खुनाक) उत्पन्न करती है। निवारण—अफसतीन, जुदवेदस्तर और कालीमिर्च। प्रतिनिधि—अजवायन खुरासानी। मात्रा—१२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक। ७ माशेकी मात्रामें सांघातिक है।

●

(५६४) शैलम

फैमिली . ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) मूछ्नी, (अ०) शैलम, (फा०) समुक, गंदुम दीवान, (यू०) ऐरा, (ले०) लोलीडम् टेमूलेन्टुम् (**Lolium temulentum** Linn.); (अं०) बिअर्ड डार्नेल (Beared Darnel)।

उत्पत्तिस्थान—एशिया, यूरोप और उत्तरी अफरीका। भारतवर्षमें गगाके ऊपरी मैदान, पजाब, सिन्ध और पश्चिम हिमालयमें गेहूँ आदिके खेतमे उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह एक पौधेके दाने है जा जौसे बहुत छोटे, ललाई लिए और स्वादमें तिक्त होते है। पौवा गेहूँके पौधेकी तरह होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें टेमूलीन (Temuline) नामक ऐल्केलॉइड स्वभावका एक विषैला सत्व होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, श्वयथुविलयन, स्वापजनन, वेदनास्थापन, स्वप्नजनन और मदकारि है। दद्रु, गज और कन्डूमें इसे सिरकामें पीसकर लगाते और झाईमें गधकके साथ लेप करते हैं। पार्श्वशूलको शमन करनेके लिए मद्यके साथ पीसकर लगाते है। इसके अतिरिक्त व्रणशोथको विलीन करने एव दारणके लिए उपयुक्त औषधियोके साथ इसका लेप करते है। मात्रा—आतरिक उपयोग नही होता।

नव्यमत—गदुम दीवानाका आटा (Darnel meal) शामक पुलटिस है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह चेहरेके दाग-धब्बे (Freckles)को ठीक करता है।

●

(५६५) संखाहुली

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) सखाहुली, सखहुली, कौडियाला, (स०) शखपुष्पी, (गु०,प०) शखावली, (म०) शंखाहुली, शखवेली, (लै०) कॉन्वॉल्वुलस् प्लुरीकाडलिस् (**Convolvrulus pluricaulis** Chois) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे साधारणतया खुली, घासमय एव सख्त ककरीली और बजर भूमिमे उत्पन्न होती है ।

वर्णन—यह चौमासेमें बहुत होती है । कही-कही इससे पूर्व बैसाख-जेठमें भी होती है । इसके क्षुप ५से १५ सें० मी० (२से ६ इञ्च) तक ऊँचे बढकर बादमें जमीनपर फैल जाते है । पत्र एकातर, रेखाकार, १ २५से ३ ७५ सें० मी० (½ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बे एव सूक्ष्म सफेद रोइयोसे व्याप्त होते है । पुष्पदण्ड पत्रकोणीय एव रोमयुक्त; पुष्प कीप वा छूछीकी आकृतिके (कटोरीनुमा), सफेद, किसी कदर गुलाबी होते है । मूल सुतलीके समान वा अगुली जैसा १० सें० मी० से १५ सें०मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च), कभी-कभी ३० से ४५ से०मी० (१ या १½ फुट) तक लम्बा, किंचित् रेशेदार, भूरापन लिए सफेद रगका होता है । इसकी एक दूसरी जातिको जिसके फूल भडकीले नीले रगके होते है, विष्णुकान्ता कहते है । लेटिनमे इसको **एवॉल्वुलस् आल्सीनोइडेस (Evolvulus alsinoidees** Linn) कहते है । ये दोनो गुणमे समान होती है । यह अपराजितासे भिन्न है ।

उपयुक्त अंग—पचाग और मूल । मात्रा—स्वरस २३ ० ग्राम से ४६ ५ ग्राम या २ तोला से ४ तोला, चूर्ण (३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशे), फाण्ट (४ तोला से ८ तोला) ।

प्रकृति—उष्ण एव तर । आयुर्वेदमे इसे अनुष्ण लिखा है । (कै० नि०) ।

गुणकर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक होनेसे फिरग, सूजाक और रक्तविकारजन्य रोगोमें इसे कालीमिर्चके साथ पीस-छान शीराबनाकर पिलाते है । इस प्रकार इसे रक्तार्श (खूनी बवासीर) एव वातार्शमे भी सेवन कराते है । रक्तशोधन होनेके अतिरिक्त यह सारक भी है । स्मृतिवर्धनके लिए तथा सूजाक, शुक्रमेह और मधुमेह (जिया-बेतिस)में इसका चूर्ण बनाकर खिलाते है । शुक्रप्रमेह (जरयान मनी) और शुक्रतारल्यमें इसके जडकी छाल उपयोग की जाती है । नेत्ररोगोमे भी इसका सेवन गुणकारी बताया जाता है । मात्रा—७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक । जड़—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—शखपुष्पी कषाय, कटु, तिक्त, सारक, मेध्य, वृष्य, बल्य, जठराग्नि और कान्तिको बढानेवाली, स्वर्य, रसायन तथा मानसरोग, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, कृमि, विष, अनिद्रा और भ्रमको दूर करने-वाली है । (च० चि० अ० १, भा० प्र०, कै० नि०) ।

नव्यमत—शखपुष्पी दीपन, पाचन, आनुलोमिक, शामक, ज्वरघ्न, पौष्टिक और गर्भाशय, मस्तिष्क तथा नाडियोको हितावह है । उन्मादमें २–४ तोला ताजी शखपुष्पीका स्वरस देनेसे दस्त साफ होता है और मद उत-रता है । बद्धकोष्ठ, गुल्म और आनाह इन रोगोमें इसकी जड देते है । इससे दस्त साफ होकर शारीरिक विष बाहर निकल जाता है । ज्वरमें प्रलाप होनेपर मस्तिष्कको शक्ति देने और नीद लानेके लिए इसका फाट देते है । विष्णु-क्रान्ता तिक्तबल्य, ज्वरघ्न तथा कृमिहर है । प्रवाहिकामे इसका उपयोग करते है । दमा और पुरानी खाँसीमें इसकी पत्तियोका धूम्रपान करते हैं ।

●

(५६६) संगतरा

फैमिली : आउरान्टिआसे (Family Aurantiaceae)

नाम—(हिं०) सगतरा, सतरा, सत्रा, सोतरा, रगतरा, (अ०) नारज, (फा०) नारग, (स०) नागरङ्ग, नारङ्ग, (द०) नारंगी, (म०) सत्रे, नारिंग, (गु०) नारगी, (बं०) नारेंगा (रुगि); (ले०) सीट्रस् आउरान्टिउम् (**Citrus aurantium** Linn), (अ०) स्वीट ऑरेन्ज (Sweet Orange) ।

उत्पत्तिस्थान—चीन तथा कोचीन चीनका आदिवासी है। समस्त भारतवर्षके उष्ण एव आर्द्र प्रदेशो विशेषकर छोटानागपुरमें इसके वृक्ष लगाए जाते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध ससारके समस्त फलोसे स्वादिष्ट मेवा (वडी और मीठी नारगी) है। यह सेवके वरावर और पिलाई लिए लाल रगका होता है। इसका छिलका (फा०) पोस्त-नारग, (अ०) कश्रुन्नारग) चिकना एव समतल होता है और छिलकेमे कई फाँके लिपटी होती हैं जिनका स्वाद मधुर एव स्वादिष्ट होता है। छिलकेका स्वाद तिक्त और गधप्रिय होती है। दे० 'नारगी'।

उपयुक्त अग—फलका गूदा और छिलका।

रासायनिक सगठन—फलरसमे अनेक विटामिन तथा ऑर्गैनिक लवण प्रभूत मात्रामें होते हैं। इनमें प्रधानत शर्करा, सिट्रिक अम्ल (Citric acid), सिट्रेट ऑफ पोटास (२% से ३%) आदि जैसे इन्-ऑर्गैनिक लवण हैं। छिलकेमे उत्पत् तैल (Neroli oil), रालदारगोद, एक अनुत्पत् तेल, ग्लूकोसाइड्स, कषाय द्रव्य और राख ४%-५% प्रभृति उपादान होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव स्निग्ध।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, पित्तघ्न, कोथप्रतिवन्धक और विशेषकर मन प्रसादकर एव सशमन है। छिलका लेखन है। सोमनस्यजनन होनेके कारण यह हृदयदौर्बल्य और हृत्स्पदनको दूर करता और हृदयको वल प्रदान करता है। पित्तघ्न होनेके कारण तृष्णा एव सतापको शमन करता और रक्तप्रकोपको शात करता है। कोथप्रतिवधक होनेके कारण वायुके विषको दूर करता है। महामारीके प्रसारकालमे इसका खिलाना या इसका शर्वत पिलाना हितकारक है। लेखन होनेके कारण छिलकेको उवटनो (गाजा)में डालते हैं। यह रगतको निखारता और चेहरेकी झाई आदिको दूर करता है। अहितकर–शीत प्रकृतिको। निवारण–शुद्ध मधु। प्रतिनिधि–मीठा रगतरा। मात्रा–सतरा २–३ तक खा सकते है और इसका स्वरस ४–५ तोले तक।

●

(५६७) संदरूस (चंद्रस)

फैमिली : डीप्टेरोकार्पासे (Family Dipterocarpaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) सफेद डामर, (स०) सर्ज, (ते०) तेल्लदामरु, (ता०) वेल्लै कुन्दिरिक्कम्, (मल०) पइन, पय(व)नि०, (ले०) वाटेरिया इंडिका (**Vateria indica** Linn), (राल जैसा) निर्यास, (हिं०) चदरस, चन्द्रस; (अ०) सन्दरूस (इ० वैं०), (स०) सर्जरस; (व०, प०), सुदरस, (क०) सिंद्रुस, (यूनानी वैद्यक) सद्रस, सदरस; (द०) कहरवा, (अ०) सैंडरक (Sandrach), डामर रेजिन (Damar Resin)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—इसका बड़ा सुन्दर वृक्ष मलबार, दक्षिण भारतवर्ष, पश्चिमी घाटकी पहाड़ियों तथा पश्चिमी प्रायद्वीप आदिमें होता है। इसके पेड़से राल जैसा निर्यास निकलता है जिसे चंद्रस (चदरस) कहते हैं। इसके टुकड़े देखनेमें कहरुवा जैसे मालूम होते हैं। यह विभिन्न रंग, गन्ध और गुरुत्वके होते हैं। इनकी उक्त विविधता, गोंदके संग्रहविधि भेदके कारण तथा वृक्षके अवस्थाभेदसे उत्पन्न होती है। इनमें कोई हलका हरेरंगके, घन, समरूप और नोकनेपर काचवत्, परन्तु दूसरे इससे भिन्न कोशाकार (Vesicular) और अवरी रंगके (Amber-coloured) होते हैं। इसके उत्तम अवरी रंगके टुकड़े कहरुवा नामसे दक्षिण भारतवर्षके बाजारोंमें बिकते हैं। जलानेपर यह उज्ज्वल एवं स्थिर प्रकाश और सुगन्ध देता है; किंतु धुआँ बहुत कम देता है। थोड़ा कपूर मिलाने और अग्निपर रखनेसे यह मद्य (स्पिरिट) में विलेय होता है। इसको आँचपर गलानेसे यह मोम और तेलमें मिल जाता है और उत्तम मरहमका रूप ग्रहणकर लेता है। उत्तम चंद्रस वह है जो कहरुवाके समान तिनकेको अपनी ओर खींच लेवे। इसमें २० वर्षतक वीर्य रहता है। चंद्रस और कहरुवाका अन्तर जाननेके लिए 'कहरुवा' देखें।

रंगके विचारसे यह चार प्रकारका होता है। उनमें रक्त एवं उज्ज्वल चंद्रस श्रेष्ठतर होता है। चंद्रस वार्निश और मरहम बनानेके काममें आता है। इस (सफेद डामर) के बीजोंसे तेल निकाला जाता है जो कोकमके तेल जैसा जमा हुआ, पीला और सुगन्धित होता है। विरुद्ध आमवातमें इसका स्थानीय प्रयोग करते हैं।

अफ्रीकामें होनेवाले ट्राकेलोस्पेर्मुम् हार्नेमान्निआनुम् (**Trachelospermum hornemannianum Hayne**) नामक एक निम्बोपुष्पके वृक्ष अर्थात् 'विदेशी डामर' से प्राप्त राल (Fossil resin (Gum Copal) को भी 'भारतीय बाजारोंमें संदरूस' कहते हैं, ऐसा श्री दीमक महोदयका मत है। (फा० इ० भाग १, पृ० ५१०)।

प्रकृति—चन्द्रस दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुण-कर्ममें यह (चद्रस) कहरुवा और राल (यूरोपीयन रेजिन) के समान है। यह आमाशय और आँतोंके कफको छाँटता (लेखन) है तथा पेटके कीड़ोंको मारता है। इसका मंजन दाँतों और मसूढ़ोंको शक्ति देता है तथा उनके स्रावको रोकता है। इसकी धूनी अर्शमें लाभ पहुँचाती है और व्रणको सुखाती है। इसका अंजन नेत्रको शक्ति देता है। चन्द्रस मूत्र और आर्तवकी प्रवृत्ति करानेवाला है। इसका तेल कानमें डालनेसे कानकी पीड़ा शान्त होती है। चन्द्रसके सेवनसे शरीरकी स्थूलता नष्ट होती है। यह पसीना आनेको रोकता है। सर्जके तेलमें सफेदा (जस्तेका फूल) और चन्द्रस मिलाकर लगानेसे सिरके गंजमें लाभ होता है। गुणकर्ममें यह कहरुवा और रालके समान है। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशे से ३ माशे) तक।

नव्यमत—चद्रसके गुण यूरोपियन रेजिनके समान हैं। यह व्रणशोधन और व्रणरोपण है। तेल वेदनास्थापन है। उत्तम व्रणरोपण होनेके कारण इसका मरहम सभी प्रकारके व्रणोंमें उपयोगी है। तेल जीर्ण आमवातमें गुणकारी है। अन्य द्रव्योंके मरहम बनानेमें तेल काममें आता है।

कल्प—मरहम—(चद्रस ५ भाग, राल ५ भाग, मोम २ भाग, तिलका तेल ८ भाग सबको एकत्र आगपर पिघला, कपड़ेसे छानकर मरहम बनावें)।

●

(५६८) सँभालू

फ़ैमिली : वेर्बेनासे (Family Verbenaceae)

नाम—(हिं०) सम्हालू, सँभालू, म्योडी, मेउ(व)डी, (अ०) अस्लक, फजजि(कि)ञ्त, जूखम्सतुल् औराक, जूखम्सते असावेअ; (फा०) पजगुश्त, (सं०) निर्गुण्डी, सिन्दु(न्धु)वार, (सथा०) सिदवार, (द०) शेमालू, शवाली, (व०) निशिन्दा, (गु०) नगोड, नगद, (म०) निर्गुडी, निनिगड, (कु०) सेंवाली, (उडि०) निगुण्डी, (नर०) सिनुआर, (लें०) वीटेक्स नेगुडो (Vitex negundo Linn), (अं०) फाइव्ह-लीव्हड चेस्ट-ट्री (Five-leaved Chaste-tree) । बीज—(हिं०) सम्हालूके वीज, (अ०) अस्लक, हब्बुल्फक्द, हब्बुत्ताहिर, (फा०) फिल्फिल कोही, दिल आशोब, तुख्म पजगुश्त, (गु०) हरेणु, रेणुक वीज ।

वक्तव्य—ये वीज ईरानसे 'रेणुका' नामसे आते हैं तथा निर्गुडी कुलके वीटेक्स आग्नुस् कास्टुस् (Vitex agnus-castus Linn) नामक विदेशी वृक्ष के बीज होते हैं; किन्तु यह आयुर्वेदोक्त 'रेणुका' नही है। इसके क्षुप या वृक्ष उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष तथा ईरान आदि देशो में होते हैं । शाखायें चौपहल, पत्रनाल लम्बा, पत्ती करतलाकार सयुक्त, पत्रक पॉंच, कभी-कभी सात भी, भालाकार और लम्बे नोकवाले होते हैं । सफेद फूलवाली मेउडीको सस्कृतमे सिंदुवार (सिन्धुवार) और लैटिनमें वीटेक्स ट्रीफोलिआटा या ईन्सीजा (Vitex trifoliata or incisa) कहते है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में इसके (छोटे) वृक्ष वगीचो और पहाडोमें होते है ।

वर्णन—फलके रग, पत्तेकी आकृति एव पत्रसन्निवेशभेदसे निर्गुंडी अनेक प्रकारकी होती हैं । नीले फूलकी निर्गुण्डी की झाड होती है । काड मनुष्यके जघातुल्य स्थूल, शाखायें फैली हुई तथा पत्र सयुक्त (परन्तु किसी-किसी नवीन टहनी पर साधारण और सरल या ऊपर की ओर दन्तमय धार के) होते हैं । पत्रक सख्या में ३ या ५ (दूसरी जातिमे १से३) और भालाकार होते है, जो २ ५ सें०मी०से १२ ५ से० मी० (१ इच से ५ इच) लम्बे तथा १ २५ से ३ ०५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) चौडे और छोटे-बडे होते है । इनसे एक अत्यन्त तीव्र गध आती है (मसलने पर उक्त गध अधिक स्पष्ट होती है) । पुष्प नीलाभ या बैंगनी सफेद होते हैं । बीज (फल) कालीमिर्चके समान, किन्तु उनसे अधिक छोटे और रगतमे कोई सफेद और कोई काले होते है ।

उपयुक्त अग—पत्र (बर्गे सँभालू) बीज वा फल (तुख्मे सँभालू) ।

रासायनिक सगठन—पत्र में सँभालूके पत्रक गधवाला एक रगरहित उत्पत् तेल और राल, बीज वा फलमें एक चरपरा राल, एक कपाय सैन्द्रियक अम्ल, सेवाम्ल, एक क्षारोद अशत और एक रजक द्रव्य। ईरानी बीजमे कैस्टीन (Castine) नामक एक तिक्त वीर्य, एक बनफ्शई तीक्ष्ण पदार्थ, एक स्वतत्राम्ल और वसामय तेल प्रभृति उपादान होते है ।

पत्र—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम एव खुश्क। आयुर्वेदमे उष्णवीर्य (ध० नि०) एव रूक्ष (रा० नि०) तथा इसके फूलको शीतवीर्य एवं पित्तनाशक लिखा है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पत्र (बर्गेसभालू) लेखन, वेदनाहर, कठिनश्वयथुविलयन, कोथप्रतिबधक और विशेषकर यकृत् एव प्लीहाके अवरोधका उद्घाटनकर्ता है । दृष्टिको शक्ति देनेके लिए इसके पत्तोका रस नेत्रके भीतर आश्च्योतन करते हैं । कठशूल और मुखव्रणको शमन करनेके लिए इसके पत्रक्वाथसे गण्डूष कराते हैं । गर्भाशयशोथ जरायुशूल वृपणशोथ और गुदशोथमें इसके काढेमे कटिस्नान (आबजन) कराते हैं । वायुजन्यशूल, जरायुशोथ

और कठिन शोथो पर इसके पत्तोंका अकेले तथा अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ भुडता बनाकर बांधते हैं और तेल में जलाकर मरहम जैसा बनाकर प्रकोथयुक्त (दुर्गन्धित) व्रणोपर लगाते है। इसके प्रकोथ दूर होकर व्रण सूख जाने है। अहितकर—शिर दर्दकारक और वृक्कके लिए अहितकर है। निवारण—बबूलका गोद और कतीरा। प्रतिनिधि—शाहदाना। मात्रा—पत्रका आतरिक उपयोग नही होता।

बीज—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रुक्ष।

गुण-कर्म—सँभालूबीज (तुख्मे सँभालू) श्वयथुविलयन और तारल्यजनन है तथा संग्राही होनेपर प्रमाथी भी है तथा कुछ वातानुलोमन, वीर्यशोषणकर्ता और कामावसादकर है।

उपयोग—सँभालूके बीजोको कठिन शोथो विशेषत प्लीहाके कठिन शोथको विलीन करनेके लिए सिकजबीनके साथ खिलाते है तथा सिरकामे भिगोकर गुनगुना टकोर (तक्मीद) करते है। अफारा (नफख शिकम)को दूर करने के लिए इसे खिलाते है तथा यकृत् एव प्लीहाके अवरोधोद्घाटनार्थ उपयोग करते है। मैथुनेच्छाको कम करने तथा वीर्यको शुष्क करनेके लिए इसे सिरकाके साथ खिलाते है तथा इसका काढा पिलाते है। मूत्रार्तवजननके लिए इसका सेवन गुणदायक वर्णन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका अनोखा स्वभाव यह वर्णन किया जाता है कि यद्यपि यह वीर्यका शोषण करता है, तथापि स्तन्यकी वृद्धि करता है। सफूफ फजकिश्त इसका प्रसिद्ध योग है जो वीर्याधिक्यजनित शुक्रप्रमेहमें सेवन किया जाता है। मात्रा—२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सँभालू कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष तथा कफ, वात, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहाके रोग गुल्म, अपची, क्षय, कण्डू, शूल, कास, वातरोग, प्रदर और आध्मानका नाश करनेवाला है। ('च० सू० अ० ४', सु० सू० अ० ३८, ध० नि० रा० नि०)। सँभालू (सिन्धुवार)के पुष्प शीतवीर्य और पित्तनाशक है। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—सँभालू कटु, तिक्त, कषाय, लघु, उष्ण, दीपन, वातप्रशमन, वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, उत्तम शोथघ्न, कफनि सारक, ज्वरघ्न, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, कफघ्न, कासहर, मूत्रजनन, आर्तवजनन, कृमिघ्न, मस्तिष्कबलदायक, बल्य और रसायन है। किसी भी प्रकारकी बाहरी या भीतरी सूजन सँभालूसे आराम होती है। शोथमें सँभालूका पत्रस्वरस अथवा मूल या पत्तोंका काढा पिलाते है और उनको गरम करके सूजनपर बांधते है। फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरणशोथ, अन्त्रकलाशोथ, सन्धिशोथ, आमवात, वृषणशोथ आदिमें सँभालूसे उत्तम लाभ होता है। स्नायुक (नहरवा या नारू) रोगमें इसका स्वरस पिलाते है और पत्तियोके कल्कका लेप करते है। सँभालूके पत्रस्वरससे सिद्ध किया हुआ तेल पूयकर्णमे कानमें डालते हैं। सूतिकाज्वरमें सँभालूसे गर्भाशयका सकोचन होकर दूषित रक्त निकल जाता है और गर्भाशयकी सूजन उतरकर गर्भाशय पूर्व स्थितिपर आता है। सूतिकाज्वरमें सँभालूको खिलाते है तथा जननेन्द्रिय और पेड़पर पत्तियोको गरम करके बाँधते है।

●

(५६९) सकबीनज

फैमिली ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) कदल, (यू०) Sagapenon; (भा० बाजार) सक(ग)बीनज, (अ०) अल्सकबीनज (इ० बै०), सक(ग)बीनज, (फा०) सबवीन, इस्कबीन, इसकबीन, (लै०) सैगापेनुम् (Sagapenum)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, इस्फहान आदि। वहीसे बम्बईमे इसका आयात होता है।

वर्णन—यह जवाशीरकी जातिके एक वृक्षका गोंद है, जो बाहरसे रक्त और पीत तथा भीतरसे आर्द्रतायुक्त सफेद अक्षुवत् दानोसे बनी डलीके रूपमे होता है। गन्ध तीव्र हिंगु और गन्धाविरोजेके बीच तथा स्वाद किंचित् तिक्त होता है। इसमे २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—सगठनके विचारसे 'सकबीनज' का फारसी 'जवाशीर'के साथ निकट सादृश्य होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर उपयोग करनेसे सकबीनज लेखन, शोणितोत्क्लेशक तथा विलयन और संशमन है। आतरिकरूपसे उपयोग करनेसे यह जलीय एव कफके विरेक लाता है तथा विरेचन औषधियोके अवगुणोका परिहार करता, उदरकृमियोको नष्ट करता तथा मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता और वस्तिवृक्काश्मरीको निकालता है। यह विशेषकर मूत्रार्तवजनन तथा मोतियाबिंदको लाभप्रद है। सकबीनजको पक्षवध, आमवात, शीतल शिर शूल, अपस्मार, गृध्रसी और जलोदर जैसे कफज एव वातज रोगोमे बहिराभ्यतरिक रूपसे उपयोग करते है। त्वचाके रोगोमे इसका लेप करते है। कठिन शोथो जैसे कण्ठमाला (खनाजीर)मे इसे सिरकेमे पीसकर लेप करते है। वाजीकरणार्थ इसका शिश्नपर लेप करते है। उदरकृमियो तथा वस्तिवृक्काश्मरीके निर्हरणके लिए इसे खिलाते है और आर्तवप्रवर्तनके लिए इसको पिलाते तथा योनिमे इसकी फलवर्ति रखते है। अहितकर–आतरिक श्वयथुकारक। निवारण–कतीरा और बादामका तेल। प्रतिनिधि–बिहरोजा। मात्रा–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

•

(५७०) सकमूनिया (आ)

फ़ैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family Convolvulaccae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार, म०, प०, सि०) सकमूनिया, (यू०) स्काम्मोनिआ Skammonia (D 4 1(8) (अ०) अलसकमूनिया (इ० बै०), (अ०, फा०) सकमूनिया, महमूदा, (ते०, ता०) मामूदा; (ले०) स्काम्मोनिउम् (Scammoniun), (अं०) स्केमोनी (Scammony), वर्जिन स्केमोनी (Virgin Scammony)। (रालीयगोद) निर्यासोद्यास—(हिं०, उ०) सकमूनिया, (अ०) रातीनज सकमूनिया, (ले०) स्काम्मोनी रेजिना (Scammoniae Resina), (अं०) स्कैमोनी रेजिन (Scammony Resin)।

वक्तव्य—'स्केमानिआ' या 'सकमूनिया' क्रमश यूनानी व अरबी सज्ञाये है। अरबीमे इसको 'महमूदा' भी कहते हैं। इसी प्रजातिकी एक अन्य जातिकी बेल जिसे हिन्दीमे **हिरनखुरी** और वैज्ञानिक भाषामे **कॉन्वॉल्वुलस आर्वेन्सिस (Convolvulus arvensis Linn)** कहते हैं, भारतवर्षमे कश्मीरसे कन्याकुमारी तक स्वयजात होती है। इसकी जड विरेचनरूपमे सिन्ध और पजाबमे प्रयुक्त होती है।

इतिहास—'स्केमोनिया' का उल्लेख बुकरात और जालीनूस आदिने भी किया है। कतिपय सकलनकर्ताओका कथन है कि यूनानी चिकित्सक विरेचनार्थ सामान्यरूपसे इसका उपयोग करते थे। किन्तु जालीनूसने इसके विषयमें कुछ नही लिखा। कारण वह केवल आमवातकी औषधियोमें इसका उपयोग किया करता था। आरब्य चिकित्सकोको भी यह औषधि पूर्णतया ज्ञात थी।

उत्पत्तिस्थान—यह भूमध्यसागरीय प्रदेशका मूलनिवासी है। स्याम (Syria) तथा एशियामाइनरमें यह प्रचुरतासे होता है। वहीसे भारतवर्षमें इसका आयात होता है। अब सीमित दायरेमे भारतवर्षमें भी इसका उत्पादन किया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका रालयुक्त गोंद (Gum-resin) है जो एक बेलदार वनस्पति (कॉन्वॉल्वुलस् स्कामोनिआ (Convolvulus scammonia Linn.)की जड़में चीरा (शिगाफ) देनेसे स्रवित होकर जम जाता है। इसका रंग बाहरसे खाकस्तरी या कालाई लिए भूरा होता है। ताजा टूटा तल चमकदार, अर्धस्वच्छ, सुषिरपूर्ण और गहरे भूरे रंगका होता है। गंध विशेष प्रकारकी और स्वाद खराब होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ७० प्रतिशत राल तथा स्कैमोनिन (Scammonin) नामक ग्लूकोसाइड और निर्यास आदि उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—माजून सकमूनिया।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (मतांतरसे खुश्क दूसरे दर्जेमें)।

गुणकर्म तथा उपयोग—बाह्यप्रयोगसे सकमूनिया विलयन है। आन्तरिक प्रयोगसे प्रबल विरेचन है। किन्तु इसका उक्त कर्म उस समय होता है जब यह ग्रहणीमें पहुँचकर पित्तके साथ मिल जाती है। इसके उपरान्त जलवत् पतले विरेक आने लगते हैं। अधिक प्रमाणमें खिलानेसे यह अन्त्र तथा आमाशयमें संक्षोभ (खराश) उत्पन्न करता है। अन्य विरेचन औषधियोंके साथ मिलानेसे सकमुनिया उनके कर्मको तीव्र कर देता है। इसके अतिरिक्त अन्त्र और आमाशयगत कृमियोंपर यह घातक प्रभाव करता है। किन्तु यह प्रभाव अधिक तीव्र नहीं है। यह किसी कदर मूत्रलार्तवप्रवर्तन भी है। खिलाने और योनिमें फलवर्ति धारण करनेसे यह गर्भशातक भी है। यह विशेषरूपसे कफ पित्तविरेचनीय और गर्भशातक है। इसको बाहरी तौरपर झाईं, किलास, न्यच्छ (नमश), व्यंग और दद्रु जैसे त्वचाके पुराने रोगोंमें लेप करते हैं तथा पुराने सिरदर्द, आमवात और गृध्रसीमें विलयन और संशमनके लिए लगाते हैं। इसको आन्तरिक रूपसे खिलानेसे प्रचुरताके साथ पतले विरेक आते हैं। अतएव जलोदर, सन्यास (सकता) और उग्र मलावरोध (कब्ज)में खिलाते हैं तथा विरेचन औषधियोंका कर्म तीव्र करनेके लिये इसे उनके साथ मिलाकर देते हैं। उदरकृमियोंको नष्ट करने तथा निर्हरणके लिये इसे निशोथके साथ उपयोग करते हैं और आमाशयको बल देने (दीपन)के लिये इसे गुलाबके फूलके साथ खिलाते हैं। इसके सेवनसे अन्त्र और आमाशयमें [illegible] होता है, मिचली होने लगती है और आकुलता (कर्ब) उत्पन्न होता है। इसलिये इसको विरेचन औषधियोंके साथ मिलाकर और शुद्ध करके उपयोग करना उपादेयतर है। शोधित सकमुनियाको सकमूनिया मुशव्वी कहते हैं जिसकी विधि यह है—एक सेब या बिही लेकर उसमें छिद्र बनाकर सकमुनिया भर दे। इसके बाद निकले हुये अंशसे छिद्रको भरकर उसके ऊपर आटा लपेटकर तनूरमें रख दें। जब आटा लाल हो जाय, तब तनूरसे निकाल ले और आटा छुड़ाकर सकमुनिया निकालकर काममें लेवें। कोमल प्रकृतिवालोंको यह सेब वा बिही खिलानेसे भी विरेक आने लगते हैं। अहितकर—आकुलताकारक। निवारण—अर्कगुलाब। प्रतिनिधि—एलुआ और हड़। मात्रा—२ रत्तीसे ५ रत्ती तक।

●

(५७१) सतावर

फैमिली : आस्पारागासे (Family Asparagaceae)

नाम—(हिं०; पं०, बाजा) सतावर, (म०) शतावरी, शतमूली, (बं०) शतमूली; (गु०, म०) शतावरी, सतावरी, (म०) सत्तावर; (सिं०) सतावरिय, (कु०) कैरुवा, (लें०) आस्पारागुस् रासेमोसुस् (Asparagus racemosus Willd.), (अं०) वाइल्ड ऐस्पैरेगस (Wild Asparagus)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध कँटीली झाडदार बेलकी कन्दवत् एव गुच्छोंमे लगी हुई जड है, जो पिलाई लिए सफेद होता है। सूखी हुई जडमे लम्बाईके रुख इनपर रेखायें खिची हुई होती हैं। स्वाद किंचित् मधुर होता है।

रासायनिक सगठन—इसमें प्रचुर प्रमाणमें शर्करा (Saccharine matter) और लवाब होता है। शतावरी और महाशतावरीके ताजे कन्दमें जलविलेय भाग ५२ ५% सीठी ३३ ५% और जल ९ प्रतिशत होता है। जलविलेय भागमे शर्करा ७ प्रतिशत होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव स्निग्ध (मतान्तरसे स्निग्ध दूसरे दर्जेमें) आयुर्वेदमें भी शीतवीर्य एव स्निग्ध लिखा है। (कैं० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वीर्यपुष्टिकर, वाजीकर एवं स्तन्यजनन है। इसको अधिकतया अकेले या उपयुक्त ओपधियोके साथ माजूनो या चूर्णो (सफूफात)मे डालकर नपुसकता, शुक्रप्रमेह एवं शुक्रतारल्यमें प्रयुक्त करते है। स्तन्यजननके लिए इसका चूर्ण दूधके साथ खिलाते हैं। अहितकर–आनाहकारक। निवारण–मिश्री। प्रतिनिधि–हब्बुल्सनोबर। मात्रा–७ ग्राममें १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—शतावरी मधुर, तिक्त, गुरु, वल्य, वृष्य, रसायन, स्निग्ध, शुक्र स्तन्य और अग्निवर्धक, पौष्टिक, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, रक्तविकार, गुल्म, अतिसार और शोथका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३९, ३९, कैं० नि०)। महाशतावरी हृद्य, मेध्य, अग्निवर्धक, वल्य, वय.स्थापन, वाजीकर, शीतवीर्य, रसायन तथा ग्रहणीरोग और अर्शको दूर करनेवाली है। शतावरीके अकुर तिक्त एव कफ पित्तहर है। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—शतावरी मधुर, शीत, गुरु, स्नेहन स्तन्यजनन, मूत्रजनन, शुक्रजनन, वल्य और वृष्य है।

●

(५७२) सत्यानासी (भँड़भाँड़)

फैमिली : पापावेरासे (Family Papaveraceae)

नाम—(हिं०) भड(र)भांड, भँड(र)भांड, भरभडा, घमोइ(य), सत्यानासी(शी), (प०) सत्यानासी, सियाकाँटा, (मार०) सत्यानाशी, (व०) शियालकाँटा, (म०) काँटे धोत्रा, पिवली धोत्रा, (द०) पीला धतूरा, फरिंगीधतरा, (बिहा०) घमोय, कटैया, (गु०) दारुडी, (सिं०) खरकाढेरी, (का०) अरसिन उम्मत, (ता०) कुडियाट्टि, (मल०) पोन्नुम्मत्तम्, (फ्रु०) ददहत्तर, कडीज, (ले०) आर्जेमोने मेक्सिकाना (Argemone mexicana Linn), (अ०) मेक्सिकन पॉपी (Mexican Poppy), येलो थिसल (Yellow Thistle)।

वक्तव्य—इसके वैज्ञानिक नामसे यह विदेशी (अमेरिकन) द्रव्य प्रतीत होता है। परन्तु इस देशमें इसका प्रवेश बहुत दिनोसे हुआ है, जिससे इसके पौधे प्राय सर्वत्र (समस्त भारतवर्ष) में अधिक मात्रामे पाये जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रातो एव भाषाओके नामोसे आयुर्वेदीय सहिताओमें आये हुए किसी नामसे इसका मेल नही खाता। अस्तु, इसे 'स्वर्णक्षीरी' मानना उपयुक्त नही प्रतीत होता। प्राचीनोकी स्वर्णक्षीरी या स्वर्णक्षीरीद्वय कश्मीरमे प्राप्त हिरवी या थैकलजातीय (Garcinia) वृक्ष हो सकते हैं। उत्तरकालीन ग्रन्थो (भावप्रकाश आदि) का चोक भडभाँड हो सकता है। मारवाड प्रातमे इसे उक्त नामसे पुकारते भी हैं।

वर्णन—इसके २–३ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्र, काण्ड, पुष्प तथा फल प्राय सभी अवयव काँटेदार होते हैं। पुष्प पीले, बाह्यकोश २–३ दलके और आभ्यन्तर कोश ४–६ दलवाले होते हैं। इसका पत्ता या टहनी

तोडनेसे पीला दूध निकलता है। फल २.५ से० मी० से ३.७५ से० मी० (१इञ्च या १½ इञ्च) लंबा होता है। बीज छोटे और काले होते हैं। बाजोंसे एक प्रकारका पीला, स्वच्छ, पारदर्शक, काचकी तरहका तेल निकलता है। खुला पडा रखनेसे यह उड जाता है। बीजोंमें से जब तेल निकाला जाता है तब गँदला होता है। कुछ दिनो पडा रहनेसे उसके नीचे सफेद गाद बैठ जाती है और तेल नियरकर स्वच्छ एव चमकदार हो जाता है। इसकी गंधसे कुछ जी मिचलाता है, किंतु अत्यधिक दुर्गंध नही होती। स्वाद किंचित् कटु (चरपरा) होता है। इसकी पहिचान एव परीक्षा इस प्रकार करते है कि जब इसमें पारेका तेजाब मिलानेसे यह नारगी या लाल रंगका हो जाता है, तब इसे असली समझते है।

उपयुक्त अग—मूल (मारवाडीमें इसको 'चोक' कहते हैं), बीज, क्षीर, और तैल। मात्रा—मूल १.२ ग्रामसे ३.५ ग्राम (१० से ३० रत्ती); बीज ३ ग्राम (३ माशा), क्षीर, ३–६ ग्राम (३–६ माशे), तेल ३ ग्राम (३ माशे)।

रासायनिक सगठन—इसमें अनेको ऐल्कलॉइड, वसाम्ल, ग्लूकोसाइड, जैविक अम्ल, शर्कराएँ और क्षार-धर्मी द्रव्य पाये जाते है। पत्तियोंमें ये दो ऐल्केलॉइड—एक बर्बेरीन (Berberine) जो दारुहल्दीके वृक्षमे रहता है, और दूसरा प्रोटोपीन (Protopine) नामक सत्व पाये जाते हैं। बीजोंसे सैंग्वेनैरीन और उदूष्मी सैंग्वेनैरीन नामक दो विषाक्त ऐल्केलाइड प्राप्त होते है। इन्ही ऐल्केलाइड्सकी उपस्थितिके कारण जलोदरकी बीमारी उत्पन्न हुआ करती है। जडमें बैलेरीथ्रीन, काप्टीडीन और एलोक्राइन्थीन नामक ये तीन होते है। इससे भिन्न इसमे पाशुजम पवनेत, चूनजमवलिकेत, चूनजम स्फुरेत आदि कई लवण व क्षार होते है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बीज सारक, वामक, कफोत्क्षारि, स्निग्धतासपादक तथा सर्पविषका अगद है, तथा अफीमकी अपेक्षया मादक, स्वप्नजनन और मूर्च्छाजनन है। ४ से ९ माशे तक इसके बीजोका चूर्ण फँकानेसे श्वासरोग बढने नही पाता। बीज-तैल अल्पमात्रामें मृदुरेचन होता है और इससे पेटमें मरोड नही होता। पचाग-का घन भी रेचक होता है। दो-छटांक इस घनसत्वमें पुराना गुड १ छटांक और राल २ तोले मिलाकर अदरकके रसमें घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनावें। इनमेंसे १-१ गोली प्रात मध्याह्न और सायकाल गरम पानीके साथ लेनेसे श्वासमें बहुत लाभ होता है। ताजे तेलके २५ बिन्दुओंसे ५ से १० या १२ तक दस्त हो जाते हैं। ताजे तेलकी क्रिया निश्चित होती है। जलापा, रेवदचीनी और एरडतैलसे यह तेल इसलिए उत्तम है कि मात्रा अत्यल्प है। जमालगोटेके तेलसे यह इसलिए उत्तम है कि इसमें उसके समान कटु आस्वाद, कुस्वाद एव उत्क्लेश उत्पन्न करनेका गुण नहीं है और न इससे वमन हो जानेपर भी वैसी बेचैनी, कष्ट एव दुर्बलता होती है। तीस बूँद तेल माशाभर सोंठके साथ या चीनीमें मिलाकर देनेसे आमाशय या अन्त्रका वातिक शूल (रियाही दर्द) मिटकर रोगी-को बहुत सुखकर नीद आ जाती है। चर्मरोगों जैसे खुजली आदिमें अकेला या डिठोरी आदि अन्य तेलोके साथ इसका बाह्य प्रयोग होता है। श्वासरोगोको मिटानेके लिए तेलको चीनीके ऊपर डालकर फँकाना चाहिए। फिर भी तेलके प्रयोगमें सावधानीकी आवश्यकता होती है, क्योंकि मात्राधिक्यमे अथवा किसी-किसीमें अल्पमात्रासे भी तथा इसके चिरकालीन प्रयोगसे महामारीके रूपमें होनेवाले शोथमें प्रगट होनेवाले विषलक्षणोके समान (Epidemic dropsy) विषप्रभाव प्रगट हो जाते है। मूल रेचक, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न और रसायन हैं तथा चिरज त्वग्रोगों एव वृश्चिकविषमें भी इसे उपयोगी माना जाता है। ग्रामीण चिकित्सामें उठती हुई आँखोमे इसका पीला दूध लगानेसे आँख नही उठती, किन्तु इसमे बडी सावधानी रखनी चाहिए। यह मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, शोथहर, व्रण-शोधन, व्रणरोपण और विषमज्वरहर है तथा शोथ, कामला और त्वग्विकारोमें इसके दूधिया रसका उपयोग होता है। जड (चोक) विरेचन और वमन कराती, कफ और रक्तके विकार दूर करती, उदराध्मान और उदरकृमिको नष्ट करती, तथा खाज और कोढको लाभ करती है। एक भाग चोकको पानीमें घिसकर तीन माशा रसवत मिला छुहारेकी गुठलीके बराबर वर्ति बना-सुखाकर गर्भाशयके मुँहमें रखनेसे दो या तीन दिनमे गर्भ निस्सरित हो जाता है।

यदि गर्भाशयके आस-पास दानें पड जायँ तो उसमे घी लगायें (इलाजुलगुर्बा)। इसका ४ माशा चूर्ण फाँकनेसे पेटसे कद्दूदाने निकल जाते हैं। सत्यानाशीके ताजे पौधोको कूटकर रस निकालें। फिर उस रसको समभाग पानीमें मिलाकर भवके द्वारा अर्क खीच लेवे। इस अर्कको २½ तोलेकी मात्रामे प्रात -सायं लेनेसे उपदश तथा रक्तकी खराबीसे होनेवाले चर्मरोग पामा, दाद, क्षुद्रकुष्ठ आदि ठीक हो जाते हैं। फिरंगरोगमें यह अर्क इतना प्रभाव दिखाता है कि यदि उस रोगके कारण तालूमें छेद भी हो गया हो तो ठीक हो जाता है। इसके दूधको एक थालीमे निकालकर धूपमें सुखावें। जब गाढा हो जावे तब गोली या बत्ती बनाकर रखे। समय पर इसको मक्खनमे घिसकर लगानेसे आँखोका अर्म, अधिमास और अन्धापन दूर होता है।

नव्यमत—सत्यानाशीके बीजोका तेल मृदुरेचन है। एरण्डतैलसे यह उत्तम है। इसमे दुर्गन्ध या कुस्वाद नही होता। मात्रा छोटी है और इससे उदरमें मरोड नही होता। तेलकी क्रिया निश्चित होती है। बीज रेचन और वेदनास्थापन है। पचागका घन रेचन है। मूल कृमिघ्न और कुष्ठघ्न है। पीला दूध मूत्रजनन, कुष्ठजनन, कुष्ठघ्न, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषमज्वरहर है।

●

(५७३) सदासुहागिन

फ़ैमिली बिक्सीने : (Family · Bixineae)

नाम—(हिं०) सिंदूरिया, सेंदूरिया, लटकन, सदासुहागिन, (अ०) मस्नान, (फा०) किर्मदान, किरिमदान, (स०) सिंदूर, सिंदूरपुष्पी, रक्तपुष्पी, सिन्दूर, (ब०) लटकनेर, (बम्ब०, म०) शेंद्री, केशरी, केसरबोंडी, (प०) लटकन, जाफर, (भा०) सिंदूरपुष्पी, (लै०) बाक्सा ओरेल्लाना (**Bixa orellana** Linn), (अ०) ऐर्नेट्टो या एन्नेट्टो-बुश (Arnatto or Annatto Bush)। वक्तव्य—इसके भारतीय नाम बीजके रगपर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—अमरीका। अधुना समस्त भारतवर्षमे रंगके लिए तथा शोभाके लिए बागोमे इसके क्षुप लगाये जाते है।

वर्णन—यह एक छोटा एव सुन्दर वृक्ष है जिसकी पत्तियाँ कगूरेदार, हृद्वत्, लम्बाग्र, चिकनी चमकीली और ४ इच से ८ इच लम्बी होती है। फूल सफेद या सिन्दूरवर्ण (गुलाबी) एव प्रियदर्शन होते है। फल धतूराकी तरह मृदुकटकोसे ढके हुए और बीज सिन्दूरवर्ण-स्तरसे ढके हुए होते है जिससे एक रग तैयार किया जाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एव स्निग्ध।

गुणकर्म—इसके पत्र सशमन और पिच्छिल होते है। फलमज्जा ग्राही और बडी मात्रामे स्रसन, बीज और मूल रोचक, ग्राही तथा ज्वरघ्न होते है।

उपयोग—इसके पत्तोको जलमे पीस-छान मिश्री मिलाकर पिलाने या सूखे पत्तोको रात्रिमें जलमें भिगोकर रखने और प्रात काल मल-छानकर उपयोग करनेसे सूजाकमे विशेष उपकार होता है। अहितकर—कफज प्रकृतिके लिए। निवारण—कालीमिर्च और शहद। प्रतिनिधि—बुकनबूटी। मात्रा—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

●

(५७४) सन

फैमिली लेगूमिनोसी : (Family : Leguminosae)

नाम—(हि०) सन, सनई, (अ०) कतफाहरी; (म०) ताग; (बं०) शण; (प०) सनई, (गु०) शण जोरी (तु०) श(ण)ण, सिणी, (नपाल) सन; (बम्ब०) सनताग; (लै०) क्रोटालारिआ जुन्सेआ (Crotolaria juncea Linn), (अं०) फाल्स या सनहेम्प (False or San-Hemp)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयाञ्चलसे लंका तक समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है। सन बंगालमें अधिक उत्पन्न होता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पौधा जिसके रेशोंसे बोरी, टाट, रस्सी और कागज आदि बनाये जाते हैं। इसका एक जंगली भेद भी है, जिसे वनसन या शणपुष्पी कहते हैं। पटुआ या पटसन भी रेशोंके लिए बोया जाता है। वि० दे० "एब्रुम जन्ग्"।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, बीज और तनेके रेशोंका कपड़ा।

प्रकृति—सर्द एवं रूक्ष, बीज तीसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष हैं।

गुणकर्म तथा उपयोग—सनके पत्ते गुरु, ग्राही (काबिज), आध्मानकारक और दीर्घपाकी हैं। प्रायः देहातके लोग इन्हें सुखाकर रखते हैं और आवश्यकता पड़नेपर पेटके कृमियों और मरोड़की चिकित्सामें इसका उपयोग करते हैं। फूल प्रगतशोणित और आर्तवरक्तको बंद कर देते हैं। सनके थोड़ेसे बीज स्त्रीको खिला देनेसे वह वन्ध्या हो जाती है। इन बीजोंका काढ़ा पिलानेसे गर्भिणी स्त्रीके पेटसे शिशु और अपरा (आँवल) दोनों निकल जाते हैं। बीजोंको पानीमें पीसकर उससे सिरके बाल धोनेसे वे नरम हो जाते हैं और बढ़ते भी हैं। १½ माशे इसके बीज और १०½ माशे मधु मिलाकर दो सप्ताहपर्यन्त खानेसे अर्दित रोग नष्ट होता है। इसके पत्ते चौपायोंको खिलानेसे वे दस्त करने लगते हैं। इसके पत्ते खानेसे शुक्रवृद्धि होती है और कफ निकलता है। पत्तोंको पकाकर खानेसे स्तन्य और शुक्रकी वृद्धि होती है, सहवासकी इच्छा बलवती होती है। ये लघु हैं। क्षारीयता अधिक होनेसे इसका नाग पेटसे शीघ्र निकल जाता है। ७ माशे इसकी जड़ मधुजलके साथ पीनेसे पेटमें होनेवाला मरोड़ दूर हो जाता है। इससे पेशाब भी खुल जाता है। (फारसी और अरबी ग्रन्थोंसे सारांशरूपसे अनूदित)।

आयुर्वेदीय मत—सन अम्ल, कषाय, मल-गर्भ और रक्तका पातन करनेवाला, वमनकारक तथा वात, कफ और तीव्र अंगमर्दको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्यमत—सनकी पत्ती शीतल, स्नेहन, त्वग्दोषहर और रक्तशोधक है। बीज पाचन, अनुलोमन और आर्तवजनन है। शरीरमें गरमी बढ़नेसे हुए त्वचाके रोगोंमें रक्तके ठंढा और शुद्ध होनेके लिए इसकी पत्तियोंका फाँट पिलाते हैं और पत्तियोंको पिसकर उसका लेप करते हैं। मेदोवृद्धि और अनार्तवमें बीजोंका चूर्ण देते हैं। यह स्थूल स्त्रियोंको विशेष अनुकूल पड़ता है। (ओ० स०)।

(५७५) सन जंगली (शणपुष्पी)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family . Leguminosae)

नाम—(हिं०) झुनुक, झुनझुनिया, घुघरिया सन, (सं०) शणपुष्पी, घण्टारवा, (व०) झनझन, (म०) खुलखुल, घागरी, (गु०) घुघरो, (ता०) वेल्लक्किलुकिलुप्पे, (मल०) किलुकिलुप्पा, (भार०) वनशण, (ले०) क्रोटेलारिआ वेरुकोजा (**Crotalaria verruscosa Linn**), (अं०) ब्ल्यू-फ्लावर्ड क्रोटेलेरिया (Blue-flowered Crotalaria) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णप्रदेश ।

वर्णन—क्षुप २-४ फुट ऊँचा होता है। काड और शाखा धारदार, पत्र अण्डाकृति, एकान्तर, पुष्प पालापन लिये हुए जामुनी रगके, फली ½ इञ्चसे १¾ इञ्च लम्बी, अविदारी, बीज १० से १५, सूखी पत्ती हिलानेसे घुँघरू जैसा शब्द होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, पत्रस्वरस ।

प्रकृति—गुणकर्म तथा उपयोग सन जैसा । (दे० 'सन') ।

आयुर्वेदीय मत—शणपुष्पी तिक्त, कषाय, वमन करानेवाली तथा पित्त, कफ, कण्ठके रोग, हृद्रोग और मुखरोगका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० १, सु०, ध० नि०)।

नव्यमत—शणपुष्पी तिक्त, पित्तघ्न और स्नेहन हैं । पत्तोका लेप शीतल और त्वग्दोषहर है। त्वग्रोगमे लेप करते है और खिलाते है । पत्तियोके रससे मुँहसे गिरती हुई लार बन्द हो जाती है।

(५७६) सनाय

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) सनाय, सनायमकी, सोनामकी(मुखी), (अ०) सनाऽ, सनाऽमक्की, (व०) सोनामुखी, (गु०) मीढी आवल, सोनामखी, (म०) सोनामुखी, (को०) सोनामक्कि, (ले०) कास्सिआ आंगुस्टीफोलिआ (**Cassia angustifolia** Vahl), (अं०) ईस्ट इण्डियन या टिन्नेवेली सेन्ना (East Indian or Tinnevelly Senna)।

पत्र—(हिं०, उ०) सनायकी पत्ती, (ले०) सेन्नी फोलिउम् (**Sennae Folium**), (अं०) सेन्ना (Senna)।

फली—(हिं०,उ०) सनायकी फली, फली सनाय, (ले०) सेन्ना फ्रुक्टुस् (Sennae Fructus), (अं०) सेन्ना पॉड्स (Senna Pods) ।

इतिहास—सर्वप्रथम प्राचीन आरव्य चिकित्सकोने विरेचनतया सनायका उपयोग किया तथा अरबोके माध्यमसे ही ईसवी सन् की नवी शतीमें यह यूरोपमें पहुँची । इसकी अरबी सज्ञा ज्यूँकी त्यूँ यूरोपीय भाषाओमें ले ली गई ।

उत्पत्तिस्थान—अफरीका (मिस्र), दक्षिण अरव, हजाज आदि। अधुना यह दक्षिण भारतवर्षके तिनेवेल्ली, मदुरा, त्रिचनापली आदि स्थानोमें होती हैं। तिनेवेल्लीमे होनेवाली सनाय अरबीकी अपेक्षया श्रेष्ठ होती है। इसका निर्यात बम्बईसे होता है । मद्रास प्रातके तिनेवेल्ली जिलेसे और अरबस्तानसे सनाय यहाँ आती है।

वर्णन—यह एक क्षुपकी प्रसिद्ध फलियाँ एवं पत्र हैं जो औषधके काममें आते और प्रायः बाजारमें मिलते हैं। यूनानी वैद्यकमें हजाजमें होनेवाली सनाय जिसे सनाय मक्की कहते हैं सर्वोत्तम समझी जाती है। इसमें ७ वर्ष तक वीर्य रहता है।

वक्तव्य—सनायके पत्र जिन्हें पत्रक कहना उचित है, भूरापन लिये हुये, भालाकार, आधारपर विषम, १.२५ सें०मी० से ३.७५ सें० मी० (½ से १½ इंच) लम्बे और ६ मि० मी० से ८ मि० मी० (¼ से ⅓ इंच) चौड़े होते हैं। इनमें देशी तिनेवेली सनायके पत्र मध्यके समीप अपेक्षाकृत अधिक चौड़े और सिकन्दरी सनायके पत्रकोंकी अपेक्षया, जो मध्यपर्शुकाके नीचे सर्वाधिक चौड़े होते हैं, अनुपातमें अधिक लम्बे होते हैं, व्यापारका सनाय मक्की (Mecca Senna) जिसमें उपर्युक्त उभय जातियोंके पत्र मिले जुले होते हैं, प्रायः पत्रवृन्तों और विरंजित पत्रकोंसे भरा होता है, अधमकोटिका होता है। सिकन्दरी सनायकी फली हरी, ३.७५ सें०मी० से ६.२५ सें०मी० (१½ से २½ इंच) लम्बी और लगभग २ सें० मी० से २.५ सें० मी० (¾ से १ इंच) चौड़ी होती है। भारतीय सनायकी फली अपेक्षाकृत काली, कम चौड़ी (सङ्कीर्ण) केवल २ सें०मी० (⅘ इंच) चौड़ी, जिसके ऊपरी छोरपर योनिवृन्ताग्र स्पष्ट लक्षित होते हैं। स्वाद किञ्चिन्मधुर, किन्तु वान्तिकर, गंध कुछ चायके समान, पर विशेष प्रकारकी होती है। सिकन्दरी सनायके पत्र एवं फलियाँ यद्यपि भारतीय भेदकी अपेक्षया, जिससे कि वे प्राय अधिक बढकर मानी जाती हैं, कार्यमें मृदुतर, तथापि निश्चित कार्यकर होती हैं।

सिकन्दरी सनायको सनाय इस्कंदरानी (Alexandrian Senna) इसलिये कहते हैं कि सिकन्दरिया बन्दरगाहसे ही इसका निर्यात किया जाता था। अधुना इसका निर्यात सूडानसे किया जाता है। इसकी उत्पत्ति या निवासस्थान मिस्र और सूडान है। लैटिनमें इसको कास्सिआ आक्यूटीफोलिया (Cassia acutifolia Del.) और अंग्रेजीमें एलेक्जेंड्रियन सेन्ना (Alexandrian Senna) कहते हैं।

रासायनिक सगठन—पत्रमें (१) कैथार्टिक एसिड नामक विरेचनीय वीर्य जो एक ग्लूकोसाइड है, तथा (२) इमोडीन; (३) क्राइसोफेनिक एसिड आदि उपादान होते हैं। इसकी फलीमें भी उक्त तत्त्व होते हैं। इसके अतिरिक्त सेन्नोसाइड (Sennoside) 'ए' और 'बी' ये दो ग्लाइकोसाइड, जो सनायके मृदुसारक वीर्य हैं, इससे पृथक् किये गये हैं।

कल्प तथा योग—अतरीफल सनाई, माजून।

प्रकृति—पहले और मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। मतान्तरसे दूसरेमें गरम और पहलेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, कफपित्तसौदाविरेचनीय, अवरोधोद्घाटक, रक्तशोधक, कृमिनाशक, अन्त्रमें मरोड उत्पन्न करती और वमनोत्तेजक भी है। सनायको यदि कोष्ठको मृदु करनेके निमित्त उपयोग करना हो तो अल्पप्रमाणमें, उदाहरणतः ३ माशे देते हैं और अधिक प्रमाणमें सेवन कराके तीव्र विरेचनका काम लेते हैं। विकृत दोषोंके निर्हरणके लिये सर्वोत्कृष्ट विरेचन है। इसी कारण पर्याय ज्वरों (तृतीय, चातुर्थक), पित्तज, कफज एवं सौदाजन्य आमवात एवं कटिशूल, कूल्हेके दर्द, गृध्रसी, वातरक्त और कुष्ठदद्रुरासमें उपयोग करते हैं। विरेचन होनेके अतिरिक्त सनाय रक्तशोधक भी है। अतएव कच्छू, कण्डू और फोड़े-फुन्सी (बुसूर और दमामील) आदिमें पेयकी भाँति प्रयुक्त करायी जाती है। यह उदरज कृमियोंको नष्ट करके उत्सर्गित करती है और कुलज (शूल)के अवरोधको उद्घाटित करती है तथा मस्तिष्कका शोधन करती है। कभी-कभी स्तनपायी शिशुको विरेक लानेके निमित स्तन्यधात्री (मुरजा)को सनायका उपयोग कराया जाता है। क्योंकि सनाय रक्तमें शोषित होकर स्तन्यके द्वारा भी शरीरसे उत्सर्गित होती है। उक्त अवस्थामें दूधके पीनेसे शिशुको विरेक आने लगते हैं। लेखन होनेके कारण कच्छू एवं कण्डू, खालित्य विशेष (दाउस्सालब एवं दाउलहय्य), छीप वा झाईं तथा व्यंगमें इसे सिरकेके साथ लेप करनेसे उपकार होता है।

वक्तव्य—सनायके उपयोगसे मिचली आने लगती और मरोड उत्पन्न होती है तथा तृष्णा एवं आकुलता भी पैदा होती है। (फलीमें उक्त अवगुण नही होते) अतएव इसका अकेले उपयोग करना उचित नहीं है। प्रत्युत

उक्त दोषपरिहारके निमित्त इसके साथ गुलाबके फूल या गुलकद या अनीसूँ मिला लेना चाहिये। यदि इसे चूर्णके रूपमे उपयोग किया जाय तो बादामके तेलसे स्नेहाक्त (चर्ब) कर लेना चाहिये। मुलेठीसे इसके कुस्वादका परिहार हो जाता है। अहितकर-आकुलता एव उत्क्लेशकारक। निवारण-गुलाबके फूल, बादामका तेल और मुलेठी। प्रतिनिधि-निसोथ। मात्रा-पत्र विरेचनके निमित्त ७ माशेसे ९ माशे तक। कोष्ठको मृदु करने (सरण)के निमित्त ३ माशेसे ५ माशे तक। फलियाँ-१० से २० फलियोको ६ घटे गरम जलमें भिगो हाथसे मलकर कपडेसे छानकर देते है।

आयुर्वेदीय मत—सनाय (मार्कण्डिका) विरेचक, वामक तथा वातराग, कृमि, कास, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाला है। (नि० स०)।

नव्यमत—सनाय रेचन है। इसे थोडे प्रमाणमें देनेसे पचन क्रिया सुधरकर साफ दस्त होता है। बडे प्रमाणमें देनेसे पेटमे मरोडके साथ दस्त होते है। इसकी मुख्य क्रिया छोटी आँतोपर होती है। सनाय यकृत्के लिये भी थोडी उत्तेजक है। पेटमे ऐठन न हो इसलिये इसके साथ सोठ, सौफ जैसे सुगन्धित द्रव्य तथा सेंधानमक या मिश्री मिलाते हैं। यह दूध द्वारा शरीरसे बाहर आती है, इसलिये माताको सनाय दी गई हो तो शिशुको भी दस्त होते है। कुपचन और दस्त साफ न होनेसे शरीरमें मलसंचय होनेपर रसायनका जुलाब देते हैं। पित्तज्वरमे सनाय, अमलतास आदिका जुलाब देना शास्त्रशुद्ध है। इससे दूषित पित्त और पित्तके साथ ज्वरकारक विष शरीरसे बाहर निकल जाते है और नया शुद्ध पित्त उत्पन्न होता है तथा ज्वरघ्न औषध अपना कार्य भली-भाँति करते है।

●

(५७७) सनोवर

फ़ैमिली : कोनीफेरे (Family : Coniferae)

यह कई प्रकारका होता है। अत इसकी विविध आयुर्वेदीय यूनानी और डॉक्टरी आदि संज्ञाये नीचे लिखी जा रही है —

(१) देवदार—(हिं०) देवदार, चीड, (अ०) देवदार, शजरतुल्जिन, शजरतुल् आकिल., अर्जलबुस्तान, (फा०) देवदार, सनोवर हिंदी, (लें०) पीनुस् सेड्रुस (Pinus cedrus), पीनुस् डेओडारा (Pinus deodara), सेड्रुस लेबानी (Cedrus lebani)। इस प्रकारका सनोवरवृक्ष हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होता है। प्राचीनकालमें श्यामदेशके लब्नान पर्वतपर बहुतायतसे होता था। दे० 'देवदार'।

(२) सरल चीड—(अ०) सनोवर तवीलुल् औराक, (लें०) पीनुस् रॉक्सबुर्घी **Pinus roxburghi** Sargent (पर्याय-पीनुस् लांगीफोलिया *Pinus longifolia* Roxb.)। इस प्रकारका सनोवर हिमालयमें होता है। इसमेंसे 'गन्धविरोजा' निकलता है। दे० 'चीड'।

(३) चिलगोजा—(अ०) सनोवरुल् कहार, (फा०) काज चिलगोजा, (लें०) पीनुस् जिरार्डिआना **(Pinus gerardiana Wall)**। इस प्रकारका सनोवर हिमालय पर्वतपर, अफगानिस्तान और ईरानमें उत्पन्न होता है। फारसीमे इसकी लकडीको सूस कहते है। दे० 'चिलगोजा'।

(४) सनोवर वर्री शर्बीन—(लें०) पीनुस् सिलवेस्ट्रिस् **(Pinus sylvestris)** इस प्रकारका सनोवर अमरीका और यूरोपमे उत्पन्न होता है। 'कत्तरान' इसीके काष्ठसे प्राप्त किया जाता है।

(५) सनोबर जबली (पार्वतीय सनोबर)-(अ०) सनोबर जबली, (फा०) सनोबर कोही, (ले०) पीनुस् पामीलिओ (Pinus pomiliao), (अ०) माउन्टेन पाइन (Mountain Pine)। इस प्रकारका सनोबर वृक्ष यूरोपके पर्वतो विशेषकर हगरीके पर्वतोमें उत्पन्न होता है। इसका तेल (रोगनसनोवर-दुह्नुल्सनोवर-ऑलियम् एबीटीज़ (Oleum Abietes) ब्रिटिश फार्माकोपिआमे सम्मत है।

●

(५७८) समुंदरफल

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family Myrtaceae)

नाम—(हिं०) समुदरफल, इजर, समुद्रफल, (स०) हिज्जल (सु०), निचुल, विदुल (च०), (व०) हिजल, (म०, गु०) समुद्रफल, सत्फल, (मा०) समदरफल, (ते०) कण(न)पु, कणिगि; (मल०) समुद्रप्पलम्, (ले०) बारींन्गटोनिआ आक्यूटागुला (**Barringtonia acutangula** Gaertn), (अ०) इण्डियन ओक (Indian Oak)।

उत्पत्तिस्थान—हिंदुस्तानके अनेक भाग, विशेषत यमुनाके पूरवकी ओर अवध, वगाल, मध्य प्रदेश और दक्षिण आदि।

वर्णन—इसके वृक्ष छोटे, पत्तो २-५ इच लम्बी, प्राय ऊपरसे लट्वाकार-आयताकार अधिकतया कुण्ठिताग्र और सूक्ष्मदतुर, पुष्प गहरे गुलाबी रगके और मजरियाँ लटकी हुई और सदण्डिक होती है, फल १⅙ से १½ इन्च लंबा, चार उभारोसे युक्त (चौपहल) और अग्रपर स्थायी बाह्यपुटके साथ रहता है। अशुष्कावस्थामें देखनेमें बादामके समान और भीतर सफेद मग्ज़ होता है। ताजा फल रक्त वर्ण और पुराना होनेपर काला हो जाता है। फलत्वक् अत्यन्त पतला चबानेपर पहले किंचित् मधुर, इसके बाद तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होता है।

उपयुक्त अग—फलका मग्ज़।

रासायनिक सगठन—इसमें सैपोनिनके सदृश एक तत्व बैरिंग्टोनिन, स्टार्च, प्रोटीड (Proteid), सेलूलोज (Cellulose), वसा, रबड और क्षारलवण आदि उपादान होते है।

कल्प तथा योग—नसवार, नफूख बखर।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरीतौरपर समुदरफल लेखन और विलयन है। नथुनोमें इसका आश्च्योतन मस्तिष्कसे द्रवोका शोषण करता और प्रभावत अर्धावभेदकको नष्ट करता है। वृश्चिकदशपर इसका पतला लेप वेदनाको शमन करता और उपस्थेन्द्रियमे उत्तेजना पैदा करता है। इसका आतरिक प्रयोग शीतपूर्वज्वरको रोकता है तथा श्लेष्मनिस्सारक एव वातानुलोमन भी है। समुदरफलको स्त्री वा बकरीके दूधमे घिसकर अर्धावभेदकको नष्ट करनेके लिए विपरीत ओरके नथुनेमें आश्च्योतन करते है अर्थात् यदि दर्द बायी ओर हो तो दायें और दायी तरफ हो तो बायें नथुनेमे टपकाते है। अपस्मारमें भी इसका नाकमे टपकाना लाभदायक वर्णन किया जाता है। इसे बारीक दूधमे घिसकर रतौंधी, नेत्रस्राव (ढलका) और फूलीको नष्ट करनेके लिए आश्च्योतन करते है। बिच्छूके दशस्थानपर इसे जलमे पीसकर लगाते है। उदरशूलको नष्ट करनेके लिए इसका नमक और अजवायनके साथ चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। कालीमिर्च, तुलसीपत्र और समुन्दरफल समभागका चूर्ण चतुर्थकज्वरको नष्ट करनेके लिए सेवन करते है। एक दाना समुन्दरफलको बारीक पीसकर नीबूके रसमे मिलाकर शीतपूर्वज्वरके रोकनेके लिए

एक-दो घण्टा पूर्व खिलाते हैं। वाजीकरणके लिए इसे लौंग और शहदके साथ वारीक पीसकर तिला करते हैं। मात्रा–१/२ दानासे १ दाना तक।

आयुर्वेदीय मत—समुद्रफल वमन और विरेचन करनेवाला तथा कफ और वातको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २, ४, सु० सू० ३९)।

नव्यमत—समुद्रफल कफघ्न, वामक, आनुलोमिक और वेदनास्थापन है। शिशुओके कफरोग (कास श्वास) मे इसे देते है। इससे वमन न हो तो गरम पानीमे थोडा सेंधा नमक मिलाकर देनेसे वमन हो जाता है और दस्त भी साफ हो जाता है। दमेंमें समुद्रफल ८ माशे और सफेद अपराजिताकी जड ६ माशे दूधमें पीसकर देनेसे वमन और विरेचन होकर श्वासका कष्ट दूर होता है।

●

(५७९) समुन्दरसोख

फ़ैमिली लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०, भा०बा०) समुन्दरसोख, कम्मरकस, (प०, सिं०) समुन्दरसोख, कम्मरकस, साठी, (गु०, बम्ब०) कम्मरकस, (ले०) साल्विआ प्लेबीआ (**Salvia plebeia** R. Br), (अ०) सेज (Sage)।

उत्पत्तिस्थान—प्राय समस्त भारतवर्पके मैदान और ५,००० फुट ऊँची पहाडियोपर इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—यह एक प्रकारके क्षुपके प्रसिद्ध बीज है, जो राईके दानोसे वहुत छोटे, लम्बगोल, चिकने और काले या भूरे रगके होते हैं। ये बीज ही औपधमें काम आते हैं। बीजोको पानीमें भिगोनेसे वहुत लुआव (पिच्छा) निकलता है और वे परस्पर चिपक जाते है। कही-कही घावपत्ते (**Argyreia speciosa** Sweet, [**A. nervosa** (Burm f) Boj , **Lettsomia nervosa** Roxb] के बीजको भी समुन्दरसोख कहते हैं। परन्तु वह वाजारमे 'मिलनेवाला समुन्दरसोख' नही है।

रासायनिक सगठन—इसमें तेल १८ प्रतिशत, मासवर्धक द्रव्य ११$\frac{3}{4}$ प्रतिशत, गोद तथा तन्तु ४४ प्रतिशत, राख १५ प्रतिशत और नाइट्रोजन २ प्रतिशत होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे सर्द एव तर (मातातरसे दूसरे दर्जेमे सर्द व खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वीर्यपुष्टिकर और सशमन है। इसको अकेले या चूर्णो तथा माजूनोमे डालकर शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, मूत्रकी जलन और शीघ्रपतनके लिये दूधके साथ खिलाते हैं। अहितकर–गुरु, विष्टभी एव दीर्घपाकी है। निवारण–मधु और शर्करा। प्रतिनिधि–तालमखाना। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

नव्यमत—यह वातप्रशमन, उत्तेजक, ग्राही सुगन्धित और पौष्टिक माना जाता है। बीज उष्ण स्नेहन और पौष्टिक होते हैं। बीजोका फाण्ट वीर्यस्तम्भक और वाजीकर वतलाया जाता है।

●

(५८०) सरख्स

फैमिली : पॉलीपोडिआसे (Family Polypodiaceae)

नाम—(हिं०) कीलदारु, विसौरा, (अ०) अस्सरख्सुल् मुजक्कर, (फा०) सरख्स मुजक्कर, सरख्स, चमाज, (बं०) पखराज, (अं०) मेलफर्न (Male fern)। वक्तव्य—यह ड्रॉओप्टेरिस् फिलिक्स मास **Dryopteris Filix-mas** (Linn) Schott (*Aspidium filix-mas* Sw) नामक अपुष्प वनस्पतिकी ग्रंथिल जड है, जिसको पतझड कालमे काटकर संग्रह कर लेते है और उसके ऊपरके पत्तो एव सडे-गले अशको पृथक् कर देते हैं।

उत्पत्तिस्थान—ब्रिटेन, यूरोप, उत्तरी अमरीका, उत्तरी एशिया और हिमालय पर्वत। औषधके लिए इसकी जड इटली और हगरीसे आती हैं।

इतिहास—यूनानी चिकित्सको यथा–दीसकूरीदूस, जालीनूस, अन्तियूस और आरब्य चिकित्सकोने उक्त औषधिका उल्लेख किया है। वे कद्दूदाना (Tape-worm)के मारने और उनके निर्हरणके लिए इसका उपयोग करते थे। जालीनूसने इसको गर्भशातक और गर्भनिरोधक भी लिखा है।

वर्णन—इसकी ७ ५ सें० मी०से १५ सें० मी० (३से ६ इञ्च) या अधिक लम्बी गाँठे होती हैं, जिनका व्यास १ ८७५ सें०मी०से २ ५ से०मी० (¾से १ इञ्च) तक होता है। यह गाँठे चारो ओरसे छोटी-छोटी नोकदार, मोटी, कालेरगके पत्तोकी डठलोसे आवरित होती हैं। डठल आपसमें ऐसे गुथे हुए होते है कि उक्त गाँठयुक्त जड़का धरातल मत्स्यपृष्ठके सदृश मालूम होता है। रग बाहरसे भूरा या ललाई लिये काला, अन्दरसे पिलाई लिये सफेद होता हैं। गंध हलकी, अप्रिय, स्वाद प्रथम मधुर और कषाय बादको तिक्त और उत्क्लेशकारक होता है। इसमें १ वर्ष तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अग—मूल और मूलोत्थ ओलियो-रेज़िन (Oleo-resin)।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) फिलिसिक एसिड, जो इसका प्रधान सक्रिय घटक है और श्वेतचूर्णके रूपमे प्राप्त होता है, (२) एस्पिडीन (३%) विषालु द्रव्य है, (३) एक अनुत्पत् तैल, (४) एक उत्पत् तैल; और (५) कतिपय रेजिन्स (Resins) आदि उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—माजून सरख्स।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उपशोषण, गर्भशातन, उदरकृमिनाशन (विशेषत. कद्दूदानेको नष्ट करनेवाला), यूकाननाशक (कातिल कमल), सक्षोभजनन (लाज़िअ) और वातरक्त तथा हृत्स्पदनमे लाभकारी है। व्रणलेखन होनेके कारण व्रणशोपणके लिए इसका अवचूर्णन करते है। उदरकृमि विशेषकर कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिये अकेले या अन्यान्य औपधियोके साथ इसे चूर्ण करके खिलाते है। उसके लिये यह एक सिद्ध भेपज है। विरेचनके द्वारा अन्त्र और आमाशयको शुद्ध करनेके उपरात रोगीको भूखा रखकर रातके समय निहार मुँह इसको खिलानेसे कद्दूदाना नष्ट हो जाता है और प्रात काल विरेचन देनेसे मृतप्राय कद्दूदाना नि शेष निकल जाता है। सक्षोभजनन होनेसे इसके उपयोगसे अन्त्र और आमाशयमें खराश होकर वमन आने लगता है। इसके काढेसे सिर धोने या चूर्णको तेलमें मिलाकर बालोको जडमे लगानेसे सिरको जूयें मर जाती है। अहितकर–फेफडेके लिये। निवारण–शीह अरमनी। प्रतिनिधि–कमीला। मात्रा–३ ग्राम (३ माशे)।

●

(५८१) सरफोंका

फैमिली लेगूमिनोसी (Family . Leguminosae)

नाम—(हिं०) सरफोका, सरफोंका, सरपोखा, (फा०) बर्गसूफार; (स०) शरपुङ्ख, प्लीहारि, (ब०) बननील, शरपुख, (म०) शीरपखा, उटाटी, उन्हाली, (गु०) शरपखो, (प०) सरपख; (क०) सर्पाख, सर्पान, (मा०) बांसा, झोजरू, मासो, बिसूनी, (ते०) वेंपन्कि, (ता०) काट्टकोलुजि, (मल०) कोलिञ्चिल्, (ले०) टेफ्रोसिआ पूर्पूरेआ (**Tephrosia purpurea** (L) Pers), (अ०) पर्पिल टेफ्रोसिआ (Purple Tephrosia) ।

वक्तव्य—उपर्युक्त नाम लालफूलके सरफोकाके है । सफेद फूलके सरफोकाको लेटिनमें गालेगा इन्काना या विल्लोसा (**Galega incana** or **villosa** Roxb.) कहते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षकी कडी एव ककडीली-पथरीली भूमिमे इसके क्षुप होते है ।

वर्णन—यह अनेक शाखाओसे युक्त एक छोटा क्षुप होता है जो नीलके क्षुपके समान दिखता है । इसीलिये बगालमे इसे बननील कहते भी है । इसके एक पत्रकको दो भागोमे तोडनेसे एक भाग शरपुख जैसा निकलता है, परन्तु नीलके पत्रक इस तरह नही टूटते । फूल किरमिजी, फली चपटी होती है । यह सफेद फूलका भी होता है ।

उपयुक्त अग—पचाग अथवा मूल ।

रासायनिक सगठन—निर्यास, अशत ऐल्ब्युमिन, रजक द्रव्य, राख ६% जिसमें मैंगेनीज होता, भूराराल, क्लोरोफिल (Chlorophyll) और क्वेर्सेटिन या उसके सदृश एक सत्व होता है । इसमे रूटिन (Rutin) नामक एक ग्लूकोसाइड, मूलमें टेफ्रोसिन (Tephrosin), पत्रमे ओसीरिटिन (Osyritin) नामक ग्लूकोसाइड लगभग २% होता है ।

प्रकृति—गरम और तर ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रवर्तक और रक्तशोधक । यह अधिकतया फोडे-फुसियो (दमाझोला), दाने (बुसूर), कच्छू और कण्डू तथा कुष्ठ एव आतशकमे रक्तप्रसादनके निमित्त क्वाथ या फाटके रूपमें प्रयुक्त होता है । कभी जलमे पीस-छानकर भी पिलाते है । कच्ची भस्मके सेवनसे रक्तमे जो विकार हो जाता हैं, उसमे सरफोका का उपयोग करते है । रक्तार्शमें यह विशेष गुणकारक है । अहितकर—कोई मुख्य अवगुण नही है । निवारण—ब्रह्मदण्डी । मात्रा—३ ग्राम से ७ ग्राम (३ से ७ माशे) ।

आयुर्वेदीय मत—सरफोका (शरपुङ्खा) तिक्त, कपाय, लघु तथा यकृत्के रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म, व्रण, विप, कास, रक्तविकार, श्वास और ज्वरको दूर करता है । (भा० प्र०) ।

नव्यमत—सरफोका तिक्त, आनुलोमिक, पित्तसारक, मूत्रजनन, कफघ्न और विषहर है । यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिमे इससे उत्तम लाभ होता है । गण्डमालामे जडका लेप करते है । खुजलीमें बीजोका लेप करते हैं हैं अथवा बीजोका तेल लगाते है । अर्शमें जडका कल्क छाछके अनुपानसे देते है ।

●

(५८२) सरसो

फैमिली : क्रूसीफेरी (Family . Cruciferae)

नाम—(हिं०) सरसो; (यू०)नेपी(पु), सिनेपी, (अ०) हुर्फ अब्यज, खर्दल अब्यज, खर्दल अस्फर, (फा) सर्ष(शं)फ़, इस्फदान सफेद; (स०) सर्षप, सिद्धार्थ, गौरसर्षप, आसुरी, (व०) श्वेत सरिषा, (म०) शिरसी, शिरस, श्वेत शिरम; (गु०) सरसव; (क०) तिलगगुल, (प०) सरेयाँ, (सिंध) सिर्यांचिकी, (मा०) सरसु, (लै०) ब्रास्सिका काम्पेस्ट्रिस (**Brassica campestris** Linn), (अ०) रेप (Rape), इडियन मस्टर्ड (Indian Mustard) । तेल—(हिं०) सरसोका तेल, कडवा (कडुआ) तेल, (फा०) रोगन सर्षफ, (स०) सर्षप तैल, (म०) शिरसेल, सरसोचे तेल, (गु०) सरसीया तेल, (अ०) रेप ऑयल (Rape Oil), मस्टर्ड ऑयल (Mustard Oil) ।

वक्तव्य—फारसी 'सर्शफ' सज्ञा संस्कृत 'सर्षप' से व्युत्पन्न है । सरसो (हिं०), सरिपा (ब०), शिरस (म०), सरसव (गु०), सरसु (मा०), सरेयाँ (प०) आदि भारतीय सज्ञायें भी सस्कृत 'सर्षप' से ही व्युत्पन्न हैं ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है ।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध तेलहन बीज है जो छोटे-छोटे, गोल तथा चरपरे स्वादयुक्त होते हैं । कालाई लिए लाल और पीली-सरसोकी यह दो जातियाँ प्रसिद्ध हैं । इनको कोल्हूमें पेरकर तेल निकाला जाता है, जो रोगन तल्ख (कटुस्नेह) कहलाता है । पत्रको गॉडल या गडली कहते हैं । इसका शाक बनाकर खाया जाता है ।

●

(५८३) राई

नाम—(हिं०, उ०) राई, (अ०) खर्दल, (लै०) सिनापिस (Sinapis), (अं०) मस्टर्ड (Mustard) ।

सफेद राई या सरसो—(हिं०, उ०) सफेद राई, (अ०) अल्खर्दलेल्अब्यज़, (फा०) खर्दल सफेद, (स०) गौरसर्षप, श्वेतसर्षप, (लै०) सिनापिस आल्बे (Sinapis albae), ब्रास्सिका आल्बा (**Brassica alba**), (अ०) व्हाइट मस्टर्ड (White Mustard) ।

उत्पत्तिस्थान—एशिया, दक्षिण यूरोप और सयुक्त राष्ट्र अमरीका ।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्सकोको इसका ज्ञान था । रूमियोको भी इसका भलीभाँति ज्ञान था । 'राइपो' और 'सनेपी' नामसे इसका वर्णन किया है । अस्तु, रूमी प्लाइनीने तीन प्रकारके (खर्दल)का वर्णन किया है । प्राचीन इसलामी और भारतीय चिकित्सक भी इससे भली-भाँति अभिज्ञ थे । राजिका एव सर्षपका वर्णन आयुर्वेदीय संहिताओंमें प्रचुरतासे मिलता है ।

काली राई—(अ०) अल्खर्दल अल्अस्वद, (फा०) खर्दल स्याह, (स०) कृष्ण सर्षप, (लै०) सिनेपिस नाइग्रे (Sinapis Nigrae), ब्रासिका नाइग्रा **Brassica nigra** (Linn) Koch , (अ०) ब्लैक मस्टर्ड (Black Mustard) ।

उपयुक्त अग—बीज, बीजोत्थ तेल (रोगन सर्शफ) और पत्र ।

रासायनिक संगठन—बीजोमें २३%–२५% कडवा अनुत्पत् तेल, सिनाल्बिन (Sinalbin) नामक एक स्फटिकीय द्रव्य, सिनैपिन सल्फोसायनाइड, लेसिथिन, लबाब (केवल बीजावरणमें), मायरोसीन नामक एक पाचक द्रव्य

(Ferment), प्रोभूजिद (Proteids), राख ४% जिसमें फॉस्फेट्स ऑफ पोटैसियम, मैग्नीसियम और कैल्सियम होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे शाक उष्णवीर्य एव रूक्ष (सु०) और तेल उष्ण-वीर्य एव स्निग्ध (सु०) है।

गुणकर्म—सरसो लेखन एव शोणितोत्क्लेशक है। तेल बल्य है तथा शरीरमें तरी और गरमी पहुँचाता और उसे मोटा करता है। मर्दन करनेसे यह त्वचाके रोगोको नष्ट करता है। विशेषकर वाजीकर और क्षुधावर्धक है।

उपयोग—सरसोके पत्तोका साग पकाकर खाया जाता है। यह विष्टभी (सकील) होता और वायु उत्पन्न करता है। सरसोको अकेले या उबटनमें डालकर चेहरेका रग निखारनेके लिए और किलास तथा झाई जैसे त्वग्रोगो-मे लगाते है। इसके तेलका कुछ लोग घीके स्थानमे उपयोग करते है। इसको मरहमोमे डालकर व्रणोपर लगाते और अन्य औषधियोके साथ शरीरकी खाज आदि दूर करनेके लिए शरीरपर अभ्यग करते है। आमवात, कटिशूल और अन्यान्य वेदनाओको शमन करनेके लिए इसकी मालिश करते हैं। इसके बीज (सरसो)को वाजीकरण और मूत्रल भी वर्णन किया जाता है। अहितकर–वृक्करोगोके लिए। निवारण–चीनी, मिश्री और शहद। प्रतिनिधि–तरातेजक के बीज। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—सरसोंका शाक विदाही, मल और मूत्रका अवरोध(कब्ज)करनेवाला, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और तीनो दोषोका प्रकोप करनेवाला हैं। (सु० सू० अ० ४६, च० सू० अ० २५)। सरसों का तेल रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, स्निग्ध, लघु, नेत्रको हानि करनेवाला, रक्त और पित्तको दूषित करनेवाला तथा कफ, वात, शुक्र, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और कोढका नाश करनेवाला है। (सू० सु० अ० ४५ च० सू० अ० २७)। काश्यपसंहिता (पृ० १४६)मे सरसोके तेल (कटुतैल)को प्लीहा वृद्धिको दूर करनेके लिए उत्तम औषध बताया है।

कुष्ठमें वाह्य प्रयोगके लिए जहाँ तेलका विधान हो वहाँ 'तेल' शब्दसे सरसोका तेल लिया जाता है। सरसो के बीजोके गुण धर्म राईके बीजोके समान हैं और राईके बीजोके समान उसका प्रयोग किया जाता है। सरसोके तेलमे जरा-सा सेंधानमक मिलाकर दाँतोपर मलनेसे या उसकी कुल्ली करनेसे दन्तपूय आराम हो जाता है और दाँत दृढ होता है।

•

(५८४) सरो

फैमिली कुप्रेस्सासे (Family · Cupressaceae)

नाम—(फा०, हिं०) सरो, सरौ, सरु, वनझाऊ, (लै०) कूप्रेस्सुस् सेम्पेर्विरेंस (**Cupressus sempervirens** Linn), (अ०) दी टॉल पिरामिडल साइप्रेस (The tall Pyramidal Cypress)।

वक्तव्य—जगली सरो (सरो वर्री या सरो कोही)को लेटिनमें कासुआरीना एक्वीसेटिफोलिआ (*Casuarina equisetifolia* J R & G. Forst) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीर, अफगानिस्तान और फारस आदि एशियाके पश्चिम प्रदेश।

वर्णन—यह झाऊकी जातिका एक सीधा पेड़ है, जो प्राय बगीचोमें शोभाके लिए लगाना जाना है। इसके पत्ते झाऊकी तरह छोटे-छोटे होते है। यह पत्तो और शाखाओकी प्रचुरतासे नीचे मोटा और फिर ऊपरकी ओर क्रमश पतला होता जाता (पिरामिडकी रूपरेखाका) है। इसके फल झाऊके फलके समान होते हैं और जौजुस्सरोके नामसे प्रसिद्ध है। अधिकतया ये फल ही औषधके काम लिये जाते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष ।

गुणकर्म तथा उपयोग—(जौजुस्सरो अर्थात् सरोका फल) संग्राही, उपशोषण और रक्तस्रावरोधक है । गंज दूर करनेके लिए सरोके फलको सिरकेके साथ आबवृद्धि (फतक)में लेप करते हैं । शुक्रमेह एवं अतिसार, योनिस्राव एवं अत्यार्तव आदि दूर करनेके लिये इसका चूर्ण खिलाते हैं । शय्यामूत्र एवं बहुमूत्र बन्द करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं । गुदभ्रंश (Prolapse ani)में रोगीको इसके काढ़ेमें बैठाते और महीन पीसकर छिड़कते हैं । मात्रा–१ ग्राम से १.५ ग्राम (१ माशा से १½ माशा) तक ।

●

(५८५) सलई और कुंदरू

फैमिली : बर्सेरासे (Family . Burseraceae)

नाम । वृक्ष—(हिं०) स(श)लई, सलीबन (गोरखपुर), (सं०) श(स)ल्लकी, कुन्दुरुकी, सुरभा, गजभक्षा; (प०) सलई, (गु०) सालेडु (डो), धूपडो; (म०) धूपसालई, सालई, (बं०) सालई, लुबान, (राजपु०) सालर; (कन्न०) गुग्गुळ, (ता०) कुन्दुरुकम्; (ले०) बॉस्वेल्लिआ सेर्राटा (Boswellia serrata Roxb.); (अं०) सलई ट्री (Salai Tree) ।

निर्यास—(हिं०) कुंदुर गोंद, सलई (का) गोंद, (सं०) कुन्दुरु, कुन्दुरु, शल्लकी निर्यास (द्रव); (बं०) सेलेगुन, (फा०) कन्दोज़ः; (सिद्ध०) कुन्दिरुकम् (अं०) इंडियन् आलिबेनम् या फ्रैंकिन्सेन्स (Indian Olibanum or Frankincense) ।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, मध्यप्रदेश अर्थात् भारतके प्रायः गरम और शुष्क प्रदेश, सतलज नदीसे नेपाल तक, मध्यभारत और बरारसे राजपूताना तक तथा दक्षिण एवं कोंकण आदि दक्षिणी प्रांत । आसाम और बंगालमें नहीं होता ।

वर्णन—सलईका लगभग ३० फुट ऊँचा बड़ा पेड़ होता है । शाखायें नीचेकी ओर झुकी हुई होती हैं । पत्ते और फूल शाखाओंके अग्रपर लगते हैं । पत्ते नीमके पत्ते जैसे होते तथा पुष्प छोटे, सफेद रंगके होते हैं । पुष्प बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५-५, पुंकेसर ५ बड़े और ५ छोटे । फल मांसल और तीन धारवाला होता है । छालमें चीरा लगानेसे गोंद (निर्यास) निकलता है, जिसको शल्लकी निर्यास या 'कुंदुर' कहते हैं । इसके दाने अश्रुवत् गोल और सुडौल होते हैं । यह नरम और बेडौल समूहका भी होता है । इसे 'भारतीय कुंदुर' कहना चाहिए । दवाके लिए फीके पीले रंगका और गोल गोंद लेना चाहिए । इसको जलमें घोटकर मिलानेसे पानी दूध जैसा हो जाता है । इसमें सुगन्ध और कडुआ स्वाद होता है । गूगल, लोबान और गंधाबिरोजासे यह सर्वथा भिन्न द्रव्य है । इस समय बाजारमें जो कुन्दुर मिलता है वह एबीसिनिया और अरबसे आता है । इसके वृक्षको लेटिनमें बॉस्वेल्लिआ फ्लोरिबुंडा (Boswellia floribunda) कहते हैं । यह विदेशी वृक्ष है । सलईके पेड़की एक दूसरी जातिको लेटिनमें बोस्वेल्लिआ ग्लाब्रा (Baswellia glabra) कहते हैं । इस वृक्षके पत्रप्रान्त समान अर्थात् अखण्ड और पत्रपृष्ठ चिकने होते हैं । इसके विपरीत उपरिलिखित सलई (बोस्वेल्लिया सिर्रेटा)के पत्र नीमके पत्रकी तरह, पत्रप्रान्त दन्तुर और रोमश एवं खुरदरे होते हैं । विदेशी कुंदुरुका वर्णन 'कुंदुर' शब्दमें किया गया है । यहाँपर देशी कुंदुरु और उसके पेड़-सलईका वर्णन किया जा रहा है । प्राचीन भारतीय वैद्योंने शल्लकी निर्यासको ही कुन्दुरु अर्थात् कुंदुर माना है–'कुन्दुरुक शल्लकी चोप ।' (डल्हण) ।

उपयुक्त अंग—पचांग, शल्लदारगोंद (शल्लकी निर्यास) और तेल प्रभृति।

रासायनिक संगठन—इसमें एक स्थिर तेल और गोंदीय राल ९०% होता है।

प्रकृति—गरम, आयुर्वेदके मतसे सलई और कुन्दुर दोनों शीतवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—निर्यास स्वेदन, मूत्रजनन, कषाय वा संग्राही और आर्तवजनन है तथा आमवात, वात एवं त्वग्रोगोंमें प्रयुक्त होता है। यह फोड़े-फुंसीको लाभ पहुँचाता है, अतिसारको बन्द करता तथा रक्तपित्त और कफके विकारको यह नाश करता है।

आयुर्वेदीय मत—शल्लकी कषाय, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, पुरीषविरजनीय, ग्राही तथा कुष्ठ, रक्तविकार, कफ, वात, अर्श और व्रणदोषका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८, ४२, रा० नि०) शल्लकीके पुष्प कफ, वात, अर्श कुष्ठ और अरुचिका नाश करते है। (कै०नि०)। कुंदुर (शल्लकी निर्यास) शिरोविरेचक, मधुर, कटु तिक्त, तीक्ष्ण, शीतवीर्य, त्वचाको हितकर तथा वातरोग, कफरोग, प्रदर, ज्वर, स्वेद, ग्रह, मलिनता और मुखरोगका नाश करनेवाला है। (च०, सु० सू० अ० ३८; ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—सलईका गोंद स्नेहन, स्रंसन और रक्तशोधक है। गुणमें यह बहुतांशमें हीराबोल और गूगलके तुल्य है, अर्थात् उत्तेजक, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। यह सुगन्धिद्रव्योंके साथ गोली या चूर्णके रूपमें दिया जाता है। यह व्रणशोधन और व्रणरोपण है। सलईका गोंद, गूगल, सुहागा, गन्धक और कत्था इनसे बने मलहमकी पट्टी पुराने खड्डेवाले व्रणोंपर लगाते है। गण्डमाला, ग्रन्थि और बदपर इसको गरम जलमें पीसकर लगाते हैं। संधिवात और अस्थिशोथमें इसका लेप करते है और खिलाते भी है। कुन्दुर सुगन्धि और उत्तेजक है। इसकी उक्त क्रिया श्लेष्मल त्वचापर विशेषत. श्वासमार्गकी श्लेष्मल त्वचापर होती है। श्वासनलिकाका जीर्ण शोथ, पुष्कल चिकना कफ गिरना और उसमें दुर्गन्ध आना इसमें कुन्दुरको खिलाते है और इसका धूम्रपान कराते है। कुंदुरका मलहम (कुन्दर १ भाग, खशखाशका तेल १ भाग और सफेद मोम १ भाग सबको मदाग्निपर गला, कपड़ेसे छानकर काचपात्रमें भर लेवें)। यह ग्रन्थिशोथको कम करता है और व्रणरोपण है। प्रमेहपिडिका (कार्बंकल)के व्रणपर इसका मलहम उत्तम औषध है। कुंदरको कपड़ेपर रखकर गरम पानीकी भाफपर सिझानेसे चिकट गोंद जैसा होता है। उसमें अफीम, धतूरा, खुरासानी अजवायन, बेलाडोना जैसे पीडाशामक द्रव्य मिला उसको मोटे कपड़ेपर पट्टी तैयार करके पार्श्वशूल आदिमें पीडायुक्त भागपर लगानेसे रक्तवाहिनियोंका आकर्षण और हलन-चलन कम होकर पीडा शांत होती है। मात्रा—१ २५ ग्राम से ३ ७५ ग्राम (१० रत्ती से ३० रत्ती)। इसे जीर्णकास और सूजाकमें बादाम, शक्कर और पानीके साथ घोटकर पिलाते है। (औ० स०)।

•

(५८४) सहदेई

फैमिली · कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०, पं०; मा०) सहदेई, सहदेइया, (सं०) सहदेवी, दण्डोत्पला, (गु०) सेदरडी, सहदेवी, (म०) सहदेवी, (बं०) कुकसीम, (क०) सहदेवी, (ले०) वेर्नोनिआ सिनेरेआ **Vernonia cinerea Less**); (अं०) ऐशकलर्ड फ्लीबेन (Ash-coloured Flea-bane)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें वर्षाऋतुमें ज्वार, मकाई और ईखके खेतोंमें यह विपुल पायी जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध देशी क्षुद्र वनस्पति है, जिसका क्षुप ४५ से०मी० (आधागज) तक ऊँचा होता है। पत्र तुलसीके पत्रके समान चिरहरित और फूल जामुनी रगके होते है।

उपयुक्त अग—पचाग।

प्रकृति—सर्द और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, संतापहर, मूत्रजनन, रक्तशोधक और विशेषकर जीर्णज्वरनाशक है। सतापहर होनेसे रक्तज एव पित्तज ज्वरो, रक्तप्रकोप और पित्तकी अधिकतामें सहदेईका उपयोग किया जाता है। अश्मरीको नष्ट करनेके लिए इसका शीरा निकालकर पिलाते है। मूत्रल होनेसे यह सूजाकमे उपयोगकी जाती है। रक्तष्ठीवन एव रक्तस्रावमे इसका शीरा मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है। अहितकर–शीतप्रकृतिको। निवारण–कालीमिर्च और शहद। प्रतिनिधि–निर्भौली। मात्रा–३ ग्राम से ७ ग्राम (३ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सहदेई मधुर, धातुवर्धक, बलकारक, वीर्यवर्धक, वातानुलोमन तथा मूत्रकृच्छ्ररोग, त्रिदोष ज्वर, हृद्रोग, दाह, वातार्श, सूजन, विषमज्वर, सर्वप्रकारके प्रमेह और मूत्रातिसार निवारक है। इसकी जडको शिखामे बाँधनेसे विषमज्वरका नाश होता है। (भा० प्र० आदि)।

नव्यमत—स्वेदजनन होनेसे ज्वरावस्थामें पसीना लानेके लिए इसका काढा पिलाते है। अर्शमें पौधेका रस (अर्क) देते है। शोथमे काढा और आँख दुखनेमे फूलोका उपयोग करते है।

●

(५८५) सहिजन

फैमिली : मोरीगासे (Family Moringaceae)

नाम—(हिं०) सहिजन, सहजन, सैजन, सजना, सगन, सोहाजन, मुनगा, (सं०) शिग्रु, शोभाञ्जन, मुरगी (सु० सू० ३९, चि० ४, १४, १६, २३), (द०) मुनगा, (ब०) शजिना, (प०) सु(सो)हाजना, (सि०) सुहाजिडो; (मा०) सहजणी, (गु०) सरगवो, सरघवा, सेकटो, (म०) शेवगा, सेकटा, (कना०)नुग्गे, (ते०) मुनगा, (ता०) मुरगमरम्,(ले०) मोरिंगा ओलेईफेरा **Moringa oleifera** Linn (पर्याय–*Moringa pterigosperma* Gaertn.), (अ०) हार्सरैडिश (Horse Radish), ड्रमस्टिक ट्री (Drum-stick Tree)। वक्तव्य—उपर्युक्त नाम सफेद फूलके और मीठे सहिजनके है। कडवे सहिजनको लैटिनमें मोरिंगा कॉन्कान्नेन्सिस्(*M. Concannensis* Nimm) कहते है। गुणमे प्राय दोनो समान होते है। सहिजनके उत्तर भारतीय विभिन्न नाम सस्कृत 'शिग्रु' या 'शोभाञ्जन' से व्युत्पन्न है। दक्षिण भारतमें यह 'मुनगा' या 'मुरंगा' नामसे प्रसिद्ध है। तामिलमें वृक्षको 'मुरगमरम्' कहते है जो सस्कृत नाम मुरगीका ही किञ्चित् परिवर्तित रूप है। अथवा सम्पूर्ण दक्षिण भारत में मात्र 'मुरग' या इसके परिवर्तित रूपो के परम्परागत प्रचार को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत 'मुरगी' संज्ञा 'तामिल' नाम से ही प्रभावित है। लैटिन नाममें प्रजातिक नाम (Generic name) तामिल नामपर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (विशेषत भारतके दक्षिणी राज्यो) और ब्रह्मामें इसके वृक्ष लगाये जाते है। उपहिमालय प्रदेशोमें (चनाबसे अवध तक) इसके वृक्ष जंगली होते हैं।

वर्णन—यह एक बडा वृक्ष है जिसकी शाखाये बहुत कमजोर होती है और फलियोसे लदनेके बाद भारसे स्वय टूट जाती है ('सहिजन अति फूले-फले डार-पातकी हानि')। छाल कार्कयुक्त, मोटी, पत्ती संयुक्त त्रिपक्षाकार ४५सें०मी०से १ ५ मीटर (१½से ५ फीट) लम्बी होती है। फली २२ ५सें०मी०से ५०सें०मी०(९ इञ्चसे २० इञ्च)

लम्बी, घेरेमे त्रिकोण, खडी रेखाओसे युक्त तथा बीजोके बीच-बीचमें पतली होती हैं। किन्ही-किन्ही वृक्षोमें फलियाँ त्रिपार्श्विक-चपटी-गोल न होकर सिलिंडराकार, किन्तु दोनों अग्रोपर क्रमशः पतली होती है। बाजारोमें यह 'मुनगा' नामसे तथा चपटोकी अपेक्षा महँगी बिकती हैं। बीज पक्षयुक्त, त्रिकोण और २ ५ सें०मी० (१ इञ्च) तक लम्बे होते हैं। जगली वृक्षोकी फली कडवी होती है। वृक्षके तनेसे बबूलके गोदके समान गोद निकलता है। ताजी कोमल फलियोका शाक और अचार बनाते है। फूलोके रगके विचारसे इसके चार प्रकार बताये गये हैं। यथा (१) सफेद, (२) लाल, (३) नीला और (४) पीला। किन्तु वानस्पतिक दृष्टिसे मोरींगाकी इस प्रकारकी जातियाँ (Species) नही मिलती।

उपयुक्त अग—पत्र, फूल, फली, गोद, छाल, बीज, बीजोत्थ तेल, मूल एवं मूलत्वक्।

रासायनिक सगठन—छालमें एक सफेद क्रिस्टली ऐल्केलॉइड, २ रालें (Resins), एक इन्-ऑर्गेनिक अम्ल, लवाव और राख ८%; मूलमे एक अत्यत तीक्ष्ण एव अप्रियगधयुक्त उड्नत् तैल तथा मूलत्वक्से मोरिंगीन (Moringine) एव मोरिंगिनीन (Moringinine) नामक दो ऐल्केलॉइड पृथक् किये गये है। छिल्का उतारे बीजोमें अनुत्पत् तेल (Beni oil) ३६ प्रतिशत, जिसमें ६० प्रतिशत प्रवाही तेल और ४० प्रतिशत सफेद ठोस बसा होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे सहिजन, उसका बीज (भा०प्र०) और तेल (सु०) उष्णवीर्य हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सहिजनके फूल, पत्ते, फलियों एव गोदको शीतल कफज रोगोमें उपयोग किया जाता हैं। यह उदरकृमिनाशक, वातहर, दीपन, वाजीकर कफघ्न एव मूत्रल है तथा उदरशूलका नाश करता है। खाँसी, श्वास, प्लीहाशोथ, आमवात और कटिशूलमे इसकी फलियो और फूलोका सालन तथा फलियोको सिरकामें डालकर उपयोग कराया जाता है। कच्ची फलियोको पानीमें उबालनेके बाद थोडा कडवा तेल, नमक और राई मिलाकर तीन-चार दिन तक धूपमे रख छोडते है। इसके बाद पक्षवध, अर्दित, आमवात, कटिशूल, अरुचि, (जोफे इश्तिहा) और उदरशूलमें खिलाते है। इसका यह अचार खट्टा होनेपर भी नाडियोको हानि नही पहुँचाता। श्वयथुविलयन और वेदनास्थापनके लिये इसके पत्तोका प्रयोग करते है। इसके बीज वाजीकर वर्णन किये जाते हैं। यह विशेषरूपसे कफघ्न एव मूत्रल है। अहितकर-उष्ण प्रकृतिके लिये। निवारण–सिरका। मात्रा–अचार १ तोलासे १½ तोला तक, बीज १ माशा।

आयुर्वेदीय मत—सहिजन (शिग्रु व मधुशिग्रु) मधुर, कटु, तिक्त, किंचित् क्षारयुक्त, कटुविपाक, उष्ण-वीर्य, पिच्छिल, सारक, दीपन, तीक्ष्ण, लघु, कृमिघ्न, स्वेदोपग, शिरोविरेचन, रोचन, विदाही, हृद्य, चक्षुष्य, वीर्यको हानिकारक तथा कफ, वात, विद्रधि, शोथ, मेद, अपची, विष, प्लीहाके रोग, गुल्म, कण्डू और व्रणका नाश करने वाला है। (च० सू० अ० ४, २७, वि० अ० ८, सु० सू० ३८, ४६, भा० प्र०)। सहिजनेकी छाल और पत्रका स्वरस पीडाशामक है। (भा० प्र०)। सहिजनके बीजोका तेल तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा विष, शुक्र, कफ और वातका नाश करनेवाले हैं। इसके बीजके चूर्णका नस्य सिरके दर्दको मिटाता है। (भा० प्र०)। सहिजनेके बीजका तेल तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, कटु, कटुविपाक, सारक तथा वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगका नाश करने-वाला है। (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—सहिजनेकी जडकी ताजी छाल, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकर, दीपन, पाचन, उत्तेजक, कोष्ठवात-प्रशमन, वातहर, स्वेदजनन, मूत्रजनन, कफहर, शोथहर और व्रणदोषनाशक है। इसमें आमाशयका रक्ताभिसरण बढता है, इसलिए अधिक पाचनरस उत्पन्न होते है और अन्न पचता है। अन्न पचकर उससे आन्त्रोत्तेजक मल बनता है तथा उससे स्वय आँतोको भी उत्तेजन मिलता है, इसलिए दस्त साफ होता है। इसकी स्वेदजन क्रिया नाडियो-

द्वारा रक्तवहाओ द्वारा और स्वेदग्रन्थियोपर होती है और इससे शरीरका दाह होता है। अडूसेसे जैसा प्रत्यक्ष कफ निकलता है वैसा इससे नही निकलता। परन्तु नाडियो और हृदयको उत्तेजन मिलनेसे रोगीकी खाँसनेकी शक्ति बढकर कफ निकलता है। यह हृदय और नाडियोके लिए उत्तेजक है। वृक्कोपर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है और मूत्रमें भी क्षारकी वृद्धि होती है। इसकी छालका कल्क त्वचापर बांधनेसे त्वचा लाल होती है। बांधे हुए भागकी रक्तवाहिनियाँ विकसित होती हैं और वहाँ रक्तान्तर्गत श्वेत कण एकत्रित होते हैं। इसलिए व्रणशोथ उतरता है। इसके सिवाय पसीना होकर और मूत्र बढकर व्रणकारक दोष निकल जाते है। अग्निमाद्य, कुपचन, आध्मान, आनाह और पेटके दर्दमें छालका कल्क देते है। हृदयोदर, यकृद्‌दाल्युदर और प्लीहोदरमे अन्य मूत्रजनन और विरेचन द्रव्योके साथ छालका फांट देते हैं। वृक्कशोथजन्य उदरमें सहिजनको नही देना चाहिये। क्योकि इससे वृक्कका शोथ बढता है। व्रणशोथपर छालके कल्कका लेप लगाते है और उसका फाट पीनेको देते है। विद्रधिमें इसके फाँटमें हीग और सेंधानमक मिलाकर देते है। संधिवात और आमवातमें इसके बीजोके तेलकी मालिश करते है।

●

(५८६) साँवाँ

फैमिली : ग्रामीने (Family Gramineae)

नाम—(हिं०) सावाँ, सामाँ, साँवा(माँ), साँवक, सामक, (फा०) शामाख, (स०) श्यामक, श्यामाक, (ले०) एकीनोक्लोआ फ्रूमेन्टासेआ **Echinochloa frumentacea** Link (पर्याय—*Panicum frumentaceum* Roxb)। वक्तव्य—'श्यामाक' का उल्लेख प्राचीन आयुर्वेदोय सहितामोमें मिलता है। आयुर्वेदोय साहित्यमे इसकी गणना 'क्षुद्रधान्यों'में की गई है। फारसी 'शामाख' सम्भवत इसकी सस्कृत संज्ञा 'श्यामाक'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अधिकतर भागोमें वन्य या ग्राम्य अवस्थामे होता है। चारेके लिए इसकी खेती की जाती है। चावलका प्रयोग गरीब लोग खानेके लिए करते है।।

वर्णन—कँगनी या चेना जातीय प्रसिद्ध अन्न है।

रासायनिक सगठन—१०० तोले साँवाँमें ७२½ तोले आटा और ३ तोले तेल निकलता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एव खुश्क। मतातरसे मोतदिल।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह नेत्रको शक्ति देता तथा उसकी रोशनी बढाता है और गर्भाशयगत द्रवोका आकर्षण करता है। इसमे रक्तकी उत्पत्ति कम होती है। यह नेत्र, नासिका, चेहरा और गुदाके व्रणोको लाभकारी हैं, कक्षागत दुर्गन्धको दूर करता, कफ और पित्तके विकार नष्ट करता और व्रणका शोषण करता है। यह रक्तका भी शोषण करता है। इसलिए इसके खानेसे रूक्षता उत्पन्न होती है। इसे दूध या घीके साथ खानेसे प्रसेक (नज़ला) दूर होता और रक्तशक्ति बढती है। इसका चावल लघु (सुबुक) है तथा कफ उत्पन्न करता है। भारतस्थित यूनानी चिकित्सक कभी तो कहते है कि यह कफका नाश करता है और कभी कहते है कि यह कफ उत्पन्न करता है। वैद्योंके मतसे यह मधुर, स्निग्ध, कषाय, शीतल, लघुपाकी एव सग्राही है तथा बादीको बढाता और कफ पित्त और विषजन्य दोषोको दूर करता है। नयेकी प्रकृति उष्ण है। पुराना पडनेपर यह सर्वथा दोषरहित हो जाता है।

आयुर्वेदीय मत—साँवाँ रसमें कषाय, मधुर, शीतवीर्य, लघु, कफपित्तनाशक, सग्राहक और शोषक होता है। (च० सू० २७ अ०, सु० सू० ४६ अ०)।

●

(५८७) सागूदाना

फ़ैमिली : पामे (Family : Palmeae)

नाम—(हिं०) सागू(बू)दाना, (लै०) सागुस्लोएवस् (Sagus loevus), सा० जेनुइना (S. genuina), सा० रूम्फी (S. rumphii Willd), (अं०) सैगो (Sago)।

उत्पत्तिस्थान—सागूके पेड जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि पूर्वी द्वीपसमूहोमें अधिकता होते है। हमारे देशमे अब इसके पेड लगाये जाते है। भारतीय साबूदाना सिकास पेक्टिनाटा (**Cycas pectinata** Griff) नामक वृक्षसे तथा कतिपय अन्य वृक्षोसे प्राप्त किया जाता है।

वर्णन—साबूदाना सागू नामक वृक्षके तनेका गूदा है जो पहले आटेके रूपमें होता है और फिर कूटपीसकर छोटे-छोटे दानोके रूपमे बनाकर सुखा लिया जाता है। ये दाने पोस्तेके दानेसे बडे, विभिन्न रूप और आकारके तथा सफेद होते है। इन्ही दानोको 'सागूदाना' या 'साबूदाना' कहते है। हमारे देशमे इसका प्रचार आधुनिक है। आजकल बाजारोमे जो साबूदाना मिलता है वह प्राय उपरोक्त वृक्षोके स्टार्चसे न बनाकर यहाँ सुलभ अन्य स्टार्चोंसे बनाया जाता है। इनमे आलूके स्टार्चका प्रयोग बहुत किया जाता है। असली साबूदाना वास्तवमें नकलीकी तरह नितात श्वेत नही होता। असली एव स्थानापन्न स्टार्चोंके, (जिनका उपयोग साबूदाना बनानेके लिए किया जाता है) कणोकी रूपरेखा, आकार, परिमाण आदिमे अन्तर होता है। इसके हाइलम (Hilum)के स्वरूपमे भी अतर होता है।

उपयुक्त अग—बनाया हुआ वृक्षके गूदेका स्टार्च (Pith-starch)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सागूदाना लघु एव शीघ्रपाकी आहार है तथा हलका सारक भी है। रोगी एवं दुर्बल लोगोके लिए पथ्याहार है। किन्तु प्रत्येक रोगीको यह हितकर (सात्म्य) नही होता। वातकफप्रधान रोगीको साबूदाना लाभदायक नही होता। साबूदाना अधिकतया दूधमें पका चीनी या मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है। यदि दूध न पडता हो तो इसे बादामकी गिरी और कदूके बीजकी गिरीके शीरे या जलमे पकाकर मीठा मिलाकर पिला सकते है। यह विशेषकर वाजीकर एव बृहण है। अहितकर–निरापद है। निवारण–दूध और चीनी। प्रतिनिधि–आरारोट। मात्रा–१२ ग्राम से ३५ ग्राम (१ से ३ तोले) तक या जितना पचा सके।

●

(५८८) सातर

फ़ैमिली लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) सातर, साथर, (भा० बा०) सातर, (अ०) अल्-सातर (इ० बै०), सातर, (यू०) ओरीगेनोन (Origanon), (लै०) जाटारिआ मल्टीफ्लोरा (**Zátaria multiflora** Boiss), (अं०) वाइल्ड थाइम (Wild Thyme)।

उत्पत्तिस्थान—अरब, फारस, खुरासान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और पश्चिमी भारतवर्ष।

वर्णन—यह मरुएकी जातिका एक क्षुप है, जिसकी शुष्क पतली शाखाएँ और पुष्प मिले हुए बाजारमें मिलते है। पत्र छोटे (बडासे बडा पत्र ६ २५ मि० मि० या १/४ इच लम्बा), अण्डाकार या लगभग गोल, धब्बा-

युक्त, रोमिल तथा पत्रप्रान्त अखण्ड, पुष्प छोटे रक्त या नीलवर्ण, स्वाद तीक्ष्ण एवं सुगन्धित होता है। जंगली (सहराई), पहाड़ी (कोही) और बागी (बुस्तानी) भेदसे यह तीन प्रकारका होता है।

रासायनिक संगठन—पत्रमें पुदीनेके गंधवाला एक उत्पत् तैल, एक लाल रंगका स्वादरहित अम्लराल और कुछ टैनिक एसिड (Tannic acid) प्रभृति उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—अर्क सातर।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—सातर छेदनीय, विलयन, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, [illegible], श्लेष्मनिःसारक, अश्मरी निर्हरण, मूत्रार्तवजनन, उदरकृमि विशेषकर कद्दूदानेके लिए घातक है तथा अन्त्र, आमाशय और यकृत्को द्रवोंसे शुद्ध करता है, विशेष रूपसे [illegible], क्षुधावर्धक, रुचिकर एवं वातघ्न है।

उपयोग—शोथकी सूजन दूर करनेके लिए इसे सिरकेके साथ पीसकर लेप करते और सिरकेमें भिगोकर खिलाते हैं। दूसरे प्रकारके शोथोंको मिटानेके लिए इसे शहदके साथ पीसकर लगाते हैं। दतशूलमें इसके काढ़ेसे गण्डूष कराते और गुर्देके दर्द, अग्निमान्द्य और जरायुशूलमें पिलाते तथा लेप करते हैं। कास और श्वास तथा फुप्फुसों-के रोगोंके लिए इसका चूर्ण अजीरके साथ सेवन करते हैं। अश्मरीके उत्सर्गके लिए इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ पिलाते हैं। कर्णशूलनिवारणके लिए इसका रस निचोड़कर कानमें टपकाते हैं। नेत्रके जाले और फूलेको नष्ट करनेके लिए इसका नेत्रमें आश्च्योतन करते हैं। अहितकर—फुप्फुसके रोगोंमें। निवारण—अजीर, सिरका, शहद और इसमें जैतूनका तेल। प्रतिनिधि—पहाड़ी पुदीना। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

नव्यमत—सुगन्धि (Aromatic), दीपन, उत्तेजक और स्वेदजनन है।

●

(५८९) साबुनी

फैमिली कारिओफिल्लासे (Family Caryophyllaceae)

नाम—(हिं०) साबुनी, साबूनी, पटगोहुआं गुल्ना (सथा०, सिंध), (ब०) साबूनी, (अ०) अल्साबूनिय, नवातुस्साबूनिय, (यू०) स्ट्रोन्थियोन (Stronthion), (रू०) स्ट्रूथिउम् (Struthium), (लै०) सापोनारिआ वाक्कारिया (Saponaria vaccaria Linn), (अं०) परफोलिएट सोपवर्ट (Perfoliate Soap-wort)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (प्राय उत्तरी भागके खेतोंमे जाडोकी फसलके साथ), और मध्य यूरोप-के गेहूँके खेतोंमें होती है। कैम्पबेलके अनुसार मानभूमिमें तेलहनके रूपमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—इसके क्षुप ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१–३ फुट) ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ, अभिमुख, भालाकार अथवा रेखाकार-आयताकार, काण्डसंसक्त और चिकनी होती है। पुष्प गुलाबी, सवृन्त और २–३ विभक्त मजरीमें, बाह्यकोश संयुक्त, नलिकाकार और उसके दल कूटदार, आभ्यन्तर दल अभिलट्वाकार और दलदण्ड नखराकार (Claw) होते है। समस्त पौधेका स्वाद तिक्त एव क्षारीय होता है। जड़ बहुत लम्बी, बेलनाकार और लगभग शाहीके काँटे (Quill)के आकारकी, जिसकी छाल बाहरसे ललाई लिए और सरलतासे छूटनेवाली और भीतरसे सफेद एव दृढ़ होती है।

उपयुक्त अग—जड।

भेद—विदेशी साबुनी।

(१) क्वील्लाजा सापोनारिआ (**Quillaja saponaria** Mol (*Family Rosaceae*),(अ०) क्विल्लैया सोप (Quillaia Soap), पनामा बार्क (Panama Bark), कुल्लै (Cullay-(Native) । यह चिली और पेरूका निवासी है ।

(२) सापोनारिआ ऑफ्फीसिनालिस **Saponaria officinalis** Linn (Family *Caryophyllaceae*), (अं०) सोपवर्ट (Soap-wort) । इसके पुष्प गुलाबी होते है ।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और ग्रेटब्रिटेन ।

वक्तव्य—क्विल्लाया (Quillaia) या क्विल्लाजा (Quillaja) 'चिली' भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ 'प्रक्षालन' या 'धोना' है । चिली निवासी इसकी छालको साबुन और रीठेकी भाँति वस्त्र आदि के प्रक्षालनार्थ प्रयोग करते है इसलिए उक्त नामसे अभिहित हुई ।

इतिहास—प्राचीन यूनानी वैद्योने 'स्ट्रोथियम' के नामसे सापोनारिआ ऑफ्फीसिनालिस (**Saponaria officinalis**) अर्थात् 'उश्नान' या 'गासूल' का या सापोनारीआ वाक्कारिआ (**Saponaria vaccaria** Linn.) अर्थात् 'साबूनीबूटी' का उल्लेख किया है । इन दोनोमे ही सैपोनिन सत्व विद्यमान होता है ।

उत्पत्तिस्थान—चिली (दक्षिण अमरीकाके पश्चिमी तटपर स्थित एक प्रदेश) ।

रासायनिक सगठन—इसमे सैपोनिन (**Soponin**) होता है जिसपर इसके गुणधर्म अवलबित होते है । यह सत्व तीव्र शिरोविरेचन, कफनिस्सारक, मूत्रजनन और मलोत्सर्जक और बडी मात्रामे हानिकारक होता है ।

नव्यमत—खाजमे पौधेका उपयोग होता है । दीर्घकालीन मन्द ज्वरोमे पौधेका सार या रस (Sap of the plant) ज्वरहर एव बल्य समझा जाता है ।

विदेशीय—साबुनी लेखन, छेदन और रसायन है । प्राय कण्ठमाला और त्वचाके रोगोमें सामान्यतया प्रयुक्त सार्सापरिल्लासे यह श्रेष्ठ बतलाया जाता है ।

●

(५९०) सारिवा

फैमिली आस्क्लेपिआडासे (Family . Asclepiadaceae)

नाम—(हिं०) अनतमूल, कपूरी, (अ०, फा०) उशबा हिंदी, (ब०) अनतमूल, (म०) अनन्ता, सारिवा (मु०, ध० नि०), उत्पलसारिवा, गोपवल्ली (च०), (म०) उपरसाल, उपलसरी, (ग०) उपलसरी, कपूरी मधुरो, (उडिया) कपरी, (लें०) हेमाडेस्मुस् इंडिकुम् (**Hemidesmus indicus** *Br*), (अ) इण्डियन या कन्ट्री सारसापेरिल्ला (Indian or Country Sarsaparilla) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें गगाका ऊपरी मैदान, पूरबकी ओर बगाल और सुदरबन तक तथा मध्यप्रदेशसे दक्षिणभारत तक और लंका ।

वर्णन—इसकी पतली और लपेटकर चढनेवाली गुल्मजातीय १·५ मीटरसे ४·५ मीटर (५ फुट से १५ फुट) लबी लताएं होती है । काड बारीक कालाई लिए लाल रगका, पर्णविन्यास अभिमुख (आमने-सामने), पत्रवृन्त छोटा, पत्ते छोटे-बडे, लम्बे, भिन्न-भिन्न आकारके, नीचे हलके रगके और ऊपर प्राय सफेद चित्तोंसे अकित, पुष्प पत्रकोणोद्भूत, छोटे जामुनी छाया लिये हुये हरे रगके गुच्छोंमें, फल युग्म, फैप्सूल, मूल लबे, गोल, जरा टेढ़े मेढे

स्न और काण्डत्वक् प्रायः कृष्णाभ लाल रंगके, पर उनके भीतर सफेदी होती है। मूलमें एक मधुर एवं प्रिय गंध होती है, स्वाद मधुर एवं किंचित् तिक्त होता है। 'कालीसर' अर्थात् 'कृष्णसारिवा' इसका एक भेद है।

उपयुक्त अंग तथा रासायनिक संगठन—अनन्तमूलकी वायुमें सुखाई हुई जड़में एक सुगन्धि और बाष्पके साथ उड़नेवाला वीर्य होता है। इसलिए इसका क्वाथ नहीं करना चाहिये। यह वीर्य जड़की छालमें होता है, भीतरके काष्ठमें नहीं होता। इसलिए सदा बारीक और नये मूल लेने चाहिये। मूल मोटे हों तो इसकी छाल ही लेनी चाहिये। यह सारसापरिल्लाके प्रतिनि रूपमें प्रयुक्त होती है।

कल्प—फाट या हिम।

प्रकृति तथा गुण-कर्म प्रयोग—सारिवा, शीतल, स्निग्ध (तर), मधुर, गुरु, शुक्रजनन, क्षुधाभिवर्धक है तथा पित्त एवं वातके विकारोंको नष्ट करती, आर्तवको बंद करती, और ज्वरातिसारका नाश करती है। (मख्जनुलअदविया और मुहीत आज़म)। यह मूत्रविरेचन, मूत्रविरजनीय, स्वेदजनन, दीपन, जीवनविनिमय क्रियाकी उत्तेजक, त्वग्दोषहर, उत्तम रक्तशोधक, बल्य और रसायन है तथा भूख न लगना, खानेकी तरफ रुचि न होना, ज्वर, चर्मरोग, श्वेतप्रदर, फिरंगोपदंश, आमवात, व्रण, शारीरिक दौर्बल्य तथा बिच्छू एवं सर्पदंशमें इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीयमत—अनन्तमूल, मधुर, स्निग्ध, गुरु, शुक्रकर, वर्ण्य, कण्ठ्य- स्तन्यशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, दाहप्रशमन तथा वातादि तीनों दोष, रक्तविकार, ज्वर, कण्डू, कुष्ठ, प्रमेह, शरीरकी दुर्गन्ध, अग्निमान्द्य, अरुचि, श्वास, कास, आंव, विष और अतिसारको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, भा०, प्र०)।

नव्यमत—अनन्तमूलमें एक सुगन्धि और वाष्पके साथ उड़नेवाला वीर्य है, अतएव अनन्तमूलका काढा नहीं करना चाहिये। यह वीर्य मूलकी छालमें होता है, भीतरके काष्ठमें नहीं होता, इसलिए सदा बारीक और नई जड़ लेनी चाहिए। जड़ मोटी हो तो उसकी छालही लेनी चाहिए। यह मूत्रविरेचन, मूत्रविरजन, स्वेदजनन, दीपन, जीवनविनिमय क्रियोत्तेजक, बल्य, त्वग्दोषहर और रसायन है। इसके फाटसे मूत्रकी राशि तिगुनी-चौगुनी बढ़नेपर भी मूत्रपिण्डोंको कुछ भी भय नहीं होता। गुरुच और सोंफ मिलानेसे इसकी क्रिया बढ़ती है। इसका फाट वृक्कशोथ और संकोचनमें अतीव गुणकारक है। इस रोगमें इसे गुरुच और जीरेके साथ देते हैं। इससे त्वचाकी जीवनविनिमय क्रिया सुधरती है और केशिकाओं (सूक्ष्म रक्तवाहिनियों) का थोड़ा सा विकास होता है। ज्वरमें इसके फाटसे पसीना और पेशाब होता है, शरीरकी उष्णता कम होती है और पचनक्रिया बढ़ती है। सब प्रकारके त्वचाके रोगों और उपदंशकी द्वितीयावस्थामें इसे गुरुचके साथ देनेसे उत्तम लाभ होता है। गण्डमालामें इसे वायविड़ंगके साथ देते हैं। क्षुधानाश और कुपचन रोगोंमें इसे देनेसे आमाशयकी शक्ति बढ़ती है, भूख लगती है, अन्नपर रुचि उत्पन्न होती है और अन्न ठीक पचता है। शरीरकी थकावट, वजन (भार) घटना, प्रदर, जीर्ण आमवात और रक्तदोषसे उत्पन्न पाण्डुरोगमें यह गुणकारक है। उपदंश या सूजाकसे गर्भपात होता हो अथवा शिशु जन्म लेते ही मरता हो, ऐसी स्थितिमें इसे देनेसे बालक बच जाता है। गर्भ रहनेपर प्रसवकाल पर्यंत स्त्रीको इसका सेवन कराना चाहिये।

●

(५९१,५९२) सालममिश्री, सालमपंजा

फैमिली : ऑर्किडासे (Family . Orchidaceae)

नाम—(हिं०) सालममिश्री; (यू०) Saurion (D.3 133), Satyrion (D.2 64); (अ०) सालबमिस्री, खुस्युस्सालब, खुस्यतुस्सालब (इ०बै०); (फा०) सालबमिसरी, (म०) मुञ्जातक (च०); (कु०) हथजोडी; (बं०) सोलम्मिछरि, (गु०) सालम, (म०) सालममिश्री, (बम्ब०) सालुम, (प०,बं०,हिं०) सालिबमिश्रि, (अफ०) सालब, सालप, (लै०) आर्किस मास्कुला (**Orchis mascula** Linn), आर्किस माकुलाटा (**O. maculata** Linn) तथा ऑर्किस लाक्सीफ्लोरा (**O. laxiflora** Lam.); (अं०) सैलेप (Salep) ।

वक्तव्य—सालब या आर्किसके उपर्युक्त सभी भेद विदेशीय हैं । इनका एक भेद ऑर्किस लाटीफोलिआ (**O. latifolia** Linn) भारतवर्षके पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालयमें कश्मीरसे नैपाल तक और पश्चिमी तिब्बतमें होता है । फिर भी *अधिकतया यहाँ होनेवाली मुञ्जातक कुल (ऑर्किडासे)की एउलोफिआ प्रजातिकी विभिन्न* जातियों, जैसे एउलोफिआ काम्पेस्ट्रिस् (**Eulophia campestris** Wall) आदिसेप्राप्त की जाती हैं, जो विदेशी सालममिश्रीकी प्रतिनिधि स्वरूप बाजारोमें मिलती है । बाजारमें एक प्रकारकी 'नकली सालममिश्री' भी मिलती है ।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और दक्षिण यूरोप, एशिया माइनर, रूस, मिस्र, फारस, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और ऑर्किस लाक्सीफ्लोरा भारतवर्षमें काश्मीरसे तिब्बत पर्यंत होता है ।

वर्णन—सालममिश्री ऑर्किस प्रजातिकी अनेक जातियोके प्याजकी तरहके गुल्मके सुखाये हुये मूल हैं, जिनमेंसे मुख्य-मुख्य भेदोके नाम ऊपर दिये गये हैं । इन मूलोका आयात विदेशोसे होता है । ये मूल (Tubers) सफेदी लिये या भूरापन लिये पाडुपीत, लगभग (१ इञ्च से १ $\frac{1}{2}$ इञ्च) लम्बे और ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$ इञ्च) व्यासमें आयताण्डाकार (Oblong-oval) या दीर्घवृत्ताकार (Elliptical) कुछ-कुछ रम्भाकार चपटा (Compressed), साधारणतया एक छोरपर प्रकाड-चिह्न (Stem-scar) युक्त और दूसरे छोरकी ओर गोपुच्छाकार (Taper) होते हैं । इसे लहसुनी या लहसुनिया सालम कहते हैं । इनमेसे कुछ भेद चपटे पजाकार (Compressed palmate), तीन या पाँच नुकीले खडयुक्त, शीर्ष वा मुकुटपर प्रकाण्ड क्षतचिह्नसे भी युक्त, कभी-कभी झुर्रीदार (Wrinkled or Shrivelled), किन्तु सर्वदा श्रृंगवत् एव कठोर (Tough) और सरलतया टूटनेवाले नही होते । कदकी आकृति हाथके पजेके समान होती है इसलिये अन्य इसको पंजासालब कहते हैं । आयुर्वेदका मुञ्जातक पजासालम है । स्वाद मधुर, लेसदार, फीका और किसी कदर तीव्र होता है । उत्तम सालममिश्री वह है, जो मोटी, बडी और मधुर हो तथा जिसमेंसे वीर्यके समान गध आती हो । भारतीय सालममिश्री ऐसी नही होती ।

उपयुक्त अग—मूल ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक तिक्त सत्व तथा लोरोग्लोसिन (Loroglossin) नामक एक ग्लूकोसाइड और पिष्ट २७ प्रतिशत, लबाब ४८ प्रतिशत, शर्करा, शुक्लि (ऐल्ब्युमेन), अशत उत्पत् तेल और राख जिसमें फॉस्फेट्स, क्लोराइड् ऑफ पोटैसियम और चूना प्रभृति द्रव्य होते हैं । इसका प्रधान उपादान लबाब या पिष्ट है । नकलीमे गोद और पिष्ट होता है ।

कल्प तथा योग—चूर्ण बकरी या गायके दूधमे पका, उसमें मिश्री और इलायचीके बीजका चूर्णमिलाकर देना चाहिये । माजून सालब, सफूफ सालब इत्यादि ।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे पहले दर्जेमे गरम और तर मानते हैं । आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य एव स्निग्ध (च०) है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आटोपजनक, वाजीकर, शुक्रल, कामोद्दीपक और बृंहण है। वीर्य उत्पन्न एवं पुष्ट करने और वाजीकरणके लिये सालममिश्रीका चूर्ण दूधके साथ पिलाते है। इसे प्राय वाजीकर माजूनोमें डालते तथा उपर्युक्त औषधियोंके साथ इसका हरीरा बनाकर पिलाते है। इसका उपयोग अरारोटके समान होता है। अहितकर—उष्णप्रकृतिवालोंमें विशेषकर [illegible] के लिये। निवारण—सिकजबीन और कासनीका स्वरस। प्रतिनिधि—[illegible]। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—सालम (मुञ्जातक) मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, बलकारक, तृप्तिकारक, पौष्टिक, श्रेष्ठ वाजीकर और वात तथा पित्तका नाश करनेवाला है। (च०सू०अ० २७)।

नव्यमत—सालम मस्तिष्क और नाड़ियोका उत्तेजक और पौष्टिक, मलग्राहक, स्तम्भन, जीवन, बृंहण और वयःस्थापक है। [illegible] रोगोमें सालम हितकर है। इससे [illegible] कम होती है। व्रणका रोपण होता है और अशक्तता कम होती है। सालम पचनेमें हलका और मलग्राहक है। अतिसार, आंव, गर्भिणीका अतिसार और पुराना, इन रोगोमें यह गुणकारी द्रव्य है। प्रसूतिके अनन्तर तथा अति अभ्यास, अतिमैथुन आदिसे होनेवाली थकावटमें सालम लाभप्रद, [illegible], बलप्रद और पोषणकर्ता है।

मात्रा—१.५ ग्राम से ३ ग्राम (१½ माशा से ३ माशा) इसका चूर्ण बकरी या गायके दूधमें पका, उसमें मिश्री और इलायचीके बीजका चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

●

(५९२) सासफ्रास

फैमिली : लाउरासे (Family Lauraceae)

नाम—(अ०) सासफ्रास; (ले०) सास्साफ्रास ऑफ्फीसिनाले (Sassafras officinale Nees) या सास्साफ्रास वारीफोलिउम् (S varifolium Kuntze; S albidum (Nuttall) Nees)। (अ०) सासाफ्रास (Sassafras)।

वक्तव्य—'सासफरास' उस व्यक्तिका नाम है जो सर्वप्रथम इसे अपने उत्पत्तिस्थानसे लाया था। अस्तु, उसीके नामपर इसका 'सासाफरास' नाम रखा गया। फ्लोरिडामें सन् १५१२ ई० के बहुत पूर्वसे ही सासफरासका व्यवहार चिकित्सार्थ वहाँके निवासियोद्वारा किया जाता था।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी संयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा।

वर्णन—सासफ्रास उत्तरी अमरिकाके पूर्वी क्षेत्रोका आदिवासी पौधा है। वृक्ष एव पत्तोके स्वरूपमें बहुत अनेकरूपता पायी जाती है। सामान्यतया इसके गुल्म (Shrub) होते हैं। किन्तु कही-कही इसके २० से ३२ मीटर (२२–३५ गज) ऊँचे वृक्ष भी पाये जाते हैं। एक ही वृक्षकी पत्तियोकी रूपरेखामें बहुत अन्तर पाया जाता है। कोई लट्वाकार तथा अखण्डित, किन्तु उसी वृक्षमें अनेक पत्तियाँ २–३ खण्डोवाली होती है। सासफ्रासकी जड जो साधारणतया काष्ठीय (कठोर) होती है, भूरापन लिए सफेद रगकी चिप्पियो (Chips)के रूपमें बिकती है। जडका स्वाद एव गन्ध सासफ्रास जैसा विशिष्ट होता है, जो काण्डमें नही पाया जाता। जडकी छाल चमकीले मुर्चई भूरे रगकी विषमाकार टुकडोके रूपमें तथा कोमल और भगुर होती है। अनुप्रस्थ विच्छेद छोटा, कॉर्कवत्, निश्चित स्तरोवाला होता है। जिसमें असख्य तैलकोष दिखाई देते हैं। स्वाद कुछ-कुछ मधुर, कसैला तथा सुगधित होता है।

उपयुक्त अग—मूल, मुलत्वक् तथा मूलसे प्राप्त सुगन्धित उत्पत् तैल (सासाफ्रास ऑयल Sassafras Oil)।

रासायनिक सगठन—एक उत्पत् तैल रोगन सासफ्रास (सासफ्रास ऑयल) जो स्टीम आसवन (Distilled with steam) द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसका ग्रहण युनाइटेड स्टेट्स फार्माकोपिआ (U S P) में भी किया गया है।

कल्प—प्रवाही सार (मात्रा—½ से १ ड्राम), रोगन सासफ्रास (½ से ५ बिन्दु)।

प्रकृति—छाल तीसरे दर्जेके प्रारम्भमें और काष्ठ दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—उत्तेजक, रसायन, स्वेदल, आर्तवजनन और मूत्रल। जीर्ण त्वग्रोग, त्वक् विस्फोट (Eruptions of the skin), आमवात, फिरंगके परिणाम स्वरूप वातरक्त आदिमें इसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है, किन्तु चूर्ण बहुत कम अधिकतया फाट या क्वाथ करके। नेत्राभिष्यद और शोथ आदिमें नेत्रोंके लिए धावन रूपमें इसका काढा उपादेय होता है। लगभग १½ पाव (एक पाइंट) उबलते जलमें २½ तोला इसकी कुचली हुई छालका फाट बनाकर मदिरा पीनेके गिलास भरकी मात्रामे बारबार लिया जाता है। इसे साधारणतया अन्यान्य औषधियोके साथ देते है। दतशूल, चौथिया ज्वर, जीर्णकास, मिचली, वमन, विसूचिका, आमाशय-यकृत् तथा वस्ति-वृक्ककी सर्दी और कफज सधिशूल और मूत्रावरोधमें यह औषधि गुणकारक है तथा ज्वरका दौरा रोकती है। रूक्ष, सारक और विरेचन होनेपर भी यह मूत्रनलिकामें अवरुद्ध वायुको विलीन करती है। अगदगुणविशिष्ट होनेके कारण विषैले रोगो विशेषकर प्लेगमें यह बहुत गुणकारक है। दूषित वायुका शोधन करती है। अहितकर—उष्ण एव रूक्ष प्रकृतिको। इसको उश्बा और चोबचीनीके समान पिया जाता है।

•

(५९३) सिंकोना तथा कुनैन

फ़ैमिली : रूबिआसे (Family . Rubiaceae)

नाम—(हिं०) सिंकोना, (अ०-नवीन) अल्कीना, कीना-कीना, (ले०) सींकोना ऑफ्फीसिनालिस (**Cinchona officinalis** L , सिंकोना कालीसाया **C calisaya** Wedd , सींकोना लेड्जेरिआना **C ledgeriana** Moens तथा सींकोना सूक्सीरूब्रा **C succirubra** Pav । छाल (हिं०) सिंकोना छाल, बार्क, बार्क, (पेरू) कीनाकीना (कीना-सक्षिप्त), (ले०) सीकोनी कॉर्टेक्स (Cinchonae Cortex), (अ०) सिंकोना बार्क (Cinchona Bark), पेरूवियन बार्क (Peruvian Bark), जेसूट्सबार्क (Jesuits Bark)। टिप्पणी—चिकित्सामे सिंकोनाके जिन भेदोका प्रयोग होता है और जो अधिकृत है, उनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इनके अतिरिक्त उनकी परस्पर वर्णसकर जातियो (Hybrids)से प्राप्त छाल भी उपयोग सम्मत है।

वक्तव्य—दक्षिणी अमेरिका स्थित पेरू नामक क्षेत्रकी भाषामें 'कीना कीना' ऐसी सभी छालोको कहते है, जो अमेरिकामें होती और ज्वरनिवारणका गुण रखती है। फिर भी मध्य अमेरिकाके वनस्पतिशास्त्रज्ञ सिंकोना वृक्षकी छालको 'कीना' कहते है, जिसका पूरा नाम 'कीनाकीना' है। मख्जनुल्अद्वियाके अनुसार इसको 'किनाकिना' भी कहते हैं। मुहीतके लेखकने इसको 'कुनाकुना' और फारसी भाषाका शब्द लिखा है। किन्तु यह उपर्युक्त कीनाकीनाके रूपातर मात्र प्रतीत होते है। क्वीनीन (Quinine) जो उक्त छालका एक प्रधान औषधोपयुक्त ऐल्केलॉइड है, 'कीना-कीना'का किंचित् परिवर्तित रूप है। अंग्रेजीमे छालको बार्क (Bark) कहते है। और यह कीना-कीनाका पर्याय नाम है। यद्यपि स्पेनवासियोने, जिनका पेरूमे उपनिवेश था, सन् १६३६ ई० में इसके ज्वरघ्न गुणका

पता लगा लिया था तथापि इसकी अधिक प्रसिद्धि उस समय हुई जब कि पेरूके तत्कालीन वाइसरायकी पत्नी जिनका नाम काउण्ट ऑफ सिंकोना (Count of Cinchona) था, सन् १६३८ ई० मे नियतकालिक ज्वरसे इस प्रकार आक्रांत हुईं कि अन्य किसी औषधिसे उनको लाभ नही हुआ। अन्ततोगत्वा उनकी अभ्यर्थनापर उनके निजी चिकित्सकने उक्त वृक्षकी छालका चूर्ण (सफूफ कीना)का सेवन कराया, जिससे उसको शीघ्र लाभ हो गया। फिर वश था सन् १९४० ई० में वह इसे प्रचारार्थ स्पेन ले गई। अस्तु, उनके नामपर इस औषधिका नाम सिंकोना प्रसिद्ध हो गया। हकीम मीर मुहम्मद हुसैन ने सन् १७७० ई० में अपने स्वरचित ग्रंथ मखजनुल् अदविया में इसके अंगरेजी बार्क नामसे इसका वर्णन किया है और इसी प्रसंगमें लिखा है कि बर्कको 'कुन.कुनः भी कहते हैं। हकीम आज़मखाँ साहबने संकलित ग्रंथ मुहीत आज़ममें (जिसमें मखजनुलअद्‌विया पूरी-पूरी प्रतिलिपि की गयी है) कीना-कीनाको 'कुना-कुना' फारसी नाम लिखी है और इसे 'उसारेबर्क' बतलाया है। साराश किनाकिना जिसको अधुना ईरानमें गनागना कहते हैं, वास्तवमें पेरूकी भाषाका वही शब्द कीनाकीना है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। 'गनागना' फारसीमें कुनैनको कहते है और कुनैन भी वस्तुत इसी कीनाकीना सज्ञाका किञ्चित् परिवर्तित रूप है।

इतिहास—कुनैन अमेरिकासे हिन्दुस्तानमें आई। पेरूके स्पेनी वाइसरायकी पत्नी 'कौंटेस सिनकोना'के नामपर इसके वृक्षका नाम सिनकोना रखा गया। भारतमें प्रथम अंग्रेज वाइसराय लॉर्ड कैनिंगकी पत्नीने इसका भारतमें पहले प्रचार किया। इसके कुछ गुण अमेरिकावासी जानते थे, किन्तु विशेषरूपसे स्पेनवासियोने प्रयोग कर इसके गुण जाने। दक्षिणी-अमेरिकामें पहले स्पेनवाले ही घुसे थे। ई० सन् १६३९ में कौंटेस सिनकोनका मैलेरिया ज्वर इसीसे गया। इसने जब यह यूरोप लौटी तब बहुत-सी सिनकोनाकी छाल साथ लेती आई। सन् १६५५ ईसवी तक इसके गुणोंपर बहस होती रही, परन्तु १६७७ ई० मे सरकारी तौरपर इसका गुण स्वीकार किया गया। फ्रांसमें इसका प्रवेश १६७६ ई० में हुआ। फ्रांसके बादशाह चौदहवें लुईका बुखार इससे अच्छा हुआ। १७३९ ई० में वैज्ञानिकोंने इसका लोहा माना और १८८० ई० में सिनकोनाका पौधा पेरिसमें रोपा गया। भारतमे पहले स्पेन और पोर्टगालके पादरी इसे लाये और सन् १८३५ ई० में लेडी कैनिंगने इसके पेड खसिया पहाडी और नीलगिरीमें लगवाये। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्धके समय अंग्रेजी सेनाके बहुतसे लोग मैलेरियासे मरे, अतएव बंगालमें भी इसकी खेती बढाई गयी। इसके प्रयोगकी सफलता जावामे अधिक हुई। लेडी कैनिंगने डॉक्टर एण्डरसनको जावा भेजकर सिनकोनाके पौधे और बीज मँगवाये। हिन्दुस्तान और लकामें इसकी खेती बढायी गई। लेडी कैनिंग और डॉक्टर एण्डरसनकी मृत्यु मैलेरियासे ही हुई। किन्तु सरजार्ज किंगके उद्योगसे इसकी खेती सब जगह फैली। व्यापारिक दृष्टिसे सरकारने इसका अलग महकमा कायम किया। मैलेरिया कैसे फैलता है, मच्छरोसे उसका कितना सम्बन्ध है, इसकी खोज सर रानल्डरास ने की।

उत्पत्तिस्थान—ऐण्डीज (Chain of the Andes), दक्षिण अमेरिकाका पेरू प्रदेश तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र। अधुना भारतवर्षके कतिपय क्षेत्रोमे तथा जावामे इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—सींकोना ऑफ्फीसिनालिसकी छालके लम्बाईके रुख पडी दरार एव अनुप्रस्थ दरार (Tranverse crack) बहुल, संकुचित बिब्बस (Quills) होते हैं, जिससे छालका पृष्ठ विशेष प्रकारका खुरदुरा प्रतीत होता है। इसमें पुष्कल कुनैन होता है। सींकोना कालीसायाकी छाल (Quills)के रूपमे मिलती है, जिसके ऊपर सफेद चिप्पड या धब्बे (Patches) बने होते हैं तथा इसके ऊपर ६-१२ मिलीमीटरकी दूरीपर अनुप्रस्थ दरारयुक्त लम्बाईके रुख चौडी दरारें पडी होती हैं। बाहरी कार्कमयस्तर धीरे-धीरे परत-परत करके उतरता है। इसमे भी पुष्कल कुनैन होता है। सींकोना लेडजेरिआना कुनैनके लिए जावामें लगाया जाता है। इसकी छालके एकहरे या दोहरे (Quills) होते हैं, जिनके ऊपर लाइकेन (Lichen)के हलके भूरे धब्बे (Patches) होते हैं। छालके पृष्ठपर प्रचुर अनुलम्ब एव अनुप्रस्थ दरारें (Cracks) होती हैं। इसमें भी पुष्कल कुनैन पाया जाता है। सींकोना सूक्सीरुब्रा अर्थात् रक्तसिकोनाकी छाल दो रूपमे पायी जाती है—चपटी जो अमेरिकासे आती है, और (Quills) जो

जावारी आती है। चपटी लालछालमें लम्बी-लम्बी उन्नतरेखायें (Ridges) तथा चमकीले लाल उत्सेध (Warts) होते हैं। अन्तस्तल स्पष्टतया लाल होता है तथा बाह्य तल ललाई लिए भूरे रगका होता है। इसमें पुष्कल सिंकोनीडीन (Cinchonidine) होता है।

रासायनिक सगठन—सिकोना छालमें पाये जानेवाले ऐल्कॉलॉइड्समें कीनीन (Quinine) या कुनैन सर्वप्रमुख है। इसके अतिरिक्त क्निनीडीन, सिंकोनीन (Cinchonine), सिंकोनिडीन (Cinchonidine) प्रभृति अन्य औषधोपयोगी ऐल्केलाइड्स भी पाये जाते हैं।

उपयुक्त अग—छाल तथा इससे प्राप्त कीनीन आदि सत्व।

कल्प—छालका चूर्ण (मात्रा–२½ रत्ती से ७½ रत्ती या ० ३ ग्राम से १ ग्राम), कुनैन (१ ग्रेन से १० ग्रेन या १/२ से ५ रत्ती या ०'०६ ग्राम से ०'६ ग्राम)। फाण्ट (सिकोनाका कपडछन चूर्ण २½ तोला, खट्टे नीबूका रस १¼ तोला, सोठका चूर्ण ९ माशा, दालचीनीका चूर्ण ९ माशा–सबको मिट्टीके पात्रमें उबलते जल ५० तोलामें डाल, पात्रको ढँक २ घटे रहने दें। बादमें कपडेसे छान काँचकी शीशीमें डाट बन्दकर सरक्षण करें)। मात्रा–२½ तोला दिनमें २ से ४ बार।

प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक, ज्वरहर, बल्य और कषाय। यह सभी ज्वरमय और सतत ज्वर (टायफॉयड)की दशाओंमें तथा विषम (Remittent) ज्वरोंमें गुणकारी है। सार्वदैहिक बल्यरूपमें यह बडी प्रशंसनीय औषधि है तथा वातिक शूल, अजीर्ण और दौर्बल्य इन रोगोंमें पुष्कल प्रयुक्त होता है। अतिमात्रामें इसके सेवनसे बहुतोंमें शिर शूल, भ्रम और कम सुनाई देना आदि विकार प्रगट होते हैं। चिरायता इसके इन अवगुणोंसे रहित इसका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। सिकोनाका प्रयोग ज्वरनाशक और बलदायकके रूपमें किया जाता है, परन्तु इसकी उपजका बडा भारी भाग अब कुनैन बनानेके लिए प्रयुक्त होता है। मलेरियानाशक असख्य अन्य औषधियोंके आविष्कृत होनेके बावजूद भी कुनैन अब भी इस रोगकी सर्वोत्तम दवा है और जब तक स्वच्छताके सिद्धान्तों द्वारा मलेरिया कीटाणुओंको जडसे नष्ट नहीं किया जाता तब तक औषधिविज्ञानमें कुनैनका एक महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। अहितकर–पित्त प्रकृतिवालोंको तथा उष्णता एव रूक्षता उत्पन्न करता है। निवारण–दूध।

नव्यमत—सिकोनाकी छाल कटुपौष्टिक, स्तम्भन, ज्वरघ्न, और नियतकालिकज्वर प्रतिबन्धक है। कुनैन कटुपौष्टिक नियतकालिकज्वर प्रतिबन्धक, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन और गर्भाशयोत्तेजक है। मात्रा–छालका चूर्ण १०-३० गुजा, कुनैन १-५ गुजा मधु, दूध, कॉफी अथवा द्राक्षासवके साथ देते हैं। सिकोना की छालको अल्पप्रमाणमें देनेसे भूख बढती और पेशी तथा नाडियोंकी शक्ति बढती है, रक्तवृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है। शरीरमें अशक्ति आनेसे कभी-कभी पसीना आता रहता है, वह इससे बन्द होता है। कुपचन, सग्रहणी, आंव और अतिसारमें यह प्रशस्त औषध है। इसके साथ शखद्राव अथवा गन्धकाम्ल देते हैं। इससे पवन-नलिकाकी शिथिलता दूर होकर उसको शक्ति मिलती है। कफरोगमें जब कफ पुष्कल और पूय सरीखा आता है तब सिंकोनाका फाँट अनुपान रूपमें देना चाहिए। बारीसे आनेवाले विषमज्वरमें यह उत्तम औषध है। ज्वर उतरनेके बाद और ज्वरकी हालत मे भी इसे दे सकते हैं। इसका ज्वरघ्न गुण अतिप्रबल है। विषमज्वरमें देनेके जितने औद्भिज्ज औषध हैं, उनमें सिकोना श्रेष्ठ है। कुनैनसे आमाशयकी पचन क्रिया बढती है। मात्रा–इसे अल्पमात्रामें (१ ग्रेन) देना चाहिए। बडी मात्रामें देनेसे पचनक्रिया बिगडती है। समस्त ज्वरघ्न औषधोंमें कुनैन श्रेष्ठ है। इसके देनेसे पूर्व रोगीको हलका जुलाब देना चाहिए और साथमें यकृदुत्तेजक द्रव्य देना चाहिए। विषमज्वरमें अम्लद्रव्योंके साथ मिलाकर प्रवाही रूपमें देना उत्तम है। बारीसे आनेवाले ज्वररोगोंमें इससे लाभ होता है। (ओ० स०)।

(५९४) सिंघाड़ा

फॅमिली : ओनाग्रासे (Family · Onagraceae)

नाम—(हिं०, द०) सिंघाडा, सिंगाडा, पानीफल, (गीलान) जीलान(म); (स०) शृङ्गाट(क), (व०) पानीफल, शिंगाडा, (म०) शेंगाडा; (गु०) शीघोडा, (क०, प०) गौनरी, (क०) गोअर, गाअरि, (प०) गाडियाँ, (मा०) सिंगोडा, सोघारा, (तें०) परिकेगड्ड, (मल०) चिरवप्पु, (लें०) ट्रापा नाटास प्र० बीस्पीनोसा Trapa natans (L) var bispinosa(Roxb)Makino (पर्याय–T bispinosa Roxb.), (अं०) इंडियन वॉटर चेस्टनेट (Indian Water-Chestnut), वॉटर कॅल्ट्रॉप (Water Caltrop) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष । तालावो, गढो तथा तालोमें इसे विपुल लगाया जाता है ।

वर्णन—यह पानीमें फैलनेवाली एक लताके प्रसिद्ध फल हैं, जो चपटे और त्रिकोणाकृति (तिकोने) होते हैं । फलका छिलका कडा, कच्चे फलका हरा या रक्ताभ, किन्तु पकने पर या उबालनेपर काला हो जाता है । इसके दोनो कोनोपर काँटे (Bispinosa) होते हैं । छिलका हटानेपर भीतरसे मीठे सूरजानके समान सफेद मग्ज निकलता है । यही औपधमें प्रयुक्त होता है ।

वक्तव्य—सिंघाडा देखनेमें सूरजानके सदृश होता है । इसलिए सूरजानमें मिलावटके लिए भी व्यवहृत करते है ।

रासायनिक सगठन—लतामें पुष्कल मैंगेनीज तथा फलमें शीघ्रपाकी पिष्ट (कार्बोहाइड्रेट) होता है ।

कल्प तथा योग—माजून आर्द खुर्मा ।

प्रकृति—ताजा सिंघाडा सर्द एवं तर और सूखा सर्द एव खुश्क है । आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (च०, सु०) है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सतापहर, शुक्रल, शुक्रसान्द्रकर, वायुकारक, धारक, सग्राही, दाहप्रशमन और तृष्णाहर है । ताजा सिंघाडा प्यासको बुझाता है । अगदाह और कठके शोथ एव खरत्वको दूर करता है । शुक्रल होनेसे कामावसाद एव शुक्रप्रमेहकी औषधियोमे उपयोग किया जाता है । वायुकारक, धारक एव सग्राही होनेके कारण यह गुरु, विष्टभी, दीर्घपाकी, अवरोधकारक एव बस्तिवृक्काश्मरीजनक है । कभी-कभी इसके प्रचुर खानेसे शूल और मूत्रावरोध हो जाता है । यह अल्पपुष्टिकर है । अहितकर–शीतल प्रकृतियोके लिए । निवारण–नमक, कालीमिर्च और चीनी । मात्रा–३ ग्रामसे १२ ग्राम (३ माशेसे १ तोला) तक ।

आयुर्वेदीय मत—सिंघाडा मधुर, गुरु, शीतवीर्य, विष्टम्भि, वाजीकर, रुचिकर, ग्राहि, दीपन, वातकफकर तथा रक्तपित्त, दाह और श्रमको दूर करनेवाला है । (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६, रा० नि, भा० प्र०) ।

नव्यमत—सिंघाडा शीतल, पौष्टिक और शोणितस्थापन है । सिंघाडेकी पेया अतिसार, आँव और प्रदरमें देते है । इससे कफ तथा रक्त गिरना बन्द होता है तथा रोगीका फीकापन नष्ट हो जाता है । पित्तप्रकृतिवालोको इसीका पेया बहुत अनुकूल होती है । (औ० स०) ।

(५९५) सिरस

फ़ैमिली लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) सिरस, सिरिस, (अ०) सुल्तानुल् अश्जार, दरख्ते जकरिया, (स०) शिरीष; (ब०) शिरीष, (म०) शिरस, (गु०) सरसडो, कालीयो सरस, (प०) सरीह, शरी, (सिंध) सिरिंह, (ता०) चि (शि)रीदम्, (मल०) वाक, (ते०) दिरीसनमु, गिरिशमु, (अं०) सिरिस ट्री (Siris Tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध बडा वृक्ष है। पत्र प्राय आँवलेके पत्रके समान, सयुक्त, पत्रक ४–८ जोडा, पत्र-वृन्त अर्बुदयुक्त। शीतकालमे पतझड होता है। पुष्प गुलाबी या पीताभ शुभ्र, अतिसुगन्धित, पुष्पकाल ग्रीष्ममें; शिम्बी दीर्घ, चौडी और चपटी, बीज अमलतासके बीजके सदृश, किन्तु उनसे छोटे होते हैं। फूल और छालके भेदसे शिरीषके अनेक भेद होते हैं। शिरीष जातिमे कई उपजातियाँ होती हैं। उनमे आल्बीजिया लेब्बेक (**Albizzia lebbeck** (L) Benth) तथा आल्बीजिया ओडोराटीस्सीमा (**A odoratissima** Benth) को कालीसिरस या कृष्णशिरीष और आल्बीजिया प्रॉसेरा (**A Procera** Benth) को सफेद सिरस या श्वेतशिरीष कहते हैं। क्योकि पहले दोनोकी छाल धूसरित कृष्ण, दूसरीकी छालपर जगह-जगह कालेदाग और तीसरीकी छाल श्वेत या हरित श्वेत होती है।

उपयुक्त अग—छाल और बीज।

रासायनिक सगठन—छालमें टैनिन ७ प्रतिशत, और राल १४ प्रतिशत, तथा राख ९ प्रतिशत प्राप्त होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—लेखन, विलयन, उपशोषण और रक्तशोधक है। सिरसका बीज (तुख्मे सिरस) लेखन, बल्य, वीर्यपुष्टिकर और दाँतोको दृढ करनेवाला है। उपयोग—रतौंधीको नष्ट करनेके लिये सिरसके पत्तोका रस नेत्रमे टपकाते (आश्च्योतन) है। व्रणशोषणके लिये इसकी छालको महीन पीसकर छिडकते हैं। दन्तशूलनिवारण तथा मसूढोको दृढ करनेके लिए इसकी छालके काढेसे कुल्ले कराते है और जलमे पीसकर मुँहाँसोको दूर करने और फोडे-फुसियोको नष्ट करनेके लिए लगाते हैं। रक्तविकारजनित रोगोमें इसका क्वाथ पिलाते है। सिरसकी छाल (पोस्त सिरस) का क्वाथ पीना प्रभावत शारीरिक शोथोको विलीन करता है। सिरसके बीजोको हुलासोमे डाल-कर प्रसेक और प्रतिश्यायमे सुँघाते और महीन खरल करके रतौंधी, फूला, धुन्ध तथा नेत्र कण्डूमें लगाते हैं। इसका चूर्ण नपुसकत्व और शुक्रतारल्य दूर करनेके लिए खिलाते हैं। इसका माजून खिलाना कण्ठमालेके लिए लाभ-प्रद है। अहितकर—रूक्ष प्रकृतियोको। निवारण—गोघृत। मात्रा—छाल ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक। बीज—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सिरस (शिरीष) कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, त्रिदोषहर, वर्ण्य, वेदनास्थापन, शिरो-विरेचन, विषहर तथा वात, पित्त, कफ, कुष्ठ, कण्डू, श्वास और कासको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४, अ० २ (शिरीषबीज), अ० २५, वि०अ० ८, सु०सू०अ० ३८, ध०नि०)।

नव्यमत—शिरीष पौष्टिक, वाजीकर, ग्राही और विषघ्न है। शुक्रस्तम्भनके लिए इसका फूल देते है। वीर्य गाढा होनेके लिए दूधके साथ इसके बीज देते है। बृहणके लिए घीके साथ इसकी छालका चूर्ण देते है। छाल के काढेकी कुल्लियाँ करनेसे दाँत दृढ होते है। गण्डमालामें बीजोका लेप कराते हैं और खिलाते भी है। रतौंधीमें इसका काढा पिलाते है और आँखोमे इसके स्वरसकी बूँद डालते है। (ओ० स०)।

●

(५९६) सुरियारी (सुरवाली)

फ़ैमिली : आमारान्टासे (Family : Amarantaceae)

नाम—(हिं०) सुरवाली, सुरवाली, सरवा(वा)ली, सुर्याली, सिरियारी, शुरुआरी, सफेदमुर्गा, (यू०) वर्वानोकी, (स०) वितुन्नक, शितिवार, (खर०) सिरवारी, (व०) सुशुनी शाक, श्वेतमुर्गा, (गु०) लापडी, (म०) कुरडु, (प०) सरवाली, (सिं०) सर्वली, सुर्वाली, (सथा०) सिरगिट अडा, (ले०) सेलोसिआ आर्जेन्टेआ (**Celosia argentea** Linn) ।

रक्तभेद (५९७)

लालमुर्गा—(हिं०) कोकन, कोकनी, (व०) लालमुर्गा, (ले०) सेकोसिआ आर्जेन्टेआ प्र० क्रीस्टाटा **Celosia argentea** Linn. var **cristata** Voss (पर्याय–*C cristata* Linn); (अ०) कॉक्स कोम्ब (Cock's comb) ।

जटाधारी (५९८)

(ले०) आमारान्थुस् हीपोकाड्रिआकुस् **Amaranthus hypochondriacus** Linn (पर्याय– *A. melancholicus* Linn. अर्थात् *A hybridus* L. का एक भेद), (अ०) रेड कॉक्स-कोम्ब (Red Cock's comb) । ये दोनो वगीचोमें लगाये हुए मिलते है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें साधारणतया ज्वार, बाजरा, ग्वार आदि भदई फसलके साथ उत्पन्न होती है ।

वर्णन—यह एक क्षुद्र एकवर्षायु वनस्पति है जो ० ° मीटर (१–१॥ गज) तक ऊँची होती है । शाखाएँ रक्ताभहरित एवं चिकनी होती है । पत्र २ ५ से० मी० से १५ सें०मी० (१ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बे, पतले चिकने और किनारोसे लाल होते है । इसमें सनोवरी शकलके सुन्दर पुष्पस्तवक लगते है जो २ ५ सें०मी० (१ इञ्च) लम्बे, सफेदी लिए गुलावी और छूनेमें अत्यन्त कोमल होते है । इनसे अत्यन्त छोटे-छोटे चपटे चिकने चमकीले भूरे या काले रग के बीज निकलते हैं । ये बीज ही औषधके काम आते है । जिनको तुखम सुरवाली कहते हैं ।

उपयुक्त अंग—बगालमें नीद लानेके लिए इसके कोमल पत्तोकी भाजी और बीजोका चिकित्सामे उपयोग होता है ।

टिप्पणी—आयुर्वेदमे 'शितिवार, सुनिषण्णक' का पर्याय माना गया है । किन्तु दोनो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं । निद्राजनक वस्तुत· सुनिषण्णक शाक होता है ।

प्रकृति—शीत एव रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, सग्राही, वल्य, पित्तघ्न और ज्वर एव शुक्रप्रमेहमे गुणकारी है । वीर्यपुष्टिकर होनेसे शुक्रप्रमेहके योगोमें सुरवालीके बीज डाले जाते है तथा इनको अकेले भी चूर्ण करके दूधके साथ खिलाया जाता है । सग्राही होनेके कारण यह आर्तवशोणित, रक्तार्श, बहुमूत्र और गुदभ्रशमें गुणकारक है । सुखालीकी पत्ती (बर्गे सुखाली) का साग पकाकर खाना पित्तको शमन करता है और मधुमेहमें लाभ करता है । अहितकर–मिचली उत्पन्न करती है । निवारण–उन्नाव या उन्नावका शर्वत । प्रतिनिधि–चुकदरकी पत्तीका स्वरस । मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक ।

(५९९) सीकाकाई

फ़ैमिली . लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) सि(सी)काकाई, चिकाकाई, सिखाकाई, शिखकाई, (स०) शीतला, श्रीवल्ली, शिववल्ली कण्टवल्ली, (ब०) बनरीठा; (म०) शिकेकाई; (गु०) चिकाखाई, (मा०) छिकाकाई, सिकाकाई, (ते०) शीकाय, (ता०) शीवक्काय, चीववकाय, (मल०) चीक्कक्काथि, चीनिक्काय, (लैं०) आकासिया रुगाटा **Acacia rugata (Lamk.) Ham** (पर्याय–आकासिया कान्सीन्ना *A concinna* DC) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णकटिबन्ध स्थित जंगल, विशेषकर दक्षिण भारत (दकन)मे इसकी लतायें होती है ।

वर्णन—इसके विस्तृत, अत्यन्त काँटेदार और लम्बी आरोही शाखाओवाले गुल्म होते है ।

पत्तियाँ—द्विपक्षाकार और पत्रक खट्टे तथा रोचक होते है । पुष्पमुण्डक मलाईके रगके या आपद्म होते है । फली मोटी, मासल, बीजोके बीच-बीचमें सधियो पर सकुचित (सधियाँ चौडी) ६ २५ सें०मी० से १० सें० मी० (२॥ इच से ४ इच) लम्बी, २ ५ सें०मी० (१ इञ्च) तक चौडो और चोचदार होती है । यह बाजारमें मिलती है । इसे पानीमें भिगोकर मसलनेसे रीठे जैसा फेन निकलता है जिससे इसे कोई कोई बनरीठा भी कहते है । शिर के बाल बढानेके लिए रेशमी कपडा धोनेके लिए इसका उपयोग करते है । कुछ लोग इसे आयुर्वेदीय "सातला" या "सप्तला" मानते है । परन्तु सप्तला सभवत. कोई थूहरकी उपजाति है ।

उपयुक्त अग—पत्ती और फली ।

रासायनिक संगठन—फलीमें सैपोनिन (Saponin) १०%, ऐल्केलॉइड, मैलिक एशिड (Malic acid) १२, राल, ग्लूकोज (१३½) और गोद (२१%) आदि घटक पाये जाते है ।

प्रकृति—पत्ती सर्द एव खुश्क, फली गरम और खुश्क (मुहीत), कोई-कोई फलीको भी सर्द एव खुश्क कहते है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फलीका स्वाद अम्ल और कटु (तीक्ष्ण) है । यह गलेके भीतर क्षोभ उत्पन्न करती है । इसके खानेसे उबकाई आने लगती है और आमाशयमे आन्दोलन उत्पन्न हो जाता है । इसको पानीमे पीसकर प्राय उसको सिर मलकर स्नान करते है । इससे मस्तिष्क ठढा रहता है, बाल नरम, मुलायम, साफ और लम्बे भी होते है । थोडी मात्रामे खानेमे यह मृदुसारक एव पित्तविरेचक है तथा कामला एव पित्तज्वरको नष्ट करती है और शरीरको पैत्तिक दोषोसे शुद्ध करती है । इसमे शरीर मलनेसे शरीरका मल दूर होता है, साफ किये हुए इसके पत्ते पावभर से आध सेर तकके प्रमाणमे लेकर पानीमे भिगोये और मलकर साफ करके उसमें नमक और थोडीसी कालीमिर्च, अदरक और लहसुन पीसकर मिलाकर थोडेसे घी से वधारकर एक प्याला भरके पी लेवे तो बलपूर्वक दस्तोमें पित्त निकल जाय और कामलाकी जड उखड जाय । फलीके बीज निकाल, बारीक पीसकर थोडी-सी जावित्री मिलाकर रीठे प्रमाणकी गोलियाँ बाँधकर रोगके बलाबलके अनुसार १-५ गोली तक कामला रोगीको देने से बडा लाभ होता है । इसका इस प्रकार भी प्रयोग करते है कि रातमें पानीमे भिगोकर ओसमें रख छोडते है । प्रात बीज निकाल बारीक पीसकर दहीमे लपेटकर कामला रोगीको खिला देते है । इससे दस्तोके रास्ते पित्त निकलकर कामला रोग जाता रहता है । तात्पर्य यह कि दस्तोके मार्गसे भली-भाँति पित्तको निकालती है । अहितकर–कण्ठ और (नरखरा) को । निवारण–इमली, मिश्री और खाँड ।

नव्यमत—फली उत्तेजक, कफघ्न, वामक और आनुलोमिक है। इसकी क्रिया रीठा अथवा सेनेगाके समान होती है। इससे नाडीका स्पन्दन कम होता है और मूत्रकी राशि बढती है। पत्र खट्टे, रोचक, यकृदुत्तेजक और विरेचन है। पुराने कफ रोगोंमें कफ पतला होने और श्वासावरोध कम होनेके लिए इसको फलीका फांट देते है। इससे दस्त भी साफ होता है। फलीके काढेसे सिर धोनेसे जूएँ मरती है। फलीके काढेमें कपडेकी बत्ती भिगोकर बच्चोंकी गुदामें चढानेसे दस्त साफ होता है (ओ० स०)।

•

(६००) सीसालियूस

फैमिली . ऊम्बेल्लीफेरी (Family Umbelliferae)

नाम—(यू०) Sesch (D. 1 101), (अ०, यू०) सीसाली-(अरबीकृत), अल्-सी(से)सालियूस (इ०बै०), सासाली, सासालियूस; (फा०) अजुदान रूमी, कासिमरूमी; (लै०) मीर्हिस ओडोराटा (**Myrrhis odorata** Scop.), (अं०) स्वीट या स्मूथर सिसेली (Sweet or Smoother Cicely), स्वीट शेर्विल (Sweet Chervil), सेसेली (Seseli)।

उत्पत्तिस्थान—ब्रिटिश बगीचोंका सामान्य पौधा है। इसकी एक जाति मेउम् डीफ्फूसुम् **Meum diffusum**) भारतवर्षमें भी होता है।

वर्णन—पत्र बडे, त्रिपक्ष (Tripinnate), पत्रक अध स्थित सिराओपर और पत्रप्रांत पर लोमश, पत्रवृन्त फैले हुए रोम (Spreading hairs) युक्त; पत्रक लट्वाकार (Ovate) अपेक्षाकृत भालाकार, बडे पत्रकोंके आधार के समीप साधारणत. सफेद व छींटे (Splashes) युक्त, स्वाद मधुर अनीसूँ की तरह (Anise-like), जड सफेदी लिए १ २५ से ३ ७५ सॅ०मी० (॥–१॥ इञ्च) चौडी। कासमीके लेखक के अनुसार यह आयुर्वेदोक्त 'मापगी' है।

उपयुक्त अग—जड और क्षुप।

प्रकृति—दूसरेसे तीसरे दर्जे तक गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह मूत्रजनन, आर्तवजनन, अवरोधोद्घाटनकर्ता, दीपन, पाचन, वाजीकर और वेदनास्थापन है तथा पेटके दर्द, श्वासकृच्छ्र (साँसकी तगी), मूत्रकृच्छ्र (विदुमूत्र) और गर्भाशयके दर्दको दूर करता है तथा वस्ति एव वृक्कके रोगोंमें अत्यन्त गुणकारक है। इसके बीज शरीरके भीतरकी पीडाको शान्त करते हैं और कफका नाश करते हैं। इनसे मूत्र और आर्तवका खूब प्रवर्तन होता है और अवरोधोंका उद्घाटन होता है। इनके खानेसे गर्भपात हो जाता है। ४॥ माशे इसके बीज मद्यके साथ खानेसे यात्रामें होने वाले वायुजन्य विकार एव शीत से रक्षा होती है। अपस्मार में भी गुणकारक है। इसकी जड और बीजोंके खानेसे पुरानी खाँसी जाती रहती है। इसकी जडको पीसकर मधुमें मिलाकर चाटनेसे छातीसे पिच्छिल द्रव्योंका उत्सर्ग होता है, कुक्षि (कोख), वक्षण और नितम्ब आदि के वायु का नाश होता है। आमाशयके लिए यह सात्म्य है। पेटके वायु और मरोडका नाश करती है। चौपायोंके लिए भी यह सुखप्रसवकारक है। अपतन्त्रकमें इसके उपयोगसे उपकार होता है। इसकी ताजी पेडी और बीजको कूटकर रस निकालकर दो-अढाई माशेकी मात्रामें मद्यके साथ खानेसे और इस प्रकार दश दिन तक कभी-कभी सेवन करते रहने से वृक्कशूल जाता रहता है। इसे मधुके साथ चाटनेसे भी उक्त लाभ होता। वस्तिरोगों में भी यह रस लाभ पहुँचाता। कासमीके रचयिताके अनुसार मापगी कटु, तिक्त और उष्ण है तथा कफज कास, दमा और शोथको नष्ट करती है। उदरकृमियोंको नष्ट करती और ज्वरका नाश करती

या अप्राकृत ऊष्माको लाभकारी है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको और यकृतको। निवारण—उष्णप्रकृतिके लिए कतीरा और यकृतके लिए जरिश्क। प्रतिनिधि– अंजुदान। मात्रा–४·५ ग्राम (४॥ माशा)।

नव्यमत—वातानुलोमन, दीपन, कफोत्सारि। ताजी जड स्वतन्त्रतापूर्वक खायी जा सकती है। खाँसी और आध्मानमें यह गुणकारी तथा अजीर्ण और आमाशयके विकारोंमें मृदु (Gentle) उद्दीपन भी पाई गयी है। जडका काढे और क्षुपका फाण्टके रूपमें उत्कृष्टतम प्रयोग होता है। पाण्डु वा रक्ताल्पतामें क्षुपके फाण्टका उत्तम परिणाम होता है तथा यह युवा वन्याओंके लिए उत्तम बल्य औषधि है। प्लेगकालीन संक्रमण रोकनेके लिए सिसलीकी जड और सुम्बुलखताई (Angelica)का प्रयोग किया जाता था। (पॉटर्स न्यूसाइक्लोपीडिया पृ० ८१)।

●

(६०१) सुम्बुल

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family Umbelliferae)

नाम—(यू०) Nardos (D 1. 6) (अ०) अलसुम्बुल (इ० वै०) सुम्ब, मम्ब, (फा०) बेख सुम्बुला, बेख रीशावाला, (ले०) फेरूला सुम्बुल **Ferula sumbul**, (अं०) सुम्बुल (Sumbul), मस्करूट (Musk-root), हाइएसिन्थ (Hyacinth)।

वक्तव्य—अँग्रेजीमें इसे 'मस्करूट' अर्थात् 'कस्तूरीमूल' या 'जजरमिश्की' इसलिए कहते हैं कि रूसमें लगभग सन् १८३५ ई० में कस्तूरीके प्रतिनिधि स्वरूप इसका प्रवेश हुआ। तदुपरात वहाँ इसकी खेतीकी गई। इब्नजुल्जुल् और सुलेमान-बिन-हसानके मतसे मब्ब 'पहाड़ी सुम्बुल'का नाम है। अरबीमें सुम्बुल शब्दका प्रयोग प्रत्येक ऐसे गुच्छा या बालीके अर्थमें होता है जिसका गुच्छा या बाली गेहूँ या जौकी बाली या गुच्छेके समान हो, परन्तु आयुर्वेदीय साहित्यमें इसका व्यवहार 'सुगन्धतृण' के अर्थमें होता है। यूनानी वैद्यकमें मात्र सुम्बुल शब्दसे 'सुम्बुले' हिन्दी अर्थात् सुम्बुलुत्तीब (सुम्बुलुल् असाफीर) जिसे 'बालछड़' और लैटिनमें नार्डुस् इंण्डिकुस् (**Nardus indicus**–नारद हिन्दी) कहते हैं, विवक्षित होता है। हकीम दीसकूरीदूसने निम्न ३ प्रकारके सुम्बुलका उल्लेख किया है—(१) सुंबुलुत्तीब या सुम्बुले हिन्दी अर्थात् बालछड़, (२) सुंबुले रूमी या सुबुले इकलीती जो केवल गधमें समान है, स्वरूपमें नही। इसे लेटिनमें वालेरिआना केल्टिका (**Valeriana celtica**) कहते हैं, (३) सुम्बुले जबली या कोही तथा सुम्बुले सूरी भी कहते है। फारसीमें इसे रीशावाला कहते है। यह भारतीय सुम्बुलके बहुत समान होती है। यह सूरियाके पर्वतों जो हिन्दुस्तानसे मिला हुआ है, होती है। यह तीक्ष्ण सुगन्धित एव श्रेष्ठतर है।

उत्पत्तिस्थान—समरकदके दक्षिण-पूर्वी पर्वत, तुर्किस्तान, रूस और भारतवर्ष।

वर्णन—इसकी व्यापारिक जड आडे कटे टुकडोके रूपमें, लगभग १-२ इञ्च पर्यन्त व्यासमें और १ इञ्च या एकाधिक इञ्च मोटी, इसमें जडका हृष्टरोमयुक्त शीर्ष (ताज)(Brisling crown) और गोपुच्छाकार नीचेका भाग भी होता है। यह बाहरसे एक कागजकी तरह पतले गहरे भूरे रगकी छालसे आवेष्टित होती है। व्यत्यस्त काट (आच्छेद) गँदला भूरा और रालमय, सफेदीके साथ कठिनीकृत (Marbled with white) होता है। श्वेत भाग एक स्पजवत् तन्तुमय, आटामय या धातुसे युक्त स्टार्ची (Mealy) दिखाई देना है। स्वाद तिक्त एव रुचिपूर्ण, गन्ध कस्तूरीवत् वर्तमान कालमें व्यापारमे इसके स्थानमे इसकी एक दूसरी जाति फेरुला सुआविओलेंस (**Ferula suaveolens**) की जड मिलती है।

उपयुक्त अग—जड।

रासायनिक सगठन—इसमें अम्बेलीफेरोन (Umbelliferon) नामक उत्पत् तेल (Essential oil) होता है।

कल्प—तरल सार (मात्रा–१० से ६० बिन्दु), घनसार (मात्रा–२ र० या १२० मि० ग्रा०, सुरासव (Tincture) मात्रा– ½–१ ड्राम।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—जवाशीरके समान सग्राहिणी शक्ति। यह औषधि समस्त प्रत्यगोको बल प्रदान करती है। इससे (कुन्वत मासिका) अत्यन्त बलवती हो जाती है। यह वायुका अनुलोम करती, अफारा, कफज छर्दि और जलोदरका नाश करती है। इससे मद्य भी बनाते हैं जिसकी विधि यह है–एक भाग यह औषधि और दस भाग अगूरका रस मिलाकर इतना पकायें कि आधा रह जाय। पुन इसे इक्कीस दिन तक धूपमे रखकर, छानकर रखें। यकृत्के रोगोमें तथा कामला और सर्वांग शोफ (इस्तिस्काउ लहमी)मे इसके सेवनसे बडा लाभ होता है। इससे खुलकर पेशाब आता है। सुम्बुलकोहीमें बालछडकी अपेक्षया अधिक (कब्ज) एव उष्णता है। इसके पीनेसे प्रमेह बन्द हो जाता है, छाती पर नही गिरता और स्वर शुद्ध हो जाता है। यह जड वातनाडियो और सन्धि-शूलको लाभदायक है, आमाशय, यकृत्प्लीहा और वस्ति एव वृक्कको शक्ति देती है, वायुको विलीन करती है, आमाशय और गर्भाशयके आध्मानको नष्ट करती है। यकृत्के शीत शोथ एव आध्मानको नष्ट करती है, मस्तिष्ककी ओर वाष्पको चढने नही देती, वस्ति एव वृक्कशूलको लाभ पहुँचाती है। पेटके मरोड और आटोप (कराकिर, गुडगुडा-हट)को मिटाती तथा मूत्रका प्रवर्तन करती, शुक्रकी वृद्धि करती और कामको उत्तेजित करती है। इसके काढेमे (आबजन) करनेसे मूत्र और आर्तव खुल जाता है, वस्ति और वृक्कमें मलसचित होकर दर्द हो जाय तो इससे जाता रहता है। बच्चेके पेडू पर इसका लेप करनेसे पेशाब खुल जाता है। अहितकर–सिरदर्द उत्पन्न करता है और प्लीहाको हानि पहुँचाती है। निवारण–सिरदर्दके लिए इसे कुछ दिनो सिरकेमें डालकर पडा रहने देनेके उपरान्त निकाल सुखाकर टिकिया बनाकर काममें लेवें। इसके अतिरिक्त लालचदन, गुलाबके फूल और अजमोदेके बीज और मधु। प्रतिनिधि–यकृत्की चिकित्सामें बालछड मूत्रके निर्हरणके लिए कालीमिर्च, मतातरसे समतोल फितरा-सालियून आधा तोला, जायफल, असारून, तज या अफसतीन। मात्रा–(१ ७५ ग्राम से ४ ५ ग्राम, १¾ माशेसे ४½ माशे) तक। मतातरसे चूर्णमें ७ माशे तक और फाण्ट एव काढेमें ९ माशे तक।

नव्यमत—अगमर्दप्रशमन, नाडीबलदायकोत्तेजक, किन्तु इसका उक्त गुण-प्रभाव बहुत खफीफ होता है, फिर भी इसको अपतन्त्रक, अपस्मार और सकम्प उन्माद (Delerium tremens)में देते हैं और इस पिछली व्याधिमे इसे अफीमसे अधिक गुणकारी समझते है। विसूचिकामे भी इसके उपयोगसे लाभ होता है। वातव्याधियो, हलके (टायफस) ज्वरो, श्वास, कास आदिमें इसे बहुत गुणकारी पाया गया है। अरज स्राव वा अनार्तव (Amenorrhoea), अपतन्त्रक और अन्यान्य तत्सम (Allied) स्त्रीरोगोमें भी इसका उपयोग करते है। प्राय इसका उपयोग जवाशीर-के समान होता है।

(६०२) सुदर्शन

फ़ैमिली : आमारील्लीडासे (Family . Amaryllidaceae)

नाम—(हिं०) सुदर्शन, सुखदर्शन, (ब०) सुखदर्शन; (स०) सुदर्शन (भा० प्र०), (लै०) क्रीनुम् लाटीफो-लिउम् (**Crinum latifolium** Linn), क्री० जेलानिकुम् (**C. zeylanicum** Linn) ।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षके शुष्क जगलोमें प्राय नदियोके ऊँचे किनारोपर जगली पाया जाता है या बगीचोमे लगाया हुआ मिलता है ।

वर्णन—एक गुल्म जिसकी पत्तियाँ बीचमें ३ इञ्च से ४½ इञ्च चौडी और २½ फुट से ४ फुट तक बडी और घीकुआरके पत्तेसे कुछ मिलती-जुलती होती है । कन्द गोलाकार, व्यासमे ५ इञ्च तक और उसकी मोटी गर्दन ३-५ इञ्च तक लबी होती है । पत्तियोके बीचसे पुष्पदड निकलता है । पुष्प श्वेत होते है । इसके कई भेद होते हैं। विषकदरा भी इसीके एक भेदोमेंसे है जो सभवत 'राजनिघटुका विष्णुकद' है ।

उपयुक्त अग—पत्र, कद । प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आमवातमें शोणितोत्क्लेशक रूपमे इसके कदको कुचल और भूनकर उपयोग करते है । अर्श एव विद्रधियोमें पूयोत्पादनके लिये भी इसका उपयोग करते है । यह वायुका अनुलोमन करता है । इसके पत्रस्वरसको गुनगुना कानमे डालनेसे कर्णशूल आराम होता है । इसके फूलोका तेल जबक (सफेद सोसन या चमेली)के समान है ।

आयुर्वेदीय मत—सुदर्शन स्वादिष्ट, उष्णवीर्य तथा कफ, सूजन और वातरकको हरनेवाला है । (भा०प्र०) ।

●

(६०३) सुदाब

फ़ैमिली : रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०) सिताब(ब), स(सु)दाब, सांवलो, सातरी, (यू०) पीगँनोन Peganon (D 3 45), (अ०) अल्सुदाब (इ०बै०), फैंजन, सुजाब, (फा०) सदाब, सद्दाब, सुदाव, सुद्दाब, (स०) सर्पदन्ष्ट्रा, पीतपुष्पा-(नवीन), (प०) सुदाब (ब०) इस्पद (म०, बम्ब०) सताप, (गु०) स(स)ताब, (ता०) अरुवाण, (कना०) सादाबु, (मल०) अरूदम्, सोमरायम्, (पा)बुथोलिल, (का०) हावुनजु, नागदालि, (लै०) रूटा ग्रावेओलेन्स (**Ruta graveolens** Linn), (अ०) गार्डेन रू (Garden Rue) ।

वक्तव्य—फै(फी)जन वस्तुत यूनानी 'पीगँनोन' का अरबी रूपान्तर है । 'सुजाब' फारसी सुदाबसे अरबी बनाया गया है । रूटा आंगुस्टीफोलिया (**Ruta angustifolia** Pers) उपर्युक्त वनस्पतिका ही एक भेद है । भारतीय भाषाओके नाम या तो इसके फारसी नाम 'सदाब' या 'सुदाब'के रूपान्तर मात्र है अथवा इसके प्रजा-तिक नाम (Generic name) 'रूटा' पर आधारित है । यद्यपि सुदाब का प्रचार इस देशमें अन्य विदेशागत औष घियोकी तरह काफी दिनोसे है, किंतु आयुर्वेदीय निघण्टुओमे इसका उल्लेख नही मिलता और इसीलिये इसके संस्कृत नाम भी नही मिलते, यद्यपि कतिपय आधुनिक लेखकोने इसके लिये 'सोमलता' सस्कृत नाम दिया है । मख्जनुल् अदविया और मुहीत आजममें सुदाबके वर्णनमे वानस्पतिक विवरण तो रूटा ग्रावेओलेन्सका दिया है, किंतु इसका

बँगला नाम 'तितली' दिया है। इसी प्रकार द्रव्यगुणविज्ञानम्में इसका पंजाबी नाम 'तितली' दिया है। अपने यहाँ—एउफॉर्बिया ड्राकुन्कुलोइडेज (Euphorbia dracunculoides Linn) नामक उद्भिज्जको 'तितली' कहते हैं, जो गेहूँ-चने आदिके खेतोंमें घास (Weed)की तरह उगती है और सुदावसे सर्वथा भिन्न है। आजकल बाजारोंमें (विशेषतः उत्तर भारतके सभी बाजारोंमें) सुदावके स्थानमें तितली ही बेची जाती है और अज्ञानवश अधिकांश लोग इसीका प्रयोग करते हैं। इसका स्पष्टीकरण लेखकों द्वारा 'Identity of Sudab and its Adulterants' शीर्षक शोधपत्रमें किया गया है (Ind Journ Pharm)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणयूरोप और फारस आदि विदेश। भारतके बगीचोंमें इसके क्षुप लगाये जाते हैं। भारतवर्षमें इसका आयतन मुख्यत फारससे होता रहा है। बहुत दिनोंसे इस वनस्पतिका प्रवेश इस देशमें होने पर भी यह यहांका निवासी पौधा (Naturalised) नहीं हो सका है।

वर्णन—यह एक छोटा क्षुप है जिसके (मसलने पर) समग्र पौधेसे एक अप्रिय तीक्ष्ण गंध आती है। काण्ड बेलनाकार, सशाख, चिकना, पत्र एकांतर द्विपक्षाकार (Bi-pinnate), खण्ड ऊपरसे भालाकार, नीचे रेखाकृति तथा उक्त पत्र असंख्य व्याप्त अर्धस्वच्छ, अर्धअपारदर्शक् तैलग्रन्थियोंसे युक्त तथा तीक्ष्ण दुर्गन्धयुक्त होते हैं। आपाततः देखनेमें पत्र धुएँके रंगके प्रतीत होते हैं। फूल पीला, ५-पंखुडीयुक्त, बीज ३, त्रिकोणाकृति, कत्थई रंगके होते हैं। 'जंगली' और 'बागी' भेदसे यह दो प्रकारका बतलाया गया है।

उपयुक्त अंग—समस्त क्षुप और उससे निकाला तेल (रोगन सुद्दाब)।

रासायनिक संगठन—ताजे पत्रमें अल्पप्रमाणमें एक उत्पत् तैल (रोगन सुदाब) होता है, जिसमें ९०% मीथिलनॉबिलकीटोन होता है। इसके अतिरिक्त रूटिन (Rutin) नामक ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—जवारिश कमूनी, जवारिश कबीर, जवारिश मुसहिल, सफूफ असलुस्सूस, सफूफ मुहज्जिल, माजून काशिम (बयाज कबीर, भाग २), रोगन सुद्दाब, अर्क़दियाए कबीर, रोगन चोबचीनी, माउल् बुजूर, माजून बोलस, ज़िमाद सुदाब (इला० अमराज), माजून सकमुनिया, जिमाद सकमूनिया, जवारिश कमूनी मुसहिल। (यू०सि०यो०स०)।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क मानते हैं। मतांतरसे तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छेदन, विलयन, प्रमाथी, प्रवर्तक, वातानुलोमन, उपशोषण, अगदगुणविशिष्ट संग्राही, मूत्रार्तवजनन एवं वातविलयन है। यह आहारका पाचन करता, भूख लगाता, शीतल आमाशयको शक्ति देता, उसके आनाहको दूर करता, वायुको विलीन करता और आमाशय, यकृत् एवं प्लीहाकी शीतल विप्रकृति (सूए मिज़ाज बारिद)के लिये गुणदायक है। यह प्रवर्तक है। अतएव शारीरिक मलोंको उत्सर्गित करता है, इसी कारण कब्ज पैदा करता है। क्योंकि जलांश (माइय्यत) बस्तिमार्गसे उत्सर्गित हो जाता है जिससे सूखा अवशेष अन्त्रमें शेष रह जाता है। पेय और फलवर्तीके रूपमें यह आर्तवजनन है। सान्द्रदोषविलयन और उष्णताजनन होनेके कारण यह गृध्रसी, वातरक्त तथा चिरज वेदनाओंमें गुणदायक है। यह शरीरको विषोंसे सुरक्षित रखता है। साँप, बिच्छू, भिड और कुत्तेके दंशस्थान पर इसका पतला लेप (तिला) गुणदायक है। उपशोषण होनेके कारण यह शुक्र तथा अन्य द्रवोंको शुष्क करता है। शोफ (तहब्बुज) और सर्वांगशोथमें यह तिला और लेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। इसके ७ ग्राम (७ माशे) और सर्वांगशोथमें यह तिला और लेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। इसके बीजोंका चूर्ण स्थायी बल्य है। अहितकर—शिर शूलकारक और दृष्टिदौर्बल्यकारक है। निवारण—सिकंजबीन और अनीसून। प्रतिनिधि—सातरफारसी और नाना। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—सुदाब दीपन, वायुनाशक, उत्तेजक, कृमिघ्न, आक्षेपहर, स्वेदजनन, नाडियोंको उत्तेजक, मूत्र-जनन और आर्तवजनन है। सुदावकी उत्तेजक क्रिया विशेषकर त्वचा, नाडीव्यूह (नर्वस सिस्टम) और गर्भाशय-पर होती है। स्त्रियो और बालकोके रोगोमे सुदावका विशेष उपयोग करते हैं। इसे ज्वरमे देनेसे मूत्र और पसीना आता है तथा नाडीकी गति कम होती है। शिशुओके आक्षेपकमे गोरोचनके साथ सुदावको देते है। भ्रम, उदरशूल, आध्मान, कुपचन और अपतन्त्रकमे तथा अनार्तव और कष्टार्तवमे भी सुदावका फाट देते है। इससे ऋतु साफ होकर पीडा कम होती है। शिशुओकी सर्दी, जुकाम और कासमें इसका स्वरस देते है। कानके दर्दमे इसका स्वरस कानमे डालते है।

●

(६०४) सुपारी

फ़ैमिली पाल्मासे (Family : Palmaceae)

नाम—(हिं०) सु(सो)पारी, छालिया, कसैली, (अ०) फो(फौ)फल, (फा०) पोपल, (स०) क्रमुक, गुवाक, पूग, पूगीफल, (ब०) सुपारि, (गु०) सोपारी, (म०) सुपारी, पोफल(ळी), (लै०) आरेका काटेकू (**Areca catechu** Linn) (अं०) बीटल-नट (Betle (Betel) nut), एरीका-नट (Areca nut)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष, कनाडा और भारतके अन्य स्थानोमें इसके वृक्ष होते है।

वर्णन—यह नारियलकी जातिके एक पेडके फलके प्रसिद्ध बीज है। फल २ ५ से० मी० से ३ ७५ सें०मी० (१ इच से १$\frac{1}{2}$ इञ्च)के घेरेमे छोटे अडेकी आकृतिके गोलाकार एव नारगी पीले रगके होते हैं। फलावरण तंतुमय नारियलके छिलकेके समान होता है और पकनेपर बीजसे सहजमें अलग हो जाता है। यह बीज ही सुपारीके नामसे प्रसिद्ध है जो लगभग २ ५ से० मी० (१ इञ्च) लम्बी, गोल, गोपुच्छाकृति जिसका पेंदा किंचित् नतोदर होता है। रंग बाहरसे भूरा जिसपर बारीक-बारीक ललाई लिये रेखाये होती है। काटनेपर अन्दरसे सफेद और लाल धारियाँ होती है। यह कडी एव भारी होती है। स्वाद सुगधित, कषाय एव किंचित् चरपरा होता है। आकार-प्रकार भेदसे सुपारी अनेक प्रकारकी और साधारणतया दो प्रकारकी होती है। एक गोल गोपुच्छाकृति जिसे 'जहाजी छालिया' और दूसरा गोल जिसे 'मानिक चर्दा' कहते है। छालियाको काटनेपर यदि उसके अदर श्वेत रेखाएँ अधिक हो तो वह अच्छी होती है।

रासायनिक सगठन–इसमे १४% एक अनुत्पत् तेल, १०% से १५% कषायद्रव्य और यह चार क्षारोद (Alkaloids) होते है—(१) एरीकोलीन Arecoline–फौफलीन), (२) एरीकेईन (Arecaine), (३) एरीकेआइ-डीन (Arecaidine) और गुवेकीन (Guvacine)। इनमे एरीकोलीन सर्वप्रधान है जिसपर सुपारीका लालाप्रव-र्तक एव कृमिघ्न गुण आश्रित है।

कल्प तथा योग—हलवाए सुपारीपाक, माजून सुपारीपाक, सफूफ सुपारी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) एव रूक्ष (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, दोपविलोमकर्ता, उष्णश्वयथुविलयन और विशेपकर दाँतोंको शक्तिप्रद एव चूनेका निवारण है। सुपारीको अधिकतया पानमे रखकर खाते है। इससे चूनाके अवगुणोका निवारण होता एव दाँतोको शक्ति प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त दस्तोको बद करनेके लिए इसका चूर्ण खिलाते है तथा दाँतोको मजबूत करने और उनके रक्तस्रावको बद करनेके लिए दंतमजनोमे डालकर मजन करते है। दोपविलयन एवं

विलोमकरणके निमित्त गरम शोथोंपर इसका लेप लगाते हैं। नेत्रस्राव (ढलका) और नेत्रपाक (शोजिशे चश्म)मे सुपारीको जलाकर और सुरमेकी भांति बारीक पीसकर लगाते हैं। अहितकर—उर खरत्वकारक और अश्मरीजनक है। निवारण-कतीरा और इलायची। प्रतिनिधि-पदन। मात्रा—३ ग्राममे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सुपारी कषाय, किंचित् मधुर, गुरु, रूक्ष, शीतवीर्य, मादक, रुचिकर, कुछ सारक तथा कफ, पित्त और मुखके क्लेद-मल एव वैरस्यको दूरकरनेवाली है। (सु० सू० अ० ४६, भा० प्र०)।

नव्यमत—एक कच्ची सुपारी दूधमें घिसकर पीनेसे चपटे कृमि मर जाते हैं।

•

(६०५) सुमाक

फैमिली अनाकार्डिआसे (Family Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) तत्रक, (यू०) रहॉउस Rhous (D 1 147); (अ०) सुमाकुल् दब्बागीन, अल्सुमाक (इ० बै० २/२९), स(नु)माक, स(सु)म्माक, समाकोल, तमतम, तिमतिम, (फा०) समाक्, (वम्ब०) सुमाक, (लै०) रहुस् कोरिआरिआ (Rhus coriaria Linn), (अ०) सुमाक (Sumak, Sumach)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, एशियामाइनर, अरब, फारससे लेकर पूर्वमें अफगानिस्तान, तुर्क और भारतवर्षमें कडी भूमि एवं सर्द प्रदेशमें इनके वृक्ष होते हैं। बम्बईमें इसके फलोका आयात फारससे होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध वृक्षका सुखाया हुआ प्रसिद्ध फल है जो मकोयके फलके बराबर किन्तु चपटा मसूरके दानेकी तरह उससे छोटा या बडा, गोलाकार या लम्बगोल होता है। फलावरण पतला, हलका, ललाई लिए भूरा या सुरखई रगका, निर्गन्ध, स्वाद किंचित् कषाय और अम्ल होता है तथा यह हाथसे मलकर सरलतासे बीजोसे छुडाया जा सकता है। फलोंका यह बारीक छिलका ही कषाय एव वीर्यवान् होता और औषधके काममें लिया जाता है। इसे पोस्त समाक् या गर्दए समाक कहते हैं। बीज फलसे आधा छोटा, बहुधा सदैव लम्बगोल, बहुत कडा और कुछ-कुछ वृक्काकृति होता है। इसमें कोई विशिष्ट गध या स्वाद नही होता। फल एव बीज बाजारोंमें अत्तारोंके यहाँ समाकके नामसे बिकते है और हकीमी दवामे काम आते हैं। इसमे ३ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—फल एव पत्रमें टैनिक एसिड (Tannic acid) होता है।

भारतीय सुमाक—

नाम—(हिं०) तत्रक, रायतुंग (-प०), मिनास, निनावा, तुगला, समाकदाना, (अ०) समाक, सुमाक, (फा०) समाक; (स०) तिन्तिडीक, (क०) चोक्कमुसुर, (प०) खट्टेमसर, डॅसरा, तुगा, तुगला, (मा०) डाँसरिया, (का०) समाक, (गढ०; कुमा०) तुगा, (लै०) र्हुस् पार्वीफ्लोरा (**Rhus parviflora** Roxb.)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्षमे विशेषकर जौनसार तथा बाहरी हिमालयमें २,००० से ५,००० फुट की ऊँचाई तक तथा नैपालसे कुमाऊँ तक इसके वृक्ष होते हैं। जमुना और टोसकी घाटियोमें प्राय अधिक मिलते हैं।

वर्णन—इसका पेड अनारके पेडके इतना बडा या उससे कुछ बडा होता हैं। नवीन भाग मोरचेके रगके रोमावरणसे ढके रहते हैं। पत्तियाँ संयुक्त त्रिपत्रक होती हैं, जिनमे अग्रस्थित पत्रक सबसे बडा होता है। फल व्यासमें ०५ सें० मी० (० २ इंच), अडाकार, चिकना, भूरा और चमकीला होता है। ये मसूरकी आकृतिके

लाल रगके दाने (फल) है, जो 'समाकदाना'के नामसे बाजारमे वेचे जाते है। कच्चेपर उक्त फलोका स्वाद खट्टा होता है जो खूब पककर खटमिट्ठा हो जाता है। पजावीमे इनको समाकदाना कहते है। यह विदेशी समाकके स्थान मे व्यवहार किया जाता है। इसकी कई अन्य उपजातियाँ भी होती है, जिनमे किसीको 'तित्री' किसीको 'तुग' और किसीको 'ओईरख' कहते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे शीत एव रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सग्राही, विलोमकर्ता, अन्त्र-आमाशयको शक्ति प्रदान करता पित्तको शमन करता तथा रक्तस्राव एव बहुमूत्रको रोकता है। यह विशेषकर दीपन और पित्तातिसारनाशक है। अधिकतया पित्तज अतिसार, रक्तातिसार तथा उत्क्लेश एव छर्दिको रोकने और तृष्णाको शान्त करनेके लिये अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोके साथ पोस्तसुमाकका उपयोग करते है। यह उष्ण प्रकृतिके लोगोके आमाशयको शक्ति देता और भूख लगाता है। इसे बहुमूत्र एव अतिरजको बन्द करनेके लिए खिलाते है। दाँतोको मजबूत करने और दतशूलनिवारणके लिए इसके फाँटजलसे कुल्ली कराते और मजनोमे डालकर दाँतोपर मलते है। नेत्राभिष्यदके प्रारम्भमे आश्च्योतन करते हैं। दोषविलोमकरणके लिये शोथके प्रारम्भमे इसका लेप लगाते है। नकसीरमे इसे जलमे पीसकर मस्तकपर लेप करते है। अहितकर–शीतल यकृत्को। निवारण–मस्तगी, अनीसूँ और सौफके साथ खानेसे इसके दोषोका परिहार हो जाता है। प्रतिनिधि–जरिश्क। मात्रा–३से ५ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—पके समाकदाने वातहर और कच्चे पित्त तथा कफ करनेवाले है। (सु०सू०अ० ४६)।

नव्यमत—सुमाक हृद्य, दीपन, ग्राही रक्तपित्तप्रशमन और रक्तसग्राहक है। इसको गर्भिणी स्त्रियोके (जुलाब)मे, अशक्त मनुष्योके रक्तयुक्त आँवमें, पित्तप्रकोपसे उत्पन्न वमनमें तथा ज्वरमें शरीरका दाह और तृषा कम होनेके लिये इसे देते है। (मो०स०)।

●

(६०७, ६०८) सुरंजान मीठा और कडुआ

फैमिली लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०,म०,गु०,उ०) सुरजान, (भा०बा०) सूरिजान, (अ०) अल्सूरजान (इ०बै०), हाफिरुल् महर, असाबअ हुर्मुस–(प्राचीन), अल्लहूलाह (नवीन), (पुष्प) असाबअहुर्मुस, शवलीज; (फा०) सूरिजान, जाफराने मर्गजारी, (यू०) एर्मोडक्टुलोस, कोल्खि(-च)कोन Kolkh(ch)ikon (D 4 84), (क०) विरक्युम्, (लै०) हेर्मोडाक्टिलेस(लुस) कॉल्चीकुम् Hermodactyles(us), colchicum), (अ०) कॉल्चिकम (Colchicum), मेडो सैफ्रन (Meadow Saffron), नेकेड लेडीज (Naked ladies)।

वक्तव्य—इसकी यूनानी सज्ञा 'हेर्मोडाक्टिल'का अर्थ 'हुर्मुसकी उँगलियाँ (असाब हुर्मुस या शवलीज) है। इसका पुष्प अगुलीके आकारका होता है। अतएव यूनानियोने इसको उक्त नामसे अभिहित किया। प्राचीन अरबीमें तो सुरजानको असाबअ हुर्मुस कहते थे, परन्तु अर्वाचीन अरबीमे इसको 'अल्लहूलाह' कहते है। दाऊद अताकी ने प्रमादवश अल्लहूलाहको 'उस्तरखार' लिखा है। इटलीमे एक स्थानका नाम कॉल्चिक (Colchic) है, जहाँ इसके उद्भिज्ज पुष्कल होते है। इसलिये यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने इसको 'काल्चिकम' नामसे अभिधानित किया। इसके केशरी पुष्पोके सम्बन्धसे इसे अग्रेजीमें 'मेडो सैफ्रन (सैफ्रन = केशर)' कहते है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंको हर्मोडैक्टिल ज्ञात न थी। प्रतीत होता है कि प्रथम अरबोंने इसका उपयोग किया। यूरोपमें सर्वप्रथम एलेक्जेंडर ट्रेलसने सन् ५९० ई०में इसका वर्णन किया। परन्तु सराफियून (Serapion)ने हर्मोडैक्टिलको दीसकूरीदूसोक्त कॉल्चिकम् बतलाया। यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने कॉल्चिकोन या कॉल्चिकम्के नामसे कडुसुरंजानका उल्लेख किया है और इसके विषमय गुणकी ओर चिकित्सकोंका ध्यान आकृष्ट किया। तदुपरान्त कई अन्य यूरोपीय डॉक्टरोंने इस सुरंजानके विषैले गुणका उल्लेख करके इसके प्रयोगसे सतर्क किया। तो भी यह औषधि सन् १६१८ ई०में लंदनकी फार्माकोपियामें समाविष्ट की गई। परन्तु सन् १६५०ई०के फार्माकोपियामें से इसको निष्कासित कर दिया गया। पुनः कतिपय शोधन एवं प्रयोगकर्ताओंके प्रयोगपर सन् १७८८ ई०में फार्माकोपियामें इसको पुनरपि समाविष्ट कर लिया गया और तबसे आजतक यह समाविष्ट चली आती है।

भेद एवं वर्णन—नजमोहीं तथा अन्य पुराकालीन अरबी हकीमोंने इन तीन प्रकारके सुरंजानका उल्लेख किया है–(१) सफेद, (२) पीला और (३) काला। इनमें सफेदको निर्विषैला माना जाता है और यह खानेकी दवामें काम आता है। इसीको मीठा सुरंजान (सूरिंजाने शीरीं) कहते हैं। पीला एवं विशेषकर कालेको विषैला माना जाता है। इसको कडवा सुरंजान (सूरिंजाने तल्ख) कहते हैं। यूनानी हकीम इनका खानेकी दवामें (आंतरिक रूपसे) उपयोग नहीं करते, अपितु केवल तेल आदिमें मिलाकर मालिशके काममें लेते हैं। किन्तु अन्वेषणोंसे यह ज्ञात हुआ है कि कडवा सुरंजान गुणकर्ममें मीठे सुरंजान (सूरिंजाने शीरीं)की अपेक्षया अधिक वीर्यवान् है। अतएव पाश्चात्य वैद्यकमें 'कडवे सुरंजान' का ही उपयोग होता है। इसे लैटिनमें कॉल्चीकुम् आउटुम्नाले (Colchicum autumnale L.) कहते हैं। यह मध्य एवं दक्षिणी यूरोप, इंग्लैंड और आयरलैंडके आर्द्र चरागाहोंमें तथा इटली, बाल्टिक और मिस्र आदि देशोंमें होती है। कॉल्चीकुम् ल्यूटेअम् (Colchicum luteum Baker) इसीकी एक दूसरी जाति है, जो भारतके कश्मीर आदि स्थानोंमें होती है। इसकी जड (Corm) उक्त विदेशी कडवे सुरंजानकी उत्तम प्रतिनिधि है। नीचे इसका तथा मीठे सुरंजानका वर्णन किया जा रहा है।

कडवा सुरंजान—

नाम—(हि०) कडवा सुरंजान, (फा०; भा० बा०) सूरिंजाने तल्ख, (फ०) सूरिंजान, (लै०) कॉल्चीकुम् ल्यूटेअम् (Colchicum luteum Baker), (अं०) कश्मीर या बिटर हर्मोडैक्टिल (Kashmir or Bitter Hermodactyl)।

उत्पत्तिस्थान—अफगानिस्तान, तुर्किस्तान और उत्तर भारतवर्षमें पश्चिमी हिमालयके समशीतोष्ण प्रदेशोंमें पहाड़ोंकी ढालपर घासोंके बीच तथा मुरीकी पहाड़ियोंमें कश्मीर और चंबा तक तथा पंजाबमें इसके पौधे उगते हैं। सूरंजान कडवा कश्मीरसे और सूरंजान मीठा ईरानसे यहाँ आता है।

वर्णन—यह एक कंद है, जो पीला और स्वादमें तिक्त होता है। मीठे सुरंजानसे यह निम्न बातोंमें भिन्न होता है—स्वादमें तिक्त, आकारमें उसकी अपेक्षया छोटा, रंगमें उससे गहरा और कंद जालीदार लकीरवाला होता है। बाजारमें इससे बनाई हुई गहरे भूरेरंगकी शुष्क रसक्रिया हरन तूतिया नामसे मिलती है। अफगानिस्तान और उत्तर भारतवर्षमें यह प्रसिद्ध औषधि है।

उपयुक्त अंग—कंदाकार भौमिक काण्ड (Corm) एवं बीज।

रासायनिक संगठन—कंद एवं बीजोंमें कॉल्चिसीन नामक कार्यकारी वीर्य (ऐल्केलॉइड)–कंदमें ०.२१–०.२५%, बीजोंमें ०.४१–०.४३% पाया जाता है। विदेशी सुरंजानमें यह अपेक्षाकृत अधिक परिमाण (०.५%)में पाया जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन और आमवात एव ववासीरमें विशेष गुणदायक है। इसको अधिकतया आमवात आदिमे लेप और मालिशकी भाँति उपयोग करते है। शोथोपर भी इसका लेप करते है। दीसकूरीदूसके मतसे समस्त प्रकारके सुरजानकी जड आमाशयके लिए अत्यत हानिप्रद है और खानेपर विषैले कुकुरमुत्तेकी भाँति यह गला घोटकर मार डालती है। इसलिए किसी-किसीने इसको कॉल्चिकुम् स्ट्रैंग्युलेलोरिउम् (Colchicum strangulalorium) नामसे अभिधानित किया है। (जिरार्ड-पा० न्यू० साइक्लोपीडिया पृ० ९०-९१)। इसी कारण यूनानी हकीम इसका खानेकी दवामें उपयोग नही करते, किन्तु आधुनिक अन्वेपणोसे यह प्रभावकारी एव निरापद प्रमाणित हुआ है। अत. पाश्चात्य चिकित्सामें प्राय इसीका उपयोग किया जाता है। अहितकर—यकृत् और आमाशयके लिए। निवारण—सोठ और कालीमीर्च। प्रतिनिधि—पीला सुरजान। मात्रा—१२० मि० ग्रा० से ३५० मि० ग्रा० (१ रत्ती से ३ रत्ती) तक।

नव्यमत—देशी कडुआ-सुरजान पचननलिकाका उत्तेजक है। इसलिए इससे वमन और रेचन होता है। यकृत्का उत्तेजक होनेसे पित्तका उद्रेक ठीक तरहसे होता है और वृक्कोत्तेजक होनेसे मूत्रकी राशि बढती है। बडी मात्रामें देनेसे दाह होकर मद (नशा-कैफ) चढता है और ग्लानि आती है। अल्प प्रमाणमे देनेसे जीवनविनिमय क्रिया सुधरती है। इसको सुगन्धिद्रव्योके साथ देना चाहिए। जीवनविनिमय क्रियाके बिगड़नेसे कभी-कभी सधियोमे क्षार सचित होता है तथा उनमे शोथ और असह्य पोडा होती है। रक्तवाहिनियोके मोटी होनेसे हृदय शिथिल होकर बढता है तथा उदर और शोथ होता है। मूत्र गाढा होता है और उसमे लाल रगके क्षार आते है। उक्त अवस्थामें कडुआ सुरजान देते हैं।

विदेशीय कडुआ सुरजान—आमवातघ्न, तीव्रविरेचन और वामक है। इसकी प्रसिद्धि बहुत करके तीव्र वातरक्त और आमवातिक विकारोमे इसकी उपयोगितापर निर्भर करती है। बहुधा किसी क्षारीय मूत्रलद्रव्यके साथ इसका योग करके उपयोग करते है। गुटिका रूपमे भी इसे देते है। अधिक मात्रामें सेवन करनेसे यह तीव्र विरेक आदि कराता है।

मीठा सुरजान—

नाम—(हिं०) मीठा सुरंजान, (फा०, भा० बाजार) सूरिंजाने शीरी, (लै०) मेरेंडेरा पर्सिका (**Merendera persica**), (अ०) स्वीट हर्मोडैक्टिल (Sweet Hermodactyl)।

उत्पत्तिस्थान—फारस।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पतिका प्रसिद्ध कन्द है जो सिंघाडेके मग्ज (गिरी)के सदृश होता है। इसमें तीन वर्ष तक औषधीय वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—इसमे भी अल्पप्रमाणमे एक प्रकारका क्षारोद होता है जो गुणकर्मकी दृष्टिसे अकार्यकर है।

कल्प तथा योग—खुलासा सूरजान शीरी, माजून सूरजान, सफूफ सूरजान, हब्ब सूरजान आदि।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे मलभूत द्रवसहित गरम और खुश्क। मतातरसे तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रमाथी, श्लेष्मविरेचनीय, संशमन, विलयन, वाजीकर और आमवातनाशक है। आमवात, वातरक्त और गृध्रसीमे इसका आतरिक रूपसे उपयोग किया जाता है। यह नपुसकता में भी प्रयुक्त होता हैं। श्वयथुविलयन और वेदनाशमनके लिए केसरके साथ इसका लेप करते है। माजूने सूरिंजान इसका प्रसिद्ध योग है जिसका आमवात, वातरक्त और गृध्रसीमे उपयोग करते है। अहितकर—यकृत् और आमाशयको। निवारण—कतीरा, शर्करा और केसर। प्रतिनिधि—मेंहदी आमवातके लिए। मात्रा—२ माशे से ३ माशे।

(६०९) सूरजमुखी

फैमिली : कॉम्पोजिटी (Family : Compositae)

नाम—(हि०; बं०) सूरजमुखी; (अ०) आजरयून (-फा० 'आजरगून' से अरबीकृत), (फा०) गुल आफताव परस्त, आफ्तावी, (सं०) सूर्यमुखी; (म०) सूर्यफूल, (यू०) हीलियोट्रोपिओन Heliotropion, (ले०) हेलिआन्थुस् आन्नुस् (Helianthus annus Linn); (अं०) सन-फ्लावर (Sun-flower), लेडी एलेविनओ'क्लॉक (Lady Eleven O' clock)।

वक्तव्य—चूँकि सूर्यमुखीका पुष्पव्यूह मण्डलाकार होता है और सूर्यके साथ घूमता और सदा सूर्यके अभिमुख रहता है अथवा पुष्पव्यूहमण्डकी रूपरेखा सूर्यमण्डलके अनुरूप होनेसे इसका संस्कृत नाम 'सूर्यमुखी' रखा गया है। इसके हिन्दी, बंगाली, फारसी और अँगरेजी आदि संज्ञायें इसीके समानार्थ हैं। लेटिन नाम भी इसी भाव पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिका। भारतवर्षके बगीचोंमे यह सौंदर्य हेतु लगाया जाता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध उद्यान पुष्प, बीज जो वस्तुत फल है, अपारदर्शक (Opaque), रंगमें सफेद, लट्वाकार (Ovate) या किंचित् पच्चराकृति (Wedge-shaped), शिरपर खण्डित (Truncate), किंतु उन्नतोदर, दो पार्श्वोंपर चिपटे जो मिलकर दो तीक्ष्ण तट (Margin) बनाते हैं। काले भेदके बीजका धरातल काले रंगका और चमकीला होता है तथा अपेक्षाकृत बड़ा और पतला होता है। जिसमें कभी-कभी लम्बाईके रुख काली धारियाँ होती है। इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नही होता है। बीज स्नेहमय एव गिरीकी भाँति तथा निर्गंध होता है। यहाँ इस बातका विवरण रुचिकर (मनोरञ्जक) होगा कि जेरूसलेम आर्टिचोक नामसे प्रसिद्ध पौधा जिससे मनुष्यके आहारके लिए आलूकी तरहका कन्द प्राप्त होता है, सुरजमुखी या हीलिआन्थुसका ही एक भेद है।

उपयुक्तअंग—बीज (फल)।

रासायनिक संगठन—इसमें क्लोरोजेनिक एसिड, पत्रमें कैरोटिन, लूटिन प्रभृति सत्व होते हैं।

कल्प—बीज, तथा तैल (० ६५ मि० लि० से १ मि० लि० या १० से १५ बूँद) या अधिक।

प्रकृति—दूसरे वा तीसरे दर्जेमे उष्ण एव रूक्ष, आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, कफोत्सारि। वायुप्रणाली, कण्ठ और फुफ्फुसविकारो तथा कास और सर्दी (शीत)में इसका (बीजका) सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इसके बीजोमें रहे तेलमे भी उक्त गुण पाये गये हैं तथा १०-१५ विन्दु या इससे अधिक मात्रामें इसे दिनमें दो या तीन बार तक दिया जा सकता है। मलेरिया (विषम ज्वर)में इसकी पत्तियोका उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियोके कोष्ण लेपसे सूजन उतरती है और दर्द आराम होता है। इसके रसका नस्य करनेसे मस्तिष्कका शोधन होता है। इसकी पत्तियोका काढा या फाट पीनेसे वमन होता है। कामोद्दीपनार्थ कमरपर इसके पत्तोका लेप करते है। ७ माशे इसकी पत्तियाँ पीनेसे पेटका बच्चा गिर जाता है और आर्तव आने लगता है। इसकी जडसे कुल्ली करनेसे दंतशूल और शिर शूल आराम होता है। गीलानीके कथनानुसार शीतप्रकृतिवालेके सिवाय अन्यको इसका सेवन उचित नही है। इसे योनिमें रखनेसे गर्भ गिर जाता है और वन्ध्याको गर्भधारणमें सहायता मिलती है। फूलमे इतर अंगकी अपेक्षया अधिक गर्मी है और अगद गुण भी है। यह यकृत् और मस्तिष्कगत अवरोधका उद्घाटन करता, तथा मस्तिष्कका शोधन करता, शिशुओकी मृगीको मिटाता और अश्मरी निकालता है। इसे सिरकेमें मिलाकर निरन्तर सात-दिन तक गृध्रसीपर लेप करनेसे घाव होकर लाभ होता है और यदि यह बहुत उष्ण नही होता तो मन प्रसादकर औषधियो-

में उच्च स्थान प्राप्त कर लेता। इसके फूलपर मक्खी नही बैठती। इसकी धूनीसे चूहा और छिपकली भाग जाती हैं। अहितकर–उष्णप्रकृति एव प्लीहाको। निवारण–सिकजवीन और मधु। प्रतिनिधि–चतुर्थ भाग केसर और डेवढा तज, मतातरसे बाबूना और बादावर्द। मात्रा–पत्तो, जड और फूलका रस ३½ माशे से १½ तोले तक, चूर्ण ४½ से ७ माशे तक। डॉक्टर कहते हैं कि इसके पेडका एक बडा लाभ यह होता है वहाँ मच्छर नही रहते।

●

(६१०) सूरन

फ़ैमिली : आरासे (Family · Araceae)

नाम—(हिं०) सूरन, जमीकद, (फा०) जमीकद, (स०) सू(शू)रण, अर्शोघ्न, ओल्ल, (ब०) ओल, (म०, गु०, बम्ब, कच्छ, कोक०) सूरण, (ले०) आमॉर्फोफाल्लुस् काम्पानुलाटुस् (**Amorphophallus campanulatus** Bl)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—सूरन एक प्रसिद्ध कन्दशाक है और भारतवर्षमें सर्वत्र इससे सभी परिचित हैं। कन्द शीर्षपर धँसा हुआ और १५ सें०मी० से २५ सें०मी० (६ इञ्च से १० इच) या इससे भी अधिक व्यास वाले गोलार्धके सदृश्य होता है। बागी या·ग्राम्य (लगाया हुआ) और जगली या वन्य (जगलमे स्वयजात) भेदसे यह दो प्रकारका होता है। सागके लिए ग्राम्य और औषधके लिये वन्य सूरनका उपयोग करना चाहिए।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—जमीकन्दमे आहारके गुण (पोषणत्व) कम होते है। यह सग्राही है, कफके विकार दूर करता है और फेफडोसे कफका उत्सर्ग करता है। कफविकार और अर्शके लिये यह विशेष गुणकारक है। इसको अकेला या मासके साथ पकाकर तथा अचार भी बनाकर खाते हैं। यह स्वादिष्ट एव पाचक होता है। बवासीरमे इसे बहुत गुणकारी बतलाया जाता है। श्वास और कासमे कफोत्सर्गके लिए पुराने गुड और नमकके साथ एक मिट्टीकी हाँडीमे कपडमिट्टी करनेके उपरात जलाकर बारीक पीसते और ४ रत्तीकी मात्रामें पानमें रखकर खिलाते हैं। अहितकर–आमाशयके लिये। निवारण–दही और गरम मसाला। प्रतिनिधि–रतालूऔर टिंडे।

आयुर्वेदीय मत—सूरन कटु, रुचिकर, दीपन, पाचन तथा कृमि, वात, शूल, गुल्म, अर्श, श्वास, कास और प्लीहाके रोग–इनमे गुणकारक है। (ध०नि०)। सुश्रुतने इसे गुदकीलहा (बवासीर-नाशक) कहा है। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—इसका साग खानेसे यकृत्की क्रिया सुधरती है, दस्त साफ होता है और अर्शांकुरो (मस्सो)की रक्तवाहिनियो (शिराओ)में सकोच पैदा होकर रक्त इकट्ठा नही होने पाता। अत खूनी बवासीरमें सूरण बहुत लाभ करता है। इसका 'अर्शोघ्न नाम' सर्वथा अन्वर्थक है।

●

(६११) सेव

फॅमिली रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०) सेव, सेव (-प०), (यू०) मिलिआ, (अ०) तुफ्फाह, (फा०) सेव, कतल; (सं०) सिम्बि-(ञ्चि)तिका, (क०) चूठ, (गु०) सफरजन, सफरचन्द, (म०) सफरचन्द, (का०) सूत; (सिं०) सुपु, सूफ; (क०) सेवु (वु), (व०) सेव, (लै०) मेलुम् पूमिला **Malus pumila** Mill (पर्याय–M **sylvestris** Hort., **Pyrus malus** Linn.), (अ०) एपुल (Apple) ।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष विशेषत कश्मीर, कुमाऊँ, गढवाल, काँगडा और पजाबादिमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं । यह अब सिंध, मध्यभारत और दक्षिण तक फैल गया है । कश्मीर और उत्तरपश्चिम हिमालयमें यह कही-कही जगली भी देखा जाता है ।

वर्णन—यह प्रसिद्ध सुगन्धित और स्वादिष्ट फल (मेवा) है । स्वाद खट्‌मिठा या मीठा । पका हुआ फल खाया जाता है ।

रासायनिक सगठन—इसमें अत्यधिक जल (८० प्रतिशत), ऐल्ब्युमेन, शर्करा, निर्यास, हरितरंजन द्रव्य, मैलिक एसिड, कैलसियम, विपुल प्रमाणमें फॉस्फेट्स प्रभृति उपादान होते हैं । बीजमे ऐमिग्डेलिन एव फ्लोरिजिन नामक ग्लूकोसाइड होते हैं ।

कल्प तथा योग—मुरब्बा, रुब्ब, शर्बत ।

प्रकृति—मीठा पहले दर्जेमें गरम और तर तथा खट्टा, पहले दर्जेमें सर्द और खुश्क है ।

गुणकर्म तथा उपयोग—मीठा सेव (सेवे शीरी) सौमनस्यजनन और हृद्य है, यकृत् और आमाशयको शक्ति देता और सौदावी अन्यथाज्ञान (वसवास)को दूर करता । यह शुष्ककासमे लाभ पहुँचाता है और आमाशयमें पित्तमें परिणत हो जाता है । सेव कुछ-कुछ काबिज भी होता है और रक्तातिसारमें खिलाया जाता है । खट्टा सेव (सेवे तुर्श) भी मन प्रसादकर, हृद्य तथा यकृदामाशयबलवर्धन है, कब्ज पैदा करता है, और छर्दि एव तृष्णाको शमन करता है । पित्त प्रकृतिके लोगोको सात्म्य है । यह पित्तज अतिसारमें खिलाया जाता है । हृदयबलोल्लासजनन, पित्तोल्वणता, रक्तोद्वेग और पित्तज अतिसारमें इसका रुब्ब (रसक्रिया) उपयोग किया जाता है । सेवका मुरब्बा और शर्बत हृदय एव आमाशयको शक्ति देने, वमनको रोकने और दस्तोको बन्द करनेके लिए प्रयुक्त होता है तथा हृत्स्पंदन और हृद्‌द्रवमें खिलाया और पिलाया जाता है । सेवका रस सौमनस्यजनन है और माजूनोमे सम्मिलित किया जाता है । यह हृदय, मस्तिष्क और प्राणशक्ति (रुहहैवानी)को विशेषरूपसे उल्लसित करने और बल देनेवाला है । अहितकर–विस्मृति, ज्वर और वायु (रियाह) उत्पन्न करता है । वक्षके लिए भी अहितकर है । निवारण–गुलकद, दालचीनी और मधु । मात्रा–सेवका मुरब्बा १ तोलासे २ तोले तक, शर्बत २ तोलेसे ४ तोले तक, रुब्बसेब (सेवका रुब्ब या सत) १ तोलासे १ ५ तोला तक ।

आयुर्वेदीय मत–सेब कषाय, मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, ग्राही, गुरु, बृंहण, कफकर, रुचिकर, शुक्रल और वातपित्तहर । (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०) ।

●

(६१२) सेम

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family · Leguminosae)

नाम—(हिं०; ब०) सेम, (सं०) शिम्बी, निष्पाव, (म०) वाल; (गु०) अवरि, (ले०) डॉलीकॉस लाबलाब (**Dolichos lablab** Linn), (अं०) फ्लैट बीन (Flat bean)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—एक प्रकारकी फली जिसकी तरकारी खायी जाती है। इसकी कई जातियाँ है। एक प्रकारकी फलियाँ आधे बित्ता तक लम्बी और लगभग एक अगुल चौडी होती है। पकनेपर इनके भीतरसे पिस्तेके बराबर चिकना बीज निकलता है।

रासायनिक सगठन—इसमें मासवर्धक द्रव्य (ऐल्बुमिनॉइड्स) तथा पिष्ट काफी प्रमाणमें होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे सर्द और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सेमकी फलियाँ अकेले या मासमे पकाकर खायी जाती है। ये आनाहकारक, विष्टभी, पित्तप्रकृतिवालेके लिए पथ्य और दद्रुघ्न एव वाजीकर है। अहितकर—वादी प्रकृतियोमें आनाह उत्पन्न करती है। निवारण—गरम मसाला और मास। प्रतिनिधि—अरवी।

आयुर्वेदीय मत—सेम कसैली, मधुर, पाकमे मधुर, शीतवीर्य, भारी, रुचिको दीपन करनेवाली, बलकारक, कफकारक तथा वातपित्त (भा०प्र०), कफपित्त (रा०नि०) और व्रणके विकारोको दूर करनेवाली है। (भा०प्र०;रा०नि०)।

●

(६१३) सेमल

फ़ैमिली : बॉम्बाकासे (Family Bombacaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) सेमर(ल), सेब(भ)ल(र), लाल सेमल, (सं०) शाल्मलि(ली), रक्तशाल्मली, मोचा, (द०) काँटोका सेमल (खत्यान), (ब०) शिमुल गाछ, (गु०) शेमलो, सी(शी)मलो, (म०) लाल सांवर, काँटे सामर, (प०) सिंबल, (ते०) बूरुग, (ता०) शालवघु, शल्लघि, (मल०) इलवम्, मुल्लिलवु, (ले०) बॉम्बॉक्स सेइबा **Bombax ceiba** L (पर्याय—बॉम्बॉक्स मालाबारिकुम् *B malabaricum* DC , साल्मालिआ मालाबारिकुम् *Salmalia malabaricum* Schott), (अं०) रेड सिल्क-कॉटन ट्री (Red Sik-cotton Tree)।

सेमलका मूसला या जड—(हिं०) मूसला(ली), सेमलमूसला, सेमलकद, सेमरका मुसरा, (सं०) शाल्मलीमूल (कन्द), (प०) सिंबलकी मूसली, (ब०) शिमुलकद, (गु) शेमल मुसली, (म०) शिमुल मुसली। सेमलका गोद—(हिं०) मोचरस, सुपारीका फूल, (फा०) गुलसुपारी, गुलेफ़ोफल, (सं०) मोचास्राव, (गु ,म०,क०,ते०, ता०,बम्ब०) मोचरस।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्णतर जगली प्रदेश। गाँवोके आस-पास, बगीचोमें तथा सडकोके किनारे यह लगाया भी जाता है।

वर्णन—यह पतझड़ करनेवाला एक बहुत बड़ा पेड़ है, जिसमें बड़े आकारके तथा मोटे दलोंके लाल फूल लगते हैं। इसके फलों या डोडोंमें केवल मुलायम रूई (सेमलकी रूई Silk cotton) होती है, गूदा नहीं होता। पत्ते एक-एक वृन्तपर पंजेकी भाँति ५-५, ६-६ लगे होते हैं। इसके एक-दो वर्षके छोटे पौधेकी जड़ निकालकर सुखा लेते हैं। यह मूसलासेमल या सेमल मूसला (सेमल मूसली)के नामसे औषधमें प्रयुक्त होती है। इसका गोंद (मोचरस) भी औषधके काम आता है। सेमल सफेद फूलका भी होता है, जिसे लैटिनमें सेईबा पेंटाड्रा Ceiba pentandra (L.) Gaertn (पर्याय–*Eriodendron anfractuosum* DC) और संस्कृतमें 'कूटशाल्मली' कहते हैं। लालफूलवालेकी अपेक्षया इसमें काँटे बहुत कम होते हैं। गुणकर्म भी सेमलके समान है।

उपयुक्त अंग—मोचरस, फूल एवं मूल (सेमलमूसला)। मात्रा–मोचरस १.५ ग्राम से ३ ग्राम (१½ माशा से ३ माशा), मूसली सेमल ३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)।

रासायनिक संगठन—मोचरसमें टैनिक अम्ल (Catechu-tannic acid) और गैलिक अम्ल (Gallic acid) होता है। बीजमें २२.३% तेल होता है। मूसलोंमें प्रोटीन १.२%, वसामय पदार्थ ०.१, फास्फेटाइड ०.३, टैनिक ०.४, गैलेक्टोज ८.२, स्टार्च ७१.२% तथा सेमुल रेड ०.५% होता है।

मूसली सेमल प्रकृति—मलभूत द्रवसहित पहले दर्जेमें गरम और तर। आयुर्वेदके मतसे सेमल शीतवीर्य एवं स्निग्ध (रा०नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शुक्रल, बृंहण और विशेषकर वाजीकर है। इसको अधिकतया बलवर्धन, वाजीकरण, शुक्रजनन और वीर्यपुष्टिके लिए वाजीकर एवं शुक्रसान्द्रकर माजूनों तथा चूर्णोंमें डालते हैं। वाजीकरण और शरीरबलवर्धनके लिये एक तोला सेमलके मूसलेको चूर्ण करके और आध पाव जलमें उसका लवाब निकालकर तथा एक तोला मिश्री मिलाकर चालीस दिन तक प्रतिदिन पीते रहना और सेवनकालमें वादी, अम्लद्रव्य और मैथुनसे परहेज रखना गुणदायक है। अहितकर–स्निग्ध प्रकृतियोंको। निवारण–चीनी और सतावर। प्रतिनिधि–प्राय गुणकर्मोंमें सालममिश्री और ढाकाफुल। मात्रा–७ माशेसे १ तोला तक।

नव्यमत—यह उत्तेजक एवं बल्य है तथा नपुंसकतामें प्रयुक्त होता है।

मोचरस—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (भा०प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग–संग्राही, उपशोषण और विशेषकर शुक्रस्तम्भन एवं वीर्यपुष्टिकर है। उक्त गुणकर्मोंके कारण इसको अकेले या अन्य औषधियोंके साथ अतिसार, शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, मूत्रातीत, अतिरज और योनिस्रावमें चूर्ण या माजूनके रूपमें उपयोग करते हैं। संग्राही होनेके कारण दाँतोंको दृढताके लिये इसे चूर्णोंमें डालते हैं। पारदसेवनजनित मुखपाकमें क्वाथसे कुल्ली कराते हैं। अहितकर–दीर्घपाकी एवं सान्द्रदोषजनक। निवारण–गरम मसाला और दालचीनी। मात्रा–३ माशेसे ५ माशे तक।

कल्प तथा योग—माजून मोचरस।

आयुर्वेदीय मत—सेमल रसमें मधुर तथा कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध, पिच्छिल, पुरीषविरजनीय, वृष्य, बल्य, शुक्रवर्धक, कफवर्धक तथा पित्त, वात, रक्तविकार और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है। (च०सू०अ० ४, ध०नि०,रा०नि,भा०प्र०)। सेमलके फूल और फल भी पूर्वोक्त गुणवाले हैं। (ध०नि०)। मोचरस कषाय, शीतवीर्य, ग्राही, स्निग्ध, वृष्य, शोणितस्थापन, वेदनास्थापन तथा प्रवाहिका, अतिसार, आम, कफ, पित्त, रक्तस्राव और दाहका नाश करनेवाला है। (च०वि०अ० ८; सु०; भा० प्र०)।

नव्यमत—मोचरस प्रवल सग्राहक परन्तु स्नेहन है। सेमलमुसली सग्राहक, पौष्टिक और वय.स्थापन है। जननेन्द्रियपर इसकी थोडी उत्तेजक क्रिया होती है। कच्चे फल उत्तेजक, मूत्रजनन और कासहर है। मूत्रेन्द्रियपर इसकी क्रिया पाठाके समान शामक होती है। जीर्ण अतिसार, सग्रहणी, आँव और अत्यार्तवमें मोचरस उपयोगी है। वाजीकर, स्निग्ध, रक्तस्तम्भक, ग्राही, बल्य, रसायन है तथा प्रवाहिका, अतिसार और आर्तवस्रावमें दिया जाता है।

●

(६१४) सेवार

फ़ैमिली : हीड्रोकारिटासे (Family : Hydıocharıtaceae)

नाम—(हिं०) सि(से)वार(ल), सेंवाल, कजाल, (अ०) तुहलुब; (स०) शैवाल, (गु०) जलसरपोलियन (लै०) वाल्लीसनेरिआ स्पीरालिस (**Vallisneria spiralıs Linn**), (अ०) सी-वीड (Sea-weed)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—काईसे भिन्न एक घास जो समस्त भारतीय नदियो, झीलो आदिके भीतर और कम बहते पानीमें हरे रगके लम्बे-लम्बे तारकी भाँति पृथक्-पृथक् खडी होती है। इसकी जड मिट्टीके अन्दर होती है और इसमें बडा बसायँध होती है। यह कई प्रकारका होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह दीपन है तथा श्वेतप्रदरमें गुणकारी है। इसको जलाकर सरसोके तेलमें मिलाकर हाथ-पाँवकी सफेदीपर लगानेसे रग दुरुस्त होता है। यह दोषका पाचन करता है, शोथको विलीन करता और सूजाकके लिये सिद्ध भेषज है। इसका लेप रक्तस्रावको बन्द करता है।

वक्तव्य—र्‌होडोफीसे (**Rhodophyceae**) कुलका जापानमें होनेवाला जेलीडिडम् आमान्सी (**Gelidium amansii** Kurz) नामक जलीय उद्भिद एक प्रकारका सेवार ही है जिससे जापानी आइसिंग्लास या अगर-अगर—'उद्भिज्ज सरेस' प्राप्त होता है। इसी प्रकार चीनी घास (**Gelidium cartilagineum** Gaıl) भी एक प्रकारका सेवार है जिससे 'सरेस' प्राप्त होता है। दे० 'सरेश'। अगर (उद्भिज्ज सरेश) एक प्रकारका सुखाया हुआ लवाबदार वस्तु है जिसे उबलते हुए पानीके साथ निचोडकर और तारकी जालीके द्वारा बलपूर्वक दबाकर पट्टिकाओके रूपमें बनानेके बाद सुखाकर प्रस्तुत किया जाता है। ये पट्टिकायें (पट्टियाँ) पतली, झुर्रीदार, अर्ध-स्वच्छ (अर्धपारदर्शक), लगभग ½ इञ्च चौडी, ९ या १० इञ्च या इससे भी अधिक लम्बी अथवा लगभग एक इञ्च व्यासके चौकोर डंडोके रूपमे रगरहित और स्वादरहित होती है। ये जेलीके रूपमें परिणत होनेमे अपने आयतन (घनफल)से दुगुना पानी लेनेके योग्य होती है।

उपयोग—पोषणार्थ।

●

(६१५) सोंठ और अदरक

फ़ैमिली : ज़ींजीबेरासे (Family : Zıngiberaceae)

नाम—अदरक (हिं०) आदी, अदरक, (यू०) ग्जीग्जिबेरिस Gzıggıberıs, जँगेबर; (अ०) अल् जजबील (इ० वैं०) जजबीले रतब, (फा०) जजबीले तर, ज़जबर, श(शि)गबीर, (स०) शृङ्गवेर(सु०), आर्द्रक, विश्वभेषज (च०), (द०) अद(घ)रक, इजिवेर-(प्राचीन), (कु०) आदी, (ब०) आदा, (गु०) आदु, (म०) आलें;

(लै०) जिंजीबेर ऑफ्फीसिनाले (**Zingiber officinale** Rosce), (अं०) ग्रीन जिंजर (Green Ginger), जिंजर (Ginger)। सोंठ (सुखाया हुआ अदरक)—(हिं०) सोंठ; (अ०) जंजबील, जंजबीले याबिस, (फा०) जंजबीले खुश्क, (सं०) शुण्ठी, विश्वौषध, शृङ्गवेर, नागर, विश्वभेषज, (द०) सोंट, शुँठ, (म०) सुंठी, (गु०) सुंठ (बं०, पं०) सोंठ, (अं०) ड्राइड जिंजर (Dried **Ginger**)।

वक्तव्य—इसकी लैटिन संज्ञा 'जिंजिबेर' इसकी यूनानी संज्ञा 'जैंगेबर' से और वह इसकी पुरानी फारसी संज्ञा 'सिंगवेरसे' और वह इसकी संस्कृत संज्ञा 'शृंगवेर' से, तथा इसी प्रकार इसकी अरबी संज्ञा जंजबील भी इसकी पुरानी फारसी या उसकी संस्कृत संज्ञासे व्युत्पन्न है। अस्तु, अपनी संकलित उम्दतुल् मुहताज नामक रचनामे डॉ० सय्यद अहमद आफंदीने 'जजबील' को हिंदी नाम बतलाका है। परन्तु पिंजिइकीनामाके संकलयिता जनाब नाजिमुल्अतिब्बा महोदय प्राय यूरोपीय संकलनकर्ताओं एवं लेखकोंकी भाँति जजबीलको यूनानी संज्ञा 'जैंगेवर' से व्युत्पन्न बतलाते है। पर सत्य यह है कि इसकी फारसी, अरबी और यूनानी सभी संज्ञायें इसकी संस्कृत संज्ञासे व्युत्पन्न है।

विशेष टिप्पणी—'सोंठ' का व्यावसायिक रूप से वृहत् परिमाण में उत्पादन दक्षिण भारतमे विशेषत पश्चिमी क्षेत्रों (केरल आदि)मे किया जाता था। आज भी सोंठका मुख्य उत्पादन क्षेत्र यही है। संस्कृत 'शृङ्गवेर' संज्ञाभी वास्तवमें, सोंठकी दक्षिणभारतमें प्रचलित पुरानी व्यावसायिक संज्ञा 'इंजिवेर Ingiver' से प्रभावित प्रतीत होती है। संस्कृत 'शृङ्गवेर'मे भी 'वेर = मूल' तामिल भाषाका शब्द प्रतीत होता है।

इतिहास—अदरक या सोंठकी खेती भारतवर्षमे अतिप्राचीन कालसे होती है। अस्तु, संस्कृत वैद्यकीय ग्रन्थोमें इनकी अनेक संज्ञायें मिलती है। पुरानी फारसी भाषामें 'शिंगहर' और 'अदरक' ये उभय संज्ञाये पायी जाती हैं जिनका आरोप सोंठ पर होता है और कदाचित् यूनानियोंको सर्वप्रथम ईरानियो के माध्यमसे ही उक्त औषधिका ज्ञान हुआ। क्योंकि इसकी यूनानी संज्ञा 'जैंगेबर' इसकी संस्कृत 'शृंगवेर' से इसकी पुरानी फारसी संज्ञाकी रचनाके अनुसार बना ली गई है। अरबो को भी कदाचित् ईरानियोसे ही इसका ज्ञान हुआ। सुतरां यूनानी हकीम दीसकूरीदूस इसको उष्ण, दीपन, पाचन और किंचित् सारक लिखते है। प्लाइनीने भी इसका उल्लेख किया है। जालीनूस ने इसको अगघात और समस्त श्लैष्मिक रोगोमे लाभकारी बतलाया है। हकीम पॉलूस वातव्याधियो और वातरक्तमें, इब्नसीना और अन्य अरबी एवं अजमी चिकित्सकों ने इसके गुणकर्म वर्णनमें लगभग यूनानियोका अनुकरण करते हैं। अलबत्ता उन्होंने केवल इतनी वृद्धि की है कि वे इसको वाजीकर भी बतलाते है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के गरम-तर भागोमें यह विपुल होता है। जमैइकाका जिंजर सर्वोत्तम होता है।

वर्णन—यह हलदीकी जातिके एक गुल्मकी प्रसिद्ध जड़ (पावाली धड) हैं। ताजी जडको 'अदरक' या 'आर्दा' और सुखाई हुई जडको 'सोंठ' कहते है। इसका रंग भूरा, स्वाद कटु सुगन्धियुक्त, गंध विशिष्ट, छिलका उतारा हुआ और विशेष विधिमे बनाया हुआ सफेद और ततुरहित सोंठ, हिन्दीमे सतुआ सोंठ, मैदा या बेंतरा सोंठ, अरबीमे 'जजबील सतवा' और बंगला मे '(भुशुरी शुँठ)' कहलाता है।

रासायनिक संगठन—अदरकमे १% से ३% एक प्रकारका विशेष गन्धी और हलके पीले रंगका उत्पत् तेल होता है। यह भारतीय अदरकमें सर्वाधिक अर्थात् ३ ५% तक होता है। इसका कटुसार यथेष्ट प्रमाणमें बाष्पीभूत न होनेसे तेलमे नहीं पाया जाता। यह पृथक कर लिया गया है और इसका नाम जिंजेरिन (Gingerin) या जिंजेरोल (Gingerol) रखा गया है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे ताजा सोंठ अर्थात् अदरक तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमे खुश्क है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०) है। सोंठ मलभूत द्रव सहित तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमे खुश्क (मतांतरसे दूसरे दर्जेमे गरम व खुश्क) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, बुद्धिस्मृतिवर्धक, वाजीकर, आहारपाचन और वातविलयन है। श्लेष्मप्रकृतिके लोगोके लिए सोठ परम गुणदायक औषध है। इसे प्राय आमाशयिक रोगो, जैसे–उदरानाह, उदर-शूल, अरुचि आदिमें उपयोग करते है, वाजीकर माजूनोमें सम्मिलित करते है या मुरब्बा बनाकर खाते है। मरोड उत्पन्न करनेवाली ओषधियोके साथ सम्मिलित करनेसे यह उनके उक्त अवगुणका परिहार करता और मरोड नही उत्पन्न होने देता है। बाह्यत सर्द दर्दोंमे इसे उपयुक्त तेलोमें मिलाकर मालिश करते है। जुवारिश जंजबील, मुरब्बा जजबील और माजून जजबील इसके प्रसिद्ध योग है जो कफज रोगो, विशेषत मन्दाग्नि, विस्मृति, पृष्ठशूल, नपुसकता और योनिस्रावमें प्रयुक्त होते और लाभ करते है। अहितकर–कण्ठरोगोके लिए। निवारण–बादामका तेल और मधु। प्रतिनिधि–पीपल। मात्रा–१ ग्राम से १५ ग्राम (१ माशा से १५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सोंठ कटु, मधुरविपाक, किंचित् स्निग्ध, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, रोचन, हृद्य तथा कफ और वातनाशक है। अदरक कटु, उष्णवीर्य, स्वरको हितकर, रोचन, वृष्य, दीपन तथा विबन्ध, आनाह और शूल-को दूर करनेवाला है। वात, कफ और विबन्धमें अदरकका रस देना चाहिए। (च० सू० अ० २७, सु० सू० अ० ३८, ४६)।

नव्यमत—सोठ सुगन्धित, उष्ण, वातनाशक, सकोचविकासप्रतिबन्धक, उत्तेजक और कफघ्न है। सोठसे पाचनक्रिया उत्तम होती है और उदरमे वायुका सचय नही होता। सब प्रकारकी पीडाको शात करनेके लिए सोठका उपयोग करते है। जीर्ण सधिशोथमे एक तोला सोठका फाट रातको सोते समय पीनेसे नीद आती है। उदराध्मानके कारण छातीमें दर्द होता है तो सोठ देनेसे वायु सरता है और छातीकी पीडा शात होती है।

●

(६१६) सोम (सोमकल्प-एफीड्रा)

फैमिली : ग्नेटासे (Family Gnetaceae or Ephedraceae)

नाम—(हिं०) टुटगठा (चकरौता), (प०) असमानीबुटी, (क०) असमानिया, (बुशहर) खड फाग, (ईरान) होम, (स०) सोमकल्प—(नवीन), (चीन) मा-हुआग, (लै०) (चीनी)—एफीड्रा सिनिका (**Ephedra sinica** Stapf) या एफीड्रा इक्वीसेटिना (**E. equisetina** Bunge), (भारतीय) एफीड्रा जिरार्डिएना **E. gerardiana** Wall. (पर्याय–ए० वुल्गारिस *E. vulgaris* Hook), (अ०) एफीड्रा (Ephedra)।

उत्पत्तिस्थान—प्रथम दोनो उत्तरी चीनके निवासी है और अन्तिम समशीतोष्ण हिमालयके अपेक्षाकृत शुष्क प्रदेश कश्मीरसे सिक्किम तक ७,०००-१६,००० फुटकी ऊँचाईपर होते है।

वर्णन—इसका छोटा और भगुर क्षुप होता है। शाखायें हरी, खडी और रेखायुक्त; पत्र अल्प, पुष्प अवृन्त मंजरीके रूपमें, स्वाद कषाय, सुगधित। पारसी लोग अपनी धार्मिक क्रियामें अब तक होम (सोम)के नामसे इसका प्रयोग करते है।

उपयुक्त अग—क्षुप (समग्र क्षुप)।

कल्प—चूर्ण ०.६ ग्राम से १.२ ग्राम (५ से १० रत्ती); अर्धावशेषक्वाथ २३ ग्राम से ४६.८ ग्राम (२ से ४ तोला)।

रासायनिक संगठन—इसका प्रधान वीर्य एफीड्रीन (Ephidrine) नामक एल्केलॉइड है जो गुण-कर्ममे ऐड्रीनलीनके समान होता है और ० २८%से २ ७९%तक पाया जाता है।

कल्प तथा योग—तरल रसक्रिया, सुरासव, काड और मूलका क्वाथ, फलका स्वरस, एव एफीड्रीन।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सोम पाचन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, आमनाशक, वातहर, शोथहर, मस्तिष्कोत्तेजक, तारकाविस्फारक और श्वासावरोधको कम करनेवाला है। चीनमें श्वास और तृणज्वर (Hay fever)के लिए अतिप्राचीनकालसे इसका उपयोग हो रहा है। अधुना भारतवर्ष ही क्यो, समस्त संसारमे उक्त रोगोमें इसके विभिन्न कल्पो तथा एल्केलॉइड (ऐफीड्रीन)का नानाविध प्रयोग होता है और श्वासकी यह अव्यर्थ रामबाण औषधि समझी जाती है। सोमका काढा तरुण आमवातमे देनेसे पीडा और शोथ कम होता है, भूख बढती है, मूत्रकी राशि बढती है, दस्त साफ होता है और ज्वर उतरता है। थोडा उत्तम मद्य पीनेसे जैसी मस्तिष्कमें उत्तेजना प्रतीत होती है वैसी इसमें भी प्रतीत होती है, परन्तु नशा नही होता है।

•

(६१७) सोया, सोआ

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) सोया, सोआ(वा), (यू०) अनीथून Anethon , (अ०) अल्‌शिब्त(इ०, वै०) शिबित्त, शिब्बित्त, (फा०) शूद, शूत, बालानेखुर्द, (स०) शतपुष्पा, अतिच्छत्रा, शताह्वा, (व०) शुल्फा, शुलुफा, (गु०, प०) सुवा, (म०) शेपु, (सि०) सूआ, (मा०; सिंध) सोवा, (ले०) आनेथुम् सोवा **Anethum sowa** Kurz. (पर्याय–*Peucedanum sowi Kurz*), (अ०) डिल (Dill)। वक्तव्य–इसके विलायती भेदको आनेथुम् ग्रावेओलेन्स (**A graveolens** Linn) कहते है। फल (जिसको व्यवहारमें 'बीज' कह देते हैं)–(हिं०) सोयेके बीज, (अ०) समरुश्शिबित्त, बज्रुश्शिबित्त, फा० तुख्म शिबित्त(शब्रित), तुख्मेसूद,(ले०) एनेथी फ्रुक्टुस (Anethi Fructus), (अ०)डिल फ्रूट या सीड (Dill Fruit or Seed)। तेल (हिं०) सोयेका तेल, (अ०) दोहनुश्शिबित्त, (फा०) रोगनशबित (शिबित्त), (ले०) ओलेउम् एनेथी, (Oleum Anethi), (अ०) ऑयल ऑफ डिल (Oil of Dill)।

वक्तव्य—इसकी वर्तमान डॉक्टरी लेटिन सज्ञा 'एनीथम्' इसकी यूनानी सज्ञा 'अनीथून' से और इसकी अँगरेजी 'डिल' सज्ञा इसकी प्राचीन आँग्ल सज्ञा 'डल्ला' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'शान्ति प्रदान करना' या 'थपकी देकर सुलाना' है। इस औषधिके सेवनसे उदरस्थ वायुका निर्हरण होकर शान्ति मिल जाती है तथा छोटे बच्चोको नीद आ जाती है, इसलिए इसका उक्त नामकरण किया गया। मुहीतके अनुसार प्राचीन यूनानी चिकित्सक नीद लानेके लिए हरे सोयेका मुकुट (टोपी) बनाकर सिरपर रखा करते थे। इसकी हिंदी और उर्दू सज्ञा 'सोया' भी इसकी वैसी ही गुणप्रकाशिका सज्ञा है, क्योकि भारतीय वैद्योके कथनानुसार इसके सूँघनेसे नीद आती है। इसलिए भारतवर्षमें प्राय स्थानोमे ऐसा करते है कि जब रोगीको नीद नही आती तो उसके सिरहाने 'हरा सोया' रखते है जिससे उसकी गन्धसे नीद आ जाय। इसकी अरबी सज्ञाका सही उच्चारण 'शिबित्त' है जैसा कि कामूस और मिस्बाहमें उल्लिखित है। परन्तु दाऊद अताकीने तथा उसका अनुसरणकर अन्य लेखको, यथा–मुहीत आजमके लेखक हकीम आजम खाँ आदिने 'शिबत' लिखा है। पता नही उसके इस उच्चारणका आधार क्या है ?

इतिहास—यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'अनीतून' या 'अनीथून' नामसे इसका उल्लेख किया है। बहुशः यूनानी लेखक अनीथून और अनीसूनको अभिन्न मानते रहे। परन्तु अँलेक्सिसने इनमे भेद व्यक्त किया।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय एव दक्षिणी रूसका आदिवासी है। समस्त भारतवर्षके उष्ण प्रदेशोमें प्रायः इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह ३० सें० मी० से ९० से० मी० (१ से ३ फुट) ऊँचा क्षुप होता है, जिसके पत्ते सौंफके पत्तोके समान, किन्तु उनसे छोटे और सुगधित होते हैं। फूल सौफकी तरह छत्रको (Umbels)में लगते हैं। फल (बीज) सौफके समान, किन्तु उनसे बहुत छोटे होते है। उनकी चौड़ाईमें दोनो ओर एक पर-जैसी बारीक झिल्ली लगी होती है।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरी और दक्षिणी रूसका निवासी है। समस्त भारतवर्षके उष्ण प्रदेशोमें प्राय. इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह ३० से० मी० से ९० से० मी० (१ से ३ फुट) तक ऊँचा क्षुप है, जिसके पत्ते सौंफके पत्तोके समान, किंतु उनसे छोटे एव सुगन्वित होते हैं। फूल सौंफकी तरह छत्रको (Umbels) में लगते है। (बीज) फल सौफके बीजके समान किंतु उनसे बहुत छोटे एव चपटे होते है। उनको चौडाईमें दोनो ओर एक पर जैसी बारीक झिल्ली लगी होती हैं। यह विलायतीकी अपेक्षया कम चौडा और अधिक उन्नतोदर, पाडुर, व्यक्त रिढारी (Ridges) और तले पक्षयुक्त, स्वाद किंचित् तिक्त एव तीक्ष्ण और सुगन्धित होता है।

उपयुक्त अग—पत्र, बीज (फल) और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक सगठन—बीजमे ३-४% एक उत्पत् तेल (तथा एक अनुत्पत् तेल) जिसपर इसकी सुगंधि एव कर्म निर्भर करता है। यह विलायतीके समान नही होता। इसके अतिरिक्त इसमे एपिओल (Dill apiol) भी होता है।

पत्र—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हरे धनियेकी तरह सोएके पत्तोको सुगन्धके लिए तरकारीमे डालते हैं। यह आहारको पचाता और वायुका उत्सर्ग करता है। अतएव उन रोगियोके आहारमे इसका डालना अधिक उपादेय है जो उदरशूल, उदरानाह और मरोड आदिसे ग्रस्त हो। कतिपय दर्दों और सूजनोमें इसका बफारा देनेसे दर्द शात हो जाता है। यह विशेप रूपसे पाचन, विलयन और आर्तवजनन है। अहितकर—मस्तिष्क, नेत्र और वृक्क को। निवारण—नीबूका रस, लौंग, दालचीनी और मधु। प्रतिनिधि—सोएके बीज।

बीज (सोआ) और तेल—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे तीसरे दर्जेमे, मतातरसे दूसरेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (ध० नि०, या० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बीज वेदनास्थापन, वातानुलोमन, व्रणशोथपाचनविलयन, छर्दिजनन एव मूत्रार्तवजनन हैं। इसके बीजोको तिल या जैतूनके तेलमें मिलाकर सधिवातमे लेप या मालिश करते है तथा जलमें क्वाथ करके वेदनायुक्त अगोको बफारा देते है और इसके कोष्ण काढेमें कपड़ेकी गद्दी भिगो-भिगोकर टकोर करते हैं। उदरानाह, उदरशूल, शूल (कुलज) एव अपचन वा मन्दाग्निको नष्ट करनेके लिए इसे खिलाते हैं। मूत्रार्तवजननके लिए भी इसका उपयोग करते है। कफज रोगोमे वमनार्थ इसका क्वाथ पिलाते हैं। वायुजन्य (रीही) वृक्कशूल, मरोड और जरायुशूलको नष्ट करनेके लिए इसके काढेमे रोगीको बिठाते हैं। इसके बीजोसे निकाला हुआ तेल उदरानाह, शूल और मरोडको नष्ट करनेके लिए, प्रयुक्त होता है। कर्णशूलनिवारणके लिए इसे कानमें टप-

काते हैं और पक्षवध, अर्दित, आमवात तथा वातनाडी शूलमें मालिश करते हैं। अहितकर–मस्तिष्क, दृष्टि और कामको। निवारण–सिकजवीन और अम्ल द्रव्य। मात्रा–२ माशेसे ३ माशे तक, सोयाका तेल एक बूँदसे ३ बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—सोया कटु, तिक्त, स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन, पित्तकर, बस्तिकर्मोपयोगी तथा कफ, वायु, ज्वर, नेत्ररोग, शूल और व्रणको दूर करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—सोया दीपन, वातहर और गर्भाशयोत्तेजक है। प्रसूता स्त्रीको सोया देते हैं। क्योंकि पेटके दर्द और अफारेमें सोयाका अर्क (Dill water), सुधामण्ड (Lime water) के साथ देते हैं। ताजी पत्ती पीसकर व्रण-शोथ पकानेके लिए लेप करते हैं।

●

(६९८) सोयाबीन

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family Leguminosae)

नाम—(हिं०) राम कुरथी, सोया(आ)बीन, भट, भटना(वाँ)स, (सं०) द्विजशत्रु (ब्राह्मणोके लिए असेवनीय), (कुमा०) भुट, (लै०) ग्लीसीने माक्स Glycine max Linn (ग्ली० सोजा G. soja Sieb.; ग्ली० हिस्पिडा (G. hispida Moench); (अं०) सोयाबीन्स (Saya or Soy-beans); सोजा (Soja), जापान पी (Japan pea)।

उत्पत्तिस्थान—मूल उत्पत्तिस्थान चीन है। कोचीन, कोरिया, मचूरिया, मगोलिया, जापान और जावा आदि पूर्वी एशियाई देशोंमें यह बहुत प्राचीन कालसे उत्पन्न होता है। चीनके प्राचीन साहित्यमें इसका नाम 'सोया' या 'सोजा' लिखा है। इसीका रूपान्तर 'सोयाबीन' है।

वर्णन—सोयाबीनकी बेल मटरकी बेलके समान और इसकी पत्ती भी मटरकी पत्तीसे मिलती-जुलती, किन्तु रोईदार होती है। इसकी प्रत्येक फलीमें २ से ५ तक बीज होते हैं। इसके बीज मटरकी तरह गोल, अण्डाकृति, परन्तु बीचमें चिपटे और-पाडुपीतसे लेकर काले रग तक-कई रगोके होते हैं। इनके दल चर्मवत् त्वचासे आवृत होते हैं। गध हलका, स्वाद स्नेहमय।

रासायनिक सगठन—इसमें फॉस्फेट्स काफी मात्रामे होता है। इसके अतिरिक्त इसमे एक लेसिथिन नामक यक्ष्योपयोगी पदार्थ तथा प्रोटीन भी होता है। इसकी प्रोटीन गायके दूधकी प्रोटीनसे मिलती-जुलती है। शरीरको पुष्ट करनेवाले जितने अन्न, फल, शाक, भाजी, मास, मछली, आदि पदार्थ हैं, इनमें जो पोषकतत्त्व पाये जाते हैं, सोयाबीनमें रहनेवाले पोषकतत्व इन सबसे कही विशेष पौष्टिक एव उपयोगी हैं। मासके विपरीत इसके मिहिकाम्लोत्पादक (Uric acid) 'न्युक्लियो प्रोटीन' नही होती है।

उपयुक्त अग—बीजोत्थ तैल, बीजोका आटा।

कल्प तथा योग—दूध, दही आदि।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शरीरपुष्टिकर, बल्य, शुक्रवर्धक, उडदसे कही अधिक कामशक्तिवर्धक है। बीजोसे तेल निकालनेके बाद जो आटा बच रहता है, उसमे प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट्स तो पाये जाते हैं, किन्तु स्टार्च (Starch)का सर्वथा अभाव होता है। अस्तु, खाद्याद्य पदार्थों विशेषकर मधुमेहियोके खाद्य पदार्थोके निर्माणमें

इसका उपयोग होता है तथा यह (सोयाबीन) उनके लिए एक उत्तम पथ्य है। पित्तके विदग्ध होनेसे हुए अजीर्ण अम्ल-पित्त आदि उपद्रवोमे सोयाबीनके सेवनसे विदग्ध पित्त शमन होकर उक्त रोगोका निर्मूल होता है। सोयाबीन शरीर मे क्षारकी मात्रा बढाकर अम्लताको नष्ट करता है। यह रक्तमें क्षारतत्व उत्पन्नकर रोगप्रतिषेधक शक्ति उत्पन्न करता है। अमेरिकामें शिश्वाहारके रूपमे ग्रीष्मातिसार और तत्सम रोगोमें इसके सेवनकी अभ्यर्थना की जाती है। गेहूँमें बीस प्रतिशत सोयाबीन मिला देनेसे उसमे सुधा (कैल्सियम)की मात्रा बढ जाती है तथा प्रोटीनकी पाचकता भी बहुत बढ जाती है। इस तरह मिलाया हुआ आटा और उससे बने हुए पदार्थ अधिक दिन तक टिकते है। तेल खाद्य एव साबुन बनानेके काममें आता है।

●

(६१९) सौफ

फैमिली . ऊम्बेल्लीफ़ेरी (Family Umbelliferae)

नाम—(हिं०) सौफ, (यू०) Marathron (D 3 74); (अ०) अल् राजियानज (इ० बै०), (फा०) वादियान, राजियान , (स०) मिश्रेया, मधुरिका, मिशी(शी), (क०) बादयान; (व०) मौरी, (म०) बडिशेप, (गु०) बरिआली, वलियारी, (सि०) वडफ, (मा०) सूफ, विटियाली, (लै०) **फेनीकूलुम् वुल्गारे (Foeniculum vulgare** Mill), (अ०) फेनेल फ्रूट या सीड (Fennel Fruit or Seed)। जड़ (हिं०) सौफकी जड, (अ०) अस्लुर्रा ज़ियानज, (फा०) बेखे वादियान।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह १ ५ से २ मीटर (५ फुट से ६·५ या ६½ फुट) ऊँचा, सोयेकी तरहके एक क्षुपके प्रसिद्ध फल (वा बीज) हैं, जिनकी रगत हरापन या पीलापन लिए होती है। गन्ध प्रिय और स्वाद सुगंधित एव मधुर होता है। जडका रग पिलाई लिए सफेद होता है। इसके विदेशी भेदकी वैज्ञानिक सज्ञा **फेनीकूलुम् कापीलासेउम् (Foeniculum capillaceum)** है। विदेशी सौफ भारतीयकी अपेक्षा बडा होता है। इसलिए उसको बड़ा सौंफ भी कहते है। सौफकी एक जातिके बीज ईरानसे आते है। उनको **'अनीसून'** या **'वादियान रूमी'** कहते है। वि० दे० 'अनीसून'।

इतिहास—बुकरात, दीसकूरीदूस और सावफरिस्तुस प्रभृति यूनानी तथा इस्लाली भारतीय आर्यवैद्योने भी इस दवाका उल्लेख किया है।

रासायनिक सगठन—बीजमें लगभग ३% से ५% एक सुगन्धित उत्पत्तेल, जिसका प्रधान उपादान **एनीथोल** (Anethol) या **एनिस कैम्फर** है, पाया जाता है।

कल्प तथा योग —अतरीफल वादियान, अर्कबादियान, सफूफ अस्लुस्सूस मुरक्कब।

सौफ—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहलेमें खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—सौदाश्लेष्मपाचन, प्रमाथी, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन, स्तन्यजनन, विशेषकर दीपन एव दृष्टिवर्धक है तथा साद्र दोषोके किवामको प्रकृतिस्थ करता है।

उपयोग—सौदा तथा कफजन्य रोगोमे सौदाश्लेष्मपाचनके निमित्त अन्य औषधियोके साथ इसका उपयोग करते है। यकृत्प्लीहा तथा वृक्कके अवरोधोके उद्घाटनके लिए इसे पिलाते है। वायुजन्य, उदरशूल, उदरानाह,

मदाग्नि और मूत्रार्तवावरोधमे इसका उपयोग कराते है। स्तन्यजननके लिए इसका चूर्ण गायके दूधके साथ खिलाते है। दृष्टिवर्धनके लिए इसका चूर्ण खिलाते है और इसके काढे या हरे सौफके रसमे सुरमा खरल करके नेत्रमे लगाते है। निवारण-धनिया और सफेद चदन। प्रतिनिधि-तुख्म करफ्स। मात्रा-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

सौफकी जड़—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्लेष्मपाचन और मूत्रार्तवजनन। श्लेष्मपाचनार्थ इसका बहुश उपयोग करते है। यह मूत्रार्तवजननके लिए भी प्रयुक्त होती है। मात्रा-५ ग्रामसे ७ ग्राम तक (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सौफ (मिश्रेण)मधुर, तिक्त, कटु, स्निग्ध, हृद्य, वृष्य, बल्य तथा कफ, वात, प्लीहाके रोग, कृमि अग्निमाद्य, कास, योनिशूल, अर्श, क्षय, रक्तविकार और वमनको दूर करनेवाली है (सु० चि० अ० ३८, च० सू० अ० २७, ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—सौंफ, सुगन्धि, दीपन, वातहर तथा मूत्रविरजनीय है। इसमे मूत्र पुष्कल आकर मूत्रका रग स्वच्छ होता है। आंव, वमन और अजीर्णके जुलावमें सौफका उपयोग करते हैं। शुष्क कास और मुखरोगमें इसे मुँहमें रखकर चबाते है। इसे रेचक औषधके साथ मिलानेसे उसका पेटमें मरोड करनेका दोष मिटता है। (ओ० स०)।

●

(६२०, ६२१) सौसन और ईरसा

फैमिली : ईरिडासे (Family Iridaceae)

नाम—सौसन (हिं०, भा० वा०) सोसन, सौसन, (क)मर्जल, (अ०) सौसन, (फा०) सोसन, सोसन सफेद, सोमन आजाद, (ले०) ईरिस जाति (**Iris sp.**)।

वक्तव्य—अल्तबरीके कथनानुसार यह (Blue lily)की जड है। परन्तु इब्नुल्बैतारके कथनानुसार यह (Blue lily) है। (इ० वैं० संचिका १, पृ० ७१)।

ईरसा (हिं०) ईरसा, (यू०) Iris (D I I), (अ०) सौसन आस्मानजूनी, सौसन अजरक, ईरसाए कज़्हिय्य', (फा०) ईरमा, सोसन आस्मानगूनी, (क०) मजारमुड, मज़ारपोश, (ले०) ईरिस जेर्मानिका (**Iris germanica** Linn), ईरिस वेर्सीकोलर (Iris versicolor Linn), (अ०) ओरिस (Oris), ब्लूफ्लैग (Blue flag)। ईरसाकी जड़—(फा०) वेखे ईरसा, रेशए ईरसा, (अ०) ओरिस रूट (Orris Root)।

वक्तव्य—कोई-कोई भूलसे इसकी जडको बालवच (हैमवती वचा) और पुष्करमूल समझते है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष, विशेषकर हिमालयके पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् कश्मीर, ईरान तथा मध्य और दक्षिण यूरोप। कश्मीरमें यह अधिकतया मुसलमानोकी कब्रपर लगाई हुई मिलती है। इसीलिए वहाँ इसको मज़ारपोश (मजार = कब्र + पोश = पुष्प) या मजारमुड (मुड = मूल) कहते है।

वर्णन—ईरसा वस्तुत जगली सोसनके नीले भेदकी जड है जो औषधके काममें ली जाती है। इसका क्षुप वचजैसा होता है। जड़ (Rhizome) ५ से०मी० (२ इच) या अधिक लम्बी, लगभग १.८७५ सें०मी० (¾ इच)

व्यासमे, रंभाकार, स्थूल अग्रपर प्यालानुमा काडक्षतचिह्न (Scar) युक्त, किंचित् चिपटी, ऊपरकी ओर टूटी पत्तियोके क्षतसे बने मुद्रिकाकारचिह्नोसे युक्त होती है। उक्त भौमिककाण्ड कडा, सुगन्धित और गिरहदार होता है, जिसका छिलका नीले और लाल रगसे रंजित होता है और भीतरसे पिलाई-ललाई लिए होता है। कोई-कोई सफेद होता है। मध्यस्थभागमे वाहिनीपूल (Vasiculer bundles) विसरित होते है। ईरसाकी जडमें १ वर्ष तक वीर्य रहता है। सफेद बागी सोसनकी जडको बेखे सोसन या सोसन कहते है। वन्य और उद्याजन भेदसे सोसन दो प्रकारका होता है। पुन उनमेसे प्रत्येकके सफेद और कबूद (आसमानी रंग) ये दो अवातर भेद और होते है। पुष्पकाल—मई और जून। सोसनके सब भेदोकी जड ग्रथिल लम्बगोल और सफेद रंगकी होती है। सुगन्ध सबमें बनफ्शेकीसी आती है। इसलिए जनसाधारण इसे बनफ्शेकी जड समझकर बेखे बनफ्शा कहते है। किन्तु इसका बनफ्शासे कोई सम्बन्ध नही है। कलकत्ता और बम्बईके बाजारोमें यह जड मिलती है।

रासायनिक सगठन—जडमे एक उत्पत् तेल, पिष्ट, राल और कषाय द्रव्य होता है।

सोसन—

प्रकृति—तीसरे, मतातरसे दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—तारल्यजनन, विलयन, दोष(मवाद्) एव श्वयथुमार्दवकर, प्रमाथी, उष्णताजनन, लेखन, प्राणिज विषोका अगद और विशेपकर आमवातघ्न है।

उपयोग—तारल्यजनन, उष्णताजनन एव मार्दकर होनेके कारण यह कृच्छ्रश्वास एव कासमे गुणदायक है। इन गुणकर्मोके साथ यह प्रमाथी भी है। अतएव यकृत्प्लीहाशूलमे उपकारक है। सिरकेके साथ खिलानेसे यकृत्प्लीहाका शोथ मिटाता है। इसके अतिरिक्त विविध विधियोसे गर्भाशय और बस्तिके रोगोमे भी लाभ करता है। लेप करनेसे वृपणोकी सूजन उतारता है। बिच्छू आदि विषधर जानवरोके दश स्थानपर इसका पतला लेप (तिला) करनेसे उनका विष नष्ट करता और वेदना आदिको शमन करता है। प्रायश त्वचाके रोगो जैसे-व्यग, न्यच्छ (नमश) गज, खुजली आदिमे इसका लेप और तिला गुणकारक है। यह कठिनश्वयथुविलयन, मार्दवकर है। कतिपय मलहरोमें भी इसको डाला जाता है। लेखन होनेके कारण यह व्रणोको मल एव दुष्टमाससे शुद्ध करके नया मास उगाता है और सुखाता (व्रणरोपण-शोषण) है। अहितकर—दीर्घपाकी एव गुरु (सकील) है। निवारण—गरम मसाला और सोठ। मात्रा—२–३ माशे तक।

ईरसा (बेखसोसन आस्मानजनी)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुणकर्म—विलयन, तारल्जनन, उष्णताजनन, प्रमाथी, श्लेष्मष्ठीवनशोधनकर्ता, दोषपाचन, उपशोषण, हलका कब्जके साथ लेखन, प्रवर्तक, पित्त श्लेष्मविरेचनीय, विषघ्न और (मुजिज) विशेपकर फुफ्फुसोसे सान्द्रदोषोका उत्सर्ग करता है।

उपयोग—दोष तारल्यजनन, उष्णताजनन, अवरोधोद्घाटक और श्लेष्मपाचनविरेचन होनेसे ईरसा प्राय कफवातरोगो जैसे—प्रसेक एव प्रतिश्याय, कास, कृच्छ्रश्वास (श्वास), कफज फुफ्फुसशोथ (जातुरिय), उर कण्ठ एव कण्ठनाडी (कस्बारिया)के खरत्व, पार्श्वरुक्, पार्श्वशूल, उर शूल, शीघ्रहृदयता (इख्तिलाज), स्वाप, कम्पवात, सन्यास (सक्ता), पक्षवध और विस्मृतिमे गुणकारक है। तारल्यजनन एव प्रमाथी होनेके कारण यह मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता है और इन्ही गुणोके कारण जलोदर एव कामला रोगमें उपकारक है। शीतल यकृत्को शक्ति देता है। लेखन होनेके कारण नाखूनेमें इसका अजन लाभदायक है तथा पतला लेप (तिला) व्यङ्ग, न्यच्छ (नमश) आदि त्वग्रोगोमें लाभदायक है। लेखन होते हुए यह उपशोषण भी है। अतएव यह दुष्टव्रणोको मल एव दुष्ट माससे शुद्ध

करके नया अकुर लाता और उनको सुखा देता है। तारल्यजनन एव विलयन होनेके कारण यह चिरज प्रगाढ श्वयथु और कठमालेकी कठोरताके लिए लाभप्रद है। तारल्यजनन, उष्णताजनन और प्रमाथी होनेके कारण इसको महीन पीसकर सूँघनेसे छीके आती है। अतएव यह पुराने सिरदर्द, अर्धावभेदक तथा प्रसेक एव प्रतिश्यायमें उपकारक है और नेत्रके खराब मलोको छीकके द्वारा निकालता है। भौमकीटदश, जैसे—साँप, बिच्छू और भिडके लिए इसका पतला लेप गुणकारक है। तारल्यजनन, उष्णताजनन और लेखन होनेके कारण सिरका या किसी उपयुक्त स्नेहके साथ इसका आश्चयोतन बाधिर्य और नासादौर्गन्ध्यके लिए गुणदायक है। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम तक (३ माशे ५ माशे) तक।

●

(६२२) स्ट्रोफैन्थस

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family Apocynaceae)

नाम—(अफरीका) उनीज, उरीज, (लै०) स्ट्रोफाथुस् कोम्बे (Strophantus combe Oliver), (अ०) स्ट्रोफैन्थस (Strophanthus)।

वक्तव्य—'स्ट्रोफांथुस्' वस्तुत यूनानी 'स्ट्रोफस = पेचीदा' और 'आथुस् = फूल' इन दो शब्दोका यौगिक है। इसका पुष्पाभ्यान्तर कोष (Corolla) पेचीदा होता है, इसलिए इसे उक्त नामसे अभिधानित किया गया। अफरीकी भाषामें इसे 'उन्थज' या 'उरयज्' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—अफरीका, जावा, सुमात्रा आदि।

वर्णन—एक आरोही उद्भिद् जिसके बीज औषधके काममें लिये जाते है। ये बीज $\frac{१}{२}$ इच लवे और $\frac{१}{६}$ इच चौडे, रेशमकी तरहकी रोइयोसे युक्त, दीर्घवृत्ताकार (Elliptical), हरापन लिये भूरे, तीक्ष्ण नोकयुक्त होते है। इनके एक पृष्ठपर लबी रेखा होती है। मग्ज भीतरसे सफेद स्नेहमय, गध विशेष प्रकारकी और स्वाद अत्यत तिक्त होता है। ८ भाग तीक्ष्ण गधकाम्ल और २ भाग पानीके ताजे बने हुए मिश्रणके स्पर्शसे बीजका छेद (Section) गहरे हरे रगका हो जाता है। स्ट्रोफान्थुस् हीस्पिडुस् (Strophanthus hispidus DC) के बीज इनकी अपेक्षया छोटे और भूरे होते है, किंतु समान प्रतिक्रियावाले होते है।

इनकी निम्न दो जातियाँ—

(१) स्ट्रोफान्थुस् डाइकोटोमस या वाल्ची (S **dichotomous** Wall or S **wallichii** A DC), तथा (२) स्ट्रो० वीटीयानुस् (**S. wightianus** Wall) भारतवर्षमें भी होती है।

रासायनिक सगठन—इसमे स्ट्रोफैन्थिन (Strophanthin) नामक एक कार्मुक सत्व, जो डिजिटेलिसमें पाये जानेवले सत्वके बहुत समान होता है, ८%–१०% तक पाया जाता है। यह जलविलेय, किंतु सुरासार और क्लोरोफॉर्ममें अविलेय होता है।

उपयुक्त अग—बीज।

कल्प—स्ट्रोफंन्थिनकी मात्रा–$\frac{१}{३००}$ से $\frac{१}{२००}$ ग्रेन तक केवल त्वगीय सूचिकाभरण द्वारा, रसक्रिया मात्रा, $\frac{१}{४}$ से १ ग्रेन तक। टि० स्ट्रोपेन्थस, बी पी सी. मात्रा–२–५ विंदु।

गुणकर्म तथा उपयोग—हृदयबलदायक। हृदयके पेशीगत दौर्बल्य और कृच्छ्रश्वास (Dyspnoea) युक्त हृच्छूलमें इसका उपयोग करते हैं। शक्तिगत महान् वैचध्यके कारण इसका उपयोग बड़ी सावधानीके साथ करना चाहिए। अफरीकाके आदिवासी कतिपय प्रकारके स्ट्रोफैन्थसमे बाणकी नोकपर लगानेका विष तैयार करते हैं। बीजोंके अत्यंत विषैले स्वभावके कारण विना चिकित्सकके निर्देशके इनका कदापि प्रयोग न करें।

●

(६२३) हंसराज

फैमिली : फीलिसीज (Family : Filices)

नाम—(हिं०, भा० बा०) हंसराज, गोवारक, काली झाँप, समलपत्ती, (यू०) Adianton (D 4 134); (अ०) अल् अदियान्तून, अल्ब(ब)रसियावुशां (इ० बै०), शा'रुज्जिन्न, शा'रुल्ग़ूल, शा'रुल्जिबाल (र), शा'रुल् अर्ज, साकुल् अस्वद, नलिफुल् अस्वद, (फा०) परसियावशाँ, (म०) हंसपादी, हंसपदी, (कु०) हुमगिणको, (ब०) गोयालिया लता; (गु०) हंसराज, कालोहंसराज, (म०) हंसराज, घोड़खुरी, (का०) दूमतुल्लि, (लै०) आडिआन्टुम् वेनुस्टुम् (Adiantum venustum Don), आडिआंटुम् कापील्लुस् वेनेरिस् (A capillus veneris Linn), (अं०) मेडेन हेयर (Maiden Hair), वेनस हेयर (Venus Hair)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालय, कश्मीर, पंजाब, दक्षिण भारतवर्ष, अफगानिस्तान और फारस आदिमें हौज, तालाबों और कुओंके किनारे छायेदार और आर्द्र भूमिमें उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह फर्नकी जातिकी सुंदर तथा छोटी अपुष्प क्षुद्र वनस्पति है जो पहाड़ोंमें चट्टानोंसे लगी हुई मिलती है। इसमें चारो ओर ८-१० अंगुलके सूतके से पतले, गोल, चिकने चमकीले, ललाई लिए काले डंठल फैलते हैं। इन डंठलोंके दोनों ओर बन्दमुट्ठीके आकारको अथवा धनियेके पत्र जैसी छोटी-छोटी कटावदार पत्तियाँ गुच्छी होती हैं। पत्रके आकारभेदसे इसकी असंख्य जातियाँ होती हैं। यह बूटी शाखा और पत्र सहित औषधके काममें आती है और प्रायः बाजारोंमें भी मिल जाती है। इसका औषधीय वीर्य ६ मासमें कमजोर और एक वर्षमे पूर्णतया जाता रहता (निर्वीर्य) है। स्वाद किञ्चित् मधुर और थोड़ा कसैला, गन्ध निर्बल।

उपयुक्त अंग—पचांग।

कल्प तथा योग—खेसाँदा (फांट) परसियावशाँ, जल डेढ़ पावमें २ तोले; जोशाँदा (क्वाथ) परसियावशाँ, जल एक सेरमे २½ तोले, पाद शेष रहनेपर काममें लेवें। शर्बत परसियावशाँ। शर्बतकी मात्रा १/२ से १ तोले।

प्रकृति—अनुष्णाशीत। मतांतरसे गर्मी और खुश्कीके साथ। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (कै०नि०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—विलयन, तारल्यजनन, प्रमाथी, उपशोषण, कफपाचन, लेखन, मूत्रार्तवजनन, प्रसवशोणितो(नफास)त्सर्गकर्ता विशेषतः सौदापित्तश्लेष्मविरेचनीय एवं प्रसेकहर है। विलयन, तारल्यजनन, प्रमाथी और कफपाचन होनेके कारण वातज उरोवेदना (ज़ातुस्सदर), फुफ्फुसशोथ (ज़ातुर्रिया), प्रसेक, प्रतिश्याय, कास, कृच्छ्रश्वासमें इसका उपयोग किया जाता है। श्लेष्मज्वरोंमें श्लेष्मदोषपाचन (मुन्ज़िज) की भाँति यह दोषपाचन औषधोंके साथ प्रयुक्त होता है। प्रसवशोणित (नफास) एवं मूत्रार्तवजनन होनेके अतिरिक्त यह अपरानिर्हरणके लिए भी दिया जाता है। लेखन और उपशोषण होनेसे आर्द्रव्रणों एवं खालित्य विशेष (दाउस्सालब एवं दाउल्हय्य)-के लिए लाभप्रद है। इन्हीं कारणोंसे इसको महीन पीसकर मुखपाक एवं बालकोंके मुखगत फुंसियों (निनावा)में

इसका अवचूर्णन कहते हैं। श्वयथुविलयन होनेके कारण यह लेपत. कंठमालेकी कठोरता तथा अन्य शोथोको विलीन करता है। खाकस्तर(मसीकृत)परसियावशांसे सिर धोनेसे सिरकी भूसी (सवूसएसर) नष्ट होती है। सर्पदश एव कुक्कुरदशमे भी इसका काढा पीनेसे उपकार होता है। अहितकर–प्लीहाके रोगोको। निवारण–मस्तगी और गुले वनफ्शा। प्रतिनिधि–वनफशा और मुलेठी। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक। मतातर से १½ माशेसे ३ तोले तक, क्वाथमें ५ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—हसराज (हसप(पा)दी) मधुर, शीतवीर्य, गुरु, कण्ठ्य, रोपण तथा रक्तविकार, दाह अतिसार, विसर्प, लूताविष, शोथ, विष और व्रणको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८, कै० नि०)।

नव्यमत—हसराज तिक्त, कुछ ग्राही, कासहर, कफघ्न, वडी मात्रामें वामक और कुछ मूत्रजनन है। (औ० स०)।

●

(६२४) हड़, हरड़

फ़ैमिली कॉम्ब्रेटासे (Family Combretaceae)

नाम—(हि०) हड, हरड, हर्रा, हर्रे, हर्र, (अ०) इह्लीलज, हलैलज, (फा०) हलील हलैल, (हेलाला), (स०, म०) हरीतकी, (क०) हलेला; (व०) हर्तकी, (म०) हरडे, (गु०) हरडे, (ने०) हेरडो, (प०) हर, (ते०) करक्काय, (ता०) कडुक्काम्, (मल०) कडु(ट्ट)क्का, (लै०) टर्मिनालिआ चेबूला (Terminaliachebula Retz), (अ०) चेबुलिक माइरोवेलन्स (Chebulic Myrobalans)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक वडे वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो तीन प्रकारका होता है—(१) हलैल स्याह, (२) हलैल जर्द और हलैल काबुली। यह तीनो प्रकारकी हडे वस्तुत एक ही वृक्षसे प्राप्त होती है। इनमें से प्रत्येकका वर्णन नीचे किया जाता है —

हलैल स्याह (छोटी हाड)—

नाम—(हि०) जौ(जवा) हड, काली हड, बाल हड, जो(जौ)गी हड, (उ०) जगी हड, (अ०) इह्लीलज (हलैलज) अस्वद, इह्लीलज (हलैलज) हिंदी, (फा०) हलैलए जगी (–हिंदी,-स्याह), (म०) बाल हरडे, (गु०) हीमज, (सि०) इजडी, (मा०) जवहरडी, जागीहरड, (व०) जागीहरितकी, (द०) बाल हलडे।

वर्णन—हडके वृक्षोसे जो फल गुठली पैदा होनेसे पहले गिर पडते है या तोडकर सुखा लिए जाते है, उन्हे हलैलए स्याह कहते है। यह अण्डाकार दानो सिरोपर नोकदार ८ १३ मि० मि० से १ ८७५ सें० मी० (⅓ से ¾ इच) लंबी और ० ९३ सें० मी० (⅜ इञ्च) चौडी, लंबाईमें झुर्रीदार, ठोस, भगप्रवण और काली होती है। स्वाद अत्यन्त कपैला होता है। काली कडी, भारी और अविकृत हड औषधके लिए उत्तम समझी जाती है।

रासायनिक सगठन—हडमें (१) टैनिन या टैनिक एसिड (Tannin or Tannic acid) लगभग ४५ प्रतिशत, (२) माइरो वैलेनिन (Myro balanin), एक राल (Resin), (३) चेबूलिनिक एसिड (जो जलमे उवालनेसे कपायाम्ल और मायाफलाम्लमें विघटित हो जाता है) प्रभृति उपादान होते है। इसके अतिरिक्त इसमे माया-

फलाम्ल, लवाब और एक भूरापन लिये रञ्जन द्रव्य भी होता है। इसके अतिरिक्त एन्थ्राक्वीनोनके स्वभावका कोई विरेचन तत्व होता है। बीजके मज्जा मे एक प्रकारका स्थिर तेल होता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल, अर्क हलैला, मुरब्बा हलैला, दवाये स्याह पेचिस।

वक्तव्य—यद्यपि हडका वृक्ष कई प्रकारका होता है; परन्तु आयुर्वेदमे ७ प्रकारकी और यूनानी वैद्यकमे ४ प्रकारकी हडका उल्लेख मिलता है—(१) हलैल. काबुली, (२) हलैल जर्द, (३) हलैलः हिंदी और (४) हलैल चीनी। किंतु प्राय अन्वेषणकर्ताओका इस विषयमे मतैक्य है कि एक ही प्रकारके हरीतकके वृक्षके कच्चे, गदराये हुए और पके फलोको उपर्युक्त विविध सज्ञाओसे अभिधानित करते हैं अर्थात् कच्ची शुष्कीभूत हडको हलैल स्याह (काली हड), गदराई हुईको हलैल जर्द (पीली हड) और पके फलोको हलैल. काबुली कहते हैं। सुतरा मख़्ज़नुल्-अदविया में इसी विचारसे ३ प्रकारकी हडका उल्लेख किया है। परन्तु मुहीत आजमके सकलयिता ने इससे मतभेद व्यक्त किया है।

इतिहास—यह औषधि भारतवर्षमें उत्पन्न होती है। अतएव प्राचीन भारतीयोको इसका भलीभाँति ज्ञान था। प्राचीन मुसलमान हकीमोको भी यह ज्ञात थी और उनके माध्यमसे यूनानवासियोको इसका ज्ञान हुआ। उन्होने भी पाँच प्रकारके हडका उल्लेख किया है।

हलैल. स्याह (काली हड)—

प्रकृति—पहले दर्जेमे शीत और दूसरेमें रूक्ष है।

गुणकर्म—मस्तिष्कबलवर्धन, द्रवाभिशोषणकर्ता, अन्त्रामाशयबलवर्धन, सौदाविरेचनीय, (भृष्ट सग्राही) और रक्तशोधक है।

उपयोग—मेध्य होनेके कारण मस्तिष्क, स्मृति और बुद्धिका दौर्वल्य दूर करने, सवेदना (हवास)को तीव्र एव बलवान् बनानेके लिए कालीहड़ का उपयोग करते है। द्रवाभिशोषणकर्ता होनेसे मस्तिष्कके दूषित द्रवोका शोषण करनेके लिए इसे मालिन्खोलिया और अर्दित जैसे रोगोमें चबाते हैं। यह स्निग्ध आमाशयके लिए विशेप रूपसे बल-प्रद (दीपन) है। सौदाविरेचनीय और रक्तशोधक होनेके कारण अनेक सौदावी रोगो, जैसे–मालिन्खोलिया, सौदावी अन्यथाज्ञान (सौदावी वसवास) अर्श, कुष्ठ खर्जू आदिमे इसे देते है। अतिसार बन्द करनेके लिए इसको घी या बादामके तेलसे स्नेहाक्त (चर्ब) करके और भृष्ट करके चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। अतिसार बन्द करनेके अतिरिक्त यह अन्त्र और आमाशयको शक्ति भी देती है। नेत्र और दत रोगोमे इसका बाह्य प्रयोग गुणदायक होता है। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे तक)।

हलैलए जर्द—

नाम—(हिं०) हर्रा, हरडा, छोयाहड, पीलीहड, बडी हड, (उ०) जर्द हड, (अ०) इहलैलिज अस्फर, (फ़ा०) हलैलए जर्द, (म०, गु०) हरडा।

वर्णन—यह हडका पूरा फल है जिसमे गुठली पडी हो। बडी, पीली, छोटी गुठलीकी और नई उत्तम होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम और दूसरेमें खुश्क।

गुणकर्म—मेध्य, चक्षुष्य, दीपन, सग्राही और पित्तविरेचनीय।

उपयोग—हर्रेको प्राय मस्तिष्करोगो, जैसे–अपस्मार, भ्रम व सम्मोह (सद्र व दव्वार)मे विभिन्न प्रकार-से उपयोग कराते है। ग्राही और चक्षुष्य होनेके कारण इसे मधुके साथ घिसकर आँखोमे लगाते है। दृष्टिदौर्बल्य, नेत्रस्राव (ढलका) और नेत्रकी रक्तिमाको दूर करनेके लिए यह गुणकारी है। दीपन होनेसे इसे मदाग्निमें उपयोग

कराते हैं। पित्त विरेचन होनेके कारण पित्तज रोगोंमें इसे देते हैं। किन्तु यह स्मरण रहे कि इसका हिम फाण्ट इसके क्वाथकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् होता है। मस्तिष्क और आमाशयको शक्ति देने तथा कब्ज दूर करनेके लिए इसका मुरब्बा खिलाया जाता है। मात्रा–५ माशेसे ७ माशे तक। हडका मुरब्बा (मुरब्बाए हलैल.) १ अदद।

हलीलए काबुली (काबुली हड)—

नाम—(हि०) काबुली या अँम्बिया हड़, बडी हरें (हड), अमृतसरी हड़, (अ०) इह्लीलज काबुली, (फा०) हलैलए काबुली, (म०) सुखारी हरडे, (गु०) हरडे, म्योटी हरडे; (बं०) हरितकी।

वर्णनादि—जब हड बढकर असाधारण रूपसे परिपुष्ट एवं स्थूल हो जाती है तब उसे हलैलए काबुली कहते हैं। प्राचीन कालमें भारतवर्षसे भूमार्गसे काबुल होकर तूरान, खुरासान, ईरान आदि देशोमे इसे ले जाते थे, इसलिए इसे हलैलए काबुली कहते हैं। नई, बडी, जलमे डूब जाने वाली, ललाई लिए पीली, गुदार और कम रेशेवाली, छोटी गुठली वाली और जो पुरानी खराब और हलकी न हो वह उत्तम होती है। यह शेष अन्य सभी प्रकारकी हडोसे श्रेष्ठतर एव वीर्यवान् होती हैं।

प्रकृति—मोतदिल पहले दर्जेमें खुश्क।

गुण-कर्म आदि—यह दोषत्रयकी विरेचन है और समस्त गुणोमें पीलीहडके समान है और इसकी सेवनीय मात्रा भी उसीके बराबर है। यह भ्रम व समोह (सदर व दव्वार) को दूर करती है तथा रक्तको शुद्ध करती और मस्तिष्कको शक्ति देती है।

आयुर्वेदीय मत—हरीतकी पथ्य (नित्यसेवन योग्य), लवणको छोडकर अन्य पाँचो रसयुक्त, शिव (आरोग्य-कर), दोषोका अनुलोमन (अधोमार्गसे निर्हरण) करनेवाली, लघु, दीपन, पाचन, आयुष्यको बढानेवाली, वय स्थापन सर्वदोषप्रशमन, बुद्धिवर्धक, इन्द्रियोको बल देनेवाली तथा कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोथ, पाडुरोग, मद, अर्श, ग्रहणी-रोग, पुराना विषम ज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहा रोग, नया उदररोग, कफप्रसेक, स्वरभग, वैवर्ण्य, कामला, कृमि, श्वयथु, तमकश्वास, वमन, नपुसकत्व, अगावसाद, नाना प्रकारके स्रोतो-का अवरोध, हृदय तथा वक्षस्थलका प्रलेप (कफलिप्तत्व) तथा स्मृति और बुद्धिके प्रमोहको शीघ्र दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० २५, चि० अ०१ पाद १, सु० सू० अ० ३८, ३९, ४६)। मात्रा–जौहड घी या एरडतेल लगाकर सेंकी हुई १ ५ ग्रामसे ३ ग्राम (१½ माशासे ३ माशा), वडी हडकी गुठली निकालकर किया हुआ चूर्ण ३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशासे ६ माशा) विरेचनार्थ। (½ माशासे ३ माशा) रसायनार्थ।

नव्यमत—बडे हरें मृदुविरेचन, अर्शोघ्न, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, रक्तसाग्राहिक, बल्य, पथ्य, गुल्महर, व्रणरोपण और वय स्थापन हैं। इससे भूख लगती है तथा अन्न पचता और दस्त साफ होता है। विरेचनके लिए देनेपर प्रारम्भमें विरेक (जुलाव) होकर अपने आप बन्द हो जाता है, पेटमें न तो मरोड होता है और न मिचली होती है। इसके नित्य सेवनसे हृदय और रक्तवाहिनियोकी शिथिलता दूर होती है, रक्तानुधावन सुधरनेसे मस्तिष्कको अधिक रक्त मिलता है और मनमें उत्साह मालूम होता, उत्तम नीद आती, वीर्य गाढा होता एव शरीरका वर्ण सुधरता है और भार बढता है। छोटी हड मृदुविरेचन, वातनाशक और बल्य है। यह बडी हड जैसी रसायन नही है। इसकी क्रिया केवल पचननलिकापर होती है। कुपचन, अतिसार, आँव और आँतोकी शिथिलतामे इसे देते हैं। अर्शमें इसे सेंधानमकके साथ देते है और रक्तार्शमे काढा करके देते हैं। जीर्णज्वरमे प्लीहा मोटी और कठिन हुई हो तो इसे नौसादरके साथ देते हैं। रक्तपित्त एव रक्तकासमे, और कई एकको रक्तस्राव होनेकी आदत होती है, उनके लिए हरें गुणकारी है। कई लोगोको अधिक स्वेद आनेकी, नाक बहनेकी, सर्दी जुकाम होने पर बहुत दिनो तक कफ पडनेकी आदत होती है। उनको हर्रेसे अच्छा लाभ होता है। मुखव्रण और कण्ठशोथमे हर्रेको पानीमें घिसकर मुँहमे लगावे है। छोटी हरें अजीर्णसे होनेवाले विरेक, पेचिश, जीर्ण अतिसार, जीर्ण आँव, गुल्म, प्लीहा-वृद्धि और सदा बने रहनेवाले कब्जमे गुणकारी है। (औ० स०)।

(६२५) हब्बुल् क़िल्क़िल्

नाम—(हिं०) ग्वारचिकना, (अ०) हब्बुल्किल्किल् (कुलकुल); (फा०) अनारदाना दश्ती, (उ०) अनारदाना जगली ।

वर्णन—एक वृक्षका फल जो यूनानी निघटुग्रन्थोके मतसे दो प्रकारका होता है—(१) लोबियाके बराबर सफेद तथा सुगन्धित; (२) दूसरा सँभालूके बीजसे बडा एव काला होता है। इसको हिन्दीमें चरी कलौटन कहते हैं। किसी-किसीके मतसे कालीमिर्चके बराबर काले रगका एक बीज होता है। इसके भीतर मीठा मग्ज निकलता है।

प्रकृति—गरम एव तर ।

गुण-कर्म—बृहणीय एव प्रधानत वाजीकर ।

उपयोग—साधारणत इसे माजूनके योगोमें डालकर उपयोग करते है। मिश्री और तिल या मुनक्का और शहदके साथ विशेषरूपसे परिबृहण एव वाजीकरणके लिए उपयोगी बतलाया जाता है। अहितकर–शिर शूल, विसूचिका और अग्निमान्द्य उत्पन्न करता है। निवारण–इसका भृष्ट करना तथा शर्करा एव सिकजबीन (मधुशुक्त)। प्रतिनिधि–सफेद तोदरी और हब्बुस्सनवोर। मात्रा–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १२ माशे) तक।

●

(६२६) हब्बुल्ज़लम्

फैमिली माल्वासे (Family . Malvaceae)

नाम। वृक्ष—(हिं०) पटसन, पटवा, पटुवा(आ); (स०) पट्टशण, (ब०) अबाडी, मस्तापाट, (बम्ब०) अबाड़ी, (ले०) हिबीस्कुस् कान्नाबिनुस् (**Hibiscus cannabinus** Linn), (अ०) डेक्कन या अबाडी हेम्प (Deccan or Ambari Hemp)। बीज—(हिं०) पटुआके बीज, (अ०) हब्बुल्ज़(जु)लम्, हब्बेल्जलिम (मतान्तर से हब्बुल्गर्राज)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम भारत और अफरीका, साधारणतया इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—हाजी जैनुल् अत्तारके मतसे फारसी हब्बुल्जलम् पटुआके बीज हैं जो इलायचीके बीजके समान होते है। मतातरसे चनेसे बडा चपटासा दाना है जिसका बाहरी छिलका काला और मग्ज सफेद होता है। स्वाद स्निग्ध, मधुर और सुगन्धित। 'हब्बुलजलम्' मिस्र देशसे आता है। इसके यह और दो भेद होते है—(१) आर्टिचोक-बीज, और (२) सरापियून (Serapion)। हब्बुल्जलम् या मकी पेपर (Habzelia aethiopica) के फल जिनका व्यवहार प्रथम कालीमिर्च (Pepper)के प्रतिनिधि रूपमे होता था, वह बम्बईके बाजारोमे इस नामसे बिकने वाला फल नही है, ऐसा डीमकका मत है।

रासायनिक सगठन—बीजमे मूँगफलीके तेलके समान वसामय तेल (Fatty oil), रेडियम, थोरियम, बिरडिअम् प्रभृति तत्व होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और पहले मे तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बृंहण एव वाजीकरण इसके प्रधान कर्म हैं, तथा यह शुक्रजनन एव लेखन है। हब्बुल्जलमके मग्जको अधिकतया वाजीकरणार्थ वाजीकर या कामसवर्धक माजूनकल्पों में डालकर उपयोग करते है। शरीरको स्थूल करनेके लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। झांईको दूर करने और चेहरेका रग निखारनेके लिए इसका पतला लेप करते हैं। अहितकर–कण्ठके लिए तथा यह अवरोध उत्पन्न करता है। निवारण–सिकंजबीन। प्रतिनिधि– बु-मके बीज (बुन)। मात्रा–६ ग्राम से ११ ५ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

•

(६२७) हब्बुल् मिह्लब्

फैमिली : रोजासे (Family Rosaceae)

नाम। वृक्ष—गावला, घीवनी, (अ०) महलिब (मिह्लब = पजा); (फा०) पैवदे मरियम; (सं०) प्रियगु, गन्धप्रियगु ? (म०) गहुला, (गु०; बम्ब०) घउँला, (ले०) प्रूनुस महालेब (**Prunus mahaleb** Linn)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम या मध्य एशिया और यूरोपका निवासी है। बलूचिस्तानमें इसके वृक्ष लगाये जाते है। सम्भवत उत्तर-पश्चिम भारतवर्षमें भी होता है।

वर्णन—एक वृक्षका प्रसिद्ध फल, जो बादामकी तरह छोटा, काबुली मटरके बराबर होता है। इसके बीज 'हब्बुल्महलिब का मग्ज' बम्बई बाजारमे घउँला नामसे मिलते है। मग्ज छोटी चिरौंजी जैसा गोधूमवर्ण और सुगन्धित होता है। स्वादमे यह किंचित् तिक्त होता है। कोई-कोई इसे आयुर्वेदीय प्रियंगु मानते हैं। इससे तैल भी बनाते हैं। ताजा, मोटा, सुगन्धित, चिकना और सफेद बीज श्रेष्ठतर होता है।

रासायनिक सगठन—इसमें कोमारिन (Coumarin), सैलीसिलिक एसिड (Salicylic acid) और ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) तथा हाइड्रोसायनिक एसिड (Hydrocyanic acid) पाया जाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमे गरम व खुश्क (रूक्ष), मतातरसे दूसरे दर्जेमें शीत। आयुर्वेदके मतसे प्रियगु शीतवीर्य है।

गुणकर्म—ये दाने दोषविलयन, पिच्छिल, तिक्त, प्रबल लेखन और संग्राही है। विलयन एव सग्राही होनेपर भी ये अधिक आह्लादकारक है और ज्ञानेन्द्रियोको शक्ति देते है। चेपके कारण स्रोतोके मुँहमें चिपककर अवरोध उत्पन्न करते है तथा छाती और फेफडेसे गाढे और चेपदार द्रवोको नि सारित करते है। दिलकी धडकन, दमा और मूर्छाको लाभ करते तथा यकृत् और प्लीहाको शक्ति देते है। यकृत्प्लीहा, वृक्क और आमाशय इनमें होनेवाली पीडाको लाभ पहुँचाते है। विशेषत मधुजलके साथ मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करते, वृक्कके अवरोधका उद्घाटन करते, सान्द्र वायुको विलीन करते, तथा उदरकृमिको निकालते है और विदुमूत्रको मिटाते तथा वाजीकर हैं। रक्तातिसार बन्द करनेमें गिलमख्तूमकी अपेक्षया अधिक प्रभावकारी है। इसमे सर्दव सिर धोनेमे प्रसेक (नजला) आराम होता है। इसको पीसकर लेप करनेमे (झाईं), न्यच्छ (नमशा) और कण्डू (जरब) अच्छे होते हैं। इसे मुँहपर लगानेसे मुँहका रग स्वच्छ होता है। गर्दनपर और ठोडीके नीचे लगानेसे कण्ठ और कमरका दर्द जाता रहता है। इसे मिलाकर बनायी हुई रोटी शीघ्र पच जाती है। इसके लेपमे वातरक्त और सर्दीका दर्द मिटता है। गीलानीके कथनानुसार इसका छिलका (फलत्वक्) सर्दीके लिए गुणकारी है। इसमें विलयनके बिना संग्रहणका गुण है। यह वायुके दोषोका सुधार करती है तथा प्रसेक और प्रतिश्यायको गुणकारक है। इसकी लकडीके पास कीटपतङ्ग नही फटक सकते। इसकी धूनीसे भी वे भाग जाते हैं। इसकी लकडीको मुदाब, मन्द्रगी, कूट और

तेलके साथ पकाकर पीने और मलनेसे अर्दित, पक्षवध, कम्पवात, अपतानक (कुजाज), सधिशूल, वातरक्त, शोथ, अभिघात और अस्थिभग्नमें लाभ पहुँचता है। अहितकर—उष्णप्रकृति, मस्तिष्क और अन्त्रको। निवारण—मस्तिष्कके लिए चन्दन और अन्त्रके लिए गुलाब, रोगन वनफ्शा और रुब्बरेवास। प्रतिनिधि—अखरोट और कडुए बादामके मग्ज। मात्रा—१०½ माशे से १½ तोला तक शर्करा और मधुके साथ लेहकी भाँति।

आयुर्वेदीय मत—प्रियङ्गु तिक्त, शीतवीर्य, पुरीषसग्रहणीय, मूत्रविरजनीय तथा मूर्च्छा, दाह, ज्वर, वमन, भ्रम, पित्तविकार, रक्तविकार, रक्तप्रकोप, रक्तपित्त और मुखकी जडताको नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, १५, चि० अ०, ४, सु० सू० अ० ३८, ध० नि०, रा० नि०)।

नव्यमत—कटुपौष्टिक और वेदनास्थापन है। अतएव वेदनायुक्त कुपचन तथा आमाशयके क्षत और अर्बुदमें इसका प्रयोग करते है। (औ० स०)।

●

(६२८) हमाम (हमामा)

फ़ैमिली : प्रीमुलासे (Family Primulaceae)

नाम—(भारतीय बाजार, सुर० या नब्ती) हमाम, हमामा; (यू०) Amomon (D 1 14), Amomum, (अ०) अल्हमामा (इ०बै०), माहलूज, (फा०) म(मा)हिलू, मायलू, (लै०) डीओनीसिया डीआपेन्सीईफोलिआ **Dionysia diapensiaefolia** Boiss)।

उत्पत्तिस्थान—फारस।

वर्णन—एक उद्भिज्ज जिसके यह तीन भेद है—(१) एक पौधा जो जमीनपर गुच्छेकी तरह होता है तथा शाखाएँ एक दूसरीमें इस प्रकार घुसी होती है कि जालकी तरह मालूम होती है। इनका रग याकूती रक्तवर्ण मालूम होता है और ये कडी होती है तथा इनमेसे सुगन्ध आती है और स्वाद तिक्त होता है। फूल छोटा, लाल-रगका, खेरीके फूल जैसा होता है। इस फूलको शीराजनिवासी 'मायलू' कहते हैं। पत्ते फाशरा या खीरेके पत्ते जैसे, सुनहले रगके, स्वादमें कटु (तेज) और सुगन्धित होते है। बीजको चावनेसे जिह्वापर बहुत तीक्ष्णता और दाह प्रतीत होता है। यह भेद अरमीनिया और तरसूसमे पैदा होता है। (२) दूसरी किस्म नब्ती कहलाती है। इसकी शाखाएँ जालीदार नही होती, अपितु लम्बी (दराज) होती है। उनको तोडनेसे बहुतसे परत पैदा हो जाते है। क्षुप एक बित्ता या इससे अधिक ऊँचा भी होता है। रग ललाई लिये सफेद और सुगध तीक्ष्ण होती है। फूलका रग प्रारम्भमे ललाई लिये पीला और खूब पककर बिल्कुल रक्तवर्ण हो जाता है। इसमे बहुतसे बीज लगे होते है। (३) तीसरा भेद जलीय (आबी और माई) करके प्रसिद्ध है, क्योकि यह पानीमे और तर जमीनोमें जमती है। इसका पौधा मोटा, हरे रगका, डालियाँ नरम, पत्तोको मलनेसे सुदाब जैसी सुगध आती है। इसमे बहुत हलकी सुगन्ध होती है। यह श्यामदेशमे होता है। जब तक हमामाके बीज खूब पक न जायँ, उनको तोडकर काममें नही लेना चाहिये। यदि काममे लेवें तो कोई हर्ज नही, परन्तु जमा न रखना चाहिये। जब इन बीजोमे तीक्ष्णता आ जाय तथा ये जीभको काटने लगे, उस समय समझ लेना चाहिये कि यह पौधा पक गया। उस समय इसका सग्रह करे। उससे पूर्व सग्रह करनेसे खराब हो जानेका भय है।

प्रकृति—मलभूत द्रवोके साथ दूसरे या तीसरे दर्जेमे गरम और रूक्ष। इसका तेल दूसरे दर्जेमे गरम और पहले दर्जेमे रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दोषोको पतला करनेवाला (मुरक्किक), दोषपाचन, छेदन, मदकारक, सुरूर उत्पन्न करनेवाला, निद्रल और ग्राही है। इसमें बचकी भाँतिवीर्य होता है। भेद केवल यह है कि इसकी अपेक्षया बच अधिक रूक्षताजनक एवं दोषपाचन भी है। इसे जैतूनके तेलमे मिलाकर लगानेसे सूजन उतर जाती है। मुनक्काके साथ यह अन्त्रशोथको मिटाता है। इसके सेवनसे शिरोगौरव और सिर दर्द भी उत्पन्न हो जाता है। परन्तु सिरपर बाहरसे लेप करनेसे सर्दीका सिरदर्द आराम होता है। उष्ण प्रकृतिवालोके सिरमे बाहरसे लगानेसे भी सिरदर्द उत्पन्न हो जाता है। इसके काढेमे आँख धोनेसे उष्ण नेत्राभिष्यद आराम होता है और नेत्रमें सूजन नही होती। इसलिए इसे नेत्राजनोमें डालते है। इसका काढा पीनेसे शीतल पार्श्वशूल (शौसए सर्द) आराम हो जाता है, यकृद्गत अवरोध मिट जाता है। उसमें शक्ति आती, सूजन उतरती, यकृत् और आमाशयकी शुद्धि होती, वायु विलीन हो जाता, पाचनशक्ति बढती, वायगोला आराम होता है तथा रुका हुआ मूत्र और आर्तव प्रवर्तित हो जाता है। इसे योनिमें रखनेमे भी आर्तवरक्त जारी हो जाता है तथा गर्भाशयशोथ मिट जाता है। इसके काढेसे अवगाह (आवजन) करनेसे भी गर्भाशयशोथ मिट जाता है और गुदशोथ भी मिटता है। ३½ माशे हमामा और १¾ माशे जला हुआ काच जिसे फारसीमें 'आवगीना' कहते हैं, दोनोको महीन पीसकर खानेसे प्रभूत मूत्रोत्सर्ग होता है और उसी दिन पथरी टूटकर निकल जाती है। वृक्कशूल एव वातरक्तकी पीडामें भी इससे अवगाह (आवजन) करते है। वातरक्त एव गर्भाशयशूलमें भी इसका काढा पीनेसे उपकार होता है। इसका तेल सूँघनेसे और सिरपर रखनेसे मस्तिष्ककी झिल्लियोमें उष्णता उत्पन्न होती है। ९ माशेकी मात्रामें इसे पीनेसे आमाशयगत वायु नष्ट होता है। अहितकर—आमाशय और सिरको तथा आलस्य एव सिरदर्द पैदा करता है। निवारण आमाशयके लिए तुख्म करफ्स, सिरके लिए गुलावके फूल, सिरदर्दके लिए अर्कगुलाव एव चदन और आलस्य (कम्ल)के लिये दालचीनी। प्रतिनिधि—समतोल असारून। मात्रा—७ ग्राम या ७ माशे तक, मतातरसे १०.५ ग्राम या १०½ माशे तक।

●

(६२९) हरमल (हर्मल)

फॅमिली . रूटासे (Family Rutaceae)

नाम—(हिं०, बम्ब०, बं०) इस्वद, हरमल, हुरमल, हरमर, लाहौरी, (अ०) अल्हर्मल (इ० बै०), ह(हु)रमल, हर्मुल, (फा०, क०) इस्पद, सिपद, (गु०) हर्मरो, इस्पन्द, हरमर, (म०, गु०) हरमल, हरमर, (प०) हुर्मुल, इस्वद, लाहोरी, (सिं०) हरमल, इसवद, लाहोरी, (ले०) पेगानुम् हरमाला (**Peganum harmala** Linn), (अ०) सीरियन रू (Syrian Rue)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष, सिंध, पंजाब और काश्मीर।

वर्णन—यह ७० सें०मी०से ९० सें०मी० (१½ से २ हाथ) ऊँचे एक क्षुपके प्रसिद्ध बीज है जो भारतके प्राय. सभी बाजारोमें मिलते है। इब्नुल्बैतारने इसके इन २ भेदोका उल्लेख किया है—(१) सफेद जिसे '**हरमल अब्यज**, '**हरमल अरबी** और '**इस्पद अरबी**' कहते है (यू०-Molu (D 3 47), और (२) लाल जिसे '**इस्पद सोख्तनी** (-खती)' (यू०—Peganon agrion (D 3 40, इ० बै० सचिका २ पृ० १४) कहते है। मात्र इस्बन्द (इस्पद) या हर्मलसे यही 'इस्पद सरेख्तनी' ही विवक्षित होता है। यह (तुख्मे इस्पद) राईके दानेके बराबर भूरे व काले रगके, विषमतया त्रिकोणाकार, निर्गन्ध एव कुछ कडवे होते है। इसमे ४ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक सगठन—हरमलमे यह तीन क्षारोद होते है—(१) हर्मीन (Harmine), (२) हर्मेलीन (Harmaline) और (३) हर्मलोल। इनमें हर्मेलीन सर्वाधिक और हर्मलोल केवल अशमात्र होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमे गरम और दूसरेमे खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृहण, श्लेष्मनिःसारक, वातानुलोमन, सान्द्रदोषविरेचन, उदरकृमि-नाशन, मूत्रार्तवजनन और स्तन्यजनन है। अर्दित और पक्षवध आदि जैसे शीतल रोगो और विशेषकर गृध्रसीके लिए यह गुणकारी है। हरमलको अधिकतया वाजीकरणके लिए उपयोग करते है। इसके अतिरिक्त यह श्वास एव कासमें कफका उत्सर्ग करने और मस्तिष्क (शिर) एव वातव्याधियो, अपस्मार, अर्दित, पक्षवध, उन्माद, विस्मृति और गृध्रसी आदिमें दोषका उत्सर्ग करने तथा अगोको उष्णता प्रदान करनेके अभिप्रायसे प्रयुक्त होता है। बाधिर्यको दूर करनेके लिए हरमलको जैतूनके तेलमें पकाकर कानमें टपकाते हैं। दतशूल निवारणके लिए दांतोको इसकी धूनी देते है। अहितकर–शिर शूलजनन, आकुलताकारक और विवमिषाकारक है। निवारण–सिकजवीन तथा अम्लद्रव्य। प्रतिनिधि–सुदाबके बीज। मात्रा–२ ग्रामसे ४ ग्राम (२ माशेसे ४ माशे) तक।

नव्यमत—हरमल सकोचविकास प्रतिबन्धक (आक्षेपहर), मादक, स्वापजनन, वेदनास्थापन, आर्तवजनन और स्तन्यजनन है। यह स्त्री और पुरुषके लिए किंचित् कामोत्तेजक हे। इसे वात और कफप्रधान रोगोमें देते है। अनार्तव, कष्टार्तव और मूत्रावरोधमे इसके काढे मे तिलका तेल और मधु मिलाकर देते है। इससे आर्तव और दूध बढता है। आमवातमे इससे सोडा सैलिसिलासकी अपेक्षया शीघ्र वेदना कम होती है। ज्वर, गृध्रसी, अपतन्त्रक, अपस्मार और आक्षेपकमें इसका पोटैसियम ब्रोमाइडकी अपेक्षया उत्तम उपयोग होता है। दमा, सूखी खांसी, पित्ताश्मरी, मूत्राश्मरी, उदरशूल और हिचकीमे लाभ होता है। (ओ० स०)।

●

(६३०) ह(हा)र्रसिंघार

फैमिली : ओलेआसे (Family Oleaceae)

नाम—(हिं०) ह(हा)र्रसिंघा(गा)र, परजाता, पारिजाता, (स०) हार(हरि)शृङ्गारपुष्पक, शेफालिका, (ब०) शिऊली, (म०) पारिजात, (गु०) हारशणगार, (ते०) सेपाली, (ले०) नीक्टान्थीज आरबोरट्रिस्टिस (Nyctanthes arbortristis Linn), (अ०) वीपिंग निक्टैन्थिस (Weeping Nyctanthes), नाइट् जैस्मीन (Night Jasmine)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष।

वर्णन—हर्रसिंगारके वृक्ष अपने सुन्दर और सुगंधित पुष्पोके लिए बगीचोमे लगाये जाते है। पत्ते गुडहलके जैसे और खर, पुष्पवृन्त लाल और पँखडियाँ सफेद होती है। फूल रातमे खिलते है और सवेरे झड जाते हैं। बीज (तुख्म हारसिंघार) गोल और चपटे होते है।

उपयुक्त अग—बीज और पत्ते।

रासायनिक संगठन—फूलमें निक्टेन्थीन नामक एक क्रिस्टली सत्व, पत्रमें ऐल्केलाइड, राल, पिपरमिन्ट की तरहका उत्पत्तेल १% और एमार्फस् ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—हब्ब हारसिंघार।

प्रकृति—पत्ते और छाल शीतल, मतान्तरसे पत्ते गरम, फूलकी डंडी दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क और फूल की सफेद पखडियाँ शीतल।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृदुत्तेजक, आनुलोमिक, शामक और त्वग्दोषहर है। पत्र सैन्टोनीन जैसे कृमिघ्न, कटुपौष्टिक, पित्तद्रावक और अनुलोमिक हैं। ६ से ७ माशे इसके नरम पत्ते (कोंपलें) पीसकर थोडेसे आदीके रसके साथ पीनेसे जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है। किन्तु तेल, दही, दूध, घी तथा मांस और मछली आदिसे परहेज करना चाहिए। सन्निश्रज्वरोंमें भी इनसे लाभ होता है। दाद, झाई और छीप आदिमें इसके पत्तोंके लेपसे उपकार होता है। फूलकी सफेद पंखडियाँ उष्ण प्रकृतिवालोंके हृदयको शक्ति देती है और दाहको शमन करती हैं। इसका गोंद, जड़ तथा फूलकी लाल डंडी वाजीकर है। इसकी डंडियोंके रंगसे रंगा कपडा पहिननेसे कामला दूर हो जाता है। इसके फूल सेवन करनेसे रक्तदोष मिटता है और रक्तार्श आराम होता है। इसकी छाल-को बारीक काटकर और पाँच कालीमिर्चोंके साथ पानीमें पीसकर पीनेसे भी अर्शमें लाभ होता है। इसके बीजोंका छिलका दूरकर और भीतरका सफेद मगज १ तोला और कालीमिर्च ३ माशा मिला पीसकर चना प्रमाणकी गोलियाँ बना लेवें। इसमें से तीन माशा लेकर सवेरे-सवेरे पानीसे एक सप्ताह तक सेवन करनेसे खूनी और बादी दोनो प्रकारके बवासीर जाते रहते है।

नव्यमत—हारशृंगार ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृदुत्तेजक, आनुलोमिक, शामक और त्वग्दोषहर है। पत्र सैन्टो-नीन जैसे कृमिघ्न, कटुपौष्टिक, पित्तद्रावक और अनुलोमिक है। ज्वरमें ताजी पत्तियोंका स्वरस और आदीका रस मधुके साथ देते है। कास और श्वास (दमा)में १-२ रत्ती पत्रचूर्ण नागरपानके साथ देते है। बीजको पानीमें पीस कर सिरके गजपर लगाते है। इस लेपसे जन्तु मरकर नये बाल उगते है।

●

(६३१) हर्शफ

फ़ैमिली कॉम्पोजीटी (Family Compositae)

नाम—(हि०, उ०) हाथीचक, हाथीचोक, अर्तचक, (अ०) अक्रब, खरीअ, हर्शफ, (फा०) कक (ग)र, (स०) हस्तिमिज, वज्रागी ? (व०) हाथीचोक, हाथीचक, (लॅ०) सीनारा स्कोलीमुस **Cynara scolymus** Linn), हेलिआन्थुस् ट्यूबेरोसुस् (**Helianthus tuberosus**), (अ०) आर्टिचोक (Artichoke)। निर्यास—(अ०) ककरजद, तुरावुलेके, (फा०) ककरजद, ककरी, समगे हर्शफ, (लॅ०) गूडेलीट्नीफोर्टीरेजिना **Gundeliae tournaefortii Resina**, (अ०) आर्टिचोक गम (Artichoke Gum)।

उत्पत्तिस्थान—सीमित मात्रामें इसके क्षुप समस्त भारतवर्षमें लगाये जाते है।

वर्णन—एक उद्भिज्ज जो ककरीली, पथरीली और आर्द्रभूमिमें होता है। बागी और जगली भेदसे हर्शफ २ प्रकारका होता है। बागी (बुस्तानी)की डालियाँ और पत्ते काहूकी डालियो और पत्तोके समान होते है। पत्ते प्राय काहूके पत्तोसे किंचित् चौडे और बडे होते है। उनपर द्रव होता है, जो हाथपर लगनेसे चिपकता है। 'जगली' हर्शफका बडा भेद है जिसे हर्शफ कबीर कहते है। इसके क्षुप बहुवार्षिक होते है। पत्ते बागीके पत्तोसे बहुत छोटे और बहुत काले रगके होते है। काड बागीकी अपेक्षया लम्बा होता है और उसपर बहुतसे काँटे होते है। काडके सिरेपर बडे अनारके बराबर एक पीले रगकी चीज होती है। बीज लबोतरा और जौ-से बडा होता है। स्वादमें यह कुस्वादु होता है। जडमें सुर्खीकी झलक होती है और किसी-किसीने इसे ही हब्बुल्ज़लम माना है।

यह चेपदार होती है । मात्र हर्शफसे यही अभिप्रेत है। इसके एक भेदमे कांटे नही होते। इससे स्रवित द्रवको जो इसका गोद है, तुराबुल्कुं कहते हैं । इसको फारसीमे कंगरजद और कगरी कहते है (कगर = हर्शफ, जद = गोद)। यह पीला एव लाल या सफेद किंचित् तिक्त होता है ।

रासायनिक सगठन—पुष्पमुण्डक (Flower-heads)मे इनूलिन (Inulin) नामक सत्व पाया जाता है जो मधुमेहियोके बहुत ही मूल्यवान् खाद्यपदार्थोंमेंसे है।

उपयुक्त अग—पत्ते, गोद और जड ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राही, वातानुलोमन, वाजीकर और मूत्रल है तथा वस्तिवृक्कको गरम करता है, वायुको विलीन और आहारका पाचन करता तथा फुफ्फुस, अन्त्रस्थव्रण और श्वित्र, चातुर्थक, शोथ (Dropsy) और आमवातके लिए उपकारक है । अपने प्रभावसे यह कक्षा और वक्षणस्थ दुर्गन्धिको नष्ट करता है। यही नही, अपितु यह सम्पूर्ण शरीरमें सुगन्धि उत्पन्न करता है तथा दुर्गंधित प्रकुथित द्रवोकी दुर्गंधिका नाश करता है। इसकी जडका काढा पानेसे भी उक्त लाभ होता है। शीतल प्रकृतिवालोके लिए यह बहुत उपकारक है। इसके लेपसे सूजन उतरती है और इन्द्रलुप विशेष (दाउस्सालब) में लाभ होता है। इसके पीनेसे खुजली मिटती है। इसके काढेसे शिर धोनेसे सिरकी भूसी जाती रहती है और जूएँ मर जाती हैं । अग्निसे जले हुए अगके ऊपर इस (बुस्तानी)की जडके लेप लगानेसे उपकार होता है । यह श्वास-कासमे भी उपकारक है। बागी हर्शफको पानी, सिकजबीन और शहदके साथ पीनेसे सरलतासे कै आ जाती है। यद्यपि यह आनाहहर है तथापि मद्यके साथ पीवेसे मूत्रातिप्रवृत्तिके कारण बिल्अर्ज कब्ज पैदा करता है। अहितकर—उष्ण प्रकृति एव मस्तिष्कको तथा आध्मानकारक एव उत्क्लेशकारक है। निवारण—तेल, सिरका एव उष्ण औषधियाँ। प्रतिनिधि—हलियून या कायफलकी जड और मैनफल। मात्रा—२ ग्रामसे ३ ग्राम और ४ ग्रामसे ६ ग्राम (२-३ माशेसे ४-६ माशे)।

गोद—

गरम पानी और सिकजबीनके साथ पीनेसे पित्त और कफका वमन द्वारा निर्हरण करता है। इसका लेप श्वयथुविलयन, सग्राही एव वाजीकर है और प्राय शीतल व्याधियोका शामक है। अहितकर—उरोमस्तिष्कको। निवारण—तेल और ताजा दूध। प्रतिनिधि—जौजुलकै (मैनफल)। मात्रा २ ग्रामसे ६ ग्राम (२ माशासे ६ माशा) तक।

●

(६३२) हलदी

फ़ैमिली स्कीटामिनासे (Family Scitaminaceae)

नाम—(हिं०,द०) हलदी, हरदी, हलद, (यू०) Chelidonion (D 2/2½, 2/2), (अ०) अल् उरुकुल्-सुफ्र (इ०बै०), उरूकुल् सब्बागीन, बकलतुल् खुतातीफ (इ०बै० ३/११९), (फा०) जर्दचोब(ब), दारजर्द, (स०) हरिद्रा (च०,सु०), निशा (कै०नि०), (ब०) हलुद, (क०) लेदिर, लिधर, (कु०) हल्दो, (गु०,प०) हलदर, (म०) हलद; (प०) हरदल, हरधल, (ले०) कूर्कूमा डोमेस्टिका **Curcuma domestica** Vahl (पर्याय—*C longa* L), (अ०) टर्मेरिक (Turmeric)। भेद—जगली हल्दी (C **aromatica** Salisb)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण एशिया। समस्त भारतवर्षमे इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह १½ से २ हाथ ऊँचे आदीकी तरहके एक गुल्मकी प्रसिद्ध सुखाई हुई पीले रंगकी गाँठ (पाताली जड) है जो बाजारमें मिलती है और औषधके काममें आती है।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल १%, राल, हारिद्रिक या कुर्कुमिन (Curcumin) नामक पीतरंजन द्रव्य, हरिद्रा तेल (Turmeric oil) या 'टर्मेरोल' प्रभृति उपादान होते हैं। हरिद्रा तेल एक गाढा पीला और चिपचिपा तेल है जिसपर इसकी गंध और सुगन्धित स्वाद निर्भर करता है।

कल्प तथा योग—सफूफ दमा हलदी।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष (ध०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्मनिस्सारक, वाहिन्युद्घाटक, व्रणलेखन, कृमिघ्न, विलयन, संशमन, रक्त-शोधक, लेखन और वर्णप्रसादन (मुहस्सिनलौन) है। बाह्यत इसे चोटके स्थानपर लगाते हैं। यकृतके रोगोंमें यह लताके रूपमें उपकारक है। श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण यह कास एवं कफज कृच्छ्रश्वासमें प्रयुक्त होती है। लेखन और वर्णप्रसादन होनेके कारण इसे उबटनमें मिलाकर उपयोग करते हैं तथा अन्य त्वग्रोगों यथा खुजली आदिमें तिलाकी भांति भी प्रयुक्त होती है। रक्तप्रसादन होनेके कारण त्वचाके रोगोंमें चूर्ण एवं फाटके रूपमें इसका उपयोग कराते हैं। वाहिन्युद्घाटक होनेके कारण यह अवरोधजन्य कामला और जलोदरमें प्रयुक्त होती है। व्रण-लेखन होनेके कारण इसे व्रणोंपर छिडकते हैं तथा यह मरहमोंमें डाली जाती है। यदि व्रणमें कीडे पड गये हो तो यह उनको मारकर और व्रणको शुद्ध करके सुखा देती है। आघातप्रत्याघात (जरबा व सक्ता)में इसे अर्धभृष्ट करके चूर्ण बनाकर दूधके साथ खिलाते हैं और बाहरी तौर पर चोटके स्थानपर लेप करते हैं। लेखन होनेके कारण कच्छू एवं नेत्रशुक्लमें अंजनकी भाँति यह उपयोगकी जाती है। रक्तष्ठीवन एवं जीर्णज्वरमें भी यह लाभ करती है। अहितकर—हृदयके लिये। निवारण—बिजौरा और नीबूका रस। प्रतिनिधि—मजीठ। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम या १ माशेसे ३ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—हलदी तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, वर्ण्य, लेखन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, विषघ्न शोधन तथा कफ, पित्त, पीनस, अरुचि, कुष्ठ, कण्डू, विष, प्रमेह, व्रण, कृमि, पाण्डुरोग और अपचीको दूर करनेवाली है। (च०सू०अ० २,वि०अ० ८, सु०सू०अ० ३९,ध०नि०,कै०नि०)।

नव्यमत—हलदी कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, ग्राही वातनाशक, त्वग्दोषहर, कांतिवर्धक, व्रणशोधन, व्रणरोपण और स्तन्यशोधन है। यह श्लेष्मल त्वचामें रूक्षता लाती है और कफको कम करती है। इसलिये जब श्लेष्मकलासे आवश्यकतासे अधिक कफका स्राव होता है तब इसे देते हैं। प्रमेहमें जब मूत्र गदला, थोड़ा-थोडा और बार-बार होता है तब हलदी और आँवलेके काढेसे बहुत लाभ होता है। प्रदरमें हलदी और गूगल अथवा हलदी और रसवत देते हैं। नेत्राभिष्यंदमें एक भाग हलदीको दस भाग जलमें पका, कपडेसे छानकर उसका नेत्रमें आश्च्योतन करने और उसमें भिगोये हुए कपडेकी गुद्दी आँखपर रखनेसे आँखमें ठंढक प्रतीत होती है, पीडा कम होती तथा कीचड और पूय आना कम हो जाता है। सूजे हुए मस्सेपर हलदीको घीकुआरके रसमें पीसकर लगानेसे उपकार होता है। हलदीके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर मलनेसे त्वचा नरम होती है और बहुतसे त्वग्रोग नष्ट होते हैं। व्रणपर हलदीका चूर्ण बुरकनेसे व्रण संकुचित होता है और भर आता है। मार-चोट एवं अप-घातोंमें हलदी और गुड खानेको देते हैं और उसका लेप करते हैं।

(६३३) हलियून

फ़ैमिली लीलिआसे (Family · Liliaceae)

नाम—(भा०बा०, हिं०, रु०) हल्यून, हलियून; (अ०) इस्फेराज, खशबुलहृय्य , (फा०) मारगियाह, मारचोब, (ले०) आस्पारागुस् आफ्फ़ीसिनालिस (**Asparagus officinalis** Linn), (अं०) ऐस्पेरेगस (Asparagus, स्पेरेज (Sperage), स्पैरोग्रास (Sparrow Grass) । वक्तव्य—इसको यूनानीमें "आस्फारगीन" और किसीके मतसे हिंदीमे "नागदौन" कहते हैं । जगली हलियूनको लैटिनमे आस्पारागुस् टेनुईफोलिउस् (A **tenuifolius** L) कहते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—फारस और उत्तर भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक झाड है जिसकी पत्ती सौंफकी तरह तथा जड़ लगभग ५ से० मी० (२ इञ्च) लम्बी, १ २५ से०मी० से १ ८७५ सें०मी० (½ इञ्च से ¾ इञ्च) मोटी, आभ्यतरिक रचना ढीली और स्तरित (Laminate) होती है । जड़से लबे दबे हुए, चिमडे (Tough) उपमूल (Rootlets) निकले होते हैं जो कई इञ्च लबे ⅛ इञ्च व्यासके, लगभग पोले होते हैं । स्वाद फीका (Insipid) तथा निर्गध होता है। फल गोल, मटराकृति, त्रिकोषयुक्त प्रत्येक कोषमे १-२ कडे गोल या काले दानेको तरह बीज होते हैं । कच्चा फल हरा, पका फल लाल या काला होता है। इसकी जड और फल (बीज तुख्मे मारचोब., बज्रुल् हलियून) औषधके काममें आते हैं । बाजारमें हलियूनके नामसे इसकेछोटे सूखे फल मिलते है, जिनका आयात यहाँ फारससे होता है ।

रासायनिक सगठन—जडमे ऐस्पेरेगिन (Asparagin), एक हरापन लिए पीला राल, शर्करा, निर्यास, ऐल्ब्युमेन, क्लोराइड्स, एसीटेट और फास्फेट आफ पोटास, मैलेट्स आदि और फलमे द्राक्षशर्करा एव स्पेर्गेन्सिन (Spargancin), एक रजन द्रव्य, बीजमे उत्पत् तेल, एक सुगन्धित राल, शर्करा और स्पेर्गिन (Spargin) नामक एक तिक्त सत्व आदि होते हैं ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुणकर्म तथा उपयोग—विलयन, अवरोधोद्घाटक, मूत्रार्तवजनन, बस्तिवृक्काश्मरी-निर्हरणकर्ता, शुक्रल और वाजीकर है । विलयन, अवरोधोद्घाटक एव प्रवर्तक होनेके कारण कतिपय कफज रोगोको दूर करने, यकृत् एव वृक्कके अवरोधोद्घाटन, कामलानाशन तथा बस्ति एव वृक्कगत अश्मरीके निकालनेके लिए इसका उपयोग करते हैं । रुद्धार्तव तथा कष्टप्रसूतिको दूर करनेके लिए भी देते हैं । शुक्रल एव वाजीकर होनेके कारण इसे नपुसकताकी औषधिमें डालते है । मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक ।

नव्यमत—मृदुसारक, मूत्रल, अवसादक और हृद्य । कहते है कि इसके सेवनसे प्रभूत मूत्रस्राव होता है, इसलिये शोथ,हृदय वृद्धि आदि में इसके सेवनकी अभ्यर्थना करते हैं। इसका ताजा रस चायके चम्मचभर देना चाहिये। स्वादके विचारसे इसका शर्बत बनाकर १-२ चायके चम्मच भर देवें । इसकी नई कोपले खानेके काम भी आती है।

(६३४) हशीशतुद्दीनार

फेमिली मोरासे (Family Moraceae)

नाम—(अ०) हशीशतुद्दीनार, (लै०) हुमुलुस् लूपुलुस् (**Humulus lupulus** Linn.), (अं०) हाप्स (Hops)।

वक्तव्य—मुहीत आजम प्रभृति यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमें 'कुसूस' का सुरयानी नाम 'दीनार' लिखा है और शर्बत दीनारमे भी तुख्मकुसूस पडते हैं। परतु उपर्युक्त औषधि उससे भिन्न है। कुसूस इसका पर्याय नाम नही है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमेरिका और कदाचित् उत्तरी एशिया। उत्तरपश्चिमी हिमालय, कश्मीर, देहरादून, इग्लैड आदि देशोमें इसकी खेती की जाती है। केंट (Kent) प्रमुख देश है जहाँ इसकी अधिक खेती की जाती है। अन्य सभीसे इग्लैडमे होनेवाला श्रेष्ठतर होता है।

वर्णन—एक लता, शाखा रोगटेदार, पत्र दतुर, लम्बे और नुकीले जिसपर सिराये व्यक्त होती है। इसके सूखे फल औषधके काममें लिए जाते हैं जो न्यूनाधिक टूटे हुए होते हैं। बिना टूटा हुआ अर्थात् समूचा, कटोरी और पखडोरहित पत्रसम स्त्री-पुष्पोकी बाली (Leafy female catkin or strobile) लगभग १ से १½ इञ्च लम्बी और ¾–१ इञ्च चौडी, अण्डाकार होती है, जिसमें झिल्लीदार छिलके (सेहरे) होते है जो पिलाई लिये हुरे, अण्डाकार (Oval) और ½ इञ्च लम्बे और जालीनुमा सिराओसे युक्त (Reticulate-veined) होते है। ये सेहरे (Scales) दो प्रकारके होते है। एक आधारपर सम (Equal), दूसरा विषम (Unequal)। इनमें पिछले सेहरे (Latter) नतोदर, आधार पर एक छोटा बीजसम फल होता है जिसके ऊपर पिलाई लिये चमकीली ग्रन्थियाँ बिखरी हुई होती हैं। स्वाद तिक्त (Valerian) सुरुचिपूर्ण, गन्ध सुगन्धमय, पुराने पुष्पोकी बाली (Catkins) वालछडकी गन्धका स्मरण दिलाती है। जब छानकर इन तेल ग्रन्थियोको पृथक् कर लेते हैं, तब उनको लूपूलिन (Lupulin) कहते है। 'हॉप्स' फलका नाम है।

रासायनिक सगठन—उत्पत् तेल, एक तिक्त सत्व, कोलीन (Choline), लूपूलिन (**Lupulin**)–फल या हॉप्ससे पृथक् की हुई सेहरा(पुष्प)गत ग्रन्थियाँ प्रभृति। ये फल खेती द्वारा उत्पन्न पौधोसे लिए जाते है।

उपयुक्त अग—पुष्प (Strobiles)। लूपूलिनकी मात्रा–१२० से ३०० मि० ग्रा० (१रत्ती–२½ रत्ती)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, (सार्वदैहिक और आमाशय), वेदनाहर, मूत्रल, सुरुचिपूर्ण तिक्त, दीपन और निद्रल है। अपचन, दौर्बल्य, कृमि, वातिक अवस्था आदिमें साधारणत अन्यान्य औषधियोके साथ इसका उपयोग करते है। यह अतानी दुष्पचन (Atonic dyspepsia) में गुणकारी है। अनिद्रा और वातिक सक्षोभ (Nervous irritation) में रोगीके सिरके नीचे यदि रूईकी जगह हॉप्स (Hops) से भरी हुई तकिया रखी जाय तो प्राय लाभ होता है। १ पाइण्ट उबाले हुए पानीमें २½ तोला हशीशतुद्दीनार डालकर बनाया हुआ फाण्ट शराबकी एक प्यालीकी मात्रामें सेवन करनेसे सार्वदैहिक दुर्बलता दूर होती और क्षोभका निवारण होता (सार्वदैहिक बल्य और अवसादक) है। हॉप्सके योग या इसके प्रधान वीर्य लूपूलिनको स्त्री और पुरुष दोनोके कामोन्माद, नाडीगत-क्षोभ और प्रलाप प्रभृति रोगोमें शामक औषधिकी भाँति देनेसे प्राय लाभ होता है। मद्यपानकी इच्छा कभी-कभी इसके सेवनसे शात हो जाती है। हॉप्सको औषधकी भाँति बहुत कम प्रयोगमे लेते है। किंतु बीयर शराब जिसमें कि हॉप्स पडते है क्षुधाभिजनन और पाचन औषधिकी भाँति विशेषत ऐसे रोगियोको जो रोगसे मुक्त हुए हो और दौर्बल्यके कारक भोजन पचा न सकते हो, सेवन कराते है, जिससे कभी-कभी बडा उपकार होता है। क्योकि बलवर्धनके सिवाय इससे नीद भी खूब आने लगती है। अतएव स्वास्थ्यका सुधार अतिशीघ्र होता है।

●

(६३५) हाऊबेर

फ़ैमिली · कूप्रेसासे (Family · Cupressaceae)

नाम—(हिं०) हाऊबेर, हूबेर; (शा० या०) हब्बुल् अरअर, (यू०) Brathu (D. 1 104), आगक्युथिस; (अ०) अल् अबहल (इ० बै०), हब्बुल् अरअर, समरतुल् अरअर, अबहल, (फा०) तुख्म ग्हल, समर सरोकोही, (स०) हपुषा; (क०) पथुर, (बम्ब०) अबहल, (प०) अबहल, हाऊबेर, पामा, (लै०) जूनिपेरी फ्रुक्टुस् (Juniperi Fructus); (अं०) जूनिपर बेरीज (Juniper berries)।

वक्तव्य—(१) वृक्षको लैटिनमें जूनीपेरुम् कोम्मूनिस् (Juniperus communis L) कहते हैं। विदेशी भेद सभवत J sabina है। (२) बूअलीसीनाके मतमे यह शज्रतुल् अरअर है (कानून १/२४८), परन्तु इब्नुल्-बैतारने इसे गलत बताया है (इ० बै १।६)। शज्रतुल्लाह जो साधारणतया देवदारके नाममे जाना जाता है, इसका एक भेद है (इ० बै० सचिका २, पृ० २०)।

इतिहास—यह ओषधि यूनानमें उत्पन्न होती है, अतएव प्राचीन यूनानवासियोंको इसका अवश्य ज्ञान होना चाहिए। परन्तु दीसकूरीदूसने जो दो प्रकारके आगक्युस (हाऊबेर)का उल्लेख किया है, उनमें परस्पर भेद करना कठिन है। सुतरा बुकरात किसी प्रकारके हाऊबेरको कतिपय गर्भाशयिक रोगोमें अवश्य प्रयोग करता था। दीस-कूरीदूसने इसके मूत्रार्तवजनन एव पाचन गुणका उल्लेख किया है। इसकी भस्म कतिपय त्वग्रोगोमें बाह्यत भी प्रयुक्त होती थी। इब्नसीनाने सर्वथा दीसकूरीदूसका अनुकरण किया है और इस ओषधिके सम्बन्धमें कुछ अधिक नही लिखा। यद्यपि हिमालयपर्वत पर कई प्रकारका हाऊबेर वृक्ष होता है। परतु ज्ञात होता है कि भारतीय आर्य वैद्योने इसका वैद्यकीय उपयोग नही किया। अधुना केवल हपुपातैल मूत्रजनन आदिके रूपमें यूरोपमें प्रयुक्त है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालय, कुमाऊँ और कुर्रमकी घाटीमें समुद्रके धरातलसे ११,००० फुट-की ऊँचाईपर तथा फारसमें इसके वृक्ष होते हैं। उत्तर यूरोप और ईरानमें भी होते हैं।

वर्णन—इसका वृक्ष बडा होता है। इसके यह दो भेद है—(१) इसके पत्ते सरोके पत्तेकी तरह और (२) इसके पत्ते झाऊके पत्तेकी तरह और वृक्ष पहले भेदके वृक्षसे छोटे होते हैं। इन दोनोका फल लगभग गोल, जंगली बेरके बराबर और लाल रगका होता है और उसके भीतर कई बीज होते है। पकनेपर इसका छिलका काले रगका हो जाता है। फलोमें कुछ-कुछ बलसाँकी तरह सुगन्ध और मधुर, तारपीनवत् कुछ तिक्त एवं हलका चरपरा स्वाद होता है। यह फल ही ओषधके काममे आता है जिसे अबहल कहते हैं। यद्यपि भारतवर्षमें कई जातिके हूबेरके वृक्ष होते है, तथापि भारतीय बाजारोमे मिलनेवाला हूबेर सर्वथा बाहरसे ही आता है।

रासायनिक सगठन—फलमें एक उत्पत् तेल (रोगन अरअर—Juniper oil), ० २५% से ३ २४%; द्राक्षशर्करा ३०%, राल १०%, एक अस्फटिकीम सत्व जूनीपेरिन (Juniperin), वसा, मोम, प्रोभूजिद ४ प्रतिशत, मैलेट्स, टार्मिक एसिड (Tormic acid) और शुक्ताम्ल (Acetic acid) आदि उपादान होते हैं।

उपयुक्त अग—फल (जिसे साधारणतया बेरी कहते है), फलोत्थ तैल (Oil Juniper), और काष्ठ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०, कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उग्र विलयन, उपशोषण, लेखन, दीपन, वातानुलोमन, तारल्यजनन, प्रमाथी, हलका सग्राही, प्रवल प्रवर्तक और विशेषकर मूत्रार्तवजनन है। श्वयथुविलयन होनेके कारण कतिपय प्रकारके शोथोमें यह लेपके रूपमे प्रयुक्त होता है। लेखन एव रूक्षण होनेके कारण गोश्तखोरा, परिसर्पी व्रणो तथा चिरज दुर्गन्धयुक्त व्रणोमे यह अवचूर्णन एव तिलाके रूपमें उपयोग किया जाता है। लेखन होनेके कारण यह त्वचाकी

श्यामता एव मलादिको शुद्ध करता है। श्वयथुविलयन, तारल्यजनन और प्रमाथी होनेके कारण यह पक्षवध, वातनाडीघात और कष्टश्वासमे उपकारक है। दीपन और वातानुलोमन होनेके कारण यह पेटकी गुडगुडाहट और आमाशयके रोगोमें प्रयुक्त होता है। इन गुणोके साथ इसमे सूक्ष्म कब्ज भी है। अतएव यह सग्रहणीमे लाभदायक है। यह प्रवर्तक है। अतएव बस्ति एव वृक्कके रोगोमे लाभदायक है तथा मूत्रार्तवजननार्थ उपयोग किया जाता है। मूत्रजनन कर्ममे यह इतना शक्तिशाली है कि इसके निरन्तर पुष्कल उपयोगसे रक्तमूत्र हो जाता है। गर्भवतीको इसका निरन्तर दीर्घकाल तक उपयोग करानेसे गर्भपात हो जाता है। तारल्यजनन और प्रमाथी होनेसे इसको तेलमें पकाकर और छानकर गुनगुना कानमे टपकानेसे ऊँचा सुनने (सुक्लसमाअत)मे लाभ होता है। सक्षोभसहित तीक्ष्ण होनेसे यह उदरज कृमियोको मार डालता एव उनका निर्हरण करता है। अहितकर—गर्भशातक है। प्रतिनिधि—आर्तवजननमे सुदावकी पत्ती। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—हाऊवेर कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, गुरु, दीपन तथा वायु, कफ, प्रदर, मलावरोध, शूल, गुल्म, अर्श और ग्रहणीको दूर करनेवाला है। (रा० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—हाऊवेर वातनाशक, उत्तम उत्तेजक और मूत्रजनन है। इसकी क्रिया साक्षात् वृक्कपर होती है और इससे मूत्रकी राशि बढती है। यकृदुदर, जलोदर, हृदयोदर, पुराना सूजाक, श्वेतप्रदर और उदरशूलमें इसका प्रयोग करते है।

•

(६३६) हाथीसुंडी

फैमिली : बोराजिनासे (Family Boraginaceae)

नाम—(हिं०) हाथीसुंडी, (हिं०, ब०) हाथीसूँड, (स०) हस्तिशुण्डा(ण्डिका), (–डि), (गु०) हाथीसुढ, (म०, बम्ब०) भुरुडी, (लै०) हेलिओट्रोपिडम् इंडिकुम् (**Heliotropium indicum** Linn); (अ०) इडियन टर्न-सोल (Indian Turn-sole)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषकर आर्द्र भूमि में।

वर्णन—इसके खुर-खुर क्षुप होते है। पत्तियाँ लट्वाकार या लट्वाकार-आयताकार, २ इचसे ४ इञ्च लम्बी, पुष्पमजरी हाथीसूँडकी तरह टेढी रहती है। पुष्प पक्तियोमें और हलके जामुनी रगके होते है। स्वाद चरपरा।

उपयुक्त अग—क्षुप और पत्र।

रासायनिक सगठन—इसमे कषायिन, एक सैद्रियक अम्ल और एक ऐल्केलॉइड। मात्रा—स्वरस ½ से १ तोला।

प्रकृति—उष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सग्राहक, वेदनास्थापन, व्रणशोधन एव रोपण, (क्षुप) मूत्रजनन है। फोडे-फुन्सी (Boils), व्रण, क्षत और कीट एव सरीसृपदशमें इसकी पत्तियोका उपयोग करते है। ज्वर छुडानेके लिए २ से १० माशे तक पत्रका चूर्ण दिया जाता है। मसूढोकी सूजन या छाले और मुँहके ऊपरकी फुसियाँ मिटानेके लिए इसके पत्तोके रसका लेप करते है। इसका पत्रस्वरस लगानेसे शीघ्र व्रणका शोधन रोपण होता है। इसके पत्तोके रसको रेडीके तेलमे डाल औटाकर विच्छूके दशस्थानपर लगानेसे विष उतर जाता है। पागल कुत्तेका विष उतारनेके लिए इस तेलका प्रयोग असीम गुणकारी सिद्ध होता है।

आयुर्वेदीय मत—हाथीशुण्डी कटु, उष्णवीर्य तथा सन्निपातज्वरनाशक है। (रा० नि०)।

नव्यमत—हाथीसुण्डीका स्थानीय (प्रलेप) वेदनाहर है। इसकी पत्तीका स्वरस रेंडीके तेलके साथ पकाकर लगानेसे विच्छूके दंशकी पीडा और पागल कुत्तेके काटनेसे हुआ क्षत आराम होता है। पीडायुक्त मसूढेकी सूजन और मुखगत पिम्पलमें इसकी पत्तियोका उपयोग करनेसे उपकार होता है। (आर० एन० खोरी-खड २, पृ० ४२२)।

●

(६३७) हालिम, हालों

फैमिली : क्रूसीफ़ेरी (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०) हालिम, हालो, चसुर, चद्रसु(सू)र; (यू०) कार्डामोन Kordamon (D 2 186), (अ०) अल्हुर्फ़ (इ० वै०), हुर्फ़बावली, मकलियासा, हब्बुर्रशाद, (फा०) तुख्म इस्पदान, सिपदान, तुख्म सिपंदान, तुख्म तु(न)रहतेजक; (स०) चन्द्रशूर, महालिम, (क०) तरिवुद, (व०) हालिम, (म०) अहालीव, (गु०) अशेलियो, (प०) हालो, हालिया, (मा०) अमालियो, (सिंघ) आहियो, (का०) अलवि; (ले०) लेपीडिडम् साटीवुम् (**Lepidium sativum**, L), (अ०) कॉमन क्रेस (Common Cress), वॉटर या गार्डेन क्रेस (Water or Garden Cress)।

वक्तव्य—कोई-कोई भुने हुए हालो (हुर्फ़)को 'मुकलयासा' कहते है। (इ० वै०, ४/१६३)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्पमें इसकी खेती की जाती है। और इसके बीज भारतके सभी बडे बाजारोमें बिकते है। 'अस्सालिअ' नामसे इसके विदेशी बीज बम्बईमें फारससे आते है।

वर्णन—यह १ फुटसे १½ फुट ऊँचे क्षुपके प्रसिद्ध बीज है जो औपधके काममे आते हैं, फूल सफेद गुलाबी होता है। बीज छोटे, लाल या ललाई लिए भूरे वा पिलाई लिए सफेद, अडाकार या लवगोल (आयताकार) होते है। स्वाद लवाबी, पिच्छिलतायुक्त और हलका चरपरा, गध हलकी, विशेप प्रकारकी एव रुचिकर होती है। मात्र 'हुर्फ़' या 'हालो' नामसे ये बीज ही अभिप्रेत होते है। पानीमें भिगोनेसे इसमे लवाब (पिच्छा) उत्पन्न होता है।

रासायनिक सगठन—बीजमे एक उत्पत् सुगधित तेल, गुणोत्पादक वीर्य एव वसामय तेल तथा एक कार्मुक वीर्य होता है। पञ्चाङ्गमें आयोडीन, लोह, फॉस्फेट्स, पोटास और अन्य लवण, एक तिक्त सत्व, जल और काफी गधक होती है।

कल्प तथा योग—इसके भुने हुये बीजको सुरयानी (Syrian) भाषामे 'मकूलियासा' कहते है। सफूफ मक्लियासामें यह पडता है, इसलिये इसे उक्त नामसे अभिधानित किया जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण कर्म—श्लेष्मनिस्सारक, क्षुधाजनक, मूत्रार्तवजनन, उदरकृमिनाशन, गर्भानिःसारक, लेखन, शोणितोत्क्लेशक, श्वयथुविलयन और विशेपकर वाजाकर है। उपयोग—श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण हालो (तुख्मे हुर्फ़)को श्वास और कासमें देते है तथा अन्त्र एव आमाशयके रोगो और कामावसाद (जोफबाह)मे देते है। किलास, झाई और छीप आदिको नष्ट करने तथा कतिपय सूजनोको उतारनेके लिए इसका तिला या लेप लगाते है। ये पुष्टिकर माने जाते है। प्रवाहिका, ग्रहणी और चर्मरोगोमे भी इनका व्यवहार होता है। अहितकर—मूत्रपिंडोको। निवारण—शर्करा और खीरा-ककडीके बीज। प्रतिनिधि—राई। मात्रा—२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—चन्द्रशूर बल्य, वाजीकर, पौष्टिक, स्तन्यवर्धक तथा हिक्का, वातविकार, वातशूल, वातगुल्म, कफ और अतिसारका नाश करनेवाला है। (शो० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—हिक्कामे चन्द्रशूरका फांट देते है। चद्रशूरके बीजोकी यवागू बनाकर प्रसूता स्त्रियोको देते है। इसके बीजोको दूधमे पकाकर पीनेसे कमरका दर्द आराम होता है। कटि और सन्धिस्थानके दर्दमे इसका लेप करते है। (औ० स०)।

●

(६३८) हाशा

फ़ैमिली : ल़ाबिआटी (Family . Labiatae)

नाम—(हिं०, भा० बाजा०) हाशा, जगली पुदीना; (यू०) थुमोस Thumos (D. 3 38), एरपुल्लोस, एर्पिलोस (Erpylos), (अ०) अल्हाशा, हास्स , हाशा, अल् मामून, सातरुल्हमीर, सनोवरुल् हिमार, नम्माम, (फा०) पूदन कोही, (प०) माशो, (बम्ब०) इपान, (ले०) थीमुस् सेर्पील्लुम् **Thymus serpyllum Linn**), (अ०) थाइम (Thyme), वॉइल्ड थाइम (Wild Thyme), मदर ऑफ थाइम् (Mother of Thyme), सर्पिल्लम् (Serpyllum)। वक्तव्य—लेटिन 'थीमुस' यूनानी 'थूमोस' से जिसका अरबी रूपान्तर 'सूमस' है और 'थुमोस' स्वय 'तवाद' (=धूनी देना, धूपन)से व्युत्पन्न है। प्राचीन यूनानी हाशाका उपयोग धूनीमे करते थे। इसीलिए इसका उक्त नाम पडा। अत्यन्त तीक्ष्ण गध होनेसे इसकी गध छिपायी नही जा सकती, इसलिए इसको नम्माम कहते है। किसी-किसीने नम्माम को 'हाशाका एक भेद' लिखा है।

इतिहास—'थूमोस (Thumos)' के नामसे दीसकूरीदूस (D 3 38)ने 'पूदन कोही' अर्थात् 'हाशा'का वर्णन किया है। यद्यपि कतिपय प्राचीन चिकित्साविशारदोमे इसके स्वरूप वर्णनमें मतभिन्नता पायी जाती है, तथापि शैखुर्रईसने हाशाको इसका पर्याय लिखा है और उसके वही गुणकर्म लिखे है जो दीसकूरीदूसने थूमोसके लिखे है। हाजी जीनुल् अत्तारने इसके गुणकर्म वर्णनमें शैखका अनुकरण किया है। हाशाके नामसे मख़्ज़नुल्अदविया और मुहीतआजममे इसका वर्णन किया है तथा इसकी यूनानी सज्ञा 'थूमोस (Thumos)' लिखी है। प्राचीन यूनानी चिकित्सक इसके कोथप्रतिबधक गुणसे अभिज्ञ थे। इसीलिए वह इसको धूपनके रूपमे प्रयोग करते थे।

वर्णन—यह लगभग एक बित्ता ऊँचा, पहाडी पुदीनेकी जातिका एक छोटा, सुवासित और कोमल क्षुप है। शाखायें पुष्कल बारीक बारीक होती हैं और उनपर छोटे-छोटे अवृत और लम्बगोल पत्र लगते है जिनपर तेलसे भरी हुई ग्रंथियाँ और रूईके समान बारीक रोआँ होता है। फूल अनेक दलबद्ध छोटा-सा गोल ललाई वा बनफ़्शाई लिए (किरमिजी) और बीज राईसे छोटे होते है।

उपयुक्त अग—पचाग।

रासायनिक सगठन—इसमे एक मनोहर सुगंधित उत्पत् तेल, कषाय द्रव्य और निर्यास होता है। इसके वर्तमान उत्पत् तेलसे थोडा थाइमोल (थाइम कैम्फर) प्राप्त होता है, किंतु यूरोपमें बहुधा यह थाइमस वुल्गारिस (**Thymus vulgaris Linn**)से प्राप्त किया जाता है, जिसमे यह विपुल होता है। एशिया और भारतवर्षमे यह अजवायन और अजमोदेसे प्राप्त किया जाता है। इसलिए थाइमोलको हिन्दुस्तानमें अजवायनका फूल या अजवायनका (सत) कहते है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और तीसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—त्वचाकोथप्रतिबन्धक होनेसे हाशा प्रायश. त्वचाके रोगोमें कोथप्रतिबन्धक रूपमें प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त यह स्वेदन कर्म करता है, तथा जमे हुए रक्तको द्रवीभूत करता और सूजन उतारता है। मूत्रसस्थान सभवत मूत्रपिंडो तथा गर्भाशयपर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। अतएव यह मूत्र तथा आर्तवका प्रवर्तन करता है। अधिकमात्रामे सेवन करनेसे यह गर्भ तथा अपराका निर्हरण करता है। श्वासोच्छ्वास सस्थान-पर भी इसका उत्तेजक प्रभाव होता है तथा यह श्लेष्मनिर्हरण कर्म करता है। आहार-सस्थान-समस्त आहारावयवोमें यह उत्तेजना पैदा करता है, वायुका उत्सर्ग कर देता है, अन्त्रमे उत्तेजना पैदा करके विरेक लाता है, तथा उदरजक्रिमि विशेषकर अकुशमुखक्रमिको मार डालता है। इसका उक्त कर्म अत्यन्त तीव्र होता है। अस्तु, हाशा एक कृमिघ्न औषधि है। नमक और सिरकेके साथ पीनेसे हाशा विरेक लाता है और उदरज कृमिको नष्ट करके उत्सर्गित करता है। शहदमें मिलाकर चाटनेसे या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पक्षवध, अर्दित, विस्मृति, अपतानक और अपस्मारमे लाभ करता है। श्वास और कासमें कफको उत्सर्गित करके लाभ पहुँचाता है। यह शूल तथा उदरानाहको नष्ट करता है एव यकृदामाशयके दौर्बल्यको दूर करता तथा पाचन-शक्तिकी सहायता करता है। मूत्रार्तवजनन और अपरानिर्हरणके लिए इसका क्वाथ मधु मिलाकर पिलाते है। सूजन उतारने, जमे हुए रक्तको पिघलाने तथा न्यच्छ (नमश) और चर्मकील (सालील)को नष्ट करनेके लिए इसे सिरकेमें पीसकर लगाते है। कोथप्रतिवधक होनेके कारण दद्रु, गज, खालित्य, चम्बल एव पामा जैसे रोगोमें इसको तिलके तेलमे पकाकर लगानेसे उपकार होता है। इसको पास रखनेसे इसकी गन्धसे मच्छर भाग जाते है। यह विशेषत विरेचन, कृमिनाशन, कोष्ठागोको बलप्रद है तथा कफरोगोमें गुणदायक है। अहितकर—फुफ्फुसोको। निवारण—नाना और नीले वशलोचन। प्रतिनिधि—अफ्तीमून और सातर। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(६३९) हिरनखुरी

फैमिली कॉन्वाल्वुलासे (Family Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) हिरनखुरी, हिरनपद(दी), सेवटा (-चुनार), सामवेल (-साधु), (गु०) नारी, (म०) हरन-पग, हिरणपग, चादवेल, (प०) लहली, वँउडी, (सि०) हिरणपग, (ले०) कॉन्वॉल्वुलुम् आर्वेन्सिस (Convolvulus arvensis Linn), (अ०) स्मॉल बाइंड-वीड (Small Bind-weed) दे० 'सकमूनिया'।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमे प्राय जोते-बोये खेतोमें विशेषकर पजाब और उत्तरप्रदेशमें होती है।

वर्णन—यह एक छोटी लता है जिसकी शाखाएँ धागेकी तरह बारीक होती है और अपने पासकी वस्तु-पर लिपट जाती है। इसके तोडनेपर सफेद दूधकी बूंद निकलता है। इसके पत्ते हिरनके खुरसे मिलते-जुलते और फूल कटोरीनुमा गुलाबी लिए सफेद होते है। इसके हरएक अगका स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अग—पचाग।

रासायनिक सगठन—इसमें कन्वॉल्वुलिन (Convolvulin) नामक सत्त्व होता है। पौधेमें तीव्र विरेचन-गुणवाला एक राळदार पदार्थ भी होता है जो सूखी हुई जडमें ४ ९% होती है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (मतातरमे गरम और तर) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक तथा व्रणशोथपाचन एवं विलयन है। रक्तशोधनके निमित्त हिरनखुरीको कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ घोटकर या उसमें फाटका निथरा हुआ पानी (आबे जुलाल) लेकर खर्जू, कुष्ठ, फिरङ्ग आदि रक्तविकारजन्य रोगोंमें पिलाते हैं। कोई-कोई सूजाकमें भी इसका उपयोग कराते हैं। सूजनपर इसे पीसकर लेप करते हैं। इससे सूजन उतर जाती है या इसके निरन्तर लेप करनेसे पककर फूट जाती है। मात्रा–११ से १२ ग्राम (१ तोला)।

(६४०) हिरवी (हिरवी)

फैमिली : गुट्टीफेरे (Family · Guttiferae)

नाम—(म०, हि०) हिरवी, (न०) हिमावली, हिमावती, हिमावली। (मूल) स्वर्णक्षीरीमूल; (ले०) गार्सीनिआ मोरेला (Garcinia morella Desv (–the root of)।

वक्तव्य—बुसरेको भी हिरवी कहते हैं। वि० दे० "उसारेरेवन्द"।

वर्णन—मोरपताइदुर्राके मतसे यह कश्मीरके पर्वतोंमें बहुतायतसे होनेवाले एक भारतीय वृक्षकी जड़ है जिससे एक प्रकारका 'तबाशीर' प्राप्त होती है। इसके दो भेद होते हैं–(१) कालाई लिए और (२) सफेद और लम्बी। (माइन गुलाबतुमुजारब)।

प्रकृति—काली चौथे, और सफेद तीसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—काली उग्र विष है। आधे चनेके बराबर भी बहुतसे कै एवं दस्त लाकर मार डालती है। इसके खानेसे दाह, बेचैनी और पेटमें गर्मी उत्पन्न हो जाती है। हाथ-पैरमें आक्षेप हो जाता है। इसका उपचार वत्सनाभविषके समान करें। इसका प्रयोग वर्जित है। सफेद भेद भी ७ रत्तीकी मात्रामें सेवन करनेसे मार डालती है और इससे भी काली जैसे ही उपद्रव हो जाते हैं। किसी प्रकारके विषमें इसे देनेसे वह विरेक द्वारा निकल जाता है। समस्त विषजन्य रोगोंको अपने प्रभावसे नष्ट करती है। इसको उगाड़ते समय चेहरेको इसके वाष्प लगनेसे बचाना चाहिये, क्योंकि इससे तुरन्त सूजन हो जाती है। (मख्जन)। मात्रा–० ८ ग्रामसे १ ७ ग्राम (६ रत्ती से १½ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—स्वर्णक्षीरी रसमें तिक्त, शीतवीर्य, भेदन, रेचन, व्रणशोधन तथा कृमि, पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शोथ, दाह, ज्वर, कुष्ठ, विष, रक्तविकार और आनाहका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८, ३९, चि० अ० ८, रा० नि०; भा० प्र०)।

(६४१) हींग और अंजुदान

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) हींग, (अ०) हिल्तीत, (फा०) अगोज , अगोज़; अंगजद, अगुश्तगद, (स०) हिंगु, रामठ, (गु०, म०, बम्ब०) हिंग, (गु०) हींग, वघारणी, (बं०) हिंगु, हिङ्, (ले०) आस्साफीटीडा (Assafoetida), (अं०) ऐसाफेटिडा (Asafetida), डेविल्स डग (Devil's Dung)।

इतिहास—यह औषधि अति प्राचीन है। सुतरा प्राचीन यूनानी और रूमी चिकित्सक यथा सावफरिस्तुस, दीसकूरीदूस और प्लाइनी आदिने 'सल्फियम्' नामसे इसका उल्लेख किया है। उन्होने दो प्रकारके हीगका उल्लेख किया है—(१) एक वह जो सीरियामे उत्पन्न होती है, और (२) जो एशियामें उत्पन्न होती है। भारतीय आर्यवैद्य भी इसका प्रयोग अतिप्राचीन कालसे करते थे। कारण प्राचीन सुश्रुत, काश्यप, चरक आदि संहिताग्रन्थोमें इसका उल्लेख मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, तुर्किस्तान, पश्चिमी अफगानिस्तान और पजाब। मण्डी—क्वेटा, डेरा इस्माइल खाँ, मुलतान और पेशावर।

वर्णन—यह अजुदान या हीगके क्षुप फेरुला आल्लिआसेआ (**Ferula alliacea** Boiss), फे० आस्सा-फेटिडा (**F Assafoetida** L), फे० नार्थेक्स (**F. narthex** Boiss)का जमाया हुआ दूध या तैलीय रालदार गोंद (Oleo-gum-resin) होता है जो डलियोके रूपमे और गहरा पीला और कभी-कभी हलका गुलाबी होता है। इसमें लहसुन जैसी (Alliaceous) तीक्ष्ण गन्ध होती है। स्वाद तिक्त एव खराब होता है। शोरेके तेजाबके सम्पर्कसे यह हरा रग देता है। हीगके फलको जिसे व्यवहारमे बीज कहते है, अंजुदान कहते है। फारसी 'अगदान' से अरबी 'अञ्जुदान' बनाया गया है। दियासलाईसे जलानेसे जो सम्पूर्ण जल जाय उसे शुद्ध हीग समझकर काममें ले सकते है।

भेद—तय्यब (सुगन्धित) और मुन्तिन (दुर्गन्धित) भेदसे हीग दो प्रकारकी होती है —(१) हिल्तीत तय्यब (अगोजये खुश्बू—सुगन्धित उत्तम हीग) सफेद अजुदान (Ferula alliacea Boiss)से प्राप्त होती है और इसको हीराहींग कहते है। शुद्ध खालिस हीगको त(ता)लाब हींग या मुलतानी हींग कहते है। इसीका वर्णन यहाँ किया गया है। औषधमें व्यवहारके लिए यही सर्वोत्तम समझी जाती है। (२) हिल्तीत मुन्तिन (दुर्गन्धित हीग-अगोजये बदबू) काले अंजुदान या कमात (**F. foetida** Regel)से प्राप्त होती है। इसको केवल हींग या हींगडा कहते है। यह दोनो गुणकर्मादिमे प्राय समान है (विस्तृत विवरणके लिए दे० उम्दतुल् मुह्ताज एवं मुहीत आजम)।

रासायनिक सगठन—इसमें राल ४०% से ६४%, गोद २५%, उत्पत् तेल ६ १७%, पाइनीन (Pinene), ऑर्गन डाइसल्फाइड (Organ di-sulphide) और अम्बेलिफेरोन, प्रथममे उत्पत्तेलके अतिरिक्त फेरुलिक एसिड, ऑर्गेनिक गन्धक योग आदि होते है।

कल्प तथा योग—हब्ब हिल्तीत।

हीग—

प्रकृति—चौथे दर्जेमे गरम और दूसरेमे खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (च०, सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, आक्षेपहर, कोथप्रतिबधक, श्लेष्मनि सारक, मूत्रार्तवजनन और शोणितोत्क्लेशक, विशेषकर वातानुलोमन, वातनाडयुत्तेजक और कफोत्सारि है। वातानुलोमन होनेके कारण उदर-शूल एव उदरानाहको दूर करनेके लिए वस्ति, तिला एव भक्षणीय औषधके रूपमें हीगका उपयोग किया जाता है। आक्षेपहर होनेके कारण यह आक्षेपयुक्त रोगो विशेषकर अपतन्त्रक व्याधिमे प्रयुक्त होती है। यह वातनाडियोके भीतर उत्तेजना पैदा करती है, इसलिए ध्वजोच्छ्राय करनेके कारण वाजीकर भी है तथा शोणितोत्क्लेशक होनेके कारण यह तिलाओमे डाली जाती है। यह उपस्थेन्द्रियमे शक्ति उत्पन्न करती है। श्लेष्मनि सारक होनेके कारण या कास एव कफज कृच्छ्रश्वासमे प्रयुक्त की जाती है। यह जलोदरमें भी गुणदायक है। अहितकर—यकृत्, मस्तिष्क और उष्ण प्रकृतियोके लिए। निवारण—दोनो अनार, कतीरा, अनीसूँ, सेब और चन्दन। मात्रा—१ माशा।

आयुर्वदीय मत—हीग कटु, उष्णवीर्य, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर, लघु, दीपन, पाचन, रोचन, हृद्य, सज्ञा-स्थापन, छेदन तथा वात, कफ, विबन्ध, शूल, आध्मान, अजीर्ण, कृमि, गुल्म और उदररोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५, २७, सु० सू० अ० ३८, ४६, रा० नि०)।

नव्यमत—हीग दीपन, पाचन, आमाशय-आँतो और गर्भाशयको उत्तेजित करनेवाला, वायुनाशक, आनुलोमिक, कृमिघ्न, छेदनीय, कफहर, कफदुर्गन्धहर, नाडीव्यूहके लिए प्रबल उत्तेजक, सकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर) और विषमज्वरहर है। हीगमें स्थित उडनेवाला तेल श्वासनलिका, त्वचा और वृक्कके द्वारा शरीरसे नि मरित होता है। इससे कफ पतला होता तथा कफकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और कफस्थित रोगजन्तु नष्ट होते हैं। फुफ्फुसके रोगोमे हीग बहुत गुणकारक है। प्रौढ मनुष्यके जीर्णश्वासनलिकाशोथ, दमा और कुकुरखाँसीमें और बालकोके फुफ्फुसशोफ, श्वासनलिकाशोथ अथवा शिशुओके फुफ्फुसके रोग आराम होनेके बाद जो सूखी खाँसी आती है उसमे इसे देते है। फुफ्फुसके रोगमे इसे पानीमे मिलाकर देते है। इससे कफ पतला होता है और पुष्कल उत्पन्न होता हो तो वह कम होता है। पेटका अफारा और दर्द, कब्ज, आमाशय और आँतोकी शिथिलता, कुपचन और कृमिरोगमें भी इसे देते है। शीतज्वरमे यह बडा उपयोगी है। ज्वरमे सन्निपातके लक्षण दीखते ही हिंगु-कपूरबटिका (हीग १ भाग, कपूर १ भाग मिलाकर दो रत्तीकी गोली बनावें। इसमें ½ भाग कस्तूरी मिलानेसे विशेष लाभ होता है।) देनी चाहिए। इससे नाडीकी गति सुधरती है और हाथ-पाँवका कम्प, कपडे फेंकना, उठ-भागना, प्रलाप आदि सान्निपातिक लक्षण कम होते है। हृद्रोगमें इसका उत्तम उपयोग होता है। हृदयकी धडकन, हृदयमे पीडा होना, जी घबराना—इसमें हिङ्गु कपूरवटिका देते है। हीगसे गर्भाशयका सकोच होकर ऋतु साफ होता है और पेटका दर्द कम होता है। प्रसूतास्त्रीको इसका उपयोग कराना उत्तम है। इसके खिलानेसे नारू भरता है। पेटके रोगोमें हीगको घीमे भूनकर और फुफ्फुसके रोगोमें कच्चा देना चाहिए। (औ० स०)।

अञ्जुदान (हिंगुबीज)

प्रकृति—दूसरे दर्जेमे गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, दीपन, मूत्रार्तवजनन, वाजीकर एव मूत्रल है। अजुदानको मस्तिष्क और वातव्याधियो जैसे–अर्दित, पक्षवध, विस्मृति आदिमें उपयोग करते हैं। यह आमाशय और पाचनको शक्ति देने, वायुका उत्सर्ग करने तथा मूत्रार्तवजननके लिए भी प्रयुक्त होता है। कफज ज्वरो, जलोदर और कामलाके लिए भी इसका उपयोग करते है। नपुसकतामे इसे उपयुक्त औषधियोके साथ खिलाते है। अहित-कर–वस्तिको। निवारण–खरबूजेके बीज। प्रतिनिधि–हीग। मात्रा–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे)।

●

(६४२) हुलहुल

फ़ैमिली : काप्पारीडासे (Family Capparidaceae)

नाम—(हिं०) हुरहुर, हुलहुल, (व०) हुरहुरिया, (प०) बुगरा, (को०) चमनी, (म०, बम्ब०) तिलवण; (गु०) तलवणी, (मा०) बगरो, (मल०) आर्यवाल, कार्वेल, (तेल०) कुक्कवा (नेलवा), मिटम, (ता०) कडुगु नाय-वेलै, (का०) काडुसारिवे, (सिंध०) किनीबुटी, श्वेतपुष्पा, (लै०) गीनान्ड्राप्सिस पेन्टाफीला **Gynandropsis pentaphylla** DC (पर्याय–क्लीओम् पेन्टाफील्ला (*Cleome pentaphylla* Linn), (अ०) क्लीओम (Cleome), पीतपुष्पा–क्लीओम् विस्कोजा (**Cleome viscosa** Linn); (अ०) स्टिकी क्लीओम (Sticky Cleome), डॉग मस्टर्ड (Dog Mustard); नीलपुष्पा–क्लीओम् मोनोफील्ला (**Cleome monophylla** Linn)।

वक्तव्य—इसे यूनानियोका विन्त्राफलुन (दे०) मानना भ्रामक है। इसके शास्त्रीय नामके सम्बन्धमें मत-भिन्नता पायी जाती है। इसकी पत्तियाँ पर्णनालपर सूर्यके साथ घूमती रहती है। इसलिए कुछ लोग इसे आदित्य-

भक्ता भी कहते है। गुजराती और मराठी नाम तलवण(णी) और त(ति) लवण इसके तिलपर्णी होनेका सदेह पैदा करते है। वगीय वैद्य इसे सुवर्चला मानते है। श्री आचार्य यादवजीने इसे अजगन्धा माना है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्ण प्रदेश।

वर्णन—एक तीव्र दुर्गन्धयुक्त, १ से ३ फुट (१-१॥ हाथ) ऊँचा क्षुप जो वर्षाऋतुमें होता है। काण्ड और शाखा रोमश, पत्तियाँ सपत्रक पाणिवत्, पत्रक प्राय पाँच, अभिलट्वाकार ग्रंथिल रोमश, पत्तियाँ मसलनेसे उनमें से उग्रगन्ध आती है, पुष्पश्वेत (या बैगनी) और फलियाँ लम्बी होती है। बीज राईके दानेके समान होता है। पीले फूलवालीमें प्रायः नीचे पाँच दलवाले और ऊपर तीन दलवाले सयुक्त पर्ण और फूल पीले होते है। इसकी एक अन्य जाति होती है जिसके पर्ण अपत्रक और पुष्प बैगनी होते है। ये दोनो जातियाँ प्रान्तमे सर्वत्र मिलती है।

उपयुक्त अग—क्षुप, पत्र, बीज और मूल।

रासायनिक संगठन—श्वेतमें उडनेवाला तेल (Essen oil) बीजमें क्लीओमिन (Cleomin) नामक वीर्य होता है। पीले हुरहुरके बीजमे विस्कोसिक एसिड (Viscosic acid) ०·१% और विस्कोसिन (Viscosin) ०·०४% ये दो वीर्य होते है।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीनो प्रकारके हुरहुरके बीजकी क्रिया राईके समान होती है। ये स्वेदजनन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, दाहजनन, शोणितोत्क्लेशक, दीपन-पाचन और कृमिघ्न है। कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्र-कल्क और स्वरससे पकाया हुआ तेल कानमे डालते है। १॥ माशा से ३ माशा हुलहुलके बीजका चूर्ण खिलानेसे गोल(गण्डूपद)कृमि निकलते है। मूर्छितकी सज्ञानयनके लिए बैगनी फूलवाले हुरहुरकी जडके चूर्णको रोगीके होठो पर लगाते है।

नव्यमत—हुलहुलके बीजकी क्रिया राईके समान होती है। यह स्वेदजनन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, दाहजनन, शोणितोत्क्लेशक, दीपन-पाचन और कृमिघ्न है। कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्रकल्क और स्वरससे पकाया हुआ तेल कानमे डालते है। १॥ से ३ माशा इसके बीजोका चूर्ण खिलानेसे गोल (गण्डूपद) कृमि निकलते है। (औ० स०)।

●

(६४३) हुस्नयूसुफ

फ़ैमिली : डिआटोमासे (Family : Diatomaceae)

नाम—(हिं०) किर्मली (किल्मली)के बीज, (अ०) हाशीश, (फा०) हुस्नयूसुफ, (उ०) तुख्म किर्मली (किल्मली)।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीरी झीलोमें तैरते हुए पाये जाते है, ऐसा डीमक महोदयका मत है।

वर्णन—ये पोस्तेके दानेसे बहुत छोटे, सफेद एव तीक्ष्णस्वादयुक्त कठोर दाने (Diatoms) होते है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य त्वचाके ऊपर इसका लेखनीय और शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिर) प्रभाव होता है। अभ्यन्तर उपयोगसे यह तीव्र वामक है। चेहरेका रग निखारने और झाईं आदि दूर करनेके लिए

इसका पतला लेप करते हैं अथवा इसे उबटनो (अगराग लेपो) में मिलाकर मलते हैं। तीव्र वामक होनेके कारण बीजोका आभ्यान्तरिक उपयोग नही किया जाता। तीन-चार माशाकी मात्रामें इसके सेवनसे अत्यन्त वमन होता, दाह एव बुद्धिविभ्रम उत्पन्न हो जाता है और अन्तत मनुष्य यमलोक सिधारता है। ताजा दूध या यवमण्ड अथवा जौका सत्तू या छाछ वर्फसे शीतल करके पिलानेसे इसके उक्त विपका नाश होता है।

०

(६४४) हू(ह्यू)फ़ारीकून

फ़ैमिली हीपेरीकासे (Family Hypericaceae)

नाम—(हिं०; प०) वस्सन्त, (उ०) वलसान, (अ०) अल्-ह्यू (हू,ह्यू) फारीकून (इ० वै०), (यू०) ऊपेर्कोन Uperkon (D 3 161), हिपेरिकोन (Hyperikon), (ले०) हीपेरिकुम् परफोरेटुम् (**Hypericum perforatum** Linn), (अ०) सेन्ट जॉन्सग्रास या वर्ट (St John's Grass or Wort), हन्ड्रेड होल्स (Hundred holes)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण और पश्चिम हिमालयमे ६,००० फूट से ९,००० फुट पर, कश्मीर, शिमला आदि तथा समशीतोष्ण उत्तर एशिया, उत्तरी अमेरिका, इगलैड आदि।

वर्णन—काड, कोणाकार, १फुट से १½ फुट ऊँचा, पत्र सम्मुखवर्ती, अवृन्त, अण्डाकार (Oval) और लबोतरा आयताकार (Oblong), छोरोपर क्षुद्र काले धब्बो और धरातलमें तीन असख्य, पारदर्शक, गोल तैलग्रन्थियोसे युक्त होता है। पत्तियोमें असख्य क्षुद्र छिद्रनुमा धब्बे होते हैं, इसलिए इसका 'परफोरेटुम् (सच्छिद या सुषिरपूर्ण)' नाम अन्वर्थक है। पुष्प पीले, तीन समूहोमें न्यस्त असख्य पुकेसर (Stamens) से युक्त और गर्भाशय (Ovary) में गम्भीर (कालाई लिए) लाल योनिसूत्र (Styles) होते हैं। स्वाद सुगन्धित, तिक्त एव कषाय।

उपयुक्त अग—क्षुप तथा इसका लाल स्वरस।

रासायनिक सगठन—इसमे उत्पत् तेल (Essential oil) और क्षुपमें ० ५–०·१ प्रतिशत हाइपेरिन (Hyperin) अर्थात् हूफारीकीन नामक एक ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—प्रवाही सार · मात्रा–½ से १ ड्राम।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, व्रणशोधन, व्रणरोपण, नाडीबलदायक, मूत्रजनन, आर्तवजनन, सौदा-पित्तविरेचक और नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक हैं। शीतल दोषोसे हुए कठिन शोथोपर इसका लेप करते हैं। इसमें दोषोको पतलाकर और पिघलाकर विलीन करनेकी शक्ति है, इसलिए दोष नि सरित हो जाते हैं। आगसे जले हुए स्थानपर इसकी पत्तियाँ पीसकर लगानेसे लाभ होता है। यह लेप बडे-बडे घावो और अत्यन्त दुष्टव्रणोको भर देता है। इसकी सूखी पत्तियोको पीसकर दुष्टव्रणोपर छिडकनेसे व्रण शीघ्र शुद्ध होकर भर जाते है। अपतानक (कुज़ाज) में इसकी पत्तियोको मद्यके साथ पीनेसे लाभ होता है। यदि पक्षवधमें गरदन एक ओर झुक जाय तो इसकी पत्तियोको मलें। वातरक्त, गृध्रसीवात और कूल्होके दर्दमें इसके पीने और लगानेसे लाभ होता है। इससे मूत्र और आर्तव खुलकर आ जाते हैं। फल पित्त एव सौदाको दस्तोके रास्ते निकालता है। यह यकृत्, गर्भाशय और रगोका शोधन करता है। बीजोसे फल बलवत्तर है। ७ माशे इसके बीज खाकर ऊपरसे

ठंढा पानी पीनेसे दस्त आकर पित्त निकल जाता है। चौथियामें इसके बीज गुणकारक है। इस कामके लिये इसको सुदावके बीजोके साथ देना चाहिये। जालीनूसके कथनानुसार केवल बीज ही नही, अपितु समग्र फलका उपयोग करना चाहिये। अहितकर– उष्णप्रकृतिवालोमे सिरदर्द उत्पन्न हो जाता है। निवारण–सिकजबीन, कतिपय हानियोके लिए पुदीना। प्रतिनिधि– समभाग इजखिर या कबरकी जड। मतातरसे अर्धभाग कबरमूल या चीता, समभाग सोया या अनीसून। मात्रा–३ ५ ग्रामसे ६ ७५ ग्राम (३॥ माशेसे ६॥ माशे) तक।

गुण-कर्म तथा उपयोग—किंचित् कषाय, कफोत्सारि और मूत्रल। सर्दी, खाँसी और साधारणतया समस्त फुफ्फुसरोगोमे उपकारी है। मूत्रपथके विकारोमें इसकी बडी प्रसशा की जाती है। २½ तोले इसके क्षुपका एक पाइट उबलते पानीमें बनाया हुआ हिम या फांट एक वाइनग्लासफुलकी मात्रामे सेवन किया जाता है। इसके ताजे फूलोका जैतूनके तेलमें बनाये हुये हिम (फाट)को रोगन हूफारीकून (O1l of St Jhon's wort) कहते हैं। इसके उपयोगसे नये घाव एव व्रण (Wounds, sores, ulcers) और सूजन (Swelling) आराम होते है।

यूनानो द्रव्यगुणादर्शके उद्भिज्ज औषधाहारद्रव्य-विज्ञानीय विभाग १ समाप्त हुआ।

•

प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श-ग्रन्थके खण्ड २ मे आये उद्भिज्ज औषधाहार-द्रव्यो तथा उनके उपयुक्त अंगो एवं विषयोके विभिन्न भाषाके शब्दो (नामो)की हिन्दी वर्णानुक्रमणिका।

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

थ

विषय एव शब्द	पृष्ठांक	विषय एव शब्द	पृष्ठाक
धाई (का०)	४०३	धोबीज नट (अ०)	५५३
धाईफुल (व०)	,,	धूम (नेपा०)	३०३
धाओया (व०)	,,	धूम्रपत्रा (स०)	१७७, ३२६
धाणा (गु०)	३९९	धूर्त (स०)	३९६
धातकी (स०, हिं०)	४०३	धेनेल (प०)	३९९
धात्री (स०)	५६	धोतु जीरुं (गु०)	३४१
धानिवल (क०)	३९९	धोत्रा, धोतरा (म०)	३९६
धान्यक (स०)	,,	धोली ध्रो (गु०)	३९३
धान्यकुस्तुम्बरु (सं०)	,,	धोली मुसली (गु०)	५८८
धान्यरुक् (सं०)	४१	धौंकरा (हिं०)	४०३
धामार्गव (सं०)	३७०	धौरा (खर०)	४०३
धाय(ई)के फूल (हिं०)	४०३	धौ(धौ)रा (हिं०)	४०३
धायटी, धावस (म०)	,,	धौरहुली (अ०)	१२८
धायफूल (खर०)	,,	ध्रामाऊ (कच्छ)	४००
धाराकोषातकी (स०)	३७०	धरेक (व०)	४०९
धाराफल (स०)	१२८	ध्रेरक (पं०)	४७९
धारु (हिं०)	९०	ध्रो (गु०)	३९३
धाव (हिं०)	४०३		
धावडा (म०)	,,	**न**	
धावडी (णी) (मा०, गु०)	४०३	नअून(ना)अ,ना' नाअ (अ०)	४१०
धावडो (गु०)	,,	नइर (गढ)	१६४
धावा (धव)	४०३-४०४	नकछिकनीं (हिं०)	४०४-४०५
,, का गोंद	४०४	न(ना)कपतर (हिं०)	४२०
धावागोद (हिं०)	४०३	नकली सालम मिश्री (हिं०)	६७६
धावी (प०)	,,	नक्सवॉमिका (अ०)	१७९,१८०
धिरो (गु०)	३९३	नखील, नख्ल (अ०)	२०९
धुदुल (व०)	३७०	नखुद (फा०)	२९०
धुदुला (सं०)	३७०	नगद (गु०)	३५०
धुना (व०)	६०४	नगदीबूटी (मार०; राज०)	४१८
धुपरिया सन (हिं०)	६५८	नगोड (गु०)	६५०
धुप सलसी (नेपा०)	३०३	नटकनेर (व०)	६०६
धुरन्धरी (स०)	४०३	नटग्रास (अ०)	५९८
धूतूरा (व०)	३९६	नटमेग (अ०)	३३७
धूप (हिं०)	९९	नतरुन (मिश्र)	८५
धूपडो (गु०)	६६७	नतवक्र (म०)	३५७
धूपालई (म०)	६६७	नदियुस्समाऽ (अ०)	६४२

प

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक	विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
म		मखमल (बम्ब०)	२७१
मकी पेपर (अं०)	७१४	मखाणा (गु०)	५६१
मकी-फेस-ट्री (अं०)	१३२	मखाना (हिं०, ब०)	५६१-५६२
मकी फ्रूट (अं०)	४८८	मखान्न (सं०)	५६१
मग (तै०)	५९६	मखारा (हिं०)	५६१
मंगकोप(व) (ब्रह्मा)	५९२	मग (गु०)	५८९
मँगरैला (हिं०)	१४३	मगवर्ट (अं०)	३२,३९५
मगामरम् (ता०)	५५	मगा (पं०)	४४८
मगिस्तना (मं०)	५९२	मगासे हिंदी (अ०)	५९५
मगुस्ता (मल०)	५९२	मगिया माईं (बम्ब०)	३५३
मगुस्तान, मगोस्तान (हिं०, ब०, बम्ब०)	५९२	मगिया मैंन (बम्ब०)	४७१
मजिष्ठा (सं०; ब०, म०)	५६२	मग्ज अमलतास (अ०)	३५
मँजीठ (हिं०)	५६२	,, कश्नीज़ (फा०)	३९९
मँडुआ (हिं०)	५५५	,, तुख्म इमली (फा०)	७१
मदारै (ता०)	१०५	,, ,, करजुवा (अ०)	१३६
मइन (जौनसार)	३१९	,, ,, बुत्म (फा०)	५३२
मकई (हिं०, पं०)	५५७	मग्ज़ नारजील (अ०)	४१४
मकडा (हिं०)	५५५	,, पिस्ता	४४७
मकडी मूतना	४३	,, फुलूस खियार शबर (अ०)	३५
मकदूनी (अ०)	१५	,, बेल (फा०)	५३९
मकरकेंद (सथा०)	३७५	,, बेह हिंदी (फा०)	,,
मकलियासा (अ०)	७२६	मग्ज सफरजले हिंदी (अ०)	,,
मका (म०)	५५७	मग्द (अ०)	५४१
मकाई (हिं०, गु०, सिंध)	५५७-५५८	मछेछी (हिं०)	५६१-५६२
मका(खा)णे (म०)	५६१	मज़ारमुड (क०)	७०७
म(मु)कुष्ठक (सं०)	५९७	मजारपोश (फा०)	७०८
मको (हिं०, पं०)	५५८	मजीठ (हिं०, पं०, गु०)	५६२-५६३
मकोइचा (हिं०)	५६०	मजेठ (क०)	५६२
मकोइया (हिं०)	,,	मज्जफल (सं०)	५७४
मकोय (हिं०)	५५८	मटर हिं०)	५६३-५६४
मकोय(ई) (हिं०)	५६०	मट्टक (सं०)	५५५
मकोय (उर्दू)	६२६	मट्र (पं०; ब०, गु०)	५६३
मकोय जंगली	५६०-५६१	मठ (म०, गु०)	—
मकोय लाल	४५९-५६०	मडार अल्बन (अ०)	४९
मकोर (म०)	५६०	मडुआ (हिं०)	५५५
मक्का (हिं०, मार०)	५५७	मण्डूकपर्णी (सं०)	३११, ३३१

विषय एव शब्द — पृष्ठाक

यूनानी-द्रव्यगुणादर्श खण्ड २के उद्भिज्ज-औषधाहार द्रव्योंके लेटिन, अँगरेजी आदि शब्दों (नामों)की आंग्ल वर्णानुक्रमणिका

C

J

पा० द्रि० २

O

P

Q

T

X

Y

Z